कृष्णदास संस्कृत सीरीज २६७

महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

श्रीवायुमहापुराणम्

संस्कृत मूल, हिन्दी अनुवाद एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित

सम्पादक एवं अनुवादक
डॉ. सुधाकर मालवीय एवं पं. चित्तरञ्जन मालवीय

(द्वितीय भाग)

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
२९७
****

महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

श्रीवायुमहापुराणम्

संस्कृत मूल, हिन्दी अनुवाद एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित

सम्पादक एवं अनुवादक
डॉ० सुधाकर मालवीय
एम.ए., पीएच. डी., साहित्याचार्य
पूर्व विद्वान्, पुराण विभाग
काशिराजट्रस्ट, दुर्ग रामनगर, वाराणसी
(लब्धावकाश) संस्कृतविभाग, कलासङ्काय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
एवं
पं० चित्तरञ्जन मालवीय
रीडर पुराणविभाग
महामना संस्कृत अकादमी

(द्वितीय भाग)



चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०८२, सन् २०२४

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
(गोपाल मन्दिर के उत्तरी फाटक पर)
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : २३३३४५८ (आफिस), २३३४०३२ एवं २३३५०२० (आवास)
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
297
***

VĀYUMAHĀPURĀṆA

Sanskrit Text and Hindi Translation with Sloka Index

Translated by
Dr. Sudhakar Malaviya
&
Pt. Chittaranjan Malaviya

Vol. II



CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
Varanasi

Publisher : Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi
Edition : First, 2024

Oriental Publishers & Distributors
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1118, Varanasi- 221001
(INDIA)
Phone : (0542) 2335020

Also can be had from :

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers and Oriental and Foreign Book-sellers
K . 37/99, Gopal Mandir Lane
At the North Gate of Gopal Mandir
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi- 221001 (India)
Phone { Office : (0542) 2333458
Resi. : (0542) 2334032, 2335020
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

विषय सूची

पूर्वार्द्ध

१. प्रक्रियापाद

१. वायुपुराण की अनुक्रमणिका ३
२. बारह वर्षों तक चलने वाले यज्ञ का निरूपण १९
३. प्रजापति की सृष्टि का वर्णन २३
४. प्राचीन ऋषियों की विचित्र सृष्टि का वर्णन २७
५. सृष्टिप्रकरण ३५
६. सृष्टिप्रकरण ४०

२. उपोद्घातपाद

७. कल्पों की प्रतिसन्धि का वर्णन ४७
८. चतुराश्रम विभाग वर्णन ५४
९. देव आदि की सृष्टि का वर्णन ७०
१०. मन्वन्तरों का वर्णन ८०
११. पाशुपतयोग निरूपण ८८
१२. योगोपसर्ग कथन ९४
१३. योगैश्वर्य निरूपण ९८
१४. पाशुपतयोग निरूपण १०१
१५. पाशुपतयोग निरूपण १०५
१६. शौचाचार लक्षण निरूपण १०७
१७. परमाश्रम विधि कथन ११०
१८. यति प्रायश्चित्त विधिकथन १११
१९. अरिष्ट निरूपण ११४
२०. ओङ्कारप्राप्ति लक्षण निरूपण ११८
२१. कल्प निरूपण १२३
२२. कल्पसंख्यानिरूपण १३०
२३. माहेश्वरावतारयोग १३३
२४. शार्वस्तव १५१
२५. मधुकैटभोत्पत्तिविनाश वर्णन १६६
२६. स्वरोत्पत्ति निरूपण १७५
२७. महादेव के शरीर का वर्णन १८०
२८. ऋषिवंश कीर्त्तन १८६
२९. अग्निवंश वर्णन १९०
३०. दक्षशाप वर्णन १९५
३१. देववंश वर्णन २२२
३२. युगधर्म २२८
३३. स्वायम्भुव वंश वर्णन २३४
३४. जम्बूद्वीप वर्णन २४०
३५. जम्बूद्वीप वर्णन २४९
३६. भुवनविन्यास २५३
३७. भुवनविन्यास २५६
३८. भुवनविन्यास २५९
३९. भुवनविन्यास २६५
४०. भुवनविन्यास २७१
४१. भुवनविन्यास २७४
४२. भुवनविन्यास २८१
४३. भुवनविन्यास २८८
४४. भुवनविन्यास २९२
४५. भुवनविन्यास २९४
४६. भुवनविन्यास ३०५
४७. भुवनविन्यास ३०९
४८. भुवनविन्यास ३१६
४९. भुवनविन्यास ३२०
५०. ग्रह एवं नक्षत्रों का भ्रमण ३३६
५१. ग्रह एवं नक्षत्रों का भ्रमण ३५४
५२. ग्रह एवं नक्षत्रों का भ्रमण ३६१

५३. ज्योति सन्निवेश ३७०
५४. नीलकण्ठ की स्तुति ३८१
५५. लिङ्गोद्भवस्तव ३९२
५६. पितरों का वर्णन ३९९
५७. यज्ञ वर्णन ४०८
५८. चतुर्युग वर्णन ४२०
५९. ऋषियों के लक्षण ४३२
६०. महास्थानतीर्थवर्णन ४४३
६१. प्रजापति के वंश का वर्णन ४५१

उत्तरार्द्ध

१. पृथिवी का दोहन ४६९
२. पृथु के वंश का वर्णन ४८७
३. वैवश्वत मन्वन्तर की सृष्टि का वर्णन ४९३

३. अनुषङ्गपाद

४. प्रजापति के वंश का वर्णन ४९७
५. कश्यप ऋषि की प्रजा का वर्णन ५१२
६. कश्यप की प्रजा सृष्टि का वर्णन ५२७
७. कश्यप की सन्ततियों की सृष्टि का वर्णन ५४०
८. कश्यप ऋषि की प्रजा सृष्टि ५४४
९. ऋषि वंश का वर्णन ५७६
१०. श्राद्ध की प्रक्रिया ५८५
११. श्राद्ध कल्प ५९३
१२. श्राद्ध कल्प ६०४
१३. श्राद्ध कल्प ६०८
१४. श्राद्ध कल्प ६१५
१५. श्राद्ध कल्प में तीर्थयात्रा ६२०
१६. श्राद्ध कल्प ६३२
१७. श्राद्ध कल्प ६४०
१८. श्राद्ध कल्प में दान का फल ६५०
१९. विशेष तिथि में श्राद्ध का फल ६५६
२०. विशेष नक्षत्रों में श्राद्ध का फल ६५९
२१. गया श्राद्ध का फल ६६१
२२. वरुणवंश वर्णन ६७२
२३. वैवस्वतमनुवंश वर्णन ६८०
२४. गन्धर्वों की मूर्च्छना ६८३
२५. गीतालङ्कार वर्णन ६८९
२६. वैवस्वतमनुवंश वर्णन ६९४
२७. मैथिलवंश वर्णन ७१५
२८. चन्द्रमा का जन्म वृत्तान्त ७१८
२९. चन्द्रवंश का वर्णन ७२३
३०. रजियुद्धवर्णन ७३४
३१. ययातिप्रसव कीर्त्तन ७४४
३२. कार्तवीर्यार्जुनोत्पत्ति वर्णन ७५५
३३. ज्यामघ वृत्तान्त वर्णन ७६१
३४. विष्णुवंश वर्णन ७६६
३५. विष्णुमाहात्म्य वर्णन ७८९
३६. विष्णुमाहात्म्य वर्णन ८०६
३७. ययाति के पुत्रों का वंशवर्णन ८१८

४. उपसंहारपाद

३८. मन्वन्तरों का वर्णन ८५७
३९. भूर्लोक आदि की व्यवस्था एवं शिवपुर का वर्णन ८७९
४०. प्रतिसर्ग वर्णन ९११
४१. सृष्टि वर्णन ९२३
४२. व्यासजी की सन्देह निवृत्ति का वर्णन ९३०
४३. गया माहात्म्य वर्णन ९४०
४४. गया माहात्म्य वर्णन ९४५
४५. गया माहात्म्य वर्णन ९५४
४६. गया माहात्म्य वर्णन ९६०
४७. गया माहात्म्य वर्णन ९६९
४८. गया माहात्म्य वर्णन ९७५
४९. गया माहात्म्य वर्णन ९८२
५०. गया माहात्म्य वर्णन ९९१

* * *

उत्तरार्द्धे

प्रथमोऽध्यायः

पृथिवीदोहनम्

शांशपायन उवाच

क्रमं मन्वन्तराणां तु ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः । दैवतानां च सर्वेषां ये च यस्यान्तरे मनोः ॥ १ ॥

सूत उवाच

मन्वन्तराणां यानि स्युरतीतानागतानि ह । समासाद् विस्तराच्चैव ब्रुवतो वै निबोधत ॥ २ ॥
स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा । औत्तमस्तामसश्चैव तथा रैवतचाक्षुषौ ॥
षडेते मनवोऽतीता वक्ष्याम्यष्टावनागतान् ॥ ३ ॥
सावर्णाः पञ्चरौच्यश्च भौत्यो वैवस्वतस्तथा । वक्ष्याम्येतान् पुरस्तात्तु मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥ ४ ॥
मनवः पञ्च येऽतीता मानवांस्तान् निबोधत । मन्वन्तरं मया चोक्तं क्रान्तं स्वायम्भुवस्य ह ॥ ५ ॥

उत्तरार्द्ध

पहला अध्याय

(बासठवाँ अध्याय)

पृथिवी का दोहन

शांशपायन ने कहा—अब मैं मन्वन्तरों का क्रम एवं उन मन्वन्तरों में होनेवाले समान देवताओं के विषय में जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—अतीत एवं भविष्यत्काल में होनेवाले जितने मन्वन्तर हैं, उनका यथासम्भव संक्षेप और विस्तारपूर्वक मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये । मनुओं में सर्वप्रथम स्वायंभुव मनु हैं, तदनन्तर स्वारोचिष मनु का कार्यकाल आता है । इसी प्रकार उनके बाद औत्तम, तामस, रैवत एवं चाक्षुष मनु के कार्यकाल आते हैं । ये छह अतीतकालीन मनु हैं । अब आठ भविष्यत्कालीन मनुओं के बारे में बता रहा हूँ ॥ २-३ ॥

सावर्ण, पञ्चरौच्य, भौत्य और वैवस्वत का विवरण करूँगा । किन्तु वैवस्वत मनु को पहले कहता हूँ । पूर्व वर्णित उन पाँच मनुओं का वर्णन सुनिये, जो व्यतीत हो चुके हैं ॥ ४-५ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मनोः स्वारोचिषस्य ह । प्रजासर्गं समासेन द्वितीयस्य महात्मनः ॥ ६ ॥
आसन् वै तुषिता देवा मनुस्वारोचिषेऽन्तरे । पारावताश्च विद्वांसो द्वावेव तु गणौ स्मृतौ ॥ ७ ॥
तुषितायां समुत्पन्नाः क्रतोः पुत्राः स्वरोचिषः। पारावताश्च शिष्टाश्च द्वादशौ तौ गणौ स्मृतौ ॥
छन्दजाश्च चतुर्विंशद्देवास्ते वै तदा स्मृताः ॥ ८ ॥
धैवस्यशोऽथ वांमान्यो गोपा देवायतस्तथा । अजश्च भगवान् देवो दुरोणश्च महाबलः ॥ ९ ॥
आपश्चापि महाबाहुर्महौजाश्चापि वीर्यवान् । चिकित्वान् निभृतो यश्च अंशो यश्चैव पठ्यते ॥
इत्येते क्रतुपुत्रास्तु तदासन् सोमपायिनः ॥ १० ॥
प्रचेताश्चैव यो देवो विश्वेदेवास्तथैव च । समज्ञो विश्रुतो यश्च अजिह्मश्चारिमर्दनः ॥ ११ ॥
अजिह्मानमहीयानौ विद्यावन्तौ तथैव च । अजोषौ च महाभागौ यवीयश्च महाबलः ॥ १२ ॥
ह्योता यज्वा च इत्येते पराक्रान्ताः पारावताः । इत्येता देवता ह्यासन्मनुस्वारोचिषेन्तरे ॥ १३ ॥
सोमपास्तु तदा ह्येताश्चतुर्विंशतिदेवताः । तेषामिन्द्रस्तदा ह्यासीद्वैधश्च लोकविश्रुतः ॥ १४ ॥
ऊर्जो वसिष्ठपुत्रस्तु स्तम्भः काश्यप एव च । भार्गवश्च तदा द्रोणो ऋषभोऽङ्गिरसस्तथा ॥ १५ ॥
पौलस्त्यश्चैव दत्तात्रिरात्रेयो निश्चलस्तथा । पौलहस्य च धावांस्तु एते सप्तर्षयः स्मृताः ॥ १६ ॥
चैत्रः कविरुतश्चैव कृतान्तो विभृतो रविः । बृहद्गुहो नवश्चैव शुभाश्चैते नव स्मृताः ॥ १७ ॥
मनोः स्वारोचिषस्यैते पुत्रा वंशकराः स्मृताः । पुराणे परिसंख्याता द्वितीयं चैतदन्तरम् ॥ १८ ॥
सप्तर्षयो मनुर्देवाः पितरश्च चतुष्टयम् । मूलं मन्वन्तरस्यैते तेषां चैवान्तरे प्रजाः ॥ १९ ॥

अब मैं सर्वप्रथम स्वारोचिष मनु की प्रजा का संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ जो दूसरे मनु हैं ॥ ६ ॥

उस स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषित तथा विद्वान् पारावत नामक देवगण थे । ये दो गण उक्त मन्वन्तर के स्मरण किये गये हैं । तुषित के गर्भ से समुत्पन्न स्वारोचिष क्रतु के पुत्र पारावत और शिष्ट हैं, जो बारह-बारह के गण रूप में कहे गये हैं और छन्दज देवगण स्वारोचिष मन्वन्तर में चौबीस स्मरण किये गये ॥ ७-८ ॥

धैवस्यश, वामान्य, गोप, देवायत, अज, महाबलवान् दुरोण, महाबाहु आप, महापराक्रमी महौजा, चिकित्वान्, निभृत एवं अंश । ये सभी क्रतु के पुत्र स्वारोचिष मन्वन्तर में सोमपान करते थे ॥ ९-१० ॥

प्रचेता, विश्वेदेव, समज्ञ, विश्रुत, अजिह्म, अरिमर्दन, विद्वान् अजिह्मान और महीयान, महाभाग्यशाली अज, उष, महाबलवान् यवीय, होता एवं यज्वा—ये परम पराक्रमी पारावतगण हैं । ये स्वारोचिष मन्वन्तर के देव समूह थे । ये उपर्युक्त चौबीस देवता उस समय सोमपान करने वाले थे । उस समय लोक में प्रसिद्ध वैध देवताओं के इन्द्र थे ॥ ११-१४ ॥

वसिष्ठ के पुत्र ऊर्ज, कश्यप के पुत्र स्तम्भ, भृगु के पुत्र द्रोण, अंगिरा के पुत्र ऋषभ, पुलस्त्य के पुत्र दत्तात्रि, अत्रि के पुत्र निश्चल तथा पुलह के पुत्र धावान् ये सात सप्तर्षि कहे गये हैं ॥ १५-१६ ॥

चैत्र, कवि, रुत, कृतान्त, विभृत, रवि, बृहद्, गुह और शुभ—ये नव स्वारोचिष मनु के वंश वृद्धि करने वाले पुत्र पुराणों में परिगणित कहे जाते हैं, यह द्वितीय मन्वन्तर का वृत्तान्त है ॥ १७-१८ ॥

ऋषीणां देवताः पुत्राः पितरो देवसूनवः । ऋषयो देवपुत्राश्च इति शास्त्रविनिश्चयः ॥ २० ॥
मनोः क्षत्रं विशश्चैव सप्तर्षिभ्यो द्विजातयः । एतन्मन्वन्तरं प्रोक्तं समासान्न तु विस्तरात् ॥ २१ ॥
स्वायम्भुवेन विस्तारो ज्ञेयः स्वारोचिषस्य तु । न शक्यो विस्तरस्तस्य वक्तुं वर्षशतैरपि ॥
पुनरुक्तबहुत्वात्तु प्रजानां वै कुले कुले ॥ २२ ॥
तृतीयस्त्वथ पर्याय औत्तमस्यान्तरे मनोः । पञ्च चैव गणाः प्रोक्तास्तान् वक्ष्यामि निबोधत ॥ २३ ॥
सुधामानश्च देवाश्च ये चान्ये वशवर्त्तिनः । प्रतर्दनाः शिवाः सत्या गणा द्वादश वै स्मृताः ॥ २४ ॥
सत्यो धृतिर्दमो दान्तः क्षमः क्षामो धृतिः शुचिः। ईषोर्जाश्च तथा ज्येष्ठो वपुष्मांश्चैव द्वादश ॥
इत्येते नामभिः क्रान्ताः सुधामानस्तु द्वादश ॥ २५ ॥
सहस्रधारो विश्वात्मा शमितारो बृहद्वसुः । विश्वधा विश्वकर्मा च मनस्वन्तो विराड्यशाः ॥ २६ ॥
ज्योतिश्चैव विभाव्यश्च कीर्त्तिमान् वंशकारिणः। अन्यानाराधितो देवो वसुधिष्णो विवस्वसुः ॥ २७ ॥
दिनक्रतुः सुधर्मा च धृतवर्मा यशस्विनः । केतुमाँश्चैव इत्येते कीर्तितास्तु प्रतर्दनाः ॥ २८ ॥
हंसस्वरोऽहिहा चैव प्रतर्दनयशस्करौ । सुदानो वसुदानश्च सुमञ्जसविषावुभौ ॥ २९ ॥
यत्तु वाहयतिश्चैव सुवित्तसुनयस्तथा । शिवा ह्येते तु विज्ञेया यज्ञिया द्वादशापराः ॥ ३० ॥

सातों ऋषि, मनु, देवगण और पितर—ये चार प्रत्येक मन्वन्तर के मूल माने गये हैं । इनके अतिरिक्त जो प्रजाएँ हैं, वे सब इन्हीं के अवान्तरभूत हैं । देवगण ऋषियों के, पितरगण देवताओं के तथा ऋषिगण देवताओं के पुत्र कहे गये हैं—ऐसा शास्त्रों का निश्चय है ॥ १९-२० ॥

मनु से क्षत्रिय और वैश्यों की तथा सातों ऋषियों से द्विजातियों की उत्पत्ति कही गयी है—यही मन्वन्तर का विस्तृत नहीं प्रत्युत संक्षिप्त विवरण समझना चाहिए । मनु द्वारा जिस प्रकार सृष्टि विस्तार हुआ है, उसी प्रकार स्वारोचिष मनु द्वारा विस्तार समझना चाहिए । प्रत्येक कुलों में प्रजाओं के उत्पन्न होने के कारण तथा एक ही प्रकार के नाम पुनरुक्त होने के कारण सैकड़ों वर्षो मे भी इनका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ २१-२२ ॥

अब इसके उपरान्त तृतीय मनु औत्तम की कार्यविधि का वर्णन कर रहा हूँ । इस मन्वन्तर में पाँच देवगण कहे गये हैं । आप सुनिये । सुधामा, देव, प्रतर्दन, शिव और सत्य पाँचवें कहे गये हैं, जिनमें प्रत्येक की संख्या बारह है ॥ २३-२४ ॥

१. सत्य, धृति, दम, दान्त, क्षम, क्षाम, धाम, धृति, शुचि, ईषोर्जा, ज्येष्ठ और वपुष्मान् ये बारह सुधामा नामक देवगण कहे गये है ॥ २५-२४ ॥

२. सहस्रधार, विश्वात्मा, शतधार (शनिवार), बृहत्, वसु, विश्वकर्मा, मनस्वन्त, विराट्, यश, ज्योति, विभाव्य और कीर्तिमान ये देव वंश की वृद्धि करने वाले हैं ॥ २६-२७ ॥

३. अन्य, अनाराधित, देव, वसु, धिष्णु, विवस्वसु, दिन, क्रतु, सुधर्मा, धृतवर्मा, यशस्वी और केतुमान्-ये प्रतर्दन गण नाम से कहे गये हैं ॥ २७-२८ ॥

४. हंस, स्वर, अहिता, प्रतर्दन, यशस्कर, सुदान, वसुदान, सुमञ्जस, विषय, वाह, सुवित्त और सुनय-इन्हें शिव के नाम से जानना चाहिए । यज्ञिय बारह दूसरे हैं ॥ २९-३० ॥

सत्यानामपि नामानि निबोधत यथामतम् । दिक्पतिर्वाक्पतिश्चैव विश्वः शम्भुस्तथैव च ॥ ३१ ॥
स्वमृडीकोऽधिपश्चैव वर्च्चोधा मुह्यसर्व्वशः । वासवश्च सदाश्वश्च क्षेमानन्दौ तथैव च ॥ ३२ ॥
सत्या ह्येते परिक्रान्ता यज्ञिया द्वादशापराः । इत्येते देवता ह्यासन्नौत्तमस्यान्तरे मनोः ॥ ३३ ॥
अजश्च परशुश्चैव दिव्यो दिव्यौषधिर्नयः । देवानुजश्चाप्रतिमो महोत्साहौशिजस्तथा ॥ ३४ ॥
विनीतश्च सुकेतुश्च सुमित्रः सुबलः शुचिः । औत्तमस्य मनोः पुत्रास्त्रयोदश महात्मनः ॥
एते क्षत्रप्रणेतारस्तृतीयं चैतदन्तरम् ॥ ३५ ॥
औत्तमो परिसङ्ख्यातः सर्गः स्वारोचिषेण तु । विस्तरेणानुपूर्व्या च तामसस्तान्निबोधत ॥ ३६ ॥
चतुर्थे त्वथ पर्याये तामसस्यान्तरे मनोः । सत्या स्वरूपाः सुधियो हरयश्चतुरो गणाः ॥ ३७ ॥
पुलस्त्यपुत्रस्य सुतास्तामसस्यान्तरे मनोः । गणस्तु तेषां देवानामेकैकः पञ्चविंशकः ॥ ३८ ॥
इन्द्रियाणां शतं यद्धि मुनयः प्रतिजानते । सत्यप्राणास्तु शीर्ष्यण्यास्तमश्चैवाष्टमस्तथा ॥
इन्द्रियाणि तदा देवा मनोस्तस्यान्तरे स्मृताः ॥ ३९ ॥
तेषां च प्रभुदेवानां शिबिरिन्द्रः प्रतापवान् । सप्तर्षयोऽन्तरे चैव तान्निबोधत सत्तमाः ॥ ४० ॥
काव्यो हर्षस्तथा चैव काश्यपः पृथुरेव च । आत्रेयश्चाग्निरित्येव ज्योतिर्धामा च भार्गवः ॥ ४१ ॥
पौलहो वनपीठश्च गोत्रे वासिष्ठ एव च । चैत्रस्तथापि पौलस्त्य ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥ ४२ ॥
जनुवण्डस्तथा शान्तिर्नरः ख्यातिर्भयस्तथा । प्रियभृत्यो ह्यवक्षिश्च पृष्ठलोढो दृढोद्यतः ॥

---

५. अब सत्य के अनुगामियों के नाम सुनिये, दिक्पति, वाक्पति, विश्व, शम्भु, स्वमृडीक, अधिप, वधा, मुह्य, वासव, सदाश्व, क्षेम और आनन्द-ये बारह सत्यगण के नाम से विख्यात हैं । यज्ञिय बारह दूसरे हैं ये उपर्युक्त देवगण औतम मनु की कार्यावधि में कहे गये है ॥ ३१-३३ ॥

अज, परशु, दिव्य, दिव्यौषधि, नय, अनुपम वीर देवानुज, महोत्साह, औशिज, विनीत, सुकेतु, सुमित्र, सुबल और शुचि—ये तेरह महात्मा औत्तम मनु के पुत्र कहे गये हैं, जो क्षत्रियवंश की वृद्धि करनेवाले थे यह तृतीय मन्वन्तर का संक्षिप्त विवरण है ॥ ३४-३५ ॥

स्वारोचिष मनु की कार्यावधि में जिस प्रकार सृष्टिविस्तार हुआ था उसी प्रकार औत्तम मनु की सृष्टि का भी विस्तार हुआ कहा गया है । अब इसके उपरान्त तामस मनु की सृष्टि का विवरण विस्तारपूर्वक क्रमशः सुनिये । चतुर्थ तामस नामक मन्वन्तर में सत्य, स्वरूप, सुधी और हरि, इन चार नामोंवाले देवगण थे । इनमें से एक-एक गण में पचीस देवता थे ॥ ३६-३८ ॥

इस तामस मनु की कार्यावधि में पुलस्त्य पुत्र के पुत्रों का प्रादुर्भाव हुआ था । सत्यप्राण, परम श्रेष्ठ मुनिगण जिन एक सौ इन्द्रियों को तथा आठवें तम को स्वीकार करते हैं, उनमें से वे ही इन्द्रिय समूह उस मन्वन्तर के देवगण स्मरण किये गये हैं और जो उनका प्रभु प्रतापशाली शिवि था वही उस मन्वन्तर का इन्द्र था । हे सत्तम ! इसके अनन्तर उस मन्वन्तर के सप्त ऋषियों को सुनिये ॥ ३९-४० ॥

कवि के पुत्र हर्ष, कश्यप के पुत्र पृथु, अत्रि के पुत्र अग्नि, भृगु के पुत्र ज्योतिर्धामा, पुलह के पुत्र वनपीठ, गोत्रपुत्र वासिष्ठ और पुलस्त्य के पुत्र चैत्र—ये तामस मन्वन्तर के सात ऋषि हैं । हे ऋषिगण ! जनुवण्ड, शान्ति,

ऋतश्च ऋतबन्धुश्च तामसस्य मनोः सुताः ॥ ४३ ॥
पञ्चमे त्वथ पर्याये मनोश्चारिष्णवेऽन्तरे । गणास्तु सुसमाख्याता देवतानां निबोधत ॥ ४४ ॥
अमृताभाभूतरजोविकुण्ठाः ससुमेधसः । चरिष्णोस्तु शुभाः पुत्रा वसिष्ठस्य प्रजापतेः ॥
चतुर्दश च चत्वारो गणास्तेषां तु भास्वराः ॥ ४५ ॥
स्वप्नविप्रोग्निभासश्च प्रत्येतिष्ठामृतस्तथा । सुमतिर्वाविरावश्च वाचिनोदः स्रवस्तथा ॥ ४६ ॥
प्रविराशी च वादश्च प्राशश्चेति चतुर्दश । अमृताभाः स्मृताः ह्येते देवाश्चारिष्णवेऽन्तरे ॥ ४७ ॥
मतिश्च सुमतिश्चैव ऋतसत्यौ तथैव च । आवृतिर्विवृतिश्चैव मदो विनय एव च ॥ ४८ ॥
जेता जिष्णुः सहश्चैव द्युतिमान् श्रवसस्तथा । इत्येतानीह नामानि आभूतरजसां विदुः ॥ ४९ ॥
वृषभेत्ता जयो भीमः शुचिर्दान्तो यशो दमः । नाथो विद्वानजेयश्च कृशो गौरो ध्रुवस्तथा ॥
कीर्तितास्तु विकुण्ठा वै सुमेधास्तु निबोधत ॥ ५० ॥
मेधा मेधातिथिश्चैव सत्यमेधास्तथैव च । पृश्निमेधाल्पमेधाश्च भूयोमेधादयः प्रभुः ॥ ५१ ॥
दीप्तिमेधा यशोमेधाः स्थिरमेधास्तथैव च । सर्वमेधाश्वमेधाश्च प्रतिमेधाश्च यः स्मृतः ॥
मेधावान् मेधहर्त्ता च कीर्त्तितास्तु सुमेधसः ॥ ५२ ॥
विभुरिन्द्रस्तदा तेषामासीद्विक्रान्तपौरुषः । पौलस्त्यो वेदबाहुश्च यजुर्नामा च काश्यपः ॥ ५३ ॥
हिरण्यरोमाङ्गिरसो वेदश्रीश्चैव भार्गवः । ऊर्द्ध्वबाहुश्च वासिष्ठः पर्जन्यः पौलहस्तथा ॥
सत्यनेत्रस्तथात्रेय ऋषयो रैवतान्तरे ॥ ५४ ॥

नर, ख्याति, भय, प्रियभृत्य, अवक्षि, दृढ़ और उद्यमशील पृष्ठलोढ, ऋत और ऋतबन्धु—ये तामस मनु के पुत्र कहे गये हैं। अब पाँचवें पर्याय क्रम से आगत चरिष्णु नामक मन्वन्तर में होनेवाले सुप्रसिद्ध देवताओं के गणों को सुनिये ॥ ४१-४४ ॥

उस चरिष्णु नामक वसिष्ठ प्रजापति के अमृताभा, आभूतरज, विकुण्ठ और सुमेधा नाम से विख्यात चार सुपुत्रगण थे। इन चारों सुप्रसिद्ध गणों में से एक-एक की संख्या चौदह थी ये भास्कर नाम से भी ख्यात हैं। स्वप्न, विप्र, अग्नि, भास, प्रत्येतिष्ठ, अमृत, सुमति वाविराव, वाचिन, उदः, स्रवा, प्रविराशी, वाद और प्राश—ये चौदह देवगण चारिष्ण नामक मन्वन्तर में अमृताभ नाम से विख्यात थे। मति, सुमति, ऋत, सत्य, आवृति, विवृति, मद, विनय, जेता, जिष्णु, सह, द्युतिमान् और श्रव ये नाम आभूतरज नामक गण के विख्यात हैं। वृषभेत्ता, जय, भीम, शुचि, दान्त, यश, दम, नाथ, विद्वान्, अजेय, कृश, गौर और ध्रुव, ये विकुण्ठ नामक देवगण हैं, अब सुमेधागण को सुनिये ॥ ४५-५० ॥

मेधा, मेधातिथि, सत्यमेधा, पृश्निमेधा, अल्पमेधा, भूयोमेधा प्रभृति ऐश्वर्यशाली, दीप्तिमेधा, यशोमेधा, स्थिरमेधा, सर्वमेधा, अश्वमेधा, मतिमेधा, मेधावान् और मेधहर्ता—ये चौदह सुमेधा नाम से पुकारे जाते हैं। उस पाँचवें मन्वन्तर में उन देवगणों में परम पराक्रमी तथा पुरुषार्थी विभु नामक इन्द्र थे। पुलस्त्यपुत्र वेदबाहु, कश्यपपुत्र यजु, अंगिरापुत्र हिरण्यरोमा, भृगुपुत्र वेदश्री, वसिष्ठपुत्र ऊर्ध्वबाहु, पुलहपुत्र पर्जन्य तथा अत्रिपुत्र सत्यनेत्र—ये सात ऋषि उस रैवत नामक पाँचवें मन्वन्तर में थे ॥ ५१-५४ ॥

महापुराणसम्भाव्यः प्रत्यङ्गपरहा शुचिः । बलबन्धुर्निरामित्रः केतुभृङ्गो दृढव्रतः ॥
चरिष्णवस्य पुत्रास्ते पञ्चमं चैतदन्तरम् ॥ ५५ ॥
स्वारोचिषोत्तमश्चैव तामसो रैवतस्तथा । प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवस्तथा ॥ ५६ ॥
षष्ठे खल्वथ पर्यायि देवा ये चाक्षुषेऽन्तरे । आद्याः प्रसूता भाव्याश्च पृथुकाश्च दिवौकसः ॥
महानुभावलेखाश्च पञ्च देवगणाः स्मृताः ॥ ५७ ॥
दिवौकसः सर्ग एष प्रोच्यते मातृनामभिः । अत्रेः पुत्रस्य नप्तार आरण्यस्य प्रजापतेः ॥
गणाश्च तेषां देवानामेकैको ह्यष्टकः स्मृतः ॥ ५८ ॥
अन्तरिक्षो वसुहयौ ह्यतिथिश्च प्रियव्रतः । श्रोता मन्ता सुमन्ता च आद्या ह्येते प्रकीर्त्तिताः ॥ ५९ ॥
श्येनभद्रस्तथा पश्यः पथ्यनेत्रो महायशाः । सुमनाश्च सुवेताश्च रैवतः सुप्रचेतसः ॥
द्युतिश्चैव महासत्त्वः प्रसूत्याः परिकीर्त्तिताः ॥ ६० ॥
विजयः सुजयश्चैव मनोद्यानौ तथैव च । सुमतिः सुपरिश्चैव विज्ञातोऽर्थपतिश्च यः ॥
भाव्या ह्येते स्मृता देवाः पृथुकांस्तु निबोधत ॥ ६१ ॥
अजिष्टः शाक्यनो देवो वानपृष्ठस्तथैव च । शाङ्करः सत्यधृष्णुश्च विष्णुश्च विजयस्तथा ॥
अजितश्च महाभागः पृथुकास्ते दिवौकसः ॥ ६२ ॥
लेखांस्तथा प्रवक्ष्यामि ब्रुवतो मे निबोधत । मनोजवः प्रघासस्तु प्रचेतास्तु महायशाः ॥ ६३ ॥
वातो ध्रुवक्षितिश्चैव अद्भुतश्चैव वीर्यवान् । अवनो बृहस्पतिश्चैव लेखाः सम्परिकीर्त्तिताः ॥ ६४ ॥

महापुराण संभाव्य-प्रत्यङ्गपरहा, शुचि, बलबन्धु, निरामित्र, केतुभृङ्ग, दृढव्रत—ये चरिष्णव के पुत्र थे। पाँचवें मन्वन्तर के वृत्तान्त का वर्णन कर चुका। स्वारोचिष, औत्तम, तामस और रैवत—ये चार मनु प्रियव्रत के वंश में उत्पन्न हुए है। अब पर्याय क्रम से छठे चाक्षुष नामक मन्वन्तर में जो देवगण हो गये हैं उनका वर्णन कर रहा हूँ। आद्य, प्रसूता, भाव्य, पृथुक और लेख ये पाँच महानुभाव देवगण उस मन्वन्तर के स्मरण किये गये हैं। देवताओं की यह सृष्टि माताओं के नाम से पुकारी जाती है। प्रजापति अत्रि के पुत्र आरण्य ऋषि के ये समस्त देवगण नाती माने जाते हैं। उन देवताओं के पाँचों गणों में एक-एक गण के अन्तर्गत आठ देवता स्मरण किये गये हैं ॥ ५५-५८ ॥

अन्तरिक्ष, वसु, हय, अतिथि, प्रियव्रत, श्रोता, मन्ता और सुमन्ता—ये आद्य के नाम से विख्यात हैं। श्येनभद्र, पश्य, महायशस्वी पथ्यनेत्र, सुमना, सुवेता, रैवत, सुप्रचेता और महाबलवान् द्युति—ये प्रसूति के पुत्रगण कहे गये है। विजय, सुजय, मन, उद्यान, सुमति, सुपरि, विज्ञात और अर्थपति—ये भाव्य नामक देवगण के नाम से विख्यात हैं, अब पृथुकों को सुनिये ॥ ५९-६१ ॥

अजिष्ट, शाक्यन, वानपृष्ठ, शांकर, सत्यधृष्णु, विष्णु, विजय तथा महाभाग्यवान् अजित ये पृथुक नामक देवगण हैं। अब लेख नामक देवताओं का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। मनोजव, प्रघास, महायशस्वी प्रचेता, वात, ध्रुवक्षिति, पराक्रमी अद्भुत, अवन और बृहस्पति—ये लेख नाम से पुकारे जाते हैं ॥ ६२-६४ ॥

मनोजवो महावीर्यस्तेषामिन्द्रस्तदाऽभवत् । उन्नतो भार्गवश्चैव हविष्मानङ्गिरः सुतः ॥ ६५ ॥
सुधामा काश्यपश्चैव वासिष्ठो विरजस्तथा । अतिमानश्च पौलस्त्यः सहिष्णुःपौलहस्तथा ॥
मधुरात्रेय इत्येते सप्त वै चाक्षुषेऽन्तरे ॥ ६६ ॥
ऊरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् कृतिः । अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ॥ ६७ ॥
अभिमन्युश्च दशमो नाड्वलेया मनोः सुताः । चाक्षुषस्य सुता ह्येते षष्ठं चैव तदन्तरम् ॥ ६८ ॥
वैवस्वतेन सङ्ख्यातस्तस्य सर्गो महात्मनः । विस्तरेणानुपूर्व्या च कथितं वै मया द्विजाः ॥ ६९ ॥

ऋषय ऊचुः

चाक्षुषस्य तु दायादः सम्भूतः कश्यपान्वये । तस्यान्ववाये येऽप्यन्ये तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥ ७० ॥

सूत उवाच

चाक्षुषस्य निसर्गं तु समासाच्छ्रोतुमर्हथ । तस्मान्ववाये सम्भूतः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ ७१ ॥
प्रजानां पतयश्चान्ये दक्षः प्राचेतसस्तथा । उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः ॥ ७२ ॥
दक्षकस्य तु पुत्रोऽस्य राजा ह्यासीत् प्रजापतेः। स्वायम्भुवेन मनुना दत्तोऽत्रेः कारणं प्रति ॥ ७३ ॥
मन्वन्तरमथासाद्य भविष्यं चाक्षुषस्य ह । षष्ठं तदनु वक्ष्यामि उपोद्घातेन वै द्विजाः ॥ ७४ ॥
उत्तानपादाच्चतुरा सूनृता वित्तभाविनी । उत्पन्ना चाधिधर्मेण ध्रुवस्य जननी शुभा ॥
धर्मस्य पत्न्यां लक्ष्म्यां वै उत्पन्ना सा शुचिस्मिता ॥ ७५ ॥

उस छठे मन्वन्तर में उन देवगणों के स्वामी इन्द्र महापराक्रमी मनोजव थे । १. भृगु गोत्रोत्पन्न उन्नत, २. अङ्गिरापुत्र हविष्मान, ३. कश्यपपुत्र सुधामा, ४. वशिष्ठगोत्रोत्पन्न विरज, ५. पुलस्त्यगोत्रीय अतिमान ६. पुलहगोत्रोत्पन्न सहिष्णु और ७. अत्रिगोत्रोत्पन्न मधु ये चाक्षुष मन्वन्तर के सात ऋषि हैं ॥ ६५-६६ ॥

उरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कृति, अग्निष्णुत्, अतिरात्र और सुद्युम्न ये नव तथा दसवें अभिमन्यु ये चाक्षुष मनु के दस पुत्र हैं जो नाड्वलेय नाम से भी विख्यात हैं, छठवे मन्वन्तर का यही विवरण है। इस महात्मा चाक्षुष मनु का सृष्टिक्रम वैवस्वत मनु की भाँति कहा जाता है । द्विजगण उसका विस्तृत वृत्तान्त मैं क्रमशः आप लोगों को सुना चुका ॥ ६७-६९ ॥

ऋषियों ने कहा—सूत जी चाक्षुष मनु के उत्तराधिकारी कश्यप के गोत्र में उत्पन्न हुए । उनके गोत्र में जो अन्य लोग उत्पन्न हुए, उन्हें यथार्थरूप से कहिये ॥ ७० ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! चाक्षुष मनु का वंश वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये । उसके वंश में वेन का पुत्र प्रतापी पृथु नामक एक सम्राट् उत्पन्न हुआ । इसके अतिरिक्त अन्यान्य प्रजापतिगण प्रादुर्भूत हुए, जिनमें प्राचेतस दक्ष नामक प्रजापति थे । प्रजापति अत्रि ने उत्तानपाद नामक पुत्र को ग्रहण किया । इस दक्ष प्रजापति का पुत्र राजा था । स्वायंभुव मनु ने उसे अत्रि के लिए दिया था । हे द्विजगण ! चाक्षुष नामक भविष्यत्कालीन मन्वन्तर का, जो छठा मन्वन्तर माना गया है, मैं विस्तारपूर्वक पुनः वर्णन कर रहा हूँ । परम चतुर, वित्तभाविनी सूनृता के संयोग से राजा उत्तानपाद ने ध्रुव नामक पुत्र उत्पन्न किया । वह सूनृता परम धार्मिक तथा ध्रुव की कल्याणी माता थी, वह सुन्दर हँसने वाली धर्म की लक्ष्मी नामक पत्नी से उत्पन्न हुई थी ॥ ७१-७५ ॥

ध्रुवं च कीर्तिमन्तं च अयस्मन्तं वसुं तथा । उत्तानपादोऽजनयत् कन्ये द्वे च शुचिस्मिते ॥
मनस्विनीं स्वरां चैव तयोः पुत्र्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ ७६ ॥
ध्रुवो वर्षसहस्राणि दश दिव्यानि वीर्यवान् । तपस्तेपे निराहारः प्रार्थयन् विपुलं यशः ॥ ७७ ॥
त्रेतायुगे तु प्रथमे पौत्रः स्वायम्भुवस्य सः । आत्मानं धारयन् योगात् प्रार्थयन् सुमहद्यशः ॥ ७८ ॥
तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतो ज्योतिषां स्थानमुत्तमम् । आभूतसंप्लवं हृद्यमस्तोदयविवर्जितम् ॥ ७९ ॥
तस्यातिमात्रामृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य ह । दैत्यासुराणामाचार्यः श्लोकमप्युशना जगौ ॥ ८० ॥
अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो हुतम् । स्थिताः सप्तर्षयः कृत्वा यदेनमुपरि ध्रुवम् ॥
ध्रुवे दिवं समासक्तमीश्वरः स दिवस्पतिः ॥ ८१ ॥
ध्रुवात् पुष्टिं च भव्यं च भूमिः सा सुषुवे नृपौ। स्वां छायामाह वै पुष्टिर्भव नारी तु तां विभुः ॥ ८२ ॥
सत्याभिव्याहते तस्य सद्यः स्त्री साभवत्तदा । दिव्यसंहननाच्छाया दिव्याभरणभूषिता ॥ ८३ ॥
छायायां पुष्टिराधत्त पञ्च पुत्रानकल्मषान् । प्राचीनगर्भं वृषकं वृकं च वृकलं धृतिम् ॥ ८४ ॥
पत्नी प्राचीनगर्भस्य सुवर्चा सुषुवे नृपम् । नाम्नोदारधियं पुत्रमिन्द्रो यः पूर्वजन्मनि ॥ ८५ ॥
संवत्सरसहस्रान्ते सकृदाहारमाहरत् । एवं मन्वन्तरं युक्तमिन्द्रत्वं प्राप्तवान् विभुः ॥ ८६ ॥

राजा उत्तानपाद ने ध्रुव, कीर्तिमान, अयस्मान् तथा वसु नामक पुत्रों को तथा दो परम सुन्दरी मनस्विनी और स्वरा नामक कन्याओं को जन्म दिया । परम पराक्रमी ध्रुव ने देवताओं के दस सहस्र वर्षों तक विपुल यश की कामना से निराहार रहकर घोर तप किया । स्वायंभुव मनु के पौत्र ध्रुव प्रथम त्रेता युग में योगबल से आत्मा को स्ववश में रख कर महान् यश की कामना से परम कठोर तप में जब निरत थे, तब प्रसन्न हो कर ब्रह्मा ने उन्हें ज्योतिर्गणों का परम श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया । ये महाप्रलयपर्यन्त स्थायी हैं । ये हृदय को हरने वाला तथा अस्त एवं उदय से विवर्जित हैं । ध्रुव की इस परम उन्नति, सम्पत्ति एवं महिमा को देख कर समस्त असुर तथा दानवों के आचार्य शुक्र ने उनका यशोगान किया ॥ ७५-८० ॥

अहो, ध्रुव की कठोर तपस्या और पराक्रम धन्य है, इसके शास्त्रज्ञान एवं इसके हवनादि सत्कार्य धन्य हैं, जिनके कारण सातों ऋषियों के ऊपर निश्चल पद इन्होंने प्राप्त किया है । परम ऐश्वर्यशाली दिनपति भगवान् भास्कर भी आकाशमण्डल में इस ध्रुव का आश्रय ग्रहण करते हैं । भूमि ने ध्रुव के संयोग से पुष्टि और भव्य नामक दो नरपतियों को उत्पन्न किया । परम ऐश्वर्यशाली पुष्टि ने अपनी छाया (परछाई) से कहा कि तू स्त्री हो जा ॥ ८१-८२ ॥

उस समय अद्भुत अवयवों से सुशोभित पुष्टि के इस प्रकार के सत्य एवं आग्रहपूर्ण आदेश पर छाया शीघ्र ही दिव्य आभूषणों से विभूषित तथा दिव्य स्त्री के रूप में परिणत हो गयी ॥ ८३ ॥

पुष्टि ने अपनी उस छाया नामक पत्नी में प्राचीनगर्भ, वृषक, वृक, वृकल और धृति नामक पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया, जो सब के सब निष्पाप थे । प्राचीनगर्भ की सुवर्चा नामक पत्नी ने राजा उदारधी नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो पूर्व जन्म में इन्द्र के पद पर अभिषिक्त था ॥ ८४-८५ ॥

उस परम प्रतापी तथा ऐश्वर्यसम्पन्न राजा ने एक सहस्र वर्ष बीत जाने पर केवल एक बार भोजन कर एक

उदारधेः सुतं भद्राजनयत्सा दिवं जयम् । रिपुं रिपुञ्जयं जज्ञे वराङ्गी सा दिवञ्जयात् ॥ ८७ ॥
रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् । व्यजीजनत् पुष्करिण्यां वारुण्यां चाक्षुषोमनुम् ॥
प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्य महात्मनः ॥ ८८ ॥
मनोरजायन्त दश नड्वलायां शुभाः सुताः । कन्यायां वै महाभाग वैराजस्य प्रजापतेः ॥ ८९ ॥
ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् कविः । अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ॥
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायां मनोः सुताः ॥ ९० ॥
ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान् । अङ्गं सुमनसं स्वातिं क्रतुमङ्गिरसं शिवम् ॥ ९१ ॥
अङ्गात् सुनीथापत्यं वै वेनमेकं व्यजायत । अपचारेण वेनस्य प्रकोपः सुमहानभूत् ॥ ९२ ॥
प्रजार्थमृषयस्तस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् । वेनस्य पाणौ मथिते सम्बभूव महान्नृपः ॥
वैन्यो नाम महीपालो यः पृथुः परिकीर्त्तितः ॥ ९३ ॥
स धन्वी कवची जातस्तेजसा प्रज्वलन्निव । पृथुर्वैन्यः सर्वलोकान् ररक्ष क्षत्रपूर्वजः ॥ ९४ ॥
राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः । तस्य स्तवार्थमुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ॥ ९५ ॥
तेनेयं गौर्महाराज्ञा दुग्धा सस्यानि धीमता । प्रजानां वृत्तिकामानां देवैर्ऋषिगणैः सह ॥ ९६ ॥
पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैरप्सरोगणैः । सर्वैः पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा ॥ ९७ ॥

मन्वन्तरपर्यन्त इन्द्र पद की प्राप्ति की थी । भद्रा ने उदारधी के संयोग से दिवञ्जय नामक पुत्र को उत्पन्न किया । दिवञ्जय के संयोग से वराङ्गी ने शत्रुओं को जीतने वाले रिपु नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥ ८६-८७ ॥

बृहती ने रिपु के संयोग से परम तेजस्वी चाक्षुष नामक पुत्र को उत्पन्न किया । उस रिपु ने धर्मार्थ के जानने वाले परम प्रसिद्ध उस चाक्षुष मनु को वरुण की पुत्री पुष्करिणी में उत्पन्न किया था । हे महाभाग्यशालियो! वैराज नामक प्रजापति महात्मा अरण्य की नड्वला नामक कन्या में उस चाक्षुष मनु के संयोग से दस शुभ पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके नाम ऊरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कवि, अग्निष्टुत, अतिरात्र, सुद्युम्न और अभिमन्यु ये दस पुत्र नड्वला में मनु से उत्पन्न हुए थे ॥ ८८-९० ॥

ऊरु की पत्नी आग्नेयी ने ऊरु के संयोग से अतिशय तेजस्वी छह पुत्रों को उत्पन्न किया, जिनके नाम अङ्ग, सुमनस, स्वाति, क्रतु, अङ्गिरा और शिव थे । अङ्ग की पत्नी सुनीथा ने अङ्ग के संयोग से एकमात्र वेन नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जब वेन के अत्याचारों से प्रजावर्ग में घोर असन्तोष फैल गया तब ऋषियों ने सन्तानोत्पति के लिए उसके दाहिने हाथ का मन्थन किया । उस समय वेन के हाथों के मंथन करने पर परम प्रतापी पृथु नाम से विख्यात सम्राट् उत्पन्न हुआ ॥ ९१-९३ ॥

क्षत्रियों का अग्रज वेन का पुत्र पृथु अपने असह्य तेज से जलते हुए की भाँति धनुष और कवच धारण किये हुए उत्पन्न हुआ था और अपने अपार साहस से समस्त लोक की रक्षा की थी । राजसूय यज्ञ से अभिषिक्त राजाओं में समस्त वसुधा का स्वामी वह पृथु ही सर्वप्रथम था । उसकी स्तुति करने के लिए दो निपुण सूत और मागध और उत्पन्न हुए थे । परम बुद्धिमान् उस महाराज पृथु ने वृत्ति की अभिलाषिणी प्रजाओं के लिए ऋषियों, देवताओं, पितरों, गन्धर्व, अप्सराओं, सभी पुण्यात्मा पुरुषों, वृक्षों तथा पर्वतों के समूहों के साथ गौ रूप धारिणी

तेषु तेषु तु पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा। प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन लोकांस्त्वधारयत्॥ ९८॥

ऋषय ऊचुः

विस्तरेण पृथोर्जन्म कीर्त्तयस्व महामते। यथा महात्मना दुग्धा पूर्वं तेन वसुन्धरा॥ ९९॥
यथा देवैश्च नागैश्च यथा ब्रह्मर्षिभिः सह। यथा यक्षैः सगन्धर्वैरप्सरोभिर्यथा पुरा॥ १००॥
तेषां पात्रविशेषांश्च दोग्धारं क्षीरमेव च। तथा वत्सविशेषांश्च तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्॥ १०१॥
यस्मिंश्च कारणे पाणिर्वेनस्य मथितः पुरा। क्रुद्धैर्महर्षिभिः पूर्वं तत् सर्वं कथयस्व नः॥ १०२॥

सूत उवाच

वर्णयिष्यामि वो विप्राः पृथोर्वैन्यस्य सम्भवम्। एकाग्राः प्रयताश्चैव शुश्रूषध्वं द्विजोत्तमाः॥ १०३॥
नाशुचेर्नापि पापाय नाशिष्यायाहिताय च। वर्णयेयमिमं पुण्यं नाव्रताय कथंचन॥ १०४॥
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्। रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं शृणुयाद्योऽनसूयकः॥ १०५॥
यश्चेमं श्रावयेन्मर्त्यः पृथोर्वैन्यस्य सम्भवम्। ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत् कृताकृतम्॥
गोप्ता धर्मस्य राजासौ बभूवात्रिसमः प्रभुः॥ १०६॥
अत्रिवंशसमुत्पन्नो ह्यङ्गो नाम प्रजापतिः। यस्य पुत्रोऽभवद्वेनो नात्यर्थं धार्मिकस्तथा॥ १०७॥

पृथ्वी से अन्नराशियों का दोहन किया। दोहन के समय पृथक्-पृथक् पात्रों में दुही गयी वसुन्धरा ने दुहने वाले को यथाभिलषित क्षीर प्रदान किया, जिसके द्वारा समस्त लोकों की रक्षा हुई॥ ९४-९८॥

ऋषियों ने कहा—हे महामते सूत जी! आप महाराज पृथु के जन्म वृत्तान्त का वर्णन विस्तारपूर्वक कीजिये और वह समस्त वृत्तान्त बतलाइये जिस तरह उस महात्मा ने प्राचीनकाल में वसुन्धरा का दोहन किया। देवताओं, नागों, ब्रह्मर्षियों, यक्षों, गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ जिस प्रकार पृथ्वी का दोहन किया गया, उनके जो-जो विशेष पात्र रहे, उन-उन समूहों में जो प्रमुख दोग्धा (दुहने वाला) रहा, जिस प्रकार का क्षीर हुआ, जो-जो वत्स (बछड़े) बने सबका वर्णन हमें बतलाइये, हमें जानने की इच्छा है॥ ९९-१०१॥

जिस कारण से प्राचीनकाल में राजा वेन का हाथ मथा गया तथा क्रुद्ध महर्षियों ने जिस कारणवश उसे मृत्यु का शाप दिया वह सब हम लोगों को बतलाइये॥ १०२॥

सूत जी ने कहा—हे विप्रवृन्द! वेनपुत्र राजा पृथु के जन्म वृत्तान्त का वर्णन मैं कर रहा हूँ, हे द्विजोत्तम गण! आप लोग एकाग्र और शान्तचित्त हो सुनिये। यह पवित्र जीवन-चरित कभी किसी अपवित्रात्मा, अशिष्य, अहितकारी एवं व्रतादि से उन्मुख रहने वाले व्यक्ति को नहीं बतलाऊँगा। ऋषियों द्वारा वर्णित यह पवित्र वृत्तान्त स्वर्ग प्रदान करने वाला, यशोवर्द्धक, आयुप्रद, वेदसम्मत एवं परमगोपनीय है, जो अनसूयक (कभी किसी की निन्दा न करने वाला तथा गुण को गुण रूप में स्वीकार कर उसकी प्रशंसा करने वाला) इसे सुनता है अथवा जो मनुष्य वेनपुत्र राजा पृथु के जन्म वृत्तान्त को ब्राह्मणों को नमस्कार कर किसी को सुनाता है, उसे अपने कृत एवं अकृत (पुण्य-पाप अथवा जो कुछ किया है और कुछ नहीं किया है) का सोच नहीं करना पड़ता। अत्रि के समान परमप्रभावशाली वह राजा धर्म का सर्वतोभावेन रक्षक तथा परम ऐश्वर्यशाली था॥ १०३-१०६॥

महर्षि अत्रि के वंश में उत्पन्न अंग नामक एक प्रजापति हुए, जिसका पुत्र वेन हुआ। वेन परम धार्मिक

जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः । स मातामहदोषेण वेनः कालात्मजात्मजः ॥ १०८ ॥
स धर्मं पृष्ठतः कृत्वा कामाल्लोभे व्यवर्त्तत । स्थापनं स्थापयामास धर्मोपेतं स पार्थिवः ॥ १०९ ॥
वेदशास्त्राण्यतिक्रम्य ह्यधर्मे निरतोऽभवत्। निःस्वाध्यायवषट्काराः प्रजास्तस्मिन् प्रशासति ॥
आसन्न च पपुः सोमं हुतं यज्ञेषु देवताः ॥ ११० ॥
न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः । आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥ १११ ॥
अहमिज्यश्च पूज्यश्च सर्वयज्ञे द्विजातिभिः । मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥ ११२ ॥
तमतिक्रान्तमर्यादमाददानमसाम्प्रतम् । ऊचुर्महर्षयः सर्वे मरीचिप्रमुखास्तथा ॥ ११३ ॥
वयं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः संवत्सरशतान् बहून् । माऽधर्मं वेन कार्षीस्त्वं नैष धर्मः सनातनः ॥
निधने च प्रसूतोऽसि प्रजापतिरसंशयः ॥ ११४ ॥
पालयिष्ये प्रजाश्चेति त्वया पूर्वं प्रतिश्रुतम् । तांस्तथा वादिनः सर्वान् ब्रह्मर्षीनब्रवीत्तदा ॥ ११५ ॥
स प्रहस्य तु दुर्बुद्धिरिदं वचनकोविदः । स्रष्टा धर्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यं कस्य वै मया ॥ ११६ ॥
वीर्यश्रुततपःसत्यैर्मया वा कः समो भुवि । महात्मानमनूनं मां यूयं जानीत तत्त्वतः ॥ ११७ ॥

राजा नहीं था । वेन मृत्यु की पुत्री सुनीथा में उत्पन्न हुआ था अतः अपने नाना के दोषों के कारण यह क्रूर प्रकृति का था । धर्म को पीछे रखकर कामनाओं से घिरकर वह लोभी हो गया और धर्म विरुद्ध मतों की उसने स्थापना की । वेदशास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन कर अधर्म में रत हो गया । उस विधर्मी राजा के शासनकाल में प्रजाएँ स्वाध्याय एवं वषट्कार से विहीन हो गयीं । देवता यज्ञों में होम किये गये हवनीय द्रव्यों का भक्षण एवं सोम रस का पान करने को तरस उठे ॥ १०७-११० ॥

उस प्रजापति वेन के राजत्वकाल में विनाश का अवसर उपस्थित होने पर यह क्रूर प्रतिज्ञा हुई कि कोई भी प्रजा न तो यज्ञ कर सकती है—न हवन कर सकती है । यह भी प्रतिज्ञा उसकी थी कि ब्राह्मण लाग सभी प्रकार के यज्ञों में एकमात्र मेरी पूजा करें, मेरा सम्मान करें, मेरे ही उद्देश्य से यज्ञों की क्रियाएँ सम्पन्न करें, मेरे ही उद्देश्य से हवनादि करें । इस प्रकार प्राचीन मर्यादा के अतिक्रमण करनेवाले, अनुचित ढंग से पूजा आदि ग्रहण करनेवाले अत्याचारी वेन से मरीचि आदि प्रमुख महर्षियों ने कहा—हे वेन ! हम लोग अनेक सौ वर्षों तक तुम्हें धर्म का उपदेश तथा दीक्षा देंगे । अतः तुम अब अधर्म मत करो, जो तुम करते हो वह सनातन धर्म नहीं है, तुम निश्चय यह मान लो कि अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त उत्पन्न हुए हो ॥ १११-११४ ॥

तुम पहले ही प्रतिज्ञा कर चुके हो कि मैं प्रजाओं का पालन करूँगा । इस प्रकार की बातें करने वाले सभी ब्रह्मर्षियों से उस समय उस परम दुर्बुद्धि एवं बातें करने में निपुण वेन ने हँसकर कहा, धर्म का बनानेवाला मेरे सिवा इस जगत् में दूसरा कौन है? मैं किसकी बातें सुनूँ ? अथवा इस संसार में पराक्रम, शास्त्रज्ञान, तपस्या तथा सैन्य आदि साधनों में मेरे समान भला इस पृथ्वी पर कौन है ? तुम लोग मुझे यथार्थतः सभी साधनों से परिपूर्ण तथा महात्मा जानो । मुझे सभी लोगों का तथा विशेषकर सभी प्रकार के धर्मों का उत्पत्ति कर्त्ता समझो । मैं अपनी इच्छा मात्र से इस सारी पृथ्वी को चाहूँ तो जला दूँ या इसकी अभिनव सृष्टि कर दूँ या निगल जाऊँ इसमें तनिक भी सन्देह मत करो ॥ ११५-११७ ॥

प्रभवः सर्वलोकानां धर्माणां च विशेषतः । इच्छन् दहेयं पृथिवीं प्लावयेयं जलेन वा ॥
सृजेयं वा ग्रसेयं वा नात्र कार्या विचारणा ॥ ११८ ॥
यदा न शक्यते स्तम्भान्मानाच्च भृशमोहितः । अनुनेतुं नृपो वेनस्ततः क्रुद्धा महर्षयः ॥ ११९ ॥
निगृह्य तं महाबाहुं विस्फुरन्तं यथाऽनलम् । ततोऽस्य वामहस्तं ते ममन्थुर्भृशकोपिताः ॥ १२० ॥
तस्मात् प्रमथ्यमानाद्वै जज्ञे पूर्वमभिश्रुतः । ह्रस्वोऽतिमात्रं पुरुषः कृष्णश्चापि तथा द्विजाः ॥ १२१ ॥
स भीतः प्राञ्जलिश्चैव स्थितवान् व्याकुलेन्द्रियः। तमार्त्तं विह्वलं दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रुवन् किल ॥ १२२ ॥
निषादवंशकर्त्ताऽसौ बभूवानन्तविक्रमः । धीवरानसृजत्सोऽपि वेनकल्मषसम्भवान् ॥ १२३ ॥
ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तुम्बुरातुवराः खसाः । अधर्मरुचयश्चापि सम्भूता वेनकल्मषात् ॥ १२४ ॥
पुनर्महर्षयस्तस्य पाणिं वेनस्य दक्षिणम् । अरणीमिव संरम्भान्ममन्थुर्जातमन्यवः ॥ १२५ ॥
पृथुस्तस्मात् समुत्पन्नः करास्फालनतेजसः । पृथोः करतलाद्वापि यस्माज्जातः पृथुस्ततः ॥
दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिवोज्वलन् ॥ १२६ ॥
आद्यमाजगवं नाम धनुर्गृह्य महारवम् । शरांश्च बिभ्रद्रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम् ॥ १२७ ॥
तस्मिञ्जातेऽथ भूतानि संप्रहृष्टानि सर्वशः । समुत्पन्ने महाराज्ञि वेनश्च त्रिदिवं गतः ॥ १२८ ॥
समुत्पन्नेन राजर्षिः स सत्पुत्रेण धीमता । पुरुषव्याघ्रः पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते ततः ॥
तं नद्यश्च समुद्राश्च रत्नान्यादाय सर्वशः ॥ १२९ ॥

इस प्रकार जब अनेक बार के समझाने-बुझाने पर भी दम्भ एवं अभिमान के कारण मोहित वेन ठीक मार्ग पर नहीं लाया जा सका तब क्रुद्ध होकर महर्षियों ने अग्नि की लपटों की तरह फड़कते हुए उस महाबाहु को पकड़ कर उसके बायें हाथ का अत्यन्त कुपित होकर मन्थन किया । हे द्विजगण! मन्थन करते समय उसके बायें हाथ से एक अति अल्पकाय, कृष्णवर्ण एवं दीन-हीन चेष्टावाला पुरुष पहले उत्पन्न हुआ । अति भयभीत दशा में वह हाथ जोड़े हुए स्थित था । सभी इन्द्रियाँ व्याकुल थीं । उसे इस प्रकार आर्त दशा में देख मुनियों ने कहा निषीद, बैठ जाओ । फलस्वरूप अनन्त विक्रमसम्पन्न वह पुरुष निषाद वंश का कर्त्ता हुआ और वेन के पापों से उत्पन्न होनेवाले धीवरों को उत्पन्न किया ॥ ११८-१२३ ॥

जो विन्ध्यपर्वत पर निवास करने वाले, तुम्बुर, खस, स्तुवर जातिवाले अधर्मी लोग हैं, उसी वेन के पाप से उत्पन्न हुए हैं । तदनन्तर पुनः महर्षियों ने वेन के दाहिने हाथ का अतिशय कुपित हो वेगपूर्वक अरणी की भाँति मन्यन किया । तब हाथों के शीघ्रतापूर्वक घर्षण के कारण समुत्पन्न तेज से पूर्ण उस दाहिने हाथ से पृथु उत्पन्न हुआ । पृथु के 'करतल' अर्थ होते हैं, उसी करतल से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम भी पृथु पड़ा । वह अपने शरीर की अनुपम कान्ति से साक्षात् अग्नि की तरह देदीप्यमान हो रहा था । सर्वप्रथम उसने प्रचण्ड ध्वनि करनेवाले, आजगव नामक महाधनुष को तथा बाणों को प्रजा के रक्षार्थ ग्रहणकर अतिशय द्युति से दमकते हुए कवच को धारण किया । उसके उत्पन्न होने पर सभी जीवसमूह अतिहर्षित हुए । महाराज पृथु के उत्पन्न होने पर वेन का स्वर्गवास हो गया ॥ १२४-१२८ ॥

इस प्रकार परम बुद्धिमान् एवं सच्चरित्र पुत्र पृथु के उत्पन्न होने के कारण पुरुषव्याघ्र राजर्षि वेन पुम् नामक

समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम् । महता राजराज्येन महाराजं महाद्युतिम् ॥ १३० ॥
सोऽभिषिक्तो महाराजा देवैरङ्गिरसः सुतैः । आदिराजो महाराजः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ १३१ ॥
पित्राऽपरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः । ततो राजेति नामास्य अनुरागादजायत ॥ १३२ ॥
आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः । पर्वताश्च विशीर्यन्ते ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥ १३३ ॥
अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्ध्यन्त्यन्नानि चिन्तया । सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥ १३४ ॥
एतस्मिन्नेव काले च यज्ञे पैतामहे शुभे । सूतः सुत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः ॥
तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः ॥ १३५ ॥
ऐन्द्रेण हविषा चापि हविः पृक्तं बृहस्पतेः । जुहावेन्द्राय देवेन ततः सूतो व्यजायत ॥ १३६ ॥
प्रमादस्तत्र सञ्जज्ञे प्रायश्चित्तं च कर्मसु । शिष्यहव्येन यत्पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः ॥
अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतम् ॥ १३७ ॥
यच्च क्षत्रात् समभवद् ब्राह्मण्यां हीनयोनितः । सूतः पूर्वेण साधर्मतुल्यधर्मः प्रकीर्त्तितः ॥ १३८ ॥
मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षत्रोपजीवनम् । रथनागाश्च चरितं जघन्यं च चिकित्सितम् ॥ १३९ ॥

नरक में जाने से बच गया । सभी नदी तथा समुद्रगण सभी प्रकार के बहुमूल्य रत्नादि तथा पवित्र जल को ले-लेकर अभिषेक के लिए पृथु के समीप उपस्थित हुए ॥ १२९ ॥

उस अमित तेजस्वी कान्तिमान् राजाधिराज पृथु का अभिषेचन किया । देवताओं और अंगिरा के पुत्रों द्वारा अभिषेक किये जाने पर वेनपुत्र आदिराज महाराज पृथु का प्रताप अधिक बढ़ गया । पिता से अप्रसन्न रहनेवाली प्रजाओं को उसने अतिप्रसन्न किया, जिससे प्रजा के ऊपर अधिक अनुराग रखने के कारण उसका 'राजा' यह नाम पड़ा ॥ १३०-१३२ ॥

समुद्र पर अभियान (आक्रमण) करते समय जलसमूह स्तम्भित हो जाते से पर्वतसमूह विशीर्ण हो जाते थे कभी ध्वजाओं का भंग नहीं होता था । पृथ्वी बिना किसी कष्ट के हो केवल चिन्तनमात्र से प्रचुर परिमाण में अन्न उत्पन्न करती थी । गौएँ सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाली थीं, पत्रों के प्रत्येक पुटकों में मधु मिलता था । ठीक इसी समय पितामह के पवित्र महायज्ञ का प्रारम्भ हुआ था जिसमें उसी दिन सूती के गर्भ से परम बुद्धिमान् सूत उत्पन्न हुए । उसी महायज्ञ में बुद्धिमान् मगध भी उत्पन्न हुए ॥ १३३-१३५ ॥

इन्द्र की हवि के साथ बृहस्पति की हवि मिल गयी और देवताओं ने उस हवि को इन्द्र के लिए हवन किया जिससे सूत उत्पत्ति हुई ॥ १३६ ॥

सामगान के अवसर पर उत्पन्न होने के कारण वे लोग मागध कहे गये । इस प्रकार की असावधानी से शिष्य की हवि के साथ गुरु की हवि मिल जाने के कारण वह तिरस्कृत हुई और नीच-ऊँच के पारस्परिक संयोग से पापाचरण समझा गया, जिससे सूत और मागधों के वर्गों में विकार आ गया । हीन योनि क्षत्रियों की हवि के साथ ब्राह्मण को हवि का यतः संयोग हुआ था । अतः ब्राह्मण जाति के साधर्म्य के कारण सूत उसी के तुल्य धर्म वाले कहे जाते हैं । सूत का मध्यम धर्म क्षत्रियों के समान जीविका अर्जन करना हुआ । रथ और हाथियों का परिचालन और ओषधि आदि निन्द्य कामों को भी वे करने लगे ॥ १३७-१३९ ॥

पृथोः स्तवार्थं तौ तत्र तमाहूतौ सुरर्षिभिः । तावूचुर्मुनयः सर्वे स्तूयतामेष पार्थिवः ॥
कर्मैतदनुरूपं वा पात्रं स्तोत्रस्य चाप्ययम् ॥ १४० ॥
तावूचतुस्तदा सर्वांस्तानृषीन्सूतमागधौ । आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावः स्वकर्मभिः ॥ १४१ ॥
न चास्य कर्म वै विद्वो न तथा लक्षणं यशः। स्तोत्रं येनास्य कुर्यावो राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः ॥ १४२ ॥
ऋषभिस्तो नियुक्तौ तु भविष्यैः स्तूयतामिति । दानधर्मरतो नित्यं सत्यवान् स जितेन्द्रियः ॥
ज्ञानशीलो वदान्यस्तु संग्रामेष्वपराजितः ॥ १४३ ॥
यानि कर्माणि कृतवान् पृथुश्चापि महाबलः । तानि शीलेन बद्धानि स्तुवद्भिः सूतमागधैः ॥ १४४ ॥
ततः स्तवान्ते सुप्रीतः पृथुः प्रादात् प्रजेश्वरः । अनूपदेशं सूताय मगधं मागधाय च ॥ १४५ ॥
तदा वै पृथिवीपालाः स्तूयन्ते सूतमागधैः । आशीर्वादैः प्रबोध्यन्ते सूतमागधबन्दिभिः ॥ १४६ ॥
तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजा ऊचुर्महर्षयः । एष वो वृत्तिदो वैन्यो भवन्त्विति नराधिपः ॥ १४७ ॥
ततो वैन्यं महाभागे प्रजाः समभिदुद्रुवुः । त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षेर्वचनात्तदा ॥
सोऽभिद्रुतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया ॥ १४८ ॥
धनुर्गृहीत्वा बाणांश्च वसुधामार्दयद्बली । अस्यार्दनभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही ॥ १४९ ॥

देवताओं और ऋषियों ने राजा पृथु के लिए उन दोनों सूत और मागधों को बुलाया और उनसे कहा कि राजा की स्तुति करो और इसके अनुरूप जो भी कार्य करने पड़ें करो, यह तुम्हारी स्तुति करने के सर्वथा योग्य हैं। ऐसा कहने पर सूत और मागध ने वहाँ समुपस्थित सभी ऋषियों से कहा, हम दोनों अपने-अपने कार्यों से सभी देवताओं और ऋषियों को प्रसन्न रखेंगे ॥१३७-१४१॥

हे द्विजगण! किन्तु हम लोग महाराज के कार्यों को कुछ भी नहीं जानते, न इनके लक्षणों का ही हमें ज्ञान है, न उनके यश के बारे में ही हमको कुछ मालूम है, जिससे ऐसे तेजस्वी राजा की स्तुति कर सकूँ। ऋषियों ने उनसे कहा कि इसके द्वारा भविष्यत्काल में होनेवाले जो कार्यकलाप हैं, उनका मान करते हुए स्तुति करो। यह राजा नित्य दान तथा धर्म में रत रहनेवाला, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ज्ञानशील परम दाता तथा संग्राम भूमि में विजयी होनेवाला है। परम बलवान् इस पृथु ने भूतकाल में जिन कामों को किया है वे सभी शील, सदाचार से सम्बद्ध हैं, उन्हीं का वर्णन करते हुए इसकी स्तुति करो। सूत और नागधों ने इस प्रकार राजा पृथु की स्तुति की स्तुति करने के बाद प्रजेश्वर महाराज पृथु ने परम प्रसन्न होकर सूत के लिए अनूप (जलतटवर्ती प्रान्त) तथा मागधों को मगध प्रदेश दान दिया। तभी से पृथ्वीपति राजाओं की ये सूत तथा मागधगण स्तुति किया करते हैं, और तभी से वे लोग सूतों, मागधों एवं बन्दियों के आशीर्वादों द्वारा प्रातःकाल नींद से जगाये जाते हैं ॥ १४२-१४६ ॥

राजा पृथु को देखकर परम प्रसन्न महर्षियों ने प्रजाओं से कहा—यह पृथु तुम लोगों को वृत्ति देने वाला है और यही नराधिप होगा। ये बातें सुन सारी प्रजाएँ उस महाभाग्यशाली वेनपुत्र पृथु की ओर दौड़ पड़ीं और कहने लगी कि महर्षियों के कथनानुसार तुम हम लोगों की जीविका का प्रबन्ध करो। प्रजाओं के इस प्रकार दौड़कर अपने समीप आने पर उस बलवान ने उनकी हितकामना से धनुष और बाणों को लेकर वसुधा को अतिशय पीड़ित किया। उसके उत्पीडन से त्रस्त होकर पृथ्वी गौ का रूप धारणकर बड़े जोरों से भागने लगी ॥ १४७-१४९ ॥

तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत । स लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैन्यभयात्तदा ॥
ददर्श चाग्रतो वैन्यं कार्मुकोद्यतधारिणम् ॥ १५० ॥
ज्वलद्भिर्विशिखैर्बाणैर्दीप्ततेजसमच्युतम् । महायोगं महात्मानं दुर्द्धर्षममरैरपि ॥ १५१ ॥
अलभन्ती तदा त्राणं वैन्यमेवान्वपद्यत । कृताञ्जलिपुटा देवी पूज्या लोकैस्त्रिभिः सदा ॥ १५२ ॥
उवाच वैन्यं नाधर्मं स्त्रीवधे परिपश्यसि । कथं धारयिता चासि प्रजा राजन् मया विना ॥ १५३ ॥
मयि लोकाः स्थिता राजन् मयेदं धार्यते जगत् । मदृते च विनश्येयुः प्रजाः पार्थिवसत्तम ॥ १५४ ॥
न मामर्हसि वै हन्तुं श्रेयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि । प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेदं वचो मम ॥ १५५ ॥
उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः। हत्वाऽपि मां न शक्तस्त्वं प्रजानां पालने नृप ॥ १५६ ॥
अन्नभूता भविष्यामि जहि कोपं महाद्युते । अवध्याश्च स्त्रियः प्राहुस्तिर्यग्योनिशतेष्वपि ॥
मत्वैवं पृथिवीपाल धर्मं न त्यक्तुमर्हसि ॥ १५७ ॥
एवं बहुविधं वाक्यं श्रुत्वा राजा महामनाः । क्रोधं निगृह्य धर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत् ॥ १५८ ॥
एकस्यार्थाय यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा। एकं प्राणं बहून् वाऽपि कामं तस्यास्ति पातकम् ॥ १५९ ॥
यस्मिंस्तु निहते भद्रे लभन्ते बहवः सुखम् । तस्मिन्हते शुभे नास्ति पातकं चोपपातकम् ॥ १६० ॥

भागती हुई उस गौ रूप धारिणी पृथ्वी के पीछे राजा पृथु मी धनुष-बाण लेकर दौड़े । पृथु के भय से संत्रस्त होकर पृथ्वी ब्रह्मलोक प्रभृति लोकों में घूम आयी । तब आगे उद्यत धनुष को धारण किये हुए पृथु को देखा । उस समय पृथु जलते हुए अति बाणों की चमक से अतिशय तेजोमय हो रहा था । तब अपने त्राण का कोई अन्य उपाय न देख देवताओं से भी न होनेवाले, परम योगी अपने तीक्ष्ण पराजित कर्त्तव्यपथ से च्युत न होने वाले पृथु की ही शरण में वह गयी । तीनों लोकों से सर्वथा पूजित पृथ्वी ने अञ्जलि बाँधकर वेनपुत्र पृथु से कहा—हे राजन् ! क्या तुम एक स्त्री के वध करने में पाप नहीं समझ रहे हो ? मेरे बिना तुम प्रजाओं का पालन किस प्रकार कर सकोगे ? ॥ १५०-१५३ ॥

हे राजन् ! मुझमें ही समस्त लोक स्थित हैं, मैंने ही समस्त जगत् को धारण किया है । हे नृपसत्तम ! मेरे बिना सभी प्रजाएँ विनष्ट हो जायँगी, यदि तुम अपनी प्रजाओं का कल्याण करना चाहते हो तो मुझे मत मारो, मेरी बातें सुनो । उपाय द्वारा आरम्भ किये जाने पर सभी अध्यवसाय सिद्ध होते हैं, हे राजन् ! मुझे मारकर भी तुम प्रजाओं के पालन में किसी प्रकार समर्थ नहीं हो सकते ॥ १५४-१५६ ॥

हे अतिशय शोभासम्पन्न राजन् ! मैं अन्न रूप में परिणत हो जाऊँगी । तुम अपना क्रोध दूर करो । हे पृथ्वीपाल ऋषिगण, पशु, कीट, पतङ्ग आदि सैकड़ों तिर्यक् योनियों में भी स्त्री के वध का निषेध करते हैं, ऐसा मानकर तुम धर्म से च्युत न हो । पृथ्वी की अनेक प्रकार की बातें सुनकर महामनस्वी धर्मात्मा राजा पृथु ने अपने क्रोध को वश में किया और पृथ्वी से कहा, जो अकेले एक व्यक्ति के लिए, वह चाहे अपने लिये हो अथवा किसी दूसरे के लिए हो, किसी एक का अथवा अनेक लोगों के प्राणों का हरण करता है, है भद्रे उसे घोर पातक सहन करने पड़ते हैं । किन्तु हे शुभे यदि एक व्यक्ति के मारे जाने पर बहुतेरे लोगों को सुख मिलता है, उसके मारे जाने पर क्या थोड़ा भी पातक नहीं लगता ॥ १५७-१६० ॥

सोऽहं प्रजानिमित्तं त्वां वधिष्यामि वसुन्धरे । यदि मे वचनं नाद्य करिष्यसि जगद्धितम् ॥ १६१ ॥
त्वां निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम् । आत्मानं प्रथयित्वेह धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥ १६२ ॥
सा त्वं वचनमासाद्य मम धर्मभृतां वरे । सञ्जीवय प्रजा नित्यं शक्ता ह्यसि न संशयः ॥ १६३ ॥
दुहितृत्वं च मे गच्छ एवमेतं महद्वरम् । नियच्छे त्वां तु धर्मार्थं प्रयुक्तं घोरदर्शनि ॥ १६४ ॥
प्रत्युवाच ततो वैन्यमेवमुक्ता सती मही । एवमेतदहं राजन् विधास्यामि न संशयः ॥ १६५ ॥
वत्सं तु मम तं यच्छ क्षरेयं येन वत्सला । समां च कुरु सर्वत्र मां त्वं धर्मभृतां वर ॥
यथा निष्यन्दमानं च क्षीरं सर्वत्र भावये ॥ १६६ ॥
तत उत्सारयामास शिलाजालानि सर्वशः । धनुष्कोट्या ततो वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः ॥ १६७ ॥
मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमासीद्वसुन्धरा । स्वभावेनाभवंस्तस्याः समानि विषमाणि च ॥ १६८ ॥
न हि पूर्वनिसर्गे वै विषमे पृथिवीतले । प्रविभागः पुराणां वा ग्रामाणां वापि विद्यते ॥ १६९ ॥
न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथः । चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमेतदासीत्पुरा किल ॥
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् सर्वस्यैतस्य सम्भवः ॥ १७० ॥
समत्वं यत्र यत्रासीद् भूयस्तस्मिंस्तदेव हि । तत्र तत्र प्रजास्ता वै निवसन्ति स्म सर्वदा ॥ १७१ ॥
आहारः फलमूलं तु प्रजानामभवत्किल । वैन्यात् प्रभृति लोकेऽस्मिन्सर्वस्यैतस्य सम्भवः ॥ १७२ ॥

हे वसुन्धरे । सो मैं तो इतनी सारी प्रजाओं के कल्याणार्थ तुम्हारा वध कर रहा हूँ, यदि जगत् के हित में तत्पर मेरी बातों को तू नहीं मानती तो अपने शासन से विमुख रहने वाली तुझको बाणों से मारकर यहाँ अपने शरीर का विस्तार कर सारी प्रजाओं का पालन करूँगा ॥ १६१-१६२ ॥

हे धार्मिकों में श्रेष्ठ ! अत: तू मेरी बातों को स्वीकार कर प्रजाओं का नित्य पालन कर, तू उनके पालन करने में सशक्त है—इसमें सन्देह नहीं ॥ १६३ ॥

तू मेरी कन्या बनने को स्वीकार कर ले यही महान् वरदान तेरे लिए है । हे कठोर दिखायी पड़नेवाली। मैं तुम्हें धर्म कार्यों में नियुक्त करने के लिए ऐसा कर रहा हूँ। वेनपुत्र पृथु के ऐसा कहने पर साध्वी पृथ्वी ने कहा— हे राजन् ! आप जैसा कह रहे हैं मैं वैसा ही करूंगी, इसमें सन्देह नहीं, मुझे एक बछड़ा दीजिये जिसके वात्सल्य स्नेह से मैं क्षीर प्रस्रवण करूँ । हे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ! मुझे चारों ओर से बराबर करो, जिससे बहता हुआ मेरा क्षीर चारों ओर समरूप में प्रवाहित हो ॥ १६४-१६६ ॥

तदनन्तर वेनपुत्र राजा पृथु ने अपने धनुष की छोर से पृथ्वी पर फैले हुए पर्वतों को चारों ओर से हटाकर भिन्न-भिन्न स्थानों में रख दिया, जिससे उन-उन स्थानों पर पर्वतों की ऊँचाई अधिक हो गयी । बीते हुए मन्वन्तरों में पृथ्वी अत्यन्त दुर्गम तथा स्वाभाविक ढङ्ग पर कहीं समान, कहीं विषम इस प्रकार के विषम पृथ्वीतल पर पूर्व सृष्टि काल में पुरों और ग्रामों का कोई विभाग नहीं था, न अन्न पैदा होते न पशुपालन न कृषि अथवा वाणिज्य आदि व्यवसाय ही था । चाक्षुष मन्वन्तर में पृथ्वी की यही दशा थी । वैवस्वत मन्वन्तर में इन सभी कार्यों का प्रचलन हुआ । जहाँ जहाँ पर पृथ्वी समान रही वहाँ-वहाँ पर प्रजावर्ग आ-आकर अपना निवास बनाकर रहते थे। आहार, फल, मूल आदि थे, किन्तु पृथु के कार्यकाल से इस पृथ्वी लोक में सभी वस्तुएँ उत्पन्न होने लगीं । पृथ्वी

कृच्छ्रेण महता सोऽपि प्रनष्टास्वोषधीषु वै । स कल्पयित्वा वत्सं तु चाक्षुषं मनुमीश्वरः ॥
पृथुर्दुदोह सस्यानि स्वतले पृथिवीं ततः ॥ १७३ ॥
सस्यानि तेन दुग्धानि वैन्येन तु वसुन्धराम् । मनुं च चाक्षुषं कृत्वा वत्सं पात्रे च भूमये ॥
तेनान्नेन तदा ता वै वर्त्तयन्ते प्रजाः सदा ॥ १७४ ॥
ऋषिभिः स्तूयते वाऽपि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा । वत्सः सोमस्त्वभूत्तेषां दोग्धा चापि बृहस्पतिः ॥ १७५ ॥
पात्रमासीत्तु छन्दांसि गायत्र्यादीनि सर्वशः । क्षीरमासीत्तदा तेषां तपो ब्रह्म च शाश्वतम् ॥ १७६ ॥
पुनः स्तुत्वा देवगणैः पुरन्दरपुरोगमैः । सौवर्णं पात्रमादाय अमृतं दुदुहे तदा ॥
तेनैव वर्तयन्ते च देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ १७७ ॥
नागैश्च स्तूयते दुग्धा विषं क्षीरं तदा मही । तेषां च वासुकिर्दोग्धा काद्रवेया महौजसः ॥ १७८ ॥
नागानां वै द्विजश्रेष्ठ सर्पाणां चैव सर्वशः । तेनैव वर्त्तयन्त्युग्रा महाकाया महोल्बणाः ॥
तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तु सदाश्रयाः ॥ १७९ ॥
आमपात्रे पुनर्दुग्धा त्वन्तर्द्धानमियं मही । वत्सं वैश्रवणं कृत्वा यक्षैः पुण्यजनैस्तथा ॥ १८० ॥
दोग्धा च जतुनाभस्तु पिता मणिवरस्य सः । यक्षात्मजो महातेजा वशी स सुमहाबलः ॥
तेन ते वर्त्तयन्तीति परमर्षिरुवाच ह ॥ १८१ ॥
राक्षसैश्च पिशाचैश्च पुनर्दुग्धा वसुन्धरा । ब्रह्मोपेतस्तु दोग्धा वै तेषामासीत्कुबेरकः ॥ १८२ ॥

तल से नष्ट होकर सुप्त होनेवाली ओषधियों की बड़ी कठिनाई से उसने पुनः रक्षा की । फिर उस परम ऐश्वर्यशाली पृथु ने चाक्षुष मनु को बछड़ा बनाकर अपने करतल में अन्न राशि को पृथ्वी से दोहन किया ॥ १६७-१७३ ॥

इस प्रकार वेनपुत्र राजा पृथु ने गौ रूप धारिणी पृथ्वी से चाक्षुष मनु को बछड़ा बनाकर पृथ्वी के पात्र में अन्नों का दोहन किया और उसी अन्न से उस समय की सभी प्रजाओं की जीविका चलायी । सुना जाता है कि इसके बाद ऋषियों ने वसुन्धरा का पुनः दोहन किया, उनके समूह के बछड़े चन्द्रमा तथा दुहने वाले बृहस्पति बने थे। दुहने का पात्र गायत्री आदि सभी प्रकार के छन्दसमूह थे, उन ऋषियों का क्षीरशाश्वत ब्रह्म एवं तप था । तदनन्तर इन्द्र आदि प्रमुख देवगणों ने वसुन्धरा की प्रार्थना कर सुवर्णमय पात्र लेकर पृथ्वी से अमृत का दोहन किया, उसी अमृत के भरोसे इन्द्रादि देवगण विद्यमान रहते हैं ॥ १७३-१७७ ॥

नागों ने स्तुतिकर विष रूप क्षीर पृथ्वी से दुहा, उनमें दुहनेवाले वासुकि ये तथा उनके साथ कद्र के सभी तेजस्वी पुत्रगण थे । हे द्विज श्रेष्ठ! सभी नागों एवं सर्पों में परम तेजस्वी, जो विशालकाय अतितीक्ष्ण विषवाले सर्पगण हैं, वे उसी विष से वर्तमान रहते हैं । उसी का आहार करते हैं, उसी के अनुरूप आचार करते हैं, उसी के भरोसे पराक्रमशाली तथा उसी के आश्रय में आश्रित हैं । तदनन्तर पुनः पुण्यकर्त्ता यक्षों द्वारा अन्तर्धान होकर पृथ्वी का दोहन कच्चे पात्र में किया गया, जिसमें बछड़ा वैश्रवण नामक यक्ष था, दुहनेवाला जतुनाभ था, जो मणिवर नामक यक्ष का पिता था । वह यक्षपुत्र महान् तेजस्वी, जितेन्द्रिय तथा महाबलवान् था । उसी क्षीर द्वारा वे लोग जीविका चलाते हैं ॥ १७८-१८१ ॥

तदनन्तर राक्षसों और पिशाचों ने वसुन्धरा का पुनः दोहन किया । उनमें दुहनेवाला ब्रह्ममानी कुबेरक,

रक्षः सुमाली बलवान्क्षीरं रुधिरमेव च। कपालपात्रे निर्दुग्धा अन्तर्धानं च राक्षसैः ॥
तेन क्षीरेण रक्षांसि वर्त्तयन्तीह सर्वशः ॥ १८३ ॥
पद्मपात्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्वैरप्सरोगणैः। वत्सं चित्ररथं कृत्वा शुचीन् गन्धांस्तथैव च ॥ १८४ ॥
तेषां विश्वावसुस्त्वासीद् दोग्धा पुत्रो मुनेः शुचिः। गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसन्निभः ॥ १८५ ॥
शैलैश्च स्तूयते दुग्धा पुनर्देवी वसुन्धरा। तत्रौषधीर्मूर्त्तिमती रत्नानि विविधानि च ॥ १८६ ॥
वत्सस्तु हिमवांस्तेषां मेरुर्दोग्धा महागिरिः। पात्रं तु शैलमेवासीत्तेन शैलः प्रतिष्ठितः ॥ १८७ ॥
स्तूयते वृक्षवीरुद्भिः पुनर्दुग्धा वसुन्धरा। पलाशपात्रमादाय दुग्धं छिन्नप्ररोहणम् ॥ १८८ ॥
कामधुक् पुष्पितः शैलः प्लक्षो वत्सो यशस्विनी। सर्वकामदुघा दोग्ध्री पृथिवी भूतभाविनी ॥ १८९ ॥
सैषा धात्री विधात्री च धारणी च वसुन्धरा। दुग्धा हितार्थं लोकानां पृथुना इति नः श्रुतम् ॥
चराचरस्य लोकस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥ १९० ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे पृथिवीदोहनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

* * *

बछड़ा सुमाली नामक बलवान् राक्षस तथा क्षीर के स्थान पर रक्त हुआ। राक्षसों ने कपाल में अन्तर्धान होकर पृथ्वी का दोहन किया था। उसी क्षीर पर आज भी राक्षसगण सब और अपनी जीविका निर्वाह करते हैं ॥ १८२-१८३॥

गन्धर्वों एवं अप्सराओं के समूहों ने कमल के पात्र में चित्ररथ को तथा शुचि गन्धों को बछड़ा बनाकर पृथ्वी का दोहन किया। उनमें मुनि का पुत्र परम पवित्रात्मा, गन्धर्वराज, महात्मा सूर्य के समान तेजस्वी विश्वावसु दुहने वाला था। तदनन्तर वसुन्धरा देवी का दोहन पर्वतों ने किया। उस दोहन कार्य में मूर्तिमती ओषधियाँ तथा विविध रत्न क्षीर रूप में थे। उन पर्वतों में बछड़ा हिमालय तथा दुहने वाला महागिरि सुमेरु था, दोहन का पात्र तो पर्वत ही था, उन ओषधियों से पर्वत की प्रतिष्ठा हुई ॥ १८४-१८७ ॥

तदनन्तर वृक्षों और लताओं ने पलाश के पत्तों को लेकर प्ररोहों के तोड़ देने पर गिरने वाले दुग्ध का दोहन किया। जिसमें दुहने वाला पुष्पित पर्वत तथा वत्स पर्वत का पक्ष हुआ। सभी मनोरथों को पूर्ण रखने वाली, भूतभाविनी (जीवसमूहों को उत्पन्न करनेवाली), यशस्विनी वसुन्धरा सबको धारण करने वाली, पालन करने वाली तथा सभी प्रकार का विधान करने वाली है। उस पृथ्वी का दोहन लोकहित के लिए राजा पृथु ने किया ऐसा हमने सुना है। वह पृथ्वी सभी चराचर जगत् एवं जीवों को आश्रय तथा उत्पन्न करने वाली है ॥ १८८-१९० ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपोद्घातपाद में पृथ्वीदोहन नामक प्रथम अध्याय (बासठवाँ अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १ ॥**

* * *

अथ द्वितीयोऽध्यायः
पृथुवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता। वसु धारयते यस्माद्वसुधा तेन चोच्यते ॥ १ ॥
मधुकैटभयोः पूर्वं मेदसा संपरिप्लुता। ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञः पृथोर्वैन्यस्य धीमतः ॥ २ ॥
इयं चाऽसीत् समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता। दुहितृत्वमनुप्राप्ता पृथिवीत्युच्यते ततः ॥ ३ ॥
प्रथिता प्रविभक्ता च शोभिता च वसुन्धरा। सस्याकरवती राज्ञा पत्तनाकरमालिनी ॥
चातुर्वर्ण्यसमाकीर्णा रक्षिता तेन धीमता ॥ ४ ॥
एवं प्रभावो राजासीद् वैन्यः स नृपसत्तमः। नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतग्रामेण सर्वशः ॥ ५ ॥
ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः। पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः ॥ ६ ॥
पार्थिवैश्च महाभागैः प्रार्थयद्भिर्महद्यशः। आदिराजा नमस्कार्यः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ ७ ॥

दूसरा अध्याय
(तिरसठवाँ अध्याय)
पृथु के वंश का वर्णन

सूत जी ने कहा—यह समुद्रपर्यन्त फैली हुई वसुन्धरा मेदिनी (मेद-चर्बी से उत्पन्न होनेवाली) इस नाम से प्रसिद्ध है एवं वसु अर्थात् धन अथवा अन्न धारण करने के कारण यह वसुधा नाम से पुकारी जाती है ॥१॥

पूर्वकाल में यह पृथ्वी मधु तथा कैटभ नामक दानवों की चर्बी से आकीर्ण थी। यही कारण है कि समुद्र पर्यन्त फैली हुई यह पृथ्वी मेदिनी नाम से विख्यात हुई। राजा पृथु की पुत्री होने के कारण उसे पृथ्वी नाम से भी लोग पुकारते हैं। उस परम बुद्धिमान् राजा पृथु द्वारा वह वसुन्धरा प्रसिद्ध की गयी, अनेक भागों में विभक्त की गयी, शोभित की गयी, विविध प्रकार के अन्नों और आकरों (खानि) से समन्वित की गयी, बड़े-बड़े नगरसमूहों से संयुक्त की गयी, ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लोगों से आकीर्ण की गयी तथा उन्हीं बुद्धिमान द्वारा रक्षित हुई ॥ २-४ ॥

राजाओं में श्रेष्ठ, वेनपुत्र राजा पृथु इस प्रकार का अमित प्रभावशाली सम्राट् था। सभी जीव-समूह उसे नमस्कार करते थे, पूजा करते थे। वेदों एवं वेदाङ्गों के पारगामी विद्वान् एवं महाभाग्यशाली ब्राह्मणों द्वारा नमस्कार करने योग्य एकमात्र राजा पृथु ही थे क्योंकि वह सनातन ब्रह्म से समुद्भूत थे तथा उनका प्रभाव कभी नष्ट होने वाला नहीं था। उस प्रतापशाली आदि राजा वेनपुत्र पृथु की परमभाग्यशाली नृपसमूहों द्वारा प्रार्थना की जाती थी।

योधैरपि च सङ्ग्रामे प्रार्थयानैर्जयं युधि । आदिकर्त्ता नराणां वै नमस्यः पृथुरेव हि ॥ ८ ॥
यो हि योद्धा रणं याति कीर्त्तयित्वा पृथुं नृपम् । स घोररूपे सङ्ग्रामे क्षेमी तरति कीर्तिमान् ॥ ९ ॥
वैश्यैरपि च राजर्षिर्वैश्यवृत्तिसमास्थितैः । पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशाः ॥ १० ॥
एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च । पात्राणि च मयोक्तानि सर्वाण्येव यथाक्रमम् ॥ ११ ॥
ब्रह्मणा प्रथमं दुग्धा पुरा पृथ्वी महात्मना । वायुं कृत्वा तदा वत्सं बीजानि वसुधातले ॥ १२ ॥
ततः स्वायम्भुवे पूर्वं तदा मन्वन्तरे पुनः । वत्सं स्वायम्भुवं कृत्वा दुग्धा ग्रीष्मेण वै मही ॥ १३ ॥
मनौ स्वारोचिषे दुग्धा मही चैत्रेण धीमता । मनुं स्वारोचिषं कृत्वा वत्सं सस्यानि वै पुरा ॥ १४ ॥
उत्तमेऽनुत्तमेनापि दुग्धा देवभुजेन तु । मनुं कृत्वोत्तमं वत्सं सर्वसस्यानि धीमता ॥ १५ ॥
पुनश्च पञ्चमे पृथ्वी तामसस्यान्तरे मनोः । दुग्धेयं तामसं वत्सं कृत्वा तु बलबन्धुना ॥ १६ ॥
चारिष्णवस्य देवस्य सम्प्राप्ते चान्तरे मनोः । दुग्धा मही पुराणेन वत्सं चारिष्णवं प्रति ॥ १७ ॥
चाक्षुषेऽपि च सम्प्राप्ते तदा मन्वन्तरे पुनः । दुग्धा मही पुराणेन वत्सं कृत्वा तु चाक्षुषम् ॥ १८ ॥
चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वते पुनः । वैन्येनेयं मही दुग्धा तथा ते कीर्तितं मया ॥ १९ ॥
एतैर्दुग्धा पुरा पृथ्वी व्यतीतेष्वन्तरेषु वै । देवादिभिर्मनुष्यैश्च तथा भूतादिभिश्च या ॥ २० ॥

वास्तव में वह सर्वथा नमस्कार के योग्य था। संग्राम-भूमि में उस महाराज पृथु की विजय की प्रार्थना बड़े-बड़े योद्धा लोग करते थे और वह वास्तव में विजय प्राप्त करता था, मनुष्यों का सर्वप्रथम पालक वह पृथु ही नमस्कार का पात्र था। जो वीर पुरुष राजा पृथु के यशों का कीर्तन कर रणभूमि को जाता है वह कल्याणभाजन यशस्वी योद्धा विकट संग्राम में भी विजय लाभ करता है ॥ ५-९ ॥

वैश्य वृत्ति (व्यापार) करनेवालों का भी वह महायशस्वी राजर्षि पृथु नमस्कार का पात्र था क्योंकि उन्हें भी वह वृत्ति देता था। पृथ्वी दोहन करने के समय ऊपर कहे गये बछड़े, दुहनेवाले, दुग्ध पात्रादि सभी का वर्णन मैं क्रमशः सुना चुका ॥ १०-११ ॥

प्राचीनकाल में सर्वप्रथम भगवान् ब्रह्मा ने पृथ्वी का दोहन किया था, उस समय वायु को बछड़ा बनाकर पृथ्वीतल पर बीजों को दुहा गया था। उसके बाद पुनः स्वायंभुव मनु को बछड़ा बनाकर आग्नीध्र ने पृथ्वी का दोहन किया था। तदनन्तर स्वारोचिष मन्वन्तर में परम बुद्धिमान् चैत्र ने स्वारोचिष मनु को बछड़ा बनाकर अन्नों का दोहन किया था। उत्तम मन्वन्तर में परम बुद्धिमान् सर्वश्रेष्ठ देवभुज ने उत्तम मनु को बछड़ा बनाकर सभी प्रकार के अन्नों का दोहन किया था ॥ १२-१५ ॥

पुनः पाँचवें तामस नामक मन्वन्तर में बलबन्धु द्वारा तामस मनु को बछड़ा बनाकर यह पृथ्वी दुही गयी थी। तदनन्तर पुनः चरिष्णव नामक मन्वन्तर में भी पुराण ने चरिष्णव को बछड़ा बनाकर पृथ्वी का दोहन किया। पुनः चाक्षुष नामक मन्वन्तर में पुराण नामक राजा ने चाक्षुष मनु को बछड़ा बनाकर पृथ्वी का दोहन किया। चाक्षुष नामक मन्वन्तर के बीत जाने पर जब पुनः वैवस्वत नामक मन्वन्तर प्रारम्भ हुआ राजा ने जिस प्रकार इस पृथ्वी का दोहन किया था, उसका वर्णन मैं कर चुका ॥ १६-१९ ॥

बीते हुए मन्वन्तरों में इन्हीं उपर्युक्त देवताओं, मनुष्यों तथा भूतादि ने पृथ्वी का दोहन किया था। व्यतीत

एवं सर्वेषु विज्ञेया ह्यतीतानागतेष्विह । देवा मन्वन्तरेष्वस्य पृथोस्तु शृणुत प्रजाः ॥ २१ ॥
पृथोस्तु पुत्रौ विक्रान्तौ जज्ञातेऽन्तर्द्धिपालिनौ । शिखण्डिनी हविर्द्धानमन्तर्द्धानाद्व्यजायत ॥ २२ ॥
हविर्द्धानात् षडाग्नेयी धिषणाऽजनयत् सुतान् । प्राचीनबर्हिषं शुक्रं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ॥ २३ ॥
प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः । बलश्रुततपोवीर्यैः पृथिव्यामेकराडसौ ॥
प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य तस्मात्प्राचीनबर्ह्यसौ ॥ २४ ॥
समुद्रतनयायां तु कृतदारः स वै प्रभुः । महतस्तमसः पारे सवर्णायां प्रजापतेः ॥
सवर्णाऽऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ॥ २५ ॥
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः । अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ॥
दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥ २६ ॥
तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतःसु महीरुहाः । अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः ॥ २७ ॥
प्रत्याहते तदा तस्मिंश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । नाशकन् मारुतो वातुं वृतं खमभवद्द्रुमैः ॥
दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ॥ २८ ॥
तदुपश्रुत्य तपसा सर्वे युक्ताः प्रचेतसः । मुखेभ्यो वायुमग्निं च ससृजुर्ज्जातमन्यवः ॥ २९ ॥

एवं भविष्यत्कालीन मन्वन्तरों में इसी प्रकार उन्हीं देवताओं को जान लेना चाहिए जिनका वर्णन में कर चुका। अब इस प्रकार राजा पृथु की प्राजाओं के विषय में मुझसे सुनिये। उस राजा पृथु के अन्तर्धि और पाली नामक दो महान बलशाली पुत्र हुए, जिनमें अन्तर्धान से शिखण्डिनी ने हविर्धान नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ २०-२२ ॥

आग्नेयी धिषणा ने हविधान के संयोग से प्राचीनबर्हिस, शुक्र, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन नामक छह पुत्रों को उत्पन्न किया। परम ऐश्वर्यशाली प्राचीनबर्हिस् एक महान् प्रजापति था। वह अपने बल, शास्त्र ज्ञान, तपस्या और पराक्रम से समस्त पृथ्वीमण्डल का एकच्छत्र सम्राट् था। यज्ञादि कार्यों में उसके कुशों के अग्र भाग पुराने पड़ जाते थे अतः प्राचीनबर्हिस नाम से वह प्रसिद्ध हुआ ॥ २३-२४ ॥

महान् अज्ञानान्धकार से पार हो जाने पर उस प्रजापति एवं सम्राट् ने समुद्र पुत्री सवर्णा से विवाह संस्कार किया। समुद्र कन्या सवर्णा ने उसके संयोग से दस पुत्रों को जन्म दिया जो सब-के-सब प्रचेता के नाम से विख्यात होकर धनुर्वेद में पारंगत थे। एक ही प्रकार के धर्माचरण करने वाले उन प्रचेताओं ने दस सहस्र वर्षों तक समुद्र के जल में शयनकर परम कठोर तप किया ॥ २५-२६ ॥

जिस समय प्रचेतागण तप कर रहे थे उस समय बिना रखवाली तथा काट-छाँट के वृक्षों ने समस्त पृथ्वीमण्डल पर बढ़-बढ़कर आकाश तक ढँक लिया, जिससे प्रजाओं का विनाश होने लगा। उस चाक्षुष मन्वन्तर में इस प्रकार प्रजाओं के ऊपर घोर विपत्ति आ गयी, सारा आकाशमण्डल वृक्षों से घिर उठा और दस सहस्र वर्ष तक प्रजाएँ निश्चेष्ट पड़ी रहीं अर्थात् उन बेतरतीब बढ़े हुए वृक्षों के काटने छाँटने का साहस उन्हें नहीं हुआ। तब तपोबल द्वारा प्रजाओं की इस घोर विपत्ति की चर्चा सुनकर सभी प्रचेताओं ने अति क्रुद्ध होकर अपने-अपने मुख से एक ही साथ वायु और अग्नि को छोड़ा ॥ २७-२९ ॥

उन्मूलानथ तान् वृक्षान् कृत्वा वायुरशोषयत् । तानग्निरदहद्घोर एवमासीद्द्रुमक्षयः ॥ ३० ॥
द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा किञ्चिच्छेषेषु शाखिषु । उपगम्याब्रवीदेतान् राजा सोमः प्रचेतसः ॥ ३१ ॥
दृष्ट्वा प्रयोजनं सर्वं लोकसन्तानकारणात् । कोपं त्यजत राजानः सर्वं प्राचीनबर्हिषः ॥ ३२ ॥
वृक्षाः क्षित्यां जनिष्यन्ति शाम्येतामग्निमारुतौ । रत्नभूता तु कन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनी ॥ ३३ ॥
भविष्यं जानता ह्येषा मया गोभिर्विवर्द्धिता । मारिषा नाम नाम्नैषा वृक्षैरेव विनिर्मिता ॥
भार्या भवतु वो ह्येषा सोमगर्भविवर्द्धिता ॥ ३४ ॥
युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः । अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ ३५ ॥
स इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वै । अग्निनाऽग्निसमो भूयः प्रजाः संवर्द्धयिष्यति ॥ ३६ ॥
ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः । संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीं धर्मेण मारिषाम् ॥ ३७ ॥
मारिषायां ततस्ते वै मनसा गर्भमादधुः । दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ॥ ३८ ॥
दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन वीर्यवान् । असृजन्मानसानादौ प्रजा दक्षोऽथ मैथुनात् ॥ ३९ ॥
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदान् । विसृज्य मनसा दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः ॥ ४० ॥

वायु ने उन सभी वृक्षों को उखाड़कर सुखा दिया और तब अग्नि ने उन सबको भस्म कर दिया । इस प्रकार उन वृक्षों का विनाश हो गया ॥ ३० ॥

उन बढ़े हुए वृक्षों के विनाश हो जाने पर जब कहीं-कहीं थोड़ी संख्या में कुछ वृक्ष शेष रह गये तब उन प्रचेताओं के समीप जाकर राजा सोम ने इस प्रकार कहा—हे प्रचेतागण ! लोगों को उत्पन्न होने वाली संततियों के नित्य आने वाले सभी प्रयोजनों को देखकर आप लोग क्रोध छोड़ दें, क्योंकि आप सब राजा हैं और बर्हिस् के पुत्र हैं ॥ ३१-३२ ॥

पृथ्वी पर शेष बचे हुए ये वृक्ष अब नये वृक्षों को उत्पन्न करेंगे । अतः अग्नि और वायु को अब आप लोग शान्त कर दें । यह परम सुन्दर दिखायी पड़नेवाली रत्नभूत कन्या वृक्षों की है, भविष्य में घटित होनेवाली घटनाओं को जानकर मैंने अपने किरणों द्वारा इसको बढ़ाया है, इसका नाम मारिषा है, वृक्षों ने ही इसको उत्पन्न किया है । सोम के (मेरे) गर्भ में बढ़नेवाली यह सुन्दरी कन्या तुम सब की स्त्री होगी ॥ ३३-३४ ॥

आप लोगों के आधे तेज से तथा मेरे आधे तेज से इसमें परम विद्वान् दक्ष नामक प्रजापति उत्पन्न होग। तुम सब के तेजबल के कारण एवं अग्नि द्वारा अग्नि के समान परम तेजस्थी हो वह इस जलकर नष्ट हुई वसुधा का तथा सारी प्रजाओं का पालन-पोषण करेगा ॥ ३५-३६ ॥

चन्द्रमा के ऐसा कहने पर प्रचेताओं ने वृक्षों पर से अपना क्रोध हटा लिया और धर्मपूर्वक मारिषा को पत्नी रूप में वरण किया । तदनन्तर उन सर्वो ने मानसिक संकल्प से मारिषा में गर्भाधान किया । उन दस प्रचेताओं के अंश से मारिषा में दक्ष नामक प्रजापति उत्पन्न हुए, जो चन्द्रमा के अंश के कारण परम पराक्रमी तथा महान् तेजस्वी थे । प्राचीनकाल में सर्वप्रथम उन दक्ष ने केवल मानसिक संकल्प से प्रजा की सृष्टि की स्त्री-पुरुष सम्भोग द्वारा नहीं ॥ ३७-३९ ॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥ ४१ ॥
एभ्यो दत्त्वा ततोऽन्या वै चतस्रोऽरिष्टनेमिने । द्वे चैव बाहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ॥
कन्यामेकां कृशाश्वाय तेभ्योऽपत्यं निबोधत ॥ ४२ ॥
अन्तरं चाक्षुषस्यात्र मनोः षष्ठं तु हीयते । मनोर्वैवस्वतस्यापि सप्तमस्य प्रजापतेः ॥ ४३ ॥
तासु देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः । गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥ ४४ ॥
ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन् प्रजा मैथुनसम्भवाः । संकल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ॥ ४५ ॥

ऋषय ऊचुः

देवानां दानवानां च देवर्षीणां च ते शुभः । संभवः कथितः पूर्वं दक्षस्य च महात्मनः ॥ ४६ ॥
प्राणात्प्रजापतेर्जन्म दक्षस्य कथितं त्वया । कथं प्राचेतसत्वं च पुनर्लेभे महातपाः ॥ ४७ ॥
एतं नः संशयं सूत व्याख्यातुं त्वमिहार्हसि । स दौहित्रश्च सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः ॥ ४८ ॥

सूत उवाच

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भूतेषु सत्तमाः । ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये नराः ॥ ४९ ॥
युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो द्विजाः । पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति ॥ ५० ॥
ज्यैष्ठ्यं कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्वं नासीद्द्विजोत्तमाः। तप एव गरीयोऽभूत् प्रभावश्चैव कारणम् ॥ ५१ ॥

उन दक्ष ने पहले अचरों को, चरों को द्विपदों (मनुष्यों) को तथा चतुष्पदों को मानसिक संकल्प द्वारा उत्पन्नकर तदनन्तर स्त्रियों की सृष्टि की । उनमें से दस धर्म को दिया तेरह कश्यप को तथा समय के विभाजन में नियुक्त सत्ताईस कन्याओं को चन्द्रमा को दिया ॥ ४०-४१ ॥

इन सबको देने के बाद चार कन्याओं को अरिष्टनेमि को, दो बाहुपुत्र को, दो अङ्गिरा को तथा एक कृशाश्व को दिया । अब उनके पुत्र-पौत्रादिकों का विवरण सुनिये ॥ ४२ ॥

इस अवधि में छठवाँ चाक्षुष नामक मन्वन्तर व्यतीत हो गया और सातवें प्रजापति वैवस्वत मनु का भी कार्यकाल समाप्त हुआ । उन दक्ष की कन्याओं से देवता, पक्षी, नाग, दैत्य, दानव, गन्धर्व, अप्सराएँ एवं अन्यान्य जातियाँ उत्पन्न हुई ॥ ४३-४४ ॥

ऋषियों ने कहा—इसके उपरान्त इस पृथ्वीलोक में प्रजाएँ सम्भोग के द्वारा उत्पन्न होने लगीं । उनके पूर्व उत्पन्न होने वालों की सृष्टि संकल्प, दर्शन एवं स्पर्श से होती कही जाती है ॥ ४५ ॥

सूत जी देवताओं, दानवों तथा देवर्षियों की उत्पत्ति आपने महात्मा दक्ष की उत्पत्ति के पूर्व बतलायी गई है और अपने प्रजापति दक्ष का जन्म प्राण से बतलाया है, उस महातपस्वी ने फिर किस प्रकार प्रचेताओं के पुत्र होने का गौरवपूर्ण पद प्राप्त किया ? हम लोगों के इस सन्देह को आप दूर करें तथा यह भी बतलाइये कि वह चन्द्रमा का दौहित्र (नाती) होकर फिर उसका श्वसुर कैसे हुआ ॥ ४६-४८ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—ऋषिवर्यवृन्द! यह जन्म और निरोध (विनाश वा निवृत्ति) सर्वदा सर्वसामान्य जीवों में हुआ करते हैं, ऋषिगण तथा विद्वान् लोग इस विषय में कभी मोह को नहीं प्राप्त होते हे द्विजगण । ये दक्षादि प्रजापतिगण प्रत्येक युग में उत्पन्न होते रहते हैं और फिर से वे विनाश को प्राप्त हो जाते हैं-इस विषय में विद्वानों

इमां विसृष्टिं यो वेद चाक्षुषस्य चराचरम् । प्रजानामायुरुत्तीर्णः स्वर्गलोके महीयते ॥ ५२ ॥
एष सर्गः समाख्यातश्चाक्षुषस्य समारातः । इत्येते षड्विसर्गा हि क्रान्ता मन्वन्तरात्मकाः ॥
स्वायम्भुवाद्याः संक्षेपाच्चाक्षुषान्ता यथाक्रमम् ॥ ५३ ॥
एते सर्गा यथाप्रज्ञं प्रोक्ता वै द्विजसत्तमाः । वैवस्वतनिसर्गेण तेषां ज्ञेयस्तु विस्तरः ॥ ५४ ॥
अनन्ता नातिरिक्ताश्च सर्वे सर्गा विवस्वतः । आरोग्यायुः प्रमाणेन धर्मतः कामतोऽर्थतः ॥
एतानेव गुणानेति यः पठत्यनसूयकः ॥ ५५ ॥
वैवस्वतस्य वक्ष्यामि साम्प्रतस्य महात्मनः । समासाद्व्यासतः सर्गं ब्रुवतो मे निबोधत ॥ ५६ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे पृथुवंशानुकीर्तनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

* * *

को मोह नहीं होता है द्विजोत्तमवृन्द पूर्वकाल में इन सब में ज्येष्ठ और कनिष्ठ का भाव नहीं रहा है, केवल तपस्या ही इनकी महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी तथा इनके व्यक्तिगत प्रभाव ही इनकी महत्ता के कारण होते रहे । चाक्षुष मनु की इस चराचर सृष्टि-वृत्तान्त को जो व्यक्ति भली भाँति जानता है वह अपनी सारी आयु सुखपूर्वक समाप्तकर अन्त में स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥ ४९-५२ ॥

चाक्षुष मन्वन्तर को सृष्टि का संक्षेप में वर्णन कर चुका इन उपर्युक्त छह मन्वन्तरों का, जो स्वायंभुव मनु से आरम्भकर चाक्षुष मनु के अन्त तक चलते हैं, संक्षेप में क्रमिक वर्णन किया जा चुका है । हे द्विजवर्यवृन्द ! इन सृष्टि वृत्तान्तों को अपने ज्ञान के अनुसार मैं आप लोगों को कह चुका, इनका विस्तारपूर्वक वर्णन वैवस्वत मन्वन्तर के समान जान लेना चाहिए। वैवस्वत मनु के सभी सृष्टि कार्य आरोग्य, आयु, धर्म, अर्थ एवं काम सभी दृष्टियों से अनन्त तथा दूसरे सर्गों के समान हो हैं, जो असूया (गुणों में दोषारोपण करने प्रवृत्ति) भाव को छोड़कर इसको पढ़ता है वह आरोग्य, आयु, धर्म, अर्थ एवं काम इन सभी मनोरथों को प्राप्त करता है ॥ ५३-५५ ॥

अब सम्प्रति वर्तमान महात्मा वैवस्वत के सृष्टिक्रम का यथावसर और संक्षेप विस्तार में वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ॥ ५६ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपोद्घातपाद में पृथुवंशानुकीर्तन नामक द्वितीय अध्याय (तिरसठवाँ अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २ ॥**

* * *

अथ तृतीयोऽध्यायः

वैवस्वतसर्गवर्णनम्

सूत उवाच

सप्तमे त्वथ पर्याये मनोर्वैवस्वतस्य ह । मारीचात् कश्यपाद्देवा जज्ञिरे परमर्षयः ॥ १ ॥
आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणाः। भृगवोऽङ्गिरसश्चैव ह्यष्टौ देवगणाः स्मृताः ॥ २ ॥
आदित्या मरुतो रुद्रा विज्ञेयाः कश्यपात्मजाः । साध्याश्च वसवो विश्वे धर्मपुत्रास्त्रयोगणाः॥ ३ ॥
भृगोस्तु भार्गवो देवो ह्यङ्गिरोऽङ्गिरसः सुतः। वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन् नित्यं ते छन्दजाः सुराः॥ ४ ॥
एष सर्गस्तु मारीचो विज्ञेयः साम्प्रतः शुभः । तेजस्वी साम्प्रतस्तेषामिन्द्रो नाम्ना महाबलः ॥ ५ ॥
अतीतानागता ये च वर्त्तन्ते ये च साम्प्रतम् । सर्वे मन्वन्तरेन्द्रास्तु विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ॥ ६ ॥

तीसरा अध्याय

(चौंसठवाँ अध्याय)

वैवस्वत मन्वन्तर की सृष्टि का वर्णन

सूत जी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! सातवें वैवस्वत नामक मन्वन्तर में मरीचि-पुत्र कश्यप से देवताओं एवं महर्षियों की उत्पत्ति हुई ॥ १ ॥

उसमें आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, साध्यगण, विश्वेदेवगण, मरुद्गण, भृगुपुत्र एवं अंगिरापुत्र ये आठ देवगण स्मरण किये जाते हैं ॥ २ ॥

इनमें आदित्यगण, मरुद्गण और रुद्रगण—ये कश्यप के पुत्र हैं । साध्यगण, वसुगण एवं विश्वेदेवगण-ये तीन गण धर्म के पुत्र कहे गये हैं । भृगु के भार्गव एवं अंगिरा के अंगिरसगण पुत्र हैं, इस वैवस्वत मन्वन्तर में ये सुरगण छन्दों से उत्पन्न होनेवाले कहे गये हैं । महाप्रलयपर्यन्त ये लोग भी सृष्टि के कार्यों के साथ चलेंगे अर्थात् महाप्रलयपर्यन्त इनकी भी सत्ता विद्यमान रहेगी ॥ ३-४ ॥

यह शुभ वर्तमान देव-पद्धति मरीचिनन्दन कश्यप के वंशधरों का जानना चाहिए । इन सबों का स्वामी इन्द्र साम्प्रत नामक महाबलशाली है । अतीत, भविष्यत् तथा वर्तमानकालीन जो मन्वन्तरों के इन्द्रगण हैं, वे सभी लक्षणों में एक समान हैं ॥ ५-६ ॥

भूतभव्यभवन्नाथः सहस्राक्षः पुरन्दरः । मघवन्तश्च ते सर्वे शृङ्गिणो वज्रपाणयः ॥
सर्वैः क्रतुशतेनेष्टं पृथक् शतगुणेन तु ॥ ७ ॥
त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि गतिमन्त्यबलानि च । अभिभूयावतिष्ठन्ते धर्माद्यैः कारणैरपि ॥ ८ ॥
तेजसा तपसा बुद्ध्या बलश्रुतपराक्रमैः । भूतभव्यभवन्नाथा यथा ते प्रभविष्णवः ॥
एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि ब्रुवतो मे निबोधत ॥ ९ ॥
भूतं भव्यं भविष्यं तत् स्मृतं लोकत्रयं द्विजैः। भूर्लोकोऽयं स्मृतो भूमिरन्तरिक्षं भुवं स्मृतम् ॥
भव्यं स्मृतं दिवं ह्येतत्तेषां वक्ष्यामि साधनम् ॥ १० ॥
ध्यायता पुत्रकामेन ब्रह्मणाऽग्रे विभाषितम् । भूरिति व्याहृतं पूर्वं भूर्लोकोऽयमभूत्तदा ॥ ११ ॥
भूसत्तायां स्मृतो धातुस्तथाऽसौ लोकदर्शने । भूतत्वाद्दर्शनत्वाच्च भूर्लोकोऽयमभूत्ततः ॥
अतोऽयं प्रथमो लोको भूतत्वाद् भूर्द्विजैः स्मृतः ॥ १२ ॥
भूतेऽस्मिन् भवदित्युक्तं द्वितीयं ब्रह्मणा पुनः । भवत्युत्पद्यमानेन कालशब्दोऽयमुच्यते ॥ १३ ॥
भवनात्तु भुवर्लोको निरुक्तज्ञैर्निरुच्यते । अन्तरिक्षं भुवस्तस्माद्द्वितीयो लोक उच्यते ॥ १४ ॥

वे सब-के-सब भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल के स्वामी हैं, सहस्र आँखोंवाले तथा पुरन्दर हैं, मघवान् हैं, शृङ्गी हैं तथा वज्र धारण करने वाले हैं । सभी सौ यज्ञों को पूर्ण करने वाले तथा व्यक्तिगत सैकड़ों गुण-समूहों से उत्पन्न हैं ॥ ५-७ ॥

तीनों लोकों में जितने भी शक्तिशाली, गतिमान् अथवा निर्बल प्राणी हैं, इन्द्र उन सबों से धर्मादि कार्यो में भी बढ़े चढ़े रहते हैं। तेज से, तप से, बुद्धि से, बल, शास्त्रीय ज्ञान तथा पराक्रम से वे सभी प्राणियों में श्रेष्ठ होते हैं। वे जिस प्रकार अत्यन्त प्रभावशाली तथा भूत, भविष्य एवं वर्तमान के स्वामी होते हैं, उन सबका वर्णन मैं कर रहा हूँ, आप सुनिये ॥ ८-९ ॥

ब्राह्मणों ने भूत, भव्य एवं भविष्य ये तीन लोक बताये हैं । भूलोक यह पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष (आकाश मण्डल) भुवर्लोक स्मरण किया गया है । स्वर्गलोक भव्य नाम से स्मरण किया गया है, उनके लक्षणों को बतला रहा हूँ। पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से ब्रह्मा ने ध्यानावस्थित होकर सर्वप्रथम 'भूः' इस अक्षर का उच्चारण किया, उसी समय यह भूलोक आविर्भूत हुआ ॥ १०-११ ॥

भू धातु का सत्ता अर्थात् विद्यमान रहने अर्थ में प्रयोग होता है तथा लोक दर्शन (लोगों के देखने योग्य) अर्थ में भी उसकी प्रसिद्धि है, विद्यमान रहने एवं लोगों के दृष्टिगोचर होने के कारण यह भूमि भूलोक नाम से प्रसिद्ध हुई । यही कारण है कि ब्राह्मणों ने इसे विद्यमान होने के कारण प्रथम लोक माना है ॥ १२ ॥

इस भूलोक के आविर्भूत हो जाने पर ब्रह्मा ने फिर 'भवत्' ऐसा दूसरा शब्द उच्चारण किया । उत्पन्न (उच्चारित) होनेवाले इस भवत् शब्द के द्वारा वर्तमानकाल में होनेवाले का अवगम (बोध) होता है, निरुक्त के जानने वाले लोग भवन (होनेवाले) इस शब्द से भुवर्लोक की निरुक्ति करते हैं । अतः अन्तरिक्ष द्वितीय भुवर्लोक के नाम से कहा जाता है ॥ १३-१४ ॥

उत्पन्ने तु भुवर्लोके तृतीयं ब्रह्मणा पुनः । भव्येति व्याहृतं यस्माद्भव्यो लोकस्तदाऽभवत् ॥ १५ ॥
अनागते भव्य इति शब्द एष विभाव्यते । तस्माद्भव्यो ह्यसौ लोको नामतस्तु दिवं स्मृतम् ॥ १६ ॥
स्वरित्युक्तं तृतीयोऽन्यो भाव्यो लोकस्तदाऽभवत्। भाव्य इत्येष धातुर्वै भाव्ये काले विभाव्यते ॥ १७ ॥
भूरितीयं स्मृता भूमिरन्तरिक्षं भुवं स्मृतम् । दिवं स्मृतं तथा भाव्यं त्रैलोक्यस्यैष संग्रहः ॥ १८ ॥
त्रैलोक्ययुक्तैर्व्याहारैस्तिस्रो व्याहृतयोऽभवन् । नाथ इत्येष धातुर्वै धातुज्ञैः पालने स्मृतः ॥ १९ ॥
यस्माद्भूतस्य लोकस्य भव्यस्य भवतस्तदा । लोकत्रयस्य नाथास्ते तस्मादिन्द्रा द्विजैः स्मृताः ॥ २० ॥
प्रधानभूता देवेन्द्रा गुणभूतास्तथैव च । मन्वन्तरेषु ये देवा यज्ञभाजो भवन्ति हि ॥ २१ ॥
यक्षगन्धर्वरक्षांसि पिशाचोरगदानवाः । महिमानः स्मृता ह्येते देवेन्द्राणां तु सर्वशः ॥ २२ ॥
देवेन्द्रा गुरवो नाथा राजानः पितरो हि ते । रक्षन्तीमाः प्रजाः सर्वा धर्मेणेह सुरोत्तमाः ॥ २३ ॥
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं देवेन्द्राणां समासतः । सप्तर्षीन् सम्प्रवक्ष्यामि साम्प्रतं ये दिवि स्थिताः ॥ २४ ॥
गाधिजः कौशिको धीमान् विश्वामित्रो महातपः । भार्गवो जमदग्निश्च ऊरुपुत्रः प्रतापवान् ॥ २५ ॥
बृहस्पतिसुतश्चापि भारद्वाजो महातपाः । औतथ्यो गौतमो विद्वाञ्छरद्वान्नाम धार्मिकः ॥ २६ ॥
स्वायम्भुवोऽत्रिर्भगवान् ब्रह्मकोशस्तु पञ्चमः । षष्ठो वासिष्ठपुत्रस्तु वसुमान् लोकविश्रुतः ॥ २७ ॥

भुवर्लोक के आविर्भूत हो जाने पर ब्रह्मा ने 'भव्य' इस तृतीय शब्द का उच्चारण किया, जिससे भव्यलोक का आविर्भाव हुआ । यह भव्य शब्द भविष्यत्काल के अर्थ में आता है, इसी से यह लोक भव्य लोक हुआ, नाम से यह शब्द दिव (स्वर्ग) लोक से स्मरण किया जाता है । तदनन्तर ब्रह्मा ने अन्य तीसरे 'स्वः' इस शब्द का उच्चारण किया, जिससे भाव्य लोक का प्रादुर्भाव हुआ । भाव्य इस धातु का भविष्यत्काल के अर्थ में प्रयोग होता है । यह भूमि भूलोक के अर्थ में, अन्तरिक्ष भुवर्लोक के अर्थ में तथा स्वर्गलोक भाव्यलोक के अर्थ में कहे गये हैं—यहीं तीनों लोकों के समूह हैं ॥ १५-१८ ॥

विमर्श—१ प्रकृति-प्रत्यय आदि अवयवों के अर्थ को निचोड़कर एक अर्थ को प्रतिपादन करनेवाला वेद का एक अङ्ग व्याकरण है ।

इन्हीं तीनों लोकों के संयुक्त उच्चारणों से तीनों (भूः भुवः स्वः) महाव्याहृतियाँ प्रकट हुईं । पालनार्थक नाथ धातु से धातु के जानने वाले त्रैलोकनाथ स्मरण करते हैं । यतः वे इन्द्रगण भूतलोक, भव्यलोक एवं भवत्लोक—इन तीनों लोकों के पालक हैं अतः ब्राह्मणगण उन्हें भूत, भव्य और भवत् तीनों का नाथ कहते हैं । प्रत्येक मन्वन्तर में जो देवगण यज्ञ भाग के भोक्ता होते हैं, उन सब में ये इन्द्र प्रधान तथा गुणों में भी सर्वश्रेष्ठ होते हैं । सभी यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, सर्प तथा दानवगण इन्हीं देवेन्द्रों की महिमास्वरूप कहे जाते हैं । वे इन्द्र देवताओं के स्वामी, गुरु, नाथ, राजा एवं पितर सब कुछ हैं, वे सुरोत्तम धर्मपूर्वक सभी प्रजाओं का पालन करते हैं ॥ १९-२३ ॥

देवेन्द्रों का यह संक्षिप्त लक्ष्ण मैं बतला चुका, अब उन सातों ऋषियों का लक्षण बतला रहा हूँ, जो सम्प्रति स्वर्गलोक में अवस्थित हैं । इन सातों में परम बुद्धिमान्, कुशिकगोत्रीय गाधि के पुत्र विश्वामित्र महान् तपस्वी हैं । भृगुगोत्रीय प्रतापशाली ऊरु पुत्र जमदग्नि हैं । बृहस्पति के पुत्र परम तपस्वी भारद्वाज हैं, परम धार्मिक एवं

वत्सारः काश्यपश्चैव सप्तैते साधुसम्मताः । एते सप्तर्षयः सिद्धा वर्त्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे ॥ २८ ॥
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च । नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाम उद्दिष्ट एव च ॥ २९ ॥
करुषश्च पृषध्रश्च वसुमान्नवमः स्मृतः । मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राः प्रकीर्त्तिताः ॥
कीर्त्तिता वै मया ह्येते सप्तमं चैतदन्तरम् ॥ ३० ॥
इत्येष वै मया पादो द्वितीयः कथितो द्विजाः। विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम् ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे वैवस्वतसर्गवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ समाप्तोऽयं द्वितीय उपोद्घातपादः ॥ २ ॥

* * *

उतथ्य के पुत्र गौतम शरद्वान् हैं, स्वयंभू ब्रह्मा के पुत्र ब्रह्मपरायण भगवान् अत्रि इन ऋषियों में पाँचवें ऋषि हैं, छठे वसिष्ठ के पुत्र लोक विख्यात वसुमान् नामक ऋषि हैं ॥ २४-२७ ॥

विमर्श—गणना से यहाँ पुत्रों की संख्या दस हो रही है । वास्तव में वैवस्वत के दस पुत्र थे, जैसा कि अन्य पुराणों में वर्णित है । अतः यहाँ नब की जगह दस होना चाहिए । 'नवमः स्मृतः के स्थान पर 'दशमः स्मृतः' होना चाहिए ।

सातवें कश्यपगोत्रीय वत्सार हैं—ये सत्पुरुषों द्वारा सम्माननीय इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के सिद्ध सप्तर्षि हैं । इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, उद्दिष्ट, करुष, पृषध्र और वसुमान्—ये नव वैवस्वत मनु के पुत्र कहे गये हैं । सातवें मन्वन्तर का वृत्तान्त वर्णन मैं कर चुका हूँ । हे द्विजगण! वायु पुराण के द्वितीय पाद का मैं विस्तारपूर्वक क्रमिक वर्णन कर चुका । अब आगे किस विषय का मैं वर्णन करूँ? ॥ २८-३१ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपोद्घातपाद में वैवस्वतसर्गवर्णन नामक तृतीय अध्याय (चौंसठवाँ अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३ ॥**

॥ द्वितीय उपोद्घातपाद समाप्त हुआ ॥ २ ॥

* * *

अथ तृतीयः अनुषङ्गपादः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रजापतिवंशानुकीर्तनम्

ऋषय ऊचुः

श्रुत्वा पादं द्वितीयं तु क्रान्तं सूतेन धीमता । अतस्तृतीयं पप्रच्छ पादं वै शांशपायनः ॥ १ ॥
पादः क्रान्तो द्वितीयोऽयमनुरूपेण यस्त्वया । तृतीयं विस्तरात् पादमनुषङ्गं प्रकीर्त्तय ॥
एवमुक्तोऽब्रवीत् सूतः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ २ ॥

सूत उवाच

कीर्त्तयिष्ये तृतीयं च अनुषङ्गं सविस्तरम् । पादं समुदयाद् विप्रा गदतो मे निबोधत ॥ ३ ॥
मनोर्वैवस्वतस्येमं साम्प्रतस्य महात्मनः । विस्तरेणानुपूर्व्या च निसर्गं श्रृणुत द्विजाः ॥ ४ ॥

तृतीय अनुषङ्ग पाद

चौथा अध्याय

(पैंसठवाँ अध्याय)

प्रजापति के वंश का वर्णन

ऋषियों ने कहा—परम बुद्धिमान् सूतजी के मुख से दूसरे पाद को सुन लेने के बाद शांशपायन ने तीसरे पाद के विषय में पूछा । शांशपायन ने कहा-सूत जी आपके मुख से उपोद्घात नामक द्वितीय पाद को हम सुन चुके । अब तीसरे अनुषङ्ग नामक पाद को विस्तारपूर्वक हमें सुनाइये । शांशपायन के ऐसा कहने पर अन्तरात्मा से अतिशय हर्षित होकर सूतजी बोले ॥ १-२ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द! अब मैं अनुषङ्ग नामक तीसरे पाद का वर्णन विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ, उसे अविकल रूप से सुनिये । महात्मा वैवस्वत मनु के इस सृष्टिक्रम का विस्तारपूर्वक क्रमशः वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये ॥ ३-४ ॥

चतुर्युगैकसप्तत्या सङ्ख्यातः पूर्वमेव तु । सह देवगणैश्चैव ऋषिभिर्दानवैः सह ॥ ५ ॥
पितृगन्धर्वयक्षैश्च रक्षोभूतगणैस्तथा । मानुषैः पशुभिश्चैव पक्षिभिः स्थावरैः सह ॥ ६ ॥
मन्वादिकं भविष्यान्तमाख्यानैर्बहुविस्तरम् । वक्ष्ये वैवस्वतं सर्गं नमस्कृत्य विवस्वते ॥ ७ ॥
आद्ये मन्वन्तरेऽतीताः सर्गाः प्रावर्त्तकाश्च ये । स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं सप्तासन् ये महर्षयः ॥
चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वते पुनः ॥ ८ ॥
दक्षस्य च ऋषीणां च भृग्वादीनां महौजसाम् । शापान्महेश्वरस्यासीत् प्रादुर्भावो महात्मनाम् ॥ ९ ॥
भूयः सप्तर्षयस्ते च उत्पन्नाः सप्त मानसाः । पुत्रत्वे कल्पिताश्चैव स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥ १० ॥
प्रजासन्तानकृद्भिस्तैरुत्पद्यद्भिर्महात्मभिः । पुनः प्रवर्त्तितः सर्गो यथापूर्वं यथाक्रमम् ॥ ११ ॥
तेषां प्रसूतिं वक्ष्यामि विशुद्धज्ञानकर्मणाम् । समासव्यासयोगाभ्यां यथावदनुपूर्वशः ॥ १२ ॥
येषामन्वयसम्भूतैर्लोकोऽयं सचराचरः । पुनः स पूरितः सर्गो ग्रहनक्षत्रमण्डितः ॥ १३ ॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य मुनीनां संशयोऽभवत् । ततस्तं संशयाविष्टाः सूतं संशयनिश्चये ॥
सत्कृत्य परिपप्रच्छुर्मुनयः संशितव्रताः ॥ १४ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं सप्तर्षयः पूर्व्वमुत्पन्नाः सप्त मानसाः । पुत्रत्वे कल्पिताश्चैव तन्नो निगद सत्तम ॥
ततोऽब्रवीन्महातेजाः सूत पौराणिकः शुभम् ॥ १५ ॥

पहले ही इस बात का वर्णन कर चुका हूँ कि मन्वन्तर का कार्यकाल इकहत्तर बार चारों युगों के बीत जाने पर समाप्त होता है। देवगणों, ऋषियों, दानवों, पितरों, गन्धर्व, यक्षों, राक्षसों, भूतों, मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों एवं स्थावरों के काय इस वैवस्वत मन्वन्तर के सृष्टिक्रम का विस्तृत वर्णन एवं भविष्यत्काल में घटित होने वाले अनेक आख्यानों को मैं विवस्वान को प्रणाम कर कह रहा हूँ ॥ ५-७ ॥

प्रथम स्वायंभुव नामक मन्वन्तर में जो सृष्टिकार्य के प्रवर्तक सात ऋषि वर्तमान थे। चाक्षुष मन्वन्तर के बीत जाने पर वैवस्वत मन्वन्तर प्रारम्भ होता है, उस काल में भी महेश्वर के शापवश पुनः प्रादुर्भूत होते हैं। दक्ष प्रजापति, भृगु प्रभृति परम तेजस्वी एवं महात्मा ऋषियों का भी प्रादुर्भाव होता है। वे ही सातों ऋषि पुनः ब्रह्मा के सात मानस पुत्रों के रूप में उत्पन्न होते हैं। स्वयं स्वयंभू भगवान् ब्रह्मा ही उन्हें अपने पुत्र रूप में नियुक्त करते हैं। उत्पन्न होकर वे महात्मा सप्तर्षिगण विविध प्रजाओं एवं सन्ततियों की कामना से पुनः सृष्टि का कार्य उसी पूर्व क्रम के अनुरूप प्रारम्भ करते हैं ॥ ८-११ ॥

उन विशुद्ध ज्ञान एवं विशुद्ध कर्मवाले उन महात्माओं की सन्ततियों का क्रमशः वर्णन संक्षेप और विस्तारपूर्वक मैं कर रहा हूँ, जिसके वंश से उत्पन्न होनेवालों से ग्रहों एवं नक्षत्रों से विमण्डित इस चराचर जगत् की सृष्टि पुनः पूरित की जाती है। सूत की ऐसी बातों से जब मुनियों के मन में बहुत सन्देह हुआ तब संशय से युक्त सद्व्रतपरायण मुनियों ने सूत जी का अति सत्कार कर जिज्ञासा प्रकट की ॥ १२-१४ ॥

ऋषियों ने पूछा—'हे सत्तम! पूर्वकाल में वे सप्तर्षिगण किस प्रकार मानसिक संकल्प से उत्पन्न हुए ? और किस प्रकार ब्रह्मा के पुत्र माने गये इस वृत्तान्त को हमें बतलाइये। ऋषियों की ऐसी बातें सुनकर पुराणों के विशेषज्ञ महातेजस्वी सूत ने उस शुभ कथा को बतलाया ॥ १५ ॥

कथं सप्तर्षयः सिद्धा ये वै स्वायम्भुवेऽन्तरे । मन्वन्तरं समासाद्य पुनर्वैवस्वतं किल ॥ १६ ॥
भवाभिशापात् संविद्धा ह्यप्राप्तास्ते तदा तपः । उपपन्ना जने लोके सकृदागामिनस्तु ते ॥ १७ ॥
ऊचुः सर्वे ततोऽन्योन्यं जनलोके महर्षयः । ऊचुरेव महाभागा वारुणे वितते क्रतौ ॥ १८ ॥
सर्वे वयं प्रसूयामश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । पितामहात्मजाः सर्वे ततः श्रेयो भविष्यति ॥ १९ ॥
स्वायम्भुवेऽन्तरे शप्ताः सप्तार्थं ते भवेन तु । जज्ञिरे वै पुनस्ते ह जनलोकाद्दिवं गताः ॥ २० ॥
देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम् । ब्रह्मणो जुह्वतः शुक्रमग्नौ पूर्वं प्रजेप्सया ॥
ऋषयो जज्ञिरे पूर्वं द्वितीयमिति नः श्रुतम् ॥ २१ ॥
भृगुरङ्गिरा मरीचिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च अष्टौ ते ब्रह्मणः सुताः ॥ २२ ॥
तथाऽस्य वितते यज्ञे देवाः सर्वे समागताः । यज्ञाङ्गानि च सर्वाणि वषट्कारश्च मूर्तिमान् ॥ २३ ॥
मूर्त्तिमन्ति च सामानि यजूंषि च सहस्रशः । ऋग्वेदश्चाभवत्तत्र पदक्रमविभूषितः ॥ २४ ॥
यजुर्वेदश्च वृत्ताढ्य ओङ्कारवदनोज्ज्वलः । स्थितो यज्ञार्थसंपृक्तसूक्तब्राह्मणमन्त्रवान् ॥ २५ ॥
सामवेदश्च वृत्ताढ्यः सर्वगेयपुरःसरः । विश्वावस्वादिभिः सार्द्धं गन्धर्वैः सम्भृतोऽभवत् ॥ २६ ॥
ब्रह्मदेवस्तथा घोरैः कृत्याविधिभिरन्वितः । प्रत्यङ्गिरसयोगैश्च द्विशरीरशिरोऽभवत् ॥ २७ ॥
लक्षणानि स्वराः स्तोभा निरुक्तस्वरभक्तयः । आश्रयस्तु वषट्कारो निग्रहप्रग्रहावपि ॥ २८ ॥

किस प्रकार स्वायंभुव मन्वन्तर में वे सप्तर्षिगण सिद्धि को प्राप्त हुए और फिर वैवस्वत मन्वन्तर में महादेव के शाप से अपनी सिद्धिदात्री तपस्या से च्युत हुए और मर्त्यलोक में आकर उत्पन्न हुए—यह मैं कहता हूँ। ये सप्तर्षिगण जनलोक में एक बार जन्म लेते हैं। जनलोक में आकर उन महाभाग्यशाली सप्तर्षियों ने आपस में यह सलाह की और एक-दूसरे से कहा कि वरुण यज्ञ के समाप्त हो जाने पर चाक्षुष मन्वन्तर में हम सभी पितामह ब्रह्मा जी के आत्मज होंगे, उस समय पुनः हमारा कल्याण होगा ॥ १६-१९ ॥

स्वायंभुव मन्वन्तर में सत्य आचरण के लिए वे महर्षिगण शिव द्वारा अभिशप्त किये गये थे और पुनः जन्म धारणकर जनलोक से स्वर्गलोक को गये थे। देव के महान् यज्ञ में वरुण का शरीर धारण कर सन्तानोत्पत्ति की कामना से अपने वीर्य को अग्नि में हवन करते समय ब्रह्मा से ऋषियों का द्वितीय बार प्रादुर्भाव हुआ यह हम लोगों ने सुना है। भृगु, अङ्गिरा, मरीचि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि और वसिष्ठ—ये आठ ब्रह्मा के पुत्र हैं ॥ २०-२२ ॥

वरुण के उस विशाल यज्ञ में सभी देवता सम्मिलित हुए थे, यज्ञ के सभी अंग एवं वषट्कार मूर्ति धारण कर उपस्थित थे। सहस्रों साम एवं यजुर्वेद के मूर्त स्वरूप थे, पदक्रम से विभूषित ऋग्वेद भी वहाँ पर मूर्तमान था। ओंकार रूप मुख से उज्ज्वल, यज्ञ कार्य में प्रयुक्त होनेवाले सूक्त, ब्राह्मण एवं मन्त्र भाग से संयुक्त वृत्त से संबलित यजुर्वेद वहाँ अति शोभा पा रहा थे। सभी गेय पदों को पुरःसर कर विश्वावसु आदि गन्धर्वों के साथ वृत्त से संवलित सामवेद अपने सभी उपकरणों से संयुक्त शोभित हो रहा थे ॥ २३-२६ ॥

अतिघोर कृत्या (हत्या) आदि विधियों से तथा प्रत्यङ्गिरस आदि आभिचारिक प्रयोगों से युक्त होकर एक ही सिर में शरीर धारणकर उपस्थित था। इन सबों के अतिरिक्त लक्षण, स्वर, स्तोभ, निरुक्त, स्वरों की भक्ति,

दीप्ता दीप्तिरिलादेवी दिशः प्रदिशगीश्वराः । देवकन्याश्च पत्न्यश्च तथा मातर एव च ॥ २९ ॥
आयुः सर्वत एवैते देवस्य यजतो मुखे । मूर्त्तिमन्तः स्वरूपाख्या वरुणस्य वपुर्भृतः ॥ ३० ॥
स्वयम्भुवस्तु ता दृष्ट्वा रेतः समपतद्भुवि । ब्रह्मर्षेर्भावभूतस्य विधानाच्च न संशयः ॥ ३१ ॥
कृत्वा जुहाव स्रुग्भ्यां च स्रुवेण परिगृह्य च । आज्यवज्जुहुवाञ्चक्रे मन्त्रवच्च पितामहः ॥ ३२ ॥
ततः स जनयामास भूतग्रामं प्रजापतिः । तस्यार्वाक् तेजसस्तस्य यज्ञे लोकेषु तैजसम् ॥
तमसाभावव्याप्यत्वं तथा सत्त्वं तथा रजः ॥ ३३ ॥
सगुणात्तेजसो नित्यं आकाशे तमसि स्थितम् । तमसस्तेजसत्वाच्च सर्वभूतानि जज्ञिरे ॥ ३४ ॥
यदा तस्मिन्नजायन्त काले पुत्रास्तु कर्मजाः । आज्यस्थाल्यामुपादाय स्वशुक्रं हुतवांश्च ह ॥ ३५ ॥
शुक्रे हुतेऽथ तस्मिंस्तु प्रादुर्भूता महर्षयः । ज्वलन्तो वपुषा युक्ताः सप्त वै प्रसवैर्गुणैः ॥ ३६ ॥
हुते चाग्नौ सकृच्छुक्रे ज्वालाया निःसृतः कविः। हिरण्यगर्भस्तं दृष्ट्वा ज्वालां भित्त्वा विनिःसृतम् ॥
भृगुस्त्वमिति होवाच यस्मात्तस्मात्स वै भृगुः ॥ ३७ ॥
महादेवस्तथोद्भूतं दृष्ट्वा ब्राह्मणमब्रवीत् । ममैष पुत्रकामस्य दीक्षितस्य त्वयं प्रभोः ॥
विजज्ञेऽथ भृगुर्द्देवो मम पुत्रो भवत्वयम् ॥ ३८ ॥

आश्रयस्वरूप वषट्कार, निग्रह, ग्रह आदि भी उपस्थित थे । दीप्ता, दीप्त, इला, देवी, सभी दिशाएँ, विदिशाएँ, दिक्पालगण, देवकन्याएँ, देवपत्नियाँ, मातायें तथा आयु—ये सब भी स्वरूप धारण कर वरुण का रूप धारण करने वाले देव के अग्नि मुख में हवन करते समय उपस्थित रहे ॥ २७-२९ ॥

उन सब स्त्रियों को देखकर स्वयंभू ब्रह्म जी का वीर्य पृथ्वी पर स्खलित हो गया । ब्रह्मर्षि के भाव से प्रभावित निश्चित विधान के कारण पितामह ने पृथ्वी पर स्खलित अपने वीर्य को घृत की भाँति स्रुवा पर रखकर मन्त्रों का विधिवत् उच्चारणकर हवन कर दिया । प्रजापति ने इस प्रकार अनेक जीव समूहों की सृष्टि की लोक में परम तेजोमय, किन्तु पृथ्वी पर गिर पड़ने के कारण कुछ क्षीण तेजवाले उस वीर्य से सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुणमय सृष्टि उत्पन्न हुई । इन उपर्युक्त तीनों गुणों से सम्पन्न वह तेज आकाशमण्डल में देदीप्यमान हुआ । तमोगुणमय तेजस्विता के कारण सभी जीवसमूह उत्पन्न हुए ॥ ३१-३४ ॥

जिस समय ब्रह्मा ने घृत के पात्र में अपने वीर्य को लेकर अग्नि में हवन किया उस समय उनके कर्मज पुत्रों की उत्पत्ति हुई । अग्नि में वीर्य के हवन कर देने पर महर्षियों का प्रादुर्भाव हुआ । सातों ऋषियों के शरीर उज्ज्वल एवं देदीप्यमान थे, तथा बालकों के सभी गुण उनमें पाये जाते थे । पहली बार अग्नि में वीर्य के हवन करने पर लपटों से कवि (भृगु) निकले । इस प्रकार ज्वाला का भेदनकर निकलते हुए कवि को देखकर हिरण्यगर्भ ब्रह्मा ने कहा, यतः अग्नि ज्वाला से प्रकट होते समय आपने 'भृगु' इस प्रकार का उच्चारण किया है, अतः उनका नाम भी भृगु हुआ ॥ ३५-३७ ॥

इस प्रकार अग्नि ज्वाला का भेदनकर प्रादुर्भूत होनेवाले उस ब्रह्मर्षि को देखकर महादेव ने कहा—प्रभो ! पुत्र प्राप्ति की कामना से मैं दीक्षा ग्रहण कर इस यज्ञ को कर रहा था, अतः यह ब्रह्मर्षि मेरा पुत्र हो । जब भृगु मेरा ही पुत्र हो-ऐसा शिव जी ने प्रकट किया ॥ ३८ ॥

तथेति समनुज्ञातो महादेवः स्वयम्भुवा । पुत्रत्वे कल्पयामास महादेवस्तथा भृगुम् ॥
वारुणा भृगवस्तस्मात्तदपत्यञ्च स प्रभुः ॥ ३९ ॥
द्वितीयं तु ततः शुक्रमङ्गारेष्वपतत्प्रभुः । अङ्गारेष्वङ्गिरोऽङ्गानि संहितानि ततोऽङ्गिराः ॥ ४० ॥
संभूतिं तस्य तां दृष्ट्वा वह्निर्ब्रह्माणमब्रवीत् । रेतोधास्तुभ्यमेवाहं द्वितीयोऽयं ममास्त्विति ॥ ४१ ॥
एवमस्त्विति सोऽप्युक्तो ब्रह्मणा सदसस्पतिः। तस्मादङ्गिरसश्चापि आग्नेया इति नः श्रुतम् ॥ ४२ ॥
षट्कृत्यस्तु पुनः शुक्रे ब्रह्मणा लोककारिणा । हुते समभवंस्तत्र षड्ब्रह्माण इति श्रुतिः ॥ ४३ ॥
मरीचिः प्रथमस्तत्र मरीचिभ्यः समुत्थितः। क्रतौ तस्मिन् सुतो जज्ञे यतस्तस्मात् स वै क्रतुः ॥ ४४ ॥
अहं तृतीयं इत्यर्थस्तस्मादत्रिः स कीर्त्त्यते । केशैश्च निशितैर्भूतः पुलस्त्यस्तेन स स्मृतः ॥ ४५ ॥
केशैर्लम्बैः समुद्भूतस्तस्मात्तु पुलहः स्मृतः । वसुमध्यात्समुत्पन्नो वसुमान् वसुधाश्रयः ॥ ४६ ॥
वसिष्ठ इति तत्त्वज्ञैः प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः । इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः षण्महर्षयः ॥ ४७ ॥
लोकस्य सन्तानकरास्तैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः । प्रजापतय इत्येवं पठ्यन्ते ब्रह्मणः सुताः ॥ ४८ ॥
अपरे पितरो नाम एतैरेव महर्षिभिः । उत्पादिता ऋषिगणाः सप्त लोकेषु विश्रुताः ॥ ४९ ॥
मारीचा भार्गवाश्चैव तथैवाङ्गिरसोऽपरे । पौलस्त्याः पौलहाश्चैव वाशिष्ठाश्चैव विश्रुताः ॥
आत्रेयाश्च गणाः प्रोक्ताः पितॄणां लोकविश्रुताः ॥ ५० ॥

तदनन्तर स्वयंभू ने कहा कि—ऐसा ही होगा । तब शिव ने भृगु को अपने पुत्र रूप में स्वीकार किया । इसी कारणवश भृगु गोत्र में उत्पन्न होने वाले वरुण वंशीय कहलाते हैं । वे प्रभु भृगु भगवान् शिव की सन्तान हुए । तदनन्तर भगवान् ब्रह्मा ने पुनः द्वितीय बार वीर्य को यज्ञाग्नि के अंगार के ऊपर आहुति डाला जिससे उन अंगारों पर अङ्गों-प्रत्यङ्गों समेत अङ्गिरा ऋषि प्रादुर्भूत हुए ॥ ३८-४० ॥

ब्रह्मा की इस अभिनव सम्भूति को प्रकट हुआ देख अग्नि ने कहा—ब्रह्मन् ! मैंने आपके वीर्य को धारण किया था, अतः यह दूसरा पुत्र मेरा हो । सभा में प्रधान के पद पर समासीन ब्रह्मा ने अग्नि की प्रार्थना का अनुमोदन किया कि ऐसा ही हो । यही कारण है कि अङ्गिरा गोत्र वाले अग्निगोत्रीय भी कहे जाते हैं ऐसा हमने सुना है । तदनन्तर लोकसृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने छह बार अग्नि में अपने वीर्य की आहुति दी, जिससे छह ब्राह्मण उत्पन्न हुए ऐसा सुना जाता है । जिससे सर्वप्रथम अग्नि की मरीचियों से मरीचि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । यतः उस क्रतु (यज्ञ) में एक अन्य चौथा पुत्र भी उत्पन्न हुआ अतः उसका नाम क्रतु रखा गया । मैं तृतीय हूँ—ऐसा कहते हुए यतः एक अन्य पाँचवें पुत्र की उत्पत्ति हुई अतः वह अत्रि नाम से प्रसिद्ध हुआ । एक अन्य पुत्र अपने तीक्ष्ण केशों के कारण पुलस्त्य नाम से स्मरण किया गया ॥ ४१-४५ ॥

लम्बे कशों के साथ उत्पन्न होने के कारण पुलह नाम प्रसिद्ध हुआ । वसु (अन्नादि सामग्री) के मध्य से उत्पन्न होने के कारण समस्त वसुधा का आश्रयभूत वसुमान् नाम हुआ । तत्त्वों के जाननेवाले ब्रह्मवादी लोग उसे वशिष्ठ नाम से पुकारते है । ये ब्रह्मा के छह मानसिक पुत्र महर्षि कहे गये हैं ॥ ४६-४७ ॥

ये सब-के-सब लोक की सन्तान वृद्धि करने वाले हैं, और इन्हीं लोगों ने प्रजाओं की वृद्धि की है । इसी कारण ये ब्रह्मा के पुत्र कहे गये हैं । दूसरे पितर नामक लोकविख्यात ऋषिगण भी उत्पन्न हुए । वे लोकप्रसिद्ध सात

एते समासतस्तात पुरैव तु गुणास्त्रयः । अपूर्वाश्च प्रकाशाश्च ज्योतिष्मन्तश्च विश्रुताः ॥ ५१ ॥
तेषां राजा यमो देवो यमैर्विहतकल्मषाः । अपरे प्रजानां पतयस्ताञ्शृणुध्वमतन्द्रिताः ॥ ५२ ॥
कर्द्दमः कश्यपः शेषो विक्रान्तः सुश्रवास्तथा । बहुपुत्रः कुमारश्च विवस्वान् स शुचिश्रवाः ॥ ५३ ॥
प्रचेतसोऽरिष्टनेमिर्बहुलश्च प्रजापतिः । इत्येवमादयोऽन्येऽपि बहवश्च प्रजेश्वराः ॥ ५४ ॥
कुशोच्चया बालखिल्याः संभूताः परमर्षयः। मनोजवाः सर्वगताः सार्वभौमाश्च तेऽभवन् ॥ ५५ ॥
जाता भस्मव्यपोहिन्यां ब्रह्मर्षिगणसम्मताः । वैखानसा मुनिगणास्तपः श्रुतपरायणाः ॥ ५६ ॥
स्रोतोभ्यस्तस्य चोत्पन्नावश्विनौ रूपसम्मितौ । विदुर्जन्माक्षरजसो विमला नेत्रसम्भवाः ॥ ५७ ॥
ज्येष्ठाः प्रजानां पतयः श्रोतोभ्यस्तस्य जज्ञिरे । ऋषयो रोमकूपेभ्यस्तथा स्वेदमलोद्भवाः ॥ ५८ ॥
दारुणा हि रुते मासा निर्यासाः पक्षसन्धयः। वत्सरा ये त्वहोरात्राः पित्रं ज्योतिश्च दारुणम् ॥ ५९ ॥
रौद्रं लोहितमित्याहुर्लोहितं कनकं स्मृतम् । तन्मैत्रमिति विज्ञेयं धूमश्च पशवः स्मृताः ॥ ६० ॥
येऽर्च्चिषस्तस्य ते रुद्रास्तथादित्याः समुद्भवाः। अङ्गारेभ्यः समुत्पन्ना ज्योतिषो दिव्यमानुषाः ॥ ६१ ॥
आदिमानस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मसमुद्भवः । सर्वकामदमित्याहुस्तत्र कन्यामुदाहरन् ॥ ६२ ॥

पितरगण मारीच, भार्गव, आङ्गिरस, पौलस्त्य, पौलह, वाशिष्ठ और आत्रेय के नाम से विख्यात हैं ॥ ४९-५० ॥

हे तात! संक्षेप में इन पितरगणों का वर्णन कर चुका । ये तीनों गुणों के विकार से समुत्पन्न, मूर्तिरहित, स्वयं प्रकाशमान्, ज्योतिष्मान् एवं विख्यात हैं ॥ ५१ ॥

उन पितरों के राजा यम नामक देव हैं, जिनके पाप तपस्या द्वारा नष्ट हो चुके हैं । अब आप लोग सावधानीपूर्वक अन्य प्रजापतियों के विषय में सुनिये ॥ ५२ ॥

कर्दम, कश्यप, शेष, विक्रान्त, सुश्रवा, बहुपुत्र, कुमार, विवस्वान, शुचिश्रवा, प्रचेतस, अरिष्टनेमि एवं बहुल नामक प्रजापतियों के अतिरिक्त अन्यान्य बहुतेरे प्रजापति हो गये हैं । उनमें कुशोच्चय एवं बालखिल्यगण परम ऋषि हो गये हैं, जो सब-के-सब मन के समान वेगशाली, सर्वगामी तथा सार्वभौम थे ॥ ५३-५५ ॥

ब्रह्मर्षियों द्वारा सम्माननीय, तपस्या एवं शास्त्राभ्यास में निरत रहनेवाले वैखानस मुनिगण यज्ञ के भस्म से प्रादुर्भूत हुए । उन ब्रह्मा के कानों से अति रूपवान् दो अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई । नेत्र से उत्पन्न होने वाले निष्पाप, जन्म से अपनी इन्द्रियों को स्ववश रखने वाले तथा सात्त्विक प्रकृति वाले ऋषिगण इस वृत्तान्त को जानते हैं । उनके कानों से अन्यान्य श्रेष्ठ प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई । रोमछिद्रों से अन्यान्य ऋषियों की उत्पत्ति हुई । इसी प्रकार स्वेद एवं मल से भी कुछ प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई ॥ ५६-५८ ॥

उसके स्वर से दारुण मास, निर्यास (?), पक्षों की संधियाँ, वत्सर, दिन-रात एवं पितरगणों की दारुण ज्योति का प्रादुर्भाव हुआ । रौद्र को लोहित कहा जाता है, लोहित को कनक नाम से भी स्मरण किया गया है, उसी को मैत्र भी जानना चाहिए, धूम पशु कहे गये हैं ॥ ५९-६० ॥

उसकी देहद्युति से रुद्र तथा आदित्यगणों का समुद्भव हुआ । अङ्गारों से दिव्य एवं मानुष ज्योतियों का उद्भव हुआ । इस प्रकार ब्रह्म से समुद्भूत भगवान् ब्रह्मा इस लोकसृष्टि के आदिकर्ता एवं मूल पुरुष माने गये हैं ।

ब्रह्मा सुरगुरुस्तत्र त्रिदशैः संप्रसीददति । इमे वै जनयिष्यन्ति प्रजाः सर्वाः प्रजेश्वराः ॥ ६३ ॥
सर्वे प्रजानां पतयः सर्वे चापि तपस्विनः । तत्प्रसादादिमाँल्लोकान् धारयेयुरिमा क्रियाः ॥ ६४ ॥
द्वन्द्वं संवर्द्धयामास तव तेजोविवर्द्धनम् । देवेषु वेदविद्वांसः सर्वे राजर्षयस्तथा ॥ ६५ ॥
वेदमन्त्रपराः सर्वे प्रजापतिगुणोद्भवाः । अनन्तं ब्रह्म सत्यं च तपश्च परमं भुवि ॥ ६६ ॥
सर्वे हि वयमेते च तथैव प्रसवः प्रभो । ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चैव लोकाश्चैव चराचराः ॥ ६७ ॥
मरीचिमादितः कृत्वा देवाश्च ऋषिभिः सह । अपत्यानीह सञ्चिन्त्य तेऽपत्यं कामयामहे ॥ ६८ ॥
तस्मिन् यज्ञे महाभागा देवाश्च ऋषिभिः सह । एतद्वंशसमुद्भूताः स्थानकालाभिमानिनः ॥ ६९ ॥
न च तेनैव रूपेण स्थापयेयुरिमाः प्रजाः । युगादिनिधनाच्चैव स्थापयेयुरिमाः प्रजाः ॥ ७० ॥
ततोऽब्रवील्लोकगुरुः परमित्यविचारयन् । एवं देवा विनिश्चित्य मया सृष्टा न संशयः ॥
भवतां वंशसम्भूताः पुनरेते महर्षयः ॥ ७१ ॥
तेषां भृगोः कीर्तयिष्ये वंशं पूर्वं महात्मनः । विस्तरेणानुपूर्व्या च प्रथमस्य प्रजापतेः ॥ ७२ ॥
भार्या भृगोरप्रतिमे उत्तमेऽभिजने शुभे । हिरण्यकशिपोः कन्या दिव्या नाम परिश्रुता ॥
पुलोम्नश्चापि पौलोमी दुहिता वरवर्णिनी ॥ ७३ ॥

उनको सब मनोरथों का देने वाला कहा जाता है । उस महायज्ञ के अवसर पर कन्या की बातचीत के अनन्तर ऋषियों और ब्रह्मा से इस प्रकार वार्तालाप हुआ । मरीचि ऋषि को अगुआ बनाकर सभी ऋषियों एवं देवताओं ने एक साथ सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा के पास जाकर इस तरह निवेदन किया । हे प्रभो! ये प्रजापतिगण सभी प्रजाओं की सृष्टि का कार्य सम्पन्न करेंगे । आपकी कृपा से ये सभी प्रजापति तथा परम तपस्वी हैं और सभी लोको को धारण (पालन) करने में सक्षम तथा क्रियानिष्ठ है ॥ ६१-६४ ॥

आपके तेज की अभिवृद्धि करनेवाले द्वन्द्वात्मक भाव की वृद्धि हो गयी । देवताओं में वेदों के जाननेवाले ये राजर्षिगण, वैदिकमन्त्रपरायण एवं प्रजापति के समस्त गुणों से समलंकृत हैं । इस पृथ्वीतल पर एक ब्रह्म ही अनन्त, सत्य एवं परम तप साध्य है । ये और हम सभी आपकी ही सन्तानें है, इस जगत् में ब्रह्म, ब्राह्मण एवं चराचर लोक सब कुछ आप से प्रादुर्भूत हुए हैं, हम सभी सन्तान की कामना करते हैं ॥ ६५-६८ ॥

इस प्रकार उस महायज्ञ में महाभाग्यशाली देवगणों ने ऋषियों के साथ ब्रह्मा से प्रार्थना की । इन्हीं उपर्युक्त ऋषियों एवं देवताओं के वंश में स्थान एवं काल का निर्धारण करने वाली सन्ताने उत्पन्न हुई । उन लोगों ने फिर कहा—ये प्रजापतिगण इसी अपने रूप में (बिना स्त्री के) प्रजाओं का विस्तार तो कर नहीं सकते, इनकी प्रजाएँ युगारम्भ से लेकर युगान्त तक स्थित रहनेवाली होंगी ॥ ६९-७० ॥

ऐसी बातें सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा ने बिना कुछ विशेष विचार किये हो उत्तर दिया, निस्संदेह इन्हीं सब बातों का निश्चय करके मैंने पहले देवताओं की सृष्टि की है । ये महर्षिगण जो आप लोगों के वंश में उत्पन्न होनेवाले हैं, उनमें से सर्वप्रथम महात्मा भृगु के वंश का वर्णन विस्तारपूर्वक क्रमशः कर रहा हूँ, जो कि प्रथम प्रजापति हैं । उन महात्मा भृगु की दो सत्कुलोत्पन्न कल्याणी स्त्रियाँ थीं, जिनमें एक हिरण्यकशिपु की कन्या थी जिसका दिव्या नाम विख्यात है । दूसरी परमसुन्दरी पुलोम की कन्या थी जिसका पौलोमी नाम था ॥७१-७३॥

भृगोस्त्वजनयद्दिव्या काव्यं वेदविदां वरम् । देवासुराणामाचार्यं शुक्रं कविसुतं ग्रहम् ॥ ७४ ॥
स शुक्रश्चोशना ख्यातः स्मृतः काव्योऽपि नामतः। पितॄणां मानसी कन्या सोमपाना यशस्विनी ॥
शुक्रस्य भार्याङ्गी नाम विजज्ञे चतुरः सुतान् ॥ ७५ ॥
ब्राह्मेण तेजसा युक्तः स जातो ब्रह्मवित्तमः । तस्यामेव तु चत्वारः पुत्राः शुक्रस्य जज्ञिरे ॥ ७६ ॥
त्वष्टा वरूत्री द्वावेतौ शण्डामर्कौ च तावुभौ । ते तदादित्यसङ्काशा ब्रह्मकल्पाः प्रभावतः ॥ ७७ ॥
रञ्जनः पृथुरश्मिश्च विद्वान्यश्च बृहद्गिराः । वरूत्रिणः सुता ह्येते ब्रह्मिष्ठाः सुरयाजकाः ॥ ७८ ॥
इज्याधर्मविनाशार्थं मनुमेत्याभ्ययोजयन् । निरस्यमानं वै धर्मं दृष्ट्वेन्द्रो मनुमब्रवीत् ॥ ७९ ॥
एतैरेव तु कामं त्वां प्रापयिष्यामि याजनम् । श्रुत्वेन्द्रस्य तु तद्वाक्यं तस्माद्देशादपाक्रमत् ॥ ८० ॥
तिरोभूतेषु तेष्विन्द्रो धर्मपत्नीं च चेतनाम् । ग्रहेण मोचयित्वा तु ततः सोऽनुससार ताम् ॥ ८१ ॥
तत इन्द्रविनाशाय यतमानान् यतींस्तु तान् । तत्रागतान् पुनर्दृष्ट्वा दुष्टानिन्द्रः प्रहन्य तु ॥
सुष्वाप देवदेवस्य वेद्यां वै दक्षिणे ततः ॥ ८२ ॥
तेषां तु भक्ष्यमाणानां तत्र शालावृकैः सह । शीर्षाणि न्यपतंस्तानि खर्जूराण्यभवंस्ततः ॥ ८३ ॥
एवं वरूत्रिणः पुत्रा इन्द्रेण निहताः पुरा । यजन्यां देवयानी च शुक्रस्य दुहिताऽभवत् ॥ ८४ ॥
त्रिशिरा विश्वरूपस्तु त्वष्टुः पुत्रोऽभवन् महान् । विश्वरूपानुजश्चापि विश्वकर्मा यमः स्मृतः ॥ ८५ ॥
भृगोस्तु भृगवो देवा जज्ञिरे द्वादशात्मजाः। देव्यां तान् सुषुवे सर्वान् काव्यश्चैवात्मजान् प्रभुः ॥ ८६ ॥

दिव्या ने भृगु के संयोग से वेदज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ, देवताओं एवं असुरों के आचार्य, कविपुत्र सुप्रसिद्ध ग्रह शुक्र को उत्पन्न किया । वे शुक्र उशना एवं काव्य नाम से भी विख्यात है । शुक्र की पत्नी एवं सोम पान करनेवाले पितरों को यशस्विनी गो नामक कन्या ने चार पुत्रों को उत्पन्न किया । वे शुक्राचार्य ब्रह्मतेज से समलंकृत एवं ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ थे । उस पत्नी में शुक्र के चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ७४-७६ ॥

जो त्वष्टा, वरूत्री, शण्ड एवं अमर्क के नाम से विख्यात हैं । शुक्र के प्रभाव से वे पुत्र ब्रह्म के समान तेजस्वी तथा आदित्य के समान थे । उनमें से वरूत्री के रज्जन, पृथुरश्मि और विद्वान् बृहद्गिरा नामक ब्रह्मपरायण पुत्र हुए, जो सभी देवताओं के पुरोहित हुए । एक बार यज्ञ एवं धर्म के विनाश के लिए इन शुक्रपुत्रों ने मनु से अपने तर्कपूर्ण मतों को निवेदित किया । धर्म को नष्ट होते देख इन्द्र ने मनु से कहा कि मैं इन्हीं लोगों के द्वारा तुमसे यज्ञ करवाऊँगा । इन्द्र की बातें सुनकर वे लोग वहाँ से पलायन कर गये ॥ ७७-८० ॥

उन लोगों के छिप जाने पर उनकी धर्मपत्नी चेतना को पुरस्कारों से प्रलोभित कर इन्द्र ने अनुगमन किया । तदनन्तर इन्द्र के विनाशार्थ यत्न करते हुए वे यति (संन्यासी) वेश में उसी स्थान पर पुनः आये, वहाँ पर उन दुरात्माओं को आया देख इन्द्र ने संहार कर दिया और स्वयं देवदेव के यज्ञ की दक्षिण वेदी पर शयन किया । वहाँ पर शाला में रहनेवाले गीदड़ों और कुत्तों द्वारा भक्षण करते समय उन वरूत्रीपुत्रों के सिर गिरकर खजूर के रूप में परिणत हुए । इस प्रकार प्राचीनकाल में वरूत्री के पुत्रों का इन्द्र द्वारा संहार किया गया । यजनी (जयन्ती) नामक पत्नी में शुक्र की पुत्री देवयानी की उत्पत्ति हुई ॥ ८१-८४ ॥

त्वष्टा के तीन सिर वाले विश्वरूप एवं उनके अनुज महान् यशस्वी विश्वकर्मा की यमज जुड़वाँ सन्तान

भुवनो भावनश्चैव अन्यश्चान्यायतस्तथा । क्रतुःश्रवाश्च मूर्द्धा च व्यजयो व्यश्रुषश्च यः ॥
प्रसवश्चाप्यजश्चैव द्वादशोऽधिपतिः स्मृतः ॥ ८७ ॥
इत्येते भृगवो देवाः स्मृता द्वादश याज्ञिकाः । पौलोम्यजनयत् पुत्रं ब्रह्मिष्ठं वशिनं विभुम् ॥ ८८ ॥
व्याधितः सोऽष्टमे मासि गर्भक्रूरेण कर्मणा । च्यवनाच्च्यवनसोऽथ चेतनस्तु प्रचेतसः ॥
प्राचेतसाच्च्यवनक्रोधाददध्वानं पुरुषादजः ॥ ८९ ॥
जनयामास पुत्रौ द्वौ सुकन्यायां च भार्गवः । आत्मवानं दधीचं च तावुभौ साधुसम्मतौ ॥ ९० ॥
सारस्वतः सरस्वत्यां दधीचाच्चोपपद्यते । रुची पत्नी महाभागा आत्मवानस्य नाहुषी ॥ ९१ ॥
तस्य ऊर्वोर्ऋषिर्जज्ञे ऊरू भित्वा महायशाः । और्वश्चासीदृचीकस्तु दीप्ताग्निसदृशप्रभः ॥ ९२ ॥
जमदग्निर्ऋचीकस्य सत्यवत्यां व्यजायत । भृगोश्च रुचिपर्यये रौद्रवैष्णवयोस्तथा ॥ ९३ ॥
जमनाद् वैष्णवस्याग्नेर्जमदग्निरजायत । रेणुका जमदग्नेस्तु शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥
ब्रह्मक्षत्रमयं रामं सुषुवेऽमिततेजसम् ॥ ९४ ॥
और्वस्यासीत् पुत्रशतं जमदग्निपुरोगमम् । तेषां पुत्रसहस्राणि भार्गवाणां परस्परात् ॥ ९५ ॥
ऋष्यन्तरेषु वै बाह्या बहवो भार्गवाः स्मृताः। वत्सो विश्वोऽश्विषेणश्च पाण्डः पथ्यः सशौनकः ॥
गोत्रेण सप्तमा ह्येते पक्षा ज्ञेयास्तु भार्गवाः ॥ ९६ ॥

हुई । भृगु के बारह पुत्र उत्पन्न हुए, जो भृगुगणदेव के नाम से प्रसिद्ध हैं । भगवान् काव्य ने देवी में उन सभी आत्मजों को उत्पन्न किया । जिनके नाम भुवन, भावन, अन्य, अन्यायत, क्रतु, श्रवा, मूर्धा, व्यजय, व्यश्रुष, प्रसव, अज एवं अधिपति स्मरण किये गये हैं ॥ ८५-८७ ॥

ये बारह भृगुपुत्र बारह याज्ञिक देवगणों के नाम से विख्यात हैं । पुलोमा की पुत्री पौलोमी ने ब्रह्मनिष्ठ जितेन्द्रिय परम प्रभावशाली पुत्र को उत्पन्न किया । किसी कठोर कर्म के कारण पौलोमी का वह गर्भ आठवें मास में व्याधिग्रस्त होकर गिर पड़ा, अतः च्यवन अर्थात् गिर जाने के कारण उसका च्यवन नाम पड़ा और प्रचेतस से चेतन हुआ । प्राचेतस च्यवन के क्रोध से पुरुषादज ने अध्वन को उन भृगु पुत्र च्यवन ने सुकन्या नामक अपनी धर्मपत्नी में सत्पुरुषों द्वारा परम सम्माननीय आत्मवान् और दधीच नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया । सरस्वती में दधीच के संयोग से सारस्वत नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । नहुष की पुत्री महाभाग्यशालिनी रुची आत्मवान् की पत्नी थी । उन आत्मवान् की जंघाओं को फाड़ कर ऋषि नामक महायशस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ । उस और्व का पुत्र ऋचीक हुआ जो प्रज्वलित अग्नि के समान परम तेजस्वी था ॥ ८८-९२ ॥

ऋचीक मुनि की सत्यवती नामक स्त्री में जमदग्नि ऋषि उत्पन्न हुए । भृगुकृत रुद्र और विष्णु के चरु में विपर्यय हो जाने के कारण वैष्णव अग्नि के रुद्र अंश के भक्षण के कारण जमदग्नि ऋषि उत्पन्न हुए । जमदग्नि के संयोग से रेणुका ने इन्द्र के समान पराक्रमी, परम तेजस्वी, ब्रह्मबल से संयुक्त परशुराम को उत्पन्न किया । और्व के पुत्र ऋचीक के सौ पुत्र थे, जिनमें जमदग्नि सबसे बड़े थे । उन सौ पुत्रों के एक सहस्त्र पुत्र हुए । उन सभी भृगुवंशीय ऋषियों के वंशज परस्पर अन्यान्य ऋषियों के वंशजों से बाह्य विवाहादि कार्यों में योग्य माने गये हैं । वत्स, विश्व, अश्विषेण, पाण्ड, पथ्य और शौनक-इन सात गोत्रों में भार्गवगण विभक्त माने जाते हैं ॥९३-९६॥

श्रृणुताङ्गिरसो वंशमग्नेः पुत्रस्य धीमतः । यस्यान्ववाये सम्भूता भारद्वाजाः सगौतमाः ॥
देवाश्चाङ्गिरसो मुख्यास्त्विषुमन्तो महौजसः ॥ ९७ ॥
सुरूपा चैव मारीची कार्द्दमी च तथा स्वराट् । पथ्या च मानवी कन्या तिस्रो भार्यास्त्वथर्वणः ॥
इत्येताऽङ्गिरसः पत्न्यस्तासु वक्ष्यामि सन्ततिम् ॥ ९८ ॥
अथर्वणस्तु दायादास्तासु जाताः कुलोद्वहाः । उत्पन्ना महता चैव तपसा भावितात्मनाम् ॥ ९९ ॥
बृहस्पतिः सुरूपायां गौतमः सुषुवे स्वराट् । अवन्ध्यं वामदेवं च उतथ्यमुशिजं तथा ॥ १०० ॥
धिष्णुः पुत्रस्तु पथ्यायां संवर्त्तश्चैव मानसः । विचित्तश्च तथायस्यः शरद्वांश्चाप्युतथ्यजः ॥ १०१ ॥
अशिजो दीर्घतमा बृहदुत्थो वामदेवजः । धिष्णोः पुत्रः सुधन्वान ऋषभश्च सुधन्वनः ॥ १०२ ॥
रथकाराः स्मृता देवा ऋषयो ये परिश्रुताः । बृहस्पतेर्भरद्वाजो विश्रुतः सुमहायशाः ॥ १०३ ॥
अङ्गिरसस्तु संवर्त्तो देवानङ्गिरसः श्रृणु । बृहस्पतेर्यवीयांसो देवा ह्यङ्गिरसः स्मृताः ॥ १०४ ॥
औरसाङ्गिरसः पुत्राः सुरूपायां विजज्ञिरे । औदार्यायुर्दनुर्दक्षो दर्भः प्राणस्तथैव च ॥
हविष्मांश्च हविष्णुश्च क्रतुः सत्यश्च ते दश ॥ १०५ ॥
अयस्यस्तु उतथ्यश्च वामदेवस्तथोशिजः । भारद्वाजाः शांकृतिका गार्ग्यकाण्वरथीतराः ॥ १०६ ॥
मुद्गला विष्णुवृद्धाश्च हरिता वायवस्तथा । तथा भाक्षा भरद्वाजा आर्षभाः किंभयास्तथा ॥ १०७ ॥
एते ह्यङ्गिरसः पक्षा विज्ञेया दश पञ्च च । ऋष्यन्तरेषु वै बाह्या बहवोऽङ्गिरसः स्मृताः ॥ १०८ ॥

अब अग्नि के पुत्र परम बुद्धिमान अङ्गिरा के वंश का वृत्तान्त सुनिये, जिसके गोत्र में परम तेजस्वी भारद्वाज, गौतम एवं इषुमान् नामक मुख्य देवगण उत्पन्न हुए हैं। आङ्गिरस अथर्वा को मरीचि नन्दिनी सुरूपा, कर्दम पुत्री स्वराट् तथा मनुकन्या पथ्या नामक तीन स्त्रियाँ थीं, उनमें होनेवाली सन्ततियों का विवरण बतला रहा हूँ, अथर्वा के वंशोद्धारक उन उत्तराधिकारियों का, जो परम पूजनीय अंगिरा की परम तपस्या के फलस्वरूप उत्पन्न हुए थे, वर्णन कर रहा हूँ ॥ ९७-९९ ॥

सुरूपा में बृहस्पति का जन्म हुआ, स्वराट् ने गौतम को जन्म दिया। अवन्ध्य, वामदेव, उशिज, उतथ्य और धिष्ण ये पथ्या में उत्पन्न हुए, और संवर्त तथा विचित्त उसके मानस पुत्र हुए। उतथ्य के पुत्र शरद्वान् हुए। उशिज के पुत्र दीर्घतमा तथा वामदेव के पुत्र बृहदुत्थ हुए। धिष्णु के पुत्र सुधन्वा और सुधन्वा का पुत्र ऋषय हुआ और ऋषय के रथकार नामक देवगण तथा परम विख्यात ऋषिगण पुत्र रूप में हुए। बृहस्पति के पुत्र महान् यशस्वी एवं परम विख्यात हुए ॥ १००-१०३ ॥

अङ्गिरस के संवर्त नामक जो पुत्र थे उनकी संततियाँ देवगणों में परिगणित हैं। उन आंगिरस गोत्रीय देवताओं का विवरण सुनिये। बृहस्पति के छोटे भाई वे आंगिरसगोत्रीय देवगण माने जाते हैं। वे आंगिरसगोत्रीय देवगण सुरूपा के औरस पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे। उनकी संख्या दस है तथा उनके नाम औदार्य, आयु, दनु, दक्ष, दर्भ, प्राण, हविष्मान्, हविष्णु, क्रतु और सत्य है। अयस्य, उतथ्य, वामदेव, उसिज, भारद्वाजगोत्रीय शांकृतिक, गार्ग्य, काण्व, रथीतर, मुद्गल, विष्णुवृद्ध, हरित, वायव, भारद्वाजगोत्रीय भाक्ष, आर्षभ और किंभय—

मारीचं परिवक्ष्यामि वंशमुत्तमपूरुषम् । यस्यान्ववाये सम्भूतं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ १०९ ॥
मरीचिरापश्चक्रमे ताभिध्यायन् प्रजेप्सया । पुत्रः सर्वगुणोपेतः प्रजावान् सुरुचिर्दितिः ॥
सम्पूज्यते प्रशस्तायां मनसा भाविता प्रभुः ॥ ११० ॥
आहूताश्च ततः सर्वा आपः समवसत् प्रभुः। तासु प्रणिहितात्मानमेकः सोऽजनयत् प्रभुः ॥ १११ ॥
पुत्रमप्रतिमन्नाम्नारिष्टनेमिः प्रजापतिः । पुत्रं मरीचं सूर्याभं वधौवेशो व्यजीजनत् ॥ ११२ ॥
प्रध्यायन् हि सतां वाचं पुत्रार्थी सलिले स्थितः। सप्तवर्षसहस्राणि ततःसोऽप्रतिमोऽभवत् ॥११३ ॥
कश्यपः सवितुर्विद्वांस्तेन स ब्रह्मणः समः । मन्वन्तरेषु सर्वेषु ब्रह्मणांशेन जायते ॥ ११४ ॥
कन्यानिमित्तमित्युक्ते दक्षेण कुपिताः प्रजाः । अपिबत् स तदा कश्यं कश्यं मद्यमिहोच्यते ॥ ११५ ॥
हाश्चेकसा? हि विज्ञेया ब्रह्मणः कश्य उच्यते । कश्यं मद्यं स्मृतं विप्रैः कश्यपानात्तुकश्यपः ॥ ११६ ॥
करोति नाम यद्वाच्चो वाचं क्रूरमुदाहृतम् । दक्षाभिशप्तः कुपितः कश्यपस्तेन सोऽभवत् ॥ ११७ ॥
तस्माच्च कश्यपेनोक्तो ब्रह्मणा परमेष्ठिना । तस्माद् दक्षः कश्यपाय कन्यास्ताः प्रत्यपद्यत ॥
सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वास्ता लोकमातरः ॥ ११८ ॥
इत्येतमृषिसर्गं तु पुण्यं यो वेद वारुणम् । आयुष्मान् पुण्यवान् शुद्धः सुखमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥
धारणात् श्रवणाच्चैव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ११९ ॥
अथाब्रुवन् पुनः सर्वे मुनयो रोमहर्षणम् । विनिवृत्ते प्रजासर्गे षष्ठे वै चाक्षुषस्य ह ॥

ये पन्द्रह अंगिरा के गोत्रीय हैं, जो अन्यान्य ऋषियों के गोत्रों से विवाहादि सम्बन्धों में अंगीकार किये गये हैं। अंगिरा के गोत्र में उत्पन्न होनेवालों की संख्या बहुत अधिक बतलायी गयी है ॥ १०४-१०८ ॥

उत्तम पुरुषोंवाले मरीचि पुत्रों के वंश का वर्णन अब मैं कर रहा हूँ जिसके वंश में समस्त स्थावर जंगम जगत् की उत्पत्ति हुई । सर्वप्रथम मरीचि ने जल की कामना की और सन्तति की इच्छा से उसी के द्वारा ध्यानमग्न हुए । सभी सद्गुणों से सम्पन्न सन्ततिवान् शुभ-रुचिवाले पुत्र की उत्पत्ति से लोक में प्रतिष्ठा बढ़ती है इस प्रकार की भावना प्रभु मरीचि के मन में हुई ॥ १०९-११० ॥

तदनन्तर मरीचि के आवाहन करने पर सभी जल-समूह उनके समीप उपस्थित हुए । भगवान् मरीचि ने उस जलराशि में निवास किया । उसमें स्थित हो परम ऐश्वर्यशाली मरीचि ने पुत्र की कामना कर जितेन्द्रिय एवं अनुपम तेजस्वी अरिष्टनेमि नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो प्रजापति हुए । मरीचि का वह पुत्र सूर्य के समान तेजस्वी (वधौवेशो?) उत्पन्न हुआ । जलराशि में स्थित होकर सज्जनों की कल्याणदायिनी वाणी का विशेष ध्यान करते हुए मरीचि सात सहस्र वर्ष तक तप में स्थित रहे जिससे उनका वह पुत्र अनुपम हुआ । उसी अरिष्टनेमि का दूसरा नाम कश्यप था । कश्यप सविता के जनक थे । अतः उनकी महत्ता ब्रह्मा के समान थी । सभी मन्वन्तरों में वे ब्रह्म के अंश से अवतीर्ण होते हैं ॥ १११-११४ ॥

दक्ष ने कन्या के लिए जब सभी प्रजाओं को अप्रसन्न और कुपित कर दिया तब उन्होंने (अरिष्टनेमि) कश्य (मद्य) का पान किया । कश्य मद्य को कहते हैं । हाश्चेकसा (?) भी कश्य कहा जाता है । वचन और मन

निसर्गः सम्प्रवृत्तोऽयं मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥ १२० ॥

सूत उवाच

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः स्वयं दक्षः स्वयम्भुवा । ससर्ज दक्षो भूतानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥
उपस्थितेऽन्तरे ह्यस्मिन् मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥ १२१ ॥
ततः प्रवृत्तो दक्षस्तु प्रजाः स्रष्टुं चतुर्विधाः। जरायुजा अण्डजाश्च उद्भिज्जाः स्वेदजास्तथा ॥ १२२ ॥
दशवर्षसहस्राणि तप्त्वा घोरं महत्तपः । सम्भावितो योगबलैरणिमाद्यैर्विशेषतः ॥ १२३ ॥
आत्मानं व्यभजन् श्रीमान् मनुष्योरगराक्षसान् । देवासुरसगन्धर्वान् दिव्यसंहननप्रजान् ॥
ईश्वरानात्मनस्तुल्यान् रूपद्रविणतेजसा ॥ १२४ ॥
तथैवान्यानि मुदितो गतिमन्ति ध्रुवाणि च । मानसान्येव भूतानि सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥ १२५ ॥
ऋषीन् देवान् सगन्धर्वान् मनुष्योरगराक्षसान् । यक्षभूतपिशाचांश्च वयःपशुमृगांस्तथा ॥ १२६ ॥
यदाऽस्य मनसा सृष्टा न व्यवर्द्धन्त ताः प्रजाः । अपध्याता भगवता महादेवेन धीमता ॥ १२७ ॥
मैथुनेन च भावेन सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः । असिक्नीं चावहत् पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः ॥ १२८ ॥

को कश्य कहते हैं। ब्राह्मणों ने कश्य मद्य को कहा है और उसी कश्य (मद्य) के पीने के कारण कश्यप नाम पड़ा। कन्या के लिए दक्ष द्वारा तिरस्कृत होकर उन्होंने कुपित होकर कठोर वाक्यों का प्रयोग किया था अतः कश्यप नाम से विख्यात हुए। परमेष्ठी ब्रह्मा के अनुरोध पर एवं कश्यप की प्रार्थना पर दक्ष ने अपनी कन्याएँ कश्यप को सौंप दीं वे दक्षकन्याएँ ब्रह्मवादिनी एवं लोकमाता थीं ॥ ११५-११८ ॥

इस परम पवित्र पुण्यदायी वारुण सृष्टि के वृत्तान्त को जो जानता है वह दीर्घायु-सम्पन्न, पुण्यवान्, पवित्रात्मा परमानन्द को प्राप्त करता है। इस वृत्तान्त को धारण करने वाले तथा सुनने वाले सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं। तदनन्तर उन ऋषियों ने रोमहर्षण सूत जी से पुनः पूछा। हे सूतजी ! छठवें चाक्षुष मन्वन्तर की समाप्ति हो जाने पर यह वैवस्वत मन्वन्तर किस भाँति प्रवृत्त होता है ? इसे बताइये ॥ ११९-१२० ॥

श्रीसूतजी ने कहा—इस वैवस्वत मन्वन्तर के उपस्थित होने पर प्रजाओं की सृष्टि करो। स्वयंभू ब्रह्मा की इस आज्ञा पर दक्ष प्रजापति ने चर-अचर सभी प्रकार के जीव-समूहों की सृष्टि की। उस समय वे जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज चारों प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि के लिए प्रवृत्त हुए ॥ १२१-१२२ ॥

उन्होंने दस सहस्र वर्ष तक अति घोर तपस्या में निरत रहकर अणिमा आदि सिद्धियों तथा योगबल से समुत्पन्न होकर उन्होंने अपने शरीर को मनुष्य, सर्प, राक्षस, देव, असुर, गन्धर्व प्रभृति दिव्य प्रजाओं तथा सम्पत्ति, सौन्दर्य एवं तेज में अपने ही समान परम ऐश्वर्यशाली विभूतियों के रूप में विभक्त किया। इस प्रकार उस समय अति प्रमुदित होकर इन सबों के अतिरिक्त विविध प्रजाओं की सृष्टि की अभिलाषा में अन्यान्य चराचर जीव-जन्तुओं को मानसिक संकल्पों द्वारा उत्पन्न कर ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वो, मनुष्यों, सर्पो, राक्षसों, यक्ष, भूतों, पिशाचों, पक्षियों, पशुओं तथा मृगादिकों को भी उत्पन्न किया ॥ १२३-१२६ ॥

किन्तु मानसिक संकल्प द्वारा सृष्टि कर्म करने पर जब प्रजाओं की यथेष्ट वृद्धि नहीं हुई तब परम बुद्धिमान् भगवान् महादेव के बुरा-भला कहने पर सम्भोग कर्म द्वारा विविध प्रजाओं की सृष्टि का विचार किया और

सुतां सुमहता युक्तां तपसा लोकधारिणीम् । यया धृतमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ १२९ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ प्राचेतसे प्रति । दक्षस्योद्वहतो भार्यामसिक्नीं वीरिणीं पराम् ॥ १३० ॥
कूपानां नियुतं दक्षः सर्पिणां साभिमानिनाम् । नदीगिरीषु सर्ज्जस्ताः पृष्ठतोऽनुययौ प्रभुः ॥ १३१ ॥
तं दृष्ट्वा ऋषिभिः प्रोक्तं प्रतिष्ठास्यति वै प्रजाः । प्रथमात्र द्वितीया तु दक्षस्येह प्रजापतेः ॥ १३२ ॥
तथागच्छद्यथाकालं कूपानां नियुते तु सः । असिक्नीं वैरिणीं यत्र दक्षः प्राचेतसोऽवहत् ॥ १३३ ॥
अथ पुत्रसहस्रं स वैरिण्याममितौजसा । असिक्न्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसः प्रभुः ॥ १३४ ॥
तांस्तु दृष्ट्वा महातेजाः स विवर्द्धयिषून् प्रजाः । देवर्षिः प्रियसंवादो नारदो ब्रह्मणः सुतः ॥
नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनोऽब्रवीत् ॥ १३५ ॥
यः स वै प्रोच्यते विप्रः कश्यपस्येति कृत्रिमः । दक्षशापभयाद्भीतो ब्रह्मर्षिस्तेन कर्मणा ॥ १३६ ॥
यः कश्यपसुतस्याथ परमेष्ठी व्यजायत । मानसः कश्यपस्येह दक्षशापभयात् पुनः ॥ १३७ ॥
तस्मात् स कश्यपस्याथ द्वितीयं मानसोऽभवत् । स हि पूर्वसमुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः ॥ १३८ ॥
येन दक्षस्य पुत्रास्ते हर्यश्वा इति विश्रुताः । निन्दार्थं नाशिताः सर्वे विनष्टाश्च न संशयः ॥ १३९ ॥

इसके लिए वीरण नामक प्रजापति की पुत्री असिक्नी को पत्नी के रूप में अंगीकार किया, वह असिक्नी अपनी घोर तपस्या के बल से समस्त लोक का पालन करने वाली तथा समस्त स्थावर जङ्गमात्मक जगन्मण्डल को धारण करने वाली थी ॥ १२७-१२९ ॥

इस विषय में लोग प्राचेतस दक्ष के लिए इन दो श्लोकों (छन्दों) को कहा करते हैं, जिनका आरोप इस प्रकार है । परम श्रेष्ठ वीरगण की पुत्री असिक्नी को उद्वाहित करते (ब्याहते) समय दक्ष ने दस लक्ष गमनशील अभिमानी कूपों का निर्माण किया, जो नदियों और पर्वतों में लीन हुए, ऐश्वर्यशाली दक्ष ने उन सब का अनुसरण किया ॥ १३०-१३१ ॥

दक्ष को इस प्रकार परम ऐश्वर्यसम्पन्न देखकर ऋषियों ने कहा कि इसके द्वारा प्रजाओं की प्रतिष्ठा होगी। इस प्रकार प्रजापति दक्ष को प्रथम सृष्टि सन्तति रूप में तथा द्वितीय प्रजा में परिणत हुई । इस प्रकार दस लक्ष कूपों का निर्माण कर यथासमय वीरण पुत्री असिक्नी को दक्ष ने वरण किया । अमित तेजस्वी प्राचेतस दक्ष ने उस वीरण पुत्री असिक्नी में एक सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया । प्रजाओं की वृद्धि की इच्छा रखने वाले उन दक्ष पुत्रों को देखकर ब्रह्मा के पुत्र कलहप्रिय देवर्षि नारद ने उनके विनाशार्थ एवं अपने शाप के लिए उनसे दुष्ट परामर्शपूर्ण बातें कीं ॥ १३२-१३५ ॥

हे विप्रवर्य! नारद जी, जिस कारण कश्यप के कृत्रिम पुत्र कहे जाते हैं, उसका मूल कारण उनकी यही करतूत है । उस परामर्श रूप निन्द्य कार्य के कारण दक्ष के शाप से भयभीत होकर ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मर्षि नारद कश्यप सुत के रूप में अवतीर्ण हुए । फिर दक्ष शाप के भय से कश्यप के यहाँ मानसपुत्र रूप में अवतीर्ण होना उनका द्वितीय जन्म था । ये नारद जी सर्वप्रथम परमेष्ठी ब्रह्मा के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे । प्राचीनकाल में दक्ष प्रजापति के हर्यश्व नाम से विख्यात समस्त पुत्रों को निन्दा के लिए इन्होंने नष्ट किया था। इसमें सन्देह नहीं ॥१३६-१३९॥

तस्योद्यतस्तदा दक्षः क्रुद्धो नाशाय वै प्रभुः । ब्रह्मर्षीन् वै पुरस्कृत्य याचितः परमेष्ठिना ॥ १४० ॥
ततोऽभिसन्धितं चक्रे दक्षस्तु परमेष्ठिना । कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवत्विति ॥ १४१ ॥
ततो दक्षः सुतां प्रादात् प्रियां वै परमेष्ठिने । तस्मात् स नारदो जज्ञे भूयः शान्तो भयादृषिः ॥ १४२ ॥
तदुपश्रुत्य प्रियास्ते जातकौतूहलाः पुनः । अपृच्छन् वदतां श्रेष्ठं सूतं तत्त्वार्थदर्शिनम् ॥ १४३ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं विनाशिताः पुत्रा नारदेन महात्मना । प्रजापतिसुतास्ते वै प्रजाः प्राचेतसात्मजाः ॥ १४४ ॥
स तथ्यं वचनं श्रुत्वा जिज्ञासासम्भवं शुभम् । प्रोवाच मधुरं वाक्यं तेषां सर्वगुणान्वितम् ॥ १४५ ॥
दक्षपुत्राश्च हर्यश्वा विवर्द्धयिषवः प्रजाः । समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥ १४६ ॥
बालिशा बत यूयं वै न प्रजानीथ भूतलम् । अन्तमूर्द्ध्वमधश्चैव कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ॥ १४७ ॥
किं प्रमाणं तु मेदिन्याः स्रष्टव्यानि तथैव च । अविज्ञायेह स्रष्टव्यं अन्यथा किं तु स्रक्ष्यथ ॥
अल्पं वापि बहुर्वापि तत्र दोषस्तु दृश्यते ॥ १४८ ॥
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम् । वायुं तु समनुप्राप्य गतास्ते वै पराभवम् ॥ १४९ ॥
अद्यापि न निवर्त्तन्ते भ्रमन्तो वायुमिश्रिताः । एवं वायुपथं प्राप्य भ्रमन्ते ते महर्षयः ॥ १५० ॥
स्वेषु पुत्रेषु नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः । वैरिण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत् प्रभुः ॥ १५१ ॥

अपने पुत्रों का विनाश देख नारद का नाश करने के लिए जब प्रभु दक्ष उद्यत हुए तो समस्त ब्रह्मर्षियों को आगे करके परमेष्ठी पितामह ने दक्ष से इनके लिए याचना की। उस समय दक्ष के साथ पितामह की यह शर्त तय हुई कि मेरे उद्देश्य से दी गयी कन्या में नारद तुम्हारे पुत्र रूप में उत्पन्न होंगे। तब दक्ष ने अपनी प्रिय कन्या परमेष्ठी को दी, जिसके गर्भ से पुनः भयभीत नारद जी शान्त रूप में उत्पन्न हुए। ऐसी बातें सुन कर उन ऋषियों को बड़ा कौतूहल हुआ। उन्होंने तत्त्वार्थदर्शी, व्याख्याताओं में सर्वश्रेष्ठ सूत जी से पूछा ॥ १४०-१४३ ॥

ऋषियों ने कहा—हे सूत जी! महात्मा नारद ने किस लिए प्राचेतस दक्ष प्रजापति के उन पुत्रों एवं प्रजाओं का विनाश किया? ऋषियों की ऐसी जिज्ञासाभरी कल्याणपूर्ण बातें सुन सूत ने उनसे सर्वगुणसम्पन्न यह मधुर बातें कहीं। महाबलवान् दक्ष प्रजापति के हर्यश्व नामक प्रजा-सृष्टि की वृद्धि के इच्छुक पुत्रों को अपने पास आया देख नारद ने कहा—दक्ष के मूर्ख पुत्रो! तुम लोग भूगोल के तत्त्व को बिल्कुल नहीं जानते, इसके ऊपर क्या है ॥ नीचे क्या है? इसका अन्त कहाँ होता है? इन सब बातों को बिना जाने-बूझे किस तरह प्रजाओं की सृष्टि करोगे? तुम्हें यह तो मालूम नहीं है कि इस पृथ्वी का क्या परिमाण है और इसमें कितनी प्रजाओं की सृष्टि करनी चाहिए। बिना जाने यदि सृष्टि कर्म करोगे तो या अल्पता के अथवा अधिकता के अपराधी होओगे। इसके अतिरिक्त बिना जाने-बूझे और क्या कर ही सकते हो ॥ १४४-१४८ ॥

नारद जी की ऐसी बातें सुनकर वे दक्षपुत्रगण सभी दिशाओं की ओर चले गये और वहाँ वायुमण्डल को प्राप्त होकर एकदम शिथिल एवं पराभूत हो गये। वायुमण्डल में पहुँचकर वे बेचारे वायु के साथ घूमते हुए आज तक नहीं लौट सके। इस प्रकार नारद को कूटपूर्ण बातों में आकर वे महर्षिगण वायुमण्डल में भ्रमण करते हैं। अपने उन पुत्रों के नष्ट हो जाने पर प्राचेतस दक्ष ने पुनः वैरिणी में एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये। प्रजाओं की वृद्धि

प्रजा विवर्द्धयिषवः शबलाश्वाः पुनस्तु ते । पूर्वमुक्तं वचस्तत्र श्राविता नारदेन ह ॥ १५२ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं सर्वे कुमारास्ते महौजसः । अन्योन्यमूचुस्ते सर्वे सम्यगाह महानृषिः ॥
भ्रातॄणां पदवीं चैव गन्तव्या नात्र संशयः ॥ १५३ ॥
ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुखं स्त्रक्ष्यामहे प्रजाः । तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्वतोदिशम् ॥
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥ १५४ ॥
ततः प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे रतः । प्रयातो नश्यति तथा तत्र कार्यं विजानता ॥ १५५ ॥
नष्टेषु शबलाश्वेषु दक्षः क्रुद्धोऽभवद् विभुः । नारदं नाशमेहीति गर्भवासं वसेति च ॥ १५६ ॥
तथा तेष्वपि नष्टेषु महात्मसु पुरा किल । षष्टिकन्याऽसृजद् दक्षो वैरिण्यामेव विश्रुताः ॥ १५७ ॥
तास्तदा प्रतिजग्राह पत्न्यर्थे कश्यपः प्रभुः । धर्मः सोमस्तु भगवांस्तथैवान्ये महर्षयः ॥ १५८ ॥
इमां विसृष्टिं दक्षस्य कृत्स्नां यो वेद तत्त्वतः। आयुष्मान् कीर्तिमान् धन्यः प्रजावांश्च भवत्युत॥ १५९ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते तृतीये अनुषङ्गपादे प्रजापतिवंशानुकीर्तनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

* * *

के इच्छुक शबलाश्व नाम से विख्यात इन पुत्रों से भी नारद ने पुनः अपनी वही पुरानी बातें सुनायीं जिसे सुनकर उन परमतेजस्वी कुमारों ने एक-दूसरे से सम्मति की कि महर्षि नारद का कहना ठीक है । अपने पूर्वज उन बड़े भाइयों की राह पर हम लोगों को बिना किसी सन्देह के चलना चाहिए ॥ १४९-१५३ ॥

इस पृथ्वीमण्डल का प्रमाण आदि समझ-बूझकर तब हम लोग सुखपूर्वक प्रजाओं की सृष्टि करेंगे ऐसा निश्चय कर वे लोग भी विभिन्न दिशाओं की ओर चले गये और आज तक वहाँ से समुद्र में गयी हुई नदियों की भाँति लौट नहीं सके । तभी से यदि बड़े भाई को खोजने के लिए छोटा भाई प्रवृत्त होता है तो वह भी नष्ट हो जाता है, बुद्धिमानों को ऐसा नहीं करना चाहिए ॥ १५४-१५५ ॥

शबलाश्व नामक अपने दूसरे पुत्र-समूहों के नष्ट हो जाने पर परमऐश्वर्यशाली दक्ष प्रजापति ने नारद को शाप दिया कि 'तू नष्ट हो जा, अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो और गर्भवास का कष्ट अनुभव कर ।' इस प्रकार उन शबलाश्व नामक महात्मा पुत्रों के नष्ट हो जाने पर प्राचीनकाल में यह सर्वप्रसिद्ध बात है कि दक्ष ने उसी वैरिणी के संयोग से साठ परम प्रसिद्ध कन्याओं को उत्पन्न किया और उन दक्ष-पुत्रियों को प्रभु कश्यप, चन्द्रमा तथा अन्यान्य महर्षियों ने अंगीकार किया । दक्षप्रजापति के इस सृष्टि विस्तार की सम्पूर्ण कथा को जो सत्यरूप में जानता है वह दीघार्यु-सम्पन्न, यशस्वी, धनधान्यादि-सम्पन्न एवं पुत्र-पौत्रादि से संयुक्त रहता है ॥ १५६-१५९ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में प्रजापतिवंशानुकीर्तन नामक चतुर्थ अध्याय (पैंसठवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४ ॥**

* * *

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कश्यपीयप्रजासर्गः

ऋषय ऊचुः

देवानां दानवानां च दैत्यानां चैव सर्वशः । उत्पत्तिं विस्तरेणेह ब्रूहि वैवस्वतेऽन्तरे ॥ १ ॥

सूत उवाच

धर्मस्य तावद् वक्ष्यामि निसर्गं तं निबोधत । अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती ॥ २ ॥
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा तथैव च । धर्मपत्न्यो दश त्वेता दक्षः प्राचेतसो ददौ ॥ ३ ॥
साध्या पुत्रांस्तु धर्मस्य साध्यान् द्वादश जज्ञिरे । साध्या नाम महाभागाश्छन्दजा यज्ञभागिनः ॥
देवेभ्यस्तान् परान् देवान् देवज्ञाः परिचक्षिरे ॥ ४ ॥
ब्रह्मणो वै मुखात् सृष्टा जया देवाः प्रजेप्सया । सर्वे मन्त्रशरीरास्ते स्मृता मन्वन्तरेष्विह ॥ ५ ॥
दर्शश्च पौर्णमासश्च बृहद्यच्च रथन्तरम् । चित्तिश्चैव विचित्तिश्च आकूतिः कूतिरेव च ॥ ६ ॥

पाँचवाँ अध्याय

(छाछठवाँ अध्याय)

कश्यप की प्रजा का वर्णन

कश्यप के सन्तानों की सृष्टिकथा ऋषियों ने कहा—सूत जी अब हम लोगों से वैवस्वत मन्वन्तर में होने वाले देवताओं दानवों एवं दैत्यों की उत्पत्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द! सर्वप्रथम धर्म की प्रजाओं का सृष्टि क्रम बतला रहा हूँ, सुनिये । अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा—ये दस धर्म की पत्नियाँ थीं, जिन्हें प्राचेतस दक्ष ने उनके लिए दिया था । साध्या ने धर्म के संयोग से बारह पुत्रों को जन्म दिया, जो साध्यगणों के नाम से प्रख्यात हैं । ये महाभाग्यशाली साध्य नामक देवगण छन्दों से उत्पन्न होनेवाले एवं यज्ञ में भाग पानेवाले कहे जाते हैं, देवताओं के वास्तविक महत्त्व को जाननेवाले लोग उन्हें देवताओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ एवं पूजनीय बतलाते हैं ॥ २-४ ॥

ब्रह्मा ने सन्तति उत्पन्न करने की कामना से अपने मुख द्वारा जय नामक देवगणों की उत्पत्ति को जो मन्वन्तर में सब के सब मन्त्रमय शरीर वाले कहे गये हैं । उन जय नामक देवगणों के नाम इस प्रकार हैं । दर्श,

विज्ञाता चैव विज्ञातो मनो यज्ञश्च ते स्मृताः । नामान्येतानि तेषां वै जयानां प्रथितानि च ॥ ७ ॥
ब्रह्मशापेन ते जाताः पुनः स्वायम्भुवे जिताः । स्वारोचिषे वै तुषिताः सत्याश्चैवोत्तमे पुनः ॥ ८ ॥
तामसे हरयो नाम वैकुण्ठा रैवतान्तरे । साध्याश्च चाक्षुषे नाम्ना छन्दजा जज्ञिरे सुराः ॥ ९ ॥
धर्मपुत्रा महाभागाः साध्या ये द्वादशामराः । पूर्वं स्म अनुसूयन्ते चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ॥ १० ॥
स्वारोचिषेऽन्तरेऽतीता देवा ये वै महौजसः । तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वै चाक्षुषेऽन्तरे ॥ ११ ॥
किञ्चिच्छिष्टे तदा तस्मिन् देवा वै तुषिताऽब्रुवन् । इतरेतरं महाभागान् वयं साध्यान् प्रविश्य वै ॥
मन्वन्तरे भविष्यामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥ १२ ॥
एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । तस्माद् द्वादशसम्भूतान् धर्मान् स्वायम्भुवात् पुनः ॥ १३ ॥
नरनारायणौ तत्र जज्ञाते पुनरेव हि । विपश्चिदिन्द्रो यश्चासीत्तथा सत्यो हरिश्च तौ ॥
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वमास्तां तौ तुषितौ सुरौ ॥ १४ ॥
तुषितानां तु साध्यत्वे नामान्येतानि वक्ष्यते । मनोऽनुमन्ता प्राणश्च नरो यानश्च वीर्यवान् ॥ १५ ॥
चित्तिर्हयो नयश्चैव हंसो नारायणस्तथा । प्रभवोऽथ विभुश्चैव साध्या द्वादश जज्ञिरे ॥ १६ ॥
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं ततः स्वारोचिषे पुनः । नामान्यासन् पुनस्तानि तुषितानां निबोधत ॥ १७ ॥
प्राणोऽपानस्तथोदानः समानो व्यान एव च । चक्षुः श्रोत्रं रसो घ्राणः स्पर्शो बुद्धिर्मनस्तथा ॥ १८ ॥

पौर्णमास, बृहत्, रथन्तर, चित्ति, विचित्ति, आकूति, कूति, विज्ञाता, विज्ञात, मन और यज्ञ । ये ही उन विख्यात जय देवगणों के नाम हैं । वे जय नामक देवगण ब्रह्म शाप के कारण पुनः स्वायम्भुव मन्वन्तर में जित नाम से उत्पन्न हुए । स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषित नाम से तथा उत्तम मन्वन्तर में सत्य नाम से वे पुनः आविर्भूत हुए ॥५-८॥

तामस मन्वन्तर में वे हरि तथा रैवत मन्वन्तर में बैकुण्ठ नाम से प्रसिद्ध होते हैं । इसी प्रकार चाक्षुष मन्वन्तर में वे छन्दोज देवगण साध्य नाम से उत्पन्न होते हैं । महाभाग्यशाली धर्म के पुत्र के बारह देवगण चाक्षुष मन्वन्तर के पूर्वकाल में उत्पन्न हुए । स्वारोचिष मन्वन्तर में उत्पन्न होनेवाले उन अतीतकालीन तुषित नामक महान् तेजस्वी देवगणों ने उस समय जब कि स्वारोचिष मन्वन्तर की अवधि थोड़ी शेष रह गयी थी, आपस में यह परामर्श किया कि हम लोग परस्पर एक में सन्निहित होकर आगामी चाक्षुष मन्वन्तर में साध्य नाम से जन्म ग्रहण करेंगे, जिससे हम लोगों का कल्याण होगा ॥ ९-१२ ॥

आपस में ऐसा परामर्श निश्चित कर ये पुनः चाक्षुष मन्वन्तर में स्वयंभू के पुत्र धर्म के यहाँ बारह पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए । उस स्वारोचिष मन्वन्तर में नर और नारायण भी पुनः जन्म ग्रहण करते हैं । उनमें विपश्चित् नाम से इन्द्र तथा सत्य नाम से हरि की प्रसिद्धि होती है । उक्त मन्वन्तर में वे दोनों तुषित नामक देवगणों में सम्मिलित थे । उन तुषित नामक देवगणों का साध्य नाम से जन्म ग्रहण करने पर जो-जो नाम विख्यात हुआ, उसका वर्णन कर रहा हूँ । मन, अनुमन्ता, प्राण, नर, पराक्रमी यान, चिति, हय, नय, हंस, नारायण, प्रभव तथा विभु—ये बारह देवगण साध्य नाम से उत्पन्न हुए थे ॥ १३-१६ ॥

पूर्वकालीन स्वायंभुव मन्वन्तर में तथा पुनः स्वारोचिष मन्वन्तर में वे ही देवगण जब तुषित नाम से विख्यात होते हैं, उस समय के उनके नाम कहता हूँ, सुनिये । उनके नाम प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान,

प्राणापानावुदानश्च समानो व्यान एव च । नामान्येतानि पूर्वं तु तुषितानां स्मृतानि ह ॥ १९ ॥
वसोस्तु वसवः पुत्राः साध्यानामनुजाः स्मृताः। धरो ध्रुवश्च सोमश्च आपश्चैवानलोऽनिलः ॥
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥ २० ॥
धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा । ध्रुवपुत्रो भवो नाम्ना कालो लोकप्रकालनः ॥ २१ ॥
सोमस्य भगवान् वर्चा बुधश्च ग्रहबोधनः । रोहिण्यां तौ समुत्पन्नौ त्रिषु लोकेषु विश्रुतौ ॥ २२ ॥
धारोर्मिकलिलाश्चैव त्रयश्चन्द्रमसः सुताः । आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः शमः शान्तस्तथैव च ॥ २३ ॥
स्कन्दः सनत्कुमारश्च जज्ञे पादेन तेजसः । अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत ॥
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ॥ २४ ॥
अनिलस्य शिवा भार्या तस्याः पुत्रो मनोजवः । अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य च ॥ २५ ॥
प्रत्यूषस्य विदुः पुत्र ऋषिर्नाम्ना तु देवलः । द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ ॥ २६ ॥
बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी । योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता विचरत्युत ॥ २७ ॥
प्रभासस्य तु या भार्या वसूनामष्टमस्य ह । विश्वकर्मा सुतस्तस्या जातः शिल्पिप्रजापतिः ॥ २८ ॥
स कर्त्ता सर्वशिल्पानां त्रिदशानां च वर्द्धकिः । भूषणानां च सर्वेषां कर्त्ता कारयिता च सः ॥ २९ ॥
सर्वेषां च विमानानि दैवतानां करोति सः । मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पानि शिल्पिनः ॥ ३० ॥

चक्षु, श्रोत्र, रसना, घ्राण, स्पर्श, बुद्धि और मन हैं। पूर्व काल में उन तुषितों के नाम प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान कहे गये हैं ॥ १७-१९ ॥

वसु के धर्म के संयोग से वसुगण उत्पन्न हुए जो साध्यों के अनुज रूप में स्मरण किये जाते हैं। धर, ध्रुव, सोम, आप, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसुगण के नाम से विख्यात हैं ॥ २० ॥

धर के द्रविण और हुतहव्यवाह नामक पुत्र हुए। ध्रुव के पुत्र का नाम भव हुआ जो समस्त लोक के संहारक काल नाम से प्रसिद्ध हुए। सोम के पुत्र परमऐश्वर्यशाली वर्चा और बुध हुए, जिनमें बुध नव ग्रहों में परिगणित हुए। सोम के ये दोनों त्रैलोक्य विख्यात पुत्र रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ॥ २१-२२ ॥

इन दोनों के अतिरिक्त धारा, उर्मि और कलिल (?) नामक तीन अन्य पुत्र भी चन्द्रमा के थे। आप के पुत्र वैतण्ड्य शम और शान्त थे अग्नि के कुमार नामक पुत्र का जन्म सरपतों के समूह में हुआ, उनका दूसरा नाम स्कन्द हुआ। ये स्कन्द और सनत्कुमार अग्नि के चतुर्थांश तेज से उत्पन्न हुए थे। इनके शाख, विशाख और नैगमेय नामक कनिष्ठ भाई हुए ॥ २३-२४ ॥

अनिल की स्त्री का नाम शिवा था, जिसके संयोग से मनोजव और अविज्ञातगति नामक दो पुत्र अनिल के हुए। प्रत्यूष के पुत्र का नाम देवल ऋषि लोग जानते हैं। देवल के क्षमावान् और मनीषी नामक दो पुत्र हुए। बृहस्पति की भगिनी परमयोगसिद्ध, ब्रह्मचारिणी वरस्त्री थी जो समस्त जगत् में बिना किसी आसक्ति के विचरण करती थी ॥ २५-२७ ॥

वह वरस्त्री आठवें वसु प्रभास की स्त्री हुई। उसका पुत्र विश्वकर्मा हुआ जो समस्त शिल्पियों का प्रजापति था। वह विश्वकर्मा समस्त शिल्पकर्मों का निर्माता तथा देवताओं के बढ़ई थे। सभी प्रकार के आभूषणों के वह

विश्वेदेवास्तु विश्वाया जज्ञिरे दश विश्रुताः। क्रतुर्दक्षः श्रवः सत्यः कालः कामो धुनिस्तथा ॥ ३१ ॥
कुरुवान् प्रभवांश्चैव रोचमानश्च ते दश । धर्मपुत्राः स्मृता ह्येते विश्वाया जज्ञिरे शुभाः ॥ ३२ ॥
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो भानवो भानुजाः स्मृताः । मुहूर्त्ताश्च मुहूर्त्तायां घोषं लम्बा व्यजायत ॥ ३३ ॥
संकल्पायां तु संजज्ञे विद्वान् संकल्प एव च । नागवीथ्यस्तु जाम्यां च पथत्रयसमाश्रिताः ॥ ३४ ॥
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत । एष सर्गः समाख्यातो विद्वान् धर्मस्य शाश्वतः ॥ ३५ ॥
मुहूर्त्ताश्चैव तिथ्यश्च पतिभिः सह सुव्रताः । नामतः सम्प्रवक्ष्यामि ब्रुवतो मे निबोधत ॥ ३६ ॥
अहोरात्रविभागश्च नक्षत्राणि समासतः । मुहूर्त्ताः सर्वनक्षत्रा अहोरात्रविदस्तथा ॥ ३७ ॥
अहोरात्रकलानां तु षट्शतीत्यधिका स्मृता । रवेर्गतिविशेषेण सर्वेषु ऋतुमिच्छतः ॥ ३८ ॥
ततो वेदविदश्चैतां तिथिमिच्छन्ति पर्वसु । अविशेषेषु कालेषु योज्यः स पितृदानतः ॥ ३९ ॥
रौद्रः सार्वस्तथा मैत्रः पिण्ड्यवासव एव च । आप्योऽथ वैश्वदेवश्च ब्राह्मो मध्याह्नसंश्रितः ॥ ४० ॥
प्राजापत्यस्तथा ऐन्द्रस्तथेन्द्रो निर्ऋतिस्तथा । वारुणश्च तथार्यम्णो भागाश्चापि दिनाश्रिताः ॥ ४१ ॥
एते दिनमुहूर्त्ताश्च दिवाकरविनिर्मिताः । शङ्कुच्छायाविशेषेण वेदितव्याः प्रमाणतः ॥ ४२ ॥

कर्त्ता तथा निर्देशक थे । सभी देवताओं के विमानों को वह स्वयं बनाते थे, शिल्पजीवी मानव-समूह आज भी उनके शिल्पकर्म के द्वारा जीविका अर्जन करते हैं ॥ २८-३० ॥

धर्म को विश्वा नामक पत्नी के दस विख्यात पुत्र हुए जो विश्वेदेव के नाम से प्रसिद्ध हुए उनके नाम ऋतु, दक्ष, श्रव, सत्य, काल, काम, पुनि, कुरुवान्, प्रभवान् और रोचमान हैं । ये मंगल कार्यसाधक धर्मपुत्र विश्वा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ॥ ३१-३२ ॥

इसी प्रकार मरुत्वती में मरुद्गण तथा भानु में भानुगण नामक पुत्रों की उत्पत्ति हुई । मुहूर्ता ने मुहूर्त नामक पुत्रों को तथा जम्बा ने घोष नामक एक पुत्र को उत्पन्न किया । संकल्पा नामक धर्म की पत्नी में परमविद्वान् संकल्प नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । तीन पथों में समाश्रित जामी नामक धर्मपत्नी में नागवीथियाँ उत्पन्न हुईं ॥३३-३४॥

इनके अतिरिक्त पृथ्वी के अन्यान्य जीवगण अरुन्धती से उत्पन्न हुए । परमविद्वान् धर्म को सृष्टि के इस सनातन क्रम को मैं भली-भाँति कह चुका । अब इसके उपरान्त सभी प्रकार के मुहूर्तों, शुभ तिथियों एवं उनके स्वामियों का नाम सहित वर्णन कर रहा हूँ, आप सुनिये ॥ ३५-३६ ॥

उसी के प्रसंग में दिन और रात के विभाग, सभी नक्षत्रों के विस्तार व उनकी गति एवं दिन-रात में आने वाले मुहूर्त आदि का भी संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ । एक दिन और रात के अन्तर्गत छह सौ से अधिक कलाएँ मानी गयी हैं । सूर्य की गति के आधार पर ऋतुएँ उत्पन्न होती हैं और उन्हीं ऋतुओं में सभी प्रकार के मुहूर्तों की स्थिति है । वेदों के तत्त्वों के जानने वाले उन्हीं मुहूर्तों एवं पर्वों के आधार पर तिथियों एवं नक्षत्रों की कल्पना करते हैं और तिथि आदि के भेद के अनुसार विभिन्न कालों में पितृदान आदि की व्यवस्था करते हैं ॥ ३७-३९ ॥

रौद्र, सार्व, मैत्र, पिण्ड्य, वासव, आप्य, वैश्वदेव, ब्राह्म, मध्याह्न, प्राजापत्य, ऐन्द्र, इन्द्र, निर्ऋति, वारुण, आर्यम्ण एवं भाग—ये दिन पर आश्रित रहने वाले मुहूर्त हैं जो सूर्य द्वारा निर्मित होते हैं । शंकु (कील) आदि गाड़कर उसकी छाया से इन सबों का प्रमाण देखा जा सकता है ॥ ४०-४२ ॥

अजास्तथाऽहिर्बुध्न्यश्च पूषा हि यमदेवताः । आग्नेयश्चापि विज्ञेयः प्राजापत्यस्तथैव च ॥ ४३ ॥
ब्रह्मसौम्यस्तथादित्यो बार्हस्पत्योऽथ वैष्णवः। सावित्रोऽथ तथा त्वाष्ट्रो वायव्यश्चेति संग्रहः॥ ४४ ॥
एकरात्रिमुहूर्त्ताः स्युः क्रमोक्ता दश पञ्च च । इन्दोर्गत्युदया ज्ञेया नालिकाः पादिकास्तथा ॥
कालावस्थास्त्विमास्त्वेते मुहूर्ता देवताः स्मृताः ॥ ४५ ॥
सर्वग्रहाणां त्रीण्येव स्थानानि विहितानि च । दक्षिणोत्तरमध्यानि तानि विद्याद्यथाक्रमम् ॥ ४६ ॥
स्थानं जारद्गवं मध्ये तथैरावतमुत्तरम् । वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः ॥ ४७ ॥
अश्विनी कृत्तिका याम्या नागवीथिरिति स्मृता । पुष्योऽश्लेषा पुनर्वसू वीथिरैरावती मता ॥
तिस्रस्तु वीथयो ह्येता उत्तरे मार्ग उच्यते ॥ ४८ ॥
पूर्वोत्तरे फाल्गुन्यौ च मघा चैवार्यमी स्मृता । हस्तचित्रे तथा स्वाती गोवीथीत्यभिशब्दिता ॥ ४९ ॥
ज्येष्ठा विशाखानुराधा वीथि जारद्गवी स्मृता । एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमे मार्ग उच्यते ॥ ५० ॥
मूलं चाषाढे द्वे चापि अजवीथ्यभिशब्दिता । श्रवणं च धनिष्ठा च गार्गी शतभिषक् तथा ॥ ५१ ॥
वैश्वानरी भाद्रपदे रेवती चैव कीर्त्तिता । स्मृता वीथ्यस्तु तिस्रस्ता मार्गे वै दक्षिणे बुधैः ॥ ५२ ॥
सप्तविंशत्तु याः कन्या दक्षः सोमाय ता ददौ । सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे चैव कीर्त्तिताः ॥
तासामपत्यान्यभवन् दीप्तान्यमिततेजसा ॥ ५३ ॥

अज, अहि, बुध्न, पूषा, यमदेवता, आग्नेय, प्राजापत्य, ब्रह्म, सौम्य, आदित्य, बार्हस्पत्य, वैष्णव, सावित्र, त्वष्टा और वायव्य—ये पन्द्रह क्रम से एक रात्रिकाल में वर्तमान रहने वाले मुहूर्त हैं । चन्द्रमा की गति से इनका उदय एवं इनके अंशों का ज्ञान होता है । ये मुहूर्त समय की विशेष अवस्था के मापक मात्र हैं और ये देवता रूप में स्मरण किये गये हैं ॥ ४३-४५ ॥

सभी ग्रहों के तीन स्थान माने गये हैं । दक्षिण, उत्तर और मध्य । उन्हें क्रमानुसार इस प्रकार जानना चाहिए । १. मध्य मार्ग में जारद्रव नामक स्थान है । २. उत्तर में ऐरावत नामक स्थान है । ३. इसी प्रकार दक्षिण में वैश्वानर नामक स्थान का निर्देश किया गया है । अश्विनी, भरणी और कृत्तिका—ये तीन नागवीथी के नाम से स्मरण किये गये हैं । पुनर्वसु, पुष्य और श्लेषा—ये ऐरावती वीथी माने गये हैं । ये तीन वीथियाँ हैं, जिनका उत्तर मार्ग कहा जाता है ॥ ४६-४८ ॥

मघा एवं पूर्वफाल्गुनी की आर्यमी वीथी है । हस्त, चित्रा और स्वाती की गोवीथी कही गयी है । विशाखा, ज्येष्ठा और अनुराधा की जारद्रवी वीथी है । इन तीन वीथियों का मध्यम मार्ग कहा गया है ॥ ४९-५० ॥

मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ की अजवीथी संज्ञा दी गई है । श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा की गार्गी वीथी है । पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती की वैश्वानरी वीथी कही गयी है । इन तीन वीथियों का पण्डितों ने दक्षिण मार्ग कहा है ॥ ५१-५२ ॥

ये सत्ताईस जो दक्ष की कन्याएँ थीं उन्हें दक्ष ने चन्द्रमा को समर्पित किया । वे सभी कन्याएँ नक्षत्र नाम वाली एवं ज्योतिष शास्त्र में सुप्रसिद्धि प्राप्त करने वाली हैं । इन दक्ष कन्याओं में अमित तेजस्वी सन्ततियाँ उत्पन्न हुईं ॥ ५३ ॥

यास्तु शेषास्तदा कन्याः प्रतिजग्राह कश्यपः । चतुर्दश महाभागाः सर्वास्ता लोकमातरः ॥ ५४ ॥
अदितिर्दितिर्दनुः काला अरिष्टा सुरसा तथा । सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा ॥
कद्रुर्मुनिश्च धर्मज्ञः प्रजास्तासां निबोधत ॥ ५५ ॥
चारिष्णवेऽन्तरेऽतीते ये द्वादश पुरोगमाः । वैकुण्ठा नाम ते साध्या बभूवुश्चाक्षुषेऽन्तरे ॥ ५६ ॥
उपस्थितेऽन्तरे ह्यस्मिन् पुनर्वैवस्वतस्य ह । आराधिता ह्यदित्या ते समेत्याहुः परस्परम् ॥ ५७ ॥
एतामेव महाभागामदितिं संप्रविश्य वै । वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन् योगादर्द्धेन तेजसः ॥ ५८ ॥
गच्छामः पुत्रातामस्यास्तत्रः श्रेयो भविष्यति । अदित्यास्तु प्रसूतानामादित्यत्वं भविष्यति ॥ ५९ ॥
एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । जज्ञिरे द्वादशादित्या मारीचात् कश्यपात्पुनः ॥ ६० ॥
शतक्रतुश्च विष्णुश्च जज्ञाते पुनरेव हि । वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन् नरनारायणौ सुरौ ॥ ६१ ॥
तेषामपि हि देवानां निधनोत्पत्तिरुच्यते । यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन् उदयास्तमयावुभौ ॥
प्रजापतेश्च विष्णोश्च भवस्य च महात्मनः ॥ ६२ ॥
श्रेष्ठानुश्रविके यस्माच्छक्ताः शब्दादिलक्षणे । अष्टात्मकेऽणिमाद्ये च तस्मात्ते जज्ञिरे सुराः ॥ ६३ ॥
इत्येष विषये रागः सम्भूत्याः कारणं स्मृतम् । ब्रह्मशापेन सम्भूता जयाः स्वायम्भुवे जिताः ॥ ६४ ॥
स्वारोचिषे वै तुषिताः सत्याश्चैवोत्तमे पुनः । तामसे हरयो देवा जाताश्चारिष्णवे तु वै ॥
वैकुण्ठाश्चाक्षुषे साध्या आदित्याः साम्प्रते पुनः ॥ ६५ ॥

इन नक्षत्र संज्ञक कन्याओं के अतिरिक्त जो दक्ष की शेष परम भाग्यशालिनी चौदह कन्याएँ बच गयी थीं, उन्हें कश्यप ने अङ्गीकार किया । वे सभी लोकमाताएँ थीं । उनके नाम अदिति, दिति, दनु, काला, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि इन्हें धर्मज्ञ कश्यप ने ग्रहण किया था । इनकी सन्ततियों का विवरण सुनिये । चारिष्णव मन्वन्तर में जो पुरोगामी वैकुण्ठ नामक देवगण थे वे चाक्षुष मन्वन्तर में साध्य नाम से विख्यात हुए ॥ ५४-५६ ॥

वैवस्वत मन्वन्तर में वे देवगण अदिति द्वारा आराधित हुए । जिससे एकत्र होकर उन्होंने वैवस्वत मन्वन्तर में योगाभ्यास के बल से इन अदिति के गर्भ में अपने अर्ध तेजोबल से संयुक्त प्रविष्ट होकर पुत्र रूप में उत्पन्न होंगे । जिससे हम लोगों का कल्याण होगा । अदिति के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण हम लोग आदित्य नाम से प्रख्यात होंगे ॥ ५७-५९ ॥

इस प्रकार परस्पर परामर्श कर वे देवगण पुनः चाक्षुष मन्वन्तर में मरीचि पुत्र कश्यप के संयोग से बारह आदित्यगणों के रूप में प्रादुर्भूत हुए । शतक्रतु इन्द्र और विष्णु—ये दो देवश्रेष्ठ इस वैवस्वत मन्वन्तर में नर-नारायण के रूप में उत्पन्न हुए । इस प्रकार उन देवताओं का भी जन्म-मरण कहा जाता है । जैसे इस लोक में सूर्य का उदय और अस्त होता है उसी प्रकार प्रजापति ब्रह्मा, विष्णु एवं महात्मा शंकर का आविर्भाव एवं तिरोभाव होता है । शब्दादि प्रधान विषय समूहों में एवं अणिमा आदि अष्ट प्रकार की ऐश्वर्यमयी विभूतियों में समर्थ देवगण इसीलिए जन्म धारण करते हैं । विषयों में अनुराग रखना ही सम्भूति अर्थात् जन्म का कारण माना गया है, स्वायंभुव मन्वन्तर में ब्रह्मशाप के कारण जय नामक देवगण जित नाम से उत्पन्न हुए ॥ ६०-६४ ॥

धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा । इन्द्रो विवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशमः स्मृतः ॥ ६६ ॥
ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्योऽजघन्यजः । इत्येते द्वादशादित्याः कश्यपस्य सुताःस्मृताः ॥ ६७ ॥
सुरभी कश्यपाद्रुद्रानेकादश विजज्ञिरे । महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती ॥ ६८ ॥
अङ्गारकं तथा सर्पं निर्ऋतिं सदसस्पतिम् । अजैकपादहिर्बुध्न्यमूर्द्ध्वकेतुं ज्वरं तथा ॥ ६९ ॥
भुवनं चेश्वरं मृत्युं कपालं चैव विश्रुतम् । देवानेकादशैतांस्तु रुद्रांस्त्रिभुवनेश्वरान् ॥
तपसा तेन महता सुरभी तानजीजनत् ॥ ७० ॥
ततो दुहितरावन्ये सुरभी द्वे व्यजायत । रोहिणी चैव रुद्राभा गान्धारी च यशस्विनी ॥ ७१ ॥
रोहिण्यां जज्ञिरे कन्याश्चतस्रो लोकविश्रुताः । सुरूपा हंसकीला च भद्रा कामदुघा तथा ॥
सुषुवे कामदुघा तु सुरूपा तनयद्वयम् ॥ ७२ ॥
हंसकीला नृपमृषीन् भद्रायास्तु व्यजायत । विश्रुतास्तु महाभागा गन्धर्वा वाजिनः सुताः ॥ ७३ ॥
उच्चैःश्रवास्तदा जाताः खेचरास्ते मनोजवाः । श्वेताः श्येनाः पिशङ्गाश्च सारङ्गा हरितार्जुनाः ॥
रुद्रा देवोपबाह्यास्ते गन्धर्वयोनयो हयाः ॥ ७४ ॥
भूयो जज्ञे सुरभ्यास्तु श्रीमान् चन्द्राभसुप्रभः । स्रग्वी ककुद्मी द्युतिमानमृतालयसम्भवः ॥
सुरभ्यनुमते दत्तो ध्वजो माहेश्वरस्तु सः ॥ ७५ ॥

वे ही स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषित और उत्तम मन्वन्तर में सत्य नाम से आविर्भूत हुए । तामस मन्वन्तर में हरि गणों के नाम से तथा चारिष्णव मन्वन्तर में वैकुण्ठ नाम से उनकी प्रसिद्धि हुई । चाक्षुष मन्वन्तर में उनकी ख्याति साध्य नाम से तथा इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में आदित्य नाम से हुई । धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा और सबसे छोटे विष्णु । इनमें विष्णु सबसे छोटे होते हुए भी सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं । बारह आदित्यगण कश्यप के पुत्र कहे गये हैं ॥ ६५-६७ ॥

सती सुरभी ने अपनी परमतपस्या द्वारा महादेव को प्रसन्नकर कश्यप के संयोग से ग्यारह रुद्रों को उत्पन्न किया । उनके नाम अङ्गारक, सर्प, निर्ऋति, सदसस्पति, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, ऊर्ध्वकेतु, ज्वर, भुवन, ईश्वर मृत्यु और कपाल हैं । त्रिभुवन में परम ऐश्वर्यशाली इन एकादश रुद्रों को अपनी कठोर तपस्या द्वारा सुरभी ने उत्पन्न किया । इन सन्ततियों के अतिरिक्त दो कन्याओं को भी सुरभी ने उत्पन्न किया । इनमें से एक रुद्र के समान कान्तिमती रोहिणी थी और दूसरी परम यशस्विनी गान्धारी थी । रोहिणी से लोक में विख्यात चार कन्याएँ उत्पन्न हुईं, जिनके नाम सुरूपा, हंसकीला, भद्रा तथा कामदुघा थे । तिनमें सुरूपा और कामदुधा ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया ॥ ६८-७२ ॥

हंसकीला ने कुछ मनुष्यों और महिष आदि को उत्पन्न किया, भद्रा के गर्भ से महाभाग्यशाली सुविख्यात अश्वों के पुत्र गन्धर्व उत्पन्न हुए । जो मन के समान द्रुतगामी, आकाश में भी चलनेवाले उच्चैःश्रवा के समान श्वेत, शोण, पिशङ्ग, सारंग, हरित, अर्जुन एवं रुद्र वर्ण के थे । इन हयों का गन्धर्व योनि में जन्म हुआ और इन्होंने देवताओं के वाहन का कार्य सम्पन्न किया ॥ ७३-७४ ॥

तदनन्तर सुरभी के गर्भ से श्रीमान् चन्द्रमा की कान्ति जैसा एक वृषभ उत्पन्न हुआ, जो सुन्दर माला से

इत्येते कश्यपसुता रुद्रादित्याः प्रकीर्त्तिताः । धर्मपुत्राः स्मृताः साध्या विश्वे च वसवस्तथा ॥ ७६ ॥
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश । बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ॥
प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः ॥ ७७ ॥
कृशाश्वस्य तु देवर्षेर्देवप्रहरणाः स्मृताः । एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ॥ ७८ ॥
सर्वे देवगणा विप्रास्त्रयस्त्रिंशत्तु छन्दजाः । एतेषामपि देवानां निरोधोत्पत्तिरुच्यते ॥ ७९ ॥
यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन् उदयास्तमयावुभौ । एते देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे ॥ ८० ॥

ऋषय ऊचुः

साध्याश्च वसवो विश्वे रुद्रादित्यास्तथैव च । आभिजात्या प्रभावैश्च कर्मभिश्चैव विश्रुताः ॥ ८१ ॥
प्रजापतेश्च विष्णोश्च भवस्य च महात्मनः । अन्तरं ज्ञातुमिच्छामो यश्च यस्माद्विशिष्यते ॥ ८२ ॥
यश्च यस्मात् प्रभवति यश्च यस्मिन् प्रतिष्ठितः । ज्यायान्यो मध्यमश्चैव कनीयान् यश्च तेषु वै ॥ ८३ ॥
प्रधानभूतो यस्तेषां गुणभूतश्च तेषु यः । कर्मभिश्चाभिजात्या च प्रभावेण च यो महान् ॥
एतत् प्रब्रूहि नः सर्वं त्वं हि वेत्थ यथायथम् ॥ ८४ ॥

सूत उवाच

अत्र वो वर्णयिष्येहमन्तरं तेषु यत् स्मृतम् । यद्ब्रह्मविष्णुरुद्राणां शृणुध्वं मे विवक्षतः ॥ ८५ ॥

सुशोभित, बहुत बड़े सींगों वाला, परम कान्तिमान् था । अमृत के आगार से समुत्पन्न वह वृषभ सुरभी की अनुमति से महादेव के वाहन पद पर प्रतिष्ठित हुए ॥ ७५ ॥

कश्यप के पुत्रों का वर्णन किया जा चुका तथा आदित्य और रुद्रगणों का भी परिचय दिया जा चुका । ये साध्यगण, विश्वेदेवगण तथा वसुगण सभी धर्म के पुत्र कहे गये हैं । अरिष्टनेमि की स्त्रियों की सोलह संततियाँ उत्पन्न हुईं । विद्वान् बहुपुत्र की चार सन्ततियाँ हुईं जो विद्युत् नाम से स्मरण की जाती हैं । ब्रह्मर्षियों द्वारा सत्कार पानेवाली श्रेष्ठ ऋचाएँ प्रत्यंगिरस से उत्पन्न हैं । देवर्षि कृशाश्व के पुत्रगण देवप्रहरण के नाम से स्मरण किये गये हैं । वे प्रति एक सहस्र युग के व्यतीत होने पर पुनः उत्पन्न होते हैं ॥ ७७-७९ ॥

हे विप्रवृन्द ! ये तैंतीस गणों में विभक्त देवगण छन्दोजात माने गये हैं । इन देवताओं की भी उत्पत्ति एवं विनाश कहा जाता है । जिस प्रकार लोक में प्रतिदिन सूर्य का उदय एवं अस्त होता है उसी प्रकार ये देवगण भी प्रत्येक युगों में उत्पन्न होते हैं ॥ ८०-८१ ॥

ऋषियों ने कहा—साध्य, वसु, विश्व, रुद्र और आदित्य इत्यादि सभी देवगण किस प्रभाव एवं कर्म के द्वारा सत्कुलीन तथा विख्यात हुए । महान् प्रभावशाली भगवान् ब्रह्मा, विष्णु और भवदेव में परस्पर क्या अन्तर है । हम सब यह जानना चाहते हैं कि इनमें कौन किस कारणवश विशेष माना जाता है? इनमें जो जिससे आविर्भूत होता हो, जो जिसमें प्रतिष्ठित हो, उसे हम जानना चाहते हैं । इन तीनों में जो सर्वश्रेष्ठ हो, जो मध्यम हो तथा जो कनिष्ठ हो, हमें बताइये । इनमें जो सर्वप्रधान हो, जो सर्वश्रेष्ठ गुणी हो, कर्म एवं प्रभाव के कारण जो सबसे अधिक आभिजात्य एवं महान् हो, इन सबका हमलोगों को भेद बतलाइये क्योंकि इन सब बातों को आप ही यथार्थतः जानते हैं ॥ ८२-८५ ॥

राजसी तामसी चैव सात्त्विकी चैव ताः स्मृताः । तन्वः स्वयम्भुवः प्रोक्ताः काले काले भवन्ति याः ॥८६॥
एतासामन्तरं वक्तुं नैव शक्यं द्विजोत्तमाः । गुणवृद्धिनिबद्धत्वाद्द्विधानुग्रहबन्धतः ॥ ८७ ॥
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च गुणवृद्धिमिह द्विजाः । यथाशक्ति प्रवक्ष्यामि तनूनां तन्निबोधत ॥ ८८ ॥
एका तु कुरुते तासां राजसी सर्वतः प्रजाः। एका चैवार्णवस्था तु सानुगृह्णाति सात्त्विकी ॥
एका सा क्षिपते काले तामसी ग्रसते प्रजाः ॥ ८९ ॥
रजसा तु समुद्रिक्तो ब्रह्मा सम्भवते यदा । पुरुषाख्या तदा तस्य सात्त्विकी विनिवर्त्तते ॥ ९० ॥
यदा भवति कालात्मा उद्रेकात्तमसस्तु सः । ब्रह्माख्या सा तदा त्वस्य राजसी विनिवर्त्तते ॥ ९१ ॥
सत्वोद्रेकात्तु पुरुषो यदा भवति स प्रभुः । कालाख्या सा तदा तस्य पुनर्न भवतीति वै ॥ ९२ ॥
क्रमात्तस्य निवर्त्तन्ते रूपं नाम च कर्म च । त्रैलोक्ये वर्त्तमानस्य सर्वानुग्रहनिग्रहैः ॥ ९३ ॥
यदा भवति ब्रह्मा च तदा चान्तरमुच्यते । यदा च पुरुषो ब्रह्मा न चैव पुरुषस्तु सः ॥ ९४ ॥
मणिर्विभजते वर्णान् विचित्रान् स्फटिके यथा । वैमल्यादाश्रयवशात्तद्वर्णः स्यात्तदञ्जनः ॥ ९५ ॥
तदा गुणवशात्तस्य स्वयम्भोरनुरञ्जनम् । एकत्वे च पृथक्त्वे च प्रोक्तमेतन्निदर्शनम् ॥ ९६ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! उन ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र में परस्पर जो अन्तर माना गया है, उसे मैं आप लोगों से बतला रहा हूँ, सुनिये । राजस गुणमयी, तामस गुणमयी एवं सात्त्विक गुणमयी ये तीन स्वयंभू की मूर्तियाँ कही गयी हैं जो समय-समय पर आविर्भूत होती हैं । हे द्विजोत्तम वृन्द ! इनके पारस्परिक अन्तर नहीं बतलाये जा सकते क्योंकि इनमें पारस्परिक इन तीनों गुणों का ह्रास एवं वृद्धि के कारण विग्रह और अनुग्रह ये दो प्रकार के बन्धन रहते हैं । हे द्विजगण ! वे बन्धन क्रमशः निवृत्ति और प्रवृत्ति के हैं । मैं अपनी शक्ति के अनुसार उन मूर्तियों की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति का वर्णन कर रहा हूँ, आप सब सुनिये ॥ ८६-८८ ॥

उन त्रिमूर्तियों में एक पहली जो मूर्ति है वह रजोगुण सम्पन्न होकर प्रजाओं को उत्पन्न करती है, दूसरी एक सत्त्वगुण सम्पन्न जो पौरुषी (विष्णु की) मूर्ति है वह समुद्र में स्थिर रहकर सभी प्रजाओं के ऊपर अनुग्रह बुद्धि से पालन करती है, एक तीसरी जो तमोगुण सम्पन्न मूर्ति है वह उस समय उपस्थित होने पर सभी प्रजाओं को विनष्ट करती है ॥ ८९ ॥

जिस समय रजोगुण के उद्रेक से संयुक्त होकर ब्रह्मा की मूर्ति आविर्भूत होती है उस समय सत्त्वगुणमयी पुरुष की मूर्ति तिरोहित हो जाती है । इसी प्रकार जिस समय तमोगुण के आधिक्य से संयुक्त होकर काल की मूर्ति प्रकट होती है उस समय रजोगुण सम्पन्न ब्रह्मा की मूर्ति निवर्तित हो जाती है ॥ ९०-९१ ॥

एवं सत्त्वगुण के उद्रेक से जिस समय भगवान् की पुरुष मूर्ति प्रकट होती है उस समय उनकी काल संज्ञक मूर्ति आविर्भूत नहीं होती । इस प्रकार इस त्रैलोक्य में वर्तमान उन भगवान् के नाम कर्म एवं रूप क्रमशः सृष्टि के अनुग्रह (पालन) एवं निग्रह (संहार) के बन्धनों के कारण निवर्तित होते रहते हैं । जिस समय ब्रह्मा की सत्ता रहती है उस समय पुरुषमूर्ति होती है ॥ ९२-९४ ॥

निर्मल स्फटिक मणि में जिस प्रकार आश्रय भेद एवं निर्मलता के कारण विविध प्रकार के रंग अनुरंजित होकर रक्त पीतादि विविध रूपों में लक्षित होते हैं, उसी प्रकार भगवान् स्वयं सत्त्व, रज एवं तमोगुण के कारण

एको भूत्वा यथा मेघः पृथक्त्वेनावतिष्ठते । रूपतो वर्णतश्चैव तथा गुणावशात्तु सः ॥ ९७ ॥
भवत्येको द्विधा चैव त्रिधा मूर्तिविनाशनात् । एको ब्रह्मान्तकृच्चैव पुरुषश्चेति ते त्रयः ॥ ९८ ॥
एकस्यैताः स्मृतास्तिस्रस्तनवस्तु स्वयम्भुवः । ब्राह्मी च पौरुषी चैव अन्तकारी च ते त्रयः ॥ ९९ ॥
तत्र या राजसी तस्य तनुः सा वै प्रजाकरी । या तामसी तु कालाख्या प्रजाक्षयकरी तु सा ॥
सात्त्विकी पौरुषी या तु सानुग्रहकरी स्मृता ॥ १०० ॥
राजस्या ब्रह्मणोंऽशेन मरीचिः कश्यपोऽभवत् । तामसी चान्तकृद्या तु तदंशेनाभवद्भवः ॥ १०१ ॥
सात्त्विकी पौरुषी या सा तस्याः शोचिष्णुरुच्यते । त्रैलोक्ये ताः स्मृतास्तिस्रस्तनवस्तु स्वयम्भुवः ॥ १०२॥
नानाप्रयोजनार्थां हि कालोऽवस्थां करोति यः। ब्रह्मत्वेन प्रजाः सृष्ट्वा विष्णुत्वेनानुगृह्य च ॥
वैष्णव्यानुगृहीतास्ता रौद्र्यानुग्रसते पुनः ॥ १०३ ॥
एकः स्वयम्भुवः कालस्त्रिभिस्त्रीन् वै करोति सः। सृजते चानुगृहणाति प्रजाः संहरते तथा ॥ १०४ ॥
इत्येताः कथितास्तिस्रस्तनवस्तु स्वयम्भुवः। प्रजापत्या च रौद्री च वैष्णवी चैव ताः स्मृताः ॥ १०५ ॥
एका तनुः स्मृता वेदे धर्मशास्त्रे पुरातने । सांख्ययोगपरे वीरैः पृथक्त्वैकत्वदर्शिभिः ॥
अभिजातप्रभावज्ञैर्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १०६ ॥

विष्णु, ब्रह्मा एवं रुद्र में प्रकट होते हैं । उनके एक रूप एवं भिन्न-भिन्न रूप होने के सम्बन्ध में मैं यह निदर्शन (उदाहरण) बतला रहा हूँ ॥ ९५-९६ ॥

जिस प्रकार एक ही मेघ रूप एवं वर्ण की विभिन्नता के कारण पृथक्-पृथक् दिखायी पड़ता है उसी प्रकार उन सत्व, रजस् एवं तमोगुणों के कारण वह स्वयंभू एक होकर भी अलग-अलग रूपों में दिखायी पड़ता है । वह एक ही स्वयंभू ब्रह्मा, पुरुष व काल रूपी इन तीन आकारों में व्याप्त है । उस एक स्वयंभू की ही ये तीन मूर्तियाँ हैं, जिनमें एक ब्राह्मी, दूसरी पौरुषी और तीसरी काल की मूर्ति है । इन तीनों मूर्तियों में रजोगुण सम्पन्न मूर्ति प्रजाओं को उत्पन्न करने वाली है, तमोगुणी मूर्ति जो कालमूर्ति के नाम से विख्यात है, वह प्रजाओं का विनाश करती है । तीसरी सत्त्वगुणमयी पौरुषीमूर्ति प्रजाओं का पालन करने वाली कही गयी है ॥ ९७-१०० ॥

उस रजोगुणमयी मूर्ति से ब्रह्मा के अंश द्वारा मरीचि और कश्यप की उत्पत्ति हुई । सृष्टि का विनाश करनेवाली जो तमोगुणमयी मूर्ति है उससे भव (रुद्र) की उत्पत्ति हुई, सत्त्वगुणमयी जो पौरुषी मूर्ति है उससे विष्णु का आविर्भाव कहा जाता है । इस प्रकार त्रैलोक्य में स्वयंभू की ये तीन मूर्तियाँ स्मरण की गयी हैं । ये मूर्तियाँ समय के अनुरूप प्रजावर्ग के विविध प्रयोजनों को सम्पन्न करने वाली हैं, सर्वप्रथम ब्रह्मबल का आश्रय ले समस्त प्रजाओं की सृष्टिकर विष्णु के अंश का आश्रय ग्रहणकर विधिवत् पालनकर, रुद्र के अंश से पुनः उनका विनाश करती है । कालस्वरूप एकमात्र स्वयंभू ही अपनी इन तीनों मूर्तियों के द्वारा तीनों कार्यों को सम्पन्न करते हैं, अर्थात् प्रजाओं की सृष्टि करते हैं, उनका पालन करते हैं एवं विनाश भी करते हैं ॥ १०१-१०४ ॥

स्वयंभू की उन तीनों मूर्तियों का वर्णन किया जा चुका जो ब्राह्मी, वैष्णवी तथा रौद्री के नाम से विख्यात हैं । सांख्य एवं योग के अभ्यास करनेवाले, स्वयंभू के पृथक्त्व एवं एकत्व के देखनेवाले, उनकी प्रतिष्ठा एवं मर्यादा के प्रभाव को जाननेवाले तत्वदर्शी ऋषियों ने स्वयंभू वेदों में तथा प्राचीन धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में निरूपित की है ।

एकत्वे च पृथक्त्वे च तासु भिन्नाः प्रजास्त्विह । इदं परमिदं नेति ब्रुवतो भिन्नदर्शनाः ॥ १०७ ॥
ब्रह्माणं कारणं केचित् केचित् प्राहुः प्रजापतिम् । केचिच्छिवं परत्वेन प्राहुर्विष्णुं तथाऽपरे ॥
अविज्ञानेन संसक्ताः सक्ता रत्यादिचेतसा ॥ १०८ ॥
तत्त्वं कालं च देशं च कार्याण्यावेक्ष्य तत्त्वतः। कारणं च स्मृता ह्येता नानार्थेष्विह देवताः॥ १०९॥
एकं निन्दति यस्तेषां सर्वानेव स निन्दति । एकं प्रशंसमानस्तु सर्वानेव प्रशंसति ॥
एकं यो वेत्ति पुरुषं तमाहुर्ब्रह्मवादिनम् ॥ ११० ॥
अद्वेषस्तु सदा कार्यो देवतासु विजानता । न शक्यमीश्वरं ज्ञातुमैश्वर्येण व्यवस्थितम् ॥ १११ ॥
एकात्मा स त्रिधा भूत्वा सम्मोहयति यः प्रजाः। एतेषां च त्रयाणां तु विचरन्त्यन्तरं जनाः ॥ ११२ ॥
जिज्ञासन्तः परीक्षन्तः सक्ता रूपाविचेतसः । इदं परमिदं नेति वदन्ति भिन्नदर्शिनः ॥ ११३ ॥
यातुधानान् विशन्त्येताः पिशाचांश्चैव तान्नरान् । एकत्वेन पृथक्त्वेन स्वयम्भूर्व्यवतिष्ठते ॥ ११४ ॥
गुणमात्रात्मिकाभिस्तु तनुभिर्मोहयन् प्रजाः । तेष्वेकं यजते यस्तु स तदा यजते त्रयम् ॥ ११५ ॥
तस्माद्देवास्त्रयो ह्येते नैरन्तर्ये व्यवस्थिताः । तस्मात् पृथक्त्वमेकत्वसंख्या संख्यागतागतम् ॥
एकत्वं वा बहुत्वं वा तेषु को ज्ञातुमर्हति ॥ ११६ ॥

स्वयंभू के इस एकत्व एवं पृथक्त्व को लेकर प्रजाओं में भिन्न भिन्न मत हैं, वे भिन्न-भिन्न मत रखने वाले यह सर्वश्रेष्ठ है और यह नहीं—इस प्रकार का निःसार मत रखते हैं ॥ १०५-१०७ ॥

इनमें से कोई तो प्रजापति ब्रह्मा को आदि कारण मानते हैं, कोई शिव को श्रेष्ठ मानते हैं, कोई विष्णु को मानते हैं । वे सभी अवैज्ञानिक एवं राग-द्वेषादि दुर्गुणों में अनुरक्त होने के कारण ऐसा मानते हैं । जगत् के नाना कार्यों में देश, काल एवं कर्म कारणस्वरूप वे स्वयंभू ही विविध देवताओं के रूप में स्मरण किये जाते हैं। इसलिए उन तीनों महान विभूतियों में किसी एक की जो प्रशंसा करता है वह सबकी प्रशंसा करता है । एक की उनमें जो निन्दा करता है वह सबकी निन्दा करता है । इस तरह की भावना रखकर जो उन तीनों मूर्तियों को एक रूप में मानता है वही ब्रह्मवादी कहा गया है ॥ १०८-११० ॥

इसलिए विद्वान् पुरुष को जो देवताओं को जानता है उसे देवताओं में द्वेष की भावना नहीं रखना चाहिए। उस परम ऐश्वर्य समन्वित ईश्वर को कोई अच्छी तरह जानने में समर्थ नहीं हो सकता, वस्तुतः वह एकात्म होकर तीनों रूपों में विभक्त होकर प्रजाओं को सम्मोहित करता है । इन तीनों स्वरूपों के ऊँच-नीच के भाव की जिज्ञासा करते हुए अल्पज्ञ जन यथाशक्ति परीक्षा करते हैं और भिन्न-भिन्न ज्ञान एवं दर्शन के कारण यह प्रधान है और यह अप्रधान है—इस प्रकार की बातें करते हैं ॥ १११-११३ ॥

किन्तु ये शक्तियाँ मनुष्य, राक्षस, पिशाचादि सभी में एक सी प्रविष्ट होती है, और इस प्रकार स्वयंभू एक रूप और भिन्न-भिन्न रूपों में प्रतिष्ठित होता है । सत्व, रजस एवं तमोगुणों में से एक-एक गुणवाली अपनी तीनों मूर्तियों द्वारा प्रजाओं को सम्मोहित करता है । उन तीनों में से जो एक की पूजा करता है वह तीनों की पूजा करता है । इस कारण से इन तीनों देवताओं में वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है और न इनमें एकत्व एवं पृथक् आदि का भी तारतम्य है । इस प्रकार उनके एक होने का अथवा अनेक होने का भेद कौन जान सकता है ॥११४-११६॥

यस्मात् सृष्ट्वानुगृह्णीते ग्रसते चैव ते प्रजाः। गुणात्मकत्वात्त्रैकाल्ये तस्मादेकः स उच्यते ॥ ११७ ॥
रुद्रं ब्रह्माणमिन्द्रं च लोकपालान् ऋषीन् दनून् । देवं तमेकं बहुधा प्राहुर्नारायणं द्विजाः ॥ ११८ ॥
प्राजापत्या तनुर्या च तनुर्या चैव वैष्णवी । मन्वन्तरे च कल्पे च आवर्त्तन्ते पुनः पुनः ॥ ११९ ॥
तेजसा यशसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च । जायन्ते तत्समाश्चैव तानपीह निबोधत ॥ १२० ॥
राजस्या ब्रह्मणोंऽशेन मरीचिः कश्यपोऽभवत् । तामस्यास्तस्य चांशेन कालात्मा रुद्र उच्यते ॥
सात्त्विक्याः पुरुषांशेन यज्ञे विष्णुरभूत्तदा ॥ १२१ ॥
त्रिषु कालेषु तस्यैता ब्रह्मणस्तवोंऽशजाः । कालो भूत्वा पुनश्चासौ रुद्रः संहरते प्रजाः ॥ १२२ ॥
सम्प्राप्ते चैव कल्पान्ते सप्तरश्मिर्दिवाकरः। भूत्वा संवर्त्तकादित्यो लोकांस्त्रीन् स तदादहत्॥ १२३ ॥
विष्णुः प्रजानुगृह्णाति नामरूपविपर्ययैः । तस्यां तस्यामवस्थायां तत्तदुत्पात्तिकारणम् ॥ १२४ ॥
सत्त्वोद्रिक्ता तु या प्रोक्ता ब्रह्मणः पौरुषी तनुः । तस्यांशेन विजज्ञे स इह स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥
आकूत्यां मनसो देव उत्पन्नः प्रथमे विभुः ॥ १२५ ॥
ततः पुनः स वै देवो प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे । तुषितायां समुत्पन्नो ह्यतीतस्तुषितैः सह ॥ १२६ ॥
औत्तमे चान्तरे चैव तुषितस्तु विदुः स वै । वशवर्त्तिभिरुत्पन्नो वशवर्त्ती हरिः पुनः ॥ १२७ ॥

यत: तीनों कालों में गुण भेद के वश होकर वे सभी प्रजाओं की सृष्टि कर उनका पालन करते हैं, और स्वयमेव संहार भी करते हैं अत: एक ही कहे जाते हैं । (अर्थात् वे स्वयंभू हीं एक बार रजोगुणमय होकर प्रजाओं की सृष्टि करते हैं, सत्त्वगुण सम्पन्न होकर पालन करते हैं और तमोगुणमय सम्पन्न होकर संहार करते हैं, कोई दूसरा यह सब नहीं करता अत: एक कहे जाते हैं ।) हे द्विजगण ! एक आदि देव को ही रुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, लोकपालगण, ऋषि, दानव एवं नारायण आदि अनेक नामों से पुकारते हैं । उसकी प्रजापति की और विष्णु की मूर्ति प्रत्येक मन्वन्तर एवं प्रत्येक कल्प में पुन: पुन: आवर्तित होती है । अपने तेज, यश, बुद्धि, शास्त्रज्ञान एवं पराक्रमादि गुणों से सम्पन्न होकर अपने तुल्य विविध प्रजाओं के रूप में उत्पन्न होते हैं । ऐसे जो लोग उत्पन्न होतें हैं उन्हें भी आप सुनिये ॥ ११७-१२० ॥

राजसी मूर्ति में ब्रह्मा के अंश से मरीचि और कश्यप की उत्पत्ति हुई । तमोगुणमयी तामसी मूर्ति में उसी ब्रह्मा के अंश से कालात्मा रुद्र की उत्पत्ति कही जाती है । सत्त्वगुणमयी सात्त्विकी मूर्ति में पुरुष के अंश से यज्ञ में विष्णु की उत्पत्ति हुई । तीनों कालों में उस ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न होनेवाली ये तीन मूर्तियाँ हैं । काल होकर पुन: वे ही रुद्र स्वरूप में प्रजाओं का संहार करते हैं । कल्पान्त के अवसर पर वह सप्तरश्मि दिवाकर की मूर्ति धारण कर संवर्तक नामक आदित्य होकर तीनों लोकों को भस्म करते हैं ॥ १२१-१२३ ॥

विष्णु समय-समय पर विविध नाम एवं स्वरूप धारणकर उन-उन कारणों को उत्पन्न कर प्रजावर्ग के प्रति अनुग्रह का भाव रखते हैं । सत्त्वगुणमयी जो ब्रह्मा की पौरुषी मूर्ति कही गयी है, उसके अंश से इस स्वायम्भुव मन्वन्तर में वे विभु सर्वप्रथम आकृति के गर्भ द्वारा मानसिक संकल्प से उत्पन्न हुए ॥ १२४-१२५ ॥

तदनन्तर पुन: वे अजित देव स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषित देवगणों के साथ तुषिता के गर्भ से उत्पन्न हुए । औत्तम मन्वन्तर में वे तुषित नाम से जाने गये हैं । वशवर्ती देवताओं के साथ उत्पन्न होकर वे हरि वशवर्ती रूप

सत्यायामभवत्सत्यः सत्यैः सह सुरोत्तमैः । तामसस्यान्तरे चापि सम्प्राप्ते पुनरेव हि ॥
भार्यायां हरिभिः सार्द्धं हरिरेव बभूव हि ॥ १२८ ॥
चारिष्णवेऽन्तरे चापि हरिर्देवः पुनस्तु सः । वैकुण्ठायामसौ जज्ञे ह्याभूतरजसैः सह ॥
वैकुण्ठः स पुनर्द्देवः सम्प्राप्ते चाक्षुषेऽन्तरे ॥ १२९ ॥
धर्मो नारायणः साध्यः साध्यैः सह सुरैरभूत् । स तु नारायणः साध्यः प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे ॥ १३० ॥
मारीचात् कश्यपाद्विष्णुरदित्यां सम्बभूव ह । त्रिस्त्रिः क्रमैरिमान् लोकान् जित्वा विष्णुरुरुक्रमम् ॥ १३१ ॥
प्रत्यपादयदिन्द्राय देवेभ्यश्चैव स प्रभुः । इत्येतास्तनवस्तस्य व्यतीताः सप्त सप्तसु ॥
मन्वन्तरेष्वतीतेषु याभिः संरक्षिताः प्रजाः ॥ १३२ ॥
यस्माद्विष्टमिदं सर्वं वामनेनेह जायता । तस्मात्स वै स्मृतो विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात् ॥ १३३ ॥
इत्येते ब्रह्मणश्चैव वामनस्य महात्मनः । एकत्वं च पृथक्त्वं च विशिष्टत्वं च कीर्त्तितम् ॥ १३४ ॥
देवतानामिहांशेन जायन्ते यास्तु देवताः । तासां तास्तेजसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च ॥
जायन्ते तत्समाश्चैव ता वै तेषामनुग्रहात् ॥ १३५ ॥
यद्यद्विभूतिमतत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवावगच्छध्वं विष्णोस्तेजोंऽशसम्भवम् ॥ १३६ ॥
स एवं जायतेंऽशेन केचिदिच्छन्ति मानवाः । ततोऽपरे ब्रुवन्तीममन्योन्यांशेन जायते ॥ १३७ ॥

से प्रसिद्ध होते हैं । पुनः वे सत्या के गर्भ से सत्य नामक देवगणों के साथ सत्य नाम से उत्पन्न होते हैं, तामस मन्वन्तर के आने पर वे हरि पुनः हर्य्या के गर्भ से हरि नामक देवगणों के साथ हरि रूप में ही आविर्भूत होते हैं ॥ १२६-१२८ ॥

चारिष्णव मन्वन्तर के आने पर वे अजन्मा हरिदेव पुनः विकुण्ठा के गर्भ से आभूतरजस् नामक देवगणों के साथ वैकुण्ठ नाम से उत्पन्न होते हैं । चाक्षुष मन्वन्तर के आने पर वे धर्म रूप नारायण देव साध्य देवगणों के साथ साध्यरूप में उत्पन्न होते हैं । वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर वे साध्य नारायण भगवान् मरीचिपुत्र कश्यप के संयोग से अदिति के गर्भ द्वारा (वामन रूप में) उत्पन्न होते हैं और अपने केवल तीन पगों द्वारा उन्होंने समस्त लोकों को जीतकर समस्त देवताओं के साथ इन्द्र को अर्पित किया । व्यतीत हुए सात मन्वन्तरों में उस स्वयंभू की वे सात मूर्तियाँ आविर्भूत हुई, जिनके द्वारा प्रजावर्ग की रक्षा हुई ॥ १२९-१३२ ॥

चूँकि उत्पन्न होकर वामन अपने शरीर द्वारा इस समस्त जगत् में विष्ट (प्रविष्ट) हो गये थे अतः प्रवेश अर्थवाले विश् धातु के अर्थ के अनुरूप वे विष्णु नाम से स्मरण किये जाते हैं । स्वयंभू भगवान् ब्रह्मा, महात्मा वामन एवं उनके एकत्व,. पृथकत्व और विशिष्ट का वर्णन इस प्रकार किया जा चुका । इस पृथ्वीलोक में जिन-जिन देवता आदि के अंशों से जो-जो देवता उत्पन्न होते हैं । वे अनुग्रहवश तेज, बुद्धि, शास्त्रज्ञान एवं बल में समान होकर उत्पन्न होते हैं ॥ १३३-१३५ ॥

इस जगत् में जो-जो ऐश्वर्यशाली, श्रीमान् अथवा प्रभावशाली जीव या पदार्थ दिखायी पड़ते हैं उन सबको भगवान् विष्णु के तेज एवं अंश से प्रादुर्भूत हुआ समझना चाहिए । वही अपने अंश रूप में इस प्रकार उत्पन्न होते हैं । कुछ मनुष्य ऐसी इच्छा करते हैं । कुछ अन्य प्रकार के लोग हैं जो कहते हैं कि अन्य-अन्य अंशों से

एवं विवदमानास्ते दृष्ट्वा तान्वै ब्रुवन्ति ह । यस्मान्न विद्यते भेदो मनसश्चेतसश्च ह ॥
तस्मादनुग्रहास्तेषां क्षेत्रज्ञास्ते भवन्त्युत ॥ १३८ ॥
एकस्तु प्रभुशक्त्या वै बहुधा भवतीश्वरः । भूत्वा यस्माच्च बहुधा भवत्येकः पुनस्तु सः ॥ १३९ ॥
तस्मात्सुमनसो भेदाज्जायन्ते तेजसश्च ह । मन्वन्तरेषु सर्वेषु प्रजाः स्थावरजङ्गमाः ॥
सर्गादौ सकृदुत्पन्नास्तिष्ठन्तीह प्रशंसया ॥ १४० ॥
प्राप्ते प्राप्ते तु कल्पान्ते रुद्रः संहरति प्रजाः । जायन्ते मोहयन्तोऽन्यानीश्वरा योगमायया ॥ १४१ ॥
ऐश्वर्येण चरन्तस्ते मोहयन्ति ह्यनीश्वराः । तस्माद्दोषप्रचारेषु युक्तायुक्तं न विद्यते ॥ १४२ ॥
भूतापवादिनो दुष्टा मध्यस्था भूतभाविनः । भूतापवादिनः शक्तास्त्रयो वेदाः प्रवादिनाम् ॥ १४३ ॥
दृढपूर्वश्रुतत्वाच्च प्रवादाच्चैव लौकिकात् । चतुर्भिः कारणैरेभिर्यथातत्त्वं न विन्दति ॥ १४४ ॥
पूर्वमर्थान्तरे न्यस्ताः कालान्तरगता अपि । तेनान्यत् सन्तमप्यर्थं द्वेषान्न प्रतिपद्यते ॥ १४५ ॥
दशानां द्रव्यभूतो यो गुणभूतस्तु तेषु यः। कर्मणां मनसां कर्त्ता अभिजात्या च यो महान् ॥
श्रुतज्ञैः कारणैरेतैश्चतुर्भिः परिकीर्त्यते ॥ १४६ ॥

वह उत्पन्न होते हैं । उन उत्पन्न होने वालों को देखकर इस प्रकार लोग मीमांसा करते हैं । यतः मन और चित्त में कोई भेद नहीं है अतः वह सब उत्पत्ति कार्य उसी के अनुग्रह से सम्पन्न होता है ऐसा जो लोग समझते हैं वे क्षेत्रज्ञ होते हैं ॥ १३६-१३८ ॥

एक ही ईश्वर अपनी महामहिमामयी प्रभु शक्ति से अनेक रूपों में हो जाता है और अनेक रूपों में होकर भी पुनः वह एक हो जाता है । इसलिए उसी आदि देव स्वयंभू के तेज के भेद से सभी मन्वन्तरों में अच्छे मनवाली स्थावर जंगम आदि सभी प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं, और सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होकर महाप्रलय पर्यन्त अपनी सत्ता रखती है । प्रत्येक बार कल्पांत के आने पर रुद्र प्रजाओं का संहार करते हैं । ऐश्वर्यशाली क्षेत्रगण योगमाया से अन्य सर्वसामान्य जनों को मोहित करते हुए उत्पन्न होते हैं और अपने ऐश्वर्य के साथ विचरण करते हैं, उनके सामने ऐश्वर्यविहीन प्राणी मोहित होते हैं । इस कारण उन ऐश्वर्यशालियों के दोषयुक्त व्यवहार में युक्त अयुक्त का विचार नहीं रखा जाता ॥ १३९-१४२ ॥

१. भूतों (?) के अपवाद करनेवाले दुष्ट, २. भूतों को अपने अनुकूल बनाने वाले मध्यस्थ, ३. भूतों का विरोध करने वाले समर्थ—यह तीन प्रवाद जनों की श्रेणियाँ हैं । ४. पहले सुने हुए अशुद्ध अर्थ पर ही विश्वास रखकर दृढ़ निश्चय कर लेता है, अथवा लौकिक प्रवाद पर विश्वास रखता है—इन चार कारणों से यथार्थ तत्त्व को प्राप्त नहीं करता । पहले किसी दूसरे अर्थ में न्यस्त था, कालान्तर में उसकी प्रसिद्धि किसी अन्य अर्थ में हो गयी, उस नवीन अर्थ के रहने पर भी द्वेष बुद्धि से उसे ग्रहण नहीं करता (?) । जो दस प्रकार के द्रव्यों में तद्रूप विद्यमान रहता है, और उन-उन द्रव्यों में आश्रित गुण समूहों में गुणभूत है, महदादि कार्य-कलापों का कर्त्ता है, जो सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोपरि है वही ईश्वर है । श्रुतियों के तत्त्वों को जानने वाले इन उपर्युक्त चार कारणों द्वारा उस ईश्वरत्व का कीर्तन करते हैं ॥ १४३-१४५ ॥

असमर्थ एवं रुष्ट मनुष्य देवताओं को यथार्थतः विभागों समेत जानते हैं, योगेश्वर के प्रति लोग इन दो

अशक्तरुष्टो जानाति देवताः प्रविभागशः । इमौ चोदाहरन्त्यत्र श्लोकौ योगेश्वरं प्रति ॥ १४७ ॥
आत्मनः प्रतिरूपाणि परेषां च सहस्रशः । कुर्याद्योगबलं प्राप्य तैश्च सर्वैः सहाचरेत् ॥ १४८ ॥
प्राप्नुयाद् विषयाश्चैव तथैवोग्रतपश्चरन् । संहरेच्च पुनः सर्वान् सूर्यतेजो गुणानिव ॥ १४९ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे कश्यपीयप्रजासर्गो नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

* * *

श्लोकों को कहते हैं। जिनका आशय इस प्रकार है। वह योगेश्वर अपने योगबल द्वारा और सूर्य तेज द्वारा गुणों की भाँति अपने एवं अन्यान्य के सहस्रों प्रतिरूपों (प्रतिमूर्तियों) का निर्माण कर उनके साथ व्यवहार करता है एवं उग्र तपस्या करते हुए वह सभी भोगों को प्राप्त करता है और पुनः उन सबका संहार करता है ॥१४७-१४९॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में कश्यपीय प्रजासर्ग वर्णन नामक पाँचवें अध्याय (छाछठवाँ अध्याय) की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५ ॥

* * *

अथ षष्ठोऽध्यायः

कश्यपीयप्रजासर्गः

ऋषय ऊचुः

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य नैमिषेयास्तपस्विनः । पप्रच्छुर्ऋषयः श्रेष्ठं वचनस्य यथाक्रमम् ॥ १ ॥
सप्तस्विह कथं देवा जाता मन्वन्तरेष्विह । इन्द्रविष्णुप्रधानास्ते आदित्यास्तु महौजसः ॥
एतत् प्रब्रूहि नः सर्वं विस्ताराद्रोमहर्षण ॥ २ ॥
एवमुक्तस्तदा सूतो विनयी ब्रह्मवादिभिः । उवाच वदतां श्रेष्ठो यथा पृष्टो महर्षिभिः ॥ ३ ॥

सूत उवाच

ब्रह्मणो वै मुखात्सृष्टा यथा देवाः प्रजेप्सया । सर्वे मन्त्रशरीरास्ते स्मृता मन्वन्तरेष्विह ॥ ४ ॥
दर्शश्च पौर्णमासश्च बृहद्यच्च रथन्तरम् । आकूतः प्रथमस्तेषां ततस्त्वाकूतिरेव च ॥ ५ ॥
वित्तिश्चैव सुवित्तिश्च निकूतिः कूतिरेव च । अधीष्टस्तु ततो ज्ञेयः अधीतिश्चैव तत्त्वतः ॥
विज्ञातिश्चैव विज्ञातो मनवो ये च द्वादश ॥ ६ ॥

छठवाँ अध्याय

(सड़सठवाँ अध्याय)

कश्यप की प्रजाओं की सृष्टि का वर्णन

ऋषियों ने कहा—नैमिषारण्य निवासी सभी तपस्वी ऋषियों ने सूत जी के वचन सुनकर क्रमशः इन निम्नलिखित श्रेष्ठ प्रश्नों को पूछा—हे रोमहर्षण ! सातों मन्वन्तरों में इन्द्र विष्णु प्रभृति देवगण तथा महातेजस्वी आदित्यगण किस प्रकार उत्पन्न हुए, इसे विस्तारपूर्वक हमें बतलाइये । ब्रह्मवादी ऋषियों के इस प्रकार प्रश्न पूछने पर बोलने वालों में श्रेष्ठ, सूतजी ने उस विषय को विनयपूर्वक कहा जिसे महर्षियों ने पूछा था ॥ १-३ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—सभी मन्वन्तरों में प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्मा के मुख से जिन देवताओं की सृष्टि हुई । वे सब मन्त्रमय शरीर वाले कहे जाते हैं । (१) दर्श (२) पौर्णमास (३) बृहत् (४) रथन्तर, इनमें सर्वप्रथम (५) आकूत की गणना की जाती है । तदनन्तर (६) आकूति (७) वित्ति (८) सुवित्ति निकूति (९) कूति, (१०) अधीष्ट (११) अधीति और (१२) विज्ञाति—ये बारह मनु कहे गए हैं ॥ ४-६ ॥

ज्ञेयो द्वादशपुत्रश्च यश्चाब्देन समाजयेत् । तं दृष्ट्वा चाब्रवीद् ब्रह्मा जया देवानसूयत ॥ ७ ॥
दाराग्निहोत्रसंयोगे मिथ्यामारभतेति च । एवमुक्त्वा तु तं ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ॥ ८ ॥
ततस्ते नाभ्यनन्दन्त तद्वाक्यं परमेष्ठिनः । सत्यस्येह तु कर्माणि वाङ्मनःकर्मजानि तु ॥ ९ ॥
य एवाप्यतिष्ठन्ते दोषं दृष्ट्वा तु कर्मसु । क्षयातिशययुक्तं तु ते दृष्ट्वा कर्मणां फलम् ॥ १० ॥
जुगुप्सन्तः प्रसूतिं च निस्तन्द्रा निर्ममाभवन् । अजस्रं काङ्क्षमाणास्ते विरक्ता दोषदर्शिनः ॥ ११ ॥
अर्थं धर्मं च कामं च हित्वा ते वै व्यवस्थिताः। पौरुषं ज्ञानमास्थाय तेजः संक्षिप्य चास्थिताः ॥ १२ ॥
तेषां च तमभिप्रायं ज्ञात्वा ब्रह्मा चुकोप ह । तानब्रवीत्तदा ब्रह्मा निरुत्साहात् सुरानथः ॥ १३ ॥
प्रजार्थमिह यूयं वै प्रजास्रष्टाऽस्मि नान्यथा । प्रसूयध्वं यजध्वञ्चेत्युक्तवानस्मि यत् पुरा ॥ १४ ॥
यस्माद्वाक्यमनादृत्य मम वैराग्यमास्थिताः । जुगुप्समानाः स्वं जन्म संततिं नाभिनन्दथ ॥ १५ ॥
कर्मणां च कृतो न्यासो ह्यमृतत्त्वाभिकाङ्क्षया । तस्माद्यूयमनादृत्य सप्तकृत्वस्तु यास्यथ ॥ १६ ॥
ते शप्ता ब्रह्मणा देवा जयास्तं वै प्रसादयन् । क्षमास्माकं महादेव यदज्ञानात् कृतं विभो ॥ १७ ॥
प्रणिपत्य सानुनयं ब्रह्मा तानब्रवीत् पुनः । लोके मयाननुज्ञातः कः स्वातन्त्र्यमिहार्हसि ॥ १८ ॥

ये बारह ब्रह्मा के पुत्र माने गये हैं, जो वर्षों के समूह सूचक हैं । उन बारह पुत्रों को देखकर ब्रह्मा ने कहा—हे जयगण ! तुम लोग अन्यान्य देवताओं को उत्पन्न करो । स्त्री परिग्रह, अग्निहोत्र एवं यज्ञाराधन आदि कार्यों को सम्पन्न करो । उनसे ऐसी बातें कहकर ब्रह्मा वहाँ पर अन्तर्हित हो गये ॥ ७-८ ॥

किन्तु उन सबों ने परमेष्ठी की इस आज्ञा का अभिनन्दन नहीं किया और सांसारिक कर्मों में अनेक दोष देखकर मनसा, वाचा, कर्मणा सिद्ध होनेवाले कर्मजाल को छोड़कर यम नियमादि से अपना नाता जोड़ा । सभी सांसारिक कर्मों के फलों को अति विनश्वर एवं अस्थायी देख वे सन्तानों की निन्दा करते हुए ममता तथा आलस्य से रहित हो गये । और मुक्ति की अभिलाषा से विरक्त होकर धर्म, अर्थ, काम में दोष देखकर इन सबका परित्याग किया । इस प्रकार ब्रह्मज्ञान का आश्रय लेकर वे अपने वास्तविक तेजोबल का संचय कर मुक्ति के लिए प्रयत्नशील हुए ॥ ९-१२ ॥

उन सभी के ऐसे अभिप्राय को जानकर ब्रह्मा को क्रोध उत्पन्न हुआ और तब उन्होंने उन निरुत्साही देवताओं से कहा—प्रजाओं की सृष्टि के लिए ही मैंने तुम लोगों को उत्पन्न किया था, किसी अन्य प्रयोजन से नहीं और उस समय मैंने यह आज्ञा भी दी थी कि तुम लोग जाकर सन्तति उत्पन्न करो और यज्ञाराधन करो । किन्तु हमारी बातों पर तुम लोगों ने ध्यान नहीं दिया । यतः मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर तुम लोग वैराग्य पथ पर अग्रसर हो रहे हो और अपने जन्म की निन्दा करते हुए सन्ततियों का अभिनन्दन नहीं कर रहे हो । प्रत्युत अमरत्व की आकांक्षा से सांसारिक कर्मों को एकदम छोड़ रहे हो । अतः मैं तुम लोगों का अनादर करते हुए यह श्राप देता हूँ कि तुम सब सात बार उत्पन्न होगे ॥ १३-१६ ॥

ब्रह्मा के इस प्रकार शाप दे देने पर वे जय नामक देवगण उन्हें प्रसन्न करने की इच्छा से प्रार्थना करते हुए बोले, हे देवाधिराज विभो ! हम सबों के अपराधों को क्षमा करें । वस्तुतः अज्ञानवश हमने ऐसा किया है। देवताओं के अति विनय एवं प्रणामपूर्वक निवेदन करने पर ब्रह्मा ने पुनः कहा—इस लोक में बिना मेरी आज्ञा के

मया परिगतं सर्वं कथमच्छन्दतो मम । प्रतिपत्स्यन्ति भूतानि शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ १९ ॥
लोके यदस्ति किञ्चिद्वै सत्त्वासत्त्वव्यवस्थितम् । बुद्ध्यात्मना मया व्याप्तं को मां लोकेऽतिसन्धयेत् ॥ २० ॥
भूतानां तर्कितं यच्च यच्चाप्येषां विधारितम् । तथा विचारितं यच्च तत्सर्वं विदितं मम ॥ २१ ॥
मया स्थितमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् । आशामयेन तत्त्वेन कथं छेत्तुमिहोत्सहे ॥ २२ ॥
यस्माच्चाहं विवृत्तो वै सर्गार्थमिह नान्यथा । इह कर्माण्यनारभ्य को मे छन्दाद्विमोक्ष्यते ॥ २३ ॥
परिभाष्य ततो देवान् जयान् वै नष्टचेतसः। अब्रवीत्स पुनस्तान् वै धृतान् दण्डे प्रजापतिः ॥ २४ ॥
यस्मान्मामाभिसन्धाय सन्न्यासो वः कृतः पुरा । यस्मात्स विफलोऽयत्नो ह्यपारस्त्वेष यः कृतः ॥
भविताऽतः सुखोदर्को देवा भावेषु जायताम् ॥ २५ ॥
आत्मच्छन्देन वो जन्म भविष्यति सुरोत्तमाः । मन्वन्तरेषु सम्मूढाः षट्सु सर्वे गमिष्यथ ॥ २६ ॥
वैवस्वतान्तेषु सुरास्तथा स्वायम्भुवादिषु । तान् ज्ञात्वा ब्रह्मणा तत्र श्लोको गीतः पुरातनः ॥ २७ ॥
त्रयीं विद्यां ब्रह्मचर्यं प्रसूतिं श्राद्धमेव च । यज्ञं चैव तु दानं च एषामेव तु कुर्वताम् ॥
स हि स्म विरजा भूत्वा वसतेऽन्यप्रशंसया ॥ २८ ॥
स एवं श्लोकं दृष्ट्वा तु जया देवानथाब्रवीत् । वैवस्वतेऽन्तरेऽतीते मत्समीपमिहेष्यथ ॥ २९ ॥

कौन स्वन्त्रतापूर्वक व्यवहार कर सकता है, इस चराचर जगत् में मैं परिव्याप्त हूँ, मेरी बिना इच्छा के कौन ऐसा प्राणी है जो शुभ अथवा अशुभ फलों को प्राप्त हो ॥ १७-१८ ॥

इस जगत् में जो सत् अथवा असत् पदार्थ पाये जाते हैं उन सब में मैं आत्मा एवं बुद्धि द्वारा व्याप्त हूँ। इस लोक में मुझको भला कौन छल सकता है? ॥ १९-२० ॥

इस जगत् के जीव-समूह जो कुछ भी तर्क करके धारण करते हैं तथा जो कुछ भी मन में विचार करते हैं, वह सब मुझे विदित रहता है । यह समस्त स्थावर जंगमात्मक जगत् मेरे द्वारा बनाये गये आशामय तत्त्व में स्थित है, उसे तोड़ देने का साहस किस प्रकार हो सकता है । मैंने सृष्टिविस्तार के लिए ही यह सब कार्य प्रारम्भ किया था, किसी अन्य अभिप्राय से नहीं । अतः इस जगत् में कार्यों को न करके हमारी इच्छा के प्रतिकूल आचरण कौन कर सकता है? ॥ २१-२३ ॥

प्रजापति ब्रह्मा ने उन शाप रूप दण्ड ग्रहण करनेवाले नष्टचेता जय नामक देवगणों से इस प्रकार की बातें कर पुनः उनसे कहा । हे देवगण ! पहले मेरे साथ प्रपंचमय व्यवहार करके इस जगत् के कार्य समूह से आप लोगों ने संन्यास ले लिया था और उसी भावना से जो अपार प्रयत्न किया था वह भी नष्ट हो गया । अतः इसका परिणाम सुखदायी होगा, तुम लोगों के लिए वे मंगलकारी होंगे ॥ २४-२५ ॥

हे देव श्रेष्ठगण ! आप लोगों की वह उत्पत्ति स्वाधीन होगी, और स्वायंभुव से लेकर वैवस्वत तक छह मन्वन्तरों में आप सभी अविद्या एवं मोह से आवृत होकर जन्म लाभ करेंगे । उन जय नामक देवों से इस प्रकार की बातें कहकर ब्रह्मा ने एक पुराना श्लोक कहा, जिसका आशय इस प्रकार है । त्रयी (तीनों वेद) विद्या, ब्रह्मचर्य, सन्तानोत्पत्ति, श्राद्ध, यज्ञ तथा दान—इन समस्त सत्कर्मों के करनेवाले रजोगुणविहीन होकर (सत्त्वगुण युक्त होकर) दूसरों द्वारा प्रशंसित जीवन बिताते हुए निवास करते थे ॥ २६-२८ ॥

ततो यूयं मया सार्द्धं सिद्धिं प्राप्स्यथ शाश्वतीम् । एवमुक्त्वा तु तान् ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३० ॥
ततो देवास्तिरोभूते ईश्वरे ह्यकुतोभयम् । प्रपन्ना अणिमाद्यैश्च युक्ता योगबलान्विताः ॥ ३१ ॥
ततस्तेषां तु यास्तन्वस्ताऽभवन् द्वादश ह्रदाः। जया इति समाख्याता जाताश्चोदधिसन्निभाः॥ ३२ ॥
ततः स्वायम्भुवे तन्मिन् सर्गे ते जज्ञिरे सुराः। अजितायां रुचेः पुत्रा अजिता द्वादशात्मकः ॥ ३३ ॥
विधिश्च मुनयश्चैव क्षेमो नन्दोऽव्ययस्तथा । प्राणोऽपानः सुधामा च क्रतुशक्तिव्यवस्थिताः ॥
इत्येते मानसाः सर्वे अजिता द्वादश स्मृताः ॥ ३४ ॥
ये च यज्ञे सुरैः सार्द्धं यज्ञभाजस्तदा स्मृताः । स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वे ततः स्वारोचिषे पुनः ॥
तुषितायां समुत्पन्नाः पुनः पुत्राः स्वरोचिषः ॥ ३५ ॥
तुषिता नाम ते ह्यासन् प्राणाख्या याज्ञिकाः सुराः। पुनस्ते तुषिता देवा उत्तमे त्वन्तरे स्वयम् ॥ ३६ ॥
उत्तमस्य तु ते पुत्राः सत्यायां जज्ञिरे शुभाः। ततः सत्याः स्मृता देवा उत्तमे चान्तरे तदा ॥ ३७ ॥
अभजन् यज्ञभाजस्ते तृतीये द्वापरान्तरे । ते तु सत्याः पुनर्देवाः सम्प्राप्ते तामसेऽन्तरे ॥ ३८ ॥
हर्षा ये तमसः पुत्रा जज्ञिरे द्वादशैव तु । हरयो नाम ते देवा यज्ञभाजस्तथाऽभवन् ॥ ३९ ॥
ततस्ते हरयो देवाः प्राप्ते चारिष्णवेऽन्तरे । विकुण्ठायां ततस्ते वै चरिष्णोर्जज्ञिरे सुराः ॥
वैकुण्ठा नाम ते देवाः पञ्चमस्यान्तरे मनोः ॥ ४० ॥
ततस्ते वै पुनर्देवा वैकुण्ठाः प्राप्य चाक्षुषम् । साध्यायां द्वादश सुता जज्ञिरे धर्मसूनवः ॥ ४१ ॥

ब्रह्मा ने इस आशय के श्लोक का उच्चारण कर उन जय नामक देवगणों से पुनः कहा—'देववृन्द उस अन्तिम वैवस्वत मन्वन्तर के समाप्त हो जाने पर आप लोग हमारे पास यहाँ पुनः आएँगे और तभी हमारे साथ आपको शाश्वती सिद्धि प्राप्त होगी।' देवताओं से ऐसी बातें कह कर ब्रह्मा अन्तर्धान हो गए ॥ २९-३० ॥

तदनन्तर ईश्वर (ब्रह्मा) के अन्तर्हित होने पर देवगण निर्भय हो गये और अणिमा आदि से संयुक्त होकर योगबल का आश्रय ले योगाभ्यास में दत्तचित्त हुए। जिससे उन सबों के शरीर समुद्र के समान विशाल बारह सरोवरों के रूप में परिणत हो गये जो जय नाम से विख्यात हुए। तदनन्तर स्वायंभुव नामक उस मन्वन्तर में वे देवगण अजिता के गर्भ से रुचि के बारह पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए, जो अजित गण के नाम से विख्यात हुए। विधि, मुनय (?), क्षेम, नन्द, अव्यय, प्राण, अपान, सुधामा, क्रतु, शक्ति, ध्रुव और स्थिति—ये बारह अजित देवगण ब्रह्मा के मानस पुत्र रूप में स्मरण किये गये हैं ॥ ३१-३४ ॥

ये देवगण उस स्वायंभुव मन्वन्तर में यज्ञ में अन्यान्य देवताओं के साथ यज्ञ भाग के अधिकारी माने गये। तदनन्तर स्वारोचिष मन्वन्तर में पुनः वे तुषिता के गर्भ से स्वारोचिष मनु के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। पुनः औत्तम मन्वन्तर में वे शुभदायी देवगण सत्या के गर्भ से उत्तम मनु पुत्र रूप में उत्पन्न हुए और उक्त मन्वन्तर में उसकी सत्य नाम से ख्याति हुई, तृतीय मन्वन्तर के द्वापर युग में वे देवगण यज्ञ भाग के अधिकारी हुए। वे सत्य नामक देवगण पुनः तामस नामक मन्वन्तर में तामस की हर्षा नामक पत्नी में हरि नाम से बारह पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए और यज्ञ भाग के भोक्ता बने ॥ ३५-३९ ॥

तदनन्तर चारिष्णव मन्वन्तर में वे हरि नामक देवगण चरिष्णु मनु की विकुण्ठा नामक पत्नी में उत्पन्न

ततस्ते वै पुनः साध्याः संक्षीणे चाक्षुषेऽन्तरे । उपस्थिते मनोः सर्गे पुनर्वैवस्वतस्य ह ॥ ४२ ॥
आद्ये त्रेतायुगमुखे प्राप्ते वैवस्वतस्य तु । अंशेन साध्यास्तेऽदित्यां मारीचात् कश्यपात् पुनः ॥ ४३ ॥
जज्ञिरे द्वादशादित्या वर्त्तमानेऽन्तरे पुनः । यदा त्वेते समुत्पन्नाश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ॥ ४४ ॥
ततः स्वायम्भुवे साध्या जज्ञिरे द्वादशामराः । एवमाद्या जयास्ते वै शापात्समभवंस्तदा ॥ ४५ ॥
य इमां सप्तसम्भूतिं देवानां देवशासनात् । पठेद्यः श्रद्धया युक्तः प्रत्यवायं न गच्छति ॥ ४६ ॥
इत्येते भूतयः सप्त जयानां सप्तलक्षणाः । परिक्रान्ता मया चाद्य किं भूयः श्रोतुमिच्छथ ॥ ४७ ॥

ऋषय ऊचुः

दैत्यानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् । सर्वभूतपिशाचानां पशूनां पक्षिवीरुधाम् ॥
उत्पत्तिं निधनं चैव विस्तरात् कथयस्व नः ॥ ४८ ॥
एवमुक्तस्तदा सूत उवाच ऋषिसत्तमान् । दितेः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥ ४९ ॥
कश्यपस्यात्मजौ तौ वै सर्वेभ्यः पूर्वजौ स्मृतौ । सूत्येऽहन्यतिरात्रस्य कश्यपस्याश्वमेधिके ॥ ५० ॥
हिरण्यकशिपुर्नाम प्रथमं ऋत्विगासनम् । दित्या गर्भाद्विनिःसृत्य तत्रासीनोच्चसंसदि ॥
हिरण्यकशिपुस्तस्मात् कर्मणा तेन सः स्मृतः ॥ ५१ ॥

ऋषय ऊचुः

हिरण्यकशिपोर्नाम जन्म चैव महात्मनः । प्रभावं चैव दैत्यस्य विस्तराद् ब्रूहि नः प्रभो ॥ ५२ ॥

हुए। इस पाँचवें मन्वन्तर में वे देवगण वैकुण्ठ नाम से विख्यात हुए। तदनन्तर चाक्षुष मन्वन्तर में आकर वे वैकुण्ठ नामक देवगण साध्या के गर्भ से धर्म के बारह पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए ॥ ४०-४१ ॥

तदनन्तर चाक्षुष मन्वन्तर की समाप्ति होने पर जब वैवस्वत मनु की कार्यावधि प्रारम्भ हुई तो वे साध्य देवगण पहले त्रेता युग के प्रारम्भिक काल में 'अंश भाग से अदिति में मरीचि-पुत्र कश्यप के संयोग से उत्पन्न हुए और इस प्रकार इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में बारह आदित्यों के नाम से इसकी प्रसिद्धि हुई स्वायंभुव मन्वन्तर में जय नाम से विख्यात जो आदि देवगण थे वे ही चाक्षुष मन्वन्तर में शापवश साध्य नाम से विख्यात हुए और वे ही वैवस्वत मन्वन्तर में शापवश आदित्य नाम से भी विख्यात हुए। ब्रह्मा के शाप से होनेवाली देवताओं की इन सात उत्पत्तियों का वृत्तान्त जो श्रद्धापूर्वक पढ़ता है वह पाप में लिप्त नहीं होता। जय नामक देवगणों की इन सात उत्पत्तियों को कहा जा चुका, अब इसके बाद आप सब क्या सुनना चाहते हैं ॥ ४२-४७ ॥

ऋषियों ने कहा—सूत जी अब हम लोग दैत्य, दानव, गन्धर्व, उरग (सर्प राक्षस, सर्प भूत, पिशाच, पशु, पक्षी, एवं लता-वृक्षादि) की उत्पत्ति तथा विनाश का वृत्तान्त सुनना चाहते हैं, विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥४८॥

ऋषियों के ऐसा पूछने पर उन सर्वश्रेष्ठ ऋषियों से श्रीसूतजी ने कहा, ऋषिवृन्द कश्यप के संयोग से दिति को दो पुत्र उत्पन्न हुए ऐसा हमने सुना है। कश्यप के वे दोनों आत्मज उनके अन्यान्य सन्तानों में सबसे ज्येष्ठ थे। कश्यप के अश्वमेध यज्ञ के अन्तर्गत अतिरात्र याम के सौत्य दिवस के अवसर पर वह प्रथम पुत्र दिति के गर्भ से निकलकर सभामण्डप में लगे हुए सर्वोच्च सिंहासन पर, जो पुरोहित के लिए निर्दिष्ट था, समासीन हो गया। अपने इसी अद्भुत कर्म के कारण वह हिरण्यकशिपु नाम से प्रथम ऋत्विग्गण स्मरण किया गया ॥ ४९-५१ ॥

सूत उवाच

कश्यपस्याश्वमेधोऽभूत् पुण्यो वै पुष्करे पुरा। ऋषिभिर्देवताभिश्च गन्धर्वैरुपशोभितः ॥ ५३ ॥
उत्कृष्टेनैव विधिना आख्यानादौ यथाविधि। आसनान्युपक्लृप्तानि काञ्चनानि तु पञ्च वै ॥ ५४ ॥
कुशपूतानि त्रीण्यत्र कूर्चफलकमेव च। मुख्यर्त्विजश्च चत्वारस्तेषां तान्युपकल्पयेत् ॥ ५५ ॥
शुभं तत्रासनं यत्तु होतुरर्थे प्रकल्पितम्। हिरण्मयं तथा दिव्यं दिव्यास्तरणसंस्तृतम् ॥ ५६ ॥
अन्तर्वत्नी दितिश्चैव पत्नीत्वं समुपागता। दश वर्षसहस्राणि गर्भस्तस्या अवर्तत ॥ ५७ ॥
स तु गर्भाद्विनिःसृत्य मातुर्वै उदरात्तदा। उपक्लृप्तासनं यत्तु होतुरर्थे हिरण्मयम् ॥
निषसाद स गर्भोऽत्र तत्राऽऽसीनः शशंस च ॥ ५८ ॥
आख्यानपञ्चमान् वेदान् महर्षिः काश्यपो यथा। तं दृष्ट्वा मुनयस्तस्य नामाकुर्वंस्तु तद्विधम् ॥ ५९ ॥
हिरण्यकशिपुस्तस्मात् कर्मणा तेन विश्रुतः। हिरण्याक्षोऽनुजस्तस्य सिंहिका तस्य चानुजा ॥
राहोः सा जननी देवी विप्रचित्तेः परिग्रहात् ॥ ६० ॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यश्चचार परमं तपः। शतं वर्षसहस्राणां निराहारो ह्यधः शिराः ॥ ६१ ॥
तं ब्रह्मा छन्दयामास दैत्यं तुष्टो वरेण तु। सर्वामरत्वं विप्रेभ्यः सर्वभूतेभ्य एव च ॥
योगाद्देवान् विनिर्जित्य सर्वदेवत्वमास्थितः ॥ ६२ ॥

ऋषियों ने कहा—प्रभो ! दैत्यपति महात्मा हिरण्यकशिपु का जन्म वृत्तान्त एवं प्रभाव का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! प्राचीनकाल में पुष्कर क्षेत्र में कश्यप का एक अश्वमेध यज्ञ हुआ था, जिसमें ऋषि, देवताओं एवं गन्धर्वों के समूह आकर उस यज्ञ की शोभावृद्धि कर रहे थे। उस महान् यज्ञ में शास्त्रीय विधिपूर्वक आख्यान आदि के लिए पाँच सुवर्ण निर्मित आसन स्थापित किये गये थे ॥ ५२-५४ ॥

कुश से पवित्रित तीन आसन थे, एक पर कूर्च (कुश की मुट्ठी) और पाँचवें पर फलक स्थापित था। चार मुख्य पुरोहितों के लिए उन चार की स्थापना की गयी थी। उनमें एक पाँचवाँ जो सर्वश्रेष्ठ आसन था वह होता के लिए निर्दिष्ट किया गया था। वह दिव्य आसन नीचे से ऊपर तक सब सुवर्णमय था एवं बिछावन से सुशोभित हो रहा था। गर्भवती दिति, कश्यप की पत्नी के रूप में बगल में बैठी थी, उसके उदर में दस सहस्र वर्ष का गर्भ था ॥ ५५-५७ ॥

ठीक उसी समय वह गर्भ माता के उदर से निकलकर उस पाँचवें सुशोभित आसन पर, जो होता के लिए निर्दिष्ट था, बैठ गया और अपने पिता महर्षि कश्यप की भाँति वहीं से वेद एवं आख्यानात्मक पाँचवें वेद का व्याख्यान देने लगा। उस बालक को इस प्रकार देखकर सभी ऋषियों ने तदनुकूल नामकरण किया। अपने उक्त अद्भुत कर्म के कारण वह हिरण्यकशिपु नाम से विख्यात हुआ। उसका छोटा भाई हिरण्याक्ष था और सिंहिका छोटी बहन थी। वह सिंहिका देवी विप्रचित्त की पत्नी तथा राहु की माता हुई। दैत्यवर हिरण्यकशिपु ने परम कठोर तपस्या की। एक लाख वर्षों तक निराहार रहकर वह सिर को नीचे करके तपस्या में लीन रहा ॥ ५८-६१ ॥

हे विप्रवर्यवृन्द ! दैत्य हिरण्यकशिपु की इस घोर तपस्या से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने अपने वरदान से उसे प्रसन्न किया, जिससे उसने सभी जीवों द्वारा मृत्यु को न प्राप्त करने, अपने योगबल से देवताओं को भी पराजित

दानवाश्चासुराश्चैव देवाः समा भवन्तु वै । मारुतेर्यन्महैश्वर्यमेष मे दीयतां वरः ॥ ६३ ॥
एवमुक्तोऽथ ब्रह्मा तु तस्मै दत्त्वा यथेप्सितम् । दत्त्वा तस्मै वरान् दिव्यान् तत्रैवान्तरधीयत ॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यः श्लोकैर्गीतः पुरातनैः ॥ ६४ ॥
राजा हिरण्यकशिपुर्यां यामाशां निषेवते । तस्यास्तस्या दिशो देवा नमश्चक्रुर्महर्षिभिः ॥ ६५ ॥
एवं प्रभावो दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुर्द्विजाः । तस्यासीन्नरसिंहः स विष्णुर्मृत्युः पुरा किल ॥
नखैस्तु तेन निर्भिन्नस्ततः शुद्धा नखाः स्मृताः ॥ ६६ ॥
हिरण्याक्षसुताः पञ्च विक्रान्ताः सुमहाबलाः । उत्कुरः शकुनिश्चैव कालनाभस्तथैव च ॥ ६७ ॥
महानाभश्च विक्रान्तो भूतसन्तापनस्तथा । हिरण्याक्षसुता ह्येते देवैरपि दुरासदाः ॥ ६८ ॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च बाडेयः स गणः स्मृतः । शतं तानि सहस्राणि निहतास्तारकामये ॥ ६९ ॥
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारस्तु महाबलाः । प्रह्लादः पूर्वजस्तेषामनुह्लादस्तथैव च ॥
संह्लादश्च ह्रदश्चैव ह्रदपुत्रान्निबोधत ॥ ७० ॥
ह्लादो निसुन्दश्च तथा ह्रदपुत्रौ बभूवतुः । सुन्दोपसुन्दौ विक्रान्तौ निसुन्दतनयावुभौ ॥ ७१ ॥
ब्रह्मघ्नस्तु महावीर्यो मूकस्तु ह्रददायिनः । मारीचः सुन्दपुत्रस्तु ताडकामुपपद्यते ॥ ७२ ॥
ताडका निहता साऽथ राघवेण बलीयसा । मूको विनिहतश्चापि किराते सव्यसाचिना ॥ ७३ ॥

कर देने तथा अमरो (देवताओं) के सभी धर्मों को प्राप्त करने का वरदान प्राप्त किया । इसके अतिरिक्त उसने यह वरदान याचना की कि सभी दानव एवं असुर भी देवताओं के समान ऐश्वर्यशाली हो जायें और मारुत (वायु) में जो महान् ऐश्वर्य है वह हमें प्राप्त हो । हिरण्यकशिपु की ऐसी वरदान याचना को सुनकर ब्रह्मा ने उसकी मनः कामना पूर्ण की और उन दिव्य वरदानों को देने के उपरान्त वे वहीं अन्तर्हित हो गये । उस परमप्रभावशाली दैत्य हिरण्यकशिपु की प्रशंसा पुराने लोग श्लोकों में गाया करते थे, जिसका आशय इस प्रकार है ॥ ६२-६४ ॥

वह राजा हिरण्यकशिपु जिस-जिस दिशा को जाता था उस उस दिशा के लिए महर्षियों समेत देवगण नमस्कार करते थे । हे विप्रवृन्द ! वह दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु सचमुच ऐसा ही प्रभावशाली था । यह सर्वप्रसिद्ध बात है कि प्राचीनकाल में उस हिरण्यकशिपु के मृत्युस्वरूप नरसिंह रूपधारी भगवान् विष्णु स्वयमेव हुए । उन्होंने अपने नखों से उस दैत्यराज की छाती फाड़ डाली थी, किन्तु उनके नख न तो गीले हुए न सूखे ही रहे, ऐसा कहा जाता है । हिरण्याक्ष के पाँच महाबलवान् एवं विक्रमशाली पुत्र हुए, जिनके नाम उत्कुर, शकुनि, कालनाभ, महानाभ तथा भूतसन्तापन थे । हिरण्याक्ष के ये पुत्र देवताओं द्वारा भी पराजित नहीं किये जा सकते थे ॥ ६५-६८ ॥

उन पुत्रों को जो पुत्र-पौत्रादि हुए वे वाडेयगणों के नाम से विख्यात हुए, उनकी संख्या एक लाख की थी, जो सब के सब तारकामय नामक संग्राम में नष्ट हुए । हिरण्यकशिपु के चार महाबलवान पुत्र हुए, जिनमें सबसे बड़े का नाम प्रह्लाद तथा उससे छोटे भाई का नाम अनुह्लाद था, दो उससे भी छोटे हुए, जिनके नाम संह्लाद और ह्रद थे । अब ह्रद के पुत्रों को कहता हूँ, सुनिये ॥ ६९-७० ॥

ह्रद के ह्लाद और निसुन्द नामक दो पुत्र हुए । उनमें निसुन्द के सुन्द और उपसुन्द दो पुत्र हुए । ह्रद के उत्तराधिकारी सुन्द के पुत्र महाबलशाली ब्रह्मघ्न, मूक और मारीच हुए जो ताड़का से उत्पन्न हुए थे । वह ताड़का

उत्पन्ना महता चैव तपसा भाविताः स्वयम् । तिस्रः कोट्यस्तु तेषां वै मणिवर्त्तनिवासिनाम् ॥
अवध्या देवतानां वै निहताः सव्यसाचिना ॥ ७४ ॥
अनुह्लादसुतो वायुः सिनीवाली तथैव च । तेषां तु शतसाहस्रो गणो हालाहलः स्मृतः ॥ ७५ ॥
वैरोचनस्तु प्राह्लादिः पञ्च तस्यात्मजाः स्मृताः। गवेष्ठी कालनेमिश्च जम्भो बाष्कल एव च ॥
शम्भुस्तु अनुजस्तेषां स्मृताः प्रह्लादिसूनवः ॥ ७६ ॥
यथाप्रधानं वक्ष्यामि तेषां पुत्रान् दुरासदान् । शुम्भश्चैव निशुम्भश्च विष्वक्सेनो महौजसः ॥ ७७ ॥
गवेष्ठिनः सुता ह्येते जम्भस्य शतदुन्दुभिः । तथा दक्षश्च खण्डश्च त्रयस्तु जम्भसूनवः ॥ ७८ ॥
विरोधश्च मनुश्चैव वृक्षायुः कुशलीमुखः । बाष्कलस्य सुता ह्येते कालनेमिसुतान् शृणु ॥ ७९ ॥
ब्रह्मजित् क्षत्रजिच्चैव देवान्तकनरान्तकौ । कालनेमिसुता ह्येते शम्भोस्तु शृणुत प्रजाः ॥ ८० ॥
धनुको ह्यसिलोमा च नाबलश्च सगोमुखः। गवाक्षश्चैव गोमांश्च शम्भोः पुत्राः प्रकीर्त्तिताः ॥ ८१ ॥
विरोचनस्य पुत्रस्तु बलिरेकः प्रतापवान् । बलेः पुत्रशतं जज्ञे राजानः सर्व एव ते ॥ ८२ ॥
तेषां प्रधानाश्चत्वारो विक्रान्ताः सुमहाबलाः । सहस्रबाहुर्ज्येष्ठस्तु बाणो द्रविणसम्मतः ॥
कुम्भनाभो गर्द्दभाक्षः कुशिरित्येवमादयः ॥ ८३ ॥

बलवान् रामचन्द्र के हाथों मारी गयी । मूक को किरातयुद्ध में सव्यसाची अर्जुन ने मारा था । इन मणिवर्त निवासी दैत्यों के वंशधर तीन कोटि तक पहुँच गये, जो अपनी-अपनी घोर तपस्या से परम तेजस्वी तथा देवताओं से अवध्य थे, उन सबका संहार भी सव्यसाची ने किया था ॥ ७१-७४ ॥

अनुह्लाद के पुत्र वायु और सिनीवाली हुए, इनके पुत्र-पौत्रादिकों की संख्या लाखों तक पहुँच गयी, जो सब-के-सब हालाहलगण के नाम से स्मरण किये जाते हैं ॥ ७५ ॥

प्रह्लाद का पुत्र विरोचन हुआ, उसके पाँच छोटे भाई कहे जाते हैं, जिनके नाम गवेष्ठी, कालनेमि, जम्भ, बाष्कल और शम्भु हैं—ये पाँच प्रह्लाद के पुत्र कहे गये हैं ॥ ७६ ॥

उन दुर्धर्ष दैत्य पुत्रों की चर्चा केवल मुख्य मुख्य की गणना करते हुए कर रहा हूँ, उनमें से परमतेजस्वी शुम्भ, निशुम्भ और विष्वक्सेन—ये तीन गवेष्ठी के पुत्र हुए, जम्भ का पुत्र शतदुन्दुभि हुआ शतदुन्दुभि दक्ष और खण्ड—ये चार जम्भ के पुत्र हुए । विरोध, मनु, वृक्षायु और कुशलीमुख—ये चार बाष्कल के पुत्र कहे गये हैं। अब कालनेमि के पुत्रों वर्णन सुनिये । कालनेमि के ब्रह्मजित, क्षत्रजित, देवान्तक और नरान्तक नामक पुत्र थे । अब शम्भु के पुत्रों को सुनिये ॥ ७७-८० ॥

विमर्श—किसी-किसी प्रति में 'आत्मजाः' पाठ भी है, जिसके अनुसार 'पाँच पुत्र' अर्थ होगा किन्तु नामों के अन्त में 'प्रह्लादसूनवः' पाठ से इसकी असंगति होती है, क्योंकि ये पाँचों तो विरोचन के पुत्र हुए, और प्रह्लाद के पौत्र हुए । अतः 'अनुजाः' पाठ कुछ समीचीन मालूम पड़ता है । आगे चलकर विरोचन के केवल एक पुत्र होने की चर्चा आती है, इस पाठ से और भी पुष्टि होती है ।

सत्पुत्र धनुक, असिलोमा, नाबल, सगोमुख, गवाक्ष और गोमान—ये शम्भु के पुत्र कहे गये हैं । विरोचन का केवल एक पुत्र हुआ बलि जो परम प्रतापी था । उस बलि के सौ पुत्र हुए जो सब-के-सब राजा हुए । उन सौ

शकुनी पूतना चैव कन्ये द्वे तु बलेः सुते । बलेः पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८४ ॥
बलिर्यो नामविख्यातो गणो विक्रान्तपौरुषः । बाणस्य चन्द्रमनसो लौहित्यमुपपद्यते ॥ ८५ ॥
दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् । स कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया ॥ ८६ ॥
वरेण च्छन्दयामास सा च वव्रे वरं ततः । स तु तस्यै वरं प्रादात् प्रार्थितं भगवन् प्रभुः ॥
किमिच्छसि मयि शुभे मारीचस्तामभाषत ॥ ८७ ॥
मारीचं कश्यपं तुष्टं भर्तारं प्राञ्जलिस्तथा । हतपुत्राऽस्मि भगवान् आदित्यैस्तव सूनुभिः ॥ ८८ ॥
शक्रहन्तारमिच्छेयं पुत्रं दीर्घतपोऽन्वितम् । अहं तपश्चरिष्यामि गर्भमाधातुमर्हसि ॥ ८९ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मारीचः कश्यपस्तथा । प्रत्युवाच महातेजा दितिं परमदुःखिताम् ॥ ९० ॥
एवं भवतु भद्रं ते शुचिर्भव तपोधने । जनयिष्यति सत्पुत्रं शक्रहन्तारमाहवे ॥ ९१ ॥
पूर्णं वर्षशतं तावत् शुचिर्यदि भविष्यसि । पुत्रं त्रिलोकप्रचरमथ त्वं जनयिष्यसि ॥ ९२ ॥
एवमुक्त्वा महातेजास्तया समवसत् प्रभुः । तामालिङ्ग्य त्रिभुवनं जगाम भगवानृषिः ॥ ९३ ॥
गते भर्त्तरि सा देवी दितिः परमहर्षिता । कुशलं वनमासाद्य तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ९४ ॥

पुत्रों में चार अत्यन्त प्रबल तथा पराक्रमी हुए, जिनमें सबसे ज्येष्ठ सहस्रबाहु बाण था । बाण परम समृद्ध दैत्य था । अन्य तीन कुम्भनाभ, गर्दभाक्ष और कुशि थे, इनके अतिरिक्त अन्य भी थे ॥ ८१-८३ ॥

बलि की शकुनी और पूतना नामक दो पुत्रियाँ थी । बलि के सैकड़ों और हजारों पुत्र-पौत्र थे । जिनके नाम बलिगण थे, वे सब परम विक्रमशील थे । इन्द्र के समान मनस्वी बाण की राजधानी लौहित्यपुर थी । पुत्रों के नष्ट हो जाने पर दिति ने सेवा द्वारा कश्यप को सन्तुष्ट किया । दिति की भली-भाँति सेवा करने पर कश्यप अति प्रसन्न हुए । तब दिति ने उनसे वरदान माँगा और भगवान् कश्यप ने उसके अभिलषित वरदान को दिया । तत्पश्चात् मरीचि पुत्र महर्षि कश्यप ने दिति से पूछा कि हे शुभे ! तुम क्या चाहती हो? ॥ ८४-८७ ॥

अपने पतिदेव मरीचि पुत्र महर्षि कश्यप को सुप्रसन्न देख दिति ने हाथ जोड़कर कहा, भगवन् आपके पुत्र आदित्यों (अदिति के पुत्रों द्वारा मेरे सभी पुत्रों का विनाश हो गया, अब मैं परम तपस्वी एवं इन्द्र को मारने में समर्थ एक पुत्र को प्राप्त करने की इच्छा करती हूँ । ऐसे प्रभावशाली पुत्र को प्राप्त करने के लिए मैं तपश्चर्या कर रही हूँ, आप गर्भाधान करें । ऐसी बातें सुन महान् तेजस्वी मरीचि पुत्र महर्षि कश्यप ने परम दुःखिनी दिति से कहा, हे तपोधने ! ऐसा ही होगा, तेरा कल्याण होगा, तू पवित्र आचरण कर । अवश्य ही युद्धस्थल में इन्द्र के संहार करने वाले सुपुत्र को तू उत्पन्न करेगी ॥ ८८-९१ ॥

यदि तू पूरे सौ वर्ष तक पवित्र रहेगी तो त्रैलोक्यविजयी पुत्र को उत्पन्न करेगी । ऐसी बातें दिति से कर महातेजस्वी महर्षि कश्यप ने उसके साथ सहवास किया और उसका आलिंगनकर त्रिभुवन भ्रमण के निमित्त गमन किया ॥ ९२-९३ ॥

पतिदेव कश्यप के चले जाने पर परम हर्षित हो देवी दिति ने कुशल वन में कठोर तप किया । उस घोर तपस्या में लीन दिति की उस सहस्रनेत्र देवराज इन्द्र ने अनेक प्रकार की सेवाएँ कीं । अग्नि, समिधा, कुश, काष्ठ, फल, मूल आदि तथा अन्यान्य पूजोपयोगी वस्तुओं को सहस्रनेत्र इन्द्र लाकर देते थे और परिश्रम के खेद को दूर

तपस्तस्यां तु कुर्वन्त्यां परिचर्यां चकार ह । सहस्राक्षः सुरश्रेष्ठः परया गुणसम्पदा ॥ ९५ ॥
अग्निं समित्कुशं काष्ठं फलं मूलं तथैव च । न्यवेदयत् सहस्राक्षो यच्चान्यदपि किञ्चन ॥ ९६ ॥
गात्रसंवाहनैश्चैव श्रमापनयनैस्तथा । शक्रः सर्वेषु कालेषु दितिं परिचचार ह ॥
एवमाराधिता शक्रमुवाचाथ दितिस्तथा ॥ ९७ ॥

दितिरुवाच

प्रीता तेऽहं सुरश्रेष्ठ दशवर्षाणि पुत्रक । अवशिष्टानि भद्रं ते भ्रातरं द्रक्ष्यसे ततः ॥ ९८ ॥
जयलिप्सां समाधास्ये लब्ध्वाऽहं तादृशं सुतम् । त्रैलोक्यविजयं पुत्र प्राप्स्यामि सह तेन वै ॥ ९९ ॥
एवमुक्त्वा दितिः शक्रं मध्यं प्राप्ते दिवाकरे । निद्रायापहृता देवी जान्वोः कृत्वा शिरस्तदा ॥ १०० ॥
दृष्ट्वा तामशुचिं शक्रः पादयोर्गतमूर्द्धजाम् । तस्यास्तदन्तरं लब्ध्वा जहास च मुमोद च ॥ १०१ ॥
तस्याः शरीरं विवृतं विवेशाथ पुरन्दरः । प्रविश्य चामितं दृष्ट्वा गर्भमिन्द्रो महौजसम् ॥
अभिनत्स प्रधानं तु कुलिशेन महायशाः ॥ १०२ ॥
भिद्यमानस्तदा गर्भो वज्रेण शतपर्वणा । रुरोद सस्वरं भीमं वेपमानः पुनः पुनः ॥
मा रोदीरिति तं गर्भं शक्रः पुनरभाषत ॥ १०३ ॥
तं गर्भं सप्तधाभूतं ह्येकैकं सप्तधा पुनः । कुलिशेन विभेदेन्द्रस्ततो दितिरबुध्यत ॥ १०४ ॥
न हन्तव्यो न हन्तव्य इत्येवं दितिरब्रवीत् । निष्पपातोदराद्वज्री मातुर्वचनगौरवात् ॥
प्राञ्जलिर्वज्रसहितो दितिं शक्रोऽभ्यभाषत ॥ १०५ ॥

करने के लिए गात्र संवाहन (मर्दन, पैर, सिर आदि का दबाना) करते थे । सभी लोकों को देखते हुए इन्द्र ने दिति की विधिवत् परिचर्या की । इस प्रकार इन्द्र द्वारा सत्कार एवं शुश्रूषा पाकर दिति ने कहा ॥ ९४-९७ ॥

दिति ने कहा—'हे सुरश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ । हे पुत्र ! तुम्हारे कल्याण के दस वर्ष और रह गये हैं । जब तुम अपने भाई को देखोगे । जय की अभिलाषा से युक्त परम पराक्रमशील पुत्र को प्राप्त कर मेरी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो जायँगी । हे पुत्र ! उसी के साथ समस्त त्रैलोक्य विजय का मैं सुख अनुभव करूँगी ।' इन्द्र से ऐसी बातें कर दिति मध्याह्न के अवसर पर, जिस समय सूर्य आकाश के मध्य में विराजमान था, निद्रा से अभिभूत हो इन्द्र के दोनों जांघों पर सिर रखकर सो गयी ॥ ९८-१०० ॥

दोनों पैरों पर बाल बिखरने के कारण अपवित्र अवस्था में दिति को देखकर और अपने स्वार्थ साधन का उत्तम अवसर देखकर इन्द्र परम मुदित होकर हँसने लगे ॥ १०१ ॥

तदनन्तर महायशस्वी पुरन्दर ने दिति के फैले हुए शरीर में प्रवेश किया और प्रविष्ट होकर वहाँ महान् तेजस्वी एवं अपरिमित उस गर्भस्थ शिशु को देखकर अपने वज्र से उसको सात भागों में काट डाला । इन्द्र द्वारा वज्र से काटते समय वह गर्भस्थ शिशु भय से काँपने लगा और बार-बार भयानक स्वर में रोदन करने लगा । इन्द्र ने उस गर्भ से कहा कि मत रोओ और ऐसा कहकर उसे सात टुकड़ों में काट दिया । पुनः एक-एक टुकड़े को और सात-सात भागों में वज्र से काट दिया । तब तक दिति जाग गयी और इस प्रकार कहने लगी कि 'मत मारो, मत मारो' । माता की आज्ञा का गौरव रखने के लिए इन्द्र वज्र समेत उदर से बाहर निकले और हाथ जोड़कर दिति

अशुचिर्देवि सुप्तासि पादयोर्गतमूर्द्धजा । तदन्तरमहं लब्ध्वा शक्रहन्तारमाहवे ॥
भिन्नवान् गर्भमेतं ते बहुधा क्षन्तुमर्हसि ॥ १०६ ॥
तस्मिंस्तु विफले गर्भे दितिः परमदुःखिता । सहस्राक्षं ततो वाक्यं मातुर्नयनमब्रवीत् ॥ १०७ ॥
ममापराधाद्गर्भोऽयं यदि ते विफलीकृतः । नापराधोऽस्ति देवेश ऋषिपुत्र महाबल ॥ १०८ ॥
शत्रोर्वधे न दोषोऽस्ति तेन त्वां न शपामि भोः। प्रियं तु कर्त्तुमिच्छामि श्रेयो गर्भस्य मे कुरु ॥ १०९ ॥
भवन्तु मम पुत्राणां सप्त स्थानानि वै दिवि । वातस्कन्धानिमान् सप्त चरन्तु मम पुत्रकाः ॥
मरुतश्चेति विख्याता गणास्ते सप्त सप्तकाः ॥ ११० ॥
पृथिव्यां प्रथमस्कन्धो द्वितीयश्चैव भास्करे । सोमे तृतीयो विज्ञेयश्चतुर्थो ज्योतिषां गणे ॥ १११ ॥
ग्रहेषु पञ्चमश्चैव षष्ठः सप्तर्षिमण्डले । ध्रुवे तु सप्तमश्चैव वातस्कन्धः परस्तु सः ॥ ११२ ॥
तान्येते विचरन्त्वद्य काले काले ममात्मजाः। वातस्कन्धानिमान् भूत्वा चरन्तु मम पुत्रकाः ॥ ११३ ॥
पृथिव्यां प्रथमस्कन्धो अमेध्येभ्यो य आवहः । चरन्तु मम पुत्रास्ते प्रथमश्चरतां गणः ॥ ११४ ॥
द्वितीयश्चापि मेध्येभ्य आसूर्यात् प्रवहस्तु यः । वातस्कन्धं द्वितीयं तु द्वितीयश्चरतां गणः ॥ ११५ ॥
सूर्योद्ध्वं तु ततः सोमादुद्वहो यस्तु वै स्मृतः । वातस्कन्धं तु तं प्राहुस्तृतीयश्चरतां गणः ॥ ११६ ॥
सोमादूर्ध्वं तथर्क्षेभ्यश्चतुर्थः सुवहस्तु यः । चतुर्थो मम पुत्राणां गणस्तु चरतां विभो ॥ ११७ ॥

से बोले, हे देवि ! तुम अपवित्र अवस्था में सो गयी थी, तुम्हारे केश मेरे दोनों पैरों पर बिखरे हुए थे, ऐसे अवसर को पाकर मैंने युद्ध में मुझ इन्द्र का संहार करने वाले इस गर्भस्थ शिशु को अनेक टुकड़ों में काट डाला, मुझे क्षमा करो ॥ १०२-१०६ ॥

उस गर्भ के निष्फल हो जाने पर दिति को बड़ा दुःख हुआ और उसने अनुनयपूर्वक सहस्र नेत्र इन्द्र से कहा, हे देवेश ! यदि मेरे ही अपराध से यह मेरा गर्भ निष्फल हुआ है तो हे ऋषिपुत्र महाबलवान् ! इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, क्योंकि शत्रु का वध करने में कोई दोष नहीं है । इसीलिए मैं तुम्हें शाप नहीं दे रही हूँ प्रत्युत तुम्हारा मङ्गल करने की मेरी इच्छा है, मेरे इस गर्भ का कल्याण करो ॥ १०७-१०९ ॥

स्वर्ग में मेरे इन पुत्रों को सात स्थान प्राप्त हों । मेरे ये पुत्र वायु के सात स्कन्धों में मरुत् नाम से विचरण करें । उनके एक-एक गण में सात-सात मरुत् हो । इनका पहला स्कन्ध पृथ्वी तल पर हो, दूसरा सूर्यमण्डल में हो, तीसरा चन्द्रमा में और चौथा ज्योतिगणों में हो, पाँचवाँ स्कन्ध ग्रहों में और छठवाँ सप्तर्षिमण्डल में हो, सबसे आखिरी स्कन्ध जो सातवाँ होगा वह ध्रुवमण्डल में होगा । इस प्रकार उन मण्डलों में ये मेरे पुत्रगण समय-समय पर विचरण करते रहें ॥ ११०-११३ ॥

पृथ्वीतल से लेकर मेघमण्डलपर्यन्त प्रथम स्कन्ध जो आवह नामक है, उसमें मेरे सातों गणों में से प्रथम गण के सात पुत्र विचरण करें । द्वितीय प्रवह नामक स्कन्ध जो कि मेघमण्डल से लेकर सूर्यमण्डलपर्यन्त है, उसमें हमारे पुत्रों का द्वितीय गण विचरण करे । सूर्यमण्डल से ऊपर चन्द्रमण्डल तक जो उद्ग्रह नामक वातस्कन्ध कहा गया है, उसमें हमारे पुत्रों का तीसरा गण विचरण करे । चन्द्रमा से ऊपर नक्षत्रमण्डलपर्यन्त चौथा सुवह नामक

यक्षेभ्यश्च तथैवोर्द्ध्वमाग्रहाद्विवहस्तु यः । पञ्चमं पञ्चमः सौम्यः स्कन्धस्तु चरतां गणः ॥ ११८ ॥
ऊर्ध्वं ग्रहादृषिभ्यस्तु षष्ठो यो वै पराहतः । चरन्तु मम पुत्रास्तु तत्र षष्ठे गणे तु ये ॥ ११९ ॥
सप्तर्षयस्तथैवोर्द्ध्वमाध्रुवात् सप्तमस्तु यः । वातस्कन्धः परिवहस्तत्र तिष्ठन्तु मे सुताः ॥ १२० ॥
एतत्सर्वं चरन्त्वेते काले काले ममात्मजाः । तत्र तेन च नाम्ना वै भवन्तु मरुतस्त्विमे ॥ १२१ ॥
ततस्तेषां तु नामानि मातापुत्रौ प्रचक्रतुः । तत्कृते कर्मभिश्चैव मरुतो वै पृथक् पृथक् ॥ १२२ ॥
सत्त्वज्योतिस्तथादित्यः सत्यज्योतिस्तथाऽपरः। तिर्यग्ज्योतिश्च सज्योतिर्ज्योतिष्मानपरस्तथा॥ १२३ ॥
प्रथमस्तु गणः प्रोक्तो द्वितीयं मे निबोधत । ऋतजित्सत्यजिच्चैव सुषेणः सेनजित्तथा ॥ १२४ ॥
सत्यमित्रोऽभिमित्रश्च हरिमित्रस्तथाऽपरः । गण एष द्वितीयस्तु तृतीयं मे निबोधत ॥ १२५ ॥
ऋतः सत्यो ध्रुवो धर्त्ता विधर्ताऽथ विधारयः । ध्वान्तश्चैव धुनिर्ह्युग्रो भीमश्चैवाभयस्तथा ॥
अभियुः साक्षिपश्चैवमाह्वयश्च गणः स्मृतः ॥ १२६ ॥
इदृक् चैव तथान्यादृक् यादृक् च प्रतिकृत्त था । ऋक्तथा समितिश्चैव संरम्भश्च तथा गणः ॥ १२७ ॥
इदृक् च पुरुषश्चैव अन्यादृक्षाच्च चेतसः । समितासमितदृक्षाच्च प्रतिदृक्षाच्च वै गुणाः ॥ १२८ ॥
मरुतिद्सरतश्चैव तथा देवो दिशोऽपरः । यजुश्चैवानुदृक्सामस्तथाऽन्यो मानुषीविशः ॥
दैत्या देवाः समाख्याताः सप्तैते सप्तका गणाः ॥ १२९ ॥

जो वातस्कन्ध है, हे विभो ! उनमें उन सब का चौथा गण विचरण करे ॥ ११४-११७ ॥

नक्षत्रमण्डल के ऊपर से लेकर ग्रहों के मण्डल तक जो पाँचवाँ विवह नामक स्कन्ध है उसमें उनका पाँचवाँ सुन्दर गण विचरण करे । उक्त ग्रहमण्डल से ऊपर सप्तर्षिमण्डलपर्यन्त छठवाँ पराहत नामक जो स्कन्ध है, उसमें हमारे पुत्रों के छठवें गणों में रहने वाले विचरण करें ॥ ११८-११९ ॥

इसी प्रकार सप्तर्षिमण्डल से ऊपर ध्रुवमण्डलपर्यन्त जो सातवाँ परिवह नामक वायुस्कन्ध है, उसमें हमारे पुत्रों का सातवाँ गण निवास करे । ये मेरे आत्मज गण समय-समय पर उक्त स्कन्धों में विचरण करते रहें । और तुम्हारे रखे गये 'मरुत्' नाम से विख्यात हों । इस प्रकार बातें करने के उपरान्त माता और पुत्र ने उन सबों का नामकरण संस्कार किया । इन्द्र के (मा रोदी) (मत रोओ) इस कथन को लेकर उन सबों का नाम मरुत् गण पड़ा, उनके पृथक्-पृथक् नाम इस प्रकार हैं ॥ १२०-१२२ ॥

१. सत्त्वज्योति, आदित्य, सत्यज्योति, तिर्यग्ज्योति, सज्योति और ज्योतिष्मान् प्रथम गण के मरुत् कहे गये हैं। अब दूसरे गणों की नामावली सुनिये २. ऋतजित्, सत्यजित्, सुषेण, सेनजित्, सत्यमित्र, अभिमित्र और हरिमित्र—ये द्वितीय गण के मरुत् हैं, तृतीय गण को सुनिये ॥ १२३-१२५ ॥

३. ऋत, सत्य, ध्रुव, धर्ता, विधर्ता, विधारय, ध्वान्त, ४. धुनि, उग्र, भीम, अभय, अभियु, साक्षिप, आह्वय, ये तीसरे एवं चौथे गणों के मरुत् हैं । ५. ईदृक्, अन्यादृक्, यादृक्, प्रतिकृत्, ऋक्, समिति और संरम्भ ये पाँचवें गण के मरुत् हैं । ६. ईदृक, पुरुष, अन्यादृक्ष, चेतस्, समिता, समिवृक्ष और प्रतिदृक्ष ये एक गण के मरुत् हैं । ७. मरुतिद्, सरत, दिश, यजु, अनुक् साम, मानुषीविश और देव दैत्य, ये सात-सात के एक-एक गण हैं ॥ १२६-१२९ ॥

एते ह्येकोनपञ्चाशन्मरुतो नामतः स्मृताः । प्रसंख्यातास्तथा ताभ्यां दित्या चन्द्रेण चैव हि ॥ १३० ॥
श्रुत्वा तेषां तु नामानि दितिरिन्द्रमुवाच ह । वातस्कन्धं चरन्त्वेते मम पुत्राश्च पुत्रक ॥
विचरन्तु च भद्रं ते देवैः सह ममात्मजाः ॥ १३१ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सहस्राक्षः पुरन्दरः । उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा मातर्भवतु तत्तथा ॥ १३२ ॥
सर्वतेमद्यथोक्तं ते भविष्यन्ति न संशयः । देवभूता महात्मानः कुमारा देवसंमताः ॥
देवैः सह भविष्यन्ति यज्ञभाजस्तथात्मजाः ॥ १३३ ॥
तस्मात्ते मरुतो देवाः सर्वे चेन्द्रानुजामराः । विज्ञेयाश्चामराः सर्वे दितिपुत्रास्तपस्विनः ॥ १३४ ॥
एवं तौ निश्चयं ज्ञात्वा मातापुत्रौ तपोधनौ । जग्मतुस्त्रिदिवं हृष्टौ शक्रोऽपि त्रिदिवं गतः ॥ १३५ ॥
मरुतां हि शुभं जन्म शृणुयाद्यः पठेत वा । नावृष्टिभयमाप्नोति बह्वायुश्च भवेत्ततः ॥ १३६ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे कश्यपीयप्रजासर्गो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

* * *

ये उपर्युक्त उनचास मरुत् गण के नाम से विख्यात हैं । इन्द्र और दिति ने इनकी गणना और नामकरण किया । इस प्रकार इन सबों के नामकरण हो जाने पर दिति ने इन्द्र से कहा—हे पुत्र ! ये पुत्रगण उपर्युक्त वायु स्कन्धों में विचरण करें, तुम ऐसा ही करो कि देवताओं के साथ ये मेरे पुत्रगण सुखपूर्वक विचरण करें । दिति की बातें सुनकर सहस्रनेत्र पुरन्दर ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, हे मातः ! आपकी जैसी आज्ञा है वैसा ही होगा । इसमें तनिक भी सन्देह मत करो, जैसी आपकी इच्छा है वैसा ही मैं करूँगा । ये तुम्हारे महात्मा पुत्रगण देव तुल्य हैं, यहीं नहीं देवताओं से भी सम्माननीय हैं, देवताओं के साथ ये भी यज्ञ में भाग पाने के अधिकारी होंगे ॥ १३०-१३३ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! यही कारण है कि उन मरुत् गणों की गणना देवताओं में हुई । इन्द्र के अनुज के रूप में उन सबों को अमरत्व की भी प्राप्ति हुई । वे परम तपस्वी दिति के पुत्र होकर भी अमर माने गये । इस प्रकार का निश्चय कर वे तपस्वी माता पुत्र परम हर्षित हुए, दिति अपने निवास स्थान को और इन्द्र स्वर्गलोक को प्रस्थान कर गए । जो कोई मरुत् गणों के मङ्गलकारी जन्म वृत्तान्त को सुनता है अथवा पढता है उसे दीघार्यु की प्राप्ति होती है और वह कभी अनावृष्टि के कारण कष्ट अनुभव नहीं करता ॥ १३४-१३६ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में कश्यपीयप्रजासर्गवर्णन नामक छठवाँ अध्याय (सरसठवाँ अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ६ ॥**

* * *

अथ सप्तमोऽध्यायः

कश्यपीयप्रजासर्गः

सूत उवाच

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि दनुपुत्रान्निबोधत । अभवन् दनुपुत्रास्तु वंशे ख्याता महासुराः ॥ १ ॥
विप्रचित्तिप्रधानास्ते शतं तीव्रपराक्रमाः । सर्वे लब्धवराश्चैव सुतप्ततपसस्तथा ॥ २ ॥
सत्यसन्धाः पराक्रान्ताः क्रूरा मायाविनश्च ते । महाबला अयज्वानो ह्यब्रह्मण्याश्च दानवाः ॥
कीर्त्त्यमानान्मया सर्वान् प्राधान्येन निबोधत ॥ ३ ॥
द्विमूर्द्धा शङ्कुकर्णश्च तथा शङ्कुनिरामयः । शङ्कुवर्णो महाविश्वो गवेष्ठिर्दुन्दुभिस्तथा ॥ ४ ॥
अजामुखोऽथ भगवान् शिलो वामनसस्तथा । मरीचिरक्षकश्चैव महागार्ग्योऽङ्गिरावृतः ॥ ५ ॥
विक्षोभ्यश्च सुकेतुश्च सुवीर्यः सुहृदस्तथा । इन्द्रजिद्विश्वजिच्चैव तथा सुरविमर्द्दनः ॥ ६ ॥
एकचक्रः सुबाहुश्च तारकश्च महाबलः । वैश्वानरः पुलोमा च प्रवीणोऽथ महाशिराः ॥ ७ ॥
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च मुण्डकश्च महासुरः । धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्र इन्द्रश्च तापिनः ॥ ८ ॥

सातवाँ अध्याय

(अड़सठवाँ अध्याय)

कश्यप की सन्ततियों की सृष्टि का वर्णन

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! अब इसके उपरान्त मैं दनु के पुत्रों का वृत्तान्त कह रहा हूँ, सुनिये । वे दनु के पुत्र अपने वंश में परम विख्यात एवं महान् असुर थे ॥ १ ॥

उनमें सबका प्रधान विप्रचित्ति था, उनकी संख्या सैकड़ों में थी । वे सभी परम पराक्रमी थे और उन सभी को वरदान मिले हुए थे । वे सभी परम तपस्वी, दृढ प्रतिज्ञ, विक्रमशील, क्रूर एवं मायावी थे । वे महाबलवान् थे और यज्ञादि में उनकी निष्ठा नहीं थी । वे ब्राह्मण धर्म के विरोधी थे । उन्हें लोग दानव के नाम से जानते हैं । उन सभी में जो प्रधान दानव हो गये हैं, उनका मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ॥ २-३ ॥

द्विमूर्धा, शङ्कुकर्ण, शङ्कुनिरामय शङ्कुवर्ण, महाविश्व, गवेष्ठि, दुन्दुभि, अजामुख, ऐश्वर्यशाली शिल, वामनस, मरीचि, रक्षक, महागार्ग्य, अङ्गिरावृत, विक्षोभ्य, सुकेतु, सुवीर्य, सुहृद, इन्द्रजित्, विश्वजित्, सुरविमर्दन,

सूक्ष्मश्चैव निचन्द्रश्च ऊर्णनाभो महागिरिः । असिलोमा सुकेशश्च सदश्च बलको दश ॥ ९ ॥
तथा गगनमूर्द्धा च कुम्भनाभा महोदरः । प्रमोदाहश्च कुपथो हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥ १० ॥
असुरश्च विरूपाक्षः सुपथोऽथ महासुरः । अजो हिरण्मयश्चैव शतमायुश्च शम्बरः ॥ ११ ॥
शरभः शलभश्चैव सूर्याचन्द्रमसावुभौ । असुराणां सुरावेतौ सुराणां साम्प्रताविमौ ॥ १२ ॥
इति पुत्रा दनोर्वंशाः प्रधानाः परिकीर्तिताः । तेषामपरिसङ्ख्येयं पुत्रपौत्राद्यनन्तकम् ॥ १३ ॥
इत्येते त्वसुराः प्रोक्ता दैतेया दानवाश्च ये । स्वर्भानुस्तु स्मृतो दैत्यो ह्यनुभानुर्दनोः सुतः ॥
इमे तु वंशानुगता दनोः पुत्रास्तु ये स्मृताः ॥ १४ ॥
एकाक्ष ऋषभोरिष्टः प्रबन्धनरकावपि । इन्द्रबाधनकेशी च मेरुः शम्बोऽथ धेनुकः ॥ १५ ॥
गवेष्ठिश्च गवाक्षश्च तालकेतुश्च वीर्यवान् । एते मनुष्यधर्मास्तु दनोः पुत्रा मया स्मृताः ॥ १६ ॥
दैत्यदानवसंहर्षे जाता भीमपराक्रमाः । सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तिसुतास्त्विमे ॥ १७ ॥
सैंहिकेया इति ख्याताश्चतुर्दश महासुराः । शतगालश्च बलवान्न्यासः शाम्बस्तथैव च ॥ १८ ॥
अनुलोमः शुचिश्चैव वातापिश्च सितांशुकः । हरः कल्पः कालनाभो भौमश्च नरकस्तथा ॥ १९ ॥
राहुर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै चन्द्रसूर्यप्रमर्दनः । इत्येते सिंहिकापुत्रा देवैरपि दुरासदाः ॥ २० ॥
दारुणाभिजनाः क्रूराः सर्वे ब्रह्मद्विषश्च ते । दशान्यानि सहस्राणि सैंहिकेयो गणः स्मृतः ॥ २१ ॥

एकचक्र, सुबाहु, महाबलवान् तारक, वैश्वानर, पुलोमा, प्रवीण, महाशिरा, स्वर्भानु, वृषपर्वा, महाअसुर मुण्डक, धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, तापिन्, सूक्ष्म, निचन्द्र, ऊर्णनाभ, महागिरि, असिलोमा, सुकेश, सद, बलक, गगनमूर्धा, कुम्भनाभ, महोदर, प्रमोदाह, कुपथ, पराक्रमी हयग्रीव, असुर विरूपाक्ष, महासुर सुपथ, अज, हिरण्मय शतमायु, शम्बर, शरभ और शलभ—ये प्रमुख दानवगण कहे गये हैं । सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों पहले असुरों के देवता थे, इस समय ये देवताओं के देवता है ॥ ४-१२ ॥

दनु के वंश में उत्पन्न ये प्रधान दानव कहे जाते हैं । इन सबों के पुत्र-पौत्रादि की संख्या असंख्य और अनन्त है । दिति और दनु के पुत्रगणों का, जो सब असुर नाम से विख्यात हैं उनका परिचय कहा जा चुका । स्वर्भानु (राहू) दिति का पुत्र कहा गया है । अनुभानु दनु का पुत्र होने के कारण दानव कहा गया है । ये उपर्युक्त वंश परम्परागत दनु के पुत्र स्मरण किये जाते हैं ॥ १३-१४ ॥

एकाक्ष, ऋषभ, रिष्ट, प्रबन्ध, नरक, इन्द्रबाधन, केशी, मेरु, शम्ब, धेनुक, गवेष्ठि, गवाक्ष, पराक्रमी तालकेतु ये दनु के पुत्र मनुष्यों के धर्म-कर्म का आचरण करनेवाले हैं—ऐसा मैं जानता हूँ । विप्रचित्ति के अत्यन्त पराक्रमशील चौदह पुत्र दैत्यों और दानवों के संघर्ष में सिंहिका के संयोग से उत्पन्न हुए थे । इस कारणवश वे चौदहों महान् असुर सैंहिकेय के नाम से प्रसिद्ध हुए । जिनके नाम शतगाल, बलवान् न्यास, शाम्ब, अनुलोम, शुचि, वातापि, सितांशुक, हर, कल्प, कालनाभ, भौम और नरक, इनमें सबसे ज्येष्ठ पुत्र का नाम राहु था जो चन्द्रमा और सूर्य को कष्ट देने वाला था । ये सिंहिका के पुत्रगण देवताओं से भी अजेय थे और वे सब के सब परम चित्तवृत्तिवाले क्रूर तथा ब्रह्मद्वेषी थे । इनके अतिरिक्त अन्य दस सहस्र राक्षसों का समूह था जो राहू के गण नाम से स्मरण किये जाते हैं ॥ १५-२१ ॥

निहतो जामदग्न्येन भार्गवेण बलीयसा । स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नोऽथ शची तथा ॥ २२ ॥
उपदानवी मयस्यापि शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी । पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे ॥ २३ ॥
प्रभाया नहुषः पुत्रो जयन्तश्च शचीसुतः । पुरुं जज्ञेऽथ शर्मिष्ठा दुष्यन्तमुपदानवी ॥ २४ ॥
वैश्वानरसुते ह्येते पुलोमा कालिका उभे । उभे ह्यपि तु ते कन्ये मारीचस्य परिग्रहे ॥ २५ ॥
ताभ्यां पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवपुङ्गवाः । चतुर्दश तथान्यानि हिरण्यपुरवासिनाम् ॥ २६ ॥
पौलोमाः कालकेयाश्च दानवाः सुमहाबलाः । अवध्या देवतानां ते निहताः सव्यसाचिना ॥ २७ ॥
मयस्य जाता ये पुत्राः सर्वे वीरपराक्रमाः । मायावी दुन्दुभिश्चैव वृषश्च महिषस्तथा ॥ २८ ॥
बालिको वज्रकर्णश्च कन्या मन्दोदरी तथा । दैत्यानां दानवानां च सर्ग एष प्रकीर्त्तितः ॥ २९ ॥
दनायुषायाः पुत्रास्तु स्मृताः पञ्च महाबलाः । अरूरुर्बलिजम्भौ च विरक्षश्च विषस्तथा ॥ ३० ॥
अरूरोस्तनयः क्रूरो धुन्धुर्नाम महासुरः । निहतः कुवलाश्वेन उत्तङ्कवचनात् किल ॥ ३१ ॥
बलेः पुत्रौ महावीर्यौ तेजसाप्रतिमावुभौ । कुम्भिलश्चक्रवर्मा च स कर्णः पूर्वजन्मनि ॥ ३२ ॥
विरक्षस्यापि पुत्रौ द्वौ कालकश्च वरश्च तौ । विषस्य त्वभवन् पुत्राश्चत्वारः क्रूरकर्मणः ॥
श्राद्धहा यज्ञहा चैव ब्रह्महा पशुहा तथा ॥ ३३ ॥

उसका संहार बलवान् भृगु वंशोद्भव जामदग्न्य परशुराम ने किया था । राहू की कन्या का नाम प्रभा था । यह पुलोमा की पुत्री शची थी । मय दानव की पुत्री उपदानवी और वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा थी । पुलोमा और कालिका ये दोनों वैश्वानर की पुत्रियाँ थीं ॥ २२-२३ ॥

जिनमें से प्रभा का पुत्र नहुष और शची का पुत्र जयन्त हुआ । शर्मिष्ठा ने पुरु को और उपदानवी ने दुष्यन्त को उत्पन्न किया । पुलोमा और कालिका जो वैश्वानर की दोनों पुत्रियाँ थीं, ये दोनों ही मरीचिपुत्र कश्यप की स्त्रियाँ हुई ॥ २४-२५ ॥

उन दोनों से साठ सहस्र प्रमुख दानव पुत्र उत्पन्न हुए । इनके अतिरिक्त चौदह सहस्र अन्य दानवों की भी उत्पत्ति हुई जो हिरण्यपुर निवासी थे । पुलोमा और कालिका से उत्पन्न होने वाले पौलोम और कालकेय नामक दानवगणों की उत्पत्ति हुई जो महाबलवान् थे । देवता भी उनका वध नहीं कर सकते थे । उनका संहार सव्यसाची अर्जुन ने किया ॥ २६-२७ ॥

मय के जो पुत्र हुए वे सब के सब बड़े वीर और पराक्रमी थे, उनके नाम मायावी, दुन्दुभि, वृष, महिष, बालिक और वज्रकर्ण थे । मय दानव की कन्या मन्दोदरी थी । दैत्यों और दानवों की सृष्टि की यह कथा मैंने आप लोगों से कह दिया ॥ २८-२९ ॥

दनायुषा के पाँच महाबलवान् पुत्र कहे जाते हैं । जिनके नाम अरुरु, बलि, जन्म, विरक्ष और विष थे । अरुरु का पुत्र धुन्धु नामक महान् असुर था, जो क्रूर प्रकृति का था, उसका संहार उत्तङ्क के कहने पर कुवलाश्व ने किया था । बलि के दो अनुपम तेजस्वी एवं पराक्रमी पुत्र कुम्भिल और चक्रवर्मा हुए । यह बलि पूर्व जन्म में कर्ण था । विरक्ष के भी कालक और वर नामक दो पुत्र थे । विष के अतिक्रूरकर्मा चार पुत्र हुए, जो श्राद्धहा, यज्ञहा, ब्रह्महा और पशुहा के नाम से विख्यात थे ॥ ३०-३३ ॥

क्रान्ता दनायुषापुत्रा वृत्रस्यापि निबोधत । जज्ञिरे श्वसनाद् घोराद् वृत्रस्येन्द्रेण युध्यतः ॥ ३४ ॥
भर्त्तारो मनसा ख्याता राक्षसाः सुमहाबलाः । शतं तानि सहस्राणि महेन्द्रानुचराः स्मृताः ॥ ३५ ॥
सर्वे ब्रह्मविदः सौम्या धार्मिकाः सूक्ष्ममूर्त्तयः। प्रजास्वन्तर्गताः सर्वे निवसन्ति सुधार्मिकाः ॥ ३६ ॥
दैत्यानां दानवानां च सर्गं एष प्रकीर्त्तितः । प्रवाह्यजनयत् पुत्रान् यज्ञै वै गायनोत्तमान् ॥ ३७ ॥
सत्त्वः सत्वात्मकश्चैव कलापश्चैव वीर्यवान् । कृतवीर्यो ब्रह्मचारी सुपाण्डुश्चैव सप्तमः ॥ ३८ ॥
पनश्चैव तरण्यश्च सुचन्द्रो दशमस्तथा । इत्येते देवगन्धर्वा विज्ञेयाः परिकीर्त्तिताः ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे कश्यपीयप्रजासर्गो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

* * *

दनायुषा के चार पुत्रों का विवरण मैंने कह दिया । अब वृत्र के वृत्तान्त को सुनिये । इन्द्र के साथ युद्ध करते समय वृत्र के घोर श्वास से अतिबलवान्, भरण-पोषण करने वाले, मानस नाम से विख्यात राक्षसों की उत्पत्ति हुई । जिनमें से एक लक्ष महेन्द्र के अनुचर कहे जाते हैं ॥ ३४-३५ ॥

वे सभी ब्रह्मज्ञानी, सौम्य, धार्मिक एवं सूक्ष्ममूर्तिधारी हैं । वे प्रकृति से परम धार्मिक एवं प्रजावर्ग में निवास करने वाले हैं । दैत्यों एवं दानवों की यह सृष्टि कथा कही जा चुकी । प्रवाही ने यज्ञ क्षेत्र में सुप्रसिद्ध गायक पुत्रों को उत्पन्न किया, जिनके नाम इस प्रकार हैं—सत्त्व, सत्त्वात्मक, कलाप, वीर्यवान्, कृतवीर्य, ब्रह्मचारी, सुपाण्डु, पन, तरण्य और सुचन्द्र । इन दसों पुत्रों को देवताओं का गन्धर्व कहा गया है ॥ ३६-३९ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में कश्यपीयप्रजासर्ग नामक सप्तम अध्याय (अरसठवाँ अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ७ ॥**

* * *

अथ अष्टमोऽध्यायः

कश्यपीयप्रजासर्गः

सूत उवाच

गन्धर्वाप्सरसः पुण्या मौनेयाः परिकीर्त्तिताः। चित्रसेनोग्रसेनश्च ऊर्णायुरनघस्तथा ॥ १ ॥
धृतराष्ट्रः पुलोमा च सूर्यवर्च्चास्तथैव च। युगपत्तृणपत्कालिर्दितिश्चित्ररथस्तथा ॥ २ ॥
त्रयोदशो भ्रमिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः। कलिः पञ्चदशश्चैव नारदश्चैव षोडशः ॥
इत्येते देवगन्धर्वा मौनेयाः परिकीर्त्तिताः ॥ ३ ॥
चतुस्त्रिंशद्यवीयस्यस्तेषामप्सरसः शुभाः। अन्तरा दारवत्या च प्रियमुख्या सुरोत्तमा ॥ ४ ॥
मिश्रकेशी तथा शाची पर्णिनी वाऽप्यलम्बुषा। मारीची पुत्रिका चैव विद्युद्वर्णा तिलोत्तमा ॥ ५ ॥
अद्रिका लक्षणा चैव देवी रम्भा मनोरमा। सुवरा च सुबाहुश्च पूर्णिता सुप्रतिष्ठिता ॥ ६ ॥
पुण्डरीका सुगन्धा च सुदन्ता सुरसा तथा। हेमसारा सुती चैव सुवृत्ता कमला च या ॥ ७ ॥
सुभुजा हंसपादा च लौकिक्योऽप्सरसस्तथा। गन्धर्वाप्सरसो ह्येता मौनेयाः परिकीर्त्तिताः ॥ ८ ॥

आठवाँ अध्याय

(उनसठवाँ अध्याय)

कश्यप की प्रजासृष्टि का वर्णन

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! पुण्यात्मा गन्धर्व एवं अप्सराएँ मुनि की सन्ततियाँ कही गयी हैं। चित्रसेन, उग्रसेन, ऊर्णायु, अनभ, धृतराष्ट्र, पुलोमा, सूर्यवर्चा, युगपत् तृणपत्, कालि, दिति, चित्ररथ, भ्रमिशिरा, पर्जन्य, कलि और नारद—ये सोलह मुनि के पुत्रदेव गन्धर्व कहे गये हैं ॥ १-३ ॥

इन सबों से छोटी चौंतीस कल्याणी अप्सराएँ हैं। जिनके नाम हैं—अन्तरा, दारवत्या, प्रियमुख्या, सुरोत्तमा, मिश्रकेशी, चाशी, वर्णिनी, अलम्बुषा, मारीची, पुत्रिका, विद्युद्वर्णा, तिलोत्तमा, अद्रिका, लक्षणा, रम्भा, मनोरमा, सुवरा, सुबाहु पुर्णिता, सुप्रतिष्ठिता, पुण्डरीका, सुगन्धा, सुदन्ता, सुरसा, हेमा, शारद्वती, सुवृत्ता, कमला, सुभुजा और हंसपादा। ये सभी लौकिक अप्सराएँ कहीं गई हैं। उपर्युक्त गन्धर्व एवं अप्सराएँ मुनि की सन्तान कही गयी हैं ॥ ४-८ ॥

गन्धर्वाणां दुहितरो मया याः परिकीर्त्तिताः। तासां नामानि सर्वासां कीर्त्त्यमानानि मे शृणु ॥ ९ ॥
सुयशा प्रथमा तासां गान्धर्वी तदनन्तरम् । विद्यावती चारुमुखी सुमुखी च वरानना ॥ १० ॥
तत्रेमे सुयशापुत्रा महाबलपराक्रमाः । प्रचेतसः सुता यक्षास्तेषां नामानि मे शृणु ॥ ११ ॥
कम्बलो हरिकेशश्च कपिलः काञ्चनस्तथा । मेघमाली तु यक्षाणां गण एष उदाहृतः ॥ १२ ॥
सुयशाया दुहितरश्चतस्त्रोऽप्सरसः स्मृताः । तासां नामानि वै सम्यग् ब्रुवतो मे निबोधत ॥ १३ ॥
लोहेयी त्वभवज्ज्येष्ठा भरता तदनन्तरम् । कृशाङ्गी च विशाला च रूपेणाप्रतिमा तथा ॥ १४ ॥
ताभ्योऽपरे यक्षगणाश्चत्वारः परिकीर्त्तिताः । उत्पादिता विशालेन विक्रान्तेन महात्मना ॥ १५ ॥
लोहेयो भरतेयाश्च कृशाङ्गेयश्च विश्रुताः । विशालेयश्च यक्षाणां पुराणे प्रथिता गणाः ॥ १६ ॥
इत्येतैरसुरैर्घोरैर्महाबलपराक्रमैः । लौकैर्यक्षगणैर्व्याप्ता लोकालोकविदांवराः ॥ १७ ॥
गन्धर्वाश्चाथ वालेया विक्रान्तेन महात्मना । उत्पादिता महावीर्या महागन्धर्वनायकाः ॥ १८ ॥
विक्रमौदार्यसम्पन्ना महाबलपराक्रमाः । तेषां नामानि वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ १९ ॥
चित्राङ्गदो महावीर्यश्चित्रवर्मा तथैव च । चित्रकेतुर्महाभागः सोमदत्तोऽथ वीर्यवान् ॥
तिस्रो दुहितरश्चैव तासां नामानि वक्ष्यते ॥ २० ॥
प्रथमा त्वग्निका नाम कम्बला तदनन्तरम् । तथा वसुमती नाम रूपेणाप्रतिमौजसः ॥ २१ ॥

गन्धर्वों की जिन पुत्रियों की चर्चा मैं पहले कर चुका हूँ, उन सबों का भी मैं नाम बतला रहा हूँ, आप सुनिये । उनमें सबसे प्रथम सुयशा है, उनके बाद गान्धर्वी है, इनके अतिरिक्त विद्यावती, चारुमुखी, सुमुखी और वरानना नामक हैं । उनमें से सुयशा के पुत्र महाबलवान् एवं पराक्रमी यक्षगण हुए जो प्रचेता के संयोग से उत्पन्न हुए, उनके नाम आप सुनिये ॥ ९-११ ॥

कम्बल, हरिकेश, कपिल, काञ्चन और मेघमाली—यक्षों के इस समूह को सुना चुका सुयशा की चार अप्सरा कन्याएँ कही गयी हैं, उनके नामों को मैं भलीभाँति जानता हूँ, बतला रहा हूँ, आप सुनिये । उनमें सबसे बड़ी लोहेयी थी, उससे जो छोटी थी उसका नाम था भरता । उसके बाद जो दो थीं उनके नाम कृशाङ्गी और विशाला थे । ये दोनों अनुपम सुन्दरी अप्सराएँ थीं । इन चारों कन्याओं से महाबलवान् पराक्रमी विशाल ने अन्य चार यक्षगणों को उत्पन्न किया, जो लोहेय, भरतेय, कृशाङ्गेय और विशालेय नाम से यक्षों के कथा-प्रसङ्ग में पुराणों में सुप्रसिद्ध हैं ॥ १२-१६ ॥

समस्त लोक की वार्ता जानने वालों में श्रेष्ठ मुनिगण! इन महाबलशाली, घोर पराक्रमी, अनेक यक्षगणों एवं असुरों से समस्त लोक व्याप्त हो गये । महात्मा विक्रान्त ने परम पराक्रमशील श्रेष्ठ गन्धर्वों के नायक वालेय नामक गन्धर्वों को उत्पन्न किया, जो विक्रम एवं औदार्य गुण से सम्पन्न, महाबलवान् एवं परम पराक्रमी थे, उनकी यथाक्रम नामावली में बतला रहा हूँ । वे महावीर चित्राङ्गद, चित्रवर्मा, महाभाग्यशाली चित्रकेतु एवं बलवान् सोमदत्त के नाम से विख्यात थे । तीन कन्याएँ थीं, जिनके नाम मुझसे सुनिये ॥ १७-२० ॥

पहली कन्या अग्निका नाम की थी, उससे छोटी का नाम कम्बला था, तीसरी वसुमती नामक थी । ये तीनों अनुपम रूपवती एवं तेजस्विनी थीं । इन तीनों कन्याओं से कुमार नामक गन्धर्व ने अन्य तीन गन्धर्व गणों

ताभ्यः परे कुमारेण गणा उत्पादितास्त्विमे । त्रयो गन्धर्वमुख्यानां विक्रान्ता युद्धदुर्मदाः ॥ २२ ॥
आग्नेयाः काम्बलेयाश्च तथा वसुमतीसुताः । तैर्गणैर्विविधैर्व्याप्तमिदं लोकचराचरम् ॥ २३ ॥
विद्यावन्तश्च तेनैव विक्रान्तेन महात्मना । उत्पादिता महाभागा रूपविद्याधनेश्वराः ॥ २४ ॥
तेषामुदीर्णवीर्याणां गन्धर्वाणां महात्मनाम् । नामानि कीर्त्त्यमानानि शृणुध्वं मे विवक्षतः ॥ २५ ॥
हिरण्यरोमा कपिलः सुलोमा मागधस्तथा । चन्द्रकेतुश्च वै गाङ्गो गोदश्चैव महाबलः ॥ २६ ॥
महविद्यावदातानां विक्रान्तानां तपस्विनाम् । इत्येवमादिर्हि गणो द्वे चान्ये च सुलोचने ॥ २७ ॥
शिवा च सुमनाश्चैव ताभ्यामपि महात्मना । उत्पादिता विश्रवसा विद्याचरणगोचराः ॥ २८ ॥
शैवेयाश्चैव विक्रान्तास्तथा सौमनसो गणाः । एतैर्व्याप्तमिमं लोकं विद्याधरगणैस्त्रिभिः ॥ २९ ॥
एभ्योऽनेकानि जातानि अम्बरान्तरचारिणाम् । लोके गणशतान्येव विद्याधरविचेष्टितात् ॥ ३० ॥
अश्वमुख्याश्च तेनैव विक्रान्तेन महात्मना । उत्पादिता ह्यश्वमुखाः किन्नरांस्तान्निबोधत ॥ ३१ ॥
समुद्रः सेनः कालिन्दो महानेत्रो महाबलः । सुवर्णघोषः सुग्रीवो महाघोषश्च वीर्यवान् ॥ ३२ ॥
इत्येवमादिर्हि गणः किन्नराणां महात्मनाम् । हयाननानां विद्वद्भिर्विस्तीर्णः परिकीर्त्त्यते ॥ ३३ ॥
तथा समुत्थितेनैव विक्रान्तेन महात्मना । उत्पादिता नरमुखाः किन्नराः शांशपायनाः ॥ ३४ ॥
हरिषेणः सुषेणश्च वारिषेणश्च वीर्यवान् । रुद्रदत्तेन्द्रदत्तौ च चन्द्रद्रुममहाद्रुमौ ॥ ३५ ॥
बिन्दुश्च बिन्दुसारश्च चन्द्रवंशाश्च किन्नराः। इत्येते किन्नराः श्रेष्ठा लोके ख्याताः सुशोभनाः॥ ३६ ॥

को उत्पन्न किया, जो प्रमुख गन्धर्व माने गये हैं । वे परम वीर तथा संग्राम भूमि में भयानक युद्धकौशल दिखाने वाले थे ॥ २१-२२ ॥

आग्नेय, काम्बलेय और वसुमती सुतों के नाम से उनकी ख्याति हुई । इन विविध गन्धर्वगणों से यह समस्त चराचर जगत् व्याप्त हो गया। उपर्युक्त महात्मा विक्रान्त ने अन्यान्य महाभाग्यशाली, विद्यावान, रूप, विद्या एवं सम्पत्तिवाले सबसे समृद्ध गन्धर्वों को भी उत्पन्न किया था । उन महात्मा, परमपराक्रमी गन्धर्वों के नामों को बतला रहा हूँ आप लोग सुनिये ॥ २३-२५ ॥

उनके नाम हिरण्यरोमा, कपिल, सुलोमा, मागध, चन्द्रकेतु, गाङ्ग एवं महाबलवान् मोद थे । ये सब गन्धर्वगण महाविद्वान, परमतपस्वी एवं विक्रमशील थे । इनके अतिरिक्त दो अन्य सुंदर नेत्रोंवाली शिवा और सुमना नामक दो कन्याएँ थी, जिनमें महात्मा विश्रवा ने शैवेय, विक्रान्त और सौमनस नामक गणों को उत्पन्न किया, जो परमविद्यावान् थे । इन तीनों विद्याधरों से यह लोक व्याप्त हो गया । इन सब से अनेक सौ आकाशचारी विद्याधर गण लोक में उत्पन्न हुए, जो विद्याधरों की चेष्टा के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए थे । उपर्युक्त महात्मा विक्रान्त ने ही अश्व मुखधारी जिन किन्नरों को उत्पन्न किया, उन्हें सुनिये । समुद्रसेन, कालिन्द, महानेत्र, महाबल, सुवर्णघोष, सुग्रीव, पराक्रमी महाघोष आदि महात्मा किन्नरों के गण हैं, जो अश्वमुखधारी नाम से प्रसिद्ध हैं, विद्वान् लोग इन किन्नरों का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं ॥ २६-३३ ॥

हे शांशपायन आदि प्रमुख ऋषिगण ! उन्हीं महात्मा विक्रान्त के संयोग से मनुष्यमुखधारी किन्नरों की भी उत्पत्ति हुई । जिनके नाम हरिषेण, सुषेण, बलवान् वारिषेण, रुद्रदत्त, इन्द्रदत्त, चन्द्रद्रुम, महाद्रुम, बिन्दु और

नृत्यगीतप्रगल्भानामेतेषां द्विजसत्तमाः । लोके गणशतान्येव किन्नराणां महात्मनाम् ॥ ३७ ॥
यक्षा यक्षोपशान्तश्च लौहेया रूपशालिनी । दुहिता सुरविन्देति प्रकाशा सिद्धसम्मता ॥ ३८ ॥
उपायाकेतनस्याहि स्वयमुत्पादितो गणः । करालकेन भूतानां तेषां नामानि मे शृणु ॥ ३९ ॥
भूता भूतगणैर्ज्ञेया आवेशकनिवेशकाः । इत्येवमादिर्हि गणो भूमिगोचरकः स्मृतः ॥ ४० ॥
विज्ञेय इह लोकेऽस्मिन् भूतानां भूतनायकः । ये उत्कृष्टा भवन्त्येषामम्बरान्तरचारिणाम् ॥
वृक्षाग्रमात्रमाकाशं ते चरन्ति न संशयः ॥ ४१ ॥
तत्रेमे देवगन्धर्वाः प्रायेण कथिता मया । देवोपस्थाननिरता विज्ञेयास्ते यशस्विनः ॥ ४२ ॥
नारायणं सुरगुरुं विरजं पुष्करेक्षणम् । हिरण्यगर्भं च तथा चतुर्वक्त्रं स्वयम्भुवम् ॥ ४३ ॥
शङ्करं च महादेवमीशानं च जगत्प्रभुम् । इन्द्रपूर्वांस्तथादित्यान् रुद्रांश्च वसुभिः सह ॥ ४४ ॥
उपतस्थुः सगन्धर्वा नृत्यगीतविशारदाः । त्रिदशाः सर्वलोकस्या निपुणा गीतवादिनः ॥ ४५ ॥
हंसो ज्येष्ठः कनिष्ठोऽन्यो मध्यमौ च हहा हुहुः। चतुर्थो धिषणश्चैव ततो वासिरुचिस्तथा॥ ४६ ॥
षष्ठस्तु तुम्बुरुस्तेषां ततो विश्वावसुः स्मृतः । इमाश्चाप्सरसो दिव्या विहिताः पुण्यलक्षणाः॥ ४७ ॥
सुषुवेऽष्टौ महाभागा वरिष्ठा देवपूजिताः । अनवद्यामनवशामन्वतां मदनप्रियाम् ॥
अरूपां सुभगां भासीमरिष्टाऽष्टौ व्यजायत ॥ ४८ ॥

बिन्दुसार हैं । ये चन्द्रवंशीय किन्नर हैं । ये सुन्दर एवं श्रेष्ठ किन्नरगण लोक में प्रसिद्ध हैं ॥ ३४-३६ ॥

हे द्विजवर्यवृन्द ! नृत्य एवं गीत में प्रवीण इन महात्मा किन्नरों के गण सैकड़ों की संख्या में उत्पन्न हुए। यक्षोपशान्त (?) यक्षगण लौहेय नाम से प्रसिद्ध हुए । सुन्दरी सुरविन्दा नामक कन्या, जो सिद्धों की सम्माननीय एवं प्रकाशयुक्त थी । करालक ने उपायाकेतन (?) नामक भूतों के गणों को स्वयं उत्पन्न किया था, उनके नामों को मुझसे सुनिये । वे भूतगण आवेशक, निवेशक आदि नामों से पृथ्वी पर दिखायी पड़ने वाले माने जाते हैं । इन आकाश के मध्य में विचरण करनेवाले भूतगणों में जो श्रेष्ठ होते हैं, उन्हें इस लोक में भूतनायक नाम से जानना चाहिए, वे वृक्षों के शिखर पर्यन्त आकाश प्रदेश में विचरण करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३७-४१ ॥

इस प्रसङ्ग में प्रायः देवताओं व गन्धर्वो का वर्णन किया जा चुका । उन यशस्वी देवगन्धर्वों को देवताओं की पूजा में निरत रहने वाला समझना चाहिए । ये नृत्य एवं गीत में निपुण, सभी लोकों में निवास करनेवाले, व्यवहारकुशल देवगण इन गन्धर्वों के साथ सुरगुरु कमलनेत्र, सत्त्वगुणमय भगवान् नारायण, स्वयं उत्पन्न होनेवाले चतुर्मुख हिरण्यगर्भ ब्रह्मा, चराचर जगत् के प्रभु एवं कल्याणकर्त्ता ईशान महादेव, इन्द्र, आदित्यगण, रुद्रगण एवं वसुगण इन सबकी उपासना करते थे ।

महाभाग्यशालिनी देवताओं द्वारा पूजित वरिष्ण ने आठ पुत्रों को उत्पन्न किया । जिनमें सबसे ज्येष्ठ का नाम हंस था, कनिष्ठ का नाम अन्य था, हहा हुहु ये दोनों मंझले थे । धिषण चौथा था, इसके बाद वासिरुचि की उत्पत्ति हुई, इनमें तुम्बुरु छठवाँ पुत्र था, इसके बाद विश्वावसु नामक पुत्र हुआ । पुण्यलक्षणों से समन्वित दिव्य अप्सराएँ इनकी अर्धाङ्गिनी के रूप में थीं, जिनके नाम वरिष्ठा, अनवद्या, अनवशा, अन्वता, मदनप्रिया, अरूपा, सुभगा और भासी थे । इन सबको अरिष्टा ने उत्पन्न किया ॥ ४२-४८ ॥

मनोवती सुकेशा च तुम्बुरोस्तु सुते उभे । पञ्चचूडास्त्विमा दिव्या दैविक्योऽप्सरसो दश ॥ ४९ ॥
मेनका सहजन्या च पर्णिनी पुञ्जिकस्थला । घृतस्थला घृताची च विश्वाची पूर्वचीत्यपि ॥
प्रम्लोचेत्यभिविख्यातानुम्लोचन्ती तथैव च ॥ ५० ॥
अनादिनिधनस्याथ जज्ञे नारायणस्य या । उरोः सर्वानवद्याङ्गी उर्वश्येकादशी स्मृता ॥ ५१ ॥
मेनस्य मेनका कन्या ब्रह्मणो हृष्टचेतसः । सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यो महायोगाश्च ताः स्मृताः ॥ ५२ ॥
गणा अप्सरसां ख्याताः पुण्यास्ते वै चतुर्द्दश । आहूताः शोभयन्तश्च गणा ह्येते चतुर्द्दश ॥ ५३ ॥
ब्रह्मणो मानसाः कन्याः शोभयन्त्यो मनोः सुताः । वेगवन्त्यस्त्वरिष्टाया ऊर्ज्जायाश्चाग्निसम्भवाः ॥ ५४ ॥
आयुष्मन्त्यश्च सूर्यस्य रश्मिजाताः सुभास्वराः । गर्भस्तेजश्च सोमस्य ज्ञेयास्ते कुरवः शुभाः ॥ ५५ ॥
यज्ञोत्पन्नाः शुभा नाम ऋक्सामान्यास्तु । वारिजा ह्यमृतोत्पन्ना अमृता नामतः स्मृताः ॥ ५६ ॥
वायूत्पन्ना मुदा नाम भूमिजाता भवास्तु वै । विद्युतश्च रुचो नाम मृत्योः कन्याश्च भैरवाः ॥ ५७ ॥
शोभयन्त्यः कामगुणाः गणाः प्रोक्ताश्चतुर्दश । सेन्द्रोपेन्द्रैः सुरगणैः रूपातिशयनिर्मिताः ॥ ५८ ॥

तुम्बुरु की मनोवती और सुकेशा नामक दो पुत्रियाँ हुई । इनके अतिरिक्त ये निम्नलिखित पंचचूड एवं दैविकी नाम से विख्यात दस दिव्यगुण युक्त स्वर्गीय अप्सराएँ हैं, जिनके नाम हैं मेनका, सहजन्या, पणिनी, पुञ्जिकस्थला, घृतस्थला, घृताची, विश्वाची, पूर्वची, प्रम्लोचा और अनुम्लोचन्ती । इन दसों दिव्य अप्सराओं के अतिरिक्त अनादिनिधन (जिनका कभी जन्म-मरण नहीं होता) भगवान् नारायण के ऊरुभाग से सभी अंगों से निर्दोष एवं अनुपम सुन्दरी उर्वशी नामक जो एक अप्सरा उत्पन्न हुई वह स्वर्ग की ग्यारहवीं अप्सरा कही जाती है । ब्रह्मज्ञानपरायण, प्रसन्नचित रहनेवाले मेन की कन्या मेनका थी—सभी अप्सराएँ ब्रह्मवादिनी एवं योगाभ्यास में सर्वदा निरत रहनेवाला कही जाती हैं ॥ ४९-५२ ॥

उन अप्सराओं के चौदह पवित्र गण प्रसिद्ध हैं । उन चौदह में से दो गणों के नाम (१) आहूत और (२) शोभयन्त हैं । (आहूत गण की अप्सराएँ) ब्रह्मा की मानस कन्याएँ हैं, शोभयन्त मनु की कन्याएँ हैं । (३) वेगवन्त नामक गण की अप्सराएँ अरिष्टा से उत्पन्न हुई हैं । ऊर्जा के संयोग से (४) अग्निसम्भव नामक अप्सराओं के गण की उत्पत्ति हुई । सूर्य की किरणों से उत्पन्न होनेवाली (५) आयुष्मती नामक अप्सराएँ अति प्रकाशमान शरीरवाली थीं । चन्द्रमा का तेज जो गर्भ में प्रविष्ट हुआ, उससे कल्याणप्रदायिनी (६) कुरु नामक अप्सराओं को उत्पन्न हुआ समझिये । यज्ञ से उत्पन्न होनेवाली अप्सराएँ (७) भाग शुभा नामक हैं, ऋक् एवं साम से उत्पन्न होनेवाली अन्य अप्सराओं के गण (८) वह्नि नाम से प्रसिद्ध हुए । अमृत से उत्पन्न होनेवाली अप्सराएँ (९) वारिजा नाम से विख्यात हैं, उन्हें अमृत नाम से भी स्मरण किया जाता है ॥ ५३-५६ ॥

वायु से उत्पन्न होनेवाली अप्सराएँ (१०) सुदा नामक हैं, भूमि से उत्पन्न होनेवाली को (११) भवा नाम से जानते हैं । विद्युत् से उत्पन्न होनेवाली अप्सराएँ (१२) रुचा नामक हैं, मृत्यु की कन्याएँ जो अप्सरा हुईं, उनकी (१३) भैरवा नाम से ख्याति हुई । काम की कन्याएँ जो अप्सरा हुई, उन्हें (१४) शोभयन्ती नाम से जानते हैं । अप्सराओं के ये चौदह गण कहे जाते हैं । इन्द्र एवं विष्णु प्रभृति प्रमुख देवगणों ने इन अप्सराओं को स्वरूप की अतिशयता प्रदान कर निर्मित किया है ॥ ५७-५८ ॥

शुभरूपा महाभागा दिव्या नारी तिलोत्तमा । ब्रह्मणश्चाग्निकुण्डाच्च देवनारी प्रभावती ॥
रूपयौवनसम्पन्ना उत्पन्ना लोकविश्रुता ॥ ५९ ॥
वेदीतलसमुत्पन्ना चतुर्वक्त्रस्य धीमतः । नाम्ना वेदवती नाम सुरनारी महाप्रभा ॥ ६० ॥
तथा यमस्य दुहिता रूपयौवनशालिनी । वरहेमविभा हेमा देवनारी सुलोचना ॥ ६१ ॥
इत्येते बहुसाहस्त्रं भास्वरा ह्यप्सरोगणाः । देवतानामृषीणां च पत्न्यस्ता मातरश्च ह ॥ ६२ ॥
सुगन्धाश्चम्पवर्णाश्च सर्वाश्चाप्सरसः समाः । सम्प्रयोगे तु कान्तेन माद्यन्ति मदिरां विना ॥
तासामाप्यायते स्पर्शादानन्दश्च विवर्द्धते ॥ ६३ ॥
विनतायास्तु पुत्रौ द्वावरुणो गरुडश्च ह । षट्त्रिंशत्तु स्वसारश्च यवीयस्यस्तु ताः स्मृताः ॥ ६४ ॥
गायत्र्यादीनि च्छन्दांसि सौपर्णेयाश्च पक्षिणः । इत्येवाहानि सर्वाणि दिक्षु सन्निहितानि च ॥ ६५ ॥
कद्रूर्नागसहस्त्रं वै चराचरमजीजनत् । अनेकशिरसां तेषां खेचराणां महात्मनाम् ॥
बहुधानामधेयानां प्रायशस्तु निबोधत ॥ ६६ ॥
तेषां प्रधाननागाश्च शेषवासुकितक्षकाः । सकर्णीरश्च जम्भश्च अञ्जनो वामनस्तथा ॥ ६७ ॥
ऐरावतमहापद्मौ कम्बलाश्वतरावुभौ । ऐलपत्रश्च शङ्खश्च कर्कोटकधनञ्जयौ ॥ ६८ ॥
महाकर्णो महानीलो धृतराष्ट्रबलाहकौ । कुमारः पुष्पदन्तश्च सुमुखो दुर्मुखस्तथा ॥ ६९ ॥
शिलीमुखो दधिमुखः कालीयः शालिपिण्डकः। बिन्दुपादः पुण्डरीको नागश्चापूरणस्तथा ॥ ७० ॥

इन सब में महाभाग्यशालिनी सुर-नारी तिलोत्तमा परम सुन्दर कही जाती है । स्वरूप एवं यौवन से सुसमृद्ध लोकविख्यात देवनारी प्रभावती ब्रह्मा के अग्निकुण्ड से उत्पन्न कही जाती है । परमकान्तियुक्त सुरनारी वेदवती बुद्धिमान् चतुर्मुख ब्रह्मा जी के वेदी तल से उत्पन्न हुई । स्वरूप एवं यौवन से दोनों सुसम्पन्न हेमा नामक सुन्दरी जिसके शरीर की आभा तपाये हुए सुवर्ण के समान मनोहर थी एवं जिसकी आँखें अति सुन्दर थीं, यम की पुत्री थी । इस प्रकार की अनेक सहस्त्र तेजस्विनी अप्सराओं के समूह हुए, जो विविध देवताओं एवं ऋषियों की पत्नी एवं माता हुईं । ये सभी अप्सराएँ एक समान चम्पा के पुष्प की भाँति गौरवर्ण की एवं सुगन्धित शरीरवाली थीं, बिना मद्यपान किये ही ये अपने प्रियतम के सहवास में मदोन्मत्त की भाँति हो जाती हैं । इनके स्पर्श करने से प्रियजन सन्तुष्ट होकर आनन्द से विभोर हो उठते हैं ॥ ५९-६३ ॥

विनता के अरुण और गरुड़ नामक दो पुत्र हुए । इन दोनों की सहोदरा छत्तीस छोटी बहनें भी कही जाती हैं । गायत्री आदि छन्द, पंख से उड़नेवाले समस्त पक्षीगण, विभिन्न दिशाओं में सन्निहित सभी हव्यवाहगण—ये सब भी विनता ही के गर्भ से प्रादुर्भूत हुए ॥ ६४-६५ ॥

कद्रू ने चलने वाले एवं न चलने वाले सहस्त्रों नागों को उत्पन्न किया । उन महात्मा आकाशगामी, अनेक सिरों वाले नागों में से कुछ के नामों को मैं बतला रहा हूँ—आप सुनिये ॥ ६६ ॥

उनमें से प्रधान नाग जो थे, वे शेष, वासुकि, तक्षक, सकर्णी, जम्भ, अञ्जन, वामन, ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, ऐलपत्र, शंख, कर्कोटक, धनंजय, महाकर्ण, महानील, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुमार, पुष्पदन्त, सुमुख, दुर्मुख, शिलीमुख, दधिमुख, कालीय, शालि पिण्डक, बिन्दुपाद, पुण्डरीक, आपूरण, कपिल, अम्बरीष

कपिलश्चाम्बरीषश्च धृतपादश्च कच्छपः । प्रह्लादः पद्मचित्रश्च गन्धर्वोऽथ नमस्विकः ॥ ७१ ॥
नहुषः खररोमा च मणिरित्येवमादयः । काद्रवेया मया ख्याताः खशायांस्तु निबोधत ॥ ७२ ॥
खशा विजज्ञे पुत्रौ द्वौ विश्रुतौ पुरुषादकौ । ज्येष्ठं पश्चिमसंख्यायां पूर्वस्यां मनुजास्तथा ॥ ७३ ॥
विलोहितं विकर्णं च पूर्वं साऽजनयत् सुतम् । चतुर्भुजं चतुष्पादं द्विमूर्द्धानं द्विधागतिम् ॥ ७४ ॥
सर्वाङ्गकेशं स्थूलाङ्गं तुङ्गनासं महोदरम् । स्थूलशीर्षं महाकर्णं मुञ्जाकेशं मनोरथम् ॥ ७५ ॥
हस्त्योष्ठं दीर्घजङ्घं च अश्वदंष्ट्रं महाहनुम् । रक्तजिह्वं जटाक्षं च स्थूलास्यं दीर्घनासिकम् ॥ ७६ ॥
गुह्यकं शितिकर्णं च महानन्दं महामुखम् । एवंविधं खशापुत्रं विजज्ञे साऽतिभीषणम् ॥ ७७ ॥
तस्यानुजं द्वितीयं तु खशा चैव व्यजायत । त्रिशीर्षं च त्रिपादं च त्रिहस्तं कृष्णलोचनम् ॥ ७८ ॥
ऊर्ध्वकेशं हरिच्छ्मश्रुं शिलासंहननं दृढम् । ह्रस्वकायं सुबाहुं च महाकायं महाबलम् ॥ ७९ ॥
आकर्णदारितास्यं च लम्बभ्रूं स्थूलनासिकम् । स्थूलोष्ठमष्टदंष्ट्रं च द्विजिह्वं शङ्कुकर्णकम्॥ ८० ॥
पिङ्गलोद्वृत्तनयनं जटिलं पिङ्गलं तथा । महाकर्णं महोरस्कं कटिहीनं कृशोदरम् ॥
नखिनं लोहितग्रीवं सा कनिष्ठं प्रसूयते ॥ ८१ ॥

धृतपाद, कच्छप, प्रह्लाद, पद्मचित्र, गन्धर्व, मनस्विक, नहुष, खररोमा और मणि आदि नामों से प्रसिद्ध हैं । कद्रू के पुत्रों का वर्णन किया जा चुका । अब खशा के पुत्रों का विवरण सुनिये ॥ ६७-७२ ॥

खशा ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया, जो पुरुषादक अर्थात् मनुष्यों का भक्षण करने वाले थे । पश्चिम संख्या में ज्येष्ठ और पूर्व संख्या में मनुजों की उत्पत्ति हुई ॥ ७३ ॥

सर्वप्रथम खशा ने विलोहित एवं विकर्ण नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो चतुर्भुज, चतुष्पाद, द्विमूर्धा, द्विधागति (दो प्रकार से चलने वाला), सर्वाङ्गकेश (सभी अंगों में केश संयुक्त), स्थूलाङ्ग (माटे अंगों वाला), तुङ्गनास (ऊँची नासिका वाला), महोदर, स्थूलशीर्ष, महाकर्ण, मुञ्जकेश (मूँज की तरह पीले वर्ण के केशोंवाला), मनोरथ, हस्त्योष्ठ (हाथी के समान ओठ वाला), दीर्घजङ्घ, अश्वदंष्ट्र (घोड़ों के समान दाढों वाला), महाहनु (लम्बी दाढ़ी वाला), रक्तजिह्व, जटाक्ष, स्थूलास्य (मोटे मुखवाला), दीर्घनासिक, गुह्यक (बुरा शब्द करनेवाला), शितिकर्ण (काले या चितकबरे रंग के कानों वाला), महानन्द एवं महामुख था । इस प्रकार के अति भयानक पुत्र को खशा ने उत्पन्न किया ॥ ७४-७७ ॥

इसके उपरान्त इसके दूसरे सहोदर छोटे भाई को भी खशा ने उत्पन्न किया जो त्रिशीर्ष (तीन शिरों वाला), त्रिपाद, त्रिहस्त, कृष्णलोचन, ऊर्ध्वकेश, हरिच्छ्मश्रु (हरे वर्ण की मोंछ वाला) शिलासंहनन (शिला के समान पुष्ट शरीर वाला), ह्रस्वकाय (छोटे कद का) सुबाहु, महाकाय, महाबलिष्ठ, कानपर्यन्त फटे हुए भयानक मुखवाला, लम्बी भौंहों वाला, स्थूल नासिका वाला, स्थूल ओष्ठ वाला, आठ दाढों वाला, दो जीभ वाला, शंकु (कील) के समान कानों वाला, पिंगल वर्ण के उठे हुए नेत्रों वाला, जटाधारी, पीले शरीर वाला, महाकर्ण, महान वक्षःस्थल, कटिरहित, कृश उदरयुक्त, नखधारी लालवर्ण के कंधों वाला था । ऐसे महाभीषण कनिष्ठ पुत्र को खशा ने उत्पन्न किया ॥ ७८-८१ ॥

सद्यः प्रसूतमात्रौ तु विवृद्धौ च प्रमाणतः । उपभोगसमर्थाभ्यां शरीराभ्यामुपस्थितौ ॥
सद्योजातविवृद्धाङ्गौ मातरं पर्यभूष्यताम् ॥ ८२ ॥
ज्यायांस्तयोस्तु यः क्रूरो मातरं सोऽभ्यकर्षत । अब्रवीन्मातरायाहि भक्षार्थे क्षुधयाऽर्दितः ॥ ८३ ॥
न्यषेधयत् पुनर्ह्येनं ज्यायांसं तु कनिष्ठकः। अब्रवीत् सोऽसकृत्तं वै रक्षेमा मातरं खशाम् ॥
बाहुभ्यां परिगृह्यैनं मातरं तां व्यमोचयत् ॥ ८४ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु प्रादुर्भूतस्तयोः पिता । तौ दृष्ट्वा विकृताकारौ वसतां हीत्यभाषत ॥ ८५ ॥
तौ तु तं पितरं दृष्ट्वा बलवन्तौ त्वरान्वितौ । मातुरेव पुनश्चाङ्के प्रलपेतां स्वमायया ॥ ८६ ॥
अथोऽब्रवीदृषिर्भार्यामावाभ्यामुक्तवत्यसि । पूर्वमाचक्ष्व तत्त्वेन तथैवाभ्यां व्यतिक्रमम् ॥ ८७ ॥
मातुलं भजते पुत्रः पितॄन् भजति कन्यका । यथाशीला भवेन्माता तथाशीलो भवेत् सुतः॥ ८८ ॥
यद्वर्णा तु भवेद्भूमिस्तद्वर्णं सलिलं ध्रुवम् । मातॄणां शीलदोषेण तथा शीलगुणैः पुनः ॥
विभिन्नास्तु प्रजाः सर्वास्तथा ख्यातिवशेन च ॥ ८९ ॥
बलशीलादिभिस्तासामदितिर्धर्मतत्परा । धर्मशीलादिभिश्चैव प्रबोधबलशालिनी ॥ ९० ॥
गीतशीला तथाऽरिष्टा मायाशीला दनुः स्मृताः । विनता तु पुनर्देवी वैहायसगतिप्रिया ॥ ९१ ॥

ये दोनों पुत्र उत्पन्न होते ही अपने प्रमाण से बहुत अधिक बढ़ गये और तुरन्त ही उपयोग में समर्थ शरीर सम्पन्न होकर उपस्थित हुए। इस प्रकार अति शीघ्र लम्बे शरीर एवं अंगोवाले उन दोनों ने अपनी माता को अलंकृत किया। इन दोनों पुत्रों में जो ज्येष्ठ था, वह बड़ी क्रूर प्रकृति का था। उसने अपनी माता को ही पीटना प्रारम्भ किया और बोला—माता मैं क्षुधा से पीड़ित हूँ। मेरे भक्षण के लिए तुम यहाँ आओ। अपने ज्येष्ठ भाई के इस दुर्व्यवहार को देख कर छोटे भाई ने निषेध किया और अनेक बार कहा—अरे, मेरी माता खशा को तू छोड़ दे। इस प्रकार की बातें करते हुए उसने अपनी दोनों बाहुओं से पकड़कर अपनी माता को छुड़ा दिया ॥ ८२-८४ ॥

ठीक इसी अवसर पर उन दोनों के पिता (कश्यप) यहाँ उपस्थित हो गये और उन दुराचारी पुत्रों की यह करतूत देखकर बोले—ठहरो। इस प्रकार उन दोनों बलवानों ने पिता को आया देखकर अपनी माया के बल से (अल्पकाय हो) शीघ्र ही माता की गोद में पुनः लिपट गये ॥ ८५-८६ ॥

तब ऋषि अपनी पत्नी से बोले, हमें सबसे पहले यह सच बतलाओ कि तुम्हारे इन दोनों पुत्रों ने तुमसे क्या दुर्व्यवहार अथवा कैसी अनीतिपूर्ण बातें की हैं, और तुमने इन्हें क्या उत्तर दिया है। पुत्र अपने माता के स्वभाव एवं गुणों का अनुसरण करता है। कन्या अपने पिता के स्वभाव एवं गुणादि को प्राप्त करती है। जिस प्रकार की माता होती है, उसका पुत्र भी उसी प्रकार के स्वभाव का होता है, क्योंकि जैसा पृथ्वी का रंग होता है उस पर रहनेवाला जल निश्चय ही उसी रंग का होता है। माता के शील-सदाचारगत अवगुणों के तथा गुणों के कारण ही भिन्न-भिन्न प्रकार की सन्ततियाँ उत्पन्न होती हैं। वंश की ख्याति के वश होकर भी सन्ततियों के स्वभाव में कुछ अन्तर हो जाता है ॥ ८७-८९ ॥

हमारी सभी पत्नियों में अदिति बल, शील आदि सद्गुणों से युक्त तथा धर्म में सर्वदा निरत रहनेवाली है। धर्म शीलादि सद्गुणों में उसका ज्ञान एवं पराक्रम दोनों बहुत बढ़े चढ़े हैं। अरिष्टा गीतों को भली-भाँति जानती

तपोमयेन शीलेन सुरभिः समलंकृता । क्रोधशीला तथा कद्रुः क्रोधेनासुखशीलका ॥ ९२ ॥
दनायुषायाः शीलं वै वैरानुग्रहलक्षणम् । त्वं च देवि महाभागे क्रोधशीला मतासि मे ॥ ९३ ॥
इत्येतानि सशीलानि स्वभावाल्लोकनान्नृणाम् । कर्मतो यत्नतो बुद्ध्या रूपतो बलतस्तथा ॥
क्षमातश्चैव भिन्नानि भावितार्थबलेन च ॥ ९४ ॥
रजःसत्त्वतमोवृत्तेर्विश्वरूपाः स्वभावतः । मातुलं त्वनुयातास्ते पुत्रका गुणवृत्तिभिः ॥ ९५ ॥
इत्येवमुक्त्वा भगवान् खशामप्रतिमां तदा । पुत्रावाहूय साम्ना वै चक्रे सोममभीतयः ॥ ९६ ॥
ताभ्यां च यत् कृतं तस्यास्तदाचष्ट तदा खशा । मात्रा यथा समाख्यातं कर्म ताभ्यां पृथक् पृथक् ॥
तेन धात्वर्थयोगेन तत्त्वदर्शी चकार ह ॥ ९७ ॥
यक्ष इत्येष धातुर्वै खादने कृषणे च सः । यक्षयेत्युक्तवान् यस्मात् तस्माद्यक्षो भवत्ययम् ॥ ९८ ॥
रक्ष इत्येष धातुर्यः पालने स विभाव्यते । उक्तवांश्चैव यस्मात्तु रक्ष मे मातरं खशाम् ॥
नाम्नाऽयं राक्षसस्तस्मात् भविष्यति तवात्मजः ॥ ९९ ॥
स तदा तद्विधान् दृष्ट्वा विस्मितः परिमृग्य च । तयोः प्रादिशदाहारं प्रजापतिरसृग्वसे ॥ १०० ॥

है, दनु को लोग माया छल आदि की भी जानकार बतलाते हैं, देवी विनता आकाश में उड़ने को बहुत पसन्द करती है, सुरभि अपने तपोमय जीवन से बहुत अधिक शोभा पाती है, कद्रू बड़ी क्रोध करनेवाली है, उसे क्रोध करने में ही सुख मिलता है ॥ ९०-९२ ॥

दनायुषा का आचरण वैर एवं अनुग्रह दोनों प्रकार के विपरीत स्वभावों से संयुक्त है, अर्थात् समय-समय पर वह क्रोध एवं दया दोनों का व्यवहार करती है, किन्तु हे देवि ! महाभाग्यशालिनि ! तू तो मेरी समझ से अधिक क्रोध करने वाली हो ॥ ९३ ॥

ये अपने आचरण मनुष्यों के विविध स्वभावों के देखने से, कर्म से, यत्न करने से, बुद्धि से, रूप से, बल से, क्षमा से एवं भवितव्यता के वश होकर भिन्न हो जाते हैं, विश्व के प्राणियों के स्वभाव राजसिक, सात्त्विक एवं तामसिक प्रकृति के होते हैं। तेरे पुत्रगण गुणों एवं आचरणों में अपने मामा के अनुगामी हैं। भगवान् कश्यप ने अनुपम सुन्दरी खशा से इस प्रकार की बातें कर सान्त्वना भरे स्वर से दोनों पुत्रों को बुलाया और उन्हें भयरहित किया (?) तदनन्तर खशा ने अपने साथ उन दोनों पुत्रों ने जैसा व्यवहार किया था, सब कह सुनाया। माता ने उनके व्यवहारों को पृथक्-पृथक् जैसा बतलाया उसी के अनुरूप धातु के अर्थ का आश्रय लेकर तत्त्वदर्शी कश्यप ने उनका नामकरण किया ॥ ९४-९७ ॥

'यक्ष' यह धातु भक्षण करने तथा कर्षण (खींचने) के अर्थ में प्रयुक्त होता है, यतः इस (ज्येष्ठ पुत्र) ने यक्षयति (भक्षण करता है अथवा खींचता है) का उच्चारण किया था अतएव यह यक्ष के नाम से विख्यात हो। 'रक्ष' यह जो धातु है वह पालन करने के अर्थ में प्रयुक्त एवं प्रसिद्ध है, यतः तुम्हारे दूसरे पुत्र ने मेरी माता खशा की रक्षा करो, ऐसा कहा था, अतः इसका नाम राक्षस होगा ॥ ९८-९९ ॥

इस प्रकार उन दोनों बालकों के पिता कश्यप ने उस समय नामकरण करने के बाद उन्हें भूखा जान, माता के साथ किये गये उनके व्यवहारों को सोच-समझकर एवं भवितव्यता को वैसी ही जानकर उन दोनों को क्षुधा से

पिता तौ क्षुधितौ दृष्ट्वा वरं चेमं तयोर्ददौ । युवयोर्हस्तसंस्पर्शो नक्तमेव तु सर्वशः ॥ १०१ ॥
नक्ताहारविहारौ च दिवा स्वप्नोपभोगिनौ । नक्तं चैव बलीयांसौ दिवासुप्तावुभौ युवाम् ॥ १०२ ॥
मातरं रक्षतं चैव धर्मश्चैवानुशिष्यताम् । इत्युक्त्वा कश्यपः पुत्रौ तत्रैवान्तरधीयत ॥ १०३ ॥
गते पितरि तौ वीरौ निसर्गादिव दारुणौ । विपर्ययेण वर्त्तन्तौ किम्भक्षौ प्राणिहिंसकौ ॥ १०४ ॥
महाबलौ महासत्त्वौ महाकायौ दुरासदौ । मायाविनौ च दृश्यौ तावन्तर्द्धानगतावुभौ ॥ १०५ ॥
तौ कामरूपिणौ घोरौ विकृताङ्गौ स्वभावतः । रूपानुरूपैराहारैः प्रभवेतामुभावपि ॥ १०६ ॥
देवासुरानृषींश्चैव गन्धर्वान् किन्नरानपि । पिशाचांश्च मनुष्यांश्च पन्नगान् पक्षिणः पशून् ॥ १०७ ॥
भक्षार्थमपि लिप्सन्तौ सर्वतस्तौ निशाचरौ । इन्द्रेण तु वरौ चैव धृतौ दत्त्वा सुवध्यताम् ॥ १०८ ॥
यक्षस्तु न कदाचिद्वै निशीथे ह्येककश्चिरम् । आहारं स परीप्सन् वै शब्देनानुचचार ह ॥ १०९ ॥
आससाद पिशाचौ द्वौ जन्तुचण्डौ च तावुभौ । पिङ्गाक्षावूर्ध्ववरोमाणौ वृत्ताक्षौ तु सुदारुणौ ॥ ११० ॥
असृङ्मांसवसाहारौ पुरुषादौ महाबलौ । कन्याभ्यां सहितौ तौ तु ताभ्यां प्रियचिकीर्षया ॥ १११ ॥

पीड़ित देख उनकी मनोभावनाओं का पता पाकर प्रजापति कश्यप जी परम विस्मित हुए और आहार के लिए रक्त और चर्बी को भक्षण करने का उन्हें आदेश दिया। इसके अतिरिक्त पिता (कश्यप) ने उन्हें बहुत क्षुधा पीड़ित देख यह वरदान भी दिया कि रात्रि के समय तुम दोनों के हाथों में सभी वस्तुओं का स्पर्श हो सकेगा, अर्थात् रात्रि में ही तुम्हें सब वस्तुएँ मिल सकती हैं ॥ १००-१०१ ॥

तुम दोनों रात में आहार-विहार करनेवाले होगे, दिन भर शयन करोगे, रात में तुम दोनों बहुत बलवान् हो जाओगे और दिन भर सोते रहोगे। अब से माता की दोनों मिलकर रक्षा करो और धर्म की मर्यादा का पालन करो, धर्म का अनुशासन मानो।' पुत्रों से ऐसी बातें कर कश्यप जी वहाँ पर अन्तर्हित हो गये ॥१०२-१०३॥

पिता के चले जाने पर स्वभाव से ही दारुण प्रकृति वाले उन दोनों महावीरों ने प्राणियों की हिंसा में तत्पर रहकर कुत्सित एवं अखाद्य वस्तुओं का भोजन करना प्रारम्भ किया और पिता ने जिस प्रकार धर्म के अनुशासन में रहकर जीवनयापन का उपदेश किया था ठीक उसके विपरीत आचरण करना प्रारम्भ किया। वे दोनों महाबलवान् थे, महान् पराक्रमी थे, उनके शरीर विशाल थे, कठिनाई से उन्हें कोई अपने वश में कर सकता था। इतने मायावी थे कि एक क्षण यदि दिखायी पड़ते थे तो दूसरे ही क्षण अन्तर्धान भी हो जाते थे। स्वभाव से ही क्रूर प्रकृति वाले ये भीषण आकृति से युक्त तथा इच्छानुसार स्वरूप धारण करनेवाले थे, अपने भीषण आकार के अनुरूप आहार भी उनका बहुत अधिक और भीषण था। देवताओं, असुरों, ऋषियों, गन्धवों, किन्नरों, पिशाचों, मनुष्यों, सर्पों, पक्षियों और पशुओं को खाने के लिए वे जहाँ कहीं पाते थे पकड़ने की इच्छा करते थे। इस प्रकार एक बार उन निशाचरों ने खाने के लिए इन्द्र को पकड़ा और उनको न मारकर दो वरदान प्राप्त किया ॥ १०४-१०८ ॥

कभी एक बार यक्ष खोजते समय रात में अकेले थोड़ी देर तक घूमता रहा। कुछ देर के बाद उसे शब्द सुनायी पड़े और वह उस शब्द के पीछे पीछे चला। आगे चलकर उसने दो प्रचण्ड जानुवाले पिशाचों को देखा, जो पीली आँखोंवाले थे, जिनके रोम ऊपर की ओर खड़े थे, आँखें गोलाकार थीं और देखने में परम भयानक लग रहे थे। वे रक्त, मांस और चर्बी का आहार करते थे,। मनुष्यों को खा जाते थे। उन महाबलवानों के साथ दो कन्याएँ थीं ॥ १०९-१११ ॥

द्वे कन्ये कामरूपिण्यौ तदाचारे च ते शुभे । आहारार्थमटन्तौ तौ कन्याभ्यां सहितावुभौ ॥ ११२ ॥
तेऽपश्यन् राक्षसं तत्र कामरूपं महाबलम् । सहसा सन्निपाते तु दृष्ट्वा चैव परस्परम् ॥ ११३ ॥
रक्षमाणौ ततोऽन्योन्यं परस्परजिघृक्षवः । पितरावूचतुः कन्ये युवामानयत द्रुतम् ॥ ११४ ॥
जीवग्राहं विगृह्यैनं विस्फुरन्तं पदे पदे । ततः समभिसृत्यैनं कन्ये जगृहतुस्तदा ॥
गृहीत्वा हस्तयोस्ताभ्यामानीते पितृसंसदि ॥ ११५ ॥
ताभ्यां करे गृहीतं तं पिशाचमथ राक्षसम् । पृच्छतां कोऽसि कस्य त्वं स च सर्वमभाषत ॥ ११६ ॥
तस्य कर्माभिविज्ञातं ज्ञात्वा तौ राक्षसर्षभौ । अजं च खण्डं तस्यैते प्रत्यपादयतां सुते ॥
तौ तुष्टौ कर्मणा तस्य कन्ये द्वे ददतुः सुते ॥ ११७ ॥
पैशाचेन विवाहेन सुदत्या बुद्धवाहनः । अजः खण्डश्च ताभ्यां तौ तदाश्रावयतां धनम् ॥ ११८ ॥
इयं ब्रह्मधना नाम मम कन्या ह्यलोमिका । ब्रह्मसत्त्वधनाहारा इति खण्डोभ्यभाषत ॥ ११९ ॥
इयं जन्तुधना नाम कन्या सर्वाङ्गसुन्दरी । जन्तवोऽस्या धनाहारास्तावश्रावयतां धनम् ॥ १२० ॥
सर्वाङ्गकेशी नाम्ना च कन्या जन्तुधना तथा । अकर्णान्ताऽप्यरोमा च कन्या ब्रह्मधना तु या ॥१२१ ॥

वे कन्याएँ इच्छानुसार रूप धारण करने वाली थीं और वे दोनों भी उन पिशाचों के समान आचरण करने वाली थीं किन्तु उनका स्वरूप मनोरमा था । उन दोनों कन्याओं के साथ वे पिशाच आहार के लिए रात में घूम रहे थे ॥ ११२ ॥

उन सबों ने वहाँ महाबलवान् एवं इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षस को देखा । एकाएक एक-दूसरे को आमने-सामने देखकर वे पिशाचगण और राक्षस अपनी अपनी जान बचाने की चिन्ता में लगे और एक-दूसरे को पकड़ना भी चाहा । इसी बीच दोनों पिता अपनी-अपनी कन्याओं से बोले—तुम दोनों शीघ्र इसे जीते जी पकड़ लाओ जो पग-पग पर फड़कते हुए चल रहा है । पिता के कथनानुसार उन दोनों कन्याओं ने समीप जाकर उस राक्षस को पकड़ लिया और हाथ से पकड़कर पिता की सभा में लाकर उपस्थित किया ॥ ११३-११५ ॥

कन्याओं द्वारा हाथ में पकड़े हुए राक्षस से उन दोनों पिशाचों ने कहा, बोलो तुम कौन हो? किसके (पुत्र) हो, राक्षस ने सब बातें बतलायीं ॥ ११६ ॥

उसके कार्य एवं विचारों को सुनकर उन बलवान् अज और खण्ड (?) नामक पिशाचों ने सन्तुष्ट होकर दोनों कन्याओं को उसे सौंप दिया ॥ ११७ ॥

पैशाचिक विवाह विधि के अनुसार उस सुन्दर दाँतवाली कन्या का विवाह बुद्धवाहन (?) अज और खण्ड ने उसके साथ सम्पन्न किया और पुत्री के गुण, स्वभाव एवं धन का परिचय स्वयं सुनाया । खण्ड ने कहा, यह मेरी ब्रह्मधना नाम कन्या है, इसके शरीर में रोम नहीं है, यह सात्त्विक उपायों द्वारा अर्जित किये धन का आहार करती है और यह दूसरी जन्तुधना नाम की सर्वांग सुन्दरी कन्या है, जन्तुओं का यह आहार करती है, इस प्रकार उन दोनों ने कन्याओं के धन का परिचय कराया और आगे कहा कि यह दूसरी जन्तुधना नाम की कन्या जो है इसके समस्त अंगों में बाल हैं, और ब्रह्मधना नाम की जो कन्या है, उनके कान के ऊपर तक रोम हैं, शेष अंगों में रोम नहीं हैं ॥ ११८-१२१ ॥

ब्रह्मधनं प्रसूता सा धनानाच्चैव कन्यका । एवं पिशाचकन्ये ते मिथुने द्वे प्रसूयताम् ॥
तयोः प्रजाविसर्गं च ब्रुवतो मे निबोधत ॥ १२२ ॥
हेतिः प्रहेतिरुग्रश्च पौरुषेयो वधस्तथा । विस्फूर्जिश्चैव वातश्च आपो व्याघ्रतस्थैव च ॥ १२३ ॥
सर्पश्च राक्षसा ह्येते यातुधानात्मजा दश । सूर्यस्यानुचरा ह्येते सह तेन भ्रमन्ति च ॥ १२४ ॥
हेतिपुत्रस्तथा लङ्कूर्लङ्कोर्द्वविव चात्मजौ । माल्यवांश्च सुमाली च प्रहेतितनयान् शृणु ॥
प्रहेतितनयः श्रीमान् पुलोमा नामविश्रुतः ॥ १२५ ॥
वधपुत्रौ निकुम्भश्च क्रूरो वै ब्रह्मराक्षसः । वातपुत्रौ विरागस्तु आपपुत्रस्तु जम्बुकः ॥ १२६ ॥
व्याघ्रपुत्रो निरानन्दो जन्तूनां विघ्नकारकः । इत्येते वै पराक्रान्ताः क्रूराः सर्वे तु राक्षसाः ॥ १२७ ॥
कीर्तिता यातुधानास्तु ब्रह्मधानान् निबोधत । यज्ञः पिता धुनिः क्षेमो ब्रह्मा पापोऽथ यज्ञहा॥ १२८ ॥
स्वाकोटकः कलिः सर्पो ब्रह्मधानात्मजा दश । स्वसारो ब्रह्मराक्षस्यस्तेषां चेमाः सुदारुणाः ॥ १२९ ॥
रक्तकर्णा महाजिह्वाऽक्षया चैवोपहारिणी । एतासामन्वये जाताः पृथिव्यां ब्रह्मराक्षसाः ॥ १३० ॥
श्लेष्मातकतरुष्वेते प्रायशस्तु कृतालयाः । इत्येते राक्षसाः क्रान्ता यक्षस्यापि निबोधत ॥ १३१ ॥
चकमेऽप्सरसं यक्षः पञ्चस्थूलां क्रतुस्थलीम् । तां लिप्सुश्चिन्तमानश्च नन्दनं स चचार ह ॥ १३२ ॥

उस ब्रह्मधना ने ब्रह्मधन नामक पुत्र और तत्त्वला नाम की कन्या को जन्म दिया । इस प्रकार उन दोनों पिशाच कन्याओं ने दो-दो सन्ततियाँ उत्पन्न की । अब उनके द्वारा होनेवाली प्रजाओं (सन्तानों) का सृष्टि क्रम सुनिये, मैं कह रहा हूँ ॥ १२२ ॥

हेतु, प्रहेतु, उग्र, पौरुषेय, वध, विस्फूर्जित, वात, आप, व्याघ्र और सर्प—ये दस राक्षस यातुधान के आत्मज और सूर्य के अनुचर हैं, सूर्य के साथ ही ये भी भ्रमण करते हैं । इनमें हेतु का पुत्र लंकु हुआ । लंकु के माल्यवान् और सुमाली नामक दो पुत्र हुए । अब प्रहेतू के पुत्रों को सुनिये, उस प्रहेतु का पुत्र पुलोमा हुआ जो अपने समय में परम विख्यात था ॥ १२३-१२५ ॥

वध के पुत्र निकुम्भ थे जो उग्र प्रकृति वाले एवं ब्रह्मराक्षस थे । वात का पुत्र विराग और आप का जम्बुक हुआ । व्याघ्र का पुत्र निरानन्द नामक हुआ, जो जन्तुओं को विघ्न पहुँचानेवाला था । ये सभी परम पराक्रमशील राक्षस क्रूर प्रकृति के थे ॥ १२६-१२७ ॥

यातुधानों का वर्णन किया जा चुका । अब ब्रह्मधान के पुत्रों को सुनिये । यज्ञ, पिता, धुनि, क्षेम, ब्रह्मा, पाप, यज्ञहा, स्वाकोटक, कलि और सर्प—ये दस ब्रह्मधान के पुत्र हैं । उन दसों की बहनें ब्रह्मराक्षसी थी, जिनमें ये निम्नलिखित परम दारुण स्वभाव वाली थीं ॥ १२८-१२९ ॥

रक्तकर्णा, महाजिह्वा, अक्षया और उपहारिणी—इन ब्रह्मराक्षसियों के गर्भ से समस्त पृथ्वी पर निवास करने वाले ब्रह्मराक्षसों के जन्म हुए । ये ब्रह्मराक्षसगण श्लेष्मातक (लसोड़े) के वृक्षों पर प्रायः आश्रय करते हैं । इन राक्षस के पुत्रों की चर्चा की जा चुकी, अब यक्ष के पुत्रों को सुनिये ॥ १३०-१३१ ॥

यक्ष ने अपने मन में क्रतुस्थली नामक पाँच अवयवों से स्थूल अंगोंवाली अप्सरा को पाने की कामना की । उसको प्राप्त करने की चिन्ता में वह नन्दनवन में विचरण करता रहा । इसके अतिरिक्त सुन्दर वैभ्राज (?) और

वैभ्राजं सुरभिं चैव तथा चैत्ररथं च यत् । दृष्टवान् नन्दने तस्मिन्नप्सरोभिः सहासतीम् ॥ १३३ ॥
नोपायं विन्दते तत्र तस्या लाभाय चिन्तयन् । दूषितः स्वेन रूपेण कर्म्मणा तेन दूषितः ॥ १३४ ॥
ममोद्विजन्ते भूतानि भयावृत्तस्य सर्वशः । तत्कथं नाम चार्वङ्गीं प्राप्नुयामहमङ्गनाम् ॥ १३५ ॥
दृष्ट्वोपायं ततः सोऽथ शीघ्रकारी व्यवर्त्तत । कृत्वा रूपं बहुमतं गन्धर्वस्य तु गुह्यकः ॥
ततः सोऽप्सरसां मध्ये तां जग्राह क्रतुस्थलीम् ॥ १३६ ॥
बुद्ध्वा सुरुचिं तं सा भावेनैवाभ्यवर्त्तत । संवृतः स तया सार्द्धं दृश्यमानोऽप्सरोगणैः ॥ १३७ ॥
स तत्र सिद्धकरणः सद्यो जातः सुतोऽस्य वै । परिणाहोच्छ्रयैर्युक्तः सद्यो वृत्तो ज्वलन् श्रिया ॥ १३८ ॥
राजाहमिति नाभिर्हि पितरं सोऽभ्यभाषत । तवात्र जाते न भीतिः पिता तं प्रत्युवाच ह ॥ १३९ ॥
मात्रानुरूपो रूपेण पितुर्वीर्येण जायते । जाते स तस्मिन् हर्षेण स्वरूपं प्रत्यपद्यत ॥ १४० ॥
स्वभावं प्रतिपद्यन्ते बृहन्तो यक्षराक्षसाः । म्रियमाणाः प्रसुप्ताश्च क्रुद्धा भीताः प्रहर्षिताः ॥ १४१ ॥
ततोऽब्रवीदप्सरसः स्मयमानः स गुह्यकः । गृहं मे गच्छ सुश्रोणि सपुत्रा वरवर्णिनी ॥ १४२ ॥
इत्युक्त्वा सहसा तं च दृष्ट्वा स्वंरूपमास्थितम्। विभ्रान्ताः प्राद्रवन् भीताः क्रोधमानाऽप्सरोगणाः ॥१४३॥
गच्छन्तीरन्वगच्छद्या पुत्रस्तां सान्त्वयन् गिरा । गन्धर्वाप्सरसां मध्ये तां नीत्वा स न्यवर्त्तत ॥ १४४ ॥

चैत्ररथ नामक वनों में भी वह चक्कर लगाता रहा। अन्ततः नन्दनवन में अन्यान्य अप्सराओं के साथ विहार करती हुई उस असती को उसने देखा किन्तु उसके प्राप्त करने का कोई उपाय उसकी बुद्धि में नहीं आया। अपनी कुरूपता एवं कुकर्म से दूषित होने के कारण उसने अपने मन में सोचा कि भयभीत होने के कारण मेरे द्वारा सभी जीवगण उद्विग्न हो जाते हैं तो फिर इस सुन्दर अंगोंवाली को किस प्रकार मैं प्राप्त कर सकता हूँ ॥१३२-१३५॥

तदनन्तर उसने एक उपाय विचारा और शीघ्र उसका उपयोग किया, तदनुसार उसने वसुरुचि नामक गन्धर्व का मनोहर रूप बनाकर उन अप्सराओं के बीच से उस क्रतुस्थली को जाकर पकड़ा ॥ १३६ ॥

अप्सरा ने वसुरुचि को जानकर उस यक्ष के साथ पूर्ण मनोयोग एवं सद्भाव के साथ व्यवहार किया। फलतः सब अप्सराओं के सामने ही उसने क्रतुस्थली के साथ समागम किया, और उसी समय उसी स्थान पर उसके फलस्वरूप एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो लम्बाई और चौड़ाई में विशाल था, जन्मते ही वह शोभा से युक्त हो गया ॥ १३७-१३८ ॥

उत्पन्न होते ही उसने अपने पिता से कहा, 'मैं राजा हूँ, मेरा नाम नाभि है।' पिता ने पुत्र से कहा, तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हो जाने पर कोई डर नहीं है। वह यक्ष पुत्र नाभि स्वरूप में माता के समान सुन्दर और पराक्रम में पिता के समान वीर हुआ। ऐसे पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर वह यक्ष अपने स्वाभाविक वेश में आ गया। प्रायः बड़े-बड़े यक्ष और राक्षस मृत्यु के समान घोर संकट पड़ने पर, सो जाने पर, क्रुद्ध होने पर, भयभीत होने पर तथा अति प्रसन्नता के अवसर पर अपने स्वाभाविक स्वरूप पर आ जाते हैं। इस स्वाभाविक नियम के अनुसार वह यक्ष हँसते हुये उस क्रतुस्थली अप्सरा को विस्मित करता हुआ बोला, हे सुन्दर कटिवाली ! सुन्दरी अब अपने पुत्र को साथ लेकर मेरे घर चलो। यक्ष के ऐसा कहने पर एवं सहसा अपने वास्तविक यक्ष रूप में उपस्थित देखकर सभी अप्सराएँ क्रोध के मारे भ्रान्त बुद्धि हो गई और भयभीत होकर भाग चलीं। भागती हुई अपनी सखियों के पीछे-

तां च दृष्ट्वा समुत्पत्तिं यक्षस्याप्सरसां गणाः । यक्षाणां त्वं जनित्रीति प्रोचुस्तां वै क्रतुस्थलीम् ॥१४५॥
जगाम सह पुत्रेण ततो यक्षः स्वमालयम् । न्यग्रोधरोहिणं नाम गुह्यका यत्र शेरते ॥
तस्मिन्निवासो यक्षाणां न्यग्रोधः सर्वतः प्रियः ॥ १४६ ॥
यक्षो रजतनाभस्तु गुह्यकानां पितामहः । अनुह्लादस्य दैत्यस्य भद्रामतिवरां सुताम् ॥
उपयेमे स भद्रायां यस्यां मणिवरो वशी ॥ १४७ ॥
जज्ञे सा मणिभद्रं च शक्रतुल्यपराक्रमम् । तयोः पत्न्यौ भगिन्यौ तु क्रतुस्थल्यात्मजे शुभे ॥ १४८ ॥
नाम्ना पुण्यजनी चैव तथा देवजनी च या । विजज्ञे मणिभद्रात्तु पुत्रान् पुण्यजनी शुभान् ॥ १४९ ॥
सिद्धार्थं सूर्यतेजं च सुमन्तं नन्दनं तथा । कन्यकं यविकं चैव मणिदत्तं वसुं तथा ॥ १५० ॥
सर्वानुभूतं शङ्खं च पिङ्गाक्षं भीरुमेव च । तथा मन्दरशोभिञ्च पद्मं चन्द्रप्रभं तथा ॥ १५१ ॥
मेघपूर्णं सुभद्रं च प्रद्योतं च महौजसम् । द्युतिमत्केतुमन्तौ च मित्रं मौलिसुदर्शनौ ॥ १५२ ॥
चत्वारो विंशतिश्चैव पुत्राः पुण्यजनाः शुभाः । जज्ञिरे मणिभद्रस्य ते सर्वे पुण्यलक्षणाः ॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च यक्षाः पुण्यजनाः शुभाः ॥ १५३ ॥
विजज्ञे देवजननी पुत्रान्मणिवरात्मजात् । पूर्णभद्रं हेमरथं मणिमन्नन्दिवर्धनौ ॥ १५४ ॥
कुस्तुम्बुरुं पिशङ्गाभं स्थूलकर्णं महाजयम् । श्वेतं च विपुलं चैव पुष्पवन्तं भयावहम् ॥ १५५ ॥
पद्मवर्णं सुनेत्रं च यक्षं बालं बकं तथा । कुमुदं क्षेमकं चैव वर्द्धमानं तथा दमम् ॥ १५६ ॥

पीछे क्रतुस्थली भी चली और उसके पुत्र ने वाणी से सान्त्वना देते हुए उसे गन्धर्व एवं अप्सराओं के समूह में ले जाकर पहुँचाया । पहुँचाने के बाद स्वयं लौट आया ॥ १३९-१४४ ॥

अप्सराओं ने यक्ष द्वारा उसके गर्भ से पुत्रोत्पत्ति होते देखा था । अतः उन्होंने एक स्वर से क्रतुस्थली से कहा कि तू यक्षों की माता है । तदनन्तर यक्ष पुत्र के साथ अपने घर को चला गया जहाँ बरगद के वृक्ष पर निवास करनेवाले यक्षगण शयन करते थे । बरगद के वृक्ष में यक्षों का निवास स्थान है, यह बरगद का वृक्ष उन्हें सभी प्रकार से प्रिय है । यक्ष रजतनाभ गुह्यकों का पितामह था । उसने अनह्लाद नामक दैत्य की परम सुन्दरी कन्या भद्रा के साथ अपना विवाह किया था, उस भद्रा में जितेन्द्रिय मणिवर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ १४५-१४७ ॥

भद्रा ने एक दूसरे पुत्र मणिभद्र को भी उत्पन्न किया, जो इन्द्र के समान पराक्रमी था । उन दोनों की पत्नी सगी बहनें थीं, जो ॠतुस्थली की दो पुत्रियाँ थीं, उनका नाम पुण्यजनी और देवजनी था । पुण्यजनी ने मणिभद्र के संयोग से जिन शुभाचारी पुत्रों को उत्पन्न किया, उनके नाम सिद्धार्थ, सूर्यतेज, सुमन्त, नन्दन, कन्यक, यविक, मणिदत्त, वसु, सर्वानुभूत, शंख, पिंगाक्ष, भीरु, मन्दरशोभि, पद्म, चन्द्रप्रभ, मेघपूर्ण, सुभद्र, प्रद्योत, महौजस, द्युतिमान्, केतुमान्, मित्र, मौलि और सुदर्शन थे । ये चौबीस पुत्र सदाचारी और पुण्यात्मा थे । मणिभद्र के संयोग से इन पुण्यात्मा पुत्रों की उत्पत्ति हुई थी । इनके पुत्र पौत्रादि जो यक्ष हुए वे भी पुण्यकार्य करने वाले एवं सदाचारी थे ॥ १४८-१५३ ॥

देवजननी ने मणिवर के संयोग से जिन पुत्रों को जन्म दिया उनके नाम पूर्णभद्र, हेमरथ, मणिमत्, नन्दिवर्धन, कुस्तुम्बुरु, पिशङ्गाभ, स्थूलकर्ण, महाजय, श्वेत, विपुल, पुष्पवान्, भयावह, पद्मवर्ण, सुनेत्र, यक्ष,

पद्मनाभं वराङ्गं च सुवीरं विजयं कृतिम् । पूर्णमासं हिरण्याक्षं सुरूपं चैवमादयः ॥ १५७ ॥
पुत्रा मणिवरस्यैते यक्षा वै गुह्यकाः स्मृताः । सुरूपाश्च विरूपाश्च स्रग्विणः प्रियदर्शनाः ॥
॥ १५८ ॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः
खशायास्त्वपरे पुत्रा राक्षसाः कामरूपिणः । तेषां यथा प्रधानान् वै वर्ण्यमानान्निबोधत ॥ १५९ ॥
लालाविः कुथनो भीमः सुमाली मधुरेव च । विस्फूर्ज्जितो विद्युज्जिह्वो मातङ्गो धूम्रितस्तथा ॥ १६० ॥
चन्द्रार्कः सुकरो बुध्नः कपिलोमा प्रहासकः । क्रीडः परशुनाभश्च चक्राक्षश्च निशाचरः ॥ १६१ ॥
त्रिशिराः शतदंष्ट्रश्च तुण्डकेशश्च राक्षसः । यक्षश्चाकम्पनश्चैव दुर्मुखश्च शिलीमुखः ॥ १६२ ॥
इत्येते राक्षसवरा विक्रान्ता गणरूपिणः । सर्वलोकचरास्ते तु त्रिदशानां समक्रमाः ॥ १६३ ॥
सप्त चान्या दुहितरस्ताः शृणुध्वं यथाक्रमम् । तासां च यः प्रजासर्गो येन चोत्पादिता गणाः ॥ १६४ ॥
आलम्बा उत्कचा कृष्णा निर्ऋता कपिला शिवा। केशिनी च महाभागा भगिन्यः सप्त याः स्मृताः ॥ १६५ ॥
ताभ्यो लोकामिषादश्च हन्तारो युद्धदुर्मदाः । उदीर्णा राक्षसगणा इमे उत्पादिताः शुभाः ॥ १६६ ॥
आलम्बेयो गणः क्रूर उत्कचेयो गणस्तथा । तथा कार्ष्णेयशैवेया राक्षसा ह्युत्तमा गणाः ॥ १६७ ॥

बाल, बक, कुमुद, क्षेमक, वर्धमान, दम, पद्मनाभ, वराङ्ग, सुवीर, विजय, कृति, पूर्णमास, हिरण्याक्ष सुरूप आदि थे । मणिवर के ये पुत्रगण गुह्यक के नाम से स्मरण किये जाते हैं । ये सब पुत्रगण सुन्दर स्वरूपवाले-कुछ कुरूप भी माला धारण करनेवाले तथा देखने में प्रिय लगनेवाले थे । इनके पुत्र पौत्रादि की संख्या सैकड़ों से सहस्रों तक थी ॥ १५४-१५८ ॥

खशा के अन्य पुत्रगण जो हुए वे इच्छानुसार रूप बदलनेवाले राक्षस थे, उनमें जो प्रधान प्रधान थे, उनका वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये ॥ १५९ ॥

उनके नाम थे लालावि, कुथन, भीम, सुमाली, मधु, विस्फूर्जित, विद्युज्जिह्व, मातङ्ग, धूम्रित, चन्द्रार्क, सुकर, बुध्न, कपिलोम, प्रहासक, क्रीड, परशुनाभ, चक्राक्ष, निशाचर, त्रिशिरा, शतदंष्ट्र, राक्षस तुण्डकेश, यक्ष, अकम्पन, दुर्मुख और शिलीमुख । ये सभी श्रेष्ठ राक्षस परम पराक्रमी तथा गणरूपी थे, अर्थात् उनमें से एक-एक राक्षस वीरता आदि में एक-एक समूह का सामना करने में समर्थ था । वे देवताओं के समान सभी लोकों में विचरण किया करते थे ॥ १६०-१६३ ॥

इनके अतिरिक्त सात अन्य कन्याएँ भी थीं, उन्हें क्रमानुसार सुनिये । साथ ही उन कन्याओं द्वारा जिन प्रजाओं की सृष्टि हुई, और उनसे जिन गणों की उत्पत्ति हुई, उसे भी सुनिये । उन कन्याओं के नाम आलम्बा, उत्कचा, कृष्णा, निर्ऋता, कपिला, शिवा और महाभाग्यशालिनी केशिनी थे, ये सात उक्त राक्षसों की बहनें कही जाती हैं ॥ १६४-१६५ ॥

उन्हीं कन्याओं द्वारा लोक में मांस खानेवाले जीवहिंसक, युद्ध में उत्कट पराक्रम दिखलाने वाले, महान् राक्षसगणों की उत्पत्ति हुई, इनमें से कुछ शुभ कार्य करनेवाले महाकर्णा भी थे । आलम्बा से उत्पन्न होनेवाले आलम्बेय नामक राक्षसगण क्रूर प्रकृति के थे, उत्कचेय गण भी उसी प्रकार के क्रूरकर्मा थे । कार्ष्णेय और शैवेय नामक राक्षसगण उत्तम गुणवाले थे । इसी प्रकार महादेव जी के अनुचर गणेश्वरों के चर ने नैर्ऋत नामक प्रजाओं

तथैव नैर्ऋतो नाम त्र्यम्बकानुचरेण ह । उत्पादितः प्रजासर्गो गणेश्वरचरेण तु ॥ १६८ ॥
उत्पादिता बलवता उदीर्णा यक्षराक्षसाः । विक्रान्ताः शौर्यसम्पन्ना नैर्ऋता देवराक्षसाः ॥
येषामधिपतिर्युक्तो नाम्ना ख्यातो विरूपकः ॥ १६९ ॥
तेषां गणशतानेका उद्धतानां महात्मनाम् । प्रायेणानुचरन्त्येते शङ्करं जगतः प्रभुम् ॥ १७० ॥
दैत्यराजेन कुम्भेन महाकाया महात्मना । उत्पादिता महावीर्या महाबलपराक्रमाः ॥ १७१ ॥
कपिलेया महावीर्या उदीर्णा दैत्यराक्षसाः । कम्पनेन च यक्षेण केशिन्यास्ते परे जनाः ॥ १७२ ॥
उत्पादिता महावाता उदीर्णा यक्षराक्षसाः । केशिनीदुहितुश्चैव नीलायाः क्षुद्रमानसाः ॥ १७३ ॥
आलम्बेयेन जनिता नैकाः सुरसिकेन हि । नैला इति समाख्याता दुर्जया घोरविक्रमाः ॥ १७४ ॥
चरन्ति पृथिवीं कृत्स्नां तत्र ते देवलौकिकाः । बहुत्वाच्चैव सर्गस्य तेषां वक्तुं न शक्यते ॥ १७५ ॥
तस्यास्त्वपि च नीलाया विकचा नाम राक्षसी । दुहिता स्वभावविकचा मन्दसत्त्वपराक्रमा ॥ १७६ ॥
तस्या अपि विरूपेण नैर्ऋतेनेह च प्रजाः । उत्पादिताः सुरा घोराः श्रृणु तास्त्वनुपूर्वशः ॥ १७७ ॥
दंष्ट्राकरालविकृता महाकर्णा महोदराः । हारका भीषकाश्चैव तथैव क्रामकाः परे ॥ १७८ ॥
वैनकाश्च पिशाचाश्च वाहकाः प्राशकाः परे । भूमिराक्षसका ह्येते मन्दाः पुरुषविक्रमाः ॥ १७९ ॥

की सृष्टि की । उस बलवान् ने महान् यक्षों एवं राक्षसों को उत्पन्न किया, जो परम पराक्रमी, शौर्य सम्पन्न, नाम से विख्यात हुए, उन्हें देवराक्षस कहते हैं उन सब का अधिपति विरूपक नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ १६६-१६९ ॥

नैर्ऋत नामक उद्धत स्वभाव वाले उन महात्मा देवराक्षसों के सैकड़ों गण प्राय: जगत् स्वामी शंकर भगवान् के अनुचर हुए ॥ १७० ॥

महात्मा दैत्यराज कुम्भ ने महाबलवान्, महापराक्रमी, परम साहसी एवं विशालकाय कापिलेय नामक दैत्यों एवं राक्षसों को उत्पन्न किया, जो अपने पराक्रम से सचमुच महान् थे । बलवान् कम्पन नामक यक्ष के द्वारा केशिनी के गर्भ से दूसरे महाबलवान् यक्षों और राक्षसों की उत्पत्ति हुई, जो महान् थे । केशिनी की कन्या नीला के संयोग से आलम्बेय गण के सुरसिक नामक राक्षस के द्वारा अनेक क्षुद्र चित्तवाले राक्षसों का जन्म हुआ, जो नैल नाम से विख्यात हुए । ये नैल नामक राक्षसगण दुर्जेय और घोर पराक्रमी थे ॥ १७१-१७४ ॥

दैविक एवं लौकिक-दोनों प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न वे राक्षसगण सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल का भ्रमण करते थे । उनके वंश में उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं का विस्तार बहुत अधिक है, अत: कहा नहीं जा सकता ॥ १७५ ॥

उस नीला की भी एक पुत्री थी, जिसका नाम विकचा राक्षसी था । स्वभाव से वह परम क्रूर और मध्यम पराक्रमवाली थी । उस विकचा के भी कुरूप निर्ऋत द्वारा अतिघोर स्वभाव वाले असुरों की उत्पत्ति हुई । उनका क्रमानुसार वर्णन सुनिये ॥ १७६-१७७ ॥

ये घोर असुरगण विकराल दाढ़ोंवाले, कुरूप, लम्बे कानों वाले तथा विशाल पेट वाले थे, उनके नाम हारक, भीषक, क्रामक, वैनक, पिशाच, वाहक और प्राशक थे । ये सभी भूमिराक्षस थे, मन्द स्वभाववाले इन राक्षसों का पराक्रम पुरुषों के समान था ये विविध प्रकार के स्वरूप धारणकर इतने विकराल दिखलायी पड़ते थे

चरन्त्यदृष्टपूर्वाश्च नानाकारा ह्यनेकशः । उत्कृष्टबलसत्त्वा ये ते च वै खेचराः स्मृताः ॥ १८० ॥
लक्षमात्रेण चाकाशं स्वल्पाः स्वल्पं चरन्ति वै । एतैर्व्याप्तमिमं लोकं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १८१ ॥
भूमिराक्षसकैः सर्वैरनेकैः क्षुद्रराक्षसैः । नानाप्रकारैराक्रान्ता नानादेशाः समन्ततः ॥ १८२ ॥
समासाभिहताश्चैव ह्यष्टौ राक्षसमातरः । अष्टौ विभागा ह्येषां हि विख्याता अनुपूर्वशः ॥ १८३ ॥
भद्रका निकराः केचिद्यज्ञनिष्पत्तिहेतुकाः । सहस्रशतसंख्याता मर्त्त्यलोकविचारिणः ॥ १८४ ॥
पूतना मातृसामान्यास्तथा भूतभयंकराः । बालानां मानुषे लोके ग्रहा वैमानहेतुकाः ॥ १८५ ॥
स्कन्दग्रहादयश्चैव आपकास्त्रासकादयः । कौमारास्ते तु विज्ञेया बालानां ग्रहवृत्तयः ॥ १८६ ॥
स्कन्दग्रहविशेषाणां मायिकानां तथैव च । पूतनानामभूतानां ये च लोकविनायकाः ॥ १८७ ॥
सहस्रशतसंख्यानां मर्त्यलोकविचारिणाम् । एवं गणशतान्येव चरन्ति पृथिवीमिमाम् ॥ १८८ ॥
यक्षाः पुण्यतमा नाम तथा ये केऽपि गुह्यकाः । यक्षा देवजनाश्चैव तथा पुण्यजनाश्च ये ॥ १८९ ॥
गुह्यकानां च सर्वेषामगस्त्या ये च राक्षसाः । पौलस्त्या राक्षसा ये च विश्वामित्राश्च ये स्मृताः ॥१९०॥
यक्षाणां राक्षसानां च पौलस्त्यागस्तयश्च ये । तेषां राजा महाराजः कुबेरो ह्यलकाधिपः ॥ १९१ ॥

जितने भीषण स्वरूप को कोई नहीं देख सका था । इन भूमिराक्षसों में जो अधिक बलवान् एवं पराक्रमी होते हैं वे आकाशगामी कहे जाते हैं ॥ १७८-१८० ॥

ये क्षुद्र राक्षसगण देखने में अति लघुकाय होने पर भी थोड़ी दूर तक आकाश प्रदेश में विचरण करते हैं। ये सैकड़ों, सहस्रों की संख्या में इस लोक को छेंके हुए हैं । इन सब विविध प्रकार के भूमिराक्षसों और अन्यान्य क्षुद्र राक्षसों ने मिलकर चारों ओर से प्राय: सभी देशों को आक्रान्त कर लिया है । संक्षेप में इन सब क्षुद्र राक्षसों की आठ माताएँ हैं, और उसी के अनुरूप इनके आठ विभाग कहे जाते थे, जिन्हें क्रमानुसार कहा गया है ॥ १८१-१८३ ॥

इनमें से एक का नाम भद्रका और गण का नाम निकर है, जिनमें कुछ यज्ञोत्पत्ति के कारण हैं (?) मर्त्यलोक के विचरण करनेवाले इस गण में सैकड़ों, सहस्रों की संख्या में राक्षसगण विद्यमान हैं । दूसरी माता पूतना है, और गण का नाम मातृ सामान्य है, जो भयंकर भूत हैं । यह पूतना मानवलोक में बच्चों को पकड़नेवाली एवं कष्ट देकर बहुत परेशान करनेवाली है । स्कन्दग्रह आदि आपक, त्रासक आदि और कौमारगण इन सबको बालकों को ग्रहों के समान कष्ट देनेवाले जानने चाहिए । माया करनेवाले मायिक नामक ग्रहों, स्कन्द नामक ग्रहों तथा पूतना नामक भूत ग्रह विशेष में से जो लोक में विविध विघ्नों के करनेवाले हैं, वे लाखों की संख्या में मर्त्यलोक में विचरण करते हैं । इसी प्रकार अन्यान्य भूतों एवं ग्रहों के सैकड़ों गण इस पृथ्वी पर विचरण किया करते हैं ॥ १८४-१८८ ॥

पुण्यजन नामक यक्ष, गुह्यक नाम से प्रसिद्ध यक्ष एवं देवजन नामक यक्ष—ये सभी गुह्यकों के अन्तर्गत हैं । अगस्त्य नामक जो राक्षसगण हैं, पौलस्त्य नामक जो राक्षसगण हैं, विश्वामित्र के गोत्र में जो राक्षसगण उत्पन्न हुए हैं, यक्षों एवं राक्षसों के वंश में उत्पन्न होनेवाले पौलस्त्य एवं अगस्त्य नामक जो यक्ष राक्षस हैं, उन सबों के राजा महाराज कुबेर हैं, जो अलका नामक नगरी के अधीश्वर हैं ॥ १८९-१९१ ॥

यक्षा दृष्ट्वा पिबन्तीह नृणां मांसमसृग्वसाम् । रक्षांस्यनुप्रवेशेन पिशाचाः परिपीडनैः ॥ १९२ ॥
सर्वलक्षणसंपन्नाः समक्षेत्राश्च दैवतैः । भास्वरा बलवन्तश्च ईश्वराः कामरूपिणः ॥ १९३ ॥
अनाभिभक्षा विक्रान्ताः सर्वलोकनमस्कृताः । सूक्ष्माश्चौजस्विनो मेध्या वरदा यज्ञियाश्चये ॥ १९४ ॥
देवानां तुल्यधर्माणां ह्यसुराः सर्वशः स्मृताः । त्रिभिः पादैस्तु गन्धर्वा देवैर्हीनाः प्रभावतः ॥ १९५ ॥
गन्धर्वेभ्यस्त्रिभिः पादैर्हीना वै सर्वगुह्यकाः । प्रभावतुल्या यक्षाणां विज्ञेयाः सर्वराक्षसाः ॥
ऐश्वर्यहीना यक्षेभ्यः पिशाचास्त्रिगुणं पुनः ॥ १९६ ॥
एवं धनेन रूपेण आयुषा च बलेन च । धर्मैश्वर्येण बुद्ध्या च तपःश्रुतपराक्रमैः ॥ १९७ ॥
देवासुरेभ्यो हीयन्ते त्रीन् पादान् वै परस्परम् । गन्धर्वाद्याः पिशाचान्ताश्चतस्रो देवयोनयः ॥ १९८ ॥

सूत उवाच

अतः शृणुत भद्रं वः प्रजाः क्रोधवशात्मकाः । क्रोधायां कन्यका जज्ञे द्वादश ह्यात्मसम्भवाः ॥
ता भार्याः पुलहस्यासन्नामतस्ता निबोधत ॥ १९९ ॥
मृगी च मृगमन्दा च हरिभद्रा इरावती । भूता च कपिशा दंष्ट्रा निशातिर्या तथैव च ॥
श्वेता चैव स्वरा चैव सुरसा चेति विश्रुताः ॥ २०० ॥
मृग्यास्तु हरिणाः पुत्रा मृगाश्चान्ये शशास्तथा । न्यङ्कवः शरभा ये च रुरवः पृषताश्च ये ॥ २०१ ॥

ये यक्षगण केवल आँखों से देखकर मनुष्य के रक्त, मांस एवं चर्बी को पी जाते हैं, राक्षसगण शरीर के भीतर प्रवेश करके रक्त पी जाते हैं और पिशाचगण बुरी तरह पीड़ित करके रक्त पी जाते हैं। जो सभी प्रकार के लक्षणों से सम्पन्न एवं देवताओं के समान अधिकारी, तेजस्वी, बलवान्, ईश्वरमय एवं इच्छानुसार स्वरूप धारण करनेवाले, अनुपम शक्तिशाली, विक्रमी, सभी लोकों द्वारा पूजनीय, सूक्ष्म स्वरूप धारण करनेवाले, तेजस्वी यज्ञादि के योग्य, वरदान देनेवाले, यज्ञपरायण एवं देवताओं के समान धर्मात्मा होते हैं, ये सब असुर नाम से स्मरण किये जाते हैं। गन्धर्व लोग प्रभाव में देवताओं की अपेक्षा तीन पादों से (तीन चौथाई) हीन होते हैं ॥१९२-१९५॥

सभी यक्ष गन्धर्वों की अपेक्षा प्रभाव आदि में तीन पदों से हीन होते हैं, इन्हीं यक्षों के समान प्रभावशाली सब राक्षस होते हैं। इन यक्षों से गुण में तीन गुने हीन पिशाच होते हैं। इस प्रकार धन, रूप, आयु, बल, धर्म, ऐश्वर्य, बुद्धि, तपस्या, शस्त्र बल एवं पराक्रम से गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाच ये चार देव योनियों में उत्पन्न होने वाले देवताओं और असुरों की अपेक्षा परस्पर हीन होते हैं ॥ १९६-१९८ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! अब इसके उपरान्त आप लोग क्रोध के वश में रहनेवाली प्रजाओं का विवरण सुनिये, इससे आप लोगों का कल्याण होगा। क्रोधा में बारह स्वयं उत्पन्न होनेवाली कन्याएँ उत्पन्न हुईं और वे सब पुलह ऋषि की पत्नियाँ हुई, उनके नाम सुनिये ॥ १९९ ॥

ये मृगी, मृगमन्दा, हरिभद्रा, इरावती, भूता, कपिशा, दंष्ट्रा, निशा, तिर्या, श्वेता, स्वरा और सुरसा—नाम से विख्यात हैं। इनमें मृगी के पुत्र हरिण हुए, अन्यान्य मृग, शश (खरगोश), न्यंकु (बारहसिंगा), शरभ, रुरु और पृषत् नामक पशु उसी से उत्पन्न हुए। मृगमन्दा के गर्भ से मृगराजों (सिंहों) की उत्पत्ति हुई, अन्यान्य गवय (नीलगाय), महिष, ऊँट, वराह, खड्ग (गैंडा) तथा गौरमुख नामक वन्य पशु भी उसी से उत्पन्न हुए। हरि

मृगराजा मृगमन्दाया गवयाश्चापरे तथा । महिषोष्ट्रवराहाश्च खड्गगौरमुखास्तथा ॥ २०२ ॥
हरेस्तु हरयः पुत्रा गोलाङ्गुलतरक्षवः । वानराः किन्नराश्चैव व्याघ्राः किम्पुरुषास्तथा ॥
इत्येवमादयोऽन्येऽपि इरावत्या निबोधत ॥ २०३ ॥
सूर्यस्याण्डकपाले द्वे समानीय तु भौवनः । हस्ताभ्यां परिगृह्याथ रथन्तरमगायत ॥ २०४ ॥
साम्ना प्रसूयमानेन सद्य एव गजोऽभवत् । स प्रागच्छदिरावत्यै पुत्रार्थे स तु भौवनः ॥ २०५ ॥
इरावत्याः सुतो यस्मात्तस्मादैरावतः स्मृतः । देवराजोपवाह्यत्वात् प्रथमः स मतङ्गराट् ॥
शुभ्राभ्राभाश्चतुर्दंष्ट्रः श्रीमानैरावतो गजः ॥ २०६ ॥
अप्सुजस्यैकमूलस्य सुवर्णाभस्य हस्तिनः । षड्दन्तस्य हि भद्रस्य औपवाह्यश्च वै बलः ॥ २०७ ॥
तस्य पुत्रोऽञ्जनश्चैव सुप्रतीकोऽथ वामनः । पद्मश्चैव चतुर्थोऽभूद्धस्तिनी चाभ्रमुस्तथा ॥ २०८ ॥
दिग्गजांस्तांश्च चत्वारः श्वेताऽजनयताशुगान् । भद्रं मृगं च मन्दं च सङ्कीर्णं चतुरः सुतान् ॥ २०९ ॥
सङ्कीर्णोऽप्यञ्जनो यस्तु उपवाह्यो यमस्य तु । भद्रो यः सुप्रतीकस्तु हरितः स ह्यपाम्पतेः ॥ २१० ॥
पद्मो मन्दस्तु यो गौरो द्विपो ह्यैलविलस्य सः । मृगः श्यामस्तु यो हस्ती उपवाह्यः स पावकैः ॥२११॥
पद्मोत्तरस्तु यः पद्मो गजो वै वरुणो गणः । उपलेपनमेषश्च तस्याष्टौ जज्ञिरे सुताः ॥ २१२ ॥
उदग्रभावेनोपेता जायन्ते तस्य चान्वये । श्वेतबालनखाः पिङ्गा वर्ष्मवन्तो मतङ्गजाः ॥
मतङ्गजान् प्रवक्ष्यामि नागानन्यानपि क्रमात् ॥ २१३ ॥

के गर्भ से बन्दरों की उत्पत्ति हुई तथा लङ्गुली बन्दर, तरक्षु (भेड़िया), अन्यान्य छोटी जातियों के बन्दर, किन्नर, बाघ, किंपुरुष आदि वन्यजीवों की भी उत्पत्ति उसी से हुई, इसके बाद इरावती के पुत्रों को सुनिये ॥२००-२०३॥

एक बार भौवन ने सूर्य के दो अण्ड कपालों को लाकर अपने दोनों हाथों से उसे पकड़कर रथन्तर का गान किया था, उस समय सामवेद के रथन्तर की स्तुति करते समय शीघ्र ही एक हस्ती प्रादुर्भूत हुआ । भौवन ने वैसे पुत्र की कामना से इरावती के साथ समागम किया था, यतः वह इरावती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था अतः ऐरावत नाम से प्रसिद्ध हुआ । देवराज इन्द्र के वाहन होने के कारण वह मतङ्गों का प्रथम राजा हुआ, वह ऐरावत श्वेत बादल के समान शुभ्र वर्ण का चार दाँतोंवाला, अतिशय शोभासम्पन्न गजराज है ॥ २०४-२०६ ॥

एक ही मूल से उत्पन्न हुए, जल सम्भूत, छह दाँतोंवाले सुवर्ण के समान कान्तिमान, भद्र नामक हस्ती पर सवार होनेवाला बल था, जो हस्तिज (?) था । उस ऐरावत के अञ्जन, सुप्रतीक, वामन और पद्म ये चार पुत्र थे, हस्तिनी का नाम अभ्रमु था । श्वेता ने उन चार दिग्गजों को उत्पन्न किया, जो अति शीघ्र गमन करनेवाले थे, उन चारों पुत्रों के नाम भद्र, मृग, मन्द और संकीर्ण थे । इनमें से संकीर्ण और अञ्जन ये यमराज के वाहन हैं । भद्र और सुप्रतीक हरित वर्ण के हैं । ये जल के स्वामी वरुण के वाहन हैं ॥ २०७-२१० ॥

पद्म और मन्द श्वेत वर्ण के हैं, ऐलविल कुबेर के हस्ती हैं एवं मृग नामक श्याम वर्ण का जो हस्ती है वह अग्नियों का वाहन है । पद्मोत्तर पद्म नामक जो गज है वह वरुण के वाहन गणों में हैं, और वह उपलेपन भी कहा जाता है । उसके उग्र स्वभाव वाले आठ पुत्र उत्पन्न हुए । उनके वंश में श्वेत बाल और नखवाले, पीले वर्ण के शरीरवाले मतंगज उत्पन्न हुए । उन सबों को तथा अन्यान्य नागों को भी क्रमशः कहता हूँ ॥ २११-२१३ ॥

कपिलः पुण्डरीकश्च सुमनाभो रथान्तरः । जातौ नाम्ना सुतौ ताभ्यां सुप्रतिष्ठप्रमर्द्दनौ ॥ २१४ ॥
शूलाः स्थूलाः शिरोदान्ताः शुद्धबालनखास्तथा। बलिनः शक्तिनश्चैव मृतास्त्वाकुलिका गजाः ॥२१५॥
पुष्पदन्तो बृहत्सामा षड्दन्तो दन्तपुष्पवान् । ताम्रवर्णश्च तत्पुत्रः सहचारिविषाणितः ॥ २१६ ॥
अन्वये चास्य जायन्ते लम्बोष्ठाश्चारुदर्शिनः । श्यामाः सुदर्शनाश्चण्डा नानापीडायताननाः ॥ २१७ ॥
वामदेवोऽञ्जनश्यामः साम्नो जज्ञेऽथ वामनः। भार्या चैवाङ्गदा तस्य नीलवल्लक्षणौ सुतौ ॥ २१८ ॥
चण्डाश्चात्रशिरोग्रीवा व्यूढोरस्कास्तरस्विनः । नरैर्बद्धाः कुले तेषां जायन्ते विकृता गजाः ॥ २१९ ॥
सुप्रतीकस्तु रूपेण नास्त्यस्य सदृशो गजः । तस्य प्रहारी सम्पाती पृथुश्चित्तिसुतास्त्रयः ॥ २२० ॥
पशवो दीर्घताल्वोष्ठाः सुविभक्तशिरोदराः । जायन्ते मृदुसम्भूता वंशे तस्य मतङ्गजाः ॥ २२१ ॥
अञ्जनादञ्जना साम्नो विजज्ञे चाञ्जनावती । एवं माता तयोश्चापि प्रथितायुरजःसुतौ ॥ २२२ ॥
महाविभक्तशिरसः स्निग्धजीमूतसन्निभाः । सुदर्शनाः सुवर्ष्माणः पद्माभाः परिमण्डलाः ॥
शूनाः पीतायतमुखा गजास्तस्यान्वयेऽभवन् ॥ २२३ ॥
जज्ञे चन्द्रमसः साम्नः पिङ्गला कुमुदद्युतिः । पिङ्गलायाः सुतौ तस्या महापद्मोर्भिमालिनौ ॥ २२४ ॥
समायवरदांश्चण्डान् प्रवृद्धबलिनोदरान् । हस्तियुद्धे प्रियान्नागान् विद्धि तस्य कुलोद्भवान् ॥ २२५ ॥

पुण्डरीक नामक गज कपिल (भूरे) वर्ण का तथा रथान्तर पुष्प के रंग के समान शोभावाला गज है, उन दोनों से सुप्रतिष्ठ और प्रमर्दन नामक पुत्र उत्पन्न हुए । इनके अतिरिक्त शूल, स्थूल प्रभृति उच्च सिरवाले, शुद्ध बाल और नखवाले बलवान, शक्तिशाली गज हुए, जो अकुलिक नाम से स्मरण किये गये । इनके वंश में पुष्पदन्त बृहत्सामा षड्दन्त, दन्तपुष्पवान्, ताम्रवर्णी प्रभृति गज उत्पन्न हुए । इनके हस्तिनियों के सहगमन से पुत्र उत्पन्न हुए । इनके वंश में लंबे ओंठोंवाले, सुन्दर दिखायी पड़नेवाले, श्यामवर्ण के उग्र स्वभाववाले, लंबे मुँहवाले और अनेक प्रकार की पीड़ा सहन करने में सशक्त गज उत्पन्न होते हैं । वामदेव नामक हस्ती अंजन के समान श्यामल वर्ण का है, साम से वामन नामक गज उत्पन्न हुआ जिसकी स्त्री अंगदा थी, उसके नीलवत् और लक्षण नामक दो पुत्र थे ॥ २१४-२१८ ॥

ये सब गज अत्यन्त उग्र स्वभाववाले थे । इनके शिरोभाग और कन्धे देखने में सुन्दर थे, वक्षःस्थल अत्यन्त विशाल और चलने में वे वेगशाली थे । इन गजों के वंश में जो विकृत गज उत्पन्न होते हैं, वे मनुष्यों द्वारा बन्धन में डाले जाते हैं । सुप्रतीक के समान सुन्दर आकार वाला गज दूसरा नहीं है, उसके प्रहारी, संपाती और पृथुश्चित्ति नामक तीन पुत्र थे ॥ २१९-२२० ॥

इनके वंश में मतङ्गज पशुगण लम्बी तालु, बड़े होंठ और विभक्त सिर तथा उदर भाग एवं मनोहर अंगों वाले उत्पन्न होते हैं । अञ्जन से अञ्जना और साम से अञ्जनावती का जन्म हुआ । इन दोनों की माता भी आयुरज की पुत्री कही गयी है । इनके वंश में उत्पन्न होने वाले गज अत्यन्त विभक्त सिर वाले, जल से पूर्ण बादल के समान काले वर्ण के, देखने में अति सुन्दर शरीर वाले, कमल के समान परिमण्डल वाले, मोटे ताजे, और पीले चौड़े मुख वाले होते थे ॥ २२१-२२३ ॥

चन्द्रमा और साम से पिंगला एवं कुमुदद्युति की उत्पत्ति हुई । उस पिंगला के महापद्म और उर्मिमाली

एतान् देवासुरे युद्धे जयार्थे जगृहुः सुराः । कृतार्थैश्च विसृष्टास्तैः पूर्वोक्ताः प्रययुर्दिशः ॥ २२६ ॥
एतेषामन्वये जातान् विनीतांस्त्रिदशा ददुः । अङ्गाय लोमपादाय सूत्रकाराय वै द्विपान् ॥ २२७ ॥
द्विरदो द्विरदाभ्यां च हस्ताद्धस्ती करात्करी । वरणाद्वारणो दन्ती दन्ताभ्यां गर्जनाद् गजः ॥ २२८ ॥
कुञ्जरः कुञ्जचारित्वान्नागो नगविरोधतः । मतङ्गादिति मातङ्गो द्विपो द्वाभ्यामपि स्मृतः ॥
सामजः सामजातत्वादिति निर्वचनक्रमः ॥ २२९ ॥
एषां जिह्वापरावृत्तिरिवाक्तं ह्यग्निशापजम् । बलस्यानवतो या तु या चैषां गूढमुष्कता ॥
उभयं दन्तिनामेतत्स्वयम्भूसुरशापजम् ॥ २३० ॥
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः । कन्यासु जाता दिङ्नागैर्नानासत्त्वास्ततो गजाः ॥ २३१ ॥
सम्भूतिश्च प्रभूतिश्च नामनिर्वचनं तथा । एतद्गजानां विज्ञेयं येषां राजा विभावसुः ॥ २३२ ॥
कौशिकाद्याः समुद्रात्तु गङ्गायास्तदनन्तरम् । अञ्जनस्यैकमूलस्य प्राच्यान्नागवनं तु तत् ॥ २३३ ॥

नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। उसके कुल में उत्पन्न नागों को अत्यन्त उग्र स्वभाववाले, बलशाली, लम्बे पेटवाले, विशाल दाँतोंवाले तथा हस्तियुद्ध में रुचि रखनेवाले समझना चाहिए। देवासुर संग्राम में देवताओं ने इन्हीं हस्तियों को विजय लाभार्थ अपने पास रखा और कार्य में सफलता प्राप्त कर लेने के उपरान्त उन्हें छोड़ दिया, जिससे उपर्युक्त सभी हस्ती विभिन्न दिशाओं को चले गये। इन्हीं के वंश में उत्पन्न, विनम्र स्वभाववाले हस्तियों ने अंग, लोमपाद, सूत्रकार को दिया। दो रद (दाँत) होने के कारण इनका द्विरद नाम पड़ा, हस्त (शुण्ड) के कारण हस्ती और कर (शुण्ड) के कारण करी कहते हैं। वरण (पूजन) होने के कारण इन्हें वारण, दो दाँतों के कारण दन्ती, गर्जन (चिग्घाड़ने) के कारण गज, कुब्जों में विचरण करने के कारण कुञ्जर, नगों (पर्वतों और वृक्षों) से विरोध करने के कारण नाग, मतङ्ग से उत्पन्न होने के कारण मातंग, दोनों (मुख और शुण्ड) से पान करने के कारण द्विप तथा सामवेद के गान से उत्पन्न होने के कारण ये सामज नाम से स्मरण किये जाते हैं, यह इनकी निरुक्ति का क्रम है॥ २२४-२२९॥

विमर्श—१. हाथी पर्वतों की चट्टानों एवं वृक्षों की शाखाओं आदि के तोड़ने-फोड़ने में प्रसिद्ध ही हैं। २. आनन्दाश्रम की प्रति में 'मत्वा यातीति मातङ्गः' जिस समास के अनुसार अर्थ मातंग नाम पडा है, पर अन्य प्रतियों के मतंगादिति मातंगः पाठ से ऊपर का अर्थ निकलता है जो अन्य कथाओं से मिलती-जुलती है और इस सम्बन्ध से मातंग नाम की निरुक्ति भी समीचीन एवं सर्वसम्मत होती है। अतः मतंगादिति मातंगः पाठ युक्तियुक्त प्रतीत हो रहा है ।

इन हस्तियों की जिह्वा जो पीछे की ओर लौटी रहती है और बोलने की शक्ति इनमें नहीं पायी जाती, वह अग्नि के शाप के कारण है और हस्तियों के जो बल की अनूतनता (स्फूर्ति का अभाव) तथा इनके लिंग एवं अण्डकोष का छिपा रहना—ये दोनों श्री स्वयंभू ब्रह्मा एवं सुरगणों के शाप के कारण हैं। देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, सर्प एवं राक्षस—ये सब जिन कन्याओं में उत्पन्न हुए उन्हीं में दिग्गजों के संयोग से हस्तियों की उत्पत्ति हुई जिससे वे विपुल पराक्रमी हुए। इन गजों की उत्पत्ति, प्रभाव, अनेक नाम पड़ने के कारण आदि की कथा यही जाननी चाहिए (जिसे ऊपर कह चुका)। इन सबका राजा विभावसु है। पूर्व दिशा में कौशकी से लेकर समुद्रपर्यन्त

उत्तरा तस्य विन्ध्यस्य गङ्गाया दक्षिणं च यत् । गङ्गोद्भेदात् करूषेभ्यः सुप्रतीकस्य तद्वनम् ॥ २३४ ॥
अपरेणोत्कलाच्चैव ह्यावेदिभ्यश्च पञ्चमम् । एकभूतात्मनोस्यैतद्वामनस्य वनं स्मृतम् ॥ २३५ ॥
अपरेण तु लौहित्यमासिन्धोः पश्चिमेन तु । यमस्यैतद्वनं प्रोक्तमनुपर्वतमेव तत् ॥ २३६ ॥
भूतिर्विजज्ञे भूतांश्च रुद्रस्यानुचरान् प्रभोः । स्थूलान् कृशांश्च दीर्घांश्च वामनान् ह्रस्वकान् समान् ॥२३७॥
लम्बकर्णान् प्रलम्बोष्ठान् लम्बजिह्वास्तनोदरान् ।एकरूपान् द्विरूपांश्च लम्बस्फिक्स्थूलपिण्डिकान् ॥२३८॥
सरोवरसमुद्रादिनदीपुलिनवासिनः । कृष्णान् गौरांश्च नीलांश्च श्वेतांश्च लोहितारुणान् ॥ २३९ ॥
बभ्रून् वै शबलान् धूम्रान् कद्रून् रासभदारुणान्। मुञ्जकेशान् हृषीकेशान् सर्पयज्ञोपवीतिनः ॥ २४० ॥
विसृष्टाक्षान् विरूपाक्षान् कृशाक्षानेकलोचनान्। बहुशीर्षान् विशीर्षांश्च एकशीर्षांश्च शीर्षकान्॥ २४१॥
चण्डांश्च विकटांश्चैव विरोमान् रोमशांस्तथा । अन्धांश्च जटिलांश्चैव कुब्जान् हेषकवामनान् ॥ २४२ ॥
सरोवरसमुद्रादिनदीपुलिनसेविनः । एककर्णान् महाकर्णान् शङ्कुकर्णानकर्णिकान् ॥ २४३ ॥

एवं उसके उपरान्त समुद्र तट से गंगा तक जो जंगल है; वह एकमात्र अञ्जन नामक हस्ती एवं उसके वंश में उत्पन्न होनेवाले का है ॥ २३०-२३३ ॥

विन्ध्य गिरि के उत्तर से लेकर गङ्गा के दक्षिण तक; तथा गङ्गा के उद्गम स्थल से लेकर करुष देश तक सुप्रतीक नामक गज का जंगल है । उत्कल (उड़ीसा) प्रान्त के पश्चिमी छोर से लेकर वेदि (?) देश पर्यन्त, जो पाँचवाँ जंगल है, वह एकमात्र (?) वामन नामक हस्ती के वंशजों का जंगल कहा जाता है । लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) के दूसरे तट से पश्चिम, समुद्र तट के पर्वत के समीप तक यम का वन कहा गया है ॥ २३४-२३६ ॥

हे प्रभो ! भूति ने रुद्र के अनुचर भूतों को उत्पन्न किया जिनमें से कुछ बहुत मोटे, कुछ बहुत पतले, कुछ विशालकाय, कुछ बौने, कुछ बहुत ही छोटे, कुछ समान आकारवाले थे, इसी प्रकार लम्बे कानवाले, लम्बे होंठोंवाले, लम्बी जीभवाले लम्बे स्तन और लम्बे पेटवाले थे । कुछ एक ही तरह के रूपवाले थे तो कुछ एकदम कुरूप थे, कुछ के स्फिक् (नितम्ब) बहुत लम्बे थे, कुछ के मोटे पिण्डाकार पेट निकले हुए थे । ये भूतगण सरोवर, समुद्र, नदी आदि जलाशयों के तट पर निवास करनेवाले थे । इनमें से कुछ काले वर्ण के कुछ गोरे वर्ण के कुछ नीले वर्ण के, कुछ श्वेत वर्ण के कुछ लोहित और अरुण वर्ण के थे ॥ २३७-२३९ ॥

इसी प्रकार कुछ गहरे पीले वर्ण के, कुछ चितकबरे रंग के कुछ धुएँ के वर्ण के तथा कुछ हल्के पीले रंग के थे । ये सभी भूतगण दारुण राक्षसों के समान उग्र स्वभाववाले थे । इनमें से कोई मुंजकेश; कोई हृषीकेश तथा कोई सर्प का यज्ञोपवीत धारण करनेवाले थे । किसी की आँखें फूटी हुई थीं, किसी की आँखें अतिशय कुरूप थीं, किसी की आँखें बहुत बैठी हुई थीं तथा किसी की एक आँख ही फूटी हुई थी । कोई अनेक सिरवाले थे, कोई सिरोविहीन थे, कोई एक सिरवाले थे, किसी के सिर था ही नहीं । कोई अतिशय उग्र स्वभाववाले थे, कोई अत्यन्त विकट स्वभाववाले थे, कोई रोमावली विहीन थे, कोई बहुत रोमवाले थे, कोई अन्धे थे, कोई लंबी-लंबी जटाओंवाले थे, कोई कुबड़े थे, कोई चिग्घाड़नेवाले तथा बौने थे । ये सब के सब सरोवर, समुद्र, नदी तट पर निवास करते थे । इनमें किसी-किसी के एक कान था, कोई कोई बहुत बड़े कानवाले थे, किसी-किसी के कान शंकु (खूँटे) के समान थे, कोई-कोई कानविहीन थे ॥ २४०-२४३ ॥

दंष्ट्रिणो नखिनश्चैव निर्दन्तांश्च द्विजिह्वकान् । एकहस्तान् द्विहस्तांश्च त्रिहस्तांश्चाप्यहस्तकान् ॥ २४४ ॥
एकपादाद्विपादांश्च त्रिपादान्बहुपादकान् । महायोगान् महासत्त्वान् सुतपक्वान् महाबलान् ॥ २४५ ॥
सर्वत्रगानप्रतिघान् ब्रह्मज्ञान् कामरूपिणः। घोरान् क्रूरांश्च मेध्यांश्च शिवान् पुण्यान् सवादिनः ॥ २४६ ॥
कुशहस्तान् महाजिह्वान् महाकर्णान् महाननान् । हस्तादांश्च मुखादांश्च शिरोदांश्च कपालिनः ॥ २४७ ॥
धन्विनो मुद्गरधरानसिशूलधरांस्तथा । दीप्तास्यान् दीप्तनेत्रांश्च चित्रमाल्यानुलेपनान् ॥ २४८ ॥
अन्नादान् पिशितादांश्च बहुरूपान् सुरूपकान् । रात्रिसंध्याचरान् घोरान् क्वचित्सौम्यान् दिवाचरान् ॥
नक्तञ्चरान् सुदुष्प्रेक्ष्यान् घोरांस्तान् वै निशाचरान् ॥ २४९ ॥
परत्वे च भवं दैवं सर्वे ते गतमानसाः । नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्द्ध्वरेतसः ॥ २५० ॥
शतं तानि सहस्त्राणि भूतानामात्मयोगिनाम् । एते सर्वे महात्मानो भूत्याः पुत्राः प्रकीर्त्तिताः ॥ २५१ ॥

किसी-किसी के दाँत बहुत बड़े थे, किसी-किसी के नख बढ़े हुए थे, किसी-किसी के एक भी दाँत नहीं थे, कोई कोई दो जिह्वा वाले थे । किसी-किसी के एक हाथ थे तो कोई-कोई दो हाथोंवाले थे, किसी-किसी के तीन हाथ थे, और ऐसे भी थे, जिन्हें एक हाथ भी नहीं था । इसी प्रकार कोई-कोई एक पादवाले कोई-कोई दो पादवाले, कोई-कोई तीन पादवाले तथा कोई-कोई इससे भी अधिक अनेक पादोंवाले थे । उनमें से कितने महान् पराक्रमी थे, कितने महान् योगाभ्यासी थे । कितने सुतपक्व (?) थे और कितने महाबलवान् थे ॥ २४४-२४५॥

कितने ऐसे थे जो सर्वत्र जा सकते थे । कितने निष्क्रोधी एवं ब्रह्मज्ञ थे । कितने इच्छानुसार विविध स्वरूप धारण करने वाले थे और ऐसे भी कितने थे जो परम घोर तथा क्रूर स्वभाव वाले थे । कितने परम पवित्र, कल्याणकारी, पुण्यकर्त्ता एवं प्रिय बोलने वाले थे ॥ २४६ ॥

कुछ हाथों में कुश लिये रहते थे, किसी की जिह्वाएँ बहुत बड़ी थीं, किसी के कान बहुत लम्बे थे, किसी के मुख बहुत भीषण थे । कोई हाथों से खानेवाले थे, कोई मुख से खानेवाले थे, कोई सिर से खानेवाले थे, कोई-कोई मुण्डमाला पहने हुए थे । कोई-कोई हाथों में धनुष धारण किये हुए थे, कोई-कोई मुद्गर धारण किये थे, कोई-कोई तलवार तथा शूल धारण किये थे, कितनों के नेत्र उद्दीप्त हो रहे थे, कितनों के मुख उद्दीप्त हो रहे थे, कितने विचित्र ढंग की मालाएँ धारण किये थे तो कितने विचित्र चन्दनादि का लेप किये हुए थे ॥ २४७-२४८ ॥

उनमें से कुछ अन्नाहार करनेवाले थे, कुछ मांसाहारी थे, कितने अनेक स्वरूप धारण करनेवाले थे, कितने अति सुन्दर स्वरूपवाले थे । उनमें से कितने रात्रि तथा संध्या में गमन करनेवाले थे, कितने अति घोर दिखायी पड़नेवाले थे, कितने अति सौम्य दिखायी पड़नेवाले थे । कितने केवल दिन को चलनेवाले थे, कितने रात्रि को चलनेवाले थे, कितने अति कठिनाई से देखे जानेवाले थे (अर्थात् इतने घोर स्वरूपवाले थे कि लोगों का उनकी ओर देखने का साहस ही नहीं होता था) ॥ २४९ ॥

इस प्रकार उन निशिचरों को भूति ने उत्पन्न किया । वे सब भूति के पुत्रगण एकमात्र महादेव में चित्त लगानेवाले थे । इन सब के न तो स्त्री थी न पुत्र थे, सब के सब ब्रह्मचारी थे । इन आत्मयोगी भूतों की संख्या एक लाख थी, भूति के इन सब महात्मा पुत्रों की चर्चा की जा चुकी ॥ २४७-२५१ ॥

कपिशा जज्ञे कूष्माण्डी कूष्माण्डाञ्जज्ञिरे पुनः । मिथुनानि पिशाचानां वर्णेन कपिशेन च ॥
कपिशत्वात् पिशाचास्ते सर्वे च पिशिताशनाः ॥ २५२ ॥
युग्मानि षोडशान्यानि वर्त्तमानास्तदन्वयाः । नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि पुरुषादांस्तदन्वयान् ॥ २५३ ॥
छगलश्छगली चैव वक्रो वक्रमुखी तथा । षोडशानां गणाश्चैव सूची सूचीमुखस्तथा ॥ २५४ ॥
कुम्भपात्रश्च कुम्भी च वज्रदंष्ट्रश्च दुन्दुभिः । उपचारोपचारश्च उलूखल उलूखली ॥ २५५ ॥
अनर्कश्च अनर्का च कुखण्डश्च कुखण्डिका । पाणिपात्रा पाणिपात्री पांशुः पांशुमती तथा ॥ २५६ ॥
नितुण्डश्च नितुण्डी च निपुणा निपुणस्तथा । छलादोच्छेषणा चैव प्रस्कन्दः स्कन्दिका तथा ॥
षोडशानां पिशाचानां गणाः प्रोक्तास्तु षोडश ॥ २५७ ॥
अजामुखा वक्रमुखाः पूरिणः स्कन्दिनस्तथा । विषादाङ्गारिकाश्चैव कुम्भपात्राः प्रकुन्दकाः ॥ २५८ ॥
उपचारोलूखलिका ह्यनर्काश्च कुखण्डिकाः। पाणिपात्राश्च नैतुण्डा ऊर्णाशा निपुणास्तथा ॥ २५९ ॥
सूचीमुखोच्छेषणादाः कुलान्येतानि षोडश । इत्येता ह्यभिजातास्तु कूष्माण्डानां प्रकीर्तिताः ॥ २६० ॥
पिशाचास्ते तु विज्ञेयाः सुकल्पा इति जज्ञिरे । बीभत्सं विकृताचारं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥
अतस्तेषां पिशाचानां लक्षणं च निबोधत ॥ २६१ ॥
सर्वाङ्गकेशा वृत्ताख्या दंष्ट्रिणो नखिनस्तथा । तिर्यङ्गाः पुरुषादाश्च पिशाचास्ते ह्यधोमुखाः॥ २६२ ॥
अकेशका ह्यरोमाणस्त्वग्वसाश्चर्मवाससः। कूष्माण्डिकाः पिशाचास्ते तिलभक्षाः सदामिषाः॥ २६३ ॥

कपिशा कुष्माण्डी ने कुष्माण्ड के संयोग से पिशाच दम्पतियों को जन्म दिया जो सब कपिश (भूरे या मटमैले) रंग के थे कपिश वर्ण होने के कारण वे पिशाच कहलाये । ये सब मांसाहारी थे । अन्य सोलह पिशाच दम्पति हैं, जिनके वंशज वर्तमान हैं । उनके वंशधरों का नाम बतला रहा हूँ, वे सब मनुष्य का भक्षण करनेवाले थे ॥ २५२-२५३ ॥

छगल और छगली, वक्र और वक्रमुखी, सूचीमुख और सूची, कुम्भपात्र और कुम्भी, वज्रदंष्ट्र और दुन्दुभि, उपचार और अपचार, उलूखल और उलूखली, अनर्क और अनर्का, कुखण्ड और कुखण्डिका, पाणिपात्र और पाणिपात्री, पांशु और पांशुमती, नितुण्ड और नितुण्डी, निपुण और निपुणा, छलाद और उच्छेषणा तथा प्रस्कन्द और स्कन्दिका—ये सोलह (?) पिशाच दम्पतियों के गण कहे गये हैं ॥ २५४-२५७ ॥

अजामुख, बकमुख, पूरी, स्कन्दी, विषाद, अङ्गारिक, कुम्भपात्र, प्रकुन्दक, उपचार, उलूखलिक, अनर्क, कुखण्डिक, पाणिपात्र, नैतुण्ड, ऊर्णाश, निपुण, सूचीमुख और उच्छेषणाद कहे जानेवाले सोलह (?) कुल हैं । कुष्माण्ड के कुल में उत्पन्न होनेवाले इन कुलीनों का वर्णन किया गया । इन्हीं के कुल में उत्पन्न होनेवाले अन्यान्य पिशाचों को जानना चाहिए । इनके पुत्र-पौत्रादि की संख्या अनन्त है, सब अति विभत्स आकृति वाले तथा निन्द्य कर्म करनेवाले थे, अतः उन पिशाचों के लक्षण बतला रहा हूँ, सुनिये ॥ २५८-२६१ ॥

पिशाचों के सभी अंगों में केश होते हैं, आँखें गोली होती हैं, बड़े बड़े दाँत तथा नख होते हैं, अंग टेढ़े-मेढ़े रहते हैं, मनुष्यों का भक्षण करते हैं, उनके मुख नीचे की ओर झुके रहते हैं । कूष्माण्डिक कहलानेवाले

वक्राङ्गहस्तपादाश्च वक्रशीलागतास्तथा । ज्ञेया वक्रपिशाचास्ते वक्रगाः कामरूपिणः ॥ २६४ ॥
लम्बोदरास्तुण्डनाशा ह्रस्वकायशिरोभुजाः। नितुन्दकाः पिशाचास्ते तिलभक्षाः प्रियश्रवाः ॥ २६५ ॥
वामनाकृतयश्चैव वाचालाः प्लुतगामिनः । पिशाचानर्कमर्कास्ते वृक्षवासादनप्रियाः ॥ २६६ ॥
ऊर्द्ध्वबाहूर्द्ध्वरोमाण उर्द्ध्ववृक्षास्तथालयाः। मुञ्चन्ति पांशूनङ्गेभ्यः पिशाचाः पांशवश्च ते ॥ २६७ ॥
धमनीमन्तकाः शुष्काः श्मश्रुलाश्चीरवाससः । उपवीराः पिशाचाश्च श्मशानायतनास्तथा ॥ २६८ ॥
विष्टब्धाक्षा महाजिह्वा लेलिहाना ह्युदूखलाः। हस्त्युष्ट्रस्थूलशिरसो विरता बद्धपिण्डकाः ॥ २६९ ॥
पिशाचाः कुम्भपात्रास्ते अदृष्टान्नानि भुञ्जते । सूक्ष्मास्तु रोमशाः पिङ्गा दृष्टादृष्टाश्चरन्ति वै ॥ २७० ॥
आयुक्ताश्च विशन्तीह निपुणास्ते पिशाचकाः । आकर्णदारितास्याश्च लम्बभ्रूस्थूलनासिकाः ॥ २७१॥
हस्तपादाक्रान्तगणा ह्रस्वकाः क्षितिदृष्टयः । बालादास्ते पिशाचा वै सूतिकागृहसेविनः ॥ २७२ ॥
पृष्ठतः पाणिपादाश्च ह्रस्वका वातरंहसः। पिशितादाः पिशाचास्ते सङ्ग्रामे रुधिराशिनः ॥ २७३ ॥

पिशाचगण बिना केशों के होते हैं, शरीर पर रोम भी नहीं रहते, चमड़े, चर्बी आदि को वस्त्र के स्थान पर लपेटे रहते हैं, वे सर्वदा मांस तथा तिल का आहार करनेवाले हैं ॥ २६२-२६३ ॥

वक्र नामक पिशाचों के सभी अंग, हाथ, पैर सब टेढ़े होते हैं, वे चलते समय भी टेढ़ी-मेढ़ी चाल चलते हैं, सर्वदा टेढ़े बने रहते हैं, इच्छानुसार स्वरूप धारण करते हैं तथा वक्रगामी हैं । नितुन्दक नामक पिशाच लम्बे पेटवाले, ऊँची उठी हुई नासिकावाले, छोटे शरीरवाले, सिर और छोटे हाथवाले, तिल भक्षण करने वाले तथा सुन्दर कान वाले हैं ।

अर्क मर्का (?) नामक पिशाचगण बौने के समान आकृतिवाले, बहुत बोलनेवाले, उछल-उछलकर चलनेवाले, वृक्षों पर निवास करने तथा वृक्षों पर आहार करनेवाले हैं । पांशु कहे जानेवाले पिशाचगण ऊर्ध्व बाहुधारी होते हैं, उनके रोम ऊपर की ओर उठे हुए रहते हैं, उनके आवास स्थान भी ऊपर की ओर उठे हुए होते हैं, वे अपने अंगों से धूल गिराते चलते हैं । उपवीर नामक पिशाचगण अपनी धमनियों को जाननेवाले, सूखे हुए, मूँछ दाढ़ी रखे हुए, चीर धारण करनेवाले तथा श्मशानों में निवास करनेवाले होते हैं । उलूखल नामक पिशाचगण निश्चल आँखोंवाले, लंबी जीभवाले, सर्वदा जीभ से होंठ चाटनेवाले, हाथी और ऊँट की तरह मोटे सिरवाले, विरत तथा समूह बाँधकर चलनेवाले होते हैं ॥ २६५-२६९ ॥

वे कुम्भपात्र नाम से विख्यात पिशाच हैं, जो बिना देखे हुए अन्न का भोजन करते हैं । ये बहुत सूक्ष्म आकृतिवाले, सारे शरीर पर रोमावली युक्त, पीले वर्ण तथा कहीं पर दिखायी पड़नेवाले और कहीं पर न दिखायी पड़नेवाले होते हैं । वे निपुण नामक पिशाचगण हैं, जो इस भूलोक में अकेले पाने पर मनुष्यों में आविष्ट होते हैं, उनके मुख कानों तक फैले हुए रहते हैं, भौहें लंबी होती हैं, और नाक मोटी होती है । उनके हाथ और पैर बहुत छोटे-छोटे होते हैं और आँखें पृथ्वी पर लगी रहती हैं । ये पिशाचगण बालकों का भक्षण करनेवाले हैं और सर्वदा सूतिका गृहों का सेवन करते हैं ॥ २७०-२७२ ॥

मांस भक्षण करनेवाले पिशाचों के हाथ और पैर पीछे की ओर होते हैं, कद के छोटे होते हैं, वायु के

नग्नका ह्यनिकेताश्च लम्बकेशाश्च पिण्डकाः । पिशाचाः स्कन्दिनस्ते वै अन्या उच्छ्वसनाशिनः ॥
षोडश जातयस्तेषां पिशाचानां प्रकीर्त्तिताः ॥ २७४ ॥
एवंविधान् पिशाचांस्तु दीनान्दृष्ट्वाऽनुकम्पया । तेभ्यो ब्रह्मा वरं प्रादात्कारुण्यादल्पचेतसः ॥
अन्तर्द्धानं प्रजास्तेषां कामरूपत्वमेव च ॥ २७५ ॥
उभयोः संध्ययोश्चारं स्थानान्याजीवमेव च । गृहाणि यानि भग्नानि शून्यान्यल्पजनानि च ॥ २७६ ॥
विध्वस्तानि च यानि स्युरनाचारोषितानि च । असंस्पृष्टोपलिप्तानि संस्कारैर्वर्जितानि च ॥ २७७ ॥
राजमार्गोपरथ्याश्च निष्कुण्ठाश्चत्वराणि च । द्वाराण्यष्टालकाश्चैव निर्ममान्संक्रमांस्तथा ॥ २७८ ॥
पथो नद्योऽथ तीर्थानि चैत्यवृक्षान्महापथान् । पिशाचा विनिविष्टा वै स्थानेष्वेतेषु सर्वशः ॥ २७९ ॥
अधार्मिका जनास्ते वै आजीवा विहिताः सुरैः । वर्णाश्रमाः सङ्करिकाः कारुशिल्पिजनास्तथा ॥ २८० ॥
अमृतोपमसत्त्वानां चौरविश्वासघातिनाम् । एतैरन्यैश्च बहुभिरन्यायोपार्ज्जितैर्धनैः ॥
आरभन्ते क्रिया यास्तु पिशाचास्तत्र देवताः ॥ २८१ ॥
मधुमांसौदनैर्दध्ना तिलचूर्णसुरासवैः । धूपैर्हारिद्रकृशरैस्तैलभद्रगुडौदनैः ॥ २८२ ॥

समान वेगवान् होते हैं, ये संग्राम भूमि में जाकर रक्त का आहार करते हैं। स्कन्दी कहे जानेवाले पिशाचगण नग्न रहते हैं, उनके रहने का कोई नियत स्थान नहीं रहता, केश लंबे होते हैं, पिण्डाकार दिखायी पड़ते हैं, इनके अतिरिक्त अन्य पिशाचगण उच्छेषणाशी (जूठा खानेवाले) होते हैं। इन पिशाचों की सोलह (?) जातियों का वर्णन किया जा चुका ॥ २७३-२७४ ॥

इस प्रकार अपनी प्रजाओं में विभिन्न आकृति एवं गुण-दोषवाले इन पिशाचों को अल्पबुद्धियुक्त एवं दीन अवस्था में देख ब्रह्मा ने अनुग्रहपूर्वक अन्तर्धान होने तथा इच्छानुसार विविध स्वरूप धारण करने का वरदान दिया। ये पिशाचगण दोनों सन्ध्याओं (प्रातः एवं सायं) के अवसर पर विचरण करते हैं, उनकी जीविका एवं रहने के स्थानों को बतला रहा हूँ। जो भवन टूटे-फूटे रहते हैं, थोड़े आदमी निवास करते हैं, विध्वस्त हो जाते हैं, अत्याचारों समेत निवास किया जाता है, असंस्कृत अथवा बिना लिपे-पुते रहते हैं, स्पर्श नहीं किये जाते हैं। उनमें ये निवास करते हैं ॥ २७५-२७७ ॥

इसके अतिरिक्त राजमार्ग (सड़क), गलियाँ, घर के समीप के उपवन, चबूतरे या चौराहे, द्वारदेश, निर्मित होने वाली अट्टालक, एकान्त आवास, पथ, नदियाँ, तीर्थ, देवी-देवताओं के कल्पित निवास वृक्ष और महापथ (श्मशान मार्ग) इन स्थानों में सर्वत्र पिशाचगण निवास करते हैं। जो अधार्मिक जन हैं वर्णाश्रम की मर्यादा से बहिर्भूत हैं, वर्णसंकर हैं, कारीगरी या शिल्पकर्म करनेवाले हैं देवताओं ने उनको ही इन पिशाचों की आजीविका बनायी है। चोरी, विश्वासघात, अमृत तुल्य जीवों एवं इनके अतिरिक्त अन्यान्य कुत्सित उपायों द्वारा उपार्जित धन से जो क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं, उनके देवता पिशाच होते हैं ॥ २७८-२८१ ॥

मधु, मांस, भात, दही, तिलचूर्ण, मदिरा, आसव, धूप, हरिद्रा, खिचड़ी, तेल, मोथा, गुड़ और भात (एक में), काले वस्त्र, धूप और पुष्प-इन सब सामग्रियों समेत पर्वो की संधियों के अवसर पर पिशाचों की बलि

कृष्णानि चैव वासांसि धूपाः सुमनसस्तथा । एवं युक्ताः सुबलयस्तेषां वै पर्वसन्धिषु ॥
पिशाचानामनुज्ञाय ब्रह्मा सोऽधिपतिर्ददौ ॥ २८३ ॥
सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम् । दृष्ट्वा त्वजनयन्पुत्रान्व्याघ्रान्सिंहांश्च भामिनी ॥ २८४ ॥
द्विपिनश्च सुतास्तस्या व्यालेयाश्चामिषाशिनः । ऋषयश्चापि कात्स्न्येंन प्रजासर्गं निबोधत ॥
तस्य दुहितरः पञ्च तासां नामानि मे शृणु ॥ २८५ ॥
मीना माता तथा वृत्ता परिवृत्ता तथैव च । अनुवृत्ता तु विज्ञेया तासां वै शृणुत प्रजाः ॥ २८६ ॥
सहस्रदन्ता मकराः पाठीनास्तामरोहिताः । इत्येवमादिर्हि गणो मैनो विस्तीर्ण उच्यते ॥ २८७ ॥
ग्राहाश्चतुर्विधा ज्ञेयास्तथानुज्येष्ठका अपि । निष्कांश्च शिशुमारांश्च माता व्यजनयत्प्रजाः ॥ २८८ ॥
वृत्ता कूर्मविकाराणि नैकानि जलचारिणाम् । तथा शङ्खविकाराणि जनयामास नैकशः ॥ २८९ ॥
मण्डूकानां विकाराणि अनुवृत्ता व्यजायत । ऐणेयानां विकाराणि शम्बूकानां तथैव च ॥ २९० ॥
तथा शुक्तिविकाराणि वराटककृतानि च । तथा शङ्खविकाराणि परिवृत्ता व्यजायत ॥ २९१ ॥
कालकूटविकाराणि जलौकविहितानि च । इत्येष हि ऋषेर्वंशः पञ्चशाखाः प्रकीर्त्तिताः ॥ २९२ ॥
तिर्यग् हेतुकमाद्याहुर्बहुलं वंशविस्तरम् । संस्वेदजविकाराणि यथा येभ्यो भवन्ति ह ॥ २९३ ॥
स्वस्तिपिकशरीरेभ्यो जायन्त्युत्पादका द्विजाः। मनुष्याः स्वेदमलजाः उशना नाम जन्तवः ॥
नानापिपीलिकगणाः कीटका बह्वपादकाः ॥ २९४ ॥

देनी चाहिए। ऐसी आज्ञा ब्रह्मा ने उन पिशाचों को दी और शूलपाणि महेश्वर को उन सभी भूतों एवं पिशाचों का स्वामी नियत किया है। सुन्दरी दंष्ट्रा ने व्याघ्रों और सिंहों को पुत्ररूप में उत्पन्न किया ॥ २८२-२८४ ॥

इनके अतिरिक्त चीते, अन्य प्रकार के बाघ और शेर तथा अन्यान्य मांसभक्षी वन्य पशुओं को उसने उत्पन्न किया। अब इसके उपरान्त ऋषा की सम्पूर्ण प्रजाओं का विस्तार क्रम सुनिये। उसकी पाँच कन्याएँ थीं, जिनके नाम मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। मीना, माता, वृत्ता, परिवृत्ता तथा अनुवृत्ता—ये पाँच उनकी कन्याएँ थीं, इनके पुत्रादिकों का वर्णन सुनिये। सहस्र दाँतवाले मकर, पाठीन (जलजन्तु), तिमि (मछली-विशेष), रोहित (रोहू)—ये सब मीनों के भेद को मीना की सन्तानों में कहे गये हैं ॥ २८५-२८७ ॥

इसके अतिरिक्त छोटे और बड़े, चार प्रकार के ग्राह, निष्क और शिशुमार—इन सबको मीना (माता) ने उत्पन्न किया। वृत्ता ने जल में विचरण करनेवाले सभी प्रकार के कच्छपों (कछुओं) को तथा सभी प्रकार के शंखों को अगणित संख्या में उत्पन्न किया। अनुवृत्ता ने मेढकों के सभी भेदों एवं उपभेदों को तथा ऐणेय (?) और शम्बूक (घोंघा) के सभी भेदोपभेदों को उत्पन्न किया। परिवृत्ता ने शुक्ति (सुतुही), वराटिका (कौड़ी) तथा शब्द के सभी भेदोभेद को उत्पन्न किया। इनके अतिरिक्त कालकूट और जलौका (जोंक) के सभी भेदों को भी उसने उत्पन्न किया। यह ऋषि के वंश का वर्णन किया जा चुका, जिसकी उपर्युक्त पाँच शाखाएँ कही गयी हैं ॥२८८-२९२॥

इन निरर्थक योनि में उत्पन्न होनेवाले जन्तुओं का वंश विस्तार बहुत कहा जाता है। जो जिनके स्वेद से जिस प्रकार उत्पन्न होते हैं उन स्वेद से उत्पन्न होनेवाले जीवों के भेदोपभेदों का वर्णन कर रहा हूँ। हे द्विजगण !

शङ्खोपलविकाराणि कीलकाचारकाणि च । इत्येवमादिबहुलाः स्वेदजाः पार्थिवा गणाः ॥ २९५ ॥
तथा घर्मादितप्ताभ्यस्त्वद्भयो वृष्टिभ्य एव च । नैका मृगशरीरेभ्यो जायन्ते जन्तवस्त्विमे ॥ २९६ ॥
मीनकाः पिप्पला दंशास्तथा तित्तिरपुत्रिकाः । नीलचित्राश्च जायन्ते ह्यलका बहुविस्तराः ॥ २९७ ॥
जलजाः स्वेदजाश्चैव जायन्ते जन्तवस्त्विमे । काशतो यञ्जकाः कीटनलदा बहुपादकाः ॥ २९८ ॥
सिंहला रोमलाश्चैव पिच्छलाः परिकीर्त्तिताः। इत्येवमादिर्हि गणो जलजः स्वेदजः स्मृतः ॥ २९९ ॥
सर्पिर्भ्यो माषमुद्गानां जायन्ते क्रमशस्तथा । जम्बुबिल्वाम्रपूगेभ्यः फलेभ्यश्चैव जन्तवः ॥ ३००॥
मुद्गेभ्यः पनसेभ्यश्च तण्डुलेभ्यस्तथैव च । तथा कोटरशुष्केभ्यो निहितेभ्यो भवन्ति हि ॥ ३०१ ॥
अन्येभ्योऽपि च जायन्ते न हि तेभ्यश्चिरं सदा । जन्तवस्तुरगादिभ्यो विषादिभ्यस्तथैव च ॥ ३०२ ॥
बहून्यहानि निःक्षिप्ते सम्भवन्ति च गोमये । जायन्ते कृमयो विप्रा काष्ठेभ्यश्च घुणादयः ॥ ३०३ ॥
क्रमादद्रुमाणां जायन्ते विविधा नीलमक्षिकाः। तथा शुष्कविकारेभ्यः पुत्रिकाः प्रभवन्ति च ॥ ३०४ ॥
कालिका शतिकेभ्यश्च सर्पा जायन्ति सर्वशः । संस्वेदजाश्च जायन्ते वृश्चिकाः शुष्कगोमयात् ॥ ३०५ ॥
गोभ्यो हि महिषेभ्यश्च जायन्ते जन्तवः प्रभो । मत्स्यादयश्च विविधा अण्डकुक्षौ विशेषतः ॥ ३०६ ॥
चैवीरिकाश्च जायन्ते तथा गोजाकुलानि च । तथान्यानि च सूक्ष्माणि जलौकादीनि जातयः ॥ ३०७ ॥

इन स्वेदज जन्तुओं के उत्पादक मनुष्य हैं । ये स्वेदज जन्तु स्वस्तिपिक (?) शरीरों से उत्पन्न होते हैं । स्वेद और मल से उत्पन्न होनेवाले जन्तुगण उशना नाम से प्रसिद्ध हैं । विविध प्रकार के चींटी और विविध जाति के जन्तु एवं कीट, जो श्रेणीबद्ध होकर चलते हैं, शंख और रत्नों के विविध प्रकार के जीव एवं कीलकाचारक तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुतेरे जन्तु पार्थिव (पृथ्वी के) स्वेदज कहे जाते हैं ॥ २९३-२९६ ॥

धूप आदि से तपे हुए जल से, वृष्टि से तथा मृगों (पशुओं) के शरीरों से ये अनेक जन्तु उत्पन्न होते हैं। मीनक, पिप्पल, दंश, तित्तिरपुत्रक, नीलचित्र, अलर्क-प्रभृति जन्तुओं की संख्या बहुत अधिक है । ये जन्तु जलज एवं स्वेदज कहे जाते हैं । ये जलज और स्वेदज जन्तु काशतोयञ्जक, नलद, बषुपादक, सिंहल, रोमल, पिच्छल आदि नामों से पुकारे जाते हैं । इनके अतिरिक्त अन्य बहुतेरे भी हैं । घृत से, उड़द से, मूंग से भी ये जन्तु उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार बेल, जामुन, आम, सुपारी आदि फलों से भी ये जन्तु उत्पन्न होते हैं । मूंग, कटहल, चावल, सूखे वृक्षों के कोटर एवं बहुत दिनों की रखी हुई वस्तुओं से भी ये कीट उत्पन्न होते हैं ॥ २९५-३०१ ॥

इनके अतिरिक्त अन्य बहुत पदार्थों से इन कीटों की उत्पत्ति होती है; किन्तु उनसे सर्वदा चिरकाल तक नहीं उत्पन्न होते हैं । घोड़े आदि पशुओं तथा विष आदि पदार्थों से भी ये क्षुद्र जन्तु उत्पन्न होते हैं । बहुत दिनों से रखे गये गोबर में ये जन्तु उत्पन्न होते हैं । हे द्विजगण ! इसी प्रकार काष्ठादि वस्तुओं से घुन आदि क्षुद्र जन्तु उत्पन्न होते हैं । वृक्षों से विविध प्रकार की नीली मक्खियाँ उत्पन्न होती हैं, सब प्रकार की सूखी हुई वस्तुओं से पुत्रिका उत्पन्न होती हैं, शतिकों (?) से सभी प्रकार के वर्षाकालीन सर्प उत्पन्न होते हैं । सूखे गोबरों से बिच्छुओं की उत्पत्ति होती है ॥ ३०२-३०५ ॥

हे प्रभो ! इसी प्रकार गौओं और भैंसों के शरीर से भी स्वेदज जन्तुओं की उत्पत्ति होती है । मत्स्य आदि

मक्षिकाणां विकाराणि जायन्ते जातयोऽपरे । प्रायेण तु वसन्त्यस्मिन्नुच्छिष्टोदककर्दमे ॥ ३०८ ॥
मशकानां विकाराणि भ्रमराणां तथैव च । तृणेभ्यश्चैव जायन्ते पुत्रिकाः पुत्रभासकाः ॥ ३०९ ॥
मणिच्छेदास्तथा व्यालाः पोतजाः परिकीर्त्तिताः। शतवेरिविकाराणि करीषेभ्यो भवन्ति हि ॥ ३१० ॥
एवमादिरसङ्ख्यातो गणः संस्वेदजो मया । समासाभिहितो ह्येष प्राक्कर्मवशजः स्मृतः ॥ ३११ ॥
तथाऽन्ये नैर्ऋता सत्वास्ते स्मृता उपसर्गजाः। पूतास्तु योनिजाः केचित्केचिदौत्पत्तिकाःस्मृताः ॥ ३१२ ॥
प्रायेण देवाः सर्वे वै विज्ञेया ह्युपपत्तिजाः । केचित्तु योनिजा देवाः केचिदेवानिमित्ततः ॥ ३१३ ॥
तूलालाघश्च कोलश्च शिवा कन्या तथैव च । अपत्यं सरमायास्तु गणा वै सरमादयः ॥ ३१४ ॥
श्यामश्च शबलश्चैव अर्जुनौ हरितस्तथा । कृष्णो धूम्रारुणश्चैव तूलालाघश्च कद्रुकाः ॥ ३१५ ॥
सुरसाथ विजज्ञे तु शतमेकं शिरोमृतम् । सर्पाणां तक्षको राजा नागानां चापि वासुकिः ॥
तमोबहुल इत्येष गणः क्रोधवशात्मकः ॥ ३१६ ॥
पुलहस्यात्मजासर्गस्ताम्रायास्तन्निबोधत । बह्वन्यास्त्वभिविख्यातास्ताम्रायाश्च विजज्ञिरे ॥ ३१७ ॥
श्येनी भासी तथा क्रौञ्ची धृतराष्ट्री शुकी तथा । अरुणस्य भार्या श्येनी तु वीर्यवन्तौ महाबलौ ॥
सम्पातिं च जटायुं च प्रसूता पक्षिसत्तमौ ॥ ३१८ ॥

विविध जन्तु अण्डे से उत्पन्न होते हैं । चैवीरिक, गोजा एवं अन्यान्य प्रकार के जोंक आदि क्षुद्र जलजन्तुओं की उत्पत्ति भी अण्डों से होती है ॥ ३०६-३०७ ॥

सभी प्रकार की मक्खियों की जातियों में जितने अन्यान्य भेदोपभेद पाये जाते हैं, वे भी अंडों से उत्पन्न होते हैं । कुछ मक्खियाँ उच्छिष्ट वस्तुओं पर, जल में तथा कीचड़ में निवास करती हैं । सभी प्रकार के मशकों के भेदोपभेद, भ्रमरों के भेदोपभेद, पुत्रिका तथा पुत्र सप्तक आदि क्षुद्र जन्तु तृणों से उत्पन्न होते हैं ॥३०८-३०९॥

मणिच्छेद तथा व्याल ये पोतज नाम से प्रसिद्ध हैं (?), शतवेरि के जितने भेदोपभेद हैं वे करीषों (करषे) से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के अन्यान्य स्वेदज क्षुद्र जन्तुओं की संख्या अगणित है । केवल संक्षेप में मैंने इनका वर्णन किया है, ये सब जन्म प्राक्तन कर्म के अधीन कहे जाते हैं ॥ ३१०-३११ ॥

इन सबों के अतिरिक्त जो नैर्ऋत प्राणी हैं, वे उपसर्गज कहे जाते हैं । कोई जन्म ग्रहण करनेवाले प्राणी पूत और कोई औत्पत्तिक कहे जाते हैं । प्रायः सभी देवगणों को औत्पत्तिक जानना चाहिए । कुछ देवता योनिजात हैं और कुछ बिना किसी कारण के ही उत्पन्न होनेवाले हैं । सरमा के तुलालाघ और कोल ये दो पुत्र और शिवा नाम की तीसरी कन्या हुई । ये सरमादिगण के नाम से प्रसिद्ध हैं । श्याम, शबल, अर्जुन, हरित, कृष्ण, धूम्र, अरुण और तूलालाबू ये कद्रु को सन्ततियाँ हैं । सुरसा ने एक सौ शिरोमृत सर्पों को उत्पन्न किया। सर्पो का राजा तक्षक और नागों का राजा वासुकि है । ये प्रधानतया तमोगुण वाले प्रजागण क्रोधवशात्मक कहे गये हैं ॥ ३१२-३१६ ॥

पुलह के पुत्र के संयोग से ताम्रा में जो प्रजा सृष्टि हुई, उसे सुनिये, ताम्रा से अन्यान्य बहुत-सी संततियाँ उत्पन्न हुईं जो सुप्रसिद्ध हैं । जैसे, श्येनी, भासी, क्रौञ्ची, धृतराष्ट्री और शुकी । इनमें श्येनी अरुण की स्त्री हुई,

सम्पातिरजनत् पुत्रं कन्यामेकां तथैव च । जटायुषश्च ये पुत्राः काकगृध्राश्वकर्णिनः ॥ ३१९ ॥
भार्या गरुत्मतश्चापि भासी क्रौञ्ची तथा शुकी । धृतराष्ट्री च भद्रा च तास्वपत्यानि वक्ष्यते ॥ ३२० ॥
शुकी गरुत्मतः पुत्रान् सुषुवे षट् परिश्रुतान् । त्रिशिरं सुसुखं चैव बलं पृष्ठं महाबलम् ॥ ३२१ ॥
त्रिशङ्खनेत्रं सुसुखं सुरूपं सुरसं बलम् । एषां पुत्राश्च पौत्राश्च गरुडानां महात्मनाम् ॥ ३२२ ॥
चतुर्दश सहस्राणि क्रूराणां पन्नगाशिनाम् । पुत्रपौत्रविसर्गाच्च तेषां वै वंशविस्तरः ॥ ३२३ ॥
व्याप्तानि यानि देशानि तानि वक्ष्ये यथाक्रमम् । शाल्मलिद्वीपमखिलं देवकूटं च पर्वतम् ॥ ३२४ ॥
मणिमन्तं च शैलेन्द्रं सहस्रशिखरं तथा । पर्णमालं सुकेशं च शतशृङ्गं तथाचलम् ॥ ३२५ ॥
कौरजं पञ्चशिखरं हेमकूटं च पर्वतम् । प्रचण्डवायुप्रभवैर्दीपितैः पद्मरागिभिः ॥ ३२६ ॥
शैलजालानि व्याप्तानि गारुडस्तैर्महात्मभिः । भासीपुत्राः स्मृता भासा उलूकाः काककुक्कुटाः ॥३२७॥
मयूराः कलविङ्काश्च कपोता लावतित्तिराः।क्रौञ्ची वार्द्धीणसान् श्येनी कुररान्सारसान् बकान् ॥३२८॥
इत्येवमादयोन्येऽपि क्रव्यादा ये च पक्षिणः । धृतराष्ट्री च हंसांश्च कलहंसांश्च भामिनी ॥ ३२९ ॥
चक्रवाकांश्च विहगान्सर्वांश्चैवादकान् द्विजान् । एतानेव विजज्ञेऽथ पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥ ३३० ॥
गरुडस्यात्मजाः प्रोक्ता इरायाः शृणुत प्रजाः। इरा प्रजज्ञे कन्या वै तिस्रः कमललोचनाः ॥ ३३१ ॥

और उसने सम्पाति और जटायु नामक महाबलवान् एवं पराक्रमी श्रेष्ठ पक्षियों को उत्पन्न किया । एक पुत्र और एक कन्या को जन्म दिया । जटायु के जो पुत्र उत्पन्न हुए, वे काक, गृध्र और अश्वकर्णी हैं ॥ ३१७-३१९ ॥

गरुत्मान् (गरुड़) की स्त्री भासी, क्रौञ्ची, शुकी, धृतराष्ट्री और भद्रा थीं । उनमें जो सन्ततियाँ उत्पन्न हुईं उन्हें बतला रहा हूँ । इन पत्नियों में से शुकी ने गरुत्मान् के संयोग से छह सुविख्यात पुत्रों को जन्म दिया, जिनके नाम त्रिशिर, सुसुख, सम्पाति ने बल, महाबलवान् पृष्ठ, सुन्दर मुखवाला त्रिशंखनेत्र और महाबलशाली स्वरूपवान् सुरस थे । इन महाबलशाली क्रूरकर्मा, सर्पभक्षी गरुड़ों के पुत्रों एवं पौत्रों की संख्या चौदह सहस्र थी । उनके पुत्रों, पौत्रों से ही पक्षियों की सृष्टि का विस्तार हुआ ॥ ३२०-३२३ ॥

उन पक्षियों ने जिन देशों को व्याप्त किया है, अर्थात् वे जिन-जिन देशों में अपना स्थान बनाकर निवास करते हैं, उन्हें क्रमशः बतला रहा हूँ । सम्पूर्ण शाल्मलि द्वीप, सारा देवकूट पर्वत, पर्वतराज मणिमान् और सहस्र शिखर, पर्णमाल, सुकेश, शतशृंग, कौरज, पञ्चशिखर, हेमकूट प्रभृति पर्वतों पर निवास करते हैं । प्रचण्डवायु उत्पन्न होनेवाले अति कान्तिमान, पद्म के समान रंगवाले, उन महाबलशाली गरुड़ नामक पक्षियों से इन पर्वतों के शिखरजाल भरे पड़े हैं । भासी के पुत्र भास नाम से विख्यात हुए । उलूक, काक, कुक्कुट (मुर्गे), मयूर, कलविंक (गवरा, गौरैया), कपोत, लवा, तीतर प्रभृति पक्षी भासी की सन्तति स्मरण किये गये हैं । क्रौञ्ची ने 'वार्धीणस' नामक पक्षियों को उत्पन्न किया । कुरर, सारस, बगले आदि अन्यान्य जो मांसभक्षी पक्षी हैं, उन्हें श्येनी ने उत्पन्न किया ॥ ३२४-३२८ ॥

सुन्दरी धृतराष्ट्री ने हंस, कलहंस, चक्रवाक तथा अन्य सभी प्रकार के हिंसक पक्षियों को जन्म दिया । इन सबों के इन पुत्रों के पुत्र, पौत्रों की संख्या असंख्य हुई ॥ ३२९-३३० ॥

गरुड़ की सन्ततियों का विवरण कह चुका, अब इरा की सन्ततियों को सुनिये । इरा ने कमल के समान

वनस्पतीनां वृक्षाणां वीरुधां चैव मातरः । लता चैवाथ वल्ली च वीरुधा चेति तास्तु वै ॥ ३३२ ॥
लता वनस्पतीञ्जज्ञे ह्यपुष्पान् पुलिनस्थितान् । युक्तान्पुष्पफलैर्वृक्षान् लता वै सम्प्रसूयते ॥ ३३३ ॥
अथ वल्ली तु गुल्मांश्च त्वक्सारास्तृणजातयः । वीरुधा तदपत्यानि वंशश्चात्र समाप्यते ॥ ३३४ ॥
एते कश्यपदायादा व्याख्याताः स्थाणुजङ्गमाः । तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च यैरिदं पूरितं जगत् ॥ ३३५ ॥
इति सर्गैकदेशस्य कीर्तितोऽवयवो मया । मारीचोऽयं प्रजासर्गः समासेन प्रकीर्त्तितः ॥
न शक्यं व्यासतो वक्तुमपि वर्षशतैर्द्विजाः ॥ ३३६ ॥
अदितिर्धर्मशीला तु बलशीला दितिः स्मृता । तपःशीला तु सुरभिर्मायाशीला दनुः स्मृता ॥ ३३७ ॥
क्रूरशीला तथा कद्रुः क्रौञ्च्यथ श्रुतिशालिनी । इरा ग्रहणशीला तु दनायुर्भक्षणे रता ॥ ३३८ ॥
वाहशीला तु विनता ताम्रा वै पाशशालिनी । स्वभावा लोकमातॄणां शीलान्येतानि सर्वशः ॥ ३३९ ॥
धर्मतः शीलतो बुद्ध्या क्षमया बलरूपतः । रजःसत्त्वतमोवृत्ता धार्मिकाधार्मिकास्तु वै ॥ ३४० ॥
मातृतुल्याश्चाभिजाताः कश्यपस्यात्मजाः प्रजाः । देवतासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥
पिशाचाः पशवश्चैव मृगाः पतङ्गवीरुधः ॥ ३४१ ॥

मनोहर नेत्रोंवाली तीन कन्याओं को जन्म दिया, जो सभी प्रकार की वनस्पतियों, वृक्षों और लताओं की माता थीं उनके नाम थे लता, वल्ली और वीरुधा । जिनमें लता ने नदी आदि के तट प्रदेश में स्थित रहनेवाले, पुष्परहित वनस्पतियों को उत्पन्न किया, इसके अतिरिक्त पुष्पों और फलों से संयुक्त वृक्षों को लता ने जन्म दिया । वल्ली ने गुल्मों को जन्म दिया । समस्त तृण जाति एवं त्वक् सार (जिनके चमड़े में ही सार हो, जैसे बाँस) आदि को भी वल्ली ने उत्पन्न किया । वीरुधा की सन्ततियाँ वीरुध' के नाम से विख्यात हुईं । यह वंश परिचय की कथा यहाँ समाप्त की जाती है । कश्यप के वंश में उत्पन्न होनेवाले स्थावर जंगम जीव-निकाय की सृष्टि को मैं कह चुका, इनके पुत्रों एवं पौत्रों का परिचय सुना चुका, जो इस समस्त जगन्मण्डल को व्याप्त किए हुए हैं । इस विस्तृत प्रजा सृष्टि के एक अंश का लघु परिचय मैं आप लोगों को करा चुका । मरीचि पुत्र कश्यप की प्रजाओं का सृष्टिविस्तार इस प्रकार संक्षेप में कहा जा चुका । हे द्विजगण ! इस सृष्टि-क्रम को विस्तार के साथ सैकड़ों वर्षों में भी नहीं कहा जा सकता ॥ ३३१-३३६ ॥

कश्यप की स्त्रियों में अदिति धर्मशील एवं दिति बलशील कही जाती है । इसी प्रकार सुरभि तपस्या में निरत रहनेवाली तथा दनु मायाविनी कही गयी है ॥ ३३७ ॥

कद्रु परम क्रूर प्रकृति वाली तथा क्रौञ्ची वेदों का अध्ययन करनेवाली अथवा बहुत अधिक सुननेवाली कही जाती है । इसी प्रकार इरा को लोग अनुग्रह करनेवाली तथा दनायु को भक्षण करनेवाली बतलाते हैं । विनता भार वहन करनेवाली और ताम्रा पाश धारण करनेवाली कही जाती है । लोकमाताओं के यही स्वभाव हैं, उनके शील-सदाचारादि का समष्टि में यही परिचय है । इन सबों के धर्म, शील, सदाचारादि, बुद्धि, क्षमा, बल एवं स्वरूप से राजसी, तामसी एवं सात्विकी प्रवृत्तियाँ उनमें पायी जाती हैं, और इस प्रकार वे धार्मिक और अधार्मिक दोनों प्रकार के विचारों वाली कही जाती हैं ॥ ३३८-३४० ॥

कश्यप की ये समस्त प्रजाएँ अपनी-अपनी माताओं के समान स्वभाववाली तथा कुलीन थीं । देवता,

यस्माद्दाक्षायणीष्वेते जज्ञिरे मानुषीष्विह । मन्वन्तरेषु सर्वेषु तस्माच्छ्रेष्ठास्तु मानुषाः ॥ ३४२ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां मानुषाः साधुकास्तु वै । ततोऽधः श्रोतसस्ते वै उत्पद्यन्ते सुरासुराः ॥ ३४३ ॥
जायन्ते कार्यसिद्ध्यर्थं मानुषेषु पुनः पुनः । इत्येवं वंशप्रभवः प्रसंख्यातस्तपस्विनाम् ॥ ३४४ ॥
सुराणामसुराणां च गन्धर्वाप्सरसां तथा । यक्षरक्षःपिशाचानां सुपर्णोरगपक्षिणाम् ॥ ३४५ ॥
व्यालानां शिखिनां चैव ओषधीनां च सर्वशः । कृमिकीटपतङ्गानां क्षुद्राणां जलजाश्च ये ॥
पशूनां ब्राह्मणानां च श्रीमतां पुण्यलक्षणम् ॥ ३४६ ॥
आयुष्यश्चैव धन्यश्च श्रीमान् हितसुखावहः । श्रोतव्यश्चैव सततं ग्राह्यश्चैवानुसूयता ॥ ३४७ ॥
इमं तु वंशं नियमेन यः पठेत् महात्मनां ब्राह्मणवर्यसंसदि ॥
अपत्यलाभं हि लभेत् सुपुष्कलं श्रियं धनं प्रेत्य च शोभनां गतिम् ॥ ३४८ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे कश्यपीयप्रजासर्गो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

* * *

असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, पिशाच, पशु, मृग, पक्षी और लता, वल्ली आदि सभी प्रजाएँ इस प्रकार की कही जाती हैं। यतः ये प्रजाएँ दश को मानुषों कन्याओं में उत्पन्न हुईं अतः मन्वन्तरों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ माने गये ॥ ३४१-३४२ ॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के साधक मनुष्य ही हैं। उनके इस मर्त्यलोक में सुर, असुरगण कार्य सिद्धि के लिए बारम्बार अधःश्रोत के रूप में उत्पन्न होते हैं। तपस्वियों के वंश में उत्पन्न होने वाले देवताओं, असुरों, गन्धर्वों, अप्सराओं, यक्षों, राक्षसों, पिशाचों, पक्षियों, सर्पों, विहंगमों, व्यालों, शिखियों, सभी प्रकार की ओषधियों, कृमि, कीट-पतंगों, क्षुद्र जलजन्तुओं, पशुओं, ब्राह्मणों एवं श्रीमानों के पुण्यदायी लक्षण एवं वंश विस्तार को मैं बतला चुका हूँ। यही उनका वर्णन है। यह वर्णन आयु प्रदान करने वाला, धन्य, श्रीसम्पन्न कल्याणदायी एवं सुख का साधन देने वाला है। इसको सर्वदा निन्दा न करते हुए सुनना तथा धारण करना चाहिए। इस सृष्टि विस्तार के वर्णन का जो मनुष्य नियमपूर्वक, महात्माओं, पण्डितों एवं ब्राह्मणों की सभा में पाठ करता है, वह सन्तति लाभ करता है, प्रचुर धन-सम्पत्ति को प्राप्त करता है तथा इस लोक के बाद परलोक में सुन्दर गति प्राप्त करता है ॥ ३४३-३४८ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में कश्यपीयप्रजासर्ग नामक आठवें अध्याय (उनहत्तरवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ८ ॥**

* * *

अथ नवमोऽध्यायः

ऋषिवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

एवं प्रजासु सृष्टासु कश्यपेन महात्मना । प्रतिष्ठितासु सर्वासु स्थावरासु चरासु च ॥ १ ॥
अभिषिच्याधिपत्येषु तेषां मुख्यः प्रजापतिः । ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥ २ ॥
द्विजातीनां वीरुधां च नक्षत्राणां ग्रहैः सह । यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ३ ॥
बृहस्पतिं तु विश्वेषां ददावङ्गिरसां पतिम् । भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ४ ॥
आदित्यानां पुनर्विष्णुं वसूनामथ पावकम् । प्रजापतीनां दक्षं च मरुतामथ वासवम् ॥ ५ ॥
दैत्यानामथ राजानं प्रह्लादं दितिनन्दनम् । नारायणं तु साध्यानां रुद्राणां वृषभध्वजम् ॥ ६ ॥
विप्रचित्तिं च राजानं दानवानामथादिशत् । अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं पतिम् ॥
यक्षाणां राक्षसानां च पार्थिवानां धनस्य च ॥ ७ ॥

नौवाँ अध्याय

(सत्तरवाँ अध्याय)

ऋषियों के वंशों का अनुकीर्तन

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! इस प्रकार महात्मा कश्यप द्वारा सभी स्थावर जंगमात्मक प्रजाओं की सृष्टि सम्पन्न हो जाने पर एवं उनके भलीभांति प्रतिष्ठित हो जाने पर सबके प्रमुख प्रजापति ब्रह्मा ने उन सबके आधिपत्य पर क्रमशः अलग-अलग को नियुक्त करने का उपक्रम किया ॥ १-२ ॥

समस्त द्विजातियों (ब्राह्मणों), वीरूधों, नक्षत्रों ग्रहों, यक्षों एवं तपस्वियों के राजा के पद पर सोम (चन्द्रमा) को अभिषिक्त किया । सभी अंगिरा के वंश में उत्पन्न होने वाली प्रजाओं का राज्यपद बृहस्पति को दिया । भृगु गोत्र में उत्पन्न होने वाली प्रजाओं का राज्यपद काव्य (शुक्र) को दिया । इसी प्रकार आदित्यों का राज्यपद विष्णु को तथा मरुतों का वासव को दिया । दैत्यों का राजा दितिनन्दन प्रह्लाद को बनाया, इसी प्रकार साध्यों का राजा नारायण को, रुद्रों का राजा वृषभध्वज (शंकर) को तथा दानवों का राजा विप्रचिति को नियुक्त किया । जल का राज्यपद वरुण को, राजाओं, यक्षों, राक्षसों, भूपतियों तथा धन-सम्पत्ति का स्वामित्व विश्रवा के पुत्र कुबेर को

वैवस्वतं पितॄणां च यमं राज्येऽभ्यषेचयत् । सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम् ॥ ८ ॥
शैलानां हिमवन्तं च नदीनामथ सागरम् । गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं तदा ॥ ९ ॥
उच्चैःश्रवसमश्वानां राजानं चाभ्यषेचयत् । मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषं च चतुष्पदाम् ॥ १० ॥
पक्षिणामथ सर्वेषां गरुडं पततां वरम् । गन्धानां मातुलं चैव भूतानामशरीरिणाम् ॥ ११ ॥
शब्दाकाशबलानां च वायुं बलवतां वरम् । सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषं नागानामथ वासुकिम् ॥ १२ ॥
सरीसृपाणां सर्पाणां नागानां चैव तक्षकम् । सागराणां नदीनां च मेघानां वर्षितस्य च ॥
आदित्यानामन्यतमं पर्जन्यमभिषिक्तवान् ॥ १३ ॥
सर्वाप्सरोगणानां च कामदेवं तथैव च । ऋतूनामथ मासानामार्त्तवानां तथैव च ॥ १४ ॥
पक्षाणां च द्विपक्षाणां मुहूर्तानां च पर्वणाम् । कलाकाष्ठाप्रमाणानां गतेरयनयोस्तथा ॥
गणितस्याथ योगस्य चक्रे संवत्सरं प्रभुम् ॥ १५ ॥
प्रजापतिर्वै रजसः पूर्वस्यां दिशि विश्रुतम् । पुत्रं नाम्ना सुधामानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥ १६ ॥
पश्चिमायां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् । केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥ १७ ॥
मनुष्याणामधिपतिं चक्रे चैव सुतं मनुम् । तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ॥
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण परिपाल्यते ॥ १८ ॥
स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वं ब्रह्मणा तेऽभिषेचिताः । नृपा ह्येतेऽभिषिच्यन्ते मनवो ये भवन्ति वै ॥ १९ ॥

समर्पित किया । पितरों के राज्यपद पर सूर्यपुत्र यमराज को अभिषिक्त किया । सभी भूत एवं पिशाचों का स्वामित्व शूलपाणि शंकर को समर्पित किया ॥ ३-८ ॥

पर्वतों का राज्यपद हिमवान् को, नदियों का सागर को तथा गन्धर्वों का चित्ररथ को दिया । अश्वों का स्वामी उच्चैःश्रवा को बनाया, मृगों एवं गौ-बैल तथा अन्य चतुष्पदों के राज्यपद पर सिंह को अभिषिक्त किया । सभी प्रकार के पक्षियों का स्वामी समस्त पंखधारियों में श्रेष्ठ गरुड़ को नियत किया । अशरीरी भूतों एवं गन्धों का स्वामित्व मारुत को दिया । शब्द, आकाश एवं बल का स्वामी बलवानों में श्रेष्ठ वायु को नियत किया । समस्त दंष्ट्राधारी सर्पों का स्वामित्व शेष को तथा नागों का स्वामी वासुकि को बनाया । सरीसृप, सर्प एवं नागों का स्वामी तक्षक को बनाया । समस्त सागरों, नदियों, मेघों, वर्षा तथा आदित्य के स्वामित्व पर अन्यतम पर्जन्य को अभिषिक्त किया ॥ ९-१३ ॥

सभी अप्सरावृन्दों का स्वामी कामदेव को बनाया । ऋतुओं, मास, ऋतुओं में होनेवाले कार्य-विशेष पक्ष, दोनों पक्ष मुहूर्त, पर्वों, कला, काष्ठा आदि के प्रमाण, दोनों अयनों की गणित एवं योग का स्वामी संवत्सर को बनाया । तदनन्तर प्रजापति ने पूर्व दिशा में सुविख्यात रज के पुत्र सुधामा को राजा बनाया । पश्चिम दिशा में रज के पुत्र महात्मा केतुमान अच्युत को राजा के पद पर अभिषिक्त किया । तदनन्तर मनुष्यों का अधिपति सूर्यपुत्र मनु को बनाया । आज भी ये अधिपतिगण इन सातों द्वीपों एवं नगरादि से समन्वित समस्त पृथ्वीमण्डल में अपने-अपने प्रदेशों में धर्मपूर्वक प्रजापालन करते हैं ॥ १४-१८ ॥

पूर्वकाल में स्वायंभुव मन्वन्तर में ब्रह्मा ने इस सबों को राज्यपद पर अभिषिक्त किया था, प्रत्येक मन्वन्तरों

मन्वन्तरेष्वतीतेषु गता ह्येतेषु पार्थिवाः । एवमन्येऽभिषिच्यन्ते प्राप्ते मन्वन्तरे पुनः ॥
अतीतानागता सर्वे स्मृता मन्वन्तरेश्वराः ॥ २० ॥
राजसूयेऽभिषिक्तश्च पृथुरेभिर्नरोत्तमैः । वेददृष्टेन विधिना कृतो राजा प्रतापवान् ॥ २१ ॥
एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासन्तानकारणात् । पुनरेव महाभागः प्रजानां पतिरीश्वरः ॥ २२ ॥
कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार परमं तपः । पुत्रो गोत्रकरौ मह्यं भवेतामित्यचिन्तयत् ॥ २३ ॥
तस्य प्रध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मनः । ब्रह्मणोंऽशौ सुतौ पश्चात् प्रादुर्भूतौमहौजसौ ॥ २४ ॥
वत्सारश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ । वत्सारान्निध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च स महायशाः ॥ २५ ॥
रैभ्यस्य रैभ्या विज्ञेया निध्रुवस्य निबोधत । च्यवनस्य सुकन्यायां सुमेधाः समपद्यत ॥ २६ ॥
निध्रुवस्य तु या पत्नी माता वै कुण्डपायिनाम् । असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत ॥ २७ ॥
शाण्डिल्यानां वचः श्रुत्वा देवलः सुमहायशाः । निध्रुवाः शण्डिला रैभ्यास्त्रयः पश्चात्तु कश्यपाः ॥ २८ ॥
वरप्रभृतयो देवा देवलस्य प्रजास्त्विमाः । चतुर्युगे त्वतिक्रान्ते मनोर्ह्येकादशे प्रजाः ॥
अथावशिष्टे तस्मिंस्तु द्वापरे संप्रवर्तते ॥ २९ ॥
मानसस्य चरिष्यन्तस्तस्य पुत्रो दमः किल । मानसस्तस्य दायादस्तृणबिन्दुरिति श्रुतः ॥ ३० ॥

में जो मनु होते हैं, वे ही राज्यपद पर अभिषिक्त होते हैं । इन व्यतीत मन्वन्तरों में कितने राजागण बीत चुके हैं। इसी प्रकार भावी मन्वन्तरों के आने पर अन्यान्य अभिषिक्त किये जायेंगे । जितने भूतकालीन एवं भविष्यत्कालीन मन्वन्तरों में होनेवाले राजा लोग हैं, वे सब मन्वन्तरों के अधीश्वर कहे जाते हैं ॥ १९-२० ॥

इन्हीं नरपतियों ने प्रतापशाली राजा पृथु को वेदविहित विधि से राजसूय यज्ञ के अवसर पर राजा के पद पर अभिषिक्त किया । समस्त प्रजाओं के स्वामी परम ऐश्वर्यवान् कश्यप ने प्रजावृद्धि के लिए इन पुत्रों को उत्पन्न कर पुनः पुत्र कामना से परम कठोर तप करना प्रारम्भ किया और यह चिन्तन किया कि मेरे दो गोत्रवृद्धि करनेवाले पुत्र उत्पन्न हों ॥ २१-२३ ॥

इस प्रकार कश्यप के विशेष मनोयोगपूर्वक ध्यानावस्थित होने पर महात्मा कश्यप को दो महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए जो ब्रह्मा के अंशभूत थे । उनके नाम वत्सार और असित थे और वे दोनों ब्रह्मचिन्तन में लीन रहने वाले थे । वत्सार से निध्रुव एवं महान् यशस्वी रैभ्य का जन्म हुआ, रैभ्य की सन्ततियों को रैभ्यगण नाम से जानना चाहिए, निध्रुव की सन्ततियों का विवरण सुनिये । च्यवन से सुकन्या में सुमेधा की उत्पत्ति हुई ॥ २४-२६ ॥

निध्रुव की जो पत्नी थी वह कुण्डपायिगणों की माता थी । असित से एकपर्णा नामक पत्नी में ब्रह्मिष्ठ का जन्म हुआ । शांडिल्यों की बातें सुनकर देवल परम यशस्वी हुए । निष्ठवगण, शाण्डिल्यगण और रैध्यगण-ये तीनों कश्यपगोत्रीय थे । ये वर प्रभृति देवगण देवल की सन्ततियाँ हैं । 'मनु' के ग्यारहवें चतुर्युग के व्यतीत हो जाने पर अर्थात् ग्यारह बार चारों युगों के व्यतीत हो जाने पर, जब द्वापर युग शेष रह जाता है, तब उसमें इन प्रजाओं की सृष्टि हुई ॥ २७-२९ ॥

मानस के पुत्र रिष्यन्त हुए और उनके पुत्र दम नाम से विख्यात हुए उनके भी पुत्र मानस कहे गये, जो

त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये सम्बभूव ह । तस्य कन्या त्विडविडा रूपेणाप्रतिमाभवत् ॥
पुलस्त्याय स राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत् ॥ ३१ ॥
ऋषिरिडिविडायां तु विश्रवाः समपद्यत । तस्य पत्न्यश्चतस्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्द्धनाः ॥ ३२ ॥
बृहस्पतेर्बृहत्कीर्त्तिर्देवाचार्यस्य कीर्त्तितः । कन्यां तस्योपयेमे स नाम्ना वै देववर्णिनीम् ॥ ३३ ॥
पुष्पोत्कटां च वाकां च सूते माल्यवतः स्थितौ । कैकसीं मालिनः कन्यां तासां तु शृणुत प्रजाः ॥ ३४ ॥
ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्य सुषुवे देववर्णिनी । दिव्येन विधिना युक्तमार्षेणैव श्रुतेन च ॥
राक्षसेन च रूपेण आसुरेण बलेन च ॥ ३५ ॥
त्रिपादं सुमहाकायं स्थूलशीर्षं महातनुम् । अष्टदंष्ट्रं हरिच्छ्मश्रुं शंकुकर्णं विलोहितम् ॥ ३६ ॥
ह्रस्वबाहुं प्रबाहुं च पिङ्गलं सुविभीषणम् । वैवर्तज्ञानसम्पन्नं सम्बुद्धं ज्ञानसम्पदा ॥ ३७ ॥
एवंविधं सुतं दृष्ट्वा विश्वरूपधरं तथा । पिता दृष्ट्वाब्रवीत्तत्र कुबेरोऽयमिति स्वयम् ॥ ३८ ॥
कुत्सायां क्वितिशब्दोऽयं शरीरं बेरमुच्यते । कुबेरः कुशरीरत्वान्नाम्ना तेन च सोऽङ्कितः ॥ ३९ ॥
यस्माद्विश्रवसोऽपत्यं सादृश्याद्विश्रवा इव । तस्माद्वैश्रवणो नाम नाम्ना लोके भविष्यति ॥ ४० ॥
ऋद्ध्यां कुबेरोऽजनयद्विश्रुतं नलकूबरम् । रावणं कुम्भकर्णं च कन्यां शूर्पणखां तथा ॥
विभीषणचतुर्थांस्तान्कैकस्यजनयेत्सुतान् ॥ ४१ ॥

तृणबिन्दु नाम से प्रसिद्ध हुए । तीसरे त्रेतायुग के प्रारम्भिक काल में वह राज्यपद पर प्रतिष्ठित था । उसकी कन्या इडिविला अनुपम सौन्दर्यवती थी । राजर्षि ने अपनी उस कन्या को पुलस्त्य को समर्पित किया ॥ ३०-३१ ॥

इडिविला में ऋषि विश्रवा की उत्पत्ति हुई । उनकी चार पत्नियाँ थीं जो पुलस्त्य वंश में उत्पन्न होनेवाले ऋषियों की वंश वृद्धि करनेवाली हुईं । देवाचार्य बृहस्पति की एक परम यशस्विनी कन्या थी, उसका नाम था देववर्णिनी । बृहस्पति की उस कन्या के साथ उसने (विश्रवा ने) विवाह किया । माल्यवान् की पुष्पोत्कटा और वाका नामक कन्याओं के साथ तथा माली की कैकसी नामक कन्या से भी उसने विवाह किया । उन सबों में उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं को सुनिये । सबसे ज्येष्ठ वैश्रवण (कुबेर) को देववर्णिनी ने उत्पन्न किया ॥ ३२-३४ ॥

उसका विधान देवताओं का था, श्रुतिज्ञान ऋषियों का था, रूप राक्षसों का था, बल असुरों का था, तीन चरण थे, विशाल शरीर था, सिर बहुत बड़ा था, आठ दाँत थे, दाढ़ी हरे वर्ण की थी, कान खूँटे की तरह थे, लाल वर्ण था, एक बाहु छोटा और एक बहुत बड़ा था । देखने में पीले वर्ण का तथा परमभयानक लगता था । उसे जगत् की माया आदि का पूर्ण ज्ञान था और वह ज्ञान सम्पत्ति से पूर्ण समृद्ध था । इस प्रकार के विश्वरूपधारी पुत्र को देखकर पिता ने कहा, यह स्वयं कुबेर है, कुशब्द कुत्सित अर्थ का वाची है, अर्थात् कु के अर्थ होते हैं भद्दा, और बेर शरीर को कहते हैं । चूँकि इसका बेर अर्थात् शरीर देखने में भद्दा अर्थात् कुत्सित है अतः उसे कुबेर नाम से यह अभिहित किया गया । यह विश्रवा का पुत्र है और उसकी आकृति भी विश्रवा ही के समान है, अतः लोक में वैश्रवण के नाम से इसकी ख्याति होगी ॥ ३५-४० ॥

कुबेर ने ऋद्धि नामक पत्नी में नलकूबर को उत्पन्न किया, जो परम विख्यात हुआ । इसके अतिरिक्त कैकसी ने रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा तथा विभीषण—इन चार सन्ततियों को जन्म दिया । उस रावण का कान

शंकुकर्णो दशग्रीवः पिङ्गलो रक्तमूर्द्धजः । चतुष्पाद्विंशतिभुजो महाकायो महाबलः ॥ ४२ ॥
जात्याञ्जननिभो दंष्ट्रो लोहितग्रीव एव च । राजसेनो जययुक्तो रूपेण च बलेन च ॥ ४३ ॥
सत्यबुद्धिर्दृढतनू राक्षसैरेव रावणः । निसर्गाद्दारुणः क्रूरो रावणाद्रावणस्तु सः ॥ ४४ ॥
हिरण्यकशिपुस्त्वासीत्स राजा पूर्वजन्मनि । चतुर्युगानि राजात्र त्रयोदश स राक्षसः ॥ ४५ ॥
ताः पञ्चकोट्यो वर्षाणामाख्याताः संख्यया द्विजैः । नियुतान्येकषष्टिश्च संख्याविद्भिरुदाहृता ॥ ४६ ॥
षष्टिशतसहस्राणि वर्षाणां तु स रावणः । देवतानामृषीणां च घोरं कृत्वा प्रजागरम् ॥ ४७ ॥
त्रेतायुगे चतुर्विंशे रावणस्तपसः क्षयात् । रामं दाशरथिं प्राप्य सगणः क्षयमीयिवान् ॥ ४८ ॥
महोदयः प्रहस्तश्च महापांशुखरस्तथा । पुष्पोत्कटायाः पुत्रास्ते कन्या कुम्भीनसी तथा ॥ ४९ ॥
त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वश्च राक्षसः। कन्या ह्यसलिका चैव वाकायाः प्रसवाः स्मृताः ॥ ५० ॥
इत्येते क्रूरकर्माणः पौलस्त्या राक्षसा दश । दारुणाभिजनाः सर्वे देवैरपि दुरासदाः ॥ ५१ ॥
सर्वे लब्धवराश्चैव पुत्रपौत्रसमन्विताः । यक्षाणां चैव सर्वेषां पौलस्त्या ये च राक्षसाः ॥ ५२ ॥
आगस्त्यवैश्वामित्राणां क्रूराणां ब्रह्मरक्षसाम् । वेदाध्ययनशीलानां तपोव्रतनिषेविणाम् ॥ ५३ ॥
तेषामैडविडो राजा पौलस्त्यः सव्यपिङ्गलः । इतरे वै यज्ञमुखास्तेन रक्षोगणास्त्रयः ॥ ५४ ॥
यातुधाना ब्रह्मधाना वार्त्ताश्चैव दिवाचराः । निशाचरगणास्तेषां चत्वारः कविभिः स्मृताः ॥ ५५ ॥

घंटे की भाँति था, दस उसके कण्ठ थे, पिंगल वर्ण का था, बाल लाल रंग के थे, जन्म से ही कज्जल के समान काला था, बड़े-बड़े दाँत थे, कण्ठ प्रदेश लाल रंग का था, वह रूप और बल से समन्वित था । उसकी सेना विजय, रूप और शक्ति से सम्पन्न थी । वह रावण सत्य बुद्धि वाला था और शरीर से दृढ़ था । वह सर्वदा राक्षसों से ही युक्त रहता था, स्वभाव से ही वह परम दारुण एवं क्रूर था । बहुत तेज रव (शब्द) करने के कारण वह रावण नाम से विख्यात था ॥ ४१-४४ ॥

पूर्व जन्म में वह हिरण्यकशिपु नाम से दैत्यों का राजा था । वह राक्षसराज चारों युगों तक राज्य करता रहा और राक्षसों के राजाओं में वह तेरहवाँ था (?) । विद्वानों ने उसके राज्यकाल की अवधि पाँच करोड़ इकसठ नियुत (?) कहा है । साठ लाख वर्षों तक वह रावण देवताओं और ऋषियों को अति कष्ट देकर चौबीसवें त्रेतायुग में अपनी तपस्या के नष्ट हो जाने पर दशरथपुत्र रामचन्द्र के हाथों सैन्य समेत विनष्ट हुआ ॥ ४५-४८ ॥

पुष्पोत्कटा के महोदर, प्रहस्त, महापांशु और खर नामक पुत्र तथा कुम्भीनसी नामक कन्या उत्पन्न हुई । वाका को सन्ततियों में त्रिशिरा, दूषण, विद्युज्जिह्व, राक्षस नामक पुत्र तथा असलिका नामक कन्या सुप्रसिद्ध हैं । ये उपर्युक्त दस पुलस्त्य के वंश के क्रूरकर्म करनेवाले राक्षस जो घोर आवास स्थानों में निवास करनेवाले देवताओं से भी दुर्दम्य थे । इडविला के वंश में उत्पन्न होने वाला महर्षि पुलस्त्य का गोत्रीय, बायें अंग में पिंगलवर्णवाला वह कुबेर सभी यक्षों का, पुलस्त्य गोत्र में उत्पन्न होने वाले समस्त राक्षसों का तथा अगस्त्य और विश्वामित्र के गोत्र में उत्पन्न होनेवाले वेदाध्यायी, तपस्या, व्रत आदि में निष्ठा रखनेवाले किन्तु क्रूरकर्मा ब्रह्मराक्षसों का राजा था । अन्य राक्षसगण यज्ञमुख हैं, इस प्रकार ये तीन प्रकार के कहे जाते हैं । यातुधान, ब्रह्मधान, और वार्ता—ये दिन में गमन करनेवाले हैं । कवियों ने इन तीनों के अतिरिक्त निशाचरों को चौथे राक्षसगणों में स्मरण किया है ॥ ४९-५५ ॥

पौलस्त्या नैर्ऋताश्चैव आगस्त्याः कौशिकास्तथा । इत्येताः सप्त तेषां वै जातयो राक्षसाः स्मृताः ॥ ५६ ॥
तेषां रूपं प्रवक्ष्यामि स्वभावेन व्यवस्थितम् । वृत्ताक्षाः पिङ्गलाश्चैव महाकाया महोदराः ॥ ५७ ॥
अष्टदंष्ट्राः शङ्कुकर्णा ऊर्द्ध्वरोमाण एव च । आकर्णदारितास्याश्च मुञ्जधूमोर्द्ध्वमूर्द्धजाः॥ ५८ ॥
स्थूलशीर्षाः सिताभाश्च ह्रस्वकाश्च प्रबाहुकाः । ताम्रास्या लम्बजिह्वौष्ठा लम्बभ्रूस्थूलनासिकाः ॥ ५९ ॥
नीलाङ्गा लोहितग्रीवा गम्भीराक्षा विभीषणाः । महाघोरस्वराश्चैव विकटा बद्धपिण्डिकाः ॥ ६० ॥
स्थूलाश्च तुङ्गनासाश्च शिलासंहनना दृढाः । दारुणाभिजनाः क्रूराः प्रायशः क्लिष्टकर्मिणः ॥ ६१ ॥
सकुण्डलाङ्गदापीडा मुकुटोष्णीषधारिणः । विचित्रवस्त्राभरणाश्चित्रस्त्रगनुलेपनाः ॥ ६२ ॥
अन्नादाः पिशितादाश्च पुरुषादाश्च ते स्मृताः । इत्येतद्रूपसाधर्म्यं राक्षसानां बुधैः स्मृतम् ॥
न समस्तबलं बुद्धं यतो मायाकृतं हि तत् ॥ ६३ ॥
पुलहस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्यालाश्च दंष्ट्रिणः। भूताः पिशाचाः सर्पाश्च भ्रमरा हस्तिनस्तथा ॥ ६४ ॥
वानराः किन्नराश्चैव यमकिम्पुरुषास्तथा । येऽन्ये चैव परिक्रान्ता मायाक्रोधवशानुगाः ॥ ६५ ॥
अनपत्यः क्रतुस्तस्मिन् स्मृतो वैवस्वतेऽन्तरे । न तस्य पुत्रः पौत्रो वा तेजः संक्षिप्य वा स्थितः ॥ ६६ ॥

पुलस्त्य के गोत्र में उत्पन्न होनेवाले नैर्ऋत अगस्त्य गोत्रीय तथा कौशिक विश्वामित्र गोत्रीय—ये सब सात प्रकार की राक्षसों की भिन्न-भिन्न जातियाँ कही गयी हैं । इन सबों के स्वभावगत स्वरूप का वर्णन करता हूँ । ये राक्षसगण गोल आँखोंवाले, पिंगलवर्ण, महाकाय, विशाल उदर, आठ दाँत, शंकु के समान कानवाले एवं ऊर्ध्वरोमा थे । उनके मुख कान तक फटे हुए थे, किसी-किसी के बाल मूंज के समान तथा किसी-किसी के धुएँ के समान थे । सिर बहुत बड़े थे, देखने में किसी-किसी की शोभा श्वेतवर्ण की मालूम पड़ती थी कोई कोई बहुत छोटे थे और कोई बहुत बड़ी-बड़ी बाहुओंवाले थे । किसी के मुख ताँबे के समान लाल, जिह्वा, ओंठ और भौंहें लम्बे थे तथा उनकी नासिका स्थूल थीं ॥ ५६-५९ ॥

किसी के अंग नील वर्ण के थे, किसी की ग्रीवा लाल वर्ण की थी, किसी की आँखें निश्चल तथा गम्भीर थीं । वे देखने में परम भयानक थे । उनके स्वर परम कठोर एवं दारुण थे और वे विकट तथा समूह बनाकर चलने वाले थे । कोई-कोई स्थूलकाय, उठी हुई नासिकावाले, शिला के समान कठोर शरीरवाले एवं दृढ़ थे । ये सभी राक्षसगण प्राय: अति दारुण निवास स्थल में रहनेवाले थे तथा कठोर कर्म करने वाले थे । वे कुण्डल, अंगद, माला, मुकुट और पगड़ी धारण करते थे । विचित्र रंग के उनके वस्त्र थे, इसी प्रकार आभूषण, माला, चन्दनादि सब कुछ विचित्र थे ॥ ६०-६२ ॥

वे राक्षसगण अन्न भक्षण करते थे । मांस भी खाते थे यहाँ तक कि मनुष्यों तक को खा जाते थे ऐसा लोग कहते हैं । पण्डित लोग उनके स्वरूप, शील, स्वभाव आदि के बारे में ऐसा ही कहते हैं । उनके समस्त बल एवं पराक्रम का मान किसी को नहीं मालूम है, क्योंकि वे सब के सब मायावी थे ॥ ६३ ॥

पुलह के पुत्र सभी प्रकार के मृग, व्याल एवं दंष्ट्राधारी जीव हुए । इनके अतिरिक्त भूत, पिशाच, सर्प, भ्रमर, हस्ती, वानर, किन्नर, मयूर, किंपुरुष तथा अन्यान्य मायावी एवं सर्वदा क्रोध के वश में रहनेवाले जीव निकाय उत्पन्न हुए । वे सब पुलह की सन्तति हैं । उस वैवस्वत मन्वन्तर में महर्षि क्रतु को कोई संतति नहीं थी ।

अत्रेर्वंशं प्रवक्ष्यामि तृतीयस्य प्रजापतेः । तस्य पत्न्यश्च सुन्दर्यो दशैवासन्पतिव्रताः ॥ ६७ ॥
भद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः । भद्रा शूद्रा च मद्रा च शलदा मलदा तथा ॥ ६८ ॥
वेला खला च सप्तैता या च गोचपला स्मृता । तथा मानरसा चैव रत्नकूटा च ता दश ॥ ६९ ॥
आत्रेयवंशकृत्तासां भर्त्ता नाम्ना प्रभाकरः । भद्रायां जनयामास सोमं पुत्रं यशस्विनम् ॥ ७० ॥
स्वर्भानुना हते सूर्ये पतमाने दिवो महीम् । तमोऽभिभूते लोकेऽस्मिन् प्रभा येन प्रवर्त्तिता ॥ ७१ ॥
स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्तः स पतन्निह दिवाकरः । ब्रह्मर्षेर्वचनात्तस्य न पपात दिवो महीम् ॥ ७२ ॥
अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः । यज्ञेष्वत्रिघनश्चैव सूरैर्यश्च प्रवर्त्तितः ॥ ७३ ॥
स तास्वजनयत् पुत्रानात्मतुल्याननामकान् । दश तास्वेव महता तपसा भावितप्रभाः ॥ ७४ ॥
स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः । तेषां विख्यातयशसौ ब्रह्मिष्ठौ सुमहौजसौ ॥ ७५ ॥
दत्तात्रेयस्तस्य ज्येष्ठो दुर्वासास्तस्य चानुजः । यवीयसी सुता तस्यामबला ब्रह्मवादिनी ॥
अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं पौराणिकाः पुरा ॥ ७६ ॥
अत्रेः पुत्रं महात्मानं शान्तात्मानमकल्मषम् । दत्तात्रेयं तनुं विष्णोः पुराणज्ञाः प्रचक्षते ॥ ७७ ॥

उनको न तो पुत्र था, न पौत्र । वे अपने तेज (बल ब्रह्मचर्य) को समेटकर अपने आप में अवस्थित थे, अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे ॥ ६४-६६ ॥

अब तृतीय प्रजापति अत्रि के वंश का वर्णन कर रहा हूँ । उनकी दस स्त्रियाँ थी, जो सब परम सुन्दरी एवं पतिव्रता थीं । घृताची नामक अप्सरा में भद्राश्व को दस सन्ततियाँ उत्पन्न हुई । जिनके नाम थे भद्रा, शूद्रा, मद्रा, शलदा, मलदा, बेला, खला—ये सात तथा आठवीं गोचपला के नाम से विख्यात हुई । मानरसा नवीं और रत्नकूटा दसवीं सन्तति थी । इन सबों का स्वामी एवं अत्रि के वंश में उत्पन्न होनेवालों का गोत्रकर्त्ता प्रभाकर नाम से विख्यात था, उसने भद्रा में परम यशस्वी पुत्र सोम को उत्पन्न किया ॥ ६७-७० ॥

एक बार राहु द्वारा आहत होकर जब सूर्य आकाश से पृथ्वी की ओर गिरने लगे और यह समस्त भूलोक अन्धकारमय हो गया उस समय जिसने प्रकाश दान किया वह यही सोम थे । आकाशमण्डल से इस पृथ्वी तल पर गिरते हुए दिवाकर को महर्षि ने कहा कि तुम्हारा कल्याण हो । उनके इस आशीर्वचन से वे आकाश से पृथ्वी पर नहीं गिरे । महातपस्वी अत्रि ने जिन श्रेष्ठ गोत्रों का प्रवर्तन किया, वे देवताओं द्वारा प्रवर्तित यज्ञों में अपना भाग प्राप्त करते हैं ॥ ७१-७३ ॥

उन दसों स्त्रियों में उसने अपने ही समान दस पुत्रों को उत्पन्न किया, जिनके नाम नहीं थे । उन दसों स्त्रियों में उत्पन्न होने वाले वे दस पुत्रगण अपनी महान् तपस्या के कारण परम कान्तिमान् थे, वेदों के पारगामी विद्वान् थे । वे कल्याणदायी, अत्रि वंशोत्पन्न ऋषियों के रूप में विख्यात थे । उनके परम विख्यात यशस्वी, ब्रह्मवादी, महातेजस्वी दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ७४-७५ ॥

जिनमें ज्येष्ठ दत्तात्रेय थे और दुर्वासा उनके अनुज थे । उसमें एक कनिष्ठ अबला नामक ब्रह्मवादिनी पुत्री थी । प्राचीन काल से पुराणों के जानकार इस गौरव गाथा को कहते हैं कि अत्रि के निष्पाप, शान्तचित्त, महात्मा पुत्र दत्तात्रेय भगवान् विष्णु के स्वरूप हैं ॥ ७६-७७ ॥

तस्य गोत्रान्वये जाताश्चत्वारः प्रथिता भुवि । श्यामाश्च मुद्गलाश्चैव बलारकगविष्ठिराः ॥
एते नृणां तु चत्वारः स्मृताः पक्षा महौजसाम् ॥ ७८ ॥
कश्यपान्नारदश्चैव पर्वतोऽरुन्धती तथा । जज्ञिरे च त्वरुन्धत्यास्तान्निबोधत सत्तमाः ॥ ७९ ॥
नारदस्तु वसिष्ठायारुन्धतीं प्रत्यपादयत् । ऊर्द्ध्वरेता महातेजा वृक्षशापात्तु नारदः ॥ ८० ॥
पुरा देवासुरे तस्मिन्सङ्ग्रामे तारकामये । अनावृष्ट्या हते लोके व्यग्रे शक्रे सुरैः सह ॥
वसिष्ठस्तपसा धीमान्धारयामास वै प्रजाः ॥ ८१ ॥
अत्रौषधं मूलफलमोषधीश्च प्रवर्त्तयन् । तास्तेन जीवयामास कारुण्यादोषधेन तु ॥ ८२ ॥
अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयद् द्विजाः । सागरं जनयच्छक्तेरदृश्यन्ती पराशरम् ॥ ८३ ॥
काली पराशराज्जज्ञे कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् । द्वैपायनादरण्यां वै शुको जज्ञे गुणान्वितः ॥ ८४ ॥
उत्पद्यन्ते च पीवर्यां षडिमे शुकसूनवः । भूरिश्रवाः प्रभुः शम्भुः कृष्णो गौरश्च पञ्चमः ॥ ८५ ॥
कन्या कीर्तिमती चैव योगमाता दृढव्रता । जननी ब्रह्मदत्तस्य पत्नी सात्वगुहस्य च ॥ ८६ ॥
श्वेताः कृष्णाश्च गौराश्च श्यामा धूम्राः समूलिकाः । ऊष्मपा द्वारकाश्चैव नीलाश्चैव पराशराः ॥
पाराशराणामष्टौ ते पक्षाः प्रोक्ता महात्मनाम् ॥ ८७ ॥
अत ऊर्द्ध्वं निबोधध्वमिन्द्रप्रतिमसंभवम् । वसिष्ठस्य कपिञ्जयां घृताच्यां समपद्यत ॥
कुशीतियः समाख्यात इन्द्रप्रतिम उच्यते ॥ ८८ ॥

उनके गोत्र में उत्पन्न होनेवाले चार वंश पृथ्वी पर विख्याति प्राप्त कर चुके हैं । उनके नाम हैं, श्याम, मुद्गल, बलारक और गविष्ठिर । महान् तेजस्वी मनुष्यों के ये चार वंश गोत्र कर्त्ता हैं । कश्यप से नारद, पर्वत तथा अरुन्धती की उत्पत्ति हुई । हे विद्वानों ! अरुन्धती में उत्पन्न होने वाली सन्ततियों का विवरण सुनिये । नारद ने अरुन्धती को वसिष्ठ को समर्पित किया । नारद महान् तेजस्वी एवं नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-व्रत परायण थे । प्राचीनकाल में दक्ष के शाप के कारण जब देवताओं और असुरों में विख्यात तारकामय नामक संग्राम छिड़ा था, और अनावृष्टि के कारण समस्त लोक ध्वस्त हो गया था और देवताओं समेत देवराज इन्द्र व्याकुल हो गए थे, उस समय परम बुद्धिमान् वसिष्ठ ने अपने तपोबल से प्रजाओं की रक्षा की थी ॥ ७८-८१ ॥

उस समय उन्होंने अन्न, ओषधि, मूल, फल आदि की रचना की और अति करुणावश उन्हीं ओषधियों द्वारा प्रजावर्ग को जीवित रखा था । हे द्विजवृन्द ! वसिष्ठ ने अरुन्धती के गर्भ से शक्ति को उत्पन्न किया । समुद्र की अदृश्य शक्ति ने पराशर को जन्म दिया । काली ने पराशर के संयोग से परम ऐश्वर्यशाली कृष्णद्वैपायन को उत्पन्न किया । द्वैपायन के संयोग से अरणी में परम गुणवान् शुक की उत्पत्ति हुई । पीवरी में शुक के ये छह पुत्र उत्पन्न हुए, भूरिश्रवा, प्रभु शंभु कृष्ण और पाँचवें गौर ॥ ८२-८५ ॥

कीर्तिमती नामक कन्या भी उत्पन्न हुई जो योगाभ्यास में सर्वदा निरत रहनेवाली तथा दृढव्रत परायण थी वह ब्रह्मदत्त की माता और सात्वगुह की स्त्री हुई । श्वेत, कृष्ण, गौर, श्याम, धूम्र, समूलिक, ऊष्मपान करनेवाले द्वारक तथा नील—ये आठ पराशर गोत्र में उत्पन्न होनेवाले महापुरुषों के गोत्र कर्ता हैं । अब इसके उपरान्त

पृथोः सुतायाः सम्भूतः पुत्रस्तस्याभवद्वसुः । उपमन्युः सुतस्तस्य यस्येमे उपमन्यवः ॥ ८९ ॥
मित्रावरुणयोश्चैव कुण्डिनो ये परिश्रुताः । एकार्षेयास्तथैवान्ये वसिष्ठा नाम विश्रुताः ॥
एते पक्षा वसिष्ठानां स्मृता एकादशैव तु ॥ ९० ॥
इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा मानसा ह्यष्ट विश्रुताः । भ्रातरः सुमहाभागा तेषां वंशाः प्रतिष्ठिताः ॥ ९१ ॥
त्रींल्लोकान्धारयन्तीमान्देवर्षिगणसंकुलान् । तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥
यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्य्यस्येव गभस्तिभिः ॥ ९२ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे ऋषिवंशानुकीर्त्तनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

* * *

इन्द्रप्रतिम के पुत्रों का विवरण सुनिये । कपिञ्जली घृताची में वशिष्ठ के कुशीति (क्रणति) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो इन्द्रप्रतिम नाम से प्रसिद्ध है ॥ ८६-८८ ॥

पृथु की पुत्री में उनके वसु नामक एक अन्य पुत्र उत्पन्न हुआ । उसका पुत्र उपमन्यु हुआ, जिनके वंश में उत्पन्न होने वाले उपमन्यु गोत्रीय कहलाते हैं । मित्रावरुण के वंश में उत्पन्न होने वाले जो कुण्डी नाम से विख्यात वंशधर हैं, वे एक ही मूल ऋषि के वंशधर हैं और अन्य वशिष्ठ नाम से विख्यात हैं । वशिष्ठ गोत्र में उत्पन्न होनेवालों के ग्यारह गोत्रकर्ता हैं । ये उपर्युक्त आठ ब्रह्मा के मानस पुत्र रूप में विख्यात हैं और ये सब लोग महाभाग्यशाली हैं, इनके वंश आज तक भूमण्डल पर प्रतिष्ठित हैं । देवताओं तथा ऋषि वृन्दों से संकुलित इन तीनों लोकों को ये धारण करते हैं । उनके उन पुत्र-पौत्रादिकों की संख्या सैकड़ों ही नहीं सहस्रों तक है, जिन्होंने सूर्य की किरणों की भाँति समस्त पृथ्वी को व्याप्त कर रखा है ॥ ८९-९२ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में ऋषिवंशानुकीर्तन नामक नवम अध्याय (सत्तरवें अध्याय) की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ९ ॥

* * *

अथ दशमोऽध्यायः

श्राद्धप्रक्रियारम्भः

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य सूतस्य विदितात्मनः । उत्तरं परिपप्रच्छुः सूतपुत्रं द्विजातयः ॥ १ ॥

शांशपायन उवाच

कथं द्वितीयमुत्पन्ना भवानी प्राक्सती तु या । आसीद्दाक्षायणी पूर्वमुमा कथमजायत ॥ २ ॥
मेनायां पितृकन्यायां जनयामास शैलराट् । के चैते पितरश्चैव येषां मेना तु मानसी ॥ ३ ॥
मैनाकश्चैव दौहित्रो दौहित्री च तथा ह्युमा । एकपर्णा तथा चैव तथा या चैकपाटला ॥ ४ ॥
गङ्गा चैव सरिच्छ्रेष्ठा सर्वासां पूर्वजा तथा । पूर्वमेव मयोद्दिष्टं शृणुध्वं मम सर्वशः ॥ ५ ॥
अनेके पितरश्चैव वर्त्तन्ते क्व च वा पुनः । श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते श्राद्धस्य च परं विधिम् ॥ ६ ॥
पुत्राश्च ते स्मृताः केषां कथं च पितरस्तु ते । पितरः कथमुत्पन्नाः कस्य पुत्राः किमात्मकाः ॥ ७ ॥

दसवाँ अध्याय

(इकहत्तरवाँ अध्याय)

श्राद्ध की प्रक्रिया

तदनन्तर आत्मज्ञानी श्रीसूतजी की ये बातें सुन कर ब्राह्मणों ने उनसे पूछा ॥ १ ॥

शांशपायन ने कहा—हे सूतजी ! भव (महादेव) की प्रिया, जो पहले सती रूप में थीं, दूसरी बार किस प्रकार उत्पन्न हुई । पूर्व जन्म में वे दक्ष प्रजापति की पुत्री थीं, तत्पश्चात् वे उमा रूप में कैसे उत्पन्न हुई । शैलराज हिमवान् ने उन्हें पितरों की कन्या मेना में उत्पन्न किया—ऐसी प्रसिद्धि है । वे पितरगण कौन हैं, जिनकी मानसी कन्या मेना है ? मैनाक उनका दौहित्र है, तपस्या के समय एक पर्ण पर जीवन यापन करने वाली उमा उनकी दौहित्री हैं, सबों की पूर्वज समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ सुरसरि (गङ्गा) उनकी सबसे बड़ी सन्तति है, ये सब हम सभी पहले ही सुन चुके हैं । अब हमारी यह सुनने की इच्छा है कि ये पितरगण कौन हैं? कहाँ निवास करते हैं? इनके श्राद्धादि की क्या विधियाँ, आपका कल्याण हो ॥ २-६ ॥

ये किसके पुत्र हैं, और किस कारण वंश पितर नाम से विख्यात हैं? ये लोग कैसे उत्पन्न हुए? किसके पुत्र हैं? कैसा इनका स्वरूप है? स्वर्ग में जो पितर निवास करते हैं और जो देवताओं के भी पूज्य कहे जाते हैं,

स्वर्गे तु पितरोऽन्ये ये देवानामपि देवताः । एवं वै श्रोतुमिच्छामि पितॄणां सर्गमुत्तमम् ॥
यथावद्दत्तमस्माभिः श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन् ॥ ८ ॥
यदर्थं ते न दृश्यन्ते तत्र किं कारणं स्मृतम् । स्वर्गे हि के तु वर्त्तन्ते पितरो नरके तु के ॥ ९ ॥
अभिसन्धाय पितरं पितुश्च पितरं तथा । पितुः पितामहं चैव त्रिषु पिण्डेषु नामतः ॥ १० ॥
कानि श्राद्धानि देयानि कथं गच्छन्ति वै पितॄन् । कथं च शक्तास्ते दातुं नरकस्थाः फलं पुनः ॥ ११ ॥
के चेह पितरो नाम कान् यजामो वयं पुनः । देवा अपि पितॄन् स्वर्गे यजन्तीति हि नः श्रुतम् ॥ १२ ॥
एतदिच्छामि वै श्रोतुं विस्तरेण बहुश्रुत । स्पष्टाभिधानमर्थं वै तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १३ ॥
ऋषीणां तु वचः श्रुत्वा सूतस्तत्त्वार्थदर्शिवान् । आचचक्षे यथाप्रश्नं ऋषीणां मानसं ततः ॥ १४ ॥

सूत उवाच

अत्र वो वर्णयिष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् । मन्वन्तरेषु जायन्ते पितरो देवसूनवः ॥ १५ ॥
अतीतानागते ज्येष्ठाः कनिष्ठाः क्रमशस्तु ते । देवैः सार्द्धं पुरातीताः पितरो येऽन्तरेषु वै ॥
वर्त्तन्ते साम्प्रतं ये तु तान्वै वक्ष्यामि निश्चयात् ॥ १६ ॥
श्राद्धं चैषां मनुष्याणां श्राद्धमेव प्रवर्त्तते । देवानसृजत ब्रह्मा नायक्षन्निति वै पुनः ॥
तमुत्सृज्य तदात्मानमसृजंस्ते फलार्थिनः ॥ १७ ॥

वे कौन हैं? इन सब पितरों की सृष्टि (उत्पत्ति) सम्बन्धी कल्याणदायिनी उत्तम बातें हम लोग सुनना चाहते हैं। हम लोग श्रद्धा एवं विधिपूर्वक उन पितरों को जो कुछ अर्पित करते हैं, वह वस्तु उन्हें (पितरों) प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखती हैं। वे लोग दृष्टिगोचर नहीं होते इसका क्या कारण प्रसिद्ध है? कौन से पितरगण स्वर्ग में निवास करने वाले हैं और कौन से नरक में? ॥ ७-९ ॥

पिता को, पिता के पिता को पिता के पितामह को तीनों पिण्डदानों में नामोच्चारणपूर्वक विधिसमेत कौन-कौन से श्राद्ध देने चाहिए, अर्थात् किन-किन श्राद्धों में पितामह तथा प्रपितामह का नाम लेकर तीन पिण्डदान किये जाते हैं। ये श्राद्धादि में दी गयी वस्तुएँ पितरों को किस प्रकार प्राप्त होती हैं और जो स्वयमेव नरक में निवास करते हैं, वे किस प्रकार फलप्रदान में समर्थ हो सकते हैं? ये पितर नामधारी कौन लोक में देवगण भी पितरों की पूजा तथा श्राद्धादि किया करते हैं? हम किनकी पूजा करें। हम लोगों ने ऐसा सुना है कि स्वर्गलोक में देवगण भी पितरों की पूजा एवं श्राद्ध आदि करते हैं। हे बहुश्रुत ! इस विषय को हम विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं? इन सबों का स्पष्ट अभिप्राय आप बतलाइये। ऋषियों की ऐसी बातें सुन तत्त्वार्थदर्शी उन ऋषियों के प्रश्नगत एवं मनोगत जिज्ञासाओं को शान्त करते हुए बोले ॥ १०-१४ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! आप लोगों की पूछी हुई बातों का उत्तर अपनी बुद्धि एवं श्रुति के आधार पर दे रहा हूँ। प्रत्येक मन्वन्तरों में ये क्रमशः ज्येष्ठ और कनिष्ठ रूप में प्रादुर्भूत होते हैं। व्यतीत मन्वन्तरों के जो पितरगण, देवताओं के साथ उत्पन्न हुए थे और अतीत हो चुके, उन्हें तथा सम्प्रति जो पितरगण विद्यमान हैं, उन दोनों को निश्चयपूर्वक बतला रहा हूँ। मनुष्यों द्वारा श्रद्धापूर्वक दी गयी वस्तुएँ ही श्राद्ध कही जाती हैं। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने देवताओं की सृष्टि की तो उन लोगों ने पूजा आदि कुछ भी नहीं किया और उनको छोड़कर

ते शप्ता ब्रह्मणा मूढा नष्टसंज्ञा भविष्यथ । न स्म किञ्चिद्विजानन्ति ततो लोको ह्यमुह्यत ॥ १८ ॥
ते भूयः प्रणताः सर्वे याचन्ति स्म पितामहम् । अनुग्रहाय लोकानां पुनस्तानब्रवीत्प्रभुः ॥ १९ ॥
प्रायश्चित्तं चरध्वं वै व्यभिचारो हि यः कृतः । पुत्रान्स्वान्परिपृच्छध्वं ततो ज्ञानमवाप्स्यथ ॥ २० ॥
ततस्ते स्वान्सुतांश्चैव प्रायश्चित्तजिघृक्षवः । अपृच्छन् संयतात्मानो विधिवच्च मिथो मिथः ॥ २१ ॥
तेभ्यस्ते नियतात्मानः पुत्राः शंसुरनेकधा । प्रायश्चित्तानि धर्मज्ञा वाङ्मनः कर्मजानि तु ॥ २२ ॥
ते पुत्रानब्रुवन्प्रीता लब्धासंज्ञा दिवौकसः । यूयं वै पितरोऽस्माकं ये वयं प्रतिबोधिताः ॥
धर्मज्ञानं च कामश्च को वरो वः प्रदीयताम् ॥ २३ ॥
पुनस्तानब्रवीद्ब्रह्मा यूयं वै सत्यवादिनः । तस्माद्यद्युक्तं युष्माभिस्तत्तथा न तदन्यथा ॥ २४ ॥
उक्तं च पितरोऽस्माकमिति वै तनया स्वकाः। पितरस्ते भविष्यन्ति तेभ्योऽयं दीयतां वरः ॥ २५ ॥
तेनैव वचसा पुत्रा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । पुत्राः पितृत्वमाजग्मुः पुत्रत्वं पितरः पुनः ॥ २६ ॥
तस्मात्ते पितरः पुत्राः पितृत्वे तेषु तत्स्मृतम् । एवं स्मृत्वा पितॄन् पुत्रान्पुत्रांश्च पितरस्तथा ॥
व्याजहार पुनर्ब्रह्मा पितॄनात्मविवृद्धये ॥ २७ ॥

स्वार्थ में लिप्त हो अपने ही सृष्टि विस्तार में लग गए । तब ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि मूर्खों तुम्हारी चेतना नष्ट हो जायगी, तुम लोग कुछ भी नहीं जानते । ब्रह्मा के ऐसे शाप दे देने के उपरान्त समस्त लोक मोह के वशीभूत हो गया । वे सब पुनः विनम्र हुए और पितामह से याचना करने लगे । प्रभु ब्रह्मा ने लोक पर अनुग्रह करने की भावना से उन देवताओं से पुनः कहा ॥ १५-१९ ॥

तुम लोगों ने महान् पाप एवं अत्याचार किया है, उसका प्रायश्चित्त करो और उसका विधान अपने-अपने पुत्रों से पूछो तब तुम लोगों को ज्ञान प्राप्त होगा । तब प्रायश्चित्त करने के इच्छुक उन देवताओं ने आत्मस्थ होकर अपने पुत्रों से प्रायश्चित्त की विधियाँ बारम्बार पूछीं । धर्मज्ञ एवं जितेन्द्रिय देवपुत्रों ने उन देवताओं को मनसा, वाचा, कर्मणा सम्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के प्रायश्चित्तों का विधान बतलाया । पुत्रों द्वारा प्रायश्चित्तों की शिक्षा प्राप्तकर उन देवताओं को पुनः चेतना प्राप्त हुई और उन्होंने अपने पुत्रों से निवेदन किया कि तुम लोग ही हम सबों के पिता हो, क्योंकि तुम्हीं द्वारा हमें ज्ञान एवं चेतना की प्राप्ति हुई । तुम लोगों को धर्म, ज्ञान एवं काम किस वस्तु का वरदान हम लोग दें, बतलाओ ॥ २०-२३ ॥

देवताओं के ऐसे मनोभावों को देखकर ब्रह्मा ने पुनः उनसे कहा, तुम लोग सत्यवादी हो अतः जो कुछ तुम्हारे मुख से निकला है वह सब कुछ घटित होगा, कुछ भी अन्यथा न होगा । यतः तुम लोगों ने स्वयं अपने पुत्रों को अपना पिता कहा है, अतः वे तुम्हारे पिता हों ऐसा ही वर उन्हें दो ॥ २४-२५ ॥

परमेष्ठी पितामह की उसी बात से वे देवपुत्रगण पितृकोटि में आ गए और उनके पितृगण पुत्रकोटि में आ गए । इसी कारणवश वे पितरगण पुत्र अर्थात् देवपुत्र कहे जाते हैं, और उनमें पुत्र होने पर भी पितृत्व कहा जाता है । इस प्रकार पितरों को पुत्र रूप में और पुत्रों को पितररूप में स्मरण कर पितामह ब्रह्मा ने अपने वंश की वृद्धि के लिए पुनः पितरों से कहा ॥ २६-२७ ॥

यो ह्यनिष्ट्वा पितॄञ्छ्राद्धे क्रियां काञ्चित्करिष्यति। राक्षसा दानवाश्चैव फलं प्राप्स्यन्ति तस्य तत् ॥ २८॥
श्राद्धैराप्यायिताश्चैव पितरः सोममव्ययम् । आप्यायमाना युस्माभिर्वर्द्धयिष्यन्ति नित्यशः ॥ २९ ॥
श्राद्धैराप्यायितः सोमो लोकानाप्याययिष्यति । कृत्स्नं सपर्वतवनं जङ्गमाजङ्गमैर्वृतम् ॥ ३० ॥
श्राद्धानि पुष्टिकामाश्च ये करिष्यन्ति मानवाः। तेभ्यः पुष्टिं प्रजाश्चैव दास्यन्ति पितरः सदा ॥ ३१ ॥
श्राद्धे येभ्यः प्रदास्यन्ति त्रीन् पिण्डान्नामगोत्रतः । सर्वत्र वर्त्तमानास्ते पितरः प्रपितामहम् ॥
तेषामाप्याययिष्यन्ति श्राद्धदानेन वै प्रजाः ॥ ३२ ॥
एवमाज्ञा कृता पूर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना । तेनैतत्सर्वथा सिद्धं दानमध्ययनं तपः ॥ ३३ ॥
ते तु ज्ञानप्रदातारः पितरो वो न संशयः । इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः ॥
अन्योन्यं पितरो ह्येते देवाश्च पितरश्च ह ॥ ३४ ॥
एतद्ब्रह्मवचः श्रुत्वा सूतस्य विहितात्मनः । पप्रच्छुर्मुनयो भूयः सूतं तस्माद्यदुत्तरम् ॥ ३५ ॥

ऋषय ऊचुः

कियन्तो वै पितृगणाः कस्मिन्काले च ते गणाः । वर्त्तन्ते देवप्रवरा देवानां सोमवर्द्धनाः ॥ ३६ ॥

सूत उवाच

एतद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि पितृसर्गमनुत्तमम् । शंयुः पप्रच्छ यत्पूर्वं पितरं वै बृहस्पतिम् ॥ ३७ ॥
बृहस्पतिमुपासीनं सर्वज्ञानार्थकोविदम् । पुनः शंयुरिमं प्रश्नं पप्रच्छ विनयान्वितः ॥ ३८ ॥

श्राद्ध कर्म में जो पितरों की पूजा बिना किये ही अन्य क्रिया का अनुष्ठान करता है, उसकी उस क्रिया का फल राक्षस तथा दानवों को प्राप्त होता है । श्राद्धों द्वारा सन्तुष्ट किये गए पितरगण अव्यय सोम को सन्तुष्ट करते हैं । तुम लोगों से सन्तुष्टि प्राप्तकर वे सर्वदा तुम्हें बढ़ायेंगे । श्राद्धादि कर्मों में इस प्रकार पितरों द्वारा संतुष्ट किया गया सोम समस्त पर्वत, वन व चराचर जगत् सबको सन्तुष्ट करेगा । जो मनुष्य लोक के पोषण की दृष्टि से श्राद्धादि करेंगे, उन्हें पितरगण सर्वदा पुष्टि एवं सन्तति देंगे । श्राद्धकर्म में अपने प्रपितामह तक का नाम एवं गोत्र का उच्चारण कर जिन पितरों को कुछ दे दिया जायगा वे पितरगण उस श्राद्धदान से अति सन्तुष्ट होकर देनेवाले की सन्ततियों को सन्तुष्ट रखेंगे ॥ २८-३२ ॥

परमेष्ठी ब्रह्मा ने इस प्रकार की आज्ञा पूर्वकाल में दी है । उन्हीं पितरों की कृपा से दान, अध्ययन तथा तपस्या आदि से सिद्धि प्राप्त होती है । निःसन्देह वे पितरगण ही हम सबको ज्ञान प्रदान करने वाले हैं । इस प्रकार वे पितरगण देवता हैं, और देवगण पितर हैं, और परस्पर एक दूसरे के पितर और देवता दोनों हैं । आत्मज्ञानी सूतजी की ऐसी बातें सुनने के उपरान्त मुनियों ने उनसे शेष प्रश्न के बारे में पुनः पूछा ॥ ३३-३५ ॥

ऋषियों ने पूछा—सूत जी । पितरों के समूह कितने हैं? देवताओं के परमपूज्य एवं चन्द्रमा के पुष्टिकर्ता वे पितरगण किस समय वर्तमान रहते हैं ॥ ३६ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—ऋषिवृन्द । मैं आप लोगों से पितरों के उस श्रेष्ठ वंश के विवरण को बता रहा हूँ, जिसको पूर्वकाल में शंयु ने अपने पिता बृहस्पति से पूछा था । एक बार समीप में बैठे हुए तत्त्वज्ञान विशारद, सर्वज्ञ बृहस्पति से उनके पुत्र शंयु ने यह प्रश्न विनयपूर्वक पूछा था कि ये पितरगण कौन हैं? कितने हैं? इनके नाम

क एते पितरो नाम कियन्तः के च नामतः । समुद्भूताः कथं चैते पितृत्वं समुपागताः ॥ ३९ ॥
कस्माच्च पितरं पूर्वं यज्ञे युज्यन्ति नित्यशः । क्रियाश्च सर्वा वर्त्तन्ते श्राद्धपूर्वा महात्मनाम् ॥ ४० ॥
कस्मै श्राद्धानि देयानि किं च दत्तं महाफलम् । केषु वाऽप्यक्षयं श्राद्धं तीर्थेषु च नदीषु च ॥ ४१ ॥
केषु वै सर्वमाप्नोति श्राद्धं कृत्वा द्विजोत्तमः । कश्च कालो भवेच्छ्राद्धे विधिः कश्चानुवर्त्तते ॥ ४२ ॥
एतदिच्छामि भगवन् विस्तरेण यथातथम् । व्याख्यातुमानुपूर्व्येण यत्र चोदाहृतं मया ॥ ४३ ॥
बृहस्पतिरिदं सम्यगेवं पृष्टो महामतिः । व्याजहारानुपूर्व्येण प्रश्नं प्रश्नविदां वरः ॥ ४४ ॥

बृहस्पतिरुवाच

कथयिष्यामि ते तात यन्मां त्वं परिपृच्छसि । विनयेन यथान्यायं गम्भीरं प्रश्नमुत्तमम् ॥ ४५ ॥
द्यौरन्तरीक्षं पृथिवी नक्षत्राणि दिशस्तथा । सूर्याचन्द्रमसौ चैव तथाहोरात्रमेव च ॥ ४६ ॥
न बभूवुस्तदा तात तमोभूतमिदं जगत् । ब्रह्मैको दुश्चरं तत्र चचार परमं तपः ॥ ४७ ॥
शंयुस्तमब्रवीद्भूयः पितरं ब्रह्मवित्तमम् । सर्वदैव व्रतस्नातं सर्वज्ञानविदांवरम् ॥ ४८ ॥
कीदृशं सर्वभूतेशस्तपस्तेपे प्रजापतिः । एवमुक्तो बृहत्तेजा बृहस्पतिरुवाच तम् ॥ ४९ ॥
सर्वेषां तपसां युक्तिस्तपोयोगमनुत्तमम् । ध्यायंस्तदा तद्भगवांस्तेन लोकनवासृजत् ॥ ५० ॥
भूतभव्यानि ज्ञानानि लोकान्वेदांश्च कृत्स्नशः । योगमाविश्य तत्सृष्टं ब्रह्मणा योगचक्षुषा ॥ ५१ ॥

क्या हैं? ये किस प्रकार उत्पन्न हुए और पितृत्व इन्हें किस प्रकार प्राप्त हुआ? क्या कारण है जो यज्ञों में नित्य सर्वप्रथम पितरों की पूजा की जाती है? और महात्मा पुरुषों की सभी क्रियाएँ पितरों के श्राद्धादि के उपरान्त सम्पन्न होती हैं ॥ ३७-४० ॥

ये श्राद्धादि क्रियाएँ किसके उद्देश्य से करनी चाहिए, और क्या देने से प्रचुर फल की प्राप्ति होती है, किन तीर्थों अथवा नदियों में करने से श्राद्धों का फल अक्षय हो जाता है । श्रेष्ठ ब्राह्मण किन-किन पर्वत क्षेत्रों में श्राद्ध का विधान सम्पन्न कर अपने सभी मनोरथों को प्राप्त करता है, श्राद्ध के लिए कौन-सा समय उपयुक्त है, श्राद्ध की विधि क्या है? हे भगवन् ! इन सब बातों को हम यथार्थरूप में विस्तारपूर्वक जानना चाहते हैं । जिन-जिन बातों को मैंने निवेदित किया है, उन्हें क्रमशः मुझे बतलाइये । शंयु के इस प्रकार अच्छी तरह पूछने पर प्रश्न के तत्त्वों को जाननेवालों में श्रेष्ठ महामति बृहस्पति ने क्रमशः उन प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥ ४१-४४ ॥

बृहस्पति ने कहा—हे प्रियवर ! जो बातें तुमने मुझसे पूछी हैं, उन्हें बतला रहा हूँ । तुम्हारा यह प्रश्न विनय, न्याय, गम्भीरता एवं श्रेष्ठता आदि सद्गुणों से पूर्ण है । हे प्रिय ! जिस समय यह आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, नक्षत्र, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, दिन, रात—ये कुछ भी नहीं थे और सारे जगत् में अन्धकार-ही-अन्धकार छाया हुआ था, उस समय अकेले ब्रह्मा कठोर तप में प्रवृत्त थे । पिता बृहस्पति की ऐसी बात सुनकर शंयु ने ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, सर्वदा व्रत आदि सदनुष्ठानों में प्रवृत्त रहनेवाले सभी प्रकार के ज्ञानियों में श्रेष्ठ अपने पिता बृहस्पति से फिर पूछा—पिता जी ऐसी परिस्थिति में सभी भूतों के स्वामी प्रजापति ब्रह्मा किस प्रकार तपस्या में प्रवृत्त थे? पुत्र के ऐसा पूछने पर परम तेजस्वी बृहस्पति ने उससे कहा ॥ ४५-४९ ॥

पुत्र ! सब प्रकार की तपस्याओं में योग श्रेष्ठ है । उस समय भगवान् ब्रह्मा ने उसी का आश्रय लेकर

लोकाः सान्तानिका नाम यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः । ते वैराजा इति ख्याता देवानां दिवि देवताः ॥ ५२ ॥
योगेन तपसा युक्तः पूर्वमेव तदा प्रभुः । देवानसृजत ब्रह्मा योगं युक्त्वा सनातनम् ॥ ५३ ॥
आदिदेवा इति ख्याता महासत्त्वा महौजसः । सर्वकामप्रदाः पूज्या देवदानवमानवैः ॥ ५४ ॥
तेषां सप्त समाख्याता गणास्त्रैलोक्यपूजिताः । अमूर्त्तयस्त्रयस्तेषां चत्वारस्तु सुमूर्त्तयः ॥ ५५ ॥
उपरिष्टात् त्रयस्तेषां वर्त्तन्ते भावमूर्त्तयः । तेषामधस्ताद्वर्तन्ते चत्वारः सूक्ष्ममूर्त्तयः ॥ ५६ ॥
ततो देवास्ततो भूमिरेषा लोकपरम्परा । लोके वर्त्तन्ति ते ह्यस्मिंस्तेभ्यः पर्जन्यसम्भवः ॥
वृष्टिर्भवति तैर्वृष्ट्या लोकानां सम्भवः पुनः ॥ ५७ ॥
आप्याययन्ति ते यस्मात्सोमं चान्नं च योगतः। ऊचुस्तान्वै पितॄंस्तस्माल्लोकानां लोकसत्तमाः॥ ५८ ॥
मनोजवाः स्वधाभक्षाः सर्वकामपरिच्छदाः । लोभमोहभयापेता निश्चिताः शोकवर्जिताः ॥ ५९ ॥
एते योगं परित्यज्य प्राप्ता लोकान्सुदर्शनान् । दिव्याः पुण्या महात्मानो विपाप्मानो भवन्त्युत॥ ६० ॥
ततो युगसहस्रान्ते जायन्ते ब्रह्मवादिनः । प्रतिलभ्य पुनर्योगं मोक्षं गच्छन्त्यमूर्त्तयः ॥ ६१ ॥
व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य महायोगबलेन वा । नश्यन्त्युल्केव गगने क्षीणविद्युत्प्रभेव च ॥ ६२ ॥

ध्यानमग्न हो समस्त लोकों की सृष्टि की थी । योगाभ्यासी प्रजापति ब्रह्मा ने अपने योगदृष्टि से, सभी अतीत एवं अनागत काल में होनेवाली ज्ञान राशि, समस्त लोक एवं सम्पूर्ण वेदों की रचना उसी योग का अवलम्बन लेकर ही की है । जहाँ परम कान्तिमान् सांतानिक नामक लोकों की स्थिति है उसी स्वर्ग लोक में वे देवताओं के भी देवता बैराज नाम से विख्यात पितरगण निवास करते हैं ॥ ५०-५२ ॥

सृष्टि के आदिकाल में सनातन योग एवं तपस्या में निरत रहकर भगवान् पितामह ने उन देवताओं की सृष्टि की थी । वे देवगण आदिदेव के नाम से विख्यात हैं । महान् पराक्रमशील एवं परमतेजस्वी हैं, देवताओं, दानवों एवं मनुष्यों सबके पूज्य तथा सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले हैं । उन त्रैलोक्यपूजित देवताओं के सात गण विख्यात हैं, जिनमें तीन गण निराकार तथा चार सुन्दर आकृतिवाले हैं । वे भावमूर्ति (निराकार) तीन देवगण सबसे ऊपर निवास करते हैं, उनके नीचे वे चार गण निवास करते हैं, जो सूक्ष्म मूर्तियोंवाले हैं । उनके बाद सामान्य देवताओं का निवास स्थल है, उसके नीचे पृथ्वी की स्थिति है, यही लोकों की स्थिति की परम्परा है । वे देवगण इसी लोक में निवास करनेवाले हैं, उन्हीं से बादलों की उत्पत्ति होती है । उन्हीं बादलों से वृष्टि होती है, वृष्टि से सभी लोकों तथा वस्तुओं की पुनः उत्पत्ति होती है ॥ ५३-५७ ॥

वे (पितर)गण अपने योग के बल से सोम एवं अन्न दोनों को ही सन्तुष्ट एवं प्रफुल्लित रखते हैं । इसी कारण से श्रेष्ठजनों द्वारा उन्हें समस्त लोकों का पितर कहा जाता है । ये पितरगण मन के समान वेगशाली, स्वधा का भक्षण करने वाले, सभी इच्छाओं एवं सुविधाओं को देनेवाले, लोभ, मोह तथा भय से विमुक्त एवं निश्चय ही शोक विहीन हैं ॥ ५८-५९ ॥

ये योगाभ्यास को छोड़कर सुन्दर दिखने वाले लोकों को प्राप्त हुए हैं । ये दिव्यगुण युक्त, पुण्यशाली, महात्मा तथा निष्पाप हैं । एक सहस्र युग के उपरान्त ये ब्रह्मवादी हो जाते हैं, और पुनः योग की प्राप्ति कर शरीर को छोड़ मोह के अधिकारी होते हैं । महान् योगबल का आश्रय लेकर वे व्यक्त एवं अव्यक्त शरीर को छोड़कर

उत्सृज्य देहजातानि महायोगबलेन च । निराख्योपाख्यतां यान्ति सरितः सागरे यथा ॥ ६३ ॥
क्रियया गुरुपूजाभिर्योगं कुर्वन्ति नित्यशः । ताभिराप्याययन्त्येते पितरो योगवर्धनाः ॥ ६४ ॥
श्राद्धे प्रीताः पुनः सोमं पितरो योगमास्थिताः। आप्याययन्ति योगेन त्रैलोक्यं येन जीवति ॥ ६५ ॥
तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगिभ्यो यत्नतः सदा। पितॄणां हि बलं योगो योगात्सोमः प्रवर्त्तते॥ ६६ ॥
सहस्रशस्तु विप्रान्वै भोजयेद्यावदागतान् । एकस्तु योगवित्प्रीतः सर्वानर्हति तच्छृणु ॥ ६७ ॥
कल्पितानां सहस्रेण स्नातकानां शतेन च । योगाचार्येण यद्भुक्तं त्रायते महतो भयात् ॥ ६८ ॥
गृहस्थानां सहस्रेण वानप्रस्थशतेन च । ब्रह्मचारिसहस्रेण योगी ह्येको विशिष्यते ॥ ६९ ॥
नास्तिको वा विकर्मा वा संकीर्णस्तस्करोऽपि वा । नान्यत्र कारणं दानं योगेष्वाह प्रजापतिः ॥ ७० ॥
पितरस्तस्य तुष्यन्ति सुवृष्टेनेव कर्षकाः । पुत्रो वाऽप्यथ वा पौत्रो ध्यानिनं भोजयिष्यति ॥ ७१ ॥
अलाभे ध्यानिभिक्षूणां भोजयेद्ब्रह्मचारिणौ । तदलाभेप्युदासीनं गृहस्थमपि भोजयेत् ॥ ७२ ॥
यस्तिष्ठेदेकपादेन वायुभक्षः शतं समा । ध्यानयोगी परस्तस्मादिति ब्रह्मानुशासनम् ॥ ७३ ॥

आकाश में उल्का एवं क्षीण विद्युत् प्रभा की तरह विनाश को प्राप्त होते हैं, महान् योगबल से देह प्रभृति ऐहिक उपादानों को छोड़कर वे समुद्र में मिलनेवाली सरिताओं की भाँति संज्ञा व नाम से रहित हो जाते हैं। वे नित्यप्रति गुरुपूजा प्रभृति सत्क्रियाओं में निरत रह योगाभ्यास में लगे रहते हैं। योगमार्ग में वे विख्यात पितरगण इस प्रकार सबको तृप्त रखते हैं। श्राद्ध के अवसर पर प्रसन्न हुए वे योगाभ्यास में निरत रहनेवाले पितरगण अपने योगबल से चन्द्रमा को तृप्त करते हैं, जिससे त्रैलोक्य को जीवन प्राप्त होता है ॥ ६०-६५ ॥

इसलिए योग की मर्यादा जाननेवालों को सर्वदा यत्नपूर्वक श्राद्धादि का दान करना चाहिए। क्योंकि पितरों का बलयोग है और योगबल से ही चन्द्रमा प्रवर्तित होता है ॥ ६६ ॥

श्राद्ध के अवसर पर आए हुए सहस्रों ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए, योग में निपुण एक ही ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर उक्त सहस्र ब्राह्मण भोजन का फल देता है, इसको सुनिये। सहस्र सामान्य ब्राह्मण, स्नातक अथवा एक योगाचार्य इनमें से किसी एक के द्वारा जो भोजन किया जाता है वह महान् भय (नरक) से छुटकारा दिलाता है। एक सहस्र गृहस्थ, सौ वानप्रस्थ अथवा एक सहस्र ब्रह्मचारी—इन सबों से योगाभ्यास करने वाला एक योगी बढ़कर है ॥ ६७-६९ ॥

वह चाहे नास्तिक हो अथवा दुष्कर्मी हो, चाहे संकीर्ण विचारोंवाला हो अथवा चोर ही क्यों न हो। प्रजापति ने योगमार्ग में ऐसी व्यवस्था बतलायी है कि अन्यत्र (योगी को छोड़कर) दान नहीं करना चाहिए। जिस व्यक्ति का पुत्र अथवा पौत्र ध्यान में निमग्न रहने वाले किसी योगाभ्यासी को श्राद्ध के अवसर पर भोजन करायेगा, उसके पितरगण अच्छी वृष्टि होने से किसानों की तरह परम सन्तुष्ट होंगे। यदि श्राद्ध के अवसर पर कोई योगाभ्यासी ध्यानपरायण भिक्षु न मिले तो दो ब्रह्मचारियों को भोजन कराना चाहिए, वे भी न मिलें तो किसी उदासीन ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए जो सांसारिक विषयों से विरक्त हो। उसके न मिलने पर गृहस्थ को भी भोजन करा देना चाहिए ॥ ७०-७२ ॥

जो व्यक्ति सौ वर्षों तक केवल एक पैर पर खड़े होकर वायु का आहार करके स्थित रहता है, उससे भी

सिद्धा हि विप्ररूपेण चरन्ति पृथिवीमिमाम् । तस्मादतिथिमायान्तमभिगच्छेत्कृताञ्जलिः ॥ ७४ ॥
पूजयेच्चार्घ्यपाद्येन वेश्मना भोजनेन च । उर्वीः सागरपर्यन्तां देवा योगेश्वराः सदा ॥
नानारूपैश्चरन्त्येते प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ ७५ ॥
तस्माद्द्याच्च वै दानं विप्रायातिथये नरः । प्रदानानि प्रवक्ष्यामि फलं चैषां तथैव च ॥ ७६ ॥
अश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च । पुण्डरीकसहस्रेण योगिष्वावसथो वरम् ॥ ७७ ॥
आद्य एष गणः प्रोक्तः पितृणाममितौजसाम् । भावयन्सप्तकालान्वै स्थित एष गणस्तदा ॥ ७८ ॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सर्वान् पितृगणान्पुनः । संततिं संस्थितिं चैव भावनां च यथाक्रमम् ॥ ७९ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे श्राद्धप्रक्रियारम्भो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

* * *

बढ़कर ध्यानी एवं योगी हैं ऐसी ब्रह्मा की आज्ञा है । सिद्ध लोग ब्राह्मण का वेश धारणकर इस पृथ्वी पर विचरण करते हैं अत: किसी अतिथि के आ जाने पर मनुष्य को चाहिए कि उसकी अगवानी के लिए हाथ जोड़कर जाय, अर्घ्य एवं पाद्यादि से उसकी पूजा करे, रहने के लिए सुन्दर स्थान दे और भोजन की व्यवस्था करे । समुद्रपर्यन्त विस्तृत इस भूमण्डल पर ये योगेश्वर देवगण विविध रूप धारणकर धर्मपूर्वक प्रजावर्ग का पालन करते हुए सर्वदा विचरण करते हैं, अत: मनुष्य को चाहिए कि अपने द्वार पर आये हुए अतिथि ब्राह्मण को विधिपूर्वक दानादि दे। आगे चलकर मैं उन विविध दानादिकों को तथा उनके फलों को बतला रहा हूँ ॥ ७३-७६ ॥

सहस्र अश्वमेध, सौ राजसूय, सहस्र पुण्डरीक नामक यज्ञों से भी बढ़कर फल उन योगियों के मध्य में निवास स्थान बनाने से प्राप्त होता है । उन अमित तेजस्वी पितरों के साथ गणों में से यह प्रथम गण (समूह) कहा जा चुका, पितरों का यह गण सभी कालों की भावना करते हुए सर्वदा अवस्थित है । अब इसके उपरान्त मैं पुन: समस्त पितरों का वर्णन कर रहा हूँ । उनकी सन्तति, अवस्थिति एवं भावनाओं के विषय में भी क्रमशः कह रहा हूँ ॥ ७७-७९ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में श्राद्धप्रक्रियारम्भ नामक दसवें अध्याय (इकहत्तरवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १० ॥**

* * *

अथ एकादशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

सूत उवाच

सप्त मेधावतां श्रेष्ठाः स्वर्गे पितृगणाः स्मृताः । चत्वारो मूर्तिमन्तश्च प्रयस्तेषाममूर्त्तयः ॥
तेषां लोकविसर्गं तु कीर्त्तयिष्ये निबोधत ॥ १ ॥
या वै दुहितरस्तेषां दौहित्राश्चैव ये स्मृताः । धर्ममूर्त्तिधरास्तेषां ये त्रयः परमा गणाः ॥ २ ॥
नामानि लोकसर्गं च तेषां वक्ष्ये समासतः। लोका विरजसो नाम्ना यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः॥ ३ ॥
अमूर्त्तयः पितृगणाः पुत्रास्ते वै प्रजापतेः । विरजस्य द्विजाः श्रेष्ठा वैराजा इति विश्रुताः ॥
एष वै प्रथमः कल्पो वैराजानां प्रकीर्त्तितः ॥ ४ ॥
तेषां तु मानसी कन्या मेना नाम महागिरेः । पत्नी हिमवतः शुभ्रा यस्यां मैनाक उच्यते ॥ ५ ॥
जातः सर्वौषधिधरः सर्वरत्नाकरात्मवान् । पर्वतः प्रवरः पुण्यः क्रौञ्चस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ ६ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

(बहत्तरवाँ अध्याय)

श्राद्धकल्प

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! परम बुद्धिमान् पितरों के सात गण कहे गए हैं, जिनमें चार तो मूर्तिमान हैं और शेष तीन अमूर्त हैं । मैं उनके द्वारा होनेवाली लोकसृष्टि का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ॥ १ ॥

उनकी जो-जो पुत्रियाँ हैं, एवं जो-जो दौहित्र हुए हैं, उन सबका भी वर्णन कर रहा हूँ। जो तीन धर्ममूर्ति परमश्रेष्ठ गण कहे गए हैं, सर्वप्रथम मैं उनके नाम एवं उनके द्वारा होने वाली लोकसृष्टि का वर्णन संक्षेप में कर रहा हूँ । जहाँ परम कान्तिमय विरजस नाम से विख्यात लोकों की अवस्थिति है, वहीं पर प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र अमूर्त पितरगण निवास करते हैं । हे द्विजगण ! वे पितरगण विरज के निवासी हैं, अतः वैराज नाम से प्रसिद्ध हैं। वैराज नामक पितरों के इस पहले गण को आप लोगों को सुना चुका ॥ २-४ ॥

इन्हीं वैराजों की मानसी पुत्री मेना थी, जो महागिरि हिमवान् की सुन्दरी पत्नी थी जिसमें मैनाक की उत्पत्ति हुई । यह पर्वत श्रेष्ठ मैनाक सभी प्रकार के रत्नादिकों से परिपूर्ण, समस्त ओषधियों का आगार एवं पुण्यशाली उत्पन्न हुआ । इसका पुत्र क्रौञ्च हुआ ॥ ५-६ ॥

तिस्त्रः कन्यास्तु मेनायां जनयामास शैलराट् । अपर्णामेकपर्णां च तृतीयामेकपाटलाम् ॥ ७ ॥
आश्रिते द्वे ह्यपर्णा तु अनिकेता तपोऽचरत् । न्यग्रोधमेकपर्णी तु पाटलामेकपाटला ॥
शतं वर्षसहस्त्राणि दुश्चरं देवदानवैः ॥ ८ ॥
आहारमेकपर्णेन एकपर्णी समाचरत् । पाटलेनैव चैकेन विदध्यादेकपाटला ॥ ९ ॥
पूर्णे पूर्णे सहस्रे द्वे आहारं वै प्रचक्रतुः । एका तत्र निराहारा तां माता प्रत्यभाषत ॥ १० ॥
निषेधयन्ती ह्युमेति माता स्नेहेन दुःखिता । सा तथोक्ततया देवी मात्रा दुश्चरचारिणी ॥ ११ ॥
उमेति सा महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता । तथेति नाम्ना तेनासौ निरुक्ता कर्मणा शुभा ॥ १२ ॥
एतत्तु त्रिकुमारीकं जगत्स्यास्यति शाश्वतम् । एतासां तपसा दृप्तं यावद्भूमिर्द्धरिष्यति ॥ १३ ॥
तपः शरीरास्ताः सर्वास्तिस्रो योगबलान्विताः । देव्यस्ताः सुमहाभागाः सर्वाश्च स्थिरयौवनाः ॥ १४ ॥
सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वाश्चैवोर्द्ध्वरेतसः । उमा तासां वरिष्ठा च श्रेष्ठा च वरवर्णिनी ॥ १५ ॥
महायोगबलोपेता महादेवमुपस्थिता । दन्तकाण्वोशनास्तस्याः पुत्रो वै भृगुनन्दनः ॥ १६ ॥
असितस्यैकपर्णी तु पत्नी साध्वी दृढव्रता । दत्ता हिमवता तस्मै योगाचार्याय धीमते ॥
देवलं सुषुवे सा तु ब्रह्मिष्ठं मानसं सुतम् ॥ १७ ॥

पर्वतराज ने मेना से तीन कन्याओं को भी जन्म दिया जिनके नाम अपर्णा, एकपर्णा तथा एकपाटला थे। इन तीनों कन्याओं में से दो ने आश्रय ग्रहण किया, केवल अपर्णा ने कोई आश्रय नहीं बनाया, बिना घर-द्वार के ही वह तपस्या में दत्तचित्त रही। एकपर्णा ने एक न्यग्रोध (बरगद) का तथा एकपाटला ने एक पाटला वृक्ष का अवलम्ब लिया था। इस प्रकार तीनों कन्याओं ने एक सहस्र वर्षों तक कठोर तप किया, जिसे देवता अथवा दानव कोई भी करने में असमर्थ थे ॥ ७-८ ॥

एकपर्णा एक पत्ते का आहार करती थी एकपाटला का जीवन एक पाटल पर निर्भर था, इस प्रकार इन दोनों बहनों ने दो सहस्र वर्ष बीत जाने पर आहार स्वीकार लिया; परन्तु तीसरी कन्या अपर्णा बिना किसी आहार के उस समय भी तपस्या में लीन रही। माता ने स्नेह से अति दुःखित हो तपस्या से विरत करने के लिए निषेध के स्वर में उससे 'उ' 'मा' ऐसा कहा। महाभाग्यशालिनी अत्यन्त दुष्कर तप करनेवाली वह देवी अपनी माता के ऐसा कहने पर उमा नाम से तीनों लोकों में विख्यात हुई और अपने उस कठोर कर्म के कारण अपर्णा इस शुभ नाम से भी उसकी ख्याति हुई। इस जगत् की सत्ता जब तक रहेगी, जब तक स्थिर रहेगी, तब तक इन तीनों कुमारियों के नाम एवं उनकी घोर तपस्याओं के यशोगान होते रहेंगे ॥ ९-१३ ॥

योगबल से संयुक्त, तपोमय शरीरवाली वे तीनों कन्याएँ समस्त दिव्यगुणों से सम्पन्न, महाभाग्यशालिनी एवं स्थिर यौवनवाली हैं। उन सभी ब्रह्मवादिनी एवं ब्रह्मचारिणी कन्याओं में उमा परमश्रेष्ठ, सर्वगुणान्वित तथा सुन्दरी थी। उसका योगबल परम महान् था और उसने महादेव को पति रूप में प्राप्त किया। उसके पुत्र दन्त, कण्व, उशना और भृगुनन्दन हुए। एकपर्णी असित की पत्नी हुई, वह परम साध्वी तथा कठोर व्रतों का अनुष्ठान करनेवाली थी। हिमवान् ने एकपर्णी को योगाचार्य एवं परम बुद्धिमान् असित को समर्पित किया था। एकपर्णी ने ब्रह्मनिष्ठ देवल को मानसपुत्र के रूप में उत्पन्न किया ॥ १४-१७ ॥

या चैतासां कुमारीणां तृतीया त्वेकपाटला । पुत्रं शतशिलाकस्य जैगीषव्यमुपस्थिता ॥ १८ ॥
तस्यापि शङ्खलिखितौ स्मृतौ पुत्रावयोनिजौ । इत्येता वै महाभागाः कन्या हिमवतः शुभाः ॥ १९ ॥
रुद्राणी सा तु प्रवरा स्वगुणैरतिरिच्यते । अन्योन्यप्रीतिरनयोरुमाशंकरयोर्यथा ॥ २० ॥
श्लेषं संसक्तयोर्ज्ञात्वा शङ्कितः किल वृत्रहा । ताभ्यां मैथुनसक्ताभ्यामपत्योद्भवभीरुणा ॥
तयोः सकाशमिन्द्रेण प्रेषितो हव्यवाहनः ॥ २१ ॥
अनयो रतिविघ्नं च त्वमाचर हुताशन । सर्वत्र गत एव त्वं न दोषो विद्यते तदा ॥ २२ ॥
इत्येवमुक्ते तु तथा वह्निना च तथा कृतम् । उमादेहं समुत्सृज्य शुक्रं भूमौ विसर्जितम् ॥ २३ ॥
ततो रुषितया देव्या शप्तोऽग्निः शांशपायन । इदं चोक्तवती वह्निं रोषगद्गदया गिरा ॥ २४ ॥
यस्मान्मय्यवितृप्तायां रतिविघ्नं हुताशन । कृतवानस्यकर्त्तव्यं तस्मात्त्वमसि दुर्मते ॥ २५ ॥
यदेवं बिभृतं गर्भं रौद्रं शुक्रं महाप्रभम् । गर्भं त्वं धारयस्वैवमेषा ते दण्डधारणा ॥ २६ ॥
स शापरोषाद्रुद्राण्या अन्तर्गर्भो हुताशनः । बहून्वर्षगणान् गर्भं धारयामास वै द्विजाः ॥ २७ ॥
सगङ्गामुपगम्याह श्रूयतां सरिदुत्तमे । सुमहान् परिखेदो मे गर्भधारणकारणात् ॥ २८ ॥
मद्धितार्थमिमं गर्भमतो धारय निम्नगे । मत्प्रसादाच्च खेदो वै मन्दस्तव भविष्यति ॥ २९ ॥
तथेत्युक्त्वा तदा सा तु संप्रहृष्टा महानदी । तं गर्भं धारयामास दह्यमानेन चेतसा ॥ ३० ॥

इन तीनों कुमारियों में तीसरी एकपाटला नामक जो कुमारी थी, उसने शतशिलाक के पुत्र जैगीषव्य को पतिरूप में स्वीकार किया था, उसके भी शंख और लिखित नामक दो पुत्र हुए, जिनकी उत्पत्ति योनि से नहीं हुई थी। ये ही तीन महाभाग्यशालिनी हिमवान् की कल्याणदायिनी कन्याएँ हैं। इनमें रुद्राणी उमा अपने गुणों के कारण सबसे बढ़-चढ़कर थीं। उमा और शंकर के पारस्परिक सम्बन्ध और प्रेम को देखकर वृत्रहा (इन्द्र) को सन्देह हुआ। दाम्पत्य प्रेम में अनुरक्त उन दोनों से होनेवाली संतति के भय से आतङ्कित होकर इन्द्र ने उसके पास अग्नि को भेजा और कहा हे हुताशन ! तुम इन दोनों के रतिकर्म में जाकर विघ्न पहुँचाओ, तुम तो सर्वत्र जा सकते हो। अतः तुम्हारे वहाँ जाने पर कोई दोष न होगा ॥ १८-२१ ॥

इन्द्र के कहने पर अग्नि ने वैसा ही किया जिसका परिणाम यह हुआ कि शंकर ने अपना वीर्य उमा के शरीर में न छोड़कर पृथ्वी पर गिरा दिया। हे शांशपायन ! इस घटना के घटित होने पर उमा को क्रोध आया और उन्होंने अग्नि को श्राप दिया कि हे अग्नि ! चूँकि तुमने मेरी तृप्ति के बिना हुए ही इस रतिक्रीड़ा में विघ्न डाल दिया है, अतः तुम निश्चय ही बड़े कुबुद्धि हो, और यह जो मेरे गर्भ-द्वार से बहिर्गत रुद्र का महान् तेजोमय वीर्य है उसे तुम गर्भरूप में वहन करो, यही मैं तुझे दण्ड दे रही हूँ ॥ २२-२६ ॥

ऋषिवृन्द रुद्राणी उमा के रोषज शाप के कारण हुताशन को वह गर्भ धारण करना पड़ा और उस गर्भ को उसने बहुत वर्षों तक वहन किया। बहुत दिनों के बाद गंगा के तट पर आकर अग्नि ने निवेदन किया, हे उत्तम सरिते मेरी यह प्रार्थना श्रवण करो। इस गर्भ भार के वहन करने में मुझे महान् कष्ट हो रहा है, हे निम्नगे ! मेरे लिए तुम इस गर्भ को आज से धारण कर लो, मेरे आशीर्वाद से तुम्हें इसके वहन करने में बहुत अल्प कष्ट होगा ॥ २७-२९ ॥

सापि कृच्छ्रेण महता खिद्यमाना महानदी । कालं प्रकृष्टं सुमहद्गर्भधारणतत्परा ॥ ३१ ॥
तया परिगतं गर्भं कुक्षौ हिमवतः शुभे । शुभं शरवणं नाम चित्रं पुष्पितपादपम् ॥
तत्र तं व्यसृजद्गर्भं दीप्यमानमिवानलम् ॥ ३२ ॥
रुद्राग्निगङ्गातनयस्तत्र जातोऽरुणप्रभः । आदित्यशतसंकाशो महातेजाः प्रतापवान् ॥ ३३ ॥
तस्मिञ्जाते महाभागे कुमारे जाह्नवीसुते । विमानयानैराकाशं पतत्रिभिरिवावृतम् ॥ ३४ ॥
देवदुन्दुभयो नेदुराकाशे मधुरस्वराः । मुमुचुः पुष्पवर्षं च खेचराः सिद्धचारणाः ॥ ३५ ॥
जपुर्गन्धर्व्वमुख्याश्च सर्व्वशस्तत्र तत्र ह । यक्षा विद्याधराः सिद्धाः किन्नराश्चैव सर्वशः ॥ ३६ ॥
महानागसहस्राणि प्रवराश्च पतत्रिणः । उपतस्थुर्महाभागमाग्नेयं शङ्करात्मजम् ॥
प्रभावेण तदा तेन दैत्यदानवराक्षसाः ॥ ३७ ॥
सह सप्तर्षिभार्याभिरादावेवाग्निसंभवः । अभिषेकप्रयाताभिर्दृष्टो वर्ज्य त्वरुन्धतीम् ॥ ३८ ॥
ताभिः स बालार्कनिभो रौद्रः परिवृतः प्रभुः। स्निह्यमानाभिरत्यर्थं स्वकाभिरिव मातृभिः ॥ ३९ ॥
युगपत्सर्वदेवीर्हि दिदृक्षुर्जाह्नवीसुतः । षण्मुखो व्यसृजच्छ्रीमांस्तासां प्रीत्या महाद्युतिः ॥ ४० ॥
श्रीमान् कमलपत्राक्षस्तरुणादित्यसन्निभः । येन जातेन लोकानामाक्षेपस्तेजसा कृतः ॥ ४१ ॥

महानदी गंगा ने अग्नि की विनयपूर्ण बातें सुनकर स्वीकार कर लिया और बड़े आनन्द से उस गर्भ को धारण किया, अपने तेज से जलते हुए गर्भ को वहन करने में वे महानदी भी बहुत परेशान हुई, फिर भी बहुत दिनों तक तत्परता के साथ अनेक कठिनाइयों की उपेक्षा कर वे गर्भ को धारण किये रहीं। हिमवान् पर्वत के मनोहर कुक्षि प्रदेश (घाटी) में शरवण नामक एक विचित्र सुन्दर वन था जिसमें वृक्ष खूब फूले हुए थे, वहीं पर जाकर गंगा ने अनुपम तेज से जलते हुए अग्नि की भाँति उस गर्भ का विमोचन किया ॥ ३०-३२ ॥

रुद्र अग्नि और गंगा का वह शिशु अरुण के समान कान्तिमान हुआ, सैकड़ों सूर्य के समान तेजस्वी और प्रतापी था। जाह्नवी के गर्भ से उस कुमार के समुत्पन्न होने पर सारा आकाशमण्डल देवताओं के सुन्दर विमानों और यानों से इस प्रकार आवृत हो गया मानो पक्षियों के समूह घेरे हुए हों ॥ ३३-३४ ॥

देवगण आकाशमण्डल में मधुरस्वर से दुन्दुभि बजाने लगे। आकाश में उड़नेवाले सिद्ध और चारणों के वृन्द पुष्पों की वृष्टि करने लगे। चारों ओर से मुख्य गन्धर्व गायन करने लगे। विद्याधर, सिद्ध तथा किन्नरों के समूह सम्मिलित होकर उत्सव मनाने लगे। सहस्रों विशालकाय नाग एवं पक्षियों के प्रमुख गण उस शंकरात्मज अग्निसम्भव कुमार की उपासना करने लगे। उस परम तेजस्वी कुमार ने अपने अनुपम प्रभाव से ही दैत्यों, दानवों तथा राक्षसों को हतप्रभ कर दिया ॥ ३५-३७ ॥

अभिषेक के लिए आयी हुई सप्तर्षियों की स्त्रियों में से अरुन्धती को छोड़कर सब ने सर्वप्रथम ही उस अग्निसम्भव कुमार का दर्शन किया। रुद्र के उस महान् तेजस्वी, परम ऐश्वर्यशाली, बालसूर्य के समान कान्तिमान् पुत्र को उन ऋषि पत्नियों ने चारों ओर से घेर लिया, और अपनी माता के समान परम स्नेह युक्त नेत्रों से देखने लगीं। उन सबों को प्रसन्न करने के लिए तथा एक ही साथ सबको देखने की इच्छा से जाह्नवी सुत ने छह मुखों की सृष्टि कर ली और उस समय उनकी महान् शोभा हुई। कमलनयन, ने मध्याह्न के सूर्य के समान कान्तिशाली

तेन जातेन महता देवानामसहिष्णवः । स्कन्दिता दानवगणास्तस्मात्स्कन्दः प्रतापवान् ॥ ४२ ॥
कृत्तिकाभिस्तु यस्मात् संवर्द्धितः स पुरातनः । कार्त्तिकेय इति ख्यातस्तस्मादसुरसूदनः ॥ ४३ ॥
जृम्भतस्तस्य दैत्यारेर्ज्वालामालाकुलात्तदा । मुखाद् विनिर्गता तस्य स्वशक्तिरपराजिता ॥ ४४ ॥
क्रीडार्थं चैव स्कन्दस्य विष्णुना प्रभविष्णुना । गरुडादति सृष्टौ हि पक्षिणौ हि प्रभद्रकौ ॥ ४५ ॥
मयूरः कुक्कुटश्चैव पताका चैव वायुना । यस्य दत्ता सरस्वत्या महावीणा महास्वना ॥
अजः स्वयम्भुवा दत्तो मेयो दत्तश्च शम्भुना ॥ ४६ ॥
मायाविहरणे विप्रा गिरौ क्रौञ्चे निपातिते । तारके चासुरवरे समुदीर्णे निपातिते ॥ ४७ ॥
सेन्द्रोपेन्द्रैर्महाभागैर्देवैरग्निसुतः प्रभुः । सेनापत्येन दैत्यारिरभिषिक्तः प्रतापवान् ॥ ४८ ॥
देवसेनापतिस्त्वेवं पठ्यते नरनायकः । देवारिस्कन्दनः स्कन्दः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ॥ ४९ ॥
प्रमथैर्विविधैर्देवैस्तथा भूतगणैरपि । मातृभिर्विविधाभिश्च विनायकगणैस्तथा ॥ ५० ॥

श्रीमान् अग्निसम्भव ने समस्त लोकों को अपने तेज से तेजोविहीन कर दिया । उस महान् तेजस्वी के जन्म लेते ही देवताओं की श्री सम्पत्ति को न सहन करनेवाले दानवगण स्कन्दित अर्थात् व्यथित हो गए और इसी कारण से उस प्रतापशाली कुमार की स्कन्द नाम से प्रसिद्ध हुई ॥ ३८-४२ ॥

असुरों का विनाशक वह पुरातन पुरुष यतः कृतिकाओं द्वारा पुष्ट हुआ था अतः कार्तिकेय नाम से भी उसकी प्रसिद्धि हुई । उस दैत्य विनाशक के जँभुआई लेते समय मुख अग्नि की ज्वालाओं की माला से पूर्ण हो गया और उससे उसकी अपराजिता नामक शक्ति बाहर हुई ॥ ४३ ४४ ॥

महान् प्रभावशाली भगवान् विष्णु ने स्कन्द की क्रीड़ा के लिए गरुड़ से भी अतिशय बलशाली तथा प्रभावशाली दो प्रभद्रक नामक मयूर और कुक्कुट पक्षियों की सृष्टि की । वायु ने पताका दी, सरस्वती ने उसे महान् शब्द करनेवाली एक बहुत बड़ी वीणा अर्पित की, स्वयंभू ब्रह्मा ने एक अज (बकरा) दिया, शंकर ने एक मेढ़ा दिया । हे द्विजवृन्द ! क्रौञ्चगिरि पर असुरश्रेष्ठ तारकासुर की समस्त माया को नष्ट कर अग्नि कुमार ने जब उसका सम्पूर्ण सेना के सहित अन्त कर दिया, उस समय महाभाग्यशाली इन्द्र, उपेन्द्र (विष्णु) आदि देवताओं ने दैत्यों के इस प्रबल प्रतापी शत्रु तथा विनायकों के समूहों ने इनका नरनायक, देवसेनापति, देवारिस्कन्दन (देवताओं के शत्रु को व्यथित करनेवाला), स्कन्द, सर्वलोकेश्वर एवं प्रभु आदि नामों से स्तवन किया ॥ ४५-५० ॥

[विमर्श—उपरोक्त के बाद कुछ अन्य प्रतियों से एक नए तिहत्तरवें अध्याय से प्रारम्भ कर के कुछ छः श्लोकों में निम्न पाठ और उपलब्ध होता है । यह पाठ सही प्रतीत होता है क्योंकि इससे आगे की व्याख्या का तारतम्य जुड़ जाता है ।

मूल का अंश—अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः (श्राद्धकल्पः)

बृहस्पतिरुवाच

लोकाः सोमपदा नाम मारीचेर्यत्र वै सुताः । पितरो दिवि वर्तन्ते देवास्तान्भावयन्ति वै ॥ १ ॥
अग्निष्वात्ता इति ख्याताः सर्व एवामितौजसः। एतेषां मानसी कन्या अच्छोदा नाम निम्नगा ॥ २ ॥
अच्छोदं नाम तद्दिव्यं सरो यस्याः समुच्छ्रितम् । अद्रिकाप्सरसा युक्तं विमानैधिष्ठितं दिवि ॥ ३ ॥

सा त्वपश्यद्विमानानि पतन्ती सा दिवश्च्युता । त्रसरेणुप्रमाणानि तेष्वपश्यच्च्युतान् पितॄन् ॥ ५१ ॥
सुसूक्ष्मानपरित्यक्तानग्नीनग्निष्विवाहितान् । त्रायध्वमित्युवाचाथ पतन्ती तानवाक्शिराः ॥ ५२ ॥
तैरुक्ता सा तु मा भैषीरित्युक्ताधिष्ठिताभवत् । ततः प्रासादयत्सा वै पितॄंस्तान् दीनया गिरा ॥ ५३ ॥
ऊचुस्ते पितरः कन्यां भ्रष्टैश्वर्यां व्यतिक्रमात् । भ्रष्टैश्वर्या स्वदोषेण तपसि त्वं शुचिस्मिते ॥ ५४ ॥
यैः क्रियन्ते च कर्माणि शरीरैरिह दैवतैः । तैरेव तत्कर्मफलं प्राप्नुवन्तीह देवताः ॥ ५५ ॥
सद्यः फलन्ति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे । तस्मादमावस्वपत्यत्वं प्रेत्य प्राप्स्यसे फलम् ॥ ५६ ॥
इत्युक्त्या वै पितरः पुनस्ते तु प्रसादिताः । ध्यात्वा प्रसादं सञ्चक्रुस्तस्यास्ते त्वनुकम्पया ॥ ५७ ॥

स्वर्ग लोक से पतित होकर गिरते समय उसने उन देव विमानों को देखा और वहाँ त्रसरेणु के समान परम सूक्ष्म उन पितरों को देखा । वे परम सूक्ष्म थे और ज्वलन्त अग्नि के समान देदीप्यमान और तेजस्वी थे । आकाश से गिरते हुए उसने रक्षा कीजिये, इस प्रकार की आर्त वाणी बिना सिर और स्पष्ट स्वर के ही कहीं । पितरों ने उससे कहा, 'डरो मत' और उनके ऐसा कहने पर वह सुस्थिर हो गयी । वहाँ पर स्थिर होकर उसने अपनी अति दीनतापूर्ण वाणी से पितरों को प्रसन्न किया । मानसिक भावों के व्यतिक्रम से दूषित होने के कारण भ्रष्ट ऐश्वर्यवाली उस कन्या को देखकर पितरों ने कहा—हे सुन्दर हँसने वाली ! तुम अपने ही दोषों से अपने ऐश्वर्य से भ्रष्ट होकर गिर रही हो ॥ ५१-५४ ॥

इस लोक में देवगण अपने जिस शरीर से कर्मों को करते हैं, उसी से उसका फल प्राप्त करते हैं । देवयोनि में कर्मों का फल तुरन्त प्राप्त होता है और मनुष्य योनि में परलोक (अन्य जन्म) में प्राप्त होता है, इस कारण तुम दूसरे जन्म में अमावसु को पितर (पति ?) रूप में प्राप्त करोगी । ऐसा कहने के उपरान्त उसने पितरों को पुनः प्रार्थना आदि से प्रसन्न किया । प्रार्थना करने पर पितरों ने उसके ऊपर बड़ी अनुकम्पा कर प्रसन्नता प्रकट की ।

अमूर्तिमन्तश्च पितॄन् ददृशे सा तु विस्मिता । पीडिताऽनेन दुःखेन बभूव वरवर्णिनी ॥ ४ ॥
सा दृष्ट्वा पितरं वव्रे वसूनामन्तरिक्षगम् । अनावसुरिति ख्यातमायोः पुत्रं यशस्विनम् ॥ ५ ॥
सा तेन व्यभिचारेण मनसः कामचारिणी । पतिकामा तदा सा च योगभ्रष्टा पपात ह ॥ ६ ॥

व्याख्या—तिहत्तरवाँ अध्याय (श्राद्धकल्प)—

बृहस्पति ने कहा—स्वर्ग में सोमपद नामक लोक है, जहाँ मरीचि के पुत्र पितरगण वर्तमान हैं, देवगण वहाँ उनकी पूजा करते हैं । वे पितरगण अग्निष्वात्त नाम से विख्यात हैं, और सब-के-सब अमित तेजस्वी हैं । इन पितरों की मानसी कन्या अच्छोदा नामक नदी है । जिससे निकला हुआ अच्छोद नामक दिव्य सरोवर भी वहाँ विराजमान है । स्वर्ग लोक में एक बार उसी सरोवर के पास अद्रिका नामक अप्सरा के साथ आकाश में देवताओं के विमान सुशोभित हो रहे थे ॥ १-३ ॥

वहाँ मूर्तिरहित पितरों को देखकर वह विस्मय से भर गई और इसी दुःख से वह सुन्दरी बहुत काम पीड़ित हुई । आकाश में विचरण करते हुए वसुओं के पिता आयु के परम यशस्वी पुत्र अमावसु नामक पितर को देखकर उसने मानसिक वरण किया । उस मानसिक व्यभिचार के फलस्वरूप, पति के रूप में अमावसु को वरण करने की इच्छुक वह कामचारिणी (अद्रिका नामक अप्सरा) योगभ्रष्ट हो गयी और स्वर्ग से पतित हो गयी ॥ ४-६ ॥]

अवश्यंभाविनं दृष्ट्वा ह्यर्थमूचुस्ततः सुराः । सोमपाः पितरः कन्यां राज्ञश्चैव ह्यमावसोः ॥ ५८ ॥
उत्पन्नस्य पृथिव्यां तु मानुषत्वे महात्मनः । कन्या भूत्वा त्विमाँल्लोकान्पुनः प्राप्स्यसि स्वानिति ॥ ५९ ॥
अष्टाविंशे भवित्री त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा । अस्यैव राज्ञो दुहिता अद्रिकायां ह्यमावसोः ॥ ६० ॥
पराशरस्य दायादमृषेस्त्वं जनयिष्यसि । स वेदमेकं विप्रर्षिश्चतुर्धा वै करिष्यति ॥ ६१ ॥
महाभिषस्य पुत्रौ द्वौ शन्तनोः कीर्त्तिवर्द्धनौ । विचित्रवीर्य्यं धर्मज्ञं त्वमेवोत्पादयिष्यसि ॥ ६२ ॥
चित्राङ्गदं च राजानं तेजोबलगुणान्वितम् । एतानुत्पाद्य पुत्रं स्वं पुनर्लोकानवाप्स्यसि ॥ ६३ ॥
व्यतिक्रमात्पितॄणां त्वं प्राप्स्यसे जन्म कुत्सितम् । तस्यैव राज्ञस्त्वं कन्या अद्रिकायां भविष्यसि ॥ ६४ ॥
कन्या भूत्वा ततश्च त्वमिमान् लोकानवाप्स्यसि । एवमुक्ता तु दाशेयी जाता सत्यवती तु सा ॥ ६५ ॥
अद्रिकायां सुता मत्स्यां सुता जाता ह्यमावसोः । अद्रिकामत्स्यसम्भूता गङ्गायमुनसंगमे ॥ ६६ ॥
तस्य राज्ञो हि सा कन्या राज्ञो वीर्ये सदैव हि । विरजा नाम ते लोका दिवि रोचन्ति तेगणाः ॥ ६७ ॥
अग्निष्वात्ताः स्मृतास्तत्र पितरो भास्वरप्रभाः । तान्दानवगणा यक्षा रक्षोगन्धर्वकिंनराः ॥
भूतसर्पपिशाचाश्च भावयन्ति फलार्थिनः ॥ ६८ ॥
एते पुत्राः समाख्याताः पुलहस्य प्रजापतेः । त्रय एते गणाः प्रोक्ता धर्ममूर्तिधराः शुभाः ॥ ६९ ॥

ध्यानमग्न होकर देवताओं ने भविष्य में अवश्यमेव घटित होनेवाली घटना को देखकर उससे कहा । सोम का पान करनेवाले उन पितरों ने राजा रूप में अमावसु और उसकी कन्या के बारे में ये बातें कीं ॥ ५५-५८ ॥

पृथ्वीतल पर मनुष्य योनि में उत्पन्न महात्मा अमावसु की कन्या होकर तुम पुनः इन अपने लोकों को प्राप्त करोगी अट्ठाईसवें द्वापर युग में तुम्हारी उत्पत्ति मत्स्य की योनि से होगी और इसी राजा अमावसु से अद्रिका में तुम कन्या रूप में उत्पन्न होगी । और पराशर ऋषि के सुपुत्र वेदव्यास को उत्पन्न करोगी । वह तुम्हारा पुत्र ब्राह्मणों में श्रेष्ठ होगा और एक वेद को चार भागों में विभक्त करेगा ॥ ५९-६१ ॥

महाभिष शन्तनु के कीर्तिवर्द्धक धर्मज्ञ विचित्रवीर्य और परम तेजस्वी, बलवान्, गुणशील राजा चित्रांगद नाम के दो पुत्र तुमसे उत्पन्न होंगे । इन पुत्रों को उत्पन्न करने के बाद तुम पुनः इन लोकों को प्राप्त करोगी । पितरों के साथ पति भावना करके तुमने बहुत बड़ा व्यतिक्रम कर दिया है और उसी से ऐसी कुत्सित योनि में जन्म प्राप्त करना पड़ेगा । किन्तु उस योनि में भी तुम अद्रिका के गर्भ में उसी राजा के वीर्य से उत्पन्न होगी ॥ ६२-६४ ॥

उसी कन्या के होने के बाद तू इन लोकों को निश्चय ही प्राप्त करोगी । पितरों के ऐसा कहने पर वह दासों की पुत्री सत्यवती अपरावर्तिनीं के रूप में उत्पन्न हुई । अमावसु के संयोग से अद्रिका नामक मछली की पुत्री के रूप में उसका जन्म हुआ, गङ्गा-यमुना के संगम पर अद्रिका मछली के पेट से उसकी उत्पत्ति हुई, वह उसी राजा अमावसु के वीर्य से उत्पन्न हुई थी अतः उसकी कन्या थी । स्वर्ग में विरजा नामक पितरों से वे लोक शोभायमान हैं ॥ ६५-६७ ॥

वहाँ विद्यमान रहने वाले पितरगण सूर्य के समान कान्तिमान् हैं । वे 'अग्निष्वात्त' नाम से विख्यात हैं । उन पितरगणों की समस्त दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, भूत, सर्प एवं पिशाचों के गण उत्तम फल की प्राप्ति की कामना से पूजा किया करते हैं । पुलह प्रजापति के इन पुत्रों का वर्णन मैंने कर दिया । इन धर्ममूर्ति

एतेषां मानसी कन्या पीवरी नाम विश्रुता । योगिनी योगपत्नी च योगमाता तथैव च ॥ ७० ॥
भविता द्वापरं प्राप्य अष्टाविंशं तु दैवतम् । पराशरकुलोद्भूतः शुको नाम महातपाः ॥ ७१ ॥
श्रीमान्योगी महायोगी योगस्तस्माद्द्विजोत्तमाः। व्यासादरण्यां सम्भूतो विधूम इव पावकः ॥ ७२ ॥
स तस्यां पितृकन्यायां योगाचार्यान्परिश्रुतान् । कृष्णं गौरं प्रभुं शम्भुं तथा भूरिश्रुतं ववौ ॥ ७३ ॥
कन्यां कीर्त्तिमतीं चैव योगिनीं योगमातरम् । ब्रह्मदत्तस्य जननी महिषी त्वणुहस्य तु ॥ ७४ ॥
एतानुत्पाद्य धर्मात्मा पुत्रान्योगमवाप्य च । महायोगतपाश्चैव अपरावर्त्तिनीं गतिम् ॥ ७५ ॥
आदित्यकिरणोपेतं त्वपुनर्भावमास्थितः । सर्वव्यापी विनिर्मुक्तो भविष्यति महामुनिः ॥ ७६ ॥
अमूर्त्तिमन्तः पितरो धर्ममूर्त्तिधरास्तु ये । त्रय एते गणास्तेषां चत्वारोऽन्ये निबोधत ॥ ७७ ॥
यान्वक्ष्यामि द्विजश्रेष्ठा मूर्त्तिमन्तो महाप्रभाः। उत्पन्नास्ते स्वधायास्तु कन्या ह्यग्नेः कवेः सुताः॥ ७८ ॥
पितरो देवलोकेषु ज्योतिर्भासिषु भास्वराः । सर्वकामसमृद्धेषु द्विजास्तान्भावयन्त्युत ॥ ७९ ॥
एतेषां मानसी कन्या गौर्नाम दिवि विश्रुता । दत्तसेना कुमारेण शुक्रस्य महिषी प्रिया ॥ ८० ॥
एकत्रिंशच्च विख्याता भृगूणां कीर्त्तिवर्द्धनाः। मरीचिगर्भास्ते लोकाः समावृत्य दिवि स्थिताः ॥ ८१ ॥

पितरों के तीन गण कहे गए हैं । इनकी मानसी कन्या पीवरी नाम से प्रसिद्ध है । वह पीवरी योगिनी, योगपत्नी एवं योगमाता के रूप में भी विख्यात थी । हे द्विजवर्यवृन्द ! अट्ठाईसवें द्वापर युग के आने पर पराशर के कुल में शुक नामक महान तपस्वी, श्रीमान्, योगी एवं महान् योगाभ्यासी की उत्पत्ति होगी । उन्हीं से पृथ्वी पर योग का विस्तार होगा । वे शुक व्यास के संयोग से अरणी में धूमरहित अग्नि के समान तेजोमय रूप में उत्पन्न होंगे ॥ ६८-७२ ॥

पितरों की मानसी कन्या उस पीवरी में सुविख्यात योगाचार्य कृष्ण, गौर, प्रभु शंभु तथा भूरिश्रुत नामक पुत्रों को तथा परम योगिनी योगमाता कीर्तिमती नामक कन्या को वे उत्पन्न करेंगे । वह कीर्तिमती अणुह की पत्नी और ब्रह्मदत्त की माता होगी । धर्मात्मा शुक्र अपने महान् तप एवं योग से इन पुत्रों की उत्पत्ति करने के बाद उस परम गति को प्राप्त होंगे, जिसको प्राप्तकर पुनरावर्तन नहीं होता । सूर्य की किरणों के समान परम तेज को प्राप्त होकर वे पुनर्जन्म को न प्राप्त होंगे । इस प्रकार वे महामुनि समस्त चराचर जगत् में व्याप्त होकर सांसारिक बन्धनों से विनिर्मुक्त हो जायेंगे ॥ ७३-७६ ॥

धर्म मूर्ति धारण करनेवाले जो पितरगण हैं वे अमूर्त हैं, इनके तीन गण हैं । हे द्विजश्रेष्ठ, अब मैं उन अन्य चार पितरों के बारे में बतला रहा हूँ, जो परम कान्तिमान् स्वरूपधारी हैं, उन्हें सुनिये । वे पितरगण कवि अग्नि की पुत्री स्वधा से उत्पन्न हुए हैं, और ज्योतिर्भास नामक देवलोकों में उनका निवास स्थान है, स्वयमेव ये पितरगण बहुत तेजोमय हैं । सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करनेवाले उन ज्योतिर्मय लोकों में विराजमान पितरों की द्विजगण इसी प्रकार से भावना करते हैं । इनकी मानसी कन्या गौ है, जो स्वर्ग लोक में विख्यात है । सनत्कुमार ने गौ को शुक्र को सौंपा था जहाँ पर वह शुक्र की प्रिया स्त्री हुई । भृगुवंश में उत्पन्न होनेवाले परम यशस्वी इकतीस पितरगण बहुत विख्यात हुए । उनके लोक मरीचिगर्भ के नाम से विख्यात हुए, जो समस्त स्वर्ग लोक को आवृत करके स्थित हैं, ऐसा उनके विषय में सुना गया है ॥ ७७-८१ ॥

एते ह्यङ्गिरसः पुत्राः साध्यैः सह विवर्द्धिताः । उपहूताः मृतास्ते तु पितरो भास्वरा दिवि ॥
तान्क्षत्रियगणां दृष्ट्वा भावयन्ति फलार्थिनः ॥ ८२ ॥
एतेषां मानसी कन्या यशोदा नाम विश्रुता । पत्नी सा विश्वमहतः स्नुषा वै विश्वशर्म्मिणः ॥ ८३ ॥
राजर्षेर्जननी देवी खट्वाङ्गस्य महात्मनः । यस्य यज्ञे पुरा गीता गाथा दिव्यैर्महर्षिभिः ॥ ८४ ॥
अग्नेर्जन्म तथा दृष्ट्वा शाण्डिल्यस्य महात्मनः । यजमानं दिलीपं ये पश्यन्ति सुसमाहिताः ॥
सत्यव्रतं महात्मानं ते स्वर्गे जयिनोऽमराः ॥ ८५ ॥
आज्यपा नाम पितरः कर्दमस्य प्रजापतेः । समुत्पन्नस्य पुलहादुत्पन्नास्तस्य वै पुनः ॥ ८६ ॥
लोकेष्वेतेषु वर्त्तन्ते कामगेषु विहङ्गमाः । एतान्वैश्यगणाः श्राद्धे भावयन्ति फलार्थिनः ॥ ८७ ॥
एतेषां मानसी कन्या विरजा नाम विश्रुता । ययातेर्जननी साध्वी पत्नी सा नहुषस्य तु ॥ ८८ ॥
सुकाला नाम पितरो वसिष्ठस्य प्रजापतेः । हिरण्यगर्भस्य सुताः शूद्रास्तान्भावयन्त्युत ॥ ८९ ॥
मानसा नाम ते लोका वहन्ते यत्र ते दिवि । एतेषां मानसी कन्या नर्मदा सरितां वरा ॥ ९० ॥
सा भावयति भूतानि दक्षिणापथगामिनी । जननी त्रसदस्योर्हि पुरुकुत्सपरिग्रहः ॥ ९१ ॥
एतेषामभ्युपगमान्मातुर्मन्वन्तरेश्वरः । मन्वन्तरादौ श्राद्धानि प्रवर्त्तयति सर्वशः ॥ ९२ ॥
पितॄणामानुपूर्व्येण सर्वेषां द्विजसत्तमाः । तस्मादिह स्वधर्मेण श्राद्धं देयं तु श्रद्धया ॥ ९३ ॥
सर्वेषां राजतैः पात्रैरपि वा रजतान्वितैः । दत्तं स्वधा पुरोधाय तथा प्रीणाति वै पितॄन् ॥ ९४ ॥

ये अंगिरा के पुत्र कहे जानेवाले पितरगण साध्यों के साथ वृद्धि को प्राप्त हुए। स्वर्ग लोक में परम तेजोमय उपहूत नामक पितरगण विराजमान हैं उन क्षत्रियों के पितरगणों की शुभ फल की प्राप्ति के इच्छुक प्राणी भावना, ध्यान या पूजा करते हैं। इनकी मानसी कन्या यशोदा नाम से विख्यात है, जो विश्वमहत की पत्नी, विश्वशर्मा की पुत्रवधू और उस महात्मा राजर्षि खट्वाङ्ग की माता थीं। प्राचीनकाल में जिसके यज्ञ में दिव्य गुण सम्पन्न महर्षियों ने गाथाओं का गान किया था ॥ ८२-८५ ॥

स्वर्ग के जीतनेवाले समाहित चित्तवृत्ति से सम्पन्न वे पितरगण यज्ञ में अग्नि का जन्म देखने के उपरान्त महात्मा शाण्डिल्य के सत्यव्रतपरायण एवं महात्मा यजमान दिलीप का दर्शन करते हैं जिनके नाम आज्यपा हैं, ये प्रजापति कर्दम के पितरगण हैं जिनकी उत्पत्ति पुलह से हुई थी, उन्हीं के यहाँ इनकी पुनः उत्पत्ति हुई, इन लोकों में ये आकाशचारी पितरगण अपने इच्छानुरूप भ्रमण करते हैं। शुभ फल प्राप्ति के इच्छुक वैश्यगण श्राद्धों में इनकी भावना करते हैं। इनकी मानसी कन्या विरजा नाम से विख्यात है, जो ययाति की माता और नहुष की पतिव्रता पत्नी थी। प्रजापति वशिष्ठ के सुकाल नामक पितरगण हैं, जो हिरण्यगर्भ के पुत्र हैं। इन पितरों की भावना शूद्र लोग करते हैं। स्वर्ग में मानस नामक लोक हैं, जिनमें ये निवास करते हैं। इनकी मानसी कन्या नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा है, जो दक्षिणवाहिनी होकर सभी जीवों को पवित्र करती है। वह नर्मदा त्रसदस्यु की माता और पुरुकुत्स की पत्नी थी। इन्हीं उपर्युक्त पितरों के कारण मनु मन्वन्तर के अधीश्वर हैं और मन्वन्तर के आदिमकाल में वे सब प्रकार के श्राद्धों का प्रवर्तन करते हैं ॥ ८६-९३ ॥

हे द्विजगणों ! समस्त पितरों का वर्णन क्रमशः आप लोगों को सुना चुका इन सब कारणों से मनुष्य को

सोमस्याप्यायनं कृत्वा ह्यग्नेर्वैवस्वतस्य च । उदगायनं चाग्नौ च अश्वमेधं तदाप्नुयात् ॥ ९५ ॥
पितॄन् प्रीणाति वै भक्त्या पितरः प्रीणयन्ति तम् । पितरः पुष्टिकामस्य प्रजाकामस्य वापुनः ॥
पुष्टिं प्रजां च स्वर्गं च प्रयच्छन्ति न संशयः ॥ ९६ ॥
देवकार्यादपि सदा पितृकार्यं विशिष्यते । देवताभ्यः पितृणां हि पूर्वमाप्यायनं स्मृतम् ॥ ९७ ॥
न हि योगगतिः सूक्ष्मा पितृणामपि तृप्तयः । तपसा हि प्रसिद्धेन दृश्यन्ते मांसचक्षुषा ॥ ९८ ॥
इत्येते पितरश्चैव लोका दुहितरश्च वै । दौहित्रा यजमानाश्च प्रोक्ता ये भावयन्ति तान् ॥ ९९ ॥
चत्वारो मूर्त्तिमन्तश्च त्रयस्तेषाममूर्तयः । तेभ्यः श्राद्धानि सत्कृत्य देवाः कुर्वन्ति यत्नतः ॥ १०० ॥
भक्ताः प्राञ्जलयः सर्वे सेन्द्रास्तद्गतमानसाः । विश्वे च सिकताश्चैव पृश्निजाः शृङ्गिणस्तथा ॥ १०१ ॥
कृष्णाः श्वेतास्त्वजाश्चैव विधिवत्पूजयन्त्युत । प्रजास्ता वातरशना दिवाकीर्त्यास्तिथैव च ॥ १०२ ॥
लेखाश्च मरुतश्चैव ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः । अत्रिभृग्वङ्गिराद्याश्च ऋषयः सर्व एव च ॥ १०३ ॥
यक्षा नागाः सुपर्णाश्च किंनरा राक्षसैः सह । पितृंस्त्वपूजयन्सर्वे नित्यमेव फलार्थिनः ॥ १०४ ॥
एवमेते महात्मानः श्राद्धे सत्कृत्य पूजिताः । सर्वान्कामान्प्रयच्छन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १०५ ॥
हित्वा त्रैलोक्यसंसारं जरामृत्युभयं तथा । मोक्षं योगमयैश्वर्यं प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ १०६ ॥

इस लोक में आकर अपने धर्म के अनुसार श्रद्धापूर्वक श्राद्धादि कर्म करने चाहिए, इन सब में चाँदी के बने हुए अथवा मिश्रित चाँदी के बने हुए पात्रों में रखकर पितरों के उद्देश्य से पुरोहित को दी गयी स्वधा पितरों को प्रसन्न करती है। सोम, अग्नि एवं सूर्यपुत्र मनु को स्वधादि से खूब सन्तुष्ट करके तथा सूर्य के उत्तरायण के अवसर पर अग्नि में हवनादि करके अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है। जो भक्तिपूर्वक पितरों को श्राद्धादि से प्रसन्न करता है, उसे पितरगण भी सन्तुष्ट एवं प्रसन्न करते हैं। पुष्टि (वृद्धि) अथवा प्रजा (पुत्र-पौत्रादि) की कामना करनेवालों के पितरगण पुष्टि, प्रजा एवं स्वर्ग को प्रदान करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। पितरों के उद्देश्य से किये जानेवाले श्राद्धादि कार्य देवताओं के उद्देश्य से किये जानेवाले यज्ञादि कार्यों से भी अधिक फलदायी हैं। देवताओं से पहले पितरों को सन्तुष्ट करना चाहिए ऐसा प्रसिद्ध है। पितरों की यह सूक्ष्म योग गति और तृप्ति मांस के नेत्र से नहीं देखी जा सकती, तपस्या द्वारा विशेष सिद्धि प्राप्त करने पर ही उनकी इस गति एवं तृप्ति का दर्शन हो सकता है। इन उपर्युक्त पितरगणों, उनके लोक, उनकी कथाएँ, उनके दौहित्र, उनके यजमान एवं उनकी भावना करनेवाले सबका वर्णन किया जा चुका। इनमें (जैसा कि ऊपर भी कई बार कह चुके हैं) चार मूर्तिधारी हैं, और तीन अमूर्त हैं। देवगण प्रत्येक यत्न से सत्कारपूर्वक उन सबका श्राद्ध करते हैं ॥ ९४-१०० ॥

इन्द्र समेत वे समस्त देवगण इन पितरों में मन लगाकर हाथ जोड़कर उनके श्राद्धादि कार्य सम्पन्न करते हैं। इनके साथ समस्त विश्वेदेवगण, सिकता, पृश्निज, शृङ्गिन, कृष्ण, श्वेत, अज आदि भी इन पितरों की विधिवत् पूजा करते हैं। वातरशन, दिवाकीर्त्य नामक प्रजाएँ, लेख, मरुत्, ब्रह्मा आदि देवगण, अत्रि, भृगु, अंगिरा आदि समस्त ऋषिगण, यक्ष, नाग, सुपर्ण, किन्नर एवं राक्षस, ये सभी शुभ फल प्राप्ति के इच्छुक होकर नित्य ही इन पितरों की पूजा करते हैं ॥ १०१-१०४ ॥

श्राद्धादि में सत्कारपूर्वक पूजित ये महात्मा पितरगण सैकड़ों सहस्रों की संख्या में मनुष्य के समस्त मनोरथों को पूर्ण करते हैं। तीनों लोक, संसार, वृद्धावस्था एवं मृत्यु के भय को छोड़कर पितामहगण मोक्ष, योग-

मोक्षोपायमथैश्वर्यं सूक्ष्मदेहाश्च देवताः । कृत्स्नं वैराग्यमानन्त्यं प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ १०७ ॥
ऐश्वर्यं विहितं योगमैश्वर्यं वित्तमुत्तमम् । यौगैश्वर्यादृते मोक्षः कथञ्चिन्नोपपद्यते ॥ १०८ ॥
अपक्षस्यैव गमनं गगने पक्षिणो यथा । वरिष्ठः सर्वधर्म्माणां मोक्षो धर्म्मः सनातनः ॥ १०९ ॥
विमानानां सहस्राणि युक्तान्यप्सरसां गणैः । सर्वकामप्रसिद्धानि प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ ११० ॥
प्रज्ञा पुष्टिः स्मृतिर्मेधा राज्यमारोग्यमेव च । पितॄणां हि प्रसादेन प्राप्यते सुमहात्मना ॥ १११ ॥
मुक्तावैदूर्यवासांसि वाजिनागायुतानि च । कोटिशश्चापि रत्नानि प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ ११२ ॥
हंसबर्हिणयुक्तानि मुक्तावैदूर्यवन्ति च । किङ्किणीजालनद्धानि सदा पुष्पफलानि च ॥
प्रीत्या नित्यं प्रयच्छन्ति मनुष्याणां पितामहाः ॥ ११३ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

* * *

प्राप्ति एवं प्रचुर ऐश्वर्य आदि प्रदान करते हैं। सूक्ष्म शरीरधारी ये पितामह नामक देवगण (पितरगण) मोक्ष को प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य, समस्त जागतिक वस्तुओं से उत्पन्न होनेवाले अनन्त वैराग्य को प्रदान करते हैं। अनुष्ठित (किया हुआ) योग ही ऐश्वर्य है, सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति भी ऐश्वर्य है। योग एवं ऐश्वर्य के बिना मोक्ष की प्राप्ति किसी प्रकार भी सम्भव नहीं ॥ १०५-१०८ ॥

जिस प्रकार बिना पंखों के आकाश में पक्षी नहीं उड़ सकते, उसी प्रकार योग एवं ऐश्वर्य के बिना मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता। सभी धर्मों में मोक्ष का साधनभूत धर्म ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वदा विद्यमान रहनेवाला है। ये पितामहगण अप्सराओं के समूहों से घिरे हुए ऐसे सहस्रों विमानों को प्रदान करते हैं, जो समस्त मनोरथों को पूर्ण करते हैं। महात्मागण, बुद्धि, पुष्टि, स्मरणशक्ति, मेधा (धारणाशक्ति), राज्य, आरोग्य इन सबको पितरों के आशीर्वाद से प्राप्त करते हैं। पितामहगण मुक्ता, वैदूर्य, विविध वस्त्र, सहस्रों अश्व, नाग, करोड़ों रत्न आदि भी प्रदान करते हैं। ये पितामह (पितर) गण हंस और वर्हियों से युक्त, मुक्ता और वैदूर्य से समन्वित किंकिणी के जालों से गुथे हुए सर्वदा पुष्प और फलों से संयुक्त (रथ को) प्रसन्न होकर नित्य प्रदान करते हैं ॥ १०९-११३ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में श्राद्धकल्प नामक ग्यारहवें अध्याय (बहत्तरवें एवं तिहत्तरवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ११ ॥**

* * *

अथ द्वादशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

बृहस्पतिरुवाच

सौवर्णं राजतं ताम्रं पितॄणां पात्रमुच्यते । रजतं रजताक्तं वा पितॄणां पात्रमुच्यते ॥ १ ॥
रजतस्य कथा वाऽपि दर्शनं दानमेव च । अनन्तमक्षयं स्वर्ग्यं पितॄणां दानमुच्यते ॥
पितॄनेतेन दानेन सत्पुत्रास्तारयन्त्युत ॥ २ ॥
राजते हि स्वधा दुग्धा पात्रेऽस्मिन्पितृभिः पुरा । स्वधादायार्थिभिस्तात तस्मिन्दत्ते तदक्षयम् ॥ ३ ॥
कृष्णाजिनस्य सांनिध्यं दर्शनं दानमेव वा । रक्षोघ्नं ब्रह्मवर्चस्यं पितृंस्तत्तद्धितारयेत् ॥ ४ ॥
काञ्चनं राजतं ताम्रं दौहित्रं कुतपस्तिलाः । वस्त्रं च पावनीयानि त्रिदण्डी योगमेव च ॥ ५ ॥
श्राद्धकर्मण्ययं श्रेष्ठो विधिर्ब्राह्यः सनातनः । आयुः कीर्तिः प्रजाश्चैव प्रज्ञासन्ततिवर्द्धनः ॥ ६ ॥

बारहवाँ अध्याय

(चौहत्तरवाँ अध्याय)

श्राद्धकल्प

बृहस्पति ने कहा—सुवर्ण, चाँदी और ताँबे के निर्मित पात्र पितरों के लिए कहे गए हैं, चाँदी अथवा चाँदी से मढ़ा हुआ पात्र भी पितरों के लिए कहा गया है । चाँदी का दान, अभाव में उसका दर्शन अथवा उसका नाम ले लेना भी पितरों को अनन्त अक्षय एवं स्वर्ग देनेवाला दान कहा जाता है । योग्य पुत्रगण इस चाँदी के दान से पितरों को तारते हैं ॥ १-२ ॥

हे तात ! पूर्वकाल में स्वधा देनेवाले पितरों ने चाँदी के पात्र में स्वधा का दोहन किया था । यही कारण है कि चाँदी का दान अथवा चाँदी के बने हुए पात्र में दान करने पर अक्षय फल की प्राप्ति होती है । काले मृगचर्म का सान्निध्य दर्शन अथवा दान भी राक्षसों का विनाश करने वाला एवं ब्रह्मतेज देनेवाला है । अतः पितरों के कार्य में इसका वितरण करना चाहिए ॥ ३-४ ॥

सुवर्णनिर्मित, चाँदीनिर्मित, ताम्रनिर्मित वस्तु, दौहित्र, कुतप, तिल, वस्त्र, अन्यान्य पवित्र वस्तुएँ, त्रिदण्डी योग अर्थात् वचन, मनं एवं कर्म का योग—ये सभी वस्तुएँ श्रेष्ठ कही गयी हैं । श्राद्ध कर्म में यह सर्वश्रेष्ठ विधि सनातन से प्रचलित है—यह बाह्य नियम है । इन उपर्युक्त वस्तुओं के द्वारा विधिपूर्वक किया गया श्राद्धविधान

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां विदिक् स्थानं विशेषतः । सर्वतोरत्निमात्रं तु चतुरस्त्रं सुसंहितम् ॥ ७ ॥
वक्ष्यामि विधिवत्स्थानं पितॄणामनुशासनात् । धान्यमारोग्यमायुष्यं बलवर्णविवर्द्धनम् ॥ ८ ॥
तत्र गर्त्तास्त्रयः कार्यास्त्रयो दण्डाश्च खादिराः। रत्निमात्रास्तु ते कार्या रजतेन विभूषिताः ॥
ते वितस्त्यायताः कार्याः सर्वतश्चतुरङ्गुलाः ॥ ९ ॥
प्रागदक्षिणमुखान्भूमौ स्थितानसुषिरांस्तथा । अद्भिः पवित्रपूताभिः प्लावयेत्सततं शुचिः ॥ १० ॥
पयसा ह्याजगव्येन शोधनं वाग्भिरेव तु । तर्पणात्सततं ह्येवं तृप्तिर्भवति शाश्वती ॥ ११ ॥
इह चामुत्र च श्रीमान्सर्वकर्मसमन्वितः । एवं त्रिषवणस्नातो योऽर्चयेत पितॄन्सदा ॥
मन्त्रेण विधिवत्सम्यगश्वमेधफलं लभेत् ॥ १२ ॥
तत्स्थापयेदमावास्यां गर्त्ते भूचतुरङ्गुले । त्रिःसप्तसंज्ञास्ते यज्ञास्त्रैलोक्यं धार्यते तु वै ॥ १३ ॥
तस्य पुष्टिरथैश्वर्यमायुः संततिरेव च । विचित्रा भजते लक्ष्मीर्मोक्षं च लभते क्रमात् ॥ १४ ॥
पाप्मापहं पावनीयमश्वमेधफलं तथा । अश्वमेधफलं ह्येतद्द्विजैः सत्कृत्य पूजितम् ॥
मन्त्रं वक्ष्याम्यहं तस्मादमृतं ब्रह्मनिर्मितम् ॥ १५ ॥

श्राद्धकर्ता की आयु, कीर्ति, प्रजा, बुद्धि, संतति आदि बढ़ाने वाला है । दक्षिण और पूर्व की दिशा में विशेषतया विदिक् (कोण) में श्राद्धकर्म करने का विधान है । सर्वत्र अरत्नि मात्र परिमाण का, चौकोर सुन्दर स्थान होना चाहिए । पितरों के कार्य में जो आदेश शास्त्रों के हैं, उनके अनुसार स्थान के विषय में विधिवत् कह रहा हूँ, जो धन देनेवाला, आरोग्य साधक, दीर्घायुप्रदाता तथा बल और वर्ण की वृद्धि करनेवाला है ॥ ५-८ ॥

विमर्श—कुतप का अर्थ दिन के दूसरे प्रहर की पिछली घटी से लेकर तीसरे प्रहर की पहली घटी तक का समय, नेपाल देश का कम्बल एवं कुश का तृण होता है जो श्राद्ध कर्म में उपयोग की जाने वाली वस्तुओं का नाम है । यहाँ पर समय से, नेपाली कम्बल से तथा कुश से तात्पर्य है । उँगलियों को फैला कर कोहुनी तक का परिमाण अरत्नि कहा जाता है तथा अरत्निमात्र परिमाण मुट्ठी बाँध कर कोहुनी तक के परिमाण को कहते हैं ।

पितरों के श्राद्धस्थल में तीन गड्ढों का निर्माण करना चाहिए, जो परिमाण में रत्निमात्र लम्बे और चाँदी से विभूषित हों । इसके अतिरिक्त एक बित्ते परिमाण के खदिर के दण्ड भी होने चाहिए जिनके चारों ओर चार अंगुल मान के वेष्ठन बने हों । पूर्व और दक्षिण के मुख भाग की ओर से पृथ्वी पर रखे गये, छिद्ररहित, उन दण्डों को परमपवित्र जल से नहलाये । बकरी के अथवा गाय के दूध अथवा जल से उसको पुनः शुद्ध करे, इस प्रकार विधिपूर्वक तर्पण करने से सार्वकालिक तृप्ति होती है ॥ ९-११ ॥

इस प्रकार विधिपूर्वक श्राद्धकर्म का अनुष्ठान करनेवाला प्राणी ऐहिक-पारलौकिक विभूतियों से सुसमृद्ध तथा सर्व-कर्म समन्वित होता है । इसी प्रकार त्रिषवण स्नान करके जो विधिपूर्वक मंत्रादि से भलीभाँति सर्वदा पितरों की अर्चना करता है, उसे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

अमावस्या तिथि को पृथ्वीतल पर चार अंगुल के गड्ढे में श्राद्धोपयोगी वस्तुओं की स्थापना करनी चाहिए । ये त्रिःसप्तयज्ञ के नाम से विख्यात हैं, इन्हीं पर त्रैलोक्य की स्थिति है । जो व्यक्ति इसका अनुष्ठान करता है, उसको पुष्टि, ऐश्वर्य, दीर्घायु, संतति, प्रचुर लक्ष्मी तथा मोक्ष की क्रमशः प्राप्ति होती है । ब्राह्मणों से सत्कारपूर्वक

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्युत ॥ १६ ॥
आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिरावर्त्तं जपेत्सदा । पिण्डनिर्वपणे चैव जपेदेतत्समाहितः ॥
पितरः क्षिप्रमायान्ति राक्षसाः प्रद्रवन्ति च ॥ १७ ॥
पितृंस्तत् त्रिषु लोकेषु मन्त्रोऽयं तारयत्युत । पठ्यमानः सदा श्राद्धे नियतं ब्रह्मवादिभिः ॥ १८ ॥
राज्यकामो जपेदेनं सदा मन्त्रमतन्द्रितः । वीर्यशौचार्थसत्त्वं च श्रीरायुर्बलवर्धनम् ॥ १९ ॥
प्रीयन्ते पितरो येन जप्येन नियमेन च । सप्तार्चिषं प्रवक्ष्यामि सर्वकामप्रदं शुभम् ॥ २० ॥
अमूर्तानां समूर्तानां पितृणां दीप्ततेजसाम् । नमस्यामि सदा तेभ्यो ध्यानिभ्यो योगचक्षुषः ॥ २१ ॥
इन्द्रादीनां जनयितारो भृगुमारीचयोस्तथा । सप्तर्षीणां पितृणां च तान्नमस्यामि कामदान् ॥ २२ ॥
मन्वादीनां सुरेशानां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा । तान्नमस्कृत्य सर्वान्वै पितॄन्कुशलदायकान् ॥ २३ ॥
नक्षत्राणां चरादीनां पितॄनथ पितामहान् । द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥ २४ ॥
देवर्षीणां जनयितॄंश्च सर्वलोकनमस्कृतान् । अभयस्य सदा दातॄन्नमस्येऽहं कृताञ्जलिः ॥ २५ ॥
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च । योगयोगेश्वरेभ्यश्च नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥ २६ ॥
पितृगणेभ्यः सप्तभ्यो नमो लोकेषु सप्तसु । स्वयंभुवे नमश्चैव ब्रह्मणे योगचक्षुषे ॥ २७ ॥

पूजित यह एक मंत्र समस्त पापों को दूर करनेवाला, परमपवित्र तथा अश्वमेध यज्ञ की फलप्राप्ति करानेवाला है, इसको बतला रहा हूँ, इस मंत्र की रचना स्वयं ब्रह्मा ने की थी । यह अमृत मंत्र है ॥ १३-१५ ॥

'देवाताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्युत ॥' अर्थात् समस्त देवताओं, पितरों, महायोगियों, स्वधा एवं स्वाहा—सबको हम नमस्कार करते हैं । ये सब नित्य (शाश्वत) फल प्रदान करनेवाले हैं । सर्वदा श्राद्ध के प्रारम्भ, अवसान तथा पिण्डदान के समय इस मंत्र का समाहित (सावधान) चित्त होकर तीन बार पाठ करना चाहिए । इससे पितरगण शीघ्र ही वहाँ आ जाते हैं और राक्षसगण वहाँ से पलायन कर जाते हैं ॥ १६-१७ ॥

ब्राह्मणों द्वारा श्राद्ध के अवसर पर पढ़े जाने पर यह मन्त्र तीनों लोकों में पितरों का उद्धार करता है । राज्यप्राप्ति के अभिलाषी को इस मन्त्र का आलस्यरहित होकर सर्वदा पाठ करना चाहिए । यह वीर्य, पवित्रता, धन, सात्त्विक बल, लक्ष्मी, दीर्घायु एवं बल आदि को बढ़ानेवाला मन्त्र है । जिसके नियमपूर्वक जप करने से पितरगण प्रसन्न हो जाते हैं । ऐसे सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले, शुभ फलदायी सप्तार्चिष नामक मन्त्र (स्तोत्र) को बतला रहा हूँ ॥ १८-२० ॥

अमूर्त, समूर्त, परमतेजस्वी, योगनेत्र वाले ध्यानपरायण पितरों को मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ, इन्द्र आदि देवगण, भृगु-कश्यप आदि ऋषियों के जनक, पितरों एवं सप्तर्षियों को मैं नमस्कार करता हूँ, जो सभी मनोरथों के पूर्ण करनेवाले हैं । मनु आदि सुरेशों एवं सूर्य, चन्द्रमा को मंगल प्रदान करनेवाले समस्त पितरों को नमस्कार करके नक्षत्रों, समस्त चराचर पदार्थों एवं आकाश तथा पृथ्वी के जनक पितामह पितरों को कृताञ्जलि होकर नमस्कार करता हूँ । सम्पूर्ण लोकों के नमस्करणीय देवताओं तथा ऋषियों के जनयिता, सर्वदा अभय प्रदान करनेवाले पितरों को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ । प्रजापति, कश्यप, चन्द्रमा, वरुण तथा योगयोगेश्वर पितरों

एतदुक्तं ससप्तर्षिब्रह्मर्षिगणपूजितम् । पवित्रं परमं ह्येतच्छ्रीमद्रक्षोविनाशनम् ॥ २८ ॥
अनेन विधिना युक्तस्त्रीन्वरान् लभते नरः । अन्नमायुः सुतांश्चैव ददते पितरो भुवि ॥ २९ ॥
भक्त्या परमया युक्तः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः । सप्तार्चिषं जपेद्यस्तु नित्यमेव समाहितः ॥
सप्तद्वीपसमुद्रायां पृथिव्यामेकराड्भवेत् ॥ ३० ॥
यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्यं वा भोज्यमेव च । अनिवेद्य न भोक्तव्यं तस्मिन्नायतने सदा ॥ ३१ ॥
क्रमशः कीर्त्तयिष्यामि बलिपात्राण्यतः परम् । येषु यच्च फलं प्रोक्तं तन्मे निगदतः शृणु ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

* * *

को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ। सातों लोकों में निवास करनेवाले पितरों के सातों गणों को, योगनेत्र स्वयंभू भगवान् ब्रह्मा को हमारा नमस्कार है।'

सातों ऋषियों एवं ब्रह्मर्षियों द्वारा पूजित परम पवित्र श्रीसम्पन्न, राक्षसों के विनाशक इस स्तोत्र को मैंने आप लोगों से कह दिया ॥ २१-२८ ॥

उपर्युक्त विधि से श्राद्ध करने वाले पृथ्वीतल पर निवास करने वाले व्यक्ति को पितरगण अन्न, दीर्घायु एवं पुत्र—इन तीन वरदानों को प्रदान करते हैं। जो व्यक्ति परमभक्ति एवं श्राद्ध समेत जितेन्द्रिय एवं समाहित चित्त होकर इस सप्तार्चिष नामक स्तोत्र का नित्य पाठ करता है, वह सातों द्वीपों एवं समुद्रों समेत पृथ्वीमण्डल का एकच्छत्र राजा होता है। अपने गृह में मनुष्य भक्ष्य भोज्य जो कुछ भी पदार्थ पकाता है, उसे पितरों को बिना निवेदित किये कभी नहीं खाना चाहिए। अब इसके उपरान्त मैं बलि कर्म के उपयोगी पात्रों के विषय में वर्णन करूंगा। जिन-जिन पात्रों में बलिकर्म करने से मनुष्य को जैसे फलों की प्राप्ति होती है, उन्हें कहता हूँ, आप सभी श्रवण कीजिए ॥ २९-३२ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में श्राद्धकल्प नामक बारहवें अध्याय (चौहत्तरवें अध्याय) की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १२ ॥

* * *

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

बृहस्पतिरुवाच

पालाशं ब्रह्मवर्चस्यमश्वत्थे राज्यभावना । सर्वभूताधिपत्यं च प्लक्षे नित्यमुदाहृतम् ॥ १ ॥
पुष्टिकामं च न्यग्रोधं बुद्धिं प्रज्ञां धृतिं स्मृतिम् । रक्षोघ्नं च यशस्यं च काश्मर्यं पात्रमुच्यते ॥ २ ॥
सौभाग्यमुत्तमं लोके मधुके समुदाहृतम् । फल्गुपात्रे च कुर्वाणः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ३ ॥
परा द्युतिरथो कर्त्तुः प्राकाश्यं च विशेषतः । बिल्वे लक्ष्मीस्तथा मेधा नित्यमायुष्यमेव च ॥ ४ ॥
क्षेत्रारामतडागेषु सर्वसस्येषु चैव हि । वर्षेदजस्रं पर्जन्यो वेणुपात्रेषु कुर्व्वतः ॥ ५ ॥
एतेष्वेव सुपात्रेषु ये चैवाग्रयणं ददुः । सकृदप्यत्र यज्ञानां सर्वेषां फलमुच्यते ॥ ६ ॥
पितृभ्यो यस्तु माल्यानि सुगन्धीनि च सर्वशः। सदा दद्याच्छ्रिया युक्तः स विभाति दिवाकरः ॥ ७ ॥

तेरहवाँ अध्याय
(पचहत्तरवाँ अध्याय)

श्राद्धकल्प

बृहस्पति ने कहा—पलाश के पत्तों से बने हुए पात्र में बलिकर्म करने से ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति होती है। अश्वत्थ (पीपल) के पत्तों से बने हुए पात्र से श्राद्ध कर्म करने से राज्य की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार प्लक्ष (पाकड़) के पत्तों से बने पात्र से श्राद्ध करने पर सभी जीवों का नित्य आधिपत्य प्राप्त होता है । पुष्टि, बुद्धि, ज्ञान, धैर्य एवं स्मरणशक्ति की कामना से बरगद के पत्तों के पात्र में बलिकर्म करना चाहिए । काश्मर्य (खम्भारी) के पत्तों से बने हुए पात्र से श्राद्ध कर्म राक्षसों का विनाश एवं यशोवर्द्धन कराता है । मधूक (महुए) के पत्तों से निर्मित पात्र में कृत बलिकर्म इस लोक में उत्तम सौभाग्य प्रदान करता है । 'फल्गु' (कठूमर) के पत्तों से बने हुए पात्र में श्राद्ध करने से सभी मनोरथ सफल होते हैं, एवं परमकान्ति तथा प्रकाश की प्राप्ति होती है । बिल्व के पात्र में श्राद्धकर्म करने से नित्य लक्ष्मी, धारणाशक्ति तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है ॥ १-४ ॥

वेणु (वेणु) के पात्र में श्राद्ध करनेवाले के खेत बगीचे और जलाशयों में मेघ नित्य वृष्टि करते हैं । ऊपर वर्णित इन पात्रों में जो लोग श्राद्ध के अवसर पर पितरों को एक बार भी बलि देते हैं वे सम्पूर्ण यज्ञों का फल प्राप्त करते हैं । जो व्यक्ति पितरों को भक्तिपूर्वक सुन्दर पुष्प, माला, सुगन्धित द्रव्य आदि नित्य देता है वह श्रीसम्पन्न होकर सूर्य के समान तेजस्वी होकर शोभा पाता है ॥ ५-७ ॥

गुग्गुलादींस्तथा धूपान् पितृभ्यो यः प्रयच्छति । संयुक्तान्मधुसर्पिर्भ्यां सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ८ ॥
धूपं गन्धगुणोपेतं कान्तं पितृपरायणम् । लभते स्त्रीष्वपत्यानि इह चामुत्र चोभयोः ॥
दद्यादेव पितृभ्यस्तु नित्यमेव ह्यतन्द्रितः ॥ ९ ॥
दीपं पितृभ्यः प्रयतः सदा यस्तु प्रयच्छति । स लोकेऽप्रतिमं चक्षुः सदा च लभते शुभम् ॥ १० ॥
तेजसा यशसा चैव कान्त्या चैव बलेन च । भुवि प्रकाशो भवति भ्राजते च त्रिविष्टपे ॥
अप्सरोभिः परिवृतो विमानाग्रे स मोदते ॥ ११ ॥
गन्धान् पुष्पाणि धूपांश्च दद्यादाज्याहुतीश्च वै । फलमूलनमस्कारैः पितॄणां प्रयतः शुचिः ॥
पूर्वं कृत्वा द्विजान्पश्चात्पूजयेदन्नसम्पदा ॥ १२ ॥
श्राद्धकाले तु सततं वायुभूताः पितामहाः । आविशन्ति द्विजान्दृष्ट्वा तस्मादेतद्ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥
वस्त्रैरन्नैः प्रदानैस्तैर्भक्ष्यपेयैस्तथैव च । गोभिरश्वैस्तथा ग्रामैः पूजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ १४ ॥
भवन्ति पितरः प्रीताः पूजितेषु द्विजातिषु । तस्मादन्नेन विधिवत् पूजयेद्द्विजसत्तमान् ॥ १५ ॥
सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां कुर्यादुल्लेखनं द्विजः। प्रोक्षणं च तथा कुर्याच्छ्राद्धकर्मण्यतन्द्रितः॥ १६ ॥
दर्भान्पिण्डांस्तथा भक्ष्यान्पुष्पाणि विविधानि च । गन्धदानमलंकारमेकैकं निर्वपेद्बुधः ॥ १७ ॥
पोषयित्वा जनं सम्यग्वैश्वः स्यादुत्तरो द्विजः । अभ्यङ्गदर्भपिञ्जालैस्त्रिभिः कुर्याद्यथाविधि ॥ १८ ॥

गुग्गुल आदि धूप द्रव्यों को मधु और घृत के समेत जो पितरों के उद्देश्य से समर्पित करता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है । पितरों के उद्देश्य से जो मनोहर सुगंधियुक्त धूप दान करता है वह अपनी स्त्री से इस लोक तथा परलोक में उत्तम सन्तान प्राप्त करता है । अतः बिना आलस्य किये नित्य पितरों को धूपदान करना चाहिए । जो व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक सर्वदा पितरों के उद्देश्य से दीपदान करता है, वह लोक में परम सुन्दर अनुपम नेत्र प्राप्त करता है ॥ ८-१० ॥

वह अपने तेज, यश, कान्ति तथा बल से पृथ्वीतल में विख्यात होता है और अन्तकाल में स्वर्ग में शोभायमान् होता है । वहाँ पर अप्सराओं से घिरा हुआ विमान पर अवस्थित हो आनन्द का अनुभव करता है । जितेन्द्रिय एवं पवित्र होकर पितरों को गन्ध, पुष्प, धूप, घृत, आहुति, फल, मूल एवं नमस्कार अर्पित करना चाहिए । सर्वप्रथम पितरों को तृप्त करके तत्पश्चात् अपनी शक्ति के अनुसार अन्न व सम्पत्ति से ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए । सर्वदा श्राद्ध के अवसर पर पितामहगण (पितृगण) वायुरूप धारण कर ब्राह्मणों को देखकर, उन्हीं में आविष्ट हो जाते हैं—इसीलिए मैं तत्पश्चात् उनके भोजन कराने की बात कह रहा हूँ । वस्त्र, अन्न, विशेष दान, भक्ष्य, पेय, गौ, अश्व तथा ग्रामादि का दान देकर उत्तम ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए । द्विजों के सत्कृत होने पर पितरगण प्रसन्न होते हैं । अतः अन्न द्वारा ब्राह्मणों की विधिवत् पूजा करनी चाहिए ॥ ११-१५ ॥

विद्वान् ब्राह्मण सर्वप्रथम श्राद्धकर्म में बिना आलस्य के बायें और दाहिने हाथों से उल्लेख करे और उसी प्रकार प्रोक्षण अर्थात् सिंचन करे । तदुपरान्त कुश, पिण्ड, विविध प्रकार के खाने योग्य पदार्थ, पुष्प, गन्धदान, अलंकार आदि वस्तुओं में से एक-एक का निर्वपन करे । श्राद्धकर्म में ब्राह्मण को चाहिए कि उपस्थित ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करके वैश्वदेव कर्म के उपरान्त अभ्यङ्ग (तैलमर्दन), कुश एवं स्वर्ण (पिञ्जाल)—इन तीनों से विधिवत्

अपसव्यं पितृभ्यश्च दद्यादन्नमनुत्तमम् । तानुच्चार्याथ सर्वेषां वस्त्रार्थं सूत्रमेव च ॥ १९ ॥
खण्डनं पेषणं चैव तथैवोल्लेखनं तथा । सकृदेव हि देवानां पितॄणां त्रिभिरुच्यते ॥ २० ॥
एकं पवित्रं हस्तेन पितॄन्सर्वान्सकृत्सकृत् । चैलमन्त्रेण पिण्डेभ्यो दत्त्वा दर्शनजं हितम् ॥ २१ ॥
सदा सर्पिस्तिलैर्युक्तांस्त्रीन् पिण्डान् निर्वपेद् भुवि । जानुं कृत्वा तथा सव्यं भूमौ पितृपरायणः ॥ २२ ॥
पितॄन् पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान् । आहूय च पितॄन् प्राञ्चान् पितृतीर्थेन यत्नतः ॥
पिण्डान्परिक्षिपेत्सम्यगपसव्यमतन्द्रितः ॥ २३ ॥
अन्नेनाद्भिश्च पुष्पैश्च भक्ष्यैश्चैव पृथग्विधैः । पृथग् मातामहानां तु केचिदिच्छन्ति मानवाः ॥ २४ ॥
त्रीन् पिण्डानानुपूर्व्येण साङ्गुष्ठान्पुष्टिवर्धनान् । जान्वन्तराभ्यां यत्नेन पिण्डान् दद्याद्यथाक्रमम् ॥ २५ ॥
सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां धर्मे मन्त्रे च पर्ययः । नमो वः पितरः सूक्ष्मैः सदा ह्येवमतन्द्रितः ॥ २६ ॥
दक्षिणस्यां तु पाणिभ्यां प्रथमं पिण्डमुत्सृजेत् । नमो वः पितरः सौम्याः पठन्नित्यमतन्द्रितः ॥ २७ ॥
सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां धर्मे सर्वमतन्द्रितः । उलूखलस्य लेखायामुदपात्राच्च सेवनम् ॥ २८ ॥
क्षौमसूत्रं नवं दद्याच्छोणं कार्पासिकं तथा । पत्रोर्णं पितृसूत्रं च कौशेयं परिवर्जयेत् ॥ २९ ॥
वर्जयेत्तद्दशां यज्ञे यदप्यहतवस्त्रजाम् । न प्रीणन्ति तथैतानि दातुराप्यायतो भवेत् ॥ ३० ॥
श्रेष्ठमाहुस्त्रिककुदमञ्जनं नित्यमेव च । कृष्णेभ्यश्च तिलेभ्यश्च यत्तैलं परिरक्षितम् ॥ ३१ ॥

क्रियाएँ सम्पन्न करे । तत्पश्चात् अपसव्य होकर पितरों के उद्देश्य से उत्तम अन्न समर्पित करे । उन सबों का नाम उच्चारण करके वस्त्र के लिए सूत्रदान करे । देवताओं के लिए खण्डन, पेषण और उल्लेखन—इनका एक बार का विधान है, और पितरों के लिए तीन बार कहा गया है । हाथ में एक पवित्री लेकर प्रत्येक पितरों को अलग से वस्त्रदान के मन्त्र द्वारा पिण्डों के ऊपर (सूत्र) देकर दर्शन करने का कल्याण प्राप्त किया जाता है ॥ १६-२१ ॥

सभी श्राद्धकर्मों में घृत, तिलयुक्त पिण्डों का निर्वपन भूमि पर करना, यत्नपूर्वक पितरों के जल से पिता, पितामह, प्रपितामह एवं पुराने पितरों का आवाहन कर पिण्डों को नीचे रखे । कुछ लोग अन्न, जल, पुष्प, भिन्न भिन्न प्रकार के भक्ष्य पदार्थों से मातामह (नाना आदि मातृपक्ष के पितर) आदि के लिए पिण्डदान का अलग विधान मानते हैं । क्रमशः अँगूठे समेत पुष्टिवृद्धि करनेवाले तीन पिण्डों को, घुटने को पृथ्वी पर टेककर 'नमो वः पितरः सूक्ष्मैः' ऐसा मन्त्र उच्चारण करके बायें हाथ से प्रदान करे । सर्वदा इसी प्रकार सावधान चित्त होकर यह कर्म करना चाहिए । तदनन्तर सावधान होकर 'नमो वः पितरः सौम्याः' ऐसा मन्त्रोच्चारण करते हुए दक्षिण दिशा में प्रथम पिण्डदान करना चाहिए ॥ २२-२७ ॥

तदुपरान्त बायें, दाहिने हाथों से बिना आलस्य किये उलूखल में परिष्कृत तन्दुल (चावल), जलपात्र से जल, नवीन क्षौम सूत्र, कपास का सूत, शोणसूत्र (लाल रंग का सूत?) पितरों के उद्देश्य से दान करे । पितरों को ऊन, पत्ते या रेशम का सूत नहीं समर्पित करना चाहिए । इसी प्रकार पितरों के यज्ञ में वस्त्र के टुकड़े को भी वर्जित रखना चाहिए भले ही वह नवीन वस्त्र का क्यों न हो । ये उपर्युक्त निषिद्ध वस्तुएँ पितरों को प्रसन्न नहीं करतीं, अतः इन वस्तुओं को समर्पित करने वाले भी सन्तुष्ट नहीं होते । पितृकार्य में त्रिककुद एवं अञ्जन को श्रेष्ठ कहा गया है । इसी प्रकार काले तिल का तेल भी प्रशस्त होता है ॥ २८-३१ ॥

चन्दनागुरुणी चोभे तमालोशीरपद्मकम् । धूपं च गुग्गुलश्रेष्ठं तुरुष्कं धूपमेव च ॥ ३२ ॥
शुक्लाः सुमनसः श्रेष्ठास्तथा पद्मोत्पलानि च । गन्धवन्त्युपपन्नानि यानि चान्यानि कृत्स्नशः ॥ ३३ ॥
जवासुमनसो भण्डीरूपकामकुरण्डकाः । पुष्पाणि वर्जनीयानि श्राद्धकर्मणि नित्यशः ॥ ३४ ॥
यानि गन्धादपेतानि उपगन्धीनि यानि च । वर्जनीयानि पुष्पाणि भूतिमन्विच्छता तदा ॥ ३५ ॥
द्विजातयस्तथाऽन्विष्टा नियताः स्युरुदङ्मुखाः । पूजयेद्यजमानस्तु विधिवद्दक्षिणामुखः ॥ ३६ ॥
तेषामभिमुखो दद्यादर्भान्पिण्डांश्च यत्नतः । अनेन विधिना साक्षादर्चयेत् स्वान् पितामहान् ॥ ३७ ॥
हरिता वै सपिञ्जल्याः पुष्पस्निग्धाः समाहिताः । रत्निमात्रप्रदानेन पितृतीर्थेन संस्थिताः ॥ ३८ ॥
उपमूले तथा नीलाः प्रस्तराद्यकुलोद्यमाः । तथा श्यामाकनीवारा दुर्वाराः समुदाहृताः ॥ ३९ ॥
पूर्वं कीर्त्तितवाञ्छ्रेष्ठो बभूवाथ प्रजापतिः । तस्य वाला निपतिता भूमौ चाकाशमार्गतः ॥ ४० ॥
तस्मान्मेध्याः सदाकाशाः श्राद्धकर्मणि पूजिताः । पिण्डनिर्वपणं तेषु कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता॥ ४१ ॥
प्रजापुष्टिर्द्युतिः कीर्त्तिः प्रजाकान्तिसमन्विता । भवन्ति रुचिरा नित्यं विपाप्मानोऽधवर्जिताः ॥ ४२ ॥
सकृदेवास्तरेद्दर्भान् पिण्डार्थं दक्षिणामुखः । प्रागदक्षिणाग्रनियतो विधिं चाप्यनुवक्ष्यति ॥ ४३ ॥
न दीनोवापि वा क्रुद्धो न चैवान्यमना नरः । एकाग्रमाधाय मनः श्राद्धं कुर्यात्सदा बुधः ॥ ४४ ॥

चन्दन, अगुरु (अगर), तमाल, उशीर, पद्मक (पद्माख), धूप, गुग्गुल, श्रेष्ठ तुरुष्क (लोहबान) का धूप, श्वेत पुष्प—ये सब वस्तुएँ पितृकार्य में श्रेष्ठ कही गई हैं। पद्म, उत्पल एवं अन्य जितनी सुगन्धित वस्तुएँ हैं—वे सब भी शुभ होती हैं। जपा, भण्डीर, रूपकाम एवं कुरण्डक के फूल को श्राद्धकर्म में सदा वर्जित रखना चाहिए। कल्याण की कामना करने वाले व्यक्ति को, निर्गन्ध या अति तीव्र गन्धवाले पुष्प श्राद्धकर्म में वर्जित हैं। श्राद्धकर्म में यजमान को दक्षिणाभिमुख होकर विधिपूर्वक आमन्त्रित उत्तराभिमुख बैठे हुए जितेन्द्रिय ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए ॥ ३२-३६ ॥

तदनन्तर उनके समक्ष यत्नपूर्वक पिण्ड एवं कुशा समर्पित करे और इस विधि से अपने पितामहों का पूजन करे। स्निग्ध पुष्पों से संयुक्त हरी पिञ्जलियाँ वहाँ रखे। पितरों के तीर्थ से संयुक्त करके उसका रत्निमात्र दान देने से पितर संतुष्टि प्राप्त करते हैं। मूल के समीप में नीले वर्ण वाली, कंकड़-पत्थर आदि के टुकड़ों से रहित साँवाँ और नीवार भी पितृकार्य के लिए दुष्प्राप्य कही गयी हैं। पूर्वकाल में इसके सम्बन्ध में यह कथा इस प्रकार कही जाती है। प्रजापति के केश आकाशमार्ग से पृथ्वी पर गिरे वे काश (कुश की तरह श्वेत पुष्प वाला एक तृण) के रूप में परिणत हुए। यही कारण है कि श्राद्धादि कार्यों में काश सर्वदा परम पवित्र मानी जाती है। विभव की इच्छा वाले व्यक्ति को उन पर पिण्डदान करना चाहिए ॥ ३९-४१ ॥

पिण्डदान करने से प्रजा (सन्तति) की पुष्टि, शरीर की कान्ति, यश, बुद्धि, शोभा इत्यादि में वृद्धि होती है। पापरहित होने से शरीर अत्यन्त मनोहारी हो जाता है। श्राद्धकर्म में दक्षिणाभिमुख होकर केवल एक बार पिण्डदान के लिए कुशों को पृथ्वी पर बिछाना चाहिए। पूर्व दक्षिण की ओर अग्रभाग करके आगे बताई गई विधि से श्राद्ध सम्पन्न करे। बुद्धिमान् पुरुष को कभी भी दीन, क्रोधित अथवा अनमयस्क होकर श्राद्ध नहीं करना चाहिए, अपितु सर्वदा एकाग्रचित होकर ही श्राद्ध कर्म करना चाहिए ॥ ४२-४४ ॥

निहन्मि सर्वं यदमेध्यवद्धवेद्धताश्च सर्वे सुरदानवा मया ॥
रक्षांसि यक्षाश्च पिशाचसङ्घा इवा मया यातुधानाश्च सर्वे ॥ ४५ ॥
एवं पित्रे दृष्टमन्त्रं हि यस्य तस्यासुरा वर्जयन्तीह सर्वे ॥
यस्मिन्देशे पठ्यते एष मन्त्रस्तं वै देशं राक्षसा वर्जयन्ति ॥ ४६ ॥

अनेन विधिना नित्यं श्राद्धं कुर्यादद्विजः सदा । मनसा काङ्क्षितं यद्यत्तत्तद्द्युः पितामहाः ॥ ४७ ॥
पितरो हृष्टमनसो रक्षांसि विमनांसि च । भवन्त्येव कृते श्राद्धे नित्यमेव प्रयत्नतः ॥ ४८ ॥
शूद्राः श्राद्धे क्षीरचाशुबल्वजास्तरवस्तथा । वारणाश्च लवाश्चैव लववर्षाश्च नित्यशः ॥
एवमादीन्यथान्यानि तृणानि परिवर्जयेत् ॥ ४९ ॥
अञ्जनाभ्यञ्जनागन्धामानुप्रलयनं तथा । काशैः पुनर्भवैः कार्यं सर्वमेव फलं भवेत् ॥ ५० ॥
काशाः पुनर्भवा ये च बर्हणा उपबर्हणाः । अथ ते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः ॥ ५१ ॥
पुष्पगन्धादिधूपानामेष मन्त्र उदाहृतः । आहृत्य दक्षिणायां तु होमार्थे विप्रयत्नतः ॥ ५२ ॥
सोमाय वै पितृमते स्वधा अङ्गिरसे नमः । अस्वर्ग्यं लौकिकं वाऽपि जुहुयात्कर्मसिद्धये ॥ ५३ ॥
अन्तराधाय समिधं तथा होमो विधीयते । समाहितेन मनसा प्रयताग्निः प्रयत्नतः ॥ ५४ ॥

(व्यक्ति को मन में ऐसी भावना कर लेनी चाहिए कि) जो कुछ भी अपवित्र या अनियमित वस्तुएँ हैं, मैं उन सबको हटा रहा हूँ । सभी विघ्न डालने वाले असुर एवं दानवों को भी मैंने मार दिया है । सभी राक्षस, यक्ष, पिशाच एवं यातुधानों के समूह मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं । इस प्रकार की विधि से जो व्यक्ति पितृकार्य में अन्न का दान करता है उसके श्राद्धकर्म में राक्षसगण वर्जित हो जाते हैं, किं वा जिस देश में यह मन्त्र पढ़ा जाता है, उस देश को राक्षसगण छोड़ देते हैं ॥ ४५-४६ ॥

ब्राह्मण को सदैव इसी विधि से श्राद्धकर्म सम्पन्न करना चाहिए । इस प्रकार श्राद्ध करने से जो कुछ भी मनोगत अभिलाषाएँ होती हैं वे सब पितामहगण पूर्ण करते हैं । ऐसी विधियों से श्राद्धकर्म सम्पन्न करने से पितरगण हृदय से प्रसन्नता प्राप्त करते हैं और राक्षस लोग निरादृत और बहिष्कृत होते हैं । अतः नित्य प्रयत्नपूर्वक उपर्युक्त विधि से श्राद्धकर्म किया जाना चाहिए । श्राद्धकर्म में शूद्र, क्षीरचाशु, बल्वज तरु, वारण, लव एवं लववर्ष—इनका तथा अन्य तृणों का त्याग करना चाहिए । अञ्जन, अभ्यञ्जन, गन्ध, अनुप्रलयन भी वर्जित हैं । पुनः उत्पन्न हुए काशों से सभी कार्यों को सम्पन्न करना चाहिए जिससे समस्त फलों की प्राप्ति होती है ॥ ४७-५० ॥

पुनः उत्पन्न होनेवाले काश तृण, बर्हण और उपबर्हण भी उसी प्रकार श्राद्धकर्म में उपयोगी हैं । 'अथ ते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः' अर्थात् पितरगण देवस्वरूप हैं, और पुनः देवगण ही पितरस्वरूप हैं । यह पुष्प एवं सुगंधित द्रव्य धूपदान के समय के लिए कहा गया है । हवन सामग्री को दक्षिणदिशा में खींचकर यत्नपूर्वक अस्वर्ग्य अथवा लौकिक विधियों से कर्मसिद्धि के लिए 'सोमाय वै पितृमते स्वधा अङ्गिरसे नमः' मन्त्र से हवन करना चाहिए । मन्त्र का अर्थ—पितृमान सोम अङ्गिरा को नमस्कार है, स्वधा है ॥ ५१-५३ ॥

समिधा को अन्दर रखकर हवन करने का विधान है । अग्नि की उपासना करने वाले यजमान को प्रयत्नपूर्वक समाहित चित्त होकर मनोयोग से 'अग्नये कव्यवाहाय स्वधा अङ्गिरसे नमः' मन्त्र से हवन करना

अग्नये कव्यवाहाय स्वधा अङ्गिरसे नमः । यमाय चैवाङ्गिरसे स्वधा नम इति ब्रुवन् ॥ ५५ ॥
इत्येते वै होममन्त्रा मन्त्राणामनुपूर्व्वशः । दक्षिणातोऽग्नये नित्यं सोमायान्तरतस्तथा ॥ ५६ ॥
एतयोरन्तरं नित्यं जुहुयाद्वै विवस्वते । उपचारं स्वधाकारं तथैवोल्लेखनं च यत् ॥ ५७ ॥
होमजप्ये नमस्कारः प्रोक्षणं च विशेषतः । अञ्जनाभ्यञ्जने चैव पिण्डसंवपनं तथा ॥ ५८ ॥
अश्वमेधफलेनैव तत्स्मृतं मन्त्रपूर्वकम् । क्रियाः सर्वा यथोद्दिष्टाः प्रयत्नेन समाचरेत् ॥ ५९॥
बहुहव्यत्वमेवाग्नौ सुसमिद्धे विशेषतः । विधूमे लेलिहाने च होतव्यं कर्मसिद्धये ॥ ६० ॥
अप्रबुद्धे सधूमे च जुहुयाद्यो हुताशने । यजमानो भवेदन्धः सोऽपुत्र इति नः श्रुतम् ॥ ६१ ॥
अल्पेन्धनो या रूक्षो वा विस्फुलिङ्गश्च सर्वशः। ज्वाला धूमोपसव्यश्च स तु वह्निर्न सिद्धये॥ ६२ ॥
दुर्गन्धश्चैव नीलश्च कृष्णश्चैव विशेषतः । भूमिं विगाहते यत्र तत्र विद्यात्पराभवम् ॥ ६३ ॥
अर्चिष्मान् पिण्डितशिखः सर्पिःकाञ्चनसंभवः। स्निग्धः प्रदक्षिणश्चैव वह्निःस्यात्कार्यसिद्धये॥ ६४ ॥
नरनारीगणेभ्यश्च पूजां प्राप्नोति शाश्वतीम् । अक्षयाः पूजितास्तेन भवन्ति पितरोऽव्ययाः ॥ ६५ ॥
स्थाल्युदुम्बरपात्राणि फलानि समिधस्तथा । श्राद्धे चातिपवित्राणि मेध्यानीति विशेषतः ॥ ६६ ॥
पवित्रं वा द्विजश्रेष्ठ शुद्धये जन्मकर्मसु । पात्रेषु फलमुद्दिष्टं यन्मया श्राद्धकर्मणि ॥ ६७ ॥
तदेव कृत्स्नं विज्ञेयं समित्सु च यथाक्रमम् । कृत्वा समाहितं चित्तमग्नये वै करोम्यहम् ॥ ६८ ॥
अनुज्ञातः कुरुष्वेति तथैव द्विजसत्तमैः । पत्नीमादाय पुत्रांश्च जुहुयाद्धव्यवाहनम् ॥ ६९ ॥

चाहिए। मन्त्र का अर्थ—पितरों के उद्देश्य से दी जाने वाली वस्तुओं को उन तक ले जाने वाले कव्यवाह अङ्गिरा को नमस्कार है, स्वधा है । ये मन्त्र हवन करने के लिए हैं । इन मन्त्रों के क्रम से नित्य दक्षिण दिशा से अग्नि के उद्देश्य से, तदनन्तर सोम के उद्देश्य से तथा इनके अनन्तर विवस्वान् (यम) के उद्देश्य से 'यमाय चैवाङ्गिरसे स्वधा नमः' मन्त्र द्वारा हवन करना चाहिए । मन्त्र का अर्थ—यम अङ्गिरा को नमस्कार है, स्वधा है । उपचार, स्वधाकार, उल्लेखन, हवन, जप, नमस्कार, प्रोक्षण, अञ्जन, अभ्यञ्जन पिण्डनिर्वपन—ये सब कर्म मन्त्रोच्चारणपूर्वक करने पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्रदान करने वाले कहे गए हैं । इन श्राद्धक्रियाओं को प्रयत्नपूर्वक उसी प्रकार की विधि के साथ करना चाहिए जैसी बतायी गयी हैं ॥ ५४-५९ ॥

तीव्र प्रज्वलित अग्नि में अधिक हवि डालनी चाहिए । कार्यसिद्धि के लिए दहकती हुई धूमरहित अग्नि में हवि देना चाहिए ॥ ६० ॥

जो यजमान धूमयुक्त अथवा बिना प्रज्वलित अग्नि में हवन करता है वह अन्धा एवं पुत्रविहीन होता है, ऐसा सुना जाता है । कम इन्धन वाली, रूखी, चिनगारियों से भरी हुई, ज्वाला और धूम से व्याप्त अग्नि सिद्धि के लिए उपयुक्त नहीं होती है । जो अग्नि दुर्गन्धयुक्त हो, नीली अथवा विशेषतया काली हो और जिसके प्रज्वलित होने पर पृथ्वी फट जाय, उसमें हवन करने से पराभव होता है । किरणों से सुशोभित, ज्वालाओं को एक पिण्डरूप में प्रकट करनेवाली, घृत और सुवर्ण प्रतीति वाली अर्थात् पीली स्निग्ध और प्रदक्षिणा करती हुई-सी अग्नि सिद्धि प्रदान करने वाली कही गई है ॥ ६१-६४ ॥

इस अग्नि को इस लोक में नर नारी दोनों प्रजागणों से सदा से प्रचलित पूजा प्राप्त होती है । उनके द्वारा पूजा प्राप्त कर पितरगण अक्षय एवं अनन्त तुष्टि को प्राप्त करते हैं । श्राद्धकर्म में स्थाली, उदुम्बर के पात्र (गूलर

समानप्लक्षन्यग्रोधप्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः । उदुम्बरास्तथा बिल्वचन्दना यज्ञियाश्च ते ॥ ७० ॥
सरलो देवदारुश्च शालश्च खदिरस्तथा । समिदर्थं प्रशस्ताः स्युरेते वृक्षा विशेषतः ॥ ७१ ॥
ग्राम्याः कण्टकिनश्चैव यज्ञिया येन केन च । पूजिताः समिदर्थे तु पितॄणां वचनं तथा ॥ ७२ ॥
समिद्भिः कल्कलेयाभिर्जुहुयाद्यो हुताशनम् । फलं यत्कर्मणस्तस्य तन्मे निगदतः शृणु ॥ ७३ ॥
आयसं सर्वकामीयमश्वमेधफलं हि तत् । श्लेष्मातको नक्तमालः कपित्थः शाल्मलिस्तथा॥ ७४ ॥
नीपो विभीतकश्चैव वल्लीभिश्च तथैव च । शकुनानां निवासश्च वर्जयेच्च महीरुहान् ॥
अयज्ञीयाः स्मृता ये च वृक्षांश्चैव वर्जयेत् ॥ ७५ ॥
स्वधेति चैव मन्त्रान्ते पितॄणां वचनं तथा । स्वाहेति चैव देवानां यज्ञकर्मण्युदाहृतम् ॥ ७६ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

* * *

के पत्तों से बने हुए पात्र), उदुम्बर के फल और उसी की समिधा इत्यादि वस्तुएँ विशेष पवित्र एवं पुण्यप्रद मानी गयी हैं। हे द्विजश्रेष्ठ ! श्राद्धकर्म में मैंने जिन-जिन पात्रों में जो-जो फल कहे हैं वे सभी जातकर्म में शुद्धि के समय भी पवित्र एवं फलदायी होते हैं। समिधा के लिए भी क्रमशः यही नियम समझना चाहिए। श्राद्धकर्त्ता सावधान चित्त होकर ब्राह्मणों से यह निवेदन करे कि मैं अग्नि में पितरों के उद्देश्य से हवन कर रहा हूँ। श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा आज्ञा प्राप्त हो जाने पर अपनी पत्नी और पुत्रों को साथ लेकर अग्नि में हवन करना चाहिए ॥ ६५-६९ ॥

समान, पाकड़, बरगद, पीपल, विकंकत, गूलर, बिल्व तथा चन्दन—इतने वृक्ष यज्ञ कार्य के लिए उपयोगी हैं। सरल, देवदारु, शाल तथा खदिर के वृक्ष भी यज्ञ-समिधा के लिए प्रशस्त कहे गए हैं। ग्रामों में उत्पन्न होने वाले कण्टकी के वृक्ष भी कहीं-कहीं यज्ञकर्म में समिधा के लिए पूजित व्यवहार में आते हैं—ऐसी पितरों की आज्ञा है। कल्कल की समिधाओं द्वारा जो अग्नि में हवन करता है, उसके इस कर्म से जो फलप्राप्ति होती है, उसे कहता हूँ, आप सुनिये ॥ ७०-७३ ॥

आयस की समिधा सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाली तथा अश्वमेध यज्ञ का फल देनेवाली है। श्लेष्मान्तक, नक्तमाल, कैथा, सेमर, कदम्ब, बहेड़ा, वल्लियाँ तथा वे वृक्ष जिन पर पक्षियों का निवास हो, यज्ञ कार्य में वर्जित रखने चाहिए। इनके अतिरिक्त वे अन्यान्य वृक्ष जो यज्ञकार्य में निषिद्ध कहे गए हैं, उन्हें वर्जित रखना चाहिए। पितरों के उद्देश्य से पढ़े जानेवाले मंत्रों के अन्त में स्वधा का और देवताओं के यज्ञों में उनके उद्देश्य से पढ़े जानेवाले मंत्रों के अन्त में स्वाहा का उच्चारण करना चाहिए—ऐसा नियम है ॥ ७४-७६ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में श्राद्धकल्प नामक तेरहवें अध्याय (पचहत्तरवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १३ ॥**

* * *

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

सूत उवाच

देवाश्च पितरश्चैव तेभ्योऽन्ये पितरस्तथा । आथर्वणविधिर्ह्येष प्रत्युवाच बृहस्पतिः ॥ १ ॥
पूजयेच्च पितॄन् पूर्व्वं देवांश्चापि विशेषतः । देवेभ्योऽपि पितॄन् पूर्वमर्चयन्तीह यत्नतः ॥ २ ॥
दक्षस्य दुहिता ख्याता लोके विश्वेति नामतः । विधिना सा तु धर्म्मज्ञ दत्ता धर्माय धर्मतः ॥
तस्याः पुत्रा महात्मानो विश्वेदेवा इति श्रुतिः ॥ ३ ॥
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु सर्व्वलोकनमस्कृताः । समस्तास्ते महात्मानश्चेरुरुग्रं महत्तपः ॥ ४ ॥
हिमवच्छिखरे रम्ये देवगन्धर्वसेविते । सर्वाप्सरोभिश्चरितं देवगन्धर्व्वसेवितम् ॥ ५ ॥
शुद्धेन मनसा प्रीताः पितरस्तानथाब्रुवन् । वरं वृणीध्वं प्रीताःस्म कं कामं करवामहे ॥ ६ ॥
एवमुक्ते तु पितृभिस्तदा त्रैलोक्यभावनः । प्रजानामधिपो ब्रह्मा विश्वानितीदमब्रवीत् ॥ ७ ॥

चौदहवाँ अध्याय

(छिहत्तरवाँ अध्याय)

श्राद्धकल्प

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! बृहस्पति जी ने अथर्ववेद के अनुसार यह विधि बतायी है कि जो देवगण पितरों के नाम से विख्यात हैं, उनके अलावा अन्य भी पितरगण हैं । पितरों की विशेष रूप से पहले और उसके बाद देवताओं की पूजा करनी चाहिए । इस लोक में यत्नपूर्वक देवताओं से भी पहले पितरों की पूजा की प्रथा है ॥ १-२ ॥

हे धर्मज्ञ ! पूर्वकाल में दक्ष प्रजापति की एक विश्वा नाम की पुत्री थी, जो लोक प्रसिद्ध थी । विधि एवं धर्मपूर्वक उसे दक्ष ने धर्म को समर्पित किया था । उससे उत्पन्न पुत्रगण महात्मा एवं विश्वेदेवा के नाम से प्रसिद्ध हुए—ऐसा सुना जाता है ॥ ३ ॥

वे विश्वेदेवगण सभी लोगों के नमस्करणीय एवं त्रैलोक्य में विख्यात हैं । उन सभी महात्मा विश्वेदेवों ने देवताओं और गन्धर्वों से सुसेवित हिमवान् के मनोहर शिखर पर अप्सराओं, देवताओं और गन्धर्वों द्वारा पालन किये गए कठोर तप को किया । उनके उस महान तप से परम प्रसन्न होकर पितरगणों ने शुद्ध मन से कहा, हे विश्वेदेवगण ! हम आप लोगों से परम प्रसन्न हैं, आप वरदान माँगिये, हम आपके कौन से मनोरथ को पूर्ण करें । पितरों के इस प्रकार कहने पर त्रैलोक्य की उत्पत्ति करनेवाले प्रजापति ब्रह्मा ने विश्वेदेवों से कहा ॥ ४-७ ॥

ब्रह्मोवाच

महातेजा महादेवस्तपसा तैस्तु तापितः । तपसा तेन सुप्रीतः कं कामं विदधामि वः ॥ ८ ॥
एवमुक्तास्तदा विश्वे ब्रह्मणा लोककर्तृणा । ऊचुस्ते सहिताः सर्व्वे ब्रह्माणं लोकभाविनम् ॥ ९ ॥
श्राद्धेऽस्माकं भवेदंशो ह्येषे नः काङ्क्षितो वरः। प्रत्युवाच ततो ब्रह्मा तान्वै त्रिदिवपूजितान् ॥ १० ॥
भविष्यत्येवमेवेति काङ्क्षितो वो वरस्तु यः । पितृभिस्तु तथेत्युक्त्वा एवमेतन्न संशयः ॥ ११ ॥
सहास्माभिस्तु वो भाव्यं यत्किञ्चित् क्रियते त्विह । अस्माकं कल्पिते श्राद्धे युष्मानग्रासनं ह वै ॥ १२ ॥
भविष्यति मनुष्येषु सत्यमेतद्ब्रवीमि ते । माल्यैर्गन्धैस्तथान्नेन युष्मानग्रेर्चयिष्यति ॥ १३ ॥
प्रदाता चेति युष्माकमस्माकं दास्यते ततः । विसर्जनमथास्माकं पूर्व्वं पश्चात्तु देवताः ॥ १४ ॥
रक्षणं चैव श्राद्धस्य आतिथ्यं च विधिद्वयम् । भूतानां देवतानां च पितॄणां श्राद्धकर्मणि ॥
एवं विधिकृतः सम्यक्सर्व्वमेतद्भविष्यति ॥ १५ ॥
एवं दत्त्वा वरं तेषां ब्रह्मा पितृगणैः सह । भूतानुग्रहकृद्देवः सञ्चचार यथासुखम् ॥ १६ ॥
वेदे पञ्च महायज्ञा नराणां समुदाहृताः । एतान्पञ्च महायज्ञान्निर्वपेत्सततं नरः ॥ १७ ॥

ब्रह्मा ने कहा—आप लोगों की इस परम कठोर तपस्या से महातेजस्वी महादेव जी परम प्रसन्न हो गए और मैं भी बहुत प्रसन्न हूँ, कहिए, हम आपके किस मनोरथ को पूर्ण करें । लोक के रचयिता भगवान् ब्रह्मा के इस प्रकार कहने पर सभी विश्वेदेवगणों ने एक साथ ही लोकेश ब्रह्मा से कहा—हम लोगों की अभिलाषा यह है कि श्राद्ध में हम लोगों को भी अंश प्राप्त होवे । विश्वेदेवों के ऐसा कहने पर ब्रह्मा ने उन स्वर्गपूजित विश्वेदेवों से कहा कि आप लोगों द्वारा माँगा गया वर सफल होगा । इसके अनन्तर पितरों ने विश्वेदेवों से कहा—ब्रह्मा जी ने जैसा आप लोगों से कहा है, वह निःसन्देह सत्य होगा ॥ ८-११ ॥

इस लोक में जो कुछ भी हम लोगों के लिए किया जाता है, उन सब में हमारे साथ आप लोगों का भी भाग रहेगा । हम लोगों के लिए मनुष्यों द्वारा जो विहित श्राद्ध कर्म है उसमें आप लोगों का आगे आसन होगा, यह हम सत्य कह रहे हैं । मनुष्य लोग उस श्राद्ध कर्म में विविध प्रकार के कुतपों, मालाओं से सुगन्धित द्रव्यों तथा अन्न आदि भक्षणीय वस्तुओं से आप लोगों को प्रथम पूजित करेंगे । इसी प्रकार जो कुछ भी वस्तुएँ समर्पित की जायँगी, वह आप लोगों को पहले और हम लोगों को बाद में दी जायँगी । विसर्जन में हम लोगों का प्रथम स्थान रहेगा और आप देवता गणों को हम लोगों के पश्चात् विसर्जित किया जाएगा ॥ १२-१४ ॥

समस्त भूतों, देवताओं और पितरों के उद्देश्य से किये जानेवाले श्राद्धकर्म में श्राद्ध की सर्वतोभावेन रक्षा और आतिथ्य सत्कार—ये दो विधान हैं । इन दोनों के भलीभाँति सम्पन्न हो जाने पर श्राद्ध को सही ढंग से सम्पन्न समझना चाहिए । हम लोगों ने जो बातें आप लोगों से कही हैं ये सब सत्य होंगी । पितरगणों के साथ सभी जीवों के ऊपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् ब्रह्मा विश्वेदेवों को इस प्रकार का वरदान देकर आनन्दपूर्वक अपने अभीष्ट स्थान को चले गए ॥ १५-१६ ॥

वेद में मनुष्यों के लिए पाँच महायज्ञों की चर्चा की गयी है । इन पाँचों महायज्ञों का अनुष्ठान सदैव मनुष्य को करना चाहिए । इन पाँचों महायज्ञों का अनुष्ठान करने वाले जिस स्थान को जाते हैं, उसे सुनिये । वे भयरहित,

यत्र यास्यन्ति दातारः संस्थानं वै निबोधत । निर्भयं निरहंकारं निःशोकं निर्व्यथक्लमम् ॥
ब्रह्मस्थानमवाप्नोति सर्वकामपुरस्कृतम् ॥ १८ ॥
शूद्रेणापि प्रकर्त्तव्याः पञ्चैते मन्त्रवर्जिताः। अन्योऽन्यथा तु यो भुङ्क्ते स ऋणं नित्यमश्नुते ॥ १९ ॥
ऋणं च भुङ्क्ते पापात्मा यः पचेदात्मकारणात् । तस्मान्निर्वर्त्तयेत्पञ्च महायज्ञान्सदा बुधः ॥ २० ॥
नैवेद्यं केचिदिच्छन्ति जीवत्यपि प्रयत्नतः । उदक्पूर्व्वं बलिं कुर्यादुदकुम्भं तथैव च ॥ २१ ॥
बलिं सुविदितं कुर्यादुच्चादुच्चतरं क्षिपेत् । परशृङ्गगवां पूर्व्वं बलिं सूक्ष्मं समुत्क्षिपेत् ॥ २२ ॥
न निवेद्यो भवेत् पिण्डः पितॄणां यस्तु जीवति । इष्टेनान्नेन भक्ष्यैश्च भोजयेत यथाविधि ॥
विधानं वेदविहितमेतद्वक्ष्यामि यत्नतः ॥ २३ ॥
देवदेवा महात्मानो ह्येतेपि पितरो ह्युत । इच्छन्ति किञ्चिदाचार्य्याः पश्चात् पिण्डनिवेदनम् ॥ २४ ॥
पूजनं चैव विप्राणां सर्व्वमेव हि नित्यशः । तद्धि धर्मार्थकुशलानित्युवाच बृहस्पतिः ॥ २५ ॥
पूर्व्वं निवेदयेत्पिण्डं पश्चाद्विप्रांश्च भोजयेत् । योगात्मानो महात्मानः पितरो योगसम्भवाः ॥
सोममाप्यायन्त्येते पितरो योगमास्थिताः ॥ २६ ॥
तस्माद्दद्याच्छुचिः पिण्डान् योगिभ्यस्तत्परायणः। पितॄणां हि भवेदेतत्साक्षादिव हुतं हविः ॥ २७ ॥

अहंकार से सर्वदा विहीन, शोकरहित, परिश्रम को दूर करनेवाले, सभी मनोरथों को पुरस्कृत करनेवाले ब्रह्मस्थान को प्राप्त करते हैं । मन्त्रोच्चारण को छोड़कर इन पाँचों महायज्ञों को शूद्रों को भी करना चाहिए । इन यज्ञों को किए बिना जो भोजन करता है वह नित्य ऋण का भक्षण करता है ॥ १७-१९ ॥

जो मात्र अपने लिये भोजन बनाता है वह पापात्मा होता है और ऋण का भोजन करता है । इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को इन पाँचों महायज्ञों का सदैव अनुष्ठान करना चाहिए । कुछ लोग पितरों के जीवित रहते समय भी नैवेद्य करने की इच्छा करते हैं । उसके लिए जल पूर्वक बलि देनी चाहिए और जल का कलश भी समर्पित करना चाहिए । ऊँचे से भी ऊँचे स्थान पर भली भाँति विहित बलि देनी चाहिए । सूक्ष्म (स्वल्प) मात्रा में बलि को लेकर सींगोवाली गौओं के ऊपर छोड़ देना चाहिए । जीवित पितरों के लिए पिण्डदान का विधान नहीं है । उन्हें केवल विधिपूर्वक प्रिय अन्न एवं अन्यान्य भक्ष्य भोज्य पदार्थों को खिलाना चाहिए, ऐसा वेदों से सम्मत विधान है, अत: इसे यत्नपूर्वक बतला रहा हूँ । ये पितरगण देवताओं के देवता एवं परम महात्मा है । कुछ आचार्य लोग श्राद्धकर्म में सर्वप्रथम ब्राह्मणों का पूजन तदनन्तर पिण्डदान के विधान की इच्छा करते हैं ॥ २०-२४ ॥

इस प्रक्रिया को माननेवाले धर्मार्थ में कुशल आचार्यों के प्रति बृहस्पति का कथन यह है कि—महात्मा पितरगण परम योगाभ्यासपरायण, योगसम्भव एवं योगिराट् हैं, ये लोग चन्द्रमा को भी सन्तुष्ट करने वाले पितर होते हैं, अत: सर्वप्रथम इन्हें पिण्डदान करना चाहिए, उसके पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । इसीलिए पितरों में श्रद्धा एवं भक्ति रखनेवाले व्यक्ति पवित्र होकर उन परम योगी पितरों को सर्वप्रथम पिण्डदान दें यह पिण्डदान ही पितरों के लिए साक्षात् अग्नि में दी गयी हवि के समान है । श्राद्ध के अवसर पर हजारों ब्राह्मणों में से यदि एक भी योगाभ्यासी अग्रासन पर बिठाया गया है तो वह अकेला ही जल में नाव की तरह यजमान और अन्य भोक्ता आदि सभी का उद्धार करता है ॥ २५-२८ ॥

ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यो योगी चाग्रासने यदि । यजमानं च भोक्तृंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत् ॥ २८ ॥
असतां प्रग्रहो यत्र सतां चैव विमानना । दण्डो देवकृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः ॥ २९ ॥
हित्वागमं सधर्माणं बालिशं यत्र भोजयेत् । आदिकर्म समुत्सृज्य दाता तत्र विनश्यति ॥ ३० ॥
पिण्डमग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थी तु प्रयत्नतः। प्रजार्थी पत(त्न)ये दद्यान्मध्यमं तत्र पूर्वकम् ॥ ३१ ॥
उत्तमां द्युतिमन्विच्छन् गोषु नित्यं प्रयच्छति । प्रज्ञां पूजां यशः कीर्तिं गोषु नित्यं प्रयच्छति ॥ ३२ ॥
प्रार्थयन्दीर्घमायुश्च वायसेभ्यः प्रयच्छति । सौकुमार्यमथान्विच्छन् कुक्कुटेभ्यः प्रयच्छति ॥ ३३ ॥
एवमेतत्समुद्दिष्टं पिण्डनिर्वपणात् फलम् । आकाशं शमयेद्वापि स्थितौ सुदक्षिणामुखः ॥
पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणा चैव दिग्भवेत् ॥ ३४ ॥
एके विप्राः पुनः प्राहुः पिण्डोद्धरणमग्रतः । अनुज्ञाते तु तैर्विप्रैर्वानमुद्धियतामिति ॥ ३५ ॥
पुष्पाणां च फलानां च भक्ष्याणामन्नतस्तथा । अग्रमुद्धृत्य सर्वेषां जुहुयाज्जातवेदसि ॥ ३६ ॥
भक्ष्यमन्नं तथा पेयमनुत्तमफलानि च । हुत्वा चाग्नौ ततः पिण्डान्निर्वपेद्दक्षिणामुखः ॥ ३७ ॥
स्निग्धैर्भक्ष्यैः सुगन्धैश्च तर्पयेत रसैस्तथा । एकाग्रः पर्युपासीत प्रयतः प्राञ्जलिः स्थितः ॥
तत्परः श्रद्दधानश्च कामानाप्नोति मानवः ॥ ३८ ॥
अक्षुद्रत्वं कृतज्ञत्वं दाक्षिण्यं सत्कृतं च यत् । ततो यज्ञं च दानं च प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ ३९ ॥

जिस स्थान पर असत्पुरुषों का विशेष सम्मान एवं सत्पुरुषों का अपमान होता है, वहाँ अति दारुण देवदण्ड शीघ्र ही प्राप्त होता है । जिस स्थान पर धर्माचरण में रत रहनेवाले एवं अतिथि रूप में समागत ब्राह्मणों को छोड़कर किसी धूर्त अथवा मूर्ख ब्राह्मण को भोजन कराया जाता है, वहाँ वह दाता अपने पूर्व जन्म के भोग्य कर्मों के रहते हुए भी विनाश प्राप्त करता है ॥ २९-३० ॥

भोग की इच्छा करनेवाले को प्रयत्नपूर्वक सर्वदा अग्नि में पिण्डदान करना चाहिए । सन्तति की अभिलाषा वाले को सदैव स्त्रियों को पिण्ड देना चाहिए । किन्तु ऐसे समय भी पिण्डदान की अन्य क्रियाएँ उससे पूर्व ही कर लेनी चाहिए । उत्तम कान्ति की अभिलाषा करने वाले को नित्य गौओं को पिण्डदान करना चाहिए । इसी प्रकार उत्तम बुद्धि, सम्मान, यश और कीर्ति की अभिलाषा वाला भी नित्य गौओं को पिण्ड देता है ॥ ३१-३२ ॥

दीर्घायु की इच्छा वाला नित्य प्रति कौओं के लिए बलि दान करता है । सुकुमारता का इच्छुक व्यक्ति मुर्गों को नित्य बलि दान देता है । पिण्डदान के फल का वर्णन किया जा चुका । जल में दक्षिणाभिमुख स्थित होकर आकाश की ओर बलि देना चाहिए क्योंकि पितरों का स्थान आकाश और दिशा दक्षिण मानी गयी है ॥३३-३४॥

ब्राह्मणगण श्राद्धकर्म में एक पिण्डोद्धार की प्रक्रिया आगे बतलाते हैं, उन विप्रों द्वारा 'पिण्डों का उद्धार कीजिये', ऐसी आज्ञा प्राप्त होने पर यह विधि करे । पहले पुष्प, फल, भक्ष्य एवं अन्नादि के अग्र भाग को हटाकर अग्नि में हवन कर देना चाहिए । पिण्डदान करनेवाले व्यक्ति दक्षिण ओर मुख करके विविध खाद्य सामग्रियाँ, अन्न, पेय पदार्थ, उत्तम फल आदि वस्तुओं का अग्नि में हवन करने के उपरान्त पिण्डदान करें ॥ ३५-३७ ॥

चिकने खाद्य पदार्थ, सुगंधित खाद्य पदार्थ से सन्तुष्ट करके विविध रसों द्वारा तृप्त करे । तदनन्तर अकेले

अतः परं विधिं सौम्यं भुक्तवत्सु द्विजातिषु । आनुपूर्व्येण विधिना तन्मे निगदतः शृणु ॥ ४० ॥
प्रोक्ष्य भूमिमथोद्धृत्य पूर्वं पितृपरायणः । ततोऽत्र विकिरं कुर्यात् विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ४१ ॥
स्वधां वाच्य ततो विप्रा विधिवद्भूरिदक्षिणान् । अन्नशेषमनुज्ञाप्य सत्कृत्य द्विजसत्तमान् ॥
प्राञ्जलिः प्रयतश्चैव अनुगम्य विसर्जयेत् ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

* * *

एकान्तचित्त होकर हाथ जोड़े हुए उनकी विधिवत् पूजा करे । इस श्राद्धकर्म में तत्पर एवं श्रद्धा रखनेवाला मनुष्य अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥

पितामहगण उसे अक्षुद्रता (महत्त्व), कृतज्ञता, चतुरता, सत्कार, यज्ञ, दान आदि की शक्ति प्रदान करते हैं । हे ऋषिवृन्द ! अब इसके उपरान्त मैं श्राद्धकर्म में ब्राह्मणों के भोजन के बाद जो-जो क्रियाएँ होती हैं, उन्हें कहता हूँ, सुनिये ॥ ३९-४० ॥

सबसे पहले पितरों में भक्ति रखनेवाला भूमि का सिंचन एवं परिष्कार करके विधानानुसार विकिरण कर्म करे । तदनन्तर ब्राह्मणों से स्वधा वाचन करवाकर प्रचुर दक्षिणा देकर उन उत्तम ब्राह्मणों का विधिवत् सत्कार करे । शेष अन्न की आज्ञा प्राप्त कर, हाथ जोड़कर, मन एवं इन्द्रियों को स्ववश में रखकर कुछ दूर तक उनको पहुँचाकर तत्पश्चात् विसर्जन करे ॥ ४१-४२ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में श्राद्धकल्प नामक चौदहवें अध्याय (छिहत्तरवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १४ ॥**

* * *

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पे तीर्थयात्रा

बृहस्पतिरुवाच

सकृदभ्यर्चिताः प्रीता भवन्ति पितरोऽव्ययाः। योगात्मानो महात्मानो विपाप्मानो महौजसः ॥ १ ॥
प्रेत्य च स्वर्गलाभाय कामैश्वर्यं सुविस्तरम् । येषां चाप्यनुगृहणन्ति मोक्षप्राप्तिक्रमेण तु ॥ २ ॥
तानि वक्ष्याम्यहं सौम्याः सरांसि सरितस्तथा । तीर्थानि चैव पुण्यानिदेशाञ्शैलांस्तथाश्रमान् ॥ ३ ॥
पुण्यो यस्त्रिषु लोकेश्वमरकण्टकपर्वतः । पर्वतः प्रवरः पुण्यः सिद्धचारणसेवितः ॥ ४ ॥
यत्र वर्षसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च । तपः सुदुश्चरं तेपे भगवानङ्गिराः पुरा ॥ ५ ॥
यत्र मृत्योर्गतिर्नास्ति तथैवासुररक्षसाम् । न भयं चैव वाऽलक्ष्मीर्यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥ ६ ॥
तेजसा यशसा चैव भ्राजते स नगोत्तमः । शृङ्गमाल्यवतो नित्यं वह्निः संवर्त्तको यथा ॥ ७ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

(सतत्तरवाँ अध्याय)

श्राद्धकल्प में तीर्थयात्रा

बृहस्पति जी ने कहा—सौम्यगण ये पितरगण केवल एक बार पूजा प्राप्त कर लेने पर परम प्रसन्न हो जाते हैं, ये कभी नष्ट होनेवाले नहीं हैं, योगी हैं, महात्मा हैं, पापरहित हैं, महान तेजस्वी हैं ॥ १ ॥

अब मैं इस जन्म के उपरान्त स्वर्ग लाभ करानेवाले, विस्तृत मनोरथ एवं ऐश्वर्य को देनेवाले, मोक्ष प्राप्ति के सहायक उन सरोवरों, सरिताओं, पुण्यप्रद तीर्थों देशों एवं पवतों का वर्णन कर रहा हूँ, जिन पर (पितरगण) अनुग्रह करते हैं जो तीनों लोकों में पुण्यप्रद है वह अमरकण्टक सभी पर्वतों में श्रेष्ठ, पुण्यदायी तथा सिद्ध और चारणों द्वारा सेवित है ॥ २-४ ॥

जिन पर सहस्रों क्या करोड़ों अरबों वर्षों तक प्राचीनकाल में भगवान् अंगिरा ने परम कठोर तपस्या की थी । जहाँ पर मृत्यु की भी गति नहीं है, असुर एवं राक्षसों से भी भय नहीं है तथा जब तक भूमि स्थित रहेगी तब तक लक्ष्मी का अभाव नहीं रहेगा, वह उत्तम नगराज अपने परम तेज एवं यश से सुशोभित है । उसके परम उच्च शिखर के वृक्षों पर खिले हुए पुष्पों से उसकी शोभा संवर्तक अग्नि की तरह है ॥ ५-७ ॥

मृदवश्च सुगन्धाश्च हेमाभाः प्रियदर्शनाः । शान्ताः कुशा इति ख्याताःपिबन्दक्षिणनर्मदाम् ॥ ८ ॥
दृष्ट्वान् स्वर्गसोपानं भगवानङ्गिराः पुरा । अग्निहोत्रे महातेजाः प्रस्तरार्थकुशोत्तमान् ॥ ९ ॥
तेषु दर्भेषु यः पिण्डानमरकण्टकपर्वते । दद्यात्सकृदपि प्राज्ञस्तस्य वक्ष्यामि यत्फलम् ॥ १० ॥
तद्भवत्यक्षयं श्राद्धं पितॄणां प्रीतिवर्धनम् । अन्तर्धानं च गच्छन्ति क्षेत्रमासाद्य तत्सदा ॥ ११ ॥
तत्र ज्वाला वरः पुण्यो दृश्यतेऽद्यापि सर्वशः। सशल्यानां च सत्त्वानां विशल्यकरणी नदी ॥ १२ ॥
प्राग्दक्षिणा तु सावर्ता वापी सा पर्वतोत्तमे । कलिङ्गदेशपार्श्वार्द्धे पितॄणां प्रीतिवर्द्धनम् ॥ १३ ॥
सिद्धक्षेत्रमृषिश्रेष्ठा यदुक्तं परमं भुवि । सम्मतो देवदैत्यानां श्लोकमप्युशना जगौ ॥ १४ ॥
धन्यास्ते पुरुषा लोके ये प्राप्यामरकण्टकम् । पितॄन्संतर्पयिष्यन्ति श्राद्धे पितृपरायणाः ॥ १५ ॥
अल्पेन तपसा सिद्धिं गमिष्यन्ति न संशयः । सकृदेवार्चितास्तत्र स्वर्गममरकण्टके ॥ १६ ॥
महेन्द्रपर्वते रम्ये पुण्यं शक्रनिषेवितम् । तत्रारुह्य भवेत् प्रीतिः श्राद्धं चैव महत्फलम् ॥ १७ ॥
बिल्वाधःशिखरे युक्ता दिव्यं चक्षुः प्रवर्त्तते । अदृश्यं चैव भूतानां देववच्चरते महीम् ॥ १८ ॥
सप्तगोदावरे चैव गोकर्णे च तपोवने । अश्वमेधफलं तत्र स्नात्वा च लभते नरः ॥ १९ ॥
धूतपापस्थलं प्राप्य पूतः स्नात्वा भवेन्नरः । रुद्रस्तत्र तपस्तेपे देवदेवो महेश्वरः ॥ २० ॥

इस पर्वतराज पर उगनेवाले कुश अति मृदु, सुगन्धित सुवर्ण के समान कान्तिवाले, देखने में मनोहर तथा शान्ति उत्पन्न करने वाले प्रसिद्ध हैं। प्राचीनकाल में महान् तेजस्वी भगवान् अंगिरा अग्निहोत्र में पृथ्वी पर बिछाने के लिए इन उत्तम कुशों का उपयोग किया था, दक्षिण भाग में नर्मदा के जल का पान किया था, जिसके फलस्वरूप उन्हें स्वर्ग के सोपान दिखायी पड़े थे। जो बुद्धिमान् व्यक्ति पवित्र अमरकण्टक पर्वत पर उन्हीं कुशों पर एक बार भी पिण्डदान करता है, उसके फल को बतला रहा हूँ। उसका किया हुआ वह श्राद्ध पितरों को परम प्रसन्न करनेवाला एवं अक्षय फलदायी है। सर्वदा इस पवित्र क्षेत्र को प्राप्त होकर वे अन्तर्हित हो जाते हैं। आज भी उस पवित्र पर्वत पर श्रेष्ठ ज्वाला सम्पूर्ण रूप में दिखायी पड़ता है, हड्डीवाले जीवों को रोग मुक्त करनेवाली विशल्यकरणी नामक नदी है ॥ ८-१२ ॥

उस पर्वतराज अमरकण्टक के पृष्ठभाग पर पूर्व दक्षिण दिशा में फैली हुई वह पवित्र बावली है। कलिङ्गदेव के पार्श्वभाग में पितरों को अति प्रसन्न करनेवाला सिद्धक्षेत्र है, हे ऋषिश्रेष्ठगण ! वह स्थान पृथ्वीतल पर पवित्र कहा जाता है। देवता और दैत्य-दोनों ही को वह सम्माननीय है। उनको प्रशंसा शुक्राचार्य भी इस रूप में करते हैं कि इस लोक में वे पुरुष धन्य हैं, जो अमरकण्टक पर्वत पर जाकर अपने पितरों में श्रद्धा भाव रखकर श्राद्ध में उनको सन्तुष्ट करेंगे। उस पर्वतराज अमरकण्टक पर अल्प तपस्या द्वारा ही लोग सिद्धि प्राप्त करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि एक ही बार पूजित होकर पितरगण वहाँ पर स्वर्ग प्राप्त करते हैं ॥ १३-१६ ॥

परम रमणीय महेन्द्र पर्वत पर इन्द्र द्वारा सेवित एक पुण्यप्रद स्थान है, वहाँ पर आरोहण करने से पितरगणों को परम प्रसन्नता होती है और श्राद्ध का महान् फल होता है। बिल्वाध शिखर पर जाने से दिव्य नेत्र की प्राप्ति होती है, जिससे मनुष्यों से अदृश्य होकर देवताओं की भाँति पृथ्वी पर विचरण करता है। सप्त गोदावर तथा गोकर्ण नामक तपोवन में स्नानकर मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। धूतपाप नामक स्थान पर जाकर

गोकर्णे वर्णितं विप्रैर्नास्तिकानां निदर्शनम् । अब्राह्मणस्य सावित्री पठतः संप्रणश्यति ॥ २१ ॥
देवर्षिभवने शृङ्गे सिद्धचारणसेविते । आरुह्य तं तु नियमात्ततो यान्ति त्रिविष्टपम् ॥ २२ ॥
दिव्यैश्चन्दनवृक्षैश्च पादपैरुपशोभितम् । आपः स्वादनसम्पृक्ता वहन्ति सततं यतः ॥ २३ ॥
नदी प्रवर्त्तते ताभ्यस्ताम्रपर्णीति नामतः । योषेव समहाखेदा दक्षिणं याति सागरम् ॥ २४ ॥
नद्यास्तस्यास्तु या आपो मूर्च्छमाना महोदधौ । शङ्खा भवन्ति मुक्ताश्च जायन्ते शङ्खमुक्तिकाः ॥ २५ ॥
उदकानयनं कृत्वा शङ्खमौक्तिकसंयुतम् । आधिभिर्व्याधिभिश्चैव मुक्ता यान्त्यमरावतीम् ॥ २६ ॥
चन्दनेभ्यः प्रयुक्तानां शङ्खानां मौक्तिकस्य च । पापकर्तॄनपि पितॄंस्तारयन्ति यथा श्रुतिः ॥ २७ ॥
चन्द्रतीर्थे कुमार्यां तु कावेर्यां प्रभवेऽक्षये । श्रीपर्वतस्य तीर्थेषु वैकृते च तथा गिरौ ॥ २८ ॥
एकस्था यत्र दृश्यन्ते वृक्षा ह्योशिरपर्वते। पालाशाः खादिरा बिल्वा प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः ॥ २९ ॥
एतद्धि मण्डलं सिद्धं यज्ञियं द्विजसत्तमाः। अस्मिन् मुक्त्वा जनोऽङ्गानि क्षिप्रं यात्यमरावतीम् ॥ ३० ॥
कर्माणि स्वप्रयुक्तानि सिध्यन्ति प्रभवात्यये । दुष्प्रसक्तानि पितृषु प्रयुक्तानि भवन्त्युत ॥ ३१ ॥
पितॄणां दुहिता पुण्या नर्मदा सरितां वरा । तत्र श्राद्धानि दत्तानि अक्षयाणि भवन्त्युत ॥ ३२ ॥

स्नान करनेवाला मनुष्य परम पवित्र हो जाता है, वहाँ पर देव-देव महेश्वर शंकर जी ने परम कठोर तपश्चर्या की थी । उस गोकर्ण नामक स्थान के विषय में ब्राह्मण लोग नास्तिकों के लिए एक प्रधान लक्षण यह बतलाते हैं । कि जो लोग ब्राह्मण न होकर वहाँ गायत्री का पाठ करते हैं, उसकी सावित्री नाश को प्राप्त होती है ॥ १७-२१ ॥

सिद्धों और से चारणों से सेवित देवर्षि के भवनवाले शिखर पर नियमपूर्वक आरोहण करनेवाले मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करते हैं । क्योंकि उस परम रमणीय शिखर प्रदेश में दिव्य चन्दनादि के वृक्ष परम शोभा बढ़ाते हैं और चन्दन मिश्रित जल की शीतल धारा निरंतर प्रवाहित होती है ॥ २२-२३ ॥

उन जल धाराओं से ताम्रपर्णी नामक नदी प्रवाहित होती है, जो उस पर्वतराज की मदोन्मत्त एवं खेद से थकी हुई बाला की तरह शनैः-शनैः दक्षिण के समुद्र में जाकर मिलती है । उस ताम्रपर्णी की जलराशि महासमुद्र में मिलकर शङ्खमुक्ता और शङ्खमुक्तिका रूप में उत्पन्न होती है । जो मनुष्य शङ्ख और मुक्ताओं के समेत उसके जल को लाते हैं, वे समस्त आधि-व्याधियों से मुक्त होकर अमरावती को प्राप्त करते हैं ॥ २४-२६ ॥

चन्दनों से संयुक्त शंखों और मुक्ताओं के दान करने से वहाँ पर लोग अपने पाप करनेवाले पितरों का भी उद्धार कर देते हैं ऐसी श्रुति है । पुण्यात्मा जनों द्वारा चन्द्रतीर्थ में, (कन्या)कुमारी में, कावेरी में, अक्षय प्रभव में, श्रीपर्वत के तीर्थ में, वैकृत नामक पर्वत पर, औशिर नामक पर्वत पर भी, जहाँ पर कि पलाश, खदिर, बेल, पाकड़, पीपल, जहाँ विकङ्कत आदि के पेड़ एक ही स्थान पर दिखायी पड़ते हैं, वहाँ किया गया श्राद्ध पितरों का उद्धार करता हैं । हे द्विजवर्यगण ! यह तीर्थो का समूह यज्ञ करने के लिए समुचित तथा सिद्धि देनेवाला है, इनमें अपने अंगों (शरीर) को छोड़ देनेवाला मनुष्य अमरावती को प्राप्त करता है ॥ २७-३० ॥

इन पवित्र तीर्थों में किये गए स्वकर्मों के फल अन्य जन्म में मिलते हैं, एवं पितरों के उद्देश्य से अल्प रूप में भी कठिनाई से किये गए कर्म अच्छी तरह से किये गए कर्मो का फल प्रदान करते हैं । पितरों की कन्या नर्मदा समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ एवं पुण्यप्रदायिनी है, उसके तट पर किये गए श्राद्धादि कर्म अक्षय फलदायी होते

माठरस्य वने पुण्ये सिद्धचारणसेविते । अन्तर्द्धानं न गच्छन्ति सक्तास्तस्मिन्महागिरौ ॥ ३३ ॥
विन्ध्ये चैव गिरौ पुण्ये धर्माधर्मनिदर्शनम् । पापधारां न पश्यन्ति धारां पश्यन्ति साधवः ॥ ३४ ॥
तस्यां न दृश्यते पापं केषांचित्पापकर्मणाम् । स्पष्टा भवति सा धारा प्रायशः शुभकर्मणाम् ॥ ३५ ॥
कौशलायां मतङ्गस्य वापी पापनिषूदनी । स्नातास्तस्यां दिवं यान्ति कामचारविहङ्गमाः ॥ ३६ ॥
कुमारकोशलातीर्थे पर्वते पालपञ्जरे । पाण्डुकूले समुद्रान्ते पण्डारकवने तथा ॥ ३७ ॥
विमले च विपापे च सत्कृत्य प्रभवेऽभये । श्रीवृक्षे गृध्रकूटे च जम्बूमार्गे च नित्यशः ॥ ३८ ॥
असितस्य गुरोः पुण्ये योगाचार्यस्य धीमतः । तत्रापि श्राद्धमानन्त्यमसितायां च नित्यशः ॥ ३९ ॥
पुष्करेष्वक्षयं श्राद्धं तपश्चैव महाफलम् । महोदधौ प्रभासे च तस्मादेवं विनिर्द्दिशेत् ॥ ४० ॥
देविकायां वृषो नाम कूपः सिद्धनिषेवितः । समुत्पतन्ति तस्यापो गवां शब्देन नित्यशः ॥ ४१ ॥
योगेश्वरैः सदा जुष्टः सर्वपापबहिष्कृतैः। दद्याच्छ्राद्धं तु यस्तस्मिंस्तस्य वक्ष्यामि यत्फलम् ॥ ४२ ॥
अक्षयं सार्वकामीयं श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन् । जातवेदः शिला तत्र साक्षादग्नेः सनातनी ॥ ४३ ॥
यस्त्वग्निं प्रविशेत्तत्र नाकपृष्ठे स मोदते । अग्निः शान्तः पुनर्जातस्तस्मिन्दत्तं तदक्षयम् ॥ ४४ ॥
दशाश्वमेधिके तीर्थे तीर्थे पञ्चाश्वमेधिके । यथोद्दिष्टं फलं तेषां क्रतूनां नात्र संशयः ॥ ४५ ॥

हैं। सिद्धों और चारणों से सुसेवित माठर के पवित्र वन में वे अन्तर्हित नहीं होते, क्योंकि उस महान् गिरि में उनकी आसक्ति है ॥ ३१-३३ ॥

पवित्र विन्ध्य गिरि में धर्मी एवं अधर्मी की पहचान के लिए यह देखा जाता है कि जो पापात्मा हैं वे धारा को नहीं देख पाते, केवल साधुगण उसका दर्शन करते हैं। इस धारा में किन्हीं पापकर्मियों के पाप दिखायी देते हैं। प्रायः शुभ कर्म करनेवालों को ही वह धारा स्पष्ट दिखायी पड़ती है। कोशला में मतंग के पापों को दूर करनेवाली पापनिषूदिनी नामक बावली है, उसमें स्नानकर स्वेच्छा से गमन करनेवाले पक्षीगण भी स्वर्ग प्राप्त करते हैं। कुमारकोशला तीर्थ में, पालपञ्जर नामक पर्वत पर, समुद्रान्त पाण्डुकूल नामक तीर्थ में, पण्डारक नामक वन में, अतिनिर्मल पापरहित प्रभव अभय नामक तीर्थ में सत्कारकर श्रीवृक्ष, गृध्रकूट, जम्बूमार्ग, परम बुद्धिमान् योगाचार्य गुरुवर असित के असिता नामक पवित्र तीर्थ में नित्य श्राद्ध करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है ॥ ३४-३९ ॥

पुष्कर तीर्थ में श्राद्ध का अक्षय फल होता है, तपस्या महान फलदायिनी होती है। महासमुद्र में प्रभास नामक तीर्थ में भी ऐसी फलप्राप्ति होती है, इसीलिए ऐसा कहा गया है। देविका में सिद्धों द्वारा सुसेवित वृष नामक एक कूप है, जिसका जल नित्यप्रति गौओं के शब्द से ऊपर उछलता है। सभी पापों से बहिष्कृत रहनेवाले योगेश्वरों से सुसेवित उस कूप पर जो श्राद्ध करता है, उसके उस श्राद्ध का फल बतला रहा हूँ, वह श्राद्ध सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाला एवं अक्षय फलदायी है, तथा पितरों को प्रसन्न करता है। वहाँ पर साक्षात् अग्नि की सनातन काल से प्रतिष्ठित जातवेद नामक शिला है ॥ ४०-४३ ॥

वहाँ जो कोई व्यक्ति उस अग्नि में प्रवेश करता है वह स्वर्गलोक में आनन्द का अनुभव करता है एवं अग्नि शान्त होने पर पुनर्जन्म धारण करता है। उस परम पवित्र तीर्थ में दिया हुआ श्राद्धादि का दान अक्षय फलदायी होता है। दशाश्वमेध तीर्थ में एवं पञ्चाश्वमेध तीर्थ में श्राद्ध करने पर दस एवं पाँच अश्वमेध यज्ञों का फल सचमुच

ख्यातं हयशिरो नाम तीर्थं सद्यो वरप्रदम् । श्राद्धं तत्र तदाक्षय्यं दत्त्वा स्वर्गे च मोदते ॥ ४६ ॥
श्राद्धं कुम्भे विमुच्यन्ति ज्ञेयं पापनिषूदनम् । श्राद्धं तत्राक्षयं प्रोक्तं जप्यहोमतपांसि च ॥ ४७ ॥
अजतुङ्गे शुभे तीर्थे तर्पयेत्सततं पितॄन् । दृश्यते पर्वसु च्छाया यत्र नित्यं दिवौकसाम् ॥
पृथिव्यामक्षयं दतं निरुजा यत्र पाण्डवाः ॥ ४८ ॥
योगेश्वरैः सदा जुष्टं सर्वपापबहिष्कृतैः । दद्याच्छ्राद्धं तु यस्तस्मिंस्तस्य वक्ष्यामि यत्फलम् ॥ ४९ ॥
अर्चितास्तेन वै साक्षाद्भवन्ति पितरः सदा । अस्मिंल्लोके वशी यः स्यात्प्रेत्य स्वर्गे समोदते ॥ ५० ॥
प्रायशः प्रवरः पुण्यः शिवो नाम ह्रदस्तथा । तत्र व्याससरः पुण्यं दिव्यं ब्रह्मसरस्तथा ॥ ५१ ॥
उज्जन्तः पर्वतः पुण्यो वसिष्ठस्य महात्मन । ऋग्यजुःसामशिरसः कापोतः पुष्पसाह्वयः ॥
आख्यातः पञ्चमो वेदः सृष्ट्वा ह्येतेषु ब्रह्मणा ॥ ५२ ॥
गत्वैतान् मुच्यते पापाद्द्विजो वह्निः सनातनः । श्राद्धं चानन्त्यमेतेषु जप्य होमतपांसि च ॥ ५३ ॥
पुण्डरीके महातीर्थे पुण्डरीकसमं फलम् । ब्रह्मतीर्थे महातीर्थे अश्वमेधफलं लभेत् ॥ ५४ ॥
सिन्धुसागरसम्भेदे तथा पञ्चनदेऽक्षयम् । कीरकात्मा ततः पुण्यो मण्डवायां च पर्वते ॥ ५५ ॥
देयं सप्तह्रदे श्राद्धं मानसे च विशेषतः । महाकूटे च वन्दे च गिरौ त्रिककुदे तथा ॥ ५६ ॥

प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए । हयशिर नामक पवित्र एवं प्रख्यात तीर्थ शीघ्र वरदान देनेवाला है, वहाँ पर श्राद्धकर्म अक्षय फलदायी होता है एवं श्राद्धकर्ता स्वर्ग में आनन्द का अनुभव करता है ॥ ४४-४६ ॥

कुम्भतीर्थ में जाकर लोग श्रद्धादि कर्मों का अनुष्ठान करते हैं, उस पवित्र तीर्थ को पाप विनाशक समझना चाहिए, वहाँ पर किये गए श्राद्ध को अक्षय फलदायी कहा गया है, इसी प्रकार जप, हवन एवं तपस्या के बारे में भी कहा गया है । अजतुंग नामक कल्याणदायी पवित्रतीर्थ में सर्वदा पितरों का तर्पण करना चाहिए, जहाँ पर पर्वो के अवसर पर देवताओं की छाया दिखलायी पड़ती है । समस्त पृथ्वीमण्डल में इस पवित्र तीर्थ का दान अक्षय बतलाया जाता है । पाण्डवगण यहीं पर रोगमुक्त हुए थे । सभी प्रकार के पापपूर्ण कर्मों से विरक्त रहनेवाले योगेश्वरों द्वारा सुसेवित उस परम पवित्र तीर्थ में जो लोग श्राद्ध करते हैं, उसका फल बतला रहा हूँ । उस परम पवित्र तीर्थ में साक्षात् पूजित होकर पितरगण सर्वदा प्रसन्न रहते हैं, इस लोक में जो इन्द्रियों को स्ववश रखनेवाला है वह मृत्यु के बाद स्वर्ग में आनन्द का अनुभव करता है ॥ ४७-५० ॥

परम पवित्र शिव नाम का एक हद है, वहीं पर दिव्यगुण युक्त व्याससर एवं ब्रह्मसर नामक दो सरोवरों की भी स्थिति है । उज्जन्त नामक पुण्यप्रद पर्वत पर महात्मा वसिष्ठ का पुण्य आश्रम है । इन्हीं तीर्थों में ऋक्, यजुः, सामवेद विद्यमान हैं । ब्रह्मा ने इन वेदों की रचना कर पाँचवें वेद का वर्णन किया ॥ ५१-५२ ॥

इन पवित्र तीर्थों की यात्रा कर ब्राह्मण सनातन अग्नि की ही भाँति तेजस्वी होकर पापमुक्त हो जाता है, इसमें श्राद्ध का अनन्त माहात्म्य वर्णित किया गया है । जप, हवन एवं तपस्या के लिए भी अनन्त फल कहा गया है । पुण्डरीक नामक महातीर्थ में पुण्डरीक (कमल) के समान मनोहर फल होता है । ब्रह्मतीर्थ नामक महातीर्थ में अश्वमेध यज्ञ का फ़ल प्राप्त होता है ॥ ५३-५५ ॥

सन्ध्यायां च महावेद्यां दृश्यते महदद्भुतम् । अश्रद्दधानान्नाभ्येति साभ्येति च धृतव्रतान् ॥ ५७ ॥
जातवेदःशिला तत्र साक्षादग्नेः सनातनी । श्राद्धानि चाग्निकार्यं च तत्र कुर्यात् सदाक्षयम् ॥ ५८ ॥
संश्रयित्वैकमेकेन सायाह्नं प्रति नित्यशः । तस्मिन्देयं सदा श्राद्धं पितॄणामक्षयार्थिना ॥ ५९ ॥
कृतात्मा वाऽकृतात्मा वा यत्र विज्ञायते नरः । स्वर्ग्यमार्गप्रदं नाम तीर्थं सद्यो वरप्रदम् ॥
वैराण्युत्सृज्य तस्मिंस्तु दिवं सप्तर्षयो गताः ॥ ६० ॥
अद्यापि तानि दृश्यन्ते वैराण्येव गतानि तु । स्नात्वा स्वर्गमवाप्नोति तस्मिंस्तीर्थोत्तमे नरः ॥ ६१ ॥
ख्यातमायतनं तत्र नन्दिसिद्धनिषेवितम् । नन्दीश्वरस्य यो मूर्तिर्दुराचारैर्न दृश्यते ॥ ६२ ॥
दृश्यन्ते काञ्चना यूपाः सञ्छिप्ये भास्करोदये । कृत्वा प्रदक्षिणं ते तु गच्छन्त्यन्तर्हिता दिवम् ॥ ६३ ॥
सर्वतश्च कुरुक्षेत्रं सुतीर्थं च विशेषतः । पुण्यं सनत्कुमारस्य योगेशस्य महात्मनः ॥
कीर्त्यते च तिलान्दत्त्वा पितॄणां वै सदाऽक्षयम् ॥ ६४ ॥
ओजसे चाक्षयं श्राद्धं धर्मराजनिवेशने । श्राद्धं दत्तममावस्यां विधिना च यथाक्रमम् ॥ ६५ ॥
पुनः सन्निहितानां वै कुरुक्षेत्रे विशेषतः । अर्चयेद्वा पितॄंस्तत्र सत्पुत्रस्त्वनृणो भवेत् ॥ ६६ ॥

सिन्धुसागर सम्मेद तथा पंचनद तीर्थ में अक्षय फल की प्राप्ति होती है, कीरकात्मा नामक पुण्य तीर्थ भी है, पर्वत पर अवस्थित पण्डवा तीर्थ में भी अक्षय फलप्राप्ति होती है । सप्तरद तीर्थ में विशेषतया मानसतीर्थ में श्राद्धकर्म अवश्य करना चाहिए । महाकूट, वन्द एवं त्रिककुद पर्वत पर भी श्राद्धकर्म करना चाहिए ॥५६-५७ ॥

महावेदी में सन्ध्या के अवसर पर महान् आश्चर्य दिखायी पड़ता है, किन्तु वह अश्रद्धा रखनेवाले नास्तिकों को नहीं प्राप्त होती, केवल व्रतपरायण श्रद्धालु ही को प्राप्त होती है । वहाँ पर जातवेद नामक अग्नि की सनातन काल से चली आनेवाली एक शिला है, उस पर श्राद्धादि एवं अग्निहोत्रादि कार्य सर्वदा करने चाहिए, क्योंकि उनका अक्षय फल होता है । पितरों को अक्षयरूप में श्राद्ध देने के इच्छुक व्यक्ति को इन तीर्थों में सर्वदा सायंकाल के समय श्राद्ध करना चाहिए ॥ ५८-५९ ॥

यहाँ पर कृतात्मा (पुण्यात्मा) और अकृतात्मा (पापात्मा) जन मालूम पड़ जाते हैं । वहाँ स्वर्ग्यमार्गप्रद नामक शीघ्र वर प्रदान करनेवाला सरोवर है जिसमें अपने पारस्परिक वैर भावों में छोड़कर सप्तर्षिगण स्वर्गगामी हुए थे । आज भी उनके विगत वैरभाव के चिह्न वहाँ दिखायी पड़ते हैं । उस उत्तम तीर्थ में स्नानकर मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त करता है । वहीं पर नन्दिकेश्वर एवं सिद्धगणों द्वारा सुसेवित प्रसिद्ध आयतन (स्थान) है । वहाँ नन्दिकेश्वर की जो मूर्ति है, वह दुराचारियों को नहीं दिखायी पड़ती । भास्कर के उदय होने पर वहाँ सुवर्ण के यूप (यज्ञ के खंभे) दिखाई पड़ते हैं । उनकी प्रदक्षिणा करके लोग अन्तर्हित होकर स्वर्गलोक को चले जाते हैं ॥ ६०-६३ ॥

योगपरायण महात्मा सनत्कुमार का पुण्यप्रद कुरुक्षेत्र सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठ माना गया है । ऐसा कहा जाता है कि वहाँ पर तिलों का दान करनें के लिए अक्षय तृप्ति दी जाती है । धर्मराज युधिष्ठिर के निवास स्थान पर किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायी एवं कीर्ति देनेवाला है । अमावस्या के अवसर पर विधिपूर्वक क्रमानुसार किया गया श्राद्ध तथोक्त फलदायी होता है । विशेषतया कुरुक्षेत्र के समीप निवास करनेवालों के लिए तो वह परम पवित्र है । सत्पुत्र अपने पितरों की वहाँ पूजा करके ऋणमुक्त हो जाता है । विनशन, सरस्वती के प्लक्षप्रश्रवण, सरस्वती के

विनशने सरस्वत्यां प्लक्षप्रश्रवणे तथा । व्यासतीर्थे सरस्वत्यां ब्रह्मक्षेत्रे विशेषतः ॥ ६७ ॥
देयमोङ्कारपठनैः श्राद्धमक्षयमिच्छता । सर्वतश्चैव गङ्गायां मैनाके च नगोत्तमे ॥ ६८ ॥
यमुनाप्रभवे इ चैव सर्वपापैः प्रमुच्यते । अत्युष्णाश्चातिशीताश्च आपस्तत्र निदर्शनम् ॥ ६९ ॥
यमस्य भगिनी पुण्या मार्तण्डदुहिता तथा । तत्राक्षयं तदा श्राद्धं पितृभिः पूर्वकीर्त्तितम् ॥ ७० ॥
ब्रह्मानुगह्रदे स्नात्वा सद्यो भवति ब्राह्मणः । तस्मिन् हि श्राद्धमानन्त्यं जपहोमतपांसि च ॥ ७१ ॥
स्थाणुभूतश्चरंस्तत्र वसिष्ठो वै महातपाः । अद्यापि यत्र दृश्यन्ते पादपा मणिचर्च्चिताः ॥ ७२ ॥
तुला तु दृश्यते यत्र धर्माधर्मप्रदर्शिनी । यया वै तुलितं विप्रैस्तीर्थानां फलमुत्तमम् ॥ ७३ ॥
पितॄणां दुहिता योगा गन्धकालीति विश्रुता । चतुर्थो ब्रह्मणश्चांशः पराशरकुलोद्वहः ॥ ७४ ॥
व्यस्य त्वेकं चतुर्द्धा तु वेदं धीमान् महामुनिः । महायोगं महात्मानं यो व्यासं जनयिष्यति ॥ ७५ ॥
अच्छोदकं नाम सरो यत्राच्छोदा समुच्छ्रिता । मत्स्ययोनौ पुनर्जाता नियोगाद्वारणेन तु ॥ ७६ ॥
तस्यां यत्राश्रमः पुण्यः पुण्यकृद्भिर्निषेवितः । सकृद्दत्तं तु वै श्राद्धमक्षयं समुदाहृतम् ॥
तस्यां योगसमाधाने दत्तं युगपदुद्भवेत् ॥ ७७ ॥
कुबेरतुङ्गे व्यामोच्चे व्यासतीर्थे तथैव च । पुण्यः स ब्राह्मणो दद्याच्छ्राद्धमानन्त्यमक्षयम् ॥ ७८ ॥
सिद्धैस्तु सेविता नित्यं दृश्यते नाकृतात्मभिः । अनिवर्तनं तु नन्दायां वेद्यां प्रागुत्तरे दिशि ॥ ७९ ॥

व्यासतीर्थ एवं ओंकारपवन में अक्षय श्राद्ध की इच्छा करने वाले श्राद्ध करें । गंगा में सर्वत्र श्राद्ध करना चाहिए, पर्वतश्रेष्ठ मैनाक पर श्राद्ध करने का विधान है ॥ ६४-६८ ॥

यमुना प्रभवतीर्थ में श्राद्ध करके मनुष्य समस्त पापों से निवृत्त हो जाता है । उसके अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त शीतल जल ही इस तीर्थ के प्रमाणस्वरूप हैं । यह परम पवित्र यमुना यम की भगिनी और मार्तण्ड की पुत्री हैं, उसमें किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायी होता है—ऐसे पूर्वकाल से पितरों के वचन है । उसमें श्राद्ध, जप एवं हवनादि करने का अनन्त फल है । महातपस्वी महर्षि वसिष्ठ स्थाणुरूप में वहाँ विचरण करते हैं, और आज भी यहाँ मणियों से चित्रित वृक्षों की पंक्तियाँ दिखायी पड़ती हैं । वहाँ पर धर्म एवं अधर्म को दिखानेवाली एक तुला (तराजू) दिखायी पड़ती है, जिस प्रकार तुलकर ब्राह्मणों के कथनानुसार उत्तम फल की प्राप्ति होती है ॥६९-७३॥

पितरों की योगपरायण कन्या जो गन्धकाली नाम से विख्यात है, वहाँ निवास करती है । भगवान् ब्रह्मा के चतुर्थ अंशस्वरूप, महर्षि पराशर के कुल में समुत्पन्न परम बुद्धिमान् महामुनि व्यासदेव हैं, जिन्होंने एक वेद का विस्तार कर चार भागों में विभाजन किया है, ऐसे परम योगीश्वर महात्मा व्यासदेव को वह उत्पन्न करेगी । वहाँ पर अच्छोदक नामक सरोवर है, जिसमें अच्छोदा नदी के रूप में वह प्रादुर्भूत हुई । पुनः वारण के नियोगवश वह मत्स्य योनि में उत्पन्न हुई । उसका जहाँ पर पवित्र आसन है, वहाँ पुण्यकर्त्ता जन सर्वदा निवास करते हैं । उस पवित्र स्थान पर एक बार का दिया हुआ श्राद्ध अक्षय माना गया है । उस अच्छोदा में श्राद्धदान करने से योग एवं समाधि की एक साथ उद्भावना होती है । कुबेतुङ्ग व्यामोच्च एवं व्यासतीर्थ में जो श्राद्धदान करता है, वह पुण्यकर्ता ब्राह्मण है, उसका श्राद्ध अनन्त एवं अक्षय फलदायी है ॥ ७४-७८ ॥

उस स्थान से पूर्व एवं उत्तर दिशा की ओर नन्दा नाम की वेदी है, जो पुनर्जन्म को रोकनेवाली है, अर्थात्

सिद्धक्षेत्रं तु वै जुष्टं यत्प्राप्य न निवर्त्तते। महालये पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता ॥ ८० ॥
देवालये तपस्तप्त्वा एकपादेन ईश्वरः। नीहारश्च युगं दिव्यमुमातुङ्गे स्थितं जलम् ॥ ८१ ॥
उमातुङ्गे भृगोस्तुङ्गे ब्रह्मतुङ्गे महालये। काद्रवत्यां च शाण्डिल्यां गुहायां वामनस्य च ॥ ८२ ॥
गत्वा चैतानि पूतः स्याच्छ्राद्धमक्षयमेव च। जपो होमस्तथा ध्यानं यत्किञ्चित्सुकृतं भवेत् ॥ ८३ ॥
ब्रह्मचर्यं यजन्ते वै गुरुभक्ताः शतं समाः। एवमादीनि सद्यस्तां स्नात्वा प्राप्नोति सत्फलम् ॥ ८४ ॥
कुमारधारा तत्रैव दृष्टा पापप्रणाशनी। यानासनं च तत्रैव सद्यः स्याद्यत् प्रदृश्यते ॥ ८५ ॥
शैलकीर्त्तिपुराभ्याशे कामानाप्नोति पुष्कलान्। अदृश्यः सर्वभूतानां देववच्चरते महीम् ॥ ८६ ॥
काश्यपस्य महातीर्थं कालसर्पिरिति श्रुतम्। तत्र श्राद्धानि देयानि नित्यमक्षयमिच्छता ॥ ८७ ॥
अक्षयं तु भवेच्छ्राद्धं शालग्रामसमन्ततः। दृष्ट्या न दृश्यते तत्र प्रत्यक्षमकृतात्मना ॥ ८८ ॥
प्रत्यादेशो ह्यशिष्टानां शिष्टानां च निवेशनम्। तत्र चैव ह्रदे पुण्ये दिव्यो वै नागराड् यतः ॥ ८९ ॥
पिण्डं गृह्णाति हि सतां न गृह्णात्यसतां हि सः। अतिप्रदीप्तैर्भुजगैर्भोक्तुमन्नं न शक्यते ॥ ९० ॥
प्रत्यक्षं दृश्यते धर्मस्तीर्थयोरनयोर्द्वयोः। देवदारुवने चापि चारयेस्तं निदर्शनम् ॥ ९१ ॥

वहाँ पर पिण्डदानादि करने से पुनर्जन्म नहीं होता। सिद्धजन उसका नित्य सेवन करते हैं, किन्तु अकृतात्माजन (पापीजन) उसे नहीं देख पाते। परम बुद्धिमान् महादेव ने जहाँ पर अपना चरणन्यास किया है, वह सिद्धों का क्षेत्र है, वहाँ पहुँचकर पुनर्जन्म नहीं होता। देवी के उस पवित्र आयतन में ईश्वर (महादेव) ने एक चरण पर स्थिर होकर कठोर तपस्या की थी। वहाँ पर उमातुङ्ग में नीहार (बरफ) और जल एक देवयुग से स्थित हैं ॥ ७९-८१ ॥

उस उमातुङ्ग, भृगुतुङ्ग, ब्रह्मतुङ्ग महालय, काद्रवती, शांडिलीगुफा, वामनगुफा आदि पवित्र तीर्थों की यात्रा कर मनुष्य पवित्रात्मा हो जाता है, इन सब तीर्थों में किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायी कहा गया है, जप, हवन, ध्यान अथवा जो कुछ भी सत्कर्म यहाँ किये जाते हैं, सब अक्षय फलदायी होते हैं ॥ ८२-८३ ॥

वहाँ पर ब्रह्मचर्य में निरत रहनेवाले गुरुभक्त विद्यार्थीगण सैकड़ों वर्षों तक यज्ञादि का अनुष्ठान करते रहते हैं। उस पवित्र तीर्थ में स्नान करके ये उपर्युक्त फल शीघ्र ही प्राप्त किये जा सकते हैं। वहीं पर पापों को नष्ट करनेवाली कुमारधारा का दर्शन होता है, वहाँ यान (वाहन) एवं आसन का लाभ करते हुए शीघ्र ही देखा जाता है। शैलकीर्ति नामक पवित्र तीर्थ में स्नान करके मनुष्य अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है। सभी प्राणियों से अदृश्य होकर वह देवताओं की तरह पृथ्वी पर विचरण करता है। काश्यप का परम प्रसिद्ध कालसर्प नामक महान् तीर्थ सुना गया है, अक्षय श्राद्ध के इच्छुक मनुष्यों को वहाँ नित्य श्राद्धदान करना चाहिए। शालग्राम के चारों ओर किया गया श्राद्धकर्म अक्षय रूप में प्राप्त होता है, किन्तु पापात्माओं को वह परम पवित्र तीर्थ प्रत्यक्ष होने पर भी आँखों से नहीं दिखायी पड़ता ॥ ८४-८८ ॥

उस पवित्र तीर्थ में अशिष्ट लोगों का जाना वर्जित है, केवल शिष्टजन ही उसमें प्रवेश पा सकते हैं। वहाँ के पुण्य सरोवर में निवास करनेवाला नागराज केवल सत्पुरुषों द्वारा दिये गए पिण्डों का भक्षण करता है, और असत्पुरुषों द्वारा दिये गए पिण्डों का भक्षण नहीं करता। वह अपने साथ रहनेवाले असंख्य प्रचण्ड सर्पों समेत भी उस पापात्मा के अन्न का भक्षण करने में अशक्त रह जाता है। इन उपर्युक्त दोनों पवित्र तीर्थों में धर्म को प्रत्यक्ष

विधूतानि तु पापानि दृश्यन्ते सुकृतात्मना । भागीरथ्यां प्रयागे च नित्यमक्षय्यमुच्यते ॥ ९२ ॥
कालञ्जरे दशार्णायां नैमिषे कुरुजाङ्गले । वाराणस्यां नगर्यां तु देयं श्राद्धं तु यत्नतः ॥ ९३ ॥
तस्यां योगेश्वरो नित्यं तत्तस्यां दत्तमक्षयम् । दत्त्वा चैतेषु पूतः स्याच्छ्राद्धमानन्त्यमेव च ॥ ९४ ॥
तपो होमस्तथा ध्यानं यत् किञ्चित्सुकृतं भवेत् । लौहित्ये वैतरण्यां वै स्वर्णवेद्यां तथैव च ॥ ९५ ॥
सकृदेव समुद्रान्ते दृश्यते पुण्यकर्मभिः । गयायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा ॥ ९६ ॥
गयायां गृध्रकूटे च श्राद्धं दत्तं महाफलम् । हिमं च पतते तत्र समन्तात्पञ्चयोजनम् ॥ ९७ ॥
भरतस्याश्रमे पुण्येऽरण्यं पुण्यतमं स्मृतम् । मतङ्गस्य पदं तत्र दृश्यते मांसचक्षुषा ॥ ९८ ॥
ख्यापितं धर्मसर्वस्वं लोकस्यास्य निदर्शनम् । एवं पञ्चवनं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ॥
यस्मिन्पाण्डुविशालेति तीर्थं सद्यो निदर्शनम् ॥ ९९ ॥
तुलामानैस्तथा चापैः शास्त्रैश्च विविधैस्तथा । उन्मज्जन्ति तथा लग्ने ये वै पापकृतोजनाः ॥ १०० ॥
तृतीयायां तथा पादे निःस्वरे पावमण्डले । महाह्रदे वै कौशिक्यां दत्तं श्राद्धं महाफलम् ॥ १०१ ॥
मुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता । बहून्देवयुगांस्तप्त्वा तपस्तीव्रं सुदुश्चरम् ॥ १०२ ॥
अल्पेनाप्यत्र कालेन नरो धर्मपरायणः । पाप्मानमुत्सृजत्याशु जीर्णत्वचमिवोरगः ॥ १०३ ॥

देखा जाता है, देवदारु वन में भी यह निदर्शन पाया जाता है, सुकृती जनों के पाप तो यहाँ दूर होते दिखायी पड़ते हैं। भागीरथी और प्रयाग में भी श्राद्ध का अक्षय फल कहा गया है ॥ ८९-९२ ॥

कालंजर, दशार्ण, नैमिष, कुरुजाङ्गल तथा वाराणसी नगरी-इन पवित्र तीर्थों में मनुष्य को प्रयत्न करके श्राद्धकर्म सम्पन्न करना चाहिए। वाराणसी नगरी में योगेश्वर शंकर का नित्य निवास रहता है, अतः उसमें पिण्डदान करने से अक्षय फल की प्राप्ति होती है। इन पवित्र तीर्थों में पिण्डदान करके मनुष्य पवित्रात्मा हो जाता है, उसका श्राद्ध अनन्त फलदायी होता है। इसी प्रकार जप, हवन एवं अन्यान्य सत्कर्मों का भी अक्षयफल वहाँ होता है। लौहित्य वैतरणी एवं स्वर्ण वेदी में भी श्राद्धकर्म के यही फल कहे गए हैं ॥ ९३-९५ ॥

पुण्यकर्म परायणों ने समुद्रान्त में केवल एक श्राद्ध करने का विधान देखा है। गङ्गा, धर्मपृष्ठ, ब्रह्मसरोवर, गया, गृध्रकूट, प्रभृति तीर्थों में श्राद्धदान का महान् फल है, उसके चारों ओर पाँच योजन तक बरफ गिरता है। भरत के पवित्र, पुण्यप्रद आश्रम में जो अरण्य है, वह परम पुण्यदायी कहा गया है। उस पवित्र अरण्य में मांस नेत्रधारी मनुष्य को भी मतंग ऋषि का आश्रम दिखायी पड़ता है ॥ ९६-९८ ॥

यह परम पवित्र डुबकी तीर्थ धर्म सर्वस्व के रूप में प्रसिद्ध किया गया है, एवं इस लोक का धर्म निदर्शक है। इसी प्रकार पञ्चवन नामक पुण्यप्रद तीर्थ भी पुण्यात्माओं द्वारा सुसेवित है। उस पञ्चवन तीर्थ में पाण्डुविशाला नामक तीर्थ धर्म का प्रत्यक्ष निदर्शन है। जो पाप करनेवाले मनुष्य होते हैं, वे वहाँ तुलामान चाप और विविध शस्त्रों समेत लग्न आने पर लगाते हैं। तृतीया में पद में निःस्वर, पावमण्डल नामक महाह्रद में तथा कौशिकी में दिया गया श्राद्ध महाफल देनेवाला होता है। परम बुद्धिमान् महादेव ने मुण्डपृष्ठ में अपना पदन्यास किया था, अनेक देव युगों तक परम कठोर एवं दुर्गम तपस्या उन्होंने वहाँ की थी। धर्म में आस्था रखनेवाला मनुष्य बहुत थोड़े समय में ही वहाँ अपने समस्त पापकर्मों को सर्प की केंचुल की भाँति छोड़ देता है ॥ ९९-१०३ ॥

सिद्धानां प्रीतिजननैः पापानां च भयंकरैः । लेलिहानैर्महाभोगै रक्षितं तु दिवानिशम् ॥ १०४ ॥
नाम्ना कनकनन्दीति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । उदीच्यां मुण्डपृष्ठस्य देवर्षिगणसेवितम् ॥
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति कामचारा विहंगमाः ॥ १०५ ॥
दत्तं चापि तथा श्राद्धमक्षयं समुदाहृतम् । ऋणैस्त्रिभिस्तदा स्नात्वा निक्षिणोति नरोत्तमः ॥ १०६ ॥
तीरे तु सरसस्तत्र देवस्यायतनं महत् । आरुह्य तज्जपंस्तत्र सिद्धो याति दिवं ततः ॥ १०७ ॥
उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् । तत्र गत्वा पुरश्रेष्ठं दृश्यते महदद्भुतम् ॥ १०८ ॥
तस्मिन्निर्वर्तयेच्छ्राद्धं यथाशक्ति यथाबलम् । कामान् स लभते दिव्यान् मोक्षोपायं च नित्यशः ॥ १०९ ॥
मानसे सरसि श्रेष्ठे दृश्यते महदद्भुतम् । दिवश्च्युता महाभागा ह्यन्तरिक्षे विराजते ॥ ११० ॥
गङ्गा त्रिपथगा देवी सोमपादाच्युता भुवि । आकाशे दृश्यते तत्र तोरणं सूर्यसंनिभम् ॥ १११ ॥
जाम्बूनदमयं दिव्यं स्वर्गद्वारमिवायतम् । यतः प्रवर्त्तते भूयः पूर्वसागरमन्तिमम् ॥ ११२ ॥
पावनी सर्वभूतानां धर्मज्ञानां विशेषतः । चन्द्रभागा च सिन्धुश्च उभौ मानससन्निभौ ॥
सागरं पश्चिमं याति दिव्यसिन्धुर्नदीवरः ॥ ११३ ॥
पर्वतो हिमवान्नाम नानाधातुविभूषितः । योजनानां सहस्राणि आयतोऽशीतिरुच्यते ॥ ११४ ॥

वह परम पुनीत तीर्थ सिद्ध जनों के लिए प्रीतिकारी, पापात्माओं के लिए परम भयंकर एवं अपनी विशाल दाढ़ों को लपलपानेवाले महान् सर्पों से रात-दिन सुरक्षित है । उस मुण्डपृष्ठ तीर्थ के उत्तर देवताओं ऋषियों के समूहों से सुसेवित तीनों लोकों में परम विख्यात कनकनन्दी नामक तीर्थ है । वहाँ पर स्नान करके इच्छानुरूप विचरण करनेवाले विहंगम स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं । वहाँ पर दिया गया श्राद्ध अक्षय फलदायी कहा गया है । उत्तम मनुष्य उस पुनीत तीर्थ में स्नान करके तीनों ऋणों से मुक्त होते हैं । सरोवर के तीर पर देव का विशाल मन्दिर है, उस पर आरूढ़ होकर मन्त्र जप करने से सिद्ध होता है तदनन्तर स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥ १०४-१०७ ॥

उत्तर और मानस तीर्थ की यात्रा करने से परम सिद्धि की प्राप्ति होती है । वहाँ जाने से सुरश्रेष्ठ का प्रत्यक्ष दर्शन होता है, जो अत्यन्त आश्चर्य का विषय है । वहाँ जाकर अपनी शक्ति एवं पराक्रम के अनुसार श्राद्धकर्म सम्पन्न करना चाहिए, जो ऐसा करता है वह दिव्य मनोरथों की प्राप्ति करता है एवं मोक्ष का उपाय सुलभ करता है । परम श्रेष्ठ उस मानस सरोवर में एक महान् आश्चर्य दिखायी पड़ता है, वहाँ पर महाभाग्यशालिनी त्रिपथगामिनी गङ्गा देवी आकाशमार्ग से च्युत होकर अन्तरिक्ष में विराजमान हैं । वह देवी वहीं पर चन्द्रमण्डल से पृथ्वीतल पर गिरी हैं । वहाँ आकाशमण्डल में सूर्य के समान परम तेजोमय तोरण दिखायी पड़ता है, जो सुवर्णमय तथा स्वर्ण के द्वार की भाँति विस्तृत है । वहीं से जीवों की विशेषतया धर्म के मर्म को जाननेवालों की उद्धार करनेवाली चन्द्रभागा नामक नदी निकलकर पूर्व के समुद्र में गिरती है ॥ १०८-११२ ॥

चन्द्रभागा और सिन्धु ये दोनों नदियाँ मानस सरोवर की भाँति पुण्यदायी एवं पवित्र हैं, नदियों में श्रेष्ठ दिव्य गुणयुक्त सिन्धु पश्चिम के समुद्र में गिरती है, विविध प्रकार के धातुओं से विभूषित हिमवान् नामक पर्वत है, जो अस्सी सहस्र योजन विस्तृत कहा जाता है, सिद्धों एवं चारणों के समूहों से वह पर्वतराज भरा पड़ा है । उसमें सुषुम्ना नामक एक परम मनोहर पुष्करिणी है, उसमें जन्म लेनेवाला प्राणी दस सहस्र वर्ष जीवित रहता है,

सिद्धचारणसंकीर्णः सिद्धचारणसेवितः । तत्र पुष्करिणी रम्या सुषुम्ना नाम विश्रुता ॥ ११५ ॥
दशवर्षसहस्राणि तत्र जातस्तु जीवति । श्राद्धं भवति चानन्त्यं तस्यां दत्तं महोदयम् ॥
तारयेच्च यदा श्राद्धं दशपूर्वान्दशापरान् ॥ ११६ ॥
सर्वं पुण्यं हिमवतो गङ्गा पुण्या च सर्वतः । समुद्रगाः समुद्राश्च सर्वे पुण्याः समन्ततः ॥ ११७ ॥
एवमादिषु सर्वेषु श्राद्धं निर्वर्त्तयेद्बुधः । पूतो भवति स्नात्वा नु दत्त्वा दत्त्वा तथैव च ॥ ११८ ॥
शैलसानुषु तुङ्गेषु कन्दरेषु गुहासु च । उपह्वरनितम्बेषु तथा प्रस्रवणेषु च ॥ ११९ ॥
पुलिनेष्वापगानां च तथैव प्रभवे युगे । महोदधौ गवां गोष्ठे संगमेषु वनेषु च ॥ १२० ॥
असंसृष्टोपलिप्तासु हृद्यासु सुरभीषु च । गोमयेनोपलिप्तेषु विविक्तेषु गृहेषु च ॥ १२१ ॥
कुर्याच्छ्राद्धमथैतेषु नित्यमेव यथाविधि । प्रदक्षिणं दिशं गत्वा सर्वकामचिकीर्षवः ॥ १२२ ॥
एवमेतेषु सर्वेषु श्राद्धं कुर्यातदन्द्रितः । एवमेव तु मेधावी ब्राह्मीं सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १२३ ॥
त्रैवर्ण्ये विहिते स्थाने धर्मवर्णाश्रमे तथा । कोपस्थानस्य संत्यागात्प्राप्यते पितृपूजनम् ॥ १२४ ॥
तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः । कृतपापश्च शुद्ध्येत किं पुनः शुभकर्मकृत् ॥ १२५ ॥
तिर्यग्योनिं न गच्छेच्च कुदेशे न च जायते । स्वर्गी भवति वै विप्रो मोक्षोपायं च विन्दति ॥ १२६ ॥
अश्रद्दधानाः पाप्मानो नास्तिकाः स्थितसंशयाः । हेतुद्रष्टा च पञ्चैते न तीर्थफलमश्नुते ॥ १२७ ॥
गुरुतीर्थे परा सिद्धिस्तीर्थानां परमं पदम् । ध्यानं तीर्थपरं तस्माद्ब्रह्मतीर्थं सनातनम् ॥ १२८ ॥

उसमें दिया हुआ श्राद्ध महान् उन्नति करनेवाला तथा अनन्तफलदायी होता है, उसमें श्राद्ध करके मनुष्य अपनी दस अगली और दस पिछली पीढ़ियों को तारता है ॥ ११३-११६ ॥

हिमवान् पर्वत का प्रत्येक स्थल पुण्यदायी है, गंगा में सर्वत्र पुण्य है । इसी प्रकार समुद्र में गिरनेवाली अन्यान्य नदियाँ तथा स्वयं समुद्र भी सर्वत्र श्राद्धकर्मों में पुण्यदायी कहा गया है । बुद्धिमान् पुरुष इन उपर्युक्त एवं अन्यान्य पवित्र तीर्थों में श्राद्धक्रिया सम्पन्न करे । पवित्र तीर्थों में स्नान एवं दान करके मनुष्य पवित्र हो जाता है। उच्च गिरिशिखर पर, कन्दरा एवं गुफाओं में पर्वतों उपत्यकाओं एवं झरनों के समीप, नदियों के तटों पर, युगारम्भ की तिथियों, महासमुद्र के तट पर गौओं की शाला में, नदियों के संगम पर, वनों में स्वच्छ लिपी-पुती मनोहर पृथ्वी पर, गोबर से लिपे हुए एकान्त घर में नित्य ही विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिए । सभी मनोरथों की प्राप्ति का इच्छुक मनुष्य इन स्थानों पर श्राद्ध एवं प्रदक्षिणा कर सफल होता है ॥ ११७-१२२ ॥

सर्वदा इन्हीं स्थानों में आलस्यादि छोड़कर सावधान मन से श्राद्ध करना चाहिए । इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मत्व की सिद्धि प्राप्त कर सकता है । क्रोधादि को सर्वथा छोड़ने पर तीनों उच्च वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) से किये धर्म एवं वर्णाश्रम की मर्यादा से अनुमोदित विधि के अनुसार दान करने पर पितरों की पूजा का फल प्राप्त होता है । पापात्मा भी इन उपर्युक्त पवित्र तीर्थों को यात्रा धैर्य एवं श्रद्धापूर्वक इन्द्रियों को स्ववश रख यदि करे तो शुद्ध हो जाता है, शुभ कर्म करनेवालों के लिए तो कुछ कहना ही नहीं है । इन तीर्थों की यात्रा करनेवाला पाप करनेवाला भी विप्र तिर्यक् योनि में कभी जन्म नहीं लेता और न बुरे स्थानों में ही उसका जन्म होता है, प्रत्युत वह स्वर्ग प्राप्त करता है, मोक्ष के उपाय उसे सुलभ हो जाते हैं ॥ १२३-१२६ ॥

उपवासात्परं ध्यानमिन्द्रियाणां निवर्तनम् । उपवासनिबद्धा हि प्राणैरिह पुनः पुनः ॥ १२९ ॥
प्राणापानौ समौ कृत्वा विषयाणीन्द्रियाणि च । बुद्धिं मनसि संयम्य सर्वेषां तु निवर्तनम् ॥ १३० ॥
प्रत्याहारं पुनर्विद्धि मोक्षोपायमसंशयम् । इन्द्रियाणां मनो घोरं बुद्ध्यादीनां प्रवर्तनम् ॥ १३१ ॥
अनाहारात्क्षयं याति विद्यादनशनं तपः । निग्रहाद्बुद्धिमनसो रम्या बुद्धिस्तु जायते ॥ १३२ ॥
क्षीणेषु सर्वपापेषु क्षीणेष्वेवेन्द्रियेषु च । परिनिर्वाति शुद्धात्मा यथा वह्निर्निरिन्धनः ॥ १३३ ॥
कारणेभ्यो गुणेभ्योऽथ व्यक्ताव्यक्तस्य कृत्स्नशः। वियोजयति क्षेत्रज्ञं तेभ्यो योगेनयोगवित् ॥ १३४ ॥
तस्य नास्ति गतिस्थानं व्यक्ताव्यक्तं न संशयः । आसन्नः सदसन्नैव नैव किञ्चित् स्थित इति ॥ १३५ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पे तीर्थयात्रा नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

* * *

श्रद्धा न करनेवाले, पापात्मा, परलोक न माननेवाले अथवा वेदों के निन्दक, स्थिति में सन्देह रखनेवाले संशयात्मा एवं सभी पुण्य कार्यों में किसी कारण अन्वेषण करनेवाले कुतर्की-इन पाँचों को इन पवित्र तीर्थों का फल नहीं प्राप्त होता । गुरु रूपी तीर्थ में परम सिद्धि प्राप्त होती है, वह सभी तीर्थों से श्रेष्ठ है । उससे भी श्रेष्ठ तीर्थ ध्यान है, यह ध्यान साक्षात् ब्रह्म तीर्थ है, इसका कभी विनाश नहीं होता ॥ १२७-१२८ ॥

उपवास से भी यह ध्यान श्रेष्ठ है । यह सभी इन्द्रियों को उनके विषयों से निवृत्त करनेवाला है । उपवास से बँधे रहनेवाले व्यक्तिगण प्राणों से विमुक्त होकर इस लोक में पुन: पुन: जन्म धारण करते हैं । प्राण एवं अपान वायु—इन दोनों को समान करके इन्द्रियों, उनके विषयों और बुद्धि को मन में बाँधने पर सब की निवृत्ति हो जाती है । मोक्ष के साधनभूत प्रत्याहार (इन्द्रियों को उनके विषयों से अलग रखना) को पुनः सुनिये । समस्त इन्द्रियों में मन परम चञ्चल और घोर है, बुद्धि आदि सबको यही परिचालित करता है ॥ १२९-१३१ ॥

निराहार रहने से मन की चञ्चलता और कठोरता नष्ट हो जाती है । अतः अनशन को परम तप जानना चाहिए । चंचल बुद्धि और मन इन दोनों को वश में रखने से सुन्दर बुद्धि उत्पन्न होती है । समस्त पापकर्मों के क्षीण हो जाने पर एवं इन्द्रियों के क्षीण हो जाने पर (वश में आ जाने पर) आत्मा शुद्ध होकर इन्धनरहित अग्नि की तरह निर्वाण प्राप्त करती है । समस्त व्यक्त-अव्यक्त वस्तुओं के कारण एवं गुणों से योगीजन अपनी आत्मा को वियुक्त करते हैं, जिसके फलस्वरूप इस जन्म के उपरान्त उनकी न कोई गति होती है, न कोई स्थान रहता है, निश्चय ही वे व्यक्त एवं अव्यक्त किसी में नहीं रहते । न ये सत् हैं न असत्, उनकी स्थिति के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता ॥ १३२-१३५ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में श्राद्धकल्प में तीर्थयात्रा नामक पन्द्रहवें अध्याय (सतत्तरवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १५ ॥**

* * *

अथ षोडशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः

बृहस्पतिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानानि च फलानि च । श्राद्धकर्माणि मेध्यानि वर्जनीयानि यानि च ॥ १ ॥
हिमप्रपतने कुर्यादाहरेद्वा हिमं ततः । अग्निहोत्रमतः पुण्यं परमं हि ततः स्मृतम् ॥ २ ॥
नक्तं तु वर्जयेच्छ्राद्धं राहोरन्यत्र दर्शनात् । सर्वस्वेनापि कर्त्तव्यं क्षिप्रं वै राहुदर्शने ॥ ३ ॥
उपरागे न कुर्याद्यः पङ्के गौरिव सीदति । कुर्वाणस्तूद्धरेत्पापान्मग्नान्नौरिव सागरे ॥ ४ ॥
विश्वदेवं च सौम्यं च बहुमांसपरं हविः । विषाणं वर्जयेत्खाड्गमसूयानाशनाय वै ॥ ५ ॥
त्वष्टा वै वार्य्यमाणस्तु देवेशेन महात्मना । पिबञ्छचीपतेः सोमं पृथिव्यामपतत्पुरा ॥ ६ ॥

सोलहवाँ अध्याय

(अठत्तरवाँ अध्याय)

श्राद्धकल्प

श्रीबृहस्पति जी ने कहा—अब इसके बाद मैं श्राद्धकर्म में दिये जाने वाले दान एवं उनसे प्राप्त होने वाले फलों के बारे में कह रहा हूँ, यह भी कहता हूँ कि श्राद्ध में कौन-कौन सी वस्तुएँ पवित्र हैं और कौन-सी वर्जित रखी गई हैं ॥ १ ॥

हिम गिरते समय हिम को हटावे अर्थात् जाड़े का समय व्यतीत कर लेने के उपरान्त वसन्त एवं ग्रीष्म काल में अग्निहोत्र करना चाहिए। यह विधि परम पुण्यप्रद कही जाती है। रात्रि के समय श्राद्धकर्म न करे। रात्रि के बिना अन्य अवसर पर राहु के दर्शन के समय सभी कार्य छोड़ करके शीघ्र ही श्राद्धकर्म करना चाहिए। जो व्यक्ति ग्रहण के अवसर पर श्राद्धकर्म नहीं करता है वह कीचड़ में फँसी गाय की तरह यातना सहता है और जो श्राद्ध करता है वह अपने पापों के सागर में मग्न नाव की तरह उद्धार पा जाता है ॥ २-४ ॥

हे विश्वदेव ! सौम्य और प्रचुर मांस से युक्त हवि और गैंडे का सींग पितरों का द्वेष नष्ट करने के लिए वर्जित रखना चाहिए। पूर्वकाल में महात्मा देवेश के निषेध करने के बाद भी विश्वकर्मा ने इन्द्र के सोमरस का पान किया था, उनके पान करते समय वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, जो साँवाँ के रूप में उत्पन्न हुआ। अतः पितरों के लिए वह पूजित माना गया। उसी समय पीते हुए त्वष्टा के अशक्त नासिका के छिद्रों से उस सोम रस की कुछ बूँदें

श्यामाकास्तु तथोत्पन्नाः पित्रर्थमपि पूजिताः । विप्रुषस्तस्य नासाभ्यामसक्ताभ्यां तथैव च ॥ ७ ॥
श्लेष्माणः शीतला हृद्या मधुराश्च तथेक्षवः। श्यामाकैरिक्षुभिश्चैव पितॄणां सार्वकामिकम् ॥
कुर्यादाग्रयणं यस्तु स शीघ्रं सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ८ ॥
श्यामाका हस्तिनामा च पटोलं बृहतीफलम् । अगस्त्यस्य शिखा तीव्रा कषायाः सर्व एव च ॥ ९ ॥
एवमादीनि चान्यानि स्वादूनि मधुराणि च । नागरं चात्र वै देयं दीर्घमूलकमेव च ॥ १० ॥
वंशीकरीराः सुरसाः सर्जकं भूस्तृणानि च । वर्जनीयानि वक्ष्यामि श्राद्धकर्मणि नित्यशः ॥ ११ ॥
लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुः पिण्डमूलकम् । करम्भाद्यानि चान्यानि हीनानि रसगन्धतः ॥ १२ ॥
श्राद्धकर्मणि वर्ज्यानि कारणं चात्र वक्ष्यते । पुरा देवासरे युद्धे निर्जितस्य बलेः सुरैः ॥ १३ ॥
व्रणेभ्यो विस्फुरन्तो वै पतिता रक्तबिन्दवः । तत एतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्मणि नित्यशः ॥ १४ ॥
अथ वेदोक्तनिर्यासान् लवणान्यूषरणानि च । श्राद्धकर्मणि वर्ज्यानि याश्च नार्योरजस्वलाः ॥ १५ ॥
दुर्गन्धं फेनिलं चैव तथा वै पल्वलोदकम् । न लभेद्यत्र गौस्तृप्तिं नक्तं यच्चैव गृह्यते ॥ १६ ॥
आविकं मार्गमौष्ट्रं च सर्वमेकशफं च यत् । माहिषं चामरं चैव पयो वर्ज्यं विजानता ॥ १७ ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि वर्ज्यान् देशान् प्रयत्नतः। न द्रष्टव्यं च यैः श्राद्धं शौचाशौचं च कृत्स्नशः ॥ १८ ॥

भी पृथ्वी पर गिरीं जो ईख (गन्ना) के रूप में उत्पन्न हुईं । इसी कारण ईख शीतलता प्रदान करनेवाली, रुचिकर, मधुर और कफकारक होता है । इन साँवाँ और ईख से पितरों की सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं । जो इन दोनों वस्तुओं को श्राद्धकर्म में निवेदित करता है वह बहुत जल्दी सिद्धि प्राप्त करता है ॥ ५-८ ॥

साँवाँ, हस्तिनाम, पटोल, बृहतीफल, अगस्त्य की तीखी शिखाएँ, ये सभी कषाय स्वाद वाले कहे गए हैं । इसी प्रकार अन्यान्य स्वादिष्ट एवं मधुर द्रव्य पितरों को अति प्रिय हैं । श्राद्धकर्म में नागर और दीर्घमूलक का भी प्रयोग करना चाहिए । इसी प्रकार वंशी, करीर, सुरसा, सर्जक और भूस्तृण भी निवेदित करना चाहिए । श्राद्धकर्म में जो वर्जित वस्तुएँ सदैव वर्जित हैं, उन्हें कहता हूँ । लहसुन, गाजर, प्याज, पिण्डमूलक, करम्भ आदि वस्तुएँ जो रस और गन्ध से निन्द्य हैं, उन्हें श्राद्धकर्म में त्याग देना चाहिए, इसका कारण यह है कि पूर्वकाल में देव-दानव के युद्ध में देवताओं द्वारा पराजित बलि के शरीर के घावों से जो रक्त के विन्दु निकलकर पृथ्वी पर गिरे, वे ही इन वस्तुओं के रूप में उत्पन्न हुए अतः श्राद्धकर्म में इनको सदैव वर्जित रखना चाहिए ॥ ९-१४ ॥

वेद में गिनाये गए सभी प्रकार के गोंद (निर्यास) द्रव्य, लवण एवं ऊषण अर्थात् पिप्पलीमूल एवं चीता आदि वस्तुएँ भी श्राद्धकर्म में वर्जित की गईं हैं । इसी प्रकार जो रजस्वला स्त्रियाँ हों, वे भी श्राद्धकर्म में प्रवृत्त न हों । दुर्गन्धियुक्त, फेनों से व्याप्त, छोटे गड्ढों का जिसमें गौओं की तृप्ति नहीं होती, जो रात में ग्रहण किया गया हो, भेंड, मृग, बकरी, ऊंट एवं अन्य एक खुरवाले पशुओं से पीकर दूषित किया गया, महिष, चमर आदि अन्य पशुओं द्वारा गंदला किए गए जल को भी विद्वान् पुरुष श्राद्धकर्म में उपयोग न करें ॥ १५-१७ ॥

अब इसके बाद मैं उन स्थानों को बताने की चेष्टा करूंगा, जिन्हें श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिए । इसके अतिरिक्त उन लोगों को भी बतला रहा हूँ जिन्हें श्राद्धकर्म का दर्शन भी नहीं करना चाहिए । इस प्रकार सभी प्रकार की पवित्रता एवं अपवित्रता के बारे में कहता हूँ । श्रद्धापूर्वक वन में उत्पन्न होनेवाले मूल एवं फलों के आहारों

वन्यमूलफलाहारैः श्राद्धं कुर्यात्तु श्रद्धया । राष्ट्रमिष्टमवाप्नोति स्वर्गं मोक्षं यशस्करम् ॥ १९ ॥
अनिष्टशब्दसंकीर्णं जन्तुव्याप्तमथापि वा । पूतिगन्धां तथा भूमिं श्राद्धकर्मणि वर्जयेत् ॥ २० ॥
नद्यः सागरपर्यन्ता द्वारं दक्षिणपूर्वतः । त्रिशकुं वर्जयेद्देशं सर्वं द्वादशयोजनम् ॥ २१ ॥
उत्तरेण महानद्या दक्षिणेन च कैकटात् । देशस्त्रैशङ्कवो नाम वर्जितः श्राद्धकर्मणि ॥ २२ ॥
कारङ्कराः कलिङ्गाश्च सिन्धोरुत्तरमेव च । प्रनष्टाश्रमधर्माश्च वर्ज्या देशाः प्रयत्नतः ॥ २३ ॥
नग्नादयो न पश्येयुः श्राद्धमेवं व्यवस्थितम् । गच्छन्ति तैस्तैर्दृष्टानि न पितृन्न पितामहान् ॥ २४ ॥

शंयुरुवाच

नग्नादीन् भगवन् सम्यङ्ममाद्य परिपृच्छतः । कथय द्विजमुख्याग्र विस्तरेण यथातथम् ॥ २५ ॥
एवमुक्तो महातेजा बृहस्पतिरुवाच तम् । सर्वेषामेव भूतानां त्रयीसंवरणं स्मृतम् ॥ २६ ॥
परित्यजति यो मोहात्ते वै नग्ना द्विजोत्तमाः । प्रलीयते नरो यः स्यान्निरालम्बश्च यो वृषः ॥ २७ ॥
वृषं यश्च परित्यज्य मोक्षमन्यत्र मार्गति । वृषो वेदसमस्तस्मिन् यो वै सम्यङ्न पश्यति ॥ २८ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या वृषलाश्चैव सर्वशः । पुरा देवासुरे युद्धे निर्जितैरसुरैस्तदा ॥ २९ ॥
पाषण्डवैकृतस्थाने नैषा सृष्टिः स्वयम्भुवा । द्विश्राद्धकश्च निर्ग्रन्थाः शाक्या पुष्टिकलंशकाः ॥ ३० ॥

से श्राद्धकर्म सम्पन्न करना चाहिए । ऐसा करने वाले को राष्ट्र मित्र की भाँति सम्मान देता है, उसके यश की वृद्धि होती है तथा स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥ १८-१९ ॥

अनिष्टकारी शब्दों से एवं जीव-जन्तुओं से व्याप्त, दुर्गन्धियुक्त भूमि को श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिए। सागर तक जाने वाली समस्त नदियाँ, दक्षिण-पूर्व के द्वार एवं त्रिशङ्कु देश—इनको बारह योजन दूर से ही त्याग देना चाहिए । यह त्रिशंकु देश महानदी के उत्तर कैकट देश से दक्षिण दिशा में फैला हुआ है, यह श्राद्धकर्म में वर्जित है । कारस्कर, कलिङ्ग, सिन्धु के उत्तरवर्ती देश एवं वे देश जहाँ पर वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो चुका है, उसे भी प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध में त्याग देना चाहिए । नंगे और असंस्कृत लोग श्राद्धकर्म न देखें ऐसा कहा गया है । उन लोगों द्वारा देखे जाने पर श्राद्ध की वस्तुएँ पितामहादि पितरों को प्राप्त नहीं होतीं ॥ २०-२४ ॥

शंयु ने कहा—'हे भगवन् ! वे नंगे आदि कौन हैं? हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों में पूज्य ! मैं उनके बारे में जानना चाहता हूँ, विस्तारपूर्वक उनका यथातथ्य वर्णन कीजिये । शंयु के इस प्रकार पूछने पर महातेजस्वी बृहस्पति ने उनसे कहा । संसार के सभी मनुष्यों के लिए तीनों वेद शान्ति प्रदान करने वाले कहे गए हैं । जो लोग अज्ञानवश उनको छोड़ देते हैं, वे नंगे हैं । मनुष्य जब वेद से विमुख हो जाता है तब वह वेद रूपी वृष निरवलम्ब (आधाररहित) हो जाता है ॥ २५-२६ ॥

जो इस धर्म रूपी वृष को छोड़कर अन्यत्र मोक्ष का मार्ग ढूँढ़ता है, उसका वेदादि के अध्ययन करना व्यर्थ है, क्योंकि वह इन वेदों में दिये हुए मोक्ष के स्वरूप को भलीभाँति नहीं देख पाता है । प्राचीनकाल में देवताओं और असुरों क़े युद्ध में पराजित हुए असुरों द्वारा सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र पाखण्डी होकर विकृत (पतित) हो गये । हे तात ! वह स्वयंभू की सृष्टि नहीं रह गयी । जो लोग श्राद्धादि कार्यों के विरोध करने वाले हैं, सद्ग्रन्थों के विरोधी हैं, अपनी इच्छा एवं शक्ति के भरोसे जीवन यापन करते हैं तथा जो लोग धर्म का आचरण

ये धर्मं नानुवर्त्तन्ते ते वै नग्नादयो जनाः । वृथाजटी वृथामुद्री वृथानग्नश्च यो द्विजः ॥ ३१ ॥
वृथाव्रती वृथाजापी ते वै नग्नादयो जनाः । कुलंधमा निषादाश्च तथा पुष्टिविनाशकाः ॥ ३२ ॥
कृतकर्माक्षितास्त्वेते कुपथाः परिकीर्त्तिताः । एभिर्निर्वृत्तं दृष्टं वा श्राद्धं गच्छन्ति मानवाः ॥ ३३ ॥
ब्रह्मघ्नश्च कृतघ्नश्च नास्तिका गुरुतल्पगाः । दस्यवश्च नृशंसाश्च दर्शनैनैव वर्जिताः ॥ ३४ ॥
ये चान्ये पापकर्माणः सर्वांस्तान् परिवर्जयेत् । देवदेवर्षिनिन्दायां रतांश्चैव विशेषतः ॥ ३५ ॥
असुरान् यातुधानांश्च दृष्टमेभिर्व्रजन्त्युत । ब्राह्मं कृतयुगं प्रोक्तं त्रेता तु क्षत्रियं स्मृतम् ॥ ३६ ॥
वैश्यं द्वापरमित्याहुः शूद्रं कलियुगं स्मृतम् ।

पितर ऊचुः

वेदाः कृतयुगे पूज्यास्त्रेतायां तु सुरास्तथा ॥ ३७ ॥
युद्धानि द्वापरे नित्यं पाषण्डाश्च कलौ युगे । अपमानापवित्रश्च कुक्कुटो ग्रामसूकरः ॥ ३८ ॥
श्वा चैव दर्शनादेव हन्ति श्राद्धं न संशयः । शावसूतकसंस्पृष्टो दीर्घरोगिभिरेव च ॥ ३९ ॥
मलिनैः पतितैश्चैव न द्रष्टव्यं कथंचन । अन्नं पश्येयुरेते वै नैतत्स्याद्धव्यकव्ययोः ॥ ४० ॥
तत्संस्पृष्टं प्रधानार्थं संस्कारश्चापदो भवेत् । हविषां संहतानां तु पूर्वमेव विवर्जितम् ॥
मृत्संयुक्ताभिरद्भिश्च प्रोक्षणं च विधीयते ॥ ४१ ॥

नहीं करते हैं, वे नंगे लोग हैं । व्यर्थ में जटा रखने वाले, व्यर्थ में मुण्डित सिर रहने वाले, व्यर्थ में नग्न रहने वाले जो द्विजातिगण हैं, वे सभी लोग नंगे हैं ॥ २७-३१ ॥

व्यर्थ में व्रत करने वाले, व्यर्थ में जप करने वाले, कुल को पीड़ा पहुँचाने वाले, निषाद, पुष्टि विनाशक एवं किये गए सत्कर्मों पर आक्षेप करने वाले कुमार्गी कहे जाते हैं । ऐसे लोगों द्वारा सम्पन्न श्राद्धकर्म पितरों के लिए व्यर्थ हैं । ब्रह्महत्या करने वाले, कृतघ्न, नास्तिक, गुरुपत्नीगामी, दस्यु, नृशंस, आत्मतत्त्वज्ञान से रहित एवं अन्य जो पापकर्म में परायण लोग हैं, उन्हें सबको श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिए ॥ ३२-३४ ॥

विशेषतया देवताओं एवं देवर्षियों की निन्दा में निरत रहने वाले जो भी लोग हैं, उन्हें भी श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिए । इसी प्रकार असुरों एवं यातुधानों को भी श्राद्धकर्म में नहीं रखना चाहिए । इन उपर्युक्त लोगों द्वारा देखा गया श्राद्धकर्म निष्फल हो जाता है । सतयुग को ब्राह्मणों का युग कहा गया है, त्रेता क्षत्रियों का युग है, द्वापर वैश्यों का युग है और इसी प्रकार कलियुग को शूद्रों का युग कहा गया है ॥ ३५-३६ ॥

वाताक पितरगणों ने कहा—सतयुग में वेदों की पूजा होती थी, त्रेतायुग में देवगण पूज्य माने जाते थे । द्वापर में लोगों को युद्ध प्रिय था, कलियुग में लोगों की पाखण्ड में सर्वदा रुचि रहती है । अपमानित एवं अपवित्र लोग, कुक्कुट (मुर्गे), ग्राम्य सुअर और कुत्ता—इनके दर्शन से श्राद्धकर्म नष्ट हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं । बच्चों का सूतक जिनके घर में हो, दीर्घकाल से जो रोगग्रस्त हों, मलिन एवं पतित विचारों वालों को किसी प्रकार भी श्राद्धकर्म का दर्शन नहीं करना चाहिए ॥ ३७-३९ ॥

यदि ये लोग श्राद्ध के अन्न को देख लेते हैं तो वह अन्न भी हव्य के लिए उपयुक्त नहीं कहा गया है, इनके द्वारा स्पर्श किये गए श्राद्धादि संस्कार अपवित्र हो जाते हैं । जमे हुए घृत को प्रथमतः वर्जित रखना चाहिए ।

सिद्धार्थकैः कृष्णतिलैः कार्य्यं वाप्यवकीरणम् । गुरुसूर्याग्निवस्तूनां दर्शनं वापि यत्नतः ॥ ४२ ॥
आसनारूढमानेषु पादोपहतमेव च । अमेध्यैर्जङ्गमैर्दृष्टं शुष्कं पर्युषितं च यत् ॥ ४३ ॥
असितं परिदुष्टं च तथैवाग्रावलेहितम् । शर्कराकेशपाषाणैः कीटैर्यच्चाप्युपद्रुतम् ॥ ४४ ॥
पिण्याकमथितं चैव तथा तिलयवादिषु । सिद्धाक्षताश्च ये भक्ष्याः प्रत्यक्षलवणीकृताः ॥ ४५ ॥
वाससा चावधूतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्मणि । सन्ति वेदविरोधेन केचिद्विज्ञानमानिनः ॥ ४६ ॥
अजज्ञपतयो नाम ते श्राद्धस्य यथा रजः। दधि शाकं तथाऽभक्ष्याः शुक्तं चैव विवर्जितम् ॥ ४७ ॥
वार्ताकुं वर्जयेद्द्यात्सर्वानभिषवानपि । सैन्धवं लवणं यच्च तथा मानससम्भवम् ॥ ४८ ॥
पवित्रं परमं ह्येतत् प्रत्यक्षमपि वर्त्तते । अग्नौ निक्षिप्य बध्नीयाद्धस्तौ प्रक्षिप्ययत्नतः ॥ ४९ ॥
गमयेन्मस्तकं चैव ब्रह्मतीर्थं हि तत्स्मृतम् । द्रव्याणां प्रोक्षणं कार्य्यं तथैवावपनं पुनः ॥ ५० ॥
निधाय चाद्भिः सिञ्चेत तथैवाप्सु निदेशनम् । अरिष्टतुमुले बिल्वं त्विङ्गुदश्वदनान्यपि ॥ ५१ ॥
विदलानां च सर्वेषां चर्मवच्छौचमिष्यते । तथा दन्तास्थिदारूणां श्रृङ्गणां चावलेखनम् ॥ ५२ ॥
सर्वेषां मृण्मयानां तु पुनर्दाह उदाहृतः । मणिवज्रप्रवालानां मुक्ताशङ्खमणेस्तथा ॥ ५३ ॥

श्राद्धकर्म में मिट्टी से मिले हुए जल से सिंचन करना चाहिए ॥ ४०-४१ ॥

पीली सरसों अथवा काले तिल पृथ्वी पर छींट देना चाहिए । यत्नपूर्वक गुरु, सूर्य और अग्नि की वस्तुओं का दर्शन करना चाहिए ॥ ४२ ॥

आसनासीन (ऊँचा स्थान), पैरों द्वारा मर्दित किया गया, अपवित्र प्राणियों द्वारा देखे गये, शुष्क एवं बासी, उच्छिष्ट, दोषपूर्ण, जीभ से चाटी हुई, शक्कर (बालुका), केश और पत्थर से दूषित, कीड़ों से गन्दगी की गयी वस्तुएँ श्राद्धकर्म में वर्जित हैं ॥ ४३-४४ ॥

तिल और जौ में तिलों के चूरे न मिले हों, बनाये गए जो अक्षत खाने के लिए रखे गए हों तथा जिनमें नमक का अंश मिला हुआ हो, इसी प्रकार वस्त्र से जो स्पर्श किया गया हो, वे सब अन्नादि पदार्थ श्राद्धकर्म में दूषित कहे गए हैं । कुछ विज्ञान के माननेवाले वेदों का विरोध करते हैं, वे यज्ञ के अनधिकारी हैं, और श्राद्ध के धूल की तरह (विनाशक) हैं, उन्हें भी श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिए । इसी प्रकार दही, अखाद्य शाक तथा श्वेत वर्ण का चोष्य (चूसा जानेवाला) पदार्थ—ये सब भी श्राद्धकर्म में वर्जित हैं ॥ ४५-४७ ॥

वार्ता (बातचीत) भी श्राद्ध में वर्जित कही गई है । सभी प्रकार के अभिषवों (मद्य अथवा आसव) को भी वर्जित रखना चाहिए । जो समुद्र से निकला हुआ लवण है, तथा मानस से उत्पन्न हुआ लवण है, वह परम पवित्र माना गया है, ये दोनों लवण होने पर भी निषिद्ध नहीं हैं । उन्हें आग में छोड़कर पुनः दोनों हाथों से यत्नपूर्वक निकाल कर अपने मस्तक पर लगा लेवे । मस्तक को ब्रह्मतीर्थ कहा जाता है । समस्त श्राद्धीय द्रव्यों को सर्वप्रथम जल से सिचिंत करना चाहिए पुनः उनके ऊपर लगी हुई मैल आदि को धो देना चाहिए ॥ ४८-५० ॥

फिर रखकर जल से पुनः सिंचन करके पुनः जल में छोड़ देना चाहिए । अरिष्ट, तुमुल, बिल्व, इंगुद, श्वदन और विदल—इन सभी वस्तुओं की श्राद्धादि में चर्म की तरह विधिवत् शुद्धि करनी चाहिए । इसी प्रकार दाँत, अस्थि (हड्डी), काष्ठ एवं शृंग (सींग) आदि को विधिवत् स्वच्छ और पवित्र कर लेना चाहिए ॥ ५१-५२॥

सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः। स्याच्छौचं सर्वबालानामाविकानां च सर्वशः॥ ५४ ॥
आविकानां च सर्वेषां मृद्भिरद्भिर्विधीयते । आद्यन्तयोस्तु शौचानामद्भिः प्रक्षालनं पुनः ॥ ५५ ॥
तथा कार्प्पासिकानां च भस्मना समुदाहृतम् । फलपुष्प शलाकानां प्लावनञ्चाद्भिरिष्यते ॥ ५६ ॥
संमार्जनं प्रोक्षणं च भूमेश्चैवोपलेपनम् । निष्क्रम्य बाह्यतो ग्रामाद्वायुपूता वसुन्धरा ॥ ५७ ॥
धनुष्मत्पक्षिणां चैव मृद्भिः शौचं विधीयते । एवमेष समुद्दिष्टः शौचानां विधिरुत्तमः ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ ५८ ॥

प्रातर्गृहात्पश्चिमदक्षिणेन इषुक्षेपं चाक्षमात्रं पदं च ॥
कुर्यात्पुरीषं च शिरोऽवगुण्ठ्य न च स्पृशेत्तत्र शिरः करेण ॥ ५९ ॥

शुष्कैस्तृणैर्वा काष्ठैर्वा पत्रैर्वेणुदलेन वा । मृन्मयैर्भाजनैर्वापि तिरोधाय वसुंधराम् ॥ ६० ॥
उद्धृतोदकमादाय मृत्तिकां चैव वाग्यतः । दिवा उदङ्मुखः कुर्य्याद्रात्रौ वै दक्षिणामुखः ॥ ६१ ॥
दक्षिणेन च हस्तेन गृह्णीयाद्वै कमण्डलुम् । शौचं च वामहस्तेन गुदे तिस्रस्तु मृत्तिकाः ॥ ६२ ॥
दश चापि पुनर्दद्याद्वामहस्तक्रमेण तु । द्वाभ्यां वाऽपि पुनर्दद्याद्धस्तानां पञ्च मृत्तिकाः ॥ ६३ ॥

सभी प्रकार के मृत्तिका के बने हुए पदार्थों को दोबारा जला लेना चाहिए। इसी प्रकार सभी प्रकार के मणि, हीरे, प्रवाल, मुक्ता, शंख आदि की शुद्धि के लिए पीली सरसों अथवा काले तिल का कल्क बनाकर शुद्धि करनी चाहिए। केशों की भी शुद्धि इसी प्रकार करनी चाहिए ॥ ५३-५४ ॥

भेड़ के बाल की अथवा सभी प्रकार के भेंड़ों के बालों की शुद्धि मिट्टी और जल से हो जाती है, पवित्र करने के पहले और बाद में दोनों बार पुनः जल द्वारा धो लेना चाहिए। कपास के बने हुए पदार्थों की शुद्धि राख द्वारा कही गयी है। फल, पुष्प एवं शलाका की शुद्धि जल से ही हो जाती है ॥ ५५-५६ ॥

पृथ्वी की शुद्धि प्रथम बटोरकर, जल से सिंचितकर फिर लीपने से होती है। ग्राम से बाहर निकलने पर पृथ्वी वायु द्वारा शुद्ध होती है। अर्थात् पृथ्वी की शुद्धि के लिए बटोरने, जल छिड़कने और लीपने की आवश्यकता होती है, ग्राम से बाहर की पृथ्वी वायु से ही पवित्र (शुद्ध) रहती है ॥ ५७ ॥

धनुर्धारी और पक्षियों की शुद्धि मिट्टी से की जाती है, शुद्धि के लिए यह उत्तम क्रम बताया गया है। इसके उपरान्त शौच की कुछ अन्य विधियाँ बतला रहा हूँ, सुनिए ॥ ५८ ॥

प्रातःकाल अपने घर से पश्चिम या दक्षिण दिशा की ओर एक बाण की दूरी पर या अक्षमात्र दूर स्थान पर मलत्याग करना चाहिए। उस समय सिर को वस्त्रादि से ढंक लेना चाहिए, हाथ से सिर का स्पर्श नहीं करना चाहिए ॥ ५९ ॥

सूखे हुए तृण द्वारा, काष्ठ द्वारा, पत्तों से, बाँस के पत्तों से अथवा मिट्टी के बरतन से उस स्थान को ढँक देना चाहिए। पुनः शान्त रहकर मिट्टी और ऊपर उठाये गए जल से शुद्धि करनी चाहिए। दिन में उत्तरमुख और रात्रि में दक्षिणमुख होकर मलत्याग करना चाहिए ॥ ६०-६१ ॥

दाहिने हाथ से जलपात्र ग्रहण करना चाहिए। मलद्वार को बायें हाथ से तीन बार मिट्टी लगाकर शुद्ध

मृदा प्रक्षाल्य पादौ च आचम्य च यथाविधि । आपस्त्याज्यास्त्रयश्चैव सूर्याग्निपवनाम्भसाम् ॥ ६४ ॥
कुर्यात् सन्निहितं नित्यं प्राज्ञस्तीर्थे कमण्डलुम् । असत्कार्यं कार्यमेतैर्यथावत्पादधावनम् ॥ ६५ ॥
आचमनं द्वितीयेन देवकार्यं ततः परम् । उपवासस्त्रिरात्रं तु दुष्टहस्ते ह्युदाहृतः ॥ ६६ ॥
विप्रकृष्टेन कृच्छ्रेण प्रायश्चित्तमुदाहृतम् । स्पृष्ट्वा श्वानं श्वपाकं वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥ ६७ ॥
मानुषास्थीनि संस्पृश्य उपोष्यं शुद्धिकारणम् । त्रिरात्रमुक्तं सस्नेहमेकरात्रमतोऽन्यथा ॥ ६८ ॥
कारस्कराः पुलिन्दाश्च तथान्ध्रशबरादयः । पीत्वा चापो भूतिलये गत्वा चैव युगन्धराम् ॥ ६९ ॥
सिन्धोरुत्तरपर्यन्तं तथा दिव्यन्तरे शतम् । पापदेशाश्च ये केचित्पापैरध्युषिता जनैः ॥ ७० ॥
शिष्टैश्च वर्जिता ये च ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । गत्वा देशानपुण्यांस्तु कृत्स्नं पापं समश्नुते ॥ ७१ ॥
मनोव्यक्तिरथाग्निश्च काले चैवोपलेपनम् । विख्यापनं च शौचानां नित्यमज्ञानमेव च ॥ ७२ ॥
अतोन्यथा तु यः कुर्यान्मोहाच्छौचस्य सङ्करम् । पिशाचान् यातुधानांश्च फलं गच्छत्यसंशयम् ॥ ७३ ॥
शौचमश्रद्दधानश्च म्लेच्छजातिषु जायते । अयज्ञाश्चैव पापो वा तिर्यग्योनिगतोऽपि वा ॥ ७४ ॥

करना चाहिए। बायें हाथ में दस बार मृत्तिका लगाकर अथवा दोनों हाथों में पाँच बार मृत्तिका लगानी चाहिए। पुनः मिट्टी लगाकर पैरों को भलीभाँति स्वच्छकर विधिपूर्वक आचमन करे। पुनः सूर्य, अग्नि और पवन के उद्देश्य से तीन बार जल त्याग करे ॥ ६२-६४ ॥

बुद्धिमान् पुरुष को सदैव तीर्थ के समीप अपना कमण्डलु रखना चाहिए। इस कमण्डलु के जल से पादप्रक्षालन जैसे अन्य कार्य भी कर लेना चाहिए। पादप्रक्षालन के उपरान्त आचमन और तदुपरान्त देवकार्य करना चाहिए। अपवित्र हाथ से आचमन और देवकार्य करने पर तीन रात के उपवास का विधान है ॥ ६५-६६ ॥

उपवास न करने पर अतिशय कष्ट द्वारा प्रायश्चित्त का विधान कहा गया है। श्वान अथवा चाण्डाल का स्पर्श हो जाने पर तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥ ६७ ॥

मनुष्य की अस्थियों का स्पर्श होने पर उपवास से ही शुद्धि होती है। स्नेहपूर्वक यह उपवास तीन रात अथवा एक रात के लिए करना चाहिए ॥ ६८ ॥

कारस्कर, पुलिन्द, आन्ध्र, शबर जैसे अपवित्र देशों की यात्रा करने पर, भूतिलय (स्थान-विशेष) में जलपान करने पर तथा युगन्धर नामक स्थान की यात्रा करने पर, सिन्धु के उत्तरीय प्रदेश, दिव्यन्तर के शत नामक देश एवं अन्य पापियों के प्रदेशों की, जहाँ जाने के लिए वेदों के पारङ्गत ब्राह्मण एवं शिष्टगण निषेध करते हैं अथवा जहाँ इस प्रकार के ज्ञानी लोगों का सर्वथा अभाव रहता है तथा जहाँ जाने से पाप में वृद्धि होती है, ऐसे स्थान की यात्रा करने पर समस्त पाप का भागी होना पड़ता है ॥ ६९-७१ ॥

मनोव्यक्ति, अग्नि, समयवश किया गया उपलेपनादि कर्म, शौच के लिए जो समय निषिद्ध है, उस समय अथवा इनके अतिरिक्त जो अज्ञानवश शौच संस्कार में व्यतिक्रम करते हैं उनके फल निःसन्देह पिशाचों और यातुधानों को प्राप्त होते हैं ॥ ७२-७३ ॥

जो लोग शौच के आचार एवं नियम इत्यादि में अश्रद्धा रखते हैं, वे म्लेच्छ जाति में जन्म ग्रहण करते

शौचेन मोक्षं कुर्वाणः स्वर्गवासी भवेन्नरः । शुचिकामा हि देवा वै देवैरेतदुदाहृतम् ॥ ७५ ॥
वीभत्समशुचिं चैव वर्जयन्ति सुराः सदा । त्रीणि शौचानि कुर्वन्ति न्यायतः शुभकर्मणः ॥ ७६ ॥
ब्रह्मण्यायातिथेयाय शौचयुक्ताय धीमते । पितृभक्ताय दान्ताय सानुक्रोशाय च द्विजाः ॥ ७७ ॥
तैस्तैः प्रीताः प्रयच्छन्ति पितरो योगवर्द्धनाः। मनसा काङ्क्षितान् कामांस्त्रैलोक्यप्रभवानिति ॥ ७८ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पो नाम
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

* * *

हैं। जो यज्ञादि नहीं करते, सदैव पाप कर्म में लगे रहते हैं, अथवा तिर्यक् योनियों में उत्पन्न होते हैं, वे भी शौच द्वारा अपने पापों से मुक्त होकर स्वर्ग प्राप्त करते हैं। देवतागण पवित्रता के इच्छुक रहते हैं, देवताओं ने ही शौच के ये आचार कहे हैं ॥ ७४-७५ ॥

देवगण सर्वदा वीभत्स आचरण करनेवाले तथा अपवित्र लोगों को वर्जित रखते हैं। सत्कर्म में लगे हुए लोग न्यायतः सदैव तीन प्रकार से शुद्धिकरण करते हैं। हे ऋषिवृन्द ! ब्राह्मणा आदि द्विजातियों की रक्षा करने वाले, अतिथि परायण, पवित्रात्मा, बुद्धिमान्, पितरों में भक्ति रखने वाले, शान्त एवं कृपालु लोगों के योगवर्द्धक पितरगण उनके किये गए सत्कर्मों से प्रसन्न होकर मन से अभिलषित, त्रैलोक्य में प्राप्त होने वाले समस्त मनोरथों को पूर्ण करते हैं ॥ ७६-७८ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में श्राद्धकल्प नामक सोलहवें अध्याय (अठत्तरवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १६ ॥**

* * *

अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पे ब्राह्मणपरीक्षा

ऋषय ऊचुः

अहो धीमंस्त्वया सूत श्राद्धकल्पस्तु कीर्तितः। श्रुतो नः श्राद्धकल्पो वै ऋषिभिः परिकीर्तितः ॥ १ ॥
अतीव विस्तरो यस्य विशेषेण प्रकीर्तितः । वद शेषं महाप्राज्ञ ऋषेस्तस्य यथामतम् ॥ २ ॥

सूत उवाच

कर्तयिष्यामि ते विप्रा ऋषेस्तस्य मतं तु तत् । श्राद्धं प्रति महाभागास्तन्मे श्रृणुत विस्तरात् ॥ ३ ॥
उक्तं श्राद्धं मया पूर्वं विधिश्च श्राद्धकर्मणि । परिशिष्टं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणानां यथाक्रमम् ॥ ४ ॥
न मीमांस्याः सदा विप्राः पवित्रं ह्येतदुत्तमम् । दैवे पित्र्ये च सततं श्रूयते वै परीक्षणम् ॥ ५ ॥
यस्मिन् दोषाः प्रपश्येरन् सद्भिर्वा वर्जितस्तु यः । जानीयाद्वापि संवासाद्वर्ज्जयेत्तं प्रयत्नतः ॥ ६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

(उनहत्तरवाँ अध्याय)

श्राद्धकल्प में ब्राह्मणपरीक्षा

ऋषियों ने कहा—हे परम बुद्धिमान् सूतजी ! ऋषियों द्वारा कहे गए श्राद्धकल्प का वर्णन विशेषतया अति विस्तारपूर्वक आप कह चुके और हम लोगों ने उसे सुन भी लिया । हे महामति ! अब श्राद्ध के विषय में जो कुछ उन ऋषि की शेष बातें हों, उनका वर्णन कीजिए ॥ १-२ ॥

सूत जी ने कहा—हे विप्रगण ! उन ऋषि का श्राद्ध के विषय में जो कुछ भी मत है, उसे कह रहा हूँ। हे महाभाग्यवानों ! विस्तारपूर्वक उसे सुनिये ॥ ३ ॥

पूर्व प्रसंग में श्राद्धकर्म में की जानेवाली श्राद्धीय विधियों का वर्णन मैं कर चुका हूँ, अब ब्राह्मणादि के बारे में जो शेष नियमादि हैं, उनका वर्णन कर रहा हूँ । ब्राह्मणगण मीमांसा से परे होते हैं, अर्थात् ब्राह्मणों के विषय में मीमांसा नहीं करनी चाहिए । वे परम पवित्र तथा सभी जातियों में उत्तम हैं किन्तु ऐसा होने पर भी देवताओं और पितरों के कार्य में ब्राह्मणों की परीक्षा सर्वदा होती है, ऐसा सुना गया है ॥ ४-५ ॥

जिसमें लोग दोष देखते हैं, अथवा सज्जन जिसे अपने समाज से बहिष्कृत रखते हैं, अथवा संसर्ग से जिसके लिए यह मालूम पड़े कि वह कुसंगी है, ऐसे लोगों को प्रयत्नपूर्वक श्राद्धकर्म से वर्जित रखना चाहिए ।

अविज्ञातं द्विजं श्राद्धे परीक्षेत सदा बुधः । सिद्धा हि विप्ररूपेण चरन्ति पृथिवीमिमाम् ॥ ७ ॥
तस्मादतिथिमायान्तमभिगच्छेत् कृताञ्जलिः । पूजयेच्चापि पाद्येन पादाभ्यञ्जनभोजनैः ॥ ८ ॥
उर्वीं सागरपर्यन्तां देवा योगेश्वरास्तथा । नानारूपैश्चरन्त्येते प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ ९ ॥
अर्चयित्वा ततो दद्याद्विप्रायातिथये नरः । व्यञ्जनानि च भक्ष्याणि फलं तेषां तथैव च ॥ १० ॥
अग्निष्टोमं तु पयसा प्राप्नुयाद्वै तथा श्रुतम् । सर्पिषा तु शुभं चक्षुः षोडशाहफलं लभेत् ॥
मधुना त्वतिरात्रस्य फलं च समवाप्नुयात् ॥ ११ ॥
तत्प्राप्नुयाच्छ्रद्दधानो नरो वै सर्वैः कामैर्भोजयेद्यस्तु विप्रान् ॥
सर्वार्थदः सर्वविप्रातिथौ यः फलं भुङ्क्ते सर्वमेधस्य नित्यम् ॥ १२ ॥
यस्तु श्राद्धेऽतिथिं प्राप्य दैवे वाप्यवमन्यते । तं वै देवा निरस्यंति होता यद्वत् परां वसुम् ॥ १३ ॥
देवाश्च पितरश्चैव वह्निश्चैव हि तान् द्विजान् । आविश्य भुञ्जते तद्वै लोकानुग्रहकारणात् ॥ १४ ॥
अपूजिता दहन्त्येते दद्युः कामांश्च पूजिताः । सर्वस्वेनापि तस्माद्वै पूजयेदतिथीन् सदा ॥ १५ ॥
वानप्रस्थो गृहस्थश्च गृहमभ्यागतोऽथवा । बालाः खिन्ना यतिश्चैव जानीयादतिथीन् सदा ॥ १६ ॥
अभ्यागतो याचकः स्यादतिथिः स्यादयाचकः। अतिथेरतिथिः श्रेष्ठः सोऽतिथिर्योग उच्यते ॥ १७ ॥

बुद्धिमान् पुरुष को बिना जाने-सुने ब्राह्मण की श्राद्धकर्म में सदैव परीक्षा कर लेनी चाहिए । सिद्धगण ब्राह्मणवेश में इस पृथ्वी पर विचरण करते हैं, अतः द्वार पर अतिथिरूप में आने पर हाथ जोड़कर आतिथ्य करना चाहिए । फिर पैर धोने के लिए जल आदि समर्पित कर विधिवत् भोजनादि द्वारा उसकी पूजा करनी चाहिए ॥ ६-८ ॥

योगपरायण देवगण समुद्रपर्यन्त फैली हुई इस विशाल पृथ्वी पर विविध वेश धारणकर धर्मपूर्वक प्रजाओं का पालन करते हुए विचरण करते हैं । विधिवत् पूजा कर लेने के बाद बुद्धिमान् पुरुष अतिथिरूप में आये हुए ब्राह्मण के भोजन के लिए विविध व्यञ्जन एवं फल समर्पित करना चाहिए ॥ ९-१० ॥

ऐसा सुना जाता है कि केवल जल (दूध) देने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त होता है । घृत देने से सुन्दर नेत्र प्राप्त होते हैं, और सोलह दिन में पूर्ण होने वाले यज्ञ का फल मिलता है । मधु समर्पित करने से अतिरात्र यज्ञ का फल प्राप्त होता है । जो श्रद्धालु व्यक्ति अपने सभी प्राप्त साधनों द्वारा भक्तिपूर्वक समागत ब्राह्मणों को भोजन करवाता है वह सर्वदा समस्त यज्ञों के फल का उपभोग करता है, क्योंकि अतिथिरूप में आये हुए विद्वानों का अतिथि सत्कार करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं ॥ ११-१२ ॥

जो व्यक्ति श्राद्धकर्म में अथवा किसी देवकार्य में आये हुए अतिथि की अवहेलना करता है, उसे देवगण इस प्रकार त्याग देते हैं, जैसे हवन करने वाला परावसु नीचे गिरी हुई आहुति को छोड़ देता है । लोक के ऊपर अनुग्रह करने के लिए देवगण, पितरगण और अग्निदेव इन ब्राह्मणों में आविष्ट होकर श्राद्धादि में भोजन करते हैं । ये अतिथि लोग श्राद्धादि में अपूजित होने पर जला देते हैं और पूजित होने पर सभी मनोरथों को पूर्ण करते हैं । इसलिए द्वार पर आए हुए इन अतिथियों की सर्वस्व लगाकर पूजा करनी चाहिए । वानप्रस्थ में रहनेवाले, गृहस्थाश्रम में रहनेवाले, अपने घर पर आनेवाले बालकगण, लोक से उदास रहनेवाले वैरागीजन एवं यति—इन सबको सदैव अतिथि समझना चाहिए । जो किसी वस्तु की याचना करने के लिए अपने द्वार पर आता है वह

न घोरो नापि सङ्कीर्णो नाविद्यो न विशेषवित् । न च सन्तो न समृद्धो न सेवी नाचरोऽतिथिः ॥ १८ ॥
पिपासिताय श्रान्ताय भ्रान्तायातिबुभुक्षते । तस्मै सत्कृत्य दातव्यं यज्ञस्य फलमिच्छता ॥ १९ ॥
आरुह्य भृगुतुङ्गेषु गत्वा पुण्यां सरस्वतीम् । आपगां तु नदीं पुण्यां गङ्गां देवी महानदी ॥ २० ॥
हिमवत्प्रभवा नद्यो याश्चान्या ऋषिपूजिताः । सरस्तीर्थाभिसंवेद्या नदी नववहास्तथा ॥ २१ ॥
गत्वैतान् मुच्यते पापैः स्वर्गे नित्यं महीयते । दशरात्रमशौचं तु प्रोक्तं वै मृतसूतके ॥ २२ ॥
ब्राह्मणस्य विशेषेण क्षत्रिये द्वादशं स्मृतम् । अर्द्धं मासं तु वैश्यस्य मासाच्छूद्रस्तु शुध्यति ॥ २३ ॥
उदक्या सर्ववर्णानां त्रिरात्रेण तु शुद्ध्यति । उदक्यां सूतिकां चैव श्वानमन्त्यावसायिनम् ॥ २४ ॥
नग्नादीन् मृतहारांश्च स्पृष्ट्वाऽशौचं विधीयते । स्नात्वा सचैलो मृद्भिस्तु द्वादशभिस्तु शुध्यति ॥ २५ ॥
एतदेव भवेच्छौचं मैथुने नवभिस्तथा । मृदा प्रक्षाल्य हस्तौ तु कुर्याच्छौचविधिं नरः ॥ २६ ॥
प्रक्षाल्य चाद्भिर्हस्तौ च स्नात्वा चैव मृदा पुनः । मृदं गुह्ये ततो द्विस्तु पुनरेव मृदं बुधः ॥ २७ ॥
एवं शौचविधिर्दृष्टः सर्ववर्णेषु नित्यदा । परिदद्यान्मृदस्तिस्त्रो हस्तपादावसेचनम् ॥ २८ ॥
आरण्यं शौचमेतत्तु ग्राम्यं वक्ष्याम्यतः परम् । मृदस्तिस्त्रः पादयोस्तु हस्तयोस्तिस्त्र एव च ॥ २९ ॥
मृदः पञ्चदशामेध्ये हस्तादीनां विभागशः । अनिर्णिक्ते मृदं दद्यान्मृदन्ते त्वद्भिरेव तु ॥ ३० ॥

अभ्यागत है, जो बिना किसी प्रयोजन के आता है वहीं अतिथि है, अतिथि का अतिथि श्रेष्ठ अतिथि है, वह योगी के समान परम पुण्यदायी कहा गया है ॥ १३-१७ ॥

जो व्यक्ति घोर हृदयवाला न हो, संकीर्ण विचारोंवाला न हो, विद्याविहीन न हो, विशेष जाननेवाला न हो, अधिक संततियों से समन्वित न हो, सेवक न हो, जड़ हो, वही सच्चा अतिथि कहा गया है । यज्ञ के फल की अभिलाषा करने वाले को चाहिए कि पिपासा से आकुल, थके हुए, भूले-भटके और भूखे अतिथि को सत्कारपूर्वक भोजनादि प्रादान करे । भृगुतुंग पर अरोहणकर पुण्यसलिला सरस्वती की यात्रा कर, परम-पुण्यमयी देवनदी गंगा तथा महानदी की यात्रा कर एवं अन्यान्य हिमालय से निकलने वाली नदियाँ, जिनकी पूजा ऋषि लोग भी किया करते हैं तथा अन्य जितने सरोवर, तीर्थ एवं पुण्यप्रद नदियाँ हैं, उन सब की यात्राकर मनुष्य अपने पाप कर्मों से विमुक्त होते हैं और सदैव स्वर्गलोक में पूजित होते हैं ॥ १८-२१ ॥

किसी की मृत्यु हो जाने पर विशेषतया ब्राह्मण को दस रात का अशौच लगता है । क्षत्रिय को बारह रात का, वैश्य को पन्द्रह दिनों तक तथा शूद्र को एक मास तक का अशौच होता है । सभी जाति वालों की ऋतुमती स्त्रियाँ तीन रात्रि में शुद्ध होती हैं । ऋतुमती, सूतिका, श्वान, चाण्डाल, नंगे एवं मुर्दों के ढोने वालों का स्पर्श होजाने पर शुद्धि करनी चाहिए । मिट्टी से वस्त्रों सहित बारह बार स्नान करने से शुद्धिकरण होता है ॥२२-२५॥

यही विधि मैथुन और वमन के उपरान्त भी कही गई है । मृत्तिका से दोनों हाथों को धोकर मनुष्य को शौच करना चाहिए । बुद्धिमान् पुरुष जल से दोनों हाथों को धोकर मिट्टी से स्नान करे, फिर दो बार गुह्यस्थान पर मृत्तिका लगाकर पुनः एक बार मृत्तिका लगावे । सभी जातियों के लिए शौच का यही नियम है । तीन बार मृत्तिका लेकर हाथ और पैर को धोना चाहिए । यही नियम वानप्रस्थियों के लिए है, अब इसके बाद गृहस्थाश्रम के लोगों के लिए

कण्ठं शिरो वा प्रावृत्य रथ्या पादगतस्तु वा । अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ ३१ ॥
प्रक्षाल्य पात्रं निःक्षिप्य आचम्याभ्युक्षणं पुनः। द्रव्यस्यान्यस्य तु तथा कुर्यादभ्युक्षणं पुनः ॥ ३२ ॥
पुष्पादीनां तृणानां च प्रोक्षणं हविषां तथा । पराहृतानां द्रव्याणां निधायाभ्युक्षणं तथा ॥ ३३ ॥
प्रोक्षितं तु हरेत् किञ्चिच्छ्राद्धे दैवे तथा पुनः । उत्तरेण हरेद्वेद्यां दक्षिणेन विसर्जयेत् ॥ ३४ ॥
विच्छिन्नं स्याद्विपर्यासे दैवे पित्र्ये तथैव च । दक्षिणेन तु हस्तेन दक्षिणां वेदिमालिखेत् ॥ ३५ ॥
कराभ्यामेव देवानां पितॄणां विकरं शुभम् । क्षुभितस्वप्नयोश्चैव तथा मूत्रपुरीषयोः ॥ ३६ ॥
निष्ठीविते तथा व्यक्ते भुक्त्वा विपरिधाय च । उच्छिष्टस्य च संस्पर्शे तथा पादावसेचने ॥ ३७ ॥
उत्सृष्टस्य सुसंभाषे ह्यशुचिं प्रयतस्य च । संदेहेषु च सर्वेषु शिखां मुक्त्वा तथैव च ॥ ३८ ॥
विना यज्ञोपवीतेन मोहात्तु यद्युपस्पृशेत् । ओष्ठस्य दन्तसंस्पर्शे दर्शने चान्त्यवासिनाम् ॥ ३९ ॥
जिह्वया चैव संस्पृश्य दत्तासक्तं तथैव च । सशब्दमङ्गुलीभिश्च प्रणतश्चावलोकयन् ॥ ४० ॥
यश्चाधर्मे स्थितो मोहादाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् । उपविश्य शुचौ देशे प्रणतः प्रागुदङ्मुखः ॥ ४१ ॥
पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ तु अन्तर्जानुरुपस्पृशेत् । प्रसन्नास्त्रिः पिबेच्चापः प्रयतः सुसमाहितः ॥ ४२ ॥

जो शौच के नियम हैं, उन्हें कहता हूँ। तीन बार दोनों पैरों में तथा तीन बार दोनों हाथों में मृत्तिका लगानी चाहिए। हाथ आदि अपवित्र स्थानों में विभाग करके पन्द्रह बार मृत्तिका लगानी चाहिए। अपवित्र स्थानों में मिट्टी लगाकर शुद्धि करने के उपरान्त जल से प्रोक्षण करना चाहिए ॥ २६-३० ॥

कण्ठ और सिर को आवृतकर सड़क पर पैदल चलने पर भी पैरों को शुद्ध करना चाहिए। बिना पैर धोए जल का आचमन करने वाला भी अशुद्ध रहता है। हाथ, पैर आदि धोकर जलपात्र रखकर पुनः आचमन करना चाहिए। फिर श्राद्ध सम्बन्धी या यज्ञ सम्बन्धी वस्तुओं के ऊपर जल का प्रोछण करे ॥ ३१-३२ ॥

पुष्प, तृण एवं हवनीय द्रव्यादि जितनी भी वस्तुएँ हों, उन सबका सिंचन करना चाहिए। इसी प्रकार दूसरों द्वारा दिए गए द्रव्यों को रखकर उनके ऊपर भी जल का छिड़काव करना चाहिए। श्राद्ध कर्म में तथा दैवकार्य में बिना जल के सेवन किये कोई भी वस्तु काम में नहीं लानी चाहिए। वेदी में उत्तर दिशा की ओर से वस्तुएँ लेकर आनी चाहिए और दक्षिण दिशा में उनका विसर्जन करना चाहिए ॥ ३३-३४ ॥

देवकार्य एवं पितरकार्य में परस्पर समानता नहीं होती, उसमें परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता। दक्षिण वेदी को दाहिने हाथ से रेखाङ्कित करना चाहिए। देवताओं और पितरों के यज्ञादि कार्यों में दोनों हाथों से विकिरण (छींटना) करना कल्याणदायी माना गया है। क्षुधा से तथा नींद से आकुल, मूत्र एवं मल त्याग करने वाले, थूकने वाले लोग भी अशुद्ध रहते हैं। इसी प्रकार भोजन कर, वस्त्रादि धारण कर, जूठे पदार्थ को स्पर्श कर, पैर को अच्छी तरह न धोकर, अज्ञानवश बिना यज्ञोपवीत के ही कुछ भोजनादि वस्तुओं का स्पर्शकर, दाँत से होंठों का स्पर्शकर, चाण्डालादि का दर्शनकर, दाँत में लगी हुई वस्तुओं का जीभ से स्पर्शकर, शब्द करती हुई उँगलियों से तथा ताकते हुए प्रणामकर, अज्ञानवश किसी अधर्म भावना में निरत रहकर आचमन करने वाले भी अपवित्र होते हैं, इसलिए एसे व्यक्ति को किसी पवित्र स्थान में बैठकर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुखकर विनम्र होकर हाथ-पैरों

द्विरेव मार्जनं कुर्यात्सकृदभ्युक्षणं ततः । खानि मूर्धानमात्मानं हस्तौ पादौ तथैव च ॥ ४३ ॥
अभ्युक्षणं तथा तस्य यद्यमीमांसितं भवेत् । एवमाचमनं तस्य वेदा यज्ञास्तपांसि च ॥ ४४ ॥
दानानि ब्रह्मचर्यं च भवन्ति सफलास्तथा । क्रियां यः कुरुते मोहादनाचम्यैव नास्तिकः ॥ ४५ ॥
भवन्ति च वृथा तस्य क्रिया ह्येता न संशयः । वाग्भावशुद्धनिर्णिक्तमदुष्टं वाप्यनिन्दितम् ॥ ४६ ॥
मेध्यान्येतानि ज्ञेयानि दुष्टमेभ्यो विपर्ययः । न वक्तव्यः सदा विप्रः क्षुधितो नास्ति किञ्चन॥ ४७ ॥
तस्मै सत्कृत्य यो दद्यादयूपो यज्ञ उच्यते । अप्लुष्टान्नं शृतान्नं तु कृशवृत्तिमयाचकम् ॥ ४८ ॥
एकान्तशीलं ह्रीमन्तं सदा श्राद्धेषु भोजयेत् । यो ददात्यन्तिमेभ्यश्च स ब्रह्मघ्नो दुरात्मवान् ॥ ४९ ॥
अपि जातिशतं गत्वा न स मुच्येत किल्बिषात् । विषमं भोजयेद्विप्रानेकपङ्क्त्त्या च यो नरः ॥ ५० ॥
नियुक्तो वाऽनियुक्तो वा पङ्क्त्त्या हरति दुष्कृतम् । पापेन गृह्यते क्षिप्रमिष्टापूर्त्तं च नश्यति ॥ ५१ ॥
यतिस्तु सर्व्वविप्राणां सर्व्वेषामग्र्य उत्सवे । इतिहासपञ्चमान् वेदान् यः पठेत्तु द्विजोत्तमः ॥ ५२ ॥

को धोकर घुटनों के बीच में हाथों को रखकर स्वस्थ चित्त होकर यज्ञादि वस्तुओं का स्पर्श करे । उस समय इन्द्रियों को वश में रखकर सावधान होकर तीन घूँट निर्मल जल पिए और दो बार मार्जनकर एक बार वस्तुओं का सेचन करे । फिर अपने खानि (काँख), आँख, कान, सिर, हाथ एवं पैर आदि का जल से सेचन करे ॥ ३५-४३ ॥

इसी प्रकार उन अन्यान्य अंगों का भी सेचन करना चाहिए, जिनकी पवित्रता के विषय में कोई मीमांसा नहीं कही गई है । तदुपरान्त आचमन करना चाहिए । जो लोग इस प्रकार विधिपूर्वक आचमन करते हैं, उनके वेदाध्ययन, यज्ञ, तपस्या, दान, ब्रह्मचर्य आदि सभी कर्म सफल होते हैं । जो नास्तिक व्यक्ति बिना आचमन किये सत्क्रियाएँ करते हैं, निःसन्देह उनकी सारी क्रिया नष्ट हो जाती है । वचन से शुद्ध, पुनीत अथवा सभी विधियों से सुसम्पन्न, दोषरहित एवं अनिन्दित जो क्रियाएँ होती हैं वे पवित्र मानी गयी हैं और जो इनके विपरीत हैं, वे अपवित्र तथा दोषपूर्ण हैं ॥ ४४-४६ ॥

क्षुधा से पीड़ित ब्राह्मण को कभी कुछ नहीं कहना चाहिए । उसे सत्कारपूर्वक उस अवस्था में जो कुछ दे दिया जाता है वह बिना यज्ञ स्तम्भ के ही एक यज्ञ है, अर्थात् वह भी एक यज्ञ के समान फल देने वाला कहा गया है । श्राद्धादि में सदैव कठिनता से जीविका उपार्जित करने वाले, किन्तु अयाचक, एकान्त प्रेमी, लज्जावान् ब्राह्मण को खूब पके हुए अन्न का भोजन कराना चाहिए, वह अन्न सड़ा हुआ अथवा जला भुना न हो । जो व्यक्ति श्राद्धादि कार्यों में चाण्डाल आदि अन्त्यज जातियों को भोजन कराता है, वह ब्रह्महत्यारा एवं दुरात्मा है, सैकड़ों जन्म लेने पर भी वह पाप से छुटकारा नहीं पाता । जो मनुष्य एक ही पंक्ति में उच्च एवं नीच दोनों प्रकार के ब्राह्मणों को बिठाकर भोजन करवाता है, वह चाहे उस कर्म के लिए नियुक्त किया गया हो अथवा न नियुक्त हो, पाप का भागीदार होता है । उसके बावली, कूप, तड़ाग, बगीचे आदि लगाने के पुण्य इस पंक्ति पाप से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ४७-५१ ॥

सभी कर्मों में वीतराग संन्यासी ब्राह्मणों से श्रेष्ठ कहे गए हैं । श्राद्धादि में विद्वानों को संन्यासी के बाद यथायोग्य स्थान पर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को नियुक्त करना चाहिए जो चारों वेद तथा पाँचवें वेद रूपी इतिहास अर्थात्

अनन्तरं यथायोग्यं नियोक्तव्यो विजानता । त्रिवेदोऽनन्तरस्तस्य द्विवेदस्तदनन्तरः ॥ ५३ ॥
एकवेदस्तथा पश्चान्न्यायाध्यायी ततः परम् । पावनायैव पङ्क्त्या वै तान् प्रवक्ष्ये निबोधत ॥ ५४ ॥
य एते पूर्व्वनिर्द्दिष्टाः सर्व्वे ते ह्यनुपूर्व्वशः । षडङ्गी विनयी योगी सर्व्वतन्त्रस्तथैव च ॥ ५५ ॥
यायावरश्च पञ्चैते विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः। अष्टादशानां विद्यानामेकस्मिन् पारगोऽपि यः ॥ ५६ ॥
यथावर्त्तमानश्च सर्वे ते पङ्क्तिपावनाः । त्रिणाचिकेतस्त्रैविद्यो यश्च धर्मान् पठेद्विजः ॥ ५७ ॥
बार्हस्पत्ये तथा शास्त्रे पारं यश्च द्विजो गतः। सर्वे ते पावना विप्राः पङ्क्तीनां समुदाहृताः ॥ ५८ ॥
आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे योषितं सेवते द्विजः । पितरस्तस्य तं मासं तस्य रेतसि शेरते ॥ ५९ ॥
श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं यो निषेवते । पितरस्तस्य तं मासं रेतःस्था नात्र संशयः ॥ ६० ॥
तस्मादतिथये देयं भोजयेद्ब्रह्मचारिणम् । ध्याननिष्ठाय दातव्यं सानुक्रोशाय धार्मिकम् ॥ ६१ ॥
यतिं वा बालखिल्यान् वा भोजयेच्छ्राद्धकर्मणि । वानप्रस्थोपकुर्व्वाणः पूजामात्रेण तोषितः ॥ ६२ ॥

महाभारत का पाठ करता है । इसके उपरान्त तीन वेदों के अध्ययन करने वाले ब्राह्मणों की नियुक्ति करनी चाहिए। तत्पश्चात् दो वेदों के अध्यायी की, फिर एक वेद के अभ्यासी की तथा सबके बाद न्याय अर्थात् तर्कशास्त्र के अध्ययन करने वाले ब्राह्मण की श्राद्धादि में नियुक्ति करनी चाहिए । अब पंक्ति से पवित्र पंक्तिपावन जो ब्राह्मण कहे गए हैं, उनके बारे में कहता हूँ, सुनिये ॥ ५२-५४ ॥

ये जो ब्राह्मण बताए गए हैं, वे क्रमश: श्राद्धादि कर्म के लिए जानने चाहिए । वेद के छहों अंगों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) के अध्ययन करने वाले, विनयशील, योगपरायण, सभी शास्त्रों में स्वतन्त्र विचार रखने वाले एवं सर्वदा गमन करनेवाले अर्थात् किसी एक निर्दिष्ट स्थान पर निवास न करनेवाले इन पाँच प्रकार के ब्राह्मणों को पंक्तिपावन समझना चाहिए । अठारह विद्याओं में से, जो एक में भी पारङ्गत हो, उसे भी पंक्तिपावन समझना चाहिए ॥ ५५-५६ ॥

इसके उपरान्त इनको भी पंक्तिपावन समझना चाहिए—त्रिनाचिकेत (नचिकेता की तीनों विद्याओं के अध्ययन करनेवाले), तीनों विद्याओं के जानने वाले, धर्मशास्त्र के अध्ययन करने वाले द्विज । इनके अतिरिक्त बृहस्पति के शास्त्र में जो ब्राह्मण पारङ्गत हैं, उन्हें भी पंक्तिपावन कहते हैं । इस प्रकार ऊपर कहे गए ये ब्राह्मण पंक्तिपावन कहे गए हैं । जो ब्राह्मण किसी के श्राद्धकर्म में आमंत्रित होकर स्त्री के साथ समागम करता है, उसके पितरगण उसी मांस को खाते हैं, और उनके वीर्य पर शयन करते हैं ॥ ५७-५९ ॥

श्राद्ध देकर तथा श्राद्ध में भोजन करके जो ब्राह्मण मैथुन कर्म करते हैं, उसके पितरगण उसी मांस को खाते हैं, और उसी वीर्य पर अवस्थित होते हैं इसमें सन्देह नहीं । इसीलिए श्राद्धकर्ता को श्राद्धादि कर्म में दान अतिथि को दे और भोजन ब्रह्मचारी ब्राह्मण को करवाये । इसके अतिरिक्त जो ध्यानपरायण द्विज योगाभ्यासी तथा दयालु हो उसे धर्म की मर्यादा की रक्षा के लिए दान करना चाहिए । श्राद्धकर्म में वीतराग संन्यासियों को अथवा बालखिल्यों (जो नये अन्न के प्राप्त कर लेने पर पूर्व संचित का त्याग कर देते हैं, अर्थात् जिन्हें जीविका आदि के लिए कोई चिन्ता नहीं रहती) को खिलाना चाहिए । वानप्रस्थ में रहनेवाला केवल पूजा मात्र में ही सन्तुष्ट और उपकृत हो जाता है ॥ ६०-६२ ॥

गृहस्थं भोजयेद्यस्तु विश्वेदेवास्तु पूजिताः । वानप्रस्थेन ऋषयो बालखिल्यैः पुरंदरः ॥ ६३ ॥
यतीनां पूजने चापि साक्षाद्ब्रह्मा तु पूजितः । आश्रमाः पावनाः पञ्च उपधाभिरनाश्रमाः ॥ ६४ ॥
चत्वार आश्रमाः पूज्याः श्राद्धे दैवे तथैव च । चतुराश्रमबाह्येभ्यः श्राद्धं नैव प्रदापयेत् ॥ ६५ ॥
स तिष्ठेद्वा बुभुक्षुस्तु चतुराश्रमबाह्यतः । अयतिर्मोक्षवादी च उभौ तौ पङ्क्तिदूषकौ ॥ ६६ ॥
वृथामुण्डाश्च जटिलाः सर्वे कार्प्पटिकास्तथा । निर्घृणान् भिन्नवृत्तांश्च सर्वभक्षान् विवर्जयेत् ॥ ६७ ॥
कारुकादीननाचारान् सर्ववेदबहिष्कृतान् । गायनान् देववृत्तांश्च हव्यकव्येषु वर्जयेत् ॥ ६८ ॥
द्विजेष्वपि कृतं नित्यं श्राद्धकर्म्मणि वर्जयेत् ॥ ६९ ॥
एतेषु वर्त्तते यश्च कृत्स्ववर्णं स गच्छति । योऽश्नाति सह शूद्रेण सर्वे ते पङ्क्तिदूषकाः ॥ ७० ॥

व्यापादनं शक्तिनिबर्हणं कृषिर्वाणिज्यकार्यं पशुपालनं च ॥
शुश्रूषणं वाऽप्यगुरो रहो वा कार्यं नैतद्विद्यते ब्रह्मणस्य ॥ ७१ ॥

जो श्राद्धकर्म में किसी गृहस्थ आश्रम में रहनेवाले ब्राह्मण को भोजन कराता है, उसे विश्वेदेवों की पूजा का फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार वानप्रस्थ में रहनेवाले के सन्तुष्ट होने पर ऋषियों को सन्तुष्ट करने का फल मिलता है। बालखिल्यों के सन्तुष्ट होने पर इन्द्र को सन्तुष्ट समझना चाहिए। यतियों के पूजित होने पर साक्षात् भगवान् ब्रह्मा का पूजित होना समझना चाहिए। अपनी-अपनी उपाधियों के कारण पाँच आश्रम पवित्र माने गए हैं, इनके अतिरिक्त कोई अन्य आश्रम नहीं है ॥ ६३-६४ ॥

पितरों के श्राद्ध कार्य में तथा देवकार्यों में केवल चार आश्रमों की पूजा का विधान है। इन चारों आश्रमों से जो बाहर हों उन्हें श्राद्धादि में कुछ भी नहीं देना चाहिए। जो इन चारों आश्रमों से बहिष्कृत हो, वह भले ही भूख से पीड़ित हो किन्तु उसे श्राद्धादि कर्मों से बाहर ही रखना चाहिए। जो यति नहीं है, और जो केवल मोक्ष की चर्चा करता है, वे दोनों पंक्तिदूषक हैं ॥ ६५-६६ ॥

व्यर्थ में लोगों को भ्रम में डालने के लिए जटा रखने वाले, चिथड़े-गुदड़ी आदि लपेटकर साधुता प्रदर्शित करनेवाले, निर्मम, विभिन्न आचार-विचारवाले तथा भक्ष्याभक्ष्य में कोई विवेक न रखनेवाले आदि लोगों को श्राद्धादि कर्म में वर्जित रखना चाहिए ॥ ६७ ॥

शिल्पकर्म (कारीगरी) आदि नीच वृत्ति द्वारा जीविका निर्वासित करनेवाले, अनाचारी (आचारविहीन), सभी वेदों से बहिष्कृत, गायन-वादन आदि द्वारा जीविका चलानेवाले, देवताओं के चरित्र का अनुकरण (रामलीला आदि में राम-लक्ष्मण आदि का अभिनय) करनेवाले ब्राह्मणों को हवन एवं श्राद्ध आदि में विवर्जित रखना चाहिए। द्विजों में भी नित्य श्राद्ध आदि में भोजन करनेवाले को भी श्राद्ध में वर्जित रखना चाहिए। जो नित्य श्राद्धादि में भोजन करके ही जीविका चलाता है वह श्यामल वर्ण का हो जाता है, इसी प्रकार जो शूद्र के साथ भोजन करता है वह नीच है—ये ऊपर कहे गए ब्राह्मण पंक्तिदूषक हैं ॥ ६८-७० ॥

जीवहिंसा, बलवान् होकर केवल जीव मारने आदि में अपनी शक्ति का दुरुपयोग करना, कृषिकर्म, वाणिज्य, पशुपालन, बिना गुरु के किसी अन्य की शुश्रूषा आदि करना ये सब कार्य ब्राह्मण के लिए नहीं हैं। जो नित्य ज्ञान एवं ध्यान में रहकर अपना जीवन यापन करते हैं वे ही ब्राह्मण हैं। इनके विपरीत जो मिथ्या संकल्प

ये तु विप्राः स्थिता नित्यं ज्ञानिनो ध्यानिनस्तथा । मिथ्यासङ्कल्पिनः सर्वे दुर्वृत्ता वाद्विजातयः ॥ ७२ ॥
मिथ्यातत्त्वविदो वर्ज्यास्तथा दम्भविसूचकाः । उपपातकसंयुक्ताः पातकैश्च विशेषतः ॥ ७३ ॥
वेदे नियोगदातारो लोभमोहफलार्थिनः । ब्रह्मविक्रयिणश्चैव श्राद्धकर्मणि वर्जिताः ॥ ७४ ॥
न नियोगोऽस्ति वेदानां यो नियुङ्क्ते स पापकृत् । भोक्ता वेदफलाद्भ्रश्येद्दाता दानफलात्तथा ॥ ७५ ॥
भृतोऽध्यापयते यस्तु भृतकाध्यापितस्तु यः । नार्हतस्तावपि श्राद्धं ब्रह्मणः क्रयविक्रयी ॥ ७६ ॥
क्रयविक्रयिणौ चैव जीवितार्थं विगर्हितौ । वृत्तिरेषा तु वैश्यस्य ब्राह्मणस्य तु पातकम् ॥ ७७ ॥
प्राहुर्वेदान् वेदविदो वेदान् यश्चोपजीवति । उभौ तौ नार्हतः श्राद्धं पुत्रिकापतिरेव च ॥ ७८ ॥
वृथा दारांश्च यो गच्छेद्यो यजेत वृथाध्वरे । नार्हतस्तावपि श्राद्धं द्विजो यश्चैव नास्तिकः ॥ ७९ ॥
आत्मार्थं यः पचेदन्नं न देवातिथिकारकः । नार्हतस्तावपि श्राद्धं पतितौ ब्रह्मराक्षसौ ॥ ८० ॥
स्त्रियो नक्तंपरा येषां परदाररताश्च ये । अर्थकामरताश्चैव न तान् श्राद्धेषु भोजयेत् ॥ ८१ ॥
वर्णाश्रमाणां धर्म्मेषु विरुद्धाः श्राद्धकर्म्मणि । स्तेनश्च सर्वयाजी च सर्वे ते पङ्क्तिदूषकाः ॥ ८२ ॥

करनेवाले, दुर्व्यवहार करनेवाले, मिथ्या तत्त्वों के जाननेवाले, दम्भी, चुगलखोर, छोटे-मोटे पापकर्मों में लगे रहनेवाले अथवा महान् पातकी ब्राह्मण हैं, वे श्राद्धादि कर्म में वर्जित माने गए हैं ॥ ७१-७३ ॥

वेदवाक्यों में अपनी आज्ञा देनेवाले अर्थात् वेदवाक्यों में मनमानी करनेवाले, लोभ और अज्ञानवश फल की आशा करनेवाले, ब्रह्म (विद्या) का विक्रय करनेवाले जो ब्राह्मण हैं, वे भी श्राद्धादिकर्म में वर्जित हैं ॥ ७४ ॥

वेदवाक्यों में किसी को दखल देने का अधिकार नहीं है, जो उनमें अपनी बुद्धि लगाता है, वह पातकी है । ऐसे लोगों को श्राद्धकर्म में जो दान करता है वह दान के फल से वंचित रहता है और जो भोजन करता है वह वेदाध्ययन के फल से वंचित रहता है । जो धन लेकर किसी को पढ़ाता है और जो धन लेकर पढ़ाने वाले अध्यापक से पढ़ता है वे दोनों भी श्राद्धादि कर्म में प्रवेश पाने के अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि ये दोनों ही विद्या के क्रय और विक्रय करने रूप अपराध के अपराधी हैं । जीविका के लिए विद्या का क्रय-विक्रय करना गर्हित है, यह वैश्यों की वृत्ति है, ब्राह्मण के लिए तो यह पातक है ॥ ७५-७७ ॥

जो सामान्य कथाओं की भाँति वेदवाक्यों को कहता है और जो वेदों को जाननेवाला, जीविका के लिए वेदों का पाठ आदि करता है वे दोनों ही श्राद्धकर्म के योग्य नहीं हैं, इसी प्रकार पुत्री का पति अर्थात् जामाता भी श्राद्धकर्म में नियुक्त करने योग्य नहीं है । जो व्यर्थ में स्त्री के साथ समागम करता और व्यर्थ में ही यज्ञ में हवन करता है, वे दोनों भी श्राद्ध के योग्य नहीं हैं, इसी प्रकार नास्तिक द्विज भी श्राद्ध के अधिकारी नहीं हैं । जो केवल अपने लिये अन्न पकाता है, और जो देवताओं और अतिथियों के लिए कुछ भी नहीं रखता, वे दोनों भी श्राद्ध कर्म के लिए उपयुक्त नहीं हैं, ऐसे ब्राह्मण पतित और ब्रह्मराक्षस हैं । जिनकी स्त्रियाँ रात्रि में पर पुरुषों के साथ व्यभिचार करती हैं, अथवा जो दूसरे की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करते हैं, जो अर्थ एवं काम में सर्वथा लोलुप रहते हैं, ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्धकर्म में भोजन नहीं कराना चाहिए ॥ ७८-८१ ॥

वर्णाश्रम की मर्यादा, धर्म एवं श्राद्धकर्म के विरोधी, चोरी करने वाले, किसी से भी यज्ञ करवा लेने वाले, या बिना विचार के सब कुछ यज्ञ में करने वाले ब्राह्मण पंक्तिदूषक हैं । जो ब्राह्मण सुअर की तरह भोजन करता है,

यश्च शूकरवद्भुङ्क्ते यश्च पाणितले द्विजः । न तदश्नन्ति पितरो यश्च वामं समश्नुते ॥ ८३ ॥
स्त्रीशूद्रायानुपेताय श्रद्धोच्छिष्टं न दापयेत् । यो दद्याद्रागमोहात्तु न तद्गच्छेत्पितॄन्सदा ॥ ८४ ॥
तस्मान्न देयमुच्छिष्टमन्नाद्यं श्राद्धकर्मणि । अन्यत्र दधिसर्पिभ्यां शिष्ये पुत्राय नान्यथा ॥ ८५ ॥
अनुच्छिष्टं तु दातव्यं अन्नाद्यं वै विशेषतः । पुष्पमूलफलैर्वाऽपि तुष्टिं गच्छन्ति चान्नतः ॥ ८६ ॥
यावन्त्यन्नानि पूतानि यावदुष्णं न मुञ्चति । तावदश्नन्ति पितरो यावदश्नन्ति वाग्यताः ॥ ८७ ॥
दानं प्रतिग्रहो होमो भोजनं बलिरेव च । साङ्गुष्ठेन तथा कार्यं नासुरेभ्यो यथा भवेत् ॥ ८८ ॥
एतान्येव च सर्वाणि दानादीनि विशेषतः । अन्तर्जान्वविशेषेण तद्वदाचमनं भवेत् ॥ ८९ ॥
मुण्डाञ्जटिलकाषायान् श्राद्धकालेऽपि वर्जयेत् । शिखिभ्यो वा त्रिदण्डिभ्यः श्राद्धं यत्नात् प्रदापयेत् ॥ ९० ॥
ये तु व्रते स्थिता नित्यं ज्ञानिनो ध्यानिनस्तथा । देवभक्ता महात्मानः पुनीयुर्दर्शनादपि ॥ ९१ ॥
सर्वं योगेश्वरैर्व्याप्तं त्रैलोक्यं वै निरन्तरम् । तस्मात् पश्यन्ति ते सर्वं यत्किञ्चिज्जगतीगतम् ॥ ९२ ॥
व्यक्ताव्यक्तं वशीकृत्य सर्वस्यापि च यत्परम् । सदसच्चेति यैर्दृष्टं सदसच्च महात्मनाम् ॥ ९३ ॥
सर्वज्ञानानि दृष्टानि मोक्षादीनि महात्मनाम् । तस्मात्तेषु सदासक्तः प्राप्नोत्यनुत्तमं शुभम् ॥ ९४ ॥

हथेली पर खाता है, अथवा बायें हाथ से खाता है, उसका दिया हुआ पितरगण नहीं ग्रहण करते । श्राद्ध से बची हुई वस्तुओं को, जो अनुचर न हो उसे नहीं देना चाहिए । जो अज्ञानवश इन्हें दे देता है, उसका भोजनादि वस्तुएँ स्त्री को तथा ऐसे दिया हुआ श्राद्ध पितरों को नहीं प्राप्त होता । इसलिए श्राद्धकर्म में जूठे बचे हुए अन्नादि पदार्थों को किसी को नहीं देना चाहिए । अन्य दूसरे कार्यों में दही और घृत मिश्रित कर शिष्य और पुत्र को देना चाहिए अन्यथा नहीं ॥ ८२-८३ ॥

विशेषतया बिना जूठे हुए अन्नादि को देना चाहिए । पुष्प, मूल और फलों से जिस प्रकार पितरगण तृप्त होते हैं उसी प्रकार अन्न से भी तृप्त होते हैं । जब तक अन्न उष्ण रहता है, तभी तक वह पवित्र रहता है अर्थात् ठंडा हो जाने पर अपवित्र हो जाता है । ब्राह्मण लोग जब तक शान्ति से इन्द्रियों को वश में रखकर भोजन करते हैं तभी तक पितरगण भोजन ग्रहण करते हैं, अर्थात् ब्राह्मणों को शान्ति एवं सावधानीपूर्वक इन्द्रियों को वश में रखकर भोजन करना चाहिए । दान, दान का अंगीकार, हवन, भोजन एवं बलि—इन कर्मों को अँगूठे के साथ सम्पन्न करना चाहिए, इससे वह कर्म असुरों के लिए वर्जित हो जाता है । श्राद्ध कर्म में विशेषतया उपर्युक्त दानादि कर्म करने चाहिए । साधारणतया घुटनों के भीतर हाथ करके आचमन करना चाहिए ॥ ८४-८७ ॥

श्राद्ध काल में भी मुण्डित सिरवाले, जटा रखनेवाले काषायवस्त्रधारी को वर्जित रखना चाहिए । यत्नपूर्वक शिखी और त्रिदण्डी अर्थात् मन, वचन और शरीर के दंड को धारण करनेवाले संन्यासी को यत्नपूर्वक श्राद्ध प्रदान करना चाहिए । जो ब्राह्मण नित्य व्रतपरायण रहते हैं, ज्ञानार्जन में प्रवृत्त रहकर योगाभ्यास में निरत रहते हैं, देवता में भक्ति रखते हैं, आत्मा से महान् होते हैं, उनके दर्शन मात्र से पवित्रता प्राप्त होती है । यह समस्त चराचर जगत् योगपरायण महात्माओं से निरन्तर व्याप्त रहता है, इसीलिए वे इस जगतीतल में जो कुछ होता है, उसे देखते हैं । व्यक्त, अव्यक्त, सबसे परे जो कुछ पदार्थ हैं उन सबको वे वश में रखते हैं । सत् असत् जो कुछ भी भाव या पदार्थ

ऋचो हि यो वेद स वेद वेदान् यजूंषि यो वेद स वेद यज्ञम् ॥
सामानि यो वेद स वेद ब्रह्म यो मानसं वेद स वेद सर्वम् ॥ ९५ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पे ब्राह्मणपरीक्षा नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

* * *

हैं उनके द्वारा दृष्ट हैं, महात्मा पुरुषों के लिए सत् असत् सभी पदार्थ वशीकृत हैं । महात्माओं के लिए निश्चित मोक्षादि एवं समस्त ज्ञान उनके अधिकृत रहते हैं । इसलिए उन योगपरायण महापुरुषों में आसक्ति (प्रेम) रखनेवाला परम कल्याण प्राप्त करता है । जो ऋग्वेद को ज्ञाता है, वह सभी वेदों को जानता है और जो यजुर्वेद का ज्ञाता है वह समस्त यज्ञों को जाननेवाला है, जो सामवेद को जानता है, वह पूर्णब्रह्मज्ञानी है, जो मानस (?) को जानता है वह सब कुछ जानता है ॥ ८८-९५ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में श्राद्धकल्प में ब्राह्मण परीक्षा नामक सत्रहवें अध्याय (उन्यासीवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १७ ॥**

* * *

अथ अष्टादशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पे दानफलम्

बृहस्पतिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानानि च फलानि च । तारणं सर्वभूतानां स्वर्गमार्गं सुखावहम् ॥ १ ॥
लोके श्रेष्ठतमं स्वर्ग्यमात्मनश्चापि यत्प्रियम् । सर्वं पितॄणां दातव्यं तेषामेवाक्षयार्थिना ॥ २ ॥
जाम्बूनदमयं दिव्यं विमानं सूर्यसंनिभम् । दिव्याप्सरोभिः संकीर्णमन्नदो लभते फलम् ॥ ३ ॥
आच्छादनं तु यो दद्यादाहतं श्राद्धकर्मणि । आयुः प्रकाममैश्वर्यं रूपं च लभते सुतम् ॥ ४ ॥
उपवीतं तु यो दद्याच्छ्राद्धकालेषु धर्मवित् । पानं च सर्वविप्राणां ब्रह्मदानस्य यत् फलम् ॥ ५ ॥
कृतं विप्रेषु यो दद्याच्छ्राद्धकाले कमण्डलुम् । मधुक्षीरस्रवा धेनुर्दातारमुपतिष्ठति ॥ ६ ॥
चक्राविद्धं तु यो दद्याच्छ्राद्धकाले कमण्डलुम् । धेनुं स लभते दिव्यां पयोदां काम्यदोहिनीम् ॥ ७ ॥
पूर्णशय्यां तु यो दद्यात् पुष्पमालाविभूषिताम् । प्रासादो ह्युत्तमो भूत्वा गच्छन्तमनुगच्छति ॥ ८ ॥

अट्ठारहवाँ अध्याय

(अस्सीवाँ अध्याय)

श्राद्ध में दान का फल

बृहस्पति ने कहा—अब इसके उपरान्त पुनः दान और उसके फलों को बतला रहा हूँ । सभी जीवों के उद्धार करनेवाले, स्वर्गमार्ग में सुख देनेवाले, लोक में सर्वश्रेष्ठ, स्वर्ग प्रदान करनेवाले, अपने को विशेष प्रिय लगनेवाले पदार्थों को अक्षय तृप्ति के लिए उन पितरों को देना चाहिए ॥ १-२ ॥

श्राद्धादि में अन्न का दान करनेवाला मनुष्य सुवर्ण के बने हुए, सूर्य के समान चमकते हुए, दिव्य सौन्दर्यशालिनी अप्सराओं से भरे हुए दिव्य विमान को प्राप्त करता है । जो मनुष्य श्राद्धकर्म में बिना फटा हुआ ओढ़ने का वस्त्र प्रदान करता है, वह दीघार्यु, ऐश्वर्य, सुन्दरता तथा पुत्र की प्राप्ति करता है ॥ ३-४ ॥

जो धर्मात्मा मनुष्य श्राद्धकर्म में यज्ञोपवीत का दान करता है तथा सभी समागत ब्राह्मणों को सुन्दर जलपान कराता है उसे ब्रह्म (विद्या) दान का फल प्राप्त होता है । जो मनुष्य श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मणों के लिए सुन्दर कमण्डलु का दान करता है, उस दाता के लिए मधु के समान मीठा दूध देनेवाली गौ नियुक्त रहती है । जो श्राद्धकाल में चक्राकार चिह्न से चिह्नित कमण्डलु प्रदान करता है, वह सभी मनोरथों को प्रदान करनेवाली, दिव्यगुणसम्पन्न, दूध देनेवाली गौ प्राप्त करता है । जो पुष्प की मालाओं से विभूषित, सभी सामग्रियों से समन्वित

भवनं रत्नसम्पूर्णं सशय्यासनभोजनम् । श्राद्धे दत्त्वा यतिभ्यस्तु नाकपृष्ठे स मोदते ॥ ९ ॥
मुक्तावैदूर्यवासांसि रत्नानि विविधानि च । वाहनानि च दिव्यानि अयुतान्यर्बुदानि च ॥ १० ॥
सुमहज्ज्वलनप्रख्यं रत्नकामसमन्वितम् । सूर्यचन्द्रप्रभं दिव्यं विमानं लभतेऽक्षयम् ॥ ११ ॥
अप्सरोभिः परिवृतं कामगं तु मनोजवम् । वसते स विमानाग्र्ये स्तूयमानः समन्ततः ॥ १२ ॥
दिव्यैर्गन्धैः प्रसिञ्चन्ति पुष्पवृष्टिभिरेव च । गन्धर्वाप्सरसस्तत्र गायन्ते वादयन्ति च ॥ १३ ॥
कन्या युवतयो मुख्याः सहिताश्चाप्सरोगणैः । सुस्वरैस्तं विबुध्यन्ते सततं हि मनोरमैः ॥ १४ ॥
अश्वदानसहस्रेण रथदानशतेन च । दन्तिनां च सहस्रेण योगिन्या वसते नरः ॥ १५ ॥
दद्यात् पितृभ्यो योगिभ्यो यस्तूज्ज्वलनमम्भसि । अथ निष्कसहस्राणां फलं प्राप्नोति मानवः॥ १६ ॥
जीवितस्य प्रदानाद्धि नान्यद्दानं विशिष्यते । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देयं प्राणाभिरक्षणम् ॥ १७ ॥
अहिंसा सर्वदेवेभ्यः पवित्रा सर्वदायिनी । दानं हि जीवितस्याहुः प्राणिनां परमं बुधाः ॥ १८ ॥
लक्षणानि सुवर्णानि श्राद्धे पात्राणि दापयेत् । रसास्तमुपतिष्ठन्ति भक्ष्याः सौभाग्यमेव च ॥ १९ ॥
पात्रं वै तैजसं दद्यान्मनोज्ञं श्राद्धभोजने । पात्रं भवति कामानां रूपस्य च धनस्य च ॥ २० ॥

सुन्दर शय्या का दान करता है, उसकी वह शय्या उत्तम प्रासाद (राजमहल) के रूप में उसके पीछे-पीछे (परलोक में) चलती है ॥ ७-८ ॥

श्राद्ध के अवसर पर रत्नादि से युक्त शय्या एवं आसनादि से अलंकृत भवन को यतियों के लिए दान करनेवाला मनुष्य स्वर्ग में आनन्द की प्राप्ति करता है। मोती, वैदूर्य, विविधवस्त्र, रत्न, करोड़ों अरबों की संख्या में दिव्य वाहन तथा अतिप्रकाशमान, रत्नादि से विभूषित, चन्द्रमा और सूर्य के समान एक दिव्यवाहन प्राप्त करता है, उस दिव्य विमान का कभी विनाश नहीं होता ॥ ९-११ ॥

इच्छानुसार गमन करनेवाला, मन के समान वेगशाली वह रथ चारों ओर से अप्सराओं द्वारा घिरा रहता है। उस श्रेष्ठ विमान में चारों ओर से उसकी स्तुति की जाती है। गन्धर्व और अप्सराओं के वृन्द दिव्य सुगन्धित द्रव्यों एवं पुष्प की वृष्टियों से उसे आच्छादित करते हैं। मनोहर गायन और वादन द्वारा उसका मनोरंजन करते हैं। परम सुन्दरी अप्सराओं के साथ मुख्य-मुख्य युवती कन्याएँ मनोरम संगीतमय स्वरों से उन्हें सर्वदा जगाती हैं। एक सहस्र अश्वों के दान करने से, एक सौ रथों के दान करने से तथा एक सहस्र हाथियों के दान करने से मनुष्य योगिनी के साथ निवास करता है ॥ १२-१५ ॥

जो व्यक्ति योगपरायण पितरों के उद्देश्य से जल में दीपदान करता है, उसे एक सहस्र निष्कों के दान का फल प्राप्त होता है। जीवनदान के समान विशेषता किसी अन्य दान की नहीं है, इसलिए सब प्रयत्न करके प्राणों की रक्षा का दान करना चाहिए। अहिंसा देवताओं की अपेक्षा पवित्र एवं सब कुछ देनेवाली है, प्राणियों को जीवन का दान करना सभी दानों से श्रेष्ठ है-ऐसा बुद्धिमान् लोग कहते हैं। श्राद्ध में सभी लक्षणों से युक्त सुवर्ण के पात्रों का दान करना चाहिए। जो लोग श्राद्ध में इस प्रकार के सुवर्ण निर्मित पात्रों का दान करते हैं, उन्हें विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ, रस एवं सौभाग्य की प्राप्ति होती है ॥ १६-१९ ॥

श्राद्धकाल में भोजन के अवसर पर सुन्दर बने हुए तैजस (चाँदी के) पात्रों का दान करना चाहिए, वह पात्र

राजतं काञ्चनं वापि दद्याच्छ्राद्धे तु कर्म्मणि । दत्त्वा तु लभते दाता प्रकामं धर्म्ममेव च ॥ २१ ॥
धेनुं श्राद्धे तु यो दद्याद्गृष्टि कुम्भोपदोहनाम् । गावस्तमुपतिष्ठन्ति गवां पुष्टिस्तथैव च ॥ २२ ॥
शिशिरेषु तथा त्वग्निं बहुकाष्ठं तथैव च । इन्धनानि तु यो दद्याद्द्विजेभ्यः शिशिरागमे ॥ २३ ॥
नित्यं जयति सङ्ग्रामे श्रिया युक्तश्च दीप्यते । सुरभीणि च माल्यानि गन्धवन्ति तथैव च ॥ २४ ॥
पूजयित्वा तु पात्राणि श्राद्धे सत्कृत्य दापयेत् । गन्धवाहा महानद्यः सुखानि विविधानि च ॥ २५ ॥
दातारमुपतिष्ठन्ति युवत्यश्च मनोरमाः । शयनासनानि रम्याणि भूमयो वाहनानि च ॥ २६ ॥
श्राद्धेऽप्येतानि यो दद्यादश्वमेधफलं लभेत् । श्राद्धकाले निवेद्यं च दर्शश्राद्ध उपस्थिते ॥ २७ ॥
विप्राणां गुणयुक्तानां स्मृतिं मेधां च विन्दति । सर्पिष्पूर्णानि पात्राणि श्राद्धे सत्कृत्य दापयेत् ॥ २८ ॥
कुम्भदोहनधेनूनां बह्वीनां च फलं लभेत् । अस्मिंस्तु मोदते लोके स्यन्दनैश्च सुवाहनैः ॥ २९ ॥
श्राद्धे यथेप्सितं दत्त्वा पुण्डरीकस्य यत्फलम् । रम्यमावसथं दत्वा राजसूयफलं लभेत् ॥ ३० ॥
वनं पुष्पफलोपेतं दत्त्वा सौरभमश्नुते । कूपारामतडागानि क्षेत्रघोषगृहाणि च ॥ ३१ ॥
दत्त्वैतान् मोदते स्वर्गे नित्यमाचन्द्रतारकम् । आस्तीर्णशयनं दत्त्वा श्राद्धे रत्नविभूषितम् ॥ ३२ ॥
पितरस्तस्य तुष्यन्ति स्वर्गं चानन्त्यमश्नुते । राजभिः पूज्यते चापि धनधान्यैश्च वर्द्धते ॥ ३३ ॥

दाता के स्वरूप, धन-सम्पत्ति और सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाला होता है (श्राद्धकर्म में सुवर्ण अथवा चाँदी के बने हुए पात्रों को जो दाता देते हैं, वे परम धर्म की प्राप्ति करते हैं ।), जो व्यक्ति श्राद्ध में दोहन पात्र के साथ एक बार की ब्याई हुई गाय का दान करता है, उसे अनेक गौएँ प्राप्त होती हैं और सर्वदा पुष्टि रहती हैं ॥ २०-२२ ॥

शिशिर ऋतु में श्राद्ध के अवसर पर जो अग्नि एवं प्रचुर परिमाण में ईंधन का करता है, अथवा शिशिर ऋतु के आ जाने पर जो ब्राह्मणों के लिए ईंधन दान करता है, वह संग्राम में सर्वदा विजयी होता है और शोभासम्पन्न होकर परम तेजस्वी होता है । श्राद्ध के अवसर पर सुगन्धित पुष्पों की मालाएँ तथा सुन्दर पात्रों को सत्कारपूर्वक दान करना चाहिए । जो ऐसा करता है, उसे महानदियाँ सुगन्धि से युक्त होकर परम सुख पहुँचाती हैं, विविध सुखों की प्राप्ति होती है ॥ २३-२५ ॥

मनोरम युवती स्त्रियाँ उस दाता के पास उपस्थित होती हैं । विविध प्रकार की शय्या, मनोहर आसन, प्रचुर भूमि एवं विविध वाहन-इन सबको जो श्राद्ध के अवसर पर देता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है । सामान्य श्राद्धों के अवसर पर अथवा दर्श श्राद्धों के अवसर पर जो इन वस्तुओं का दान सर्वगुणसम्पन्न ब्राह्मणों को करता है, वह सुन्दर स्मरण शक्ति और बुद्धि को प्राप्त करता है । श्राद्ध के अवसर पर घृत से भरे हुए अनेक पात्रों का सत्कारपूर्वक दान करना चाहिए, जो ऐसा करता है, वह दोहन कलश समेत अनेक गौओं के दान का फल प्राप्त करता है । इस लोक में सुन्दर वाहनों एवं रथों का आनन्द प्राप्त करता है ॥ २६-२९ ॥

श्राद्ध के अवसर पर याचक की मनचाही वस्तु का दान करने से पुण्डरीक यज्ञ का एवं सुन्दर निवास स्थल का दान करने से राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है । एवं फलों से समन्वित वन का दान करने से सुगन्धित पदार्थों की प्राप्ति होती है । कूपों, बगीचों, तड़ागों, क्षेत्रों, गोशालाओं और गृहों के दान करने से दाता स्वर्गलोक में तब तक निवास करता है, जब तक चन्द्रमा और तारागण विद्यमान रहते हैं । श्राद्ध काल में जो रत्नजटित

ऊर्णाकौशेयवस्त्राणि तथा प्रवरकम्बलौ । अजिनं काञ्चनं पट्टं प्रवेणी मृगलोमकम् ॥ ३४ ॥
दानान्येतानि विप्रेभ्यो भोजयित्वा यथाविधि । प्राप्नोति श्रद्दधानस्तु वाजपेयशतं फलम् ॥ ३५ ॥
बह्व्यो नार्य्यः सुरूपास्तु पुत्रा भृत्याश्च किङ्कराः। वशे तिष्ठन्ति भूतानि अस्मिँल्लोके त्वनामयम् ॥३६॥
कौशेयं क्षौम्यकार्पासं दुकूलसहितं तथा । श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात् कामानाप्नोति पुष्कलान् ॥ ३७ ॥
अलक्ष्मीं विनुदत्याशु तमः सूर्य्योदये यथा । भ्राजते स विमानाग्रे नक्षत्रेष्विव चन्द्रमाः ॥ ३८ ॥
वासो हि सर्वदैवत्यं सर्वदेवैस्त्वभिष्टुतम् । वस्त्राभावे क्रिया नास्ति यज्ञा वेदास्तपांसि च ॥ ३९ ॥
तस्माद्वस्त्राणि देयानि श्राद्धकाले विशेषतः । तानि सर्वाण्यवाप्नोति यज्ञवेदतपांसि च ॥ ४० ॥
नित्यं श्राद्धेषु यो दद्यात् प्रयतस्तत्परायणः । सर्वान् कामानवाप्नोति सर्वं राज्यं तथैव च ॥ ४१ ॥
सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते । भक्ष्यान् धानाः करम्भांश्च पिष्टकान् घृतशर्कराः ॥ ४२ ॥
कृशरान्मधुपर्कं च पयः पायसमेव च । स्निग्धांश्च पूपान् यो दद्यादग्निष्टोमस्य यत् फलम् ॥ ४३ ॥
दधि गव्यमसंसृष्टं भक्ष्या नानाविधास्तथा । तदन्नं शोचति श्राद्धे वर्षासु च मघासु च ॥ ४४ ॥

बिछावन और शय्या का दान करता है, उसके पितरगण सन्तुष्ट होते हैं, और दाता अनन्त काल तक स्वर्ग में निवास करता है । राजाओं द्वारा वह पूजित होता है, उसके धन-धान्यादि की वृद्धि होती है ॥ ३०-३३ ॥

ऊनी, रेशमी वस्त्र, श्रेष्ठ कम्बल, चर्म, सुवर्ण निर्मित पट्ट और मृगलोम इन सब वस्तुओं को विधिपूर्वक ब्राह्मणों को देना चाहिए । इन दानों पर श्रद्धा रखनेवाले सौ वाजपेय यज्ञों का फल प्राप्त करते हैं ॥ ३४-३५ ॥

इस लोक में बहुतेरी सुन्दरी स्त्रियाँ, पुत्र एवं सेवकगण उसके वश में रहते हैं, बहुत से लोग उसके अधीन रहते हैं, और वह सर्वदा नीरोग रहता है । जो व्यक्ति नवीन रेशमी वस्त्र, सूक्ष्म सूती वस्त्र, सुन्दर साड़ियों को श्राद्धों के अवसर पर दान करता है, वह अपने समस्त मनोरथों को प्राप्त करता है । उसकी सारी विपत्तियाँ इस प्रकार दूर हो जाती हैं, जैसे सूर्योदय होने पर अन्यकार । नक्षत्रों में चन्द्रमा के समान देवविमानों में वह अग्रसर होकर सुशोभित होता है ॥ ३६-३८ ॥

वस्त्र सभी देवताओं द्वारा प्रशंसित तथा सर्व देवमय है, उस सर्वश्रेष्ठ वस्त्र के अभाव में कोई क्रिया सम्पन्न नहीं होती, न तो यह सम्पन्न होता है और न तपस्या ही सफल होती है । इसलिए श्राद्ध के अवसर पर विशेष रूप से वस्त्रों का दान करना चाहिए । ऐसा करनेवाला समस्त यज्ञों, वेदों और तपस्याओं का फल प्राप्त करता है । जो व्यक्ति श्राद्ध के अवसर पर इन्द्रियों को वश में रखकर वस्त्रों का दान करता है वह समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है, स्वर्ग और राज्य प्राप्त करता है ॥ ३९-४१ ॥

सभी कामनाओं से सम्पन्न यज्ञ का फल प्राप्त करता है । विविध प्रकार के मक्ष्य पदार्थ, धान्य, करम्भ (दही मिश्रित सत्तू), पेठ, घृत और शक्कर, खिचड़ी, मधुपर्क, दुग्ध, दुग्ध से बने हुए पदार्थ, सुन्दर पूआ—इन सब वस्तुओं को श्राद्ध के अवसर पर जो व्यक्ति दान करता है वह अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥ ४२-४३ ॥

वर्षा ऋतु में श्राद्ध के अवसर पर विशेषतया मघा नक्षत्र में पितरगण दही, शुद्ध गोरस, विविध प्रकार के भक्ष्य पदार्थ की चिन्ता करते हैं अर्थात् मघानक्षत्र में श्राद्ध करते समय इन पदार्थों को देना चाहिए । श्राद्ध करते

घृतेन भोजयेद्विप्रान् घृतं भूमौ समुत्सृजेत् । गयायां हस्तिनश्चैव दत्त्वा श्राद्धे न शोचति ॥ ४५ ॥
ओदनं पायसं सर्पिर्मधुमूलफलानि च । भक्ष्यांश्च विविधान्दत्त्वा प्रेत्य चेह च मोदते ॥ ४६ ॥
शर्कराक्षीरसंयुक्तं पृथुकं नित्यमक्षयम् । यश्च संवत्सरं प्रीत्या कृसरैर्मसुरेण च ॥ ४७ ॥
सक्तुलाजास्तथा पूपाः कुल्माषव्यञ्जनैस्तथा । सर्पिः स्निग्धानि हृद्यानि दध्ना सक्तूंस्तु भोजयेत् ॥
श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात् पद्मानि लभते निधिम् ॥ ४८ ॥
नवसस्यानि यो दद्याच्छ्राद्धे सत्कृत्य यत्नतः । सर्वभोगानवाप्नोति पूज्यते च दिवं गतः ॥ ४९ ॥
भक्ष्यभोज्यानि चोष्याणि पेयलेह्यवराणि च । सर्वश्रेष्ठानि यो दद्यात् सर्वश्रेष्ठो भवेन्नरः ॥ ५० ॥
वैश्वदेवं च सौम्यं च खाड्गमांसं परं हविः । विषाणं वर्जयेत् खाड्गं असूयां नाशयामहे ॥ ५१ ॥
भोजनेऽग्रासनं दद्यादतिथिभ्यः कृताञ्जलिः । सर्वयज्ञक्रियाणां स फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ५२ ॥
क्षिप्रमत्युष्णमक्लिष्टं दद्याच्चान्नं बुभुक्षते । व्यञ्जनं च तथा स्निग्धं भक्त्या सत्कृत्य यत्नतः ॥ ५३ ॥
तरुणादित्यसङ्काशं विमानं हंसवाहनम् । अन्नदो लभते तिस्रः कल्पकोटीस्तथैव च ॥ ५४ ॥

समय घृत के साथ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए, भूमि पर घृत छोड़ना चाहिए, गया तीर्थ में हाथी दान करके पितरों के विषय में चिन्ता छूट जाती है ॥ ४४-४५ ॥

भात, दुग्ध में बने हुए पदार्थ, घृत, मधु, मूल, फल, विविध प्रकार की भोजन सामग्री-इन सब वस्तुओं को श्राद्ध के अवसर पर दान करने से इहलोक तथा परलोक में आनन्द की प्राप्ति होती है । दूध मिश्रित शक्कर और चिउड़ा का दान कभी नष्ट होनेवाला नहीं है । मसूर और खिचड़ी के दान से पितरगण एक वर्ष तक सन्तुष्ट रहते हैं । इसी प्रकार सत्तू, धान के लावे, पूआ और कुल्माष (कुल्थी के बने हुए व्यंजनों) से भी एक वर्ष तक पितरगण तृप्त रहते हैं । घृत, मनोहर और हृदय को लुभानेवाली अन्यान्य खाद्य सामग्री तथा दही के साथ सत्तू का भोजन श्राद्ध के अवसर पर देना चाहिए । जो व्यक्ति इन सब वस्तुओं को श्राद्ध के अवसर पर दान करता है, वह कई पद्म का खजाना प्राप्त करता है ॥ ४६-४८ ॥

जो सत्कार एवं यत्नपूर्वक श्राद्ध के अवसर पर नवीन अन्न का दान करता है, वह सभी प्रकार के भोगों को प्राप्त करता है, पूजित होता है तथा स्वर्ग प्राप्त करता है । जो मनुष्य विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ, भक्ष्य सामग्रियाँ तथा पीने और चाटने की श्रेष्ठ सामग्रियाँ श्राद्धकाल में देता है, वह सर्वश्रेष्ठ होता है । इस श्राद्ध में वैश्वदेव और सोम को उनका भाग देना चाहिए, गैंडे के मांस की आहुति देनी चाहिए वही सर्वश्रेष्ठ हवि है । केवल गैंडे की सींग छोड़ देनी चाहिए-इसे वर्जित कर हम पितरों की घृणा को नष्ट करते हैं । अर्थात् गैंड़े की सींग को पितरगण घृणा की दृष्टि से देखते हैं । हाथ जोड़कर अतिथियों को भोजन कराते समय आगे आसन देना चाहिए, जो ऐसा करता है वह सभी यज्ञों एवं सत्क्रियाओं का फल प्राप्त करता है ॥ ४९-५२ ॥

जो भूखा अतिथि हो, उसे अति शीघ्रतापूर्वक खूब पकी हुई गरमागरम भोजन सामग्री देनी चाहिए । यत्नपूर्वक भक्ति एवं सत्कार के साथ उसे चिकना स्निग्ध भोजन देना चाहिए । जो ऐसा करता है, उसे मध्याह्न के सूर्य के समान तेजस्वी हंसों के वाहनों से समन्वित विमान की प्राप्ति होती है । श्राद्ध के अवसर पर अन्न दान करनेवाला तीन करोड़ सुन्दरी कन्याओं को प्राप्त करता है ॥ ५३-५४ ॥

अन्नदानात्परं दानं विद्यते नेह किञ्चन । अन्नाद्भूतानि जायन्ते जीवन्ति च न संशयः ॥ ५५ ॥
जीवादानात् परं दानं न किञ्चिदिह विद्यते । अन्नैर्जीवति त्रैलोक्यमन्नस्यैव हि तत्फलम् ॥ ५६ ॥
अन्ने लोकाः प्रतिष्ठन्ति लोकदानस्य तत्फलम् । अन्नं प्रजापतिः साक्षात्तेन सर्वमिदं ततम् ॥
तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ ५७ ॥
यानि रत्नानि मेदिन्यां वाहनानि स्त्रियस्तथा । क्षिप्रं प्राप्नोति तत् सर्वं पितृभक्तो हि मानवः ॥ ५८ ॥
प्रतिश्रयं सदा दद्यादतिथिभ्यः कृताञ्जलिः । देवास्ते संप्रतीक्षन्ते दिव्यातिथ्यैः सहस्रशः ॥ ५९ ॥
सर्वाण्येतानि यो दद्यात् पृथिव्यामेकराड् भवेत् । त्रिभिर्द्वाभ्यामथैकेन दानेन तु सुखी भवेत् ॥ ६० ॥
दानानि परमो धर्म्मः सद्भिः सत्कृत्य पूजितः । त्रैलोक्यस्याधिपत्यं हि दानादेव व्यवस्थितम् ॥ ६१ ॥
राजा तु लभते राज्यमधनश्चोत्तमं धनम् । क्षीणायुर्लभते चायुः पितृभक्तः सदा नरः ॥
यान् कामान् मनसार्थेत तांस्तस्य पितरो विदुः ॥ ६२ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पे दानफलं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

* * *

इस मर्त्यलोक में अन्न दान से बढ़कर कोई अन्य दान नहीं है । इसमें किसी को सन्देह न होगा कि अन्न से ही समस्त जीव पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं और जीवन चलाते हैं । उसी प्रकार इस मर्त्यलोक में जीव दान के समान कोई अन्य दान नहीं है । अन्नों द्वारा यह त्रैलोक्य जीवित है, यह सारा विश्वप्रपंच अन्न का ही परिणाम है । अन्न में ही समस्त लोकों की स्थिति और प्रतिष्ठा है, अन्न दान से ही वे वर्तमान हैं, अन्न हो साक्षात् प्रजापति है उसी से यह सारा त्रैलोक्य व्याप्त है । इस कारण अन्न दान के समान कोई अन्य दान न तो जगत् में था और न भविष्यत्काल में कभी होगा ॥ ५५-५७ ॥

इस पृथ्वी में जितने भी वाहन हैं, जितनी भी सुन्दर स्त्रियाँ हैं, उन सबको पितरों में भक्ति रखनेवाला मनुष्य शीघ्र ही प्राप्त करता है इसलिए उसे सर्वदा हाथ जोड़कर अतिथियों को आश्रय देना चाहिए । सहस्त्रों देवगण दिव्य (मनोरम) आतिथ्य प्राप्ति के लिए प्रतीक्षा करते रहते हैं । जो व्यक्ति ऊपर कही गयी समस्त वस्तुओं को श्राद्ध में दान करता है वह पृथ्वी का एकच्छत्र सम्राट् होता है, अथवा इनमें से तीन, दो या एक ही का दान करता है वह भी सुखी होता है ॥ ५८-६० ॥

ये दान परमधर्म हैं, सत्पुरुषों ने इनका सर्वदा सत्कार और पूजन किया है । समस्त त्रैलोक्य का आधिपत्य दान से ही व्यवस्थित है । राजा लोग राज्य प्राप्त करते हैं, निर्धन लोग उत्तम धन प्राप्त करते हैं, क्षीणायु दीर्घायु प्राप्त करते हैं, पितरों में भक्ति रखनेवाला मनुष्य मन से भी जिन अभिलाषाओं का चिन्तन करता है, उनको पितरगण पूर्ण करते हैं ॥ ६१-६२ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में श्राद्धकल्प में दान का फल नामक अट्ठारहवें अध्याय (अस्सीवें अध्याय) की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १८ ॥

* * *

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पे तिथिविशेषे श्राद्धफलम्

बृहस्पतिरुवाच

अत ऊर्द्धवं प्रवक्ष्यामि श्राद्धकर्म्मणि पूजितम् । काम्यनैमित्तिकाजस्रं श्राद्धकर्म्मणि नित्यशः ॥ १ ॥
पुत्रदारधनमूला अष्टकास्तिस्र एव च । पूर्वपक्षो वरिष्ठो हि पूर्वा चित्री उदाहृता ॥ २ ॥
प्राजापत्या द्वितीया स्यात् तृतीया वैश्वदेविकी । आद्या पूपैः सदा कार्या मांसैरन्या भवेत्सदा ॥ ३ ॥
शाकैरन्या तृतीया स्यादेवं द्रव्यगतो विधिः । अन्वष्टका पितृणां वै नित्यमेव विधीयते ॥ ४ ॥
यद्यन्या च चतुर्थी स्यात्तां च कुर्याद्विशेषतः । तासु श्राद्धं बुधः कुर्य्यात् सर्वस्वेनापि नित्यशः॥ ५ ॥
परत्रेह च सर्व्वेषु नित्यमेव सुखी भवेत् । पूजकानां सदोत्कर्षो नास्तिकानामधो गतिः ॥ ६ ॥
पितरः सर्व्वकालेषु तिथिकालेषु देवताः । सर्व्वे पुरुषमायान्ति निपानमिव धेनवः ॥ ७ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

(इक्यासीवाँ अध्याय)

विशेष तिथियों में श्राद्ध के किये जाने का फल

बृहस्पति ने कहा—अब इसके बाद मैं नित्य, नैमित्तिक और काम्य श्राद्धों का विवरण बतला रहा हूँ, और यह भी बतला रहा हूँ कि श्राद्धकर्म पूजनादि किस प्रकार सम्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

तीनों अष्टकाएँ पुत्र को देनेवाली और पन सम्पत्ति आदि की कारणीभूत हैं । इस श्राद्धकर्म में पूर्वपक्ष अर्थात् कृष्णपक्ष श्रेष्ठ माना गया है । तीनों अष्टकाओं में प्रथम चित्री कही गयी है । दूसरी प्राजापत्य और तीसरी वैश्वदेवी है । इन तीनों में पहली को पूओं द्वारा, दूसरी को मांसों द्वारा तथा तीसरी को शाकों द्वारा करना चाहिए । यह इन तीनों अष्टकाओं के लिए पदार्थों का नियम है । पितरों के लिए अन्वष्टका श्राद्ध सर्वत्र करना चाहिए । यदि कोई अन्य चौथी अष्टका मिले तो उसे भी विधिपूर्वक सम्पन्न करे । बुद्धिमान् पुरुष को इन सब अष्टकाओं में सर्वस्व व्यय करके भी श्राद्ध करना चाहिए । ऐसा करनेवाला प्राणी इहलोक तथा परलोक दोनों में सर्वदा आनन्द का अनुभव करता है । पूजा आदि करनेवालों की सदा उन्नति होती है और जो नास्तिक विचारवाले होते हैं, उनकी सर्वदा अधोगति होती है ॥ २-६ ॥

पितरगण पर्व के अवसरों पर तथा देवगण विशेष-विशेष तिथियों पर श्राद्धादि एवं पूजा आदि करनेवाले पुरुष के पास इस प्रकार उपस्थित होते हैं जैसे गौएँ जलाशय के समीप पानी पीने के लिए आती हैं ॥ ७ ॥

मा स्म ते प्रतिगच्छेयुरष्टकाः सुरपूजिताः। मोघस्तस्य भवेल्लोको लब्धं चास्य विनश्यति॥ ८ ॥
देवांस्तु दायिनो यान्ति तिर्यग्गच्छन्त्यदायिनः । प्रजां पुष्टिं स्मृतिं मेधां पुत्रानैश्वर्य्यमेव च ॥ ९ ॥
कुर्व्वाणः पौर्णमास्यां च पूर्व्वं पूर्णं समश्नुते । प्रतिपद्धनलाभाय लब्धं चास्य न नश्यति ॥ १० ॥
द्वितीयायां तु यः कुर्याद्विपदाधिपतिर्भवेत् । वरार्थिनां तृतीया तु शत्रुघ्नी पापनाशिनी ॥ ११ ॥
चतुर्थ्यां कुरुते श्राद्धं शत्रोश्छिद्राणि पश्यति । पञ्चम्यां वै प्रकुर्वाणः प्राप्नोति महतीं श्रियम् ॥ १२ ॥
षष्ठ्यां श्राद्धानि कुर्वाणं द्विजास्तं पूजयन्त्युत । कुरुते यस्तु सप्तम्यां श्राद्धानि सततं नरः ॥ १३ ॥
महासत्रमवाप्नोति गणानामधिपो भवेत् । सम्पूर्णामृद्धिमाप्नोति योऽष्टम्यां कुरुते नरः ॥ १४ ॥
श्राद्धं नवम्यां कुर्वाण ऐश्वर्यं काङ्क्षितां स्त्रियम् । कुर्वन् दशम्यां तु नरो ब्राह्मीं श्रियमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥
वेदांश्चैवाप्नुयात् सर्वान् प्रणाशमेनसस्तथा । एकादश्यां परं दानमैश्वर्यं सततं तथा ॥ १६ ॥
द्वादश्यां राष्ट्रलाभं तु जयामाहुर्वसूनि च । प्रजां बुद्धिं पशून् मेधां स्वातन्त्र्यं पुष्टिमुत्तमाम् ॥
दीर्घमायुरथैश्वर्य्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम् ॥ १७ ॥
युवानश्च मृता यस्य गृहे तेषां प्रदापयेत् । शस्त्रेण तु हता ये वै तेषां दद्याच्चतुर्दशीम् ॥ १८ ॥

वे पितरगण देवताओं द्वारा पूजित इन अष्टकाओं के समीप नहीं जाते । जो व्यक्ति इन अष्टकाओं में पितरों की पूजा आदि नहीं करते, उनका यह जन्म व्यर्थ हो जाता है और जो कुछ प्राप्त है वह नष्ट हो जाता है। जो इन अवसरों पर श्राद्धादि का दान करते हैं वे देवताओं के समीप अर्थात् स्वर्गलोक को जाते हैं और जो नहीं देते वे तिर्यक् योनियों में जाते हैं। उसकी बुद्धि, पुष्टि, स्मरणशक्ति, धारणाशक्ति, पुत्र-पौत्रादि एवं ऐश्वर्य की वृद्धि होती है, जो पूर्णमासी के अवसर पर श्राद्धादि करता है, इस प्रकार वह पूर्ण पर्व का फल भोगता है। इसी प्रकार प्रतिपदा धन-सम्पत्ति के लाभ के लिए होती है, एवं करनेवाले की प्राप्त वस्तु नष्ट नहीं होती ॥ ८-१० ॥

द्वितीया तिथि को जो पितरों के उद्देश्य से श्राद्धादि करता है, वह दो पादवालों (मनुष्यों) का राजा होता है। उत्तम अर्थ की प्राप्ति के अभिलाषी व्यक्ति के लिए श्राद्धादि में तृतीया विहित है, यह तृतीया शत्रुओं तथा पापों का नाश करती है। जो चतुर्थी तिथि को श्राद्ध करता है वह शत्रुओं का छिद्र देखता है, अर्थात् उसे शत्रु की कूट चालों का ज्ञान हो जाता है। पञ्चमी तिथि को श्राद्ध करनेवाला उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति करता है ॥ ११-१२ ॥

जो षष्ठी तिथि को श्राद्धादि कर्मों को सम्पन्न करते हैं, उनकी पूजा देवता लोग करते हैं। जो मनुष्य सर्वदा सप्तमी तिथि को श्राद्धादि कार्य करते हैं, वे महान् यज्ञों के पुण्यफल प्राप्त करते हैं और गणों के स्वामी होते हैं। जो मनुष्य अष्टमी को श्राद्ध करता है, वह सम्पूर्ण समृद्धियाँ प्राप्त करता है। नवमी तिथि को श्राद्ध कर्म करनेवाले को प्रचुर ऐश्वर्य एवं मन के अनुसार चलनेवाली स्त्री की प्राप्ति होती है। दशमी तिथि को श्राद्ध करनेवाला मनुष्य ब्रह्मत्व की लक्ष्मी प्राप्त करता है ॥ १३-१५ ॥

एकादशी तिथि को श्राद्धादि का दान सर्वश्रेष्ठ दान है, जो उक्त तिथि को श्राद्धादि का दान करता है, वह समस्त वेदों को प्राप्त करता है, उसके सम्पूर्ण पापकर्मों का विनाश हो जाता है तथा निरन्तर ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। द्वादशी तिथि को श्राद्ध करने से राष्ट्र का कल्याण तथा अन्नों की प्राप्ति होती कही गयी है। त्रयोदशी तिथि को श्राद्धादि कर्म करने से सन्तति, बुद्धि, पशु, धारणाशक्ति, स्वतन्त्रता, उत्तम पुष्टि, दीघार्यु तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति

तथा विषमजातानां यमलानां तु सर्वशः । अमावास्यां प्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याच्छुचिः सदा ॥ १९ ॥
सर्व्वान् कामानवाप्नोति स्वर्गमानन्त्यमश्नुते । ऋतं दद्यादमावस्यां सोममाप्यायनं महत् ॥ २० ॥
एवमाप्यायितः सोमस्त्रीँल्लोकान् धारयिष्यति । सिद्धचारणगन्धर्व्वैः स्तूयमानस्तु नित्यशः ॥ २१ ॥
स्तवैः पुष्पैर्मनोज्ञैश्च सर्व्वकामपरिच्छदैः । नृत्यवादित्रगीतैश्च ह्यप्सरोभिः सहस्रशः ॥ २२ ॥
उपक्रीडैर्व्विमानैस्तु पितृभक्तं दृढव्रतम् । स्तुवन्ति देवगन्धर्व्वाः सिद्धसंघाश्च तं सदा ॥ २३ ॥
पितृभक्तस्त्वमावस्यां सर्वान् कामानवाप्नुयात् । प्रत्यक्षमर्चितास्तेन भवन्ति पितरः सदा ॥ २४ ॥
पितृदेवा मघा यस्मात् तस्मात्तास्वक्षयं स्मृतम् । पित्र्यं कुर्वन्ति तस्यां तु विशेषेण विचक्षणः ॥ २५ ॥
तस्मान्मघां वै वाञ्छन्ति पितरो नित्यमेव हि । पितृदैवतभक्ता ये तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पे तिथिविशेषे श्राद्धफलवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

* * *

होती है। जिसके घर के जवान लोग मर गए हों, उसे चाहिए कि उन सबों के उद्देश्य से चतुर्दशी तिथि को श्राद्ध करे। इसी प्रकार हथियारों के द्वारा जिनकी मृत्यु हुई हो, उनके लिए भी चतुर्दशी को श्राद्धकर्म करे ॥१६-१८॥

इसी प्रकार समस्त विषम उत्पन्न होनेवालों (अर्थात् तीन कन्याओं के बाद जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, अथवा तीन पुत्रों के बाद जो कन्याएँ उत्पन्न होती हैं) तथा जुड़वाँ उत्पन्न होनेवालों के लिए सर्वदा पवित्र होकर अमावस्या तिथि को प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करना चाहिए। जो इस प्रकार श्राद्धादि कर्म सम्पन्न करते हैं, वे समस्त मनोरथों को प्राप्त करते हैं और अनन्तकाल पर्यन्त स्वर्ग का उपभोग करते हैं। अमावस्या तिथि को ब्राह्मण को भोजन देना चाहिए, चन्द्रमा के लिए भी तर्पण करना चाहिए, इसका महान् फल होता है ॥ १९-२० ॥

इस प्रकार तर्पित होकर सोमदेव तीनों लोकों को धारण करेंगे। दृढव्रत परायण, पितरों में भक्ति रखनेवाले व्यक्ति की सिद्ध, चारण और गन्धर्वगण नित्य स्तुति करते हैं। उनके साथ सहस्रों अप्सराएँ अपने नाच, गान, वाद्य, स्तुति, मनोहर पुष्प निचय एवं सभी प्रकार के अभिलषित वस्त्रादिकों से उसे प्रसन्न करती हैं। देवता, गन्धर्व एवं सिद्धों के समूह उनकी सर्वदा स्तुति करते रहते हैं, अनेक छोटे-छोटे क्रीडा के विमान उसकी सेवा में उपस्थित रहते हैं। पितरों में भक्ति रखनेवाला मनुष्य अमावस्या को सभी मनोरथ प्राप्त करता है क्योंकि सर्वदा उस तिथि को पितरगण उससे प्रत्यक्षतः पूजा प्राप्त करते हैं ॥ २१-२४ ॥

मघा नक्षत्र पितरों को अभीष्ट सिद्धि देनेवाला है, अतः उक्त नक्षत्र के दिन किया गया श्राद्ध अक्षय कहा जाता है। इसीलिए विवेकशील लोग विशेषतया उसी नक्षत्र में पितरों के श्राद्धादि कर्म सम्पन्न करते हैं। यही कारण है कि पितरगण भी उसे सर्वदा अधिक पसन्द करते हैं। पितरों और देवताओं में जो केवल भक्ति रखते हैं, वे भी परमगति प्राप्त करते हैं ॥ २५-२६ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में श्राद्धकल्प में तिथिविशेष सम्बन्धी श्राद्धफल वर्णन नामक उन्नीसवें अध्याय (इक्यासीवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ १९ ॥**

* * *

अथ विंशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पे नक्षत्रविशेषे श्राद्धफलम्

बृहस्पतिरुवाच

यमस्तु यानि श्राद्धानि प्रोवाच शश(शिव)बिन्दवे। तानि मे शृणु कात्स्र्न्येन नक्षत्रेषु पृथक्पृथक् ॥ १ ॥
श्राद्धं यः कृत्तिकायोगे करोति सततं नरः। अग्नीनाधाय सापत्यो जायते स गतज्वरः ॥ २ ॥
अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्येनौजस्विता भवेत्। प्रायशः क्रूरकर्म्मा तु चार्द्रायां श्राद्धमाचरेत् ॥ ३ ॥
क्षेत्रभागी भवेत् पुत्री श्राद्धं कुर्व्वन् पुनर्व्वसौ। धनधान्यसमाकीर्णः पुत्रपौत्रसमाकुलः ॥ ४ ॥
तुष्टिकामः पुनस्तिष्ये श्राद्धं कुर्वीत मानवः। आश्लेषासु पितृनार्च्य वीरान् पुत्रानवाप्नुयात् ॥ ५ ॥
श्रेष्ठो भवति ज्ञातीनां मघासु श्राद्धमाचरन्। फाल्गुनीषु पितृनार्च्य सौभाग्यं लभते नरः ॥ ६ ॥
प्रधानशीलः सापत्य उत्तरासु करोति यः। स सत्सु मुख्यो भवति हस्ते यस्तर्पयेत्पितृन् ॥ ७ ॥
चित्रायां चैव यः कुर्यात् पश्येद्रूपवतः सुतान्। स्वातिना चैव यः कुर्याद्विद्वाँल्लाभमवाप्नुयात्॥ ८ ॥

बीसवाँ अध्याय

(बयासीवाँ अध्याय)

विशेष नक्षत्रों में किये गए श्राद्ध का फल

बृहस्पति ने कहा—विशेष नक्षत्रों में पृथक्-पृथक् श्राद्ध के करने से क्या फल होते हैं-इस विषय में यमराज ने शिर्वाबिन्द से जो कुछ श्राद्धीय चर्चाएँ की हैं, उन सबको मैं बतला रहा हूँ, सुनो। जो मनुष्य सर्वदा कृत्तिका नक्षत्र के योग में श्राद्ध करता है और अग्नि की स्थापना करता है, वह अपनी सन्ततियों समेत चिन्ताओं एवं व्याधियों से मुक्त होता होता पुनर्वसु नक्षत्र में है ॥ १-२ ॥

सन्तान की कामना से रोहिणी में श्राद्ध करना चाहिए। मृगशिरा नक्षत्र में श्राद्ध करने से तेजस्विता का लाभ है। आर्द्रा में श्राद्धकार्य प्रायः क्रूरकर्म करनेवाले ही करते हैं। श्राद्ध करनेवाला क्षेत्र का अधिकारी और पुत्रवान् होता है। धनधान्यादि से समन्वित तथा पुत्र-पौत्रादि से संयुक्त होता है ॥ ३-४ ॥

सन्तोष लाभ की अभिलाषा से मनुष्य को पुष्य नक्षत्र में श्राद्ध करना चाहिए। अश्लेषा में पितरों की पूजा करके मनुष्य वीर पुत्रों का लाभ करता है। मभा में श्राद्ध करनेवाला अपनी जाति में सर्वश्रेष्ठ होता है। फाल्गुनी नक्षत्रों में पितरों की पूजा कर मनुष्य सौभाग्य को प्राप्ति करता है ॥ ५-६ ॥

पुत्रार्थं तु विशाखासु श्राद्धमीहेत मानवः । अनुराधासु कुर्व्वाणो नरश्चक्रं प्रवर्त्तयेत् ॥ ९ ॥
आधिपत्यं लभेच्छ्रैष्ठ्यं ज्येष्ठायां सततं तु यः । मूलेनारोग्यमिच्छन्ति आषाढासु महद्यशः ॥ १० ॥
आषाढाभिश्चोत्तराभिर्वीतशोको भवेन्नरः । श्रवणायां सुलोकेषु प्राप्नुयात् परमां गतिम् ॥ ११ ॥
राजभाग्वै धनिष्ठासु प्राप्नुयाद्विपुलं धनम् । श्राद्धं त्वभिजिता कुर्वन् विन्दतेऽजाविकं फलम् ॥ १२ ॥
नक्षत्रे वारुणे कुर्वन् भिषक् सिद्धिमवाप्नुयात् । पूर्व्वे प्रोष्ठपदे कुर्व्वन् विन्दतेऽजाविकं फलम् ॥ १३ ॥
उत्तरास्वनतिक्रम्य विन्देद्गा वै सहस्रशः । बहुरूपकृतं द्रव्यं विन्देत् कुर्व्वंस्तु रेवतीम् ॥
अश्वांश्चैवाश्विनीयुक्तो भरण्यामायुरुत्तमम् ॥ १४ ॥
इमं श्राद्धविधिं कुर्व्वञ्छशबिन्दुर्महीमिमाम् । कृत्स्नां तु लेभे स कृत्स्नां लब्ध्वा च प्रशशंस तम् ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पे नक्षत्रविशेषे श्राद्धफलवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

* * *

उत्तरा नक्षत्रों में श्राद्ध करनेवाला अपने सन्तान समेत समाज का प्रमुख व्यक्ति होता है । जो हस्त नक्षत्र में पितरों की पूजा करता है वह सत्पुरुषों में अग्रगण्य होता है जो चित्रा नक्षत्र में श्राद्ध करता है वह रूपवान् पुत्रों को देखता (प्राप्त करता है । जो विद्वान् पुरुष स्वाती नक्षत्र में श्राद्ध करता है, वह लाभ प्राप्त करता है ॥ ७-८॥

मनुष्य को पुत्र प्राप्ति के लिए विशाखा नक्षत्र में श्राद्ध करना चाहिए । अनुराधा में श्राद्ध करनेवाला मनुष्य राज्य का विस्तार करता है । जो सर्वदा ज्येष्ठा नक्षत्र में श्राद्ध करता है वह उत्तम आधिपत्य प्राप्त करता है । मूल नक्षत्र से लोग आरोग्य की इच्छा करते हैं, आषाढ़ में महान् यश प्राप्त करते हैं, उत्तराषाढ़ नक्षत्र में श्राद्ध करनेवाला मनुष्य शोकरहित होता है । श्रवण नक्षत्र में श्राद्ध करने से सभी लोकों में परम गति प्राप्त होती है ॥ ९-११ ॥

धनिष्ठा नक्षत्र में श्राद्ध करनेवाला राज्य और विपुल धन प्राप्त करता है । अभिजित् नक्षत्र में श्राद्ध करनेवाला अंगों समेत समस्त वेदों का अधिकारी होता है । शतभिष् नक्षत्र में श्राद्ध करने से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । पूर्व भाद्रपद में श्राद्ध करनेवाला अजाविक (?) फल प्राप्त करता है ॥ १२-१३ ॥

उत्तरा भाद्रपद में श्राद्ध कर्त्ता श्राद्ध करने के फलस्वरूप सहस्रों गौएँ प्राप्त करता है । रेवती में श्राद्ध करनेवाला बहुत-सा द्रव्य प्राप्त करता है । इसी प्रकार अश्विनों में अश्व और भरणी में उत्तम आयु प्राप्त करता है । इस श्राद्ध विधि का विधिवत् पालन कर शशविन्दु ने इस समस्त पृथ्वी को प्राप्त किया था और उसकी प्रशंसा की थी ॥ १४-१५ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में श्राद्धकल्प में नक्षत्रविशेष में श्राद्धफल वर्णन नामक बीसवें अध्याय (बयासीवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २० ॥**

* * *

अथैकविंशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पे भिन्नकालिकतृप्तिसाधनद्रव्यविशेषगयाश्राद्धादिफल-ब्राह्मणपरीक्षादिकथनम्

शंयुरुवाच

किञ्चिद्दत्तं पितॄणां तु धिनोति वदतां वर । किं हि स्विच्चिररात्राय किं चानन्त्याय कल्पते ॥ १ ॥

बृहस्पतिरुवाच

हवींषि श्राद्धकाले तु यानि श्राद्धविदो विदुः । तानि मे शृणु सर्वाणि फलं चैषां यथाबलम् ॥ २ ॥
तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन च । दत्तेन मासं प्रीयन्ते श्राद्धेन तु पितामहाः ॥ ३ ॥
मत्स्यैः प्रीणन्ति द्वौ मासौ त्रीन्मासान्हारिणेन तु । शाशं तु चतुरो मासान् पञ्च प्रीणाति शाकुनम्॥ ४ ॥
वाराहेण तु षण्मासांश्छागलं साप्तमासिकम् । अष्टमासिकमित्युक्तं यच्च पार्षतकं भवेत् ॥ ५ ॥
रौरवेण तु प्रीयन्ते नव मासान्पितामहाः । गवयस्य तु मांसेन तृप्तिः स्याद्दशमासिकी ॥ ६ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

(तिरासीवाँ अध्याय)

श्राद्धकल्प में भिन्न-भिन्न समय में तृप्ति के साधनभूत विशेष द्रव्य एवं गया में श्राद्ध का फल तथा ब्राह्मण की परीक्षा आदि कथन

शंयु ने कहा—हे बोलनेवालों में श्रेष्ठ ! कौन-सी वस्तु पितरों को (थोड़े दिनों तक) तृप्ति देनेवाली है? कौन सी वस्तु चिरकाल तक तृप्ति देती है? और कौन-सी वस्तु अनंत काल तक तृप्ति देती है? ॥ १ ॥

बृहस्पति ने कहा—श्राद्ध के माहात्म्य को जाननेवाले श्राद्धादि में जिन हविष् द्रव्यों को उक्त फलदायी जानते हैं, उन सबकी क्या और कितनी सामर्थ्य है, इसे मैं विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ, सुनिये। श्राद्ध में तिल, जौ, उड़द, जल, मूल और फलों के दान करने से पितामह (पितर) लोग एक मास तक सन्तुष्ट रहते हैं। मछली से दो मास तक सन्तुष्ट रहते हैं, हरिण के मांस से तीन मास तक तृप्त रहते हैं, इसी प्रकार खरगोश के मांस से चार मास और पक्षी के मांस से पाँच मास तक सन्तुष्ट रहते हैं ॥ २-४ ॥

शूकर के मांस से छह मास, बकरे के मांस से सात मास और पृषत् (सफेद चित्तीवाला एक विशेष मृग) के मांस से आठ मास तक सन्तुष्ट रहते हैं—ऐसा बतलाया जाता है। रुरु (एक विशेष मृग जाति) के मांस से पितामहगण नव मास तक तृप्त रहते हैं। गवय के मांस से दस मास की तृप्ति होती है ॥ ५-६ ॥

कूर्मस्य चैव मांसेन मासानेकादशैव तु । श्राद्धमेव विजानीयाद्गव्यं संवत्सरं भवेत् ॥ ७ ॥
तथा गव्यसमायुक्तं पायसं मधुसर्पिषा । वध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ८ ॥
आनन्त्याय भवेद्युक्तं खाड्गमांसैः पितृक्षये । कृष्णच्छागस्तथा गोधा अनन्त्यायैव कल्प्यते ॥ ९ ॥
अत्र गाथा पितृगीताः कीर्त्तयन्ति पुराविदः । तास्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यथावत्सन्निबोधत ॥ १० ॥
अपि नः स्वकुले जायाद्योऽन्नं दद्यात्त्रयोदशीम् । पायसं मधुसर्पिभ्यां छायायां कुञ्जरस्य तु ॥ ११ ॥
आजेन सर्वलोहेन वर्षासु च मघासु च । एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥
गौरीं वाप्युद्वहेद्धार्य्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ १२ ॥

शंयुरुवाच

गयादीनां फलं तात प्रब्रूहि समपृच्छतः । पितृणां चैव यत्पुण्यं निखिलेन ब्रवीहि मे ॥ १३ ॥

बृहस्पतिरुवाच

गयायामक्षयं श्राद्धं जपहोमतपांसि च । पितृक्षयाहे ते पुत्र तस्मात्तत्राक्षयं स्मृतम् ॥ १४ ॥
पुनीयादेकविंशं तु गौर्यामुत्पादितः सुतः । माताहांस्तु षड्भूय इति तस्याः फलं स्मृतम् ॥ १५ ॥
फलं वृषस्य वक्ष्यामि गदतो मे निबोधत । वृषोत्स्त्रष्टा पुनात्येव दशातीतान् दशावरान् ॥ १६ ॥
यत्किञ्चित् स्पृश्यते तोयैरुत्तीर्णेन जलान्महीम् । वृषोत्सर्गे पितृणां तु ह्यक्षयं स मुदाहृतम् ॥ १७ ॥

कछुए के मांस से ग्यारह मास की तृप्ति होती है । गोरस से एक वर्ष की तृप्ति होती है । मधु, घृत, दूध में बने हुए व्यंजन तथा अन्य गोरस से भी एक वर्ष की तृप्ति होती है । वधीणस के मांस से जो श्राद्ध किया जाता है, उससे बारह वर्ष तक तृप्ति रहती है ॥ ७-८ ॥

पितरों के लिए गैंडे का मांस श्राद्ध में अनन्तकाल तक तृप्ति करता है । इसी प्रकार काले बकरे तथा गोह का मांस भी अनन्त काल तक तृप्ति करता है । अब इसके बाद प्राचीनकाल के वृत्तान्तों के जाननेवाले पितरों द्वारा गायी हुई गाथाओं का जो वर्णन लोग करते हैं, उन्हें आप लोगों से बतला रहा हूँ, यथावत् सुनिये । पितरगण ऐसा कहते हैं कि हमारे वंश में कोई ऐसा सुपुत्र पैदा हो, जो हाथी की छाया में त्रयोदशी तिथि को मधु, घृत एवं दूध में बनाये हुए व्यंजनों तथा अन्नों का दान करे एवं वर्षा ऋतु में विशेषतया मघा नक्षत्र में सर्वलोह अज (बकरा) का मांस दे । बहुत पुत्रों की कामना करनी चाहिए, उसमें से एक भी गया चला जायगा, एक भी सुकुमारी गौर वर्ण की कन्या का विवाह कर देगा, अर्थात् कन्यादान कर देगा अथवा एक भी नीले बैल का (हम लोगों के उद्देश्य से) त्याग करेगा तो हम लोगों की मनः कामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी ॥ ९-१२ ॥

शंयु ने कहा—हे तात ! गया आदि तीर्थों का माहात्म्य हम आपसे पूछ रहे हैं, बतलाइये, वहाँ पर पितरों के उद्देश्य से जो कुछ कार्य किया जाता है उससे क्या पुण्य प्राप्त होता है, आद्योपान्त बतलाइये ।

हे पुत्र ! गया तीर्थ में पितरों की निधनतिथि के अवसर पर श्राद्ध का अक्षय फल होता है, जप, हवन एवं तप का भी अक्षयफल कहा जाता है । गौरी पत्नी में समुत्पन्न पुत्र इक्कीस पीढ़ी को पवित्र करता है । इसके अतिरिक्त मामा के परिवार में छह को पवित्र करता है ऐसा फल कहा गया है ॥ १३-१५ ॥

अब वृष का फल बतला रहा हूँ, सुनिये । वृषोत्सर्ग करनेवाला दस पूर्वजों और दस बाद में उत्पन्न

यद्यद्धि संस्पृशेत्तोयं लांगूलादिभिरन्ततः । सर्वं तदक्षयं तस्य पितृणां नात्र संशयः ॥ १८ ॥
शृङ्गैः खुरैर्वा यद्भूमिमुल्लिखत्यनिशं वृषः । मधुकुल्याः पितृंस्तस्य अक्षयास्ता भवन्ति वै ॥ १९ ॥
सहस्रनल्वमात्रेण तडागेन यथा श्रुतिः । तृप्तिस्तृप्तिः पितृणां वै तद्वृषस्याधिकोच्यते ॥ २० ॥
यो ददाति गुडैर्मिश्रांस्तिलान् वै श्राद्धकर्मणि । मधुना मधुमिश्रान् वा अक्षयं सर्वमेव तत् ॥ २१ ॥

बृहस्पतिरुवाच

न ब्राह्मणान् परीक्षेत सदा देये तु मानवः । दैवे कर्मणि पित्र्ये च श्रूयते वै परीक्षणम् ॥ २२ ॥
सर्ववेदव्रतस्नाताः पंक्तीनां पावना द्विजाः । ये च भाष्यविदो मुख्या ये च व्याकरणे रताः ॥ २३ ॥
अधीयते पुराणं च धर्मशास्त्रं तथैव च । त्रिणाचिकेतपञ्चाग्निस्त्रिसुपर्ण षडङ्गवित् ॥ २४ ॥
ब्रह्मदेयसुतश्चैव छन्दोगो ज्येष्ठसामगः । पुण्येषु येषु तीर्थेषु अभिषेककृतव्रताः ॥ २५ ॥
मुख्येषु येषु सत्रेषु भवन्त्यवभृथश्रुताः । ये च सद्योव्रता नित्यं स्वकर्मनिरताश्च ये ॥ २६ ॥
अक्रोधनाः शान्तिपरास्तान् वै श्राद्धे निमन्त्रयेत् । ये चापि नित्यं दशसु सुकृतेषु व्यवस्थिताः ॥ २७ ॥
एतेषु दत्तमक्षय्यमेते वै पङ्क्तिपावनाः । श्रद्धेया ब्राह्मणा ये तु योगधर्ममनुव्रताः ॥ २८ ॥

होनेवाले पुरुषों को पवित्र करता है । जल से तैरकर पृथ्वी पर आनेवाले वृक्ष की पूँछ से गिरनेवाले जल विन्दुओं द्वारा वृषोत्सर्ग कर्म में जो वस्तुएँ स्पर्श की जाती हैं, पितरों के लिए अक्षय फलदायिनी कही जाती हैं ॥१६-१७॥

इस प्रकार अन्त तक वृष के लांगूल आदि से गिरनेवाले जल द्वारा जो-जो वस्तुएँ स्पर्श की जाती हैं, वे सब पितरों को अक्षय तृप्ति प्रदान करनेवाली हैं—इसमें सन्देह नहीं । वह वृष अपने सींगों तथा खुरों से जो भूमि खोदता है, वह भूमि अक्षय मधु की नहर के रूप में उसके (दाता के) पितरों को प्राप्त होती है । एक सहस्र नत्व (एक नल्व बराबर चार सौ हाथ के) में विस्तृत तड़ाग के खनाने से पितरों की जो तृप्ति सुनी जाती है, उससे अधिक तृप्ति वृषोत्सर्ग से होती है । गुड़मिश्रित तिलों, मधुमिश्रित तिलों से अथवा मधु से जो श्राद्धकर्म किया जाता है, वह सब अक्षय फलदायी होता है ॥ १८-२१ ॥

बृहस्पति ने कहा—मनुष्य को चाहिए कि वह नित्य दान कर्म में ब्राह्मणों की परीक्षा न करे, दैव कर्म में तथा पितरों के कर्म में ब्राह्मणों की परीक्षा सुनी जाती है ॥ २२ ॥

सभी समस्त वेदों के व्रती अर्थात् वेदाभ्यासपरायण, वेदों प्रथमः के पारगामी पंक्तिपावन, भाष्य के जाननेवाले मुख्यतः व्याकरणवेत्ता, पुराणों और धर्मशास्त्रों के अध्ययन में निरत रहनेवाले, नचिकेता की तीनों विद्याओं के अध्येता, पंचाग्नि के उपासक, वेदों के छहों अंगों के जाननेवाले, त्रिसुपर्ण, ब्रह्मज्ञानियों का पुत्र, छन्दोग, ज्येष्ठसाम को जाननेवाले, जितने भी पुण्य तीर्थ हैं, उनमें प्रतोपरान्त अभिषेक करनेवाले, मुख्य-मुख्य यज्ञों में अवश्य स्नान करनेवाले शीघ्र ही किसी व्रत से निवृत्त होनेवाले, अपने-अपने कर्मों में निरत रहनेवाले, क्रोधरहित तथा शान्तिपरायण जो ब्राह्मण हो उन्हें बाद में निमन्त्रित करना चाहिए ॥ २३-२७ ॥

जो सर्वदा दसों शुभ कर्मों में व्यवस्थित रहकर जीवनयापन करनेवाले हैं तथा अपने कर्मों में निरत रहते हैं, उन्हें श्राद्ध में निमन्त्रित करना चाहिए । इन सत्पात्रों में दिया गया दान अक्षय फलदायी होता है ये उपर्युक्त ब्राह्मण पंक्तिपावन हैं । जो योगधर्म में अनुरक्ति एवं श्रद्धा रखनेवाले ब्राह्मण हैं, वे वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा

धर्माश्रमवरिष्ठास्ते हव्यकव्येषु ते वराः । त्रयोऽपि पूजितास्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ २९ ॥
पितृभिः सह लोकाश्च यो ह्येतान् पूजयेन्नरः । पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥ ३० ॥
प्रथमः सर्वधर्माणां योगधर्मो निगद्यते । अपाङ्क्तेयांस्तु वक्ष्यामि गदतो मे निबोधत ॥ ३१ ॥
कितवो मद्यपो यक्ष्मी पशुपालो निराकृतिः । ग्रामप्रेष्यो वार्द्धुषिको गायनो वणिजस्तथा ॥ ३२ ॥
अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी । समुद्रयायी दुश्चर्मा तैलिकः कूटकारकः ॥ ३३ ॥
पित्रा विवदमानश्च यस्य चोपपतिर्गृहे । अभिशस्तस्तथा स्तेनः शिल्पैर्यश्चोपजीवति ॥ ३४ ॥
सूचकः पर्वकारी च यस्तु मित्रेषु द्रुह्यति । गणयाचनकश्चैव नास्तिको वेदवर्जितः ॥ ३५ ॥
उन्मत्तः षण्डकशङ्गौ भ्रूणहा गुरुतल्पगः । भिषक्जीवः प्रैषणिकः परस्त्रीं यश्च गच्छति ॥ ३६ ॥
विक्रीणाति च यो ब्रह्म व्रतानि च तपांसि च । नष्टं स्यान्नास्तिके दत्तं कृतघ्ने चैव शंसके ॥ ३७ ॥
यच्च वाणिजके चैव नेह नामुत्र तद्भवेत् । निक्षेपहारिणे चैव कितवे वेदनिन्दके ॥ ३८ ॥
तथा वाणिजके चैव कारुके धर्म्मवर्जिते । निन्दन् क्रीणाति पण्यानि विक्रीणंश्च प्रशंसति ॥ ३९ ॥
अनृतस्य समावासो न वणिक् श्राद्धमर्हति । भस्मनीव हुतं हव्यं दत्तं पौनर्भवे द्विजे ॥ ४० ॥

माननेवाली सभी जातियों में श्रेष्ठ हैं, और हव्य कव्य-सभी कार्यों में श्रेष्ठ हैं । जिसने ऐसे ब्राह्मणों की पूजा की, उसने ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवताओं की पूजा की जो मनुष्य ऐसे सर्वगुणसम्पन्न ब्राह्मणों की पूजा करता है, वह पितरों के साथ समस्त लोकों की पूजा करता है । योगधर्म सभी पवित्र पदार्थों से अधिक पवित्र एवं सभी मंगलदायी वस्तुओं से अधिक मंगलदायी है । सभी धर्मों में वह प्रथम कहा गया है । अब इसके उपरान्त जो अपंक्तिपावन ब्राह्मण है, उन्हें में बतला रहा हूँ, सुनिये ॥ २८-३१ ॥

धूर्त, शराबी, यक्ष्मारोगग्रस्त, पशुओं की पालना करनेवाला, कुरूप, ग्राम में दूत या सेवक का काम करनेवाला, व्याज से जीविका चलानेवाला, गायक, व्यवसायी, किसी का स्थान जलानेवाला, विष देनेवाला, छिनाले से उत्पन्न होनेवालो का अन्न खानेवाला, सोमरस का विक्रय करनेवाला, समुद्र यात्रा करनेवाला, दुष्ट चमड़ेवाला, तेल का व्यवसायी, कूटनीतिज्ञ, पिता के साथ विवाद करनेवाला, जिसके घर में कोई दूसरा गृहस्वामी हो, लम्पट, चोर, शिल्पजीवी, चुगुलखोर, धन के लोभ से बिना पर्व के ही अमावस्या आदि पर्वो के दिन सम्पन्न होनेवाली सत्क्रियाओं का अनुष्ठान करनेवाला, मित्रों के साथ द्रोह करनेवाला, समूह बनाकर याचना करनेवाला, नास्तिक, वेदविहीन, उन्मत्त, हिंजड़ा, दुष्ट प्रकृतिवाला, गर्भ हत्या करनेवाला, गुरु की शय्या पर शयन करनेवाला, वैद्यक से जीविका चलानेवाला, दूत का कर्म करनेवाला, परस्त्रीगामी, जो ब्रह्म (विद्या) व्रत एवं तपस्या को बेचता है, इन सबको दान करने से दान का समस्त फल नष्ट हो जाता है । इसी प्रकार नास्तिक, कृतघ्न एवं निन्दक को दान करने से फल का नाश हो जाता है ॥ ३२-३८ ॥

वाणिज्य व्यवसाय में लगे हुए ब्राह्मण को जो कुछ दिया जाता है वह न तो इस लोक में फल देता है न परलोक में । दूसरे के रखे हुए निक्षेप (गिरवी) को ले लेनेवाले धूर्त एवं वेदनिन्दक को दिये गए दान का भी यही फल होता है । वाणिज्य कर्म में प्रवृत्त, कारीगर, धर्महीन एवं ऐसे लोग जो दूसरे की अच्छी वस्तु को खरीदते समय निन्दा करते हो और अपनी खराब वस्तु की बेचते समय प्रशंसा करते हों-इन सबों को भी दान देने से यही

षष्टिं काणः शतं षण्डः श्वित्री यावत् प्रपश्यति । पापरोगी सहस्रस्य दातुर्नाशयते फलम् ॥ ४१ ॥
भ्रश्यते सत्फलात्तस्माद्दाता यस्य तु बालिशः । यो वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते दक्षिणामुखः ॥ ४२ ॥
सोपानत्कश्च यो भुङ्क्ते यच्च दद्यात्तिरस्कृतम् । सर्वं तदसुरेन्द्राणां ब्रह्मा भागमकल्पयत् ॥ ४३ ॥
श्वानश्च यातुधानाश्च नावेक्षेरन् कथंचन । तस्मात्परिवृतिं दद्यात्तिलैश्चान्ववकीरयन् ॥ ४४ ॥
राक्षसानां तिलाः प्रोक्ताः शुनां परिवृतिस्तथा । दर्शनात्सूकरो हन्ति पक्षपातेन कुक्कुटः ॥ ४५ ॥
रजस्वलानुस्पर्शेन क्रुद्धो यश्च प्रयच्छति । यस्य मित्रप्रदे यानि श्राद्धानि च हवींषि च ॥
न प्रीणाति पितॄन् देवान् स्वर्गं न च स गच्छति ॥ ४६ ॥
नदीतीरेषु रम्येषु सरित्सु च सरस्सु च । विविक्तेषु च प्रीयन्ते दत्तेनेह पितामहाः ॥ ४७ ॥
न चास्रुं पातयेज्जातु न युक्तो वाचमीरयेत् । न च कुर्वीत भुञ्जानो ह्यन्योऽन्यं मत्सरस्तदा ॥ ४८ ॥
अपसव्ये कृते तेन विधिवद्दर्भपाणिना । पित्र्यमानिधनं कार्यमेवं प्रीणाति वै पितॄन् ॥ ४९ ॥

फल होता है । इसी प्रकार मिथ्या भाषण करनेवाला वणिक्, व्यवसाय में प्रवृत्त द्विज भी श्राद्ध के योग्य नहीं है । पौनर्भव'ब्राह्मण को दिया गया दान भस्म (राख) पर दी गयी आहुति के समान व्यर्थ है ॥ ३९-४० ॥

काना व्यक्ति साठ, नपुंसक सौ, श्वेतकुष्ठ ग्रसित जितने भी कम को देखता है, तथा पाप के कारण रोगी, एक सहस्र दाता के सत्कमों के फलों को नष्ट कर देता है । मूर्ख व्यक्ति को दान करनेवाला शुभ कर्मफलों से वंचित हो जाता है जो सिर को बाँधकर भोजन करता है, दक्षिण दिशा की ओर मुख करके भोजन करता है, जो जूता पहनकर भोजन करता है, जो तिरस्कारपूर्वक दान करता है, उनके समस्त कर्मों के फल को भगवान् ब्रह्मा असुरेन्द्रों के लिए कल्पित करते हैं ॥ ४१-४३ ॥

श्राद्ध के सम्पन्न होते समय उसे श्वान और यातुधान किसी प्रकार भी न देखने पावें, इसके लिए चारों तरफ से ओट करने के लिए परदा लगा देना चाहिए और चारों ओर तिलों का विकिरण करना चाहिए । राक्षसों को निवारित करने के लिए, तिल और कुत्तों को निवारित करने के लिए परदा या दूसरे किसी प्रकार घेरा बना देने की बात कही जाती है । शूकर केवल देख लेने से ही श्राद्ध के फल को नष्ट कर देता है, मुरगा अपने पंखों के फड़फड़ाने से उसके फल को नष्ट कर देता है, रजस्वला स्त्री के स्पर्श से क्रोधपूर्वक दान करने से श्राद्ध के फलों का विनाश हो जाता है । इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने द्वारा किये जानेवाले आ के कार्यों को अथवा हवनादि को मित्रों द्वारा सम्पन्न कराता है, उसके कार्य पितरों और देवताओं को सन्तुष्ट नहीं करते और वह स्वर्गलोक को नहीं जाता ॥ ४४-४६ ॥

सुरम्य नदियों के किनारों पर छोटी-छोटी सरिताओं एवं सरोवरों के मनोहर एकान्त तट पर किये गए श्राद्धादि कार्य से पितामहगण तृप्त होते हैं । श्राद्ध करते समय न तो कभी आँसू गिराना चाहिए, न किसी साधारण बातचीत में सम्मिलित होना चाहिए, न भोजन करते हुए ही श्राद्ध करना चाहिए, एक-दूसरे के प्रति मत्सर अथवा ईर्ष्याभाव भी नहीं प्रकट करना चाहिए ॥ ४७-४८ ॥

अपसव्य होकर विधिपूर्वक हाथ में कुशा लेकर अपने जीवनपर्यन्त मनुष्य को पितरों का श्राद्धादि कार्य सम्पन्न करना चाहिए । इस प्रकार श्राद्ध के करने से पितरगणों की तृप्ति होती है । सर्वप्रथम (गुरुजनों या ब्राह्मणों

अनुमत्यादितो विप्रानग्नौ कुर्याद्यथाविधि । पितॄणां निर्व्वपेद्भूमौ सूर्पे वा दर्भसंस्तरे ॥ ५० ॥
शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । कृष्णपक्षेऽपराह्णे तु रौहिणं न विलङ्घयेत् ॥ ५१ ॥
एवमेते महात्मानो महायोगा महौजसः । सदा वै पितरः पूज्या द्रष्टारो देशकालयोः ॥ ५२ ॥
पितृभक्तिरतो नित्यं योगं प्राप्नोत्यनुत्तमम् । ध्यानेन मोक्षं गच्छन्ति हित्वा कर्म शुभाशुभम्॥ ५३ ॥
यज्ञहेतोर्यदुद्धृत्य मोहयित्वा जगत्तदा । गुहायां निहतं योगं कश्यपेन महात्मना ॥ ५४ ॥
अमृतं गुह्यमुद्धृत्य योगं योगविदांवर । प्रोक्तं सनत्कुमारेण महात्तद्धर्म्मशाश्वतम् ॥ ५५ ॥
देवानां परमं गुह्यमृषीणां च परायणम् । पितृभक्त्या प्रयत्नेन पितृभक्तश्च नित्यशः ॥ ५६ ॥
तं च योगं समासेन पितृभक्तस्तु कृत्स्नशः । प्रयत्नात्प्राप्नुयात्तत्र सर्वमेव न संशयः ॥ ५७ ॥
यस्मै श्राद्धानि देयानि यच्च दत्तं महाफलम् । येषु वाप्यक्षयं श्राद्धं तीर्थेषु च नदीषु च ॥
येषु च स्वर्गमाप्नोति तत्ते प्रोक्तं ससंग्रहम् ॥ ५८ ॥

बृहस्पतिरुवाच

श्रुत्वैवं श्राद्धकल्पं तु योऽसूयां कुरुते नरः । स मज्जेन्नरके घोरे नास्तिकस्तमसावृतः ॥ ५९ ॥
महारोगावसायस्तु स यः संयतमानसः । वेदाश्रमान्मुक्तचित्तः कुम्भीकानधिगच्छति ॥
जिह्वाच्छेदं स्तेनमेत्य प्राप्नुयुस्तेन चैव ह ॥ ६० ॥

की अनुमति प्राप्तकर अग्नि में विधिपूर्वक आहुति करे पितरों के उद्देश्य से दिया जानेवाला पदार्थ पृथ्वी पर सूप पर अथवा कुश के बिछावन पर रखना चाहिए ॥ ४९-५० ॥

बुद्धिमान पुरुष शुक्लपक्ष में दिन के प्रथमार्थ में श्राद्ध सम्पन्न करे, और कृष्णपक्ष में उनके उत्तरार्द्ध में करे, रोहिणी का उल्लंघन नहीं करना चाहिए, देश और काल के देखनेवाले, महान् तेजस्वी, महान् योगी एवं परम महात्मा उन पितरों को सर्वदा पूजा करनी चाहिए ॥ ५१-५२ ॥

पितरों में भक्ति रखनेवाला मनुष्य श्रेष्ठ योग की सिद्धि प्राप्त करता है । पितरों का ध्यान करने से वे अपने शुभाशुभ कर्म बन्धनों से छुटकारा पाकर मोक्ष की प्राप्ति करते हैं । महात्मा कश्यप ने जगत् को मोहित करके यज्ञ के लिए जिस योग का उद्धारकर गुफा में सुरक्षित रखा था, हे योग जाननेवालों में प्रवीण उस अमरत्वपूर्ण परमगोपनीय, चिरन्तन एवं परम महान् योगधर्म को उद्धृत करके सनत्कुमार ने प्रकाशित किया ॥ ५३-५५ ॥

उस देवताओं की परमगोपनीय, ऋषियों की सर्वस्व योग सम्पत्ति को पितरों में भक्ति रखनेवाले मानव पितरों में भक्ति रखकर नित्य ही प्राप्त करते हैं । संक्षेप में उस योग की प्राप्ति पितृभक्त लोग अपने प्रयत्न से सर्वांशतः प्राप्त कर लेते हैं-इसमें सन्देह नहीं है । जिसे श्राद्ध देना चाहिए, जिस वस्तु के देने से महान् फल की प्राप्ति होती है, जिन तीर्थों अथवा नदियों में किये गए श्राद्ध का अक्षय फल होता है, जिन तीर्थों में करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है उन सबको मैं तुमसे संग्रहपूर्वक बतला चुका ॥ ५६-५८ ॥

बृहस्पति ने कहा—इस प्रकार श्राद्ध विषयक चर्चा एवं उसकी विधियों को सुनकर जो मनुष्य दोष दृष्टि से देखकर उनमें अश्रद्धा करता है, वह नास्तिक अन्धकार से चारों ओर घिरकर घोर नरक में गिरता है । जो मन को संयत रखकर श्राद्धकर्म सम्पन्न करते हैं, उनके भीषण रोगों का विनाश होता है । वेदों में वर्णित आश्रमों से

सीदन्ति ते सागरे लोष्टभूता योगद्विषः स्थास्यन्ते यावदुर्व्वी ॥
तस्माच्छ्राद्धे धर्म्म उद्दिष्ट एष नित्यं कार्यः श्रद्दधानेन पुंसा ॥ ६१ ॥
परिवादो न कर्त्तव्यो योगिनां च विशेषतः । परवादात् कृमिर्भूत्वा तत्रैव परिवर्त्तते ॥ ६२ ॥
योगं परिवदेद्यस्तु ध्वानिनां मोक्षकारणम् । स गच्छेन्नरकं घोरं श्रोता यश्च न संशयः ॥ ६३ ॥
आवृतं तमसा सर्वं परमं घोरदर्शनम् । योगीश्वरपरीवादान्निश्चयं याति मानवः ॥ ६४ ॥
योगेश्वराणामाक्रोशं शृणुयाद्यो यतात्मनाम् । स हि कालं चिरं मज्जेत् कुम्भीपाके न संशयः ॥ ६५ ॥
मनसा कर्मणा वाचा द्वेषं योगिषु वर्ज्जयेत् । प्रेत्यान्यं तत्फलं भुङ्क्ते इह चैव न संशयः ॥ ६६ ॥
न पारगो विन्दति पारमात्मनस्त्रिलोकमध्ये चरतिस्वकर्मभिः ॥
ऋचो यजुःसामतदङ्गपारगो विकारमेव ह्यनवाप्य सीदति ॥ ६७ ॥
विकारपारः प्रकृतेश्च पारगस्त्रयी गुणानां त्रिगुणान्तपारगा ॥
तत्त्वं चतुर्विंशतियोगपारगं स पारगो यस्त्वयनान्तपारगः ॥ ६८ ॥
कृत्स्नं यथा तत्त्वविसर्गमात्मनस्तथैव भूयः प्रलयं सदात्मनः ॥
प्रत्याहरेद्योगबलेन योगवित् स सर्वपारक्रमयानगोचरः ॥ ६९ ॥

मुक्त होकर मनमाने ढंग से जीवनयापन करनेवाले कुम्भीक नरक में जाते हैं । जिह्वा के छेदन एवं चौर्य कर्म को वे प्राप्त होते हैं । जो योग से द्वेष करनेवाले हैं, वे समुद्र में ढेला होकर तब तक निवास करते हैं जब तक इस पृथ्वी की अवस्थिति रहती है । इसलिए श्राद्ध में ऊपर बतलाये गए इन श्राद्ध नियमों का श्रद्धापूर्वक मनुष्यों को सर्वदा पालन करना चाहिए ॥ ५९-६१ ॥

विशेषतया योगियों की निन्दा तो नहीं ही करनी चाहिए, योगियों की निन्दा करने से वहीं पर कृमि होकर जन्म धारण करना पड़ता है । ध्यानपरायण योगियों के अन्यतम लक्ष्य मोक्ष के मुख्य साधन की जो निन्दा करता है, वह घोर नरक में जाता है, उस निन्दा को सुननेवाला भी घोर नरक में जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥६२-६३॥

योगपरायण योगेश्वरों की निन्दा करने से मनुष्य चारों ओर से अन्यकार से आच्छन्न, परम घोर दिखायी पड़नेवाले नरक में निश्चय ही जाता है । आत्मा को वश में रखनेवाले योगेश्वरों को निन्दा जो मनुष्य सुनता है, वह चिरकालपर्यन्त कुम्भीपाक नरक में निवास करता है-इसमें सन्देह नहीं । योगियों के प्रति द्वेष की भावना मनसा, वाचा, कर्मणा सर्वथा वर्जित रखनी चाहिए । इस सत्कर्म का फल वह दूसरे जन्म में भोगता है, और इस जन्म में भी भोगता है-इसमें सन्देह नहीं ॥ ६४-६६ ॥

योग मार्ग के पारंगत आत्मा के पार को नहीं प्राप्त होते (?) अपने कर्म के अनुसार वे तीनों लोकों में विचरण करते हैं । ऋक्, यजु और सामवेद तथा इनके समस्त अंगों के पारंगत इस प्रकार विकारों को न प्राप्त होकर आनन्द का अनुभव करते हैं । समस्त विकारों के पार जानेवाले, प्रकृति के पारगामी, सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों के पारगामी वास्तव में तीनों गुणों के पारगामी हैं । जो योग मार्ग एवं चौबीस तत्वों के पारगामी हैं, वे ही वास्तव में इस जन्म-मरण रूप संमृति सम्बन्ध के पारगामी हैं ॥ ६७-६८ ॥

जिस प्रकार योगी निखिल योग तत्त्वों को अपने योगबल द्वारा विसर्जित करता है, उसी प्रकार सर्वदा

वेदस्य वेदिता यो वै वेद्यं विन्दति योगवित् । तं वै वेदविदं प्राहुस्तं प्राहुर्वेदपारगम् ॥ ७० ॥
वेद्यं च वेदितव्यं च विदित्वा वै यथाविधि । एवं वेदविदं प्राहुस्ततोऽन्ये वेदचिन्तकाः ॥ ७१ ॥
यज्ञान् वेदांस्तथा कामाञ्ज्ञानानि विविधानि च । प्राप्नोत्यायुः प्रजाश्चैव पितृभक्तो धनानि च ॥ ७२ ॥
श्राद्धे यः श्राद्धकल्पं वै पश्चिमं नियतं पठेत् । सर्वाण्येतान्यवाप्नोति तीर्थे दानफलानि च ॥ ७३ ॥
स पंक्तिपावनश्चैव द्विजानामग्रभुग् भवेत् । अध्याप्य वा द्विजान् सर्वान् सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ ७४ ॥
यश्चैव शृणुयान्नित्यमानन्त्यं स्वर्गमश्नुते । अनसूयो जितक्रोधो लोभमोहविवर्जितः ॥ ७५ ॥
तीर्थानां च फलं कृत्स्नं दानादीनां तथैव च । मोक्षोपायो ह्ययं श्रेष्ठः स्वर्गोपायो ह्ययं परः ॥
इह चापि परा तुष्टिस्तस्मात्कुर्वीत यत्नतः ॥ ७६ ॥

इमं विधिं यो हि पठेदतन्द्रितः समाहितः संसदि पर्वसन्धिषु ॥
अपत्यभाग्भवति परेण तेजसा दिवौकसां स व्रजते सलोकताम् ॥ ७७ ॥

अपना विनाश भी संघटित करता है, इस प्रकार योग के तत्त्वों को भलीभांति जाननेवाला योगी, सबसे परे जिसकी गति है, ऐसे परम पुरुष के गोचर होता है, अर्थात् योगी योग का आश्रय लेकर शरीर त्याग करते हैं और आत्मसारूप्य प्राप्त करते हैं । योग के तत्त्वों को जाननेवाला जो पुरुष वेदों का सम्यक् अध्ययनकर वेदों के वेद्य (जानने योग्य) उस परम पुरुष को प्राप्त करता है, उसे ही वास्तव में वेदों का तत्त्ववेत्ता और वेदों का पारगामी कहा जाता है ॥ ६९-७० ॥

जो वेदों के चरम प्रतिपाद्य उस परम पुरुष को भलीभांति जानता है, वही वास्तव में वेदों के तत्त्वों को जाननेवाला है, दूसरे सब वेद चिन्तक हैं । पितरों में भक्ति रखनेवाला समस्त यज्ञों, समस्त वेदों, समस्त मनोरथों, विविध ज्ञान-विज्ञान, दीर्घायु, प्रचुर सम्पत्ति एवं पुत्र-पौत्रादिकों सबको प्राप्त करता है । श्राद्ध के अवसर पर जो मनुष्य इस श्राद्धकल्प का सावधान चित्त होकर पाठ करता है, वह पूर्व कथित समस्त फलों को तथा तीर्थ में दिये गए दानों के फलों को प्राप्त करता है ॥ ७१-७३ ॥

वह पवित्रात्मा पुरुष पंक्तिपावन तथा ब्राह्मण समाज में सर्वप्रथम भोजन करनेवाला होता है । अथवा समस्त ब्राह्मण समाज को विद्याहीन करके अपने समस्त मनोरथ को प्राप्त करता है । जो मनुष्य इस श्राद्ध के माहात्म्य को नित्य श्रद्धाभाव से, क्रोध को वश में रख, लोभ आदि से रहित होकर श्रवण करता है वह अनन्त काल पर्यन्त स्वर्ग भोगता है ॥ ७४-७५ ॥

समस्त तीर्थों एवं दानों के फलों को वह प्राप्त करता है, यह मोक्ष का सबसे श्रेष्ठ उपाय है, स्वर्ग-प्राप्ति के लिए इससे बढ़कर सरल उपाय कोई दूसरा नहीं है । इस लोक में इसके द्वारा परम संतोष की प्राप्ति होती है- अतः यत्नपूर्वक इसका अनुष्ठान करना चाहिए ॥ ७६ ॥

जो व्यक्ति आलस्यरहित होकर पर्व की सन्धियों में इस श्राद्ध की विधि का पाठ सावधानीपूर्वक सभा इत्यादि में करता है, वह परम तेजस्वी और संततिवान् होता है । उसे देवताओं के समान पवित्र लोक की प्राप्ति होती है ॥ ७७ ॥

येन प्रोक्तस्त्वयं कल्पो नमस्तस्मै स्वयंभुवे । महायोगेश्वरेभ्यश्च सदा च प्रणतो ह्यहम् ॥ ७८ ॥
इत्येते पितरस्तात देवानामपि देवताः । सप्तस्वेतेषु ते नित्यं स्थानेषु पितरोऽव्यथाः ॥ ७९ ॥
प्रजापतिसुता ह्येते सर्वे चैव महात्मनः । आद्यो गणस्तु योगानां स नित्यो योगवर्द्धनः ॥ ८० ॥
द्वितीयो देवतानां तु तृतीयो देवताऽरिणाम् । शेषास्तु वर्णिनां ज्ञेया इति सर्वे प्रकीर्तिताः ॥ ८१ ॥
देवास्त्वेतान्यजन्ते वै सर्वेष्वेतेष्ववस्थिताः । आश्रमास्तु यजन्त्येतांश्चत्वारस्तु यथाक्रमम् ॥ ८२ ॥
वर्णाश्चापि यजन्त्येतांश्चत्वारस्तु यथाविधि । तथा संकरजाताश्च म्लेच्छाश्चैव यजन्ति वै ॥ ८३ ॥
पितॄंश्च यो यजेद्भक्त्या पितरः पूजयन्ति तम् । पितरः पुष्टिकामस्य प्रजाकामस्य वा पुनः ॥
पुष्टिं प्रजाश्च स्वर्गं च प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ ८४ ॥
देवकार्यादपि सूनोः पितृकार्यं विशिष्यते । देवतानां हि पितरः पूर्वमाप्यायनं स्वयम् ॥ ८५ ॥
न हि योगगतिः सूक्ष्मा पितॄणां च परा गतिः । तपसा विप्रकृष्टेन दृश्यते मांसचक्षुषा ॥ ८६ ॥
सर्वेषां राजतं पात्रमथवा रजतान्वितम् । पावनं ह्युत्तमं प्रोक्तं देवानां पितृभिः सह ॥ ८७ ॥
येषां दास्यन्ति पिण्डांस्त्रीन् बान्धवा नामगोत्रतः । भूमौ कुशोत्तरायां च अपसव्यविधानतः ॥ ८८ ॥

जिस अजन्मा भगवान् स्वयंभू ने श्राद्ध की पुनीत विधि बतलायी है, उसे हम नमस्कार करते हैं । महान् योगेश्वरों के चरणों में हम सर्वदा प्रणाम करते हैं । हे तात ! ये पितरगण देवताओं के भी देवता हैं, वे नाशहीन पितरगण इन सात स्थानों में नित्य निवास करते हैं । वे सब परम महात्मा तथा प्रजापति के पुत्र हैं, इनका सर्वप्रथम गण योगियों का है, अत: वे नित्य योगवर्धन के नाम से विख्यात हैं ॥ ७८-८० ॥

द्वितीय गण देवताओं का, तृतीय देवताओं के शत्रुओं का, शेष अन्य वर्णियों के हैं—इन स वो का वर्णन कर चुका । इन सब लोकों में अवस्थित रहकर देवगण इन सबों की पूजा करते हैं । चारों आश्रम में निवास करनेवाले क्रमपूर्वक इनकी पूजा करते हैं, चारों वर्ण के लोग भी इन सबों की विधिपूर्वक पूजा करते हैं, इसी प्रकार समस्त म्लेच्छ जातिवाले और संकरवर्ण भी उन सबों की पूजा करते हैं । जो भक्तिपूर्वक इन पितरों की पूजा करता है, उसकी पूजा पितरगण स्वयं करते हैं, पुष्टि एवं पूजा की कामना करनेवाले को ये पितामहादि पितरगण सब प्रकार से पुष्टि, प्रजाएँ और स्वर्ग प्रदान करते हैं ॥ ८१-८४ ॥

पुत्र के लिए पितरों का कार्य देवकार्य की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण कहा गया है, देवताओं से पूर्व पितरों को सन्तुष्ट करने के लिए कहा गया है । पितरों की परम सूक्ष्म योगगति उत्कृष्ट तपस्या के प्रभाव से रहित इन मांस के नेत्रों से नहीं दिखायी पड़ती अर्थात् उसे देखने के लिए परम कठोर तप की आवश्यकता होती है । समस्त देवताओं और पितरों के लिए चाँदी का पात्र उपयोग करने का विधान है, उसके अभाव में चाँदी से समन्वित (मढ़ा हुआ) होना चाहिए । ऐसे पात्र इनके कार्यों में परम पुनीत कहे जाते हैं जिनके परिवार वर्ग के लोग नाम और गोत्र का उच्चारणकर विधिपूर्वक अपसव्य होकर कुश बिछी भूमि पर तीन पिण्डदान करते हैं, उनके वे तीनों पिण्ड सर्वत्र वर्तमान रहनेवाले पितरों को प्रसन्न करते हैं । जन्तु (मनुष्य) जो आहार करता है, वही आहार उसके पितर का होना चाहिए ॥ ८५-८८ ॥

सर्वत्र वर्त्तमानास्ते पिण्डाः प्रीणन्ति वै पितॄन् । यदाहारो भवेज्जन्तुराहारः सोऽस्य जायते ॥ ८९ ॥
यथा गोष्ठे प्रनष्टां वै वत्सो विन्दति मातरम् । तथा तं नयते मन्त्रो जन्तुर्यत्रावतिष्ठते ॥ ९० ॥
नाम गोत्रं च मन्त्रश्च दत्तमन्नं नयन्ति तम् । अपि योनिशतं प्राप्तांस्तृप्तिस्ताननु गच्छति ॥ ९१ ॥
एवमेषा स्थिता संस्था ब्रह्मणा परमेष्ठिना । पितॄणामादिसर्गस्तु लोकानामक्षयार्थिनाम् ॥ ९२ ॥
इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः । दौहित्रा यजमानाश्च प्रोक्ताश्चैव मयाऽनघाः ॥ ९३ ॥
लोका दुहितरश्चैव दौहित्राश्च सुतास्तथा । दानानि सह शौचेन तीर्थानि च फलानि च ॥ ९४ ॥
अक्षयत्वं द्विजाश्चैव यायावरविधिस्तथा । प्रोक्तं सर्वं यथान्यायं यथा ब्रह्माऽब्रवीत् पुरा ॥ ९५ ॥

बृहस्पतिरुवाच

इत्येतदङ्गिराः प्राह ऋषीणां शृण्वतां तदा । पृष्टस्तु संशयं सर्वं पितॄणां प्राह संसदि ॥ ९६ ॥
सत्रे वै वितते पूर्वं तदा वर्षसहस्रिके । यस्मिन् गृहपतिर्ह्यासीद्ब्रह्मा वै देवता प्रभुः ॥ ९७ ॥
संवत्सरशतान्यं च तत्रोपेता इति श्रुतिः । श्लोकाश्चात्र पुरा गीता ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ९८ ॥
दीक्षितस्य तदा सत्रे ब्रह्मणः परमात्मनः । तत्रैव जातमत्युग्रं पितॄणामक्षयार्थिना ॥
लोकानां च हितार्थाय ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ ९९ ॥

जिस प्रकार पशुओं की गौशाला में सकड़ों गौओं में से छिपी हुई अपनी माता को उसक बछड़ा पा जाता (खोज लेता) है, उसी प्रकार श्राद्धकर्म में दिये गए पदार्थों को मंत्र यथास्थान पर पहुंचा देता है, जहाँ वह जीव अवस्थित रहता है। पितरों के नाम, गोत्र और मंत्र आदि श्राद्ध में दिये गए अन्न को उसके पास ले जाते हैं, चाहे वे सैकड़ों योनियों में क्यों न गए हों पर श्राद्ध के अन्नादि से उसकी तृप्ति होती है। परमेष्ठी पितामह ब्रह्मा ने इसी प्रकार की श्राद्ध की मर्यादा स्थिर की है, अक्षय लाभ की प्राप्ति के अभिलाषी लोगों के लिए पितरों की यह आदि सृष्टि हुई ॥ ८९-९२ ॥

ये पितरगण ही देवस्वरूप हैं और देवगण ही पितरस्वरूप है। निष्पाप ऋषिगण, दौहित्र (नाती) गण उन पितरों के यजमान हैं। समस्त लोक उनकी पुत्री, नाती और पुत्र के रूप में है। श्राद्धकर्म में पवित्रता, दान, तीर्थ, फल, अक्षय फल-प्राप्ति, द्विजगण, पर्यटन विधि आदि सभी आवश्यक विषयों की चर्चा पूर्वकाल में ब्रह्मा जी ने जिस प्रकार की थी, उन सब विधियों को मैं आप लोंगों से बतला चुका ॥ ९३-९५ ॥

बृहस्पति ने कहा—प्राचीनकाल में ऋषियों द्वारा पूछे जाने पर महर्षि अंगिरा ने पितरों के विषय में समस्त संशयात्मक बातों की चर्चा एक सभा में की थी ऐसा सुना जाता है कि पूर्व समय में एक सहस्र वर्ष तक चलनेवाला महायज्ञ सम्पन्न हुआ था, जिसमें गृहपति होकर भगवान् ब्रह्मा पाँच सौ वर्षों तक देवताओं पर प्रभुत्व स्थापित किये रहे। ब्रह्मवेत्तागण इस विषय में कुछ श्लोक गाते हैं (जिसका आशय निम्न प्रकार है)। उस महान् यज्ञ में परमात्मा परमेष्ठी भगवान् ब्रह्मा के दीक्षित होने पर उन्हीं से समस्त लोकों के कल्याणार्थ, अक्षय लाभ के प्रार्थी पितरों का उत्तम जन्म वहीं पर सम्पन्न हुआ ॥ ९६-९९ ॥

सूत उवाच

एवं बृहस्पतिः पूर्वं पृष्टः पुत्रेण धीमता । प्रोवाच पितृवंशं तु यत्तद्वै समुदाहृतम् ॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वरुणस्य निबोधत ॥ १०० ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पे भिन्नकालिकतृप्तिसाधनद्रव्यविशेषगया-श्राद्धादिफलब्राह्मणपरीक्षादिकथनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

* * *

सूतजी ने कहा—अपने बुद्धिमान् पुत्र से पूछने पर इस प्रकार पूर्व काल में बृहस्पति ने पितरों के वंश का जो वर्णन किया था, वही मैंने आप लोगों को बतलाया । अब इसके उपरान्त मैं वरुण के वंश का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ॥ १०० ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में श्राद्धकल्प में भिन्न-भिन्न समय में तृप्ति के साधनभूत विशेष द्रव्य एवं गया में श्राद्ध का फल तथा ब्राह्मण की परीक्षा आदि कथन नामक इक्कीसवें अध्याय (तिरासीवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २१ ॥**

* * *

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पे वरुणवंशवर्णनम्

ऋषयश्चैवमुक्तास्तु परं हर्षमुपागताः । परं शुश्रूषवो भूयः पप्रच्छुस्तदनन्तरम् ॥ १ ॥

ऋषय ऊचुः

वंशानामानुपूर्व्येण राज्ञाश्चामिततेजसाम् । स्थितिं चैषां प्रभावं च ब्रूहि नः परिपृच्छताम् ॥ २ ॥
एवमुक्तस्ततः सूतस्तथाऽसौ लोमहर्षणः । शुश्रूषामुत्तराख्याने ऋषीणां वाक्यकोविदः ॥ ३ ॥
आख्यानकुशलो भूयः परं वाक्यमुवाच ह । ब्रुवतो मे निबोधस्य ऋषिराह यथा मम ॥ ४ ॥
वंशानामानुपूर्व्येण राज्ञां चामिततेजसाम् । स्थितिं चैव प्रभावं च ब्रुवतो मे निबोधत ॥ ५ ॥
वरुणस्य पत्नी सामुद्री शुनोदेवीत्युदाहृता । तस्याः पुत्रौ कलिर्वैद्यः सुता च सुरसुन्दरी ॥ ६ ॥
कलिपुत्रौ महावीर्यौ जयश्च विजयश्च ह । वैद्यपुत्रौ घृणिश्चैव मुनिश्चैव महाबलौ ॥ ७ ॥

बाईसवाँ अध्याय

(चौरासीवाँ अध्याय)

श्राद्धकल्प के प्रसंग में वरुण के वंश का वर्णन

सूतजी के ऐसा कहने पर ऋषिगण परम हर्षित हुए और पुनः जिज्ञासा भाव से उनसे पूछा ॥ १ ॥

ऋषियों ने कहा—अमित तेजस्वी राजाओं के वंशों का क्रमपूर्वक वर्णन, उनकी स्थिति एवं उनके प्रभाव को हम लोग सुनना चाहते हैं, बतलाइये । लोमहर्षण सूत जी, जो समस्त श्रोता ऋषियों के उत्तर देने में परम प्रवीण सुन्दर वाक्यों के बोलने में सुनिपुण एवं प्राचीन आख्यानों के कुशल वक्ता थे, ऋषि के इस प्रकार पूछने पर पुनः बोले ॥ २-३ ॥

ऋषि ने इस विषय में जो कुछ मुझे बताया है उसे मैं आपसे बतला रहा हूँ, सुनिये । अमित तेजस्वी राजाओं के वंश, उनकी स्थिति एवं उनके प्रभाव का वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये । वरुण की पत्नी सामुद्री थीं जो शुना देवी के नाम से पुकारी जाती हैं । उनके कलि और वैद्य नामक दो पुत्र हुए और सुरसुन्दरी नामक एक पुत्री हुई ॥ ४-६ ॥

कलि के जय और विजय तथा वैद्य के घृणि और मुनि नामक दो महाबलवान् पुत्र हुए । प्रजाओं के भक्षण

प्रजानामत्तुकामानामन्योन्यस्य प्रभक्षिणौ । भक्षयित्वा तावन्योन्यं विनाशं समवापतुः ॥ ८ ॥
कलिः सुरायां सञ्जज्ञे तस्य पुत्रो मदः स्मृतः । त्वाष्ट्री हिंसा कलेर्भार्या ज्येष्ठा या निकृतिः स्मृता ॥९॥
असूतान्यान् कलेः पुत्रांश्चतुरः पुरुषादकान् । नाकं विघ्नं च विख्यातं सद्रमं विधमं तथा ॥ १० ॥
अशिरस्कस्तयोर्विघ्नो नाकश्चैवाशरीरवान् । सद्रमश्चैकहस्तोऽभूद्विधमश्चैकपात्स्मृतः ॥ ११ ॥
सद्रमस्य तथा पत्नी तामसी पूतना स्मृता । रेवती विधमस्यापि तयोः पुत्राः सहस्रशः ॥ १२ ॥
नाकस्य शकुनिः पत्नी विघ्नस्य च अयोमुखी । राक्षसास्तु महाशीर्षाः सन्ध्याद्वयविचारिणः॥ १३ ॥
रेवतीपूतनापुत्रा नैर्ऋता नामतः स्मृताः । ग्रहास्ते राक्षसाः सर्वे बालानां तु विशेषतः ॥
स्कन्दस्तेषामधिपतिर्ब्रह्मणोऽनुमते प्रभुः ॥ १४ ॥
बृहस्पतेर्या भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी । योगसिद्धा जगत्कृस्नमसक्ता चरते सदा ॥ १५ ॥
प्रभासस्य तु सा भार्या वसूनामष्टमस्य तु । विश्वकर्मा सुतस्तस्या जातः शिल्पिप्रजापतिः ॥ १६ ॥
त्वष्टा विराजो रूपाणां धर्म्मपौत्र उदारधीः। कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वास्तुकृत्॥ १७ ॥
यः सर्वेषां विमानानि देवतानां चकार ह । मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः ॥ १८ ॥
प्रह्लादी विश्रुता तस्य त्वष्टुः पत्नी विरोचना । विरोचनस्य भगिनी माता त्रिशिरसस्तु सा ॥ १९ ॥

करने को उत्सुक वे दोनों एक-दूसरे को भक्षण करने को उद्यत हुए । और एक-दूसरे को भक्षणकर विनाश को भी प्राप्त हुए । सुरा (शुना?) के गर्भ से कलि की उत्पत्ति हुई, उसके पुत्र का नाम मद कहा जाता है । त्वष्टा की पुत्री हिंसा कलि की स्त्री थी, जो ज्येष्ठ स्त्री थी, उसका नाम निकृति कहा जाता है ॥ ७-९ ॥

उसने कलि के संयोग से जिन चार मनुष्यभक्षी पुत्रों को उत्पन्न किया, उनके नाम नाक, विघ्न, सद्रम और विधम थे । अगले दोनों पुत्रों में विघ्न नामक जो पुत्र था, यह सिरविहीन था, नाक अशरीरी था सद्रम को केवल एक हाथ था और विषम एक पैरवाला कहा जाता था ॥ १०-११ ॥

सद्रम की पत्नी परम तमोगुणमयी पूतना नाम से विख्यात थी, विघम की पत्नी रेवती थी, इन दोनों के सहसों पुत्र थे । नाक की पत्नी का नाम शकुनि और विघ्न की पत्नी का नाम अयोमुखी था, जिनके बड़े-बड़े भीषण सिरवाले राक्षस उत्पन्न हुए, जो दोनों सन्ध्याओं में विचरण करते रहते थे । रेवती और पूतना के पुत्र नैर्ऋत नाम से विख्यात थे । ये समस्त राक्षस ग्रह रूप में लोगों को विशेषतया बालकों को कष्ट पहुँचाते थे । ब्रह्मा की आज्ञा से इन सबों के स्वामी स्कन्द (स्वामी कीर्तिकेय) हुए ॥ १२-१४ ॥

असक्त भाव से समस्त जगत् में सर्वदा विचरण करनेवाली ब्रह्मचारिणी एवं परम सुन्दरी योगसिद्धा नामक बृहस्पति की जो भगिनी थी, वह आठवें वसु प्रभास की भार्या थी । उसके पुत्र शिल्पियों के प्रजापति (स्रष्टा) विश्वकर्मा हुए । धर्म के पौत्र उदार बुद्धि विश्वकर्मा परम सुन्दर आकृति से सुशोभित थे, देवताओं के सहस्रों शिल्पकर्मों के वे करनेवाले तथा वास्तु विज्ञान के वेत्ता थे । उन्होंने समस्त देवताओं के विमानों (उड़नेवाले रथों) की रचना की थी । उन्हीं परम महात्मा द्वारा प्रचालित शिल्पकर्म के आश्रय से मनुष्य लोग आज भी अपनी जीविका चलाते हैं ॥ १५-१८ ॥

उन विश्वकर्मा की पत्नी विरोचना थी, जो प्रह्लादी नाम से भी विख्यात थी, वह विरोचन की भगिनी और

देवचार्यस्य महतो विश्वकर्मऽस्य धीमतः । विश्वकर्मात्मजश्चैव विश्वकर्ममयः स्मृतः ॥ २० ॥
सुरेणुरिति विख्याता स्वसा तस्य यवीयसी । त्वाष्ट्री सा सवितुर्भार्या पुनः संज्ञेति विश्रुता ॥ २१ ॥
असूत तपसा सा तु मनुं ज्येष्ठं विवस्वतः । यमौ पुनरसूतासौ यमं च यमुनां च ह ॥ २२ ॥
स तु गत्वा कुरुन् देवी वडवारूपधारिणी । सवितुश्चाश्वरूपस्य नासिकाभ्यां तु तौ स्मृतौ ॥ २३ ॥
असूत सा महाभागा त्वन्तरीक्षेऽश्विनौ किल । नासत्यं चैव दस्रं च मार्त्तण्डस्याऽऽत्मजावुभौ ॥ २४ ॥

ऋषय ऊचुः

कस्मान्मार्त्तण्ड इत्येष विवस्वानुच्यते बुधैः । किमर्थं साऽश्वरूपा वै नासिकाभ्यामसूयत ॥
एतद्वेदितुमिच्छामस्तत्त्वं विब्रूहि पृच्छताम् ॥ २५ ॥

सूत उवाच

चिरोत्पन्नमतिर्भिन्नमण्डं त्वष्ट्रा विदारितम् । दृष्ट्वा गर्भवधाद्भीतः कश्यपो दुःखितोऽभवत् ॥ २६ ॥
अण्डे द्विधाकृते त्वण्डं दृष्ट्वा त्वष्टारमब्रवीत् । नैतदण्डं भवान्नूनं मार्तण्डस्त्वं भवानघ ॥ २७ ॥
न खल्वयं मृतोऽण्डे च इति स्नेहात् पिताऽब्रवीत् । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नामान्वर्थमुदाहरत् ॥ २८ ॥
यन्मार्त्तण्डो भवेत्युक्तः पित्राऽण्डे वै द्विधा कृते । तस्माद्विवस्वान्मार्तण्डः पुराणज्ञैर्विभाष्यते ॥ २९ ॥

त्रिशिरा की माता थी । परम बुद्धिमान् विश्वकर्मा देवताओं में शिल्पकर्म के आचार्य थे, उनका पुत्र मय भी उसी प्रकार शिल्पकर्म में निपुण होने के कारण विश्वकर्मा नाम से विख्यात हुआ । उस मय की छोटी बहन, विश्वकर्मा की पुत्री सुरेणु नाम से विख्यात थी, जो संज्ञा नाम से सूर्य की पत्नी हुई । उसने अपने परम तपोबल द्वारा सूर्य के ज्येष्ठ पुत्र मनु को उत्पन्न किया। तदनन्तर उसके यम नामक पुत्र और यमुना नाम की एक पुत्री—दोनों को जुड़वाँ उत्पन्न किया ॥ १९-२२ ॥

फिर उस देवी ने कुरु देश में जाकर बढवा अर्थात् घोड़ी का रूप धारण किया और अश्वरूप धारण करने वाले सूर्य के संयोग से आकाश में अपनी नासिका के दोनों छिद्रों द्वारा नासत्य और दस्र नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया, जो दोनों मार्तण्ड (सूर्य के पुत्र) कहे जाते हैं, ऐसी प्रसिद्धि है ॥ २३-२४ ॥

ऋषियों ने पूछा—पण्डित लोग सूर्य को मार्तण्ड किस लिए कहा करते हैं, किस कारणवश संज्ञा ने बडवा का रूप धारण किया और किस प्रकार नासिका के छिद्रों से पुत्र उत्पन्न किया इस बात को हम लोग सुनना चाहते हैं विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥ २५ ॥

सूत जी ने कहा—प्राचीनकाल में सूर्यदेव एक अण्डे के रूप में उत्पन्न हुए थे, बहुत दिनों तक जब वह अण्डा फूटा नहीं, तब उसे विश्वकर्मा ने फोड़ दिया । उस समय अण्डे को फोड़ते देख गर्भ हत्या के भय से भीत होकर कश्यप जी बहुत दुःखी हुए । और उस अण्डे को दो भागों में फूटा देख विश्वकर्मा से बोले, यह सामान्य अण्डा नहीं है, फिर उस अण्डस्थ जीव से बोले—'हे निष्पाप । इस मरे हुए अण्डे से तुम पुनः उत्पन्न हो । निश्चय ही यह अण्डस्थ प्राणी मूर्त नहीं हुआ है इतनी सी बातें स्नेहपूर्वक पिता ने कही । कश्यप की इतनी बातें सुनकर मार्तण्ड (मरे हुए अण्डे से उत्पन्न होना) नाम की सार्थकता बतलायी जाती है । पिता ने अण्डे के दो भागों में विभक्त हो जाने पर भी 'मार्तण्ड हो जाओ' ऐसी बातें कही थीं, उसी के आधार पर पुराणों के जाननेवाले सूर्य को मार्तण्ड कहते हैं ॥ २६-२९ ॥

ततः प्रजाः प्रवक्ष्यामि मार्तण्डस्य विवस्वतः । विजज्ञे सवितुः संज्ञाभार्यायां तु त्रयं पुरा ॥ ३० ॥
मनुर्यवीयान् सावर्णिः संज्ञायां च तथाश्विनौ । शनैश्चरश्च सप्तैते मार्त्तण्डस्यात्मजाः स्मृताः ॥ ३१ ॥
विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यां महायशाः । तस्य भार्याऽभवत्त्वाष्ट्री महादेवीविवस्वतः ॥
सुरेणुरिति विख्याता पुनः संज्ञेति विश्रुता ॥ ३२ ॥
सा तु भार्या भगवतो मार्त्तण्डस्यातितेजसः । नातुष्यद् भर्तृरूपेण रूपयौवनशालिनी ॥ ३३ ॥
आदित्यस्य हि तद्रूपं मार्त्तण्डस्य हि तेजसा । गोत्रेषु प्रतिरुद्धं वै नातिकान्तमिवाभवत् ॥ ३४ ॥
न खल्वयं मृतो ह्यण्डे इति स्नेहात्तमब्रवीत् । अज्ञानः कश्यपः स्नेहान्मार्तण्ड इति चोच्यते ॥ ३५ ॥
तेजस्त्वभ्यधिकं तस्य नित्यमेव विवस्वतः । येनापि तापयामास त्रींल्लोकान् कश्यपात्मजः ॥ ३६ ॥
त्रीण्यपत्यानि संज्ञायां जनयामास वै रविः । द्वौ सुतौ तु महावीर्यौ कन्यां कालिन्दिमेव च ॥ ३७ ॥
मनुर्विवस्वतो ज्येष्ठः श्राद्धदेवः प्रजापतिः । ततो यमो यमी चैव यमजौ संबभूवतुः ॥ ३८ ॥
शान्तवर्णं तु तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः । असहन्ती स्वकां छायां सवर्णां निर्ममे पुनः ॥ ३९ ॥
महीमयी तु सा नारी तस्याश्छायासमुद्गता । प्राञ्जलिः प्रयता भूत्वा पुनः संज्ञामभाषत ॥ ४० ॥
वदस्व किं मया कार्यं सा संज्ञा तामथाब्रवीत् । अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः ॥ ४१ ॥

अब इसके बाद उस मृत अण्डे से उत्पन्न होनेवाले सूर्य की संततियों का वर्णन कर रहा हूँ। बहुत दिन बीते, उन सूर्य की संज्ञा नामक पत्नी में तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। संज्ञा में उक्त दोनों अश्विनी कुमार और उनसे छोटे सावर्णि मनु नामक पुत्र हुए थे। तदनन्तर शनैश्चर हुए, ये सात (?) मार्तण्ड के आत्मज कहे जाते हैं। महान् यशस्वी विवस्वान् दाक्षायणी में महर्षि कश्यप के संयोग से उत्पन्न हुए थे। उनकी पत्नी विश्वकर्मा की पुत्री महादेवी सुरेणु थीं, जो संज्ञा नाम से भी विख्यात थीं ॥ ३०-३२ ॥

अमित तेजस्वी भगवान् मार्तण्ड की पत्नी परमरूपवती एवं यौवनवती सुरेणु देवी को सन्तुष्टि पतिरूप में उनसे नहीं होती थी। प्रचुर तेज से देदीप्यमान अदितिपुत्र मार्तण्ड के उस शरीर को अपने अंगों में वह नहीं सहन कर पाती थीं, अतः वह परम मनोहर नहीं लगते थे ॥ ३३-३४ ॥

यतः कश्यप ने स्नेहपूर्वक बिना जाने ही यह कहा था कि इस अण्डे में अवस्थित ये निश्चय ही मरे नहीं हैं, अतः उससे उत्पन्न होने के कारण वे मार्तण्ड नाम से पुकारे जाते हैं। उन कश्यपनन्दन मार्तण्ड का तेज नित्य अधिकाधिक बढ़ने लगा, जिसके द्वारा उन्होंने तीनों लोकों को खूब तपाया। उन्होंने संज्ञा नामक अपनी पत्नी से तीन सन्ततियाँ उत्पन्न कीं, जिनमें दो महाबलशाली पुत्र थे, तीसरी कालिन्दी नामक कन्या थी ॥ ३५-३७ ॥

सूर्य के ज्येष्ठ पुत्र श्राद्धदेव प्रजापति मनु थे। उनसे छोटे यमराज और यमी—ये दोनों जुड़वाँ उत्पन्न हुए। विवस्वान् (सूर्य) के उस परम तेजोमय रूप एवं चमकनेवाले वर्ण को देखकर संज्ञा उसे सहन करने में असमर्थ हुई और अपनी ही भाँति अपना एक प्रतिबिम्ब निर्माण किया। तदनन्तर मिट्टी की बनी हुई और उसी के समान सुन्दरी वह नारी हाथ जोड़कर विनम्रभाव से उसके सम्मुख उपस्थित हुई और फिर संज्ञा से बोली 'बतलाइये मैं क्या करूं?' संज्ञा ने उससे कहा—'भद्रे मैं अपने पिता के घर जा रही हूँ, तुम बिना किसी शंका के मेरे इस घर में निवास करो' ॥ ३८-४१ ॥

त्वयेह भवने मह्यं वस्तव्यं निर्विशङ्कया । इमौ च बालकौ मह्यं कन्या च वरवर्णिनी ॥ ४२ ॥
भर्त्रे वै नैदमाख्येयमिदं भगवते त्वया । एवमुक्ताऽब्रवीत् संज्ञां संज्ञायाः पार्थिवी तु सा ॥ ४३ ॥
आकाशग्रहणाद्देवि आशयं नैव कर्हिचित् । आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गच्छ देवि स्वमालयम् ॥ ४४ ॥
समाधाय च तां संज्ञा तथेत्युक्ता तया च सा । त्वष्टुः समीपमगमद् व्रीडितेव तपस्विनी ॥ ४५ ॥
पिता तामागतां दृष्ट्वा क्रुद्धः संज्ञामथाब्रवीत् । भर्तुः समीपं गच्छ त्वं मा जुगुप्स दिवाकरम् ॥ ४६ ॥
सैवमुक्ता तदा पित्रा नियुक्ता च पुनः पुनः । वर्षाणां तु सहस्रं वै वसति स्म पितुर्गृहे ॥ ४७ ॥
भर्तुः समीपं गच्छ त्वं नियुक्ता च पुनः पुनः । अगमद् वडवा भूत्वाच्छाद्य रूपमनिन्दिता ॥
उत्तरान् सा कुरून् गत्वा तृणान्यथ चचार सा ॥ ४८ ॥
द्वितीयायां तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिन्त्य ताम् । आदित्यो जनयामास पुत्रावादित्यवर्चसौ ॥ ४९ ॥
पूर्वजस्य मनोस्तुल्यौ सादृश्येन तु तौ प्रभू । श्रुतश्रवं तु धर्म्मज्ञं श्रुतकर्म्माणमेव च ॥ ५० ॥
श्रुतश्रवा मनुः सोऽपि सावर्णिर्वै भविष्यति । श्रुतकर्म्मा तु विज्ञेयो ग्रहो वै यः शनैश्चरः ॥ ५१ ॥
मनुरेवाभवत्सो वै सावर्ण इति बुध्यते । संज्ञा तु पार्थिवी सा वै स्वस्य पुत्रस्य वै तदा ॥ ५२ ॥
चकाराभ्यधिकं स्नेहं न तथा पूर्वजेषु वै । मनुस्तच्चाक्षमत्सर्वं यमस्तद्वै न चाक्षमत् ॥ ५३ ॥

ये दो मेरे बालक और यह एक सुन्दरी कन्या है, (इनकी देखभाल करना) इस भेद की बात को कभी भी हमारे तेजस्वी पतिदेव से मत कहना । संज्ञा के ऐसा कहने पर उस मृण्मयी संज्ञा ने कहा, हे देवि ! सिर के केशों के पकड़े जाने तक तो मैं इस तुम्हारे गुप्त भेद की चर्चा कभी भी किसी से नहीं करूंगी, तुम अपने अभीष्ट स्थान को जाओ ।' इस प्रकार अपनी छाया रूपिणी नारी से ऐसी बातें कर बड़ी लज्जा के साथ वह तपस्विनी अपने पिता विश्वकर्मा के पास आई । अपने घर पर आयी हुई संज्ञा को देखकर पिता (विश्वकर्मा) परम क्रुद्ध होकर बोले, तुम अपने पति के पास जाओ, दिवाकर के प्रति अपने मन में किसी प्रकार की घृणित भावना मत करो ॥ ४२-४६ ॥

पिता के ऐसा कहने पर, और बारम्बार आग्रहपूर्वक कहने पर भी वह एक सहस्र वर्षों तक अपने पिता के घर में ही निवास करती रही । 'तुम अपने पति के पास चली जाओ'—ऐसा बारम्बार कहने पर उस अनिन्दनीय चरित्रशालिनी ने अपने स्वरूप को छिपाने के लिए वडवा अर्थात् घोड़ी का रूप धारण किया और पिता के घर से प्रस्थान किया । उत्तर कुरु प्रदेश में जाकर तृणों को चरकर जीविका चलाने लगी ॥ ४७-४९ ॥

उस नकली संज्ञा में सूर्य ने असली संज्ञा की भावना से दो अपने जैसे परम तेजस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया । वे दोनों पुत्र अपने बड़े भाई मनु के समान ही स्वरूपवान् और प्रभुतासम्पन्न थे । उन दोनों पुत्रों के नाम श्रुतश्रवा और श्रुतकर्मा थे, जो परमधर्मज्ञ थे । इनमें श्रुतश्रवा नामक जो पुत्र था, वह भी भविष्य में सावर्णि मनु नाम से प्रसिद्ध होगा, श्रुतकर्मा नामक जो दूसरा पुत्र था, उसे शनैश्चर ग्रह नाम से जानिये ॥ ५०-५२ ॥

वह भी सावर्णि नाम से विख्यात मनु होगा । वह मृण्मयी संज्ञा अपने पुत्र को बहुत अधिक स्नेह करती थी, उतना प्रेम भाव उन बड़ी सन्ततियों में नहीं रखती थी । उसके इस मनोभाव को मनु सहन कर लेते थे, पर यमराज को यह मान्य नहीं था । सपत्नी (सौत) के पुत्र होने के कारण जब अपमान बहुत अधिक हो गया तो वे अतिशय दुःखित हुए । एक दिन बालस्वभाववश अथवा भवितव्यता के कारण अतिशय क्रुद्ध होकर सूर्यपुत्र

बहुशो यस्य मानस्तु सापत्न्यादतिदुःखितः । तां वै रोषाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ॥ ५४ ॥
पदा सन्तर्जयामास संज्ञां चैव स्वतो यमः । सा शशाप ततः क्रोधात् सवर्णा जननी यमम् ॥ ५५ ॥
पदा तर्जयसे यस्मात् पितृभार्यां यशस्विनीम् । तस्मात्तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः ॥ ५६ ॥
यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः । मनुना सह धर्म्मात्मा पितुः सर्वं न्यवेदयत् ॥ ५७ ॥
भृशं शापभयोद्विग्नः संज्ञावाक्यैर्विनिर्जितः । बाल्याद्वा यदि वा मोहान्मां भवांस्त्रातुमर्हति ॥ ५८ ॥
शप्तोऽहमस्मिँल्लोकेश जनन्या तपतां वर । तव प्रसादो नस्त्रातुं ह्येतस्मान्महतो भयात् ॥ ५९ ॥
विवस्वानेवमुक्तस्तु यमं प्रोवाच वै प्रभुः । असंशयं पुत्र महद्भविष्यं तत्र कारणम् ॥ ६० ॥
येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्म्मज्ञं सत्यवादिनम् । न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्त्तुं मातुर्वचस्तव ॥ ६१ ॥
कृमयो मांसमादाय यास्यन्ति तु महीं तव । ततः पादं महाप्राज्ञ पुनः संप्राप्स्यसे सुखम् ॥ ६२ ॥
कृतमेवं वचः सत्यं मातुस्तव भविष्यति । शापस्य परिहारेण त्वं च त्राता भविष्यसि ॥ ६३ ॥
आदित्यस्त्वब्रवीत् संज्ञां किमर्थं तनयेषु वै । तुल्येष्वप्यधिकः स्नेह एकस्मिन् क्रियते त्वया ॥ ६४ ॥
सा तत्परिहरन्ती वै नाचचक्षे विवस्वतः । आत्मना स समाधाय योगं तथ्यमपश्यत ॥ ६५ ॥
तां शप्तुकामो भगवान् नाशाय कुपितः प्रभुः । सा तत्सर्वं यथातत्त्वमाचचक्षे विवस्वतः ॥ ६६ ॥

यमराज ने संज्ञा को अपने पैर से ठोकर लगा दी । समान वर्णवाली माता ने इस दुर्व्यवहार से अतिशय क्रुद्ध होकर यमराज को यह शाप दे दिया कि यतः—अपने पिता की स्त्री (माता) को, जो अपने सात्त्विक बल से परम यशस्विनी है, पैर से ठोकर मार रहे हो, अतः तुम्हारा यह पैर गिर पड़ेगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ५३-५६ ॥

माता के इस शाप से मन में अतिशय दुःखित होकर धर्मात्मा यमराज बहुत क्षुब्ध हुए और मनु को साथ लेकर पिता से सारी बातें ज्यों-की-त्यों बता दीं । उन्होंने कहा कि हे तेजस्वियों में श्रेष्ठ ! लोकेश ! संज्ञा (माता) की बातों से हम एकदम हतप्रभ हो गए हैं, उसके शाप के भय से हम संत्रस्त हैं, अपने लड़कपन के कारण अथवा अज्ञान के कारण हमने यह अपराध किया है, पर फिर भी आपको हमारी रक्षा करनी चाहिए । हे तात ! माता ने हमें ऐसा भीषण शाप दे दिया है, इस महान् भय से हमारी रक्षा केवल आप ही कर सकते हैं ॥ ५७-५९ ॥

यमराज के ऐसा कहने पर सूर्य ने कहा—हे पुत्र ! इस दुर्घटना में अवश्य ही कोई महान् कारण है, जो तुम्हारे जैसे सत्यवादी एवं धर्मात्मा के मन में क्रोध का संचार हुआ, किन्तु तुम्हारी माता के इस शापवचन को निष्फल करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है । तुम्हारे मांस को लेकर जब कृमि पृथ्वीतल पर जायेंगे, हे परमबुद्धिमान् तब तुम पुनः अपने पैर को बिना अभ्यास के ही सुखपूर्वक प्राप्त करोगे । ऐसा करने पर तुम्हारी माता के वचन भी सत्य रह जायेंगे और शाप के परिहार हो जाने से तुम्हारी भी रक्षा हो जायगी ॥ ६०-६३ ॥

यमराज से ऐसा कहने के अनन्तर आदित्य ने संज्ञा से कहा, सभी पुत्रों के समान होने पर भी तुम एक पुत्र में बहुत अधिक स्नेह क्यों करती हो? संज्ञा ने उस गुप्त भेद को छिपाने की इच्छा से सूर्य की इन बातों का कोई उत्तर नहीं दिया । तब सूर्य ने अपने योगबल एवं समाधि द्वारा वास्तविक स्थिति का पता लगाया और सब बातें जानकर उन परम तेजस्वी भास्कर ने संज्ञा का विनाश करने के विचार से शाप देने का निश्चय किया । तब भयभीत होकर संज्ञा ने सूर्य से सारी बातें यथातथ्य रूप में प्रकट कर दीं ॥ ६४-६६ ॥

विवस्वानथ तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्ययात् । त्वष्टा तु तं यथान्यायमर्चयित्वा विभावसुम् ॥ ६७ ॥
निर्द्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास वै शनैः । तवातितेजसा युक्तमिदं रूपं न शोभते ॥ ६८ ॥
असहन्ती तु तत् संज्ञा वने चरति शाद्वले । द्रक्ष्यते तां भवानद्य स्वां भार्यां शुभचारिणीम् ॥ ६८ ॥
श्लाघ्यां यौवनसंपन्नां योगमास्थाय गोपते । अनुकूलं भवेदेवं यदि स्यात् समयो मतः ॥ ६९ ॥
रूपं निवर्त्तयेदन्ते आद्यं श्रेष्ठमन्दिम । रूपं विवस्वतस्त्वासीत्तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥ ७० ॥
तेनासौ व्रीडितो देवो रूपेण तु दिवस्पतिः । तस्मात्त्वष्टा स चक्रं तु बहुमेने महातपाः ॥ ७१ ॥
अनुज्ञातस्ततस्त्वष्टा रूपनिर्वर्त्तनाय तु । ततोऽभ्युपगमात्त्वष्टा मार्त्तण्डस्य विवस्वतः ॥ ७२ ॥
भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातयामास तस्य वै । तत्तु निर्भासितं तेजस्तेजसापहृतेन तु ॥ ७४ ॥
कान्तात् कान्ततरं द्रष्टुमशुभं शुशुभे ततः । ददर्श योगमास्थाय स्वां भार्यां वडवां तथा ॥ ७४ ॥
अदृश्यां सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च । अश्वरूपेण मार्त्तण्डस्तां मुखे समभावयत् ॥ ७५ ॥
मैथुनाय विचेष्टन्ती परपुंसोपशङ्कया । सा तन्निरधमच्छुक्रं नासिकाभ्यां विवस्वतः ॥ ७६ ॥
देवौ तस्मादजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ । नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति ॥ ७७ ॥
मार्तण्डस्य सुतावेतावष्टमस्य प्रजापतेः । तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्करः ॥ ७८ ॥

उस मृण्मयी छाया द्वारा सारी बातें अवगत कर सूर्य परम क्रुद्ध हुए और उसी क्रोधावेश में विश्वकर्मा के पास पहुँचे । विश्वकर्मा ने सूर्य का समुचित सत्कार एवं पूजन किया और क्रोध से भस्म करने को उद्यत भास्कर को धीरे-धीरे सान्त्वना देते हुए शान्त किया । तब कहा, परम तेजोमय होने के कारण तुम्हारा यह रूप शोभा नहीं देता, इस प्रकार स्वरूप को सहन करने में अपने को असमर्थ पाकर संज्ञा अब हरे-भरे घास के मैदान में चर रही है । अपनी उस शुभमागंगामिनी, स्वरूपवती, यौवनशालिनी, प्रशंसनीय गुणोंवाली पत्नी को आप आज देखेंगे शर्त यही है कि आप हमारी सम्मति अंगीकार करें और जैसा हम कहें वैसा करें । हे शत्रुओं को वश में करनेवाले । तुम्हारे इस श्रेष्ठ तेजोमय पूर्वरूप को हम परिवर्तित करना चाहते हैं ॥ ६७-७० ॥

उस समय सूर्य का तेजोमय स्वरूप तिरछा, ऊँचा और नीचा था, अर्थात् उनकी किरणें तिरछे, ऊंचे, नीचे सर्वत्र प्रखर तेजोमयी थीं । अपने उक्त रूप की चर्चा से दिनकर देव लज्जित हुए । अपने जिस प्रसिद्ध चक्र से सूर्य के रूप परिवर्तन की चर्चा महातपस्वी विश्वकर्मा ने की थी, उस चक्र को बहुत सम्मान से देखा । सूर्य से रूप परिवर्तन की आज्ञा प्राप्तकर विश्वकर्मा मार्तण्ड के सम्मुख सचक्र उपस्थित हुए और अपने उस चक्र (शान) पर रखकर उनके तेज को खराद दिया । चक्र द्वारा तेज की प्रखरता के खराद देने पर सूर्य का शेष तेज परम सुशोभित हुआ और देखने में पहले जो अच्छा नहीं लगता था वही सुन्दर से भी सुन्दरतर दिखायी पड़ने लगा । तदनन्तर सूर्य ने योगबल द्वारा वडवा अर्थात् घोड़ी रूपधारिणी अपनी स्त्री को देखा ॥ ७१-७५ ॥

उस समय वह अपने तेज एवं नियमों के कारण सभी जीवों से अदृश्य थी । उसे देख मार्तण्ड ने अश्व का रूप धारण किया और मुख की ओर से काम भावना प्रकट की । काम-चेष्ट करने पर संज्ञा ने पराये पुरुष की शंका से सूर्य के वीर्य को अपनी नासिका के दोनों छिद्रों द्वारा बाहर गिरा दिया । उस बाहर गिराये हुए सूर्य के वीर्य से परम वैद्य दोनों अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई, जो दिव्यगुणसम्पन्न थे । वे दोनों अश्विनीकुमार नासत्य और दस्र के नाम से विख्यात हैं । ये दोनों आठवें प्रजापति मार्तण्ड के पुत्र कहे ज़ाते हैं । तदनन्तर अपने मनोहर स्वरूप

सा तं दृष्ट्वा तदा भार्या तुतोष च मुमोह च । यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः ॥ ७९ ॥
धर्म्मेण रञ्जयामास धर्म्मराजस्ततस्तु सः । सोऽलभत् कर्मणा तेन शुभेन परमद्युतिः ॥ ८० ॥
पितृणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च । मनुः प्रजापतिश्चैव सावर्णिः स महायशाः ॥ ८१ ॥
भाव्यसौ नागते तस्मिन् मनुः सावर्णिकेऽन्तरे । मेरुपृष्ठे सुरम्ये वै अद्यापि चरते प्रभुः ॥ ८२ ॥
भ्राता शनैश्चरस्तत्र ग्रहत्वं स तु लब्धवान् । त्वष्टाऽनु तेन रूपेण विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ॥
महाऽप्रतिहतं युद्धे दानवप्रतिवारणे ॥ ८४ ॥
यवीयसी तयोर्या तु यमुना च यशस्विनी । अभवत्सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकभाविनी ॥ ८४ ॥
यस्तु ज्येष्ठो महातेजाः सर्गो यस्य तु साम्प्रतम् । विस्तरं तस्य वक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥ ५ ॥
इदं तु जन्म देवानां श‍ृणुयाद्वा पठेत वा । वैवस्वतस्य पुत्राणां सप्तानां तु महौजसाम् ॥
आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महद्यशः ॥ ८६ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पे वरुणवंशवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

* * *

को भास्कर ने संज्ञा को दिखाया, पत्नी संज्ञा अपने पति के इस परम सुन्दर अभिनव स्वरूप को देखकर परम सन्तुष्ट और मोहित हुई । उधर मृण्मयी संज्ञा के उक्त शाप के कारण यमराज बहुत ही दुःखी और क्षुब्ध थे, किन्तु अपने धर्माचरण द्वारा उन्होंने सबको परम प्रसन्न किया, जिससे उनका नाम ही धर्मराज हुआ अपने शुभकर्मों द्वारा यम ने परम सुन्दर कान्ति प्राप्त की ॥ ७६-८१ ॥

यही नहीं, समस्त पितरों का आधिपत्य एवं लोकपालकत्व की पदवी भी उन्हें प्राप्त हुई । महान् यशस्वी सावर्णि मनु इस प्रकार सावर्णि मन्वन्तर में प्रजापति रूप में प्रतिष्ठित होंगे । वे प्रभु सुरम्य सुमेरु के पृष्ठभाग पर आज भी तपश्चर्या में निरत हैं । उसी स्थान पर उनके भ्राता शनैश्चर ग्रह रूप में प्रतिष्ठित हुए । विश्वकर्मा ने सूर्य के उस खरादे हुए तेजोमयरूप से विष्णु के उस चक्र का निर्माण किया, जो युद्ध-स्थल में दानवों का विध्वंसक एवं महान् शक्तिशाली है । उन दोनों की छोटी यशस्विनी भगिनी यमुना नाम से विख्यात हुई, जो लोक को पवित्र करनेवाली सरिताओं में श्रेष्ठ यमुना के रूप में परिणत हुई । सूर्य के उन दोनों पुत्रों में जो ज्येष्ठ पुत्र थे, उनका नाम मनु था, उन मनु का वंश आज भी पृथ्वीतल पर विद्यमान है, उसे विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ । महातेजस्वी सूर्य के इन सातों देवरूप पुत्रों के जन्म विषयक इस वृत्तान्त को, जो मनुष्य सुनता है अथवा पढ़ता है, वह आपत्तियों में फँसकर भी छुटकारा पा जाता है और महान् यश का भागी होता है ॥ ८२-८७ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में श्राद्धकल्प के प्रसंग में वरुण के वंश का वर्णन नामक बाइसवें अध्याय (चौरासीवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २२ ॥**

* * *

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

श्राद्धकल्ये वैवस्वतमनुवंशवर्णनम्

सूत उवाच

ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषे दैवतैः सह । वैवस्वताय महते पृथिवीराज्यमादिशत् ॥ १ ॥
तस्य वैवस्वतो वक्ष्ये साम्प्रतस्य महात्मनः । आनुपूर्व्येण वै विप्राः कीर्त्त्यमानं निबोधत ॥ २ ॥
मनोर्वैवस्वतस्येह सर्गमादाय साम्प्रतम् । मनोः प्रथमजस्यासन् नवपुत्रास्तु तत्समाः ॥ ३ ॥
इक्ष्वाकुर्नहुषश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च । नरिष्यन्तस्तथा प्रांशुर्नाभागोऽरिष्ट एव च ॥
करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मानवाः स्मृताः ॥ ४ ॥
ब्रह्मणा तु मनुः पूर्वं चोदिवस्तु निबोधत । स्त्रष्टुं प्रचक्रमे कामं निष्फलं समवर्त्तत ॥ ५ ॥
अथाकरोत्पुत्रकामः परामिष्टिं प्रजापतिः । मित्रावरुणयोरंशे मनुराहुतिमावपत् ॥ ६ ॥
तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता । दिव्यसन्नहना चैव इडा जज्ञे इति श्रुतिः ॥ ७ ॥

तेईसवाँ अध्याय

(पचासीवाँ अध्याय)

श्राद्धकल्प के प्रसंग में वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन

श्रीसूतजी ने कहा—हे विप्रवृन्द । तदनन्तर चाक्षुष मन्वन्तर के व्यतीत हो जाने पर, जब देवगण भी व्यतीत हो गये, तब महान् प्रभावशाली सूर्य पुत्र मनु समस्त पृथ्वी के सम्राट् पद के अधिकारी हुए ॥ १ ॥

उन वर्तमान महात्मा सूर्यपुत्र मनु के वंश का वर्णन हम क्रमपूर्वक कर रहे हैं, आप लोग सुनिये प्रथमतः उन्हीं वैवस्वत मनु के वंश को लेकर बतला रहा हूँ। सबसे बड़े मनु के उन्हीं के समान प्रभावशाली नव पुत्र हुए। जिनके नाम इक्ष्वाकु, नहुष, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्राशु, नाभाग, अरिष्ट करूष और पृषध्र थे, ये नव मनु के पुत्रों के नाम से विख्यात हुए ॥ २-४ ॥

सुनिये, प्राचीन काल में ब्रह्मा की प्रेरणा से मनु ने सृष्टि विस्तार का कर्म प्रारम्भ किया, पर निष्फल रहे। तदनन्तर पुत्र की कामना से प्रजापति मनु ने पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान किया, और मित्रावरुण के लिए आहुति अग्नि में छोड़ी । ऐसा सुना जाता है । कि उस यज्ञभूमि से परम दिव्य मनोहर वस्त्रों को धारण किये, दिव्य आभरण से विभूषित दिव्य अंगोंवाली इडा उत्पन्न हुई ॥ ५-७ ॥

तामिलेत्यथ होवाच मनुर्दण्डधरः स्मृतः । अनुगच्छामि भद्रं ते तमिला प्रत्युवाच ह ॥ ८ ॥
धर्म्मयुक्तमिदं वाच्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् । मित्रावरुणयोरंशे जाताऽस्मि वदतां वर ॥ ९ ॥
तयोः सकाशं यास्यामि मा नो धर्मो हतोऽवधीत् । सैवमुक्त्वा पुनर्द्देवी तयोरन्तिकमागतम् ॥ १० ॥
गत्वान्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् । अंशेऽस्मिन् युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि च ॥ ११ ॥
मनुनैवाहमुक्तास्मि अनुगच्छस्व मामिति । तथा तु वदतीं साध्वीमिडामाश्रित्य तावुभौ ॥ १२ ॥
देवौ च मित्रावरुणाविदं वचनमूचतुः । अनेन तव धर्मज्ञे प्रश्रयेण दमेन च ॥ १३ ॥
सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वो वरवर्णिनि । आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं कन्या प्रयास्यसि ॥ १४ ॥
सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु पूजितः । जगत्प्रियो धर्म्मशीलो मनोर्वंश विवर्द्धनः ॥ १५ ॥
मानवः स तु सुद्युम्नः स्त्रीभावमगमत् प्रभुः । सा तु देवी वरं लब्ध्वा निवृत्ता पितरं प्रति ॥ १६ ॥
बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता । सोमपुत्राद्बुधाच्चास्या ऐलो जज्ञे पुरूरवाः ॥ १७ ॥
बुधात् सा जनयित्वा तु सुद्युम्नं पुनरागता । सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्म्मिकाः ॥ १८ ॥
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वस्तथैव च । उत्कलस्योत्कलं राष्ट्रं विनताश्वस्य पश्चिमम् ॥
दिक्षु वातस्य राजर्षेर्गयस्य तु गया पुरी ॥ १९ ॥

दण्डधारण किये हुए मनु ने ऐसा कहा जाता है कि उसे 'इला' कहकर सम्बोधित किया । तब इला ने पुत्र के अभिलाषी प्रजापति मनु को यह धर्मयुक्त प्रत्युत्तर दिया, 'भद्र ! मैं आपकी अनुगामिनी (आज्ञाकारिणी) हूँ, आपका कल्याण हो । बोलनेवालों में श्रेष्ठ में मित्रावरुण के अंश से उत्पन्न हुई हूँ अतः उन्हीं के पास जा रही हूँ, जिससे हमारा धर्म नष्ट न हो और हमारे विनाश का कारण न बने ।' इसी बात को पुनः कहकर वह दिव्यगुणसम्पन्ना इडा मित्रावरुण के पास चली गयी ॥ ८-१० ॥

सुन्दरी उन दोनों के पास पहुँचकर हाथ जोड़ते हुए बोली, हे युगल देव । मेरा जन्म आप दोनों के अंश से हुआ है, अतः मेरे लिये क्या आज्ञा है? मैं आपका क्या उपकार करूँ? मनु ने मुझसे यह कहा था कि 'तुम मेरी अनुगामिनी बनो' इस पर आप लोगों की क्या आज्ञा है (?) उस परम चरित्रवती इडा के इस प्रकार कहने पर वे दोनों देवगण उसके समीप चले आये और उसे पकड़कर बोले, हे धर्म के महत्त्व को जाननेवाली ! तुम्हारे इस सत्याचरण, इन्द्रिय दमन एवं प्रश्रय से हम लोग बहुत ही प्रसन्न हैं ॥ ११-१३ ॥

हे सुन्दर अंगोंवाली महाभाग्यशालिनी, तुम हम दोनों की कन्या के रूप में प्रतिष्ठित होगी । पुनः तीनों लोकों में पूजनीय, जगत् के प्रिय, धर्मशील, मनु के वंश के विस्तारक सुद्युम्न रूप में विख्यात होगे, वे सुद्युम्न पुनः स्त्री रूप में परिणत हुए । देवी इला वरदान प्राप्ति के बाद पिता के पास वापस आयी । उचित अवसर देखकर उसे बुध ने काम तृप्ति के लिए निमंत्रित किया । चन्द्रमा के पुत्र बुध से इला को पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १४-१७ ॥

बुध के संयोग से पुरूरवा को जन्म देकर वह पुनः सुद्युम्न रूप में परिणत हो गयी । सुद्युम्न के तीन परम धार्मिक पुत्र हुए, जिनके नाम उत्कल, गय और विनताश्व थे । उत्कल का राष्ट्र उत्कल प्रदेश, विनताश्व का पश्चिमी प्रदेश और राजर्षि दिक्ष्ववात (विनताश्व ?) की गया नामक पुरी थी ॥ १८-१९ ॥

प्रविसृष्टे मनौ तस्मिन् प्रजाः सृष्ट्वा दिवाकरः। दशधा तद्दधत् क्षेत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम् ॥ २० ॥
इक्ष्वाकुरेव दायादानन्यान् दश समाप्नुयात् । कन्याभावात्तु सुद्युम्नो नैनं भागमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥
वशिष्ठवचनाच्चासीत् प्रतिष्ठानो महाद्युतिः । प्रतिष्ठा धर्मराजस्य सुद्युम्नस्य महात्मनः ॥ २२ ॥
तत् पुरुरवसे प्रादाद्राष्ट्रं प्राप्य महायशाः । मानवेभ्यो महाभागा स्त्रीपुंसोर्लक्षणं प्रति ॥
मानवः स तु सुद्युम्नः स्त्रीभावमगमत् पुनः ॥ २३ ॥
एतच्छ्रुत्वा तु ऋषयः पप्रच्छुस्तदनन्तरम् । मानवः स तु सुद्युम्नः स्त्रीभावमगमत् कथम् ॥ २४ ॥

सूत उवाच

प्रोवाच वचनं देवी प्रियहेतोः प्रियं प्रिया । स मे ममाश्रमे देव यः पुमान् संप्रवेक्ष्यति ॥
भविष्यति ध्रुवं नारी सा तुल्याप्सरसां शुभा ॥ २५ ॥
तत्र सर्वाणि भूतानि पिशाचाः पशवश्च ये । स्त्रीभूताः सह रुद्रेण क्रीडन्त्यप्सरसो यथा ॥ २६ ॥
उमावनं प्रविष्टस्तु स राजा मृगयां गतः । सह पिशाचैर्भूतैस्तु रुद्रैः स्त्रीभावमास्थितः ॥ २७ ॥
तस्मात् स राजा सुद्युम्नः स्त्रीभावं लब्धवान् पुनः। महादेवप्रसादाच्च गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पे वैवस्वतमनुवंशवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

* * *

उस मन्वन्तर में मनुपुत्र सूर्य ने इस प्रकार सृष्टि का विस्तार कर समस्त पृथ्वीमण्डल को दस भागों में विभक्त किया । इक्ष्वाकु ने अन्य दस पुत्रों को प्राप्त किया, जो राज्य के उत्तराधिकारी थे, कन्या होने के कारण सुधुम्न इस राज्य के उत्तराधिकार को नहीं प्राप्त कर सके । तब वसिष्ठ के आदेशानुसार धर्मराज महात्मा सुद्युम्न प्रतिष्ठान (?) के उत्तराधिकारी हुए । किन्तु परम यशस्वी मनु पुत्र सुद्युम्न राज्य प्राप्तकर फिर से स्त्री रूप में जब हो गए तब राज्य को पुरूरवा को दे दिया, मनुष्य में स्त्री-पुरुषों के चिह्न की सहज ही जानकारी रहती है । सूत की ऐसी बातें सुन ऋषियों ने पूछा, मनु-पुत्र सुद्युम्न पुरुष होकर स्त्री रूप में किस प्रकार परिणत हुए ॥२०-२४॥

श्रीसूतजी ने कहा—प्राचीनकाल की बात है एक बार देवी (पार्वती) ने देव से यह प्रिय निवेदन अपने हित को दृष्टि से किया था कि हे देव । मेरे इस आश्रम में जो कोई पुरुष प्रवेश करेगा वह निश्चय अप्सराओं के समान सुन्दरी स्त्री के रूप में परिणत हो जायगा । पार्वती के इस वचन के अनुसार उस आश्रम में भूत, पिशाच, पशु आदि जितने जीवगण थे सब स्त्री रूप धारणकर इन्द्र के साथ अप्सराओं के समान क्रीड़ा करने लगे । मृगया खेलते हुए राजा उमा के उस वन में प्रविष्ट हुए । वहाँ पिशाचों और भूतों के साथ रुद्र स्त्री रूप में विराजमान थे । इसी कारणवश राजा सुद्युम्न पुनः स्त्री रूप को प्राप्त हुए और महादेव की कृपा से गणों का आधिपत्य प्राप्त किया ॥ २५-२८ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में श्राद्धकल्प प्रसंग में वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन नामक तेइसवें अध्याय (पचासीवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २३ ॥**

* * *

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

वैवस्वतमनुवंशप्रसङ्गे गान्धर्वमूर्च्छनालक्षणकथनम्

सूत उवाच

निसर्गं मनुपुत्राणां विस्तरेण निबोधत । पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गावमभक्षयत् ॥ १ ॥
शापाच्छूद्रत्वमापन्नश्च्यवनस्य महात्मनः । करूषस्य तु कारूषः क्षत्रियो युद्धदुर्मदः ॥ २ ॥
सहस्रक्षत्रियगणविक्रान्तः संबभूव ह । नाभागारिष्टपुत्रस्तु विद्वानासीद्भलन्दनः ॥ ३ ॥
भलन्दनस्य पुत्रोऽभूत् प्रांशुर्नाम महाबलः । प्रांशोरेकोऽभवत् पुत्रः प्रजानिरिति विश्रुतः ॥ ४ ॥
प्रजानेरभवत् पुत्रः खनित्रो नाम वीर्यवान् । तस्य पुत्रोऽभवच्छ्रीमान् क्षुपो नाम महायशाः ॥ ५ ॥
क्षुपस्य विंशः पुत्रस्तु प्रतिमा न बभूव ह । विंशपुत्रस्तु कल्याणो विविंशो नाम धार्मिकः ॥ ६ ॥
विविंशपुत्रो धर्मात्मा खनिनेत्रः प्रतापवान् । करन्धमस्तस्य पुत्रस्त्रेतायुगमुखेऽभवत् ॥ ७ ॥
करन्धमसुतश्चापि आविक्षिन्नाम वीर्यवान् । आविक्षितो व्यतिक्रामत् पितरं गुणवत्तया ॥ ८ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

(छियासीवाँ अध्याय)

वैवस्वत मनु के वंश-प्रसंग में गन्धर्वों की मूर्च्छना का वर्णन

मनु के पुत्रों का सृष्टि विवरण विस्तारपूर्वक सुनिये । मनु-पुत्र पृषध्र अपने गुरु महात्मा च्यवन की गौ को मारकर खा गये, जिसके कारण शापवश शूद्र वर्ण में प्राप्त हुए । करूष के कारूष नामक पुत्रगण संग्राम में दुर्दमनीय थे । नाभाग अरिष्ट का पुत्र भलन्दन परम विद्वान् और सहस्रों क्षत्रियों के समूहों में एकमात्र बलशाली हुआ ॥ १-३ ॥

भलन्दन का पुत्र महाबलवान् प्रांशु हुआ, उस प्रांशु का पुत्र प्रजानि नाम से विख्यात हुआ । प्रजानि का खनित्र नामक वीर्यवान् पुत्र हुआ, उस खनित्र का पुत्र परम शोभासम्पन्न महायशस्वी क्षुप हुआ । क्षुप के पुत्र विंश हुए, जिनके समान कोई नहीं हुआ । विंश के पुत्र धार्मिक विचारोंवाले, कल्याणकारी विविंश हुए । विविंश के पुत्र प्रतापशाली, धर्मात्मा खनिनेत्र हुए, उनके पुत्र करन्धम हुए, जो त्रेतायुग के प्रारम्भ में वर्तमान थे ॥ ४-७ ॥

करन्यम के आविक्षित् नामक प्रतापशाली पुत्र हुए । आविक्षित् ने अपने गुणों द्वारा अपने पिता का

मरुत्तो नाम धर्मात्मा चक्रवर्त्तिसमो नृपः । संवर्तेन दिवं नीतः ससुहृत् सह बान्धवैः ॥ ९ ॥
विवादोऽत्र महानासीत् संवर्त्तस्य बृहस्पतेः। ऋद्धिं दृष्ट्वा तु यज्ञस्य क्रुद्धस्तस्य बृहस्पतिः ॥ १० ॥
संवर्त्तेन हते यज्ञे चुकोप सुभृशं तदा । लोकानां स हि नाशाय दैवतैर्हि प्रसादितः ॥ ११ ॥
मरुत्तश्चक्रवर्त्ती स नरिष्यन्तमवाप्तवान् । नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दण्डधरो दमः ॥ १२ ॥
तस्य पुत्रस्तु विक्रान्तो राजासीद् राष्ट्रवर्धनः । सुधृती तस्य पुत्रस्तुनरः सुधृतिनः सुतः ॥ १३ ॥
केवलस्तस्य पुत्रस्तु बन्धुमान् केवलात्मजः । अथ बन्धुमतः पुत्रो धर्मात्मा वेगवान् नृपः ॥ १४ ॥
बुधो वेगवतः पुत्रस्तृणबिन्दुर्बुधात्मजः । त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये संबभूव ह ॥ १५ ॥
कन्या तु तस्य द्रविडा माता विश्रवसो हि सा । पुत्रश्चास्य विशालोऽभूद् राजा परमधार्मिकः ॥ १६ ॥
विशालस्य समुत्पन्ना विशाला नयनिर्मिता । विशालस्य सुतो राजा हेमचन्द्रो महाबलः ॥ १७ ॥
सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरम् । सुचन्द्रतनयो राजा धूम्राश्व इति विश्रुतः ॥ १८ ॥
धूम्राश्वतनयो विद्वान् सृञ्जयः समपद्यत । सृञ्जयस्य सुतः श्रीमान् सहदेवः प्रतापवान् ॥ १९ ॥
कृशाश्वः सहदेवस्य पुत्रः परमधार्मिकः । कृशाश्वस्य महातेजाः सोमदत्तः प्रतापवान् ॥ २० ॥
सोमदत्तस्य राजर्षेः सुतोभूज्जनमेजयः । जनमेजयात्मजश्चैव प्रमतिर्नाम विश्रुतः ॥ २१ ॥
तृणबिन्दुप्रसादेन सर्वे वैशालका नृपाः । दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्तः सुधार्मिकः ॥ २२ ॥

अतिक्रमण किया, उनके पुत्र परमधर्मात्मा, चक्रवर्तियों जैसे प्रभावी राजा मरुत्त (महत्त) नामक हुए, जिन्होंने संवर्त नामक ऋषि की प्रेरणा से अपने मित्रों तथा परिवार वर्गवालों के साथ स्वर्ग प्राप्त किया । इस कार्य में संवर्त और बृहस्पति के बीच में महान् विवाद खड़ा हो गया । उस यज्ञ की समृद्धि को देखकर बृहस्पति क्रुद्ध हुए ॥ ८-१० ॥

संवर्त के निर्विघ्न यज्ञ समाप्त कर देने पर तो वे बहुत क्रुद्ध हुए, समस्त लोकों के विनाश की सम्भावना देखकर देवताओं ने बृहस्पति को प्रसन्न किया चक्रवर्ती राजा मरुत्त ने पुत्र रूप में नरिष्यन्त को प्राप्त किया, नरिष्यन्त का उत्तराधिकारी पुत्र दम हुआ, जो दण्ड देने में बड़ा कठोर था । उसका पुत्र राष्ट्रवर्धन पराक्रमी था । उसका पुत्र सुधूती और सुभूती का पुत्र नर हुआ ॥ ११-१३ ॥

उसका पुत्र केवल हुआ, केवल का पुत्र बन्धुमान हुआ । बन्धुमान का पुत्र परम धर्मात्मा राजा वेगवान् हुआ वेगवान् का पुत्र बुध और बुध का पुत्र तृणबिन्दु हुआ, यह राजा तृणविन्दु तीसरे त्रेतायुग के प्रारम्भ काल में विद्यमान था । उस (तृणबिन्दु) की कन्या द्रविडा थी जो विश्रवा की माता थी इसका पुत्र परम धार्मिक राजा विशाल हुआ, इसी राजा विशाल ने विशाला नामक पुरी का निर्माण किया । राजा विशाल के पुत्र महाबलवान् राजा हेमचन्द्र हुए । हेमचन्द्र के उपरान्त उनके पुत्र राजा सुचन्द्र की ख्याति हुई । राजा सुचन्द्र का पुत्र धूमाश्व नाम से विख्यात हुआ । राजा धूमाश्व के पुत्र परम विद्वान् राजा सृञ्जय उत्पन्न हुए । सृज्जय के पुत्र श्रीमान् परम प्रतापी सहदेव हुए । सहदेव के पुत्र कृशाश्व हुए, जो परम धार्मिक राजा थे । कृशाश्व के पुत्र परम प्रतापी महान् तेजस्वी राजा सोमदत्त हुए । राजर्षि सोमदत्त के पुत्र जनमेजय हुए । राजा जनमेजय के पुत्र प्रमति नाम से विख्यात हुए ॥ १४-२१ ॥

राजा तृणबिन्दु की कृपा से ये सभी विशाला पुरी के नृपतिगण दीर्घायुवाले, परम पराक्रमी, परम धार्मिक एवं महात्मा हुए । राजा शर्माति की दो सन्ततियाँ हुई । पुत्र का नाम आनत और कन्या का नाम सुकन्या था,

शर्यातिर्मिथुनं त्वासीदानार्तो नाम विश्रुतः । पुत्रः सुकन्या कन्या च भार्या या च्यवनस्य तु ॥ २३ ॥
आनार्त्तस्य तु दायादो रेवो नाम्ना तु वीर्यवान् । आनर्त्तो विषयो यस्य पुरी चापि कुशस्थली ॥ २४ ॥
रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः। ज्येष्ठो भ्रातृशतस्यासीद् राजा प्राप्य कुशस्थलीम् ॥ २५ ॥
कन्यया सह श्रुत्वा च गन्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके । मुहूर्तं देवदेवस्य मार्त्यं बहुयुगं विभोः ॥ २६ ॥
आजगाम युवा चैव स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् । कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम् ॥ २७ ॥
भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्ता वसुदेवपुरोगमैः । तां कथां रैवतः श्रुत्वा यथातत्त्वमरिंदमः ॥ २८ ॥
कन्या तु बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम् । दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः ॥ २९ ॥
रेमे रामश्च धर्मात्मा रेवत्या सहितः किल । तां कथामृषयः श्रुत्वा पप्रच्छुस्तदनन्तरम् ॥ ३० ॥

ऋषय ऊचुः

कथं बहुयुगे काले व्यतीते सूतनन्दन । न जरां रेवती प्राप्ता पलितं च कुतः प्रभो ॥ ३१ ॥
मेरुं गतस्य वा तस्य शर्य्यातिः सन्ततिः कथम् । स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३२ ॥
कियन्तो वा सुरगणा गन्धर्व्वास्तत्र कीदृशाः । यच्छ्रुत्वा रैवतः कालान् मुहूर्तमिव मन्यते ॥ ३३ ॥

सूत उवाच

न जरा क्षुत्पिपासा वा न च मृत्युभयं ततः । न च रोगः प्रभवति ब्रह्मलोकगतस्य हि ॥ ३४ ॥

सुकन्या च्यवन की स्त्री हुई । राजा आनर्त का उत्तराधिकारी परम पराक्रमी रेव नामक राजा हुआ, आनर्त का समस्त राज्य और कुशस्थली पुरी पर उसका आधिपत्य था ॥ २२-२४ ॥

रेव का पुत्र परम धार्मिक रैवत हुआ, जो ककुची नाम से भी विख्यात हुआ ककुची अपने अन्य सौ भाइयों में सबमें ज्येष्ठ थे, इन्होंने भी कुशस्थली पुरी में राज्य किया । एक बार अपनी कन्या के साथ यह ब्रह्मा के समीप संगीत सुनने के लिए गए थे, वहाँ देवाधिदेव ब्रह्मा के केवल एक मुहूर्त (दो घड़ी) भर इन्होंने अवस्थान किया था, किन्तु ब्रह्मा की वह दो घड़ी मानव वर्षमान से अनेक युगों की थी । वहाँ से राजा युवावस्था में ही अपनी पुरी को जब वापस लौटे तो उनकी वह पुरी यदुवंशियों से अधिकृत थी, उसके चारों ओर अनेक सुन्दर द्वार बने थे और अब वह कुशस्थली नाम से नहीं प्रत्युत द्वारवती नाम से प्रसिद्ध थी ॥ २५-२७ ॥

वसुदेव प्रभृति प्रमुख भोज, वृष्णि एवं अन्धक वंशों के लोग उसकी रक्षा कर रहे थे । शत्रुओं को वश में करनेवाले रैवत ने इस घटना को जानकर अपनी साध्वी व्रतपरायण कन्या रेवती को बलदेव को समर्पित कर दिया और स्वयं मेरु के शिखर पर जाकर तपस्या में प्रवृत्त हुए ॥ २८-२९ ॥

बलराम जी ने रेवती के साथ दाम्पत्य सुख का अनुभव किया । (सूत से) ऐसी कथा सुनने के उपरान्त ऋषियों ने पूछा—हे सूतनन्दन ! यह कैसे सम्भव हुआ कि अनेक युगों के बीत जाने पर भी रेवती में वृद्धत्व का समागम नहीं हुआ और उसके अंगों में पलित का भी आभास नहीं हुआ और मेरु पर्वत पर तपस्यार्थ चले जाने पर राजा शर्याति को सन्तति प्राप्ति किस प्रकार हुई, जो आज भी पृथ्वी में उनके नाम से विख्यात है । इसको हम यथार्थतः सुनना चाहते हैं । ब्रह्मा की उस सभा में कितने देवता निवास करते हैं । वहाँ के गन्धर्व किस प्रकार के हैं, जिनके संगीत को सुनकर राजा रैवत ने इतने समय को दो घड़ी मान लिया? ॥ ३०-३३ ॥

गान्धर्व्वं प्रति यच्चापि पृष्टस्तु मुनिसत्तमाः । ततोऽहं संप्रवक्ष्यामि याथातथ्येन सुव्रताः ॥ ३५ ॥
सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशतिः । तालाश्चैकोनपञ्चाशदित्येतत् स्वरमण्डलम् ॥ ३६ ॥
षड्जर्षभौ च गान्धारो मध्यमः पञ्चमस्तथा । धैवतश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निषादवान् ॥ ३७ ॥
सौबीरी मध्यमग्रामो हरिणास्या तथैव च । स्यात्कलोपबलोपेता चतुर्थी शुद्धमध्यमाः ॥ ३८ ॥
शार्ङ्गी च पावनी चैव दृष्टाका च यथाक्रमम् । मध्यमग्रामिकाः ख्याताः षड्जग्रामं निबोधत ॥ ३९ ॥
उत्तरमन्द्रा रजनी तथा या चोत्तरायता । शुद्धषड्जा तथा चैव जानीयात् सप्तमां च ताम् ॥ ४० ॥
गान्धारग्रामिकांश्चान्यान् कीर्त्यमानान् निबोधत । आग्निष्टोमिकमाद्यं तु द्वितीयं वाजपेयिकम् ॥ ४१ ॥
तृतीयं पौण्ड्रकं प्रोक्तं चतुर्थं चाश्वमेधिकम् । पञ्चमं राजसूयं च षष्ठं चक्रसुवर्णकम् ॥ ४२ ॥
सप्तमं गोसवं नाम महावृष्टिकमष्टमम् । ब्रह्मदानं च नवमं प्राजापत्यमनन्तरम् ॥ ४३ ॥
नागपक्षाश्रयं विद्याद्गोतरं च तथैव च । हयक्रान्तं मृगक्रान्तं विष्णुक्रान्तं मनोहरम् ॥ ४४ ॥
सूर्यक्रान्तं वरेण्यं च मत्तकोकिलवादिनम् । सावित्रमर्द्धसावित्रं सर्व्वतोभद्रमेव च ॥ ४५ ॥
सुवर्णं च सुतन्द्रं च विष्णुवैष्णुवरावुभौ । सागरं विजयं चैव सर्वभूतमनोहरम् ॥ ४६ ॥
हंसं ज्येष्ठं विजानीमस्तुम्बुरुप्रियमेव च । मनोहरमधात्र्यं च गन्धर्वानुगतश्च यः ॥ ४७ ॥
अलम्बुषेष्टश्च तथा नारदप्रिय एव च । कथितो भीमसेनेन नागराणां यथा प्रियः ॥ ४८ ॥
करोपनीतविनता श्रीराख्यो भार्गवप्रियः । विंशतिर्मध्यग्रामः षड्जग्रामश्चतुर्दश ॥ ४९ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—ऋषिवृन्द ! ब्रह्मलोक में जानेवाले प्राणी में न वृद्धता का समावेश होता है, न उसे भूख लगती है, न प्यास लगती है, न मृत्यु ही का भय सताता है, यही नहीं किसी प्रकार का रोग भी उस प्राणी को नहीं सताता है । सवतपरायण मुनिवर्यवृन्द उस गान्धर्व विद्या (संगीत शास्त्र) के विषय में आप लोगों ने जो कुछ मुझसे पूछा है, उसे जो कुछ जानता हूँ बतला रहा हूँ ॥ ३४-३५ ॥

सूतजी ने कहा—उस संगीतशास्त्र में सात स्वर, तीन ग्राम इक्कीस मूर्च्छनाएँ तथा उनचास ताल होते हैं यही स्वरमण्डल कहा जाता है । पड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद—ये सात स्वर हैं । सौवीरी, हरिणास्या, कलोपवला, शुद्धमध्यमा शाम पावनी और दृष्टाका ये मध्यमग्राम के नाम से विख्यात हैं—षड्जग्राम को सुनिये । उत्तरमन्द्रा, जननी, उत्तरायता (?), शुद्धषड्जा आदि षड्जग्राम में कही जाती हैं, इसे सातवों जानना चाहिए ॥ ३६-४० ॥

अन्य गान्धारग्राम के विषय में बतला रहा हूँ, सुनिये प्रथम आग्निष्टोमिक, द्वितीय वाजपेयिक, तृतीय पौण्डूक, चतुर्थ आश्वमेधिक, पञ्चम राजसूय, पष्ठ चक्रसुवर्ण, सप्तम गोसव, अष्टम महावृष्टिक, नवम ब्रह्मदान, तदनन्तर प्राजापत्य, नागपक्षा गोतर, हयक्रान्त, मृगक्रान्त, मनोहर विष्णुक्रान्त, सर्वश्रेष्ठ सूर्यक्रान्त, मत्तकोकिलवादिन, अर्धसावित्र, सर्वतोभद्र, सुवर्ण, सुतन्द्र, विष्णु, वैष्णुवर, सागर, सभी जीवों के मन को हरनेवाला विजय, हंस को सर्वश्रेष्ठ हम लोग जानते हैं, तुम्बुरुप्रिय, मनोहर, अधात्र्य-जो सभी गन्धर्वों द्वारा प्रशंसित, विशेषतया अलम्बुध को अभिमत एवं नारद को परम प्रिय है, जिसकी प्रशंसा भीमसेन ने नागरों के पास की थी, जिसके कारण वह उनका प्रिय हुआ-विकल, उपनीत, विनस, भार्गवप्रिय, अभिरम्य, शुक्र, पुण्यप्रद, पुण्यारक—ये सब गान्धारग्राम के

तथा पञ्चदशेच्छन्ति गान्धारग्रामसंस्थितान् । ससौवीरा तु गान्धारी ब्रह्मणा ह्युपगीयते ॥ ५० ॥
उत्तरादिस्वरस्यैव ब्रह्मा वै देवताऽत्र च । हरिदेशसमुत्पन्ना हरिणास्या व्यजायत ॥
मूर्च्छना हरिणास्यैव अस्या इन्द्रोऽधिदैवतम् ॥ ५१ ॥
करोपनीतवितता मरुद्भिः स्वरमण्डले । सा कलोपनता तस्मान्मारुतश्चात्र दैवतम् ॥ ५२ ॥
मनुदेशसमुत्पन्ना मूर्छना शुद्धमध्यमा । मध्यमोऽत्र स्वरः शुद्धो गन्धर्वश्चात्र देवता ॥ ५३ ॥
मृगैः सह सञ्चरते सिद्धानां मार्गदर्शने । यस्मात्तस्मात् स्मृता मार्गी मृगेन्द्रोऽस्याश्च देवता ॥ ५४ ॥
सा चाश्रमसमायुक्ता अनेकान् पौरवान् रवान् । मूर्छना योजना ह्येषा रजसा रजनी ततः ॥ ५५ ॥
ताल उत्तरमन्द्रांशः षड्जदैवतकां विदुः । तस्मादुत्तरतालं च प्रथमं स्वायतं विदुः ॥
तस्मादुत्तरमन्द्रोऽयं देवताऽस्य ध्रुवो ध्रुवम् ॥ ५६ ॥
आपानादुत्तरत्वाच्च धैवतस्योत्तरायणः । स्यादियं मूर्च्छना ह्येवं पितरः श्राद्धदेवताः ॥ ५७ ॥
शुद्धषड्जस्वरं कृत्वा यस्मादग्निं महर्षयः । उपतिष्ठन्ति तस्मात्तं जानीयाच्छुद्धषड्जिकम् ॥ ५८ ॥
यः सतां मूर्च्छनां कृत्वा पञ्चमस्वरको भवेत् । यक्षीणां मूर्च्छना सा तु याक्षिका मूर्च्छना स्मृता ॥ ५९ ॥
नागदृष्टिर्विषा गीता नोपसर्पन्ति मूर्च्छनाम् । भवन्तीव हता ह्येते ब्रह्मणा नागदेवताः ॥
अहीनां मूर्च्छना ह्येषा वरुणश्चात्र देवता ॥ ६० ॥
शकुन्तकानां कृत्वा च उपमां यान्ति किन्नराः। उत्तमां मूर्च्छना तस्मात् पक्षिराजोऽत्र देवता॥ ६१ ॥

अन्तर्गत हैं। मध्यमग्राम बीस हैं, षड्जग्रामों की संख्या चौदह है, गान्धारग्राम को लोग पन्द्रह मानते हैं। भगवान् ब्रह्मा सौवीर के साथ गान्धारी का में गान करते हैं ॥ ४१-५० ॥

उत्तरादि स्वरों के अधिदेवता ब्रह्मा ही माने गए हैं, हरिदेश में उत्पन्न मूर्च्छना हरिणास्या के नाम से प्रसिद्ध है, इसके अधिदेवता इन्द्र हैं। समस्त स्वर मण्डल में मरुतों द्वारा प्रसारणपूर्वक ग्रहण किये जाने से कलोपनता के मारुत अधिदेवता माने गए हैं। मरुदेश में समुत्पन्न मूर्च्छना शुद्ध मध्यमा कही जाती है। इसमें शुद्ध स्वर मध्यम है, इसके अधिदेवता गन्धर्व हैं। सिद्धों का मार्ग दिखलाते समय मृगों के साथ विचरण करने के कारण मूर्च्छना मार्गी नाम से प्रसिद्ध हुई, इसके अधिदेवता मृगेन्द्र हैं ॥ ५१-५४ ॥

यह मूर्च्छना अनेक स्वरों की आश्रयभूत होने के कारण अनेक पुरों में गाये जानेवाले स्वरों में प्रयुक्त होती है। (?) यह रजनी नामक मूर्च्छना रजोगुण से संयुक्त करनी चाहिए। (?) उत्तर मन्द्रांश ताल का अधिदेवता षड्ज है। उसका उत्तरवर्ती ताल भी प्रथम का अनुयायी माना जाता है। इसीलिए उसका नाम भी उत्तरमन्द्र कहा जाता है, उसके अधिदेवता ध्रुव हैं। विस्तृत और उत्तरवर्ती होने के कारण धैवत की मूर्च्छना उत्तरायण है, इसके अधिदेवगण श्राद्ध में पूजित होनेवाले पितरगण हैं। महर्षियों ने शुद्ध षड्ज् स्वर द्वारा अग्नि की उपासना की थी, इसलिए उस स्वर को लोग शुद्ध पजिक नाम से जानते हैं ॥ ५५-५८ ॥

पञ्चम स्वर की मूर्च्छना सत्पुरुषों के मन को भी मूर्च्छित कर देती है, यह यक्षों की पत्नियों की मूर्च्छना है, इसीलिए उसका नाम भी याक्षिकी मूर्च्छना प्रसिद्ध है। दृष्टि से ही विष विकीरित करनेवाले नागगण जिस मूर्च्छना को सुनकर चल फिर नहीं सकते, और ब्रह्मा द्वारा मृतक से हो जाते हैं, वह अहिमूर्च्छना कही जाती है, उसके

गान्धाररागशब्देन गां च धारयतेऽर्थतः । तस्माद्विशुद्धगान्धारी गन्धर्वश्चाधिदैवतम् ॥ ६२ ॥
गान्धारानन्तरं गत्वा सृष्टेयं मूर्च्छना यतः । तस्मादुत्तरगान्धारी वसवश्चात्र देवताः ॥ ६३ ॥
सेयं खलु महाभूता पितामहमुपस्थिता । षड्जेयं मूर्च्छना तस्मात् स्मृता ह्यनलदेवता ॥ ६४ ॥
दिव्येयं चायता तेन मन्दषष्ठा च मूर्च्छने । निवृत्तगुणनामानं पञ्चमं चात्र धैवतम् ॥ ६५ ॥
पूर्णाः सप्तस्वरा ह्येवं मूर्च्छनाः सम्प्रकीर्त्तिताः । नानासाधारणाश्चैव षडेवानुविदस्तथा ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे वैवस्वतमनुवंशप्रसङ्गे गान्धर्व्वमूर्च्छना-लक्षणकथनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

* * *

अधिदेवता वरुण हैं । जलराशि में अवस्थित इस मूर्च्छना को सर्वप्रथम जलाधिप वरुण ने देखा था ॥ ५९-६१ ॥

किन्नरगण पक्षियों के स्वर का अनुकरण कर जिसका गान करते हैं, उस परमश्रेष्ठ मूर्च्छना के अधिदेवता पक्षिराज गरुड़ हैं । ऋषियों और विद्या में पारंगत स्नातकों के भी मन को जो मन्द कर देती है वह मन्दनी नामक मूर्च्छना है, उसके अधिदेवता विश्वेदेवगण हैं । अश्व के समान तीव्र गति से चलने अथवा जिसको सुनकर अश्वगण विहार (प्रसन्न होते हैं) करते हैं उस स्थिर मूर्च्छना का अश्वक्रान्ता नाम है, उसके अधिदेवता दोनों अश्विनीकुमार हैं ॥ ६२-६४ ॥

गान्धार राग के शब्द से गौ (पृथ्वी) को धारण करते हैं, (अर्थात् इसकी स्वरमहिमा से पृथ्वी की स्थिति शक्ति की वृद्धि होती है) इस निरुक्ति से इस मूर्च्छना का नाम विशुद्ध गान्धारी कहा जाता है, इसके अधिदेवता गन्धर्व हैं । गान्धार के अनन्तर इस मूर्च्छना की सृष्टि हुई है, अतः इसे उत्तर गान्धारी कहते हैं, इसके अधिदेवता वसुगण हैं । पड्ज नामक यह मूर्च्छना सबसे प्रथम पितामह के समीप उपस्थित हुई अतः यह सबसे अधिक महत्त्वशालिनी है, इसके अधिदेवता अनल कहे जाते हैं ॥ ६५-६७ ॥

यह मन्दयष्ठा नामक मूर्च्छना बहुत विस्तृत है, इसके प्रभाव दिव्य हैं, इसके गुणों की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता, इसके अधिदेवता पञ्चम हैं । इस प्रकार सातों स्वरों, समस्त मूर्च्छनाओं (?) एवं उनके छह साधारण भेदों का वर्णन मैं कर चुका ॥ ६८-६९ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में वैवस्वत मनु के वंश-प्रसंग में गन्धर्वों की मूर्च्छना का वर्णन नामक चौबीसवें अध्याय (छियासीवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २४ ॥**

* * *

अथ पञ्चविंशोध्यायः

गीतालंकारनिर्देशः

पूर्वाचार्यमतं बुद्ध्वा प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः । त्रिंशतं वै अलंकारास्तान्मे निगदतः शृणु ॥ १ ॥
अलंकारास्तु वक्तव्याः स्वैः स्वैर्वर्णैः प्रहेतवः । संस्थानयोगैश्च तथा पदानां चान्ववेक्षया ॥ २ ॥
वाक्यार्थपदयोगार्थैरलंकारस्य पूरणम् । पदानि गीतकस्याऽऽहुः पुरस्तात्पृष्ठतोऽथवा ॥ ३ ॥
स्थानानि त्रीणि जानीयादुरः कण्ठ शिरस्तथा । एतेषु त्रिषु स्थानेषु प्रवृत्तो विधिरुत्तमः ॥ ४ ॥
चत्वारः प्रकृतौ वर्णाः प्रविचारश्चतुर्विधः । विकल्पमष्टधा चैव देवाः षोडशधा विदुः ॥ ५ ॥
स्थायी वर्णः प्रसंचारी तृतीयमवरोहणम् । आरोहणं चतुर्थं तु वर्णं वर्णविदो विदुः ॥ ६ ॥
तत्रैकः संचरस्थायी सचरास्तु चरीभवन् । अथ रोहणवर्णानामवरोहं विनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥
आरोहणेन चाऽऽरोहवर्णं वर्णविदां विदुः । एतेषामेव वर्णानामलंकारान्निबोधत ॥ ८ ॥

पच्चीसवाँ अध्याय

(सत्तासीवाँ अध्याय)

गीतों के अलंकारों का वर्णन

अब इस विवेचन के पश्चात् पूर्ववर्ती आचार्यों के मतानुसार तीन सौ संगीत के अंलकारों का क्रमपूर्वक वर्णन मैं करता हूँ, सुनिये । अपने-अपने वर्णों एवं पद समूहों के विशेष संयोग से संगठित होने को ही 'अलंकार' कहना चाहिए ॥ १-२ ॥

पद एवं वाक्य के योगार्थ के द्वारा अलंकार की पूर्ति होती है । गीत के पद समूह पूर्व अथवा पीछे दोनों स्थानों में विन्यस्त होते हैं—ऐसा लोग कहते हैं । गीतों के स्थान तीन होते हैं, उरःस्थल, कण्ठ तथा सिर । इन्हीं तीन स्थानों में प्रारम्भ किया गया स्वर उत्तम होता है । प्रकृतिगत वर्णों की संख्या चार है, इनका विचार भी चार प्रकार का होता है । विकल्प से आठ प्रकार कहे जाते हैं, देवगण इनकी संख्या सोलह बताते हैं ॥ ३-५ ॥

वर्णों के तत्त्वज्ञानी जन स्थायी, संचारी, अवरोहण तथा आरोहण—ये चार वर्ण जानते हैं । एक ही प्रकार के भाव वर्ण में जिसका संचरण होता है वह स्थायी है । विभिन्न प्रकार के भाव में जिसका संचरण होता है वह संचारी कहा गया है । निम्न गति जिसकी होती है वह अवरोहण होता है तथा उन्नतिशील जो होता है वह आरोहण कहा जाता है—ऐसा वर्णविता विद्वज्जन जानते हैं । अब इन्हीं चार प्रकार के वर्णों का अलंकार सुनिये ॥ ६-८ ॥

अलंकारास्तु चत्वारः स्थापनी क्रमरेजिनः । प्रमादश्चाप्रमादश्च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ९ ॥
विस्वरोष्ट्रकलाश्चैव स्थानादेकान्तरं गताः । आवर्तस्याक्रमोत्पत्ती द्वे कार्ये परिणामतः ॥ १० ॥
कुमारमपरं विद्याद्विस्तरं वमनं गतम् । एष वै चाप्यपाठस्तु कुमारेकः कलाधिकः ॥ ११ ॥
श्येनस्त्वेकान्तरे जातः कलामात्रान्तरे स्थितः । तस्मिंश्चैव स्वरे वृद्धिस्तिष्ठते तद्विलक्षणा ॥ १२ ॥
श्येनस्तु अपरोहस्तु उत्तरः परिकीर्तितः । कलाकलप्रमाणाच्च सबिन्दुर्नाम जायते ॥ १३ ॥
बिन्दुरेककला कार्या वर्णान्तस्थायिनी भवेत् । विपर्ययस्वरोऽपि स्याद्यस्य दुर्घटितोऽपि न ॥ १४ ॥
एकान्तरा तु वाद्यं तु षड्जतः परमः स्वरः। आक्षेपास्कन्दनं कार्यं काकस्येवोच्चपुष्कलम् ॥ १५ ॥
संतारौ तौ तु संचार्यौ कार्यं वा कारणं तथा । आक्षिप्तमवरोह्यापि प्रोक्षमद्यन्तथैव च ॥ १६ ॥
द्वादशं च कलास्थानमेकान्तरगतं ततः । प्रेङ्खोलितमलंकारमेवं स्वरसमन्वितम् ॥ १७ ॥
स्वरसंक्रामकाच्चैव ततः प्रोक्तं तु पुष्कलम् । प्रक्षिप्तमेव कलया पादानीतरयो भवेत् ॥ १८ ॥
द्विकलं वा यथा भूतं यद् ह्रासितमुच्यते । उच्चाराद्विस्वरारूढा तथा चाष्टस्वरान्तरम् ॥ १९ ॥
यस्तु स्यादवरोहो वा तारतो मन्द्रतोऽपि वा । एकान्तरहिता ह्येते तमेव स्वरमन्ततः ॥ २० ॥

मुख्यतः अलंकार चार प्रकार के होते हैं—स्थापनी, क्रमरेजित, प्रमाद और अप्रमाद । अब उनके लक्षणों को बता रहा हूँ । उष्ट्रकल नामक विकृत स्वर एक स्थान से उत्पन्न होकर दूसरे स्थान में समाप्त होते हैं, उस आवर्त (चक्राकार घुमाव) की उत्पत्ति और उसका क्रम ये दोनों परिणाम के अनुरूप करना चाहिए ॥ ९-१० ॥

अन्य कुमार नामक स्वर को अत्यल्प विस्तार करने वाला जानना चाहिए । दूसरा अपाङ्ग नामक और मात्राधिक कुमारेक नामक अलङ्कार होता है । श्येन नामक स्वर एक ही स्थान में उत्पन्न होता है और कलामात्र के अन्तर में प्रतिष्ठित होता है । इसी स्वर में विलक्षण रूप से वृद्धि होती है ॥ ९-१२ ॥

यही श्येन स्वर उत्तर अवरोह कहा जाता है । सबिन्दु नामक स्वर कला-कला के परिणाम में उत्पन्न होता है । बिन्दु को एक कला का करना चाहिए, यह बिन्दु एक ही वर्ण के अन्त में स्थिर रहने वाला है । स्वरों का विपर्यय (उलटफेर) भी हो जाता है, उस विपर्यय में जहाँ अनवधानता भी नहीं होती है । षड्ज से एक स्वर का अन्तर देकर एकान्तरा वाद्य करने से उत्कृष्ट स्वर होता है । इसमें काक के समान स्वर का आक्षेप करने से उच्च पुष्कल स्वर होता है ॥ १३-१५ ॥

कार्य और कारण रूप से दोनों संतारों का संचारण करना चाहिए । इस प्रकार क्षिप्र गति तक अवरोह स्वर संचार करने से उसी प्रकार का प्रोक्षमद्य अलङ्कार होता है । तदनन्तर एकान्तर गत द्वादश कला स्थान है । इस प्रकार के स्वर संयुक्त एक प्रेङ्खोलित अलङ्कार होता है ॥ १६-१७ ॥

पुनः कुछ अधिक स्वरों के संक्रमण होने के कारण ही वह पुष्कल कहा जाता है । मात्रा के प्रक्षेप और पाद संक्रमण होने से जो द्विकलात्मक अलङ्कार होता है वह ह्रासित कहा जाता है । स्वरोच्चार और विस्वर के संयोग से अष्टस्वर का अन्तर हो जाता है ॥ १८-१९ ॥

तार और मन्द्र के क्रम से जो स्वरावरोह होते हैं, वे अन्त में उसी स्वर के एक अन्तरा के बाद उपयुक्त

मक्षिप्रच्छेदनो नाम चतुष्कलगणः स्मृतः । अलंकारा भवन्त्येते त्रिंशद्ये वै प्रकीर्तिताः ॥
वर्णस्थानप्रयोगेण कलामात्राप्रमाणतः ॥ २१ ॥
संस्थानं च प्रमाणं च विकारो लक्षणं तथा । चतुर्विधमिदं ज्ञेयमलंकारप्रयोजनम् ॥ २२ ॥
यथाऽऽत्मनो ह्यलंकारो विपर्यस्तोऽतिगर्हितः । वर्णमेवाप्यलं कर्तु विषमं ह्यात्मसंभवात् ॥ २३ ॥
नानाभरणसंयोगाद्यथा नार्या विभूषणम् । वर्णस्य चैवालंकारो विपर्यस्तोऽतिगर्हितः ॥ २४ ॥
न पादे कुण्डले दृष्टे न कण्ठे रसना तथा । एवमेव ह्यलंकारो विपर्यस्तो विगर्हितः ॥ २५ ॥
क्रियमाणोऽप्यलंकारो रागं यश्चैव दर्शयेत् । यथोद्दिष्टस्य मार्गस्य कर्तव्यस्य विधीयते ॥ २६ ॥
लक्षणं पर्यवस्थापि वर्णिकाभिः प्रवर्तनम् । याथातथ्येन वक्ष्यामि मासोद्भवमुखोद्भवे ॥ २७ ॥
त्रयोविंशत्यशीतिस्तु तेषामेतद्विपर्ययः । षड्जपक्षोऽपि तत्त्वादौ मध्यौ हीनस्वरो भवेत् ॥ २८ ॥
षड्जमध्यमयोश्चैव ग्रामयोः पर्ययस्तथा । मानो योत्तरमन्द्रस्य षडेवात्राविकस्य च ॥ २९ ॥
स्वरालंप्रत्ययश्चैव सर्वेषां प्रत्ययः स्मृतः । अनुगम्य बहिर्गीतं विज्ञातं पञ्चदैवतम् ॥ ३० ॥

माने जाते हैं । मक्षिप्रच्छेदन नामक गण चार कलाओं वाला कहा जाता है । वर्ण, स्थान और प्रयोग-विशेष के अनुसार कलामात्र प्रमाण के अनुसार अलंकार निश्चित किये गये हैं । इस प्रकार कहे गये तीसों अलंकारों का वर्णन कर चुका ॥ २०-२१ ॥

अब संस्थान, प्रमाण, विकार और लक्षण—ये चार अलंकारों के प्रयोजन जानने चाहिए ॥ २२ ॥

जिस प्रकार मनुष्य के अपने अलंकार योग्य स्थान पर न पड़कर अथवा अति निम्न कोटि के होकर शरीर शोभा की हानि करते हैं, वृद्धि नहीं करते उसी प्रकार ये संगीत के अलङ्कार भी अपने योग्य स्थान पर पड़कर तथा निकृष्ट कोटि के होकर वर्णों की शोभा बढ़ाने में सशक्त नहीं होते, इसलिए स्त्रियों के आभूषण की भाँति इन संगीतालंकारों का यथास्थान सन्निवेश करना आवश्यक होता है ॥ २३-२४ ॥

जिस प्रकार विविध अलङ्कारों से अलंकृत होने पर स्त्रियों का सौन्दर्य बढ़ जाता है, उसी प्रकार इन वर्णों के अलङ्कारों से अलंकृत होकर संगीत की शोभा बढ़ जाती है । इनके यथास्थान विभूषित न होने की बड़ी निन्दा की गयी है । जिस प्रकार पैर में बँधे हुए कुण्डल नहीं देखे जाते और कण्ठ में करधनी नहीं देखी जाती अर्थात् ये निन्दित हैं उसी प्रकार अनुपयुक्त स्थान में पड़े अलङ्कार भी अत्यन्त गर्हित माने गये हैं ॥ २५ ॥

अलङ्कारों को यथास्थान सन्निविष्ट करके गायक राग का प्रदर्शन करते हैं, वे संगीत के समुचित कर्तव्य का पालन करने हैं । अब इसके उपरान्त मैं जैसा कहा गया है वैसा पर्यवस्था का लक्षण, वर्णिका के द्वारा उनका प्रवर्तन, मासोद्भव और मुखोद्भव को पदार्थ रूप में कहता हूँ ॥ २६-२७ ॥

षड्ज स्वर के तेईस प्रकार के अलंकार विपर्यय के द्वारा अस्सी प्रकार के हो जाते हैं । षड्ज पक्ष भी तत्त्व के आदि में और हीन स्वर हो जाता है । षड्ज और मध्यम एवं दोनों ग्राम का पर्यय, उत्तर मन्द्र तथा अविक का मान छह प्रकार का होता है । स्वर, अलङ्कार और प्रत्यय सब के प्रत्यय होते हैं । बहिर्गीतों के विश्लेषण से ये भी पञ्च दैवत ही जाने गये हैं ॥ २८-३० ॥

गोरूपाणां पुरस्तात्तु मध्यमांशस्तु पर्ययः । तयोर्विभागो गीतानां लावण्यमार्गसंस्थितः ॥ ३१ ॥
अनुषंगं मयोद्दिष्टं स्वसारं च स्वरान्तरम् । पर्ययः संप्रवर्तेत सप्तस्वरपदक्रमम् ॥ ३२ ॥
गन्धारांशेन गीयन्ते चत्वारि मन्द्रकानि च । पञ्चमो मध्यमश्चैव धैवते तु निषादजैः ॥
षड्जर्षभैश्च जानीमो मन्द्रकेष्वेव नान्तरे ॥ ३३ ॥
द्वे चापरान्तिके विद्याद्धयशुल्लाष्टकस्य तु । प्राकृते वैणवैश्चैव गान्धारांशे प्रयुज्यते ॥ ३४ ॥
पदस्य तु त्रयं रूपं सप्तरूपं तु कौशिकम् । गान्धारांशेन कार्त्स्न्येन पर्ययस्य विधिः स्मृतः ॥
एवं चैव क्रमोद्दिष्टो मध्यमांशस्य मध्यमः ॥ ३५ ॥
यानि गीतानि प्रोक्तानि रूपेण तु विशेषतः । तत्तु सप्तस्वरं कार्यं सप्तरूपं च कौशिकम् ॥ ३६ ॥
अङ्गदर्शनमित्याहुर्मानि द्वे समके तथा । द्वितीयभावाचरणा मात्रा नाभिप्रतिष्ठिता ॥ ३७ ॥
उत्तरे च प्रकृत्येवं मात्रा तल्लीयते तथा । हन्तारः पिण्डको यत्र मात्रायां नातिवर्तते ॥ ३८ ॥
पादेनैकेन मात्रायां पादोनामतिवीरणा । संख्यायाश्चोपहननं तत्र यानमिति स्मृतम् ॥ ३९ ॥
द्वितीयं पादभङ्गं च ग्रहेणाभिप्रतिष्ठितम् । पूर्वमष्टतृतीये तु द्वितीयं चापरीतके ॥ ४० ॥
अर्धेन पादसाम्यस्य पादभागाच्च पञ्चके । पादभागं सपादं तु प्रकृत्यामपि संस्थितम् ॥ ४१ ॥
चतुर्थमुत्तरे चैव मद्रवत्यां च मद्रके । मद्रके दक्षिणास्यापि यथोक्ता वर्तते कला ॥ ४२ ॥

गोरूपों के आगे मध्यमांश का स्थापन ही पर्यय कहा गया है । इन दोनों का विभाग गीतों की सौन्दर्यवृद्धि में सहायक होता है । मैंने स्वसार और स्वरान्तर का गौणरूप में वर्णन कर दिया । वस्तुतः सप्त स्वर और पदक्रम के अनुसार पर्यय का प्रयोग होता है ॥ ३१-३२ ॥

चारों मन्द्रक गान्धारों से गाये जाते हैं, पञ्चम धैवत में निषादज का प्रयोग होता है । मन्द्रकों में षड्ज और ऋषभ का ही प्रयोग होता है इतर का नहीं ॥ ३३ ॥

हयशुल्लाष्टक के अपर और अन्तिम दो भेद होते हैं । गान्धारांश में और प्राकृत में वेणु सम्बन्धी रागों का प्रयोग होता है । पद के तीन रूप होते हैं और कौशिक के सात । सम्पूर्ण गांधारांश से पर्यय विधि सम्पन्न की जाती है । इसी प्रकार मध्यमांश के मध्यम पद के भी क्रमिक विधान का निर्देश किया गया है ॥ ३४-३५ ॥

जिन गीतों का वर्णन विशेषतया रूप के साथ किया गया है उनको सप्त स्वरों से युक्त करना चाहिए और कौशिक को सप्तरूप में । इस प्रकार अंगदर्शन, दो मान और समक को कहा गया है । द्वितीय भावाचरण मात्रा उपयुक्त नहीं होती और स्वभावतः उत्तर (मन्द्र) में मात्रा लीन हो जाती है । जहाँ हन्तार पिण्डक मात्रा से अधिक नहीं होता, और जिस मात्रा में एक चरण और पौन चरण रहते हैं अर्थात् जो मात्रा पौने दो चरण की होती है उसको 'अतिवीरण' कहते हैं और उसमें संख्या के सङ्घर्ष होने पर यान नामक अलंकार की उत्पत्ति होती है ॥ ३६-३९ ॥

द्वितीय पाद भंग को 'ग्रह' नाम से प्रतिष्ठित किया गया है । पहला, आठवाँ तीसरा और दूसरा, अपर और अन्तिम, पाद साम्य के आधे भाग के साथ, पाँचों में पाद भाग और सपाद पाद भाग प्रकृति में स्थिर रहते हैं । उत्तर, मद्रवती, मद्रक में चौथी कला तथा मद्रक में दक्षिण की उक्त कला रहती है ॥ ४०-४२ ॥

पूर्वमेवानुयोगं तु द्वितीया बुद्धिरिष्यते । पादौ चाऽऽहरणं चास्मत् पारं नात्र विधीयते ॥ ४३ ॥
एकत्वमुपयोगस्य द्वयोर्यद्धि द्विजोत्तम । अनेकसमवायस्तु पताकाहरिणं स्मृतम् ॥ ४४ ॥
तिसृणां चैव वृत्तीनां वृत्तौ वृत्ता च दक्षिणा । अष्टौ तु समवायास्ते सौवीरा मूर्छना तथा ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे गीतालंकारनिर्देशो
नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

* * *

पहले ही अनुयोग को द्वितीय बुद्धि इष्ट रहती है । इसके बाद दो पादों के और कलाओं के आकलन का विधान आचार्यों ने नहीं बताया है ॥ ४३ ॥

हे द्विजोत्तम ! दोनों के उपयोग की एकता और अनेक कलाओं के एकत्र संगठन को पताकाहरिण कहते हैं । वृत्ति में तीन वृत्तियों की आवृत्ति दक्षिणा कही गयी है । सौवीरा मूर्च्छना और वे आठ समवाय ये भी आवृत्त (दुहराए) जाते हैं ॥ ४४-४५ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में गीतालङ्कार निर्देश नामक पचीसवें अध्याय (सत्तासीवें अध्याय) की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २५ ॥

* * *

अथ षड्विंशोऽध्यायः

वैवस्वतमनुवंशवर्णनम्

सूत उवाच

ककुद्मिनस्तु तं लोकं रैवतस्य गतस्य ह । हताः पुण्यजनैः सर्वा राक्षसैः सा कुशस्थली ॥ १ ॥
तद्वै भ्रातृशतं तस्य धार्मिकस्य महात्मनः । निबध्यमाना रक्षोभिर्दिशः संप्राद्रवन्भयात् ॥ २ ॥
तेषां तु ते भयाक्रान्ताः क्षत्रियास्तत्र तत्र हि । अन्ववायस्तु सुमहान्महांस्तत्र द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥
प्रयता इति विख्याता दिक्षु सर्वासु धार्मिकाः । धृष्टस्य धाष्टकं क्षत्रं रणधृष्टं बभूव ह ॥ ४ ॥
त्रिसाहस्त्रं तु सगणं क्षत्रियाणां महात्मनाम् । नभगस्य च दायादो नाभागो नाम वीर्यवान् ॥ ५ ॥
अम्बरीषस्तु नाभागिर्विरूपस्तस्य चाऽऽत्मजः । पृषदश्वो विरूपस्य तस्य पुत्रो रथीतरः ॥ ६ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

(अट्ठासीवाँ अध्याय)

वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन

श्रीसूतजी ने कहा—महाराज रैवत के, जिनका दूसरा नाम ककुद्मी भी था, मेरु शिखर पर चले जाने के बाद सभी राक्षसों ने मिलकर समस्त कुशस्थली को विध्वस्त कर दिया । अत्यन्त धार्मिक एवं महात्मा उस राजा ककुद्मी के अन्य सौ भाई उन राक्षसों से अतिशय पीड़ित एवं भयभीत होकर इधर-उधर भाग गये ॥ १-२ ॥

इस प्रकार उन राक्षसों से भयभीत क्षत्रियों के समूह इधर-उधर तितर-बितर हो गये । वहाँ पर भी कुछ वंशज गये जहाँ महान् प्रतापी राजा स्वयं निवास करता था । उस राजा के वे वंशज क्षत्रियगण सभी दिशाओं में धार्मिक विचारों वाले तथा इन्द्रियों को वश में रखनेवाले विख्यात थे । इसी वंश में उत्पन्न होने वाले धृष्ट के धाष्टक, क्षत्र, रणधृष्ट नामक पुत्र हुए ॥ ३-४ ॥

जो परम बलवान् तीन सहस्त्र क्षत्रियों के समूह में प्रमुख थे । दूसरे उसी वंश में उत्पन्न होने वाले नभग के उत्तराधिकारी परम बलवान् नाभाग नाम से प्रसिद्ध हुए । नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए, उन अम्बरीष के पुत्र विरूप हुए । विरूप के पुत्र पृषदश्व हुए, जिनके पुत्र का नाम रथीतर हुआ ॥ ५-६ ॥

एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चाङ्गिरसः स्मृताः । रथीतराणां प्रवराः क्षात्रोपेता द्विजातयः ॥ ७ ॥
क्षुवतस्तु मनोः पूर्वमिक्ष्वाकुरभिनिःसृतः । तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम् ॥ ८ ॥
तेषां ज्येष्ठो विकुक्षिश्च नेमिर्दण्डश्च ते त्रयः । शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्रा पञ्चाशतस्तु ते ॥ ९ ॥
उत्तरापथ देशस्य रक्षितारो महीक्षितः । चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च दक्षिणस्याञ्च ते दिशि ॥ १० ॥
विंशतिप्रमुखास्ते तु दक्षिणापथरक्षिणः । इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वै अष्टकायामथाऽऽदिशत् ॥ ११ ॥

राजोवाच

मांसमानय श्राद्धेयं मृगान्हत्वा महाबल । श्राद्धमद्य नु कर्तव्यमष्टकायां न संशयः ॥ १२ ॥
स गतस्तु मृगव्यां वै वचनात्तस्य धीमतः । मृगान्सहस्रशो हत्वा परिश्रान्तश्च वीर्यवान् ॥
भक्षयच्छशकं तत्र विकुक्षिर्मृगयां गतः ॥ १३ ॥
आगते स विकुक्षौ तु समांसे सहसैनिके । वसिष्ठश्चोदयामास मांसं प्रोक्षय मन्त्रतः ॥ १४ ॥
तथेति चोदितो राज्ञा विधिवत्समुपस्थितः । स दृष्ट्वोपहतं मांसं क्रुद्धो राजानमब्रवीत् ॥ १५ ॥
शूद्रेणोपहतं मांसं पुत्रेण तव पार्थिव । शशभक्षादभोज्यं वै तव मांसं महाद्युते ॥ १६ ॥

ये उपर्युक्त राजागण क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए और अंगिरा के गोत्रज रूप में विख्यात हुए । रथीतर के वंश में उत्पन्न होने वालों के प्रवर क्षत्रिय एवं ब्राह्मण दोनों के हैं । प्राचीनकाल में मनु के छींकते समय इक्ष्वाकु नामक पुत्र उनके नाक से निकल पड़े थे । वे परम दानशील थे, उनके वंश में एक सौ पुत्र हुए ॥ ७-८ ॥

उन सभी पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ विकुक्षि नाम से प्रसिद्ध थे, उनके अतिरिक्त नेमि और दण्ड-को मिलाकर तीन पुत्र विख्यात थे, विकुक्षि के शकुनि प्रभृति पाँच सौ पुत्र हुए । वे सभी उत्तराखण्ड के देशों के स्वामी हुए । अड़तालीस दक्षिण में हुए । जिनमें बीस प्रमुख थे, वे दक्षिण दिशा के समस्त प्रदेशों की रक्षा में तत्पर रहने वाले थे । एक बार अष्टकातिथि के अवसर पर इक्ष्वाकु ने विकुक्षि को आदेश दिया ॥ ९-११ ॥

राजा ने कहा—हे महाबलवान् ! मृगों को मारकर श्राद्ध करने योग्य मांस लाओ । आज अष्टकातिथि है, आज श्राद्ध करने का मेरा निश्चय है । परम बुद्धिमान् राजा इक्ष्वाकु की आज्ञा से विकुक्षि मृगों का शिकार करने के लिए वन को गये । यद्यपि विकुक्षि परम बलवान थे किन्तु वहाँ श्राद्ध के लिए सहस्रों मृगों का वध करने में हुए परिश्रम के कारण वह बहुत अधिक थक गये । मृगया करते समय उन्होंने थकान दूर करने के लिए वहीं पर एक खरगोश खा लिया ॥ १२-१३ ॥

सैनिकों के साथ मांस लेकर जब विकुक्षि राजधानी को वापस लौटे तब राजा ने महर्षि वसिष्ठ से 'मांस का मंत्रोच्चारणपूर्वक सिंचन संस्कार कर दीजिये'—ऐसा कहा । राजा के ऐसा कहने पर वसिष्ठ ने 'बहुत अच्छा' कहकर विधिपूर्वक सिंचन संस्कार करने के लिए जब वहाँ उपस्थित हुए तब उस समस्त मांस राशि को अपवित्र देखकर परम क्रुद्ध होकर राजा से बोले ॥ १४-१५ ॥

राजन् ! तुम्हारे इस नीच स्वभाववाले पुत्र विकुक्षि ने यह सब मांस अपवित्र कर दिया है । इसने पूर्व में ही खरगोश का मांस खा लिया है, अतः उसी के कारण यह सारा मांस अखाद्य हो गया है । हे निष्पाप ! इस

शशो दुरात्मना पूर्वमरण्ये भक्षितोऽनघ । तेन मांसमिदं दुष्टं पितॄणां नृपसत्तम ॥ १७ ॥
इक्ष्वाकुस्तु ततः क्रुद्धो विकुक्षिमिदमब्रवीत् । पितृकर्मणि निर्दिष्टो मया त्वं मृगयां गतः ॥
शशं भक्षयसेऽरण्ये निर्घृणः पूर्वमद्य नु ॥ १८ ॥
तस्मात्परित्यजामि त्वां गच्छ त्वं स्वेन कर्मणा । एवमिक्ष्वाकुना त्यक्तो वशिष्ठवचनात्सुतः ॥ १९ ॥
इक्ष्वाकौ संस्थिते तस्मिञ्शशास पृथिवीमिमाम् । प्राप्तः परमधर्मात्मा स चायोध्याधिपोऽभवत् ॥ २० ॥
तदाऽकरोत्स राज्यं वै वसिष्ठपरिनोदितः । ततस्तेनेनसा पूर्वो राज्यावस्था महीपतेः ॥ २१ ॥
कालेन गतवांस्तत्र स च न्यूनतरां गतिम् । ज्ञात्वैवमेतदाख्यानं नाविधिर्भक्षयेत्तु वै ॥ २२ ॥
मांस भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् । एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २३ ॥
शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्यवान् । इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थो जायते पुरा ॥ २४ ॥
पूर्वमाडीवके युद्धे ककुत्स्थस्तेन स स्मृतः । अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरोमा च सः स्मृतः ॥ २५ ॥
वृषदश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादन्ध्रस्तु वीर्यवान् । आंध्रस्य यवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ २६ ॥
जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता । श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महायशाः ॥ २७ ॥

तुम्हारे दुरात्मा पुत्र ने वन में श्राद्ध के पूर्व ही एक खरगोश खा लिया है, हे नृपतिवर ! इसी कारण से यह सारा मांस दूषित हो गया, अब यह पितरों के योग्य नहीं रह गया है ॥ १६-१७ ॥

वसिष्ठ की इस प्रकार बातें सुनकर राजा इक्ष्वाकु अत्यन्त क्रुद्ध हुए और विकुक्षि से बोले—'मैंने तुम्हें पितृकर्म के योग्य मांस लाने की आज्ञा दी थी । उसी के लिए तुम शिकार करने गये भी थे । किन्तु वहाँ पर तुमने कुछ भी उचित-अनुचित का विचार न कर श्राद्ध के पहले ही निर्ममतापूर्वक एक खरगोश खा लिया ॥ १८ ॥

इस गुरु अपराध के कारण तुम्हें मैं त्याग रहा हूँ, अब तुम यहाँ से बाहर जहाँ मन कहे चले जाओ और अपने इस नीच कर्म का फल भोगो ।' वसिष्ठ के कहने पर इस प्रकार राजा इक्ष्वाकु ने अपने पुत्र विकुक्षि को त्याग दिया । उस राजा इक्ष्वाकु के परलोक गमन के अनन्तर परम धर्मात्मा विकुक्षि ने महर्षि वसिष्ठ के बहुत कहने-सुनने पर अयोध्या का राज्य भार अपने ऊपर ले लिया और समस्त पृथ्वी मण्डल का शासन किया । किन्तु राज्य भार ले लेने पर वह राजा विकुक्षि अपने उस पूर्व पाप के कारण उत्तरोत्तर गिरता गया, उसकी महिमा उत्तरोत्तर क्षीण होती गयी । इस आख्यान को जानकर लोगों को चाहिए कि बिना विधान के मांस को न खायें ॥ १९-२२ ॥

बुद्धिमान् जन मांस के विषय में यह कहा करते हैं कि 'मैं इस लोक में जिसके मांस का भक्षण कर रहा हूँ वह परलोक में मेरे मांस का भक्षण करेगा यही मांस भक्षण का नियम है ।' शश भक्षण करनेवाले राजा विकुक्षि का उत्तराधिकारी परम बलवान् राजा ककुत्स्थ हुआ । प्राचीनकाल में इन्द्र के बैल का स्वरूप धारण करने पर यह राजा उनके ककुद (डील) पर सवार हुए थे, यह प्रसंग पूर्वकाल में होनेवाले आडीवक नामक युद्ध में घटित हुआ था, इसीलिए इसका नाम ककुत्स्थ पड़ा । ककुत्स्थ के पुत्र अनेना हुए, अनेना के पुत्र राजा पृथु हुए, पृथु के पुत्र वृषदश्व हुए, उनके परम बलशाली अन्ध्र नामक पुत्र हुआ । अन्ध्र के यवनाश्व नामक पुत्र हुआ, जिसके पुत्र का नाम श्रावस्त हुआ ॥ २३-२६ ॥

बृहदश्वसुतश्चापि कुवलाश्व इति श्रुतिः । यः स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागतः ॥ २८ ॥

ऋषय ऊचुः

धुन्धुवधं महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् । यदर्थं कुवलाश्वः स धुन्धुमारत्वमागतः ॥ २९ ॥

सूत उवाच

बृहदश्वस्य पुत्राणां सहस्राण्येकविंशतिः । सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः ॥ ३० ॥
बभूवुर्धार्मिकाः सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः । कुवलाश्वं महावीर्यं शूरमुत्तमधार्मिकम् ॥ ३१ ॥
बृहदश्वोऽभ्यषिञ्चत्तं तस्मिन्राष्ट्रे नराधिपः । पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजा विवेश ह ॥ ३२ ॥
बृहदश्वं महाराज शूरमुत्तमधार्मिकम् । प्रयातं तमुत्तङ्कस्तु ब्रह्मर्षिः प्रत्यवारयत् ॥ ३३ ॥

उत्तङ्क उवाच

भवता रक्षणं कार्य तत्तावत्कर्तुमर्हति । निरुद्विग्नस्तपः कर्तुं न हि शक्नोमि पार्थिव ॥ ३४ ॥
ममाश्रमसमीपेषु समेषु मरुधन्वसु । समुद्रो वालुकापूर्णस्तत्र तिष्ठति भूपते ॥ ३५ ॥
देवतानामवध्यस्तु महाकायो महाबलः । अन्तर्भूमिगतस्तत्र वालुकान्तर्हितो महान् ॥ ३६ ॥
मनोस्तनयः क्रूरो धुन्धुर्नाम सुदारुणः । शतं लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥ ३७ ॥
संवत्सरस्य पर्यन्ते स निश्वासं प्रमुञ्चति । यदा तदा मही तत्र चलति स्म सकानना ॥ ३८ ॥

बाद में उसी राजा श्रावस्त ने श्रावस्ती नामक पुरी का निर्माण किया था । राजा श्रावस्त के पुत्र महान् यशस्वी राजा बृहदश्व हुए । बृहदश्व के पुत्र का नाम कुवलाश्व सुना जाता है । राजा कुवलाश्व धुन्धु के मारने के कारण धुन्धुमार नाम से विख्यात हुए ॥ २७-२८ ॥

ऋषियों ने कहा—हे परम बुद्धिमान् सूत जी ! धुन्धु के वध का वृत्तान्त हम विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं, जिस कारणवश राजा कुवलाश्व को धुन्धुमार की उपाधि मिली ॥ २९ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—ऋषिवृन्द । राजा बृहदश्व के पुत्रों की संख्या इक्कीस सहस्र थी, वे सब-के-सब सभी विद्याओं में पारङ्गत, परम बलवान्, दुर्दमनीय, प्रचुरदक्षिणा देने वाले, यज्ञकर्त्ता एवं धार्मिक विचारों वाले थे । नराधिप बृहदश्व ने सबों में परम धार्मिक, शूरवीर एवं साहसी कुवलाश्व को अपने राज्य के उत्तराधिकारी पद पर अभिषिक्त किया और इस प्रकार योग्य पुत्र को राज्य भी समर्पित कर स्वयं वन को चले गये । ब्रह्मर्षि उत्तङ्क ने परम धार्मिक महाराज बृहदश्व को वन में जाते हुए निवारित किया ॥ ३०-३३ ॥

उत्तङ्क ने कहा—हे राजन् ! आपको हम लोगों की रक्षा करनी चाहिए, अतः हमारी रक्षा कीजिये । उद्विग्न चित्त होने के कारण तपस्या करने में हम असमर्थ हो रहे हैं । भूपते ! हमारे आश्रम के समीप ही इस समान मरुभूमि में बालू का समुद्र है । उसी में भूमि के अन्दर निवास बनाकर परम विकराल शरीरवाला, महाबलवान् धुन्धु रहता है, देवगण भी उस धुन्धु का वध नहीं कर सकते, वह बालू में रहता है । वह धुन्धु मनु का पुत्र है, फिर भी परम क्रूर और दारुण चित्तवृत्तिवाला है । लोकों का विनाश करने के लिए वह सौ वर्षों से दारुण तप कर रहा है ॥ ३४-३७ ॥

तस्य निश्वासवातेन रज उद्धूयते महत् । आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ॥ ३९ ॥
सविस्फुलिङ्गं सज्वालं सधूममतिदारुणम् । तेन राजन्न शक्नोमि तस्मिन्स्थातुं स्व आश्रमे ॥ ४० ॥
तं वारय महाबाहो लोकानां हितकाम्यया । तेजस्ते सुमहाविष्णुस्तेजसाऽऽप्याययिष्यति ॥ ४१ ॥
लोकाः स्वस्था भवन्त्वद्य तस्मिन्विनिहतेऽसुरे । त्वं हि तस्य वधायाद्य समर्थः पृथवीपते ॥ ४२ ॥
विष्णुना च वरो दत्तो मम पूर्व ततोऽनघ । न हि धुन्धुर्महावीर्यस्तेजसाऽल्पेन शक्यते ॥ ४३ ॥
निर्दग्धुं पृथिवीपाल अपि वर्षशतैरिह । वीर्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासहम् ॥ ४४ ॥
एवमुक्तस्तु राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना । कुवलाश्वं सुतं प्रादात्तस्मिन्धुन्धुनिवारणे ॥ ४५ ॥
राजा संन्यस्तशस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम । भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः ॥ ४६ ॥
स तं व्यादिश्य तनयं धुन्धुमारणमुद्यतम् । जगाम पर्वतायैव तपसे शंसितव्रतः ॥ ४७ ॥
कुवलाश्वस्तु धर्मात्मा पितुर्वचनमास्थितः । सहस्रैरेकविंशत्या पुत्राणां सह पार्थिवः ॥
प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य निवारणे ॥ ४८ ॥
तमाविशत्ततो विष्णुर्भगवान्स्वेन तेजसा । उत्तङ्कस्य नियोगात्तु लोकानां हितकाम्यया ॥ ४९ ॥

एक वर्ष बीतने पर वह एक श्वास छोड़ता है, जिस समय वह श्वास छोड़ता है, उस समय जंगलों समेत सारी पृथ्वी हिलने लगती है । उसकी निःश्वास वायु से धूल का विकराल बवंडर उठ पड़ता है, जिससे सूर्य का मार्ग ही घिर जाता है, सात दिनों तक भूमि काँपती रहती है । चारों ओर अग्नि की चिनगारियाँ उठ पड़ती हैं, विकराल ज्वालाएँ निकलने लगती हैं । अतिदारुण धुएँ में सारी दिशाएँ आकीर्ण हो जाती हैं, हे राजन् ! इन सब उत्पातों से हम अपने इस आश्रम में भी निवास नहीं कर पाते हैं ॥ ३८-४० ॥

हे महाबाहु राजन् ! लोकरक्षा का ध्यान करते हुए उसे उत्पात से निवारित कीजिये । तुम्हारे इस उपकार कार्य में भगवान् विष्णु अपने तेजोबल से तुम्हारी सन्तुष्टि करेंगे अर्थात् सहायता करेंगे । उस महान् असुर के मारे जाने पर सभी लोक स्वस्थ हो जायेंगे । हे पृथ्वीपति ! आप उस महान् असुर के मारने में आज समर्थ हो । हे निष्पाप ! पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने यह वरदान दिया है कि महाबलवान् धुन्धु अल्प बल से अधीन नहीं किया जा सकता है । अर्थात् इसे वश में करने के लिए किसी महान् बलशाली की आवश्यकता है । हे पृथ्वीपाल ! सैकड़ों वर्षों में भी उसे कोई पराजित नहीं कर सकता । उसका बल महान् है, देवगण भी उसे पराजित नहीं कर सकते ॥ ४१-४४ ॥

महात्मा उत्तङ्क के इस प्रकार कहने पर राजर्षि बृहदश्व ने घुन्धु के उपद्रवों को निर्मूल करने के लिए उन्हें अपने पुत्र कुवलाश्व को समर्पित करते हुए कहा—हे महर्षे ! मैं राजा हूँ, सभी का पालन करना हमारा धर्म है; परन्तु हम अस्त्र-शस्त्र छोड़ चुके हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! यह हमारा पुत्र निस्सन्देह उस धुन्धु को मारने में समर्थ होगा । इस प्रकार धुन्धु को मारने के लिए सत्यप्रतिज्ञ राजा बृहदश्व ने अपने पुत्र कुवलाश्व को नियुक्तकर स्वयं तपस्या के लिए पर्वत की ओर प्रस्थान किया । इधर पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर धर्मात्मा महाराज कुवलाश्व ने अपने इक्कीस सहस्त्र पुत्रों को तथा महर्षि उत्तङ्क को साथ लेकर उस धुन्धु के निवारणार्थ प्रस्थान किया ॥ ४५-४८ ॥

तस्मिन्प्रयाते दुर्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत् । अद्यप्रभृत्येष नृपो धुन्धुमारो भविष्यति ॥ ५० ॥
दिव्यैः पुष्पैश्च तं देवाः सममंसत अद्भुतम् । स गत्वा पुरुषव्याघ्रस्तनयैः सह वीर्यवान् ॥ ५१ ॥
समुद्रं खनयामास बालुकार्णवमव्ययम् । नारायणेन राजर्षिस्तेजसाऽऽप्यायितो हि सः ॥ ५२ ॥
बभूवातिबलो भूय उत्तङ्कस्य वशे स्थितः । तस्य पुत्रैः खनद्भिश्च बालुकान्तर्हितस्तदा ॥ ५३ ॥
धुन्धुरासादितस्तत्र दिशामाश्रित्य पश्चिमाम् । मुखजेनाग्निना क्रुद्धो लोकानुद्वर्तयन्निव ॥ ५४ ॥
वारि सुस्राव योगेन महोदधिरिवोदये । सोमस्य सोमपश्रेष्ठ धारोर्मिकलिलो महान् ॥ ५५ ॥
तस्य पुत्रास्तु निर्दग्धास्त्रिभिरूनास्तु राक्षसाः । ततः स राजाऽतिबलो धुन्धुबन्धुनिबर्हणः ॥ ५६ ॥
तस्य वारिमयं वेगमपिबत् स नराधिपः । योगी योगेन वह्निं वा शमयामास वारिणा ॥ ५७ ॥
निरस्यत् तं महाकायं बलेनोदकराक्षसम् । उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्मा नराधिपः ॥ ५८ ॥
उत्तङ्कश्च वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने । अदात्तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चाप्यधृष्यताम् ॥ ५९ ॥

महर्षि उत्तङ्क के प्रयत्नपूर्वक प्रार्थना आदि करने के कारण तथा लोकहित की भावना से भगवान् विष्णु स्वयं उस राजर्षि कुवलाश्व में अपने तेज सहित आविष्ट हुए । इस प्रकार, राजर्षि कुवलाश्व ने जिस समय धुन्धु के निवारणार्थ प्रस्थान किया उस समय आकाश में चारों ओर से घोर शब्द होने लगे और चारों ओर से यह आवाज आने लगी कि आज यह राजा कुवलाश्व अवश्यमेव धुन्धु का संहार करेगा ॥ ४९-५० ॥

देवतागण चारों ओर से स्वर्गीय पुष्पों की वृष्टि उसके ऊपर करने लगे । इस प्रकार अपने पुत्रों समेत प्रस्थान कर परम बलशाली नरव्याघ्र कुवलाश्व ने उस बालुकामय समुद्र को जिसका विनाश असम्भव था, खनना प्रारम्भ किया । उस समय वह राजर्षि भगवान् के तेज से समन्वित होकर महान् बलवान् हो गये थे, फिर भी महर्षि उत्तङ्क के वश में वर्तमान थे ॥ ५१-५३ ॥

उस समय जबकि उनके पुत्रगण उस बालुकामय समुद्र को खन रहे थे धुन्धु इधर पश्चिम दिशा की ओर दिखायी पड़ा । उस समय वह बहुत क्रोधित हो रहा था, मुख से अग्नि की विकराल ज्वालाएँ इस प्रकार उगल रहा था मानो समस्त लोकों को विनष्ट कर देना चाहता हो । फिर उसने योगबल का आश्रय लेकर इतना जल बरसाया कि चारों ओर जल का भीषण समुद्र उमड़ पड़ा ॥ ५४-५५ ॥

हे सोमपान करनेवाले ऋषियों में सर्वोपरि ! उस समय वह जलराशि एवं तरंगें इस प्रकार ऊपर की ओर उमड़ने लगीं मानो चन्द्रमा का उदय हो गया हो । इस प्रकार राक्षसों ने राजा के समस्त पुत्रों को, केवल तीन पुत्रों को छोड़कर, भस्म कर दिया । तब धुन्धु के परिवार वर्ग को नष्ट करने की चिन्ता से उस महाबलवान् राजा ने धुन्धु की उस समस्त जलराशि का पान कर लिया, और योगबल द्वारा जल से इस अग्नि को भी शान्त कर दिया और उस प्रकार अपने अदम्य साहस से उस महाबलवान् जलवासी राक्षस धुन्धु को निरस्त कर दिया ॥५६-५८ ॥

अपने कार्य में सफलता प्राप्तकर राजा महर्षि उत्तङ्क के समीप उपस्थित हुए । महर्षि ने उस महात्मा राजा को उत्तम वरदान दिये । उसे कभी नष्ट न होनेवाली अक्षय सम्पत्ति प्रदान की, शत्रुओं से उसे कभी पराजय न मिले, धर्म में प्रेम भावना की वृद्धि हो, स्वर्गलोक में निरन्तर वास हो वहाँ से कभी पतन न हो ऐसा वरदान दिया ।

धर्मे रतिं च सततं स्वर्गे वासं तथाऽक्षयम् । पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकान्स्वर्गे ये राक्षसा हताः ॥ ६० ॥
तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते । भद्राश्वः कपिलाश्वश्च कनीयांसौ तु तौ स्मृतौ ॥ ६१ ॥
धौन्धुमारिदृढाश्वस्तु हर्यश्वस्तस्य चाऽऽत्मजः । हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत्क्षत्रधर्मरतः सदा ॥ ६२ ॥
संहताश्वो निकुम्भस्य श्रुतो रणविशारदः । कृशाश्वश्चाक्षयाश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ ॥ ६३ ॥
तस्य पत्नी हैमवती सतां मतिदृषद्वती । विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रस्तस्याः प्रसेनजित् ॥ ६४ ॥
युवनाश्वः सुतस्तस्य त्रिषु लोकेष्वतिद्युतिः । अत्यन्तधार्मिको गौरी तस्य पत्नी पतिव्रता ॥ ६५ ॥
अभिशस्ता तु सा भर्त्रा नदी सा बाहुदा कृता । तस्यास्तु गौरिकः पुत्रश्चक्रवर्ती बभूव ह ॥ ६६ ॥
मांधाता यौवनाश्वो वै त्रैलोक्यविजयी नृपः। अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ पौराणिका द्विजाः ॥ ६७ ॥
यावत्सूर्य उदयति यावच्च प्रतितिष्ठति । सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ ६८ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं वंशविदो जनाः । यौवनाश्वं महात्मानं यज्वानममितौजसम् ॥
मांधाता तु तनुर्विष्णोः पुराणज्ञाः प्रचक्षते ॥ ६९ ॥
तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिन्दोः सुताऽभवत् । साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणाप्रतिभा भुवि ॥ ७० ॥
पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य सा । तस्यामुत्पादयामास मांधाता त्रीन्सुतान्प्रभुः ॥ ७१ ॥

इसके अतिरिक्त राक्षसों द्वारा उनके जिन पुत्रों का निधन हुआ था, उन्हें अक्षय स्वर्ग प्रदान किया ॥ ५९-६० ॥

उस राजा कुवलाश्व के जो तीन पुत्र शेष रह गये थे, उनमें सबसे बड़े का नाम दृढाश्व कहा जाता है। भद्राश्व और कपिलाश्व—ये दो छोटे कहे जाते हैं। धुन्धुमार के ज्येष्ठ पुत्र दृढाश्व का जो पुत्र हुआ उसका नाम हर्यश्व था। हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ हुआ, जो सर्वदा क्षत्रिय धर्म में निरत रहने वाला था ॥ ६१-६२ ॥

निकुम्भ का पुत्र संहताश्व रणभूमि में परम निपुण सुना जाता है। उसके कृशाश्व और अक्षयाश्व नामक दो पुत्र हुए। संहताश्व की एक पत्नी का नाम हेमवती था, जो सत्पुरुषों से सम्माननीय थी, उसका दूसरा नाम मतिदृषद्वती था, तीनों लोकों में वह परम विख्यात थी, उसका पुत्र प्रसेनजित् हुआ ॥ ६३-६४ ॥

प्रसेनजित् का पुत्र युवनाश्व तीनों लोकों में परम कान्तिमान् था। उसके विचार परम धार्मिक थे, उसकी पतिव्रता पत्नी गौरी थी। पति ने एक बार उसे शाप दे दिया, जिसके फलस्वरूप वह बाहुदा नामक नदी के रूप में परिणत हुई। उसका पुत्र गौरिक अपने समय का चक्रवर्ती राजा हुआ। युवनाश्व का पुत्र मान्धाता त्रैलोक्य विजयी राजा था, उसके विषय में पुरानी कथाओं के जाननेवाले विप्रगण ये दो श्लोक बताते हैं, जिनका तात्पर्य यह है—जहाँ से सूर्य उदित होते हैं और जहाँ पर जाकर अस्त होते हैं, वह सब मान्धाता का राज्य कहा जाता है। इस प्रसंग में राजवंश के जाननेवाले लोग परम तेजस्वी, यज्ञपरायण महात्मा मान्धाता के विषय में यहाँ तक कहते हैं—पुराणज्ञ विद्वान् मान्धाता को भगवान् विष्णु का स्वरूप कहते हैं ॥ ६५-६९ ॥

उस राजा मान्धाता की स्त्री शशबिन्दु की पुत्री चैत्ररथी थी। वह समस्त पृथ्वी में अपने रूप में अनुपम थी। उस श्रेष्ठ पतिव्रता का अन्य नाम बिन्दुमती भी था। अपने दस सहस्र भाइयों में वह सबसे ज्येष्ठ थी, उसका पतिव्रता धर्म प्रशंसनीय था। ऐश्वर्यशाली मान्धाता ने उससे तीन पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम

पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च विश्रुतम् । अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः ॥ ७२ ॥
हरितो युवनाश्वस्य हारिताः शूरयः स्मृताः । एते ह्यङ्गिरसः पुत्राः क्षात्रोपेता द्विजातयः ॥ ७३ ॥
पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसदस्युर्महायशाः । नर्मदायां समुत्पन्नः संभूतस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ ७४ ॥
संभूतस्याऽऽत्मजः पुत्रो ह्यनरण्यः प्रतापवान् । रावणे न हतो येन त्रिलोकीविजये पुरा ॥ ७५ ॥
त्रसदश्वोऽनरण्यश्य हर्यश्वस्तस्य चाऽऽत्मजः । हर्यश्वात्तु दृषद्वत्यां जज्ञे वसुमतो नृपः ॥ ७६ ॥
तस्य पुत्रोऽभवद्राजा त्रिधन्वा नाम धार्मिकः । आसीत्त्रैधन्वनश्चापि विद्वांस्त्रय्यांरुणः प्रभुः ॥ ७७ ॥
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः । तेन भार्या विदर्भस्य हृता हत्वा दिवौकसान् ॥ ७८ ॥
पाणिग्रहणमन्त्रेषु निष्ठां संप्रापितेष्विह । विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य विष्णुवृद्धो यतः स्मृतः ॥
एते ह्यङ्गिरस पुत्राः क्षात्रोपेताः समाश्रिताः ॥ ७९ ॥
कामाद्बलाच्च मोहाच्च संकर्षणबलेन च । भाविनोऽर्थस्य च बलात्तत्कृतं तेन धीमता ॥ ८० ॥
तमधर्मेण सयुक्तं पिता त्रयीगुणोऽत्यजत् । अपध्वंसेति बहुशोऽवदत्क्रोधसमन्वितः ॥ ८१ ॥
पितरं सोऽब्रवीदेकः क्व गच्छामीति वै मुहुः । पिता चैनमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय ॥ ८२ ॥

पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द कहे जाते हैं । राजा अम्बरीष का पुत्र दूसरा युवनाश्व हुआ ॥ ७०-७२ ॥

युवनाश्व के पुत्र हरित हुए, हरित के पुत्र शूरि नाम से प्रसिद्ध हुए । ये महर्षि अंगिरा के पुत्र क्षत्रिय धर्मपरायण द्विजाति कहे जाते थे । राजा पुरुकुत्स के उत्तराधिकारी महान् यशस्वी त्रसदस्यु हुए, जिनका जन्म नर्मदा में हुआ था, त्रसदस्यु के पुत्र सम्भूत हुए ॥ ७३-७४ ॥

सम्भूत के पुत्र परम प्रतापशाली अनरण्य हुए । जिन्होंने प्राचीनकाल में त्रिलोकी विजय के प्रसठ में रावण का निधन किया था । उन राजा अनरण्य के पुत्र त्रसदश्व हुए, जिनके पुत्र का नाम हर्यश्व था, उन राजा हर्यश्व से दृषद्वती में राजा वसुमत का जन्म हुआ । राजा वसुमत के पुत्र परम धार्मिक राजा त्रिधन्वा उत्पन्न हुए, राजा त्रिधन्वा के पुत्र परम विद्वान् एवं प्रभावशाली राजा त्रय्यारुण हुए ॥ ७५-७७ ॥

त्रय्यारुण के पुत्र सत्यव्रत हुए जो महाबलवान् थे । उन्होंने विदर्भ राजा की स्त्री को, विवाह के मंत्रों के उच्चारण करते समय, जब सारी क्रियाएँ समाप्त हो गयी थीं, उस समय समस्त देवताओं को पराजित कर, हरण कर लिया था ॥ ७८ ॥

उस परम बलवान् राजा के पुत्र विष्णुवृद्ध हुए, जिनसे उत्पन्न होनेवाले वंश के लोग विष्णुवृद्ध नाम से विख्यात हुए । अंगिरा के ये पुत्रगण भी क्षत्रिय मिश्रित द्विजाति वर्ण के हैं ॥ ७९ ॥

परम बुद्धिमान् सत्यव्रत ने अपनी इच्छा से, बल से अथवा बलवान् भावी (नियति) के वश होकर बलपूर्वक उक्त दुराचरण किया था, उसके इस अधर्माचरण से असन्तुष्ट होकर पिता त्रय्यारुण ने उसका परित्याग कर दिया और अति क्रुद्ध होकर उससे कहा कि 'तुम हमारे घर से बाहर निकल जाओ' ॥ ८०-८१ ॥

अपने पिता के एकमात्र पुत्र सत्यव्रत ने जब पिता से बारम्बार पूछा कि 'मैं कहाँ जाऊँ ?' तब पिता ने कहा कि 'चाण्डालों के साथ जाकर निवास कर, हे कुल में कलंक लगाने वाले ! तुम्हारे जैसे नालायक पुत्र से मैं

नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाऽद्य कुलपांसन । इत्युक्तः निराक्रामन्नगराद्वचनाद्विभो ॥ ८३ ॥
न चैनं धारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः । स तु सत्यव्रतो धीमाञ्छ्वपाकावसथान्तिकम् ॥
पित्रा मुक्तोऽवसद्वीरः पिता चास्य वनं ययौ ॥ ८४ ॥
तस्मिंस्तु विषये तस्य नावर्षत्पाकशासनः । समा द्वादश संपूर्णास्तेनाधर्मेण वै तदा ॥ ८५ ॥
दारांस्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः । संन्यस्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः ॥ ८६ ॥
तस्य पत्नी बले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् । शिष्टानां भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन वै ॥ ८७ ॥
तं तु बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रीतं तं नरोत्तमः । महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास सुव्रतः ॥ ८८ ॥
सत्यव्रतो महाबुद्धिर्भरणं तस्य चाकरोत् । विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च ॥ ८९ ॥
सोऽभवद्गालवो नाम गले बद्धो महातपाः । महर्षिः कौशिकस्तातस्तेन वीर्येण मोक्षितः ॥ ९० ॥
तस्य व्रतेन भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया । विश्वामित्रकलत्रं च बभार विनये स्थितः ॥ ९१ ॥
हत्वा मृगान् वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान् । विश्वामित्राश्रमाभ्यासे तन्मांसमपचत्ततः ॥ ९२ ॥
उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् । पितुर्नियोगादभजन्नृपे तु वनमास्थिते ॥ ९३ ॥
अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवान्तःपुरं मुनिः । याज्योपाध्यायसंयोगाद्वसिष्ठः परिरक्षितः ॥ ९४ ॥

पुत्रवान् नहीं होना चाहता ।' हे परम प्रतापशाली ! पिता के इस प्रकार निरादरपूर्ण वचन कहे जाने पर सत्यव्रत नगर से बाहर निकल गये ॥ ८२-८३ ॥

उस समय परम प्रभावशाली महर्षि वसिष्ठ ने भी उन्हें घर रहने के लिए नहीं रोका । इधर परम बुद्धिमान् एवं वीर सत्यव्रत पिता के परित्याग कर देने पर चाण्डालों की बस्ती के समीप जाकर बस गये और उधर उनके पिता वन को चले गये ॥ ८४ ॥

इस अधर्म से उस प्रान्त में इन्द्र ने बारह वर्षों तक वर्षा नहीं की । उसी प्रदेश में महातपस्वी विश्वामित्र अपने स्त्री-पुत्रों को निराधार छोड़कर सागर के तटवर्ती प्रान्त में घोर तप कर रहे थे, उनकी पत्नी ने अपने मँझले पुत्र को गले में बाँधकर शेष पुत्रों के भरण-पोषण के लिए सौ गौओं के बदले बेच दिया था । व्रतपरायण, धर्मात्मा नरपति सत्यव्रत ने महर्षिपुत्र विश्वामित्र के मंझले पुत्र को इस प्रकार गले में बँधा और विक्रीत देखकर उस संकट से छुड़ाया ॥ ८५-८८ ॥

इसके बाद उस महाबुद्धिमान् नरपति ने महर्षि विश्वामित्र को सन्तुष्ट और प्रसन्न करने के लिए उनके पुत्र का पालन-पोषण किया । गले में बंधने के कारण विश्वामित्र के उस महातपस्वी पुत्र का नाम गालव पड़ा । इस प्रकार महर्षि विश्वामित्र का पुत्र उस बलवान् राजा के द्वारा बचाया गया । उसने अपनी व्रतपरायणताएवं भक्ति, कृपा, सत्यप्रतिज्ञा तथा विनयपूर्वक विश्वामित्र की स्त्री का भरण-पोषण किया । विश्वामित्र के आश्रम के समीप मृगों, शूकरों, महिषों एवं अन्यान्य वन्य जन्तुओं को मारकर उनके मांस को वह पकाता था ॥ ८९-९२ ॥

फिर मौनव्रत धारणकर पिता की आज्ञा से बारह वर्ष तक वन में चाण्डालों के समीप रहकर दीक्षा ग्रहणकर निवास करता रहा । इधर पिता-पुत्र दोनों की अनुपस्थिति में महर्षि वसिष्ठ पुरोहितों एवं उपाध्यायों के सहयोग से राजधानी अयोध्या, राज्य एवं अन्तःपुर की रक्षा करते रहे ॥ ९४ ॥

सत्यव्रतस्तु बाल्यात्तु भाविनोऽर्थस्य वै बलात् । वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास मन्युना ॥ ९५ ॥
पित्रा रुदंस्तदा राष्ट्रात्परित्यक्तं स्वमात्मजम् । न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन वै ॥ ९६ ॥
पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे । एवं सत्यव्रतस्तान् वै हृतवान् सप्तमे पदे ॥ ९७ ॥
जानन्धर्मान्वसिष्ठस्तु न च मन्त्रानिहेच्छति । इति सत्यव्रते रोषं वसिष्ठो मनसाऽकरोत् ॥ ९८ ॥
गुरुबुद्ध्या तु भगवान्वसिष्ठः कृतवांस्तदा । न तु सत्यव्रतो बुद्ध्या उपांशुव्रतमस्य वै ॥ ९९ ॥
तस्मिंश्चोपरते यो यत्पितुरासीन्महामनाः । तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत्पाकशासनः ॥ १०० ॥
तेन त्विदानीं बहुधा दीक्षां तां दुर्बलां भुवि । कुलस्य निष्कृतिः स्वस्य कृतेयं च भवेदिति ॥ १०१ ॥
ततो वसिष्ठो भगवान्पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् । अभिषेक्ष्याम्यहं राज्ये पश्चादेनमिति प्रभुः ॥ १०२ ॥
स तु द्वादश वर्षाणि दीक्षां तामुद्वहन् बली । अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ १०३ ॥
सर्वकामदुघां धेनुं संददर्श नृपात्मजः । तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधान्वितः ॥ १०४ ॥
दस्युधर्मं गतो दृष्ट्वा जघान बलिनां वरः । स तु मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चाऽऽत्मजान् ॥ १०५ ॥

कुमार सत्यव्रत अपने बाल्य स्वभाव के कारण तथा भावीवश महर्षि वसिष्ठ के ऊपर बहुत अधिक क्रुद्ध थे । क्योंकि पिता द्वारा घर से निकाले जाते समय जब वे रोते हुए राष्ट्र से बाहर निकल रहे थे तब महर्षि वसिष्ठ ने किसी कारण से उन्हें निवारित नहीं किया ॥ ९६ ॥

पाणिग्रह अर्थात् विवाह संस्कार के मन्त्रों की समाप्ति सातवें चरण में होती है (सप्तपदी के होने के बाद विवाह संस्कार सम्पन होता है) किन्तु उसी सप्तपदी के समाप्त होने के अवसर पर उस विदर्भ राजा की स्त्री को सत्यव्रत ने बलपूर्वक छीन लिया था । महर्षि वसिष्ठ धर्म की मर्यादा को जाननेवाले थे, अतः उन्होंने सत्यव्रत के उक्त कार्य का अनुमोदन नहीं किया, और मन्त्रों की मर्यादा भ्रष्ट होने के भय से कुमार सत्यव्रत के ऊपर उन्होंने मन से क्रोध किया ॥ ९७-९८ ॥

महर्षि वसिष्ठ ने गुरु की मर्यादा रक्षा के ध्यान से सत्यव्रत के ऊपर वह कोप किया था । अतः कुमार सत्यव्रत उनके इस मौनाबलम्बन का जो नगर से निकालते समय उन्होंने अपनाया था, तात्पर्य नहीं जान सके । महामनस्वी वसिष्ठ जी ने सोचा कि पिता की मृत्यु हो जाने के बाद इन्द्र ने बारह वर्षों तक अराजकता से अधर्म बढ़ जाने के कारण वर्षा नहीं की । इसलिए सत्यव्रत भी पिता की आज्ञा से बारह वर्ष तक वन में दीक्षा ग्रहण कर निवास करते रहे । पृथ्वी पर लोगों की जीविका कष्टसाध्य हो गयी है, अतः सत्यव्रत के आ जाने से उसके वंश का विस्तार तो हो ही जायगा ॥ ९९-१०१ ॥

ऐसा विचारकर महर्षि वसिष्ठ ने उस समय पिता द्वारा निष्कासित किये गये सत्यव्रत को पूर्व पाप से निवारित किया, और कहा कि तुम्हें राज्य पद पर अभिषिक्त कर रहा हूँ । उधर बलवान् राजकुमार सत्यव्रत पिता की आज्ञा से बारह वर्ष का व्रत लेकर जिस समय वन में निवास कर रहा था, उस समय एक दिन मांस का अभाव हो गया, तब उसने महात्मा वसिष्ठ की सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाली कामधेनु को देखा ॥ १०२-१०३ ॥

क्रोध, मोह, क्षुधा एवं अत्यन्त थके-माँद होने के कारण, उसने विचार किया कि मैं इन चाण्डालों के समीप निवास करता हूँ, उन्हीं के समान आचरण भी मुझे करना चाहिए, क्यों न इसी को मारकर क्षुधा शान्त

भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठस्तं तदाऽत्यजत् । प्रोवाच चैव भगवान्वसिष्ठस्तं नृपात्मजम्॥ १०६ ॥
पातये क्रूर हे क्रूर तव शंकुमयोमयम् । यदि ते त्रीणि शंकूनि न स्युर्हि पुरुषाधम ॥ १०७ ॥
पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च । अप्रोषितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥ १०८ ॥
एवं स त्रीणि शंकूनि दृष्ट्वा तस्य महातपाः । त्रिशङ्कुरिति होवाच त्रिशङ्कुस्तेन स स्मृतः ॥ १०९ ॥
विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते । ततस्तस्मै वरं प्रादात्तदा प्रीतस्त्रिशङ्कवे ॥ ११० ॥
छन्द्यमानो वरेणाथ गुरुं वव्रे नृपात्मजः । अनावृष्टिभये तस्मिन्गते द्वादशवार्षिके ॥ १११ ॥
अभिषिच्य राज्ये पित्र्ये याजयामास तं मुनिः । मिषतां दैवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः ॥
सशरीरं तदा तं वै दिवमारोपयत्प्रभुः ॥ ११२ ॥
मिषतस्तु वसिष्ठस्य तदद्भुतमिवाभवत् । अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ पौराणिका जनाः ॥ ११३ ॥
विश्वामित्रप्रसादेन त्रिशङ्कुर्दिवि राजते । देवैः सार्धं महातेजाऽनुग्रहात्तस्य धीमतः ॥ ११४ ॥
शनैर्यात्यबला रम्या हेमन्ते चन्द्रमण्डिता । अलंकृता त्रिभिर्भावैस्त्रिशङ्कुग्रहभूषिता ॥ ११५ ॥

करूँ। यह सोचकर उसने वसिष्ठ की उस कामधेनु को मार डाला। महाबलवान् राजकुमार सत्यव्रत ने इस प्रकार उस कामधेनु के मांस को स्वयं खाया और महर्षि के पुत्रादिकों को भी खिलाया। इस दारुण वृत्तान्त को सुनकर परम तेजस्वी महर्षि वसिष्ठ ने कुमार सत्यव्रत को राज्यकर्म से छोड़ दिया और उससे कहा, हे क्रूरकर्मा ! अब हम तुम्हें नीचे गिरा रहे हैं, हे पुरुषाधम ! यदि तुम्हारे ये तीन शंकु (महापाप रूप कौल) न होते तो तुम्हारे ऊपर लोह का शंकु गिरता। पिता के असन्तुष्ट करने के कारण, गुरु की कामधेनु की हत्या करने के कारण, बिना संस्कार आदि किये मांस भक्षण करने के कारण तुमने तीन धार्मिक अपराध किये हैं ॥ १०४-१०८ ॥

महातपस्वी महर्षि वसिष्ठ ने सत्यव्रत के इन तीन शंकु सदृश महान् अपराधों का विचारकर उसका त्रिशंकु नाम रख दिया, इसी कारण उसका त्रिशंकु नाम भी पड़ गया ॥ १०९ ॥

इधर राजर्षि विश्वामित्र जब तपस्या से निवृत्त होकर आश्रम को लौटे और स्त्री-पुत्रादिकों के सत्यव्रत द्वारा भरण-पोषण किये जाने का वृत्तान्त सुना तो परम प्रसन्न होकर त्रिशंकु को वरदान दिया ॥ ११० ॥

विश्वामित्र के वरदान देते समय राजकुमार सत्यव्रत ने सारा शाप वृत्तान्त निवेदन किया। कौशिक ने उस बारह वर्ष के अनावृष्टिजनित दुष्काल के बीत जाने पर सत्यव्रत को राज्यपद पर अभिषिक्त किया, और उसके द्वारा यज्ञादि शुभ कार्य सम्पन्न कराया और उन त्रिशङ्कु को विश्वामित्र ने सशरीर स्वर्ग में भेज दिया। सभी देवगण तथा महर्षि वसिष्ठ देखते ही रह गये ॥ १११-११२ ॥

महर्षि वसिष्ठ उनके इस अद्भुत कार्य को देखकर आश्चर्यचकित रह गये। पौराणिक लोग इस विषय में इन दो श्लोकों को उपस्थित करते हैं, जिनका आशय इस प्रकार है ॥ ११३ ॥

महामुनि विश्वामित्र की कृपा से त्रिशंकु स्वर्ग में विराजमान है, उस परम बुद्धिमान् की कृपा से वह तेजस्वी होकर देवताओं के साथ शोभा पाता है, त्रिशंकु रूप ग्रह के आकर्षण से विभूषित होकर, तीन प्रकार के भावों से अलंकृत है ॥ ११४-११५ ॥

तस्य सत्यरता नाम भार्या केकयवंशजा । कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥ ११६ ॥
स तु राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति श्रुतः । आहर्ता राजसूयस्य सम्राडिति परिश्रुतः ॥ ११७ ॥
हरिश्चन्द्रस्य तु सुतो रोहितो नाम वीर्यवान् । हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारीत उच्यते ॥ ११८ ॥
राजा विजयश्च सुदेवश्च चञ्चुपुत्रौ बभूवतुः । जेता सर्वस्य क्षत्रस्य विजयस्तेन स स्मृतः॥ ११९ ॥
रुरुकस्तनयस्तत्र राजा धर्मार्थकोविदः । रुरुकाद्धुतकः पुत्रस्तस्माद्बाहुश्च जज्ञिवान् ॥ १२० ॥
हैहयैस्तालजङ्घैश्च निरस्तो व्यसनी नृपः । शकैर्यवनकाम्बोजैः पारदैः पल्हवैस्तथा ॥ १२१ ॥
नात्यर्थं धार्मिकोऽभूत्स धर्म्ये सत्ययुगे तथा । सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण वै ॥
भृगोराश्रममासाद्य तुर्वेण परिरक्षितः ॥ १२२ ॥
आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा तु भार्गवात्सगरो नृपः । जघान पृथिवीं गत्वा तालजङ्घान्सहैहयान् ॥ १२३ ॥
शकानां पल्हवानां च धर्मान्निरसदच्युतः । क्षत्रियाणां तथा तेषां पारदानां च धर्मवित् ॥ १२४ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं स सगरो राजा गरेण सह जज्ञिवान् । किमर्थं च शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम्॥
धर्मान् कुलोचितान् क्रुद्धो राजा निरसदच्युतः ॥ १२५ ॥

हेमन्त में चन्द्रमा के समान सुन्दरी एक मनोहर रमणी उसके पास धीरे-धीरे जाती है । उस राजा त्रिशंकु की सत्यरता नामक केकयवंश पत्नी में उत्पन्न थी । उसने हरिश्चन्द्र नामक परम धार्मिक पुत्र को उत्पन्न किया । वह राजा हरिश्चन्द्र त्रिशंकु के रूप में परम प्रसिद्ध था । उसने अपने समय में राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया था, समस्त पृथ्वीमण्डल का वह एकच्छत्र सम्राट् था, ऐसा सुना जाता है ॥ ११६-११७ ॥

हरिश्चन्द्र का पुत्र परम बलवान् रोहित हुआ । रोहित का पुत्र हरित हुआ और हरित का पुत्र चंचु नाम से प्रसिद्ध हुआ । उस चंचु के विजय और सुदेव नाम वाले दो पुत्र हुए । विजय सभी क्षत्रियों का विजेता था, इसी कारण से उसका नाम भी विजय था ॥ ११८-११९ ॥

विजय का पुत्र रुरुक हुआ, जो अपने समय का परम धर्मार्थवेत्ता राजा था । रुरुक का पुत्र उतक हुआ, और उसका बाहु उत्पन्न हुआ । हैहय और तालजंघ के वंशों में उत्पन्न होनेवालों ने अत्यन्त व्यसनी राजा बाहु को परास्त कर दिया । उनके साथ शक, यवन, काम्बोज, पारद और पल्हवों के वंश में उत्पन्न होने वाले भी थे । सत्ययुग का समय होने पर भी वह राजा बाहु परम धार्मिक नहीं था, उस राजा बाहु का पुत्र विष के साथ गर्भ से उत्पन्न हुआ, उसका नाम सगर पड़ा । पिता के शत्रुओं द्वारा की गयी दुरवस्था में भृगु के आश्रम में उसकी रक्षा तुर्व ने की थी ॥ १२०-१२२ ॥

भार्गव से आग्नेय अस्त्र प्राप्तकर राजा सगर ने समस्त पृथ्वी पर घूम-घूमकर हैहय और तालजंघ के वंश में उत्पन्न होनेवालों में सबका संहार कर डाला । उस महाबलवान् राजा सगर ने शकों, पल्हवों, पारदों एवं अन्य क्षत्रियों को भी अपने पूर्वजों के अधिकार एवं धर्म से वंचित कर दिया ॥ १२३-१२४ ॥

ऋषियों ने कहा—हे सूत जी ! वे राजा सगर किस प्रकार विष के साथ उत्पन्न हुए, और किस लिए उस

सूत उवाच

बाहोर्व्यसनिनस्तस्य हृतं राज्यं पुरा किल । हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैः सार्धं समागतैः ॥ १२६ ॥
यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पल्हवास्तथा । हैहयार्थं पराक्रान्ता एते पञ्च गणास्तदा ॥ १२७ ॥
हृतं राज्यं बलीयोभिरेभिः क्षत्रियपुङ्गवैः । हृतराज्यस्तदा बाहुः संन्यस्य नु तदा नृपः ॥
वनं प्रविश्य धर्मात्मा सह पत्न्या तपोऽचरत् ॥ १२८ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य तोयार्थं प्रस्थितो नृपः। वृद्धात्वाददुर्बलत्वाच्च अन्तरा स ममार च॥ १२९ ॥
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात् । सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया॥ १३० ॥
सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वह्नौ तं समरोहयत् । और्वस्तां भार्गवो दृष्ट्वा कारुण्याद्विन्यवर्तयत्॥ १३१ ॥
तस्याश्रमे तु तं गर्भं सागरेण तदा सह । व्यजायत महाबाहुं सगरं नाम धार्मिकम् ॥ १३२ ॥
और्वस्तु जातकर्मादीन्कृत्वा तस्य महात्मनः । अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥ १३३ ॥
जामदग्न्यात्तदाग्नेयमसुरैरपि दुःसहम् । स तेनास्त्रबलेनैव बलेन च समन्वितः ॥
जघान हैहयान्क्रुद्धो रुद्रः पशुगणानिव ॥ १३४ ॥

अच्युत ने महान् तेजस्वी शकों एवं क्षत्रियों के कुलोचित धर्मों को क्रुद्ध होकर संहार कर दिया ॥ १२५ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—ऋषिगण ! ऐसी प्रसिद्धि है कि पूर्वकाल में राजा बाहु के व्यसनी होने के कारण उनका राज्य हैहय, तालजंघ एवं शकों के साथ यवन, पारद, कम्बोज और पल्हवों ने आक्रमण करके सारा राज्य छीन लिया। उस समय इन पाँचों गणों ने हैहय के लिए यह आक्रमण किया ॥ १२६-१२७ ॥

इन क्षत्रिय पुङ्गव बलवान् शत्रुओं द्वारा राज्य छीन लिये जाने पर धर्मात्मा राजा बाहु घर द्वार छोड़कर पत्नी के साथ वन को चले गये और वहाँ तपस्या करना प्रारंभ किया ॥ १२८ ॥

कुछ समय बाद एक दिन राजा जल लेने के लिए गये, और अत्यन्त वृद्ध तथा दुर्बल होने के कारण बीच मार्ग में ही उनकी मृत्यु हो गयी। उनकी यादवी नामक पत्नी, जो उस समय गर्भवती थी, अनुगमन के लिए प्रस्तुत हुई, उसके गर्भ को मारने की नीयत से सपत्नी ने उसे विष दे दिया था ॥ १३० ॥

यादवी को पति की चिता बनाकर उसने बैठा दिया और आग भी लगा दी, उसी बीच भार्गव और्व मुनि वहाँ आये और करुणावश उसे जलने से निवारित किया ॥ १३१ ॥

उन्हीं और्व ऋषि के आश्रम में यादवी ने सपत्नी के दिये गये विष के साथ महाबाहु सगर नामक परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १३२ ॥

मुनिवर और्व ने उस महातेजस्वी सगर का जातकर्मादि संस्कार सम्पन्न किया और वेद शास्त्रों का सम्पूर्ण अध्ययन कराकर अस्त्र विद्या भी दी। उसी समय जमदग्नि के पुत्र और्व मुनि से सगर ने उस आग्नेयास्त्र को प्राप्त किया, जिसे बड़े-बड़े राक्षस भी सहन करने में असमर्थ थे। उसी अस्त्र बल से तथा अपने शारीरिक बल से उस परम प्रतापी राजा सगर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हैहयों का वध इस प्रकार कर डाला, जैसे रुद्र सृष्टि के अवसान में जीवसमूहों का संहार करते हैं ॥ १३३-१३४ ॥

ततः शकान्सयवनान्काम्बोजान्पारदांस्तथा । पह्लवांश्चैव निःशेषान्कर्तुं व्यवसितो नृपः ॥ १३५ ॥
ते बध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना । वसिष्ठं शरणं सर्वे प्रपन्नाः शरणैषिणः ॥ १३६ ॥
वसिष्ठस्तांस्तथेत्युक्त्वा समयेन महामुनिः । सगरं वारयामास तेषां दत्त्वाऽभयं तदा ॥ १३७ ॥
सगरः स्वां प्रतिज्ञां च गुरोर्वाक्यं निशम्य च । धर्मं जघान तेषां वै वेषान्यत्वं चकार ह ॥ १३८ ॥
अर्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् । यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च ॥ १३९ ॥
पारदा मुक्तकेशाश्च पल्हवाः श्मश्रुधारिणः। निःसूवाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥ १४० ॥
शका यवनकाम्बोजाः पल्हवाः पारदैः सह । केलिस्पर्शा माहिषिका दार्वाश्चोलाः खसास्तथा ॥१४१॥
सर्वे ते क्षत्रियगणा धर्मस्तेषां निराकृतः । वसिष्ठवचनात्पूर्वं सगरेण महात्मना ॥ १४२ ॥
स धर्मविजयी राजा विजित्येमां वसुंधराम् । अश्वं विचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः ॥ १४३ ॥
तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्वदक्षिणे । वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः ॥ १४४ ॥
स तं देशं सुतैः सर्वैः खनयामास पार्थिवः । आसेदुश्च ततस्तस्मिंस्तदन्तस्ते महार्णवे ॥ १४५ ॥
तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम् । विष्णुं कपिलरूपेण हंसं नारायणं प्रभुम् ॥ १४६ ॥
तस्य चक्षुः समासाद्य तेजस्तत्प्रतिपद्यते । दग्धाः पुत्रास्तदा सर्वे चत्वारस्त्ववशेषिताः ॥ १४७ ॥

हैहयों को मारने के उपरान्त राजा सगर ने शक, यवन, कम्बोज, पारद एवं पल्हवों को भी निशेष कर देने की इच्छा की । महाबलवान् एवं पराक्रमी सगर से अत्यन्त पीड़ित एवं भयभीत होकर वे सब शरण खोजते हुए, जब महर्षि वसिष्ठ के पास पहुँचे तब महामुनि ने वचन देकर उनको अभयदान दिया और राजा सगर को इस संहार कार्य से निवारित किया । राजा सगर ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने का और गुरु के आदेश का विचार करके उन सबों के धर्मों को नष्ट कर दिया तथा वेश-भूषा आदि भी बदल दी ॥ १३५-१३८ ॥

उसने शकों का आधा सिर मुण्डित कराकर छोड़ दिया, यवनों के पूरे सिर को मुंडित कराकर छोड़ दिया, कम्बोजों को भी पूरा सिर मुंडित कराकर छोड़ दिया, पारदों के केवल केश छोड़ दिये मूँछ-दाढ़ी सब मुण्डित करा दिये, पल्हवों की केवल दाढ़ी रखवाकर छोड़ दिया । उस महान् बलशाली ने इस सबको वेदाध्ययन, यज्ञ, हवनादि से सर्वथा वंचित कर दिया । ये शक, यवन, कम्बोज, पह्लव, पारद, कलिस्पर्श, माहिषिक, दार्व, चोल एवं खस जातिवाले सभी पहले क्षत्रिय वर्ण के थे, इनके धर्म को उस महाबलवान् राजा ने वसिष्ठ का वचन मानकर निराकृत कर दिया ॥ १३९-१४२ ॥

इस प्रकार उस धर्मविजयी राजा ने सारी पृथ्वी जीतकर अश्वमेघ यज्ञ की दीक्षा ग्रहणकर अश्व को सम्पूर्ण भूमण्डल में घुमाया । घुमाते समय उसका अश्वमेध यज्ञ का वह अश्व पूर्व-दक्षिण समुद्र के तटवर्ती प्रान्त में अपहृत कर लिया गया और पृथ्वी के भीतर छिपा दिया गया ॥ १४३-१४४ ॥

तदनन्तर राजा सगर ने अपने सभी पुत्रों से समुद्र के तटवर्ती समस्त प्रान्तों को खनवा डाला, खनते समय उसके पुत्रगण उस महासमुद्र के अन्तिम छोर पर पहुँच गये और वहाँ पर आदि पुरुष, हरि, कृष्ण, प्रजापति, नारायण, प्रभु, हंस आदि अनेक नामों एवं रूपों से प्रकाशित होनेवाले भगवान् विष्णु को महर्षि कपिल के वेश में

बर्हिकेतुः सकेतुश्च तथा धर्मरतस्त्रयः । शूरः पञ्चवनश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः ॥ १४८ ॥
प्रादाच्च तस्य भगवान्हरिर्नारायणो वरान् । अक्षयत्वं स्ववंशस्य वाजिमेधशतं तथा ॥
विभुं पुत्रं समुद्रं च स्वर्गे वासं तथाऽक्षयम् ॥ १४९ ॥
स समुद्रोऽश्वमादाय ववन्दे सरितां पतिः । सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै ॥ १५० ॥
तं चाऽश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रात्प्राप्य पार्थिवः । आजहाराश्वमेधानां शतं चैव पुनः पुनः ॥ १५१ ॥
षष्टिपुत्रंसहस्राणि दग्धान्यश्वानुसारिणाम् । तेषां नारायणं तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम् ॥
पुत्राणां तु सहस्राणि षष्टिस्तु इति नः श्रुतम् ॥ १५२ ॥

ऋषय ऊचुः

सगरस्याऽऽत्मजा राज्ञः कथं जाता महाबलाः । विक्रान्ताः षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा वद ॥१५३॥

सूत उवाच

द्वे पत्न्यौ सगरस्याऽऽस्तां तपसा दग्धकिल्बिषे। ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम नामतः ॥ १५४ ॥
कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमधर्मिणी । अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ १५५ ॥
और्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तपसाऽऽराधितः प्रभुः । एका जनिष्यते पुत्रं वंशकर्तारमीप्सितम् ॥
षष्टिपुत्रसहस्राणि द्वितीया जनयिष्यति ॥ १५६ ॥

उपस्थित देखा। चोर जानकर उनके पास, ज्योंही उनकी आँख के सामने पहुँचे त्योंही परम तेज को न सहन कर भस्म हो गये, केवल चार पुत्र शेष रह गये ॥ १४५-१४७ ॥

उनके नाम बर्हिकेतु, सुकेतु, धर्मरत और पंचवन थे, उस महान् ऐश्वर्यशाली राजा सगर के वंश को बढ़ानेवाले ये चार पुत्र कहे जाते हैं। भगवान् नारायण ने राजा को सुन्दर वरदान दिये। जिनसे उनको अपने वंश का अक्षयत्व, सौ अश्वमेध यज्ञों के सम्पन्न करने का सुअवसर, परम ऐश्वर्य सम्पन्न समुद्र का पुत्रत्व एवं स्वर्गलोक में अनन्त काल पर्यन्त निवास करने का वर प्राप्त हुआ ॥ १४८-१४९ ॥

समस्त सरिताओं का स्वामी समुद्र उस समय उनके समीप अश्व लेकर उपस्थित हुआ और नमस्कार किया। राजा के उसी महान् कर्म से उसे सागरत्व (सागर के पुत्रत्व) की उपाधि प्राप्त हुई। इस प्रकार समुद्र से उस अश्वमेध यज्ञ के अश्व को प्राप्तकर राजा सगर ने अन्य सौ अश्वमेध यज्ञों को निर्विघ्न सम्पन्न किया। उसके उस प्रथम यज्ञ के पीछे-पीछे चलनेवाले जो साठ सहस्र पुत्र भस्म हुए थे वे सब-के-सब महाबलवान् पुत्रगण नारायण के तेज में तद्रूप होकर उनके तेज में मिल गए—ऐसा हमने सुना है ॥ १५०-१५२ ॥

ऋषियों ने कहा—सूत जी राजा सगर के वे साठ सहस्र पुत्रगण, जो सब परम बलवान् एवं विजयी थे, किस प्रकार से अथवा किस विधि से उत्पन्न हुए यह बताइये ॥ १५३ ॥

सूत जी ने कहा—उस राजा सगर की दो स्त्रियाँ थीं, जिन्होंने अपनी घोर तपस्या द्वारा समस्त पापों को भस्म कर दिया था, बड़ी स्त्री विदर्भराज की कन्या केशिनी नाम से विख्यात थीं, उनकी छोटी पत्नी जो परम धर्मिष्ठ थीं, वे राजा अरिष्टनेमि की कन्या थीं, अपने रूप में सारे भूमण्डल में वे अकेली थीं ॥ १५४-१५५ ॥

मुनेस्तु वचनं श्रुत्वा केशिनी पुत्रमेककम् । वंशस्य कारणं श्रेष्ठा जग्राह नृपसंसदि ॥ १५७ ॥
षष्टिपुत्रसहस्राणि सुपर्णभगिनी तथा । महात्मनस्तु जग्राह सुमतिः स्वमतिर्यथा ॥ १५८ ॥
अथ काले गते ज्येष्ठा ज्येष्ठं पुत्रं व्यजायत । असमञ्ज इति ख्यातं काकुत्स्थं सगरात्मजम्॥ १५९ ॥
सुमतिस्त्वपि जज्ञे वै गर्भं तुम्बं यशस्विनी । षष्टिपुत्रसहस्राणि तुम्बमध्याद् विनिःसृताः ॥ १६० ॥
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान्नगर्भान्यदधत्ततः । धात्रीश्चैकैकशः प्रादात्तावतीः पोषणे नृपः ॥ १६१ ॥
ततो नवसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथासुखम् । कुमारास्ते महाभागाः सगरप्रीतिवर्धनाः ॥ १६२ ॥
कालेन महता चैव यौवनं प्रतिपेदिरे । षष्टिपुत्रसहस्राणि तेषामश्वानुसारिणाम् ॥ १६३ ॥
स तु ज्येष्ठो नरव्याघ्रः सगरस्याऽऽत्मसंभवः । असमञ्ज इति ख्यातो बर्हिकेतुर्महाबलः ॥ १६४ ॥
पौराणामहिते युक्तः पित्रा निर्वासितः पुरा । तस्य पुत्रोंऽशुमान्नाम असमञ्जस्य वीर्यवान् ॥ १६५ ॥
तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा दिलीप इति विश्रुतः । दिलीपात्तु महातेजा वीरो जातो भगीरथः ॥ १६६ ॥
येन गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा विमानैरुपशोभिता । ईजानेन समुद्राद्वै दुहितृत्वेन कल्पिता ॥
अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं पौराणिका जनाः ॥ १६७ ॥
भगीरथस्तु तां गङ्गामानयामास कर्मभिः । तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशवित्तमैः ॥ १६८ ॥

तपस्या द्वारा सन्तुष्ट किये गये महामुनि और्व ने उन्हें वरदान दिया कि इनमें से एक वंशकर्त्ता पुत्र को उत्पन्न करेगी और दूसरी साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न करेगी ॥ १५६ ॥

राजसभा में मुनि के इन दोनों वरदानों में से केशिनी ने वंशकर्त्ता एक पुत्र की प्राप्ति का वरदान माँगा, सुपर्णभगिनी दूसरी रानी सुमति ने अपने मन के अनुकूल महामुनि से साठ सहस्र पुत्रों को प्राप्त करने का वरदान माँगा । तदनुसार समय आने पर बड़ी रानी केशिनी ने ज्येष्ठ पुत्र असमञ्ज को उत्पन्न किया, बाद में चलकर वह सगर पुत्र राजा असमञ्ज काकुत्स्थ नाम से विख्यात हुआ ॥ १५६-१५९ ॥

यशस्विनी रानी सुमति ने अपने गर्भ से एक तुम्ब उत्पन्न किया जिसके बीच से साठ सहस्र पुत्र निकले उत्पन्न होने के बाद वे गर्भ घृत से भरे हुए पात्रों में रखे गये, राजा ने उन पात्रों को साठ सहस्र धायों को पालने के लिए सौंपा । नव महीने बीत जाने पर उन पात्रों से सुखपूर्वक वे साठ सहस्र महाभाग्यशाली राजकुमार बाहर निकले, जिन्हें देखकर राजा सगर को परम सुख प्राप्त हुआ । बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर वे सब राजकुमार युवावस्था को प्राप्त हुए । प्रथम अश्वमेघ यज्ञ के अश्व के पीछे वे साठ सहस्र पुत्र गये थे ॥ १६०-१६३ ॥

राजा सगर के सबसे बड़े औरस पुत्र नरव्याघ्र असमञ्ज महाबलवान् थे, उनका दूसरा नाम बर्हिकेतु भी प्रसिद्ध था । पहले वे नगर निवासियों के अहितकर कार्यों में लगे रहते थे, इससे पिता ने उन्हें निर्वासित कर दिया था । असमञ्ज के परम बलवान् अंशुमान नामक पुत्र हुए । अंशुमान के परम धर्मात्मा पुत्र दिलीप नाम से विख्यात हुए । दिलीप से महान् तेजस्वी भगीरथ नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १६४-१६६ ॥

इसी भगीरथ ने अपनी पूजा एवं क्रिया के बल से विमानों से सुशोभित, समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा को पुत्री रूप में प्राप्त किया और समुद्रपर्यन्त उसकी पावनी धारा से पृथ्वी को सुशोभित किया । पुराणों के

भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह । नाभागस्तस्य दायादो नित्यं धर्मपरायणः ॥ १६९ ॥
अम्बरीषः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् । एवं वंशपुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥ १७० ॥
नाभागेरम्बरीषस्य भुजाभ्यां परिपालिता । बभूव वसुधाऽत्यर्थं तापत्रयविवर्जिता ॥ १७१ ॥
आयुतायुः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान् । अयुतायोस्तु दायाद ऋतुपर्णो महायशाः ॥ १७२ ॥
दिव्याक्षहृदयज्ञोऽसौ राजा नलसखो बली । नलौ द्वाविति विख्यातौ पुराणेषु दृढव्रतौ ॥ १७३ ॥
वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः । ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत्सर्वकामो जनेश्वरः ॥ १७४ ॥
सुदासस्तस्य तनयो राजा हंसमुखोऽभवत् । सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पार्थिवः ॥ १७५ ॥
ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहश्च सः । वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्माषपादके ॥
अश्मकं जनयामास इक्ष्वाकु कुलवृद्धये ॥ १७६ ॥
अश्मकस्योरकामस्तु मूलकस्तत्सुतोभवत् । अत्राप्युदाहरन्तीमं मूलकं वै नृपं प्रति ॥ १७७ ॥
स हि रामभयाद्राजा स्त्रीभिः परिवृतोऽवसत् । विवस्त्रस्त्राणमिच्छन् वै नारीकवचमीश्वरः॥ १७८ ॥

जाननेवाले आज भी इस श्लोक (यशोगाथा) का गान करते हैं कि 'राजा भगीरथ ने अपने कर्मों द्वारा गंगा जी को पृथ्वी पर उतारा था, राजवंशों के वृत्तान्त को जाननेवाले अर्थात् ऐतिहासिक लोग इसीलिए गंगा को भागीरथी कहते हैं। उस राजा भगीरथ का पुत्र श्रुत नाम से विख्यात हुआ, उसका उत्तराधिकारी नाभाग हुआ, जो सर्वदा अपने धर्म में तत्पर रहनेवाला था ॥ १६७-१६९ ॥

नाभाग का पुत्र अम्बरीष था, और उसका पुत्र राजा सिन्धुद्वीप हुआ। पुराण कथाओं के ज्ञाता लोग इस वंश का इतिहास इसी प्रकार सुनाते हैं—ऐसा हमने भी सुना है। ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा नाभाग के पुत्र अम्बरीष की भुजाओं से पाली गयी पृथ्वी तीनों तापों से सर्वदा के लिए विहीन हो गयी थी, अर्थात् उसके समय में प्रजाओं को किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। अम्बरीष के पुत्र सिन्धुद्वीप का पुत्र आयुतायु हुआ, वह भी परम बलशाली राजा था। उस आयुतायु का उत्तराधिकारी महान यशस्वी राजा ऋतुपर्ण हुआ ॥ १७०-१७२ ॥

यह ऋतुपर्ण राजा नल का परम सुहृद एवं बलवान् राजा था, दिव्य अक्ष विद्या में वह परम निपुण था। पुराणों में दो नल विख्यात हैं, वे दोनों ही परम साहसी एवं वीर हैं, उनमें एक नल राजा वीरसेन के पुत्र थे, दूसरे इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए थे। राजा ऋतुपर्ण के पुत्र राजा सर्वकाम थे, उनके पुत्र का नाम सुदास था, इस सुदास का दूसरा नाम हंसमुख भी था (अथवा उसका मुख हंस की तरह था)। उस सुदास के पुत्र राजा सौदास के नाम से कहे जाते. हैं। इनका दूसरा नाम कल्माषपाद तथा मित्रसह भी विख्यात है ॥ १७३-१७५ ॥

महान तेजस्वी महर्षि वसिष्ठ ने राजा कल्माषपाद के क्षेत्र में (स्त्री में) इक्ष्वाकु के वंश की वृद्धि के लिए अश्मक नामक पुत्र को उत्पन्न किया। अश्मक का पुत्र उरकाम हुआ, उसका पुत्र मूलक था। उस राजा मूलक के विषय में आज भी लोग यह कहते हैं कि वह राजा मूलक राम (परशुराम) के भय से स्त्रियों के बीच में निवास करता था, समर्थ होते हुए भी वह वस्त्र-विहीन होकर अपनी रक्षा के लिए स्त्रियों को कवच बनाये हुए था। अथवा पुरुषों का वेश छोड़कर स्त्रियों का वेश धारण किये हुए था ॥ १७६-१७८ ॥

मूलकस्यापि धर्मात्मा राजा शतरथः स्मृतः । तस्माच्छतरथाज्जज्ञे राजा चैडिविडो बली ॥ १७९ ॥
असीत्त्वैडिविडः श्रीमान्कृतशर्मा प्रतापवान् । पुत्रो विश्वमहत्तस्य पुत्रीकस्य व्यजायत ॥ १८० ॥
दिलीपस्तस्य पुत्रोऽभूत्खट्वाङ्ग इति विश्रुतः । येन स्वर्गादिहाऽऽगम्य मूहूर्तं प्राप्य जीवितम् ॥
त्रयोऽभिसंहिता लोका बुध्या सत्येन चैव हि ॥ १८१ ॥
दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तमादजायत । अजः पुत्रो रघोश्चापि तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान् ॥
राजा दशरथो नाम इक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥ १८२ ॥
रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः । भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः ॥ १८३ ॥
माधवं लवणं हत्वा गत्वा मधुवनं च तत् । शत्रुघ्नेन पुरी तत्र मथुरा संनिवेशिता ॥ १८४ ॥
सुबाहुः शूरसेनश्च शत्रुघ्नसहितावुभौ । पालयामासतुः सुतौ वैदेह्यौ मथुरां पुरीम् ॥ १८५ ॥
अङ्गदश्चन्द्रकेतुश्च लक्ष्मणस्याऽऽत्मजावुभौ । हिमवत्पर्वताभ्यासे स्फीतौ जनपदौ तयोः ॥ १८६ ॥
अङ्गदस्याङ्गदीया तु देशे कारपथे पुरी । चन्द्रकेतोस्तु मल्लस्य चन्द्रवक्त्रा पुरी शुभा ॥ १८७ ॥
भरतस्याऽऽत्मजौ वीरौ तक्षः पुष्कर एव च । गान्धारविषये सिद्धे तयोः पुर्यौ महात्मनोः ॥ १८८ ॥
तक्षस्य दिक्षु विख्याता रम्या तक्षशिला पुरी । पुष्करस्यापि वीरस्य विख्याता पुष्करावती ॥ १८९ ॥

उस राजा मूलक के पुत्र परम धर्मात्मा राजा शतरथ कहे जाते हैं । उस राजा शतरथ से परम बलवान् राजा ऐडिविड उत्पन्न हुए । वे राजा ऐडिविड परम कान्तिशाली थे । उनके पुत्र प्रतापशाली कृतशर्मा हुए, कृतशर्मा के विश्वमहत् नामक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १७९-१८० ॥

उनके पुत्र दिलीप हुए, जो खट्वांग नाम से भी प्रसिद्ध थे । वे राजा दिलीप स्वर्गलोक से पृथ्वीलोक पर आकर दो घड़ी तक जीवित रहे । अपने सत्य, बुद्धि एवं बल से उन्होंने तीनों लोकों को पराजित कर दिया था । उन राजा खट्वांग के पुत्र दीर्घबाहु हुए, उनसे राजा रघु हुए, रघु के परम बलवान् अज उत्पन्न हुए । उन्हीं अज से इक्ष्वाकु के कुल को आनन्दित करनेवाले परम बलशाली राजा दशरथ हुए ॥ १८१-१८२ ॥

दशरथ के पुत्र रामचन्द्र परम धर्मज्ञ थे, समस्त लोक में उनकी धर्मज्ञता विख्यात थी । राम के अतिरिक्त भरत, लक्ष्मण और महाबलवान् शत्रुघ्न नामक उनके तीन पुत्र और थे । मधु के पुत्र लवणासुर का संहार कर, और मधुवन में प्रवेशकर शत्रुघ्न ने वहीं पर मथुरा नामक पुरी की प्रतिष्ठापना की थी । विदेह की राजकुमारी से उत्पन्न होने वाले सुबाहु और शूरसेन नामक दोनों पुत्रों ने अपने पिता शत्रुघ्न के साथ मथुरापुरी का शासन एवं वहाँ की प्रजाओं का पालन-पोषण किया था । लक्ष्मण के अङ्गद और चन्द्रकेतु नामक दो पुत्र थे, उन दोनों के राज्य हिमवान् पर्वत के सीमावर्ती प्रान्तों में विस्तृत थे ॥ १८३-१८६ ॥

बड़े पुत्र अङ्गद की राजधानी कारपथ देश में अंगदीया नाम से विख्यात पुरी थी । मल्ल (बलवान्) चन्द्रकेतु की चन्द्रवक्त्रा नामक परम शोभायमान पुरी थी । भरत के पुत्र तक्ष और पुष्कर दोनों बड़े वीर थे । उन दोनों महात्मा बलशालियों की राजधानी गान्धार नामक सिद्ध देश में थी । तक्ष की विख्यात व रमणीय तक्षशिला नामक पुरी थी । वीरवर पुष्कर की भी पुष्करावती नामक राजधानी थी ॥ १८७-१८९ ॥

गाथां चैवात्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः। रामे निबद्धास्तत्त्वार्था माहात्म्यात्तस्य धीमतः ॥ १९० ॥
श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषितः। आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः ॥ १९१ ॥
दश वर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् । ऋक्सामयजुषां घोषो ज्याघोषश्च महास्वनः ॥ १९२ ॥
अविच्छिन्नोऽभवद्राष्ट्रे दीयतां भुज्यतामिति । जनस्थाने वसन्कार्यं त्रिदशानां चकार सः ॥ १९३ ॥
तमागस्कारिणं पूर्वं पौलस्त्यं मनुजर्षभः । सीतायाः पदमन्विच्छन्निजघान महायशाः ॥ १९४ ॥
सत्त्ववान् गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा । अति सूर्यं च वह्निं च रामो दाशरथिर्बभौ ॥ १९५ ॥
एवमेव महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः । रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे विभुः ॥ १९६ ॥
श्रीरामस्याऽऽत्मजो जज्ञे कुश इत्यभिधीयते । लवश्चान्यो महावीर्यस्तयोर्देशौ निबोधत ॥ १९७ ॥
कुशस्य कोशला राज्यं पुरी वाऽपि कुशस्थली । रम्या निवेशिता तेन विन्ध्यपर्वतसानुषु ॥ १९८ ॥
उत्तराकोशले राज्यं लवस्य च महात्मनः । श्रावस्ती लोकविख्याता कुशवंशं निबोधत ॥ १९९ ॥

पुराणों के जानने वाले लोग परम बुद्धिमान् राम के विषय में उनके माहात्म्य को प्रकट करने वाली तत्त्वपूर्ण यशोगाथाओं का गान करते थे ॥ १९० ॥

वे ऐसा कहते हैं कि राम श्यामलवर्ण के, लाल नेत्रोंवाले, तेज से देदीप्यमान मुखमण्डल वाले एवं मितभाषी युवक थे उनका मुख परम सुन्दर था, उनकी दोनों बाहुएँ घुटनों को छूनेवाली थीं, सिंह के समान उनका विशाल कन्धा था, उनके भुजदण्ड विशाल थे। राम ने दस सहस्र वर्षों तक राज्य किया था। उनके राज्य में चारों ओर ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद की सुन्दर मनोहारिणी ध्वनि सुनायी पड़ती थी। उनके धनुष की प्रत्यंचा की ध्वनि अत्यन्त कठोर थी ॥ १९१-१९२ ॥

उनके राष्ट्र में किसी को भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं था, लोगों में खूब दान करो, खूब खाओ-पीओ की धूम मची थी। उस राम ने जनस्थान में निवासकर देवताओं का एक परम आवश्यक कार्य सम्पन्न किया था। उन मनुज शिरोमणि महान् यशस्वी राम ने पुलस्त्य मुनि के वंश में उत्पन्न होनेवाले, पापात्मा रावण का संहार सीता को खोजते समय किया था ॥ १९३-१९४ ॥

दशरथ के पुत्र राम परम बलशाली थे और सभी गुणों से सम्पन्न थे। वे अपने अनुपम तेज से देदीप्यमान थे। सूर्य एवं अग्नि के तेज को भी उन्होंने अपने तेज से अतिक्रान्त कर दिया था। उन (दाशरथी राम) ने जो परम प्रभावशाली एवं महाबाहु इक्ष्वाकु के कुल को आनन्दित करने वाले थे, परिवार समेत रावण का विनाश कर दिया और इसी प्रकार स्वर्ग को चले गये ॥ १९५-१९६ ॥

श्रीराम के पुत्र कुश नाम से विख्यात हुए। लव नामक महाबलवान् एक पुत्र और था। उन दोनों के देशों का विवरण सुनिये। कुश का राज्य कोशला नाम से विख्यात था, उसकी राजधानी कुशस्थली नामक पुरी थी, कुश ने विन्ध्याचल के मनोहर पर्वत शिखर पर उसकी स्थापना की थी ॥ १९७-१९८ ॥

महाबलवान् लव का राज्य उत्तर कोशला के नाम से विख्यात था। उसकी परम विख्यात श्रावस्ती पुरी राजधानी थी। अब कुश के वंश को सुनिये ॥ १९७-१९९ ॥

कुशस्य पुत्रो धर्मात्मा ह्यतिथिः सुप्रियातिथिः। अतिथेरपि विख्यातो निषधो नाम पार्थिवः ॥ २०० ॥
निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु । नभसः पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ॥ २०१ ॥
क्षेमधन्वसुतो राजा देवानीकः प्रतापवान् । आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः ॥ २०२ ॥
अहीनगोस्तु दायादः पारियात्रो महायशाः। दलस्तस्याऽऽत्मजश्चापि तस्माज्जज्ञे बलो नृपः॥ २०३ ॥
औङ्को नाम स धर्मात्मा बलपुत्रो बभूव ह । वज्रनाभसुतस्तस्य शङ्खनस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ २०४ ॥
शङ्खनस्य सुतो विद्वान्ध्युषिताश्व इति श्रुतः । ध्युषिताश्वसुतश्चापि राजा विश्वसहः किल ॥ २०५ ॥
हिरण्यनाभकौशल्यो वशिष्ठस्तत्सुतोऽभवत् । पौत्रस्य जैमिनेः शिष्यः स्मृतः सर्वेषु शर्मसु॥ २०६ ॥
शतानि संहितानां तु पञ्च योऽधीतवांस्ततः । तस्मादधिगतो योगो याज्ञवल्क्येन धीमता ॥ २०७ ॥
पुष्यस्तस्य सुतो विद्वान्ध्रुवसंधिश्च तत्सुतः । सुदर्शनस्तस्य सुतो अग्निवर्णः सुदर्शनात् ॥ २०८ ॥
अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रकस्य मनुः स्मृतः। मनुस्तु योगमास्थाय कलापग्राममास्थितः ॥
एकोनविंशप्रयुगे क्षत्रप्रावर्तकः प्रभुः ॥ २०९ ॥
प्रसुश्रुतो मनोः पुत्रः सुसंधिस्तस्य चाऽऽत्मजः। सुसंधेश्च तथा मर्षः सहस्वान्नाम नामतः ॥ २१० ॥

कुश के पुत्र परम धर्मात्मा अतिथि थे, वे अतिथियों का विशेष सम्मान करते थे। अतिथि के पुत्र परम विख्यात राजा निषध हुए। निषेध के पुत्र नल और नल के पुत्र नभ हुए। नभ के पुत्र पुण्डरीक हुए, पुण्डरीक के बाद उनके पुत्र क्षेमधन्वा का नाम कहा गया है ॥ २००-२०१ ॥

क्षेमधन्वा के पुत्र परम बलवान् देवानीक नामक राजा हुए। देवानीक के पुत्र परम प्रभावशाली अहीनगु नामक राजा हुए। अहीनगु के उत्तराधिकारी उनके पुत्र महान् यशस्वी राजा पारियात्र हुए। उनके पुत्र दल और दल के पुत्र राजा बल उत्पन्न हुए। बल के पुत्र परम धर्मात्मा राजा औङ्क हुए और उन औङ्क के पुत्र वज्रनाभ हुए जिनके पुत्र शङ्खन हुए ॥ २०२-२०४ ॥

शङ्खन के परम विद्वान् ध्युषिताश्व नामक पुत्र कहे जाते हैं। ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा ध्युषिताश्व के पुत्र राजा विश्वसह हुए। राजा विश्वसह के पुत्र हिरण्यनाभ कौशल्य के नाम से विख्यात हुए। उनके पुत्र वशिष्ठ कहे गए हैं। उनको जैमिनि के पौत्र के शिष्य रूप में प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी। सभी मांगलिक कार्यों में उनकी सिद्धहस्तता प्रसिद्ध थी ॥ २००-२०६ ॥

इन्होंने पाँच सौ संहिताओं का विधिवत् अध्ययन किया था, परम बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य ने इन्हीं से योग की साङ्गोपाङ्ग शिक्षा प्राप्त की थी, उनके पुत्र परम विद्वान् पुष्य हुए। पुष्य के पुत्र ध्रुवसन्धि नाम से विख्यात हुए, उनके पुत्र सुदर्शन हुए, सुदर्शन से अग्निवर्ण की उत्पत्ति हुई ॥ २०७-२०८ ॥

अग्निवर्ण के पुत्र शीघ्र नाम से विख्यात हुए, शीघ्रक के पुत्र मनु कहे जाते हैं। मनु योग मार्ग का अवलम्ब करके कलाप नामक ग्राम में निवास करते थे, परम ऐश्वर्यशाली ये मनु उन्नीसवें युग में क्षत्रिय धर्म के पुनः प्रवर्तक रूप में प्रसिद्ध हुए ॥ २०९ ॥

आसीत्सहस्वतः पुत्रो राजा विश्रुतवानिति । तस्याऽऽसीद्विश्रुतवतः पुत्रो राजा बृहद्बलः ॥ २११ ॥
एते इक्ष्वाकुदायादा राजानः प्रायशः स्मृताः । वंशे प्रधाना ये तेऽस्मिन्प्राधान्येन तु कीर्तिताः ॥ २१२ ॥
पठन्सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः । प्रजावानेति सायुज्यं मनोर्वैवस्वतस्य सः ॥ २१३ ॥
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च । विपाप्मा विरजश्चैव आयुष्मान्भवतेऽच्युतः ॥ २१४ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे वैवस्वतमनुवंशवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

* * *

मनु के पुत्र प्रसुश्रुत थे । उनके पुत्र सुसंधि हुए । सुसंधि के मर्ष नामक पुत्र हुए, जिनका दूसरा नाम सहस्वान् भी था ॥ ११० ॥

सहस्वान् के पुत्र राजा विश्रुतवान् के नाम से प्रसिद्ध हुए । उन राजा विश्रुतवान् के पुत्र राजा बृहद्बल हुए । इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न होनेवाले प्राय: यही राजागण स्मरण किये जाते हैं, जो इस वंश के प्रमुख राजा थे, उनका वर्णन प्रधान रूप से कह दिया गया है ॥ २११-११२ ॥

अदिति के पुत्र विवस्वान् की इस सृष्टि के विवरण को जो मनुष्य भलीभाँति पाठ करता है, वह सन्तति वाला होता है तथा विवस्वान् के पुत्र मनु का सान्निध्य प्राप्त करता है । प्रजाओं की पुष्टि देने वाले श्राद्धों में पूजनीय पितरगण एवं देवगण का यह वृत्तान्त जो पढ़ता है, वह समस्त पापों से रहित, रजोगुण से रहित, अविनाशशील एवं दीर्घायु वाला होता है ॥ २१३-२१४ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में वैवस्वतमनुवंशवर्णन नामक छब्बीसवें अध्याय (अट्ठासीवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २६ ॥**

* * *

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

वैवस्वतमनुवंशान्तर्गतमैथिलवंशानुकीर्त्तनम्

सूत उवाच

अनुजस्य विकुक्षेस्तु निमेर्वंशं निबोधत। योऽसौ निवेशयामास परं देवपुरोपमम्॥ १ ॥
जयन्तमिति विख्यातं गौतमस्याऽऽश्रमाभितः। यस्यान्ववाये जज्ञे वै जनकादृषिसत्तमात्॥ २ ॥
नेमिर्नाम सुधर्मात्मा सर्वसत्त्वनमस्कृतः। आसीत्पुत्रो महाप्राज्ञ इक्ष्वाकोर्भूरितेजसः॥ ३ ॥
स शापेन वसिष्ठस्य विदेहः समपद्यत। तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनितः पर्वभिस्त्रिभिः॥ ४ ॥
अरण्यां मथ्यमानायां प्रादुर्भूतो महायशाः। नाम्ना मिथिरितिख्यातो जननाज्जनकोऽभवत्॥ ५ ॥
मिथिर्नाम महावीर्यो येनासौ मिथिलाऽभवत्। राजासौ जनको नाम जनकाच्चाप्युदावसुः॥ ६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

(नवासीवाँ अध्याय)

वैवस्वत मनु के वंश के अन्तर्गत मैथिल वंश का वर्णन

श्रीसूतजी ने कहा—तदनन्तर विकुक्षि के अनुज राजा निमि के वंश का वर्णन सुनिये। इन राजा निमि ने गौतम ऋषि के आश्रम के चारों ओर जयन्त नाम से प्रसिद्ध परम सुन्दर एक पुर की स्थापना की थी, जो देवपुर के समान मनोहर नगरी थी। उन्हीं निमि के वंश में ऋषि सत्तम जनक से नेमि नामक परम धर्मात्मा राजा उत्पन्न हुआ, जो सभी प्रजाजनों द्वारा नमस्करणीय था॥ १-३ ॥

परम तेजस्वी महाराज इक्ष्वाकु से जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वह महर्षि वसिष्ठ के शाप से विदेह (सूक्ष्म शरीर वाला) हो गया। विदेह के अरणी के तीन पर्वों के मंथन करने से महान् तेजस्वी मिथि नामक पुत्र हुए। इस प्रकार अरणिमन्थन से प्रादुर्भूत होने के कारण उन मिथि का जनक नाम प्रसिद्ध हुआ। वे मिथि परम बलवान् राजा थे, उन्हीं के नाम पर मिथिलापुरी की ख्याति हुई। इसी राजा जनक से राजा उदावसु की उत्पत्ति हुई॥ ३-६ ॥

उदावसोः सुधर्मात्मा जनितो नन्दिवर्धनः । नन्दिवर्धनतः शूरः सुकेतुर्नाम धार्मिकः ॥ ७ ॥
सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः । देवरातस्य धर्मात्मा बृहदुच्छ इति श्रुतिः ॥ ८ ॥
बृहदुच्छस्य तनयो महावीर्यः प्रतापवान् । महावीर्यस्य धृतिमान्सुधृतिस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ ९ ॥
सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः परंतपः । धृष्टकेतुसुतश्चापि हर्यश्वो नाम विश्रुतः ॥ १० ॥
हर्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतित्वकः । प्रतित्वकस्य धर्मात्मा राजा कीर्तिरथः सुतः ॥ ११ ॥
पुत्रः कीर्तिरथस्यापि देवमीढ इति श्रुतः । देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य सुतो धृतिः ॥ १२ ॥
महाधृतिसुतो राजा कीर्तिराजः प्रतापवान् । कीर्तिराजात्मजो विद्वान्महारोमेति विश्रुतः ॥ १३ ॥
महारोम्णस्तु विख्यातः स्वर्णरोमा व्यजायत । स्वर्णरोमात्मजश्चापि ह्रस्वरोमाऽभवन्नृपः ॥ १४ ॥
ह्रस्वरोमात्मजो विद्वान्सीरध्वज इति श्रुतिः । उद्भिन्ना कृषता येन सीता राज्ञा यशस्विनी ॥
रामस्य महिषी साध्वी सुव्रताऽतिपतिव्रता ॥ १५ ॥

शांशपायन उवाच

कथं सीता समुत्पन्ना कृष्यमाणा यशस्विनी । किमर्थं चाकृषद्राजा क्षेत्रं यस्मिन्बभूव ह ॥ १६ ॥

सूत उवाच

अग्निक्षेत्रे कृष्यमाणे अश्वमेधे महात्मनः । विधिना सुप्रयुक्तेन तस्मात्सा तु समुत्थिता ॥ १७ ॥

उदावसु से धर्मात्मा राजा नन्दिवर्धन की उत्पत्ति हुई । नन्दिवर्धन से वीर एवं धार्मिक सुकेतु की उत्पत्ति हुई । सुकेत् के धर्मात्मा एवं महाबलवान् देवरात उत्पन्न हुए । उन देवरात से धर्मात्मा राजा बृहदुच्छ की उत्पत्ति सुनी जाती है । राजा बृहदुच्छ के पुत्र परम प्रतापी राजा महावीर्य नाम से विख्यात थे, महावीर्य के पुत्र धृतिमान् थे और उनके पुत्र सुधृति हुए । सुधृति के पुत्र परम तपस्वी एवं धर्मात्मा धृष्टकेतु थे । धृष्टकेतु के पुत्र हर्यश्व भी प्रसिद्ध राजा थे ॥ ७-१० ॥

हर्यश्व के पुत्र मरु और मरु के पुत्र प्रतित्वक हुए । प्रतित्वक के पुत्र परम धर्मात्मा राजा कीर्तिरथ थे । राजा कीर्तिरथ के पुत्र देवमीढ़ नाम से प्रसिद्ध थे । देवमीढ़ के पुत्र विबुध और विबुध के पुत्र धृति हुए ॥ ११-१२ ॥

उस राजा महाधृति के पुत्र परम प्रतापशाली राजा कीर्तिराज हुए । कीर्तिराज के पुत्र परम विद्वान् राजा महारोमा नाम से विख्यात थे । राजा महारोमा के पुत्र स्वर्णरोमा हुए । स्वर्णरोमा के पुत्र राजा ह्रस्वरोमा हुए । ह्रस्वरोमा के पुत्र राजा सीरध्वज कहे जाते हैं । वही राजा सीरध्वज एक बार जब पृथ्वी जोत रहे थे उस समय परम यशस्विनी सीता देवी का प्रादुर्भाव हुआ—ऐसी प्रसिद्धि है । वे सीता रामचन्द्र की परम साध्वी, पतिव्रता, सद्व्रतपरायणा पत्नी थीं ॥ १३-१५ ॥

शांशपायन ने कहा—हे सूत जी ! पृथ्वी जोतते समय परम यशस्विनी सीता देवी का प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ? फिर राजा सीरध्वज किस प्रयोजनवश उस क्षेत्र को जोत रहे थे जिसमें सीता की उत्पत्ति हुई ? ॥ १६ ॥

सूत ने कहा—अश्वमेघ यज्ञ के अवसर पर महाराज सीरध्वज ने विधिपूर्वक जिस अग्निक्षेत्र का कर्षण किया, उसी से सीता का प्राकट्य हुआ । उस राजा सीरध्वज से भानुमान् का जन्म हुआ, जो मैथिल नाम से

सीरध्वजात्तु जातस्तु भानुमान्नाम मैथिलः । भ्राता कुशध्वजस्तस्य स काश्याधिपतिर्नृपः ॥ १८ ॥
तस्य भानुमतः पुत्रः प्रद्युम्नश्च प्रतापवान् । मुनिस्तस्य सुतश्चापि तस्मादूर्जवहः स्मृतः ॥ १९ ॥
ऊर्जवहात्सुतद्वाजः शकुनिस्तस्य चाऽऽत्मजः। स्वागतः शकुनेः पुत्रः सुवर्चास्तत्सुतः स्मृतः ॥ २० ॥
श्रुतो यस्तस्य दायादः सुश्रुतस्तस्य चाऽऽत्मजः। सुश्रुतस्य जयः पुत्रो जयस्य विजयः सुतः ॥ २१ ॥
विजयस्य ऋतः पुत्र ऋतस्य सुनयः स्मृतः । सुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्यात्मजो धृतिः ॥ २२ ॥
धृतेस्तु बहुलाश्वोऽभूद्बहुलाश्वसुतः कृतिः । तस्मिन्संतिष्ठते वंशो जनकानां महात्मनाम् ॥
इत्येते मैथिलाः प्रोक्ताः सोमस्यापि निबोधत ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे वैवस्वतमनुवंशान्तर्गतमैथिलवंशानुकीर्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

* * *

विख्यात था । उसका भाई कुशध्वज था, जो काशी का राजा हुआ । उस राजा भानुमान् का पुत्र प्रतापशाली प्रद्युम्न हुआ, उसका पुत्र मुनि था, उन मुनि से ऊर्जवह की उत्पत्ति कही जाती है ॥ १७-१९ ॥

ऊर्जवाह से सुतद्वाज की उत्पत्ति हुई, उसका पुत्र शकुनि हुआ, उस शकुनि का पुत्र स्वागत हुआ, जिसका पुत्र सुवर्चा कहा जाता है । सुवर्चा का पुत्र श्रुत और श्रुत का पुत्र सुश्रुत हुआ । सुश्रुत का पुत्र जय और जय का पुत्र विजय हुआ ॥ २०-२१ ॥

विजय का पुत्र ऋत और ऋत का पुत्र सुनय कहा जाता है । सुनय से वीतहव्य की उत्पत्ति हुई, वीतहव्य का पुत्र धृति हुआ । धृति का पुत्र बहुलाश्व हुआ, बहुलाश्व का पुत्र कृति हुआ । इसी राजा कृति तक महान् प्रतापी जनक नामधारी राजाओं का वंश प्रतिष्ठित माना जाता है । मैथिल नामधारी राजाओं का वर्णन किया जा चुका, अब चन्द्रमा के वंश का भी वर्णन सुनिये ॥ २२-२३ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में वैवस्वत मनु के वंश के अन्तर्गत मैथिल वंश का वर्णन नामक सत्ताइसवें अध्याय (नवासीवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २७ ॥**

* * *

अथ अष्टाविंशोऽध्यायः

सोमोत्पत्तिकथन

सूत उवाच

पिता सोमस्य वै विप्रा जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः। सोऽतिस्थौ सर्वलोकान् भगवान् स्वेन तेजसा॥ १ ॥
कर्मणा मनसा वाचा शुभान्येव समाचरन् । काष्ठकुड्यशिलाभूत ऊर्ध्वमाहुर्महाद्युतिः ॥ २ ॥
सुदुश्चरं नाम तपो येन तप्तं महत्पुरा । त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम्॥ ३ ॥
तस्योर्ध्वरेतसस्तत्र स्थितस्यानिमिषस्पृहम् । सोमत्वं तनुरापेदे महबुद्धिः स वै द्विजः॥ ४ ॥
ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य सोमत्वं भावितात्मनः । सोमः सुस्राव नेत्राभ्यां दश वा द्योतयन्दिशः॥ ५ ॥
तं गर्भं विधिनाऽऽदिष्टा दश देव्यो दधुस्तदा । समेत्य धारयामासुर्नच तास्तमशक्नुवन्॥ ६ ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

(नब्बेवाँ अध्याय)

चन्द्रमा का जन्म वृत्तान्त

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषियों ! चन्द्रमा के पिता परम तेजस्वी एवं ऐश्वर्यशाली अत्रि ऋषि थे । वे समस्त लोकों के कल्याण के लिए तपस्या में निरत रहते थे ॥ १ ॥

मनसा, वाचा, कर्मणा सर्वदा शुभ कार्यों में ही वे तत्पर रहते थे । काष्ठ, भीत अथवा पत्थर की चट्टान की भाँति वह परम तेजस्वी महर्षि सर्वदा ऊपर बाहु किये हुए दुश्चर तपस्या में निरत थे । कठोर तपस्या में महर्षि अत्रि देवताओं के तीन सहस्र वर्ष तक लगे रहे, ऐसा हम लोगों ने सुना है ॥ २-३ ॥

परम ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरेता महर्षि अत्रि ने इतनी लम्बी अवधि तक पलक मारने की इच्छा भी नहीं की, अर्थात् वे निर्निमेष दृष्टि तपस्या में लगे ही रहे । इस परम कठोर तप के प्रभाव से द्विजवर्य महाबुद्धिमान् अत्रि का शरीर चन्द्रमा की भाँति निर्मल हो गया । आत्मा को वश में करनेवाले उन भगवान् अत्रि के सोमत्व ने ऊर्ध्व देश पर आक्रमण किया, अर्थात् उनके शिरोभाग की अतीव कान्ति बढ़ गयी, ठीक उसी समय दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए, उनके दोनों नेत्रों से सोम नीचे गिर पड़ा ॥ ४-५ ॥

ब्रह्मा के आदेशानुसार उस गर्भ को दसों देवियों अर्थात् दिशाओं ने धारण कर लिया, किन्तु एक साथ

स ताभ्यः सहसैवाथ दिग्भ्यो गर्भः प्रभान्वितः। यथाऽवभासयल्लोकान्शीतांशुः सर्वभावनः ॥ ७ ॥
यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ताः स्त्रियः । ततः स ताभिः शीतांशुर्निपपात वसुंधराम् ॥ ८ ॥
पतन्तं सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः । रथमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया ॥ ९ ॥
स हि देवमयो विप्रा धर्मार्थी सत्यसंगरः । युक्तो वाजिसहस्रेण सितेनेति हि नः श्रुतम् ॥ १० ॥
तस्मिन्निपतिते देवाः पुत्रेऽत्रेः परमात्मनि । तुष्टुवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सप्त विश्रुताः ॥ ११ ॥
तत्रैवाङ्गिरसस्तस्य भृगोश्चैवाऽत्मजस्तथा । ऋग्भिर्यजुभिर्बहुभिरथर्वाङ्गिरसैरपि ॥ १२ ॥
ततः संस्तूयमानस्य तेजः सोमस्य भास्वतः । आप्यायमानं लोकांस्त्रीन्भावयामास सर्वशः ॥ १३ ॥
समेन रथमुख्येन सागरान्तां वसुंधराम् । त्रिःसप्तकृत्वो विपुलश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ॥ १४ ॥
तस्य यच्चापि तत्तेजः पृथिवीमन्वपद्यत । ओषध्यस्ताः समुद्भूतास्तेजसा संज्वलन्त्युत ॥ १५ ॥
ताभिर्धार्यत्ययं लोकान्प्रजाश्चापि चतुर्विधाः। पोष्टा हि भगवान्सोमो जगतो हि द्विजोत्तमाः ॥ १६ ॥
स लब्धतेजास्तपसा संस्तवैस्तैश्च कर्मभिः । तपस्तेपे महाभागः पद्मानां दशतीर्दश ॥ १७ ॥
हिरण्यवर्णा या देव्यो धारयन्त्यात्मना जगत् । विभुस्तासां भवेत्सोमः प्रख्यातः स्वेन कर्मणा ॥ १८ ॥

मिलकर भी वे उसे धारण करने में असमर्थ हो गयीं। परम तेजोमय वह गर्भ जब थोड़ी देर के लिए भी दिशाओं द्वारा धारण नहीं किया जा सका, और वे सब स्त्रियाँ अशक्त हो गयीं, तब समस्त लोकों का मनोभावन, शीतल किरणों वाला वह गर्भ उनके उदर से निकलकर समस्त लोकों को प्रकाशमय करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। लोक पितामह ब्रह्मा जी ने इस प्रकार गिरते हुए सोम को लोक-कल्याणार्थ अपने रथ पर बैठा लिया ॥ ६-९ ॥

हे विप्रगण ! वह चन्द्रमा दिव्यगुण सम्पन्न हैं, धर्मार्थ में निरत रहनेवाले एवं सत्यप्रतिज्ञ हैं, हमने ऐसा सुना है कि वे एक सहस्र श्वेत घोड़ों के रथ पर विराजमान रहते हैं। अत्रि के पुत्र, परम तेजोमय चन्द्रमा के इस प्रकार पृथ्वी पर गिरने पर देवताओं एवं ब्रह्मा के परम विख्यात सातों मानस पुत्रों ने उनकी स्तुति की। अंगिरा एवं भृगु के पुत्रों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद एवं आंगिरस के मन्त्रों से उनकी विधिवत् स्तुति की ॥ १०-१२ ॥

इन सबों से स्तुति किये जाते हुए परम तेजस्वी चन्द्रमा के तेज ने तीनों लोकों को सन्तुष्ट कर दिया, सबको अपने शान्त स्निग्ध प्रकाश से सुप्रसन्न कर दिया। महान् चन्द्रमा ने उस समय ब्रह्मा जी के उस रथ पर विराजमान होकर सागरपर्यन्त विस्तृत पृथ्वी की इक्कीस बार प्रदक्षिणा की ॥ १३-१४ ॥

चन्द्रमा का जो तेज पृथ्वी पर गिर पड़ा था, वह ओषधियों के रूप में परिणत हो गया। आज भी वे ओषधियाँ चन्द्रमा के तेज से जाज्वल्यमान रहती हैं ॥ १५ ॥

चन्द्रमा उन्हीं ओषधियों द्वारा समस्त लोकों एवं चार प्रकार की प्रजाओं का पालन करता है। हे द्विजवर्यगण ! इस समस्त चराचर जगत् के पुष्टि देनेवाले परम ऐश्वर्य भगवान् चन्द्रमा ही एकमात्र हैं। देवताओं और ऋषियों की स्तुतियों से तथा अपने रूप कर्मों द्वारा परम तेजोबल प्राप्तकर महाभाग्यशाली चन्द्रमा दस पद्म वर्षों तक घोर तपस्या में लगे रहे ॥ १६-१७ ॥

सुवर्ण के समान वर्णों वाली जो देवियाँ अपने में इस समस्त चराचर जगत् को धारण करती हैं, उन्हीं के

ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः । बीजौषधिषु विप्राणामपां च द्विजसत्तमाः ॥ १९ ॥
सोऽभिषिक्तो महातेजा महाराज्येन राजराट् । लोकानां भावयामास स्वभावात्तपतां वरः ॥ २० ॥
सप्तविंशतिरिन्दोस्तु दाक्षायण्यो महाव्रताः । ददौ प्राचेतसो दक्षो नक्षत्राणीति या विदुः ॥ २१ ॥
स तत्प्राप्य महद्राज्यं सोमः सोमवतां प्रभुः । समा जज्ञे राजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ॥ २२ ॥
हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्मा ब्रह्मत्वमेयिवान् । सदस्यस्तत्र भगवान्हरिर्नारायणः प्रभुः ॥
सनत्कुमारप्रमुखैराद्यैर्ब्रह्मर्षिभिर्वृतः ॥ २३ ॥
दक्षिणामददात्सोमस्त्रींल्लोकानिति नः श्रुतम् । तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च वै द्विजाः ॥ २४ ॥
तं सिनी च कुहूश्चैव वपुः पुष्टिः प्रभा वसुः। कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे ॥ २५ ॥
प्राप्यावभृथमव्यग्रः सर्वदेवर्षिपूजितः । अतिराजातिराजेन्द्रो दशधा तापयद्दिशः ॥ २६ ॥
तदा तत्प्राप्य दुष्प्रापमैश्वर्यमृषिसंस्तुतम् । स विभ्रममतिर्विप्रा विनयोऽविनयाहतः ॥ २७ ॥
बृहस्पतेः स वै भार्यां तारां नाम यशस्विनीम् । जहार सहसा सर्वानवमत्याङ्गिरः सुतान् ॥ २८ ॥

गर्भ से परम तेजस् एवं सर्वसमर्थ चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई और वे अपने कर्मों द्वारा प्रख्यात हुए ॥ १८ ॥

हे ऋषिवृन्द ! तदनन्तर ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ भगवान् ब्रह्मा ने चन्द्रमा को समस्त बीजों, ओषधियों, ब्राह्मणों एवं जल जगत् का राज्यभार समर्पित किया ॥ १९ ॥

इस महान् दायित्वपूर्ण राज्य पद पर प्रतिष्ठित होने पर चन्द्रमा का प्रताप बहुत अधिक बढ़ गया । तपस्वियों में अग्रगण्य चन्द्रमा ने इस पद पर प्रतिष्ठित होकर अपने सुन्दर स्वभाव से समस्त लोक को परम सन्तुष्ट रखा । प्रचेता के पुत्र दक्ष ने दाक्षायणी के गर्भ से उत्पन्न, परम तपोव्रत का पालन करने वाली सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमा को समर्पित कीं, जिन्हें लोग नक्षत्र नाम से जानते हैं ॥ २०-२१ ॥

ब्राह्मणों के स्वामी चन्द्रमा ने इतने बड़े राज्याधिकार की प्राप्ति के बाद एक विराट् राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया, जिसमें लाखों की दक्षिणा प्रदान की । उस विशाल राजसूय यज्ञ में भगवान् हिरण्यगर्भ उद्गाता के पद पर ब्रह्मा, ब्रह्मा के पद पर नारायण, विष्णु सदस्य के स्थान पर, सनत्कुमार प्रभृति आद्य महर्षियों समेत विराजमान थे । हे द्विजवर्यवृन्द ! उस यज्ञ में चन्द्रमा ने उन प्रमुख ब्रह्मर्षियों को तथा जो सदस्य बने हुए थे उन्हें दक्षिणा रूप में तीनों लोकों को समर्पित कर दिया—ऐसा हमने सुना है ॥ २२-२४ ॥

उस चन्द्रमा की सिनी, कुहू, वपु, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति तथा लक्ष्मी—ये नवों देवियाँ सेवा कर रही थीं । उस राजसूय यज्ञ का अवभृथ स्नान कर चुकने के बाद सभी देवताओं और ऋषियों से सत्कार प्राप्तकर चन्द्रमा जब निश्चिन्त हो गये, तब अपने विशाल साम्राज्य के सिंहासन पर समासीन होकर, राजाधिराज बनकर दसों दिशाओं को दस प्रकार से तपाने लगे ॥ २५-२६ ॥

हे विप्रवृन्द ! ऋषियों द्वारा स्तुत उस चन्द्रमा की मति ऐसे दुष्प्राप्य ऐश्वर्य की प्राप्ति कर लेने के बाद भ्रान्त हो गयी, उसके विनय पर अविनय ने अधिकार कर लिया अर्थात् वह बड़ा कठोर एवं दम्भी हो गया । उसने अंगिरा के समस्त पुत्रों की उपेक्षा करके बृहस्पति की तारा नामक प्रसिद्ध पत्नी को हर लिया ॥ २७-२८ ॥

स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिश्च ह । नैव व्यसर्जयत्तारां तस्मायाङ्गिरसे तदा॥ २९ ॥
उशना तस्य जग्राह पार्ष्णिमङ्गिरसो द्विजाः। स हि शिष्यो महातेजाः पितुः पूर्व बृहस्पतेः॥ ३० ॥
तेन स्नेहेन भगवानुद्रस्तस्य बृहस्पतेः । पार्ष्णिग्राहोऽभवद्देवः प्रगृह्याऽऽजगवं धनुः॥ ३१ ॥
तेन ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः परमास्त्रं महात्मना । उद्दिश्य देवानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः॥ ३२ ॥
तद्युद्धमभवत्प्रत्यक्षं तारकामयम् । देवानां दानवानां च लोकक्षयकरं महत्॥ ३३ ॥
तत्र शिष्टास्त्रयो देवास्तुषिताश्चैव ये स्मृताः । ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं पितामहम्॥ ३४ ॥
ततो निवार्योशनसं रुद्रं ज्येष्ठं च शंकरम् । ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः॥ ३५ ॥
अन्तर्वत्नीं च तां दृष्ट्वा तारां ताराधिपाननाम् । गर्भमुत्सृजसे न त्वं विप्रः प्राह बृहस्पतिः॥ ३६ ॥
मदीयायां तनौ योनौ गर्भो धार्यः कथं च न । अथो नावसृजत्तं तु कुमारं दस्युहन्तमम्॥ ३७ ॥
ईषिकास्तम्बमासाद्य ज्वलन्तमिव पावकम् । जातमात्रोऽथ भगवान्देवानामाक्षिपद्वपुः॥ ३८ ॥
ततः संशयमापन्नास्तारामकथयन्सुराः । सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः॥ ३९ ॥
ह्रियमाणा यदा देवान्नाऽऽह सा साध्वसाधु वा । तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो दस्युहन्तमः॥ ४० ॥
सन्निवार्य तदा ब्रह्मा तारां चन्द्रस्य संशयः । यदत्र तथ्यं तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम्॥ ४१ ॥

देवताओं और देवर्षियों के याचना करने पर भी वह तारा को लौटाने को तैयार नहीं हुआ। हे द्विजवृन्द! उस समय अंगिरा के पुत्र शुक्र उसके सहायक बने थे। महान् तेजस्वी उशना पहले बृहस्पति के पिता के शिष्य थे। उसी स्नेह के कारण भगवान् रुद्रदेव उस बृहस्पति के सहायक हुए, और अपना अजगव नामक प्रचण्ड धनुष लेकर उपस्थित हुए॥ २९-३१॥

महान् बलशाली रुद्रदेव ने उन प्रमुख ब्रह्मर्षियों के तथा देवताओं के उद्देश्य से उस महान् अस्त्र का संधान किया, जिससे उसका यश नष्ट हो गया। वहाँ प्रत्यक्ष तारकामय नामक युद्ध शुरू हो गया। देवताओं तथा दानवों का वह घोर युद्ध महान् लोकक्षयकारी हुआ॥ ३२-३३॥

उस युद्ध में तुषित नाम से प्रसिद्ध तीन देवता शेष बचे रहे। वे आदिदेव पितामह ब्रह्मा की शरण में गये। लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा ने स्वयं शुक्र को एवं इस विनाश कर्म में प्रवृत्त शंकर को निवारित किया और तारा को बृहस्पति को वापस किया। चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली तारा को गर्भवती देखकर विप्रवर्य बृहस्पति ने कहा, क्या तुम अब भी गर्भ त्याग नहीं कर रही हो? मेरी भूमि में तुम दूसरे वीर्य को किस प्रकार धारण कर सकती हो? तारा उस दस्युहन्तम कुमार को इस पर भी नहीं छोड़ सकी। इसी बीच तृण राशि में जलते हुए अग्नि की तरह वह कुमार उत्पन्न हो गया और उत्पन्न होते ही उस परम ऐश्वर्यशाली ने देवताओं को हतश्री कर दिया। देवता लोग इससे सन्देह में पड़ गये और तारा से कहने लगे, सच-सच बताओ, यह पुत्र किसका है, चन्द्रमा का अथवा बृहस्पति का॥ ३२-३९॥

देवताओं के इस प्रकार बारम्बार कहने पर भी जब तारा साधु-असाधु कुछ नहीं बोल सकी, तब दस्युहन्तम कुमार उसे शाप देने को उतारू हो गया। ब्रह्मा ने कुमार को निवारित कर पुनः तारा से पूछा—तारा!

सा प्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणं वरदं प्रभुम् । सोमस्येति महात्मानं कुमारं दस्युहन्तमम्॥ ४२ ॥
ततः सतमुपाघ्राय सोमो दाता प्रजापतिः । बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमतः॥ ४३ ॥
प्रतिपूर्वं च गमने समभ्युत्तिष्ठते बुधैः । उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिका॥ ४४ ॥
तस्य पुत्रो महातेजा बभूवैलः पुरूरवाः । उर्वश्यां जज्ञिरे तस्य पुत्राः षट्सुमहौजसः॥ ४५ ॥
प्रसह्य धर्षितस्तत्र विवशो राजयक्ष्मणा । ततो यक्ष्याभिभूतस्तु सोमः प्रक्षीणमण्डलः॥
जगाम शरणायाथ पितरं सोऽत्रिमेव तु ॥ ४६ ॥
तस्य तत्पापशमनं चकारात्रिर्महायशाः । स राजयक्ष्मणा मुक्तः श्रिया जज्वाल सर्वशः॥ ४७ ॥
एतत्सोमस्य वै जन्म कीर्तितं द्विजसत्तमाः । वंशं तस्य द्विजश्रेष्ठाः कीर्त्यमानं निबोधत॥ ४८ ॥
धनमारोग्यमायुष्यं पुण्यं कल्मषशोधनम् । सोमस्य जन्म श्रुत्वैव सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे सोमोत्पत्तिकथनं नाम अष्टाविंशोध्यायः ॥ २८ ॥

* * *

बताओ, इस विषय में सत्य क्या है? यह किसका पुत्र है, सच-सच बताओ, वरदायक, प्रभु ब्रह्मा से हाथ जोड़कर तारा ने कहा—यह महान् बलशाली दस्युहन्तम कुमार चन्द्रमा का है ॥ ४०-४२ ॥

दाता प्रजापति ने सुत का सिर सूंघकर उस परम बुद्धिमान् का नाम बुध रखा। उस समय बुध पूर्व दिशा में गमन करने के लिए उठ खड़े हुए। राजपुत्री इला के संयोग से बुध ने एक पुत्र उत्पन्न किया। बुध के उस परम तेजस्वी पुत्र का नाम पुरूरवा था, वह इला के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण ऐल नाम से भी विख्यात था। उर्वशी में उस बुध पुत्र के छह परमतेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए, राजयक्ष्मा रोग ने जबरदस्ती आकर चन्द्रमा को विवश एवं परेशान कर दिया, यक्ष्मा से अतिशय पीड़ित होने पर जब चन्द्रमा का मण्डल क्षीण हो गया, तब वह पितामह ब्रह्मा एवं अत्रि की शरण में गये ॥ ४३-४६ ॥

महान् यशस्वी अत्रि ने चन्द्रमा का पाप शमन किया, राजयक्ष्मा से मुक्ति प्राप्तकर चन्द्रमा पुनः अपनी कान्ति से चारों ओर प्रकाशित हो उठे। हे द्विजवृन्द ! यह चन्द्रमा के जन्म का वृत्तान्त आप लोगों से कह चुका। अब उनके वंश का वर्णन कर रहा हूँ। चन्द्रमा के इस जन्म वृत्तान्त को सुनने पर धन, आरोग्य, आयु, पुण्य, एवं पापों की शान्ति होती है। इसे सुनने से मनुष्य समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है ॥ ४७-४९ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में सोमोत्पत्ति कथन नामक अट्ठाइसवें अध्याय (नब्बेवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २८ ॥**

* * *

अथैकोनविंशोऽध्यायः

चन्द्रवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

सोमस्य तु बुधः पुत्रो बुधस्य तु पुरूरवाः । तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिणः ॥ १ ॥
ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधि दुर्जयः । आहर्ता चाग्निहोत्रस्य यज्वनां च ददौ महीम् ॥ २ ॥
सत्यवाक्कर्मबुद्धिश्च कान्तः संवृतमैथुनः । अतीव पुत्रो लोकेषु रूपेणाप्रतिमोऽभवत् ॥ ३ ॥
तं ब्रह्मवादिनं दान्तं धर्मज्ञं सत्यवादिनम् । उर्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी ॥ ४ ॥
तया सहावसद्राजा दश वर्षाणि चाष्ट च । सप्त षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च वीर्यवान् ॥ ५ ॥
वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे । अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे ॥ ६ ॥

उन्तीसवाँ अध्याय

(इक्यानबेवाँ अध्याय)

चन्द्रवंश का वर्णन

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! चन्द्रमा के पुत्र बुध और बुध के पुत्र पुरूरवा हुए । राजा पुरूरवा परमतेजस्वी, दानी, यज्ञकर्ता एवं विपुल दक्षिणा देनेवाला था । वह ब्रह्मवेत्ता था, शत्रु गण युद्ध में उसे किसी प्रकार भी नहीं जीत सकते थे, शत्रुओं का तो उसने विध्वंस कर डाला था । वह अग्निहोत्र का उपासक था, यज्ञ करने वालों को उसने सारी पृथ्वी दान में दे दी थी ॥ १-२ ॥

वह सर्वदा सत्य वचन बोलता था, कर्मशील एवं परम बुद्धिमान् था, देखने में परम सुन्दर था, वह गुप्त या उच्छृंखलतारहित मैथुनवाला था, लोक में वह एक अनुपम पुत्र था और अप्रतिम सौन्दर्य से युक्त था । उस ब्रह्मवादी, क्षमाशील, दानपरायण, धर्मज्ञ एवं सत्यभाषी पुरूरवा को अपने रूप के लिए परम यश प्राप्त करने वाली उर्वशी ने अपना मान छोड़कर पतिरूप में वरण किया ॥ ३-४ ॥

उस उर्वशी के साथ परम बलवान् राजा पुरूरवा ने दस, आठ, सात, छह, सात, आठ, दस, आठ अर्थात् कुल मिलाकर चौंसठ वर्षों तक सुखपूर्वक निवास किया । वह कभी मनोरम चैत्ररथ नामक वन में, कभी मन्दाकिनी के रमणीय तटवर्ती प्रान्त में, कभी अलकापुरी में, कभी विशालापुरी में सर्वश्रेष्ठ वन में, कभी गन्धमादन

गन्धमादनपादेषु मेरुशृङ्गे नगोत्तमे । उत्तरांश्च कुरून्प्राप्य कलापग्राममेव च॥ ७ ॥
एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च । उर्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा॥ ८ ॥

ऋषय ऊचुः

गन्धर्वा चोर्वशी देवी राजानं मानुषं कथम् । देवानुत्सृज्य संप्राप्ता तन्नो ब्रूहि बहुश्रुत॥ ९ ॥

सूत उवाच

ब्रह्मशापाभिभूता सा मानुषं समुपस्थिता । ऐलं तु तं वरारोहा समयेन व्यवस्थिता॥ १० ॥
आत्मनः शापमोक्षार्थं नियमं सा चकार तु । अनग्नदर्शनं चैव अकामात्सह मैथुनम्॥ ११ ॥
द्वौ मेषौ शयनाभ्यासे स तावद् व्यवतिष्ठते । घृतमात्रं तथाऽऽहारः कालमेकं तु पार्थिव॥ १२ ॥
यद्येष समयो राजन्यावत्कालश्च ते दृढम् । तावत्कालं तु वत्स्यामि एष नः समयः कृतः॥ १३ ॥
तस्यास्तं समयं सर्वं स राजा पर्यपालयत् । एवं सा चावसत्तस्मिन्पुरूरवसि भामिनी॥ १४ ॥
वर्षाण्यथ चतुःषष्टिं तद्भक्त्या शापमोहिता । उर्वशी मानुषे प्राप्ता गन्धर्वाश्चिन्तयान्विताः॥ १५ ॥

गन्धर्वा ऊचुः

चिन्तयध्वं महाभागा यथा सा तु वराङ्गना । आगच्छेत्तु पुनर्देवानुर्वशी स्वर्गभूषणा॥ १६ ॥

पर्वत के शिखरों पर, कभी नगराज सुमेरु की चीटियों पर, कभी उत्तर कुरु प्रदेश में, कभी कलाप ग्राम में इन प्रमुख वनों एवं देवताओं की क्रीड़ा भूमियों में परम आनन्द समेत उर्वशी के साथ विहार करता रहा ॥ ५-८ ॥

ऋषियों ने पूछा—हे बहुश्रुत सूत जी ! गन्धर्व की कन्या दिव्यगुणयुक्त उर्वशी ने मनुष्य पुत्र राजा पुरूरवा को, समस्त देवताओं को छोड़कर, क्यों पतिरूप में वरण किया यह हमें बताइये ।। ९ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—ऋषिवृन्द ! गन्धर्व पुत्री सुन्दरी उर्वशी ने ब्रह्मशाप के कारण मनुष्य को पतिरूप में वरण किया था, उसने प्रतिज्ञा करके इला पुत्र राजा पुरूरवा के साथ रहने की व्यवस्था की थी । शाप से मुक्ति पाने के लिए उसने नियम निश्चित किया था । उसने कहा था, 'हे राजन् ! मैथुन के अवसर को छोड़कर बिना कामासक्ति के किसी भी समय में आपको नग्न अवस्था में नहीं देखूंगी, हमारी शय्या के समीप दो मेढ़े सर्वदा बँधे रहेंगे, और मैं केवल एक समय घृत मात्र का आहार करूंगी । हे राजन् ! जब तक हमारे इन नियमों को दृढ़तापूर्वक आप अक्षुण्ण पालन करते रहेंगे, तब तक मैं निश्चय आपके साथ रहूँगी, यही हमारी प्रतिज्ञा है ।' राजा पुरूरवा ने उर्वशी की इस प्रतिज्ञा का जब तक अक्षरशः पालन किया, तब तक सुन्दरी उर्वशी उसके साथ निवास करती रही । इस प्रकार ब्रह्मशाप से मोहित होकर उर्वशी चौंसठ वर्षों तक भक्तिपूर्वक मनुष्य योनि में उत्पन्न होने वाले राजा पुरूरवा के साथ रही, उधर गन्धर्व लोग उसके वियोग से बहुत चिन्तित थे ।। १०-१५ ॥

गन्धर्वगणों ने कहा—'हे महाभाग्यशालियों ! स्वर्ग को विभूषित करने वाली परम सुन्दरी उर्वशी जिस प्रकार देवताओं को पुनः प्राप्त हो—इस बात का चिन्तन कीजिए ।' उस समय बोलने में सबसे प्रवीण विश्वावसु नामक गन्धर्व ने कहा—हे निष्पाप गन्धर्वगण ! मेरी ऐसी धारणा है कि उर्वशी ने अवश्य कोई प्रतिज्ञा उस राजा के साथ की होगी, जिसके संग निवास कर रही है । उस प्रतिज्ञा के टूट जाने से वह जिस प्रकार उस राजा को

ततो विश्वावसुर्नाम तत्राऽऽह वदतां वरः । तया तु समयस्तत्र क्रियमाणो मतोऽनघः ॥ १७ ॥
समयव्युत्क्रमात्सा वै राजानं त्यक्ष्यते यथा । तदहं वच्मि वः सर्वं यथा त्यक्ष्यति सा नृपम् ॥ १८ ॥
सहसायो गमिष्यामि युष्माकं कार्यसिद्धये । एवमुक्त्वा गतस्तत्र प्रतिष्ठानं महायशाः ॥ १९ ॥
स निशायामथाऽऽगम्य मेषमेकं जहार वै । मातृवद्वर्तते सा तु मेषयोश्चारुहासिनी ॥ २० ॥
गन्धर्वागमनं ज्ञात्वा शयनस्था यशस्विनी । राजानमब्रवीत्सा तु पुत्रो मेऽह्रियतेति वै ॥ २१ ॥
एवमुक्तो विनिश्चित्य नग्नस्तिष्ठति वै नृपः । नग्नं द्रक्ष्यति मां देवी समयो वितथो भवेत् ॥ १२ ॥
ततो भूयस्तु गन्धर्वा द्वितीयं मेषमाददुः । द्वितीयेऽपहृते मेषे ऐळं देवी तमब्रवीत् ॥ २३ ॥
पुत्रौ मम हृतौ राजन्ननाथाया इव प्रभो । एवमुक्तस्तदोत्थाय नग्नो राजा प्रधावितः ॥ २४ ॥
मेषाभ्यां पदवीं राजन्गन्धर्वैर्व्युत्थितामथ । उत्पादिता तु महती माया तद्भवनं महत् ॥ २५ ॥
प्रकाशितं तु सहसा ततो नग्नमवेक्ष्य सा । नग्नं दृष्ट्वा तिरोभूत्सा अप्सरा कामरूपिणी ॥ २६ ॥
तिरोभूतां तु तां ज्ञात्वा गन्धर्वास्तत्र तावुभौ । मेषौ त्यक्त्वा च ते सर्वे तत्रैवान्तर्हिताऽभवन् ॥ २७ ॥
उत्सृष्टावुरणौ दृष्ट्वा राजागृह्याऽऽगतः प्रभुः । अपश्यंस्तां तु वै राजा विललाप सुदुःखितः ॥ २८ ॥

छोड़ देगी, वह उपाय तुम लोगों को मैं बता रहा हूँ । तुम लोगों की कार्यसिद्धि के लिए मैं सहायक के साथ उसके पास जा रहा हूँ । महान् यशस्वी विश्वावसु ने गन्धवों से ऐसी बातें करने के उपरान्त प्रतिष्ठानपुर की ओर प्रस्थान किया ॥ १६-१९ ॥

रात के समय उसने शयनागार में प्रवेशकर एक मेढ़े को चुरा लिया, उन दोनों मेढ़ों पर सुन्दर हँसनेवाली उर्वशी माता के समान स्नेह रखती थी । शय्या पर लेटे-लेटे ही यशस्विनी उर्वशी को गन्धर्वों के आने का वृत्तान्त विदित हो गया और वह वहीं से राजा से केवल इतना बोली—मेरा एक पुत्र चुराया जा रहा है । उर्वशी इस बात को जिस समय राजा से कह रही थी, उस समय राजा नग्न पड़ा हुआ था, अतः उसने निश्चय किया कि यदि इस समय मैं उठूँगा तो मुझे नग्न रूप में देवी देख लेगी और तब उसकी प्रतिज्ञा टूट जायगी ॥ २०-२२ ॥

इसी बीच गन्धर्वों ने दूसरे मेढ़े को भी चुरा लिया । दूसरे को चुरा लेने पर उर्वशी ने राजा पुरूरवा से कहा, हे राजन् ! हे प्रभो ! मेरे दोनों पुत्र अनाथ के पुत्रों की तरह चुरा लिये गये । उर्वशी के ऐसा कहने पर राजा नग्न अवस्था ही में शय्या से उठकर दौड़ पड़ा और गन्धर्वों तथा दोनों मेढ़ों के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ा । गन्धर्वों ने इस अवसर पर एक बड़ी चाल चली, उन्होंने सारे राज्य भवन को शीघ्रता से प्रकाशयुक्त कर दिया और उर्वशी ने राजा को नग्न देख लिया । इच्छानुकूल स्वरूप धारण करने वाली अप्सरा उर्वशी राजा को नग्न देखते ही अन्तर्धान हो गयी ॥ २३-२६ ॥

उर्वशी को अन्तर्हित जान गन्धर्वों ने उन दोनों मेढ़ों को छोड़ दिया और स्वयं वहाँ पर अन्तर्हित हो गये । छूटे हुए दोनों मेड़ों को पकड़कर राजा शयनागार में आये और यहाँ पर उर्वशी को न देखकर बहुत दुःखित होकर विलाप करने लगे । इधर-उधर उर्वशी को ढूँढ़ते हुए वह परम दुःखित होकर सम्पूर्ण पृथ्वी में घूमते रहे । इस प्रकार विलाप करते हुए उस महाबलवान् राजा ने घूमते-घूमते कुरुक्षेत्र में उसे देखा । उस समय वह सुन्दरी प्लक्ष तीर्थ

चचार पृथिवीं चैव मार्गमाणस्ततस्ततः । अथापश्यच्च तां राजा कुरुक्षेत्रे महाबलः ॥ २९ ॥
प्लक्षतीर्थे पुष्करिण्यां विगाढेनाम्बुनाऽऽप्लुताम् । क्रीडन्तीमप्सरोभिश्च पञ्चभिः सह शोभनाम् ॥ ३० ॥
अपश्यत्सा ततः सुभ्रू राजानमविदूरतः । उर्वशी ताः सखीः प्राह अयं स पुरुषोत्तमः ॥ ३१ ॥
यस्मिन्नहमवात्सं हि दर्शयामास तं नृपम् । तत आविर्बभूवुस्ताः पञ्चचूडाप्सरास्तु ताः ॥ ३२ ॥
दृष्ट्वा तु राजा तां प्रीतः प्रलापान्कुरुते बहुन् । आयाहि तिष्ठ मनसा घोरे वचसि तिष्ठ हे ॥ ३३ ॥
एवमादीनि सूक्ष्माणि परस्परमभाषत । उर्वशी त्वब्रवीच्चैलं सगर्भाऽहं त्वया प्रभो ॥ ३४ ॥
संवत्सरात्कुमारस्ते भविता नैव संशयः । निशामेकां तु वै राजा ह्यवसत्तु तया सह ॥ ३५ ॥
समप्रहृष्टो जगामाथ स्वपुरं तु महायशाः । गते संवत्सरे राजा उर्वशीं पुनरागमत् ॥ ३६ ॥
उषित्वा तु तया सार्धमेकरात्रं महामनाः । कामार्तश्चाब्रवीद्दीनो भव नित्यं समेति वै ॥ ३७ ॥
उर्वश्यथाब्रवीच्चैनं गन्धर्वास्ते वरं ददुः । तं वृणीष्व महाराज ब्रूहि चैतांस्त्वमेव हि ॥ ३८ ॥
वृणे नित्यं हि सालोक्यं गन्धर्वाणां महात्मनाम् । तथेत्युक्त्वा वरं वव्रे गन्धर्वाश्च तथाऽस्त्विति ॥ ३९ ॥
स्थालीमग्नेः पूरयित्वा गन्धर्वाश्च तमब्रुवन् । अनेन दृष्ट्वा लोकं तं प्राप्स्यसि त्वं नराधिप ॥ ४० ॥

में एक पुष्करिणी के गहरे जल में पाँच अन्य सुन्दरी अप्सराओं के साथ क्रीड़ा कर रही थी ॥ २७-३० ॥

सुन्दर भौहों वाली उर्वशी ने सन्निकट आने पर राजा पुरूरवा को देख लिया और अपनी सखियों से कहा, अरे ! यह पुरुष श्रेष्ठ वही राजा है, जिसके साथ मैं निवास करती थी, ऐसा कहकर उसने राजा को दिखाया। उर्वशी के ऐसा कहने पर वे पाँचों सुन्दर अप्सराएँ जल से बाहर आ गयीं । राजा ने उर्वशी को देखकर बहुत विलाप किया। उसे परम प्रसन्नता प्राप्त हुई । वह कहने लगा, हे सुन्दरी । आओ मन से मेरे इस कठोर हृदय में निवास करो ॥ ३१-३३ ॥

उन दोनों ने परस्पर इस प्रकार की सूक्ष्म बातें करीं । अन्त में उर्वशी ने पुरूरवा से कहा—हे प्रभो ! मैं आपके संयोग से गर्भवती हूँ, एक वर्ष में आपका पुत्र मुझसे उत्पन्न होगा इसमें सन्देह नहीं । राजा ने वहाँ एक रात फिर उर्वशी के साथ निवास किया । महान् यशस्वी पुरूरवा अत्यन्त हर्षित होकर अपने पुर को वापस आया। एक वर्ष बीत जाने पर वह पुनः उर्वशी के पास गया । महामनस्वी पुरूरवा उस अवसर पर पुनः एक रात उर्वशी के साथ निवास करने के उपरान्त कामार्त होकर दीन भाव से बोला, तुम मेरे साथ सर्वदा निवास करो ॥३४-३७॥

उर्वशी ने राजा को प्रत्युत्तर दिया कि हे महाराज ! गन्धर्वगण तुम्हें ऐसा वरदान देंगे, उन्हीं से इस बात की याचना कीजिये । आप उनसे मिलकर यह कहिये कि महात्मा गन्धर्वों के लोक में मैं सर्वदा निवास करने का वरदान चाहता हूँ। उर्वशी की बात को राजा ने मान लिया और गन्धर्वों से वरदान की याचना की । गन्धर्वों ने राजा की प्रार्थना पर यह कहा कि आप जैसा कह रहे हैं, वैसा ही होगा । उन लोगों ने स्थाली को अग्नि से भरकर राजा से कहा—हे नराधिप ! इसी अग्नि से हवन करने पर तुम्हें उक्त गन्धर्वलोक की प्राप्ति होगी ॥ ३८-४० ॥

तदनन्तर राजा पुरूरवा ने उर्वशी के गर्भ से समुत्पन्न कुमार को लेकर अपने नगर को चलने का उपक्रम किया और उस अग्नि को अरणि में रखकर पुत्र के समेत अपने घर को प्रस्थान किया । वहाँ आने पर उन्होंने उस

तमादाय कुमारं तु नगरायोपचक्रमे । निक्षिप्य तमरण्यां च सपुत्रं तु गृहं ययौ ॥ ४१ ॥
पुनरादाय दृश्याग्निमश्वत्थं तत्र दृष्टवान् । समीपतस्तु तं दृष्ट्वा ह्यश्वत्थं तत्र विस्मितः ॥ ४२ ॥
गन्धर्वेभ्यस्तथाऽऽख्यातुमग्निना गां गतस्तु सः । श्रुत्वा तमर्थमखिलमरणिं तु समादिशत् ॥ ४३ ॥
अश्वत्थादरणिं कृत्वा मथित्वाऽग्निं यथाविधि । तेनेष्ट्वा तु सलोकं नः प्राप्स्यसि त्वं नराधिप ॥
मथित्वाऽग्निं त्रिधा कृत्वा ह्ययजत्स नराधिपः ॥ ४४ ॥
इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैर्गतस्तेषां सलोकताम् । वासाय च स गन्धर्वस्त्रेतायां स महारथः ॥
एकोऽग्निः पूर्वमासीद्वै ऐळस्त्रींस्तानकल्पयत् ॥ ४५ ॥
एवंप्रभावो राजाऽऽसीदैलस्तु द्विजसत्तमाः । देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरलंकृते ॥ ४६ ॥
राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः । उत्तरे यामुने तीरे प्रतिष्ठाने महायशाः ॥ ४७ ॥
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिन्द्रोपमतेजसः । गन्धर्वलोके विदिता आयुर्धीमानमावसुः ॥ ४८ ॥
विश्वायुश्च शतायुश्च गतायुश्चोर्वशीसुताः । अमावसोस्तु वै जातो भीमो राजाऽथ विश्वजित् ॥ ४९ ॥
श्रीमान्भीमस्य दायादो राजाऽऽसीत्काञ्चनप्रभः । विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबलः ॥ ५० ॥

अग्नि को देखा, और उसे लेने पर अश्वत्थ के वृक्ष का भी उन्हें दर्शन हुआ । समीप में स्थित अश्वत्थ के वृक्ष को देखकर राजा को परम विस्मय हुआ ॥ ४१-४२ ॥

तब उन्होंने गन्धर्वों से इस वृत्तान्त को कहने का इरादा किया । पृथ्वी पर आये हुए राजा पुरूरवा ने इस अग्नि से यज्ञ करने के बारे में जब गन्धर्वों से जिज्ञासा प्रकट की तब उन लोगों ने सब बातें सुन लेने पर अरणि से मन्थन करने का आदेश दिया । उन्होंने कहा—हे नराधिप ! इस अश्वत्थ वृक्ष से अरणि लेकर विधिवत् मन्थन करने पर जो अग्नि उत्पन्न हो, उसी से हवन करने पर तुम हम लोगों के लोक को प्राप्त करोगे । गन्धर्वों के कथनानुसार नराधिप पुरूरवा ने अरणि का मन्थन करके अग्नि उत्पन्न की और उसको तीन भागों में विभक्तकर यज्ञ का अनुष्ठान किया ॥ ४३-४० ॥

अनेक प्रकार के यज्ञों का विधान समाप्तकर गन्धर्वों का लोक प्राप्त किया । वहाँ निवास के लिए उनसे गन्धर्वों के समान सुविधा प्राप्त की । त्रेतायुग में वह राजा पुरूरवा महारथी था, अग्नि पूर्व काल में केवल एक थे, उसने उनका तीन भाग किया । हे ऋषिवृन्द ! इला का पुत्र वह राजा पुरूरवा इसी प्रकार का महान् प्रभावशाली एवं योद्धा था । महर्षियों से सुशोभित परम पुण्यप्रद प्रयाग तीर्थ में वह पृथ्वीपति राज्य करता था । उस महायशस्वी की राजधानी यमुना के पवित्र उत्तर तट पर अवस्थित प्रतिष्ठानपुर में थी ॥ ४५-४७ ॥

उस राजा पुरूरवा के इन्द्र के समान महान् तेजस्वी छह पुत्र थे । गन्धर्वों के लोक में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा और ख्याति थी । उनके नाम थे आयु, श्रीमान्, अमावसु, विश्वायु, शतायु और गतायु—ये सब उर्वशी के पुत्र थे । अमावसु के पुत्र राजा भीम हुए, जो विश्वविजयी थे । उस राजा भीम का उत्तराधिकारी परम कान्तिमान् राजा काञ्चनप्रभ हुआ । काञ्चनप्रभ का पुत्र महाबलवान् एवं परम विद्वान् राजा सुहोत्र हुआ ॥ ४८-५० ॥

राजा सुहोत्र के पुत्र जह्नु हुए, ये राजा जह्नु, कौशिका के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । इन राजा जह्नु ने एक

सुहोत्रस्याभवज्जह्नुः कौशिकागर्भसंभवः । प्रतिगत्य ततो गङ्गा वितते यज्ञकर्मणि॥ ५१ ॥
प्लावयामास तं देशं भाविनोऽर्थस्य दर्शनात् । गङ्गया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समन्ततः॥ ५२ ॥
सौहोत्रिर्वरदः क्रुद्धो गङ्गां संरक्तलोचनः । अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि॥ ५३ ॥
एतत्ते विफलं सर्वं पीतमम्भः करोम्यहम् । राजर्षिणा ततः पीतां गङ्गां दृष्ट्वा सुरर्षयः॥ ५४ ॥
उपनिन्युर्महाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम् । यौवनाश्वस्य पौत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत्॥ ५५ ॥
युवनाश्वस्य शापेन गङ्गां येन विनिर्ममे । कावेरीं सरितां श्रेष्ठां जह्नुभार्यामनिन्दिताम्॥ ५६ ॥
जह्नुश्च दयितं पुत्रं सुहोत्रं नाम धार्मिकम् । कावेर्यां जनयामास अजकस्तस्य चाऽऽत्मजः॥ ५७ ॥
अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महायशाः। बभूवुश्च गयः शीलः कुशस्तस्याऽऽत्मजः स्मृतः ॥५८॥
कुशपुत्रः बभूवुश्च चत्वारो वेदवर्चसः । कुशाश्वः कुशनाभश्च अमूर्तारयशो वसुः॥ ५९ ॥
कुशस्तम्बस्तपस्तेपे पुत्रार्थी राजसत्तमः । पूर्णे वर्षसहस्रे वै शतक्रतुमपश्यत॥ ६० ॥
तमग्र तपसं दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरंदरः । समर्थः पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वतः॥ ६१ ॥
पुत्रत्वं कल्पयामास स्वयमेव पुरंदरः । गाधिर्नामाभवत्पुत्रः कौशिकः पाकशासनः॥ ६२ ॥
पौरुकुत्साऽभवद्भार्या गाधिस्तस्यामजायत । पूर्वकन्यां महाभागां नाम्ना सत्यवतीं शुभाम्॥

बार पृथ्वी पर यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया था । जब समस्त यज्ञ सामग्रियाँ पृथ्वी पर फैली हुई थीं, उस समय भावीवश गंगा की धारा ने उस प्रान्त को अपने जल से प्लावित कर दिया । चारों ओर से यज्ञ भूमि को गंगा से प्लावित देखकर सुहोत्र के पुत्र राजा जह्नु को, जो परम दयालु और याचकों को मनचाहा वर देने वाले थे, क्रोध आ गया । उनकी आँखें क्रोध से लाल हो गयीं और उन्होंने कहा—हे गङ्गे ! इस घमण्ड का फल तुम्हें शीघ्र ही मिलेगा । तुम्हारे इस सब जलराशि को पीकर मैं व्यर्थ किये देता हूँ । ऐसा कहकर राजर्षि जह्नु ने गंगा की समस्त जलराशि का पान कर लिया । महाभाग्यशाली देवता और ऋषिगण गङ्गा के पीने को देखकर गङ्गा को उनकी कन्या के रूप में उपहारस्वरूप समर्पित कर दिया, तभी से गङ्गा का नाम जाह्नवी पड़ा । राजा यौवनाश्व की पौत्री कावेरी को जह्नु ने पत्नी रूप में अंगीकार किया था ॥ ५१-५५ ॥

युवनाश्व के शाप से उसने गङ्गा का निर्माण किया था । जह्नु की भार्या कावेरी सरिताओं में श्रेष्ठ एवं प्रशंसनीय गुणवाली है । जह्नु ने कावेरी में परम धार्मिक सुहोत्र नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो उसका परम प्रिय था । उसका पुत्र अजक हुआ । अजक का उत्तराधिकारी राजा बलाकाश्व परम यशस्वी राजा था । उसके गय, शील और कुश नामक पुत्र कहे जाते हैं । कुश के चार पुत्र हुए, जो वेद ज्ञान में यश प्राप्त करनेवाले थे, उनके नाम थे कुशाश्व, कुशनाभ, अमूर्तारयश् और वसु । राजाओं में श्रेष्ठ कुशस्तम्ब ने पुत्र प्राप्ति के लिए तपस्या की, एक सहस्र वर्ष बीतने पर उसने इन्द्र का दर्शन किया । सहस्रनेत्र वाले पुरन्दर ने परम कठोर तप में निरत राजा कुशस्तम्ब को देखकर स्वयमेव उनके पुत्र रूप में होने का निश्चय किया ॥ ५६-६१ ॥

इस प्रकार पुरन्दर ने स्वयमेव पुत्रत्व का निश्चय किया । पाकशासन इन्द्र राजा कुशस्तम्ब के रूप में गाधि नाम से ख्यात हुए, उनका एक दूसरा कौशिक नाम भी हुआ । राजा कुशस्तम्ब की पत्नी पौरुकुत्सा थी, जिसमें

तां गाधिः पुत्रः काव्याय ऋचीकाय ददौ प्रभुः ॥ ६३ ॥
तस्यां पुत्रस्तु वै भर्ता भार्गवो भृगुनन्दनः । पुत्रार्थे साधयामास चरुं गाधेस्तथैव च ॥ ६४ ॥
तथा चाऽऽहूय सुधृतिर्ऋचीको भार्गवस्तदा । उपभोज्यश्चरुरयं त्वया मात्रा च ते शुभे ॥ ६५ ॥
तस्यां जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्रियर्षभः । अजेयः क्षत्रियैर्युद्धे क्षत्रियर्षभसूदनः ॥ ६६ ॥
तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं तपोधनम् । शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति ॥ ६७ ॥
एवमुक्त्वा तु तां भार्यामृचीको भृगुनन्दनः । तपस्याभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह ॥ ६८ ॥
गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकाश्रममभ्यगात् । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुतां द्रष्टुं नरेश्वरः ॥ ६९ ॥
चरुद्वयं गृहीत्वा तु ऋषेः सत्यवती तदा । भर्तुर्वचनमव्यग्रा हृष्टा मात्रे न्यवेदयत् ॥ ७० ॥
माता तु तस्यै दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ । तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मनः सा चकार ह ॥ ७१ ॥
अथ सत्यवती गर्भं क्षत्रियान्तकरं शुभम् । धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना ॥ ७२ ॥
तमृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाप्यनुमृश्य च । तदाऽब्रवीद्द्विजश्रेष्ठः स्वां भार्यां वरवर्णिनीम् ॥ ७३ ॥

गाधि की उत्पत्ति हुई । महाभाग्यशालिनी, कल्याणदायिनी बड़ी कन्या सत्यवती को ऐश्वर्यशाली गाधि ने भृगु गोत्र में उत्पन्न होनेवाले ऋचीक को समर्पित किया ॥ ६२-६३ ॥

उस सत्यवती में भृगुनन्दन, भृगुवंश शिरोमणि जमदग्नि उत्पन्न हुए । भृगुवंशोत्पन्न ऋषिवर्य ऋचीक ने अपने और गाधि के पुत्र के लिए एक चरु बनाया ॥ ६४ ॥

अपनी पत्नी सुधृति (सत्यवती) को बुलाकर उन्होंने कहा—हे कल्याणि ! यह चरु तुम और तुम्हारी माता इस क्रम से खाना । इसके प्रभाव से तुम्हारी माता में क्षत्रिय जाति में श्रेष्ठ, परमकान्तिमान् एक पुत्र उत्पन्न होगा, वह युद्धभूमि में अन्यान्य क्षत्रियों द्वारा पराजित नहीं होगा । बड़े-बड़े योद्धा क्षत्रियों का वह विनाश करेगा । हे कल्याणि ! तुम्हारा पुत्र भी परम शान्त, तपोमय, धैर्यशाली एवं बुद्धिमान् होगा । यह चरु उसे ब्राह्मण जाति में सर्वश्रेष्ठ बनायेगा अर्थात् इसके प्रभाव से वह समस्त ब्राह्मण जाति में श्रेष्ठ गुणों वाला होगा' ॥ ६४-६७ ॥

भृगुवंशोत्पन्न ऋचीक अपनी स्त्री सत्यवती से ये बातें कह कर तपस्या के लिए जंगल की ओर चले गये । वे सर्वदा तपस्या ही में लगे रहते थे । संयोगतः उसी अवसर पर अपनी स्त्री समेत राजा गाधि ऋचीक के आश्रम पर तीर्थयात्रा के प्रसंग से घूमते-घूमते अपनी पुत्री को देखने को आ गये ॥ ६८-६९ ॥

परम शान्तचित्त सत्यवती ने ऋषिवर्य ऋचीक के दिये हुए दोनों चरुओं को लेकर परम प्रसन्न मन से माता से उस वृत्तान्त को आद्यन्त बताया । भाग्यवश उनकी माता ने अपना चरु पुत्री सत्यवती को दिया और बिना उसका प्रभाव जाने ही सत्यवती के चरु को स्वयं ग्रहण कर लिया ॥ ७०-७१ ॥

फलतः सत्यवती ने क्षत्रियों का विनाश करने वाले परम तेजस्वी गर्भ को धारण किया । उस समय उसकी कान्ति बहुत बढ़ गयी, शरीर से वह भयानक दिखायी पड़ने लगी । द्विजश्रेष्ठ ऋचीक ने अपनी सुन्दरी पत्नी की यह दशा देखकर योगबल से सारी स्थिति जान ली । वे बोले, 'भद्रे ! माता ने तुम्हें ठग लिया है, उसने विशेष

मात्राऽसि वञ्चिता भद्रे चरुवत्या सहेतुना । जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्माऽतिदारुणः ॥ ७४ ॥
माता जनिष्यते वाऽपि तथाभूतं तपोधनम् । विश्वं हि ब्रह्म तपसा मया तत्र समर्पितम् ॥ ७५ ॥
एवमुक्त्वा महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा । प्रसादयामास पतिं सुतो मे नेदृशो भवेत् ॥
ब्राह्मणापसदस्त्वन्य इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥ ७६ ॥
नैष संकल्पितः कामो मया भद्रे तथा त्वया । उग्रकर्मा भवेत्पुत्रः पितुर्मातुश्च कारणात् ॥ ७७ ॥
पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्त्वाऽब्रवीदिदम् । इच्छॅल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतम् ॥ ७८ ॥
शमात्मकमृजुं भर्तः पुत्रं मे दातुमर्हसि । काममेवंविधः पुत्रो मम स्यात्तु वद प्रभो ॥ ७९ ॥
मय्यन्यथा न शक्यं वै कर्तुमेव द्विजोत्तम । ततः प्रसादमकरोत्स तस्यास्तपसो बलात् ॥ ८० ॥
पुत्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे वा वरवर्णिनि । त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रे भविष्यति ॥ ८१ ॥
तस्मात्सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम् । तपस्यभिरतं दान्तं जमदग्निं शमात्मकम् ॥ ८२ ॥
भृगोश्चरुविपर्यासे रौद्रवैष्णवयोः पुरा । यमनाद्वैष्णवस्याग्नेर्जमदग्निरजायत ॥ ८३ ॥
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः । प्राप्य ब्रह्मर्षिसहितो जगाम ब्रह्मणा वृतः ॥ ८४ ॥

कारण से तुम्हारे चरु को स्वयं ले लिया है, इसके फलस्वरूप तुम्हारा पुत्र अत्यन्त कठोर चित्त वाला एवं क्रूरकर्मा उत्पन्न होगा ॥ ७२-७४ ॥

तुम्हारी माता, परम तपस्वी पुत्र उत्पन्न करेगी, जैसा मैंने तुम्हें बताया था । मैंने तुम्हारे उस चरु में अपने तपोबल से समस्त ब्रह्मज्ञान को समर्पित किया था । पति के ऐसा कहने पर महाभाग्यशालिनी सत्यवती ने पति की बड़ी आराधना की और इस बात के लिए राजी किया कि मेरा पुत्र वैसा न हो जो दुष्ट ब्राह्मण कहा जाय । सत्यवती की इस प्रार्थना पर मुनिवर ऋचीक ने कहा—हे भद्रे ! मैंने या तुमने विचार करके ऐसी इच्छा नहीं की थी कि हमारा पुत्र ऐसा क्रूरकर्मा हो अर्थात् यह दैव विधान है । प्रायः पिता और माता के कारण से पुत्र उग्रकर्म करने वाले होते हैं ॥ ७५-७७ ॥

ऋचीक के ऐसा कहने पर सत्यवती पुनः बोली, मुनिवर्य आप इच्छा करें तो समस्त लोकों की सृष्टि कर सकते हैं, ऐसे पुत्र को उत्पन्न करने की तो बात ही क्या है? हे पतिदेव मुझे परम शान्त, सरल एवं सत्पुरुष पुत्र दीजिये । यह तो हो सकता है कि हमारा पौत्र उग्र एवं कठोर स्वभाव वाला हो । हे प्रभो ! हे द्विजोत्तम ! अब मेरे लिये यह तो करना ही होगा । आप अन्यथा नहीं करेंगे ऐसी विशेष प्रार्थना कर रही हूँ । मुनिवर ऋचीक ने अपने तपोबल से उसकी मनःकामना पूर्ण कर प्रसन्न किया । वे बोले, सुन्दरि ! मुझे पुत्र या पौत्र किसी में कोई विशेषता नहीं दिखायी पड़ती, किन्तु तुम्हारा यदि आग्रह ऐसा है तो मैं वैसा ही करूंगा, भद्रे तुम्हारी बात सत्य होगी ॥ ७८-८१ ॥

ऋचीक के वचनानुसार सत्यवती ने भार्गव जमदग्नि को उत्पन्न किया । वे परम शान्त, क्षमाशील एवं तपः परायण थे । इस प्रकार प्राचीनकाल में रुद्र एवं विष्णु के चरु में परिवर्तन हो जाने से विष्णु एवं अग्नि के तेज के भक्षण किये जाने से भृगुवंश में जमदग्नि नामक ऋषि उत्पन्न हुए । इधर कुशिकनन्दन गाधि ने विश्वामित्र को पुत्र रूप में उत्पन्न किया, उन विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षियों की समानता प्राप्तक ब्राह्मणों समेत स्वर्ग को प्रस्थान किया। सत्यव्रत परायण वह सत्यवती परम पुण्यदायिनी महानदी कौशिकी के नाम से प्रवाहित हुई ॥ ८२-८५ ॥

सा हि सत्यवती पुण्या सत्यव्रतपरायणा । कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेयं महानदी॥ ८५ ॥
परिश्रुता महाभागा कौशिकी सरितां वरा । इक्ष्वाकुवंशे त्वभवत्सुवेणुर्नाम पार्थिवः॥ ८६ ॥
तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका । रेणुकायां तु कामल्यां तपोधृतिसमन्वितः ॥
आर्चीको जनयामास जमदग्निः सुदारुणम् ॥ ८७ ॥
सर्वविद्यान्तगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् । रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम्॥ ८८ ॥
और्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महामनाः । जमदग्निस्ततोवीर्याज्जज्ञे ब्रह्मविदां वरः ॥
मध्यमश्च शुनः शेफः शुनः पुच्छः कनिष्ठकः ॥ ८९ ॥
विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः । जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्वंशवर्धनः॥ ९० ॥
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेफोऽभवन्मुनिः । हरिश्चन्द्रस्य यज्ञे तु पशुत्वे नियतः स वै॥
देवैर्दत्तः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत् ॥ ९१ ॥
विश्वामित्रस्य पुत्राणां शुनःशेफोऽग्रजः स्मृतः । मधुच्छन्दो नयश्चैव कृतदेवी ध्रुवाष्टकौ॥ ९२ ॥
कच्छपः पूरणश्चैव विश्वामित्रसुतास्तु वै । तेषां गोत्राणि बहुधा कौशिकानां महात्मनाम्॥ ९३ ॥
पार्थिवा देवराताश्च याज्ञवल्क्याः समर्पणाः । उदुम्बरा उदुम्लानास्तारका यममुञ्चताः॥ ९४ ॥
लोहिण्या रेणवश्चैव तथा कारीषवः स्मृताः । बभ्रवः पाणिनश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च॥ ९५ ॥
शालावत्या हिरण्याक्षाः स्यङ्कृता गालवाः स्मृताः । देवला यामदूताश्च सालङ्कायनबाष्कलाः ॥९६॥

महाभाग्यशालिनी, नदियों में श्रेष्ठ कौशिकी को परम ख्याति प्राप्त हुई । इक्ष्वाकु के वंश में सुवेणु नामक एक राजा थे । उनकी कन्या महाभाग्यशालिनी कामली थी, जिसका दूसरा नाम रेणुका भी था, उस कामली रेणुका में परम तपस्वी, धैर्यशाली, ऋचीक के पुत्र जमदग्नि ने परम कठोर स्वभाववाले परशुराम को उत्पन्न किया, वे परशुराम सभी विद्याओं में पारंगत, विशेषतया धनुर्वेद के परम जानकार, क्षत्रियों के विनाशक एवं अग्नि के समान परम तेजस्वी थे । और्व के पुत्र ऋचीक के सत्यवती में ज्येष्ठ पुत्र महामनस्वी जमदग्नि हुए, उनके तपोबल से मध्यम पुत्र शुनःशेफ हुए, जो परम ब्रह्मज्ञानी थे । शुनः पुच्छ ऋचीक के सबसे कनिष्ठ पुत्र थे ॥ ८६-८९ ॥

धर्मात्मा विश्वामित्र विश्वरथ के नाम से विख्यात थे । महर्षि भृगु की कृपा से ये कौशिक के संयोग से उत्पन्न हुए थे, वे कौशिक वंश में सबसे अधिक प्रभावशाली थे । उन विश्वामित्र के पुत्र शुनःशेफ नामक मुनि हुए । वे शुनःशेफ राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ कर्म में पशु बलिदान देने के लिए नियुक्त हुए थे । देवताओं ने शुनःशेफ को पुनः विश्वामित्र को वापस कर दिया । देवताओं के देने के कारण इनका बाद में देवरात नाम पड़ा । विश्वामित्र के पुत्रों में शुनःशेफ सबसे बड़े कहे जाते हैं । इनके अतिरिक्त मधुच्छन्द, नय, कृत, देव, ध्रुव, अष्टक, कच्छप और पूरण—ये भी विश्वामित्र के पुत्र हैं । इन सभी के गोत्र प्रायः महान् पराक्रमी कौशिकों के ही हैं ॥ ९०-९३ ॥

पार्थिव, देवरात, याज्ञवल्क्य, समर्षण, उदुम्बर, उदुम्लान, तारक, यममुञ्चत, लोहिण्य, रेणव, कारीषु, बभ्नु, पाणिन, ध्यानजप्य, शालावत्य, हिरण्याक्ष, स्यङ्कृत, गालव, देवल, यामदूत, सालङ्कायन, बाष्कल, ददाति एवं बादर नाम से प्रसिद्ध वंशों में उत्पन्न होने वालों का परम बुद्धिमान् विश्वामित्र का गोत्र है । बहुतेरे कौशिक

ददातिबादराश्चान्ये विश्वामित्रस्य धीमतः । ऋष्यन्तरविवाह्यास्ते बहवः कौशिकाः स्मृताः ॥ ९७ ॥
कौशिकाः सोश्रुमाश्चैव तथाऽन्ये सैंधवायनाः। पौरोरवस्य पुण्यस्य ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य तु ॥ ९८ ॥
दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रात्तथाष्टकः । अष्टकस्य सुतो यो हि प्रोक्तो जह्नुगणो मया ॥ ९९ ॥

ऋषय ऊचुः

किं लक्षणेन धर्मेण तपसेह श्रुतेन वा । ब्राह्मण्यं समनुप्राप्तं विश्वामित्रादिभिर्नृपैः ॥ १०० ॥
येन येनाभिधानेन ब्राह्मण्यं क्षत्रिया गताः । विशेषं ज्ञातुमिच्छामि तपसा दानतस्तथा ॥ १०१ ॥
एवमुक्तस्ततो वाक्यमब्रवीदिदमर्थवत् । अन्यायोपगतैर्द्रव्यैराहृत्य यजने धिया ॥
धर्माभिकाङ्क्षी यजते न धर्मफलमश्नुते ॥ १०२ ॥
धर्मं चैतं समाख्याय पापात्मा पुरुषाधमः । ददाति दानं विप्रेभ्यो लोकानां दम्भकारणात् ॥ १०३ ॥
जपं कृत्वा तथा तीव्रं धनलोभान्निरङ्कुशः । रागमोहान्वितो ह्यन्ते पावनार्थं ददाति यः ॥ १०४ ॥
तेन दत्तानि दानानि अफलानि भवन्त्युत । तस्य धर्मप्रवृत्तस्य हिंसकस्य दुरात्मनः ॥ १०५ ॥
एवं लब्ध्वा धनं मोहाद्ददतो यजतश्च ह । सक्लिष्टकर्मणो दानं न तिष्ठति दुरात्मनः ॥ १०६ ॥
न्यायागतानां द्रव्याणां तीर्थे संप्रतिपादनम् । कामाननभिसंधाय यजते च ददाति च ॥ १०७ ॥

गोत्र में उत्पन्न होने वालों का विवाह अन्य ऋषि के गोत्र में उत्पन्न होने वालों के साथ किया जाता है । कौशिक, सौश्रुत एवं सैंधवायन नाम से प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न होने वाले, पुरूरवा के वंश में उत्पन्न पुण्यशाली ब्रह्मर्षि कौशिक के गोत्र में कहे जाते हैं । विश्वामित्र से दृषद्वती में उत्पन्न होने वाले एक पुत्र का नाम अष्टक था, अष्टक के पुत्र जह्नुगण हुए जिसका वर्णन ऊपर किया जा है चुका है ॥ ९४-९९ ॥

ऋषिवृन्द ने कहा—हे सूत जी ! इस लोक में उत्पन्न होकर विश्वामित्र प्रभृति क्षत्रिय राजाओं ने किस प्रकार के धर्म, तपस्या अथवा ज्ञान द्वारा ब्राह्मणत्व की प्राप्ति की, जिन-जिन सत्कर्मों अथवा दान या तपस्या द्वारा क्षत्रिय लोग ब्राह्मण हुए, उन उनको विशेष रूप से हम लोग जानना चाहते हैं । ऋषियों के इस प्रकार पूछने पर सूत जी ने अर्थपूर्ण वाणी से कहा—हे ऋषिवृन्द ! अन्याय से उपार्जित किये गये द्रव्य द्वारा धर्म की आकांक्षा से अच्छे-अच्छे विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाकर जो यज्ञादिक सत्कर्म करते हैं, वे धर्म का फल नहीं प्राप्त करते ॥ १००-१०२ ॥

जो पापात्मा नीच पुरुष दम्भवश मैं यह धर्मकार्य कर रहा हूँ इस प्रकार का प्रचार करके लोक में अपनी ख्याति प्राप्त करने के उद्देश्य से, ब्राह्मणों को दान देता है, अथवा जो निरंकुश व्यक्ति धन के लोभ से कठोर जप करता है, या राग मोहवश पहले पाप करके अन्त में पवित्र होने के उद्देश्य से दान करता है, उन सबके दानादि सत्कर्म निष्फल होते हैं । दुरात्मा वास्तव में हिंस्रभावना से धर्म में प्रवृत्त होते हैं ॥ १०३-१०५ ॥

इस प्रकार के अन्याय द्वारा धन प्राप्तकर मोहवश जो दुरात्मा, क्रूरकर्मा दान करता है अथवा यज्ञ करता है, वह नष्ट हो जाता है ॥ १०६ ॥

इसलिए न्यायपूर्वक प्राप्त धन को उपयुक्त पात्र को जो दान करते हैं और अपने मनोरथों के लिए किसी प्रकार की अभिसंधि अर्थात् षड्यंत्र नहीं करते, अथवा बिना किसी कामना के यज्ञ दान करते हैं, वही दान का

स दानफलमाप्नोति तच्च दानं सुखोदयम् । दानेन भोगानाप्नोति स्वर्गं सत्येन गच्छति॥ १०८ ॥
तपसा तु सुतप्तेन लोकान्विष्टभ्य तिष्ठति । विष्टभ्य स तु तेजस्वी लोकेष्वानन्त्यमश्नुते॥ १०९ ॥
दानाच्छ्रेयांस्तथा यज्ञो यज्ञाच्छ्रेयस्तथा तपः। संन्यासस्तपसः श्रेयांस्तस्माज्ज्ञानं गुरुः स्मृतम्॥ ११० ॥
श्रूयन्ते हि तपः सिद्धाः क्षात्रोपेता द्विजातयः । विश्वामित्रो नरपतिर्मांधाता संकृतिः कपिः॥ १११ ॥
कपेश्च पुरुकुत्सश्च सत्यश्चानृहवानृथुः । आष्टिषेणोऽजमीढश्च भागान्योऽन्यस्तथैव च॥ ११२ ॥
कक्षीवश्चैव शिजयस्तथाऽन्ये च महारथाः । रथीतरश्च रुन्दश्च विष्णुवृद्धादयो नृपाः॥ ११३ ॥
क्षात्रोपेताः स्मृता ह्येते तपसा ऋषितां गताः । एते राजर्षयः सर्वे सिद्धिं समुहतीं गताः ॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि अयोर्वंशं महात्मनः ॥ ११४ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे चन्द्रवंशानुकीर्तनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

* * *

वास्तविक फल प्राप्त करते हैं और वही दान सुख, शान्ति एवं समृद्धि देने वाला कहा गया है । दान द्वारा मनुष्य विविध प्रकार के भोगों की प्राप्ति करता है, सत्य द्वारा स्वर्ग लोक की प्राप्ति करता है ॥ १०७-१०८ ॥

वह परम गोपनीय ढंग से की गयी तपस्या द्वारा समस्त लोक का अतिक्रमण कर स्थित होता है, अर्थात् गुप्त तपस्या द्वारा समस्त लोक से ऊपर होता है । इस प्रकार समस्त लोक का अतिक्रमण करनेवाला परम तेजस्वी तपस्वी सभी लोकों में अनन्त अक्षय सुख की प्राप्ति करता है । दान की अपेक्षा यज्ञ कल्याणकारी है, यज्ञ से बढ़कर कल्याणकारी तपस्या है, तपस्या से भी बढ़कर संन्यास की महत्ता है, और संन्यास से भी बढ़कर कल्याणदायी एवं महान् ज्ञान कहा गया है ॥ १०९-११० ॥

ऐसा सुना जाता है कि क्षत्रियों के गुण एवं कर्म के स्वभाव वाले अनेक द्विजातियों ने तपस्या द्वारा सिद्धि प्राप्त की । नरपति विश्वामित्र, मान्धाता, संकृति, कपि, पुरुकुत्स, सत्य, आनृहवान् ऋथु, आष्टिषेण, अजमीढ, भागान्य, कक्षीव, शिजय तथा अन्य महारथी रथीतर, रुन्द, विष्णुवृद्धादि राजाओं ने क्षत्रिय जाति में उत्पन्न होकर अपनी तपस्या द्वारा ऋषि पदवी प्राप्त की । इन सभी राजर्षियों ने अपनी महान् तपस्या द्वारा परम सिद्धि की प्राप्ति की । अब इसके उपरान्त महान् पराक्रमी राजा आयु (आयु) के वंश का वर्णन कर रहा हूँ ॥ ११६-११९ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में चन्द्रवंशानुकीर्तन नामक उन्तीसवें अध्याय (इक्यानबेवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ २९ ॥**

* * *

अथ त्रिंशोऽध्यायः

रजियुद्धवर्णनम्

सूत उवाच

एते पुत्रा महात्मानः पञ्चैवाऽसन्महाबलाः । स्वर्भानुतनया विप्राः प्रभायां जज्ञिरे नृपाः ॥ १ ॥
नहुषः प्रथमस्तेषां पुत्रधर्मा ततः स्मृतः । धर्मवृद्धात्मजश्चैव सुतहोत्रो महायशाः ॥ २ ॥
सुतहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः । काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः ॥ ३ ॥
पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः। ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च॥ ४ ॥
एतस्य वंशे संभूता विचित्रैः कर्मभिर्द्विजाः । शलात्मजो ह्याष्टिषेणश्चरन्तस्तस्य चात्मजः ॥ ५ ॥
शौनकाश्चाऽऽष्टिषेणाश्च क्षात्रोपेता द्विजातयः। काशस्य काशयो राष्टः पुत्रो दीर्घतपास्तथा ॥ ६ ॥
धर्मश्च दीर्घतपसो विद्वान्धन्वन्तरिस्ततः । तपसा सुमहातेजा जातो वृद्धस्य धीमतः ॥
॥ ७ ॥
अथैनमृषयः प्रोचुः सूतं वाक्यमिदं पुनः

तीसवाँ अध्याय

(बानबेवाँ अध्याय)

रजियुद्धवर्णन

श्रीसूतजी ने कहा—विप्रवृन्द । पाँच महान् पराक्रमी तथा परम बलवान् स्वर्भानु के पुत्र प्रभा नामक पत्नी में उत्पन्न हुए, जो सब राजा थे । उन सबों में प्रथम गणनीय राजा नहुष थे । उनके बाद पुत्रधर्मा कहे जाते हैं । तदनन्तर धर्मवृद्ध हुए, धर्मवृद्ध के पुत्र परम यशस्वी राजा सुतहोत्र हुए ॥ १-२ ॥

राजा सुतहोत्र के उत्तराधिकारी तीन परम धार्मिक पुत्र हुए, जिनके नाम काश, शल एवं गृत्समद थे । परम प्रभावशाली राजा गृत्समद के पुत्र शुनक थे, जिनके पुत्र शौनक हुए । हे द्विजवृन्द ! इस वंश में उत्पन्न होने वाली संततियाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णों में अपने विचित्र कर्मों द्वारा विभक्त हुईं । शल के पुत्र राजा आष्टिषेण हुए, जिनके पुत्र चरन्त हुए ॥ ३-५ ॥

शौनक और आष्टिषेण के वंश में उत्पन्न होने वाली सन्ततियाँ क्षत्रिय एवं ब्राह्मण दोनों वर्णों में हैं । काश के काशय, राष्ट और दीर्घतपा नामक पुत्र हुए । दीर्घतपा के पुत्र राजा धर्म हुए । धर्म से परम विद्वान् राजा धन्वन्तरि का जन्म हुआ । परम बुद्धिमान् राजा धर्म की वृद्धावस्था में उनकी तपस्या के कारण महान् तेजस्वी धन्वन्तरि का जन्म हुआ था । इस बात को सुनकर ऋषियों ने सूतजी से यह बात पूछी ॥ ६-७ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान् । एतद्वेदितुमिच्छामस्ततो ब्रूहि प्रियं तथा ॥ ८ ॥

सूत उवाच

धन्वन्तरेः संभवोऽयं श्रूयतामिह वै द्विजाः । स संभूतः समुद्रान्ते मथ्यमानेऽमृते पुरा ॥ ९ ॥
उत्पन्नः सकलात्पूर्वं सर्वतश्च श्रिया वृतः । सर्वसंसिद्धकायं तं दृष्ट्वा विष्टम्भितः स्थितः ॥
अजस्त्वमिति होवाच तस्मादजस्तु स स्मृतः ॥ १० ॥
अजः प्रोवाच विष्णुं तं तनयोऽस्मि तव प्रभो । विधत्स्व भागं स्थानं च मम लोके सुरोत्तम ॥ ११ ॥
एवमुक्तः स दृष्ट्वा तु तथ्यं प्रोवाच स प्रभुः । कृतो यज्ञविभागस्तु यज्ञियैर्हि सुरैस्तथा ॥ १२ ॥
वेदेषु विधियुक्तं च विधिहोत्रं महर्षिभिः । न शक्यमिह होमो वै तुल्यं कर्तुं कदाचन ॥ १३ ॥
अर्वाक्सुतोऽसि हे देव नाममन्त्रोऽसि वै प्रभो । द्वितीयायां तु संभूत्यां लोके ख्यातिं गमिष्यसि ॥ १४ ॥
अणिमादियुता सिद्धिर्गर्भस्थस्य भविष्यति । तेनैव च शरीरेण देवत्वं प्राप्स्यसि प्रभो ॥
चारुमन्त्रैर्घृतैर्गन्धैर्यक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः ॥ १५ ॥
अथ च त्वं पुनश्चैव आयुर्वेदं विधास्यसि । अवश्यंभावी ह्यर्थोऽयं प्राक्सृष्टस्त्वब्जयोनिना ॥ १६ ॥

ऋषियों ने पूछा—हे सूत जी ! देव धन्वन्तरि किस प्रकार मनुष्य लोक में उत्पन्न हुए, इस बात को हम लोग जानना चाहते हैं, हमारे इस प्रिय विषय को बताइये ॥ ८ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे द्विजवृन्द ! धन्वन्तरि का जन्म-वृत्तान्त मैं बता रहा हूँ, सुनिये । प्राचीनकाल में अमृत प्राप्ति के लिए समुद्र मन्थन के अवसर पर देव धन्वन्तरि का आविर्भाव हुआ था । वे सबसे पहले और सभी प्रकार की कान्तियों से समन्वित उत्पन्न हुए थे, इस प्रकार सब प्रकार के गुणों एवं कान्तियों से विभूषित उनके शरीर को देखकर देवगण आश्चर्यचकित हो गये और बोले कि 'तुम अज हो' इसी कारणवश वे अज नाम से विख्यात हुए । तदनन्तर अज ने विष्णु से कहा—हे प्रभो ! मैं आपका पुत्र हूँ । हे सुरोत्तम ! लोक में हमारे लिये स्थान एवं यज्ञादि में हमारे लिये अंश की व्यवस्था कीजिये ॥ ९-११ ॥

अज के ऐसा कहने पर प्रभु विष्णु ने अज की ओर देखकर ये तथ्यपूर्ण बातें कहीं—हे देव ! यज्ञ के विधान बनाने वाले देवताओं ने यज्ञादि में अंशों के विभाग आदि की व्यवस्था पहले ही से बना दी है । महर्षियों द्वारा वेदों में उनके लिए विधानयुक्त हवन करने की प्रक्रिया आदि भी निर्धारित हो चुकी है । आप बाद में उत्पन्न होने वाले पुत्र हो, अतः हवनादि में उन देवताओं के साथ, जिनके लिए अंश प्राप्त करने की व्यवस्था हो चुकी है, आपको समानता नहीं प्राप्त करा सकता । हे समर्थ ! आप केवल नाम से ही मन्त्र रूप हैं । दूसरे जन्म में आप लोक में ख्याति प्राप्त करेंगे । गर्भ से ही आपको अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होगी । हे परम प्रभावशालिन् ! उसी शरीर से आपको देवगण की भी प्राप्ति होगी । उस समय द्विजातिगण चरु, मन्त्र, घृत, गन्ध आदि द्रव्यों से मन्त्रोचारणपूर्वक आपकी पूजा करेंगे ॥ १२-१५ ॥

उसके बाद आप आयुर्वेद का उद्धार करेंगे, यह सब बातें अवश्य घटित होंगी । इन्हीं के लिए पद्मयोनि

द्वितीयं द्वापरं प्राप्य भविता त्वं न संशयः । तस्मात्तस्मै वरं दत्त्वा विष्णुरन्तर्दधे ततः ॥ १७ ॥
द्वितीये द्वापरे प्राप्ते शौनहोत्रः प्रकाशिराट् । पुत्रकामस्तपस्तेपे नृपोदीर्घतपास्तथा ॥ १८ ॥
अजं देवं तु पुत्रार्थे ह्यारिराधयिषुर्नृपः । वरेण च्छन्दयामास प्रीतो धन्वन्तरिर्नृपम् ॥ १९ ॥

नृप उवाच

भगवन्यदि तुष्टस्त्वं पुत्रो मे धृतिमान्भव । तथेति समनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ २० ॥
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा । काशिराजो महाराजः सर्वरोगप्रणाशनः ॥ २१ ॥
आयुर्वेदं भरद्वाजश्चकार सभिषक्क्रियम् । तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥ २२ ॥
धन्वन्तरिसुतश्चापि केतुमानिति विश्रुतः । अथ केतुमतः पुत्रो विप्रो भीमरथो नृपः ॥
दिवोदास इति ख्यातो वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥ २३ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु पुरी वाराणसी पुरा । शून्यां विवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः ॥ २४ ॥
शप्ता हि सा पुरी पूर्व निकुम्भेन महात्मना । शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्रीति पुनः पुनः ॥ २५ ॥
तस्यां तु शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः । विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत् ॥ २६ ॥

ब्रह्मा जी ने आपकी सृष्टि पूर्वकाल में की है। द्वितीय द्वापर युग में आप आविर्भूत होंगे—इसमें कोई सन्देह नहीं है। उस समय ऐसा वरदान देकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये ॥ १६-१७ ॥

द्वितीय द्वापर युग में काशिराज सुनहोत्र (सुतहोत्र) के वंश में उत्पन्न होनेवाले राजा दीर्घतपा ने पुत्र-प्राप्ति की कामना से तपस्या की थी। उस तपस्या में राजा ने पुत्र के लिए उन्हीं अज देव की आराधना की थी। प्रसन्न होकर धन्वन्तरि ने राजा दीर्घतपा को वरदान देने की बात कही ॥ १८-१९ ॥

राजा ने कहा—हे भगवन्! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, तो आप ही मेरे धर्मशाली पुत्र के रूप में उत्पन्न होवें। देव धन्वन्तरि राजा की प्रार्थना स्वीकार कर वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् वरदान के अनुसार द्वितीय द्वापर युग में देव धन्वन्तरि राजा दीर्घतपा के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। बाद में चलकर वे महाराजाधिराज काशिराज सभी रोगों के विनाश करनेवाले हुए ॥ २०-२१ ॥

भरद्वाज ऋषि ने ओषधियों की समस्त प्रक्रियाओं के साथ आयुर्वेद का प्रणयन किया था, राजा ने उसी को पुनः आठ भागों में विभक्तकर अपने शिष्यों को उसकी शिक्षा दी थी। धन्वन्तरि के पुत्र केतुमान् नाम से विख्यात हुए, केतुमान् के पुत्र परम प्रतापशाली राजा भीमरथ हुए। वही राजा भीमरथ वाराणसी के परम प्रसिद्ध राजा दिवोदास के नाम से विख्यात हुए। प्राचीन काल में इसी राजा के राज्यकाल में वाराणसी पुरी सूनी हो गयी थी और उसमें क्षेमक नामक राक्षस घुस आया था ॥ २२-२४ ॥

प्राचीन काल में महान् पराक्रमी निकुम्भ ने वाराणसी पुरी को यह शाप दिया था कि यह वाराणसी एक सहस्र वर्ष तक सूनी रहेगी, ऐसी बात उसने बार-बार कही थी। उसके इस प्रकार के शाप देने पर नरपति दिवोदास ने इस वाराणसी पुरी को छोड़कर अपनी मनोहर राजधानी गोमती नदी के तट पर बसायी थी ॥ २५-२६ ॥

ऋषय ऊचुः

वाराणसीं किमर्थं तां निकुम्भः शप्तवान्पुरा । निकुम्भश्चापि धर्मात्मा सिद्धक्षेत्रं शशाप यः ॥ २७ ॥

सूत उवाच

दिवोदासस्तु राजर्षिर्नगरीं प्राप्य पार्थिवः । वसते स महातेजाः स्फीतायां वै नराधिपः ॥ २८ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु कृतदारो महेश्वरः । देव्याः स प्रियकामस्तु वसानश्वशुरान्तिके ॥ २९ ॥
देवाज्ञया पारिषदा विश्वरूपास्तपोधनाः । पूर्वोक्तै रूपविशेषैस्तोषयन्ति महेश्वरीम् ॥ ३० ॥
हृष्यति तैर्महादेवो मेना नैव तु हृष्यति । जुगुप्सते सा नित्यं च देवं देवीं तथैव च ॥ ३१ ॥
मम पार्श्वे त्वनाचारस्तव भर्ता महेश्वरः । दरिद्रः सर्व एवेह अक्लिष्टं लडतेऽनघे ॥ ३२ ॥
मात्रा तथोक्ता वचसा स्त्रीस्वभावान्नचाक्षमत् । स्मितं कृत्वा तु वरदा हरपार्श्वमथागमत् ॥ ३३ ॥
विषण्णवदना देवी महादेवमभाषत । नेह वत्स्याम्यहं देव नय मां स्वं निवेशनम् ॥ ३४ ॥
तथोक्तस्तु महादेवः सर्वांल्लोकानवेक्ष्य ह । वासार्थं रोचयामास पृथिव्यां तु द्विजोत्तमाः ॥
वाराणसीं महातेजाः सिद्धक्षेत्रं महेश्वरः ॥ ३५ ॥

ऋषियों ने पूछा—हे सूत जी ! प्राचीन काल में निकुम्भ ने वाराणसी को क्यों शाप दिया था । परम धर्मात्मा होकर भी उसने सिद्ध क्षेत्र वाराणसी को भला क्यों शाप दिया? ॥ २७ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—राजर्षि दिवोदास वाराणसी नगरी में निवास करता था, उस मनोहर नगरी में वह अपने समय का एक महान् शासक एवं परम तेजस्वी राजा था ॥ २८ ॥

इसी अवधि में महेश्वर शिव ने पार्वती के साथ पत्नी सम्बन्ध स्थापित किया था और देवी को प्रसन्न करने के लिए वे श्वसुर हिमवान् के ही घर में निवास करते थे ॥ २९ ॥

महादेव की आज्ञा से उनके पार्षदगण, जो अनेक स्वरूप धारण करनेवाले, किन्तु महान् तेजस्वी थे, पूर्व में कहे गये विचित्र-विचित्र रूपों को धारणकर महेश्वरी को प्रसन्न किया करते थे । उनके इस व्यापार से महादेव जी प्रसन्न होते थे किन्तु मेना को इससे प्रसन्नता नहीं होती थी । महादेव और पार्वती दोनों की वह मन में सदा भर्त्सना किया करती थीं ॥ ३०-३१ ॥

एक बार उन्होंने पार्वती से कहा—हे निष्पापे ! तुम्हारे पति महेश्वर हमारे यहाँ नित्यप्रति अनाचार किया करते हैं । मेरी समझ में तो वे एक परम अकिंचन एवं व्यर्थ में नाच-गान में लगे हुए लम्पट प्रतीत होते हैं । माता मेना की ऐसी बातों को स्त्री स्वभाववश पार्वती सहन न कर सकीं । वरदान देने वाली पार्वती मन्द हास्य करती हुई महादेव के समीप आयीं और वहाँ खिन्न मुख होकर महादेव से बोलीं—हे देव ! अब मैं यहाँ पर निवास नहीं करूँगी, मुझे अपने यहाँ ले चलिये । देवी के ऐसा कहने पर महादेव ने तीनों लोकों में अपने योग्य स्थान देखा । हे द्विजवृन्द ! समस्त भूमण्डल भर में महान् तेजस्वी महेश्वर ने अपने निवास योग्य स्थान सिद्ध क्षेत्र वाराणसी को बना दिया ॥ ३२-३५ ॥

दिवोदासेन तां ज्ञात्वा निविष्टां नगरी भवः । पार्श्वस्थं स समाहूय गणेशं क्षेमकं ब्रवीत्॥ ३६ ॥
गणेश्वरपुरीं गत्वा शून्यां वाराणसीं कुरु । मृदुना चाभ्युपायेन अतिवीर्यः स पार्थिवः॥ ३७ ॥
ततो गत्वा निकुम्भस्तु पुरीं वाराणसीं पुरा । स्वप्ने संदर्शयामास मङ्कनं नाम नापितम्॥ ३८ ॥
श्रेयस्तेऽहं करिष्यामि स्थानं मे रोचयानघ । मद्रूपां प्रतिमां कृत्वा नगर्यन्ते निवेशय॥ ३९ ॥
तथा स्वप्ने यथा दृष्टं सर्वं कारितवान्द्विजाः । नगरीद्वार्यनुज्ञाप्य राजानं तु यथाविधि॥ ४० ॥
पूजा तु महती चैव नित्यमेव प्रयुज्यते । गन्धैर्धूपैश्च माल्यैश्च प्रेक्षणीयैस्तथैव च॥ ४१ ॥
अन्नप्रदानयुक्तैश्च अत्यद्भुतमिवाभवत् । एवं संपूज्यते तत्र नित्यमेव गणेश्वरः॥ ४२ ॥
ततो वरसहस्राणि नगराणां प्रयच्छति । पुत्रान्हिरण्यमायूंषि सर्वकामांस्तथैव च॥ ४३ ॥
राज्ञस्तु महिषी श्रेष्ठा सुयशा नाम विश्रुता । पुत्रार्थमागता साध्वी राज्ञा देवी प्रचोदिता॥ ४४ ॥
पूजां तु विपुलां कृत्वा देवी पुत्रानयाचत । पुनः पुनरथाऽऽगम्य बहुशः पुत्रकारणात्॥ ४५ ॥
न प्रयच्छति पुत्रांस्तु निकुम्भः कारणेन तु । राजा यदि तु क्रुध्येत ततः किंचित्प्रवर्तते॥ ४६ ॥
अथ दीर्घेण कालेन क्रोधो राजानमाविशत् । भूतं त्विदं महाद्वारि नागराणां प्रयच्छति॥ ४७ ॥
प्रीत्या वरांश्च शतशो न किंचित्तु प्रवर्तते । मामकैः पूज्यते नित्यं नगर्यां मम चैव तु॥ ४८ ॥

भव ने उक्त वाराणसी नगरी को उस समय राजा दिवोदास के अधीन जानकर अपने समीप रहने वाले गणेश्वर क्षेमक को बुलाकर कहा । हे गणेश्वर ! तुम वाराणसी पुरी को जाओ, और उसे खाली कराओ । देखना, मृदुल उपायों द्वारा उसे खाली कराना, क्योंकि वहाँ का राजा दिवोदास महान् पराक्रमी है ॥ ३६-३७ ॥

इस प्रकार शिव की आज्ञा से प्राचीन काल में निकुम्भ वाराणसी पुरी को प्रस्थित हुआ, और वहाँ जाकर उसने स्वयं को मङ्कन नामक नापित को स्वप्न में दिखाया, और उससे कहा—हे निष्पाप ! मैं तुम्हारा कल्याण करूँगा, मेरे लिए तुम एक स्थान बनाओ । इन नगरी के अन्तिम छोर पर मेरी प्रतिमा बनाकर स्थापित कर दो । हे द्विजवृन्द ! मङ्कन ने स्वप्न में देखी हुई सभी बातों को पूर्ण किया, राजा से आज्ञा प्राप्तकर उसने नगरी के प्रवेश-द्वार पर विधिपूर्वक निकुम्भ की प्रतिमा स्थापित की ॥ ३८-४० ॥

उस स्थान पर निकुम्भ की मूर्ति की नित्यप्रति बड़ी पूजा होने लगी । गन्ध, धूप, पुष्प, माला, अन्नादि वस्तुओं के देने से एक अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया । इस प्रकार गणेश्वर की नित्यप्रति पूजा होती थी । गणेश्वर ने भी पूजा से सन्तुष्ट होकर नगर निवासियों के लिए सहस्रों वरदान प्रदान किये । पुत्र, सुवर्ण, दीर्घायु एवं अन्य सभी प्रकार के मनोरथों की पूर्ति की ॥ ४१-४३ ॥

राजा दिवोदास की पटरानी का नाम सुयशा था जो परम साध्वी थीं । राजा की प्रेरणा से वह भी पुत्र प्राप्ति की कामना से उपस्थित हुईं और विपुल पूजा करने के उपरान्त पुत्रों का वरदान माँगा । इसी प्रकार बारम्बार आकर उन्होंने पुत्र प्राप्ति के लिए पूजा और वरदान की याचना की ॥ ४४-४५ ॥

किन्तु निकुम्भ ने उक्त कारणवश पुत्रों का वरदान नहीं दिया । उसने सोचा कि यदि रानी को मैं वरदान न दूँगा तो राजा क्रुद्ध हो जायगा और तब हमारा सब काम असफल हो जाएगा । इस प्रकार बहुत समय व्यतीत

तत्रार्चितश्च बहुशो देव्या मे तत्र कारणात् । न ददाति च पुत्रं मे कृतघ्नो बहुभोजनः ॥ ४९ ॥
अतो नार्हति पूजां तु मत्सकाशात्कथंचन । तस्मात्तु नाशयिष्यामि तस्य स्थानं दुरात्मनः ॥ ५० ॥
एवं तु स विनिश्चित्य दुरात्मा राजकिल्विषी । स्थानं गणपतेस्तस्य नाशयामास दुर्मतिः ॥ ५१ ॥
भग्नमायतनं दृष्ट्वा राजानमगमत्प्रभुः । यस्मादनपराधं मे त्वया स्थानं विनाशितम्॥ ५२ ॥
अकस्मात्तु पुरी शून्या भवित्री ते नराधिप । ततस्तेन तु शापेन शून्या वाराणसी तथा॥ ५३ ॥
शप्तां पुरीं निकुम्भस्तु महादेवमथानयत् । शून्यां पुरीं महादेवो निर्ममे परमात्मना॥ ५४ ॥
तुल्यां देवविभूत्यास्तु देव्याश्चैव महात्मनः । रमते तत्र वै देवी रममाणे महेश्वरः॥ ५५ ॥
न रतिं तत्र वै देवी लभते गृहविस्मयात् । देव्याः क्रीडार्थमीशानो देवो वाक्यमथाब्रवीत्॥ ५६ ॥
नाहं वेश्म विमोक्ष्यामि अविमुक्तं हि मे गृहम् । प्रहस्यैनामथोवाच अविमुक्तं हि मे गृहम्॥ ५७ ॥
नाहं देवि गमिष्यामि गच्छस्वेह रमाम्यहम् । तस्मात्तदविमुक्तं हि प्रोक्तं देवेन वै स्वयम्॥ ५८ ॥
एवं वाराणसी शप्ता अविमुक्तं च कीर्तितम् । यस्मिन्वसति वै देवाः सर्वदेवनमस्कृतः ॥
युगेषु त्रिषु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वरः ॥ ५९ ॥

हो जाने पर राजा को क्रोध आ गया । वह सोचने लगा कि यह भूत हमारी इस नगरी के महान् द्वारदेश पर स्थित है । नगरवासियों के ऊपर प्रसन्न होकर सैकड़ों वरदान इसने प्रदान किये, किन्तु हमें कुछ भी नहीं दिया है । हमारी ही प्रजाओं द्वारा इसकी पूजा नित्य होती है । मेरी ही नगरी में इसका आवासस्थल है । देवी ने मेरे कहने से इसकी अनेक प्रकार से पूजाएँ भी कीं । किन्तु इस कृतघ्न को मेरे लिये एक भी पुत्र देने का अवसर नहीं मिला, यह बड़ा ही बहुभोजी है । अत: आज से इसकी पूजा नहीं करनी चाहिए । मेरी ओर से इसकी पूजा किसी प्रकार भी नहीं होगी । मैं इस दुरात्मा का स्थान नष्ट करा दूँगा ॥ ४६-५० ॥

ऐसा निश्चयकर दुरात्मा एवं कुटिल राजा ने कुमतिवश होकर गणेश्वर निकुम्भ का स्थान नष्ट करवा दिया । अपने आवासस्थल को नष्ट-भ्रष्ट देखकर परम प्रभावशाली गणपति निकुम्भ राजा के पास आये और बोले, तुमने चूँकि बिना किसी अपराध के ही हमारे स्थान को नष्ट करवा दिया है, इसलिए हे नराधिप ! तुम्हारी यह नगरी बिन किसी कारण के ही सूनी हो जायगी । निकुम्भ के इसी शाप के कारण प्राचीनकाल में वाराणसी पुरी सूनी हो गई थी । इस प्रकार वाराणसी को शाप देकर निकुम्भ ने वहाँ पर महादेव जी को बुलाया ॥ ५१-५४ ॥

देवाधिदेव महादेव जी ने उस सूनी नगरी का दैविक विभूतियों द्वारा पुनर्निर्माण किया, उसमें महान् ऐश्वर्यशाली महादेव का तथा दिव्यगुणमयी पार्वती का नित्य विहार होने लगा । अपने भवन को देखकर पार्वती जी को परम विस्मय होता था, उन्हें कुछ दिन के बाद इसमें सन्तोष नहीं मिला, तब ईशानदेव ने देवी की क्रीड़ा के लिए उनसे यह बात कही—हे देवि ! मैं अपने इस सुन्दर भवन का परित्याग नहीं करूंगा, मेरा यह गृह अविमुक्त हैं, इस प्रकार हँसते हुए महादेव जी ने पार्वती से फिर कहा कि मेरा यह भवन अविमुक्त है । मैं तो यहाँ से कहीं अन्यत्र नहीं जाऊँगा, तुम चाहो तो यहाँ से जा सकती हो, मैं तो यहीं पर रहूँगा । यत: महादेव जी ने स्वयं अपने मुख से इसे अविमुक्त कहा था, अतः उसका नाम अविमुक्त पड़ा ॥ ५५-५८ ॥

इस प्रकार वाराणसी पुरी को जिस कारणवश शाप दिया गया था और उसका अविमुक्त नाम जिस कारण

अन्तर्धानं कलौ याति तत्पुरं तु महात्मनः । अन्तर्हिते पुरे तस्मिन्पुरी सा वसते पुनः ॥ ६० ॥
एवं वाराणसी शप्ता निवेशं पुनरागता । भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥ ६१ ॥
हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिपः । भद्रश्रेण्यस्य राज्यं तु हृतं तेन बलीयसा ॥ ६२ ॥
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम नामतः । दिवोदासेन बालेति घृणया स विवर्जितः ॥ ६३ ॥
दिवोदासाद्दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः । तेन पुत्रेन बालेन प्रहृतं तस्य वै पुनः ॥ ६४ ॥
वैरस्यान्तं महाराज्ञा तदा तेन विधित्सता । प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सो गर्गश्च विश्रुतः ॥ ६५ ॥
वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु संनतिस्तस्य चाऽऽत्मजः । अलर्कं प्रति राजर्षिर्गीतश्लोकौ पुरातनौ ॥ ६६ ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च । युवा रूपेण संपन्नो ह्यलर्कः काशिसत्तमः ॥ ६७ ॥
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप्तवान् ॥ ६८ ॥
शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् । रम्यामावासयामास पुरीं वाराणसीं नृपः ॥ ६९ ॥
संनतेरपि दायादः सुनीथो नाम धार्मिकः । सुनीथस्य तु दायादः सुकेतुर्नाम धार्मिकः ॥ ७० ॥
सुकेतुतनयश्चापि धर्मकेतुरिति श्रुतिः । धर्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः ॥ ७१ ॥

से पड़ा था, वह सब मैं कह चुका । उस वाराणसी नगरी में सभी देवताओं के नमस्करणीय धर्मात्मा महादेव जी पार्वती के साथ तीनों युगों में निवास करते हैं ॥ ५९ ॥

केवल कलियुग में महात्मा शंकर का वह पुर अन्तर्हित हो जाता है । उसके अन्तर्हित हो जाने पर वाराणसी पुरी पुनः वहाँ प्रतिष्ठित होती है । इस प्रकार निकुम्भ के शाप से शापित वाराणसी पुनः प्रतिष्ठित हुई । प्राचीनकाल में नरपति दिवोदास ने राजा भद्रश्रेण्य के परम धनुर्धारी सौ पुत्रों का निधन करके उसके पुर में प्रवेश किया और परम बलशाली उसने भद्रश्रेण्य के राज्य को भी छीन लिया था । भद्रश्रेण्य का एक पुत्र दुर्दम नामक था, राजा दिवोदास ने उसे निपट बालक समझकर, उसके जीतने का कोई महत्त्व न समझकर घृणा से छोड़ दिया था ॥ ६०-६३ ॥

राजा दिवोदास से दृषद्वती नामक पत्नी में प्रतर्दन नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ, भद्रश्रेण्य के उस बालक पुत्र ने प्रतर्दन से छीना हुआ राज्य पुनः छीन लिया । उस राजाधिराज ने इस प्रकार अपने वैर का बदला चुका लिया । प्रतर्दन के वत्स और गर्ग नामक दो पुत्र कहे जाते हैं । वत्स के पुत्र अलर्क हुए, जिनके पुत्र का नाम सन्नति हुआ । राजर्षि अलर्क के लिए ये पुराने दो श्लोक गाये जाते हैं, जिनका आशय इस प्रकार है । साठ सहस्र साठ सौ वर्षों तक काशिराज अलर्क युवा था, लोपामुद्रा की कृपा से उसे इतनी बड़ी आयु प्राप्त हुई ॥ ६४-६७ ॥

एक सहस्र वर्ष के शाप के व्यतीत हो जाने पर महाबाहु राजा अलक ने उस क्षेमक नामक राक्षस को मारकर पुनः मनोहर वाराणसी पुरी को बसाया । सन्नति का उत्तराधिकारी सुनीथ नामक धार्मिक राजा हुआ । सुनीथ का उत्तराधिकारी सुकेतु नामक धार्मिक विचारों वाला राजा हुआ । सुकेतु का पुत्र धर्मकेतु नाम से जाना जाता है । धर्मकेतु का उत्तराधिकारी महारथी सत्यकेतु हुआ । सत्यकेतु का पुत्र प्रजेश्वर विभु हुआ, विभु का पुत्र सुविभु और उससे सुकुमार नामक पुत्र की उत्पत्ति कही जाती है ॥ ६८-७१ ॥

सत्यकेतसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः । सुविभुस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारस्ततः स्मृतः ॥ ७२ ॥
सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः स धार्मिकः । धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः ॥ ७३ ॥
वेणुहोत्रसुतश्चापि गार्ग्यो वै नाम विश्रुतः। गार्ग्यस्य गर्भभूमिस्तु वात्स्यो वत्सस्य धीमतः ॥ ७४ ॥
ब्राह्मणा क्षत्रियाश्चैव तयोः पुत्राः सुधार्मिकाः। विक्रान्ता बलवन्तश्च सिंहतुल्यपराक्रमाः ॥ ७५ ॥
इत्येते काश्यपाः प्रोक्ता रजेरपि निबोधत । रजेः पुत्रशतान्यासन्पञ्च वीर्यवतो भुवि ॥
राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयावहम् ॥ ७६ ॥
तदा दैवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे । देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाब्रुवन् ॥ ७७ ॥
आवयोर्भगवन्युद्धे विजेता को भविष्यति । ब्रूहि नः सर्वलोकेश श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ ७८ ॥

ब्रह्मोवाच

येषामर्थाय सङ्ग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः । योत्स्यते ते विजेष्यन्ति त्रींल्लोकान्नात्र संशयः ॥ ७९ ॥
रजिर्यतस्ततो लक्ष्मीर्यतो लक्ष्मीस्ततो धृतिः । यतो धृतिस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ८० ॥
तद्देवा दानवाः सर्वे ततः श्रुत्वा रजेर्जयम् । अभ्ययुर्जयमिच्छन्तः स्तुवन्तो राजसत्तमम् ॥ ८१ ॥
ते हृष्टमनसः सर्वे राजानं देवदानवाः । ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्मुकम् ॥ ८२ ॥

रजिरुवाच

अहं जेष्यामि वा युद्धे देवाञ्शक्रपुरोगमान् । इन्द्रो भवामि धर्मात्मा ततो योत्स्यामि संयुगे ॥ ८३ ॥

सुकुमार का पुत्र परम धार्मिक धृष्टकेतु हुआ, धृष्टकेतु का उत्तराधिकारी प्रजापालक वेणुहोत्र हुआ । वेणुहोत्र का पुत्र गार्ग्य नाम से विख्यात हुआ । गार्ग्य का पुत्र गर्भभूमि और बुद्धिमान् वत्स का पुत्र वात्स्य हुआ । इन दोनों राजाओं के पुत्र ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वर्णों वाले हुए । जो परम उत्साही, बलशाली एवं सिंह के समान पराक्रमी थे । काशी के राजाओं का वर्णन किया जा चुका । अब रजि के पुत्रों का वर्णन सुनिये । महाराज रजि के सौ पुत्र थे, जिनमें पाँच पृथ्वी में परम बलवान् विख्यात थे । वे राजेय नाम से विख्यात थे, इन्द्र भी उनके क्षात्रबल से भय खाते थे ॥ ७३-७६ ॥

उस समय देवताओं और राक्षसों में परम दारुण युद्ध मचा हुआ था, देवता और असुर दोनों दल वालों ने पितामह ब्रह्मा से पूछा,—हे भगवन् ! हम दोनों के वर्गों के इस घमासान युद्ध में कौन वर्ग विजयी होगा । हे समस्त लोकों के स्वामी ! हम लोग इस बात को जानना चाहते हैं, बताइये ॥ ७७-७८ ॥

ब्रह्मा ने कहा—जिन लोगों के लिए महान् पराक्रमशाली महाराज रजि संग्राम भूमि में हथियार धारण करेंगे, वे तीन लोकों को जीत सकेंगे, इसमें सन्देह नहीं है । जहाँ पर महाराज रजि हैं वहीं लक्ष्मी है, जहाँ पर लक्ष्मी का निवास है, वहीं पर वास्तविक धैर्य और शान्ति है, जहाँ धैर्य का निवास है, वहीं पर धर्म रहता है, और जहाँ पर धर्म रहता है, वहीं वास्तविक विजय है । देवताओं और दानवों ने रजि द्वारा जय की बातें सुनकर अपने-अपने पक्ष की विजय आकांक्षा से राजाधिराज रजि की प्रार्थना की । अत्यन्त प्रसन्न मन से देवताओं और दानवों ने राजा रजि के पास जाकर यह निवेदन किया कि आप हमारी विजय के लिए सुदृढ धनुष धारण कीजिए ॥ ७९-८२॥

दानवा ऊचुः

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादस्तस्यार्थे विजयामहे । अस्मिंस्तु समये राजंस्तिष्ठेथा देवनोदिते ॥ ८४ ॥
स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यभिचोदितः । भविष्यसीन्द्रो जित्वेति देवैरपि निमन्त्रितः ॥ ८५ ॥
जघान दानवान्सर्वान्समक्षं वज्रपाणिनः । स विप्रनष्टां देवानां परमश्रीः श्रियं वशी ॥ ८६ ॥
निहत्य दानवान्सर्वान् व्याजहार रजिः प्रभुः । तं तथा तु रजिं तत्र देवैः सह शतक्रतुः ॥ ८७ ॥
रजिपुत्रोऽहमित्युत्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः । इन्द्रोऽसि राजन्देवानां सर्वेषां नात्र संशयः ॥
यस्याहमिन्द्र पुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि शत्रुहन् ॥ ८८ ॥
स तु शक्रवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया । तथेत्येवाब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम् ॥ ८९ ॥
तस्मिंस्तु देवसदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ । दायाद्यमिन्द्रादाजह्रूराचारं तनया रजेः ॥ ९० ॥
तानि पुत्रशतान्यस्य तच्च स्थानं शचीपतेः । समक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ॥ ९१ ॥
ततः काले बहुतिथे समतीते महाबलः । हृतराज्योऽब्रवीच्छक्रो हृतभागो बृहस्पतिम् ॥ ९२ ॥

रजि ने कहा—हम तुम सब को युद्ध में पराजित कर देंगे, इन्द्र प्रभृति प्रमुख देवगणों को भी हम पराजित कर देंगे, किन्तु हमीं धर्मात्मा इन्द्र होंगे, इसी उपबन्ध (शर्त) पर हम युद्ध में धनुष धारण करेंगे ॥ ८३ ॥

दानवों ने कहा—हम लोगों के इन्द्र प्रह्लाद हैं, उन्हीं के लिए हम सभी को विजय की आकांक्षा है । परन्तु हे राजन् ! देवता द्वारा प्रेरित इस प्रतिज्ञा से हम सभी सहमत हैं । दानवों की यह बात सुनकर महाराज रजि स्वीकारोक्ति दे ही रहे थे कि देवतागण भी बोल उठे । उन लोगों ने भी यह निमंत्रण दिया कि आप दानवों को पराजित कर हम सबके इन्द्र हो सकते हैं ॥ ८४-८५ ॥

देवताओं के इस निमंत्रण को स्वीकार कर रजि ने वज्रपाणि देवराज इन्द्र के देखते-देखते सभी दानवों का संहार कर डाला, इस प्रकार उस जितेन्द्रिय परम प्रभावशाली महाराज रजि ने समस्त दानवों का संहार कर देवताओं की विनष्ट राजलक्ष्मी का उद्धार किया । उस युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले महाराज रजि से देवताओं समेत शतक्रतु इन्द्र बोले, हे महाराज ! मैं आपका पुत्र हूँ । पुनः इन्द्र ने कहा—हे राजन् ! आप समस्त देवताओं के इन्द्र हैं, इसमें सन्देह नहीं है । हे शत्रुविनाशक ! मैं इन्द्र आपके पुत्र के रूप में विख्यात होउँगा ॥ ८६-८८ ॥

शक्र की ऐसी बातें सुनकर और उसकी माया से ठगे जाकर महराज रजि ने प्रसन्न होकर कहा कि अच्छी बात है । उस देवतुल्य महाराज रजि के स्वर्गगामी हो जाने पर उनके पुत्रों ने इन्द्र से उनका सम्पूर्ण उत्तराधिकार छीन लिया । इस प्रकार इन्द्र के स्थान पर महाराज रजि के सौ पुत्रों ने अपना अधिकार जमा लिया, और अनेक प्रकार से एक ही साथ सारे स्वर्ग लोक को आक्रान्त कर लिया ॥ ८९-९१ ॥

बहुत दिवस बीत जाने पर महाबलशाली हतभाग्य इन्द्र अपना राज्य छीन लिये जाने पर बृहस्पति के समीप गये और बोले—हे ब्रह्मर्षि ! आप बैर के फल के समान बड़ा पुरोडाश (चरु) का अंश मेरे लिये बनाइये, जिससे मैं स्थित हो सकूँ । उसी के तेज से मेरी सन्तुष्टि हो सकेगी । हे ब्रह्मन् ! क्योंकि इस समय मेरी स्थिति बहुत विचारणीय हो गयी है, मैं बहुत दुर्बल हो गया हूँ, मेरा मन नहीं लगता है, मेरा राज्य छीन लिया गया है,

बदरीफलमात्रं वै पुरोडाशं विधत्स्व मे । ब्रह्मर्षे येन तिष्ठेयं तेजसाऽऽप्यायितस्ततः ॥ ९३ ॥
ब्रह्मन्कृशोऽयं विमना हृतराज्यो हृताशनः । हतौजा दुर्बलो मूढो रजिपुत्रैः प्रसीद मे ॥ ९४ ॥

बृहस्पतिरुवाच

यद्येव चोदितः शक्र त्वया स्यां पूर्वमेव हि । नाभविष्यत्त्वत्प्रियार्थं नाकर्तव्यं ममानघ ॥ ९५ ॥
प्रयतिष्यामि देवेन्द्र तद्धितार्थं महाद्युते । तथा भागं च राज्यं च अचिरात्प्रतिपत्स्यसे ॥ ९६ ॥
तथा शक्र गमिष्यामि मा भूत्ते विक्लवं मनः । ततः कर्म चकारास्य तेजः संवर्धनं महत् ॥ ९७ ॥
तेषां च बुद्धिसंमोहमकरोद्बुद्धिसत्तमः । ते यदा ससुता मूढा रागोत्पन्ना विधर्मिणः ॥ ९८ ॥
ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्यपराक्रमाः । ततो लेभे सुरैश्वर्यमैन्द्रस्थानं तथोत्तमम् ॥ ९९ ॥
हत्वा रजिसुतान्सर्वान्कामक्रोधपरायणान् । य इदं पावनं स्थानं प्रतिष्ठानं शतक्रतोः ॥
शृणुयाद्वा रजेर्वाऽपि न स दौरात्म्यमाप्नुयात् ॥ १०० ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे रजियुद्धवर्णनं
नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

* * *

भोजन भी छीन लिया गया है। मेरी सारी शक्ति नष्ट हो गयी है, शरीर भी दुर्बल हो गया है, मेरी बुद्धि भी मारी गयी है, रजि के पुत्रों से हमारी रक्षा कीजिये ॥ ९२-९४ ॥

बृहस्पति ने कहा—हे शक्र ! यदि तुमने पहले ही मुझसे अपनी स्थिति कही होती तो तुम्हारी यह स्थिति न होती, तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट न होता। हे निष्पाप ! तुम्हारे कल्याण के लिए मैं कुछ भी अकर्तव्य नहीं समझता अर्थात् तुम्हारे लिए सब कर सकता हूँ। हे महाकान्तिशाली देवराज इन्द्र ! तुम्हारे लिए मैं वही प्रयत्न करूँगा, जिससे तुम्हारा अंश और राज्य तुम्हें पुनः शीघ्र ही वापस मिल जाय ॥ ९५-९६ ॥

हे शक्र ! मैं वैसा करने जा रहा हूँ, तुम मन की विकलता छोड़ दो। इस प्रकार इन्द्र को सान्त्वना देकर बृहस्पति ने इन्द्र की प्रताप वृद्धि के लिए महान् अनुष्ठान किया। परम बुद्धिमान् बृहस्पति ने रजि के पुत्रों की बुद्धि को मोहित कर दिया। जिससे उन सब की मति मारी गयी, पुत्रों के समेत वे विधर्म में निरत हो गये, परिणामतः रोगग्रस्त एवं उन्मत्त हो गये। ब्राह्मणों से द्वेष करने लगे, सबके पराक्रम एवं बल का विनाश हो गया। ऐसी दशा में, जब वे सभी काम, क्रोध और मोह में लिप्त हो गये, तब इन्द्र ने उन रजि पुत्रों का संहार कर दिया और अपना उत्तम देवताओं का स्वामित्व पद पुनः प्राप्त किया। जो व्यक्ति शतक्रतु इन्द्र की पुनः इन्द्र पद प्राप्त का एवं महाराज रजि का यह परम पवित्र वृत्तान्त पढ़ता या सुनता है, वह कभी दुर्गति में नहीं पड़ता ॥ ९७-१०० ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में रजियुद्ध वर्णन नामक तीसवें अध्याय (बानबेवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३० ॥**

* * *

अथैकत्रिंशोध्यायः

ययातिप्रसवकीर्त्तनम्

ऋषय ऊचुः

मरुतेन कथं कन्या राज्ञे दत्ता महात्मना । किंवीर्याश्च महात्मानो जाता मरुतकन्यकाः ॥ १ ॥

सूत उवाच

आहवन्तं मरुत्सोममन्नकामः प्रजेश्वरम् । मासि मासि महातेजाः षष्टिसंवत्सरान्नृपः ॥ २ ॥

तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तोषिताः । अक्षय्यान्नं ददुः प्रीताः सर्वकामपरिच्छदम् ॥ ३ ॥

अन्नं तस्य सकृत्पक्वमहोरात्रे न क्षीयते । कोटिशो दीयमानं च सूर्यस्योदयनादपि ॥ ४ ॥

मित्रज्योतिस्तु कन्यायां मरुतस्य च धीमतः । तस्माज्जाता महासत्त्वा धर्मज्ञा मोक्षदर्शिनः ॥ ५ ॥

संन्यस्य गृहधर्माणि वैराग्यं समुपस्थिताः । यतिधर्ममवाप्येह ब्रह्मभूयाय ते गताः ॥ ६ ॥

अनपायस्ततो जातस्तदा धर्मप्रदत्तवान् । क्षत्रधर्मस्ततो जातः प्रतिपक्षो महातपाः ॥ ७ ॥

इकतीसवाँ अध्याय

(तिरानबेवाँ अध्याय)

ययातिप्रसवकीर्त्तन

ऋषियों ने पूछा—सूत जी । महान् पराक्रमी मरुत्त ने राजा को किस प्रकार अपनी कन्या प्रदान की थी? और मरुत की कन्या से उत्पन्न होनेवाले वे महान् बलशाली पुत्र कितने पराक्रमी हुए ॥ १ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—महान् तेजस्वी राजा ने अन्न की कामना से साठ वर्षों तक प्रत्येक मास में प्रजापति मरुत् एवं सोम का यज्ञ किया था । उसके उस मरुत्सोम यज्ञ से परम प्रसन्न होकर मरुतों ने अक्षय अन्न प्रदान किये, जो सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले थे ॥ २-३ ॥

एक बार का पकाया गया उसका अन्न दिन-रात घर में भी नष्ट नहीं होता था और सूर्योदय से करोड़ों बार दिये जाने पर भी वह नहीं चुकता था । परम बुद्धिमान् मरुत्त की कन्या में मित्रज्योति का जन्म हुआ । उससे महान् पराक्रमी मोक्षदर्शी, धर्मज्ञ पुत्रों की उत्पत्ति हुई, जो गृहस्थाश्रम धर्म का परित्यागकर वैराग्य पथ के अनुगामी हुए, और अन्त में संन्यासियों का धर्म अपनाकर ब्रह्मत्व को प्राप्त हुए ॥ ४-६ ॥

तत्पश्चात् अनपाय की उत्पत्ति हुई. जिससे धर्मप्रदत्तवान् की उत्पत्ति हुई, उससे क्षत्रधर्म की उत्पत्ति हुई ।

प्रतिपक्षसुतश्चापि संजयो नाम विश्रुतः । संजयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य जग्मिवान्॥ ८ ॥
विजयस्य जयः पुत्रस्तस्य हर्यन्द्वतः स्मृतः । हर्यन्दुतस्ततो राजा सहदेवः प्रतापवान्॥ ९ ॥
सहदेवस्य धर्मात्मा अदीन इति विश्रुतः । अदीनस्य जयत्सेनस्तस्य पुत्रोऽथ संकृतिः॥ १० ॥
संकृतेरपि धर्मात्मा कृतधर्मा महायशाः । इत्येते क्षत्रधर्माणो नहुषस्य निबोधत॥ ११ ॥
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः । उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः॥ १२ ॥
यतिर्ययातिः संयातिरायातिः पञ्च तु द्वयः । यतिर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै ययातिस्तु ततोऽवरः॥ १३ ॥
काकुत्स्थकन्यां गां नाम लेभे पत्नीं यतिस्तदा । संयातिर्मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः॥ १४ ॥
तेषां मध्ये तु पञ्चानां ययातिः पृथिवीपतिः । देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप ह॥ १५ ॥
शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः । यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानिर्व्यजायत॥ १६ ॥
द्रुह्युं चानुं च पुरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी । अजीजनन्महावीर्यान् सुतान् देवसुतोपमान्॥ १७ ॥
रथं तस्मै ददौ रुद्रः प्रीतः परमभास्वरम् । असङ्गं काञ्चनं दिव्यमक्षयौ च महेषुधी॥ १८ ॥
युक्तं मनोजवैरश्वैर्येन कन्यां समुद्वहत् । स तेन रथमुख्येन जिगाय च ततो महीम्॥ १९ ॥
ययातिर्युधि दुर्धर्षो देवदानवमानवैः । पौरवाणां नृपाणां च सर्वेषां सोऽभवद् रथः॥ २० ॥

क्षत्रधर्म से महान् तपस्वी प्रतिपक्ष की उत्पत्ति हुई । प्रतिपक्ष के पुत्र संजय नाम से विख्यात हुए । संजय के पुत्र जय हुए और जय से विजय नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । विजय का पुत्र भी जय नाम से विख्यात हुआ, जय का पुत्र हर्यद्वत नाम से प्रसिद्ध हुआ । हर्यद्वत के बाद परम प्रतापशाली राजा सहदेव हुए । सहदेव के पुत्र धर्मात्मा अदीन नाम से प्रसिद्ध हुए । अदीन के पुत्र जयत्सेन हुए, जयत्सेन के पुत्र संकृति हुए । संकृति के पुत्र महान् यशस्वी एवं धर्मात्मा राजा कृतधर्मा हुए । ये सब राजागण क्षत्रिय गुण कर्म स्वभाववाले थे । अब इसके उपरान्त राजा नहुष के वंश का वर्णन सुनिये ॥ ७-११ ॥

राजा नहुष के इन्द्र के समान तेजस्वी छः पुत्र उत्पन्न हुए, वे महान् तेजस्वी नहुष पुत्र पितरों की कन्या विरजा में उत्पन्न हुए थे । उनके नाम थे यति, ययाति, संयाति, आयाति, पञ्च (?), द्वय (?) । इन सब पुत्रों में यति सबसे बड़े थे, ययाति उनसे छोटे थे । यति ने राजा काकुत्स्थ की कन्या गौ को पत्नी रूप में वरण किया था । संयाति ने मोक्ष मार्ग का आश्रय लेकर मुनियों के समान ब्रह्म पद की प्राप्ति की ॥ १२-१४ ॥

इन पाँचों भाइयों में ययाति पृथ्वीपति (राजा) हुआ । उसने शुक्राचार्य की देवयानी नामक कन्या से विवाह किया । असुरराज वृषपर्वा की शर्मिष्ठा नामक कन्या को भी उसने पत्नी रूप में वरण किया था । देवयानी ने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये । वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये । इस प्रकार राजा ययाति ने इन देवताओं के समान सुन्दर एवं पराक्रमशाली, महाबलवान् पुत्रों को उत्पन्न किया ॥ १५-१७ ॥

महादेव जी ने प्रसन्न होकर उस राजा ययाति को परम सुन्दर, चमकनेवाला सुवर्ण निर्मित एक दिव्य रथ प्रदान किया था, इसके अतिरिक्त दो कभी नष्ट न होनेवाले तरकश भी दिये थे । उस सुन्दर रथ में मन के समान

यावत्सुदेशप्रभवः कौरवो जनमेजयः । कुरोः पुत्रस्य राज्ञस्तु राज्ञः पारिक्षितस्य ह ॥
जगाम स रथो नाशं शापाद्गार्ग्यस्य धीमतः ॥ २१ ॥
गार्ग्यस्य हि सुतं बालः स राजा जनमेजयः । दुर्बुद्धिर्हिंसयामास लोहगन्धं नराधिपम् ॥ २२ ॥
स लोहगन्धो राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः । पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचित् ॥ २३ ॥
ततः स दुःखसंतप्तो नालभत्संविदं क्वचित् । शशाप हेतुकमृषिं शरण्यं व्यथितस्तदा ॥ २४ ॥
इन्द्रोतो नाम विख्यातो योऽसौ मुनिरुदारधीः । योजयामास चेन्द्रोतः शौनको जनमेजयम् ॥
अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमः ॥ २५ ॥
स लोहगन्धो व्यनशत्तस्याऽऽवसथमेत्य ह । स च दिव्यो रथस्तस्माद्वसोश्चेदिपतेस्तथा ॥ २६ ॥
ततः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः । ततो हत्वा जरासंधं भीमस्तं रथमुत्तमम् ॥
प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ॥ २७ ॥
स जरां प्राप्य राजर्षिर्ययातिर्नहुषात्मजः । पुत्रं ज्येष्ठं वरिष्ठं च यदुमित्यब्रवीद्वचः ॥ २८ ॥

वेगशाली घोड़े जुते हुए थे । उसी रथ पर चढ़कर शुक्र की पुत्री देवयानी को साथ लेकर राजा ययाति ने समस्त पृथ्वी को जीता था । वह राजा ययाति युद्धभूमि में देवताओं, दानवों, मनुष्यों सबसे दुर्दमनीय था, समस्त पुरुवंशी राजाओं में महादेव जी का दिया गया वह महान् रथ व्यवहार में लाया जाता था । जब कुरुवंश के राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय शासनारूढ़ हुए, उस समय भी वह सुन्दर रथ उनके अधीन था । बुद्धिमान् गार्ग्य के शाप से वह रथ नष्ट हुआ ॥ १८-२१ ॥

राजा जनमेजय ने कुबुद्धि में आकर गार्ग्य के पुत्र का संहार कर दिया था । जिससे क्रुद्ध होकर उन्होंने नरपति जनमेजय को लोहगंध (लोहे के समान दुर्गन्धवाला) होने का अभिशाप दे दिया था ॥ २२ ॥

राजर्षि जनमेजय लोहगंध होने पर इधर-उधर बहुत दौड़े पर कहीं उन्हें शान्ति नहीं मिली । ग्रामवासियों ने भी उनका परित्याग कर दिया था । इस प्रकार अत्यन्त दुःखित हो जाने पर भी उनको जब कहीं शान्ति का स्थान नहीं मिल सका तो अनन्योपाय एवं परम दुःखी होकर शाप देनेवाले ऋषि की शरण में गये ॥ २३-२४ ॥

पर उदार बुद्धिवाले शुनक गोत्रोत्पन्न इन्द्रोत नामक परम विख्यात मुनि ने राजा जनमेजय को इस घोर पाप से छुड़ाने के लिए यज्ञ कराया । इस प्रकार द्विजश्रेष्ठ इन्द्रोत ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान कराया । तब उन्हीं के निवास में राजा का लोहगन्धत्व दूर हुआ । वह दिव्य रथ उसके अधिकार से चेदि देशाधिपति राजा वसु के अधीन हुआ । वसु से इन्द्र ने प्राप्त किया, इन्द्र ने सन्तुष्ट होकर राजा बृहद्रथ को दिया । बृहद्रथ को मारकर उसे जरासंध ने छीना, इसके उपरान्त जरासंध से उस दिव्य रथ को भीम ने प्राप्त किया । कौरवनन्दन भीम ने प्रसन्नतापूर्वक उस रथ को वासुदेव को समर्पित किया ॥ २५-२७ ॥

विमर्श—यहाँ पर ग्रन्थ का मूल पाठ भ्रष्ट मालूम पड़ता है । पूर्व कथा से पर कथा की कोई संगति नहीं मिलती । जनमेजय भीम के बाद हुए थे । फिर जनमेजय के बाद भीम को रथ की प्राप्ति किस प्रकार सम्भव हुई?

नहुष पुत्र राजर्षि ययाति जब बहुत वृद्ध हो गये तब अपने सबसे बड़े और योग्य पुत्र यदु से यह बात

जरावली च मां तात पलितानि च पर्यगुः । काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने॥ २९ ॥
त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह । जरां मे प्रतिगृहणीष्व तं यदुः प्रत्युवाच ह॥ ३० ॥
अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता । सा च व्यायामसाध्या वै न ग्रहीष्यामि ते जराम्॥ ३१ ॥
जराया बहवो दोषा पानभोजनकारिणः । तस्माज्जरां न ते राजन्ग्रहीतुमहमुत्सहे॥ ३२ ॥
सितश्मश्रुधरो दीनो जरया शिथिलीकृतः । वलीसंततगात्रश्च दुर्दर्शो दुर्बलाकृतिः॥ ३३ ॥
अशक्तः कार्यकरणे परिभूतस्तु यौवने । महोपभीतिभिश्चैव तां जरां नाभिकामये॥ ३४ ॥
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप । प्रतिगृहणन्तु धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै॥ ३५ ॥
स एवमुक्तो यदुना तीव्रकोपसमन्वितः । उवाच वदतां श्रेष्ठो ज्येष्ठं तं गर्हयन्सुतम्॥ ३६ ॥
आश्रमः कश्च वाऽन्योऽस्ति को वा धर्मविधिस्तव । मामनादृत्य दुर्बुद्धे यदात्थ नवदेशिक॥ ३७ ॥
एवमुक्त्वा यदुं राजा शशापैनं स मन्युमान् । यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि॥ ३८ ॥

बोले, पुत्र यदु ! शुक्राचार्य के शाप के कारण वृद्धता, चमड़े की सिकुड़न और पलितादि ने मुझे चारों ओर से घेर लिया, किन्तु मैं अभी तक यौवनावस्था से सन्तुष्ट नहीं हो सका । तुम मेरी इस वृद्धता और पाप को ग्रहण कर 'लो' ययाति की ऐसी बातें सुनकर यदु ने उत्तर दिया, तात! मैंने अनन्तकाल तक ब्राह्मण को भिक्षादान करने की प्रतिज्ञा कर ली है, वह भिक्षा विशेष परिश्रम से साध्य होगी अतः तुम्हारी वृद्धता ग्रहण करने में मैं अशक्त हूँ ॥ २८-३१ ॥

राजन् ! इस वृद्धता में भोजन पान आदि के बहुत बड़े दोष हो जाते हैं, अर्थात् बुढ़ापे में ठीक से अन्न नहीं पचता, पानी आदि भी बहुत सोंचकर (जाँचकर) पीना पड़ता है, खान-पान के थोड़े से ही असंयम से बड़ा कष्ट मिलता है । इसलिए भी आपकी इस वृद्धता को अंगीकार करने का उत्साह मुझमें नहीं हो रहा है । श्वेत बाल धारण करनेवालों को यह वृद्धता एकदम शिथिल कर देती है । शरीर में सिकुड़न आ जाती है, देखने में चेहरा भद्दा हो जाता है, प्रकृति दुर्बल हो जाती है, कोई कार्य करने की भी शक्ति नहीं रह जाती, यौवन के सुखों से वंचित एवं पराभूत होना पड़ता है । इस प्रकार की अनेक महान् विपत्तियों से घिरी हुई उस वृद्धता को मैं अंगीकार नहीं करूंगा ॥ ३२-३४ ॥

हे नृपति ! आपके अन्य पुत्र भी हैं, जो मुझसे भी अधिक प्रिय हैं, हे धर्मज्ञ ! आप उन्हीं से इसका प्रस्ताव कीजिये, अन्य पुत्रों से ही इसकी याचना करना उचित है । यदु के ऐसा कहने पर बोलने वालों में प्रवीण राजा ययाति परम क्रुद्ध होकर अपने बड़े पुत्र यदु की भर्त्सना करते हुए बोले । दुर्बुद्धे ! तुम्हारा कौन-सा आश्रम है? गृहस्थाश्रम के अतिरिक्त क्या तुम्हारा कोई अन्य आश्रम धर्म है? तुम्हारे धर्म की विधि कौन-सी है? नये ढंग से उपदेश करनेवाले । कुमति ! मेरा निरादर करके जिस धर्म का तुम पालन कर रहे हो, वह कौन-सा धर्म, आश्रम या विधि है ॥ ३५-३७ ॥

इस प्रकार की क्रोधपूर्ण बातें कर परम क्रोध में भरे हुए राजा ययाति ने यदु को शाप दे दिया । 'जो तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी मुझे अपनी यौवन अवस्था नहीं दे रहे हो, सो हे मूढ़ ! तुम्हारी प्रजा और तुम कोई भी हमारे राज्य के उत्तराधिकारी न होगे ।' इस प्रकार शाप देकर राजा ययाति ने तुर्वसु नामक अपने पुत्र से कहा,

तस्मान्न राजभाग्मूढ प्रजा ते वै भविष्यति । तुर्वसो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह॥ ३९ ॥

तुर्वसुरुवाच

न कामये जरां तात कामभोगप्रणाशिनीम् । जराया बहवो दोषाः पानभोजनकारिणः॥
तस्माज्जरां ते राजन्प्रहीतुमहमुत्सहे ॥ ४० ॥

ययातिरुवाच

यत्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि । तत्समात्प्रजा समुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति॥ ४१ ॥
असंकीर्णा च धर्मेण प्रतिलोमवरेषु च । पिशितादिषु चान्येषु मूढ राजा भविष्यसि॥ ४२ ॥
गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिगतेषु वा । पशुधर्मेषु म्लेच्छेषु भविष्यसि न संशयः॥ ४३ ॥

सूत उवाच

एवं तु तुर्वसुं शप्त्वा ययातिः सुतमात्मनः । शर्मिष्ठायाः सुतं द्रुह्युमिदं वचनमब्रवीत्॥ ४४ ॥
द्रुह्यो त्वं प्रतिपद्यस्व वर्णरूपविनाशिनीम् । जरां वर्षसहस्रं वै यौवनं स्वं ददस्व मे॥ ४५ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम् । स्वं चाऽऽदास्यामि भूयोऽहं पाप्मानं जरया सह॥ ४६ ॥

द्रुह्यु उवाच

न गजं न रथं नाश्वं जीर्णो भुङ्क्ते न च स्त्रियम् । न सङ्गश्चास्य भवति न जरां तेन कामये॥ ४७ ॥

तुर्वसु ! मेरी वृद्धावस्था और मेरे पाप को तुम अंगीकार कर लो, पुत्र ! तुम्हारी यौवनावस्था से मैं विविध प्रकार के भोगों का उपभोग करना चाहता हूँ । एक सहस्र वर्ष बीतने पर तुम्हारी यौवनावस्था तुम्हें वापस कर दूंगा, और निश्चय ही उस समय मैं अपने पाप और वृद्धावस्था को ले लूंगा ॥ ३८-३९ ॥

तुर्वसु ने कहा—तात ! ऐच्छिक भोगों को नष्ट करनेवाली, विषयादि सुखों से वंचित करने वाली तुम्हारी वृद्धता को मैं पसन्द नहीं कर सकता । राजेन्द्र इस वृद्धता से तो भोजन पानादि में भी बड़ी अड़चनें पड़ती हैं । इसलिए उस वृद्धता के ग्रहण करने का उत्साह मुझमें नहीं है ॥ ४० ॥

ययाति ने कहा—तुर्वसु ! मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी तुम मेरे लिए अपनी अवस्था नहीं दे रहे हो, अतः तुम्हारी सन्ततियाँ नाश को प्राप्त होंगी । प्रतिलोम रीति से वे संकरवर्ण की हो जायेंगी । धर्म से च्युत, मांसाहारी एवं अन्य दुराचारों में निरत रहने वाली प्रजाओं के तुम राजा होगे । गुरु की स्त्री के साथ गमन करने वाले, नीच योनियों में जन्म धारण करने वाले, पशु के समान अविवेकशील, म्लेच्छों के देश के तुम राजा होगे—इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१-४३ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! राजा ययाति ने इस प्रकार अपने पुत्र तुर्वसु को शाप देने के उपरान्त शर्मिष्ठा के बड़े पुत्र द्रुह्यु से यह बात कही, प्रिय पुत्र द्रुह्यु ! वर्ण एवं रूप के विनाशक इस मेरी वृद्धता को तुम स्वीकार कर लो । एक सहस्र वर्ष के लिए अपनी यौवनावस्था मुझे प्रदान कर दो । एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर तुम्हारी यौवनावस्था मैं तुम्हें वापस कर दूँगा और उसी समय समस्त पापकर्मों समेत अपनी वृद्धता तुमसे वापस ले लूँगा ॥ ४४-४६ ॥

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि । तस्माद्‌द्रुह्यु प्रियः कामो न ते संपत्स्यते क्वचित् ॥४८॥
नौप्लवोत्तरसंचारस्तत्र नित्यं भविष्यति । अराजभ्राजवंशस्त्वं तत्र नित्यं भविष्यसि ॥ ४९ ॥
अनो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह । एवं वर्षसहस्रं तु चरेयं यौवनेन ते ॥ ५० ॥

अनुरुवाच

जीर्णः शिशुवरं दत्ते जरया ह्यशुचिः सदा । न जुहोति स कालेग्निं तां जरां नाभिकामये ॥ ५१ ॥

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि । जरादोषस्त्वयोक्तोऽयं तस्मात्ते प्रतिपत्स्यते ॥ ५२ ॥
प्रजा च यौवनं प्राप्ता विनशिष्यत्यतस्तव । अग्निप्रस्कन्दनपरस्त्वं चाप्येव भविष्यसि ॥ ५३ ॥
पूरो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह । जरावली च मां तात पलितानि च पर्यगुः ॥ ५४ ॥
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने । कंचित्कालं चरेयं वै विषयान्वयसा तव ॥ ५५ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम् । स्वं चैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ॥ ५६ ॥

द्रुह्यु ने कहा—पिता जी ! वृद्ध पुरुष न तो हाथी पर चढ़ सकता है, न घुड़सवारी का आनन्द लूट सकता है, न अच्छे सुस्वादु अन्न का ही भोग कर सकता है, न सुन्दरी स्त्री ही उसके लिए आनन्ददायिनी हो सकती है। कोई वृद्ध पुरुष के पास बैठना भी नहीं चाहता, इन कारणों से मैं तुम्हारी इस वृद्धता को पसन्द नहीं करता ॥४७॥

ययाति ने कहा—द्रुह्यु ! तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी अपनी अवस्था मुझे नहीं दे रहे हो । अतः तुम्हारा मनचाहा कभी नहीं और कहीं नहीं सम्पन्न होगा । जिस देश में लोग सर्वदा नाव और छोटी-छोटी नौकाओं द्वारा जा सकते हैं, जहाँ पर राजवंश का सर्वथा अभाव तथा सुन्दरता की नितान्त कमी रहेगी, वहाँ पर तुम्हें सर्वदा निवास करना पड़ेगा । द्रुह्यु को इस प्रकार शाप देकर राजा ययाति ने अनु से कहा, अनु ! मेरी वृद्धावस्था तथा पापकर्मों को तुम ले लो, इस प्रकार एक सहस्र वर्ष तक तुम्हारी यौवनावस्था से मैं विषयों का उपभोग करना चाहता हूँ ॥ ४८-५० ॥

अनु ने कहा—हे तात! आप बहुत वृद्ध हो गये हैं, मैं अभी बालक हूँ । आपकी वृद्धावस्था से मैं वृद्ध हो जाऊँगा, जिससे सर्वदा अपवित्र बना रहूँगा । हे महाराज! इसलिए मैं उस वृद्धावस्था को ग्रहण नहीं कर सकता, वह हमें पसन्द नहीं है ॥ ५१ ॥

ययाति ने कहा—तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी अपनी यौवनावस्था नहीं दे रहे हो, तो वृद्धावस्था का जो दोष तुमने बताया है, वह सब तुम्हें प्राप्त होगा, तुम्हारी प्रजाएँ यौवनावस्था को प्राप्त करते ही विनष्ट हो जायँगी । तुम भी अग्नि में गिरकर भस्म हो जाओगे । अनु को ऐसा शाप देने के उपरान्त महाराज ययाति अपने सबसे छोटे पुत्र पुरु से बोले, प्रिय पुत्र पुरु ! तुम मेरे पापों के साथ मेरी इस वृद्धावस्था को ग्रहण कर लो, मेरे अंगों में सिकुड़न आ गयी है, केश सफेद हो गये हैं, चारों ओर से बुढ़ापे ने आक्रान्त कर लिया है, किन्तु इतने पर भी मैं शुक्राचार्य के शाप के कारण यौवनावस्था से सन्तुष्ट नहीं हो सका हूँ । तुम्हारी यौवनावस्था प्राप्तकर मैं

सूत उवाच

एवमुक्तः प्रत्युवाच पुत्रः पितरमञ्जसा । यथाऽनुमन्यसे तात करिष्यामि तथैव च॥ ५७ ॥
प्रतिपत्स्यामि ते राजन्पाप्मानं जरया सह । गृहाण यौवनं मत्तश्चर कामान्यथेप्सितान्॥ ५८ ॥
जरयाऽहं प्रतिच्छन्नो वयोरूपधरस्तव । यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथार्थवत्॥ ५९ ॥

ययातिरुवाच

पुरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते प्रीतश्चेदं ददामि ते । सर्वकामसमृद्धा ते प्रजा राज्ये भविष्यति॥ ६० ॥

सूत उवाच

पुरोरनुमतो राजा ययातिः स्वां जरां ततः । संक्रामयामास तदा प्रसादाद्भार्गवस्य तु॥ ६१ ॥
यौवनेनाथ वयसा ययातिर्नहुषात्मजः । प्रीतियुक्तो नरश्रेष्ठश्चचार विषयान्स्वकान्॥ ६२ ॥
यथाकामं यथोत्साहं यथाकालं यथासुखं । धर्माविरोधाद्राजेन्द्रो यथाऽर्हति स एव हि॥ ६३ ॥
देवानतर्पयद्यज्ञैः पितृश्राद्धैस्तथैव च । दीनांश्चानुग्रहैरिष्टैः कामैश्च द्विजसत्तमान्॥ ६४ ॥
अतिथीनन्नपानैश्च वैश्यांश्च परिपालनैः । आनृशंस्येन शूद्रांश्च दस्यून्संनिग्रहेण च॥ ६५ ॥

कुछ समय तक और विषयों का सेवन करना चाहता हूँ, एक सहस्र वर्ष बीत जाने पर मैं तुम्हारी यौवनावस्था तुम्हें वापस कर दूंगा, और उसी समय अपने समस्त पाप कर्मों समेत वृद्धता को तुमसे वापस ले लूँगा ॥ ५२-५६ ॥

सूतजी ने कहा—पिता ययाति के इस प्रकार कहने पर पुरु ने तुरन्त उत्तर दिया । तात ! आपकी जैसी आज्ञा है, मैं वैसा ही करूँगा । राजन् ! आपके पापकर्मों के साथ इस वृद्धता को मैं सहन करने के लिए तैयार हूँ, मेरी यौवनावस्था ग्रहणकर आप यथेप्सित विषय-भोगों का सेवन कर सकते हैं । मैं आपके स्वरूप और अवस्था दोनों को धारणकर, स्वयं वृद्धावस्था में रहकर अपनी यौवनावस्था आपको समर्पित करूँगा और आप ही की तरह सब कार्य करूंगा ॥ ५७-५९ ॥

ययाति ने कहा—प्रिय पुरु ! मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हें यह आशीर्वाद दे रहा हूँ कि तुम्हारे राज्य में प्रजाओं की सारी कामनाएँ पूर्ण होंगी, वे सर्वदा समृद्ध रहेंगी ॥ ६० ॥

श्रीसूतजी ने कहा—इस प्रकार पुरु की अनुमति प्राप्त हो जाने पर नहुष पुत्र नरश्रेठ महाराज ययाति ने अपनी वृद्धावस्था को शुक्राचार्य की कृपा से पुरु में सन्निविष्ट कर पुरु की यौवनावस्था को स्वयं ग्रहण किया और परम प्रसन्न होकर उस यौवनावस्था द्वारा अनेक विषय-भोगों का उपभोग किया । राजाधिराज ययाति ने पुत्र की यौवनावस्था द्वारा अपनी इच्छा के अनुसार, उत्साह के अनुसार, समय के अनुसार, अधिकाधिक सुख प्राप्ति के उद्देश्य से विषय-भोगों का सेवन किया, किन्तु ऐसा कोई आचरण नहीं किया, जिससे धर्म की मर्यादा नष्ट हो ॥ ६१-६३ ॥

उसने यज्ञों द्वारा देवताओं को सन्तुष्ट किया, श्राद्धों द्वारा पितरों को सन्तुष्ट किया, अनुग्रह द्वारा दीनों, गरीबों का हितचिन्तन किया और मनचाहे पदार्थों की पूर्ति से विद्वान् ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया । अन्नपानादि द्वारा अतिथियों का समुचित सत्कार किया, व्यापार आदि में उपयुक्त सहायता देकर वैश्यों को सन्तुष्ट किया । अपनी

धर्मेण च प्रजाः सर्वा यथावदनुरञ्जयन् । ययातिः पालयामास साक्षादिन्द्र इवापरः ॥ ६६ ॥
स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचरः । अविरोधेन धर्मस्य चचार सुखमुत्तमम् ॥ ६७ ॥
मार्गमाणः कामानामन्तदोषनिदर्शनात् । विश्वासहेतो रेमे ै वैभ्राजे नन्दने वने ॥ ६८ ॥
अपश्यत्स यदा तां वै वर्धमानां नृपस्तदा । गत्वा पुरोः सकाशं वै स्वं जरां प्रत्यपद्यत ॥ ६९ ॥
स संप्राप्य तु तान्कामांस्तृप्तः खिन्नश्च पार्थिवः । कालं वर्षसहस्रं वै सस्मार मनुजाधिपः ॥ ७० ॥
परिसंख्याय कालं च कलाकाष्ठास्तथैव च । पूर्णं मत्वा ततः कालं पुरुं पुत्रमुवाच ह ॥ ७१ ॥
यथासुखं यथोत्साहं यथाकालमरिंदम । सेविता विषयाः पुत्र यौवनेन मया तव ॥ ७२ ॥
पुरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते गृहाण त्वं स्वयौवनम् । राष्ट्रं च त्वं गृहाणेदं त्वं हि मे प्रियकृत्सुतः ॥ ७३ ॥
प्रतिपेदे जरां राजा ययातिर्नहुषात्मजः । यौवनं प्रतिपेदे च पुरुः स्वं पुनरात्मनः ॥ ७४ ॥
अभिषेक्तुकामं च नृपं पुरुं पुत्रं कनीयसम् । ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन् ॥ ७५ ॥
कथं शुक्रस्य नप्तारं देवयान्या सुतं प्रभो । श्रेष्ठं यदुमतिक्रम्य पुरो राज्यं प्रदास्यसि ॥ ७६ ॥
यदुर्ज्येष्ठस्तव सुतो जातस्तमनु तुर्वसुः । शर्मिष्ठाया सुतो द्रुह्युस्ततोऽनुः पुरुरेव च ॥ ७७ ॥

कृपा एवं दया से शूद्रों को प्रसन्न किया, कड़े अनुशासन एवं दण्ड की व्यवस्था करके चारों को शान्त किया । इस प्रकार दूसरे इन्द्र की भाँति उस महाराज ययाति ने धर्मपूर्वक अपनी प्रजाओं का पालन किया ॥ ६४-६६ ॥

सिंह के समान विक्रमशाली, युवावस्था-सम्पन्न राजा ययाति ने धर्म की मर्यादा की रक्षा करते हुए विषयों का सेवन किया, उत्तम सुख का अनुभव किया । वैवाज और नन्दन वन में विश्वाची के साथ उसने काम क्रीड़ा की, अन्ततः कामादि विषयों के अन्त में दुःख एवं दोष देखकर उसे विरक्ति हुई, उस समय जब उसे अपनी इस यौवनावस्था का स्मरण हुआ, जो बहुत बढ़ चुकी थी । अर्थात् जिसकी अवधि पूरी हो रही थी तब वह पुरु के पास आया और अपनी वृद्धावस्था ग्रहण की ॥ ६७-६९ ॥

यौवनावस्था में अनुभव किये गये आनन्दों एवं विषयों से उसे तृप्ति तो अवश्य हुई थी, किन्तु खेद भी हुआ । सुखों का अनुभव करते समय नरपति ययाति को जब एक सहस्र वर्ष के समय का स्मरण हुआ तो उसने घटी पलों तक की गणना की और जब देखा कि सचमुच वह अवधि समाप्त हो गयी है तो पुत्र पुरु से कहा, शत्रुओं को वश में करनेवाले ! मैंने अपने मन और उत्साह भर इस एक सहस्र वर्ष में तुम्हारी यौवनावस्था लेकर विषयों का सेवन किया ॥ ७०-७२ ॥

प्रिय पुरु ! मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो । पुत्र ! आओ, और अपनी यौवनावस्था ग्रहण करो, लो, इस राज्य को भी ग्रहण करो, तुम्हीं हमारे एकमात्र शुभचिन्तक पुत्र हो । इस प्रकार नहुषपुत्र राजा ययाति ने पुनः अपनी वृद्धावस्था ग्रहण की और पुरु ने पुनः अपनी यौवनावस्था ग्रहण की ॥ ७३-७४ ॥

राज्य पद पर सबसे छोटे पुत्र पुरु का अभिषेक करने की जब राजा ययाति ने इच्छा की तब ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लोगों ने उससे यह बात कही—हे प्रभुवर ! आप शुक्राचार्य के नाती, देवयानी के पुत्र और अपने सबसे बड़े सुपुत्र यदु को छोड़कर पुरु को राज्य क्यों प्रदान कर रहे हैं? यदु आपके सबसे बड़े पुत्र हैं, उनसे छोटे

कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य कनीयान्राज्यमर्हति । अतः संबोधयामि त्वां धर्मं समनुपालय॥ ७८ ॥

ययातिरुवाच

ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः । ज्येष्ठं प्रति यथा राज्यं न देयं वै कथंचन॥ ७९ ॥
मातापित्रोर्वचनकृत् स हि पुत्रः प्रशस्यते । मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः॥ ८० ॥
प्रतिकूलं पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः । स पुत्रः पुत्रवद्यश्च वर्तते पितृमातृषु॥ ८१ ॥
यदुनाऽहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनाऽपि च । द्रुह्यूणा चानुना चैवमप्यवज्ञा कृता भृशम्॥ ८२ ॥
पूरुणा तु कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः । कनीयान्मम दायादो जरा येन धृता मम॥
सर्वकामः सर्वकृतः पुरुणा पुत्रकारिणा ॥ ८३ ॥
शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम् । पुत्रो यस्त्वाऽनुवर्तेत स राजा ते महामते॥ ८४ ॥
भवतोऽनुमतोऽप्येवं पुरू राष्ट्रेऽभिषिच्यताम् । यः पुत्रो गुणसंपन्नो मातापित्रोर्हितः सदा॥
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः ॥ ८५ ॥
अर्हः पुरुरिदं राष्ट्रं यः प्रियः प्रियकृत्तव । वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम्॥ ८६ ॥

तुर्वसु हैं, शर्मिष्ठा के पुत्रों में भी सबसे बड़े द्रुह्यु हैं, उनसे छोटे अनु हैं, तब पुरु हैं । तब यह कैसे हो सकता है कि ज्येष्ठ को छोड़कर सबसे छोटे को राज्य प्रदान किया जाय । मैं धर्म की ओर आपका ध्यान आकृष्ट कर रहा हूँ, आप राजा हैं, आपको धर्म का पालन करना चाहिए ॥ ७५-७८ ॥

ययाति ने कहा—ब्राह्मण प्रभृति वर्णों में उत्पन्न सभी को यह मेरी बात सुननी चाहिए कि मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र को किसी प्रकार भी अपना राज्य नहीं देना चाहता । माता और पिता की आज्ञा पालन करने वाला ही सच्चा पुत्र कहा जाता है, वही प्रशंसा के योग्य पुत्र है, मेरे ज्येष्ठ पुत्र यदु ने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया है । जो पुत्र पिता की आज्ञा के प्रतिकूल चलने वाला होता है, उस पुत्र को सज्जन लोग नहीं पसन्द करते । पिता और माता का अनुगमन करने वाला ही सच्चा पुत्र है ॥ ७९-८१ ॥

यदु ने मेरी अवज्ञा की है, इसी प्रकार तुर्वसु, द्रह्यु और अनु ने भी मेरी आज्ञा न मानकर अपमान किया है । पुरु ने मेरी आज्ञा ही केवल नहीं मानी है; प्रत्युत विशेष सम्मान भी किया है, वही सबसे छोटा होते हुए भी हमारे राज्य का उत्तराधिकारी है, क्योंकि उसी ने हमारी वृद्धावस्था को इतने दिनों तक वहन किया है । एक योग्य पुत्र की भाँति पुरु ने मेरी सभी अभिलाषाओं और आज्ञाओं की पूर्ति की है, वही एकमात्र हमारा सब कुछ करने वाला है ॥ ८२-८३ ॥

स्वयं शुक्राचार्य जी ने ऐसा वरदान दे रखा है कि—हे महामतिमन् ! जो पुत्र तुम्हारा आज्ञाकारी एवं अनुगामी होगा, वही राजा होगा । मैं समझता हूँ, आप लोगों की भी अनुमति इस कार्य में होगी । पुरु का राज्याभिषेक करते जाइये । जो पुत्र गुणवान् है, माता और पिता के कल्याण में सर्वदा निरत रहनेवाला है, वह सबसे छोटा होकर भी कल्याण भाजन और सम्पत्ति का उत्तराधिकारी है ॥ ८४-८५ ॥

इस राज्य के योग्य पुरु ही है, जो तुम्हारा हितकारी है. प्रिय है, वही हम सबों को भी प्रिय है । ऐसा कहते

पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा । अभिषिच्य ततः पूरुं स्वराष्ट्रे सुतमात्मनः ॥ ८७ ॥
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं तु न्यवेशयत् । दक्षिणापरतो राजा यदुं श्रेष्ठं न्यवेशयत् ॥ ८८ ॥
प्रतीच्यामुत्तरस्यां च द्रुह्युं चानुं च तावुभौ । सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम् ॥
व्यभजत्पञ्चधा राजा पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा ॥ ८९ ॥
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना । यथाप्रदेशं धर्मज्ञैर्धर्मेण प्रतिपाल्यते ॥ ९० ॥
एवं विभज्य पृथिवीं पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा । पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु प्रीतिमानभवन्नृपः ॥ ९१ ॥
धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च राज्यं चैव सुतेषु तु । प्रीतिमानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु ॥ ९२ ॥
अत्र गाथा महाराज्ञा पुरा गीता ययातिना । योऽभिप्रेत्याहरन्कामान्कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ॥ ९३ ॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ ९४ ॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः । नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥ ९५ ॥
यदा तु कुरुते भावं सर्वभूतेषु पावकम् । कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ९६ ॥
यदा परान्न बिभेति यदा त्वस्मान्न बिभ्यति । यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ९७ ॥

हुए ब्राह्मणादिको ने राजा ययाति के मत का अनुमोदन किया, शुक्राचार्य के वरदान के कारण उन लोगों को प्रत्युत्तर करने का साहस नहीं हुआ । राजा की बातों से सन्तुष्ट पुर नगरवासियों के इस प्रकार अनुमोदन कर देने पर नहुषपुत्र राजा ययाति ने अपने कनिष्ठ पुत्र पुरु का अपने पद पर राज्याभिषेक किया, दक्षिण-पूर्व दिशा में तुर्वसु को अधिकारी बनाया । दक्षिण-पश्चिम दिशा में सबसे बड़े पुत्र यदु को स्थापित किया । उत्तर-पश्चिम दिशा का अधिकार द्रुह्यु और अनु को दिया । सागरपर्यन्त विस्तृत सप्तद्वीपों समेत सारी पृथ्वी को जीतकर नहुषपुत्र महाराज ययाति ने अपने पाँचों पुत्रों में विभक्त कर दिया ॥ ८६-८९ ॥

धर्म के तत्त्वों को जाननेवाले उन पाँचों ययाति के पुत्रों ने सातों द्वीपों एवं नगरों समेत सारे पृथ्वीमण्डल का अपने-अपने प्रदेश तक धर्मपूर्वक प्रतिपालन किया । इस प्रकार अपने पुत्रों में राज्य का विभाग कर एवं अपनी सम्पत्ति एवं श्री को पुत्र में सन्निविष्ट कर नहुषपुत्र राजा ययाति परम प्रसन्न हुए ॥ ९०-९१ ॥

अपने धनुष, बाण एवं राज्याधिकार को पुत्रों को सौंपकर एवं समस्त कार्यभार बन्धुवर्गों को देकर राजा ययाति परम प्रसन्न हुए । इस विषय में महाराज ययाति ने प्राचीनकाल में पुत्रों से जो कुछ कहा था उसे बता रहा हूँ । 'जो मनुष्य सभी प्रकार के कामनाओं को कछुए के अंगों की तरह समेटकर छिपा लेता है, (वही सच्चा मनुष्य है) कामनाएँ कभी इच्छित पदार्थों के उपभोग से शान्त नहीं होतीं प्रत्युत वे आग में घृत पड़ने के समान उपभोग करने से उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैं ॥ ९२-९४ ॥

पृथ्वी पर जितना अन्न, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब मिलकर भी एक मनुष्य के लिए पर्याप्त नहीं हैं । यह विचार करने वाला अज्ञान में नहीं पड़ता । जब मनुष्य सभी जीवों के साथ कर्म, मन एवं वचन से अग्नि की भाँति समानता का व्यवहार करने लगता है, तब उसे ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है ॥ ९५-९६ ॥

जब दूसरे से डर नहीं लगता, जब दूसरे लोग अपने से नहीं डरते, जब कोई इच्छा उत्पन्न नहीं होती,

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः। दोषा प्राणान्तिको रागस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥ ९८ ॥
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यति जीर्यतः। जीविताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति॥ ९९ ॥
यच्चाकामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् । तृष्णास्य च सुखस्यैव कलां नार्हति षोडशीम् ॥१००॥
एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्रस्थितो वनम् । भृगुतुङ्गे तपस्तप्त्वा तत्रैव च महायशाः ॥
पालयित्वा व्रतशतं तत्रैव स्वर्गमाप्नुयात् ॥ १०१ ॥
तस्य वंशास्तु पञ्चैते पुण्या देवर्षिसत्कृताः। यैर्व्याप्ता पृथिवी कृत्स्ना सूर्यस्येव गभस्तिभिः ॥ १०२ ॥
धन्यः प्रजावानायुष्मान्कीर्तिमांश्च भवेन्नरः । ययातेश्चरितं सर्वं पठञ्छृण्वन्द्विजोत्तमः ॥ १०३ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे ययातिप्रसवकीर्तनं
नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

* * *

जब किसी के प्रति द्वेषभाव का उदय नहीं होता, तब ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है ॥ ९७ ॥

जो दुर्मतियों से नहीं छोड़ी जा सकती, जो वृद्ध होने पर भी वृद्ध नहीं होती, जो प्राणों का विनाश करने वाले रोग एवं दोष की तरह भयानक है, उस तृष्णा को छोड़ देने पर ही सुख की प्राप्ति होती है ॥ ९८ ॥

वृद्ध हो जाने पर केश सफेद हो जाते हैं, दाँत टूट जाते हैं, किन्तु जीवन की आशा और धन की आशा वृद्ध होने पर भी वृद्ध नहीं होती। कामनाओं की पूर्ति होने पर जो सुख मिलता है, दिव्य पदार्थों एवं वस्तुओं की प्राप्ति पर जो महान् सुख होता है वह सब सुख, उस सुख की सोलहवीं कला (अंश) की भी समानता नहीं कर सकता, जो तृष्णा के नाश हो जाने पर प्राप्त होता है ॥ ९९-१०० ॥

इस प्रकार महायशस्वी राजर्षि ययाति ने पुत्रों को शिक्षा देकर स्त्रीसमेत वन को प्रस्थान किया और भृगुतुङ्ग नामक स्थान में तपस्याकर, वहाँ पर सौ व्रतों का विधिवत् पालनकर स्वर्ग प्राप्त किया। उनके देवर्षियों द्वारा सत्कार पाने वाले ये पाँच वंश हैं जो सूर्य की किरणों के समान समस्त पृथ्वीमण्डल को व्याप्त किये हुए हैं। जो उत्तम द्विज महाराज ययाति के इस उत्तम चरित्र का समग्र पाठ करता अथवा सुनता है, वह धन-धान्य, पूजा, दीर्घायु और कीर्ति प्राप्त करता है ॥ १०२-१०४ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में ययातिप्रसवकीर्तन नामक इकतीसवें अध्याय (तिरानबेवें अध्याय) की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३१ ॥

* * *

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

कार्तवीर्यार्जुनोत्पत्तिविवरणम्

सूत उवाच

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि श्रेष्ठस्योत्तमतेजसः । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्येण गदतो मे निबोधत॥ १ ॥
यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः । सहस्त्रजिदथ श्रेष्ठः क्रोष्टुर्नीलो जितो लघुः॥ २ ॥
सहस्त्रजित्सुतः श्रीमाञ्छतजिन्नाम पार्थिवः । शतजित्सुता विख्यातास्त्रयः परमधार्मिकाः॥ ३ ॥
हैहयश्च यश्चैव राजा वेणुहयश्च यः । हैहयस्य तु दायादो धर्मतन्त्र इति श्रुतिः॥ ४ ॥
धर्मतन्त्रस्य कीर्तिस्तु संज्ञेयस्तस्य चाऽऽत्मजः। संज्ञेयस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पार्थिवः॥ ५ ॥
आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान् । वाराणस्यधिपो राजा कथितः पूर्व एव हि॥ ६ ॥
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्मदो नाम पार्थिवः । दुर्मदस्य ततो धीमान्कनको नाम विश्रुतः॥ ७ ॥
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः । कृतवीर्यः कार्तिवीर्यः कृतवर्मा तथैव च॥ ८ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय

(चौरानबेवाँ अध्याय)

कार्तवीर्यार्जुन की उत्पत्ति का विवरण

श्रीसूतजी ने कहा—अब मैं परम तेजस्वी ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु के वंश का वर्णन विस्तारपूर्वक क्रम से कर रहा हूँ, सुनिये। यदु के पाँच देवताओं के समान सुन्दर एवं प्रभावशाली पुत्र हुए, जिनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम सहस्त्रजित् था, अन्य पुत्रों के नाम क्रोष्टु, नील, जित और लघु थे ॥ १-२ ॥

सहस्त्रजित् के पुत्र परम कान्तिमान् राजा शतजित् थे। शतजित् के तीन परम विख्यात एवं धार्मिक पुत्र हुए। जिनके नाम हैहय, हय और राजा वेणुहय थे। हैहय का उत्तराधिकारी धर्मतंत्र हुआ ऐसा सुना जाता है। धर्मतंत्र के पुत्र कीर्ति हुए, कीर्ति के पुत्र संज्ञेय हुए। संज्ञेय के उत्तराधिकारी राजा महिष्मान् हुए ॥ ३-५ ॥

महिष्मान् के पुत्र प्रतापशाली राजा भद्रश्रेण्य हुए, जो वाराणसी के अधिपति थे, इनके विषय में पहले ही कहा जा चुका है। भद्रश्रेण्य का उत्तराधिकारी राजा दुर्दम हुआ, दुर्दम का पुत्र परम बुद्धिमान् राजा कनक नाम से विख्यात हुआ। कनक के चार उत्तराधिकारी लोक विख्यात हुए, जिनके नाम कृतवीर्य, कार्तिवीर्य, कृतवर्मा और

कृतो जातश्चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यात्ततोऽर्जुनः । जज्ञे बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः ॥ ९ ॥
स हि वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् । दत्तामाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसंभवम् ॥ १० ॥
तस्मै दत्तो वरान्प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः । पूर्वं बाहुसहस्रं तु स वव्रे प्रथमं वरम् ॥ ११ ॥
अधर्मे दीयमानस्य सद्भिस्तस्मान्निवारणम् । धर्मेण पृथिवीञ्जित्वा धर्मेणैवानुपालनम् ॥ १२ ॥
सङ्ग्रामांस्तु बहूञ्जित्वा हत्वा चारीन्सहस्रशः । सङ्ग्रामे युध्यमानस्य वधः स्यादधिकाद्रणे ॥ १३ ॥
तेनेयं पृथिवी कृत्स्ना सप्तद्वीपा सपत्तना । सप्तोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जनाः ॥ १४ ॥
तस्य बाहुसहस्रं तु युध्यतः किल धीमतः । यौद्धो ध्वजो रथश्चैव प्रादुर्भवति मायया ॥ १५ ॥
दश यज्ञसहस्राणि तेषु द्वीपेषु सप्तसु । निरर्गलाः स्म निर्वृत्ताः श्रूयन्ते तस्य धीमतः ॥ १६ ॥
सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्याऽऽसन्भूरितेजसः । सर्वे काञ्चनवेदीकाः सर्वे यूपैश्च काञ्चनैः ॥ १७ ॥
सर्वे देवैर्महाभागैर्विमानस्थैरलंकृताः । गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ॥ १८ ॥
तस्य राज्ञो जगौ गाथां गन्धर्वो नारदस्तथा । चरितं तस्य राजर्षेर्महिमानं निरीक्ष्य च ॥ १९ ॥

कृत थे । कृतवीर्य से अर्जुन की उत्पत्ति हुई । वह राजा अर्जुन एक सहस्र बाहुओं वाला था तथा सातों द्वीपों का स्वामी था ॥ ६-९ ॥

उस राजा कार्तवीर्यार्जुन ने दस सहस्र वर्षों तक परम कठोर तपस्या कर अत्रि के पुत्र दत्त की आराधना की । दत्त ने उसे परम महत्त्वपूर्ण चार वरदान प्रदान किये थे । जिनमें से उसने पहला वरदान सहस्र बाहुओं का प्राप्त किया ॥ १०-११ ॥

दूसरे वरदान के अनुसार अधर्म में नष्ट होते हुए लोक को सदुपदेशों द्वारा निवारित करना । तृतीय वरदान के अनुसार धर्मपूर्वक पृथ्वी विजय करके धर्मपूर्वक पालन करना । चतुर्थ वरदान के अनुसार अनेक संग्रामों में विजय प्राप्तकर, सहस्रों शत्रुओं का विनाश कर रणभूमि में अपने से अधिक बलवाले के हाथ मृत्यु प्राप्त करना । इन वरदानों को प्राप्तकर कार्तवीर्यार्जुन ने नगरों एवं सातों द्वीपों समेत पृथ्वी को जीतकर, सातों समुद्रों तक फैली हुई वसुंधरा पर क्षत्रिय धर्म से अधिकार प्राप्त किया ॥ १२-१४ ॥

उस परम चतुर महाराज के युद्ध करने के समय माया से एक सहस्र बाहु हो जाते थे, अनेक योद्धा, ध्वजा और रथ भी हो जाते थे ॥ १५ ॥

उस परम चतुर राजा कार्तवीर्य ने उन सातों द्वीपों में दस सहस्र यज्ञों का अनुष्ठान सम्पन्न किया था और वे सब यज्ञ निर्विघ्न समाप्त भी हो गये थे । परम तेजस्वी महाबाहु उस कार्तवीर्य के वे सब यज्ञ बड़े समारोह से सम्पन्न हुए थे, सब में सुवर्ण की वेदियाँ बनी थीं और सुवर्ण के खम्भे गड़े थे ॥ १६-१७ ॥

सभी महाभाग्यशाली देवगण विमानों पर सुशोभित थे । नित्य गन्धर्व और अप्सराएँ आ-आकर उनकी शोभा बढ़ाते थे । उस महाराज की यशोगाथा का गन्धर्वगण गान करते थे ॥ १८ ॥

उस राजर्षि कार्तवीर्य की अपार महिमा एवं निर्मल चरित्र को देखकर देवर्षि नारद भी उसका इस प्रकार

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति मानवाः । यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च॥ २० ॥
द्वीपेषु सप्तसु स वै खड्गी वरशरासनी । रथी राजाऽप्यनुचरोऽन्योऽगाच्चैवानुदृश्यते॥ २१ ॥
अनष्टद्रव्यश्चैवाऽऽसीन्न शोको न च विभ्रमः । प्रभावेण महाराज्ञः प्रजा धर्मेण रक्षतः॥ २२ ॥
पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां स नराधिपः । सप्त सप्त द्वीपान् सम्राट् चक्रवर्ती बभूव ह॥ २३ ॥
स एष पशुपालोऽभूत्क्षेत्रपालस्तथैव च । स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत्॥ २४ ॥
स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनेन च । भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनेव भास्करः॥ २५ ॥
स हि नागसहस्रेण महिष्मत्यां नराधिपः । कर्कोटकसभां जित्वा पुरीं तत्र न्यवेशयत्॥ २६ ॥
स वै वेगे समुद्रस्य प्रावृट्कालाम्बुजेक्षणः । क्रीडन्निव मुखोद्विग्नः प्रावृट्कालं चकार ह॥ २७ ॥
लुलिता क्रीडता तेन हेमस्रग्दाममालिनी । ऊर्मिभ्रूकुटिसंनादा शंङ्किताभ्येति नर्मदा॥ २८ ॥
पुरा स तामनुसरन्नवगाढो महार्णवम् । चकारोद्धृत्य वेलान्तं स कालं प्रावृणोद्वनम्॥ २९ ॥
तस्य बाहुसहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ । भवन्ति लीना निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः॥ ३० ॥

गुणगान किया करते थे कि यह निश्चय है कि मनुष्य योनि में पैदा होने वाले कोई भी उस महाराज कार्तवीर्य के यज्ञ, तपस्या, दान, पराक्रम, पाण्डित्य आदि में समानता नहीं प्राप्त कर सकते ॥ १९-२० ॥

सातों द्वीपों में वह महाराज तलवार और धनुष-बाण धारण किये हुए रथी, राजा होकर भी अनुचरों के समान पीछे-पीछे चलने वाला देखा जाता था। उसके राज्य में किसी का भी द्रव्य नष्ट नहीं होता था। न किसी को शोक था, न तो सन्ताप ही था। उस महाराज के शासन में धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा हुई। नरपति कार्तवीर्य इस प्रकार पचासी सहस्र वर्षों तक सातों द्वीपों का एकमात्र चक्रवर्ती सम्राट् रहा ॥ २१-२३ ॥

अपने राज्य में वह स्वयं पशुओं का पालन करनेवाला था, स्वयं खेती की भी देखभाल रखता था, योगाभ्यासपरायण होने के कारण समय-समय पर वह कार्तवीर्यार्जुन वृष्टि करके मेघों का भी कार्य करता था, धनुष की डोरी खींचने से कड़े पड़े हुए एक सहस्र हाथों से सुशोभित वह महाराज शरत्कालीन सहस्र किरणोंवाले सूर्य की भाँति शोभायमान होता था। उस महाराज नराधिपति अर्जुन ने नागों की माहिष्मती नगरी में एक सहस्र नागों समेत कर्कोटक नागराज की सभा को पराजित कर वहाँ पर अपनी पुरी बसायी थी ॥ २४-२६ ॥

वर्षाकालीन कमल के समान निर्मल सुन्दर नेत्रोंवाले उस महावीर अर्जुन ने खेल-ही-खेल में समुद्र का वेग रोककर असमय में ही वर्षाकाल का सा समय कर दिया। जल क्रीड़ा करते हुए उसके कण्ठ से सुवर्ण की माला खिसककर नर्मदा की धारा में गिर पड़ी थी, उससे सुशोभित एवं क्रीड़ा से आलोडित नर्मदा अपनी तरङ्गरूपी कातर भृकुटियों एवं तरंगों के शब्दों से शङ्किता के समान उनके अभिमुख गमन करती थी ॥ २७-२८ ॥

प्राचीनकाल में एक बार नर्मदा का अनुसरण करते हुए उस महाराज अर्जुन ने महासमुद्र में जाकर उसका अवगाहन किया। अपने सहस्र बाहुओं से उसने समुद्र के जल से को आलोडित कर तटवर्ती वन प्रान्त को प्लावित कर दिया, इस प्रकार उस वन में उसने असमय में वर्षाकाल ला दिया ॥ २९ ॥

इस प्रकार सहस्र बाहुओं द्वारा आलोडित होने पर जब महासमुद्र विक्षुब्ध हो गया, तब पाताल लोकवासी

चूर्णीकृतमहावीचिलीनमीनमहाविषाः । पतिता विद्धफेनौघमावर्तक्षिप्तदुस्सहम्॥ ३१ ॥
चकार क्षोभयन्राजा दोः सहस्रेण सागरम् । देवासुरपरिक्षिप्तं क्षीरोदमिव सागरम्॥ ३२ ॥
मन्दरक्षोभणकृता ह्यमृतोदकशङ्किताः। सहसोत्यादि (टि) ता भीता भीमं दृष्ट्वा नृपोत्तमम्॥ ३३ ॥
नतनिश्चलमूर्धानो बभूवुश्च महोरगाः । सायाह्ने कदलीषण्डा निर्वातस्तिमिता इव॥ ३४ ॥
सवै बद्ध्वा धनुर्यान उत्सिक्तः पञ्चभिः शतैः। लङ्कायां मोहयित्वा तु सबल रावर्ण बलात्॥
निर्जित्य बद्ध्वा चाऽऽनीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम् ॥ ३५ ॥
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तु अर्जुनं च प्रसादयत् । मुमोच राजा पौलस्त्यं पुलस्त्येनानुपालितम्॥ ३६ ॥
तस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः । युगान्तेऽम्बुद्वृक्षस्य स्फुटितस्याशनेरिव॥ ३७ ॥
अहो मृधे महावीर्यं भार्गवो यस्य सोऽच्छिनत् । मृधे सहस्रं बाहूनां हेमतालवनं यथा॥ ३८ ॥
तृषितेन कदाचित्स भिक्षितश्चित्रभानुना । सप्त द्वीपांश्चित्रभानोः प्रादाद्भिक्षां विशां पतिः ॥ ३९ ॥
पुराणि घोषान्ग्रामांश्च पत्तनानि च सर्वशः । जज्वाल तस्य बाणेषु चित्रभानुर्दिधक्षया॥ ४० ॥

महाबलवान् असुरवृन्द कितने बेहोश हो गये और कितने इधर-उधर भय के मारे छिप गये । उसके सहस्र बाहुदण्डों से ताड़ित होकर महासमुद्र की भीषण तरंगें चूर्ण-चूर्ण हो गयीं, बड़े-बड़े मत्स्य एवं विषधरगण उसी में विलीन हो गये । जलराशि में फेनों के समूह तैरने लगे, महाभयानक भँवरें उठने लगीं । अपने सहस्र भुजदण्डों से उस महाराज अर्जुन ने समुद्र को इस प्रकार विक्षुब्ध कर दिया जैसे अमृत मंथन के समय देवताओं और दानवों ने मिलकर क्षीरसागर को विक्षुब्ध कर दिया था ॥ ३०-३२ ॥

समुद्र में विराजमान उस भीमकाय नरपति अर्जुन को देखकर जलजन्तुओं को मन्दराचल द्वारा समुद्र मंथन की आशंका हुई और वे अतिशीघ्र भयभीत एवं आतंकित हो गये । समुद्र में रहनेवाले भीषण विषधर सर्प उस महावीर अर्जुन को देखकर इस प्रकार विनत और निश्चल मस्तकवाले बन गये जैसे सायंकाल की हवा के बन्द हो जाने पर केलों के पेड़ निश्चल और निस्तब्ध हो जाते हैं ॥ ३३-३४ ॥

गर्वपूर्वक लंकापुरी में जाकर उस महावीर ने अपने कठोर धनुष से पाँच सौ बाणों को छोड़कर सेना समेत रावण को बलपूर्वक मोहित कर लिया था और इस प्रकार उसे पराजित कर बन्धन में डाल अपनी राजधानी माहिष्मती नगरी में लाकर बन्दी बनाया था ॥ ३५ ॥

जब महर्षि पुलस्त्य ने जाकर उसको प्रसन्न किया, तब उनके अनुरोध पर रावण को छोड़ा था । उसके सहस्र बाहुओं से उत्पन्न होनेवाले प्रत्यञ्चा की टंकार युगान्त के समय बिजली गिरने और प्रलयंकर बादलों के भयावने शब्दों के समान होते थे ।

खेद है कि ऐसे महाबलशाली कार्तवीर्य की सहस्र बाहुओं को जमदग्नि-पुत्र परशुराम ने युद्ध क्षेत्र में हेमताल के वन की भाँति काट डाला ॥ ३६-३८ ॥

कभी एक बार तृष्णा से व्याकुल होकर आदित्य ने अर्जुन से भिक्षा की याचना की थी, नरपति ने सूर्य को सातों द्वीपों समेत समस्त पृथ्वी को दान कर दिया । राजा के बाणों में स्थित होकर आदित्य ने जलाने की इच्छा

स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेन महायशाः । ददाह कार्तवीर्यस्य शैलांश्चापि वनानि च॥ ४१ ॥
स शून्यमाश्रमं सर्वं वरुणस्याऽऽत्मजस्य वै । ददाह सवनद्वीपांश्चित्रभानुः सहैहयः॥ ४२ ॥
संलेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्विनमुत्तमम् । वसिष्ठनामा स मुनिः ख्यातश्चापः श्रितः श्रुतः॥ ४३ ॥
तत्राऽऽपवस्तदा क्रोधादर्जुनं शप्तवान्विभुः । यस्मान्न वर्जितमिदं वनं ते मम हैहय॥ ४४ ॥
तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति । अर्जुनो नाम कौन्तेयो न च राजा भविष्यति॥ ४५ ॥
अर्जुन त्वां महावीर्यो रामः प्रहरतां वरः । छित्त्वा बाहुसहस्रं वै प्रमथ्य तरसा बली॥ ४६ ॥
तपस्वी ब्राह्मणश्चैव वधिष्यति महाबलः । तस्य रामस्तदा ह्यासीन्मृत्युः शापेन धीमतः॥ ४७ ॥
राज्ञा तेन वरश्चैव स्वयमेव वृतः पुरा । तस्य पुत्रशतं ह्यासीत्पञ्च तत्र महारथाः॥ ४८ ॥
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः । शूरश्च शूरसेनश्च वृष्ट्याद्यं वृष एव च॥ ४९ ॥
जयध्वजश्च वै पुत्रा अवन्तिषु विशांपते । जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घः प्रतापवान्॥ ५० ॥
तस्य पुत्रशतं ह्येव तालजङ्घाः इति श्रुतम् । तेषां पञ्च गणाः ख्याता हैहयानां महात्मनाम्॥ ५१ ॥

से पृथ्वी के समस्त पुरों, ग्रामों, पशुशालाओं एवं पत्तनों तक को भस्म कर दिया। उस पुरुषेन्द्र कार्तवीर्य के प्रभाव से महान् यशस्वी आदित्य ने पृथ्वी के समस्त पर्वतों और वनों को भी भस्म कर दिया ॥ ३६-४१ ॥

हैहय कार्तवीर्य की सहायता से सूर्य ने इस प्रकार वनों एवं द्वीपों समेत पृथ्वी को भस्म करते हुए वरुण के आत्मज का एक शून्य आश्रम भी चारों ओर से भस्म कर दिया। वरुण ने अपने इस पुत्र को, जो परम तेजस्वी एवं उत्तम गुणोंवाला था, प्राचीनकाल में प्राप्त किया था, उनका वह पुत्र मुनिवर वसिष्ठ के नाम से तथा आपव के नाम से प्रसिद्ध था ॥ ४२-४३ ॥

सर्वसमर्थ आपव अपने आश्रम को भस्म देखकर बहुत क्रोधित हुए और अर्जुन को उन्होंने इस प्रकार शाप दिया—हैहय ! तुमने मेरे वन को नहीं छोड़ा सो तुम्हारे इस दुष्कर्म को भी कोई दूसरा नष्ट करेगा, वह होगा, कुन्तीपुत्र अर्जुन। वह राजा भी न होगा। हे अर्जुन ! तुम्हारी इन सहस्र बाहुओं को, वीरों में श्रेष्ठ परम बलवान् परशुराम काट डालेंगे ॥ ४४-४६ ॥

ब्राह्मण तपस्वी महाबलवान् परशुराम तुम्हें पराजित कर तुम्हारा संहार करेंगे। परम बुद्धिमान् आपव के शापवश परशुराम ही उस कार्तवीर्य की मृत्यु के कारण बने। प्राचीनकाल में राजा ने इसी प्रकार का वरदान भी माँगा था कि मेरी मृत्यु उसके हाथों से हो, जो बल में मुझसे अधिक हो। उस राजा कार्तवीर्यार्जुन के सौ पुत्र थे, जिनमें पाँच महारथी थे ॥ ४७-४८ ॥

ये सभी पुत्र शस्त्रास्त्र धारण करने में प्रवीण, बलवान्, शूर, धर्मात्मा एवं यशस्वी थे। उनके नाम शूर, शूरसेन, वृष्ट्याद्य, वृष और जयध्वज थे। इन सबों ने अवन्ति देश में राज्य किया था। जयध्वज का पुत्र प्रतापशाली तालजंघ था, उसके सौ पुत्र हुए, जो तालजंघगण के नाम से विख्यात हुए। महान् पराक्रमशाली उन हैहयवंश में उत्पन्न होनेवालों के पाँच गण विख्यात हैं ॥ ४९-५१ ॥

वीरहोत्रा ह्यसंख्याता भोजाश्चावर्तयस्तथा । तुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजङ्घास्तथैव च॥ ५२ ॥
वीरहोत्रसुतश्चापि अनन्तो नाम पार्थिवः । दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रदर्शनः॥ ५३ ॥
अनष्टद्रव्यता चैव तस्य राज्ञो बभूव ह । प्रभावेण महाराजः प्रजास्ताः पर्यपालयत्॥ ५४ ॥
न तस्य वित्तनाशश्च नष्टं प्रतिलभेत सः । कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः॥ ५५ ॥
वित्तवान्भवत्यत्रैव धर्मश्चास्य विवर्धते । यथा त्वष्टा यथा दाता तथा स्वर्गे महीयते॥ ५६ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे कार्तवीर्यार्जुनोत्पत्तिविवरणं नाम द्वात्रिंशोध्यायः ॥ ३२ ॥

* * *

उनके नाम हैं, वीर होत्रगण, जिनकी गणना नहीं की जा सकती, भोजगण, आवर्तिगण, तुण्डिकेरगण, जो परम बलशाली थे, तथा तालजंघ वीरहोत्र का पुत्र राजा अनन्त हुआ, उसका पुत्र दुर्जय हुआ, दुर्जय से अमित्रदर्शन का जन्म हुआ ॥ ४७-५३ ॥

जैसा कि पहले भी कह चुके हैं उस महाराज कार्तवीर्य अर्जुन के राज्य में लोगों का द्रव्य नष्ट नहीं होता था, वह अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से समस्त प्रजाओं का पालन करता था । उस परम बुद्धिमान् महाराज कार्तवीयार्जुन का जन्म वृत्तान्त इस लोक में जो पढ़ता है, उसकी सम्पत्ति नष्ट नहीं होती, यदि नष्ट हो गयी हो तो पुन: प्राप्त होती है, इस लोक में वह परम धनशाली होता है, धर्म की वृद्धि होती है, जिस प्रकार शुभ कर्मपरायण एवं दानशील लोग स्वर्ग में पूजित होते हैं, उसी प्रकार वह भी स्वर्ग में पूजित होता है ॥५४-५६ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में कार्तवीर्यार्जुनोत्पत्ति विवरण नामक बत्तीसवें अध्याय (चौरानबेवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३२ ॥**

* * *

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

ज्यामघवृत्तान्तकथनम्

ऋषय ऊचुः

किमर्थे भुवनं दग्धमापवस्य महात्मनः । कार्तवीर्येण विक्रम्य तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्॥ १ ॥
रक्षिता स तु राजर्षिः प्रजानामिति नः श्रुतम् । कथं स रक्षिता भूत्वाऽनाशयत्तत्तपोवनम्॥ २ ॥

सूत उवाच

आदित्यो विप्ररूपेण कार्तवीर्यमुपस्थितः । तृप्तिकामः प्रयच्छान्नमादित्योऽहं न संशयः ॥ ३ ॥

राजोवाच

भगवन्केन ते तुष्टिर्भवेद्ब्रूहि दिवाकर । कीदृशं भोजनं दद्मि श्रुत्वा च विदधाम्यहम्॥ ४ ॥

सूर्य उवाच

स्थावरं देहि मे सर्वमाहारं ददतां वर । तेन तृप्तो भवेयं वै न तुष्येऽन्येन पार्थिव॥ ५ ॥

तैंतीसवाँ अध्याय

(पञ्चानबेवाँ अध्याय)

ज्यामघ का वृत्तान्त विवरण

ऋषिवृन्द ने कहा—हे सूतजी ! कार्तवीर्य ने अपना पराक्रम दिखाते हुए महात्मा आपव के आश्रम को क्यों जला दिया? ऐसा सुना जाता है कि वह राजर्षि कार्तवीर्यार्जुन अपनी प्रजाओं का पालक था, सो रक्षक होकर उसने तपोवन को भला क्यों जलाया, इसे हम लोग आपसे पूछ रहे हैं, कृपया बताइये ॥ १-२ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! आदित्य ब्राह्मणवेश धारणकर महाराज कार्तवीर्य के पास आये और बोले, हे राजन् ! मैं भूखा हूँ, सन्तोष-प्राप्ति के लिए आपके पास आया हूँ, मुझे अन्नादि दीजिये, मैं आदित्य हूँ, इसमें सन्देह न करिये ॥ ३ ॥

राजा ने कहा—हे भगवन् दिवाकर ! आपको किससे सन्तोष-प्राप्ति होगी, मैं किस प्रकार का भोजन आपको दूँ ? आपका उत्तर सुनकर ही मैं कुछ प्रबन्ध कर सकूँगा ॥ ४ ॥

सूर्य ने कहा—हे दानिशिरोमणि राजन् ! मुझे समस्त स्थावर जगत् प्रदान कीजिये, मैं उसी का भोजनकर सन्तोष प्राप्त करूंगा, अन्य भोजन द्वारा मेरी तृप्ति नहीं होगी ॥ ५ ॥

राजोवाच

न शक्यं स्थावरं सर्वं तेजसा मानुषेण तु । निर्दग्धुं तपतां श्रेष्ठ त्वामेव प्रणमाम्यहम्॥ ६ ॥

आदित्य उवाच

तुष्टस्तेऽहं शरान्दद्मि अक्षयान्सर्वतः सुखान् । प्रक्षिप्ताः प्रज्वलिष्यन्ति मम तेजः समन्विताः ॥ ७ ॥
आदिष्टं तेजसा मेघसागरं शोषयिष्यति । शुष्कं भस्म करिष्यामि तेन प्रीतो नराधिप॥ ८ ॥
ततः शरानथाऽऽदित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छति । ततः संप्राप्य सुमहत्स्थावरं सर्वमेव हि॥ ९ ॥
आश्रमानथ ग्रामांश्च घोषांश्च नगराणि च । तपोवनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च॥ १० ॥
एवं प्राचीनमदहत्ततः सूर्यप्रदक्षिणम् । निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्दग्धा सूर्येण तेजसा॥ ११ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु अपो निलयमाश्रितः । दशवर्षसहस्राणि जलवासा महानृषिः॥ १२ ॥
पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठत्तपोधनः । सोऽपश्यदाश्रमं दग्धमर्जुनेन महानृषिः॥
क्रोधाच्छशाप राजर्षि कीर्तितं वो यथा मया ॥ १३ ॥

सूत उवाच

क्रोष्टोः शृणुत राजर्षेर्वंशमुत्तमपूरूषम् । यस्यान्ववाये संभूतो वृष्णिर्वृष्णिकुलोद्वहः॥ १४ ॥
क्रोष्टोरेकोऽभवत्पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः । वार्जिनीवतमिच्छन्ति स्वाहिं स्वाहावतां वरम्॥ १५ ॥

राजा ने कहा—हे तेजस्वियों में श्रेष्ठ ! मैं मानवतेज द्वारा समस्त स्थावर जगत् को जलाने में सर्वथा असमर्थ हूँ, अतः आप ही को प्रणाम करता हूँ, ॥ ६ ॥

आदित्य ने कहा—राजन् ! मैं तुम्हारे ऊपर सन्तुष्ट हूँ, मैं तुम्हें ऐसे बाण दे रहा हूँ, जिनका कभी नाश नहीं होगा, जो तुम्हें सब प्रकार के सुख देनेवाले होंगे। मेरे तेज से समन्वित होकर ये बाण, फेंके जाने पर प्रज्वलित हो उठेंगे। हे नराधिप ! मेरे तेज से सम्वलित होने पर वे आदेश दे देने पर मेघ और समुद्र को भी सुखा डालेंगे। और इस प्रकार पदार्थों के सूख जाने पर तो मैं उन्हें भस्म कर ही डालूँगा, तभी हमारी वास्तविक तृप्ति होगी। ऐसी बातें करने के उपरान्त आदित्य ने राजा कार्तवीर्य को वे बाण प्रदान किये। उन बाणों को प्राप्तकर अर्जुन ने समस्त स्थावर पदार्थों को, जो विशाल भूमण्डल भर में व्याप्त थे, तथा आश्रम, ग्राम, गौओं के ठहरने के स्थान, नगर, तपोवन, सुरम्य वन, उपवन सब को भस्म कर दिया और तदनन्तर सूर्य की प्रदक्षिणा की। सूर्य के तेज से भस्म पृथ्वी वृक्षों और तृणों से विहीन हो गयी। इसी अवसर महर्षि आपव ने एक नियम किया था, जिसके अनुसार दस सहस्र वर्षों तक जल में निवास कर रहे थे। महान् तेजस्वी तपोधन आपव जब अपने नियम समाप्त कर जल से उठे और बाहर आये तो उन्होंने अपने आश्रम को अर्जुन द्वारा जलाया हुआ देखा। उस समय उन्होंने राजर्षि कार्तवीर्य को शाप दिया, उसे हम आप लोगों से बता रहे हैं ॥ ७-१३ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! अब इसके बाद पुरुषरत्न राजर्षि क्रोष्टु के वंश का विवरण सुनिये, जिनके वंश में वृष्णिवंश के प्रवर्तक वृष्णि का प्रादुर्भाव हुआ था। क्रोष्टु के एकमात्र पुत्र महायशस्वी वृजिनीवान् हुए। वृजिनीवान् के पुत्र स्वाहि को, जो स्वाहा करने वालों अर्थात् यज्ञकर्त्ताओं में श्रेष्ठ थे, लोग बहुत चाहते थे।

स्वाहेः पुत्रोऽभवद्राजा रशादुर्ददतां वरः । घृतं प्रसूतमिच्छन्ति रशादोरग्र्यमात्मजम् ॥ १६ ॥
स महाक्रतुभिरीजे विविधैराप्तदक्षिणैः । चित्रश्चित्ररथस्तस्य पुत्रकर्मभिरन्वितः ॥ १७ ॥
एवं चित्ररथो वीरो यज्ञान्विपुलदक्षिणान् । शशबिन्दुः परं वृत्तो राजर्षीणामनुष्ठितः ॥ १८ ॥
चक्रवर्ती महासत्त्वो महावीर्यो बहुप्रजः । तत्रानुवंशश्लोकोऽयं यस्मिन्गीतः पुराविदैः ॥ १९ ॥
शशबिन्दोऽस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम् । धीमतामनुरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम् ॥ २० ॥
तेषां षट् च प्रधानास्तु पृथुषट्का महाबलाः । पृथुश्रवाः पृथुयशाः पृथुधर्मा पृथुंजयः ॥ २१ ॥
पृथुकीर्तिः पृथुंदाता राजानः शाशिबिन्दवः । शंसन्ति च पुराणानि पार्थश्रवसमन्तरम् ॥
अन्तरः स पुरा यस्तु यज्ञस्य तनयोऽभवत् ॥ २२ ॥
उशना सुत धर्मात्मा अवाप्य पृथिवीमिमाम् । आजहाराश्वमेधानां शतमुत्तमधार्मिकः ॥ २३ ॥
मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुष्ठितः । वीरः कम्बलबर्हिस्तु मरुत्ततनयः स्मृतः ॥ २४ ॥
पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान्कम्बलबर्हिषः । निहत्य रुक्मकवचः पुरा कवचिनो रणे ॥ २५ ॥
धन्विनो निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् । ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तमश्वमेधे महायशाः ॥ २६ ॥
राज्ञस्तु रुक्मकवचादपरावृत्य वीरहाः । जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महासत्त्वा महाबलाः ॥ २७ ॥
रुक्मेषु पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः । परिघं च हरिं चैव विदेहेऽस्थापयत्पिता ॥ २८ ॥

स्वाहि के पुत्र राजा रशाद दानियों में अग्रगण्य थे । रशाद के ज्येष्ठ पुत्र प्रसूत को भी प्रजाएँ बहुत चाहती थीं, उसने ऐसे महान् यज्ञों का अनुष्ठान किया था, जिनमें प्रचुर दक्षिणाएँ दी गयी थीं । विचित्र ढंग के पुत्र-प्राप्ति के कर्मों द्वारा उसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वह चित्ररथ नाम से विख्यात हुआ । वीर चित्ररथ ने भी इसी प्रकार विपुलदक्षिणावाले यज्ञों का अनुष्ठान किया था । तदनन्तर राजर्षियों द्वारा सम्मानित शशबिन्दु राज्याधिकारी हुआ ॥ १४-१८ ॥

वह महाबलवान्, महान् पराक्रमी, अनेक पुत्रों वाला तथा चक्रवर्ती शासक था । पुरानी कथाओं के जानने वाले उसके विषय में श्लोक गाते हैं, जिसका आशय निम्न प्रकार है । राजा शशबिन्दु के एक सौ विपुल अर्थ-बल से सम्पन्न बुद्धिमान् एवं तेजस्वी पुत्र थे । इनमें छह सबसे बड़े प्रमुख थे, जो सब पृथुगण के नाम से विख्यात थे । वे छहों पुत्र महान् बलशाली थे । उनके नाम थे, पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुधर्मा, पृथुञ्जय, पृथुकीर्ति और पृथुदाता । ये सब-के-सब राजा थे और शशबिन्दु के पुत्रों के नाम से विख्यात थे । सभी पुराण पृथुश्रवा के पुत्र अन्तर की बड़ी प्रशंसा करते हैं, यही अन्तर प्राचीनकाल में यज्ञ का पुत्र हुआ ॥ १९-२२ ॥

उसी धर्मात्मा ने उशना नाम से इस पृथ्वी को प्राप्त किया । परम धार्मिक विचारोंवाले उशना ने एक सौ अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया । उसका पुत्र मरुत्त हुआ जिसे राजर्षिगण परम सम्मान देते ह । मरुत्त का पुत्र वीर कम्बलबर्हि कहा जाता है, कम्बलबर्हि का पुत्र परम विद्वान् राजा रुक्मकवच हुआ । प्राचीनकाल में इस प्रकार राजा रुक्मकवच ने बहुतेरे धनुष, बाण, कवच धारण करनेवाले योद्धाओं को युद्ध क्षेत्र में अपने तीक्ष्णबाणों से मारकर उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति की थी । और अश्वमेघ यज्ञ में ब्राह्मणों को भूरि दक्षिणा दान कर महान् यश प्राप्त किया था । उस राजा रुक्मकवच से शत्रुओं के वीरों को नष्ट करने वाले महान् बलवान्, महान् पराक्रमी पाँच वीर

रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः । तेभ्यः प्रव्रजितो राज्याज्ज्यामघोऽभवदाश्रमे ॥ २९ ॥
प्रशान्तस्तु वने घोरे ब्राह्मणेनावबोधितः । जगाम धनुरादाय देशमध्यं रथो ध्वजी ॥ ३० ॥
नर्मदानूप एकाकी मेकलावृत्तिका अपि । ऋक्षवन्तं गिरिं गत्वा शुक्तिमत्यामथाविशत् ॥ ३१ ॥
ज्यामघस्याभवद्भार्या शैव्या बलवती भृशम् । अपुत्रोऽपि स वै राजा भार्यामन्यां न विन्दति ॥ ३२ ॥
तस्याऽऽसीद्विजयो युद्धे ततः कन्यामवाप सः । भार्यामुवाच राजा स स्नुषेति तु नरेश्वरः ॥ ३३ ॥
एवमुक्ताऽब्रवीदेवं काम्ये यं ते स्नुषेति सा । यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति ॥ ३४ ॥
तस्य सा तपसोग्रेण शैव्या वैशं प्रसूयत । पुत्रं विदर्भं सुभगा शैव्या परिणता सती ॥ ३५ ॥
राजपुत्रौ तु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथकौशिकौ । पुत्रौ विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ ॥ ३६ ॥
लोमपादं तृतीयं तु पश्चाज्जज्ञे सुधार्मिकः । लोमपादात्मजो वस्तुराहृतिस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ ३७ ॥
कौशिकस्य चिदिः पुत्रस्तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः । क्रथोर्विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्याऽऽत्मजोऽभवत् ॥ ३८ ॥
कुन्तेर्धृष्टसुतो जज्ञे पुरो धृष्टः प्रतापवान् । धृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निर्वृतिः परवीरहा ॥ ३९ ॥
तस्य पुत्रो दशार्हस्तु महाबलपराक्रमः । दशार्हस्य सुतो व्योमा ततो जीमूत उच्यते ॥ ४० ॥

पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम थे—रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरि । पिता ने परिघ और हरि नामक पुत्रों को विदेह देश में स्थापित किया ॥ २३-२८ ॥

रुक्मेषु अपने पिता के राज्य का अधिकारी हुआ, पृथुरुक्म उसके अधीन था । उन सभी भाइयों ने मिलकर ज्यामघ को निर्वासित कर दिया, जिससे उसने वन में अपना आश्रम बनाया । घोर वन में मुनिवृत्ति धारण करने वाले ज्यामघ को एक ब्राह्मण ने प्रेरणा दी, जिससे प्रभावित होकर वह रथ पर चढ़कर धनुष धारण कर मध्यदेश को प्रस्थित हुआ । वहाँ नर्मदा के तटवर्ती प्रान्त में घूमते हुए, वह मेकल पर्वत के शिखरों से ऋक्षवान् नामक पर्वत पर पहुँचा और वहाँ से शुक्तिमती में प्रविष्ट हुआ । ज्यामघ की पत्नी शैव्या परम शक्तिमती और साहसी थी । उससे कोई पुत्र यद्यपि नहीं था फिर भी राजा होकर उसने दूसरी स्त्री से ब्याह नहीं किया था ॥ २९-३२ ॥

एक युद्ध में राजा ज्यामघ की विजय हुई, जिसमें उसने एक कन्या प्राप्त की । नरपति ने उस कन्या को लाकर अपनी स्त्री से यह कहा कि 'यह तुम्हारी पुत्रवधू है ।' राजा के ऐसा कहने पर शैव्या ने कहा, 'यह किसकी पुत्रवधू होगी ।' राजा ने कहा, 'तुम्हें जो पुत्र उत्पन्न होगा यह कन्या उसी की स्त्री होगी ।' राजा के इस वचन से शैव्या ने कठोर तपस्या की, जिससे उसे एक पुत्र हुआ । सुन्दरी साध्वी शैव्या ने वृद्धावस्था में इस प्रकार विदर्भ नामक पुत्र को उत्पन्न किया था । उसकी पुत्रवधू में विदर्भ से क्रथ और कौशिक नामक दो राजपुत्र उत्पन्न हुए, जो परम विद्वान् शूरवीर और रणनिपुण थे ॥ ३३-३६ ॥

उन दोनों पुत्रों के पीछे राजा विदर्भ ने एक तीसरे परम धार्मिक लोमपाद नामक पुत्र को उत्पन्न किया । लोमपाद के पुत्र राजा वस्तु हुए, उनके पुत्र आहति हुए । कौशिक के पुत्र चिदि हुए, जिस चिदि से उत्पन्न होनेवाले राजा लोग चैद्य नाम से विख्यात हुए । विदर्भराज के पुत्र जो क्रथ थे, उनके आत्मज कुन्ति हुए । कुन्ति के पुत्र धृष्टसुत हुए, जो परम प्रतापशाली राजा थे । धृष्ट के पुत्र धर्मात्मा निर्वृति हुए, जो शत्रुओं के वीरों को नष्ट करने

जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः सुतः । अथ भीमरथस्याऽऽसीत्पुत्रो रथवरः किल ॥ ४१ ॥
दाता धर्मरतो नित्यं सत्यशीलपरायणः । तस्य पुत्रो नवरथस्ततो दशरथः स्मृतः ॥ ४२ ॥
तस्य चैकादशरथः शकुनिस्तस्य चाऽऽत्मजः । तस्मात्करम्भको धन्वी देवरातोऽभवत्ततः ॥ ४३ ॥
देवक्षत्रोऽभवद्राजा देवरातिर्महायशाः । देवक्षत्रसुतो जज्ञे देवनः क्षत्रनन्दनः ॥ ४४ ॥
देवनात्स मधुर्जज्ञे यस्य मेधार्थसम्भवः । मधोश्चापि महातेजा मनुर्मनुवंशस्तथा ॥ ४५ ॥
नन्दनश्च महातेजा महापुरुवशस्तथा । आसीत्पुरुवशात्पुत्रः पुरुद्वान्पुरुषोत्तमः ॥ ४६ ॥
जज्ञे पुरुद्वतः पुत्रो भद्रवत्यां पुरूद्वहः । ऐक्ष्वाकी त्वभवद्भार्या सत्त्वस्तस्यामजायत ॥
सत्त्वात्सत्त्वगुणोपेतः सात्त्वतः कीर्तिवर्धनः ॥ ४७ ॥
इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः । प्रजावानेति सायुज्यं राज्ञः सोमस्य धीमतः ॥ ४८ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे ज्यामघवृत्तान्तकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

* * *

वाले थे । निर्वृति के पुत्र महान् बलशाली एवं परम पराक्रमी राजा दशार्ह हुए, दशार्ह के पुत्र व्योमा हुए, व्योमा के बाद राजा जीमूत कहे जाते हैं ॥ ३७-४० ॥

जीमूत के पुत्र विकृति हुए, विकृति के पुत्र राजा भीमरथ कहे जाते हैं, तदनन्तर भीमरथ के पुत्र राजा रथवर प्रसिद्ध हुए जो सर्वदा सत्य वचन बोलनेवाले, शीलवान् एवं दान कर्म में तत्पर रहते थे । उन राजा रथवर के पुत्र नवरथ हुए । उनके बाद दशरथ कहे जाते हैं । उन राजा दशरथ के एकादशरथ नामक पुत्र हुए । उनके पुत्र राजा शकुनि हुए । शकुनि के बाद धनुषधारी राजा करम्भ हुए, जिनके पुत्र देवरात हुए । देवरात का पुत्र महान् यशस्वी राजा देवक्षत्र हुआ । देवक्षत्र का पुत्र क्षत्रनन्दन देवन उत्पन्न हुआ ॥ ४१-४४ ॥

देवन से मधु नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, जिसके पुत्र का नाम मेधार्थसम्भव था । उस मधु के महान् तेजस्वी मनु, मनुवंश, नन्दन और महानपुरुवश नामक पुत्र और हुए । पुरुवशा का पुत्र पुरुष श्रेष्ठ पुरुद्वान् हुआ । पुरुद्वान् का पुत्र पुरुद्वह भद्रवती नामक स्त्री से उत्पन्न हुआ । उसकी स्त्री इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न थी, उसमें उसे सत्त्व नामक पुत्र की प्राप्ति हुई । उस सत्त्व से सत्त्वगुणसम्पन्न कीर्तिशाली सात्त्वत नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । महात्मा ज्यामघ के वंश विस्तार की इस कथा को जानकर मनुष्य संततियों से युक्त होता है और परम बुद्धिमान् राजा चन्द्रमा का सायुज्य प्राप्त करता है ॥ ४५-४८ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में ज्यामघवृत्तान्तकथन नामक तैंतीसवें अध्याय (पञ्चानबेवें अध्याय) की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३३ ॥

* * *

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

विष्णुवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

सात्वती रूपसंपन्नं कौशल्या सुषुवे सुतम् । भजिनं भजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम्॥ १ ॥
अन्धकं च सहाभोजं वृष्णिञ्च यदुनन्दनम् । तेषां हि सर्गाश्चत्वारः शृणुध्वं विस्तरेण वै॥ २ ॥
भजमानस्य शृञ्जय्यां बाह्यश्चोपरि बाह्यकः । शृञ्जयस्य सुते द्वे तु वाह्यकस्ते उदावहत्॥ ३ ॥
तस्य भार्ये भगिन्यौ ते प्रसूतेति सुतान्वहून् । निमिश्च पणवश्चैव वृष्णिः परपुरंजयः॥ ४ ॥
ये बाह्यकार्यशृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे । अयुतायुतसाहस्रशतजिदथ वामकः॥ ५ ॥
बाह्यकार्याभगिन्यां ये भजमानाद्विजज्ञिरे । तेषां देवावृधो राजा चचार परमं तपः॥ ६ ॥
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्म ह । संयोज्याऽऽत्मानमेवं सा सवर्णा जलमस्पृशत्॥ ७ ॥
सा चोपस्पर्शनात्तस्य चकार ऋषिमापगा । कल्याणं च नरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा॥ ८ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय

(छियानबेवाँ अध्याय)

विष्णु-वंश का वर्णन

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! रूपवती सात्वत की स्त्री कौशल्या ने भजिन, भजमान, राजा देवावृध, अन्धक, महाभोज, यदुनन्दन तथा वृष्णि नामक पुत्रों को उत्पन्न किया । इन सभी के चार वंशों का विवरण विस्तार से कहता हूँ, सुनिये । भजमान के शृञ्जयी नामक पत्नी में बाह्य और उपरिबाह्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । शृञ्जय की दो पुत्रियाँ थीं, जिन्हें बाह्यक ने पत्नी रूप में स्वीकार किया । उन दोनों बहनों ने, बाह्यक की पत्नी होकर अनेक पुत्र उत्पन्न किये । जिनमें निमि, पणव एवं शत्रुओं के नगरों को जीतनेवाले वृष्णि मुख्य थे । भजमान के पुत्र बाह्यक ने अपनी ज्येष्ठ रानी में इन पुत्रों को उत्पन्न किया । इसी प्रकार कनिष्ठ रानी में आयुतायुतजित् सहस्रजित् शतजित् और वामक नामक पुत्र उत्पन्न हुए । इन सबों में राजा देवावृध ने परम तपस्या की ॥ १-६ ॥

उन्होंने यह संकल्प करके तपस्या की थी कि 'मुझे एक सर्वगुणसम्पन्न पुत्र प्राप्त हो ।' इस प्रकार संकल्प कर राजा ने तपस्या करते समय योगबल से पर्णाशा नामक नदी के जल का स्पर्श किया । स्पर्श करते ही नदी ने राजा के कल्याण की चिन्ता की । नदियों में उत्तम पर्णाशा ने चिन्ता से आतुर होकर यह विचार किया कि—

चिन्तयाभिपरीताङ्गा जगामाथ विनिश्चयम् । नाधिगच्छामि तां नारीं यस्यामेवंविधः सुतः ॥ ९ ॥
भवेत्सर्वगुणोपेतो राज्ञो देवावृधस्य हि । तस्मादस्य स्वयं चाहं भवाम्यद्य सहव्रता ॥
जज्ञे तस्याः स्वयं हस्तो भावस्तस्य यथेरितः ॥ १० ॥
अथ भूत्वा कुमारी तु सावित्री परमं वचः । चिन्तयामास राजानं तामियेष स पार्थिवः ॥ ११ ॥
तस्यामाधत्त गर्भं स तेजस्विनमुदारधीः । अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरितां वरा ॥ १२ ॥
पुत्रं सर्वगुणोपेतं यथा देवावृधेप्सितः । तत्र वंशे पुराणज्ञा गाथां गायन्ति वै द्विजाः ॥ १३ ॥
गुणान् देवावृधस्यापि कीर्तयन्तो महात्मनः । यथैव शृणुते दूरात्संपश्यति तथाऽन्तिकात् ॥ १४ ॥
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः । पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च सहस्राणि च सप्ततिः ॥
येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रुर्देवावृधादपि ॥ १५ ॥
यज्वा दानपतिर्वीरो ब्रह्मण्यः सत्यवाग्बुधः । कीर्तिमांश्च महाभागः सात्वतानां महारथः ॥ १६ ॥
तस्यान्ववाये सुमहाभोजयेमार्तिकाबलाः । गान्धारी चैव माद्री च वृष्णेर्भार्ये बभूवतुः ॥ १७ ॥
गान्धारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम् । माद्री युधाजितं पुत्रं सा तु वै देवमीढुषम् ॥ १८ ॥
अनमित्रं सुतं चैव तावुभौ पुरुषोत्तमौ । अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतुः ॥ १९ ॥
प्रसेनश्च महाभागः शक्रजिच्च सुतावुभौ । तस्य शक्रजितः पूर्वः सखा प्राणसमोऽभवत् ॥ २० ॥

मेरी जानकारी में ऐसी कोई स्त्री नहीं है, जिसमें राजा देवावृध के संकल्प के अनुसार सर्वगुणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न हो, अतः अब मैं स्वयं ही इसकी सहधर्मिणी पत्नी बन रही हूँ। राजा ने जिस प्रकार की भावना की थी उसी के अनुसार नदी से स्वयमेव हाथों का प्रादुर्भाव हुआ ॥ ७-१० ॥

तदनन्तर उस नदी सावित्री ने कुमारी होकर सुन्दर शब्दों में राजा के प्रति अपनी अनुरक्ति प्रकट की और राजा ने उसकी इच्छा पूर्ति की। उदारचेत्ता राजा देवावृध ने उस कुमारी में एक तेजस्वी पुत्र का गर्भाधान कर दिया। सरिताओं में श्रेष्ठ पर्णाशा ने नवें महीने में राजा देववृध की इच्छा के अनुरूप सर्वगुणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न किया। पुराण-मर्मज्ञ ब्राह्मण उस वंश के प्रसंग में महात्मा राजा देवावृध के गुणों और वंशों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह राजा देवावृध दूर से जैसा उदार सुना जाता था वैसा ही समीप में जाने पर भी प्रत्यक्ष दिखायी पड़ता था। राजा देवावृध देवताओं के समान गुणसम्पन्न था। बभ्रु मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ था। इस वंश के पैंसठ हजार सत्तर मनुष्यों ने अमृतत्व की प्राप्ति की। ब्रभ्रु गुणों में राजा देवावृध से भी आगे था ॥ ११-१५ ॥

वह यज्ञ करने वाला, दानियों का स्वामी, वीर, ब्राह्मणों का प्रतिपालक, बुद्धिमान्, सत्यवादी, कीर्तिमान्, महाभाग्यशाली एवं सात्वत के वंश में उत्पन्न होने वालों में एकमात्र महारथी था। उसके वंश में महान् भोज वंशीय एवं आर्तिकाबलों की उत्पत्ति हुई थी। गान्धारी और माद्री ये दो वृष्णि की स्त्रियाँ थीं। इनमें से गान्धारी ने सुमित्र, मित्रनन्दन और माद्री ने युधाजित्, देवमीढुष और अनमित्र नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। वे दोनों पुरुष श्रेष्ठ थे। अनमित्र का पुत्र निघ्न हुआ, निघ्न के दो पुत्र महाभाग्यशाली प्रसेन और शक्रजित् हुए। सूर्य उस शक्रजित् के प्राणों के समान परम मित्र थे ॥ १६-२० ॥

स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिनां वरः । तोयकूलादपः स्प्रष्टुमुपस्थातुं ययौ रविम्॥ २१ ॥
तस्योपतिष्ठतः सूर्यो विवस्वानग्रतः स्थितः । अस्पष्टमूर्तिर्भगवांस्तेजोमण्डलवान्विभुः ॥ २२ ॥
अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रतः । यथैव व्योम्नि पश्यामि त्वामहं ज्योतिषां पते॥ २३ ॥
तेजोमण्डलिनं चैव तथैवाप्यग्रतः स्थितम् । को विशेषो विवस्वंस्ते साक्षादुपगतेन वै॥ २४ ॥
एतच्छ्रुत्वा स भगवान्मणिरत्नं स्यमन्तकम् । स्वकण्ठादवमुच्याथ बबन्ध नृपतेस्तदा॥ २५ ॥
ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा । प्रतिमामथ तां दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवांस्तथा॥ २६ ॥
तमतिप्रस्थितं भूयो विवस्वन्तं स शक्रजित् । प्रोवाचाग्निसवर्ण त्वं येन लोकान्प्रयास्यति॥
तदैव मणिरत्नं तन्मां भवान्दातुमर्हति ॥ २७ ॥
स्यमन्तकं नाम मणिं दत्तवांस्तस्य भास्करः । स तमावध्य नगरं प्रविवेश महीपतिः॥ २८ ॥
तं जनाः पर्यधावन्त सूर्योऽयं गच्छतीति ह । स तान्विस्मापयित्वाऽथ पुरीमन्तः पुरं तथा॥ २९ ॥
तं प्रसेनजिते दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम् । ददौ भ्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा शक्रजिदुत्तमम्॥ ३० ॥
स्यमन्तको नाम मणिर्यस्य राष्ट्रे स्थितो भवेत् । कालवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं तदा॥ ३१ ॥
लिप्सां चक्रे प्रसेनात्तु मणिरत्नं स्यमन्तकम् । गोविन्दो न च तं लेभे शक्तोऽपि न जहार च॥ ३२ ॥

एक बार कभी प्रातः काल के समय रथारोहियों में श्रेष्ठ वह शक्रजित् सूर्य की उपासना करने के लिए अपने रथ पर सवार होकर जलाशय के जल का स्पर्श करने निकला। जिस समय वह उपासना कर रहा था, उस समय अस्पष्ट रूप धारणकर अपने तेजोमण्डल से समन्वित होकर भगवान् सूर्यनारायण उसके समक्ष उपस्थित हुए। सूर्य को उपस्थित देखकर राजा ने कहा—हे ज्योतिर्गणों के स्वामिन् ! मैं आकाशमण्डल में आपको जिस प्रकार तेजोमय देखता हूँ, उसी प्रकार इस समय भी देख रहा हूँ, तो फिर हे भगवन् ! आपके मित्र रूप में उपस्थित होने की विशेषता क्या है? शक्रजित् की यह बात सुनकर भगवान् सूर्य नारायण ने अपने कण्ठ से स्यमन्तक नामक उत्तम मणि को निकालकर राजा के कण्ठ में बाँध दिया। उस समय राजा ने सूर्य नारायण को शरीर धारण किये हुए देखा। उस अनुपम तेजस्विनी प्रतिमा को उन्होंने एक मुहूर्त तक उसी प्रकार देखा ॥ २१-२६ ॥

तदनन्तर सूर्य को गमनोद्यत देखकर शक्रजित् ने कहा—हे भगवन् ! आप अग्नि के समान परम तेजोमय हैं, जिस प्रकाशमान मणि से इतने प्रकाशयुक्त होकर आप समस्त लोकों में भ्रमण करते हैं, उसी सुन्दर मणि को मुझे प्रदान करने की कृपा करें। शक्रजित् की इस याचना पर भगवान् सूर्य नारायण ने अपना स्यमन्तक नामक मणि राजा को प्रदान कर दिया। महीपति ने उस सुन्दर मणि को बाँधकर अपने पुर में प्रवेश किया। लोग यह समझकर उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे कि यह सूर्य जा रहे हैं। इस प्रकार नगरनिवासियों को तथा अन्तःपुर को उस मणि द्वारा विस्मय विमुग्ध कर राजा शक्रजित् ने दिव्य मणि को अपने भाई प्रसेनजित् को प्रेमपूर्वक प्रदान कर दिया ॥ २७-३० ॥

उस स्यमन्तक मणि के विषय में यह प्रसिद्धि है कि वह जिस राष्ट्र में रहता है, वहाँ मेघ समय-समय पर वृष्टि करते हैं, और वहाँ व्याधियों का भय नहीं रहता। गोविन्द के मन में उस स्यमन्तक मणि को प्रसेनजित् से

कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः । स्यमन्तककृते सिंहाद्वधं प्राप्तः सुदारुणम् ॥ ३३ ॥
जाम्बवानृक्षराजस्तु तं सिंहं निजघान वै । आदाय च मणिं दिव्यं स्वं बिलं प्रविवेश ह ॥ ३४ ॥
तत्कर्म कृष्णस्य ततो वृष्ण्यन्धकमहत्तराः । मणौ गृध्नुं तु मन्वानास्तमेव विशशङ्किरे ॥ ३५ ॥
मिथ्याभिशस्तिं तेभ्यस्तां बलवानरिसूदनः । अमृष्यमाणो भगवान्वनं स विचचार ह ॥ ३६ ॥
स तु प्रसेनो मृगयामचरत्तत्र चाप्यथ । प्रसेनस्य पदं गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ ३७ ॥
ऋक्षवन्तं गिरिवरं विन्ध्यं च नगमुत्तमम् । अन्वेषणपरिश्रान्तः स ददर्श महामनाः ॥ ३८ ॥
साश्वं हतं प्रसेनं तं नाविन्दत्तत्र वै मणिम् । अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः ॥ ३९ ॥
ऋक्षेण निहतो दृष्टः पादैर्ऋक्षस्य सूचिताम् । पदैरन्वेषयामास गुहामृक्षस्य यादवः ॥ ४० ॥
महत्यपि बिले वाणीं शुश्राव प्रमदेरिताम् । धात्र्या कुमारमादाय सुतं जाम्बवतो द्विजाः ॥
प्रीतिमत्याऽथ मणिना मा रोदीरित्युदीरिताम् ॥ ४१ ॥

धात्र्युवाच

प्रसेनमवधीत्सिंहः सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥ ४२ ॥
व्यक्तीकृतं च शब्दं तं तूर्णं सोऽपि ययौ बिलम् । अपश्यच्च बिलाभ्यासे प्रसेनमवदारितम् ॥ ४३ ॥
प्रविश्य चापि भगवांस्तदृक्षबिलमञ्जसा । ददर्श ऋक्षराजानं जाम्बवन्तमुदारधीः ॥ ४४ ॥

ले लेने की इच्छा हुई, किन्तु सामर्थ्य रखते हुए भी उन्होंने उसे प्रसेनजित् से छीना नहीं । एक बार कभी उस सुन्दर मणि से विभूषित होकर प्रसेनजित् शिकार के लिए वन को गये, वहाँ उसी स्यमन्तक के कारण एक सिंह ने उनको मार डाला । रीछराज जाम्बवान् ने उस सिंह को मार डाला, और स्यमन्तक को लेकर अपने बिल में प्रवेश किया । महान् वृष्णि अन्धकों के वंशजों ने इस हत्या कर्म की शंका कृष्ण के ऊपर की । 'उसी मणि की लालच से कृष्ण ने ऐसा किया'—सभी के मन में इस प्रकार की आशंकाएँ हुई । शत्रुमर्दन बलवान् भगवान् कृष्ण इस मिथ्या अपवाद को उन लोगों द्वारा सुनकर सहन न कर सके और तुरन्त वन को प्रस्थित किया ॥ ३१-३६ ॥

प्रसेनजित् जिस स्थान पर शिकार खेलने के लिए गये थे, उसी स्थान को प्रसेन के पदचिह्नों को जानकर लोगों से पता लगाकर अनुसरण करते हुए कृष्ण चले । और इस प्रकार ऋक्षवान् गिरिवर और पर्वत श्रेष्ठ विन्ध्याचल में घूमते-घूमते वे बहुत परेशान हो गये । वहाँ पर महामनस्वी कृष्ण ने घोड़े समेत प्रसेन को मरा हुआ पाया, पर मणि को नहीं पाया । उसी प्रसेन के शव से थोड़ी दूर सिंह को भी मरा हुआ पाया, वहाँ पर रीछ के पदचिह्नों से यह स्पष्ट पता चल रहा था कि रीछ ने सिंह को मारा । तदनन्तर यादव श्रीकृष्ण जी ने रीछ के उन्हीं पदचिह्नों से रीछ की गुफा का पता लगाया । उन्होंने उसके विशाल गुफा में स्त्री की आवाज सुनी । द्विजगण ! जाम्बवान् की बिल में उसके लड़के को धाय प्रेमपूर्वक स्यमन्तक मणि को दिखलाकर यह कह रही थी कि 'बेटा मत रोओ' इसके अतिरिक्त वह इस प्रकार की बातें भी कह रही थी ॥ ३७-४१ ॥

धाय बोली—प्रसेनजित् को सिंह ने मारा, सिंह को जाम्बवान् ने मारा, मेरे सुकुमार पुत्र ! तुम मत रोओ । यह स्यमन्तक मणि तुम्हारा है ।' धाय की यह वाणी सुनते ही कृष्ण शीघ्रतापूर्वक उस गुफा में प्रविष्ट हो गये,

युयुधे वासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह । बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम्॥ ४५ ॥
प्रविष्टे च बिलं कृष्णे वासुदेवपुरः सराः । पुनर्द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन्॥ ४६ ॥
वासुदेवस्तु निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम् । लेभे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य संमताम्॥ ४७ ॥
भगवत्तेजसा ग्रस्तो जाम्बवान्प्रसभं मणिम् । सुतां जाम्बवतीमाशु विष्वक्सेनाय दत्तवान्॥ ४८ ॥
मणिं स्यमन्तकं चैव जग्राहाऽऽत्मविशुद्धये । अनुनीय ऋक्षराजं निर्ययौ च तदा बिलात्॥ ४९ ॥
एवं स मणिमादाय विशोध्याऽऽत्मानमात्मना । ददौ शत्राजिते तं वै मणिं सात्वतसंनिधौ॥ ५० ॥
कन्यां पुनर्जाम्बवतीमुवाच मधुसूदनः । तस्मान्मिथ्याभिशापात्स व्यमुच्यत जनार्दनः ॥ ५१ ॥
इमां मिथ्याभिशस्तिं यः कृष्णस्येह व्यपोहिताम्। वेद मिथ्याभिशस्तेः स नाभिशस्यति कर्हिचित् ॥५२॥
दशस्वसृभ्यो भार्याभ्यः शत्रुजित्तः शतं सुताः । ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषां भङ्गकारस्तु पूर्वजः ॥ ५३ ॥
वीरो व्रतपतिश्चैव ह्यपस्वान्तश्च सुप्रियः । अथ द्वारवती नाम भृङ्गकारस्य सुप्रजा॥
सुषवे सा कुमारीस्तु तिस्रो रूपगुणान्विताः ॥ ५४ ॥
सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां व्रतिनीव दृढव्रता । तथा तपस्विनी चैव पिता कृष्णस्य तां ददौ॥ ५५ ॥

गुफा के समीप ही वे प्रसेनजित् को मारा हुआ देखा चुके थे । गुफा में शीघ्रतापूर्वक प्रविष्ट होकर परम तेजस्वी उदारबुद्धि भगवान् कृष्ण ने रीछराज जाम्बवान् को देखा और उसी गुफा में ही जाम्बवान् के साथ वासुदेव का युद्ध प्रारम्भ हो गया । बाहु द्वारा ही गोविन्द ने इक्कीस दिनों तक युद्ध किया । उधर कृष्ण के गुफा में प्रविष्ट हो जाने पर जब देरी होने लगी तो उनके साथियों ने द्वारकापुरी में लौटकर यह बात बतायी कि कृष्ण तो मारे गये । इधर वासुदेव ने महाबलशाली रीछराज जाम्बवान् को पराजित कर उसकी सम्मति से जाम्बवती नामक उनकी सुन्दरी कन्या को प्राप्त किया ॥ ४१-४७ ॥

तेजोबल से अभिभूत होकर जाम्बवान् ने अपनी कन्या जाम्बवती को और स्यमन्तक मणि को विष्वक्सेन भगवान् कृष्ण को समर्पित कर दिया । भगवान् कृष्ण ने अपने ऊपर फैले हुए अपवादों की शुद्धि के लिए स्यमन्तक मणि को ऋक्षराज जाम्बवान् से ले लिया और उससे फिर अनुनय-विनय कर गुफा से बाहर आये । इस प्रकार स्यमन्तक मणि को प्राप्तकर उन्होंने अपने पुरुषार्थ से अपना अपयश दूर किया और ले जाकर समस्त सात्वत वंशियों के समक्ष शक्रजित् को समर्पित किया । तदनन्तर भगवान् मधुसूदन कृष्ण ने जाम्बवती से अपना विवाह किया । इस प्रकार उस मिथ्या अपवाद से जनार्दन भगवान् कृष्ण की मुक्ति हुई ॥ ४८-५१ ॥

भगवान् कृष्ण के ऊपर फैलायी गयी इस मिथ्या अपकीर्ति को दूर करने का वृत्तान्त जो व्यक्ति जानता है उसे कभी किसी प्रकार से इस प्रकार की मिथ्या अपकीर्ति का भाजन नहीं होना पड़ता । शत्रुजित् से उसकी दस पत्नियों में जो सब की सब सगी बहनें थीं, एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें से तीन विख्यात हुए, उनमें सबसे बड़ा पुत्र भृङ्गकार था । अन्य दो पुत्रों के नाम बलवान् व्रतपति तथा सुप्रिय अपस्वान्त थे । भृङ्गकार की स्त्री द्वारवती सुन्दर सन्ततियोंवाली थी, उसने तीन सर्वगुणसम्पन्न कन्याओं को उत्पन्न किया था । जिनमें स्त्रियों में परम सुन्दर सत्यभामा परम दृढव्रता तथा तपस्विनी थी । पिता ने उसे कृष्ण को समर्पित करने की बात की थी । कृष्ण ने जिस

यत्ततशत्राजिते कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम् । प्रादात्तदाहरद्रवं भोजेनशतधन्वना ॥ ५६ ॥
तदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम् । अक्रूरो रत्नमन्विच्छन्मणिं चैव स्यमन्तकम् ॥ ५७॥
भद्रकारं ततो हत्वा शतधन्वा महाबलः । रात्रौ तं मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान् ॥ ५८ ॥
अक्रूरस्तु तदा रत्नमादाय स नरर्षभः । समयं कारणं चक्रे बोध्यो नान्यैस्त्वयेत्युत ॥ ५९ ॥
वयमभ्युपपत्स्यामः कृष्णेन त्वं प्रधर्षितः । मम च द्वारका सर्वा वशे तिष्ठत्यसंशयम् ॥ ६० ॥
हते पितरि दुःखार्ता सत्यभामा यशस्विनी । प्रययौ रथमारुह्य नगरं वारणावतम् ॥ ६१ ॥
सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतधन्वनः । भर्तुर्निवेद्य दुःखार्ता पार्श्वस्थाऽश्रूण्यवर्तयत् ॥ ६२ ॥
पाण्डवानां तु दग्धानां हरिः कृत्वोदकक्रियाम् । तुल्यार्थे चैव भ्रातृणां नियोजयति सात्यकिम् ॥ ६३ ॥
ततस्त्वरितमागम्य द्वारकां मधुसूदनः । पूर्वजं हलिनं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६४ ॥
हतः प्रसेनः सिंहेन शत्राजिच्छतधन्वना । स्यमन्तकमहं मार्गे तस्य प्रहर हे प्रभो ॥ ६५ ॥
तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महाबलम् । स्यमन्तको महाबाहो तदाऽस्माकं भविष्यति ॥ ६६ ॥
ततः प्रवृत्ते रुद्धे तु तुमुले भोजकृष्णयोः । शतधन्वा न चाक्रूरमवैक्षत्सर्वतो दिशि ॥ ६७ ॥

स्यमन्तक नामक बहुमूल्य मणि को शक्रजित् को दिया था, उसे बभ्रु ने धारण किया था । भोज वंशीय शतधन्वा ने उससे उस मणि को छीनकर अक्रूर को दे दिया ॥ ५२-५६ ॥

शतधन्वा ने परम सुन्दरी सत्यभामा की प्राप्ति के लिए अक्रूर से सहायता की प्रार्थना की । अक्रूर ने उस मणिश्रेष्ठ स्यमन्तक की प्राप्ति की आशा से उससे सहायता की याचना की । जिस पर रात्रि के समय सोते हुए भद्रकार को महाबलवान् शतधन्वा ने मारकर उस बहुमूल्य मणि को अक्रूर को दे दिया । नरश्रेष्ठ अक्रूर ने मणि को लेते समय उससे प्रतिज्ञा करा लिया कि हमारे षड्यन्त्र को तुम्हें किसी से नहीं बताना होगा । कृष्ण जब तुम्हें पीड़ित करेंगे तो हम सब लोग तुम्हारी सहायता करेंगे, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है । इस समय सारी द्वारकापुरी हमारे वश में है । पिता के मारे जाने पर यशस्विनी सत्यभामा बहुत दुःखी हुई और रथ पर चढ़कर वारणावत नगर को चली गयी ॥ ५७-६१ ॥

वहाँ पहुँचकर उसने भोजवंशीय शतधन्वा के इस दारुण कर्म को पति से निवेदन किया और परम कातर होकर उसके बगल में बैठकर आँसू गिराती रही । वारणावत में पाण्डवों के जल जाने पर हरि ने पिण्डादिक क्रियाएँ सम्पन्न कीं और उस समय अपने भाइयों के स्थान पर सात्यकि को नियुक्त किया । भगवान् मधुसूदन ने तुरन्त द्वारकापुरी में जाकर अपने बड़े भाई हलधर से सभी बातें बताकर यह निवेदन किया—हे सर्वशक्तिसम्पन्न ! जिस स्यमन्तक मणि के कारण सिंह ने प्रसेनजित् का वध किया था, उसी के कारण शतधन्वा ने शत्रुजित् का वध किया है । मैं उसी स्यमन्तक को चाहता हूँ, आप शतधन्वा का संहार कीजिए । आप शीघ्र ही रथ पर सवार होइए । हे महाबाहु ! महाबलवान् भोज का संहार करने पर ही स्यमन्तक हम लोगों के हाथ लगेगा ॥ ६२-६६ ॥

इस प्रकार परामर्श कर लेने के उपरान्त जब भगवान् कृष्ण और भोजवंशी शतधन्वा में तुमुल युद्ध शुरू हो गया । तब पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार शतधन्वा ने लड़ाई के मैदान में दसों दिशाओं में देखा पर अक्रूर का कहीं

अनष्टाश्वावरोहं तु कृत्वा भोजजनार्दनौ । शक्तोऽपि साध्याद्वार्द्धक्यान्नाक्रूरोऽभ्युपपद्यत॥ ६८ ॥
अपयाने ततो बुद्धिं भूयश्चक्रे भयान्वितः । योजनानां शतं साग्रं यया च प्रत्यपद्यत॥ ६९ ॥
विज्ञातहृदया नाम शतयोजनगामिनी । भोजस्य वडवादित्यो यया कृष्णमयोधयत्॥ ७० ॥
प्रवृद्धवेगा वडवा त्वध्वनां शतयोजनम् । दृष्ट्वा रथगतिस्तस्य शतधन्वानमर्दयत्॥ ७१ ॥
ततस्तस्य हयास्ते तु श्रमात्खेदाच्च वै द्विजाः। स्वमुत्पेतू रथप्राणाः कृष्णो राममथाब्रवीत्॥ ७२ ॥
तिष्ठस्वेह महाबाहो दृष्टदोषा मया हयाः । पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्यमन्तकम्॥ ७३ ॥
पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युतः । मिथिलाधिपतिं तं वै जघान परमास्त्रवित्॥ ७४ ॥
स्यमन्तकं न चापश्यद्धत्वा भोजं महाबलम् । निवृत्तं चाब्रवीत्कृष्णं रत्नं देहीति लाङ्गली॥ ७५ ॥
नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुषाऽन्वितः । धिक्शब्दमसकृत्पूर्वं प्रत्युवाच जनार्दनम्॥ ७६ ॥
भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येष स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् । कृत्यं न मे द्वारकया न त्वया न च वृष्णिभिः ॥ ७७ ॥
प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्दनः । सर्वकामैरुपहृतैर्मैथिलेनैव पूजितः ॥ ७८ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतां वरः । नानारूपान्क्रतून्सर्वानाजहार निरर्गलान्॥ ७९ ॥

भी पता न लगा । रणक्षेत्र में भगवान् जनार्दन और शतधन्वा घोड़े पर सवार थे । उस समय हृदय से मित्र तथा सहायता में समर्थ होने पर भी अक्रूर शतधन्वा की सहायता के लिए नहीं आये । इससे शतधन्वा बहुत भयभीत हुआ और वहाँ से भाग निकलने की बात सोचने लगा । शतधन्वा की विज्ञातहृदया नाम की घोड़ी थी, जिसके द्वारा उसके विचार करते-ही-करते सौ योजन दूर पहुँच गया । उसी दिव्य गुणसम्पन्न घोड़ी पर चढ़कर वह भगवान् कृष्ण से युद्ध कर रहा था । उस तीव्रवेगशालिनी घोड़ी के वेग को सौ योजन देखकर, और उस पर चढ़कर शतधन्वा को भागते देखकर कृष्ण ने उसके पीछा किया ॥ ६७-७१ ॥

द्विजवृन्द ! भगवान् श्री कृष्ण के पीछा करते समय अति परिश्रम से प्रचुर परिमाण में पसीना निकलने के कारण शतधन्वा की घोड़ी के जब प्राण निकल गये तब उन्होंने बलराम से कहा—हे महाबाहु आप यहीं रहिये । मैं देख रहा हूँ, वह घोड़ी तो मर गयी है । अतः पैदल ही जाकर स्यमन्तक मणि को मैं शतधन्वा से छीन लाऊँगा । ऐसा कहकर परम अस्त्रवेत्ता भगवान् अच्युत ने पैदल ही जाकर मिथिलाधिपति शतधन्वा का संहार किया । किन्तु उस महाबलशाली भोजवंशीय शतधन्वा के मार डालने पर भी स्यमन्तक को उसके पास नहीं देखा । वहाँ से शतधन्वा को मारकर जब भगवान् कृष्ण लौटे तब हलधर बलराम ने उनसे स्यमन्तक मणि माँगा ॥ ७२-७५ ॥

कृष्ण ने कहा कि मणि तो वहाँ पर नहीं मिली । उनकी इस बात से बलराम बहुत क्रुद्ध हुए और अनेक बार जनार्दन को धिक्कारा । बलराम ने आगे कहा—भाई के नाते तुम्हें मैं क्षमा प्रदान कर रहा हूँ, जाओ तुम्हारा कल्याण हो । मैं जा रहा हूँ, मेरा अब द्वारका से कोई सम्बन्ध नहीं है, और न तुमसे तथा वृष्णिवंशियों से ही कोई प्रयोजन है । शत्रुओं के विनाश करने वाले बलराम जी ने कृष्ण से ऐसी बातें कर मिथिलापुरी में प्रवेश किया, वहाँ पर मिथिलावासियों ने उन्हें सभी प्रकार के उपहार अर्पित किये और बड़ा सम्मान किया ॥ ७६-७८ ॥

इधर इसी अवधि में बुद्धिमानों में श्रेष्ठ बभ्रु ने अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान बिना किसी विघ्न-बाधा

दीक्षामयं सकवचं रक्षार्थं प्रविवेश ह । स्यमन्तककृते राजा गाधिपुत्रो महायशाः ॥ ८० ॥
अर्थान् रत्नानि चाग्र्याणि द्रव्याणि विविधानि च । षष्टिवर्षगते काले यज्ञेषु विन्ययोजयत् ॥ ८१ ॥
अक्रूरयज्ञा इत्येते ख्यातास्तस्य महात्मनः । बह्वन्नदक्षिणाः सर्वे सर्वकामप्रदायिनः ॥ ८२ ॥
अथ दुर्योधनो राजा गत्वाऽथ मिथिला प्रभुः । गदाशिक्षां ततो दिव्यां बलभद्रादवाप्तवान् ॥ ८३ ॥
प्रसाद्य तु ततो विप्रा वृष्ण्यन्धकमहारथैः । आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥ ८४ ॥
अक्रूरमन्धकैः सार्धमुपायात्पुरुषर्षभः । युद्धे हत्वा तु शत्रुघ्नं सह बन्धुमता बली ॥ ८५ ॥
स्वफल्कतनयायां तु नरायां नरसत्तमौ । भृङ्गकारस्य तनयो विश्रुतौ सुमहाबलौ ॥ ८६ ॥
जज्ञातेऽन्धकमुख्यस्य शत्रुघ्नो बन्धुमांश्च तौ । वधार्थं भृङ्गकारस्य कृष्णो न प्रीतिमान्भवेत् ॥ ८७ ॥
ज्ञातिभेदभयाद्भीतः समुपेक्षितवांस्तथा । अपयाते तथाऽक्रूरे नावर्षत्पाकशासनः ॥ ८८ ॥
अनावृष्ट्या हतं राष्ट्रमभवत्तद्वधोद्यतम् । ततः प्रासादयामासुरक्रूरं कुकुरान्धकाः ॥ ८९ ॥
पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तदा दानपतौ तथा । प्रववर्ष सहस्राक्षः कुक्षौ जलनिधेस्ततः ॥ ९० ॥
कन्यां च वासुदेवाय स्वसारं शीलसंमताम् । अक्रूरः प्रददौ श्रीमान्प्रीत्यर्थं यदुपुंगवः ॥ ९१ ॥
अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम् । सभामध्ये तदा प्राह तमक्रूरं जनार्दनः ॥ ९२ ॥

के सम्पन्न किया । महायशस्वी गाधिपुत्र ने उसी स्यमन्तक के लिए अपनी रक्षा के हेतु एक दीक्षामय कवच भी पहन रखा था । इस साठ वर्ष की अवधि में उसने अपने इन यज्ञों में विविध प्रकार के बहुमूल्य रत्न एवं द्रव्यादि लगाये थे । उस परम बुद्धिमान् महात्मा के ये यज्ञ अक्रूर यज्ञ के नाम से विख्यात हो चले थे । उनमें बहुत परिमाण में अन्न एवं दक्षिणा रूप में द्रव्य व्यय किया गया था । वे सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले थे ॥ ७९-८२ ॥

उसी अवधि में प्रभुवर्य्य कुरुपति दुर्योधन ने मिथिलापुरी में जाकर बलराम से गदा चलाने की दिव्य शिक्षा ग्रहण की थी । इस प्रकार बहुत दिन बीत जाने पर भगवान् कृष्ण के साथ वृष्णि और अंधकों ने बड़ी अनुनय-विनय कर बलराम को प्रसन्न किया और उन्हें द्वारकापुरी चलने के लिए बाध्य किया । बलवान् पुरुष में श्रेष्ठ अक्रूर युद्ध में बन्धुमान के साथ शत्रुघ्न का संहारकर अंधकों के साथ द्वारकापुरी से बाहर चले गये । ये दोनों महाबलवान् पुत्र भृङ्गकार के थे, स्वफल्क की पुत्री नरा में इन दोनों प्रख्यात पुरुषरत्नों का जन्म हुआ था । अंधकों के स्वामी भृङ्गकार के ये दोनों शत्रुघ्न और बन्धुमान नामक पुत्र परम बलवान् थे । भृङ्गकार की मृत्यु के कारण भगवान् कृष्ण अक्रूर से प्रसन्न नहीं रहते थे । जाति भेद के भय से तथा समाज उपेक्षित होकर अक्रूर द्वारकापुरी के बाहर चले गये थे । उनके चले जाने पर इन्द्र ने वृष्टि करना ही बन्द कर दिया ॥ ८३-८८ ॥

अनावृष्टि के कारण समस्त राष्ट्र का विनाश उपस्थित हो गया, लोग परस्पर मारने-काटने को उद्यत हो गये । इस दुर्घटना से प्रभावित होकर कुकुर और अंधकों ने जाकर अक्रूर को प्रसन्न किया । दानशिरोमणि अक्रूर जब लौटकर द्वारकापुरी में आये तब सहस्र नेत्र इन्द्र ने विपुल वृष्टि की, यहाँ तक कि समुद्र में भी विपुल वृष्टि हुई । यदुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीमान् अक्रूर ने प्रसन्न करने के लिए अपनी सर्वगुणसम्पन्न शीलवती भगिनी को वासुदेव कृष्ण को समर्पित किया । भगवान् वासुदेव ने योगबल से अक्रूर के पास स्यमन्तक मणि का होना जान लिया और

यच्च रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं प्रभो । तत्प्रयच्छस्व मानार्ह विमतिश्चात्र मा कृथाः ॥ ९३ ॥
षष्टिवर्षगते काले यद्रोषोऽभूत्तदा मम । सुसंरूढः सकृत्प्राप्तस्तत्कालाश्रित्य यो महान् ॥ ९४ ॥
ततः कृष्णस्य वचनात्सर्वसात्वतसंसदि । प्रददौ तं मणिं बभ्रुरक्लेशेन महामतिः ॥ ९५ ॥
तत आर्जवसंप्राप्तबभ्रुहस्तादरिंदमः । ददौ प्रहृष्टमनसा तं मणिं बभ्रवे पुनः ॥ ९६ ॥
स कृष्णहस्तात्संप्राप्य मणिरत्नं स्यमन्तकम् । आबध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजांशुमानिव ॥ ९७ ॥
इमां मिथ्याभिशस्तिं यो विशुद्धामपि चोत्तमाम् । वेद मिथ्याभिशस्तिं स न व्रजेच्च कथंचन ॥ ९८ ॥
अनिमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात् ॥ ९९ ॥
सत्यवाक्सत्यसंपन्नः सत्यकस्तस्य चाऽऽत्मजः । सात्यकिर्युयुधानश्च तस्य भूतिः सुतोऽभवत् ॥ १०० ॥
भूतेर्युगंधरः पुत्र इति भौत्याः प्रकीर्तिताः । जज्ञाते तनयौ पृश्नेः स्वफल्कश्चित्रकश्च यः ॥ १०१ ॥
श्वफल्कस्तु महाराजो धर्मात्मा यत्र वर्तते । नास्ति व्याधिभयं तत्र न चावृष्टिभयं तथा ॥ १०२ ॥
कदाचित्काशिराजस्य विभोस्तु द्विजसत्तमाः । त्रीणि वर्षाणि विषये नावर्षत्पाकशासनः ॥ १०३ ॥
स तत्र वासयामास श्व फल्कं परमार्चितम् । श्वफल्क परिवासेन प्रावर्षत्पाकशासनः ॥ १०४ ॥

एक बार भरी सभा में उन्होंने अक्रूर से कहा, 'सम्माननीय ! सर्वसमर्थ ! अक्रूर जी ! आपके पास जो सर्वश्रेष्ठ सुन्दर स्यमन्तक मणि है, उसे हमें दे दीजिये, इसमें इनकार न कीजिये' ॥ ८९-९३ ॥

इसके लिए साठ वर्ष से हमारा क्रोध आपके ऊपर है, उस महान् क्रोध को प्रकाशित करने का अवसर मुझे एक बार मिला है । आज समय पड़ने पर मैं उस मणि की याचना कर अपने उस पुराने क्रोध को शान्त करना चाहता हूँ । भगवान् कृष्ण के इस वचन को सुनकर परम बुद्धिमान् अक्रूर ने सात्वत वंशियों की भरी सभा में बिना किसी क्लेश के उस स्यमन्तक मणि को भगवान् वासुदेव को समर्पित कर दिया । शत्रुओं को वश में करने वाले भगवान् वासुदेव इस प्रकार सरलतापूर्वक अक्रूर के हाथ से उस महामणि के प्राप्त हो जाने पर पुनः प्रसन्न मन से अक्रूर को वह मणि वापस कर दिया । भगवान् कृष्ण के हाथ से उस मणिवर स्यमन्तक को प्राप्तकर गान्दिनीनन्दन अक्रूर ने उसे यथास्थान अलंकृत कर लिया और वे अंशुमान की भाँति सुशोभित होने लगे ॥ ९४-९७ ॥

भगवान् के ऊपर लगायी गयी इस मिथ्या अपवादमूलक वार्ता को, जो वास्तव में विशुद्धि और उत्तम शिक्षा देने वाली है, जो व्यक्ति जानता है, वह कभी ऐसे मिथ्या अपवाद का भाजन नहीं हो सकता । कनिष्ठ वृष्णिनन्दन अनमित्र से शिनि की उत्पत्ति हुई । उनके पुत्र परम सत्यवादी सत्याचरणपरायण सत्यक हुए । सत्यक के पुत्र सात्यकि हुए जिनका दूसरा नाम युयुधान भी था । सात्यकि के पुत्र भूति हुए । भूति के पुत्र युगन्धर हुए । इन सभी भौत्य के नाम से विख्यात वृष्णिवंशियों का विवरण कह चुका । माद्री के पुत्र युधाजित् के पृश्नि नाम से विख्यात पुत्र हुए । पृश्नि के स्वफल्क और चित्रक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । महाराज स्वफल्क परम धर्मात्मा थे, वे जहाँ पर विद्यमान रहते थे, वहाँ पर व्याधियों तथा अनावृष्टि का भय नहीं रहता था । हे द्विजवर्यवृन्द ! एक बार कभी सर्वसमर्थ काशिराज के राज्य में इन्द्र ने तीन वर्ष तक लगातार वृष्टि ही नहीं की । काशिराज ने परम सम्माननीय महाराज स्वफल्क को अपने यहाँ बुलाकर निवास करवाया । स्वफल्क के वास करते ही इन्द्र ने वहाँ

श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामनिन्दिताम्। गान्दिनीं नाम गां सा हि ददौ विप्राय नित्यशः ॥ १०५ ॥
सा मातुरुदरस्था वै बहुवर्षशतान्किल । वसति स्म न वै जज्ञे गर्भस्थां तां पिताऽब्रवीत्॥ १०६ ॥
जायस्व शीघ्रं भद्रं ते किमर्थं चापि तिष्ठसि । प्रोवाच चैनं गर्भस्था सा कन्या गौर्दिने दिने॥ १०७ ॥
यदि दत्ता तदा स्यां हि यदि स्यामीहतां पितः। तथेत्युवाच तां तस्याः पिता काममपूपुरत्॥ १०८ ॥
दाता यज्वा च शूरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः। तस्याः पुत्रः स्मृतोऽक्रूरः श्वफल्को भूरिदक्षिणः ॥ १०९ ॥
उपमङ्गुस्तथा मङ्गुर्मृदुरश्चारिमेजयः । गिरिरक्षस्ततो यक्षः शत्रुघ्नो वाऽरिमर्दनः॥ ११० ॥
धर्मभृच्च श्रृष्टचयो वर्गमोचस्तथाऽपरः । आवाहप्रतिवाहौ च वसुदेवा वराङ्गना॥ १११ ॥
अक्रूरादुग्रसेन्यां तु सुतौ द्वौ कुलनन्दिनौ । देवश्चानुपदेवश्च जज्ञाते देवसंमितौ॥ ११२ ॥
चित्रकस्याभवन्पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च । अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ॥ ११३ ॥
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुवर्मा वर्मचर्मभृत् । अभूमिर्बहुभूमिश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ॥ ११४ ॥
सत्यकात्काशिदुहिता लेभे सा चतुरः सुतान् । ककुदं भजमानं च शमीकम्बलबर्हिषौ॥ ११५ ॥
ककुदस्य सुतो वृष्टिर्वृष्टेस्तु तनयोऽभवत् । कपोतरोमा तस्याथ रेवतोऽभवदात्मजः ॥ ११६ ॥
तस्याऽऽसीत्तुम्बुरुसखा विद्वान्पुत्रोऽभवत्किल । ख्यायते यस्य नाम्ना स चन्दनोदकदुन्दुभिः॥ ११७ ॥

पर वृष्टि की । स्वफल्क ने काशिराज की परम सुन्दरी कन्या गान्दिनी के साथ अपना विवाह किया । गान्दिनी प्रतिदिन ब्राह्मणों को गोदान करती थी ॥ ९८-१०५ ॥

ऐसा कहा जाता है कि गान्दिनी अपनी माता के गर्भ में अनेक सौ वर्षों तक रही, उत्पन्न नहीं हुई, गर्भावस्था में अवस्थित उससे पिता ने कहा—गर्भस्थ सन्तान ! तुम शीघ्र उत्पन्न हो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम किस लिए गर्भ में निवास कर रहे हो ।' राजा की ऐसी बातें सुनकर गर्भावस्था में ही कन्या ने उत्तर दिया, 'पिता जी। यदि आप प्रतिदिन गौओं का दान करें तब मैं उत्पन्न होऊँगी ।' पिता ने 'बहुत अच्छा' कहकर कन्या की मनोकामना पूर्ण की । उसी गान्दिनी के स्वफल्क के संयोग से परम दानी, परम यज्ञकर्त्ता, शूरवीर, वेदज्ञ, अतिथिसेवक अक्रूर उत्पन्न हुए । महाराज स्वफल्क भी परम दानी थे । अक्रूर के अतिरिक्त स्वफल्क के अन्य पुत्र भी उत्पन्न हुए, जिनके नाम हैं—उपमंगु, मंगु, मृदुर, अरिमेजय, गिरिरक्ष, यक्ष, शत्रुघ्न अथवा अरिमर्दन, धर्मभृत्, श्रृष्टचय, वर्गमोच, आवाह तथा प्रतिवाह । इनके अतिरिक्त परमसुन्दरी वसुदेवा नाम की कन्या भी थी ॥ १०६-१११ ॥

अक्रूर के संयोग से उग्रसेनी में दो परिवार को आनन्द देने वाले सुपुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम थे देव और अनुपदेव । ये दोनों पुत्र देवताओं के समान गुणशाली थे । चित्रक के जो पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम थे—पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुवर्मा, चर्मभृत्, वर्मभृत् अभूमि और बहुभूमि । श्रविष्ठा और श्रवणा नामक दो स्त्रियाँ थीं । काशिराज की कन्या ने सत्यक के संयोग से चार पुत्रों को प्राप्त किया जिनके नाम थे ककुद, भजमान, शमी और कम्बलबर्हिष । ककुद के पुत्र वृष्टि थे, वृष्टि के पुत्र का नाम कपोतरोमा था । कपोतरोमा का पुत्र रेवत था । उस रेवत का पुत्र तुम्बुरुसखा हुआ, जो परम प्रसिद्ध विद्वान् था, इसी के नाम चन्दनोदकदुंदुभि भी ख्यात थे ॥ ११२-११७ ॥

तस्माच्चाभिजितः पुत्र उत्पन्नस्तु पुनर्वसुः । अश्वमेधं तु पुत्रार्थे आजहार नरोत्तमः ॥ ११८ ॥
तस्य मध्येऽतिरात्रस्य सदोमध्यात्समुत्थितम् । ततस्तु विद्वान्धर्मज्ञो दाता यज्वा पुनर्वसुः ॥ ११९ ॥
तस्यापि पुत्रमिथुनं बाहुबाणाजितः किल । आहुकश्चाऽऽहुकी चैव ख्यातौ मतिमतां वरौ ॥ १२० ॥
इमांश्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकान्प्रति तमाहुकम् । सोपासङ्गानुकर्षाणां सध्वजानां वरूथिनाम् ॥ १२१ ॥
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु । नासत्यवादी त्वासीत्तु नायज्वा नासहस्रदः ॥ १२२ ॥
नाशुचिर्नाप्यधर्मात्मा नाविद्वान्न कृशोऽभवत् । आहुकस्य धृतिः पुत्र इत्येवमनुशुश्रुमः ॥ १२३ ॥
श्वेतेन परिचारेण किशोरप्रतिमान्हयान् । अशीतियुक्तनियुतान्याहुकप्रतिमोऽव्रजत् ॥ १२४ ॥
पूर्वस्यां दिशि नागानां भोजस्य प्रतिरेजिरे । रूप्यकाञ्चनकक्षाणां सहस्राण्येकविंशतिः ॥ १२५ ॥
तावन्त्येव सहस्राणि उत्तरस्यां तथा दिशि । भूमिपालस्य भोजस्य उत्तिष्ठेत्किङ्किणी किल ॥ १२६ ॥
आहुकश्चाऽऽहुकान्धाय स्वसारं त्वाहुकीन्ददौ । आहुकान्धस्य दुहिता द्वौ पुत्रौ संबभूवतुः ॥ १२७ ॥
देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ । देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः ॥ १२८ ॥

उसका पुत्र अभिजित् हुआ, उस अभिजित् से पुनर्वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । राजा ने पुत्र-प्राप्ति के लिए अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान किया था । उस यज्ञ की वेदी के मध्य भाग से पुनर्वसु का प्रादुर्भाव हुआ था जिसके कारण पुनर्वसु परम विद्वान्, धर्मज्ञ, दानशील, हवनकर्त्ता थे । उन पुनर्वसु के दो जुड़वाँ सन्तान उत्पन्न हुए—ऐसी प्रसिद्धि है, जिनके नाम आहुक तथा आहुकी थे । ये दोनों बुद्धिमानों में अग्रगण्य और अपने बाहुबल तथा बाणों से कभी पराजित न होने वाले थे । उस आहुक के लिए पुराने लोग कुछ श्लोकों का गान करते हैं, जिनका आशय इस प्रकार है । वे महाराज आहुक मेघ के समान भीषण रव करने वाले, समस्त रणसामग्रियों से सुसज्जित, प्रत्येक अवयवों से सुसंगठित, ध्वजाओं और कवचों से सुरक्षित, दस सहस्र रथों से तथा सुन्दर श्वेत वर्ण के परिच्छद से सुशोभित, किशोर अवस्था वाले, दस सहस्र अस्सी अश्वों से परिवेष्टित होकर रण में आक्रमण करते थे । उसके वंश में उत्पन्न होने वालों में से कोई भी ऐसा नहीं हुआ, जो असत्यवादी हो, यज्ञादि का अनुष्ठान न करता हो, एक सहस्र से कम दान करने वाला हो, अपवित्र हो, अधर्मी हो, मूर्ख हो अथवा दुर्बल शरीर वाला हो अर्थात् उसके वंश में उत्पन्न होने वाले सब उपर्युक्त सब अवगुणों से सर्वथा रहित थे । उस महाराज आहुक के पुत्र धृति हुए ऐसा सुना जाता है ॥ ११८-१२३ ॥

आहुक ने पूर्व दिशा में सुवर्ण और चाँदी के आभूषणों से सुसज्जित इक्कीस सहस्र हाथियों की बलवान् सेना लेकर भोजराज की समानता की थी, इसी प्रकार उत्तर दिशा में भी उतनी ही सेनाएँ लेकर भोजराज के ऊपर आक्रमण किया था, जिसमें उसकी किंकणी (पैर के घुंघुरू) उठ पड़ी थी—ऐसी प्रसिद्धि है । उस महाराज आहुक ने अपनी बहन आहुकी को आहुकान्ध को समर्पित किया था, उसके संयोग से आहुकान्ध को एक पुत्री तथा दो पुत्र उत्पन्न हुए । उन दोनों पुत्रों के नाम देवक तथा उग्रसेन थे । ये दोनों पुत्र देवताओं के गर्भ अर्थात् सन्ततियों के समान प्रभावशाली तथा सुन्दर थे ॥ १२४-१२७ ॥

देवक के जो पुत्र उत्पन्न हुए वे देवताओं के समान प्रभावशाली, सुन्दर तथा शूरवीर थे । इनके नाम

देवानामपि देवश्च सुदेवो देवरञ्जिता । तेषां स्वसारः सप्ताऽऽसन्वसुदेवाय संददौ॥ १२९ ॥
वृकदेवोपदेवा च तथाऽन्या देवरक्षिता । श्रीदेवा शान्तिदेवा च महादेवा तथाऽपरा॥ १३० ॥
सप्तमी देवकी तासां सुनामा चारुदर्शना । नवोग्रसेनस्य सुताः कंसस्तेषां तु पूर्वजः॥ १३१ ॥
न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कशंकुश्च भूमयः । सुतनू राष्ट्रपालश्च युद्धात्तुष्टः सुपुष्टिमान्॥ १३२ ॥
तेषां स्वसारः पञ्चैव कर्मधर्मवती तथा । शतांक्रूराष्ट्रपाला च कहा चैव वराङ्गना॥ १३३ ॥
उग्रसेनो महापत्यो विख्यातः कुकुरोद्भवः । कुकुराणामिमं वंशं धारयन्नमितौजसाम्॥
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावांश्च भवेन्नरः ॥ १३४ ॥
भजमानस्य पुत्रस्तु रथिमुख्यो विदूरथः । राज्याधिदेवः शूरश्च विदूरश्च सुतोऽभवत्॥ १३५ ॥
तस्य शूरस्य तु सुता जज्ञिरे बलवत्तराः । वातश्चैव निवातश्च शोणितः श्वेतवाहनः॥ १३६ ॥
शमी च गदवर्मा च निदातः शक्रशक्रजित् । शमिपुत्रः प्रतिक्षिप्तः प्रतिक्षिप्तस्य चाऽऽत्मजः॥ १३७ ॥
स्वयंभोजः स्वयंभोजाद्धृदिकः संबभूव ह । हृदिकस्य सुतास्त्वासन्दश भीमपराक्रमाः॥ १३८ ॥
कृतवर्मा कृतस्तेषां शतधन्वा तु मध्यमः । देवार्हश्च वनार्हश्च भिषग्द्वैतरथश्च यः॥ १३९ ॥
सुदान्तश्च धियान्तश्च नाकवान्कनकोद्भवः । देवार्हश्च सुतो विद्वाञ्जज्ञे कम्बलबर्हिषः॥ १४० ॥
असमौजाः सुतस्तस्य सुमहौजाश्च विश्रुतः । अजावपुत्राय ततः प्रददावसमौजसे॥
सुदंष्ट्रं च सुरूपं च कृष्ण इत्यन्धकाः स्मृताः ॥ १४१ ॥

देवदेव, सुदेव और देवरञ्जिता थे । उनकी सात बहनें भी थीं जिन्हें उन्होंने वसुदेव को समर्पित किया था, उनके नाम—वृकदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, महादेवा तथा देवकी थो । देवकी इन सब में देखने में परम सुन्दरी थी । उग्रसेन के नौ पुत्र थे जिनमें कंस सबसे बड़ा था ॥ १२८-१३१ ॥

उनके नाम—न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क, शंकु, भूमय, सुतनु, राष्ट्रपाल, युद्धात्तुष्ट और पुष्टिमान् थे । इन नवों भाइयों की पाँच बहनें भी थीं, जिनके नाम—कर्मवती, धर्मवती, शतांकु, राष्ट्रपाला और सुन्दरी थे । उग्रसेन महान् सन्ततियों वाले विख्यात कुकुरवंशीय राजा थे । इन परम तेजस्वी कुकुरों के वंश विवरण को जो मनुष्य स्मरण रखता है, वह अपने विपुल वंश का पालक तथा उत्तम सन्तानों वाला होता है ॥ १३२-१३४ ॥

भजमान के पुत्र रथारोहियों में श्रेष्ठ विदूरथ हुए । उनके राज्याधिदेव शूर और विदुर नामक पुत्र उत्पन्न हुए । इनमें से शूर के महाबलशाली पुत्र हुए, जिनके नाम वात, निवात, शोणित, श्वेतवाहन, शमी, गदवर्मा, निदात और शक्रजित् थे । इनमें से शमी का पुत्र प्रतिक्षिप्त था, प्रतिक्षिप्त का पुत्र स्वयम्भोज हुआ । स्वयम्भोज से हृदिक नामक पुत्र हुआ । हृदिक के दस भयानक पराक्रमशाली पुत्र हुए, उनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम कृतवर्मा था, उससे मँझला शतधन्वा हुआ । अन्य पुत्रों के नाम देवार्ह, वनार्ह, भिषक्, द्वैतरथ, सुदान्त, धियान्त, नाकवान् और कनकोद्भव थे । इनमें देवार्ह का पुत्र परभ विद्वान् कम्बलबर्हिष उत्पन्न हुआ ॥ १३५-१४० ॥

उसके असमौजा और सुसमौजा नाम के दो पुत्र थे । इनमें असमौजा को कोई सन्तति नहीं थी । कृष्ण ने उसे सुदंष्ट्र और सुरूप नामक दो पुत्र दिये थे । यह अन्धकों का वंश विवरण कहा गया । अन्धकों के इस वंश

अन्धकानामिमं वंशं कीर्तयानस्तु नित्यशः । आत्मनो विपुलं वंशं लभते नात्र संशयः ॥ १४२ ॥
अस्मक्यां जनयामास शूरो वै देवमानुषिम् । भाष्यां तु जनयामास शूरो वै देवमाहुषम् ॥ १४३ ॥
भाष्यां तु जज्ञिरे शूराद्भोजायां पुरुषा दश । वासुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः ॥ १४४ ॥
जज्ञे तस्य प्रसूतस्य दुन्दुभिः प्राणदद्दिवि । आनकानां च संह्लादः सुमहानभवद्दिवि ॥ १४५ ॥
पपात पुष्पवर्षं च शूरस्य भवने महत् । मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समोभुवि ॥ १४६ ॥
यस्याऽऽसीत्पुरुषाग्र्यस्य कीर्तिश्चन्द्रमसो यथा । वेदभागस्ततो जज्ञे ततो देवश्रवाः पुनः ॥ १४७ ॥
अनादृष्टिकडश्चैव नन्दनश्चैव भृञ्जिनः । श्यामः शमीको गण्डूषश्चत्वारस्तु वराङ्गनाः ॥ १४८ ॥
पृथा च श्रुतवेदा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवा । राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः ॥ १४९ ॥
पृथां दुहितरं चक्रे कुन्तिस्तां पाण्डुरावहत् । अनपत्याय वृद्धाय कुन्तिभोजाय तां ददौ ॥ १५० ॥
तस्मात्कुन्तीति विख्याता कुन्तिभोजात्मजा तथा । कुरुवीरः पाण्डुमुख्यस्तस्माद्भार्यामविन्दत ॥ १५१ ॥
पृथा जज्ञे ततः पुत्रांस्त्रीनग्निसमतेजसः । लोकेऽप्रतिरथान्वीराञ्शक्रतुल्यपराक्रमान् ॥ १५२ ॥
धर्माद्युधिष्ठिरं पुत्रं मारुताच्च वृकोदरम् । इन्द्राद्धनंजयं चैव पृथा पुत्रानजीजनत् ॥ १५३ ॥
माद्रवत्यां तु जनितवाश्विनाविति विश्रुतम् । नकुलः सहदेवश्च रूपसत्त्वगुणान्वितौ ॥ १५४ ॥

विवरण का नित्य कीर्त्तन करने वाला मनुष्य इस लोक में अपने वंश का विपुल विस्तारक होता है—इस बात में कोई सन्देह नहीं है ॥ १४०-१४२ ॥

शूर ने अस्मकी में देवमानुषी को उत्पन्न किया । भाषी में देवमाहुष की उत्पत्ति हुई । भोजपुत्री भाषी ने उन्हीं शूर के संयोग से दस पुत्रों को जन्म दिया । इनमें वसुदेव महाबलशाली थे, इनकी ख्याति पूर्वकाल में आनकदुन्दुभि नाम से थी । जिस समय उनका जन्म हुआ था उस समय आकाश में दुन्दुभि की अति गम्भीर ध्वनि होने लगी थी । शूर के राजभवन में आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी थी । सम्पूर्ण मर्त्यलोक में वासुदेव के समान रूपवान् कोई दूसरा नहीं था । उन पुरुष वसुदेव की कीर्ति चन्द्रमा की चाँदनी की भाँति लोकमनोरंजनी तथा विशद थी । वासुदेव के उपरान्त शूर के वेदभाग नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे । उनके बाद देवश्रवा नामक पुत्र का जन्म हुआ था । इनके अतिरिक्त अनादृष्टि, कड, नन्दन, भृञ्जिन, श्याम, शमीक और गण्डूष नामक पुत्र भी थे और चार सुन्दरी कन्याएँ थीं ॥ १४३-१४८ ॥

उनके नाम पृथा, श्रुतवेदा, श्रुतकीर्ति और श्रुतश्रवा थे । इनके अतिरिक्त राजाधिदेवी नामक कन्या भी थी । ये पाँचों कन्याएँ वीर पुत्रों की माताएँ थीं । कुन्ति ने पृथा को अपनी कन्या बनाया था, और उसका पणिग्रहण पाण्डु ने किया था । निस्संतान राजा कुन्तिभोज को पिता ने पृथा को दे दिया था । कुन्तिभोज की पोषित पुत्री होने के कारण वह कुन्ती नाम से विख्यात हुई । कुरुवंशियों में वीर पाण्डु ने कुन्ती को स्त्री रूप में वरण किया था । पृथा ने उन पाण्डु के संयोग से अग्नि के समान परम तेजस्वी तीन पुत्रों को उत्पन्न किया था । उन तीन पुत्रों की बराबरी करने वाला कोई महारथी पृथ्वी में नहीं था, वे इन्द्र के समान महान् पराक्रमशाली एवं वीर थे । पृथा ने धर्म के अंश से युधिष्ठिर नामक पुत्र को, मारुत के अंश से वृकोदर (भीम) नामक पुत्र को तथा इन्द्र के अंश से धनञ्जय

जज्ञे च श्रुतदेवायां तनयो वृद्धशर्मणः । करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्त्रो महाबलः ॥ १५५ ॥
कैकेय्यां श्रुतकीर्त्यां तु जज्ञे संतर्दनः पुनः । चेकितानबृहत्क्षत्रौ तथैवान्यौ महाबलौ ॥ १५६ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ भ्रातरौ सुमहाबलौ । श्रुतश्रवायां चैद्यस्तु शिशुपालो बभूव ह ॥ १५७ ॥
दमघोषस्य राजर्षेः पुत्रो विख्यातपौरुषः । यः पुराऽऽसीद्दशग्रीवः संबभूवारिमर्दनः ॥ १५८ ॥
यदुश्रवानुजस्तस्य रुजकन्योऽनुजस्तथा । पत्न्यस्तु वसुदेवस्य त्रयोदश वराङ्गनाः ॥ १५९ ॥
पौरवी रोहिणी चैव मदिरा चापरा तथा । तथैव भद्रा वैशाखी देवकी सप्तमी तथा ॥ १६० ॥
सुगन्धिर्वनराजी च द्वे चान्ये परिचारिके । रोहिणी पौरवी चैव वाल्मीकस्याऽऽत्मजाऽभवत् ॥ १६१ ॥
ज्येष्ठा पत्नी महाभागा दयिताऽऽनकदुन्दुभेः । ज्येष्ठं लेभे सुतं रामं सारणं निशवं तथा ॥ १६२ ॥
दुर्दमं दमनं शुभ्रं पिण्डारककुशीतकौ । चित्रां नाम कुमारीं च रौहिण्यष्टौ व्यजायत ॥ १६३ ॥
पौत्रौ रामस्य जज्ञाते विज्ञातौ निशितोत्सुकौ । पार्श्वी च पार्श्वनन्दी च शिशुः सत्यधृतिस्तथा ॥ १६४ ॥
मन्दबाह्योऽथ रामाणगिरिकौ गिर एव च । शुक्लगुल्मेति गुल्मश्च दरिद्रान्तक एव च ॥ १६५ ॥
कुमार्यश्चापि पञ्चाद्या नामतस्ता निबोधत । अर्चिष्मती सुनन्दा च सुरसा सुवचास्तथा ॥ १६६ ॥
तथा शतबला चैव सारणस्य सुतास्त्विमाः । भद्राश्वो भद्रगुप्तिश्च भद्रविघ्नस्तथैव च ॥ १६७ ॥

(अर्जुन) नामक पुत्र को उत्पन्न किया था । अश्विनीकुमारों के अंश से माद्रवती में नकुल और सहदेव नामक दो पुत्ररत्नों की उत्पत्ति हुई । ये दोनों पुत्र परम स्वरूपवान् एवं सत्त्वगुणसम्पन्न थे ॥ १४९-१५४ ॥

वृद्धशर्मा ने श्रुतदेवा में करूष देश के अधिपति वीर महाबलशाली दन्तवक्त्र को उत्पन्न किया । केकपदेश की राजमहिषी श्रुतकीर्ति में सन्तर्दन नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । उसके अतिरिक्त चेकितान और बृहत्क्षत्र नामक दो अन्य महाबलशाली पुत्र भी उत्पन्न हुए । अवन्ति देश के अधीश्वर विन्द और अनुविन्द—ये दोनों भाई भी उसी के पुत्र थे । श्रुतश्रवा से चेदि देश का स्वामी शिशुपाल का जन्म हुआ ॥ १५५-१५७ ॥

वह शिशुपाल राजर्षि दमघोष का पुत्र था । उसके पौरुष की पर्याप्त प्रसिद्धि थी । वह पूर्व जन्म में शत्रुमर्दन दशग्रीव रावण के रूप में उत्पन्न हुआ था । पटुश्रवा उसके अनुज और रुजकन्या अनुजा थी । वसुदेव की तेरह परम सुन्दरी स्त्रियाँ थीं, उनके नाम—पौरवी, रोहिणी, अपरा, मदिरा, भद्रा, वैशाखी और देवकी ये सात पटरानियाँ थीं । सुगन्धि और वनराजी ये दो परिचारिकाएँ थीं । रोहिणी और पौरवी—ये दोनों वाल्मीक की कन्याएँ थीं । सबसे बड़ी पत्नी रोहिणी महाभाग्यशालिनी आनकदुन्दुभि वसुदेव की परम प्रिया थीं । उनके संयोग से सबसे बड़े पुत्र बलराम तथा अन्य सारण, निशव, दुर्दम, दमन, शुभ्र, पिण्डारक, कुशीतक नामक आठ पुत्र एवं चित्रा नामक एक कुमारी उत्पन्न हुए ॥ १५८-१६३ ॥

बलराम के दो निशित और उत्सुक नामक विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए, जो वसुदेव के पौत्र थे । इनके अतिरिक्त पार्श्व, पार्श्वनन्दी, शिशु, सत्यधृति, मन्दबाह्य, रामाण, गिरिक, गिर, शुक्लगुल्म, गुल्म, दरिद्रान्तक नामक पुत्र भी बलराम के थे । इनसे बड़ी पाँच कुमारियाँ भी थीं, उनके नाम सुनिये । अर्चिष्मती, सुनन्दा, सुरसा, सुवचा और शतबला उनके नाम थे । ये पाँच परम बुद्धिमान् सारण की पुत्रियाँ थीं । भद्राश्वो, भद्रगुप्ति, भद्रविघ्न,

भद्रबाहुर्भद्ररथो भद्रकल्पस्तथैव च। सुपार्श्वकः कीर्तिमांश्च रोहिताश्वश्च भद्रजः॥ १६८ ॥
दुर्मदश्चाभिभूतश्च रोहिण्याः कुलजाः स्मृताः। नन्दोपनन्दौ मित्रश्च कुक्षिमित्रस्तथा चलः॥ १६९ ॥
चित्रोपचित्रे कन्ये च स्थितः पुष्टिरथापरः। मदिरायाः सुता ह्येते सुदेवोऽथ विजज्ञिरे॥ १७० ॥
उपबिम्बोऽथ बिम्बश्च सत्त्वदन्तमहौजसौ। चत्वार एते विख्याता भद्रापुत्रा महाबलाः॥ १७१ ॥
वैशाख्यां समदाच्छौरिः पुत्रं कौशिकमुत्तमम्। देवक्यां जज्ञिरे शौरिः सुषेणः कीर्तिमानपि॥ १७२ ॥
तदयो भद्रसेनश्च यजुदायश्च पञ्चमः। षष्ठो भद्रविदेकस्य कंसः सर्वाञ्जघान तान्॥ १७३ ॥
अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान्संबभूव ह। लोकनाथः पुनर्विष्णुः पूर्वकृष्णः प्रजापतिः॥ १७४ ॥
अनुजाताऽभवत्कृष्णा सुभद्रा भद्रभाषिणी। कृष्णा सुभद्रेति पुनर्व्याख्याता वृष्णिनंदिनी॥ १७५ ॥
सुभद्रायां रथी पार्थादाभिमन्युरजायत। वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु॥
ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तान्निबोधत ॥ १७६ ॥
अतोऽस्य सहदेवायां शूरो जज्ञेऽभयासखः। शार्ङ्गदेवाऽजनत्तम्बुं शौरी जज्ञे कुलोद्वहम्॥ १७७ ॥
उपसंगं वसुं चापि तनयौ देवरक्षितौ। एवं दश सुतास्तस्य कंसस्तानप्यघातयत्॥ १७८ ॥
विजयं रोचनं चैव वर्धमानं तथैव च। एतान्सर्वान्महाभागानुपदेवा व्यजायत॥ १७९ ॥
स्वगाहवं महात्मानं वृकदेवी त्वजायत। आगाही च स्वसा चैव सुरूपा शिशिरायिणी॥ १८० ॥

भद्रबाहु, भद्ररथ, भद्रकल्प, सुपार्श्वक, कीर्तिमान्, रोहिताश्व, भद्रज, दुर्मद और अभिभूत—ये रोहिणी से उत्पन्न होनेवाले पुत्र-पौत्रादिकों के नाम बताए गये हैं। नन्द, उपनन्द, मित्र, कुक्षिमित्र, चल, पुष्टि और सुदेव ये पुत्रगण तथा चित्रा और उपचित्रा, नामक दो कन्याएँ मदिरा की सन्ततियाँ कही गयी हैं ॥ १६४-१७० ॥

उपबिम्ब, बिम्ब, सत्त्वदन्त और महौजा—ये चार महाबलशाली एवं विख्यात पुत्र भद्रा के थे। वसुदेव ने वैशाखी में परम योग्य कौशिक नामक पुत्र को उत्पन्न किया। देवकी में सुषेण, कीर्तिमान्, तदय, भद्रसेन, यजुदाय और भद्रविद् नामक छह पुत्रों को उत्पन्न किया था जिनको कंस ने मार दिया था। ऐसी स्थिति में प्रजापति लोकनायक भगवान् विष्णु आयुष्मान् कृष्ण के रूप में सातवीं बार उत्पन्न हुए। उनके पश्चात् सुन्दर बोलने वाली सुभद्रा उत्पन्न हुई। इन्हीं वृष्णिनन्दिनी सुभद्रा का नाम बाद में कृष्णा विख्यात हुआ। कृष्णा के गर्भ से अर्जुन ने महान् वीर अभिमन्यु को उत्पन्न किया। वसुदेव की महाभाग्यशालिनी सातों स्त्रियों में अन्य जो शूर पुत्र हुए, उनके नाम कहता हूँ, सुनिये ॥ १७१-१७६ ॥

सहदेवा में वसुदेव के संयोग से परमवीर मयासख नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। शार्ङ्गदेवा के गर्भ से तम्बु नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। शौरी ने कुलोद्वह को उत्पन्न किया। उपसठ, वसु, देव, रक्षित, विजय, रोचन और वर्धमान नामक महाभाग्यशाली पुत्रों को उपदेवा ने उत्पन्न किया। वसुदेव के इन दस पुत्रों को भी कंस ने मार डाला था। वृकदेवी ने महात्मा स्वगाहव को उत्पन्न किया। इसी वृकदेवी का नामान्तर आगाही, स्वसा, सुरूपा और शिशिरायिणी भी था ॥ १७७-१८० ॥

सप्तमं देवकीपुत्रं सुनासा सुषुवे भुवम् । गवेषणं महाभागं सङ्ग्रामे चित्रयोधनम्॥ १८१ ॥
श्राद्धदेवं पुरा येन वनं विरचितं द्विजा । सैव्यायामददाच्छौरिः पुत्रं कौशिकमव्ययम्॥ १८२ ॥
सुगन्धी वनराजी च शौरेरास्तां परिग्रहः । पुण्ड्रश्च कपिलेश्चैव वसुदेवात्मजौ हि तौ॥
तयोराजाऽभवत्पुण्ड्रः कपिलस्तु वनं ययौ ॥ १८३ ॥
तस्यां समभवद्वीरो वसुदेवात्मजो बली । राजा नाम निषादोऽसौ प्रथमः स धनुर्धरः॥ १८४ ॥
विख्यातो देवरातस्य महाभागः सुतोऽभवत् । पण्डितानां मतं प्राहुर्देवश्रवसमुद्भवम्॥ १८५ ॥
अस्मक्यां लभते पुत्रमनादृष्टिं यशस्विनम् । निवर्तः शक्रशत्रुघ्नं श्राद्धदेवं महाबलम्॥ १८६ ॥
अजायत श्राद्धदेवो निषधादिर्यतः श्रुतः । एकलव्यो महावीर्यो निषादैः परिवर्धितः॥ १८७ ॥
गण्डूषायानपत्याय कृष्णस्तुष्टोऽददत्सुतौ । चारुदेष्णं च साम्बं च कृतास्त्रौ शस्तलक्षणौ॥ १८८ ॥
तन्तिजस्तन्तिमालश्च स्वपुत्रौ कनकस्य तु । वस्तावनेस्त्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान्॥
सौतिर्ददौ सुतं वीरं शौरिं कौशिकमेव च ॥ १८९ ॥
तपाश्च क्रोधनुश्चैव विरजाः श्यामसृञ्जिमौ । अनपत्योऽभवच्छ्यामः श्यामकस्तु वनं ययौ॥
जुगुप्समानो भोजत्वं राजर्षित्वमवाप्नुयात् ॥ १९० ॥

सुन्दर नासिका वाली देवकी ने महाभाग्यशाली, संग्राम भूमि में विचित्र युद्ध करने वाले गवेषण नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो उनके सातवें पुत्र प्रसिद्ध हुए ॥ १८१ ॥

हे द्विजवृन्द ! इन्हीं गवेषण ने पूर्वकाल में वनप्रान्त में श्राद्धदेव की रचना की थी । वसुदेव ने सैव्या नामक अपनी एक अन्य पत्नी में कौशिक नामक परम पराक्रमशाली पुत्र को उत्पन्न किया था । सुगन्धी और वनराजी नामक दो अन्य स्त्रियाँ से पुण्ड्र और कपिल नामक दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई । वसुदेव के इन दोनों पुत्रों में पुण्ड्र राजा हुए और कपिल वन को चले गये ॥ १८२-१८३ ॥

वसुदेव का एक परम बलवान् निषाद नामक पुत्र और था, जो धनुर्धारियों में अग्रगण्य एवं परम पुरुषार्थी राजा था । देवरात का पुत्र परम यशस्वी एवं महाभाग्यशाली था । पण्डित लोग उसे देवश्रवा के नाम से जानते हैं । निवर्त ने अस्मकी से परमयशस्वी अनादृष्टि नामक पुत्र को उत्पन्न किया । इसी प्रकार महाबलवान् श्राद्धदेव और शक्रशत्रुघ्न नामक दो पुत्र और हुए ॥ १८४-१८६ ॥

यही श्राद्धदेव निषध जाति के मूल पुरुष थे और यही निषादों द्वारा पोषित महाबलशाली एकलव्य के नाम से भी विख्यात हुए । भगवान् कृष्ण ने प्रसन्न होकर सन्ततिहीन गण्डूष को चारुदेष्ण और साम्ब नामक दो पुत्र प्रदान किये थे, जो शस्त्रास्त्रवेत्ता और प्रशंसनीय गुणों वाले थे । कनक के तन्तिज और तन्तिमाल नामक दो पुत्र थे, प्रतापशाली वसुदेव ने इन दोनों पुत्रों को पुत्रविहीन वास्तावलि के हाथों समर्पित किया, सौति ने वीर पुत्र शौरि और कौशिक को उसे समर्पित किया था ॥ १८४-१८९ ॥

उसी वंश में तपा, क्रोधनु, विरजा, श्याम और सृजिम नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे, इनमें से श्याम को कोई

य इदं जन्म कृष्णस्य पठेत नियतव्रतः । श्रावयेद् ब्राह्मणश्चापि सुमहत्सुखमाप्नुयात्॥ १९१ ॥
देवदेवो महातेजाः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः । विहारार्थं मनुष्येषु जज्ञे नारायणः प्रभुः॥ १९२ ॥
देवक्यां वसुदेवेन तपसा पुष्करेक्षणः । चतुर्बाहु स विज्ञेयो दिव्यरूपः श्रियाऽन्वितः॥ १९३ ॥
प्रकाशो भगवान्योगी कृष्णो मानुषमागतः। अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थः स एव भगवान्प्रभुः॥ १९४ ॥
नारायणो यतश्चक्रे प्रभवं चाव्ययो हि सः । देवो नारायणोभूत्वा हरिरासीत्सनातनः॥ १९५ ॥
योऽसृजच्चाऽऽदिपुरुषं पुरा चक्रे प्रजापतिम् । अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दनः॥
देवो विष्णुरिति ख्यातः शक्रादवरजोऽभवत् ॥ १९६ ॥
प्रसादजं यस्य विभोरदित्याः पुत्रकारणम् । वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवराक्षसाम्॥ १९७ ॥
ययातिवंशजस्याथ वसुदेवस्य धीमतः । कुलं पुण्यं यतः कर्म भेजे नारायणः प्रभुः॥ १९८ ॥
सागराः समकम्पन्त चेलुश्च धरणीधराः । जज्वलुश्चाग्निहोत्राणि जायमाने जनार्दने॥ १९९ ॥
शिवाश्च प्रववुर्वाताः प्रशान्तमभवद्रजः । ज्योतींष्यभ्यधिकं रेजुर्जायमाने जनार्दने॥ २०० ॥
अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्ती नाम शर्वरी । मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः॥ २०१ ॥

सन्तान नहीं थी, जिससे वह वन को चला गया था। वह भोजत्व की निन्दा करता था, उसे राजर्षि की उपाधि प्राप्त हुई थी। जो ब्राह्मण नियमपूर्वक भगवान् कृष्ण के इस जन्मवृत्तान्त को दूसरे को सुनाता है अथवा पढ़ता है, वह महान् सुख की प्राप्ति करता है। प्रजापति, महान् तेजस्वी देवदेव प्रभु भगवान् नारायण विहार करने के लिए मनुष्य योनि में कृष्ण के रूप में अवतरित होते हैं। वे कमलनेत्र, दिव्यस्वरूप चतुर्भुज भगवान् अपनी समस्त कान्ति से समन्वित होकर वसुदेव की परम तपस्या के फलस्वरूप देवकी के गर्भ में उत्पन्न होते हैं ॥ १९०-१९३ ॥

वे परम प्रकाशमान भगवान् स्वयं ही योगेश्वर कृष्ण के रूप में प्रादुर्भूत होते हैं। वे परम प्रभु भगवान् अव्यक्त स्वरूप वाले निराधार एवं व्यक्त स्वरूप वाले साकार दोनों ही रूपों में हैं। वे नारायण भगवान् कृष्ण अव्ययात्मा एवं समस्त चराचर सृष्टि के विधायक हैं। वे ही नारायण रूप में सर्वदा एकरूप और सर्वशक्तिसम्पन्न हरि हैं। जो सृष्टि के प्रारम्भ में आदिपुरुष प्रजापति ब्रह्मा की सृष्टि करते हैं। वे यादवनन्दन कृष्ण ही अदिति के पुत्र के रूप में प्रादुर्भूत होकर देवदेव विष्णु एवं इन्द्र के छोटे भाई उपेन्द्र के नाम से भी विख्यात होते हैं। वे ही सर्वशक्तिमान् अपने अनुग्रह से देवताओं के शत्रु दैत्यों, दानवों और राक्षसों के विनाश के लिए अदिति के पुत्र के रूप में प्रादुर्भूत होते हैं ॥ १९४-१९७ ॥

राजर्षि ययाति के वंश में उत्पन्न परम बुद्धिमान् वसुदेव का कुल परम पवित्र हुआ, जिसमें भगवान् नारायण स्वयं प्रादुर्भूत होकर लौकिक कर्मों के अनुष्ठान में प्रवृत्त हुए। जिस समय वे भगवान् जनार्दन उत्पन्न हुए. उस समय सागर काँपने लगे, पर्वत हिलने लगे, अग्निहोत्र स्वयमेव प्रज्वलित हो उठे, मङ्गलकारी शीतल मन्द सुगन्धित वायु बहने लगी और धूल का उड़ना शान्त हो गया। इसी प्रकार भगवान् जनार्दन के उत्पन्न होने पर सूर्य, चन्द्रमा एवं ग्रह-नक्षत्रादि ज्योतिष्पुञ्जों का प्रताप अधिक निखर उठा। जिस शुभ वेला में भगवान् जनार्दन उत्पन्न हुए उस समय अभिजित् नामक नक्षत्र था, जयन्ती नामक रात्रि थी और विजय नामक मुहूर्त था ॥ १९८-२०१ ॥

अव्यक्तः शाश्वतः कृष्णो हरिर्नारायणः प्रभुः । जायते स्मैव भगवान्नयनैर्मोहयन्प्रजाः ॥ २०२ ॥
आकाशात्पुष्पवृष्टीश्च ववर्ष त्रिदशेश्वरः । गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिः स्तुवन्तो मधुसूदनम् ॥
महर्षयः सगन्धर्वा उपतस्थुः सहस्वशः ॥ २०३ ॥
वसुदेवस्तु तं रात्रौ जातं पुत्रमधोक्षजम् । श्रीवत्सलक्षणं दृष्ट्वा दिवि दिव्यैः सुलक्षणैः ॥
उवाच वसुदेवः स्वं रूपं संहर वै प्रभो ॥ २०४ ॥
भीतोऽहं कंसतस्तात एतदेव ब्रवीम्यहम् । मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्तेऽद्भुतदर्शनाः ॥ २०५ ॥
वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं सहृतवान्प्रभुः । अनुज्ञातः पिता त्वेनं नन्दगोपगृहं गतः ॥
उग्रसेनमते तिष्ठन्यशोदायै तदा ददौ ॥ २०६ ॥
तुल्यकालं तु गर्भिण्यौ यशोदा देवकी तथा । यशोदा नन्दगोपस्य पत्नी सा नन्दगोपतेः ॥ २०७ ॥
यामेव रजनीं कृष्णो जज्ञे वृष्णिकुलप्रभुः । तामेव रजनीं कन्यां यशोदाऽपि व्यजायत ॥ २०८ ॥
तं जातं रक्षमाणस्तु वसुदेवो महायशाः । प्रादात्पुत्रं यशोदायै कन्यां तु जगृहे स्वयम् ॥ २०९ ॥
दत्त्वैनं नन्दगोपस्य रक्ष मामिति चाब्रवीत् । सुतस्ते सर्वकल्याणो यादवानां भविष्यति ॥
अयं स गर्भो देवक्या अस्मत्क्लेशान्हनिष्यति ॥ २१० ॥

अव्यक्त, शाश्वत, प्रभु, नारायण, भगवान् हरि अपने सुन्दर नेत्रों से प्रजाओं को मोहित करते हुए जिस समय प्रादुर्भूत हुए उस समय इन्द्र ने आकाश से पुष्प वृष्टि की और सहस्रों की संख्या में एकत्र हो होकर गन्धर्वों और महर्षियों ने मांगलिक गायन से मधुसूदन की स्तुति की ॥ २०२-२०३ ॥

वसुदेव ने रात्रि के समय श्रीवत्स चिह्न से विभूषित, अन्यान्य दिव्य लक्षणों से अलंकृत अधोक्षज अर्थात् जिनके स्वरूप का साक्षात्कार इन्द्रियों से नहीं हो सकता, उन भगवान् को पुत्र रूप में समुत्पन्न देखा । वसुदेव ने उनसे निवेदन किया कि—हे प्रभो ! आप अपने इस रूप को (चतुर्भुज रूप को) समाप्त कीजिये । हे तात ! मैं कंस से बहुत भयभीत होकर आपसे निवेदन कर रहा हूँ । मेरे ज्येष्ठ पुत्रों को जो देखने में अद्भुत सौन्दर्यशाली थे, उसने मार डाला है ॥ २०४-२०५ ॥

वसुदेव की इस प्रकार की बातें सुनकर महामहिमामय भगवान् ने अपने दिव्य स्वरूप को समेट लिया । पिता वसुदेव जी ने भगवान् की आज्ञा से उन्हें नन्दगोप के घर पहुँचा दिया और उग्रसेन की सम्मति से यशोदा की गोद में दे दिया । उस समय संयोगतः देवकी और यशोदा ये दोनों गर्भवती थीं, यशोदा नन्दगोप की पत्नी थी ॥ २०६-२०७ ॥

जिस रात्रि को वृष्णिकुलोद्धारक भगवान् श्रीकृष्ण प्रादुर्भूत हुए थे उसी रात में यशोदा ने भी एक कन्या को जन्म दिया था । महान् यशस्वी वसुदेव जी पुत्र रूप भगवान् को भलीभाँति गोदी में छिपाकर यशोदा को दे आये और उनकी कन्या को अपने घर उठा लाये ॥ २०८-२०९ ॥

नन्दगोप को भगवान् कृष्ण को समर्पित कर वसुदेव ने कहा—'आप मेरी रक्षा करें, तुम्हारा यह पुत्र सबका

उग्रसेनात्मजायाश्च कन्यामानकदुन्दुभेः । निवेदयामास तदा कन्येति शुभलक्षणा॥ २११ ॥
स्वसायां तनयं कंसो जातं नैवावधारयत् । अथ तामपि दुष्टात्मा ह्युत्ससर्ज मुदाऽन्वितः॥ २१२ ॥
हता वै या यदा कन्या जपत्येष वृथामतिः । कन्या सा ववृधे तत्र वृष्णिसद्मनि पूजिता॥ २१३ ॥
पुत्रवत्परिपाल्यन्तो देवा देवान्यथा तदा । तामेव विधिनोत्पन्नामाहुः कन्यां प्रजापतिम्॥ २१४ ॥
एकादशा तु जज्ञे वै रक्षार्थं केशवस्य ह । तां वै सर्वे सुमनसः पूजयिष्यन्ति यादवाः ॥
देवदेवो दिव्यवपुः कृष्णः संरक्षितोऽनया ॥ २१५ ॥

ऋषय ऊचुः

किमर्थं वसुदेवस्य भोजः कंसो नराधिपः । जघान पुत्रान्बालान्वै तन्नो व्याख्यातुमर्हसि॥ २१६ ॥

सूत उवाच

शृणुध्वं वै यथा कंसः पुत्रानानकदुन्दुभेः । जाताञ्जाताञ्छिशून्सर्वान्निष्पिपेष वृथामतिः॥ २१७ ॥
भयाद्यथा महाबाहुर्जातः कृष्णो विवासितः । तथा च गोषु गोविन्दः संवृद्धः पुरुषोत्तमः॥ २१८ ॥
उक्तं हि किल देवक्या वसुदेवस्य धीमतः । सारथ्यं कृतवान्कंसो युवराजस्तदाऽभवत्॥ २१९ ॥

कल्याण करने वाला है एवं यदुवंशियों का उद्धारक होगा, यह देवकी का वह चिरअभिलषित गर्भ है, जो हम लोगों के समस्त क्लेशों को दूर करेगा।' इस प्रकार नन्दगोप के गृह से लौटकर आनकदुन्दुभि वसुदेव जी ने उग्रसेन के पुत्र कंस के हाथों में अर्पित करते हुए कहा कि यही शुभ लक्षण सम्पन्न कन्या उत्पन्न हुई है ॥ २१०-२११ ॥

अपनी बहन देवकी में कन्या की उत्पत्ति सुनकर दुष्टात्मा कंस ने कुछ भी नहीं ध्यान दिया और अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे भी छोड़ दिया। वह मूढ़ यह कहने लगा कि यदि कन्या ही उत्पन्न हुई है तो उसे मरी ही समझना चाहिए। इस प्रकार कंस द्वारा छोड़ दिये जाने पर वह कन्या वृष्णिगृह में सत्कारपूर्वक जीवन बिताते हुए दिनानुदिन बढ़ने लगी ॥ २१०-२१३ ॥

पुत्र की भाँति उसका पालन होने लगा। देवगण अपने में उसकी उत्पत्ति की चर्चा करने लगे। उन्होंने प्रजापति ब्रह्मा से उस कन्या के बारे में विस्तारपूर्वक सब बातें बतायीं और यह कहा कि केशव की रक्षा के लिए यह भगवती एकादशा स्वयं प्रादुर्भूत हुई हैं, उसकी यादवगण प्रसन्न मन से पूजा करेंगे। दिव्यदेहधारी देवदेव भगवान् कृष्ण इसी भगवती एकादशा द्वारा सुरक्षित हैं ॥ २१४-२१५ ॥

ऋषिवृन्द ने कहा—हे सूत जी ! भोजवंशीय राजा कंस ने किस कारण से वसुदेव के छोटे-छोटे पुत्रों का संहार किया, हमलोगों को यह विस्तारपूर्वक बताइये ॥ २१६ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! जिस कारण से मूर्ख कंस आनकदुन्दुभि वसुदेव के उत्पन्न होने वाले समस्त पुत्रों का तुरन्त संहार कर देता था और जिस भय के कारण महाबाहु भगवान् कृष्ण उत्पन्न होते ही दूसरी जगह पहुँचाये गये और गौओं के बीच में जिस प्रकार पुरुषोत्तम गोविन्द का पालन-पोषण हुआ—उस सारी कथा को मैं आप लोगों से कहता हूँ, सुनिये। ऐसा कहा जाता कि जब कंस युवराज था, तब वसुदेव और देवकी का रथ हाँका करता था ॥ २१७-२१९ ॥

ततोऽन्तरिक्षे वागासीद्दिव्या भूतस्य कस्यचित् । कंसो यथा सदा भीतः पुष्कला लोकसाक्षिणी॥ २२० ॥
यामेतां वहसे कंस रथेन परकारणात् । अस्या यः सप्तमो गर्भः स ते मृत्युर्भविष्यति॥ २२१ ॥
तां श्रुत्वा व्यथितो वाणीं तदा कंसो वृथामतिः । निष्क्रम्य खड्गं तां कन्यां हन्तुकामोऽभवत्तदा॥ २२२ ॥
तमुवाच महाबाहुर्वसुदेवः प्रतापवान् । उग्रसेनात्मजं कंसं सौहृदात्प्रणयेन च॥ २२३ ॥
न स्त्रियं क्षत्रियो जातु हन्तुमर्हति कश्चन । उपायः परिदृष्टोऽत्र मया यादवनन्दन॥ २२४ ॥
योऽस्याः संभवते गर्भ सप्तमः पृथिवीपते । तमहं ते प्रयच्छामि तत्र कुर्या यथाक्रमम्॥ २२५ ॥
त्वं त्विदानीं यथेष्टत्वं वर्तेथा भूरिदक्षिण । सर्वानस्यास्तु वै गर्भान्सत्यं नेष्यामि ते वशम्॥ २२६ ॥
एवं मिथ्या नरश्रेष्ठ वागेषा न भविष्यति । एवमुक्तोऽनुनीतः स जग्राह तनयांस्तदा॥ २२७ ॥
वसुदेवश्च तां भार्यामवाप्य मुदितोऽभवत् । कंसश्चास्यावधीत्पुत्रान्पापकर्मा वृथामतिः॥ २२८ ॥

ऋषय ऊचुः

क एष वसुदेवश्च देवकी च यशस्विनी । नन्दगोपस्तु कस्त्वेष यशोदा च महायशाः॥
यो विष्णुं जनयामास या चैनं चाभ्यवर्धयत् ॥ २२९ ॥

एक बार जबकि वह रथ हाँक रहा था आकाश से एक ऐसी दैवी वाणी किसी भूत के मुख से सुनायी पड़ी, जिसके कारण कंस सदा भयभीत रहने लगा। वह दिव्य वाणी कठोर स्वर से सुनायी पड़ी थी, सभी लोगों ने उसे सुना था। वह दैवी वाणी इस प्रकार की थी—'हे कंस ! जिसे प्रेमवश अथवा वसुदेव को प्रसन्न करने के लिए रथ पर चढ़ाकर घुमाते हो, उसी के सातवें गर्भ से तुम्हारी मृत्यु होगी ॥ २१७-२२१ ॥

इस दैवी वाणी को सुनकर कंस को बहुत ही खेद हुआ और उस मूर्ख ने तुरन्त म्यान से तलवार खींचकर देवकी को मारने की इच्छा प्रकट की। प्रतापशाली महाबाहु वसुदेव ने ऐसी स्थिति देख उग्रसेन के पुत्र कंस से परम सौहार्द तथा प्रेमपूर्वक इस प्रकार निवेदन किया—हे यादवनन्दन ! क्षत्रिय कभी किसी स्त्री का संहार नहीं करते, इस कार्य के लिए मैं एक उपाय देख रहा हूँ ॥ २२२-२२४ ॥

हे पृथ्वीपति कंस ! तुम्हारी बहन देवकी के सातवें गर्भ से जो सन्तान उत्पन्न होगा, उसे मैं तुम्हें दे दूंगा, उस समय उसका चाहे जो करना। हे विपुल दान करने वाले कंस। तुम इस समय भी जो चाहो कर सकते हो। इसके सातवें गर्भ की बात क्या मैं इसके समस्त गर्भों को तुम्हें दे दूंगा, इसे सत्य समझो ॥ २२५-२२६ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! मेरी यह बात कदापि मिथ्या न होगी। वसुदेव द्वारा इस प्रकार अनुनय-विनयपूर्वक कहे जाने पर कंस ने देवकी के समस्त पुत्रों को मारने की बात स्वीकर कर ली और देवकी को छोड़ दिया। वसुदेव अपनी पत्नी देवकी को जीवित प्राप्तकर परम प्रसन्न हुए। इसी कारण से पापात्मा मूर्ख कंस देवकी के समस्त पुत्रों का संहार करता था ॥ २२२-२२८ ॥

ऋषिवृन्द ने कहा—हे सूत जी ! ये वसुदेव और नन्दगोप कौन थे? जिन्होंने भगवान् विष्णु को जन्म दिया? यशस्विनी देवकी कौन थीं? और महान् यशस्विनी यशोदा कौन थीं? जिन्होंने भगवान् का पालन-पोषण किया इसे हम लोग सुनना चाहते हैं ॥ २२९ ॥

सूत उवाच

पुरुषाः कश्यपस्याऽऽसन्नादित्यास्तु स्त्रियस्तथा। अथ कामान्महाबाहुर्देवक्याः समवर्धयत्॥ २३० ॥
अचरत्स महीं देवः प्रविष्टो मानुषीं तनुम्। मोहयन्सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया॥ २३१ ॥
नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले स्वयम्। कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्॥ २३२ ॥
आहृता रुक्मिणी कन्या सत्या नग्नजितस्तदा। सात्राजिती सत्यभामा जाम्बवत्यपि रोहिणी॥ २३३ ॥
शैव्या सुदेवी माद्री च सुशीला नाम चापरा। कालिन्दी मित्रविन्दा च लक्ष्मणा जालवासिनी॥ २३४ ॥
एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च षोडश। चतुर्दश तु ये प्रोक्ता गणाश्चाप्सरसां दिवि॥
विचिन्त्य देवैः शक्रेण विशिष्टास्त्विह प्रेषिताः ॥ २३५ ॥
पत्न्यर्थं वासुदेवस्य उत्पन्ना राजवेश्मसु। एताः पत्न्यो महाभागा विष्वक्सेनस्य विश्रुताः॥ २३६ ॥
प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च सुदेष्णः शरभस्तथा। चारुश्च चारुभद्रश्च भद्रचारुस्तथाऽपरः॥ २३७ ॥
चारुविन्ध्यश्च रुक्मिण्यां कन्या चारुमती तथा। सानुर्भानुस्तथाऽक्षश्च रोहितो मन्त्रयस्तथा॥ २३८ ॥
जरान्धकस्ताम्रवक्षा भीमरिश्च जरन्धमः। चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारो गरुडध्वजात्॥ २३९ ॥
भानुर्भौमरिका चैव ताम्रपर्णी जरन्धमा। सत्यभामासुतानेताञ्जाम्बवत्याः प्रजाः शृणु॥ २४० ॥
भद्रश्च भद्रगुप्तश्च भद्रविन्द्रस्तथैव च। सप्तबाहुश्च विख्यातः कन्या भद्रावती तथा॥ २४१ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! ये नन्दादि पुरुष कश्यप के और यशोदा आदि स्त्रियाँ आदिति की अंशभूत कही गई हैं। महाबाहु भगवान् कृष्ण ने देवकी के मनोरथों को पूर्ण किया था। ये देवाधिदेव योगात्मा भगवान् विष्णु अपनी योगमाया से संसार के समस्त जीवों को मोहितकर धर्म के नष्ट हो जाने पर स्वयमेव वृष्णि कुल में प्रादुर्भूत हुए थे। मनुष्य शरीर धारण कर पृथ्वी पर धर्म की व्यवस्था एवं असुरों के विनाश के लिए अवतरित हुए थे ॥ २३०-२३२ ॥

उन्होंने रुक्म की कन्या रुक्मिणी का हरण किया। नग्नजित् की कन्या सत्या, सत्राजित की कन्या सात्राजिती, सत्यभामा, जाम्बवान् की पुत्री जाम्बवती, रोहिणी, सैव्या, सुदेवी, माद्री, सुशीला, कालिन्दी, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा, जालवासिनी आदि सोलह सहस्र देवियाँ उनकी स्त्री थीं। स्वर्ग में परम सुन्दरी अप्सराओं के जो चौदह गण कहे गये हैं, उन्हें देवताओं की सम्मति से इन्द्र ने मर्त्यलोक में भेज दिया था ॥ २३०-२३५ ॥

वासुदेव की पत्नी होने के लिए वे राजाओं के घर में उत्पन्न हुई। विष्वक्सेन की ये महाभाग्यशालिनी पत्नियाँ परम विख्यात थीं ॥ २३६ ॥

रुक्मिणी में प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, शरभ, चारु, चारुभद्र, भद्रचार, चारुविन्ध्य नामक पुत्र तथा चारुमही नामक कन्या उत्पन्न हुई। सानु, भानु, अक्ष, रोहित, मन्त्रय, जरान्धक, ताम्रवक्षा, भीमरि, जरन्धम— ये पुत्र तथा भानु, भौमरिका, ताम्रपर्णी और जरन्थमा नामक चार कन्याएँ गरुड़ध्वज भगवान् के संयोग से सत्यभामा से उत्पन्न हुई। अब जाम्बवती की सन्ततियों का विवरण सुनिये ॥ २३७-२४० ॥

संबोधनी च विख्याता ज्ञेया जाम्बवतीसुताः । सङ्ग्रामजिच्च शतजित्तथैव च सहस्रजित्॥
एते पुत्राः सुदेव्याश्च विष्वक्सेनस्य कीर्तिताः ॥ २४२ ॥
वृको वृकाश्वो वृकजिद् वृजिनी च सुराङ्गना । मित्रबाहुः सुनीथश्च नाग्नजित्याः प्रजास्त्विह॥ २४३ ॥
एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोधत । प्रयुतं तु समाख्यातं वासुदेवस्य ये सुताः॥ २४४ ॥
अयुतानि तथाऽष्टौ च शूरा रणविशारदाः । जनार्दनस्य वंशो वः कीर्तितोऽयं यथातथम्॥ २४५ ॥
बृहता नर्तकोन्त्रेयी सुनये सङ्गता तथा । कन्या स बृहदुच्छस्य शौनेयस्य महात्मनः॥ २४६ ॥
तस्याः पुत्रास्तु विख्यातास्त्रयः समितिशोभनाः। अङ्गदः कुमुदः श्वेतः कन्या श्वेता तथैव च॥ २४७ ॥
अवगाहश्च चित्रश्च शूरश्चित्रवरश्च यः । चित्रसेनः सुतश्चास्य कन्या चित्रवती तथा॥ २४८ ॥
तुम्बश्च तुम्बवाणश्च जनस्तम्बश्च तावुभौ । उपाङ्गस्य स्मृतौ द्वौ तु वज्रारः क्षिप्र एव च॥ २४९ ॥
भूरीन्द्रसेनो भूरिश्च गवेषस्य सुतावुभौ । युधिष्ठिरस्य कन्या तु सुतनुर्नाम विश्रुता॥ २५० ॥
तस्यामश्वसुतो जज्ञे वज्रो नाम महायशाः । वज्रस्य प्रतिबाहुस्तु सुचारुस्तस्य चाऽऽत्मजः॥ २५१ ॥
काश्मा सुपार्श्वं तनयं जज्ञे साम्बा तरस्विनम् । तिस्रः कोट्यस्तु पुत्राणां यादवानां महात्मनाम्॥ २५२ ॥
षष्टिं शतसहस्राणि वीर्यवन्तो महाबलाः । देवांशाः सर्व एवेह उत्पन्नास्ते महौजसः॥ २५३ ॥

भद्र, भद्रगुप्त, भद्रबिन्दु, सप्तबाहु ये पुत्र तथा भद्रावती नामक एक कन्या जो संबोधिनी नाम से विख्यात थी, इन्हें जाम्बवती की सन्ततियाँ जानना चाहिए । संग्रामजित्, शतजित् और सहस्रजित्—ये विष्वक्सेन के संयोग से उत्पन्न पुत्र सुदेवी के कहे जाते हैं ॥ २४१-२४२ ॥

वृक, वृकश्व, वृकजित्, वृजिनी, सुराङ्गना, मित्रबाहु और सुनीथ—ये नग्नजित् की पुत्री सत्या की सन्तानें हैं । इसी प्रकार भगवान् वासुदेव के पुत्रों की संख्या सहस्रों तक समझना चाहिए । कुछ लोग उनकी संख्या लाखों तक कहते हैं । इनमें दस सहस्र और आठ महान् शूरवीर तथा रणविशारद थे । भगवान् जनार्दन के वंश का विवरण जैसा मुझे ज्ञात था, आप लोगों से कह चुका ॥ २४३-२४५ ॥

महान् पराक्रमी शिनिवंशीय राजा बृहदुक्थ की कन्या बृहती, जिसका नर्तकोन्त्रेयी दूसरा नाम है, सुनय के साथ विवाह सूत्र में सम्बद्ध हुई । उसके तीन पुत्र युद्धस्थल में परम प्रख्यात हुए, उनके नाम थे, अंगद, कुमुद और श्वेत । श्वेता नामकी एक कन्या भी थी । अवगाह, चित्र और शूर चित्रवर नामक जो वृष्णि वंशी थे, उनमें चित्रवर के पुत्र चित्रसेन हुए और उनकी कन्या चित्रवती हुई । तुम्ब और तुम्बवान् ये दो जनस्तम्ब के पुत्र थे । उपाङ्ग के वज्रार और क्षिप्र नामक दो पुत्र कहे जाते हैं । गवेष के भूरीन्द्रसेन और भूरि नामक दो पुत्र हुए । युधिष्ठिर की परम यशस्विनी सुतनु नामक जो कन्या थी, उसमें महान् यशस्वी अश्वसुतवज्र की उत्पत्ति हुई । वज्र के पुत्र प्रतिबाहु हुए, प्रतिबाहु के पुत्र सुचारु हुए ॥ २४६-२५१ ॥

काश्मा ने सुपार्श्व नामक पुत्र को उत्पन्न किया और साम्बा ने तरस्वी नामक पुत्र को उत्पन्न किया । इस प्रकार महाबलशाली यदुवंशियों के कुल में तीन करोड़ सन्तानें उत्पन्न हुईं । जिनमें साठ लाख परम बलशाली एवं पराक्रमी थे । वे सब-के-सब परम तेजस्वी यदुवंशी देवताओं के अंशभूत होकर इस मर्त्यलोक में उत्पन्न हुए थे ।

दैवासुरे हता ये च असुरा वै महातपाः। इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधन्ते सर्वमानवान्॥
तेषामुत्सादनार्थं तु उत्पन्ना यादवे कुले ॥ २५४ ॥
कुलानि दश चैकं च यादवानां महात्मनाम्। सर्वमेककुलं यद्वद्वर्तते वैष्णवे कुले॥ २५५ ॥
विष्णुस्तेषां प्रमाणे च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः। निदेशस्थायिभिस्तस्य बद्ध्यन्ते सर्वमानुषाः॥ २५६ ॥
इति प्रसूतिर्वृष्णीनां समासव्यासयोगतः। कीर्तिता कीर्तनाच्चैव कीर्तिसिद्धिमभीप्सिताम्॥ २५७ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे विष्णुवंशानुकीर्तनं
नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

* * *

पूर्व देवासुर संग्राम में जो असुरगण मारे गये थे, वे ही महान् तपस्या करके पुनः मनुष्य योनि में उत्पन्न हो-होकर सबको पीड़ित कर रहे थे, उन्हीं सबके विनाश के लिए ये लोग यादव कुल में उत्पन्न हुए ॥ २५२-२५४ ॥

इन परम बलवान् यदुवंशियों के ग्यारह कुल कहे जाते हैं, किन्तु जिस कुल में भगवान् विष्णु प्रादुर्भूत हुए, उसी एक वंश का अनुवर्तन शेष सभी वंशोंवाले करते रहे। उन सभी वंशों में उत्पन्न होनेवाले यदुवंशियों के लिए एकमात्र प्रमाणस्वरूप एवं सर्वेसर्वा भगवान् विष्णु (कृष्ण) ही थे। उनकी आज्ञा में निरत रहकर इन सब यदुवंशियों ने उन समस्त पापात्मा मनुष्यों का, जो मानव समाज को उत्पीड़ित कर रहे थे, संहार किया ॥ २५५-२५६ ॥

वृष्णिवंशियों की सन्तानों का यह विवरण किसी स्थान में संक्षेप में और कहीं-कहीं विस्तार मैं आप लोगों से कह चुका। इसके कीर्तन से सिद्धि की प्राप्ति होती है ॥ २५७ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में विष्णुवंशानुकीर्त्तन नामक चौंतीसवें अध्याय (छानबेवें अध्याय) की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३४ ॥

* * *

अथ पञ्चत्रिंशोध्यायः
विष्णुमाहात्म्यकीर्तनम्

सूत उवाच

मनुष्यप्रकृतीन्देवान्कीर्त्यमानान्निबोधत । संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नः साम्ब एव च॥ १ ॥
अनिरुद्धश्च पञ्चैते वंशवीराः प्रकीर्तिताः । सप्तर्षयः कुबेरश्च यक्षो मणिवरस्तथा॥ २ ॥
शालकी बदरश्चैव विद्वान्धन्वन्तरिस्तथा । नन्दिनश्च महादेवः शालङ्कायन उच्यते॥
आदिदेवस्तदा जिष्णुरेभिश्च सह दैवतैः ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः

विष्णुः किमर्थं संभूतः स्मृताः संभूतयः कति । भविष्याः कति वाऽन्ये तु प्रादुर्भावा महात्मनः॥ ४ ॥
ब्रह्मक्षेत्रे युगान्तेषु किमर्थमिह जायते । पुनः पुनर्मनुष्येषु तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्॥ ५ ॥
विस्तरेणैव सर्वाणि कर्माणि रिपुघातिनः । श्रोतुमिच्छामहे सम्यग्देहैः कृष्णस्य धीमतः॥ ६ ॥
कर्मणामानुपूर्व्यं च प्राहुर्भावाश्च ये प्रभोः । या चास्य प्रकृतिः सूत ताश्चास्मान्वक्तुमर्हसि॥ ७ ॥

पैंतीसवाँ अध्याय
(सत्तानब्बेवाँ अध्याय)
विष्णुमाहात्म्य का वर्णन

श्रीसूतजी ने कहा—अब मनुष्य योनि में जन्म लेने वाले देवताओं का वर्णन किया जाता है, सुनिये। सङ्कर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, साम्ब एवं अनिरुद्ध—इन पाँचों को यदुवंश के प्रमुख वीर कहा गया है। सातों ऋषि, कुबेर, यक्ष, मणिवर, शालकी, बदर, परमविद्वान् धन्वन्तरि, नन्दिन जैसे महादेव के अनुचर, शालङ्कायन आदि देवताओं के साथ आदिदेव जिष्णु ये सब देवात्मा हैं॥ १-३ ॥

ऋषियों ने कहा—हे सूत जी ! भगवान् विष्णु किसलिए पृथ्वी पर प्रादुर्भूत होते हैं? उनके कितने अवतार कहे जाते हैं? भविष्य में अन्य कितने अवतार होंगे? युगान्त के अवसर पर ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जाति में वे किस लिए उत्पन्न होते हैं? वे इस प्रकार बारम्बार मानव योनि में क्यों जन्म धारण करते हैं? हम लोग यह सब जानना चाहते हैं, कृपया कहिये। उन परम बुद्धिमान् शत्रुसंहारकारी भगवान् के शरीर से जो-जो कर्म सम्पन्न होते हैं उन सबको हम भलीभाँति सुनना चाहते हैं। उनके ऐसे कार्यों को क्रमपूर्वक हमें बताइये, उसी तरह उनके अवतारों के विषय में भी क्रमानुसार वर्णन कीजिये, उन सर्वव्यापी भगवान् की प्रवृत्ति के बारे में भी हमें जिज्ञासा है, कृपया

कथं स भगवान्विष्णुः सुरेष्वरिनिषूदनः । वसुदेवकुले धीमान्वासुदेवत्वमागतः ॥ ८ ॥
अमरैः सूत किं पुण्यं पुण्यकृद्भिरलङ्कृतम् । देवलोकं समुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहाऽऽगतः ॥ ९ ॥
देवमानुषयोर्नेता भूर्भुवः प्रसवो हरिः । किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुषे समवेशयत् ॥ १० ॥
यश्चक्रं वर्तयत्येको मनुष्याणां मनोमयम् । मनुष्ये स कथं बुद्धिं चक्रे चक्रभृतां वरः ॥ ११ ॥
गोपायनं यः कुरुते जगतां सार्वलौकिकम् । स कथं गां गतो विष्णुर्गोपमन्वकरोत्प्रभुः ॥ १२ ॥
महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार ह । श्रीगर्भः स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृतः ॥ १३ ॥
येन लोकान्क्रमैर्जित्वा त्रिभिस्त्रींस्त्रिदशेप्सया । स्थापिता जगतो मास्त्रिवर्गप्रवरास्त्रयः ॥ १४ ॥
योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः । लोकमेकार्णवं चक्रे दृश्यादृश्येन वर्त्मना ॥ १५ ॥
यः पुराणे पुराणात्मा वाराहं वपुरास्थितः । ददौ जित्वा वसुमतीं सुराणां सुरसत्तमः ॥ १६ ॥
येन सैंहं वपुः कृत्वा द्विधा कृत्वा च यत्पुनः । पूर्वदैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ १७ ॥
यः पुरा ह्यनलो भूत्वा और्वः संवर्तको विभुः । पातालस्थोऽर्णवगतः पपौ तोयमयं हविः ॥ १८ ॥
सहस्रचरणं देवं सहस्रांशुं सहस्रशः । सहस्रशिरसं देवं यमाहुर्वै युगे युगे ॥ १९ ॥

हमसे बताइये । महामहिमामय परम बुद्धिमान् शत्रुसंहारकारी वे भगवान् विष्णु किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए वसुदेव के कुल में उत्पन्न होकर वासुदेव (वसुदेव के पुत्र) की पदवी प्राप्त करते हैं ॥ ४-८ ॥

हे सूतजी ! इस बात को जानने की भी हमें उत्कण्ठा हो रही है कि सर्वदा पुण्यकर्मों में निरत रहने वाले देवताओं ने कौन सा पुण्य कर्म किया जिससे देवलोक को छोड़कर इस मर्त्यलोक में उन्हें आना पड़ा ॥ ९ ॥

देवताओं और मनुष्यों को उचित मार्ग पर लगानेवाले, भूर्भुवः आदि लोकों के उत्पत्तिकर्त्ता भगवान् हरि किसलिए दिव्यगुणसम्पन्न अपनी आत्मा को मानवयोनि में समाविष्ट करते हैं ॥ १० ॥

चक्र धारण करनेवालों में श्रेष्ठ जो भगवान् अकेले ही संसार में मानवमात्र के मनरूपी चक्र को सर्वदा परिचालित करते रहते हैं, उन्हें मानव योनि में उत्पन्न होने की इच्छा क्यों हुई? सर्वत्र व्याप्त रहने वाले जो भगवान् विष्णु इस समस्त चराचर जगत् की सब प्रकार से सर्वत्र रक्षा करने वाले हैं, वे किसलिए इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं? और किस लिए गौओं का पालन करते हैं? जो भूतात्मा भगवान् संसार के समस्त महाभूतों (पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि एवं वायु) को धारण करने वाले तथा बनाने वाले हैं, जो लक्ष्मी द्वारा धारण किये जाने वाले हैं, वे एक मर्त्यलोक निवासिनी सामान्य गृहिणी के गर्भ में किसलिए आते हैं? । जो देवताओं की इच्छा से अपने तीन पगों में तीन लोकों को जीतकर जगत् में उत्तम तीनों वर्गों धर्म, अर्थ एवं काम अथवा सत्त्व, रज, तमो गुणों की मर्यादा स्थिर करते हैं, जो अन्त काल में दृश्य और अदृश्य मार्गों से अपने जलमय शरीर द्वारा समस्त जगत् का पान कर लेने के उपरान्त समस्त लोकों को एक महासमुद्र के रूप में बदल देते हैं ॥ ११-१५ ॥

जो देवसत्तम भगवान् पुराणों में पुराणात्मा कहे गए हैं, जो सूकर का शरीर धारणकर इस पृथ्वी का उद्धार कर उसे देवताओं को समर्पित करते हैं, जो प्रभु सिंह का शरीर धारणकर और शरीर के दो भाग कर महाबलशाली दैत्यराज हिरण्यकशिपु का संहार करते हैं, जिन्होंने प्राचीनकाल में और्व ऋषि के क्रोध से समुत्पन्न संवर्तक नामक अग्नि का स्वरूप धारणकर पाताल में स्थित होकर जलमय हवि का पान किया, जिन भगवान् का वर्णन प्रत्येक

नाभ्यारण्याः समुद्भूतं यस्य पैतामहं गृहम् । एकार्णवगते लोके तत्पङ्कजमपङ्कजम्॥ २० ॥
येन ते निहता दैत्याः सङ्ग्रामे तारकामये । सर्वदेवमयं कृत्वा सर्वायुधधरं वपुः॥ २१ ॥
गरुडस्थेन चोत्सिक्तः कालनेमिर्निपातितः । उत्तरांशे समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधेः ॥
यः शेते शाश्वतं योगमास्थाय तिमिरं महत् ॥ २२ ॥
पुरारणी गर्भमधत्त दिव्यं तपः प्रकर्षाददितिः पुरा यम् ॥
शक्रं च यो दैत्यगणावरुद्धं गर्भावमानेन भृशं चकार ॥ २३ ॥
यदाऽनिलो लोकपदानि हृत्वा चकार दैत्यान्सलिलेशयांस्तान् ॥
कृत्वाऽऽदिदेवस्त्रिदिवस्य देवांश्चक्रे सुरेशं पुरुहूतमेव ॥ २४ ॥
गार्हपत्येन विधिना अन्वाहार्येण कर्मणा । अग्निमाहवनीयं च वेदिञ्चैव कुशस्त्रुवम्॥ २५ ॥
प्रोक्षणीयं स्रुवं चैवं अवभृथं तथैव च । अथ त्रीनिह यश्चक्रे हव्यभाग प्रदान्मखे॥ २६ ॥
हव्यादांश्च सुरांश्चक्रे काव्यादांश्च पितॄनपि । भोगार्थं यज्ञविधिना यो यज्ञो यज्ञकर्मणि॥ २७ ॥
यूपान्समित्स्त्रुवं सोमं पवित्रं परिधीनपि । यज्ञियानि च द्रव्याणि यज्ञियांश्च तथाऽनलान्॥ २८ ॥
सदस्यान्यजमानांश्च अश्वमेधान्क्रतूत्तमान् । विबभ्राज पुरा यश्च पारमेष्ठ्येन कर्मणा॥ २९ ॥

युगों में सहस्र चरणोंवाला, सहस्र नेत्रोंवाला, सहस्र सिरोंवाला एवं दिव्यगुणसम्पन्न कहा गया है ॥ १६-१९ ॥

सृष्टि के आदिमकाल में, जबकि समस्त लोक एक महासमुद्र के रूप में परिणत हो गये थे । परमात्मा की नाभि रूप अरणी में पितामह ब्रह्मा जी का निवास-स्थानभूत पंकज (कमल) उद्भूत हुआ, जो वास्तव में पंक से जायमान नहीं था । तारकामय संग्राम में जिन भगवान् ने सर्वदेवमय शरीर धारणकर समस्त शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर उन अत्याचारी दानवों का संहार किया, जो प्राणिमात्र को संकट में डाले हुए थे, जिन्होंने गरुड़ पर सवार होकर परम गर्वीले कालनेमि का संहार किया, जो शाश्वत योग का अवलम्बनकर अमृत के समुद्र क्षीरसागर के उत्तरी छोर पर शयन करते हैं, जो महान् अज्ञानान्धकार के विनाशक हैं ॥ २०-२२ ॥

प्राचीनकाल में जिन दिव्यगुणसम्पन्न भगवान् को अपनी कठोर तपस्या के बल पर देवताओं की माता अदिति ने गर्भ में धारण किया, दैत्यों के समूहों के चारों ओर घिरे हुए अत्यन्त परेशान इन्द्र की जिन्होंने बड़ी रक्षा की । जिस समय पवन ने अत्यन्त उग्र रूप धारणकर समस्त लोकों को अपने वश में कर उन उद्धत दानवों को जलशायी कर दिया था, उस समय जो आदिदेव भगवान् विष्णु स्वर्ग के आधिपत्य पर पुरुहूत इन्द्र को प्रतिष्ठित करते हैं । जो आदिदेव गार्हपत्य विधि से, अन्वाहार्य कर्म से आहवनीय अग्नि को, वेदी को, कुशाओं को, स्रुव को, प्रोक्षणीपात्र को, स्रुवा को, अवभृथ स्नान हेतु समस्त वस्तुओं का निर्माण करते हैं, जो यज्ञादि कार्यों में हव्य भाग देने के लिए तीन अधिकारियों की व्यवस्था करते हैं, जिन्होंने देवताओं को यज्ञ का भोक्ता एवं पितरों को श्राद्ध का भोक्ता बनाया, जो स्वयं यज्ञादि शुभकार्यों में विधि के अनुसार भोग के लिए यज्ञ रूप में प्रतिष्ठित होते हैं, जिन्होंने पूर्वकाल में अपने परम स्वरूप में अवस्थित रहकर भी यज्ञस्तम्भों, समिधा, स्रुव, सोमरस, पवित्र, परिधि, यज्ञोपयोगी अन्यान्य सामग्रियों, यज्ञाग्नि, यज्ञ कार्य के सदस्य, यजमान, अश्वमेधादि प्रमुख उत्तम यज्ञों को सुशोभित किया ॥ २३-२९ ॥

युगानुरूपं यः कृत्वा त्रींल्लोकान्हि यथाक्रमम् । क्षणा निमेषाः काष्ठाश्च कलास्त्रैकालमेव च ॥ ३० ॥
मूहूर्तास्तिथयो मासा दिनसंवत्सरास्तथा । ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधं तथा ॥ ३१ ॥
आयुः क्षेत्राण्युपचयं लक्षणं रूपसौष्ठवम् । मेधा वित्तं च शौर्यं च शास्त्रस्यैव च पारणम् ॥ ३२ ॥
यो वर्णास्त्रयो लोकास्त्रैविद्यं पावकास्त्रयः । त्रैकाल्यं त्रीणि कर्माणि तिस्रो मायास्त्रयो गुणाः ॥ ३३ ॥
सृष्टा लोकाः सुराश्चैव येनाऽऽत्यन्त्येन कर्मणा । सर्वभूतगणाः सृष्टाः सर्वभूतगणात्मना ॥ ३४ ॥
नृणामिन्द्रियपूर्वेण योगेन रमते च यः । गतागतानां यो नेता सर्वत्र विविधेश्वरः ॥ ३५ ॥
यो गतिर्धर्मयुक्तानामगतिः पापकर्मणाम् । चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ॥ ३६ ॥
चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चातुराश्रमसंश्रयः । दिगन्तरं नभो भूमिरापो वायुर्विभावसुः ॥ ३७ ॥
चन्द्रसूर्यद्वयं ज्योतिर्युगेशः क्षणदाचरः । यः परः श्रूयते देवो यः परं श्रूयते तपः ॥ ३८ ॥
यः परं तपसः प्राहुर्यः परंपरमात्मवान् । आदित्यादिस्तु यो देवो यश्च दैत्यान्तको विभुः ॥ ३९ ॥
युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तकः । सेतुर्यो लोकसेतूनां मेध्यो यो मेध्यकर्मणाम् ॥ ४० ॥
वेद्यो यो वेदविदुषां प्रभुर्यः प्रभवात्मनाम् । सोमभूतस्तु भूतानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम् ॥ ४१ ॥
मनुष्याणां मनोभूतस्तपस्वी च तपस्विनाम् । विनयो नयतृप्तानां तेजस्तेजस्विनामपि ॥ ४२ ॥

जिसने युग के अनुरूप तीनों लोकों की क्रमानुसार रचनाकर क्षण, निमेष, काष्ठा, कला, भूत, भविष्यत्, वर्तमान—ये तीन काल, मुहूर्त, तिथि, मास, संवत्सर, ऋतु, काल, योग, मनुष्यों में प्रचलित तीन प्रकार के प्रमाण, आयु, क्षेत्र, वृद्धि, लक्षण, रूप, सौन्दर्य, बुद्धि, वित्त, शूरता, शास्त्रों के पाठ, तीन वर्ण, तीनों लोक, तीनों विद्याएँ, तीनों अग्नि, तीनों काल, तीनों कर्म, तीनों माया, तीनों गुण, समस्त लोक एवं समस्त सुरगणों को अपने अनन्त कर्मों द्वारा रचना की है, जिसने सर्वजीवसमूहों में व्याप्त रहकर सब जीवों की सृष्टि की है, जो मानव की इन्द्रियों में योग द्वारा रमण करते हैं, जो गत-आगत-सबके नेता हैं, जो सर्वत्र विराजमान एवं जगत् में विस्तृत विविध विधानों के अधीश्वर हैं, जो धर्मात्मा लोगों की एकमात्र गति हैं, जो पापात्माओं के लिए दुर्गतिस्वरूप हैं, जो चारों वर्णों के उत्पत्तिकर्ता एवं चारों वर्णों के रक्षक हैं; जो चारों प्रकार की विद्याओं के जाननेवाले, चारों आश्रमों के आश्रयभूत, एवं दिक् दिगन्तर, आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, अन्यान्य ज्योतिष्पिण्ड, युगपति, निशाचर इत्यादि सबके स्वरूप हैं, जो देव सबसे श्रेष्ठ एवं परम तप:स्वरूप सुने जाते हैं, जो तपस्या से भी श्रेष्ठ सुने जाते हैं, जो परम परमात्मविशिष्ट कहे जाते हैं, जो देव आदित्यों में आदि हैं, और जो महामहिमामय दैत्यों का विनाश करने वाले हैं ॥ ३०-३९ ॥

जो प्रभु युगान्त के अवसरों पर अन्तक स्वरूप हो जाते हैं, जो लोकों के विनाश करनेवाले यमराज के भी अन्तक हैं, जो लोकसेतु समूह के भी सेतुस्वरूप हैं, जो समस्त पवित्र कर्म समूहों से भी अधिक पवित्र हैं, वेद के जाननेवालों के लिए जो एकमात्र ज्ञातव्य हैं, परम ऐश्वर्यशालियों के भी जो प्रभु हैं, भूतगणों के मध्य में जो सोमस्वरूप हैं, अग्नि के समान तेजस्वियों में जो अग्निस्वरूप हैं, मनुष्यों के जो मनस्वरूप हैं, तपस्या में निरत रहनेवाले तपस्वियों के तप:स्वरूप हैं, नीतिनिपुण प्राणियों के जो विनयस्वरूप हैं, तेजस्वियों के तेज: स्वरूप हैं, विग्रह (शरीर) धारण करने वालों के जो विग्रहस्वरूप हैं, गतिमान् प्राणियों के जो गतिरूप हैं । वायु का उत्पत्ति

विग्रहो विग्रहाणां यो गतिर्गतिमतामपि । आकाशप्रभवो वायुर्वायुप्राणा हुताशनः ॥ ४३ ॥
दिवा हुताशनप्राणाः प्राणोग्नेर्मधुसूदनः । रसोऽभवच्छोणितं वै शोणितान्मांसमुच्यते ॥ ४४ ॥
मांसात्तु मेदसो जन्म मेदसोऽस्थि निरूप्यते । अस्थ्ना मज्जा समभवन्माज्जातः शुक्रसंभवः ॥ ४५ ॥
शुक्राद् गर्भः समभवद्रसमूलेन कर्मणा । तथापि प्रथमं चाऽऽपस्ताः सौम्यराशिरुच्यते ॥ ४६ ॥
गर्भोष्यसंभवो ज्ञेयो द्वितीयो राशिरुच्यते । शुक्रं सोमात्मकं विद्यादार्तवं पावकात्मकम् ॥ ४७ ॥
भावौ रसानुगावेतौ वीर्ये च शशिपावकौ । कफवर्गेऽभवच्छुक्रं पित्तवर्गे च शोणितम् ॥ ४८ ॥
कफस्य हृदयं स्थानं नाभ्यां पित्तं प्रतिष्ठितम् । देहस्य मध्ये हृदयं स्थानं तु मनसः स्मृतम् ॥ ४९ ॥
नाभीकोष्ठान्तरं यत्तु तत्र देवो हुताशनः । मनः प्रजापतिर्ज्ञेयं कफः सोमो विभाव्यते ॥ ५० ॥
पित्तमग्निः स्मृतावेतावग्नीषोमात्मकं जगत् । एवं प्रवर्तितो गर्भो वर्ततेऽम्बुदसंनिभः ॥ ५१ ॥
वायुः प्रवेशनं चक्रे सङ्गतः परमात्मना । स पञ्चधा शरीरस्थो विद्यते वर्धयेत्पुनः ॥ ५२ ॥
प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यान एव च । प्राणोऽस्य परमात्मानं वर्धयन्परिवर्तति ॥ ५३ ॥
अपानः पश्चिमं कायमुदानोर्ध्वशरीरगः । व्यानो व्यानस्यते येन समानः सर्वसंधिषु ॥ ५४ ॥
भूतावाप्तिस्ततस्तस्य जायतेन्द्रियगोचरा । पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥ ५५ ॥

स्थान आकाश है, अग्नि का प्राणस्वरूप वायु है, देवगणों का प्राणस्वरूप अग्नि है, और अग्नि के प्राणस्वरूप मधुसूदन भगवान् तिष्णु हैं अर्थात् जगत् के सबके प्राणस्वरूप भगवान् मधुसूदन हैं । रस से रक्त की उत्पत्ति होती है, रक्त से मांस की उत्पत्ति कही जाती है, मांस से मेदा की उत्पत्ति होती है, मेदा से हड्डियों का निर्माण होता है, हड्डियों से मज्जा बनती है और मज्जा से वीर्य बनता है ॥ ४०-४५ ॥

शुक्र से काममूलक कर्म द्वारा गर्भ की उत्पत्ति होती है । इस गर्भ क्रिया में रस अथवा जल को सौम्यराशि तथा गर्भगत उष्णता से उत्पन्न होनेवाले ऋतुशोणित को द्वितीय राशि जानना चाहिए । वीर्य को सोमात्मक और आर्तव को पावकात्मक जानना चाहिए । ये दोनों भाव रस के अनुगत होते हैं, शुक्र व शोणितात्मक आर्तव को चन्द्रमा और सूर्य कहा जाता है । कफवर्ग में शुक्र और पित्तवर्ग में शोणित की स्थिति रहती है । कफ का स्थान हृदय है, पित्त नाभि में स्थित रहता है । शरीर के मध्य भाग में अवस्थित हृदय मन का स्थान कहा जाता है । नाभिकोष्ठ के भीतरी प्रान्त में हुताशन देव का निवास है । मन को प्रजापति जानना चाहिए, कफ को चन्द्रमा और पित्त को अग्नि कहा जाता है । अग्नि और चन्द्रमा से समस्त चराचर जगत् व्याप्त है । इस प्रकार से मेघ के आकार में प्रवर्तित गर्भ स्थित रहता है ॥ ४६-५१ ॥

वायु इस गर्भ में प्रविष्ट होकर परमात्मसत्ता से संगत होती है, और पाँच भागों में विभक्त होकर शरीर में स्थित रहते हुए गर्भ की वृद्धि करती है । प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान—ये पाँच वायु हैं । इनमें से प्राणवायु परमात्मसत्ता की वृद्धि करते हुए परिवर्तित होता है । अपान वायु शरीर के निम्नभाग में और उदान वायु शरीर के ऊर्ध्व भाग में विद्यमाना रहती है । व्यान वायु-सर्वशरीर व्यापी एवं समान-शरीर की समस्त सन्धियों में समान भाव से गतिशील रहनेवाली है । इस प्रकार वृद्धि को प्राप्त हुए गर्भ को पंच महाभूतों की प्राप्ति होती है, जो इन्द्रियगोचर होता है । पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और ज्योति (अग्नि) ये पाँच महाभूत हैं ॥ ५२-५५ ॥

सर्वेन्द्रिया निविष्टास्तं स्वं स्वं योगं प्रचक्रिरे । पार्थिवं देहमाहुस्तं प्राणात्मानं च मारुतम्॥ ५६ ॥
छिद्राण्याकाशयोनीनि जलाश्रावं प्रवर्तते । तेजश्चक्षुष्विता ज्योत्स्ना तेषां यन्नामतः स्मृतम्॥
संग्रामा विषयाश्चैव यस्य वीर्यात्प्रवर्तिताः ॥ ५७ ॥
इत्येतान्पुरुषः सर्वान्सृजॅल्लोकान्सनातनः । नैधनेऽस्मिन्कथं लोके नरत्वं विष्णुरागतः ॥ ५८ ॥
एष नः संशयो धीमन्नेष वै विस्मयो महान् । कथं गतिर्गतिमतामापन्नो मानुषीं तनुम्॥ ५९ ॥
श्रोतुमिच्छामहे विष्णोः कर्माणि च यथाक्रमम् । आश्चर्याणि परं विष्णुर्वेददेवैश्च कथ्यते॥ ६० ॥
विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्यं कथयस्व महामते । एतदाश्चर्यमाख्यानं कथ्यतां वै सुखावहम्॥ ६१ ॥
प्रख्यातबलवीर्यस्य प्रादुर्भावा महात्मनः । कर्मणाऽऽश्चर्यभूतस्य विष्णोः सत्त्वमिहोच्यताम्॥ ६२ ॥

सूत उवाच

अहं वः कीर्तयिष्यामि प्रादुर्भावं महात्मनः । यथा स भगवाञ्जातो मानुषेषु महातपाः ॥ ६३ ॥
सप्तसप्ततपः प्रोक्ता भृगुशापेन मानुषे । जायते च युगान्तेषु देवकार्यार्थसिद्धये॥ ६४ ॥
तस्य दिव्यतनुं विष्णोर्गदता मे निबोधत । युगधर्मे परावृत्ते काले च शिथिले प्रभुः ॥ ६५ ॥
कर्तुं धर्मव्यवस्थानं जायते मानुषेष्विह । भृगोः शापनिमित्तेन देवासुरकृतेन च॥ ६६ ॥

गर्भ की उस अवस्था में इन्द्रियाँ उसमें निविष्ट होती हैं और अपनी-अपनी शक्तियाँ प्राप्त करती हैं। उस इन्द्रियग्राम (समूह) समन्वित प्राणात्मक पार्थिव शरीर की उत्पत्ति इस प्रकार पण्डित लोग बताते हैं। प्राण को वायु कहते हैं। शरीरस्थ छिद्र समूह आकाश से उत्पन्न होते हैं, उनसे जल का स्राव होता है। ज्योत्स्ना आँख की तेजस्विनी ज्योति है, उन इन्द्रिय समूहों के जो नाम स्मरण किये जाते हैं। जिस परम शक्ति के प्रभाव से उन इन्द्रियों के संग्रामादि कठोर विषय प्रवर्तित होते हैं ॥ ५६-५७ ॥

इन समस्त लोकों की सृष्टि करता हुआ जो सनातन पुरुष प्रतिष्ठित है वह इस मर्त्यलोक में किस लिए मानव शरीर धारण करता है? परम बुद्धिमान् सूत जी इस बात का हमें बड़ा ही सन्देह है और महान विस्मय तो यह है कि जो स्वयमेव सद्गति प्राप्त करनेवालों की गति है वह मनुष्य शरीर क्यों धारण करता है? भगवान् विष्णु के इन आश्चर्य में डालनेवाले कर्मों के विषय में हम लोग क्रमानुसार सुनना चाहते हैं, वेद एवं देवगण उन भगवान् विष्णु को परम आश्चर्यमय बताते हैं। हे महामते! भगवान् विष्णु की उस आश्चर्यमयी सम्भूति को आप बताइये उनका यह आख्यान आश्चर्यों से भरा हुआ एवं कहनेवालों को परम सुख देनेवाला है। उनके बल एवं पराक्रम की विशेष ख्याति है। वे परम ऐश्वर्यशाली एवं महान् हैं। उनके कर्म आश्चर्य से भरे हैं, उनके पराक्रम के सम्बन्ध में भी हम लोगों को बताइये ॥ ५८-६२ ॥

सूतजी ने कहा—ऋषिवृन्द मैं उन महात्मा भगवान् विष्णु के प्रादुर्भाव का वर्णन अर्थात् जिस प्रकार के परम तपोनिष्ठ भगवान् मानव योनि में अवतीर्ण हुए उसे आप लोगों से कह रहा हूँ। भृगु के शापवश भगवान् के सप्त सप्तति (७७) अवतार कहे जाते हैं। युगान्त के अवसर पर देवताओं के कार्यों को पूर्ण करने के लिए ये तत्पर होते हैं। भगवान् को उस दिव्य देह का मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। जब युगधर्म का ह्रास हो जाता है और उसके प्रभाव शिथिल हो जाते हैं, उस समय वे महामहिमामय भगवान् भृगु के शापवश देवासुरों के संघर्ष की शान्ति के लिए एवं धर्म की व्यवस्था के लिए इस मर्त्यलोक में उत्पन्न होते हैं ॥ ६३-६६ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं देवासुरकृते अध्याहारमवाप्नुयात् । एतद्वेदितुमिच्छामो वृत्तं दैवासुरं कथम्॥ ६७ ॥

सूत उवाच

देवासुरं यथा वृत्तं ब्रुवतस्तन्निबोधत । हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्त्रैलोक्यं प्राक्प्रशासति॥ ६८ ॥
बलिनाधिष्ठितं राष्ट्रं पुनर्लोकत्रये क्रमात् । सख्यमासीत्परं तेषां देवानामसुरैः सह॥ ६९ ॥
युगं वै दशसंकीर्णमासीदव्याहतं जगत् । निदेशस्थायिनश्चैव तयोर्देवासुराभवन्॥ ७० ॥
बलवान्वै विवादोऽयं संप्रवृत्तः सुदारुणः । देवासुराणां च तदा घोरक्षयकरो महान्॥ ७१ ॥
तेषां दायनिमित्तं वै संग्रामा बहवोऽभवन् । वराहेऽस्मिन्दश द्वौ च षण्डामार्कोत्तराः स्मृताः॥ ७२ ॥
नामतस्तु समासेन श्रृणुध्वं तान्विवक्षतः । प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयश्चापि वामनः॥ ७३ ॥
तृतीयः स तु वाराहश्चतुर्थोऽमृतमन्थनः । सङ्ग्रामः पञ्चमश्चैव सुघोरस्तारकामयः॥ ७४ ॥
षष्ठो ह्याडीवकस्तेषां सप्तमस्त्रपुरः स्मृतः । अन्धकारोऽष्टमस्तेषां ध्वजश्च नवमः स्मृतः॥ ७५ ॥
वार्तश्च दशमो ज्ञेयस्ततो हालाहलः स्मृतः । स्मृतो द्वादशमस्तेषां घोरकोलाहलोऽपरः॥ ७६ ॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो नरसिंहेन सूदितः । वामनेन बलिर्बद्धस्त्रैलोक्याक्रमणे कृते॥ ७७ ॥
हिरण्याक्षो हतो द्वन्द्वे प्रतिवादे तु दैवतैः । महाबलो महासत्त्वः सङ्ग्रामेष्वपराजितः॥ ७८ ॥
दंष्ट्रायां तु वराहेण समुद्राद्धूर्यदा कृता । प्राह्लादो निर्जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमन्थने॥ ७९ ॥

ऋषियों ने पूछा—हे सूतजी ! उस देवासुर संग्राम में भगवान् विष्णु ने किस प्रकार अवतार ग्रहण किया था और वह देवासुर संग्राम किस प्रकार संगठित हुआ था, इसे हम लोग जानना चाहते है ॥ ६७ ॥

सूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! जिस प्रकार वह देवासुर संग्राम घटित हुआ था, उसे मैं बता रहा हूँ । प्राचीन काल में दैत्यराज हिरण्यकशिपु त्रैलोक्य का शासक था । उसके उपरान्त पुनः दैत्यराज बलि के हाथ त्रैलोक्य का भार आया । उस समय देवताओं और असुरों में परम मित्रता थी । इस प्रकार दस युगों तक यह जगत् बिना किसी उपद्रव के रहा । उसकी आज्ञा में उस समय देवता और असुर दोनों ही थे ॥ ६८-७० ॥

तदनन्तर उन देवताओं और बलवान् असुरों में और विनाशकारी दारुण विवाद उपस्थित हो गया, वाराहकल्प में बारह युद्ध हुए, जिनमें षण्ड और अमर्क सभी युद्धों में सम्मिलित करे जाते हैं । उन युद्धों का नामपूर्वक वर्णन मैं संक्षेप में कर रहा हूँ, सुनिये । इनमें प्रथम युद्ध नरसिंह का था, दूसरा वामन का, तीसरा वाराह का, चौथा अमृतमंथन का पाँचवाँ परम दारुण तारकामय नामक संग्राम था और सातवाँ त्रिपुर दहन का युद्ध था । इन युद्धों में आठवाँ अन्धकार युद्ध एवं नवाँ ध्वज युद्ध कहा जाता है । वार्त का युद्ध दसवाँ जानना चाहिए, ग्यारहवाँ हालाहल के नाम से विख्यात है, इसी प्रकार बारहवें युद्ध का नाम घोर कोलाहल है । युद्ध में दैत्यराज हिरण्यकशिपु नरसिंह के द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ । द्वितीय युद्ध में तीनों लोकों पर आक्रमण करने पर दैत्यराज बलि को भगवान् वामन ने बाँधा । देवताओं के साथ संघर्ष उपस्थित होने पर उस युद्ध में हिरण्याक्ष का निधन हुआ । वह महान् बलवान् महान् पराक्रमी तथा संग्राम में कभी पराजित होनेवाला नहीं था ॥ ७७-७८ ॥

तीसरे अवतार में वाराह ने अपनी दाढ़ों से समुद्र में से निकालकर पृथ्वी का उद्धार किया था । अमृतमंथन

विरोचनस्तु प्राह्लादिर्नित्यमिन्द्रवधोद्यतः । इन्द्रेणैव स विक्रम्य निहतस्तारकामये ॥ ८० ॥
भवादवध्यतां प्राप्य विशेषास्त्रादिभिस्तु यः । संजभो निहतः षष्ठे शक्राविष्टेन विष्णुना ॥ ८१ ॥
अशक्नुवन्तो देवेषु पुरं गोप्तुं त्रिदैवतम् । निहता दानवाः सर्वे त्रिपुरस्त्र्यम्बकेण तु ॥ ८२ ॥
अष्टमे त्वसुराश्चैव राक्षसाश्चान्धकारकाः । जितदेवमनुष्यैस्तु पितृभिश्चैव संगतान् ॥ ८३ ॥
संवृतान्दानवांश्चैव संगतान्कृत्स्नशश्च तान् । तथा विष्णुसहायेन महेन्द्रेण निवर्हिताः ॥ ८४ ॥
हतो ध्वजो महेन्द्रेण मायाछन्नश्च योधयन् । ध्वजे लक्ष्यं समाविश्य विप्रचित्तिर्महाभुजः ॥ ८५ ॥
दैत्यांश्च दानवांश्चैव संहतान्कृत्स्नशश्च तान् । रजिः कोलाहले सर्वान्देवैः परिवृतोऽजयत् ॥
यज्ञामुतेन विजितौ षण्डामार्कौ तु दैवतैः ॥ ८६ ॥
एते देवाः पुरा वृत्ताः संग्रामा द्वादशैव तु । देवासुरक्षयकराः प्रजानामशिवाय च ॥ ८७ ॥
हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ । तथा शतसहस्राणि ह्यधिकानि द्विसप्ततिः ॥
अशीतिं च सहस्राणि त्रैलोक्यस्येश्वरोऽभवत् ॥ ८८ ॥
पर्यायै तस्य राजाऽनु बलिर्वर्षार्बुदं पुनः । षष्टिंश्चैव सहस्राणि त्रिंशतं नियुतानि च ॥ ८९ ॥
बले राज्याधिकारस्तु यावत्कालं बभूव ह । प्रह्लादेन गृहीतोऽभूत्तावत्कालं तदाऽसुरैः ॥ ९० ॥

के अवसर पर देवराज इन्द्र के द्वारा दैत्यराज प्रह्लाद पराजित हुए थे । इससे प्रह्लाद का पुत्र विरोचन नित्य ही इन्द्र के संहार के लिए प्रयत्नशील रहता था । अन्त में इन्द्र ने परम पराक्रम दिखलाकर तारकामय संग्राम में उसका संहार किया था । उस दैत्य ने शंकर जी की आराधना कर अमरत्व का विशेषतया अस्त्र-शस्त्रादिकों से न मारे जाने का वरदान प्राप्त किया था । अत: इन्द्र के शरीर में आविष्ट होकर संग्रामभूमि में भगवान् विष्णु ने उसका संहार किया था । यह छठवाँ देवासुर संग्राम था ॥ ७९-८१ ॥

असुरों के पास एक परम सुरक्षित दुर्ग था । उसकी रक्षा में तत्पर दानवगण देवताओं की प्रतिष्ठा को सहन नहीं करते थे, त्र्यम्बक शिव जी ने उस त्रिपुर का विध्वंसकर समस्त दानवों का संहार किया । अष्टम देवासुर संग्राम में अंधकारस्वरूप असुरगण एवं राक्षसों के साथ देवताओं का संग्राम हुआ था । उसमें देवताओं और मनुष्यों को पराजित करनेवाले पितरगण भी उनकी सहायता कर रहे थे । भगवान् विष्णु की सहायता प्राप्तकर महादेव ने उन समस्त दानवों, असुरों एवं राक्षसों को समूल नष्ट किया । एक युद्ध महाबलशाली विप्रचित्ति के साथ हुआ था, उसमें वह मायारूप धारणकर युद्ध कर रहा था, महेन्द्र ने उसके रथ के ध्वज को लक्ष्यकर उसे काट दिया और उसके साथ युद्ध करनेवाले समस्त दानवों, असुरों एवं राक्षसों का संहार कर दिया । देवताओं समेत रजि ने महान् कोलाहल नामक समर के बीच समस्त असुरों को पराजित किया था । उसमें देवताओं ने यज्ञीय अमृत द्वारा असुरों के पुरोहित षण्ड और अमर्क को पराजित किया था ॥ ८२-८६ ॥

देवताओं और असुरों में ये ही बारह युद्ध प्राचीनकाल में हुए थे जिनमें देवताओं और असुरों का महान् विनाश हुआ था और प्रजावर्ग का भी पर्याप्त अमंगल हुआ था । दैत्यराज हिरण्यकशिपु एक अरब बहत्तर लाख अस्सी सहस्र वर्षों तक समस्त त्रैलोक्य के अधीश्वर पद पर सुशोभित था ॥ ८७-८८ ॥

उसके बाद पर्यायक्रम से बलि दैत्यों का राजा हुआ, वह एक अरब साठ सहस्र बीस नियुत वर्ष तक राज्य

इन्द्रास्त्रयस्ते विख्याता असुराणां महौजसः । दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद् दशयुगं किल॥ ९१ ॥
असपत्नं ततः सर्वं राष्ट्रं दशयुगं पुरा । त्रैलोक्यमव्ययमिदं महेन्द्रेण तु पाल्यते॥ ९२ ॥
प्रह्लादस्य ततश्चादस्त्रैलोक्यं कालपर्ययात् । पर्यायेण च संप्राप्ते त्रैलोक्येपाकशासनः॥ ९३ ॥
ततोऽसुरान्परित्यज्य यज्ञे देवा उपागमन् । यज्ञे देवानथ गते काव्यं ते ह्यसुराब्रुवन्॥ ९४ ॥
कृतं नो मिषतां राष्ट्रं त्यक्त्वा यज्ञं पुनर्गताः। स्थातुं न शक्नुमो ह्यद्य प्रविशामो रसातलम्॥ ९५ ॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेतान्विषण्णः सांत्वयन्गिरा । मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन चासुराः॥ ९६ ॥
वृष्टिरोषधयश्चैव रसा वसु च यद्वयम् । कृत्स्ना मयि च तिष्ठन्तु पादस्तेषां सुरेषु वै॥
युष्मदर्थं प्रदास्यामि तत्सर्वं धार्यते मया ॥ ९७ ॥
ततो देवासुरान्दृष्ट्वा धृतान्काव्येन धीमता । अमन्त्रयंस्तदा ते वै संविग्ना विजिगीषया॥ ९८ ॥
एष काव्य इदं सर्वं व्यावर्तयति नो बलात् । साधु गच्छामहे तूर्णं क्षीणान्नाप्याययस्व तान्॥
प्रसह्य हत्वा शिष्टान्वै पातालं प्रापयामहे ॥ ९९ ॥
ततो देवाः सुसंरब्धा दानवानभिसृत्य वै । जघ्नुस्तैर्वध्यमानास्ते काव्यमेवाभिदुद्रुवुः॥ १०० ॥

पद का अधिकारी हुआ था। जितने वर्षों तक बलि राज्य पद का स्वामी था, उतने ही वर्षों तक उसके प्रह्लाद ने असुरों के साथ राज्य भार ग्रहण किया था। समस्त असुरगणों में महाबलशाली पितामह हिरण्याक्ष, प्रह्लाद और बलि—ये तीन ही परम तेजस्वी, परम बलशाली एवं इन्द्र के समान प्रख्यात थे, ऐसी प्रसिद्धि है कि दैत्यों से यह समस्त जगत् दस युगों तक आक्रान्त था, उसके बाद दस युगों तक समस्त राष्ट्र निष्कण्टक रहा। इस अवधि में महेन्द्र त्रैलोक्य की रक्षा करते थे ॥ ८९-९२ ॥

प्रह्लाद के अनन्तर यह त्रैलोक्य कालक्रम से पाकशासन इन्द्र के हाथ में आया। उस समय यक्षगण असुरों को छोड़कर देवताओं के पास आये। यक्षों के देवताओं के पास चले जाने पर असुरों ने शुक्राचार्य से जाकर कहा। आचार्य जो हम लोगों के देखते-देखते हमारा समस्त राष्ट्र नष्ट हो गया, यज्ञादि शुभ कर्म हमें छोड़कर पुनः देवताओं के पास चले गये, ऐसी स्थिति में हम लोग यहाँ ठहर नहीं सकते, रसातल को जा रहे हैं। असुरों के ऐसा कहने पर शुक्राचार्य को बड़ा विषाद हुआ और मीठे वचन से सान्त्वना देते हुए बोले—हे असुरवृन्द ! आप लोग भयभीत न हो, मैं अपने तेज से आप सबकी रक्षा करूँगा। वृष्टि, ओषधियों, पृथ्वी, अन्न एवं अन्यान्य रत्नादि जो कुछ भी वस्तुएँ हैं वे सब मेरे अधीन हैं उनका केवल चतुर्थांश देवताओं के पास है उन सबको मैंने आप ही लोगों के लिए धारण किया है और उसे मैं आपको दूँगा ॥ ९३-९७ ॥

इस प्रकार परम बुद्धिशाली शुक्राचार्य द्वारा असुरों को सुरक्षित देखकर देवगण परम उद्विग्न हुए और विजय की इच्छा से सब ने आपस में मन्त्रणा की कि यह असुरों का गुरु शुक्राचार्य अपने पराक्रम से हम लोगों के किये हुए कार्यों को व्यर्थ कर देता है। अच्छा है, तब तक हम लोग शीघ्रतापूर्वक उन क्षीण असुरों के ऊपर आक्रमण कर देते हैं, जब तक कि वह उन्हें सबल नहीं बना देते, खूब पराक्रम दिखलाकर हम पहले तो सब को मार डालना चाहेंगे, जो नहीं मर सकेंगे और बच जायेंगे, उनको हम पाताल में भेज देंगे ॥ ९८-९९ ॥

ऐसी सम्मति कर देवगणों ने क्रुद्ध होकर दानवों पर आक्रमण किया और उनका खूब संहार किया। देवों

ततः काव्यस्तु तान्दृष्ट्वा तूर्णं देवैरभिद्रुतान् । समरेऽस्त्रक्षतार्तास्तान्देवेभ्यस्तान्दितेः सुतान्॥ १०१ ॥
काव्यो दृष्ट्वा स्थितान्देवांस्तत्र देवोऽभ्यचिन्तयत् । तानुवाच ततो ध्यात्वा पूर्ववृत्तमनुस्मरन्॥ १०२ ॥
त्रैलोक्यं विजितं सर्व वामनेन त्रिभिः क्रमैः । बलिर्वद्धो हतो जम्भो निहतश्च विरोचनः ॥ १०३ ॥
महार्हेषु द्वादशसु सङ्ग्रामेषु सुरैर्हताः । तैस्तैरुपायैर्भूयिष्ठा निहता ये प्रधानतः ॥ १०४ ॥
किंचिच्छिष्टास्तु वै यूयं युद्धेष्वन्त्येषु वै स्वयम्। नीतिं वो हि विधास्यामि कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम्॥ १०५ ॥
यास्याम्यहं महादेवं यथार्थे विजयाय वः । अग्निमाप्याययेद्धोता मन्त्रैरेव बृहस्पतिः ॥ १०६ ॥
ततो यास्यामहं देवं मन्त्रार्थे नीललोहितम् । युष्माननुग्रहीष्यामि पुनः पश्चादिहाऽऽगतः ॥ १०७ ॥
यूयं तपश्चरध्वं वै संवृता वल्कलैर्वने । न वै देवा वधिष्यन्ति यावदागमनं मम॥ १०८ ॥
अप्रतीपांस्ततो मन्त्रान्देवात्प्राप्य महेश्वरात् । योत्स्यामहे पुनर्देवांस्ततः प्राप्स्यथ वै जयम्॥ १०९ ॥
ततस्ते कृतसंवादा देवानूचुस्ततोऽसुराः । न्यस्तवादा वयं सर्वे लोकान्यूयं क्रमन्तु वै॥ ११० ॥
वयं तपश्चरिष्यामः संवृता वल्कलैर्वने । प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा सत्यव्याहरणं तु तत्॥ १११ ॥
ततो देवा निवृत्ता ये विज्वरा मुदिताश्च ह । न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु स्वान्वै जग्मुर्यथागतान्॥ ११२ ॥

द्वारा संत्रस्त होकर दानवगण शुक्राचार्य की शरण में गए। शुक्राचार्य ने इस प्रकार देवताओं द्वारा भगाए गये, समर में उनके घोर शस्त्रास्त्रों की मार से क्षत-विक्षत शरीरवाले, परम दीन दिति के पुत्रों को शीघ्रतापूर्वक अपनी ओर दौड़कर आते हुए देखा और वहीं समीप में खड़े हुए निष्ठुर देवताओं को भी देखा। तदनन्तर ध्यान कर पूर्व घटित घटनाओं को स्मरणकर दैत्यों ने शुक्राचार्य से कहा—वामन ने अपने तीन पगों से समस्त त्रैलोक्य को जीत लिया। बलवान् बलि बाँधा गया, परम बलवान् जम्भ एवं विरोचन का संहार हुआ, इस प्रकार पूर्वकाल में होनेवाले बारह घोर संग्रामों में देवताओं ने अपने सफल उपायों से प्रमुख प्रमुख दैत्यों का संहार किया है ॥ १००-१०४ ॥

दैत्य लोग थोड़ी संख्या में शेष रह गये हैं, अब इन अन्तिम युद्धों में आप स्वयं भी विनष्ट हो रहे हैं, मैं स्वयं अब आप लोगों को विजय प्राप्ति के लिए एक नीति (चाल) बता रहा हूँ। आप लोग कुछ समय की प्रतीक्षा करें। आप लोगों की विजय के लिए मैं किसी मन्त्र-प्राप्ति के उद्देश्य से महादेव जी के पास जा रहा हूँ। उधर देवपक्ष में उनके गुरु बृहस्पति मन्त्रों द्वारा अग्नि को सन्तुष्ट कर रहे हैं, अर्थात् हवन कर रहे हैं। इसलिए हम भी मन्त्र-प्राप्ति के लिए भगवान् नीललोहित के पास जा रहे हैं, थोड़े दिन बाद जब मैं यहाँ आ जाऊँगा तब आप सब पर अनुग्रह करूँगा ॥ १०५-१०७ ॥

आप लोग वन में वत्कल धारणकर तपस्या करें। इस प्रकार जब तक हम यहाँ न आ जायें, तब तक आप लोग तपस्या में ही लगे रहें। इससे देवगण आप सबका संहार नहीं कर सकेंगे। महामहिमामय भगवान् महेश्वर से अनुकूल फल देनेवाले मन्त्रों को प्राप्तकर जब हम आ जायेंगे तब देवताओं के साथ युद्ध छेड़ देंगे और तभी हम सबों को विजय प्राप्ति भी होगी। शुक्राचार्य के दिये गये उपदेश का असुरों ने पालन किया। देवताओं के युद्ध के लिए आह्वान करने पर उन्होंने कहा—हम सब लोग अब सांसारिक विवादों आदि से मुक्त हो गये हैं, आप लोग जा-जाकर समस्त लोकों पर अपना अधिकार जमाइये। हम लोग तो वन में वल्कल धारणकर तपस्या करेंगे। प्रह्लाद के इस प्रकार सत्य की तरह कहे गये वचन को सुनकर देवगणों ने युद्ध करना बन्द कर दिया। उन्हें परम प्रसन्नता एवं शान्ति मिली। दैत्यों के शस्त्र डाल देनेपर देवगण जहाँ से आए थे वहाँ लौट गये ॥ १०७-११२ ॥

ततस्तानब्रवीत्काव्यः कंचित्कालमुपास्यताम् । निरुत्सुकैस्तपोयुक्तैः कालं कार्यार्थसाधकैः ॥
पितुर्ममाऽऽश्रमस्था वै सर्वे देवाः सवासवाः ॥ ११३ ॥
स संदिश्यासुरान्काव्यो महादेवं प्रपद्य च । प्रणम्यैनमुवाचाथ जगत् प्रभवमीश्वरम् ॥ ११४ ॥
मन्त्रानिच्छाम्यहं देव मे न सन्ति बृहस्पतौ । पराभवाय देवानामसुरेष्वभयावहान् ॥ ११५ ॥
एवमुक्तोऽब्रवीद्देवो मन्त्रानिच्छसि वै द्विज । व्रतं चर मयोद्दिष्टं ब्रह्मचारी समाहितः ॥ ११६ ॥
पूर्णं वर्षसहस्रं वै कुण्डधूममवाक् शिराः । यद्युपास्यसि भद्रं ते मत्तो मन्त्रमवाप्स्यसि ॥ ११७ ॥
तथोक्तो देवदेवेन स शुक्रस्तु महातपाः । पादौ संस्पृश्य देवस्य बाढमित्यभ्यभाषत ॥ ११८ ॥
व्रतं चराम्यहं शेषं यथोद्दिष्टोऽस्मि वै प्रभो । ततो नियुक्तो देवेन कुण्डधारोऽस्य धूमकृत् ॥ ११९ ॥
असुराणां हितार्थाय तस्मिञ्छुक्रे गते तदा । मन्त्रार्थं तत्र वसति ब्रह्मचर्यं महेश्वरः ॥ १२० ॥
तदबुद्ध्वा नीतिपूर्वं तु राज्यं न्यस्तं तदाऽसुरैः । तस्मिंश्छिद्रे तदामर्षा देवास्तान्समभिद्रवन् ॥
निशितात्तायुधाः सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ १२१ ॥
दृष्ट्वाऽसुरगणा देवान्प्रगृहीतायुधान्पुनः । उत्पेतुः सहसा सर्वे संत्रस्तास्ते ततोऽभवन् ॥ १२२ ॥
न्यस्तशस्त्रे जये दत्ते आचार्ये व्रतमास्थिते । संत्यज्य समयं देवास्ते सपत्नजिघांसवः ॥ १२३ ॥

तदनन्तर शुक्राचार्य ने असुरों से कहा—इसी प्रकार तुम लोग शान्तिपूर्वक कुछ समय बिताओ और उस अवधि तक बिना किसी उत्सुकता के तपस्या करते रहो । जब तक कार्यसिद्धि नहीं हो जाती, क्योंकि इन्द्र समेत समस्त सुरगण हमारे पिता जी के आश्रम में विद्यमान हैं । इस प्रकार असुरों को सन्देश देकर शुक्राचार्य महादेव जी के पास आये और प्रणामकर जगत के उत्पन्नकर्ता महेश्वर से इस प्रकार निवेदन किया—हे देव ! मैं ऐसे मन्त्रों को प्राप्त करना चाहता हूँ जो बृहस्पति को नहीं ज्ञात हैं । देवताओं को पराजित करने के लिए और असुरों को भयरहित करने के लिए यह हमारा प्रयास है ।' शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर महादेव जी बोले—हे द्विज ! जिन मन्त्रों को प्राप्त करने की आपकी इच्छा है, उनके लिए मेरे आदेशानुसार सावधानीपूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत का एक सहस्र वर्ष तक पालन करो, और सिर को नीचे करके कुण्ड के धूम का पान करो, यदि इस प्रकार नियम का पालन करोगे तो मुझसे वैसे मन्त्रों की प्राप्ति होगी ॥ ११३-११७ ॥

देवदेव महादेव के ऐसा कहने पर महान तपस्वी शुक्राचार्य ने उनके चरणों का स्पर्श किया, और कहा कि ठीक है, प्रभो ! आप जैसा बता रहे है, मैं उसी प्रकार नियमपूर्वक व्रत पालन करूंगा ।' इस प्रकार महादेव जी की आज्ञा से शुक्राचार्य ने असुरों के कल्याणार्थ कुण्ड के धूम का पान करना प्रारम्भ किया । इधर शुक्र के दैत्यों के पास से जाकर मन्त्र के लिए शिव जी के कथनानुसार ब्रह्मचर्य पालन का भेद देवताओं को लग गया और दैत्यों के इस तपस्याचरण एवं राज्य त्याग को एक चाल समझ कर देवताओं को बड़ा अमर्ष हुआ और वे सब-के-सब तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र धारणकर बृहस्पति को आगे कर दैत्यों पर टूट पड़े ॥ ११८-१२१ ॥

असुरगण इस प्रकार पुनः देवताओं को शस्त्रों से सुसज्जित देखकर परम भयभीत हो उठे और तुरन्त भाग पड़े । उन सभी ने सोचा कि ऐसी स्थिति में जबकि हम लोगों ने रण में शस्त्र डाल दिया है, अपने मुख से ही उनको विजय दे दी है । हमारे आचार्य व्रत के अनुष्ठान में तत्पर हैं । देवगण युद्ध की प्रथा तोड़कर अपने सौतेले

अनाचार्यास्तु भद्रं वो विश्वस्तास्तपसि स्थिताः। चीरवल्काजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः॥ १२४ ॥
रणे विजेतुं देवान्वै न शक्ष्यामः कथंचन । अशुद्धेन प्रपद्यामः शरणं काव्यमातरम्॥ १२५ ॥
ज्ञापयामस्ततमिदं यावदागमनं गुरोः । विनिवृत्ते ततः काव्ये योत्स्यामो युधि तान्सुरान्॥ १२६ ॥
एवमुक्त्वाऽसुरान्योग्यं शरणं काव्यमातरम् । प्रापद्यन्त ततो भीतास्तदा चैव तदाऽभयम्॥ १२७ ॥
दत्तं तेषां तु भीतानां दैत्यानामभयार्थिनाम् । न भेतव्यं न भेतव्यं भयं त्यजत दानवाः॥ १२८ ॥
मत्संनिधौ वर्ततां वो न भीर्भवितुमर्हति । भयाच्चाप्यभिपन्नांस्तान्दृष्ट्वा देवासुरांस्तदा॥ १२९ ॥
अभिजग्मुः प्रसह्यैतानविचार्य बलाबलम् । तांस्त्रस्तान्वध्यमानांश्च देवैर्दृष्ट्वाऽसुरांस्तदा॥ १३० ॥
देवी क्रुद्धाब्रवीदेनाननिद्रत्वं करोम्यहम् । संस्तभ्य शीघ्रं संरम्भादिन्द्रं साऽभ्यचरत्ततः॥ १३१ ॥
ततः संस्तंभितं दृष्ट्वा शक्रं देवास्तु यूपवत् । व्यद्रवन्त ततो भीता दृष्ट्वा शक्रं वशीकृतम्॥ १३२ ॥
गतेषु सुरसंघेषु विष्णुरिन्द्रमभाषत । मां त्वं प्रविश भद्रं ते नेष्यामि त्वां सुरेश्वर॥ १३३ ॥
एवमुक्तस्ततो विष्णुं प्रविवेश पुरंदरः । विष्णुना रक्षितं दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽवदत्॥ १३४ ॥
एषा त्वां विष्णुना सार्धं दहामि मघवानिव । मिषतां सर्वभूतानां दृश्यतां मे तपोबलम्॥ १३५ ॥

भाइयों (अर्थात् हम सभी) को मारने के लिए तत्पर हैं। इस समय हमारे आचार्य भी नहीं है, उनका कल्याण हो, हम लोग तो विश्वस्त होकर तपस्या में निरत हैं। इसीलिए चीर और वल्कल धारण किया है। कुछ कार्य न करने से निष्क्रिय हैं। स्त्री एवं भृत्य आदि भी साथ में नहीं हैं। रण में किसी प्रकार भी देवताओं को हम जीत नहीं सकते। ऐसी संकट की स्थिति में शुक्राचार्य की माता की शरण में हम सब चलें। जब गुरु जी आ जायेंगे तो उनसे यह सब वृत्तान्त बतायेंगे। अपने आचार्य शुक्र के व्रतादि से निवृत्त होकर लौट आने पर इन देवताओं से हम फिर युद्ध करेंगे और तब इनसे पूछेंगे ॥ १२२-१२६ ॥

असुरों ने इस प्रकार आपस में सम्मति कर शुक्राचार्य की माता की शरण ली। उस समय वे परम आतंकित हो रहे थे। माता की शरण में जाने पर भय दूर हो गया ॥ १२७ ॥

अभय की प्रार्थना करने वाले परम भयभीत असुरों को इस प्रकार शरण में आया देख शुक्राचार्य की माता ने सान्त्वना देते हुए कहा। दानवों, डरने की आवश्यकता नहीं है, भय छोड़ दो। मेरे समीप रहो, यहाँ पर भय की आवश्यकता नहीं है। भय से रहित उन असुरों को देखकर देवताओं ने बल-अबल का कुछ विचार न करके उनका खूब संहार किया। देवताओं द्वारा मारे जाते हुए उन असुरों को देखकर देवी शुक्राचार्य को माता परम क्रुद्ध हुईं और देवताओं से बोलीं—मैं तुम सब को इन्द्र से विहीन कर रही हूँ, इस प्रकार कहकर बड़े क्रोध से देवी ने इन्द्र को स्तम्भित कर दिया और स्वयं इधर-उधर घूमने लगीं। इन्द्र को यज्ञ के खम्भे की तरह स्तम्भित दशा में खड़ा देखकर और उन्हें परवश जानकर देवगण भयभीत होकर भागने लगे। देवताओं के भाग जाने पर विष्णु ने इन्द्र से कहा—हे सुरेश्वर ! तुम मेरे शरीर में प्रविष्ट हो जाओ, मैं तुझे यहाँ से अन्यत्र ले चलूँ ॥ १२८-१३३ ॥

विष्णु के ऐसा कहने पर इन्द्र ने उनके शरीर में प्रवेश कर लिया। इन्द्र को विष्णु द्वारा इस प्रकार सुरक्षित देखकर देवी पुनः परम कुपित हुई और बोलीं, 'मघवन् ! मैं अब तुमको यहाँ पर सभी लोगों को देखते-देखते विष्णु के साथ जला रही हूँ। मेरे तपोबल को देखो।' इस प्रकार शुक्राचार्य की माता द्वारा पराजित होकर उन

तयाऽभिभूतौ तौ देवाविन्द्राविष्णू जजल्पतुः । कथं मुच्येव सहितौ विष्णुरिन्द्रमभाषत॥ १३६ ॥
इन्द्रोऽब्रवीज्जहीह्येनां यावन्नौ न दहेद्विभो । विशेषेणाभिभूतोऽहमतस्त्वञ्च हि मा चिरम्॥ १३७ ॥
ततः समीक्ष्य तां विष्णुः स्त्रीवधं कर्तुमास्थितः । अभिध्याय ततश्चक्रमापन्नः सत्वरं प्रभुः॥ १३८ ॥
तस्याः सत्वरमाणायाः शीघ्रकारी सुरारिहा । स्त्रिया विष्णुस्ततो देव्याः क्रूरं बुद्ध्वा चिकीर्षितम् ॥
क्रुद्धस्तदस्त्रमाविध्य शिरश्चिच्छेद माधवः ॥ १३९ ॥
तं दृष्ट्वा स्त्रीवधं घोरं चुकोप भृगुरीश्वरः । ततोऽभिशप्तो भृगुणा विष्णुर्भार्यावधे तदा॥ १४० ॥
यस्मात्ते जानता धर्मानवध्या स्त्री निषूदिता । तस्मात्त्वं सप्तकृत्वो वै मानुषेषु प्रवत्स्यसि॥ १४१ ॥
ततस्तेनाभिशापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः । लोके सर्वहितार्थाय जायते मानुषेष्विह॥ १४२ ॥
अनुव्याहृत्य विष्णुं स तदादाय शिरः स्वयम् । सामानीय ततः काये अपो गृह्येदमब्रवीत्॥ १४३ ॥
एष त्वं विष्णुना सत्ये हतां संजीवयाम्यहम् । यदि कृत्स्नो मया धर्मश्चारितो ज्ञायतेऽपि वा ॥
तेन सत्येन जीवस्व यदि सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ १४४ ॥
सत्याभिव्याहृता तस्य देवी संजीविता तदा । तदा तां प्रोक्ष्य शीताभिरद्भिर्जीवेति सोऽब्रवीत्॥ १४५ ॥

दोनों देवताओं ने आपस में सम्मति की, विष्णु ने इन्द्र से कहा—अब हम दोनों किस प्रकार बच सकते हैं। इन्द्र ने कहा, 'प्रभो ! जब तक यह हम दोनों को जलाने जा रही है तब तक इसी का काम तमाम कर दीजिये। मैं तो इस समय बहुत ही असमर्थ और पराजित हो गया हूँ, अतः आप ही इसको मारिए, तनिक भी देर न कीजिए' ॥ १३४-१३७ ॥

विष्णु उस देवी को इस प्रकार जलाने के लिए उद्यत देखकर स्त्री-वध करने के लिए उद्यत हुए। प्रभु ने इस आपत्तिपूर्ण दशा में अपने सुदर्शनचक्र का ध्यान किया, जिससे असुरों का संहारक, परम शीघ्रता से लक्ष्य को नष्ट करनेवाला वह चक्र इन्द्र और विष्णु को जलाने में शीघ्रता करनेवाली शुक्राचार्य की माता के सम्मुख उपस्थित हो गया। भगवान् विष्णु उस देवी को परम नृशंस कार्य करने के लिए समुद्यत जानकर परम क्रुद्ध हो गये थे। अतः लक्ष्मीपति होकर भी उन्होंने स्त्री के सिर को अपने चक्र से काट डाला ॥ १३८-१३९ ॥

इस कठोर स्त्री-वध को देखकर परम ऐश्वर्यशाली महर्षि भृगु अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उस समय उन्होंने अपनी स्त्री का निधन हो जाने पर विष्णु को इस प्रकार का शाप दिया—यतः धर्म की महत्ता को भलीभाँति जानते हुए भी तुमने एक अबला की हत्या की, अतः तुम सात बार मनुष्य लोक में जन्म धारणकर निवास करोगे। भृगु के इस शाप के वश होकर भगवान् विष्णु धर्म के नष्ट हो जाने पर सब प्रजावर्ग के कल्याण के लिए बारम्बार जन्म धारण करते हैं ॥ १४०-१४२ ॥

तदनन्तर भृगु ने भगवान् विष्णु को शाप देकर स्वयमेव देवी का सिर लेकर उसे शरीर से संयुक्त किया और जल लेकर यह वचन कहे—हे सत्ये ! विष्णु के द्वारा मारी गयी तुझको मैं पुनः जीवित कर रहा हूँ। यदि मैंने धर्म के समस्त तत्त्वों की पूरी जानकारी प्राप्त की है तथा सर्वांशतः पालन किया है, तो हमारे उस सत्य से तुम जीवित हो जाओ। यदि मैं सर्वदा सत्य वचन बोलता रहा होऊं तो तुम जीवित हो जाओ ॥ १४३-१४४ ॥

महर्षि भृगु के इस प्रकार सत्य वचन बोलने पर जब देवी जीवित हो उठीं, तब उन्होंने शीतल जल से

ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव । साधु साध्वित्यदृश्यानां वाचस्ताः सस्वरूर्दिशः ॥ १४६ ॥
दृष्ट्वा संजीवितामेवं देवी तां भृगुणा तदा । मिषतां सर्वभूतानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १४७ ॥
असंभ्रान्तेन भृगुणा पत्नीं संजीवितां ततः । दृष्ट्वा शक्रो न लेभेऽथ शर्म काव्यभयात्ततः ॥ १४८ ॥
प्रजागरे ततश्चेन्द्रो जयन्तीमात्मनः सुताम् । प्रोवाच मतिमान्वाक्यं स्वां कन्यां पाकशासनः ॥ १४९ ॥
एष काव्यो ह्यनिन्द्राय चरते दारुणं तपः । तेनाहं व्याकुलः पुत्रि कृतो धृतिमता दृढम् ॥ १५० ॥
गच्छ संभावयस्वैनं श्रमापनयनैः शुभैः । तैस्तैर्मनोनुकूलैश्च ह्युपचारैरतन्द्रिता ॥ १५१ ॥
देवी सा हीन्द्रदुहिता जयन्ती शुभचारिणी । युक्तध्यानं च शाम्यन्तं दुर्बलं धृतिमास्थितम् ॥ १५२ ॥
पित्रा यथोक्तं काव्यं स काव्ये कृतवती तदा । गीर्भिश्चैवानुकूलाभिः स्तुवती वल्गुभाषिणी ॥ १५३ ॥
गात्रसंवाहनैः काले सेवमाना सुखावहैः । शुश्रूषन्त्यनुकूला च उवास बहुलाः समाः ॥ १५४ ॥
पूर्णे धूमव्रते चापि घोरे वर्षसहस्रिके । वरेणच्छन्दयामास काव्यं प्रीतोऽभवत्तदा ॥ १५५ ॥
एवं ब्रुवंस्त्वयैकेन चीर्णं नान्येन केनचित् । तस्मात्त्वं तपसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च ॥ १५६ ॥
तेजसा चापि विबुधान्सर्वानभिभविष्यसि । यच्च किंचिन्मम ब्रह्मन् विद्यते भृगुनन्दन ॥ १५७ ॥

प्रोक्षित कर पुनः कहा—'जीवित हो जाओ ।' तदनन्तर समस्त जीवों ने देवी को सोकर उठी हुई की तरह देखा । दसों दिशाओं से 'साधु-साधु' की अदृश्य ध्वनि सुनायी पड़ने लगी । सभी लोगों के सामने महर्षि भृगु द्वारा देवी का इस प्रकार जीवित हो जाना एक अद्भुत घटना की तरह हुआ । परम सावधान चित्तवाले महर्षि भृगु द्वारा पत्नी को जीवित देखकर इन्द्र शुक्राचार्य के भय से परम भीत हो उठे, उनके मन में तनिक भी शान्ति नहीं रही । रात भर नींद नहीं आयी ॥ १४५-१४८ ॥

इस प्रकार अत्यन्त व्याकुल होकर परम बुद्धिमान् पाकशासन इन्द्र ने अपनी पुत्री जयन्ती से कहा, बेटी! दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य मेरे विनाश के लिए परम कठोर तपस्या कर रहे हैं, वे परम धैर्यशाली हैं, इस कार्य के लिए उन्होंने दृढ़ निश्चय भी कर लिया है, उनके इस कर्म से मैं बहुत व्याकुल हूँ । तू जा और उनके कष्टों एवं कठिनाइयों को दूर करनेवाले अपने श्रेष्ठ एवं मङ्गलदायी कार्यों से उन्हें प्रसन्न कर, उनके मन के अनुकूल रहकर विविध सेवाओं द्वारा उन्हें सावधानीपूर्वक प्रसन्न करने की चेष्टा कर शुभ कर्म करनेवाली इन्द्र की पुत्री जयन्ती स्वभाव से देवी थी, उसने जाकर देखा तो शुक्राचार्य उस समय ध्यानमग्न थे, वे परम दुर्बल हो गये थे, फिर भी शान्त चित्त एवं धैर्यशाली दिखायी पड़ रहे थे ॥ १४९-१५२ ॥

पिता ने शुक्राचार्य के लिए जैसा बताया था, उस मृदुभाषिणी ने उनके लिए वैसा ही आचरण किया, कान को मीठी लगनेवाली सुन्दर वाणियों से उसने शुक्राचार्य की स्तुति की । समय-समय पर सुख पहुँचाने के लिए चरणादि का संवाहन किया । अत्यन्त अनुकूल आचरण करती हुई सेवा में दिन-रात लगे रहकर उसने कई वर्षों तक उपवास किया । इस प्रकार उस परम घोर सहस्र वर्ष वाले धूम्रव्रत के समाप्त होने पर महादेव जी शुक्राचार्य के ऊपर परम प्रसन्न हुए और उन्हें वरदान देते हुए कहा—हे भृगुनन्दन ! इस परम कठोर तप का अकेले आप ही ने पालन किया है, किसी अन्य ने इसका पालन आज तक नहीं किया है । अतः आप अपनी इस परम कठोर तपस्या, बुद्धि, शास्त्रज्ञान, पराक्रम एवं तेज से समस्त देवताओं को पराजित करेंगे । हे ब्राह्मण ! यज्ञों एवं

साङ्गं च सरहस्यं च यज्ञोपनिषदां तथा । प्रतिभास्यति ते सर्वं तच्चाद्यन्तं न कस्यचित्॥ १५८ ॥
सर्वाभिभावी तेन त्वं द्विजश्रेष्ठो भविष्यसि । एवं दत्त्वा वरांस्तस्मै भार्गवाय पुनः पुनः॥ १५९ ॥
अजेयत्वं धनेशत्वमवध्यत्वं च वै ददौ । एतान् लब्ध्वा वरान् काव्यः संप्रहृष्टतनूरुहः॥ १६० ॥
हर्षात्प्रादुर्बभौ तस्य देवस्तोत्रं महेश्वरम् । तदा तिर्यक् स्थितात्वेवं तुष्टुवे नीललोहितम्॥ १६१ ॥
नमोऽस्तु शितिकण्ठाय सुरूपाय सुवर्चसे । रिरिहाणाय लोपाय वत्सराय जगत्पते॥ १६२ ॥
कपर्दिने ह्यूर्ध्वरोम्णे हयाय करणाय च । संस्कृताय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे॥ १६३ ॥
उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे । वसुरेताय रुद्राय तपसे चीरवाससे॥ १६४ ॥
ह्रस्वाय मुक्तकेशाय सेनान्ये रोहिताय च । कवये राजवृद्धाय तक्षकक्रीडनाय च॥ १६५ ॥
गिरिशायार्कनेत्राय यतिने जाम्बवाय च । सुवृत्ताय सुहस्ताय धन्विने भार्गवाय च॥ १६६ ॥
सहस्रबाहवे चैव सहस्रामलचक्षुषे । सहस्रकुक्षये चैव सहस्रचरणायच॥ १६७ ॥
सहस्रशिरसे चैव बहुरूपाय वेधसे । भवाय विश्वरूपाय श्वेताय पुरुषाय च॥ १६८ ॥
निषङ्गिणे कवचिने सूक्ष्माय क्षपणाय च । ताम्राय चैव भीमाय उग्राय च शिवाय च॥ १६९ ॥
बभ्रवे च पिशङ्गाय पिङ्गलायारुणाय च । महादेवाय शर्वाय विश्वरूपशिवाय च॥ १७० ॥
हिरण्याय च शिष्टाय श्रेष्ठाय मध्यमाय च । पिनाकिने चेषुमते चित्राय रोहिताय च॥ १७१ ॥
दुन्दुभ्यायैकपादाय अर्हाय बुद्धये तथा । मृगव्याधाय सर्पाय स्थाणवे भीषणाय च॥ १७२ ॥

उपनिषदों की जो कुछ भी मन्त्रशक्ति मुझमें विद्यमान है, उनके जो भी विविध अंग, उपांग एवं गूढ़ रहस्य मुझे ज्ञात हैं, वे सभी आपको सर्वांशत: प्राप्त होंगे, किसी दूसरे को वे नहीं मिलेंगे । उन सभी के प्रभाव से आप सबको पराजित करने वाले श्रेष्ठ द्विज होंगे ॥ १५३-१५८ ॥

महादेव जी ने भृगुनन्दन शुक्राचार्य जी को यह वरदान देकर बारम्बार अजेय, धनेश और अवध्य होने का वरदान दिया । इन सभी वरदानों को प्राप्तकर शुक्राचार्य परम आनन्दित हुए और उनको रोमाञ्च हो गया । इस हर्षातिरेक में सिर नीचे कर उन्होंने नीललोहित भगवान् शङ्कर की इस प्रकार स्तुति की और यह महान प्रभावशाली देवस्तोत्र उनके मुख से प्रकाशित हुआ ॥ १५९-१६१ ॥

शितिकण्ठ को मेरा प्रणाम है । सुरूप, सुवर्चस्, रिरिहाण, लोप, वत्सर, जगत्पति, कपर्दी, ऊर्ध्वरोम, हय, करण, संस्कृत, सुतीर्थ, देवदेव, रंहस्, उष्णीषी, सुवक्त्र, सहस्राक्ष, मीढुष, वसुरेता, रुद्र, तप, चीरवासा, ह्रस्व, मुक्तकेश, सेनानी, रोहित, कवि, राजवृद्ध, तक्षकक्रीडन, गिरीश, अर्कनेत्र, यती, जाम्बव, सुवृत्त, सुहस्त, धन्वी, भार्गव, सहस्रबाहु, सहस्र अमलचक्षु, सहस्रकुक्ष, सहस्रचरण, सहस्रशिरा, बहुरूप, वेधा, भव, विश्वरूप, श्वेतपुरुष, निषङ्गी, अभिलेखी, सूक्ष्म, क्षपण, ताम्र, भीम, उग्र, शिव, बभ्रु, पिशंग, पिंगल, अरुण, महादेव, शर्व, विश्वरूप, शिव, हिरण्य, शिष्ट, श्रेष्ठ, मध्यम, वधु, पिशङ्ग, पिंगल, अरुण, पिनाकी, इषुमान्, चित्र, रोहित, दुन्दुभ्य, एकपाद, अहं, बुद्धि, मृगव्याध, सर्प, स्थाणु, भीषण, बहुरूप, उग्र, त्रिनेत्र ईश्वर, कपिल, एकवीर, मृत्यु, त्र्यम्बक, जास्तोष्पति, पिनाक, शंकर, शिव, आरण्य, गृहस्थ, यति, ब्रह्मचारी, सांख्य, योग, ध्यानी, दीक्षित, अन्तर्हित, शिव, मान्यता, माली, बुद्ध, शुद्ध, मुक्त, केवल, रोधा, चेकितान, ब्रह्मिष्ठ, महर्षि, चतुष्पाद, मेध्य,

बहुरूपाय चोग्राय त्रिनेत्रायेश्वराय च। कपिलायैकवीराय मृत्यवे त्र्यम्बकाय च॥ १७३ ॥
वास्तोष्पते विनाकाय शंकराय शिवाय च। आरण्याय गुहस्थाय यतिने ब्रह्मचारिणे॥ १७४ ॥
सांख्याय चैव योगाय ध्यानिने दीक्षिताय च। अन्तर्हिताय शर्व्वाय मान्याय मालिने तथा॥ १७५ ॥
बुद्धाय चैव शुद्धाय मुक्तये केवलाय च। रोधसे चेकितानाय ब्रह्मिष्ठाय महर्षये॥ १७६ ॥
चतुष्पादाय मेध्याय धर्मिणे शीघ्रगाय च। शिखण्डिने कपालाय दंष्ट्रिणे विश्वमेधसे॥ १७७ ॥
अप्रतीघाताय दीप्ताय भास्कराय सुमेधसे। क्रूराय विकृतायैव बीभत्साय शिवाय च॥ १७८ ॥
सौम्याय चैव पुण्याय धार्मिकाय शुभाय च। अवध्याय मृताङ्गाय नित्याय शाश्वताय च॥ १७९ ॥
सद्याय शरभायैव शूलिने च त्रिचक्षुषे। सोमपायाज्यपायैव धूमपायोष्मपाय च॥ १८० ॥
शुचये रेरिहाणाय सद्योजाताय मृत्यवे। पिशिताशाय खर्वाय मेधाय वैद्युताय च॥ १८१ ॥
व्याश्रिताय श्रविष्ठाय भारतायान्तरिक्षये। क्षमाय सहमानाय सत्याय तपनाय च॥ १८२ ॥
त्रिपुरघ्नाय दीप्ताय चक्राय रोमशाय च। तिग्मायुधाय मेध्याय सिद्धाय च पुलस्तये॥ १८३ ॥
रोचमानाय खण्डाय स्फीताय ऋषभाय च। भोगिने पुञ्जमानाय शान्तायैवोर्द्धरेतसे॥ १८४ ॥
अघघ्नाय मखघ्नाय मृत्यवे यज्ञियाय च। कृशानवे प्रचेताय वह्नये किशलाय च॥ १८५ ॥
सिकत्याय प्रसन्नाय वरेण्यायैव चक्षुषे। क्षिप्रगवे सुधन्वाय प्रमेध्याय पिवाय च॥ १८६ ॥
रक्षोघ्नाय पशुघ्नाय विघ्नाय शयनाय च। विभ्रान्ताय महान्ताय अन्तये दुर्गमाय च॥ १८७ ॥
दक्षाय च जघन्याय लोकानामीश्वराय च। अनामयाय चोर्द्धाय संहत्याधिष्ठिताय च॥ १८८ ॥
हिरण्यबाहवे चैव सत्याय शमनाय च। असिकल्पाय माघाय रीरिण्यायैकचक्षुषे॥ १८९ ॥
श्रेष्ठाय वामदेवाय ईशानाय च धीमते। महाकल्पाय दीप्ताय रोदनाय हसाय च॥ १९० ॥
वृतधन्वने कवचिने रथिने न वरूथिने। भृगुनाथाय शुक्राय वह्निरिष्टाय धीमते॥ १९१ ॥
अघाय अघशंसाय विप्रियाय प्रियाय च। दिग्वासःकृत्तिवासाय भगघ्नाय नमोऽस्तु ते॥ १९२ ॥

धर्मी, शीघ्रग, शिखण्डी, कपाल, दंष्ट्री, विश्वमेधा, अप्रतीघात, दीप्त, भास्कर, सुमेधा, क्रूर, विकृत, वीभत्स, शिव, सौम्य, पुण्य, धार्मिक, शुभ, अवध्य, अमृताङ्ग, नित्य, शाश्वत, कट्य, शरभ, शूली, त्रिचक्षु, सोमपा, आज्यपा, धूमपा, ऊष्मपा, शुचि रेरिहाण, सद्योजात, मृत्यु, पिशिताश, खर्व, मेध, वैद्युत, व्याश्रित, स्रविष्ठ, भारत, अन्तरिक्ष, क्षम, सहमान, सत्य, तपन, त्रिपुरघ्न, दीप्त, चक्र, रोमश, तिग्मायुध, मेध्य, सिद्ध, पुलस्ति, रोचमान, खण्ड, स्फीत, ऋषभ, भोगी, युञ्जमान, शान्त, ऊर्ध्वरेता, अवघ्न, मखघ्न, मृत्यु, यज्ञिय, कृशानु, प्रचेता, वह्नि, किशल, सिकत्य, प्रसन्न, वरेण्य, चक्षु, क्षिप्रगु, सुधन्य, प्रमेध्य, पिव, रक्षोघ्न, पशुघ्न, विघ्न, शयन, विभ्रान्त, महान्त, अन्ति, दुर्गम, दक्ष, जघन्य, लोकों के अधीश्वर, अनामय, ऊर्ध्व, संहत्याधिष्ठित (समूह में अर्थात् अपने अनुचरगणों में रहने वाले या लोकों के विनाश कर्म में निरत रहने वाले), हिरण्यबाहु, सत्य, शमन, असिकल्प, माघ, रीरिण्य, एकचक्षु, श्रेष्ठ, वामदेव, ईशान, महाकल्प, दीप्त, रोदन, हस, दृढधन्वा, अभिलेखी, रथी, वरूथी, भृगुनाथ, शुक्र, बह्निरिष्ट, धीमान, अघ, अघसंस, विप्रिय, प्रिय, दिग्वासा, कृतिवासा, भगघ्न नामों वाले भगवन्! आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ १७१-१९२ ॥

पशूनां पतये चैव भूतानां पतये नमः । प्रणवे ऋग्यजुःसाम्ने स्वधायै च सुधाय च॥ १९३ ॥
वषट्कारतमायैव तुभ्यमन्तात्मने नमः । स्रष्ट्रे धात्रे तथा होत्रे हर्त्रे च क्षपणाय च॥ १९४ ॥
भूतभव्यभवायैव तुभ्यं कालात्मने नमः । वसवे चैव साध्याय रुद्रादित्याश्विनाय च॥ १९५ ॥
विश्वाय मरुते चैव तुभ्यं देवात्मने नमः । अग्नीषोमर्त्विगिज्याय पशुमन्त्रौषधाय च॥ १९६ ॥
दक्षिणावभृथायैव तुभ्यं यज्ञात्मने नमः । तपसे चैव सत्याय त्यागाय च शमाय च॥ १९७ ॥
अहिंसायाप्यलोभाय सुवेशायातिशाय च । सर्वभूतात्मभूताय तुभ्यं लोकात्मने नमः॥ १९८ ॥
पृथिव्यै चान्तरिक्षाय दिवाय च महाय च । जनस्तपाय सत्याय तुभ्यं लोकात्मने नमः॥ १९९ ॥
अव्यक्तायाथ महते भूतायैवेन्द्रियाय च । तन्मात्राय महान्ताय तुभ्यं तत्त्वात्मने नमः॥ २०० ॥
नित्याय चार्थलिङ्गाय सूक्ष्माय चेतनाय च । शुद्धाय विभवे चैव तुभ्यं नित्यात्मने नमः॥ २०१ ॥
नमस्ते त्रिषु लोकेषु स्वरान्तेषु भवादिषु । सत्यान्तेषु महान्तेषु चतुर्षु च नमोऽस्तु ते॥ २०२ ॥
नमः स्तोत्रे मया ह्यस्मिन्सदसद्व्याहृतं विभो । मद्भक्त इति ब्रह्मण्य सर्वन्तत् क्षन्तुमर्हसि॥ २०३ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे विष्णुमाहात्म्यकीर्तनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

* * *

हे पशुओं के स्वामी, सभी जीवों के रक्षक हम आपको नमस्कार करते हैं । हे भगवान् ! आप ही प्रणव, ऋग, यजु, साम तीनों वेद, स्वधा, सुधा, वषट्कारस्वरूप एवं अनन्तात्मा हैं, आपको हमारा नमस्कार है, स्रष्टा, धाता, होता, हर्ता, क्षपण, भूत, भव्य, भव नामों वाले कालस्वरूप भगवन् । आपको नमस्कार है । हे वसु, सत्य, त्याग, शम, विश्वेदेव एवं मरुत् प्रभृति गण देवताओं के स्वरूप भगवन् ! आपको नमस्कार है । अग्नि, सोम, ऋत्विक, इज्य, पशु, मन्त्र, औषध, दक्षिणा, अवभृथ एवं यज्ञस्वरूप आपको हम नमस्कार करते हैं । तप, सत्य, त्याग, शुभ, अहिंसा, अलोभ, सुवेश, अतिशय, सर्वभूतात्मभूत, लोकात्मन् ! आपको हमारा नमस्कार है । पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिव, मह, जन, तप, सत्य प्रभृति लोकात्मन स्वरूप भगवन् ! आपको हम नमस्कार करते हैं । अव्यक्त, महान्, भूत, इन्द्रिय, तन्मात्रा, महान्त प्रभृति तत्त्वस्वरूप भगवन् आपको नमस्कार है । नित्य, लिङ्ग, सूक्ष्म, चेतन, शुद्ध, विभु, नित्यात्मन् ! आपको हम नमस्कार करते हैं । स्वरन्त-त्रय (भूः भुवः और स्वः) एवं चारों सत्यान्त (मह, जन तप और सत्य) महान् लोकों में व्याप्त रहने वाले भगवन् ! आपको नमस्कार है ॥ १९३-२०२ ॥

हे विभो ! इस स्तुति में मैंने जो कुछ सदसत् कहा है, उसे यह समझकर कि यह मेरा भक्त है, आप क्षमा कर दें । क्योंकि आप ब्राह्मणों के ऊपर कृपा करने वाले हैं ॥ २०३ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में विष्णुमाहात्म्य वर्णन नामक पैंतीसवें अध्याय (सत्तानबेवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३५ ॥**

* * *

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

विष्णुमाहात्म्यकीर्तनम्

सूत उवाच

एवमाराध्य देवेशमीशानं नीललोहितम् । ब्रह्मेति प्रणतस्तस्मै प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ १ ॥
काव्यस्य गात्रं संस्पृश्य हस्तेन प्रीतिमान्भवः । निकामं दर्शनं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत॥ २ ॥
ततः सोऽन्तर्हिते तस्मिन्देवेशानुचरे तदा । तिष्ठन्तीं प्राञ्जलिर्भूत्वा जयन्तीमिदमब्रवीत्॥ ३ ॥
कस्य त्वं सुभगे का वा दुःखिते मयि दुःखिता । महता तपसा युक्तं किमर्थं माञ्जुगोपसि॥ ४ ॥
अनया सततं भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च । स्नेहेन चैव सुश्रोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि॥ ५ ॥
किमिच्छसि वरारोहे कस्ते कामः समृध्यताम् । तं ते संपूरयाम्यद्य यद्यपि स्यात्सुदुर्लभम्॥ ६ ॥
एवमुक्ताऽऽब्रवीदेनं तपसा ज्ञातुमर्हसि । चिकीर्षितं मे ब्रह्मिष्ठ त्वं हि वेत्थ यथातथम्॥ ७ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय

(अट्ठानबेवाँ अध्याय)

विष्णु-माहात्म्य-कीर्त्तन

श्रीसूतजी ने कहा—शुक्राचार्य ने इस प्रकार नीललोहित देवताओं के ईश भगवान् शङ्कर की आराधना की। पुनः प्रणाम किया और हाथ जोड़े हुए ब्रह्म का उच्चारण किया। प्रार्थना से प्रसन्न महादेव जी ने अपने हाथ से शुक्राचार्य के शरीर का स्पर्श किया एवं पर्याप्त दर्शन देकर वे वहीं अन्तर्हित हो गये ॥ १-२ ॥

देवेश के अन्तर्धान हो जाने पर हाथ जोड़कर समक्ष उपस्थित जयन्ती से शुक्राचार्य ने कहा—सुन्दरि ! आप किसकी पुत्री हो। मेरे दुःख के समय दुःखी आप कौन हो? ऐसी महान् तपस्या में निरत रहकर आप किस लिए मेरी रक्षा में दत्तचित्त रही हो। हे सुन्दर अंगों वाली, सुश्रोणि ! तुम्हारी इस सर्वदा एक रूप रहने वाली भक्ति, कष्टसहिष्णुता, प्रणय और स्नेह से मैं बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ३-५ ॥

हे सुन्दरि ! तुम क्या चाहती हो, मैं तुम्हारी किस कामना की पूर्ति करूँ? तुम्हारी जो भी अभिलाषा होगी चाहे वह अत्यन्त कठिन ही क्यों न होगी मैं आज पूर्ण करना चाहूँगा। शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर जयन्ती ने कहा—'ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मर्षे ! मेरे मनोरथ को आप अपने तपोबल से जान सकते हैं, मेरी सारी अभिलाषाओं को आप यथार्थ रूप से जानते भी हैं' ॥ ६-७ ॥

एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा । माहेन्द्री त्वं वरारोहे मद्धितार्थमिहाऽऽगता ॥ ८ ॥
मया सह त्वं सुश्रोणि दश वर्षाणि भामिनि । अदृश्यं सर्वभूतैस्तु संप्रयोगमिहेच्छसि ॥ ९ ॥
देवेन्द्रानलवर्णाभे वरारोहे सुलोचने । इमं वृणीष्व कामं ते मत्तो वै वल्गुभाषिणि ॥ १० ॥
एवं भवतु गच्छामो गृहान्वै मत्तकाशिनि । ततः स्वगृहमागम्य जयन्त्या सहितः प्रभुः ॥ ११ ॥
स तया संवसेद्देव्या दश वर्षाणि भागशः । अदृश्यः सर्वभूतानां मायया संवृतस्तदा ॥ १२ ॥
कृतार्थमागतं दृष्ट्वा काव्यं सर्वे दितेः सुताः । अभिजग्मुर्गृहं तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः ॥ १३ ॥
गता यदा न पश्यन्तो जयन्त्या संवृतं गुरुम् । दाक्षिण्यं तस्य तद्बुद्ध्वा प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥ १४ ॥
बृहस्पतिस्तु संरुद्धं ज्ञात्वा काव्यं चकार ह । पित्रर्थे दश वर्षाणि जयन्त्या हितकाम्यया ॥ १५ ॥
बुद्ध्वा तदन्तरं सोऽथ दैत्यानामिव चोदितः । काव्यस्य रूपमास्थाय सोऽसुरान्समभाषत ॥ १६ ॥
ततः समागतान्दृष्ट्वा बृहस्पतिरुवाच तान् । स्वागतं मम याज्यानां संप्राप्तोऽस्मि हिताय च ॥ १७ ॥
अहं वोऽध्यापयिष्यामि प्राप्ता विद्या मया हि सा । ततस्ते हृष्टमनसो विद्यार्थमुपपेदिरे ॥ १८ ॥
पूर्ण कामस्तदा तस्मिन्समये दशवार्षिके । ययौ च समकालं स सद्योत्पन्नमतिस्तदा ॥ १९ ॥
समयान्ते देवयानी सद्योजाता सुता तदा । बुद्धिं चक्रे ततश्चापि याज्यानां प्रत्यवेक्षणे ॥ २० ॥

जयन्ती के ऐसा कहने पर शुक्राचार्य अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा उसके मनोरथों को जानकर बोले— इन्द्रपुत्रि ! सुन्दरि, तुम यहाँ मेरी रक्षा के लिए आयी हुई थी, हे भामिनि ! सुश्रोणि मेरे साथ दस वर्षों तक सभी प्राणियों से अदृश्य रहकर तुम निवास करना चाहती हो, देवेन्द्रपुत्रि ! अग्नि के समान गौरवर्णवाली । सुन्दरि, सुलोचने ! मृदुभाषिणि ! अपने इस मनोरथ की मुझसे पूर्णता प्राप्त करोगी । तुम्हारा मनोरथ सफल होगा । मत्त चाल चलनेवाली ! चलो, अब हम अपने निवास को चल रहे हैं । इस प्रकार जयन्ती से बातें कर भगवान् शुक्राचार्य अपने निवास-स्थल पर आये और समस्त प्राणधारियों से अदृश्य होकर मायापूर्वक दस वर्षों तक उसके साथ निवास करने का निश्चय किया ॥ ८-१२ ॥

इधर शुक्राचार्य को सफल मनोरथ होकर लौट आने का वृत्तान्त जब दैत्यों को विदित हुआ तो वे परम प्रसन्न हुए और देखने की इच्छा से उनके आश्रम पर गये । वहाँ जाने पर जयन्ती के साथ अज्ञातवास करते हुए अपने आचार्य को नहीं देख सके, और उनकी इस नीतिनिपुणता को जानकर परम मुदित हुए । उधर देवगुरु बृहस्पति ने जब यह सुना कि देवताओं की हितकारिणी जयन्ती ने अपने पिता की हितकामना से दस वर्षों के लिए शुक्राचार्य के पास गयी थी, शुक्राचार्य को एकान्तवास करते सुना तो एक अच्छा अवसर देखा ॥ १३-१५ ॥

उन्होंने शुक्राचार्य का स्वरूप बनाकर, इस मुद्रा में मानो दैत्यों ने उन्हें ही तपस्या के लिए प्रेरित किया था, शुक्राचार्य के दर्शन करने के लिए आये हुए असुरों से कहा—मेरे यजमानों का स्वागत है, तुम लोगों के हित के लिए मैं तपस्या से निवृत्त होकर आ गया । मैंने वह विद्या, जिसकी प्राप्ति के लिए इतना कठोर तप करना पड़ा, पा ली है, उसे तुम सबको पढ़ाऊँगा । बृहस्पति की ऐसी बातें सुनकर दैत्यगण बहुत प्रसन्न हुए और विद्याध्ययन के लिए वहाँ एकत्र हुए । जयन्ती के अनुरोधानुसार इस दस वर्ष की अवधि के पूर्ण होने पर शुक्राचार्य का मोह नष्ट हुआ और उन्हें सद्बुद्धि प्राप्त हुई, अवधि के अन्त में जयन्ती के संयोग से उनकी पुत्री देवयानी उत्पन्न हुई । तदनन्तर उन्होंने अपने यजमानों की देखभाल करने का विचार किया ॥ १६-२० ॥

शुक्र उवाच

देवि गच्छामहे द्रष्टुं तव याज्याञ्शुचिस्मिते। विभ्रान्तप्रेक्षिते साध्वि त्रिवर्णायतलोचने॥ २१ ॥
एवमुक्ताऽब्रवीद् देवी भजभक्तान्महाव्रत। एष ब्रह्मन्सतां धर्मो न धर्मं लोपयामि ते॥ २२ ॥

सूत उवाच

ततो गत्वाऽसुरान्दृष्ट्वा देवाचार्येण धीमता। वञ्चितान्काव्यरूपेण वेधसाऽसुरमब्रवीत्॥ २३ ॥
काव्यं मां तात जानीध्वमेष ह्याङ्गिरसो भुवि। वञ्चिता बत यूयं वै मयि शक्ते तु दानवाः॥ २४ ॥
श्रुत्वा तथा ब्रुवाणं तं संभ्रान्ता दितिजास्ततः। प्रेक्षन्ते स्म ह्युभौ तत्र सितासितशुचिस्मितौ॥ २५ ॥
संप्रमूढाः स्थिताः सर्वे प्रापद्यन्त न किंचन। ततस्तेषु प्रमूढेषु काव्यस्तान्पुनरब्रवीत्॥ २६ ॥
आचार्यो वो ह्यहं काव्यो देवाचार्योऽयमङ्गिराः। अनुगच्छत मां सर्वे त्यजतैनं बृहस्पतिम्॥ २७ ॥
एवमुक्ताऽसुराः सर्वे तावुभौ समवैक्षत। तदासुरा विशेषं तु न व्यजानंस्तथोर्द्वयोः॥ २८ ॥
बृहस्पतिरुवाचैतानसंभ्रान्तोऽयमङ्गिराः। काव्योऽहं यो गुरुर्दैत्या मद्रूपोऽयं बृहस्पतिः॥ २९ ॥
स मोहयति रूपेण मामकेनैष वोऽसुराः। श्रुत्वा तस्य ततस्ते वै संमन्त्र्यार्थवचोऽब्रवीत्॥ ३० ॥
अयं नो दश वर्षाणि सततं शास्ति वै प्रभुः। एष वै गुरुरस्माकमन्तरेप्सुरयं द्विजः॥ ३१ ॥
ततस्ते दानवाः सर्वे प्रणिपत्याभिवाद्य च। वचनं जगृहुस्तस्य चिराभ्यासेन मोहिताः॥ ३२ ॥

शुक्र ने कहा—शुचिस्मिते ! देवि ! सध्वि ! दीर्घनेत्रे ! सुन्दर प्रेक्षणे ! मैं अब तुम्हारे यजमानों को देखने के लिए जाना चाहता हूँ। शुक्राचार्य के ऐसा कहने पर जयन्ती ने कहा, महाव्रत ! अपने भक्तों का कल्याण कीजिये, सत्पुरुषों का यही धर्म है, आपके धर्म को मैं नष्ट नहीं करूँगी ॥ २१-२२ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—इस प्रकार जयन्ती से बातें कर शुक्राचार्य ने जाकर असुरों को देखा कि उन्हे परम बुद्धिमान् देवताओं के गुरु बृहस्पति ने मेरा स्वरूप धारणकर ठग लिया है। ऐसा देखकर वे परम विस्मित होकर असुरों से बोले, दानवों! शुक्राचार्य तो मैं हूँ, यह तो अंगिरा का पुत्र बृहस्पति है, मुझे खेद है कि मेरे रहते हुए भी तुम लोग ठगे गये। शुक्राचार्य को ऐसे कहते हुए देखकर दैत्यगण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये और वहीं पर परम खिन्न एवं विस्मित होकर दोनों गुरुओं की ओर देखने लगे। बड़ी देर तक इसी प्रकार से अज्ञान में पड़े रहे, किसी भी निश्चय पर नहीं पहुँच सके। दैत्यों के किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाने पर शुक्राचार्य ने पुनः उनसे कहा—'अरे दानवों! तुम लोगों का आचार्य शुक्र मैं ही हूँ, यह अंगिरा का पुत्र देवताओं का गुरु बृहस्पति है, मेरी आज्ञा मानो, इसके कहने में न आओ, इसको छोड़ो।' शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर भी सब दानवगण दोनों आचार्यों की ओर देखते ही रह गये। उन्हें उन दोनों में कोई विशेषता नहीं जान पड़ी ॥ २३-२८ ॥

तदुपरान्त बिना किसी घबराहट के स्वाभाविक स्वर में बृहस्पति ने कहा—दैत्यों ! तुम लोगों के गुरु शुक्राचार्य मैं हूँ। यह मेरा स्वरूप धारणकर अंगिरा पुत्र बृहस्पति है। अरे असुरों ! मेरा स्वरूप धारणकर यह तुम लोगों को मोहित कर रहा है। बृहस्पति की ऐसी बातें सुनकर दैत्यों ने आपस में सम्मति करके निश्चयपूर्वक यह वचन कहा—परम ऐश्वर्यशाली यही हमें आज दस वर्षों से पढ़ाते आ रहे हैं अतः यही हमारे वास्तविक गुरु हैं। यह ब्राह्मण हम लोगों के भेद को जानने की इच्छा से यहाँ कृत्रिम वेश धारणकर आया हुआ है।' इस प्रकार कहकर

ऊचुस्तमसुराः सर्वे क्रुद्धा संरक्तलोचनाः। अयं गुरुर्हितोऽस्माकं गच्छ त्वं नासि नो गुरुः ॥ ३३ ॥
भार्गवोऽङ्गिरसो वाऽयं भवत्वेवैष नो गुरुः । स्थिता वयं निदेशेऽस्य गच्छ त्वं साधु मा चिरम् ॥ ३४॥
एवमुक्त्वाऽसुराः सर्वे प्रापद्यन्त बृहस्पतिम् । यदा न प्रतिपद्यन्ते तेनोक्तं तन्महद्धितम् ॥ ३५ ॥
चुकोप भार्गवस्तेषामवलेपेन वै तदा । बोधिता हि मया यस्मान्न मां भजत दानवाः ॥ ३६ ॥
तस्मात्प्रनष्टसंज्ञा वै पराभवं गमिष्यथ । इति व्याहृत्य तान्काव्यो जगामाथ यथागतम् ॥ ३७ ॥
ज्ञात्वाऽभिशस्तानसुराकाव्येन तु बृहस्पतिः । कृतार्थः स तदा हृष्टः स्वयं प्रत्यपद्यत ॥
बुद्ध्याऽसुरांस्तदा भ्रष्टान्तार्थोऽन्तरधीयत ॥ ३८ ॥
ततः प्रनष्टे तस्मिंस्ते विभ्रान्ता दानवास्तदा । अहो धिग्वञ्चितास्मेह परस्परमथाब्रुवन् ॥ ३९ ॥
पृष्ठतो विमुखाश्चैव ताडिता वेध सा वयम् । दग्धाश्चैवोपयोगाच्च स्वे स्वे चार्थेषु मायया ॥ ४० ॥
ततोऽसुराः परित्रस्ता देवेभ्यस्त्वरिता ययुः । प्रह्लादमग्रतः कृत्वा काव्यस्यानुगमं पुनः ॥ ४१ ॥
ततः काव्यं समासाद्य अभितस्थुरवाङ्मुखाः । तानागतान्पुनर्दृष्ट्वा काव्यो याज्यानुवाच ह ॥ ४२ ॥

चिरकाल के अभ्यास से मोह को प्राप्त होने वाले उन समस्त असुरगणों ने पुनः बृहस्पति को ही शुक्राचार्य समझकर प्रणाम और अभिवादन किया और उन्हीं की बातें अंगीकार कीं । इतना ही नहीं, शुक्राचार्य के ऊपर वे परम क्रुद्ध हो गये, उनके नेत्र लाल हो आये और वे आवेश में भरकर बोले, हमारे कल्याण के चाहने वाले आचार्य यही हैं, तुम हमारे आचार्य नहीं हो, यहाँ से चले जाओ ॥ २९-३३ ॥

यह चाहे भृगु के पुत्र शुक्राचार्य हों या अंगिरा के पुत्र बृहस्पति हों, यही अब हमारे गुरु हैं, हम सब अब इन्हीं के आदेश में स्थित हैं । तुम यहाँ से चले जाओ, देर मत करो, इसी में तुम्हारी भलाई है । ऐसा कहकर दैत्यगण बृहस्पति के समीप चले आये । इस प्रकार शुक्राचार्य की महान् कल्याणकारिणी बातों की अवज्ञाकर जब दैत्यगण उनके पास नहीं गये तब शुक्राचार्य उनके गर्व से परम कुपित हो उठे और बोले—अरे दानवों ! मेरे बहुत समझाने पर भी तुम लोग मेरे कहने में नहीं आ रहे हो, अतः तुम सबकी चेतना मारी जायगी और निश्चय ही तुम्हारी पराजय होगी ।' दैत्यों को ऐसा शाप देकर शुक्राचार्य जहाँ से जैसे आये थे चले गये । इधर शुक्राचार्य द्वारा उन असुरों को दूषित एवं शापग्रस्त जानकर बृहस्पति अपने उद्देश्य में सफल हो गये, उन्हें परम प्रसन्नता प्राप्त हुई, और वे अपने वास्तविक स्वरूप में आ गये । जब उन्होंने समझ लिया कि असुरगण अपनी उद्देश्यसिद्धि में विफल हो चुके हैं, तब अपने को कृतार्थ समझकर अन्तर्हित हो गये ॥ ३४-३८ ॥

इस प्रकार बृहस्पति के अन्तर्धान हो जाने पर दानवगण परम व्याकुल हो गये और आपस में कहने लगे कि हाय उसने हम लोगों को ठग लिया, हमें धिक्कार है । हम लोग अपने कर्त्तव्य से विमुख हो गये, विधाता ने हमें पीछे से दण्ड दिया, अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए देवगुरु ने माया करके हमें छल लिया, इस तरह हम लोग नष्ट हो गये ॥ ३९-४० ॥

ऐसी बातें परस्पर करते हुए असुरगण देवताओं से परम संत्रस्त होकर भाग खड़े हुए और प्रह्लाद को अगुआ बनाकर पुनः शुक्राचार्य के पीछे-पीछे दौड़े, और शुक्राचार्य के समीप जाकर नीचे मुख करके खड़े हो गये । शुक्राचार्य ने अपने यजमानों को पुनः अपनी शरण में आया हुआ देखकर उनसे कहा—दैत्यों ठीक समय पर मैंने

मयाऽपि बोधिताः काले यतो मां नाभिनन्दथ । ततस्तेनावलेपेन गता यूयं पराभवम्॥ ४३ ॥
प्रह्लादस्तमथोवाच मानं स्वं त्यज भार्गव । स्वान्याज्यान्भजमानांश्च भक्तांश्चैव विशेषतः॥ ४४ ॥
त्वया पृष्टा वयं तेन देवाचार्येण मोहिताः । भक्तानर्हसि नस्त्रातुं ज्ञात्वा दीर्घेण चक्षुषा॥ ४५ ॥
यदि नस्त्वं न कुरुषे प्रसादं भृगुनन्दन । अपध्यातास्त्वया ह्यद्य प्रवेक्ष्यामो रसातलम्॥ ४६ ॥

सूत उवाच

ज्ञात्वा काव्यो यथातत्त्वं कारुण्येनानुकम्पया । एवमुक्तोऽनुनीतः स स्तुतः कोपं न्ययच्छत॥ ४७ ॥
उवाचेदं न भेतव्यं न गन्तव्यं रसातलम् । अवश्यंभावी ह्यर्थोऽयं प्राप्तो वो मयि जाग्रति॥ ४८ ॥
न शक्यमन्यथाकर्तुं दृष्टं हि बलवत्तरम् । संज्ञा प्रनष्टा या वोऽद्य कामं तां प्रतिलप्स्यथ॥ ४९ ॥
प्राप्तः पर्यायकालो व इति ब्रह्माऽभ्यभाषत । मत्प्रसादाच्च युष्माभिर्भुक्तं त्रैलोक्यमूर्जितम्॥ ५० ॥
युगाख्यो दश संपूर्णो देवानाक्रम्य मूर्धनि । तावन्तमेवं कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत॥ ५१ ॥
सावर्णिके पुनस्तुभ्यं राज्यं किल भविष्यति । लोकानामीश्वरो भावी पौत्रस्तव पुनर्बलिः॥ ५२ ॥
एवं किलमहं प्रोक्तः पौत्रस्ते ब्रह्मणा स्वयम् । तथा हृतेषु लोकेषु तपोऽस्य न किलाभवत्॥ ५३ ॥

तुम लोगों को समझाया था; परन्तु तुम लोगों ने मेरी एक बात भी नहीं मानी, अत: उसी अभिमान के कारण तुम लोग पराजय को प्राप्त हो रहे हो ॥ ४१-४३ ॥

शुक्राचार्य की ऐसी बातें सुनकर प्रह्लाद ने कहा—हे भृगुनन्दन ! आप अमर्ष छोड़ दें । अपने यजमान विशेषतया परमभक्त एवं अनुगामी असुरों को बचाइये । आपने हम लोगों की समय-समय पर रक्षा की है, आप अपनी दिव्य दृष्टि से यह जान सकते हैं कि हमें देवाचार्य ने ठग लिया था । हम आपके भक्त हैं, हमारी रक्षा कीजिये । हे भृगुनन्दन ! यदि आज आप हम लोगों की रक्षा नहीं करते, तो फिर से अपमानित होकर हम लोग रसातल को जा रहे हैं ॥ ४४-४६ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! दैत्यों एवं दानवों के इस प्रकार निवेदन करने पर शुक्राचार्य को सब बातें यथार्थत: ज्ञात हुईं जिससे उनका क्रोध दूर हो गया । दैत्यों के ऊपर उन्हें बड़ी करुणा हुई । वे अनुकम्पा के स्वर में यह बोले—दैत्यों ! डरो मत, रसातल मत जाओ । किन्तु अवश्य घटित होने वाली यह घटना तो मेरे प्रयत्नशील रहने पर भी घटित होगी ॥ ४७-४८ ॥

अदृष्ट महाबलवान् होता है, उसे हम टाल नहीं सकते । तुम लोगों की चेतना नष्ट होने का आज जो अभिशाप मैंने दिया है, उसे तो अवश्यमेव भोगना पड़ेगा । ब्रह्मा ने यह कहा है, अर्थात् उनको यह अभीष्ट है कि तुम लोगों का यह अवनतिकाल प्रारम्भ हो, अत: वह अवनति का क्रम प्राप्त हो गया है । मेरे अनुग्रह से तुम लोगों ने त्रैलोक्य की समस्त समृद्धियों का उपभोग किया है ॥ ४९-५० ॥

देवताओं के सिर पर आक्रमण कर राज्य प्राप्त किये हुए तुम लोगों के दस युग व्यतीत हो चुके, उतने ही समय तक का राज्य ब्रह्मा ने तुम लोगों के लिए कहा है । सावर्णिक मन्वन्तर के आने पर तुम्हें पुन: निश्चय ही राज्य की प्राप्ति होगी । उस समय तुम्हारा पौत्र बलि समस्त लोकों का अधीश्वर होगा ॥ ५१-५२ ॥

इन सब बातों को मुझसे स्वयं ब्रह्मा ने कहा है । जो मैं कह रहा हूँ वे अवश्यमेव घटित होंगी । तुम्हारे

यस्मात्प्रवृत्तयश्चास्य न कामानभिसंधिताः । तस्मादजेन प्रीतेन दत्तं सावर्णिकेऽन्तरे ॥ ५४ ॥
देवराज्यं बलेर्भाव्यमिति मामीश्वरोऽब्रवीत् । तस्माददृश्यो भूतानां कालाकाङ्क्षी स तिष्ठति ॥ ५५ ॥
प्रीतेन चामरत्वं वै दत्तं तुभ्यं स्वयंभुवा । तस्मान्निरुत्सुकस्त्वं वै पर्यायं सह माकुलः ॥ ५६ ॥
न च शक्यं मया तुभ्यं पुरस्ताद्वै विसर्पितुम् । ब्रह्मणा प्रतिषिद्धोस्मि भविष्यं जानता प्रभो ॥ ५७ ॥
इमौ च शिष्यौ द्वौ मह्यं तुल्यावेतौ बृहस्पतेः । दैवतैः सह संरब्धान्सर्वान्वो धारयिष्यतः ॥ ५८ ॥

सूत उवाच

एवमुक्तस्तु दैतेयाः काव्येनाक्लिष्टकर्मणा । ततस्ताभ्यां ययुः सार्धं प्रह्लादप्रमुखास्तदा ॥ ५९ ॥
अवश्यंभावमर्थत्वं श्रुत्वा शुक्राच्च दानवाः । सकृदाशंसमानास्ते जयं काव्येन भाषितम् ॥ ६० ॥
दंशिताः सायुधाः सर्वे ततो देवान्समाह्वयन् । अथ देवासुरान्दृष्ट्वा सङ्ग्रामे समुपस्थितान् ॥ ६१ ॥
ततःसंवृत्तसंनाहा देवास्तान्समयोधयन् । दैत्यासुरे ततस्तस्मिन्वर्तमाने शतं समाः ॥
अजयन्नसुरा देवान्भग्ना देवा अमन्त्रयन् ॥ ६२ ॥

देवा ऊचुः

षण्डामार्कप्रभावं न जानीमस्त्वसुरैर्वयम् । तस्माद्यज्ञं समुद्दिश्य कार्यं चाऽऽत्महितं च यत् ॥ ६३ ॥

पौत्र बलि से समस्त लोक छिन जायेंगे । उसके तपोबल से कुछ न होगा तब यह निष्काम भाव से तपस्या में निरत होगा । उसकी प्रवृत्तियाँ निःस्वार्थ होंगी, उस समय अजन्मा ब्रह्मा प्रसन्न होकर सावर्णिक मन्वन्तर में उसे अमरत्व प्रदान करेंगे ॥ ५३-५४ ॥

देवताओं का समस्त वैभव एवं साम्राज्य बलि को प्राप्त होगा—ऐसा ब्रह्मा ने मुझसे कहा है । इसलिए सभी प्राणधारियों से अदृश्य होकर उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करते हुए वह कालयापन करता है । इस समय किसी प्रकार की उत्सुकता एवं व्याकुलता के बिना काल के इस चक्र को सहन करो, मैं तुम्हारी इस समय के आने के पूर्व किसी प्रकार रक्षा नहीं कर सकता । हे सर्वसमर्थ ! भविष्य की सब बातों को जानने वाले स्वयं ब्रह्मा जी ने इस विषय में मुझे कुछ कहने से रोका है ॥ ५५-५७ ॥

बृहस्पति के शिष्य देवगण और हमारे शिष्य तुम लोग दोनों ही हमारे लिए यद्यपि समान हो, तथापि देवताओं के साथ युद्धभूमि में विरुद्ध लड़ने वाले तुम सबकी हम और देवताओं की बृहस्पति रक्षा करेंगे ॥ ५८ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! अपने यजमानों के उपकार में सर्वदा निरत रहने वाले शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर प्रह्लाद व प्रमुख दैत्यगण उन दोनों के साथ गये । अवश्य घटित होने वाली घटना तो घटकर ही रहेगी । शुक्राचार्य की बातें सुनकर दानवों ने यह विचार किया कि गुरु शुक्राचार्य ने तो हम लोगों को एक बार विजय प्राप्ति की बात बतायी ही है । (अतः देवताओं के साथ युद्ध ही क्यों न किया जाय?) ॥ ५९-६० ॥

ऐसा निश्चय कर उन सब ने अस्त्र-शस्त्रादि धारणकर युद्ध के लिए देवताओं का आह्वान किया । देवताओं ने संग्राम के लिए असुरों को जब तैयार देखा तो कवच आदि धारणकर युद्ध करने के लिए आ गये और घोर युद्ध करने लगे । वह घोर देवासुर संग्राम सौ वर्षों तक चलता रहा । अन्त में असुरों ने देवताओं पर विजय प्राप्त की । पराजित देवताओं ने आपस में सम्मति की ॥ ६१-६२ ॥

तज्ज्ञानापहृतावेतौ कृत्वा जेष्यामहेऽसुरान् । अथोपामन्त्रयन्देवाः षण्डामार्कौ तु तावुभौ ॥ ६४ ॥
यज्ञे समाह्वयिष्यामस्त्यजतमसुरान्द्विजौ । ग्रहं तं वा ग्रहीष्यामो ह्यनुजित्य तु दानवान् ॥ ६५ ॥
एवं तत्यजतुस्तौ तु षण्डामार्कौ तदाऽसुरान् । ततो देवा जयं प्राप्ता दानवाश्च पराभवम् ॥ ६६ ॥
देवाऽसुरान्पराभाव्य षण्डामार्कावुपागमन् । काव्यशापाभिभूताश्च ह्यनाधाराश्च ते पुनः ॥ ६७ ॥
वध्यमानास्तदा देवैर्विविशुस्ते रसातले । एवं निरुद्यमास्ते वै कृताः शक्रेण दानवाः ॥
ततः प्रभृति शापेन भृगुनैमित्तिकेन च ॥ ६८ ॥
जज्ञे पुनः पुनर्विष्णुर्यज्ञे च शिथिले प्रभुः । कर्तुं धर्मव्यवस्थानमधर्मस्य च नाशनम् ॥ ६९ ॥
प्रह्लादस्य निदेशे तु येऽसुरा न व्यवस्थिताः । मनुष्यवध्यांस्तान्सर्वान्ब्रह्माऽनुव्याहरत्प्रभुः ॥ ७० ॥
धर्मान्नारायणस्तस्मात्संभूतश्चाक्षुषेऽन्तरे । यज्ञं प्रवर्तयामास चैत्ये वैवस्वतेऽन्तरे ॥ ७१ ॥
प्रादुर्भावे तदाऽन्यस्य ब्रह्मैवाऽऽसीत्पुरोहितः । चतुर्थ्यां तु युगाख्यायामापन्नेष्वसुरेष्वथ ॥ ७२ ॥
संभूतः स समुद्रान्तर्हिरण्यकशिपोर्वधे । द्वितीयो नरसिंहोऽभूद्रुद्रः सुरपुरस्सरः ॥ ७३ ॥
बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमे युगे । दैत्यैस्त्रैलोक्य आक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ॥ ७४ ॥

देवगणों ने कहा—हम लोग असुरों के सहायक षण्ड और अमर्क के प्रभाव को नहीं जानते । अतः अपने कल्याण के लिए हमें इस समय एक यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए । उसमें इन्हें बुलाना चाहिए । उस यज्ञ में इनको बहकाकर हम असुरों को जीत लेंगे । देवताओं ने एकान्त में इस प्रकार की मन्त्रणा कर एक यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया और उसमें षण्ड और अमर्क का आवाहन किया । यज्ञ में आने पर उनसे निवेदन किया—हे द्विजवर्य ! हम इसी प्रकार बराबर यज्ञादि शुभकार्यों में आपको बुलाते रहेंगे । आप असुरों की संगति छोड़ दीजिये, दानवों को पराजित कर लेने के उपरान्त हम उन्हें फिर ग्रहण कर सकते हैं ॥ ६३-६६ ॥

देवताओं ने जब इस प्रकार का अनुरोध किया तो षण्ड और अमर्क ने दानवों का साथ छोड़ दिया । परिणामस्वरूप देवता लोग जीत गये, दानवों की पराजय हो गयी । देवतागण असुरों को पराजित कर लेने के उपरान्त पुनः षण्ड और अमर्क के पास आये । शुक्राचार्य के शाप से वे दानव पुनः आधारविहीन हो गए । पराजित एवं निराश्रित दानव तब देवताओं द्वारा पीड़ित होकर रसातल को चले गये । इन्द्र ने इस प्रकार उन दानवों को अपनी बुद्धिमत्ता से अकर्मण्य बना दिया । तभी से महर्षि भृगु के उसी नैमित्तिक शाप के कारण जब-जब यज्ञादि का ह्रास होने लगता है धर्म की शिथिलता होने लगती है, तब-तब भगवान् विष्णु धर्म की व्यवस्था एवं अधर्म के नाश के लिए जन्म धारण करते हैं ॥ ६७-६९ ॥

चाक्षुष मन्वन्तर में असुरगण प्रह्लाद की आज्ञा में स्थित नहीं थे । मनुष्यों द्वारा मारे जा सकते थे । उन सबका विनाश करने के लिए भगवान् ब्रह्मा ने इस प्रकार बताया है कि उनके विनाश एवं धर्म की रक्षा के लिए नारायण का जन्म हो जाता है । वैवस्वत मन्वन्तर में इसी प्रकार यज्ञों का आरम्भ हुआ । उनके उस प्रादुर्भाव में स्वयं ब्रह्मा पुरोहित थे । चौथे युग में जब असुरगण बहुत अत्याचारी हो गये थे, वे समुद्र के मध्य भाग में प्रादुर्भूत हुए थे । तदनन्तर हिरण्यकशिपु के वध के लिए देवगणों के साथ भीषण नरसिंह रूप धारणकर उन्होंने द्वितीय अवतार धारण किया ॥ ७०-७३ ॥

संक्षिप्यात्मानमङ्गेषु बृहस्पतिपुरस्सरम् । यजमानं तु दैत्येन्द्रमदित्याः कुलनन्दनः ॥
द्विजो भूत्वा शुभे काले बलिं वैरोचनं पुरा ॥ ७५ ॥
त्रैलोक्यस्य भवान् राजा त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । दातुमर्हसि मे राजन्विक्रमांस्त्रीनिति प्रभुः ॥ ७६ ॥
ददामीत्येव तं राजा बलिर्वैरोचनोऽब्रवीत् । वामनं तं च विज्ञाय ततोऽनुमुदितः स्वयम् ॥ ७७ ॥
स वामनो दिवं खं च पृथिवीं च द्विजोत्तमाः । त्रिभिः क्रमैर्विश्वमिदं जगदाक्रामत प्रभुः ॥ ७८ ॥
अत्यरिच्यत भूतात्मा भास्करं स्वेन तेजसा । प्रकाशयन्दिशः सर्वाः प्रदिशश्च महायशाः ॥ ७९ ॥
शुशुभे स महाबाहुः सर्वलोकान्प्रकाशयन् । आसुरीं श्रियमाहृत्य त्रींल्लोकांश्च जनार्दनः ॥
स पुत्र पौत्रानसुरान् पातालतलमानयत् ॥ ८० ॥
नमुचिः शम्बरश्चैव प्रह्लादश्चैव विष्णुना । क्रूरा हता विनिर्द्धूता दिशः संप्रतिपेदिरे ॥ ८१ ॥
महाभूतानि भूतात्मा सविशेषाणि माधवः । कालं च सकलं विप्रांस्तत्राद्भुतमदर्शयत् ॥ ८२ ॥
तस्य गात्रे जगत्सर्वमात्मानमनुपश्यति । न किंचिदस्ति लोकेषु यदव्याप्तं महात्मना ॥ ८३ ॥

तदनन्तर सातवें त्रेता युग में, जिस समय दैत्यराज बलि समस्त लोकों का एकमात्र अधीश्वर था, तीनों लोक असुरों के भय से आतंकित थे, तब ऐश्वर्यशाली भगवान् विष्णु ने वामन अवतार धारण किया । यह उनका तृतीय अवतार था । उस समय भगवान् ने अपने को अंगों में समेटकर छोटा बना लिया था । बृहस्पति को आगे कर अदिति के कुल को आनन्दित करने वाले भगवान् यज्ञ के अनुष्ठान में निरत दैत्येन्द्र विरोचन के पुत्र बलि की यज्ञशाला में ब्राह्मण वेश धारण करके पहुँचे थे ॥ ७४-७५ ॥

उन्होंने कहा कि हे राजन् ! आप इस समस्त त्रैलोक्य के राजा हैं । आपमें संसार की समस्त सिद्धियाँ विद्यमान हैं । आप सर्वसमर्थ एवं प्रजाओं के मन को आनन्दित करने वाले हैं, अतः मुझे तीन पग भूमि का दान करें । भगवान् की ऐसी बातें सुनकर विरोचन के पुत्र बलि ने उत्तर दिया कि मैं आपको तीन पग भूमि अवश्य दूंगा । उसने ब्राह्मणवेशधारी भगवान् को आकृति में अत्यन्त छोटा समझकर ऐसा कहा था, उसे इस दान में बड़ी प्रसन्नता हो रही थी । हे ऋषिवृन्द ! किन्तु उन वामन रूपधारी भगवान् ने अपने तीन पगों से स्वर्ग, आकाश एवं पृथ्वी अर्थात् इस समस्त जगत् को आक्रान्त कर लिया ॥ ७६-७८ ॥

समस्त जीवों के पालक भूतात्मा भगवान् ने उस समय अपने तेजोबल से भास्कर का भी अतिरेक कर दिया था । अपने महान् प्रखर तेज से महान् यशस्वी भगवान् ने समस्त दिशाओं एवं विदिशाओं को प्रभासित कर दिया था । समस्त लोकों को प्रकाशित करने वाले भगवान् की उस समय अपूर्व शोभा थी । जनार्दन भगवान् ने इस प्रकार समस्त आसुरी सम्पत्ति एवं समृद्धि को छीनकर नमुचि, शम्बर, प्रह्लाद प्रभृति असुरों को पुत्र-पौत्रादिकों समेत पाताल लोक को पहुँचा दिया । कितने ही क्रूर प्रकृति दैत्यों का भगवान् विष्णु ने संहार कर दिया और कितनों को भय से कम्पित कर अन्यान्य दिशाओं में भगा दिया ॥ ७९-८१ ॥

भूतात्मा, लक्ष्मीपति भगवान् ने इस प्रकार समस्त जीवों एवं पृथ्वी आकाशादि महाभूतों को भी सुखी कर दिया था, उस समय उन्होंने समस्त कालों में वर्तमान रहनेवाले अपने अद्भुत स्वरूप को ब्राह्मणों को दिखाया था । उन ब्राह्मणों ने जगदात्मा के उस शरीर में समस्त चराचर जगत् का दर्शन किया था, एवं अपने को भी उनमें स्थित

तद्वै रूपमुपेन्द्रस्य देवदानवमानवाः । दृष्ट्वा संमुमुहुः सर्वे विष्णुतेजोविमोहिताः ॥ ८४ ॥
बलिः सितोमहा पाशैः सबन्धुः ससुहृद्गणः । विरोचनकुलं सर्वं पाताले संनिवेशितम् ॥ ८५ ॥
ततः सर्वामरैश्वर्यं दत्त्वेन्द्राय महात्मने । मानुषेषु महाबाहुः प्रादुरासीज्जनार्दनः ॥ ८६ ॥
एतास्तिस्त्रः स्मृतास्तस्य दिव्याः संभूतयः शुभाः । मानुष्याः सप्त यास्तस्य शापजांस्तान्निबोधत ॥८७॥
त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह । नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुरःसरः ॥ ८८ ॥
पञ्चमः पञ्चदश्यां तु त्रेतायां संबभूव ह । मांधातुश्चक्रवर्तित्वे तस्थौ तथ्यपुरःसरः ॥ ८९ ॥
एकोनविंशे त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकोऽभवत् । जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः ॥ ९० ॥
चतुर्विंशे युगे रामो वशिष्ठेन पुरोधसा । सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः ॥ ९१ ॥
अष्टमो द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात् । वेदव्यासस्ततो जज्ञे जातूकर्णपुरःसरः ॥ ९२ ॥
तथैव नवमो विष्णुरदित्याः कश्यपात्मजः । देवक्यां वसुदेवात्तु ब्रह्मगार्ग्यपुरःसरः ॥ ९३ ॥
अप्रमेयो नियोज्यश्च यत्र कामचरो वशी । क्रीडते भगवाँल्लोके बालः क्रीडनकैरिव ॥ ९४ ॥
न प्रमातुं महाबाहुः शक्योऽसौ मधुसूदनः । परं परममेतस्माद्विश्वरूपान्न विद्यते ॥ ९५ ॥

देखा । उन्होंने देखा कि जगत् में कोई ऐसी वस्तु की सत्ता नहीं है, जिसमें वह महान् आत्मा व्याप्त न हो । उस समय भगवान् विष्णु के उस महान् तेज से विमोहित देवताओं, दानवों एवं मनुष्यों ने उपेन्द्र के उस अद्भुत रूप का दर्शन किया और वे सब मोह को प्राप्त हो गए । सुहृद् एवं परिवार वर्ग के साथ बलि को पाश में बाँधकर विरोचन के समस्त कुल को पाताल लोक में प्रविष्ट करा दिया ॥ ८२-८५ ॥

तदनन्तर संसार के समस्त ऐश्वर्य को महात्मा इन्द्र को प्रदान किया । महाबाहु जनार्दन मनुष्य योनि में भी उत्पन्न हुए थे । उनकी ये तीन सम्भूतियाँ कल्याणदायिनी देवयोनि की थीं । मनुष्य योनि में उनकी जो सात सम्भूतियाँ हैं, वे भी भृगु के शापवश हुई थीं, उन्हें सुनिये । दसवें त्रेतायुग में, जबकि धर्म का ह्रास हो रहा था, मार्कण्डेय के साथ दत्तात्रेय के रूप में उन प्रभु का चतुर्थ अवतार था ॥ ८६-८८ ॥

पन्द्रहवें त्रेतायुग में चक्रवर्ती सम्राट् मान्धाता के शासनकाल में तथ्य समेत उनका अवतार हुआ था, यह पाँचवाँ अवतार था ॥ ८९ ॥

फिर उन्नीसवें त्रेतायुग में विश्वामित्र के साथ जमदग्नि के पुत्र परशुराम के रूप में समस्त क्षत्रियकुलसंहारक होकर उन्होंने छठवाँ अवतार धारण किया था । फिर चौबीसवें त्रेतायुग में पुरोहित वसिष्ठ के साथ रावण के विनाशार्थ दशरथ पुत्र रामचन्द्र के रूप में उन्होंने सातवाँ अवतार ग्रहण किया । इसी प्रकार अट्ठाईसवें द्वापरयुग में भगवान् विष्णु ने जातूकर्ण के साथ महर्षि पराशर के संयोग से वेदव्यास के रूप में आठवाँ अवतार धारण किया था । उसी प्रकार नवीं बार अदिति स्वरूप देवकी के गर्भ से कश्यप स्वरूप वसुदेव के पुत्र होकर ब्रह्मा और गार्ग्य के साथ विष्णु ने अवतार धारण किया था । उन भगवान् का वर्णन शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता । वे भक्तों के उपकार करने वाले हैं, इच्छानुरूप विचरण करने वाले हैं, जितेन्द्रिय हैं, लोक में भगवान् उसी तरह की क्रीड़ा करते हैं जैसे बालक खिलौनों से खेलता है ॥ ९०-९४ ॥

अष्टाविंशतिमे तद्वद् द्वापरस्यांशसंक्षये । नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः ॥ ९६ ॥
कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् । मोहयन्सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ॥ ९७ ॥
प्रविष्टो मानुषीं योनिं प्रच्छन्नश्चरते महीम् । विहारार्थं मनुष्येषु सान्दीपनिपुरःसरम् ॥ ९८ ॥
यत्र कंसं च साल्वं च द्विविदं च महासुरम् । अरिष्टं वृषभं चैव पूतनां केशिनं हयम् ॥ ९९ ॥
नागं कुवलयापीडं मल्लराजगृहाधिपम् । दैत्यान् मानुष देहस्थान् सूदयामास वीर्यवान् ॥ १०० ॥
छिन्नं बाहुसहस्रं च बाणस्याद्भुतकर्मणः । नरकश्च हतः संख्ये यवनश्च महाबलः ॥ १०१ ॥
हृतानि च महीपानां सर्वरत्नानि तेजसा । दुराचाराश्च निहता पार्थिवा ये रसातले ॥ १०२ ॥
एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः । अस्मिन्नेव युगे क्षीणे संध्याश्लिष्टे भविष्यति ॥ १०३ ॥
कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान् । दशमो भाव्यसंभूतो याज्ञवल्क्यपुरःसरः ॥ १०४ ॥
अनुकर्षन्सर्वसेनां हस्त्यश्वरथसंकुलाम् । प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्वृतः शतसहस्रशः ॥ १०५ ॥
नात्यर्थं धार्मिका ये च धर्मद्विषः क्वचित् । उदीच्यान्मध्यदेशांश्च तथा विन्ध्यापरान्तिकान् ॥ १०६ ॥
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान्सिंहलैः सह । गान्धारान्पारदांश्चैव पह्लवान्यवनाञ्छकान् ॥ १०७ ॥
तुषारांर्बर्बराश्चैव पुलिन्दान्दरदान्खसान् । लम्पाकानन्धकान्रुद्रान्किरातांश्चैव स प्रभुः ॥ १०८ ॥
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद् बली । अदृश्यः सर्वभूतानां पृथिवीं विचरिष्यति ॥ १०९ ॥

वे महाबाहु मधुसूदन शब्दों द्वारा प्रमाणित नहीं किये जा सकते । यह समस्त विश्व उन्हीं से व्याप्त है । वे इससे भी परे हैं, स्वरूप में इनके समान कोई नहीं है । अट्ठाईसवें द्वापरयुग के कुछ अंश व्यतीत हो जाने पर, जब धर्म नष्ट हो जाता है तो वे प्रभु विष्णु वृष्णिवंश में धर्म की संस्थापना एवं अधर्म के विनाश के लिए जन्म धारण करते हैं । योगात्मा अपनी योगमाया से समस्त जगत् को मोहितकर मनुष्य योनि में जन्म धारण करने पर भी प्रच्छन्न स्वरूप से समस्त पृथ्वी में विचरण करते हैं । उस अवतार में वे सान्दीपनि के साथ मानव समाज में अपनी लीला दिखाने के लिए प्रादुर्भूत हुए थे ॥ ९५-९८ ॥

उस अवतार में महाबलशाली भगवान् ने कंस, साल्व, द्विविद, अरिष्ट, वृषभ, पूतना, केशी, नाग, कुवलयापीड, मल्लराज गृहाधिप जैसे मानवदेहधारी दैत्यों का संहार किया । उसी अवतार में उन्होंने अद्भुत पराक्रमी बाणासुर की सहस्र बाहुओं को काट डाला था । युद्ध में महान् पराक्रमी नरकासुर एवं कालयवन का वध किया था । बड़े-बड़े राजाओं के समस्त बहुमूल्य रत्नों के आभूषणादि को उन्होंने अपने अनुपम तेज से छीन लिया था । उन्होंने रसातल निवासी अनेक पापाचारपरायण भूपतियों का भी संहार किया था ॥ ९९-१०२ ॥

महान् ऐश्वर्यशाली भगवान् के ये अवतार लोकरक्षणार्थ हुए थे । इसी कलियुग के सन्ध्यांश में जबकि इसकी समाप्ति हो जायगी, पराशर तनय प्रतापशाली विष्णुयशा, याज्ञवल्क्य के साथ कल्कि नामक अवतार धारण करेंगे । यह उनका दसवाँ अवतार होगा । ये अनेक प्रकार की सेना जिसमें हाथी, घोड़े और रथ के साथ लाखों की संख्या में शस्त्रास्त्र से सुसज्जित विप्रगणों से संयुक्त होकर एक महान् विनाश उपस्थित करेंगे । उस समय जितने घोर अधार्मिक होंगे, धर्म से द्वेष करने वाले होंगे, उत्तर दिग्वर्ती, मध्यदेशीय विन्ध्यगिरि के उस पार के रहने वाले, सुदूर दक्षिण दिशा के द्रविणादि, सिंहल देशीय, गान्धार, पारद, पल्हव, यवन, शक, तुषार, बर्बर, पुलिन्द, दरद,

मानवः स तु संजज्ञे देवस्यांशेन धीमतः । पूर्वजन्मनि विष्णुर्यः प्रमितिर्नाम वीर्यवान्॥ ११० ॥
गात्रेण वै चन्द्रसमः पूर्णे कलियुगेऽभवत् । इत्येतास्तस्य देवस्य दश संभूतयः स्मृताः॥ १११ ॥
तं तं कालं च कार्यं च तत्तदुद्दिश्य कारणम् । अंशेन त्रिषु लोकेषु तास्ता योनीः प्रपत्स्यते॥ ११२ ॥
पञ्चविंशोत्थिते कल्पे पञ्चविंशति वै समाः । विनिघ्नन्सर्वभूतानि मानुषानेव सर्वशः॥ ११३ ॥
कृत्वा बीजावशेषां तु महीं क्रूरेण कर्मणा । संशातयित्वा वृषलान्प्रायशस्तानधार्मिकान्॥ ११४ ॥
ततः स वै तदा कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः। कर्मणा निहता ये तु सिद्धास्ते तु पुनः स्वयम्॥ ११५ ॥
अकस्मात्कुपिताऽन्योन्यं भविष्यन्ति च मोहिताः। क्षपयित्वा तु तान्सर्वान्भाविनाऽर्थेन चोदितान् ॥११६॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्यति सानुगः । ततो व्यतीते कल्कौ तु सामान्यैः सह सैनिकैः॥ ११७ ॥
नृपेष्वथ विनष्टेषु तदा त्वप्रग्रहाः प्रजाः । रक्षणे विनिवृत्ते तु हत्वा चान्योन्यमाहवे॥ ११८ ॥
परस्परहृताश्वासा निराक्रन्दाः सुदुःखिताः । पुराणि हित्वा ग्रामांश्च तुल्यास्ता निष्परिग्रहाः॥ ११९ ॥
प्रनष्टश्रुतिधर्माश्च नष्टधर्माश्रमास्तथा । ह्रस्वा अल्पायुषश्चैव वनौकस इमे स्मृताः॥ १२० ॥

खस, लम्बक, अन्धक, रुद्र, किरात प्रभृति सबको परम ऐश्वर्यशाली, बलवान्, म्लेच्छों को नष्ट करने वाले भगवान नष्ट कर देंगे और समस्त जीवों से अदृश्य रहकर पृथ्वी पर विचरण करेंगे ।। १०३-१०९ ।।

जो भगवान् विष्णु पूर्वजन्म में परमबलशाली प्रमिति के रूप में वर्तमान रहते हैं, वे ही देवांश भूत होकर मनुष्य योनि में जन्म धारण करते हैं। वही कलियुग के पूर्ण हो जाने पर चन्द्रमा के समान शरीर धारणकर उत्पन्न हुए थे। उन परम महिमामय भगवान् की ये दस सम्भूतियाँ (अवतार) कही गयी हैं। जो-जो समय, शरीर और कारण भगवान् के अवतारों के लिए ऊपर कहे गये हैं, उनकी परिस्थिति के अनुसार अंशावतार भगवान् विष्णु ने उन योनियों में जन्म धारण किया ।। ११०-११२ ।।

पचीसवाँ कल्प आने पर पचीस वर्ष जब व्यतीत हो जाता है, उस समय भगवान् समस्त जीवों का विनाश करते हुए मनुष्यों को सर्वांशतः नष्ट करते हुए अपने क्रूर कर्म द्वारा पृथ्वी को बीजावशेष कर देते हैं, ऊपर कहे गये उन परम अधार्मिक वृषलों का संहारकर सेनाओं के समेत अपने अवतार धारण को वे चरितार्थ (सफल) कर देते हैं। उस समय की प्रजाएँ अपने कर्मों द्वारा यद्यपि नाश को प्राप्त हो जाती हैं, फिर भी उन्हें पुनः स्वयमेव सिद्धि प्राप्त होती है। तदनन्तर अकस्मात् वे आपस में ही एक-दूसरे के ऊपर मोहवश कुपित हो जायँगी, भावीवश इस प्रकार के गृहकलह में निरत उन सारी प्रजाओं का विनाशकर अपने अनुचरों समेत वे भगवान् गङ्गा, यमुना के संगम पर अपने इस घोर कर्म की समाप्ति करेंगे। तदनन्तर कल्कि रूपधारी भगवान् के अवसान हो जाने पर, साधारण सैनिकों के साथ राजाओं के नष्ट हो जाने पर प्रजाएँ आश्रयविहीन हो जायेंगी। अपनी रक्षा करने का भी उन्हें साहस नहीं रहेगा। आपस में युद्ध कर एक-दूसरे को मार-काट डालेंगे ।। ११३-११८ ।।

परस्पर विश्वास कोई नहीं करेगा, उनके सारे उत्साह नष्ट हो जायेंगे। इस प्रकार परम दुःखित होकर वे अपने पुरों एवं ग्रामों को छोड़कर साधनविहीन अवस्था में नदियों एवं पर्वतों को भाग जायेंगे, वैदिक धर्म का उनमें सर्वथा विलोप हो जायगा, वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो जायगा। आकार में छोटे-छोटे होने लगेंगे, अल्प आयु हो जाएगी, वन में निवास करने लगेंगे ।। ११९-१२० ।।

सरित्पर्वतसेविन्यः पत्रमूलफलाशनाः । चीरपत्राजिनधराः संकरं घोरमास्थिताः ॥ १२१ ॥
अल्पायुषो नष्टवार्ता बह्वाबाधाः सुदुःखिताः । एवं कष्टमनुप्राप्ताः कलिसंध्यांशके तदा ॥ १२२ ॥
प्रजाः क्षयं प्रयास्यन्ति सार्धं कलियुगेन तु । क्षीणे कलियुगे तस्मिन्प्रवृत्ते च कृते पुनः ॥ १२३ ॥
प्रपत्स्यन्ते यथान्यायं स्वभावादेव नान्यथा । इत्येतत्कीर्तितं सर्वं देवासुरविचेष्टिम् ॥ १२४ ॥
यदुवंशप्रसङ्गेन महद्वो वैष्णवं यशः । तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि पूरोर्द्रुह्योरनोस्तथा ॥ १२५ ॥

इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे विष्णुमाहात्म्यकीर्तनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

* * *

वहाँ पर पत्र, मूल, फल खाकर जीवनयापन करेंगे । चीर, पत्र एवं मृगचर्म धारण करने वाली वे प्रजाएँ घोर संकरवर्ण की हो जायेंगी । अल्प आयु वाली उन प्रजाओं की जीविका आदि के साधन भी सब नष्ट हो जायेंगे । अनेक प्रकार की बाधाओं में पिसकर वे घोर कष्ट सहन करेंगी । कलियुग के उस सन्ध्यांश में प्रजाओं को इस प्रकार के विविध कष्ट सहन करने पड़ेंगे । कलियुग के साथ उसकी प्रजाएँ नष्ट हो जायेंगी । इस प्रकार उस कलियुग के व्यतीत हो जाने पर पुनः सतयुग का प्रारम्भ होगा । उस समय सारी वस्तुएँ फिर स्वाभाविक ढंग से अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त होंगी, किसी अन्य उपाय से नहीं । देवताओं और असुरों के संघर्ष का मैं यह विवरण बता चुका, यदु के वंश के प्रसंग में भगवान् विष्णु के महान् यश का भी वर्णन कर दिया गया है । अब आगे तुर्वसु, पुरु, द्रुह्यु और अनु के वंश का वर्णन कर रहा हूँ ॥ १२१-१२५ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में विष्णुमाहात्म्य कथन नामक छत्तीसवें अध्याय (अट्ठान्नबेवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३६ ॥**

* * *

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

तुर्वस्वादिवंशवर्णनम्

सूत उवाच

तुर्वसोस्तु सुतो वह्निर्वह्नेर्गोभानुरात्मजः । गोभानोस्तु सुतो वीरस्त्रिसानुरपराजितः ॥ १ ॥
करन्धमस्त्रिसानोस्तु मरुत्तस्य तु चाऽऽत्मजः । अन्यस्त्ववीक्षितो राजा मरुत्तः कथितः पुरा ॥ २ ॥
अनपत्यो मरुत्तस्तु स राजाऽऽसीदिति श्रुतः । दुष्कृतं पौरवं चापि सर्वे पुत्रमकल्पयन् ॥ ३ ॥
एवं ययातिशापेन जरायाः संक्रमेण तु । तुर्वसोः पौरवं वंशं प्रविवेश पुरा किल ॥ ४ ॥
दुष्कृतस्य तु दायादः शरूथो नाम पार्थिवः । शरूथात्तु जनापीडश्चत्वारस्तस्य चात्मजाः ॥ ५ ॥
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव चोलः कुल्यस्तथैव च । तेषां जनपदाः कुल्याः पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः ॥ ६ ॥
द्रुह्योस्तु तनयौ वीरौ बभ्रुः सेतुश्च विश्रुतौ । अरुद्धः सेतुपुत्रस्तु बाभ्रवो रिपुरुच्यते ॥ ७ ॥

सैंतीसवाँ अध्याय

(निन्यानबेवाँ अध्याय)

तुर्वसु आदि ययाति पुत्रों के वंश का वर्णन

श्रीसूतजी ने कहा—ययाति पुत्र तुर्वसु का पुत्र वह्नि था । वह्नि का पुत्र गोभानु हुआ । गोभानु का परम वीर पुत्र त्रिसानु था, जो कभी पराजित नहीं हुआ । उस त्रिसानु का पुत्र राजा करन्धम हुआ और उसका पुत्र मारुत हुआ। आवीक्षित का पुत्र मरुत्त नामक एक अन्य राजा भी प्राचीनकाल में कहा जाता है । राजा मरुत्त के कोई सन्तान नहीं थी—ऐसा सुना गया है । इसलिए लोगों ने पुरुवंशीय दुष्कृत को उसका पुत्र बनाया ॥ १-३ ॥

राजा ययाति ने वृद्धत्व को अंगीकार न करने के कारण जो शाप तुर्वसु को दिया था उसी के कारण तुर्वसु का वंश नष्ट हो गया और ऐसी प्रसिद्धि है कि वह अन्त में पुरु वंश में मिल गया । उस दुष्कृत का उत्तराधिकारी राजा शरूथ हुआ । शरूथ से जनापीड की उत्पत्ति हुई । उसके चार पुत्र हुए ॥ ४-५ ॥

जिनके नाम पाण्ड्य, केरल, चोल और कुल्य थे । उन सबों के अपने-अपने जनपद थे, जो पाण्ड्य, केरल, चोल और कुल्य के नाम से विख्यात हैं । द्रुह्यु के दो वीर पुत्र थे, बभ्रु और सेतु । इनमें सेतु का पुत्र अरुद्ध और बभ्रु का पुत्र रिपु हुआ ॥ ६-७ ॥

यौवनाश्वेन समिति कृच्छ्रेण निहतो बली । युद्धं सुमहदासीत्तु मासान्परि चतुर्दश ॥ ८ ॥
अरुद्धस्य तु दायादो गान्धारो नाम पार्थिवः । ख्यायते यस्य नाम्ना तु गान्धारविषयो महान् ॥ ९ ॥
गान्धारदेशजाश्चापि तुरगा वाजिनां वराः । गान्धारपुत्रो धर्मस्तु धृतस्तस्य सुतोऽभवत् ॥ १० ॥
धृतस्य दुर्दमो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः । प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्व एव ते ॥ ११ ॥
म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे ह्युदीचीं दिशमाश्रिताः । अनोः पुरा महात्मानस्त्रयः परमधार्मिकाः ॥ १२ ॥
सभानरश्च पक्षश्च परपक्षस्तथैव च । सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान्कालानलो नृपः ॥ १३ ॥
कालानलस्य धर्मात्मा सृञ्जयो नाम धार्मिकः । सृञ्जयस्याभवत्पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः ॥ १४ ॥
जनमेजयो महासत्त्वः पुरंजयसुतोऽभवत् । जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवनृपः ॥ १५ ॥
आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशा दिवि । महामनाः सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिकः ॥ १६ ॥
सप्तद्वीपेश्वरो राजा चक्रवर्ती महायशाः । महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास विश्रुतौ ॥ १७ ॥
उशीनरं च धर्मज्ञं तितिक्षुञ्चैव धार्मिकम् । उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः ॥ १८ ॥
मृगा कृमी नवा दर्वा पञ्चमी च दृषद्वती । उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः ॥
तपसा ते सुमहता जातवृद्धाश्च धार्मिकाः ॥ १९ ॥
मृगायास्तु मृगः पुत्रो नवाया नव एव तु । कृम्याः कृमिस्तु दर्वायाः सुव्रतो नाम धार्मिकः ॥ २० ॥

युद्ध में इस बलशाली रिपु को परम कठोर स्वभाववाले यौवनाश्व ने मार डाला, वह महायुद्ध लगातार चौदह मास तक चलता रहा । अरुद्ध का उत्तराधिकारी राजा गान्धार हुआ, जिसके नाम से विशाल गान्धार नामक देश विख्यात है । उसी गान्धार देश में उत्पन्न होनेवाले अश्व बहुत अच्छे अश्व होते हैं । राजा गान्धार का पुत्र धर्म हुआ, उसका पुत्र धृत हुआ ॥ ८-१० ॥

धृत को दुर्दम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र प्रचेता हुआ । उस प्रचेता के सौ पुत्र उत्पन्न हुए । वे सभी राजा थे जो उत्तर दिशा में स्थित म्लेच्छों के देश के शासक थे । अनु के तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो परम बलशाली एवं धार्मिक थे । उनके नाम सभानर, पक्ष और परपक्ष थे । इनमें सभानर का पुत्र परम विद्वान् राजा कालानल था ॥ ११-१३ ॥

कालानल का पुत्र धर्मात्मा राजा सृञ्जय हुआ । सृञ्जय का पुत्र वीर राजा पुरञ्जय हुआ । पुरञ्जय का पुत्र महान् बलशाली राजा जनमेजय हुआ, राजर्षि जनमेजय का पुत्र राजा महाशाल हुआ ॥ १४-१५ ॥

उस महाराज महाशाल का यश स्वर्ग में इन्द्र की भाँति प्रतिष्ठित था । उसका पुत्र परम धार्मिक राजा महामना हुआ । सातों द्वीपों का अधीश्वर महान् यशस्वी राजा महामना अपने समय का चक्रवर्ती सम्राट् था । उसने परम यशस्वी दो पुत्रों को उत्पन्न किया । जिनमें एक धर्म के तत्त्वों के जानने वाले राजा उशीनर थे, दूसरे परम धार्मिक राजा तितिक्षु थे । उस राजा उशीनर की राजर्षिवंश में उत्पन्न होने वाली पाँच पत्नियाँ थीं ॥ १६-१८ ॥

उनके नाम मृगा, कृमी, नवा, दर्वा और दृषद्वती थे । उन पाँचों पत्नियों के संयोग से महाराज को पाँच कुलोद्धारक पुत्र उत्पन्न हुए थे, जो सब-के-सब परम तपस्वी, महात्मा एवं परम धार्मिक थे । मृगा का पुत्र मृग, नवा का पुत्र नव था, कृमी का पुत्र कृमि था, दर्वा का परम धार्मिक पुत्र सुव्रत था ॥ १९-२० ॥

दृषद्वतीसुतश्चापि शिविरौशीनरो द्विजाः । शिवे शिवपुरं ख्यातं यौधेयं तु मृगस्य तु॥ २१ ॥
नवस्य नवराष्ट्रं तु कृमेस्तु कृमिला पुरी । सुव्रतस्य तथा वृष्टा शिविपुत्रान्निबोधत॥ २२ ॥
शिवेस्तु शिवयः पुत्राश्चत्वारो लोकसंमताः । वृषदर्भः सुवीरस्तु केकयो मद्रकस्तथा॥ २३ ॥
तेषां जनपदाः स्फीताः केकया माद्रकस्तथा । वृषदर्भाः सूचिदर्भास्तितिक्षोः श्रृणुत प्रजाः ॥ २४ ॥
तैतिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यान्दिशि विश्रुतः । उशद्रथो महाबाहुस्तस्य हेमः सुतोऽभवत्॥ २५ ॥
हेमस्य सुतपा जज्ञे सुतः सुतयशा बली । जातो मनुष्ययोन्यां वै क्षीणे वंशे प्रजेप्सया॥ २६ ॥
महायोगी स तु बलिर्बद्धो यः स महामनाः । पुत्रानुत्पादयामास चातुर्वर्ण्यकरान्भुवि॥ २७ ॥
अङ्गं स जनयामास बङ्गं सुह्मं तथैव च । पुण्ड्रं कलिङ्गं च तथा बालेयं क्षत्रमुच्यते॥ २८ ॥
बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः । बलेस्तु ब्रह्मणा दत्ता वराः प्रीतेन धीमते॥ २९ ॥
माहायोगित्वमायुश्च कल्पायुःपरिमाणकम् । सङ्ग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैव प्रभावना॥ ३० ॥
त्रैलोक्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा । बले चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम्॥ ३१ ॥
चतुरो नियतान् वर्णान् त्वं वै स्थापयितेति च । इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिं परां ययौ ॥ ३२ ॥
कालेन महता विद्वान् स्वं वै स्थानमुपागतः । तेषां जनपदाः स्फीता बङ्गाङ्गसुह्मकास्तथा॥ ३३ ॥

ऋषिवृन्द ! पाँचवीं पत्नी दृषद्वती का पुत्र महाराज शिबि था, जो औशीनर शिबि नाम से विख्यात है। उसी महाराज शिवि का पुर शिवपुर के नाम से विख्यात है। इसी प्रकार मृग का यौधेयपुर, नव का नवराष्ट्र, कृमि की कृमिपुरी और सुव्रत की अम्बष्ठा नामक पुरी थी। अब शिवि के पुत्रों का वर्णन सुनिये। शिवि के चार पुत्र हुए, जिनका लोक में परम सम्मान था, वे सब शिविगण के नाम से विख्यात थे। उनके नाम थे, वृषदर्भ, सुवीर, केकय और मद्रक ॥ २१-२३ ॥

उन चारों शिविपुत्रों के जनपद परम रमणीय केकय, माद्रक, वृषदर्भा और सूचीदर्भा के नाम से विख्यात हैं। अब तितिक्षु की प्रजाओं का वर्णन सुनिये। उस राजा तितिक्षु का पुत्र महाबाहु उशद्रथ पूर्वदिशा का परम यशस्वी राजा सुना जाता है। उसका पुत्र राजा हेम हुआ ॥ २४-२५ ॥

हेम का पुत्र परम तपस्वी बलि हुआ। यह बलि महान् योगी दैत्यराज बलि ही थे, जिन्हें भगवान् वामन ने बाँधा था, सन्तति के अभाव में राजा हेम के वंश के विनाश उपस्थित होने पर इन्होंने मानवयोनि में हेम का पुत्र होकर जन्म धारण किया था। इस राजा बलि ने पृथ्वी में चारों वर्णों की सृष्टि करनेवाले पुत्रों को उत्पन्न किया था। उन्होंने अङ्ग, बङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र एवं कलिङ्ग नामक पुत्रों को उत्पन्न किया था। उस महाराज बलि के वंशज क्षत्रिय भी कहे जाते हैं और ब्राह्मण भी कहे जाते हैं ॥ २६-२८ ॥

बलि के परम धार्मिक कार्यों से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसे महायोगी, एक कल्प की दीर्घायुवाला, संग्राम में अजेय एवं धर्म में परम निष्ठावान् होने का वरदान दिया था, इसके अतिरिक्त ब्रह्मा ने कहा था, बले, तुम्हें समस्त त्रैलोक्य का दर्शन, सन्तानोत्पत्ति में प्रधानता, धर्मतत्त्व का चिन्तन एवं प्रतिद्वन्द्वी का सर्वथा अभाव रहेगा, तुम ब्राह्मण क्षत्रियादि चारों वर्णों की स्थापना करने वाले होगे। भगवान् ब्रह्मा के इस वरदानात्मक वचन को सुनकर राजा बलि को परम शान्ति प्राप्ति हुई ॥ २९-३२ ॥

पुण्ड्राः कलिङ्गाश्च तथा तेषां वंशं निबोधत । तस्य ते तनयाः सर्वे क्षेत्रजा मुनिसंभवाः ॥
संभूता दीर्घतमसः सुदेष्णायां महौजसः ॥ ३४ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं बलेः सुताः पञ्च जनिताः क्षेत्रजाः प्रभो । ऋषिणा दीर्घतमसा एतन्नो ब्रूहि पृच्छताम्॥ ३५ ॥

सूत उवाच

अशिजो नाम विख्यात आसीद्धीमानृषिः पुरा । भार्या वै समता नाम बभूवास्य महात्मनः॥ ३६ ॥
अशिजस्य कनीयांस्तु पुरोधा यो दिवौकसाम् । बृहस्पतिर्बृहत्तेजा ममत सोऽभ्यपद्यत॥ ३७ ॥
उवाच ममता तन्तु बृहस्पतिमनिच्छती । अन्तर्वत्न्यस्मि ते भ्रातुर्ज्येष्ठस्याष्टमिता इति॥ ३८ ॥
अयं हि मे महागर्भो रोदतेऽति बृहस्पते । अशिजं ब्रह्म चाभ्यस्य षडङ्गं वेदमुद्गिरन्॥ ३९ ॥
अमोघरेतास्त्वं चापि न मां भजितुमर्हसि । अस्मिन्नेव गते काले यथा वा मन्यसे प्रभो॥ ४० ॥
एवमुक्तस्तया सम्यग् बृहत्तेजा बृहस्पतिः। कामात्मानं महात्मा च नात्मानं सोऽभ्यधारयत्॥ ४१ ॥
संबभूवैव धर्मात्मा तथा सार्धं बृहस्पतिः । उत्सृजन्तं तदा रेतो गर्भस्थः सोऽभ्यभाषत॥ ४२ ॥
नोस्नातको न्यसेद्ध्यस्मिन्द्वयोर्नेहास्ति संभवः । अमोघरेतास्त्वं चापि पूर्वं चाहमिहागतः ॥ ४३ ॥

वरदान के अनुसार दीर्घकाल के अनन्तर वह परम विद्वान् राजा बलि पुन: अपने स्थान को प्राप्त हुआ। बलि के उन पुत्रों के परम रमणीय देश उन्हीं के नामों के अनुसार बङ्ग, अङ्ग, सुल्हक, पुण्ड्र और कलिंग के नाम से विख्यात हैं । अब उनके वंशजों का विवरण सुनिये । राजा के बलि के ये पुत्र मुनि के अंश से बलि के क्षेत्रज पुत्र थे । महान् तेजस्वी दीर्घतमा ऋषि के संयोग से ये बलि की स्त्री सुदेष्णा में उत्पन्न हुए थे ॥ ३३-३४ ॥

ऋषियों ने पूछा—सूत जी महाराज बलि के वे पाँचों पुत्र किस प्रकार दीर्घतमा ऋषि के संयोग से उनके क्षेत्र (पत्नी) में उत्पन्न हुए, इसे हम लोग जानना चाहते हैं, बताइये ॥ ३५ ॥

श्री सूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! प्राचीनकाल में अशिज नामक एक परम विद्वान् एवं विख्यात ऋषि थे। उन परम महात्मा ऋषि की पत्नी का नाम ममता था। अशिज के छोटे भाई देवताओं के पुरोहित परम तेजस्वी बृहस्पति थे। एक बार वे कामवश होकर ममता के पास गये। देवी ममता ने बृहस्पति के प्रति अपनी इच्छा प्रकट नहीं की। वे बोलीं, मैं इस समय तुम्हारे ज्येष्ठ भाई के संयोग से गर्भवती हूँ। बृहस्पति ! यह हमारा महान् गर्भ अपने तेज से परम प्रकाशित हो रहा है। यह गर्भावस्था में ही अशिज के अंशभूत होने के कारण षडंग वेदों का उच्चारण करता है एवं ब्रह्म का अभ्यास करता है ॥ ३६-३९ ॥

तुम भी अमोघ वीर्य वाले हो, इसलिए ऐसी स्थिति में मेरे साथ समागम नहीं कर सकते। हे सर्वसमर्थ ! इस काल के व्यतीत हो जाने के उपरान्त तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करना। ममता के इस प्रकार कहने पर परम तेजस्वी बृहस्पति महात्मा होकर भी अपनी काम वशीभूत आत्मा को वश में न रख सके। परम धर्मात्मा होकर भी उन्होंने ममता से समागम किया, जिस समय वीर्याधान कर रहे थे, गर्भस्थ शिशु ने उनसे कहा—तात ! आप अपना वीर्य यहाँ न निहित करें, क्योंकि इसमें दो प्राणियों का निवास सम्भव नहीं है। तुम भी अमोघ वीर्य वाले हो, मैं यहाँ पहले ही से उपस्थित हूँ ॥ ४०-४३ ॥

शशाप तं तदा क्रुद्ध एवमुक्तो बृहस्पतिः । आशिजं तं सुतं भ्रातुर्गर्भस्थं भगवानृषिः ॥ ४४ ॥
यस्मात्त्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति । मामेवमुक्तवान्मोहात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ॥ ४५ ॥
ततो दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत । अथाशिजो बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिरिवौजसा ॥ ४६ ॥
ऊर्ध्वरेतास्ततश्चापि व्यवसभ्रातुराश्रमे । गोधर्मं सौरभेयात्तु वृषभाच्छ्रुतवान्प्रभो ॥ ४७ ॥
तस्य भ्राता पितृव्यस्तु चकार भवनं तदा । तस्मिन्हि तत्र वसति यदृच्छाभ्यागतो वृषः ॥ ४८ ॥
दर्शार्थमाहृतान्दर्भांश्चचार सुरभीवृतः । जग्राह तं दीर्घतमा विस्फुरन्तं च शृङ्गयोः ॥ ४९ ॥
स तेन निगृहीतस्तु न चचाल पदात्पदम् । ततोऽब्रवीद् वृषस्तं वै मुञ्च मां बलिनां वर ॥ ५० ॥
न मयासादितस्तात बलवांस्त्वद्विधः क्वचित् । त्र्यम्बकं वहता देवं यतो जातोऽस्मि भूतले ॥ ५१ ॥
मुञ्च मां बलिनां श्रेष्ठ प्रीतस्तेऽहं वरं वृणु । एवमुक्तोऽब्रवीदेनं जीवंस्त्वं मे क्व यास्यसि ॥ ५२ ॥
तेन त्वाऽहं न मोक्ष्यामि परस्वाहं चतुष्पदम् । ततस्तं दीर्घतमसं स वृषः प्रत्युवाच ह ॥ ५३ ॥
नास्माकं विद्यते तात पातकं स्तेयमेव वा । भक्ष्याभक्ष्यं न जानीमः पेयापेयं च सर्वशः ॥ ५४ ॥
कार्याकार्यं न वै विद्मो गम्यागम्यं तथैव च । न पाप्मानो वयं विप्र धर्मो ह्येषां गवां स्मृतः ॥ ५५ ॥

गर्भस्थ शिशु के इस वाक्य से बृहस्पति के वीर्याधान में बाधा पहुँची । परम तेजस्वी ऋषिवर बृहस्पति ने अप्रसन्न होकर अपने बड़े भाई अशिज के संयोग से समुत्पन्न गर्भस्थ शिशु को शाप दिया कि सभी प्राणधारियों के परम अभीष्ट ऐसे सुखमय अवसर में तुमने बाधा पहुँचायी है, अज्ञानवश तुमने मुझको ऐसा कहा है, अतः महान् अंधकार को प्राप्त होगे । बृहस्पति के शाप के कारण वह शिशु दीर्घतमा ऋषि के नाम से विख्यात हुआ । ऋषिवर अशिज भी बृहस्पति के समान तेजस्वी एवं परम यशस्वी थे ॥ ४४-४६ ॥

उनके पुत्र दीर्घतमा परम ब्रह्मचारी थे, और उनके भाई के आश्रम में निवास करते थे । सुरभी के पुत्र एक वृषभ से उन्होंने एक बार गोधर्म का श्रवण ग्रहण किया था । अशिज के भ्राता एवं दीर्घतमा के पितृव्य बृहस्पति ने उनके निवासार्थ एक भवन का निर्माण किया था, उसी में निवास कर रहे थे । एक बार घूमता हुआ एक वृषभ वहाँ पर आ गया । गौओं के साथ घूमते हुए उस वृषभ ने श्राद्ध के निमित्त लाये गये कुशों का भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया । ऋषिवर दीर्घतमा ने फड़कते हुए उस वृषभ की दोनों सींगों को बलपूर्वक पकड़ लिया ॥ ४७-४९ ॥

उनके पकड़े जाने पर जब वह एक पग से दूसरा पग भी नहीं रख सका तब असक्त होकर दीर्घतमा से बोला—हे बलवानों में श्रेष्ठ ! मुझे आप छोड़ दें । हे तात ! मैंने आपके समान बलवान् कहीं पर किसी अन्य को नहीं पाया । यद्यपि समस्त पृथ्वी का मैंने देवदेव महादेव जी को वहन करते हुए भ्रमण किया है । बलशालियों में श्रेष्ठ ! मुझे छोड़ दीजिये, मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ, मुझसे वर माँगिये । वृषभ के ऐसा कहने पर दीर्घतमा ने कहा, वृषभ ! मेरे हाथ से तू जीते हुए कहाँ जाओगे । तुम चार पैरवाले होकर भी दूसरे की वस्तु का भक्षण करते हो, अतः मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा । दीर्घतमा के ऐसा कहने पर वृषभ ने पुनः कहा—हे तात ! मेरे लिये कोई पाप नहीं है, चोरी भी कुछ नहीं है । मैं क्या खाना चाहिए, क्या नहीं खाना चाहिए, क्या पीना चाहिए, क्या नहीं पीना चाहिए इसे नहीं जानता ॥ ५०-५४ ॥

उसी प्रकार मुझे इसका भी ज्ञान नहीं है कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, कहाँ

गवां नाम स वै श्रुत्वा संभ्रान्तस्त्वनुमुच्य तम् । भक्त्या चाऽऽनुश्रविकया गोषु तं वै प्रसादयत्॥ ५६ ॥
प्रसादिते गते तस्मिन्गोधर्मंभक्तिस्तु तम् । मन सैव तदादत्ते तन्निष्ठस्तत्परायणः ॥ ५७ ॥
ततो यवीयसः पत्नीमौतथ्यस्याभ्यमन्यत । विचेष्टमानां रुदतीं दैवात्संमूढचेतनः ॥ ५८ ॥
अवलेपं तु तं मत्वा शरद्वांस्तस्य नाक्षमत् । गोधर्मं वै बलं कृत्वा स्नुषां स सममन्यत॥ ५९ ॥
विपर्ययं तु तं दृष्ट्वा शरद्वान्प्रत्यचिन्तयत् । भविष्यमर्थं ज्ञात्वा च महात्मा च न मृत्युताम्॥ ६० ॥
प्रोवाच दीर्घतमसं क्रोधात् संरक्तलोचनः । गम्यागम्यं न जानीषे गोधर्मात्प्रार्थयत् स्नुषाम्॥ ६१ ॥
दुर्वृत्तस्त्वं त्यजाम्येष गच्छ त्वं स्वेन कर्मणा । यस्मात्त्वमन्धो वृद्धश्च भर्तव्यो दुरनुष्ठितः ॥
तेनासि त्वं परित्यक्तो दुराचारोऽसि मे मतिः ॥ ६२ ॥

सूत उवाच

कर्मण्यस्मिंस्ततः क्रूरे तस्य बुद्धिरजायत । निर्भर्त्स्य चैव बहुशो बाहुभ्यां परिगृह्य च॥
कोष्ठे समुद्रे प्रक्षिप्य गङ्गाम्भसि समुत्सृजत् ॥ ६३ ॥

जाना चाहिए और कहाँ नहीं जाना चाहिए । हे ब्राह्मणदेव ! हम पशुओं को पाप नहीं लगता, गौओं का तो यही धर्म कहा गया है । वृषभ के इस कथन में दीर्घतमा ऋषि गौ का नाम सुनकर अचम्भित हो गये और उन्होंने परम भक्ति तथा विनयपूर्ण चाटुकारिता के साथ उस वृषभ को प्रसन्न किया । इस प्रकार प्रसन्न होकर वृषभ के चले जाने पर उन्होंने भक्तिपूर्वक इस गौधर्म पर विचार किया, और मन से उसे ग्रहणकर सर्वदा उसी में निष्ठा रखकर पालन में भी तत्पर हो गये ॥ ५५-५७ ॥

तदनन्तर देव की अकृपा से हतबुद्धि होकर उन्होंने अपने छोटे भाई औतथ्य की पत्नी को एक बार कामवश होकर छेड़ने का उपक्रम किया । उनके आनाकानी करने और रोने पर भी वे अपने इस निन्द्यकर्म से विरत नहीं हुए । दीर्घतमा का यह महान् गर्वमूलक अपराध ऋषि शरद्वान् को सहन नहीं हुआ । उन्होंने देखा कि दीर्घतमा अपने बल के कारण छोटे भाई की स्त्री के साथ जो पुत्रवधू के समान है, समागम कर रहे हैं । इस महान् विपर्यय को देखकर महात्मा शरद्वान् को बड़ी चिन्ता हुई । किन्तु भविष्य में घटित होने वाली घटना के प्रभाव को जानते हुए उन्होंने दीर्घतमा को मृत्यु का शाप नहीं दिया ॥ ५८-६० ॥

अत्यन्त क्रोध से उनके नेत्र लाल हो गये । वे आवेश में भरकर दीर्घतमा से बोले—अरे दुष्कर्मपरायण ! तू गम्य-अगम्य कुछ नहीं जानता, पशुधर्म को प्रश्रय देकर पुत्रवधू के साथ समागम करना चाहता है । अब मैं तुझे छोड़ रहा हूँ, अपने इस नीच कर्म का फल भोगो । अन्धे, वृद्ध एवं जीविका चलाने में असमर्थ होकर भी तुम इतना नीच कर्म कर रहे हो, जिसे कोई नहीं करता । अतः मैं तुम्हें एक महान् दुराचारी समझ रहा हूँ, और इसीलिए तुम घर से बाहर निकाले गये हो ॥ ६१-६२ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! इतना कहने के उपरान्त दीर्घतमा की प्रवृत्ति क्रूर कर्म में हो गयी । तब ऋषि शरद्वान् ने उनकी बहुत भर्त्सना करके अपने दोनों बाहुओं से पकड़कर एक सन्दूक में बन्दकर समुद्र में बह जाने के लिए गंगाजल में डाल दिया ॥ ६३ ॥

उह्यमानः समुद्रस्तु सप्ताहं स्त्रोतसा तदा । तं सस्त्रीको बलिर्नाम राजा धर्मार्थतत्त्ववित्॥
अपश्यन्मज्जमानं तु स्त्रोतसाभ्याशमागतम् ॥ ६४ ॥
त्वं गृहीत्वा स धर्मात्मा बलिर्वैरोचनस्तदा । अन्तःपुरे जुगोपैनं भक्ष्यैर्भोज्यैश्च तर्पयन्॥ ६५ ॥
प्रीतः स वै वरेणाथ च्छन्दयामास वै बलिम् । स च तस्माद्वरं वव्रे पुत्रार्थं दानवर्षभः ॥ ६६ ॥

बलिरुवाच

संतानार्थं महाभाग भार्याया मम मानद । पुत्रान्धर्मार्थसंयुक्तानुत्पादयितुमर्हसि ॥ ६७ ॥
एवमुक्तस्तु तेनर्षिस्तथाऽस्त्वित्युक्तवान्हितम् । सुदेष्णां नाम भार्यां वै राजाऽस्मैप्राहिणोत्तदा॥ ६८ ॥
अन्धं वृद्धं च तं दृष्ट्वा न सा देवी जगाम ह । स्वां च धात्रेयकीं तस्मै भूषयित्वा व्यसर्जयत्॥ ६९ ॥
कक्षीवचक्षुषौ तस्यां शूद्रयोन्यामृषिर्वशी । जनयामास धर्मात्मा पुत्रावेतौ महोजसौ॥ ७० ॥
कक्षीवचक्षुषौ तौ तु दृष्ट्वा राजा बलिस्तदा । प्राधीतौ विधिवत्सम्यगीश्वरौ ब्रह्मवादिनौ॥ ७१ ॥
सिद्धौ प्रत्यक्षधर्माणौ बुद्धौ श्रेष्ठतमावपि । ममैताविति होवाच बलिर्वैरोचनस्त्वृषिम्॥ ७२ ॥
नेत्युवाच ततस्तं तु ममैताविति चाब्रवीत् । उत्पन्नौ शूद्र योनौ तु भवच्छद्मासुरोत्तमौ॥ ७३ ॥
अन्धं वृद्धं च मां मत्वा सुदेष्णा महिषी तव । प्राहिणोदवमानाय शूद्रां धात्रेयकीं मम॥ ७४ ॥

एक सप्ताह तक गंगा के स्त्रोतों में तैरते रहने के बाद दीर्घतमा को स्त्री समेत परम धार्मिक राजा बलि ने देखा। उस समय वे डूब रहे थे, किन्तु जल के प्रवाह से राजा के समीप पहुँच चुके थे। विरोचन पुत्र राजा बलि ने दीर्घतमा को जलराशि से पकड़कर ऊपर खींचकर बचा लिया और अपने अन्तःपुर में ले जाकर विविध प्रकार के खान-पानादि से उन्हें सन्तुष्ट किया। बलि के इस व्यवहार से दीर्घतमा परम सन्तुष्ट हुए और वरदान देकर उसे प्रसन्न करना चाहा। दानवपति बलि ने पुत्र की कामना से दीर्घतमा से वरदान की याचना की ॥ ६४-६६ ॥

बलि ने कहा—मानियों के मान रक्षक। महाभाग्यशालिन्। मै सन्तान प्राप्ति की याचना आपसे कर रहा हूँ। आप धर्म, अर्थ, काम से समन्वित पुत्रों की उत्पत्ति मेरे लिये करें ॥ ६७ ॥

बलि के इस प्रकार कहने पर दीर्घतमा ने कहा कि ठीक है, मुझे आपकी प्रार्थना स्वीकार है। राजा बलि ने अपनी सुदेष्णा नामक रानी को सन्तान के लिए दीर्घतमा के पास जाने के लिए कहा ॥ ६८ ॥

दीर्घतमा को अन्धा और वृद्ध देखकर देवी सुदेष्णा उनके पास स्वयं नहीं गयी और अपनी धाय को विविध वस्त्राभूषणों से विभूषित कर भेज दिया। उस शूद्रयोनि में जितेन्द्रिय वश्यात्मा दीर्घतमा ने कक्षीवान् और चाक्षुष नामक दो धर्मात्मा पुत्रों को उत्पन्न किया, जो महान् तेजस्वी थे ॥ ६९-७० ॥

उन कक्षीवान् और चाक्षुष नामक पुत्रों को, जो भलीभांति पढ़-लिखकर ब्रह्मवेत्ता, योगपरायण, परमबुद्धिमान्, सिद्ध, धर्मतत्त्वों के विचारक एवं श्रेष्ठ हो चुके थे, देखकर विरोचन पुत्र राजा बलि ने कहा कि क्या ये दोनों हमारे पुत्र हैं? दीर्घतमा ने कहा—नहीं, ये तुम्हारे नहीं, हमारे पुत्र है क्योंकि तुम्हारे छद्म से ये शूद्र योनि में उत्पन्न हुए हैं। ये असुरों में श्रेष्ठ होंगे। रानी सुदेष्णा ने मुझे अन्धा और वृद्ध मानकर अपमान करने के लिए मेरे पास अपनी एक शूद्रवर्णा धाय को भेज दिया था ॥ ७१-७४ ॥

ततः प्रसादयामास पुनस्तमृषिसत्तमम् । बलिर्भार्यां सुदेष्णां च भर्त्सयामास वै प्रभुः॥ ७५ ॥
पुनश्चैनामलंकृत्य ऋषये प्रत्यपादयत् । तां स दीर्घतमा देवीमब्रवीद्यदि मां शुभे॥ ७६ ॥
दध्ना लवणमिश्रेण स्वभ्यक्तं नग्नकं तथा । लिहिष्यस्य जुगुप्सन्ती ह्यापाद तलमस्तकम्॥ ७७ ॥
ततस्त्वं प्राप्स्यसे देवि पुत्रांश्च मनसेप्सितान् । तस्य सा तद्वचो देवी सर्वं कृतवती तथा॥ ७८ ॥
अपानं च समासाद्य जुगुप्सन्ती न्यवर्जयत् । तामुवाच ततः सर्षिर्यत्ते परिहृतं शुभे॥
विनाऽपानं कुमारं त्वं जनयिष्यसि पूर्वजम् ॥ ७९ ॥
ततस्तं दीर्घतमसं सा देवी प्रत्युवाच ह । नार्हसि त्वं महाभाग पुत्रं दातुं ममेदृशम्॥ ८० ॥

ऋषिरुवाच

तवापराधो देव्येष नान्यथा भविता नु वै । देवीदानीं च ते पुत्रमहं दास्यामि सुव्रते॥ ४१ ॥
तस्यापानं विना चैव योग्याभावो भविष्यति । तां सदीर्घतमाश्चैव कुक्षौ स्पृष्ट्वेदमब्रवीत॥ ८२ ॥
प्राशितं दधि यत्तेऽद्य ममाङ्गाद्वै शुचिस्मिते । तेन ते पूरितो गर्भः पौर्णमास्यामिवोदधिः॥ ८३ ॥
भविष्यन्ति कुमारास्ते पञ्च देवसुतोपमाः । तेजस्विनः पराक्रान्ता यज्वानो धार्मिकास्तथा॥ ८४ ॥
ततोऽङ्गस्तु सुदेष्णाया ज्येष्ठपुत्रो व्यजायत । वङ्गस्तस्मात्कलिङ्गस्तु पुण्ड्रो ब्रह्मस्तदेव च॥ ८५ ॥

दीर्घतमा की ऐसी बातें सुनकर राजा बलि ने उनकी पुनः पुनः प्रार्थना की और किसी प्रकार उन्हें प्रसन्न किया । ऐश्वर्यशाली राजा बलि ने अपनी पत्नी सुदेष्णा की भी बड़ी भर्त्सना की और पुनः अलंकारादि से विभूषित कर ऋषि के पास भेजा । दीर्घतमा ने सुदेष्णा से कहा—हे मङ्गले ! यदि नमक मिश्रित दही मेरे नग्न और खुले हुए समस्त शरीर में लगाकर पैर से लेकर मस्तक तक बिना किसी घृणा या जुगुप्सा के अपनी जीभ से चाटोगी तब अपनी इच्छा के अनुसार पुत्रों को प्राप्त करोगी । देवी सुदेष्णा ने दीर्घतमा के इस आदेश का यद्यपि सर्वांशतः पालन किया ॥ ७५-७८ ॥

पर उनके शरीर के मलमार्ग को चाटते हुए बड़ी घृणा हुई जिससे उसने वह स्थान छोड़ दिया । ऐसा देखकर ऋषि दीर्घतमा ने सुदेष्णा से पुनः कहा, शुभे ! तुम अपने ज्येष्ठ कुमार को बिना अपानमार्ग अर्थात् बिना मलमार्ग के उत्पन्न करोगी । दीर्घतमा की ऐसी बातें सुनकर देवी ने पुनः प्रार्थना की और कहा कि—हे महाभाग ! ऐसा पुत्र देने की कृपा आप न करें ॥ ७९-८० ॥

ऋषि ने कहा—देवि ! यह तो तुम्हारा ही अपराध है, अब यह अन्यथा नहीं हो सकता । सद्व्रतपरायणे ! देवि ऐसा ही है तो तुम्हारा पुत्र इस प्रकार का होगा कि उसका सब कार्य बिना अपानमार्ग के भी होता रहेगा । ऐसा कहने के उपरान्त ऋषिवर दीर्घतमा ने देवी सुदेष्णा की कुक्षि का स्पर्श करते हुए पुनः कहा—हे देवि ! सुन्दर हँसने वाली ! तूने मेरे समस्त अंगों में दधि का जो प्राशन कर लिया है, उसके फलस्वरूप तुम्हारा गर्भ पूर्णिमा तिथि के समुद्र की भाँति पूर्णता को प्राप्त हो गया है ॥ ८१-८३ ॥

तुम्हारे गर्भ से देवताओं के समान परम सुन्दर एवं प्रभावशाली पाँच पुत्र उत्पन्न होंगे, वे परम धार्मिक, यज्ञपरायण, परम पराक्रमी एवं तेजस्वी होंगे । ऋषिवर दीर्घतमा के इस वरदान के अनुसार देवी सुदेष्णा से राजा बलि का ज्येष्ठ पुत्र अङ्ग उत्पन्न हुआ । उसके बाद बङ्ग, फिर कलिङ्ग, फिर पुण्ड्र तथा सबसे बाद में ब्रह्म नामक

वंशभाजस्तु पञ्चैते बलेः क्षेत्रेऽभवंस्तदा । इत्येते दीर्घतमसा बलेर्दत्ताः सुताः पुरा ॥ ८६ ॥
प्रजास्त्वपहतास्तस्य ब्रह्मणा कारणं प्रति । अपत्यामात्यस्य दारेषु स्वेषु मा भून्महात्मनः ॥ ८७ ॥
ततो मनुष्ययोन्यां वै जनयामास स प्रजाः । सुरभिर्दीर्घतमसमथ प्रीतो वचोऽब्रवीत् ॥ ८८ ॥
विचार्य यस्माद्गोधर्म्मं त्वमेवं कृतवानसि । तेन न्यायेन मुमुचे ह्यहं प्रीतोऽस्मि तेन ते ॥ ८९ ॥
तस्मात्तव तमो दीर्घं निस्तुदाम्यद्य पश्य वै । बार्हस्पत्यञ्च यत्तेऽन्यत्पापं संतिष्ठते तनौ ॥ ९० ॥
जरामृत्युभयं चैव आघ्राय प्रणुदामि ते । ह्याघातमात्रः सोऽपश्यत्सद्यस्तमसि नाशिते ॥ ९१ ॥
आयुष्मांश्च युवा चैव चक्षुष्मांश्च ततोऽभवत् । गवा दीर्घतमाः सोऽथ गौतमः समपद्यत ॥ ९२ ॥
कक्षीयांस्तु ततो गत्वा सह पित्रा गिरिप्रजाम् । यथोद्दिष्टं हि पित्रर्थे चचार विपुलं तपः ॥ ९३ ॥
ततः कालेन महता तमसा भावितः स वै । विधूय मनुजो दोषान्ब्रह्मण्यं प्राप्तवान्प्रभुः ॥ ९४ ॥
ततोऽब्रवीत्पिता चैनं पुत्रवानस्म्यहं प्रभो । सत्पुत्रेण त्वया तात कृतार्थोऽस्मि यशस्विना ॥ ९५ ॥
युक्तात्मा हि ततः सोऽथ प्राप्तवान्ब्रह्मणा क्षयम् । ब्रह्मण्यं प्राप्य कक्षीवान्सहस्रमसृजत्सुतान् ॥ ९६ ॥
कृष्णाङ्गा गौतमास्ते वै स्मृताः कक्षीवतः सुताः । इत्येष दीर्घतमसो बलेर्वैरोचनस्य वै ॥ ९७ ॥

पुत्र उत्पन्न हुआ । वंश की वृद्धि करने वाले ये पुत्रगण राजा बलि के क्षेत्रज पुत्र थे । प्राचीनकाल में ऋषिवर दीर्घतमा ने इन्हीं पाँचों पुत्रों को राजा बलि को प्रदान किया था ॥ ८४-८६ ॥

भगवान् ब्रह्मा ने किसी कारणवश इस महात्मा को 'तुम्हें अपनी स्त्रियों में सन्तति न होगी' ऐसा अभिशाप दिया था । इसी से उन्हें अपनी पत्नी में कोई सन्तति न हुई, इसी कारणवश उन्होंने मनुष्य योनि में सन्ततियाँ उत्पन्न कीं । ऋषि के इस गोधर्म से परम प्रसन्न होकर वृष ने यह वचन कहा 'तुमने गौधर्म की मर्यादा पर भलीभाँति विचारकर पालन किया है, हे मुने ! तुम्हारे इस आचरण से मैं परम प्रसन्न हूँ । आज महान् अन्धकार से मैं तुम्हारी मुक्ति कर रहा हूँ, तुम्हारे शरीर में बृहस्पति के शाप के कारण जो पाप चिरकाल से निबद्ध था, उसे भी तुमसे अलग कर रहा हूँ ॥ ८७-९० ॥

अपने नथुनों से सूँघकर तुम्हारे शरीर से वृद्धता एवं मृत्यु के शाप को भी मैं दूर कर रहा हूँ । ऐसा कहने के उपरान्त वृषभ के सूंघते ही दीर्घतमा का चिरकालीन अन्धकार दूर हो गया और वे देखने लगे । आशीर्वाद के फलस्वरूप वे दीर्घायुसम्पन्न युवा और नेत्रवान् हो गये । इस प्रकार गौ के आशीर्वाद से ऋषि दीर्घतमा गौतम— इन नये नाम से प्रख्यात हुए । तदनन्तर शूद्रा के गर्भ से समुत्पन्न कक्षीवान् ने पिता के साथ पर्वतीय प्रदेश को प्रस्थान किया और पिता के कल्याणार्थ ऐसी विपुल तपस्या की, जैसी तपस्या करने के लिए पिता ने उपदेश किया था । अपनी परम कठोर तपस्या के बल पर परम ऐश्वर्यशाली कक्षीवान् ने बहुत दिनों के उपरान्त सिद्धि प्राप्त की, और अपने तथा अपने अनुज चाक्षुष के भी पापों को नष्टकर ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया ॥ ९१-९४ ॥

कक्षीवान् के इस कर्म से पिता को परम प्रसन्नता हुई और वे बोले, 'सर्वसमर्थ पुत्र ! तुम जैसे योग्य पुत्र से मैं पुत्रवान् हूँ । परम यशस्वी सत्पुत्र को प्राप्तकर मैं कृतार्थ हो गया ।' ऐसा कहने के उपरान्त महात्मा गौतम ने योग की साधना की और ब्रह्म के पद को प्राप्त किया । इधर कक्षीवान् ने ब्राह्मणत्व की प्राप्ति कर सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया । कक्षीवान् के वे पुत्र काले अंगों वाले गौतम गोत्रीय कहे जाते हैं ॥ ९५-९६ ॥

समागमः समाख्यातः संतानश्चोभयोस्तयोः । बलिस्तानभिषिच्येह पञ्च पुत्रानकल्मषान् ॥ ९८ ॥
कृतार्थः सोऽपि योगात्मा योगमाश्रित्य च प्रभुः । अदृश्यः सर्वभूतानां कालाकाङ्क्षी चरत्युत ॥ ९९ ॥
तत्राङ्गस्य तु राजर्षे राजासीद्दधिवाहनः । सापराधसुदेष्णाया अनपानोऽभवन्नृपः ॥ १०० ॥
अनपानस्य पुत्रस्तु राजा दिविरथः स्मृतः । पुत्रो दिविरथस्यासीद्विद्वान्धर्मरथो नृपः ॥ १०१ ॥
स वै धर्मरथः श्रीमान्येन विष्णुपदे गिरौ । सोमः शक्रेण सह वै यज्ञे पीतो महात्मना ॥ १०२ ॥
शृणु धर्म्मरथस्यापि राजा चित्ररथोऽभवत् । लोमपाद इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताऽभवत् ॥ १०३ ॥
जज्ञे वै चण्डिकस्तस्य वारणः शक्रवारणः । आनयामास स महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् ॥ १०४ ॥
हर्य्यङ्गस्य तु दायादो राजा भद्ररथः किल । अथ भद्ररथस्यासीद् बृहत्कर्मा प्रजेश्वरः ॥ १०५ ॥
बृहद्रथः सुतस्तस्य यस्माज्जज्ञे बृहन्मनः । बृहन्मनास्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम् ॥ १०६ ॥
नाम्ना जयद्रथं नाम तस्माद् दृढरथो नृपः । आसीद् दृढरथस्यापि विश्वजिज्जनमेजयः ॥ १०७ ॥
दायादस्तस्य चाङ्गेभ्यो यस्मात्कर्णोऽभवन्नृपः । कर्णस्य शूरसेनस्तु द्विजस्तस्यात्मजः स्मृतः ॥ १०८ ॥

विरोचन के पुत्र बलि की एवं दीर्घतमा की सन्ततियों का परस्पर समागम जिस प्रकार हुआ, उसे मैं आप लोगों को बता चुका । महाराज बलि अपने उन पाँचों पुत्रों का राज्याभिषेक करने के उपरान्त कृतार्थ हो गए । योगात्मा एवं परम ऐश्वर्यशाली वह राजा बलि योग का आश्रय लेकर सभी जीवों से अदृश्य होकर काल की प्रतीक्षा करता हुआ तपस्या में अपना काल यापन करने लगा । बलि के पाँच पुत्रों में राजर्षि अङ्ग का पुत्र दधिवाहन हुआ । देवी सुदेष्णा के अपराध के कारण दीर्घतमा के शापानुसार उसे मलमार्ग नहीं था । उस राजा का दूसरा नाम अनपान भी था । अनपान का पुत्र राजा दिविरथ कहा जाता है । दिविरथ का पुत्र परम विद्वान् राजा धर्मरथ हुआ । इसी परम धार्मिक महाबलशाली श्रीसम्पन्न राजा धर्मरथ ने विष्णुपद नामक पर्वत पर इन्द्र के साथ एक यज्ञ में सोम रस का पान किया था ॥ ९७-१०२ ॥

अब आगे सुनिए, राजा धर्मरथ का पुत्र राजा चित्ररथ हुआ । उस चित्ररथ के पुत्र राजा दशरथ थे । यही राजा दशरथ लोमपाद के नाम से विख्यात थे, जिनकी पुत्री शान्ता थी ॥ १०३ ॥

विमर्श—भवभूति ने उत्तररामचरित में रामचन्द्र के पिता महाराज दशरथ की पुत्री को शान्ता माना है और ऋष्यशृङ्ग को देने की बात भी लिखी है । अन्य स्थानों पर उक्त महाराज दशरथ के रामचन्द्रादि चार पुत्रों के होने की कथा आती है, शान्ता की नहीं ।

उस राजा हर्य के पास चण्डिक नामक एक महान बलशाली हाथी था जो पूर्व जन्म में इन्द्र का ऐरावत था । राजा ने अपने मन्त्र बल से उस उत्तम वाहन को पृथ्वी पर बुलाया था । राजा हर्य का उत्तराधिकारी राजा भद्ररथ हुआ । राजा भद्ररथ का पुत्र राजा बृहत्कर्मा हुआ ऐसी प्रसिद्धि है ॥ १०४-१०५ ॥

बृहत्कर्मा का पुत्र राजा बृहद्रथ हुआ, उससे बृहन्मना नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । राजेन्द्र बृहन्मना ने जयद्रथ नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जिससे राजा दृढरथ की उत्पत्ति हुई । उस राजा दृढरथ का पुत्र विश्वविजयी राजा जनमेजय हुआ । उसके अंगों से राजा कर्ण हुआ है, जो उसका उत्तराधिकारी था । कर्ण का पुत्र शूरसेन हुआ, और उसका पुत्र द्विज नाम से जाना जाता है ॥ १०६-१०८ ॥

ऋषय ऊचुः

सूतात्मजः कथं कर्णः कथं चाङ्गस्य वंशजः । एतदिच्छामहे श्रोतुमत्यर्थं कुशलो ह्यसि॥ १०९ ॥

सूत उवाच

बृहद्भानोः सुतो जज्ञे नाम्ना राजा बृहन्मनाः । तस्य पत्नीद्वयं चासीच्चैद्यस्योभे च ते सुते॥ ११० ॥
यशोदेवी च सत्या च ताभ्यां वंशस्तु भिद्यते । जयद्रथस्तु राजेन्द्रो यशोदेव्यां व्यजायत॥ १११ ॥
ब्रह्मक्षत्रान्तरः सत्याविजयो नाम विश्रुतः । विजयस्य धृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो धृतव्रतः ॥ ११२ ॥
धृतव्रतस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महायशाः । सत्यकर्मसुतश्चापि सुतस्त्वधिरथस्तु वै॥ ११३ ॥
स कर्णं परिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतजः । एतद्वः कथितं सर्वं कर्णे यद्वै प्रचोदितम्॥ ११४ ॥
एतेऽङ्गवंशजाः सर्वे राजानः कीर्तिता मया । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च पुरोस्तु शृणुत प्रजाः ॥ ११५ ॥

सूत उवाच

पुरोः पुत्रो महाबाहू राजासीज्जनमेजयः । अविद्धस्तु सुतस्तस्य यः प्राचीमजयद्दिशम्॥ ११६ ॥
अविद्धतः प्रवीरस्तु मनस्युरभवत्सुतः । राजाथो जयदो नाम मनस्योरभवत्सुतः ॥ ११७ ॥
दायादस्तस्य चाप्यासीद्धुन्धुर्नाम महीपतिः । धुन्धोर्बहुगवी पुत्रः सञ्जातिस्तस्य चात्मजः ॥ ११८ ॥
सञ्जातेरथ रौद्राश्वस्तस्य पुत्रान्निबोधत । रौद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः ॥ ११९ ॥
रजेयुश्च कृतेयुश्च वक्षेयुः स्थण्डिलेषु च । घृतेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्चैव सप्तमः ॥ १२० ॥

ऋषियों ने कहा—हे सूत जी ! वे राजा कर्ण कैसे सूत के पुत्र हुए? और कैसे वे ही राजा अंग के वंशज हुए? आप इन प्राचीन कथाओं को कुशलता से जानते हैं अत: इसे हम लोग सुनना चाहते हैं ॥ ११३ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—बृहद्भानु का पुत्र राजा बृहन्मना था । उस राजा बृहन्मना की दो पत्नियाँ थीं, जो दोनों चेदिनरेश की पुत्रियाँ थीं । उनके नाम यशोदेवी और सत्या थे । इन्हीं दोनों पत्नियों से राजा का वंश अलग-अलग हो गया । राजाधिराज जयद्रथ यशोदेवी में उत्पन्न हुआ । दूसरी देवी सत्या से ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों का उद्धारक परम प्रख्यात राजा विजय हुआ । उस विजय का पुत्र धृति हुआ, जिसका पुत्र धृतव्रत नाम से प्रसिद्ध हुआ । धृतव्रत का पुत्र महान् यशस्वी राजा सत्यकर्मा हुआ, उसी सत्यकर्मा का पुत्र सूत अधिरथ हुआ । उसी ने कर्ण का पालन-पोषण किया था, इसी से कर्ण को सूत पुत्र कहते हैं । कर्ण के विषय में जो कुछ कहा जाता है वह सब मैं आपको बता चुका । इस प्रकार अङ्ग के वंश में उत्पन्न होने वाले राजाओं का वर्णन मैंने त्रिस्तारपूर्वक क्रमशः कर दिया । अब इसके बाद पुरु की प्रजाओं का वर्णन सुनिये ॥ ११०-११५ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! राजा पुरु का पुत्र महाबाहु जनमेजय हुआ, उसका पुत्र अविद्ध था, जिसने पूर्व दिशा को जीता था । अविद्ध से प्रवीर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका पुत्र मनस्यु था । उस मनस्यु का पुत्र राजा जयद हुआ ॥ ११६-११७ ॥

जयद का उत्तराधिकारी धुन्धु था । धुन्धु का पुत्र बहुगवी था, जिसका पुत्र संजाति था । संजाति का पुत्र रौद्राश्व था । अब उसके पुत्रों का वर्णन सुनिये । उस रौद्राश्व के घृताची नामक अप्सरा में दस पुत्र उत्पन्न हुए ॥११८-११९ ॥

उनके नाम रजेयु, कृतेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, घृतेयु, जलेयु, स्थलेयु, धर्मेयु, संनतेयु और वनेयु थे ।

धर्मेयुः सन्नतेयुश्च वनेयुर्दशमस्तु सः । रुद्रा शूद्रा च भद्रा च शुभा जामलजा तथा॥ १२१ ॥
तला खला च सप्तैता या च गोपजला स्मृता । तथा ताम्ररसा चैव रत्नकूटी च तादृशी॥ १२२ ॥
आत्रेयो वंशतस्तासां भर्त्ता नाम्ना प्रभाकरः । अनादृष्टस्तु राजर्षी रिवेयुस्तस्य चाऽऽत्मजः॥ १२३ ॥
रिवेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा । यस्यां देव्यां स राजर्षी रन्तिं नाम त्वजीजनत्॥ १२४ ॥
रन्तिर्नारः सरस्वत्यां पुत्रानजनयच्छुभान् । त्रसुं तथा प्रतिरथं ध्रुवं चैवातिधार्मिकम्॥ १२५ ॥
गौरी कन्या च विख्याता मान्धातुर्जननी शुभा । धुर्यः प्रतिरथस्यापि कण्ठस्तस्याभवत्सुतः॥ १२६ ॥
मेघातिथिः सुतस्तस्य यस्मात्काण्ठायना द्विजाः । इतिनानुयमस्यासीत्कन्या साजनयत्सुतान्॥ १२७ ॥
त्रयः सुदयितं पुत्रं मलिनं ब्रह्मवादिनम् । उपदातं ततो लेभे चतुरस्त्विवति सात्मजान्॥ १२८ ॥
सुष्मन्तमथ दुष्यन्तं प्रवीरमनघं तथा । चक्रवर्ती ततो जज्ञे दौष्यन्तिर्नृपसत्तमः॥ १२९ ॥
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना तु भारतम् । दुष्यन्तं प्रति राजानं वागुवाचाशरीरिणी॥ १३० ॥
माता भस्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः । भरस्व पुत्रं दुष्यन्तं सत्यमाह शकुन्तला॥ १३१ ॥
रेतोधाः पुत्रं नयति नरदेव यमक्षयात् । त्वं चास्य धाता गर्भस्य मावमंस्थाः शकुन्तलाम्॥ १३२ ॥

इन पुत्रों के अतिरिक्त रौद्राश्व की दस पुत्रियाँ भी थीं । उनके नाम रुद्रा, शूद्रा, मद्रा, शुभा, जामलजा, तला, खला, गोपजला, ताम्ररसा और रत्नकूटी था ॥ १२०-१२२ ॥

इन दसों कन्याओं का एकमात्र स्वामी अत्रिवंशोत्पन्न प्रभाकर था । राजर्षि अनादृष्ट का पुत्र रिवेयु था । उस राजा रिवेयु की पत्नी ज्वलना तक्षक की पुत्री थी । राजर्षि रिवेयु ने ज्वलना में रन्ति नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥ १२३-१२४ ॥

नरपति रन्ति ने सरस्वती नामक अपनी पत्नी में त्रसु, अप्रतिरथ और ध्रुव नामक परम धार्मिक कल्याण कामना वाले पुत्रों को उत्पन्न किया । उसकी एक मङ्गलदायिनी कन्या गौरी थीं, जो राजा मान्धाता की माता हुईं । राजा अप्रतिरथ का पुत्र धुर्य हुआ, जिसका पुत्र कण्ठ हुआ ॥ १२५-१२६ ॥

उस कण्ठ का पुत्र मेधातिथि था, जिससे काण्ठायन नामक द्विजाति वर्ग की उत्पत्ति हुई । इस मेधातिथि की एक कन्या थी, जिसने अनेक पुत्रों को उत्पन्न किया था । राजा रन्ति के प्रथम पुत्र त्रसु का परमप्रिय पुत्र मलिन था, जो अच्छा ब्रह्मवेत्ता था । उससे उपदानवी ने चार पुत्रों की प्राप्ति की, जिनके नाम थे, सुष्मन्त, दुष्यन्त, प्रवीर और अनघ । इनमें दुष्यन्त का पुत्र नृपतिवर्य भरत सम्राट् हुआ, वह राजा भरत शकुन्तला नामक पत्नी में उत्पन्न हुआ था, उसी के नाम से भारतवर्ष की प्रसिद्धि है ॥ १२७-१३० ॥

ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा दुष्यन्त की अशरीरिणी वाणी (आकाशवाणी) हुई थी—हे दुष्यन्त ! पुत्र की माता उसकी केवल रक्षा करने वाली है । पुत्र पिता का प्रतिनिधि है । पिता ही उसका सब कुछ है, जिससे उसकी उत्पति होती है, वही सब कुछ है, तुम इस बालक के वही पिता हो । यह तुम्हारा ही पुत्र है, इसका पालन-पोषण करो । शकुन्तला ने तुमसे सत्य बात कही है ॥ १२७-१३१ ॥

नरदेव पिता अपने पुत्र की मृत्युभय आदि आपत्तियों से रक्षा करता है, तुम्हीं इस गर्भ का आधान करने वाले हो, शकुन्तला का अपमान मत करो ॥ १३२ ॥

भरतस्तिसृषु स्त्रीषु नव पुत्रानजीजनत् । नाभ्यनन्दच्च तान् राजा नानुरूपान्ममेत्युत ॥ १३३ ॥
ततस्ता मातरः क्रुद्धाः पुत्रान्निन्युर्यमक्षयम् । ततस्तस्य नरेन्द्रस्य वितथं पुत्रजन्म तत् ॥ १३४ ॥
ततो मरुद्भिरानीय पुत्रस्तु स बृहस्पतेः । संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्विभुः ॥ १३५ ॥
तत्रैवोदाहरन्तीदं भरद्वाजस्य धीमतः । जन्मसंक्रमणं चैव मरुद्भिर्भरताय वै ॥ १३६ ॥
पत्न्यामासन्नगर्भायामशिजः संस्थितः किल । भ्रातुर्भार्यां स दृष्ट्वाऽथ बृहस्पतिरुवाच ह ॥
अलंकृत्य तनुं स्वां तु मैथुनं देहि मे शुभे ॥ १३७ ॥
एवमुक्ताऽब्रवीदेनमन्तर्वत्नी ह्यहं विभो । गर्भः परिणतश्चायं ब्रह्म व्याहरते गिरा ॥ १३८ ॥
अमोघरेतास्त्वं चापि धर्मश्चैव विगर्हितः । एवमुक्तोऽब्रवीदेनां स्मयमानो बृहस्पतिः ॥ १३९ ॥
विनयो नोपदेष्टव्यस्त्वया मम कथञ्चन । हर्षमाणः प्रसह्यैनां मैथुनायोपचक्रमे ॥ १४० ॥
ततो बृहस्पतिं गर्भो हर्षमाणमुवाच ह । सन्निविष्टो ह्यहं पूर्वमिह तात बृहस्पते ॥ १४१ ॥
अमोघरेताश्च भवान्नावकाशोऽस्ति च द्वयोः । एवमुक्तः स गर्भेण कुपितः प्रत्युवाच ह ॥ १४२ ॥
यस्मान्मामीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सती । प्रतिषेधसि तत्तस्मात् तयो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ॥ १४३ ॥
पादाभ्यान्तेन तच्छन्नं मातुर्द्वारं बृहस्पतेः । तद्रेतस्तु तयोर्मध्ये निवार्यः शिशूकोऽभवत् ॥ १४४ ॥
सद्योजातं कुमारं तं दृष्ट्वाथ ममताऽब्रवीत् । गमिष्यामि गृहं स्वं वै भरद्वाजं बृहस्पते ॥ १४५ ॥

सम्राट् भरत ने अपनी तीनों पत्नियों में नव पुत्रों को उत्पन्न किया था किन्तु उसने अपने उन समस्त पुत्रों का यह कह करके अभिनन्दन नहीं किया ये सब हमारी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं हैं ॥ १३३ ॥

भरत की ऐसी बातों से पुत्रों की माताओं को बड़ा क्रोध हुआ और आवेश में आकर उन सबों को उन्होंने मार डाला । इस प्रकार राजाधिराज भरत की पुत्रोत्पत्ति निष्फल हो गयी । तदनन्तर मरुतों ने बृहस्पति के पुत्र भरद्वाज को लाकर राजा भरत को दे दिया । परम सामर्थ्यशाली भरद्वाज इस प्रकार यज्ञाधिपति मरुतों द्वारा सम्राट् भरत के वंश में सम्मिलित हुए ॥ १३४-१३५ ॥

इसी वार्ता के प्रसङ्ग में लोग परम बुद्धिशाली भरद्वाज के जन्म वृत्तान्त की चर्चा करते हैं कि इस प्रकार उनकी (उत्पत्ति में संधि हुई) और इस प्रकार वे मरुतों द्वारा लाकर भरत को समर्पित किये गये । यह प्रसिद्ध बात है कि प्राचीनकाल में ऋषिवर अशिज की पत्नी ममता जब आसन्नगर्भा हुई तब वे तपस्या में निरत हो गये । एकान्त में अपने भाई की भार्या को देखकर बृहस्पति ने कहा—मंगले ! अपने शरीर को विधिवत् अलंकारादि से अलंकृत करके मुझे मैथुन का दान करो ॥ १३६-१३७ ॥

बृहस्पति के इस प्रकार कहने पर देवी ममता ने कहा—हे समर्थ ! मैं सम्प्रति गर्भवती हूँ, यह गर्भ भी अब पूर्ण हो चुका है और ब्रह्म (वेद) का उच्चारण करता है । तुम्हारा वीर्य भी निष्फल हो जाने वाला नहीं है । इस प्रकार व्यभिचार करने पर धर्म की विगर्हणा होगी । ममता के ऐसा कहने पर बृहस्पति हँसते हुए बोले—सुन्दरि ! मुझे तुम किसी प्रकार भी आचार की शिक्षा नहीं दे सकती, मैं सब कुछ जानता हूँ । ऐसा कहकर बड़े आनन्द के साथ बृहस्पति ने साहसपूर्वक ममता के साथ मैथुन करने का उपक्रम किया ॥ १३८-१४० ॥

रति कर्म में आनन्दविभोर बृहस्पति से गर्भस्थ शिशु ने कहा—हे तात ! हे बृहस्पते ! मैं यहाँ पहले से

एवमुक्त्वा गतायां स पुत्रं त्यजति तत्क्षणात् । भरस्व बाढमित्युक्तो भरद्वाजस्ततोऽभवत्॥ १४६ ॥
मातापितृभ्यां संत्यक्तं दृष्ट्वाऽथ मरुतः शिशुम् । गृहीत्वैनं भरद्वाजं जग्मुस्ते कृपया ततः ॥ १४७ ॥
तस्मिन्काले तु भरतो मरुद्भिः क्रतुभिः क्रमात् । काम्यनैमित्तिकैर्यज्ञैर्यजते पुत्रलिप्सया॥ १४८ ॥
यदा स यजमानो वै पुत्रान्नासादयत्प्रभुः । यज्ञे ततो मरुत्सोमं पुत्रार्थे पुनराहरत्॥ १४९ ॥
तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तोषिताः । भारद्वाजं ततः पुत्रं बार्हस्पत्यं मनीषिणम्॥ १५० ॥
भरतस्तु भरद्वाजं पुत्रं प्राप्य तदाऽब्रवीत् । प्रजायां संहतायां वै कृतार्थोऽहं त्वयाविभो॥ १५१ ॥
पूर्वं तु वितथं तस्य कृतं वै पुत्रजन्म हि । ततः स वितथो नाम भारद्वाजस्तथाऽभवत्॥ १५२ ॥
तस्माद्दिव्यो भरद्वाजो ब्राह्मण्यात् क्षत्रियोऽभवत् । द्विमुख्यायननामा स स्मृतो द्विपितृकस्तु वै॥ १५३ ॥
ततोऽथ वितथे जाते भरतः स दिवं ययौ । वितथस्य तु दायादो भुवमन्युर्बभूव ह॥ १५४ ॥
महाभूतोपमांश्चसंश्चत्वारो भुवमन्युजाः । बृहत्क्षत्रो महावीर्यो नरो गाग्रश्च वीर्यवान्॥ १५५ ॥

ही सन्निविष्ट हूँ । आपका वीर्य कदापि निष्फल होने वाला नहीं है । इस संकीर्ण स्थान में दो व्यक्तियों के निवास की सम्भावना नहीं है । गर्भस्थ शिशु के ऐसा कहने पर बृहस्पति को बड़ा क्रोध आ गया । उन्होंने कहा कि सभी प्राणियों के अभीष्टतम इस सुन्दर अवसर पर तुम मुझे रोक रहे हो, इस कारण तुम महान् घोर अन्धकार में प्रवेश करोगे ॥ १४१-१४३ ॥

बृहस्पति के इस कथन के उपरान्त गर्भस्थ शिशु ने अपने दोनों पैरों से माता के योनिद्वार को आवृत कर दिया । किन्तु फिर भी बृहस्पति का वीर्य उसके दोनों पैरों के मध्यभाग से अनिवार्य होकर उदर के भीतर चला गया, और एक छोटे शिशु के रूप में उत्पन्न होकर बाहर निकल पड़ा । इस सद्योजात कुमार को देखकर देवी ममता ने कहा—हे बृहस्पते ! मैं तो अपने निवास को जा रही हूँ । इस द्वाज (जारज) पुत्र की पालना तुम्हें करनी होगी । ऐसा कहकर ममता के चले जाने पर बृहस्पति ने भी उसी क्षण उस पुत्र को छोड़ दिया । 'भरस्व द्वाजम्' अर्थात् इस जारज शिशु की रक्षा करो—इस कथन के अनुसार वह शिशु भरद्वाज नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ १४४-१४६ ॥

माता और पिता द्वारा छोड़े गये इस छोटे शिशु भरद्वाज को जब मरुद्गणों ने देखा, तो उन्हें बड़ी दया आयी और वे उसे अपने साथ उठा ले गये । ठीक उसी समय पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा से सम्राट् भरत नैमित्तिक एवं काम्य विविध यज्ञों का अनुष्ठान कर रहे थे । सर्वैश्वर्यशालि सम्राट् भरत को जब उन यज्ञों से भी पुत्र प्राप्त नहीं हुए तो उन्होंने पुत्र प्राप्ति की कामना से पुनः मरुद्गणों का एवं सोम का यज्ञ किया । उस मरुत्सोमात्मक यज्ञ से मरुद्गण अत्यन्त प्रसन्न हुए और बृहस्पति के वीर्य से समुत्पन्न उस भरद्वाज नामक पुत्र को उन्होंने भरत को दे दिया । भरद्वाज को पुत्र रूप में प्राप्तकर सम्राट भरत विनत स्वर में बोले—'हे विभो, इस अवसर पर जबकि मेरी सभी सन्ततियाँ मृत्यु को प्राप्त हो गयीं, आपने पुत्र दान कर मुझे कृतार्थ कर दिया ॥ १४७-१५१ ॥

सम्राट भरत की पहली सन्ततियों का जन्म वितथ अर्थात् असफल हुआ था इसलिए भरद्वाज वितथ नाम से भी प्रसिद्ध हुए । सम्राट् भरत के पालन-पोषण के कारण दिव्य विभूति संपन्न भरद्वाज ब्राह्मणत्व से क्षत्रियत्व को प्राप्त हुए । वे द्विमुख्यायन एवं द्विपितर नाम से भी प्रसिद्ध हुए । इस प्रकार उत्तराधिकारी के रूप में वितथ को प्राप्त कर सम्राट् भरत स्वर्गगामी हुए । वितथ के उत्तराधिकारी राजा भुवमन्यु हुए । उन भुवमन्यु के महाभूतों के समान महान् पराक्रमी चार पुत्र हुए । जिनके नाम—बृहत्क्षत्र, महावीर्य, नर और वीर्यवान् गाग्र थे ॥ १५२-१५५ ॥

नरस्य सांकृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रौ महौजसौ । गुरुवीर्यस्त्रिदेवश्च सांकृत्याववरौ स्मृतौ ॥ १५६ ॥
दायादाश्चापि गाग्रस्य शिनिबद्धात् बभूव ह । स्मृताश्चैते ततो गाग्र्याः क्षात्रोपेता द्विजातयः ॥ १५७ ॥
महावीर्यसुतश्चापि भीमस्तस्मादुभक्षयः । तस्य भार्या विशाला तु सुषुवे वै सुतांस्त्रयः ॥ १५८ ॥
त्रय्यारुणिं पुष्करिणं तृतीयं सुषुवे कपिम् । कपेः क्षत्रवरा ह्येते तयोः प्रोक्ता महर्षयः ॥ १५९ ॥
गाग्राः सांकृतयो वीर्याः क्षात्रोपेता द्विजातयः । संश्रिताङ्गिरसं पक्षं बृहत्क्षत्रस्य वक्ष्यति ॥ १६० ॥
बृहत्क्षत्रस्य दायादः सुहोत्रो नाम धार्मिकः । सुहोत्रस्यापि दायादो हस्ती नाम बभूव ह ॥
तेनेदं निर्मितं पूर्वं नाम्ना वै हास्तिनं पुरम् ॥ १६१ ॥
हस्तिनश्चापि दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः । अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तथैव च ॥ १६२ ॥
अजमीढस्य पुत्रास्तु शुभाः शुभकुलोद्वहाः । तपसोऽन्ते सुमहतो राज्ञो वृद्धस्य धार्मिकाः ॥ १६३ ॥
भरद्वाजप्रसादेन श्रृणुध्वं तस्य विस्तरम् । अजमीढस्य केशिन्यां कण्ठः समभवत्किल ॥ १६४ ॥
मेधातिथिः सुतस्तस्य तस्मात्कण्ठायना द्विजाः । अजमीढस्य धूमिन्यां जज्ञे बृहद्वसुर्नृपः ॥ १६५ ॥
बृहद्वसोर्बृहद्विष्णुः पुत्रस्तस्य महाबलः । बृहत्कर्मा सुतस्तस्य पुत्रस्तस्य बृहद्रथः ॥ १६६ ॥
विश्वजित्तनयस्तस्य सेनजित्तस्य चात्मजः । अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥ १६७ ॥

इनमें नर के सांकृति नामक पुत्र हुए, जिनके गुरुवीर्य और त्रिदेव नामक शक्तिशाली पुत्र हुए । ये दोनों पुत्र सांकृत्य के नाम से विख्यात हैं । गाग्र के पुत्र शिनिबद्ध हुए । गाग्र के उत्तराधिकारी गाग्र्य के नाम से विख्यात हुए । ये सभी क्षत्रियोचित गुण धर्म समन्वित ब्राह्मण कहे जाते हैं । महावीर्य के पुत्र भीम थे । उनके उभक्षय नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । उभक्षय की पुत्री विशाला थी, उसने त्रय्यारुणि, पुष्करी और कपि नामक तीन पुत्र उत्पन्न किए। कपि के वंशज केवल उत्तम क्षत्रिय हुए और उन दोनों के महर्षि हुए । गाग्र्य और सांकृति के वंशज बलशाली क्षत्रिय थे । वे सब आङ्गिरस बृहस्पति के वंश में मिल गए । अब बृहत्क्षत्र के वंश का वर्णन कर रहा हूँ ॥ १५६-१६० ॥

बृहत्क्षत्र का उत्तराधिकारी पुत्र परम धार्मिक सुहोत्र था । सुहोत्र का उत्तराधिकारी हस्ती नाम से प्रसिद्ध था । उसी ने प्राचीनकाल में हस्तिनापुर का निर्माण किया था । राजा हस्ती के तीन परम धार्मिक उत्तराधिकारी पुत्र हुए, उनके नाम थे अजमीढ़, द्विमीढ़ और पुरुमीढ़ ॥ १६१-१६२ ॥

अजमीढ़ की कुरुवंश का उद्धार करने वाली परम सुन्दरी नीलिनी, केशिनी और धूमिनी नामक पत्नियाँ थीं । उन सबों से अजमीढ़ के वंशोद्धारक कई पुत्र उत्पन्न हुए । महान् तपस्या के उपरान्त राजा अजमीढ़ को वृद्धावस्था में भरद्वाज की अनुकम्पा से इन पुत्रों की प्राप्ति हुई थी । उनके वंश का विस्तारपूर्वक वर्णन सुनिये । ऐसी प्रसिद्धि है कि केशिनी में राजा अजमीढ़ के कण्ठ नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई ॥ १६३-१६४ ॥

कण्ठ का पुत्र मेधातिथि था । उसके वंशज कण्ठायन नामक द्विज कहे जाते हैं । अजमीढ़ की दूसरी पत्नी धूमिनी में राजा बृहद्वसु का जन्म हुआ । बृहद्वसु का पुत्र बृहद्विष्णु हुआ, उसका पुत्र महाबल था, महाबल का पुत्र बृहत्कर्मा था, बृहत्कर्मा का पुत्र राजा बृहद्रथ हुआ । उसका पुत्र विश्वजित था, विश्वजित् का पुत्र सेनजित् हुआ । सेनजित् के चार लोकविख्यात पुत्र हुए । उनके नाम—रुचिराश्व, काव्य, दृढ़ धनुर्धारी राम और अवन्तिदेशाधिपति

रुचिराश्वश्च काव्यश्च रामो दृढधनुस्तथा । वत्सश्चावन्तको राजा यस्य ते परिवत्सराः ॥ १६८ ॥
रुचिराश्वस्य दायादः पृथुषेणो महायशाः । पृथुषेणस्य पारस्तु पारान्नीपोऽथ जज्ञिवान्॥ १६९ ॥
यस्य चैकशतं चासीत्पुत्राणामिति नः श्रुतम् । नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते॥ १७० ॥
तेषां वंशकरः श्रीमान् राजासीत्कीर्तिवर्धनः । काम्पिल्ये समरो नाम स चेष्टसमरोऽभवत्॥ १७१ ॥
समरस्य परः पारः सत्वदश्व इति त्रयः । पुत्राः सर्वगुणोपेताः पारपुत्रो वृषुर्बभौ॥ १७२ ॥
वृषोस्तु सुकृतिर्नाम सुकृतेनेह कर्मणा । जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य चात्मजः॥ १७३ ॥
विभ्राजस्य तु दायादस्त्वणुहो नाम पार्थिवः । बभूव शुकजामाता ऋचीभर्ता महायशाः॥ १७४ ॥
अणुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महातपाः । योगसूनुः सुतस्तस्य विष्वक्सेनोऽभवनृपः॥ १७५ ॥
विभ्राजपुत्रा राजानः सुकृतेनेह कर्मणा । विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह॥ १७६ ॥
भल्लाटस्तस्य दायादो येन राजा पुरा हतः । भल्लाटस्य तु दायादो राजासीज्जनमेजयः॥
उग्रायुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपाः प्रणाशिताः ॥ १७७ ॥

ऋषय ऊचुः

उग्रायुधः कस्य सुतः कस्मिन् वंशे च कीर्त्यते । किमर्थं चैव नीपास्ते तेन सर्वे प्रणाशिताः॥ १७८ ॥

सूत उवाच

द्विमीढस्य तु दायादो विद्वान् जज्ञे यवीनरः । धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिः सुतः॥ १७९ ॥

वत्स थे । इसी राजा वत्स के नाम से सुप्रसिद्ध परिवत्सरों का प्रचलन हुआ ॥ १६५-१६८ ॥

रुचिराश्व का पुत्र महान् यशस्वी पृथुषेण था । पृथुषेण का पुत्र पार था, पार से नीप का जन्म हुआ। हमने सुना है कि उस राजा नीप के एक सौ पुत्र थे । वे सभी राजा थे, उन सबकी नीपगण नाम से ख्याति थी । उन समस्त नीपगणों में वंशोद्धारक परम यशस्वी समर नामक एक पुत्र था । उसने काम्पिल्य के युद्ध में विजय प्राप्त की थी । उस समर के पर, वार और सत्वदश्व—ये तीन पुत्र हुए, तीनों सर्वगुणसम्पन्न थे । इनमें पार का पुत्र वृषु हुआ और वृषु का पुत्र सुकृति हुआ । उसके शुभ कर्मों से सर्वगुणसम्पन्न विभ्राज नामक एक पुत्र हुआ ॥ १६९-१७३ ॥

विभ्राज का उत्तराधिकारी राजा अणुह हुआ । वह परम यशस्वी राजा अणुह शुक का जामाता एवं ऋची का पति था । अणुह का उत्तराधिकारी महान् तपस्वी ब्रह्मदत्त हुआ । उस ब्रह्मदत्त का पुत्र योगसूनु और योगसूनु का पुत्र विष्वक्सेन हुआ । विभ्राज के वंश में उत्पन्न होने वाले ये नृपतिगण अपने सत्कर्मों से इस लोक में परम यशस्वी हुए । उस राजा विष्वक्सेन का पुत्र उदक्सेन हुआ । उसका उत्तराधिकारी भल्लाट हुआ, जिसने राजा का संहार कर दिया । भल्लाट का उत्तराधिकारी राजा जनमेजय हुआ । इसी के वैर के कारण उग्रायुध ने समस्त नीपवंशियों का विध्वंस कर डाला था ॥ १७४-१७७ ॥

ऋषियों ने पूछा—हे सूतजी ! यह उग्रायुध किसका पुत्र था? किस वंश में इसका जन्म हुआ? इसने किस हेतु सभी नीपवंशीय राजाओं को मृत्यु के घाट उतार दिया था ॥ १७८ ॥

सूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! द्विमीढ़ के पुत्र विद्वान् राजा यवीनर हुए । उसका पुत्र धृतिमान था ।

अथ सत्यधृतेः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान् । दृढनेमिसुतश्चापि सुवर्मा नाम पार्थिवः ॥ १८० ॥
आसीत्सुवर्मणः पुत्रः सार्वभौमः प्रतापवान् । सार्वभौम इति ख्यातः पृथिव्यामेकराड् बभौ ॥ १८१ ॥
तस्यान्वये च महति महत्पौरवनन्दनः । महत्पौरवपुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः ॥ १८२ ॥
अथ रुक्मरथस्यापि सुपार्श्वो नाम पार्थिवः । सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः ॥ १८३ ॥
सुमतेरपि धर्मात्मा राजा संनतिमान्प्रभुः । तस्यासीत् संनतिर्नाम कृतस्तस्य सुतोऽभवत् ॥ १८४ ॥
शिष्यो हिरण्यनाभेस्तु कौथुमस्य महात्मनः । चतुर्विंशतिधा तेन प्रोक्तास्ताः सामसंहिताः ॥ १८५ ॥
स्मृतास्ते प्राच्यनामानः कार्ताः साम्नां तु सामगाः। कार्तिरुग्रायुधः सोऽथ वीरःपौरवनन्दनः ॥ १८६ ॥
बभूव येन विक्रम्य पृषतस्य पितामहः । नीलो नाम महाबाहुः पञ्चालाधिपतिर्हतः ॥ १८७ ॥
उग्रायुधस्य दायादः क्षेमो नाम महायशाः । क्षेमात्सुवीरः संजज्ञे सुवीरस्य नृपंजयः ॥
नृपंजयाद्वीररथ इत्येते पौरवाः स्मृताः ॥ १८८ ॥
अजमीढस्य नीलिन्यां नीलः समभवन्नृपः । नीलस्य तपसोग्रेण सुशान्तिरभ्यजायत ॥ १८९ ॥
पुरुजानुः सुशान्तेस्तु रिक्षस्तु पुरुजानुजः । ततस्तु रिक्षदायादो भेदाश्च तनयास्त्विमे ॥ १९० ॥
मुद्गलः शृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा । यवीयांश्चापि विक्रान्तः काम्पिल्यश्चैव पञ्चमः ॥ १९१ ॥
पञ्चानां रक्षणार्थाय पितैतानभ्यभाषत । पञ्चानां विद्धि पञ्चैतान्स्फीता जनपदा युताः ॥ १९२ ॥

धृतिमान का पुत्र सत्यधृति था । सत्यधृति का पुत्र परम प्रतापशाली राजा दृढ़नेमि था । दृढ़नेमि का पुत्र राजा सुवर्मा था । सुवर्मा का पुत्र सार्वभौम अत्यन्त प्रतापी राजा था । सार्वभौम नाम से विख्यात वह समस्त भूमण्डल का एकच्छत्र सम्राट् था ॥ १७९-१८१ ॥

उसकी ख्याति ही सार्वभौम नाम से थी । उस राजा सार्वभौम के महान् वंश में महत्पौरवनन्दन नामक एक राजा हुआ । उस महत्पौरवनन्दन का पुत्र रुक्मरथ कहा जाता है । रुक्मरथ का पुत्र राजा सुपार्श्व हुआ । उस सुपार्श्व का परम धार्मिक पुत्र राजा सुमति था । सुमति का पुत्र धर्मात्मा राजा सन्नतिमान् परम ऐश्वर्यशाली था । उसका संनति नामक एक पुत्र था । उस संनति का पुत्र कृत था, वह राजा कृत कौथुमीशाखाध्यायी महात्मा हिरण्यनाभि का शिष्य था, यह चौबीस प्रकार की सामसंहिताओं का प्रवक्ता था ॥ १८२-१८५ ॥

उनके द्वारा निर्मित संहिताओं की ख्याति सामगान करने वाले प्राच्य नाम से करते हैं । उसी राजा कृत का पुत्र उग्रायुध था । यह पुरुवंशियों को आनन्दित करने वाला राजा उग्रायुध परम वीर था । इसी राजा उग्रायुध ने अपने विक्रम की ख्याति करते हुए पञ्चाल देशाधिपति राजा पृषत् के पितामह महाबाहु नील का संहार किया था । उग्रायुध का पुत्र महान् यशस्वी राजा क्षेम हुआ । उस क्षेम से सुवीर नामक पुत्र का जन्म हुआ । सुवीर का पुत्र राजा नृपञ्जय हुआ, जिससे वीररथ की उत्पत्ति हुई । ये सभी पुरुवंशी राजा कहे गये हैं ॥ १८६-१८८ ॥

अजमीढ़ की नीलिनी नामक पत्नी में राजा नील की उत्पत्ति हुई । नील की विकट तपस्या से सुशान्ति नामक पुत्र का जन्म हुआ । सुशान्ति का पुत्र पुरुजानु हुआ । पुरुजानु का पुत्र रिक्ष था । उस रिक्ष के पाँच उत्तराधिकारी पुत्र हुए । उनके नाम—मुद्गल, शृञ्जय, बृहदिषु, यवीयान् और विक्रान्त काम्पिल्य थे ॥१८९-१९१॥

पाँचों पुत्रों की सुरक्षा के लिए पिता ने इनसे पाँच सुन्दर एवं उपजाऊ जनपद बताया था । उन पाँचों पुत्रों

अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः । मुद्गलस्यापि मौद्गल्याः क्षात्रोपेतद्विजातयः ॥ १९३ ॥
एते ह्यङ्गिरसः पक्षे संश्रिताः कण्ठमुद्गलाः । मुद्गलस्य सुतो ज्येष्ठो ब्रह्मिष्ठः सुमहायशाः ॥ १९४ ॥
इन्द्रसेना यतो गर्भं बध्यश्वं प्रत्यपद्यत । बध्यश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनका इति नः श्रुतिः ॥ १९५ ॥
दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी । शारद्वतस्तु दायादमहल्या समसूयत ॥ १९६ ॥
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहायशाः । पुत्रः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः ॥ १९७ ॥
अथ सत्यधृतेः शुक्रं दृष्ट्वाऽप्सरसमग्रतः । प्रचस्कन्दे शरस्तम्बे मिथुनं समपद्यत ॥ १९८ ॥
कृपया तच्च जग्राह शन्तनुर्मृगयां गतः । कृपः स्मृतः स वै तस्माद्गौतमी च कृपी तथा ॥ १९९ ॥
एते शारद्वताः प्रोक्ताः ॠतथ्यो गौतमान्वयः। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य संततिम् ॥ २०० ॥
दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मिष्ठो मित्रयुर्नृपः । मैत्रेयस्तु ततो जज्ञे स्मृता एतेऽपि संश्रिताः ॥ २०१ ॥
एतेऽपि संश्रिताः पक्षं क्षात्रोपेतास्तु भार्गवाः । राजाऽपि च्यवनो विद्वांस्ततः प्रतिरथोऽभवत् ॥ २०२ ॥
अथ वै च्यवनाद्धीमान्सुदासः समपद्यत । सौदासः सहदेवश्च सोमकस्तस्य चात्मजः ॥ २०३ ॥
अजमीढः पुनर्जातः क्षीणे वंशे स सोमकः । सोमकस्य सुतो जन्तुर्हते तस्मिञ्छतं विभो ॥ २०४ ॥

के भरण-पोषण के लिए वे पाँच जनपद पर्याप्त थे । उन पाँचों जनपदों की कालान्तर में पञ्चाल नाम से ख्याति हुई । मुद्गल के वंशज क्षत्रिय गुणधर्म समन्वित द्विज हुए । ये सब कण्ठ और मुद्गल के वंशज आंगिरस गोत्र में सम्मिलित हो गये । मुद्गल का ज्येष्ठ पुत्र महान् यशस्वी ब्रह्मिष्ठ था ॥ १९२-१९४ ॥

उसके संयोग से इन्द्रसेना ने वध्यश्व नामक पुत्र को जन्म दिया । हमने ऐसा सुना है कि मेनका ने इसी राजा वध्यश्व के समागम से एक जुड़वाँ सन्तानें उत्पन्न की थीं । जिसमें एक राजर्षि दिवोदास थे, दूसरी परम यशस्विनी अहल्या थीं । अहल्या ने शारद्वत के संयोग से ऋषिवर शतानन्द को पुत्र रूप में प्राप्त किया । शतानन्द के महान् यशस्वी सत्यभूति नामक पुत्र हुआ जो धनुर्वेद में परम पारङ्गत था ॥ १९५-१९७ ॥

एक बार सम्मुख आती हुई किसी अप्सरा को देखकर सत्यधृति का शुक्र सरपतों के गुल्म में गिर पड़ा, जिससे जुड़वाँ सन्तानें उत्पन्न हुई । संयोगवश राजा शन्तनु मृगया खेलते हुए वहाँ पहुँचे और उन्होंने कृपा करके उन बच्चों को उठा लिया और अपने घर लाकर उनका पालन-पोषण किया । इसी कारण उन दोनों के नाम कृपा एवं कृपी रखे गये । उसी कृपी का दूसरा नाम गौतमी भी था ॥ १९८-१९९ ॥

शारद्वत कहे जाने वाले गौतमवंशीय ऋतथ्यों का यह वंशवर्णन कर चुका । अब इसके उपरान्त दिवोदास की सन्ततियों का वर्णन कर रहा हूँ ॥ २०० ॥

दिवोदास का पुत्र ब्रह्मपरायण राजा हुआ जिसका नाम मित्रयु था । उससे मैत्रेय की उत्पत्ति हुई । मैत्रेय के वंश में उत्पन्न होने वाले भी क्षत्रिय गुणधर्म समन्वित द्विजाति कहलाये और उन सबों का गोत्र भार्गव रहा । तदनन्तर उसी वंश में विद्वान् राजा च्यवन का जन्म हुआ, जिसके पुत्र प्रतिरथ हुए ॥ २०१-२०२ ॥

च्यवन से परम बुद्धिमान् राजा सुदास की उत्पत्ति हुई । सुदास का पुत्र सहदेव हुआ । सहदेव का पुत्र सोमक था । वंश के विनाश समुपस्थित होने पर राजा अजमीढ़ ही सोमक के रूप में उत्पन्न हुए थे । सोमक का पुत्र जन्तु था । उसके मारे जाने पर उस महान् पराक्रमशाली एवं धर्मात्मा सोमक रूपधारी राजा अजमीढ़ के अन्य

पुत्राणामजमीढस्य सोमकत्वे महात्मनः । तेषां यवीयान्पृषतो द्रुपदस्य पितामहः ॥ २०५ ॥
धृष्टद्युम्नः सुतस्तस्य धृष्टकेतुश्च तत्सुतः । महिषी चाजमीढस्य धूमिनी पुत्रगर्धिनी ॥ २०६ ॥
पुनर्भवे तपस्तेपे शतं वर्षाणि दुश्चरम् । हुताग्न्यनिद्रा ह्यभवत् पवित्रमितभोजना ॥ २०७ ॥
अहोरात्रं कुशेष्वेव सुष्वाप सुमहाव्रता । तस्यां वै धूम्रवर्णायामजमीढश्च वीर्यवान् ॥ २०८ ॥
ऋक्षं संजनयामास धूम्रवर्णं सिताग्रजम् । ऋक्षात्संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणादभूत् ॥ २०९ ॥
यः प्रयागं पदाक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह । कृष्ट्वैनं सुमहातेजा वर्षाणि सुबहून्यथ ॥ २१० ॥
कृष्यमाणे तदा शक्रस्तत्रास्य वरदो बभौ । पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ॥ २११ ॥
तस्यान्ववायजाः ख्याताः कुरवो नृपसत्तमाः । कुरोस्तु दयिताः पुत्राः सुधन्वा जह्नुरेव च ॥ २१२ ॥
परीक्षितो महाराजः पुत्रकश्चारिमर्दनः । सुधन्वनस्तु दायादः सुहोत्रो मतिमान् स्मृतः ॥ २१३ ॥
च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थकोविदः । च्यवनस्य कृतः पुत्र इष्ट्वा यज्ञैर्महातपाः ॥ २१४ ॥
विश्रुतं जनयामास पुत्रमिन्द्रसखं नृपः । विद्योपरिचरं वीरं वसुं नामान्तरिक्षगम् ॥ २१५ ॥
विद्योपरिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त सूनवः । महारथो भगधरो विश्रुतो यो बृहद्रथः ॥ २१६ ॥
प्रत्यग्रहः कुशश्चैव यमाहुर्मणिवाहनम् । माथैल्यश्च ललित्थश्च मत्स्यकालश्च सप्तमः ॥ २१७ ॥

सौ पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें सबसे छोटा पृषत् था । यह पृषत् राजा द्रुपद का पिता था ॥ २०३-२०५ ॥

द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न हुआ । धृष्टद्युम्न का पुत्र धृष्टकेतु था । राजा अजमीढ़ की तीसरी रानी धूमिनी को पहले कोई सन्तान नहीं थी । सन्तान की उत्कट आकांक्षा से उसने इस पुनर्जन्म में सौ वर्षों तक परम कठोर तपस्या की, हवन किया, रात भर जागरण किया, पवित्र कर्मों में निरत रहकर स्वल्पाहार किया, रात-दिन कुशासन पर बैठती रही, उसी पर सोती रही, इस प्रकार उसने महान् तपस्या की । तपस्या करते-करते वह काली पड़ गयी, उसमें परम वीर्यशाली राजा अजमीढ़ ने गर्भाधान किया । इससे ऋक्ष नामक पुत्र का जन्म हुआ, यह ऋक्ष देखने में धुएँ के समान कृष्णवर्ण का था, इसका छोटा भाई सित भी था । ऋक्ष से संवरण की उत्पत्ति हुई, संवरण से कुरु उत्पन्न हुआ ॥ १०६-२०९ ॥

महान् तेजस्वी इस कुरु ने अपने चरणों से प्रयाग को आक्रान्त कर नवीन तीर्थ कुरुक्षेत्र का निर्माण किया था । बहुत वर्षों तक उसने कुरुक्षेत्र को जोता था । कुरुक्षेत्र के जोतते समय इन्द्र ने वरदान दिया था कि तुम्हारा यह क्षेत्र परम रमणीय, पुण्यप्रद एवं धर्मात्माओं के निवास करने योग्य है । उस राजा कुरु के वंश में उत्पन्न होने वाले कुरुगणों के नाम से ख्यात हुए । वे सब अपने समय के यशस्वी राजा थे । कुरु के परम प्रिय पुत्र सुधन्वा, जह्नु, परीक्षित, पुत्रक और अरिमर्दन थे । इनमें सुधन्वा के पुत्र परम बुद्धिमान् सुहोत्र थे ॥ २१०-२१३ ॥

सुहोत्र का पुत्र धर्मार्थवेत्ता राजा च्यवन था, च्यवन का पुत्र कृत हुआ, यह कृत महान् तपस्वी राजा था, इसने विविध यज्ञों का अनुष्ठान करके इन्द्र के मित्र, परम विख्यात, आकाशचारी वसुनाम से विख्यात विद्योपरिचर नामक पुत्र को उत्पन्न किया । उस विद्योपरिचर से गिरिका ने सात पुत्र उत्पन्न किये । जिनमें एक महारथी मगध सम्राट् राजा बृहद्रथ था ॥ २१४-२१६ ॥

उसके अतिरिक्त प्रत्यग्रह, कुश, मणिवाहन, प्राथैल्य, ललित्थ और मत्स्यकाल नामक अन्य छह पुत्र भी

बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः । कुशाग्रस्यात्मजश्चैव ऋषभो नाम वीर्यवान्॥ २१८ ॥
ऋषभस्यापि दायादः पुष्पवान्नाम धार्मिकः। विक्रान्तस्तस्य दायादो राजा सत्यहितः स्मृतः॥ २१९ ॥
तस्य पुत्रः सुधन्वा च तस्मादूर्जः प्रतापवान् । ऊर्जस्य नभसः पुत्रस्तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान्॥ २२० ॥
शकले द्वे स वै जातो जरया संधितस्तु सः । जरासंधो महाबाहुर्जरया संधितस्तु सः॥ २२१ ॥
सर्वक्षत्रस्य जेताऽसौ जरासंधो महाबलः । जरासंधस्य पुत्रस्तु सहदेवः प्रतापवान्॥ २२२ ॥
सहदेवात्मजः श्रीमान्सोमाधिः सुमहातपाः । श्रुतश्रुवस्तु सोमाधेर्मागधः परिकीर्तितः॥ २२३ ॥

सूत उवाच

परीक्षितस्य दायादो बभूव जनमेजयः । श्रुतसेनस्य दायादो भीमसेनोऽपि नामतः॥ २२४ ॥
जह्नुस्त्वजनयत्पुत्रं सुरथं नाम भूमिपम् । सुरथस्य तु दायादो वीरो राजा विदूरथः॥ २२५ ॥
जनमेजयस्य पुत्रस्तु सुरयो नाम भूमिपः । विदूरथसुतश्चापि सार्वभौम इति श्रुतिः॥
सार्वभौमाजयत्सेन आराधिस्तस्य चात्मजः ॥ २२६ ॥
आराधितो महासत्त्व अयुतायुस्ततः स्मृतः। अक्रोधनोऽयुतायोऽस्तु तस्माद्देवातिथिः स्मृतः॥ २२७ ॥
देवातिथेस्तु दायाद ऋक्ष एव बभूव ह । भीमसेनस्तथा ऋक्षाद्दिलीपस्तस्य चात्मजः॥ २२८ ॥

थे । बृहद्रथ का उत्तराधिकारी परम विख्यात राजा कुशाग्र हुआ । उस कुशाग्र का पुत्र परम बलवान् ऋषभ था । ऋषभ का उत्तराधिकारी परम धार्मिक पुष्पवान् था, जिसका योग्य उत्तराधिकारी विक्रमशाली राजा सत्यहित कहा जाता है ॥ २१७-२१९ ॥

उस राजा सत्यहित का पुत्र सुधन्वा था, उससे प्रतापशाली ऊर्ज का जन्म हुआ । ऊर्ज का पुत्र राजा नभस् था । उस नभस् से अत्यन्त बलशाली उस राजा का जन्म हुआ जिसके जन्म के पहले दो टुकड़े उत्पन्न हुए थे । जरा नामक राक्षसी ने उन दोनों टुकड़ों को आपस में जोड़ दिया था । वह परमबलशाली पुत्र महाबाहु जरासंध था । जरा से संधित होने के कारण उसका यह नाम विख्यात था । वह अपने समय के समस्त क्षत्रियों को पराजित करने वाला था । उस जरासंध का पुत्र प्रतापशाली सहदेव था । सहदेव का पुत्र महान् तपस्वी श्रीमान् राजा सोमाधि था । उस सोमाधि का पुत्र श्रुतश्रवा हुआ । इस प्रकार मगधवंशीय राजाओं का वर्णन किया गया ॥ २२०-२२३ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! परीक्षित का उत्तराधिकारी राजा जनमेजय था । उस राजा जनमेजय का पुत्र पृथ्वीपति सुरथ हुआ । सुरथ का पुत्र भी भीमसेन नाम से विख्यात हुआ ॥ २२४ ॥

जह्नु ने भी एक सुरथ नामक पुत्र को उत्पन्न किया था, जो अपने समय में पृथ्वीपति था । उस सुरथ का उत्तराधिकारी राजा विदूरथ जन्मा । विदूरथ का पुत्र भी सार्वभौम नाम से विख्यात हुआ । सार्वभौम से जयत्सेन की उत्पत्ति हुई, जयत्सेन का पुत्र आराधि हुआ । आराधि से महासत्त्व की उत्पत्ति हुई । महासत्त्व से अयुतायु ने जन्म धारण किया । अयुतायु का पुत्र राजा अक्रोधन हुआ । उससे राजा देवातिथि की उत्पत्ति सुनी जाती है ॥ २२५-२२७ ॥

देवातिथि का उत्तराधिकारी ऋक्ष नामक राजा हुआ । ऋक्ष से भीमसेन का जन्म हुआ । भीमसेन का पुत्र राजा दिलीप था । दिलीप का पुत्र प्रतिप हुआ । उस प्रतिप के तीन पुत्र कहे जाते हैं । उनके नाम—देवापि, शन्तनु

दिलीपसूनुः प्रतिपस्तस्य पुत्रास्त्रयः स्मृताः । देवापिः शन्तनुश्चैव बाह्लीकश्चैव ते त्रयः ॥ २२९ ॥
बाह्लीकस्य तु विज्ञेयः सप्तबाह्लीश्वरो नृपः । बाह्लीकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः ॥ २३० ॥
जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवाः शलः । देवापिस्तु प्रवव्राज वनं धर्मपरीप्सया ॥ २३१ ॥
उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः । च्यवनोऽस्य हि पुत्रस्तु इष्टकश्च महात्मनः ॥ २३२ ॥
शंतनुस्त्वभवद्राजा विद्वान्वै स महाभिषः । इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषम् ॥ २३३ ॥
यं यं राजा स्पृशति वै जीर्णं समयतो नरम् । पुनर्युवा स भवति तस्मात्ते शन्तनुं विदुः ॥ २३४ ॥
ततोऽस्य शंतनुत्वं वै प्रजास्विह परिश्रुतम् । स उपयेमे धर्मात्मा शन्तनुर्जाह्नवीं नृपः ॥ २३५ ॥
तस्यां देवव्रतं भीष्मं पुत्रं सोऽजनयत्प्रभुः । स च भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः ॥ २३६ ॥
काले विचित्रवीर्यन्तु शन्तनुर्जनयत्सुतम् । शन्तनोर्दयितं पुत्रं प्रजाहितकरं प्रभुम् ॥
कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके ॥ २३७ ॥
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् । धृतराष्ट्रात्तु गान्धारी पुत्राणां सुषुवे शतम् ॥ २३८ ॥
तेषां दुर्योधनो ज्येष्ठः सर्वक्षत्रस्य स प्रभुः । माद्री राज्ञी पृथा चैव पाण्डोर्भार्ये बभूवतुः ॥ २३९ ॥
देवदत्ताः सुतास्ताभ्यां पाण्डोरर्थे विजज्ञिरे । धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे वायोर्जज्ञे वृकोदरः ॥ २४० ॥
इन्द्राद्धनञ्जयो जज्ञे शक्रतुल्यपराक्रमः । अश्विभ्यां सहदेवश्च नकुलश्चापि माद्रिजौ ॥ २४१ ॥

और वाह्लीक थे । वाह्लीक का पुत्र राजा सप्तवाह्लीश्वर हुआ । वाह्लीक का पुत्र प्रतापी सोमदत्त था । सोमदत्त से भूरि, भूरिश्रवा और शल की उत्पत्ति हुई । देवापि धर्मतत्त्व के अनुसंधान हेतु वन को चला गया था ॥ २२८-२३१ ॥

वहाँ जाकर वह मुनिवेश धारणकर देवताओं का उपाध्याय हुआ । महात्मा देवापि के च्यवन और इष्टक नामक पुत्र हुए, शन्तनु परम विद्वान् एवं महाभिष अर्थात् बहुत बड़े वैद्य थे जो राजा हुए । भिषक् शन्तनु के सम्बन्ध में लोग एक श्लोक कहते हैं, जिसका आशय इस प्रकार है कि—जिस-जिस वृद्ध मनुष्य का वह राजा स्पर्श करता था, वह पुनः युवा हो जाता था, इसी कारण से उसका नाम शन्तनु कहा जाता है । सर्वसाधारण प्रजा में वह शन्तनु नाम से ही विख्यात था । उस परम धर्मात्मा राजा शन्तनु ने जाह्नवी के साथ विवाह किया था ॥ २३२-२३५ ॥

परम ऐश्वर्यशाली शन्तनु ने जाह्नवी में देवव्रत नामक पुत्र उत्पन्न किया । वह देवव्रत भीष्म नाम से विख्यात हुए, जो समस्त पाण्डवों के पितामह थे । उसी समय राजा शन्तनु की दूसरी पत्नी दासेयी ने विचित्रवीर्य नामक पुत्र को उत्पन्न किया था, जो परम प्रभावशाली, प्रजा हितैषी एवं शन्तनु को परमप्रिय था । राजा विचित्रवीर्य के क्षेत्र (पत्नी) में कृष्णद्वैपायन ने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर नामक पुत्रों को उत्पन्न किया । इनमें धृतराष्ट्र के संयोग से गान्धारी ने सौ पुत्रों को उत्पन्न किया ॥ २३६-२३८ ॥

उन सौ पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन था, अपने समय का वह समस्त क्षत्रिय जाति का स्वामी था । पाण्डु की माद्री और पृथा नामक दो स्त्रियाँ थीं । पाण्डु के लिए विभिन्न देवताओं से दिये गये पुत्र उन दोनों रानियों में उत्पन्न हुए । धर्म से युधिष्ठिर का जन्म हुआ, वायु से वृकोदर भीम की उत्पत्ति हुई, इन्द्र से धनंजय का जन्म हुआ, जो इन्द्र के समान ही पराक्रमशाली था । दोनों अश्विनीकुमारों के संयोग से माद्री के नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २३९-२४१ ॥

पञ्चैव पाण्डवेभ्यश्च द्रौपद्यां जज्ञिरे सुताः । द्रौपद्यजनयज्ज्येष्ठं श्रुतिविद्धं युधिष्ठिरात्॥ २४२ ॥
हिडम्बा भीमसेनात्तु जज्ञे पुत्रं घटोत्कचम् । काश्याः पुनर्भीमसेनाज्जज्ञे सर्ववृकं सुतम्॥ २४३ ॥
सुहोत्रं विजया माद्री सहदेवादजायत । करेमत्यां तु वैद्यायां निरमित्रस्तु लाङ्गलिः ॥ २४४ ॥
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत । उत्तरायां तु वैराट्यां परिक्षिदभिमन्युजः ॥ २४५ ॥
परीक्षितस्तु दायादो राजासीज्जनमेजयः । ब्राह्मणान्स्थापयामास स वै वाजसनेयिकान्॥ २४६ ॥
असपत्नं तदामर्षाद्वैशम्पायन एव तु । न स्थास्यतीह दुर्बुद्धे तवैतद्वचनं भुवि॥ २४७ ॥
यावत्स्थास्याम्यहं लोके तावन्नैतत्प्रशस्यते । अभितः संस्थितश्चापि ततः स जनमेजयः ॥ २४८ ॥
पौर्णमास्येन हविषा देवमिष्ट्वा प्रजापतिम् । विज्ञाय संस्थितोऽपश्यत्तद्व्यधीष्टां विभोर्मखे॥ २४९ ॥
परिक्षित्तनयश्चापि पौरवो जनमेजयः । द्विरश्वमेधमाहृत्य ततो वाजसनेयकम्॥
प्रवर्तयित्वा तद्ब्रह्म त्रिखर्वी जनमेजयः ॥ २५० ॥
खर्वमश्वकमुख्यानां खर्वमङ्ग निवासिनाम् । खर्वं च मध्यदेशानां त्रिखर्वी जनमेजयः ॥
विषदाद् ब्राह्मणैः सार्द्धमभिशस्तः क्षयं ययौ ॥ २५१ ॥
तस्य पुत्रः शतानीको बलवान्सत्यविक्रमः । ततः सुतं शतानीकं विप्रास्तमभ्यषेचयत्॥ २५२ ॥
पुत्रोऽश्वमेधदत्तोऽभूच्छतानीकस्य वीर्यवान् । पुत्रोऽश्वमेधदत्ताद्वै जातः परपुरंजयः ॥ २५३ ॥

पाँच पाण्डवों के संयोग से द्रौपदी में भी पाँच ही पुत्र उत्पन्न हुए । द्रौपदी ने सबसे बड़े पुत्र प्रतिविन्ध्य को युधिष्ठिर के संयोग से उत्पन्न किया था । हिडम्बा ने भीमसेन के संयोग से घटोत्कच को तथा दूसरी पत्नी काश्या ने भीमसेन से सर्ववृक नामक पुत्र को उत्पन्न किया था । मद्र देश की राजकन्या विजया ने सुहोत्र को उत्पन्न किया था । चेदिदेश की राजपुत्री कर्मरती ने नकुल से नरमित्र नामक पुत्र उत्पन्न किया था ॥ २४२-२४४ ॥

पार्थ के संयोग से सुभद्रा में महारथी अभिमन्यु ने जन्म धारण किया था । विराट पुत्री उत्तरा में अभिमन्यु से परीक्षित नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था । परीक्षित का उत्तराधिकारी राजा जनमेजय था । राजा जनमेजय ने वाजसनेय यज्ञ की प्रतिष्ठा करने वाले ब्राह्मणों की मर्यादा स्थिर की थी ॥ २४५-२४६ ॥

वैशम्पायन ने उनके इस कार्य को सहन नहीं किया और उन्होंने क्रोध में कहा—दुर्बुद्धे ! तुम्हारी यह मर्यादा पृथ्वी पर स्थिर न रह सकेगी । जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक तो उसकी प्रशंसा नहीं हो सकती । चारों ओर से संकटापन्न होकर जनमेजय ने पौर्णमास नामक यज्ञ का अनुष्ठान किया और उसमें प्रजापति देव को हवि देकर सन्तुष्ट किया । मख में सर्वैश्वर्यशाली प्रजापति के निमित्त यज्ञ करने पर भी उनकी स्थिति वैसी ही रही । यह देखकर पुनः पुरुवंशी परीक्षितपुत्र राजा जनमेजय ने दो अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया और उसमें अपने द्वारा प्रतिष्ठित वाजसनेय का प्रवर्तन किया । इसमें उन्हें तीन स्थानों पर पराजित होना पड़ा ॥ २४७-२५० ॥

सर्वप्रथम अश्वक मुख्यों के यहाँ, फिर अङ्ग देशवासियों के यहाँ, फिर मध्यदेश निवासियों के यहाँ इस प्रकार जनमेजय को तीन बार पराजित होना पड़ा । इससे उसे बड़ा विषाद हुआ । फलस्वरूप ब्राह्मणों के साथ निन्दा का पात्र होकर वह विनाश को प्राप्त हुआ ॥ २५१ ॥

राजा जनमेजय का पुत्र शतानीक था । वह परम बलशाली, सत्यवादी तथा विक्रमी था । ब्राह्मणों ने

अधिसामकृष्णो धर्मात्मा सांप्रतोऽयं महायशाः । यस्मिन्प्रशासति महीं युष्माभिरिदमाहृतम्॥ २५४ ॥
दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि दुश्चरम् । वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः॥ २५५ ॥

ऋषय ऊचुः

श्रोतुं भविष्यमिच्छामः प्रजानां वै महामते । सूत सार्द्धं नृपैर्भाव्यं व्यतीतं कीर्तितं त्वया॥ २५६ ॥
यत्तु संस्थास्यते कृत्यमुत्पत्स्यन्ति च ये नृपाः । वर्षाग्रतोऽपि प्रब्रूहि नामतश्चैव तान्नृपान्॥ २५७ ॥
कालं युगप्रमाणं च गुणदोषान् भविष्यतः । सुखदुःखे प्रजानां च धर्मतः कामतोऽर्थतः॥ २५८ ॥
एतत्सर्वं प्रसंख्याय पृच्छतां ब्रूहि तत्वतः । स एवमुक्तो मुनिभिः सूतो बुद्धिमतां वरः॥
आचचक्षे यथावृत्तं यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ २५९ ॥

सूत उवाच

यथा मे कीर्तितं सर्व व्यासेनाद्भुतकर्मणा । भाव्यं कलियुगं चैव तथा मन्वन्तराणि तु॥ २६० ॥
अनागतानि सर्वाणि ब्रुवतो मे निबोधत । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्यन्ति नृपास्तु ये॥ २६१ ॥
ऐलांश्चैव तयेक्ष्वाकुन् सौद्युम्नांश्चैव पार्थिवान् । येषु संस्थाप्यते क्षेत्रमैक्ष्वाकवमिदं शुभम्॥ २६२ ॥
तान्सर्वान्कीर्तयिष्यामि भविष्ये पङ्क्तितान्नृपान् । तेभ्यः परे च ये चान्ये उत्पत्स्यन्ते महीक्षितः॥ २६३ ॥

जनमेजय की मृत्यु के बाद उसके स्थान पर शतानीक का अभिषेक किया । शतानीक का पुत्र परम बलशाली अश्वमेधदत्त हुआ । अश्वमेधदत्त से शत्रुओं के दुर्गों को जीतने वाले अधिसामकृष्ण नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । हे ऋषिवृन्द ! यही परम धर्मात्मा राजा सम्प्रप्ति राज्य कर रहा है । उसी के राज्यकाल में आप लोगों ने इस परम दुर्लभ तीन वर्ष चलने वाले दीर्घसत्र का अनुष्ठान प्रारम्भ किया है । इसके अतिरिक्त दृषद्वती के तट प्रान्त पर कुरुक्षेत्र में भी दो वर्षव्यापी एक दीर्घसत्र चल रहा है ॥ २५२-२५५ ॥

ऋषिगणों ने कहा—हे महामति सूत जी ! आपने भूतकाल में उत्पन्न राजाओं का वर्णन कर दिया । अब हमलोग भविष्यत्यकाल में उत्पन्न होने वाले सभी राजाओं के साथ उनकी प्रजाओं का वर्णन सुनना चाहते हैं । भविष्य में उत्पन्न होकर वे लोग जिन नवीन विधाओं का प्रवर्तन करेंगे, उनके जो नाम होंगे, उन्हें उनके शासनकाल की गणना के साथ बताइये । उस समय से उत्पन्न होने वाली प्रजाओं के सुख-दुःख, गुण-दोष, युग-प्रमाण उनके धर्मार्थ काम सम्बन्धी विचारों को हम लोग सुनना चाहते हैं, इसका यथार्थतः वर्णन कीजिए । मुनियों द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ सूत जी ने इन प्रश्नों के विषय में जैसा कुछ देखा था, जैसा सुना था, कहना प्रारम्भ किया ॥ २५६-२५९ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! अद्भुत कर्मशील व्यास जी ने इस विषय में मुझसे जो कुछ बताया है, उसे मैं बता रहा हूँ । भविष्य में जिस प्रकार कलियुग आयेगा, जितने मन्वन्तर होंगे, जितने राजा लोग उत्पन्न होंगे, मैं उन सबका वर्णन अब कर रहा हूँ ॥ २६०-२६१ ॥

उन ऐळवंशीय, इक्ष्वाकुवंशीय तथा सौद्युम्नवंशीय राजाओं का वर्णन, जिसके वंशजों पर इन सर्वकल्याणकारी इक्ष्वाकुवंशियों का एकमात्र प्रभाव होगा तथा भविष्य के समस्त राजाओं का वर्णन करूंगा । अन्य सामान्य राजा लोग भी उत्पन्न होंगे, उन्हें भी बताऊँगा ! उन सबके अतिरिक्त क्षत्र, पारशव, शूद्र, अन्यान्य द्विजातिवर्ग, अन्ध्र,

क्षत्राः पारशवाः शूद्रास्तथा ये च द्विजातयः। अन्ध्राः शकाः पुलिन्दाश्च तूलिका यवनैः सह ॥ २६४ ॥
कैवर्त्ताभीरशबरा ये चान्ये म्लेच्छजातयः । वर्षाग्रतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान्नृपान् ॥ २६५ ॥
अधिसामकृष्णः सोऽयं सांप्रतं पौरवान्नृपः । तस्यान्ववाये वक्ष्यामि भविष्ये तावतो नृपान् ॥ २६६ ॥
अधिसामकृष्णपुत्रो निर्वक्त्रे भविता किल । गङ्गयापहृते तस्मिन्नगरे नागसाह्वये ॥
त्यक्त्वा च तं सुवासं च कौशाम्ब्यां स निवत्स्यति ॥ २६७ ॥
भविष्यदुष्णस्तत्पुत्र उष्णाच्चित्ररथः स्मृतः । शुचिद्रथश्चित्ररथाद्वृतिमांश्च शुचिद्रथात् ॥ २६८ ॥
सुषेणो वै महावीर्यो भविष्यति महायशाः । तस्मात्सुषेणाद्भविता सुतीर्थो नाम पार्थिवः ॥ २६९ ॥
रुचः सुतीर्थाद्भविता त्रिचक्षो भविता ततः । त्रिचक्षस्य तु दायादो भविता वै सुखीबलः ॥ २७० ॥
सुखीबलसुतश्चापि भाव्यो राजा परिप्लुतः । परिप्लुतसुतश्चापि भविता सुनयो नृपः ॥ २७१ ॥
मेधावी सुनयस्याथ भविष्यति नराधिपः । मेधाविनः सुतश्चापि दण्डपाणिर्भविष्यति ॥ २७२ ॥
दण्डपाणेर्निरामित्रो निरामित्राच्च क्षेमकः । पञ्चविंशनृपा ह्येते भविष्याः पूर्ववंशजाः ॥ २७३ ॥
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतो विप्रैः पुराविदैः । ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो देवर्षिसत्कृतः ॥ २७४ ॥
क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ । इत्येष पौरवो वंशो यथावदनुकीर्तितः ॥ २७५ ॥

शक, पुलिन्द, तूलिका, यवन, कैवर्त, आभीर, शबर प्रभृति अन्यान्य म्लेच्छ जातियों का वर्णन भी करूंगा । उस समय में जो राजा लोग होंगे, उनके नाम एवं शासनकाल का भी वर्णन करूंगा ॥ २६२-२६५ ॥

सम्प्रति अधिसामकृष्ण नामक राजा राज्य कर रहा है । उसकी उत्पत्ति विख्यात पौरव वंश से है । उसके वंश में उत्पन्न होने वाले भविष्य के राजाओं का वर्णन सर्वप्रथम कर रहा हूँ । इस राजा अधिसामकृष्ण का पुत्र निर्वक्त्र होगा । (मत्स्यपुराण में इनका नाम विवक्षु कहा गया है ।) गंगा द्वारा हस्तिनापुर के डुबा देने पर वह उसे छोड़कर अपनी राजधानी कौशाम्बी में बनायेगा, और वहीं पर निवास करेगा ॥ २६६-२६७ ॥

राजा निर्वक्त्र को उष्ण नामक एक पुत्र होगा । उष्ण से चित्ररथ नामक पुत्र की उत्पत्ति होगी । चित्ररथ से शुचिद्रथ की उत्पत्ति होगी । शुचिद्रथ से परम धैर्यशाली, महान् यशस्वी एवं बलशाली सुषेण की उत्पत्ति होगी । उस राजा सुषेण से सुतीर्थ नामक राजा का जन्म होगा । सुतीर्थ से रुच होगा, रुच से त्रिचक्ष होगा, त्रिचक्ष का उत्तराधिकारी राजा सुखीबल होगा ॥ २६८-२७० ॥

सुखीबल का पुत्र राजा परिप्लुत होगा, परिप्लुत का पुत्र राजा सुनय होगा । सुनय का पुत्र नरपति मेधावी होगा, मेधावी का पुत्र दण्डपाणि होगा । दण्डपाणि से निरामित्र और निरामित्र से क्षेमक होगा । ये पचीस नृपतिगण भविष्यत्काल में इस वंश में उत्पन्न होंगे ॥ २७१-२७३ ॥

प्राचीन कथाओं के जानने वाले ब्राह्मण लोग इस वंश के विषय में एक श्लोक का गान करते हैं । उसका तात्पर्य बता रहा हूँ, जो वंश ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों का उत्पत्ति-स्थान था, जिस वंश का देवता तथा ऋषिगण सत्कार करते थे, वह पौरववंश कलियुग में क्षेमक नामक राजा के बाद समाप्त हो जायगा । पौरववंश का वृत्तान्त, जैसा कुछ कहा जाता है आप लोगों को बता चुका ॥ २७४-२७५ ॥

धीमतः पाण्डुपुत्रस्य ह्यर्जुनस्य महात्मनः । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि इक्ष्वाकूणां महात्मनाम्॥ २७६ ॥
बृहद्रथस्य दायादो वीरो राजा बृहत्क्षयः । ततः क्षयः सुतस्तस्य वत्सव्यूहस्ततः क्षयात्॥ २७७ ॥
वत्सव्यूहात्प्रतिव्यूहस्तस्य पुत्रो दिवाकरः । यश्च सांप्रतमध्यास्त अयोध्यां नगरीं नृपः॥ २७८ ॥
दिवाकरस्य भविता सहदेवो महायशाः । सहदेवस्य दायादो बृहदश्वो भविष्यति॥ २७९ ॥
तस्य भानुरथो भाव्यः प्रतीताश्वश्च तत्सुतः । प्रतीताश्वसुतश्चापि सुप्रतीतो भविष्यति॥ २८० ॥
सहदेवः सुतस्तस्य सुनक्षत्रश्च तत्सुतः ॥ २८१ ॥
किन्नरस्तु सुनक्षत्राद्भविष्यति परंतपः । भविता चान्तरिक्षस्तु किन्नरस्य सुतो महान्॥ २८२ ॥
अन्तरिक्षात्सुपर्णस्तु सुपर्णाच्चाप्यमित्रजित् । पुत्रस्तस्य भरद्वाजो धर्मी तस्य सुतः स्मृतः॥
पुत्रः कृतञ्जयो नाम धर्मिणः स भविष्यति । कृतञ्जयसुतो व्रातो तस्य पुत्रो रणञ्जयः॥ २८३ ॥
भविता सञ्जयश्चापि वीरो राजा रणञ्जयात् । सञ्जयस्य सुतः शाक्यः शाक्याच्छुद्धोदनोऽभवत्॥ २८४ ॥
शुद्धोदनस्य भविता शाक्यार्थे राहुलः स्मृतः । प्रसेनजित्ततो भाव्यः क्षुद्रको भविता ततः॥ २८५ ॥
क्षुद्रकात्क्षुलिको भाव्यः क्षुलिकात्सुरथः स्मृतः। सुमित्रः सुरथस्यापि अन्त्यश्च भविता नृपः॥ २८६ ॥
एते ऐक्ष्वाकवाः प्रोक्ता भवितारः कलौ युगे । बृहद्बलान्वये जाता भवितारः कलौ युगे॥
शूराश्च कृतविद्याश्च सत्यसन्धा जितेन्द्रियाः ॥ २८७ ॥

पाण्डुपुत्र महान् बलशाली अर्जुन का विख्यात पौरववंश समाप्त हो गया । अब इसके उपरान्त महान् बलशाली इक्ष्वाकुवंशी राजाओं का वर्णन कर रहा हूँ । बृहद्रथ का उत्तराधिकारी वीर राजा बृहत्क्षय था । उसका पुत्र क्षय हुआ, क्षय से वत्सव्यूह नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, वत्सव्यूह से प्रतिव्यूह नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, उसका पुत्र दिवाकर हुआ । यह राजा दिवाकर सम्प्रति अयोध्या नगरी का राजा है ॥ २७६-२७८ ॥

दिवाकर पुत्र महान् यशस्वी सहदेव होगा, सहदेव का उत्तराधिकारी बृहदश्व होगा । बृहदश्व का पुत्र भानुरथ होगा । उसका पुत्र प्रतीताश्व होगा । प्रतीताश्व का पुत्र सुप्रतीत होगा । सुप्रतीत का पुत्र सहदेव होगा, उसका पुत्र सुनक्षत्र होगा । सुनक्षत्र से परम तपस्वी किन्नर नामक पुत्र होगा । किन्नर का पुत्र अन्तरिक्ष अपने समय का महान् राजा होगा ॥ २७९-२८२ ॥

अन्तरिक्ष से सुपर्ण और सुपर्ण से अमित्रजित् नामक पुत्र होगा । अमित्रजित् का पुत्र भरद्वाज होगा, उसका पुत्र धर्मी नाम से स्मरण किया जायगा । धर्मी का पुत्र कृतञ्जय होगा, कृतञ्जय का पुत्र व्रात और व्रात का पुत्र रणञ्जय होगा । रणञ्जय से परम वीर पुत्र सञ्जय की उत्पत्ति होगी । सञ्जय का पुत्र शाक्य और शाक्य से शुद्धोदन नामक पुत्र उत्पन्न होगा ॥ २८३-२८४ ॥

शाक्यवंश में शुद्धोदन का पुत्र राहुल होगा । राहुल से प्रसेनजित् और प्रसेनजित् से क्षुद्रक नामक पुत्र होगा । क्षुद्रक के क्षुलिक और क्षुलिक से सुरथ नामक पुत्र उत्पन्न होगा । सुरथ का पुत्र सुमित्र इस वंश का अन्तिम राजा होगा । कलियुग में ये उपर्युक्त इक्ष्वाकुवंशीय राजा लोग कहे गये हैं । बृहद्बल के वंश में कलियुग में इतने ही राजा उत्पन्न होंगे, ये सब शूरवीर, विद्वान्, सत्यप्रतिज्ञ और जितेन्द्रिय राजा होंगे ॥ २८५-२८७ ॥

भविष्य की कथाओं के जानने वाले विद्वान् गण इस इक्ष्वाकुवंश के विषय में एक श्लोक कहते हैं । इसका

अत्रानुवंशश्लोकोऽयं भविष्यज्ञैरुदाहृतः । इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति ॥
सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ । इत्येतन्मानवं क्षेत्रमैलं च समुदाहृतम् ॥ २८८ ॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मागधेयान्बृहद्रथान् । जरासंधस्य ये वंशे सहदेवान्वये नृपाः ॥ २८९ ॥
अतीता वर्तमानाश्च भविष्याश्च तथा पुनः । प्राधान्यतः प्रवक्ष्यामि गदतो मे निबोधत ॥ २९० ॥
सङ्ग्रामे भारते तस्मिन् सहदेवो निपातितः । सोमाधिस्तस्य तनयो राजर्षिः स गिरिव्रजे ॥ २९१ ॥
पञ्चाशतं तथाऽष्टौ च समा राज्यमकारयत् । श्रुतश्रवाश्चतुःषष्टिसमास्तस्य सुतोऽभवत् ॥
अयुतायुस्तु षड्विंशं राज्यं वर्षाण्यकारयत् । समाः शतं निरामित्रो महीं भुक्त्वा दिवं गतः ॥ २९२ ॥
पञ्चाशतं समाः षट् च सुकृत्तः प्राप्तवान्महीम् । त्रयोविंशं बृहत्कर्मा राज्यं वर्षाण्यकारयत् ॥ २९३ ॥
सेनाजित्साम्प्रतं चापि एतां वै भुज्यते समाः । श्रुतञ्जयस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥ २९४ ॥
महाबाहुर्महाबुद्धिर्महाभीमपराक्रमः । पञ्चत्रिंशत्तु वर्षाणि महीं पालयिता नृपः ॥ २९५ ॥
अष्टपञ्चाशतं चाब्दान् राज्ये स्थास्यति वै शुचिः । अष्टाविंशत्समाः पूर्णाः क्षेमो राजा भविष्यति ॥ २९६ ॥
भुवतस्तु चतुःषष्टीराज्यं प्राप्स्यति वीर्यवान् । पञ्चवर्षाणि पूर्णानि धर्मनेत्रो भविष्यति ॥ २९७ ॥
भोक्ष्यते नृपतिश्चैव ह्यष्टपञ्चाशतं समाः । अष्टात्रिंशत्समा राज्यं सुव्रतस्य भविष्यति ॥ २९८ ॥

तात्पर्य इस प्रकार है—इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं की परम्परा राजा सुमित्र तक चलेगी, कलियुग में सुमित्र राजा के अनन्तर इस वंश की समाप्ति हो जायगी । मनुपुत्र राजा ऐल के वंश में उत्पन्न होने वाले क्षत्रिय राजाओं का वर्णन कर चुका ॥ २८८ ॥

अब मगधदेशीय बृहद्रथ के वंश में उत्पन्न होने वाले राजाओं का वर्णन कर रहा हूँ । जरासंध एवं सहदेव के वंश में भूतकालीन, वर्तमानकालीन एवं भविष्यत्कालीन जो राजागण होंगे, मुख्यतः उन सबों का वर्णन आप लोगों से कर रहा हूँ, सुनिये । उस विख्यात महाभारत में सहदेव का संहार हो गया था, उसका पुत्र राजर्षि सोमाधि था, वह गिरिव्रज का शासक था ॥ २८९-२९१ ॥

उसने अट्ठावन वर्षों तक राज्य किया । उसका पुत्र श्रुतश्रवा था, जिसने चौंसठ वर्षों तक राज्य किया । तदनन्तर अयुतायु नामक राजा हुआ, जिसने छब्बीस वर्षों तक राज्य किया । उसके बाद राजा निरामित्र हुआ, जो सौ वर्षों तक पृथ्वी पर शासन करने के उपरान्त स्वर्गगामी हुआ ॥ २९२ ॥

तदनन्तर सुकृत ने छप्पन वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य किया । फिर बृहत्कर्मा नामक राजा हुआ, उसने तेईस वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य किया । इस समय उस वंश का सेनजित् नामक राजा राज्य कर रहा है, उसका पुत्र श्रुतञ्जय चालीस वर्षों तक राज्य करेगा । तदनन्तर महान् बलशाली, परम बुद्धिमान् पराक्रमशील महाबल नामक राजा होगा जो तैंतीस वर्षों तक पृथ्वी पर शासन करेगा ॥ २९३-२९५ ॥

उसके उपरान्त शुचि नामक एक राजा अट्ठावन वर्षों तक राज्य पद पर प्रतिष्ठित होगा । फिर क्षेम नामक राजा अट्ठाईस वर्षों तक राजा होगा । तदनन्तर बलशाली भुवत नामक राजा चौंसठ वर्षों के लिए राजा होगा । फिर पाँच वर्षों के लिए राजा धर्मनेत्र होगा । तदुपरान्त नृपति अट्ठावन वर्ष के लिए पृथ्वी का उपभोग करेगा । फिर राजा सुव्रत का अड़तीस वर्ष के लिए राज्य होगा ॥ २९६-२९८ ॥

चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दृढसेनो भविष्यति । त्रयस्त्रिंशत्तु वर्षाणि सुमतिः प्राप्स्यते ततः ॥ २९९ ॥
द्वाविंशतिसमा राज्यं सुचलो भोक्ष्यते ततः । चत्वारिंशत्समा राजा सुनेत्रो भोक्ष्यते ततः ॥ ३०० ॥
सत्यजित्पृथिवीराज्यं त्र्यशीतिं भोक्ष्यते समाः । प्राप्येमां वीरजिच्चापि पञ्चत्रिंशद्भविष्यति ॥ ३०१ ॥
अरिञ्जयस्तु वर्षाणि पञ्चाशत्प्राप्स्यते महीम् । द्वात्रिंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः ॥ ३०२ ॥
पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति । बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतहोत्रेषु वर्तिषु ॥ ३०३ ॥
मुनिकः स्वामिनं हत्वा पुत्रं समभिषेक्ष्यति । मिषतां क्षत्रियाणां हि प्रद्योतो मुनिको बलात् ॥ ३०४ ॥
स वै प्रणतसामन्तो भविष्ये नयवर्जितः । त्रयोविंशत्समा राजा भविता स नरोत्तमः ॥ ३०५ ॥
चतुर्विंशत्समा राजा पालको भविता ततः । विशाखयूपो भविता नृपः पञ्चाशतीं समाः ॥ ३०६ ॥
एकत्रिंशत्समा राज्यमजकस्य भविष्यति । भविष्यति समा विंशत्तत्सुतो वर्तिवर्धनः ॥ ३०७ ॥
अष्टात्रिंशच्छतं भाव्याः प्राद्योताः पञ्च ते सुताः । हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनाको भविष्यति ॥ ३०८ ॥
वाराणस्यां सुतस्तस्य संप्राप्स्यति गिरिव्रजम् । शिशुनाकस्य वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥ ३०९ ॥
शकवर्णः सुतस्तस्य षट्त्रिंशच्च भविष्यति । ततस्तु विंशतिं राजा क्षेमवर्मा भविष्यति ॥ ३१० ॥
अजातशत्रुर्भविता पञ्चविंशत्समा नृपः । चत्वारिंशत्समा राज्यं क्षत्रौजाः प्राप्स्यते ततः ॥ ३११ ॥

तदनन्तर राजा दृढसेन अट्ठावन वर्षों तक राजा होगा । उसके बाद सुमति तैंतीस वर्ष के लिए राज्य पद प्राप्त करेगा । फिर सुचल नामक राजा बाईस वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेगा । उसके उपरान्त राजा सुनेत्र चालीस वर्षों तक राज्य करेगा । तदनन्तर सत्यजित् तिरासी वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य करेगा । फिर राजा वीरजित् इस पृथ्वी पर आकर पैंतीस वर्षों तक राज्य करेगा ॥ २९९-३०१ ॥

तदुपरान्त राजा अरिञ्जय पचास वर्षों तक राज्य करेगा । बृहद्रथ के उपरान्त ये बाईस राजा लोग पृथ्वी पर राज्य करेंगे । उनका शासनकाल पूरे एक सहस्र वर्ष का होगा । बृहद्रथवंशीय राजाओं के राज्यकाल के उपरान्त वीतिहोत्रवंशीय राजाओं का राज्य जिस समय रहेगा, उस समय समस्त क्षत्रिय जाति के देखते-देखते मुनिक नामक एक राज्य कर्मचारी प्रद्योत नामक अपने स्वामी का अपने पराक्रम से संहारकर पुत्र का राज्याभिषेक करेगा । वह नवीन राजा किसी प्रकार का अनैतिक कार्य नहीं करेगा । सभी सामन्त लोग उसके सम्मुख प्रणत होंगे । इस प्रकार वह नरश्रेष्ठ तेईस वर्षों तक राज्य करेगा ॥ ३०२-३०५ ॥

उसके बाद पालक नामक राजा चौबीस वर्षों तक राज्य करेगा । फिर विशाखयूप नामक राजा होगा, वह पचास वर्षों तक राज्य करेगा । फिर अजक नामक राजा का इकतीस वर्षों तक राज्य होगा । तदनन्तर उसका पुत्र वर्तिवर्धन बीस वर्षों तक राज्य करेगा । प्रद्योत के उपर्युक्त पाँच वंशज एक सौ अड़तीस वर्षों तक राज्य करेंगे । तदनन्तर उन सबके यश को समूलतः नष्ट करके शिशुनाक नामक राजा होगा ॥ ३०६-३०८ ॥

सर्वप्रथम यह गिरिव्रज प्रदेश का राजा होगा, तत्पश्चात् इसका पुत्र वाराणसी का राजा होगा । शिशुनाक चालीस वर्षों तक राज्य करेगा । उसका पुत्र शकवर्ण छत्तीस वर्ष तक राज्य करेगा । उसके उपरान्त राजा क्षेमवर्मा बीस वर्षों तक राज्य करेगा । उसके बाद राजा अजातशत्रु पचीस वर्षों तक राज्य करेगा । तदन्तर क्षत्रौजा नामक राजा चालीस वर्षों के लिए राज्य पद प्राप्त करेगा ॥ ३०९-३११ ॥

अष्टाविंशत्समा राजा विविसारो भविष्यति । पञ्चविंशत्समा राजा दर्शकस्तु भविष्यति॥ ३१२ ॥
उदायी भविता यस्मात्त्रयस्त्रिंशत्समा नृपः । स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम्॥
गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति ॥ ३१३ ॥
द्वाचत्वारिंशत्समा भाव्यो राजा वै नन्दिवर्द्धनः । चत्वारिंशत्त्रयं चैव महानन्दी भविष्यति॥ ३१४ ॥
इत्येते भवितारो वै शैशुनाका नृपा दश । शतानि त्रीणि वर्षाणि द्विषष्ट्यभ्यधिकानि तु॥ ३१५ ॥
शैशुनाका भविष्यन्ति तावत्कालं नृपाः परे । एतैः सार्धं भविष्यन्ति राजानः क्षत्रबान्धवाः॥ ३१६ ॥
ऐक्ष्वाकवाश्चतुर्विंशत्पाञ्चालाः पञ्चविंशतिः । कालकास्तु चतुर्विंशच्चतुर्विंशत्तु हैहयाः॥ ३१७ ॥
द्वात्रिंशद्वै कलिङ्गास्तु पञ्चविंशत्तथा शकाः । कुरवश्चापि षड्विंशदष्टाविंशति मैथिलाः॥ ३१८ ॥
शूरसेनास्त्रयोविंशद्वीतिहोत्राश्च विंशतिः । तुल्यकालं भविष्यन्ति सर्व एव महीक्षितः॥ ३१९ ॥
महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कालसंवृतः । उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्रान्तरे नृपः॥ ३२० ॥
ततः प्रभृति राजानो भविष्याः शूद्रयोनयः । एकराट् स महापद्म एकच्छत्रो भविष्यति॥ ३२१ ॥
अष्टाविंशतिवर्षाणि पृथिवीं पालयिष्यति । सर्वक्षत्रहृतोद्धृत्य भाविनोऽर्थस्य वै बलात्॥ ३२२ ॥
सहस्रास्तत्सुता ह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः । महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात्॥ ३२३ ॥
उद्धरिष्यति तान्सर्वान्कौटिल्यो वै द्विरष्टभिः । भुक्त्वा महीं वर्षशतं नन्देन्दुः स भविष्यति॥ ३२४ ॥

उसके बाद राजा विविसार अट्ठाईस वर्षों तक राज्य करेगा । फिर दर्शक नामक राजा पचीस वर्ष तक राज्य करेगा । तदुपरान्त उदायी नामक राजा तैंतीस वर्ष तक राज्य करेगा । वह राजा उदायी पृथ्वीमण्डल में कुसुम नाम से विख्यात होगा । परम रमणीय नगर में गंगा के दाहिने तट पर अपने शासनकाल के चतुर्थ वर्ष में वह अपना निवास स्थान निर्मित करेगा । उसके बाद राजा नन्दिवर्धन बयालीस वर्षों तक राज्यपद का उपभोग करेगा । फिर महानन्दी नामक राजा तिरालीस वर्षों तक राज्य करेगा ॥ ३१२-३१४ ॥

ये उपर्युक्त दस राजा शिशुनाक वंश में उत्पन्न होंगे । ये सब कुल मिलाकर तीन सौ बासठ वर्षों तक राज्य करेंगे । इन शिशुनाकवंशी राजाओं के राजत्वकाल में अन्यान्य क्षत्रिय जाति के राजा लोग भी होंगे । जिनमें इक्ष्वाकुवंशीय चौबीस, पंचालवंशीय पचीस, कालक चौबीस, हैहय चौबीस, कलिङ्ग-देशीय बत्तीस, शक पचीस, कुरुदेशीय छब्बीस, मिथिलादेशीय अट्ठाईस, शूरसेन के तेईस, वीतिहोत्र के बीस राजा उल्लेखनीय हैं । इन सबका शासनकाल एक ही समय में होगा ॥ ३१५-३१९ ॥

समस्त क्षत्रियवंशीय राजाओं के बाद महानन्दिसुत महापद्म से शूद्रयोनि में उत्पन्न कन्या से महापद्म नामक एक पुत्र होगा । उसी के राजत्वकाल में प्रायः सभी राजा लोग शूद्र योनि में उत्पन्न होने वाले होंगे । वह महापद्म अपने समय का एकच्छत्र सम्राट् होगा । वह अट्ठाईस वर्षों तक पृथ्वी का पालन करेगा । भवितव्यता की बलवत्ता से वह महापद्म समस्त क्षत्रिय राजाओं का गर्व हरण करने वाला होगा ॥ ३२०-३२२ ॥

उसके एक सहस्र पुत्र होंगे, जिनमें बारह राजा होंगे । उन सबका राजत्वकाल केवल आठ वर्षों का होगा । महापद्म के बाद वे सब क्रम-क्रम से शासनावरूढ़ होंगे । उन सबको कौटिल्य निर्मूल कर देंगे । महापद्मवंश का अन्तिम राजा सौ वर्षों तक पृथ्वी का शासन करेगा ॥ ३२३-३२४ ॥

चन्द्रगुप्तं नृपं राज्ये कौटिल्यः स्थापयिष्यति । चतुर्विंशत्समा राजा चन्द्रगुप्तो भविष्यति॥ ३२५ ॥
भविता भद्रसारस्तु पञ्चविंशत्समा नृपः । षड्विंशत्तु समा राजा ह्यशोको भविता नृषु॥ ३२६ ॥
तस्य पुत्रः कुनालस्तु वर्षाण्यष्टौ भविष्यति । कुनालसूनुरष्टौ च भोक्ता वै बन्धुपालितः॥ ३२७ ॥
बन्धुपालितदायादो दशमानीन्द्रपालितः । भविता सप्तवर्षाणि देववर्मा नराधिपः॥ ३२८ ॥
राजा शतधरश्चाष्टौ तस्य पुत्रो भविष्यति । बृहदश्वश्च वर्षाणि सप्त वै भविता नृपः॥ ३२९ ॥
इत्येते नव भूपा ये भोक्ष्यन्ति च वसुन्धराम् । सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यस्तु गौर्भविष्यति॥ ३३० ॥
पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्य वै बृहद्रथम् । कारयिष्यति वै राज्यं समाः षष्टिं सदैव तु॥ ३३१ ॥
पुष्यमित्रसुताश्चाष्टौ भविष्यन्ति समा नृपाः । भविता चापि तज्ज्येष्ठः सप्तवर्षाणि वै ततः॥ ३३२ ॥
वसुमित्रः सुतो भाव्यो दशवर्षाणि पार्थिवः । ततो ध्रुकः समा द्वे तु भविष्यति सुतश्च वै॥ ३३३ ॥
भविष्यन्ति समास्तस्मात्तिस्र एव पुलिन्दकाः । राजा घोषसुतश्चापि वर्षाणि भविता त्रयः॥ ३३४ ॥
ततो वै विक्रमित्रस्तु समा राजा ततः पुनः । द्वात्रिंशद्भविता चापि समा भागवतो नृपः॥ ३३५ ॥
भविष्यति सुतस्तस्य क्षेमभूमिः समा दश । दशैते शुङ्गराजानो भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम्॥ ३३६ ॥
शतं पूर्णं दश द्वे च तेभ्यः किं वा गमिष्यति । अपार्थिवसुदेवं तु बाल्याद्व्यसनिनं नृपम्॥ ३३७ ॥

कौटिल्य उसे अपदस्थकर चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर प्रतिष्ठित करेंगे । वह चन्द्रगुप्त चौबीस वर्षों के लिए राजा होगा । उसके बाद भद्रसार पच्चीस वर्ष तक राजा होगा । फिर अशोक नामक राजा मनुष्यों में छब्बीस वर्षों तक राज्य करेगा ॥ ३२५-३२६ ॥

उसका पुत्र कुनाल आठ वर्ष राज्य करेगा । इन्द्रपालित कुनाल का पुत्र बन्धुपालित आठ वर्षों तक राज्यपद पर समासीन होगा । बन्धुपालित का उत्तराधिकारी दस वर्ष के लिए राजा होगा । फिर नराधिपति देववर्मा सात वर्ष के लिए राजा होगा । इसके बाद उसका पुत्र राजा शतधर आठ वर्ष राज्य करेगा । पश्चात् राजा बृहदश्व सात वर्ष राज्य करेगा ॥ ३२७-३२९ ॥

ये नन्दवंश में उत्पन्न होने वाले नव राजा पृथ्वी का भोग करेंगे । उन सभी राजाओं का राजत्व-काल कुल मिलाकर एक सौ सैंतीस वर्षों का होगा । बृहद्रथ का सेनापति पुष्यमित्र उसको मारकर स्वयं साठ वर्षों तक राज्य करेगा । पुष्यमित्र के आठ पुत्र होंगे, जो सभी राजा होंगे । सबसे बड़ा पुत्र सात वर्षों तक राज्यपद पर प्रतिष्ठित होगा ॥ ३३०-३३२ ॥

फिर वसुमित्र नामक पुत्र दस वर्ष के लिए राजा होगा । फिर ध्रुक नामक पुत्र दो वर्ष के लिए राजा होगा । फिर पुलिन्दक तीन वर्ष के लिए और घोषसुत भी तीन वर्ष के लिए राजा बनेगा । उसके बाद राजा विक्रमित्र भी तीन वर्ष के लिए राजा होगा । तदनन्तर भागवत नामक राजा होगा, जो बत्तीस वर्षों तक इस पृथ्वी पर राज्य करेगा । फिर उसका पुत्र क्षेमभूमि दस वर्ष तक राजा होगा । इस प्रकार उपर्युक्त शुङ्गवंशीय दस राजा इस पृथ्वी का उपभोग करेंगे ॥ ३३३-३३६ ॥

उन सबका राजत्वकाल एक सौ बारह वर्षों का होगा । फिर बाल्यकाल से ही व्यसन में निरत रहने वाले सुदेव राजा के हाथ में शासनशक्ति आयेगी । शुङ्गवंशियों में एक देवभूमि नामक अन्य राजा भी होगा, कण्ठायन

देवभूमिस्ततोऽन्यश्च शुङ्गेषु भविता नृपः । भविष्यति समा राजा नव कण्ठायनस्तु सः ॥ ३३८ ॥
भूतिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्विंशद्भविष्यति । भविता द्वादश समास्तस्मान्नारायणो नृपः ॥ ३३९ ॥
सुशर्मा तत्सुतश्चापि भविष्यति समा दश । चतुरस्तुङ्गकृत्यास्ते नृपाः कण्ठायना द्विजाः ॥ ३४० ॥
भाव्याः प्रणतसामन्ताश्चत्वारिंशच्च पञ्च च । तेषां पर्यायकाले तु त्वरन्ध्र तु भविष्यति ॥ ३४१ ॥
कण्ठायनमथोद्धृत्य सुशर्माणं प्रसह्य तम् । शृङ्गाणां चापि यच्छिष्टं क्षपयित्वा बलं तदा ॥
सिन्धुको ह्यन्ध्रजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुंधराम् ॥ ३४२ ॥
त्रयोविंशत्समा राजा सिन्धुको भविता त्वथ । अष्टौ भातश्च वर्षाणि तस्माद्दश भविष्यति ॥ ३४३ ॥
श्रीशातकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै महान् । पञ्चाशतं समाः षट् च सातकर्णिर्भविष्यति ॥ ३४४ ॥
आपादबद्धो दश वै तस्य पुत्रो भविष्यति । चतुर्विंशत्तु वर्षाणि षट् समा वै भविष्यति ॥ ३४५ ॥
भविता नेमिकृष्णस्तु वर्षाणां पञ्चविंशतिम् । ततः संवत्सरं पूर्णं हालो राजा भविष्यति ॥ ३४६ ॥
पञ्चसप्तकराजानो भविष्यन्ति महाबलाः । भाव्यः पुत्रिकषेणस्तु समाः सोऽप्येकविंशतिम् ॥ ३४७ ॥
सातकर्णिर्वर्षमेकं भविष्यति नराधिपः । अष्टाविंशत्तु वर्षाणि शिवस्वामी भविष्यति ॥ ३४८ ॥
राजा च गौतमीपुत्र एकविंशत्समा नृषु । एकोनविंशतिं राजा यज्ञश्रीः सातकर्ण्यथ ॥ ३४९ ॥
षडेव भविता तस्माद्विजयस्तु समा नृपः । दण्डश्रीः सातकर्णी च तस्य पुत्रः समास्त्रयः ॥ ३५० ॥

नाम से नव वर्षों तक राज्य करेगा । उसका पुत्र भूतिमित्र चौबीस वर्षों तक राज्यपद का अधिकारी होगा । उसके बाद राजा नारायण बारह वर्षों के लिए राजा होगा ॥ ३३७-३३९ ॥

फिर उसका पुत्र सुशर्मा दस वर्ष तक राजा होगा । हे द्विजवृन्द ! ये उपर्युक्त कठोर कर्म करने वाले चार राजा कण्ठायन नाम से प्रसिद्ध होंगे । इन कण्ठायन नाम से विख्यात राजाओं के राज्यकाल में सामन्तगण सर्वदा विनम्र रहेंगे । इनका शासनकाल कुल मिलाकर पैंतालीस वर्षों का होगा । इनके उपरान्त आन्ध्रवंशीय राजा होंगे। कण्ठायन उपाधिधारी राजाओं के अन्तिम नरपति सुशर्मा को तथा शुङ्गवंशीय राजाओं की सेनाओं को युद्धस्थल में पराजित कर अन्ध्रजातीय सिन्धुक नामक एक राजा इस पृथ्वी को प्राप्त करेगा । वह सिन्धुक तेईस वर्षों तक राज्यपद पर प्रतिष्ठित होगा । उसके उपरान्त भान क राजा अठारह वर्षों के लिए राजा होगा ॥ ३४०-३४३ ॥

उसके बाद उसका पुत्र शातकर्णि अपने समय का महान् राजा होगा । वह छप्पन वर्षों तक शासन की बागडोर अपने हाथ में रखेगा । तदनन्तर शातकर्णि का पुत्र राजा आपादबद्ध होगा, वह दस, चौबीस और छह वर्षों तक राज्य करेगा । उसके बाद नेमिकृष्ण पचीस वर्ष के लिए राजा बनेगा । तदनन्तर हाल नामक राजा पूरे एक वर्ष के लिए शासनाधिरूढ़ होगा । इस वंश में पाँच-सात राजा महाबलवान् होंगे । हाल के बाद पुत्रिकषेण इक्कीस वर्षों तक राज्य करेगा । उसके बाद सातकर्णि नराधिपति होगा, जो पूरे एक वर्ष और छह मास तक राज्य करेगा । तदनन्तर अट्ठाईस वर्ष तक शिवस्वामी नामक एक राजा होगा ॥ ३४४-३४८ ॥

फिर गौतमीपुत्र मनुष्यों में इक्कीस वर्ष तक राज्य करेगा । तदनन्तर सातकर्णी वंशोत्पत्र राजा यज्ञश्री उन्नीस वर्षों के लिए राजा होगा । उसके बाद विजय नामक राजा छह वर्ष तक राज्य करेगा । उसके बाद उसका पुत्र सातकर्णी दण्डश्री तीन वर्ष तक राज्य करेगा । फिर पुलोवा नामक राजा होगा, जो सात वर्षों तक पृथ्वी पर

पुलोवाऽपि समाः सप्त अन्येषां च भविष्यति । इत्येते वै नृपास्त्रिंशदन्ध्रा भोक्ष्यन्ति ये महीम्॥ ३५१ ॥
समाः शतानि चत्वारि पञ्च षड्वै तथैव च । अन्ध्राणां संस्थिताः पञ्च तेषां वंशाः समाः पुनः ॥ ३५२ ॥
सप्तैव तु भविष्यन्ति दशाभीरास्ततो नृपाः । सप्त गर्दभिनश्चापि ततोऽथ दश वै शकाः ॥ ३५३ ॥
यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषारास्तु चतुर्दश । त्रयोदश मरुण्डाश्च मौना ह्यष्टादशैव तु॥ ३५४ ॥
अन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वसुधां शते द्वे च शतं च वै । शतानि त्रीण्यशीतिं च भोक्ष्यन्ति वसुधां शकाः ॥ ३५५ ॥
अशीतिं चैव वर्षाणि भोक्तारो यवना महीम् । पञ्चवर्षशतानीह तुषाराणां मही स्मृता॥ ३५६ ॥
शतन्यर्द्धचतुर्थानि भवितारस्त्रयोदश । मरुण्डा वृषलैः सार्द्धं भाव्यान्या म्लेच्छजातयः ॥ ३५७ ॥
शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति म्लेच्छा एकादशैव तु । तच्छन्नेन च कालेन ततः कोलिकिला वृषाः ॥ ३५८ ॥
ततः कोलिकिलेभ्यश्च विन्ध्यशक्तिर्भविष्यति । समाः षण्णवतिं ज्ञात्वा पृथिवीं च समेष्यति॥ ३५९ ॥
वृषान्वै दिशकांश्चापि भविष्यांश्च निबोधत । शेषस्य नागराजस्य पुत्रः स्वरपुरञ्जयः ॥ ३६० ॥
भोगी भविष्यते राजा नृपो नागकुलोद्वहः । सदाचन्द्रस्तु चन्द्रांशो द्वितीयो नखवांस्तथा॥ ३६१ ॥
धनधर्मा ततश्चापि चतुर्थो विंशजः स्मृतः । भूतिनन्दस्ततश्चापि वैदेशे तु भविष्यति॥ ३६२ ॥
अङ्गानां नन्दनस्यान्ते मधुनन्दिर्भविष्यति । तस्य भ्राता यवीयांस्तु नाम्ना नन्दियशाः किल॥ ३६३ ॥
तस्यान्वये भविष्यन्ति राजानस्ते त्रयस्तु वै । दोहित्रः शिशुको नाम पुरिकायां नृपोऽभवत्॥ ३६४ ॥

राज्य करेगा। इन राजाओं के अतिरिक्त अन्यान्य राजाओं का भी पृथ्वी पर राज्य होगा। उपर्युक्त अन्ध्रवंशीय तेईस राजा होंगे, जो पृथ्वी का उपभोग करेंगे। उन सबका राजत्वकाल कुल मिलाकर चार सौ ग्यारह वर्ष का होता है। ये अन्ध्रवंशीय राजा लोग पाँच वंशों में विभक्त हो जायेंगे ॥ ३४९-३५२ ॥

उनके बाद सत्रह आभीरवंशीय राजाओं का शासनकाल आयेगा, फिर सात गर्दभिनवंशीय और दस शकवंशीय राजा होंगे। तदनन्तर आठ यवन, चौदह तुषारवंशीय, तेरह मेनण्ट और अट्ठारह मौन वंश में उत्पन्न होने वाले राजा राज्य करेंगे। आन्ध्रवंशीय राजा लोग तीन सौ वर्षों तक राज्य करेंगे। शक लोग तीन सौ अस्सी वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेंगे ॥ ३५३-३५५ ॥

यवन लोग अस्सी वर्षों तक राज्य करेंगे। तुषारवंशीय राजा लोग पाँच सौ वर्षों तक पृथ्वी का राज्य करेंगे तेरह मरुण्डवंशीय राजागण अन्य शूद्र जातीय राजाओं के साथ साढ़े चार सौ वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेंगे। उस समय अनेक म्लेच्छ जातियाँ होंगी। उनमें से ग्यारह म्लेच्छवंशीय राजागण तीन सौ वर्षों तक राज्य करेंगे। इन राजाओं के बाद कोलिकिल नामक शूद्र जातीय राजाओं का राज्य होगा ॥ ३५६-३५९ ॥

उन कोलिकिलों से विन्ध्यशक्ति नामक राजा के हाथ में शासनशक्ति आयेगी। वह छानबे वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य करेगा। अब इसके उपरान्त भविष्यत्कालीन शूद्रजातीय विदेशी राजाओं का वर्णन सुनिये। नागराज शेष का पुत्र शत्रुओं के नगरों को जीतनेवाला राजा भोगी, नागकुल में सर्वश्रेष्ठ राजा होगा। यही सर्वप्रथम विदेशी राजा होगा। उसके उपरान्त सदाचन्द्र, चन्द्रांशभूत नखवान्, धनधर्मा, विंशज और भूतिनन्द नामक राजागण भी विदेश में राज्यपद प्राप्त करेंगे ॥ ३६०-३६२ ॥

अंगवंशीय राजा नन्द के उपरान्त राजा मधुनन्दि के हाथ में शासनशक्ति जायगी, मधुनन्दि के छोटे भाई

विन्ध्यशक्तिसुतश्चापि प्रवीरो नाम वीर्यवान् । भोक्ष्यन्ति च समाः षष्टिं पुरीं काञ्चनकां च वै ॥ ३६५ ॥
यक्ष्यन्ति वाजपेयैश्च समाप्तवरदक्षिणैः । तस्य पुत्रास्तु चत्वारो भविष्यन्ति नराधिपाः ॥ ३६६ ॥
विन्ध्यकानां कुलेऽतीते नृपा वै बाह्लिकास्त्रयः । सुप्रतीको नभीरस्तु समा भोक्ष्यति त्रिंशतिम् ॥ ३६७ ॥
शक्यमा नाम वै राजा माहिषीनां महीपतिः । पुष्यमित्रा भविष्यन्ति पट्टमित्रास्त्रयोदश ॥ ३६८ ॥
मेकलायां नृपाः सप्त भविष्यन्ति च सत्तमाः । कोमलायां तु राजानो भविष्यन्ति महाबलाः ॥ ३६९ ॥
मेघा इति समाख्याता बुद्धिमन्तो नवैव तु । नैषधाः पार्थिवाः सर्वे भविष्यन्त्यामनुक्षयात् ॥ ३७० ॥
नलवंशप्रसूतास्ते वीर्यवन्तो महाबलाः । मागधानां महावीर्यो विश्वस्फानिर्भविष्यति ॥ ३७१ ॥
उत्साद्य पार्थिवान्सर्वान्सोऽन्यान्वर्णान्करिष्यति । कैवर्त्तान्पञ्चकांश्चैव पुलिन्दान्ब्राह्मणांस्तथा ॥ ३७२ ॥
स्थापयिष्यन्ति राजानो नानादेशेषु तेजसा । विश्वस्फानिर्महासत्त्वो युद्धे विष्णुसमो बली ॥ ३७३ ॥
विश्वस्फानिर्नरपतिः क्लीबाकृतिरिवोच्यते । उत्सादयित्वा क्षत्रं तु क्षत्रमन्यत्करिष्यति ॥ ३७४ ॥
देवान् पितॄंश्च विप्रांश्च तर्पयित्वा सकृत्पुनः । जाह्नवीतीरमासाद्य शरीरं यस्यते बली ॥ ३७५ ॥
संन्यस्य स्वशरीरं तु शक्रलोकं गमिष्यति । नवनाकास्तु भोक्ष्यन्ति पुरीं चम्पावतीं नृपाः ॥ ३७६ ॥

का नाम नन्दियशा होगा । इसी नन्दयशा के वंश में तीन राजा उत्पन्न होंगे । उनके नाम दौहित्र, शिशुक और परम बलशाली प्रवीर होंगे । ये तीनों कुल मिलाकर साठ वर्ष तक राज्य करेंगे । इन तीनों में राजा प्रवीर पूर्वकथित राजा विन्ध्यशक्ति का पुत्र होगा । राजा शिशुक पुरी में अन्य दोनों राजा काञ्चनपुरी में राज्य करेंगे ॥ ३६३-३६५ ॥

ये तीनों राजा लोग प्रचुर दक्षिणा देकर वाजपेय यज्ञ का अनुष्ठान करेंगे । तदनन्तर प्रवीर के चार पुत्र राज्यपद के अधिकारी होंगे । विन्ध्यकवंशीय राजाओं के परिवार के विनष्ट हो जाने पर सुप्रतीक नभीर आदि तीन वाह्लीक राजा लोग तीस वर्ष तक राज्यपद का उपभोग करेंगे । माहिषीवंशीयों में शक्यमा नामक एक राजा होगा । तदनन्तर पुष्यमित्र और पट्टमित्र नामक राजा तेरह वर्ष के लिए राजा होंगे ॥ ३६६-३६८ ॥

मेकला में सात उत्तम नरपतिगण राज्यासन प्राप्त करेंगे । कुछ महाबलशाली राजा कोमला में राज्य प्रतिस्थापित करेंगे । तदनन्तर मेघ नाम से विख्यात नव परम बुद्धिशाली राजा होंगे । ये निषधदेशीय समस्त नृपतिगण मन्वन्तर की समाप्ति तक राज्यपद के अधिकारी रहेंगे । इनकी उत्पत्ति नल वंश से होगी, ये सब-के-सब महान् बलशाली एवं परम पराक्रमी होंगे । इसके उपरान्त महान् बलशाली मगधदेशीय विश्वस्फानि नामक राजा होगा ॥ ३६;-३७१ ॥

उस समय के अन्य नरेशों को समूल नष्ट करके वह अन्यान्य जातिवालों को राज्यपद प्रदान करेगा । जिनमें कैवर्त, पञ्चक, पुलिन्द और ब्राह्मणों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । महान् पराक्रमी राजा विश्वस्फानि विभिन्न देशों में इन जातिवालों का राज्य स्थापित करेगा । युद्ध में वह विष्णु के समान बलवान् होगा । ऐसा कहा जाता है कि वह राजा विश्वस्फानि आकृति में नपुंसकों के समान होगा । अपने पराक्रम से क्षत्रिय जाति का विध्वंस करके वह शासन को इतर जातिवालों के अधीन कर देगा ॥ ३७२-३७४ ॥

परमबलशाली राजा विश्वस्फानि अपने जीवन में देवताओं, पितरों एवं ब्राह्मणों को एक बार पुनः सन्तुष्ट करके अन्तिम समय में पवित्र जाह्नवी तट पर प्राण त्याग करेगा । अपने भौतिक शरीर को त्यागकर वह इन्द्रलोक

मथुरां च पुरीं रम्यां नागा भोक्ष्यन्ति सप्त वै । अनुगङ्गं प्रयागं च साकेतं मगधांस्तथा ॥
एताञ्जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः ॥ ३७७ ॥
निषधान्यदुकांश्चैव शैशीतान् कालतोपकान् । एताञ्जनपदान्सर्वान्भोक्ष्यन्ति मणिधान्यजाः ॥ ३७८ ॥
कोशलांश्चान्ध्रपौण्ड्रांश्च ताम्रलिप्तान् ससागरान् । चम्पां चैव पुरीं रम्यां भोक्ष्यन्ति देवरक्षिताम् ॥ ३७९ ॥
कलिंगा महिषाश्चैव महेन्द्रनिलयाश्च ये । एताञ्जनपदान्सर्वान्पालयिष्यति वै गुहः ॥ ३८० ॥
स्त्रीराष्ट्रं भक्ष्यकांश्चैव भोक्ष्यते कनकाह्वयः । तुल्यकालं भविष्यन्ति सर्वे ह्येते महीक्षितः ॥ ३८१ ॥
अल्पप्रसादा ह्यनृता महाक्रोधाः ह्यधार्मिकाः । भविष्यन्तीह यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः ॥ ३८२ ॥
नैव मूर्धाभिषिक्तास्ते भविष्यन्ति नराधिपाः । युगदोषदुराचारा भविष्यन्ति नृपास्तु ते ॥ ३८३ ॥
स्त्रीणां बलवधेनैव हत्वा चैव परस्परम् । भोक्ष्यन्ति कलिशेषे तु वसुधां पार्थिवास्तथा ॥ ३८४ ॥
उदितोदितवंशास्ते उदित्तास्तमितास्तथा । भविष्यन्तीह पर्याये कालेन पृथिवीक्षितः ॥ ३८५ ॥
विहीनास्तु भविष्यन्ति धर्मतः कामतोऽर्थतः । तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाचाराश्च सर्वशः ॥ ३८६ ॥
विपर्ययेन वर्तन्ते नाशयिष्यन्ति वै प्रजाः । लुब्धानृतरताश्चैव भवितारस्तदा नृपाः ॥ ३८७ ॥
तेषां व्यतीते पर्याये बहुस्त्रीके युगे तदा । लवाल्लवं भ्रश्यमाना आयूरूपबलश्रुतैः ॥ ३८८ ॥

प्राप्त करेगा । उसके उपरान्त चम्पावतीपुरी में नव नागवंशीय राजाओं का अधिकार होगा । मथुरापुरी में सात नागवंशीय राजा लोग शासन करेंगे । इसके अनन्तर गंगा के तटवर्ती प्रान्त प्रयाग, साकेत और मगध आदि जनपदों में गुप्तवंशीय राजाओं का अधिकार होगा ॥ ३७५-३७७ ॥

निषध, यदुक, शैशीत, कालतोपक आदि जनपदों में मणिधान्य वंशज राजाओं का शासन होगा । कोशल, आन्ध्र, पौण्ड्र, समुद्रसमेत ताम्रलिप्त देवताओं द्वारा सुरक्षित मनोहारिणी चम्पानगरी कलिङ्ग, महिष, महेन्द्रनिलय प्रभृति जनपदों में गुहवंशोत्पन्न राजा का राज्य होगा ॥ ३७८-३७९ ॥

कनक नामक राजा सौराष्ट्र (स्त्री राष्ट्र) भक्ष्यक आदि जनपदों का शासक होगा । ये सब राजागण भी उसी एक समय में इन सब स्थानों के शासक होंगे । इनके उपरान्त थोड़े प्रसन्न होनेवाले, मिथ्यावादी, महान् क्रोधी, अधार्मिक प्रवृत्तियों वाले धर्मार्थकाम सभी ओर से विहीन यवनों का यहाँ पर राज्य होगा । वे यवन राजागण कभी मूर्धाभिषिक्त नहीं होंगे, युगदोष के कारण वे परम दुराचारी होंगे । कलि के अन्तिम भाग में स्त्री और बालकों का वध करने वाले वे राजा लोग परस्पर मारकाट मचाकर पृथ्वी पर शासन करेंगे ॥ ३८०-३८४ ॥

उन दुराचारी राजाओं के वंश कहीं पर तो अत्यन्त बढ़ जायेंगे और कहीं पर बहुत बढ़कर विनाश को प्राप्त हो जायेंगे । कालक्रम से पृथ्वी पर ऐसे दुराचारी नृशंस राजाओं का शासन होगा । वे धर्मार्थकाम त्रिवर्ग से सर्वदा विहीन रहेंगे । प्रत्येक जनपदों में वे म्लेच्छाचारपरायण राजा लोग जा-जाकर मिल जायेंगे ॥३८५-३८६॥

परिणामस्वरूप सब ओर से जनपदों में भी उनके अत्याचारों की धूम मच जायगी । वहाँ जाकर वे सब उलटफेर मचायेंगे, प्रजावर्ग का विनाश करेंगे । लालच में भरे हुए, मिथ्याचारण वे राजा लोग इसी प्रकार सर्वदा पापकर्मों में लगे रहेंगे । कालक्रम से उनके विनाश हो जाने पर देश में स्त्रियों की अधिकता हो जायगी, लोग आयु सौन्दर्य, बल एवं शास्त्रज्ञान में धीरे-धीरे न्यून होते जायेंगे । इस प्रकार क्षीण होते-होते प्रजा जब अन्तिम ह्रास की

तथा गतास्तु वै काष्ठां प्रजासु जगतीश्वराः । राजानः संप्रणश्यन्ति कालेनोपहतास्तदा॥ ३८९ ॥
कल्किनोपहताः सर्वे म्लेच्छा यास्यन्ति सर्वशः। अधार्मिकाश्च तेऽत्यर्थं पाषण्डाश्चैव सर्वशः ॥ ३९० ॥
प्रनष्टे नृपशब्दे च संध्याश्लिष्टे कलौ युगे । किंचिच्छिष्टाः प्रजास्ता वै धर्मे नष्टेऽपरिग्रहाः ॥ ३९१ ॥
असाधना हताश्वासा व्याधिशोकेन पीडिताः । अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेन च॥ ३९२ ॥
अनाथा हि परित्रस्ता वार्तामुत्सृज्य दुःखिताः। त्यक्त्वा पुराणि ग्रामांश्च भविष्यन्ति वनौकसः ॥ ३९३ ॥
एवं नृपेषु नष्टेषु प्रजास्त्यक्त्वा गृहाणि तु । नष्टे स्नेहे दुरापन्ना भ्रष्टस्नेहाः सुहृज्जनाः ॥ ३९४ ॥
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः संकरं घोरमास्थिताः । सरित्पर्वतसेविन्यो भविष्यन्ति प्रजास्तदा॥ ३९५ ॥
सरितः सागरानूपान्सेवन्ते पर्वतानि च । अङ्गान्कलिङ्गान्वङ्गांश्च काश्मीरान्काशिकोशलान्॥ ३९६ ॥
ऋषिकान्तगिरिद्रोणीः संश्रयिष्यन्ति मानवाः । कृत्स्नं हिमवतः पृष्ठं कूलं च लवणाम्भसः ॥ ३९७ ॥
अरण्यान्यभिपत्स्यन्ति ह्यार्या म्लेच्छजनैः सह । मृगैर्मीनैर्विहङ्गैश्च श्वापदैस्तक्षुभिस्तथा ॥
मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्त्तयिष्यन्ति मानवाः ॥ ३९८ ॥
चीरं पर्णञ्च विविधं वल्कलान्यजिनानि च । स्वयं कृत्वा विवत्स्यन्ति यथामुनिजनास्तथा॥ ३९९ ॥
बीजान्नानि तथा निम्नेस्वीहन्तः काष्ठशङ्कुभिः । अजैडकं खरोष्ट्रं च पालयिष्यन्ति यत्नतः ॥ ४०० ॥

सीमा पर पहुँच जायगी, तब वे दुराचारी राजा लोग कालक्रम से विनाश को प्राप्त हो जायँगे ॥ ३८७-३८९ ॥

उस समय कल्कि द्वारा ताडित होकर वे अधार्मिक म्लेच्छ सब ओर से विनष्ट हो जायेंगे और पाखण्डों का उच्छेद हो जायगा । इस प्रकार सन्ध्यामात्र जब कलियुग शेष रह जायगा तो नृप शब्द ही नष्ट हो जायगा, अर्थात् राजाओं का सर्वदा अभाव हो जायगा । कुछ प्रजाएँ शेष रह जायेंगी । धर्म के नष्ट हो जाने पर साधनविहीन आपत्तियों की मारी, व्याधि एवं शोक के कारण चिन्ताकुलित, अनावृष्टि तथा परस्पर मारकाट से आतंकित और पीड़ित प्रजाएँ अनाथ हो जायेंगी । सब ओर से त्रस्त होकर वे जीविकाविहीन हो जायँगी । अत्यन्त दुःखित होकर पुर, ग्राम एवं नगरों को छोड़कर वन में निवास बनायेंगी ॥ ३९०-३९३ ॥

इस प्रकार राजाओं के विनाश होने पर प्रजाएँ अपना घर छोड़कर भाग जायँगी । स्नेह भावना नष्ट हो जायगी, आपत्तियों से दलित होकर स्नेहियों तथा सुहृदों को छोड़ देगी । वर्णाश्रम धर्म का विनाश हो जायगा, वे घोर संकर वर्ण हो जायेंगी । पर्वतों की गुफाओं और नदियों के एकान्त तटों पर वे निवास करेंगी ॥३९४-३९५॥

घर द्वार छोड़कर सारी प्रजाएँ समुद्रतट, नदियों, पर्वतों एवं जलीय प्रान्तों में निवासार्थ भाग जायँगी । सारी मानव जाति अपने-अपने प्रिय देशों को छोड़कर अङ्ग, कलिङ्ग, बङ्ग, काश्मीर, काशी, कोशल, ऋषिक, गिरिद्रोणी प्रभृति प्रान्तों में आश्रय प्राप्त करेंगी । आर्य लोग म्लेच्छों के साथ सारी हिमवान् की पृष्ठभूमि, क्षार समुद्र के तटवर्ती प्रान्तों एवं भीषण अरण्यों में मृगों, मत्स्यों, पक्षियों एवं अन्यान्य हिंस्र जन्तुओं के साथ-साथ मधु, शाक, मूल, फलादि खा-खाकर जीवन यापन करेंगे ॥ ३९६-३९८ ॥

वे मुनियों की भाँति वृक्ष के वल्कलों, मृगचर्मों एवं पत्तों के चीर अपने हाथों से बना-बनाकर धारण करेंगे । निम्न प्रान्तों में अन्न के बीजों का अन्वेषण करते हुए वे लोग काष्ठ और शंकुओं द्वारा जीविका अर्जित करेंगे । बकरी, भेड़, गधे और ऊँटों का यत्नपूर्वक पालन करेंगे ॥ ३९९-४०० ॥

नदीर्वत्स्यन्ति तोयार्थे कूलमाश्रित्य मानवाः । पार्थिवान् व्यवहारेण विबाधन्तः परस्परम्॥ ४०१ ॥
बहुमन्याः प्रजाहीनाः शौचाचार विवर्जिताः । एवं भविष्यन्ति नरास्तदाधर्मे व्यवस्थिताः॥ ४०२ ॥
हीनाद्धीनांस्तथा धर्मान् प्रजा समनुवर्तते । आयुस्तदा त्रयोविंशं न कश्चिदतिवर्तते॥ ४०३ ॥
दुर्बला विषयग्लाना जरया संपरिप्लुताः । पत्रमूलफलाहाराश्चीरकृष्णाजिनाम्बराः ॥ ४०४ ॥
वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्तश्चरिष्यन्ति वसुंधराम् । एतत्कालमनुप्राप्ताः प्रजाः कलियुगान्तके॥ ४०५ ॥
क्षीणे कलियुगे तस्मिन्दिव्ये वर्षसहस्रके । निःशेषास्तु भविष्यन्ति सार्धं कलियुगेन तु॥
ससन्ध्यांशे तु निःशेषे कृतं वै प्रतिपत्स्यते ॥ ४०६ ॥
यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती । एकराशे भविष्यन्ति तदा कृतयुगं भवेत्॥ ४०७ ॥
एष वंशक्रमः कृत्स्नं कीर्तितो वो यथाक्रमम् । अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये॥ ४०८ ॥
महापद्माभिषेकात्तु जन्म यावत्परीक्षितः । एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चादशदुत्तरम्॥ ४०९ ॥
प्रमाणं वै तथा चोक्तं महापद्मान्तरं च यत् । अन्तरं तच्छतान्यष्टौ षट्त्रिंशच्च समाः स्मृताः॥ ४१० ॥
एतत्कालान्तरं भाव्या अन्ध्रान्ता ये प्रकीर्तिताः। भविष्यैस्तत्र संख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः॥ ४११ ॥
सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम् । सप्तविंशैः शतैर्भाव्या अन्ध्राणां ते त्वया पुनः॥ ४१२ ॥
सप्तविंशतिपर्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले । सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम्॥
सप्तर्षीणां युगं ह्येतद्दिव्यया संख्यया स्मृतम् ॥ ४१३ ॥

जल के लिए नदियों के किनारे निवास बनायेंगे । राजाओं में परस्पर वैमनस्य का बीज बोयेंगे । किन्हीं किन्हीं को सन्तानों की अधिकता हो जायगी, किन्हीं किन्हीं को सन्तानें एकदम न रहेंगी, पवित्रता एवं आचार का स्थान एकदम से उनमें विलुप्त हो जायगा । उस समय अधर्म में पड़ी हुई मानव जाति इस प्रकार की हो जायगी । लोग निकृष्ट से भी निकृष्टतर अधर्ममय कार्यों में अनुरक्त हो जायेंगे । उस समय तेईस वर्ष से बढ़कर किसी की आयु न होगी ॥ ४०१-४०३ ॥

दुर्बलाङ्ग, विषयलोलुप, वृद्धता से दबाये हुए पत्ते, मूल, फूल, फल का आहार करनेवाले, चीर एवं कृष्ण मृग-चर्म के पहननेवाले वे लोग जीविका के लिए सारी पृथ्वी का भ्रमण करेंगे । कलियुग के अन्त में प्रजाएँ इस प्रकार की विविध आपत्तियों में ग्रस्त हो जायँगी ॥ ४०४-४०५ ॥

एक सहस्र वर्ष के उस कलियुग की समाप्ति पर उस समय की सारी प्रजाएँ भी उसी के साथ सर्वांशतः नष्ट हो जायँगी और इस प्रकार संध्या समेत कलियुग के व्यतीत हो जाने पर कृतयुग की प्रवृत्ति होगी । जिस समय चन्द्रमा, सूर्य, तिष्य और बृहस्पति—ये सब एक राशि पर होंगे, उस समय कृतयुग होगा ॥ ४०६-४०७ ॥

अतीत, वर्तमान एवं भविष्यत्कालीन राजाओं के वंशों को क्रमानुसार मैं आप लोगों को बता चुका । राजा परीक्षित के जन्म से लेकर महापद्म के अभिषेक तक का समय एक सहस्र पचास वर्ष जानना चाहिए । पुराणों के जानने वाले वैदिकज्ञानसम्पन्न ऋषियों ने महापद्म के शासनकाल से लेकर अन्ध्रों के अन्त तक का काल आठ सौ छत्तीस वर्ष का बताया है । सप्तर्षिगण एक-एक नक्षत्र में एक-एक सौ वर्ष क्रमानुसार अवस्थित रहते हैं । इस प्रकार समस्त नक्षत्रमण्डल में वे सत्ताईस सौ वर्ष तक स्थित रहते हैं । पर्यायक्रम से एक-एक नक्षत्र में एक-एक सौ वर्ष

सा सा दिव्या स्मृता षष्टिर्दिव्याह्नाश्चैव सप्तभिः। तेभ्यः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तु तैः ॥ ४१४ ॥
सप्तर्षीणां तु ये पूर्वा दृश्यन्ते उत्तरादिशि । ततो मध्येन च क्षेत्रं दृश्यते यत्समं दिवि॥ ४१५ ॥
तेन सप्तर्षयो युक्ता ज्ञेया व्योम्नि शतं समाः । नक्षत्राणामृषीणां च योगस्यैतन्निदर्शनम्॥ ४१६ ॥
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम् । अन्ध्रांशे स चतुर्विंशे भविष्यन्ति मते मम॥ ४१७ ॥
इमास्तदा तु प्रकृतिर्व्यापत्स्यन्ति प्रजा भृशम् । अनृतोपहताः सर्वा धर्मतः कामतोऽर्थतः॥ ४१८ ॥
श्रौतस्मार्ते प्रशिथिले धर्मे वर्णाश्रमे तदा । सङ्करं दुर्बलात्मानः प्रतिपत्स्यन्ति मोहिताः॥ ४१९ ॥
संसक्ताश्च भविष्यन्ति शूद्राः सार्धं द्विजातिभिः । ब्राह्मणाः शूद्रयष्टारः शूद्रा वै मन्त्रयोनयः॥ ४२० ॥
उपस्थास्यन्ति तान् विप्रास्तदा वै वृत्तिलिप्सवः । लवं लवं भ्रस्यमानाः प्रजाः सर्वाः क्रमेण तु॥ ४२१ ॥
क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये । यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने॥ ४२२ ॥
प्रतिपन्नः कलियुगस्तस्य संख्यां निबोधत । सहस्राणां शतानीह त्रीणि मानुषसंख्यया॥
षष्टिं चैव सहस्राणि वर्षाणामुच्यते कलिः ॥ ४२३ ॥
दिव्ये वर्षसहस्रं तु तत्संध्यांशं प्रकीर्तितम् । निःशेषे च तदा तस्मिन्कृतं वै प्रतिपत्स्यते॥ ४२४ ॥
ऐल इक्ष्वाकुवंशश्च सह भेदैः प्रकीर्तितौ । इक्ष्वाकोस्तु स्मृतः क्षत्रः सुमित्रान्तं विवस्वतः॥ ४२५ ॥

की स्थिति का काल उनका एक-एक युग कहलाता है । यह युग दिव्य संख्या से निर्णीत होता है ।।४०८-४१३।।

दिव्य साठ वर्षों तथा सात दिनों का सप्तर्षियों का एक सौ वर्ष होता है । सप्तर्षिगणों के इस प्रकार के गतिक्रम में दिव्यकाल का प्रवर्तन होता है । सप्तर्षिगण प्रथमतः नक्षत्रमण्डल के पूर्व दिशा की ओर पश्चात् उत्तर दिशा की ओर दिखायी पड़ते हैं । तदनन्तर आकाश के मध्यभाग में जो नक्षत्र दिखायी पड़ता है, उसके समानान्तर दिखायी पड़ते हैं । उसके साथ आकाश में सप्तर्षिगणों को सौ वर्षों तक स्थित जानना चाहिए । नक्षत्रों एवं ऋषियों के साथ योग होने का यही निदर्शन है । हमारे मत से राजा परीक्षित के राजत्वकाल में सप्तर्षिगण एक सौ वर्ष के लिए मघा नक्षत्र में स्थित होंगे, अन्ध्रवंशीय राजा की समाप्ति के बाद वे चौबीसवें नक्षत्र अर्थात् शतभिषा नक्षत्र में स्थित रहेंगे ॥ ४१४-४१७ ॥

उस समय पृथ्वी पर सारी प्रजाएँ अनेक प्रकार की विपत्तियों में पिस जायेंगी । मिथ्याचारपरायण होकर धर्मार्थकाम विहीन हो जायेंगी । शास्त्रीय श्रौतस्मार्त कर्मों का ह्रास हो जायगा । वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा लुप्त हो जायगी । दुर्बलात्मा मानव अज्ञान में पड़कर संकरवर्ण हो जायेंगे । शूद्र लोग द्विजातियों के साथ हिल-मिल जायेंगे । ब्राह्मण शूद्रों के घर जाकर यज्ञ कराने लगेंगे और शूद्र लोग मन्त्रकर्त्ता बन जायेंगे ॥ ४१८-४२० ॥

जीविका के लोभ से ब्राह्मण उन शूद्रों की उपासना करने लगेंगे । सारी प्रजा धीरे-धीरे ह्रास को प्राप्त होने लगेगी और इसी प्रकार युग की समाप्ति हो जाने पर वह भी क्षीण हो जायगी । जिस दिन भगवान् कृष्ण स्वर्गगामी होते हैं, उसी दिन कलियुग की प्रवृत्ति होती है । अब उसकी अवधि की संख्या कही जाती है । मानव मान से तीन लाख साठ सहस्र वर्षों का कलियुग कहा जाता है ॥ ४२०-४२३ ॥

उसका संध्यांश देव मान से एक सहस्र वर्ष कहा जाता है । कलियुग की समाप्ति हो जाने पर कृतयुग का प्रारम्भ होता है । ऐल और इक्ष्वाकु के वंशों को, उनके पारस्परिक भेदों के साथ, हम बता चुके । इक्ष्वाकु के

ऐलं क्षत्रं क्षेमकान्तं सोमवंशविदो विदुः । एते विवस्वतः पुत्राः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ॥ ४२६ ॥
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैवान्वये स्मृताः ॥ ४२७ ॥
युगे युगे महात्मानः समतीताः सहस्रशः । बहुत्वान्नामधेयानां परिसंख्या कुले कुले ॥ ४२८ ॥
पुनरुक्ता बहुत्वाच्च न मया परिकीर्तिता । वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन् निमिवंशः समाप्यते ॥ ४२९ ॥
तस्यां तु युगाख्यायां यतः क्षत्रं प्रपत्स्यते । तथा हि कथयिष्यामि गदतो मे निबोधत ॥ ४३० ॥
देवापिः पौरवो राजा इक्ष्वाकोश्चैव यो मतः । महायोगबेलोपेतः कलापग्राममास्थितः ॥ ४३१ ॥
सुवर्चाः सोमपुत्रस्तु इक्ष्वाकोस्तु भविष्यति । एतौ क्षत्रप्रणेतारौ चतुर्विंशे चतुर्युगे ॥ ४३२ ॥
न च विंशे युगे सोमवंशस्यादिर्भविष्यति । देवापिरसपत्नस्तु ऐलादिर्भविता नृपः ॥ ४३३ ॥
क्षत्रप्रावर्तकौ ह्येतौ भविष्येते चतुर्युगे । एवं सर्वत्र विज्ञेयं सन्तानार्थे तु लक्षणम् ॥ ४३४ ॥
क्षीणे कलियुगे तस्मिन् भविष्ये तु कृते युगे । सप्तर्षिभिस्तु तैः सार्धमाद्ये त्रेतायुगे पुनः ॥ ४३५ ॥
गोत्राणां क्षत्रियाणां च भविष्येते प्रवर्तकौ । द्वापरांशे न तिष्ठन्ति क्षत्रिया ऋषिभिः सह ॥ ४३६ ॥
काले कृतयुगे चैव क्षीणे त्रेतायुगे पुनः । बीजार्थं ते भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्य वै पुनः ॥ ४३७ ॥
एवमेव तु सर्वेषु तिष्ठन्तीहान्तरेषु वै । सप्तर्षयो नृपैः सार्धं संतानार्थं युगे युगे ॥ ४३८ ॥

वंश में जिन क्षत्रियों का आविर्भाव हुआ, वे सब राजा सुमित्र के अन्त पर्यन्त रहे, सुमित्र के बाद सूर्य पुत्र इक्ष्वाकु के वंश का अवसान हो जाता है। चन्द्रवंश के इतिहास को जानने वाले लोग ऐल के वंश को राजा क्षेमक के अन्त तक जानते हैं। वैवस्वत के कीर्तिशाली इन पुत्रों का वर्णन किया जा चुका ॥ ४२४-४२६ ॥

इसके अतिरिक्त उन सबों के वंश में अतीत, वर्तमान एवं भविष्यत्कालीन ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों का भी वर्णन किया गया। प्रत्येक युगों में सहस्रों लाखों की संख्या में महान् पराक्रमशाली, बुद्धिमान् एवं जितेन्द्रिय राजा लोग उत्पन्न हो गये हैं। बहुत अधिक हो जाने तथा पुनरुक्ति के कारण उनकी संख्या प्रत्येक कुल के अनुसार मैंने नहीं बतायी। इस वैवस्वत मन्वन्तर में निमिवंश की समाप्ति हो जाती है ॥ ४२७-४२९ ॥

इस वर्तमान युग में जिस प्रकार इन क्षत्रियों की उत्पत्ति होगी, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनिये। पौरववंशीय देवापि नामक राजा जो महान् योगाभ्यासी होगा। कलाप ग्राम में निवास करेगा, इसी प्रकार इक्ष्वाकुवंशीय सोमपुत्र सुवर्चा नामक एक राजा होगा। चौबीसवें युग में ये दो परमवीर राजा क्षत्रिय धर्म का प्रवर्तन करनेवाले होंगे। बीसवें युग में जबकि चन्द्रवंश का आदिम राजा कोई न होगा। देवापि बिना किसी की प्रतिद्वन्द्विता एवं वैरभावना के ऐल वंश का प्रथम राजा होगा ॥ ४३०-४३३ ॥

चारों युगों के लिए ये दो राजा क्षत्रिय धर्म के प्रवर्तक होंगे। क्षत्रिय गुण, धर्म, स्वभाववाली सन्तानों के लिए इन्हीं दोनों राजाओं को मूलरूप जानना चाहिए। तथाकथित कलियुग के व्यतीत हो जाने पर जब पुनः सतयुग का प्रारम्भ होगा, तब विख्यात सप्तर्षियों के साथ ये दोनों क्षत्रिय गोत्र के प्रवर्तकों के रूप में जन्म धारण करेंगे। इसी प्रकार त्रेतायुग के प्रारम्भिक काल में पुनः जन्म धारण करेंगे। द्वापरांश में न तो क्षत्रिय रहेंगे और न ऋषिगण रहेंगे। सतयुग और त्रेतायुग के क्षीण होने पर वे ऋषि तथा राजर्षिगण ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के वंशों के बीज रूप होकर उत्पन्न होंगे ॥ ४३४-४३७ ॥

सभी मन्वन्तरों में इसी प्रकार सप्तर्षिगण क्षत्रिय राजाओं के साथ स्थित रहते हैं। और प्रत्येक युग में इसी

क्षत्रस्यैव समुच्छेदः संबन्धो वै द्विजैः स्मृतः। मन्वन्तराणां सप्तानां संतानाश्च श्रुताश्च ते॥ ४३९ ॥
परम्परा युगानां च ब्रह्मक्षत्रस्य चोद्भवः । यथा प्रवृत्तिस्तेषां वै प्रवृत्तानां तथा क्षयः॥ ४४० ॥
सप्तर्षयो विदुस्तेषां दीर्घायुष्ट्वाक्षयन्तु ते । एतेन क्रमयोगेन्न ऐलेक्ष्वाक्वन्वया द्विजाः॥ ४४१ ॥
उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाणे कलौ पुनः । अनुयान्ति युगाख्यां तु यावन्मन्वन्तरक्षयः॥ ४४२ ॥
जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते । कृते वंशकुलाः सर्वाः क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः ॥
द्विवंशकरणाश्चैव कीर्तयिष्ये निबोधत ॥ ४४३ ॥
ऐलस्येक्ष्वाकुनन्दस्य प्रकृतिः परिवर्तते । राजानः श्रेणिबद्धास्तु तथाऽन्ये क्षत्रिया नृपाः॥ ४४४ ॥
ऐलवंशस्य ये ख्यातास्तथैवैक्ष्वाकवा नृपाः । तेषामेकशतं पूर्णं कुलानामभिषेकिनाम्॥ ४४५ ॥
तावदेव तु भोजानां विस्तरो द्विगुणः स्मृतः । भजते त्रिशकं क्षत्रं चतुर्धा तद्यथादिशम्॥ ४४६ ॥
तेष्वतीताः समाना ये ब्रुवतस्तान्निबोधत । शतं वै प्रतिविन्ध्यानां शतं नागाः शतं हयाः॥ ४४७ ॥
धृतराष्ट्राश्चैकशतमशीतिर्जनमेजयाः । शतं च ब्रह्मदत्तानां शीरिणां वीरिणां शतम्॥ ४४८ ॥
ततः शतं पुलोमानां श्वेतकाशकुशादयः । ततोऽपरे सहस्रं वै येऽतीताः शतबिन्दवः॥ ४४९ ॥
ईजिरे चाश्वमेधैस्ते सर्वे नियुतदक्षिणैः । एवं राजर्षयोऽतीताः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ४५० ॥
मनोर्वैवस्वतस्यास्मिन्वर्तमानेऽन्तरे तु ये । तेषां निबोधतोत्पन्ना लोके संततयः स्मृताः॥ ४५१ ॥

प्रकार सन्तति उत्पन्न करने के लिए राजाओं के साथ अवतीर्ण होते हैं। क्षत्रिय वंश का मूलतः विध्वंस, ब्राह्मणों के साथ सम्बन्ध स्थापन, सात मन्वन्तर, मन्वन्तरों में उत्पन्न होनेवाली प्रजाएँ, युगों की परम्परा, ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों की उत्पत्ति, उनके कुलों का उद्भव, उत्पत्ति के उपरान्त उनके विनाश एवं दीर्घायुप्राप्ति, प्रजाओं की प्रवृत्ति आदि समस्त बातों को सप्तर्षिगण जानते हैं। इस उपर्युक्त क्रम के अनुसार ऐल तथा इक्ष्वाकुवंशीय द्विजातियाँ त्रेता युग में उत्पन्न होकर कलियुग के विनाश पर्यन्त युग का अनुवर्तन तब तक करती रहती हैं, जब तक मन्वन्तर का क्षय नहीं उपस्थित होता ॥ ४३८-४४२ ॥

जमदग्नि पुत्र परशुराम के पृथ्वीपति राजाओं के साथ क्षत्रियों का समूल संहार कर डालने के बाद चन्द्र और सूर्य दोनों वंश के क्षत्रियों की पुनः उत्पत्ति हुई। अब मैं उन सबका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ॥ ४४३ ॥

उस महान् क्षत्रिय संहार के बाद ऐल और इक्ष्वाकु के वंशज क्षत्रियों की सन्तानों का पुनः विस्तार हुआ और धारावाहिक रूप में क्षत्रिय लोग पुनः राज्याधिकारी हुए। उनके साथ-साथ अन्यान्य क्षत्रिय भी राजा हुए। ऐल और ऐक्ष्वाकु ऐसे वंश थे, जिनमें परम विख्यात अभिषिक्त राजाओं के एक सौ कुल हुए। भोजवंशीय राजाओं के कुलों की संख्या उनकी द्विगुणित कही जाती है। इस प्रकार ऐसे क्षत्रिय कुलों की संख्या तीन सौ हो जाती है। उनमें समान नामवाले राजा व्यतीत हो चुके हैं, उन सबको बता रहा हूँ, सुनिये। ऐसे राजाओं में प्रतिविन्ध्यों की संख्या एक सौ, नागों की एक सौ, हयों की एक सौ, धृतराष्ट्रों की एक सौ, जनमेजयों की अस्सी, ब्रह्मदत्तों की एक सौ, शीरी और वीरियों की एक सौ, पौलों की एक सौ, तथा श्वेत, काश एवं कुशादिकों की एक सौ संख्या है। शतबिन्दु नामक एक सहस्र राजा हो चुके हैं ॥ ४४४-४४९ ॥

ये सभी नृपतिगण करोड़ों की दक्षिणा वाले अनेक अश्वमेध यज्ञों से अनुष्ठान करने वाले थे। सैकड़ों सहस्रों की संख्या में ऐसे उदारचेता नृपति व्यतीत हो गये हैं। इसी वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में, इन्हीं मनु के काल

न शक्यं विस्तरं तेषां संतानानां परम्परा । तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ४५२ ॥
अष्टाविंशद्युगाख्यास्तु गता वैवस्वतेऽन्तरे । एता राजर्षिभिः सार्धं शिष्टा यास्ता निबोधत ॥ ४५३ ॥
चत्वारिंशच्च ये चैव भविष्याः सह राजभिः । युगाख्यानां विशिष्टास्तु ततो वैवस्वतक्षये ॥ ४५४ ॥
एतद्वः कथितं सर्वं समासव्यासयोगतः । पुनरुक्तं बहुत्वाच्च न शक्यं तु युगैः सह ॥ ४५५ ॥
एते ययातिपुत्राणां पञ्चविंशा विशां हिताः । कीर्तिताश्चामिता ये मे लोकान् वै धारयन्त्युत ॥ ४५६ ॥
लभते च वरेण्यञ्च दुर्लभानिह लौकिकान् । आयुः कीर्तिं धनं पुत्रान्स्वर्गं चानन्त्यमश्नुते ॥ ४५७ ॥
धारणाच्छ्रवणाच्चैव ते लोकान्धारयन्त्युत । इत्येष वो मया पादस्तृतीयः कथितो द्विजाः ॥
विस्तरेणाऽऽनुपूर्वी च किं भूयो वर्तयाम्यहम् ॥ ४५८ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे तुर्वस्वादिवंशवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

॥ समाप्तोऽयमनुषङ्गपादः ॥

* * *

में, जो राजा हो गये हैं, उन्हीं की बहुत बड़ी संख्या में संततियाँ उत्पन्न हुई हैं, उन सब की परम्परा का विस्तृत विवरण पहले और पीछे की सारी संख्याएँ मिलाकर सौ वर्ष में भी प्रस्तुत नहीं किया जा सकता ॥ ४५०-४५२॥

वैवस्वत मन्वन्तर का अट्ठाईसवाँ युग समाप्तप्राय हो गया है, इस समय राजर्षियों के साथ जो सन्तानें शेष हैं, उन्हें सुनिये । भविष्य में इसी युग में चालीस अन्य विशिष्ट राजा लोग राज्य करेंगे । वैवस्वत का सर्वांशतः अवसान होगा ॥ ४५३-४५४ ॥

प्रसंगतः संक्षेप और विस्तार में मैं आप लोगों को राजाओं का यह वृत्तान्त बता चुका । प्रत्येक युगों में होनेवाले समस्त राजाओं का वृत्तान्त एवं वंशक्रम बहुत अधिक एवं पुनरुक्ति के कारण मैं नहीं बता सकता । सम्राट् ययाति के पुत्रों से होनेवाले प्रजारक्षक पचीस राजवंशों का एवं उनके शासनाधीन देशों का वर्णन कर चुका । वे सभी अमित प्रभावशाली एवं बलवान् थे । बड़े प्रेम से समस्त लोकों का पालन करते थे । इस पवित्र वृत्तान्त को धारण करने से तथा सुनने से मनुष्य दीघायु, यश, धन, पुत्र और अनन्त काल तक स्वर्ग में निवास—इन पाँच वरदानों को प्राप्त करता है । इस लोक में ये वरदान परम दुर्लभ हैं ।

हे द्विजवृन्द ! मैं आप लोगों को विस्तारपूर्वक क्रमानुसार इस तृतीय अनुषङ्ग पाद को सुना चुका । अब इसके बाद क्या बताऊँ, बताइये ॥ ४५५-४५८ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त अनुषङ्गपाद में तुर्वस्वादि वंशवर्णन नामक सैंतीसवें अध्याय (निन्यान्नबेवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३७ ॥**

॥ इस प्रकार तृतीय अनुषङ्गपाद समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

* * *

अथ उपसंहारपादः

अथ अष्टात्रिंशोऽध्यायः

मन्वन्तरनिसर्गवर्णनम्

श्रुत्वा पादं तृतीयं तु क्रान्तं सूतेन धीमता । ततश्चतुर्थं पप्रच्छुः पादं वै ऋषिसत्तमाः ॥ १ ॥

ऋषय ऊचुः

पादः क्रान्तस्तृतीयोऽयमनुषङ्गेण यस्त्वया । चतुर्थं विस्तरात्पादं संहारं परिकीर्तय ॥ २ ॥
मन्वन्तराणि सर्वाणि पूर्वाण्येवापरैः सह । सप्तर्षीणामथैतेषां सांप्रतस्यान्तरे मनोः ॥ ३ ॥
विस्तरावयवं चैव निसर्गस्य महात्मनः । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च सर्वमेव ब्रवीहि मे ॥ ४ ॥

सूत उवाच

भवतां कथयिष्यामि सर्वमेतद्यथातथम् । पादं त्विमं ससंहारं चतुर्थं मुनिसत्तमाः ॥ ५ ॥
मनोर्वैवस्वतस्येमं सांप्रतस्य महात्मनः । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च निसर्गं श्रृणुत द्विजाः ॥ ६ ॥

उपसंहारपाद

अड़तीसवाँ अध्याय

(सौवाँ अध्याय)

मन्वन्तरों का वर्णन

परम बुद्धिमान् सूत द्वारा तृतीय पाद को सुनने के बाद श्रेष्ठ ऋषियों ने चतुर्थ पाद के विषय में जिज्ञासा प्रकट की ॥ १ ॥

ऋषिवृन्द ने कहा—हे सूत जी ! आप अनुषङ्ग नामक तृतीय पाद को हम लोगों को सुना चुके हैं । अब चतुर्थ उपसंहार नामक पाद का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये । जो मन्वन्तर पहले बीत चुके हैं, उनके अतिरिक्त अन्य मन्वन्तर भी हैं । इस वर्तमान मन्वन्तर में जो सप्तर्षि हैं, उन सबका वृत्तान्त हमें बताइये । वर्तमान महात्मा मनु की सृष्टि का उद्भव एवं विस्तार कैसे होता है? इन सब बातों को क्रमानुसार विस्तारपूर्वक हमें बताइये ॥२-४॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द! मैं आप लोगों को इन सब जिज्ञासाओं के विषय में यथातथ्य रूप से कहता हूँ । चतुर्थ उपसंहार पाद का वर्णन सुनिये । हे द्विजवृन्द! साथ ही वर्तमान महात्मा मनु के इस सृष्टि विस्तार का भी विस्तारपूर्वक क्रमानुसार वर्णन करता हूँ ॥ ५-६ ॥

मन्वन्तराणां संक्षेपं भविष्यैः सह सप्तभिः । प्रलयं चैव लोकानां ब्रुवतो मे निबोधत ॥ ७ ॥
एतान्युक्तानि वै सम्यक्सप्तसप्तसु वै मया । मन्वन्तराणि संक्षेपाच्छृणुतानागतानि मे ॥ ८ ॥
सावर्णस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह । भविष्यस्य भविष्यन्ति समासात्तु निबोधत ॥ ९ ॥
अनागताश्च सप्तैव स्मृतास्त्विह महर्षयः । कौशिको गालवश्चैव जामदग्न्यश्च भार्गवः ॥ १० ॥
द्वैपायनो वसिष्ठश्च कृपः शारद्वतस्तथा । आत्रेयो दीप्तिमांश्चैव ऋष्यशृङ्गस्तु काश्यपः ॥ ११ ॥
भारद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महायशाः । एते सप्त महात्मानो भविष्याः परमर्षयः ॥ १२ ॥
सुतपाश्चामिताभाश्च सुखाश्चैव गणास्त्रयः। तेषां गणास्तु देवानामेकैको विंशकः स्मृतः ॥ १३ ॥
नामतस्तु प्रवक्ष्यामि निबोधध्वं समाहिताः । रितस्तपश्च शुक्रश्च द्युतिर्ज्योतिः प्रभाकरौ ॥ १४ ॥
प्रभासो भासकृद्धर्मस्तेजोरश्मिर्ऋतुर्विराट् । अर्चिष्मान् द्योतनो भानुर्यशः कीर्तिर्बुधो धृतिः ॥
विंशतिः सुतपा ह्येते नामभिः परिकीर्तिताः ॥ १५ ॥
प्रभुर्विभुर्विभासश्च जेता हन्ताऽरिहा रितुः । सुमतिः प्रमतिर्दीप्तिः समाख्यातो महोमहान् ॥ १६ ॥
देहो मुनिर्नयो ज्येष्ठः समः सत्यश्च विश्रुतः । इत्येते ह्यमिताभास्तु विंशतिः परिकीर्तिताः ॥ १७ ॥
दमो दाता विदः सोमो वित्तवैद्यौ यमो निधिः । होमं हव्यं हुतं दानं देयं दाता तपः शमः ॥ १८ ॥
ध्रुवं स्थानं विधानं च नियमश्चेति विंशतिः । मुख्या ह्येते समाख्याताः सावर्णेः प्रथमेऽन्तरे ॥ १९ ॥

बीत चुके सात मन्वन्तरों का भी भविष्यत्कालीन सातों मन्वन्तरों के साथ संक्षिप्त वर्णन करता हूँ। लोकों का प्रलय किस प्रकार सम्भव होता है—यह भी बता रहा हूँ, सुनिये । पूर्व प्रसंग में सातों अतीत एवं भविष्यत्कालीन मन्वन्तरों का विस्तृत वर्णन मैं यद्यपि कर चुका हूँ। किन्तु यहाँ प्रसंगप्राप्त भविष्यत्कालीन मन्वन्तरों का संक्षेप में पुनः वर्णन करता हूँ आप सुनिये ॥ ७-८ ॥

प्रस्तुत वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर तथा भविष्यत्कालीन सावर्ण मनु का वर्णन कर रहा हूँ। संक्षेप में सुनिये। भावी मन्वन्तर में जो मुनिगण होंगे उनके नाम सुनिये-कुशिकनन्दन गालव, जमदग्निपुत्र भार्गव, वसिष्ठगोत्रीय द्वैपायन, शारद्वतवंशोत्पन्न कृप, अत्रिवंशोद्भव दीप्तिमान्, काश्यपगोत्रीय ऋष्यशृङ्ग एवं भरद्वाजगोत्रीय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा—ये सात परम प्रभावशाली महात्मागण भावी मन्वन्तर में श्रेष्ठ ऋषि के नाम से विख्यात होंगे। सुतपा, अमिताभ और सुख—ये तीन भावी सावर्ण मन्वन्तर के देवगणों के प्रमुख गण होंगे । इनमें एक-एक में बीस-बीस देवता के समूह विद्यमान होंगे ॥ ९-१३ ॥

उन सबके नाम कहता हूँ। सावधान होकर सुनिये। रित, तप, शुक्र, द्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभास, भासकृत, धर्म, तेज, रश्मि, क्रतु, विराट्, अर्चिष्मान्, द्योतन, भानु, यश, कीर्ति, बुध और धृति—ये बीस देवगण सुतपा नामक गण कहे गये हैं ॥ १४-१५ ॥

प्रभु विभु विभास, जेता, हन्ता, अरिहा, रितु, सुमति, प्रमति, दीप्ति, समाख्यात, मह, महान्, देह, मुनि, नय, ज्येष्ठ, सम, सत्य और विश्रुत—ये बीस अमिताभ समूह के देव कहे गये हैं। दम, दाता, विद, सोम, वित्त, वैद्य, यम, निधि, होम, हव्य, हुत, दान, देय, दाता, तप, शम, ध्रुव, स्थान, विधान और नियम—ये बीस सावर्णि मन्वन्तर की प्रथम अवस्था में बीस मुख्य सुख नामक देवगण कहे गये हैं ॥ १६-१९ ॥

मारीचस्यैव ते पुत्राः कश्यपस्य महात्मनः । सांप्रतस्य भविष्यन्ति सावर्णस्यान्तरे मनोः ॥ २० ॥
तेषामिन्द्रो भविष्यस्तु बलिर्वैरोचनः पुरा । वीरवांश्चावरीयांश्च निर्मोहः सत्यवाक्कृती ॥ २१ ॥
चरिष्णुराज्यो विष्णुश्च वाचः सुमतिरेव च । सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्यन्ति नवैव तु ॥ २२ ॥
नव चान्येषु वक्ष्यामि सावर्णेश्चान्तरेषु वै । सावर्णमनवश्चान्ये भविष्या ब्रह्मणः सुताः ॥ २३ ॥
मेरुसावर्णिनस्ते वै दृष्टा ये दिव्यदृष्टिभिः । दक्षस्य ते हि दौहित्राः प्रियाया दुहितुः सुताः ॥ २४ ॥
महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः । ब्रह्मादिभिस्ते जनिता दक्षेणैव च धीमता ॥ २५ ॥
महर्लोकगतावृत्य भविष्या मेरुमाश्रिताः । महाभावात्तु ते पूर्वं जज्ञिरे चाक्षुषेऽन्तरे ॥ २६ ॥

ऋषय ऊचुः

दक्षेण जनिताः पुत्राः कन्यायामात्मनः कथम् । भवेत्तु ब्रह्मणश्चैव धर्मेण च महात्मनः ॥ २७ ॥

सूत उवाच

अतो भविष्यान् वक्ष्यामि सावर्णमनवस्तु ये । तेषां जन्म प्रभावं च नमस्कृत्य प्रचेतसे ॥ २८ ॥
वैवस्वते ह्युपस्पृष्टे किंचिच्छिष्टे च चाक्षुषे । जज्ञिरे मनवस्ते हि भविष्यानागतान्तरे ॥ २९ ॥
प्राचेतसस्य दक्षस्य दौहित्रा मनवस्तु ये । सावर्णा नामतः पञ्च चत्वारः परमर्षिजाः ॥ ३० ॥
संज्ञापुत्रस्तु सावर्ण एको वैवस्वतस्तथा । ज्येष्ठः संज्ञासुतो नाम मनुर्वैवस्वतः प्रभुः ॥ ३१ ॥

ये मारीच के पुत्र समस्त देवगण महात्मा कश्यप के पुत्र हैं। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के बाद सावर्णि मन्वन्तर में ये ही देवगणों के स्थान पर प्रतिष्ठित होंगे। उस सावर्णि मन्वन्तर में विरोचन पुत्र बलि इन देवगणों के स्वामी इन्द्र होंगे। सावर्ण मनु के नव पुत्र होंगे। उनके नाम होंगे—वीरवान्, अवरीयान्, निर्मोह, सत्यवाक्कृती, चरिष्णु, आज्य, विष्णु, वाच और सुमति। इनके अतिरिक्त अन्य सावर्ण मन्वन्तरीय नव मनुपुत्रों के नाम से प्रसिद्ध होंगे॥ २०-२२ ॥

भविष्य में और भी अनेक ब्रह्मा के पुत्र सावर्ण मनु उत्पन्न होंगे। दिव्य दृष्टि युक्त लोग उन सभी को मेरु सावर्णि के नाम से देखते हैं। वे मनुगण दक्ष के नाती एवं उनकी प्रियतमा पुत्री के पुत्र हैं। वे परम तेजस्वी, महान् तपस्वी एवं सुमेरु के पृष्ठ पर निवास करने वाले हैं। वे ब्रह्मादि देवगणों द्वारा तथा परम बुद्धिमान् दक्ष द्वारा उत्पन्न हुए हैं। वे महर्लोक वासी हैं। वहाँ से आकर सुमेरु के पृष्ठ भाग पर आश्रय लेते हैं। पूर्व चाक्षुष मन्वन्तर में उन महानुभावों की उत्पत्ति हुई थी॥ २३-२६ ॥

ऋषियों ने पूछा—हे सूत जी! दक्ष ने अपनी कन्या में पुत्रों की उत्पत्ति किस प्रकार की? शंकर, ब्रह्मा एवं धर्म द्वारा इन महात्मा मनुगणों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ?॥ २७ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! प्रचेता को प्रणाम कर अब मैं भविष्य में उत्पन्न होने वाले सावर्ण मनुगणों के जन्म वृत्तान्त, प्रभाव आदि का वर्णन कर रहा हूँ। चाक्षुष मन्वन्तर के कुछ शेष रह जाने पर जब वैवस्वत मन्वन्तर प्रारम्भ हो जाता है, उसी समय उन भविष्यत्कालीन मनुगणों की उत्पत्ति होती है। उनमें पाँच सावर्ण मनुगण पशुपति दक्ष के नाती, चार मनुगण परम ऋषियों द्वारा समुत्पन्न तथा एक सावर्ण मनु विवस्वान् के संयोग से छाया संज्ञा के पुत्र हैं। संज्ञा के ज्येष्ठ पुत्र परम ऐश्वर्यशाली वैवस्वत मनु इन सावर्ण मनु से ज्येष्ठ हैं।

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते समुत्पत्तिस्तयोः शुभा । चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ॥ ३२ ॥
वेदे श्रुतौ पुराणे च सर्वे ते प्रभविष्णवः । प्रजानां पतयः सर्वे भूतानां पतयः स्थिताः ॥ ३३ ॥
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता । पूर्णं युगसहस्त्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः ॥ ३४ ॥
प्रजाभिस्तपसा चैव विस्तरं तेषु वक्ष्यते । चतुर्दशैव ते ज्ञेयाः सर्वाः स्वायंभुवादयः ॥ ३५ ॥
मन्वन्तराधिकारेषु वर्तन्ते च सकृत्सकृत् । विनिवृत्ताधिकारास्ते महर्लोकं समाश्रिताः ॥ ३६ ॥
समतीतास्तु ये तेषामष्टौ षष्ठास्तथाऽपरे । पूर्वेषु सांप्रतश्चायं शान्तिर्वैवस्वतः प्रभुः ॥ ३७ ॥
ये शिष्टास्तान्प्रवक्ष्यामि सह देवर्षिदानवैः । सह प्रजानिसर्गेण सर्वांस्त्वनागतान् द्विजान् ॥ ३८ ॥
वैवस्वतनिसर्गेण तेषां ज्ञेयस्तु विस्तरः । अन्यूना नातिरिक्तास्ते यस्मात्सर्वे विवस्वतः ॥ ३९ ॥
पुनरुक्ता बहुत्वात्तु न वक्ष्ये तेषु विस्तरम् । मन्वन्तरेषु भाव्येषु भूतेष्वपि तथैव च ॥ ४० ॥
कुले कुले निसर्गास्तु तस्माद्भूयो विभागशः । तेषामेव हि शिष्टार्थं विस्तरेण क्रमेण च ॥ ४१ ॥
दक्षस्य कन्या धर्मिष्ठा सुव्रता नाम विश्रुता । सर्वकन्यावशिष्टा तु श्रेष्ठा धर्मपरा सुता ॥
गृहीत्वा तां पिता कन्यां जगाम ब्रह्मणोऽन्तिके ॥ ४२ ॥
वैराजस्तमुपासीनं धर्मेण च भवेन च । भवधर्मसमीपस्थं दक्षं ब्रह्माऽभ्यभाषत ॥ ४३ ॥

वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर इन दोनों मनुओं की कल्याणप्रद उत्पत्ति होती है । परम यशस्वी इन मनुगणों की संख्या चौदह कही जाती है ॥ २८-३२ ॥

वेद, श्रुति, पुराण आदि में सर्वत्र ये मनुगण परम प्रभावशाली, प्रजापति सभी जीव निकायों के अधीश्वर के रूप में वर्णित किये गये हैं । इन्हीं नरेश्वर मनुगणों द्वारा सातों द्वीपों एवं पर्वतों समेत यह वसुन्धरा सहस्त्र युगों तक परिपालित होती है । उन मन्वन्तरों में होने वाली प्रजा, तपस्या एवं सृष्टि विस्तार का वर्णन कर रहा हूँ । स्वायंभुव मनु आदि की वह सृष्टि चौदह ही जाननी चाहिए ॥ ३३-३५ ॥

मनुगण अपने-अपने मन्वन्तराधिकार में एक-एक बार वर्तमान रहते हैं । जब अधिकार से वे निवृत्त हो जाते हैं, तब महर्लोक में अवस्थित होते हैं । उन चौदह मनुओं में से आठ के अधिकार-काल समाप्त हो गये हैं । छह मनुओं का अधिकार-काल शेष है । सप्त पूर्व मन्वन्तरों के समाप्त हो जाने पर सम्प्रति वैवस्वत मनु का अधिकार-काल चल रहा है । अब जो शेष मनुगण हैं, उनके अधिकार-काल का वर्णन, उस समय के देवताओं, ऋषियों, दानवों एवं ब्राह्मणादि द्विजातियों की सृष्टि परम्परा के साथ बता रहा हूँ ॥ ३६-३८ ॥

वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर की सृष्टि-विस्तार के द्वारा ही अन्य मन्वन्तरों की सृष्टि का विस्तार जानना चाहिए । वैवस्वत मन्वन्तर की सृष्टि के समान ही उनकी भी सृष्टि होती है । उनमें कुछ भी विशेषता अथवा न्यूनता नहीं रहती । भूत व भावी मन्वन्तरों में प्रत्येक वंशों में जो सृष्टि होती है, उसका पुनरुक्ति और अधिकता के भय से विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं कर रहा हूँ । केवल उनका विभागपूर्वक विस्तार एवं क्रम बता रहा हूँ । दक्ष प्रजापति की एक सुव्रता नामक परम धार्मिक यशस्विनी कन्या थी । वह अन्य कन्याओं से छोटी होती हुई भी गुणों में श्रेष्ठ एवं धर्मपरायण थी । पिता दक्ष एक बार अपनी उस कन्या को साथ लेकर ब्रह्मा के समीप गये ॥ ३९-४२ ॥

पितामह ब्रह्मा जी उस समय धर्म और भव के साथ वैराज नामक लोक में विराजमान थे । दक्ष को भव

दक्ष कन्या तवेयं वै जनयिष्यति सुव्रता । चतुरो वै मनून् पुत्रांश्चातुर्वर्ण्यकराञ्छुभान् ॥ ४४ ॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा दक्षो धर्मो भवस्तदा । तां कन्यां मनसा जग्मुस्त्रयस्ते ब्रह्मणा सह ॥ ४५ ॥
सत्याभिध्यायिनां तेषां सद्यः कन्या व्यजायत । सदृशानुरूपांस्तेषां चतुरो वै कुमारकान् ॥ ४६ ॥
संसिद्धाः कार्यकरणे संभूतास्ते श्रियाऽन्विताः । उपभोगसमर्थैश्च सद्योजातैः शरीरकैः ॥ २४७ ॥
ते दृष्ट्वा तान्स्वयं बुद्ध्वा ब्रह्मा व्याहारिणस्तदा । संरब्धा वै व्यकर्षन्त मम पुत्रो ममेत्युत ॥ ४८ ॥
अभिध्यानान्मनोत्पन्नानूचुर्वै ते परस्परम् । यो यस्य वपुषा तुल्यो भजतां स तु तं सुतम् ॥ ४९ ॥
यस्य यः सदृशश्चापि रूपे वीर्यं च नामतः । तं गृह्णातु सुभद्रं वो वर्णतो यस्य यः समः ॥ ५० ॥
ध्रुवं रूपं पितुः पुत्रः सोऽनुरुध्यति सर्वदा । तस्मादात्मसमः पुत्रः पितुर्मातुश्च जायते ॥ ५१ ॥
एवं ते समयं कृत्वा सवर्णान् जगृहुः सुतान् । यस्मात्सवर्णास्तेषां वै ब्रह्मादीनां कुमारकाः ॥ ५२ ॥
सवर्णा मनवस्तस्मात् सवर्णत्वं हि ते यतः । मननान्माननाच्चैव तस्मात्ते मनवः स्मृताः ॥ ५३ ॥
चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वतस्य ह । रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नामाभवत्सुतः ॥ ५४ ॥
भूत्यामुत्पादितो यस्तु भौत्यो नामाभवत्सुतः । वैवस्वतेऽन्तरे राजा द्वौ मनू तु विवस्वतोः ॥ ५५ ॥
वैवस्वतो मनुर्यश्च सावर्णो यश्च विश्रुतः । ज्येष्ठः संज्ञासुतो विद्वान् मनुर्वैवस्वतः प्रभुः ॥ ५६ ॥
सवर्णायाः सुतश्चान्यः स्मृतो वैवस्वतो मनुः । सवर्णा मनयो ये च चत्वारस्तु महर्षिजाः ॥ ५७ ॥

और धर्म के समीप खड़ा देखकर ब्रह्मा ने कहा-सद्व्रतपरायण दक्ष ! तुम्हारी यह कल्याणी कन्या चार पुत्रों को उत्पन्न करेगी । वे चारो भावी समय में चारों वर्णों के संस्थापक कल्याणकारी मनु के रूप में विख्यात होंगे । ब्रह्मा की ऐसी वाणी सुनकर दक्ष, धर्म और भव ने ब्रह्मा के साथ ही मन ही मन उस कन्या के साथ संगमन किया । सत्य का ध्यान करने वाले इन महान् तपस्वियों के मानसिक संकल्प के अनुसार उस कन्या ने उन्हीं चारों के अनुसार चार सुन्दर कुमारों को उसी क्षण उत्पन्न किया ॥ ४३-४६ ॥

वे कुमार समस्त कार्यों के पूर्ण करने वाले, परम बुद्धिमान्, श्रीमान् एवं अपने उसी सद्योजात शरीर से विविध भोगों के उपभोग का सामर्थ्य रखने वाले थे । इन चारों कुमारों को देखकर इन समस्त ब्रह्मवेत्ता देवताओं में 'यह मेरा पुत्र है', 'यह मेरा पुत्र', इस प्रकार की बातें कह-कहकर छीना-झपटी होने लगी और क्रोध का प्रदर्शन होने लगा । वे चारों पुत्र उन चारों महान् प्रभावशाली देवताओं के मानसिक अभिध्यान से उत्पन्न हुए थे, अतः उन सब ने परस्पर यह तय किया कि इन सब में जो शरीर जिसके समान हो, वह उसी को अपना पुत्र माना जाय ॥ ४७-४९ ॥

इस प्रकार स्वरूप, पराक्रम, नाम और वर्ण में जो पुत्र जिसके समान हो, वह उस पुत्र को ग्रहण करे । पुत्र सर्वदा पिता के स्वरूप का अनुकरण करता है । पराक्रम में भी पुत्र माता और पिता के समान होता है । यह निश्चित है कि पुत्र अपने ही समान प्रवृत्ति का होता है । अतः जो जिसके समान हो वह उसी का पुत्र है । ब्रह्मा आदि देवताओं ने परस्पर इस प्रकार की सम्मति करके अपने समान आकृति, वर्ण और पराक्रम वाले पुत्रों को ग्रहण किया ॥ ५०-५२ ॥

वे चारों कुमार ब्रह्मा, धर्म, दक्ष और भव के सावर्ण (समान वर्णवाले) थे । अतः उनका सावर्ण नाम पड़ा ।

तपसा संभृतात्मानः त्वेषु मन्वन्तरेषु वै । भविष्येषु भविष्यन्ति सर्वकार्यार्थसाधकाः ॥ ५८ ॥
प्रथमं मेरुसावर्णेर्दक्षपुत्रस्य वै मनोः । पुत्रा मरीचिगर्भाश्च सुशर्माणश्च ते त्रयः ॥
संभूताश्च महात्मानः सर्वे वैवस्वतेऽन्तरे ॥ ५९ ॥
दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः । भविष्यस्य भविष्यस्तु एकैको द्वादशो गणः ॥ ६० ॥
ऐश्वर्यसंग्राहो राहो बाहुवंशस्तथैव च । पारा द्वादश विज्ञेया उत्तरांस्तु निबोधत ॥ ६१ ॥
वाजियो वाजिजिच्चैव प्रभृतिश्च ककुद्यथ । दधिक्रावायपक्वाश्च प्रणीतो विजयो मधुः ॥ ६२ ॥
तेजस्मान्नथवो द्वौ तु द्वादशैते मरीचयः । सुशर्माणस्तु वक्ष्यामि नामतस्तु निबोधत ॥ ६३ ॥
वर्णस्तथाऽप्यङ्गविश्वौ मुरण्यो व्रजनो मतः । अमितो द्रवकेतुश्च जम्भोस्थाजस्त्रशक्रकाः ॥ ६४ ॥
सुनेमिर्द्युतपाश्चैव सुशर्माणः प्रकीर्तिताः । तेषामिन्द्रस्तदा भाव्यो ह्यद्भुतो नाम नामतः ॥ ६५ ॥
स्कन्दः सोमप्रतीकाशः कार्तिकेयस्तु पावकः। मेधातिथिश्च पौलस्त्यो वसुः काश्यप एव च ॥ ६६ ॥
ज्योतिष्मान् भार्गवश्चैव द्युतिमानङ्गिरास्तथा । वसितश्चैव वासिष्ठ आत्रेयो हव्यवाहनः ॥ ६७ ॥
सुतपाः पौलवश्चैव सप्तैते रोहितान्तरे । धृतिकेतुदीप्तिकेतुशापहस्ता निरामयः ॥ ६८ ॥

मानसिक मनन (समागम की भावना) के कारण उनकी उत्पत्ति हुई थी । अतः वे मनु नाम से विख्यात हुए । चाक्षुष मन्वन्तर के व्यतीत हो जाने पर जब वैवस्वत मन्वन्तर का प्रारम्भ हुआ, तब प्रजापति रुचि के रौच्य नामक एक पुत्र हुआ ॥ ५३-५४ ॥

भूति नामक जननी में जो पुत्र उत्पन्न किया गया, वह भौत्य नाम से विख्यात हुआ । वैवस्वत मन्वन्तर में विवस्वान के मनु नामक दो पुत्र राजा हुए । जिनमें एक वैवस्वत मनु और दूसरे सावर्ण मनु के नाम से विख्यात हुए। इनमें एक परम ऐश्वर्यशाली विद्वान् वैवस्वत मनु ज्येष्ठ संज्ञा पुत्र और दूसरे वैवस्वत मनु सवर्ण (छाया रूप धारिणी संज्ञा) के पुत्र कहे जाते हैं । सवर्ण जो चार मनुगण हुए वे महर्षियों से उत्पन्न हुए थे ॥ ५५-५७ ॥

ये सभी मनुगण परम तपोनिष्ठ थे । ये भविष्यत्कालीन अपने-अपने मन्वन्तरों में समस्त कार्यों में समर्थ होकर विराजमान होंगे । प्रथम मनु दक्षपुत्र मेरु सावर्णि थे, उनका दूसरा नाम प्रजापति रोहित था । ये भविष्य मन्वन्तर के भावी मनु होंगे । इनके वैवस्वत मन्वन्तर में अनेक महात्मा पुत्र हुए । जिनके गणों के नाम मरीचिगर्भा, सुशर्मा और पार हुए । इनमें से एक-एक गण बारह भागों में विभक्त है । ऐश्वर्यसंग्रह, राह, बाहुवंश आदि को पारगण के अन्तर्गत जानना चाहिए । अब अन्यान्य गण का विवरण सुनिये । वाजिय, वाजिजित् प्रभृति, ककुद्यया, दधिक्राव, अयपक्व, प्रणीत, विजय, मधु, तेजस्वान् और अथर्वद्वय—ये बारह मरीचिगण के अधीन थे । अब सुशर्मा गण का विवरण कहता हूँ, सुनिये ॥ ५८-६३ ॥

वर्ण, अङ्ग, विश्व, मुरण्य, व्रजन, अमित, द्रवकेतु, जम्भोस्थ, अजस्त्र, शक्रक, सुनेमि तथा द्युतपा—ये बारह सुशर्मा कहे जाते हैं । भविष्यत्काल में अद्भुत नामक देव इन सबका इन्द्र होगा । अग्निपुत्र चन्द्रमा के समान सुन्दर आकृति वाले स्वामी कार्तिकेय, जिनका दूसरा नाम स्कन्द भी है, पुलस्त्यगोत्रीय मेधातिथि, कश्यपगोत्रीय वसु, भृगुवंशोद्भव ज्योतिष्मान्, अङ्गिरानन्दन द्युतिमान्, वसिष्ठगोत्रोत्पन्न वसित, अत्रिकुलभूषण हव्यवाहन तथा पौलववंशीय सुतपा—ये सात रोहित मन्वन्तर के ऋषि कहे गये हैं । उस प्रथम सावर्णि मनु के

पृथुश्रवास्तथा नाको भूरिद्युम्नो बृहद्रथः । प्रथमस्य तु सावर्णेर्नव पुत्राः प्रकीर्तिताः ॥ ६९ ॥
दशमे त्वथ पर्याये धर्मपुत्रस्य वै मनोः । द्वितीयस्य तु सावर्णेर्भाव्यस्यैवान्तरे मनोः ॥ ७० ॥
सुखामना विरुद्धाश्च द्वावेव तु गणौ स्मृतौ । त्विषिवन्तश्च ते सर्वे शतसंख्याश्च ते समाः ॥ ७१ ॥
प्राणानायच्छतः प्रोक्ता ऋषिभिः पुरुषेषु वै । देवास्ते वै भविष्यन्ति धर्मपुत्रस्य वै मनोः ॥ ७२ ॥
तेषामिन्द्रस्तथा विद्वान्भविष्यः शान्तिरुच्यते । हविष्मान्पौलहः श्रीमान्सुकीर्तिश्चापि भार्गवः ॥ ७३ ॥
आपोमूर्तिस्तथाऽऽत्रेयो वसिष्ठश्चापि यः स्मृतः। पौलस्त्यः प्रतिपश्चापि नाभागश्चैव काश्यपः ॥
अभिमन्युश्चाङ्गिरसः स सप्तैते परमर्षयः ॥ ७४ ॥
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरिषेणश्च वीर्यवान् । शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथः ॥ ७५ ॥
भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च दशैते मानवाः स्मृताः । एकादशे तु पर्याये सावर्णे वै तृतीयके ॥ ७६ ॥
निर्माणरतयो देवाः कामजा वै मनोजवाः । गणास्त्वेते त्रयः ख्याता देवतानां महात्मनाम् ॥ ७७ ॥
एकैकं त्रिंशतस्तेषां गणास्तु त्रिदिवौकसाम् । मासस्याहानि त्रिंशत्तु यानि वै कवयो विदुः ॥ ७८ ॥
निर्माणरतयो देवा रात्रयस्तु विहंगमाः । गणास्ते वै त्रयः प्रोक्ता देवतानां भविष्यति ॥ ७९ ॥
मनोजवा मुहूर्तास्तु इति देवाः प्रकीर्तिताः । एते हि ब्रह्मणः पुत्रा भविष्या मनवः स्मृताः ॥ ८० ॥
तेषामिन्द्रो वृषो नाम भविष्यः सुरराट् ततः । तेषां सप्तर्षयश्चापि कीर्त्त्यमानान्निबोधत ॥ ८१ ॥

धृतिकेतु, दीप्तिकेतु, शाप, हस्त, निरामय, पृथुश्रवा, अनीक भूरिद्युम्न और बृहद्रथ—ये नव पुत्र हैं ॥ ६४-६९॥

दशम पर्याय में धर्म के पुत्र द्वितीय मनु का नाम भाव्य होगा । इन भाव्य मनु के अधिकार-काल में सुखमना और विरुद्ध नामक दो देवताओं के गण कहे जाते हैं । ये समस्त देवगण परमकान्तिशाली, संख्या में सौ और समान धर्म वाले हैं । ऋषियों ने इन देवगणों को पुरुषों का प्राणायाम कहा है । धर्मपुत्र द्वितीय मनु के अधिकार-काल में ये देवताओं के पद पर प्रतिष्ठित होंगे । इन सब देवताओं के स्वामी इन्द्र परम विद्वान् शान्ति होंगे—ऐसा कहा जाता है ॥ ७०-७२ ॥

पुलहगोत्रीय हविष्मान्, भृगुगोत्रोत्पन्न परम शोभासम्पन्न सुकीर्ति, अभिशोद्भव आपोमूर्ति, वसिष्ठवंशोत्पन्न आपोमूर्ति, पुलस्त्यकुलभूषण प्रतिप, कश्यपकुलनन्दन नाभाग और गोत्रोत्पन्न अभिमन्यु—ये सात उस मन्वन्तर के परम ऋषि होंगे ॥ ७३-७४ ॥

सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूरिषेण, वीर्यवान्, शतानीक, निरमित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न और सुवर्चा—ये दस भाव्य मनु के पुत्र होंगे । ग्यारहवें पर्याय में तृतीय सावर्णि मनु का जब अधिकार काल होगा, तब परम महिमाशाली देवगणों के तीन विशेष गण विख्यात होंगे ॥ ७५-७६ ॥

उनके नाम होंगे निर्माणरति, कामज और मनोजव । उन स्वर्ग निवासी देवताओं के इन एक-एक गणों में तीस-तीस देवता होंगे । पण्डित लोग मास में जिन तीस दिनों की गणना करते हैं, वे ही निर्माणरति देवगण हैं । रात्रि और विहङ्गमात्मक देवगण कामज और मुहूर्तगण मनोजव देवगण के नाम से विख्यात हैं । भविष्यत्काल में देवताओं के ये तीन गण कहे जाते हैं । उन देवताओं के स्वामी वृष नामक सुरराज होंगे । उन मन्वन्तर के सप्तर्षियों का नाम बता रहा हूँ, सुनिये ॥ ७७-८१ ॥

हविष्मान्काश्यपश्चापि वपुष्मान्यश्च भार्गवः। वारुणिश्चैव चात्रेयो वासिष्ठो भग एव च ॥ ८२ ॥
पुष्टिश्चाङ्गिरसो ज्ञेयः पौलस्त्यो निश्चरस्तथा । पौलहो ह्यग्नितेजाश्च देवा ह्येकादशेऽन्तरे ॥ ८३ ॥
सर्ववेगः सुधर्मा च देवानीकः पुरोवहः । क्षेमधर्मा गृहेषुश्च ह्यादर्शः पौण्ड्रको मतः ॥ ८४ ॥
सावर्णस्य तु ते पुत्राः प्राजापत्यस्य वै मनोः । द्वादशे त्वथ पर्याये रुद्रपुत्रस्य वै मनोः ॥ ८५ ॥
चतुर्थे ऋतुसावर्णे देवास्तस्यान्तरे शृणु । पञ्चैव तु गणाः प्रोक्ता देवतानामनागताः ॥ ८६ ॥
हरिता रोहिताश्चैव देवाः सुमनसस्तथा । सुकर्माणः सुपाराश्च पञ्च देवगणाः स्मृताः ॥ ८७ ॥
ब्रह्मणो मानसा ह्येते एकैको दशको गणः । अरुन्तिजो हरिश्चैव विद्वान्यश्च सहस्रशः ॥ ८८ ॥
पर्वतानुचरश्चैव ह्यपोंऽशुश्च मनोजवः । ऊर्जा स्वाहा स्वधा तारा दशैते हरिताः स्मृताः ॥ ८९ ॥
तपोजानिर्भृतिश्चैव वाचा बन्धुश्च यः स्मृतः । रजश्चैव तु राजश्च स्वर्णपादस्तथैव च ॥ ९० ॥
व्युष्टिर्विधिश्च वै देवो दशैते रोहिताः स्मृताः । उषिताद्यास्तु ये देवास्त्रयस्त्रिंशत्प्रकीर्तिताः ॥ ९१ ॥
देवान्सुमनसो विद्धि सुकर्माणो निबोधत । सुपर्वा वृषभः पृष्टः कृपिद्युम्नौ विपश्चितः ॥ ९२ ॥
विक्रमश्च क्रमश्चैव निभृतः कान्त एव च । एते सुकर्मणो देवाः सुतश्चैषां निबोध ॥ ९३ ॥
वर्योदितस्तथा जिष्टो वर्चस्वी द्युतिमान्हविः । शुभो हविकृतात्प्राप्तिर्व्यापृथो दशमस्तथा ॥ ९४ ॥
सुपारा मानसास्त्वेते देवा वै संप्रकीर्तिताः । तेषामिन्द्रस्तु विज्ञेय ऋतधामा महायशाः ॥ ९५ ॥
कृतिर्वसिष्ठपुत्रस्तु ह्यात्रेयः सुतपास्तथा । तपोमूर्तिश्चाङ्गिरसस्तपस्वी काश्यपस्तथा ॥ ९६ ॥
तपोऽशयानः पौलस्त्यः पुलहश्च तपोरतिः । भार्गवः सप्तमस्त्वेषां विज्ञेयस्तु तपोमतिः ॥ ९७ ॥

कश्यपनन्दन हविष्मान्, भृगुगोत्रीय वपुष्मान्, अत्रिवंशोद्भव वारुणि, वसिष्ठगोत्रोत्पन्न भग, अङ्गिरावंशीय पुष्टि, पुलस्त्य कुलभूषण निश्चर और पुलहगोत्रीय अग्नितेजा—ये सात ग्यारहवें पर्याय के देवगण कहे जाते हैं। सर्ववेग, सुधर्मा, देवानीक, पुरोवह, क्षेमधर्मा, गृहेषु, आदर्श और पौण्डूक—ये ग्यारहवें मन्वन्तर के सावर्ण मनु के पुत्र कहे जाते हैं ॥ ८२-८४ ॥

बारहवें मन्वन्तर में रुद्रपुत्र ऋत सावर्णि का कार्यकाल होगा । उस अवधि में वर्तमान देवगणों के पाँच विशेष गण कहे जाते हैं । उनके हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा और सुपार—ये पाँच नाम कहे जाते हैं । ये सब देवगण ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं । इन एक-एक गणों में दस-दस देवता रहते हैं । उनमें अरुन्तिज, हवि, विद्वान्, पर्वतानुचर, अप, अंशु, मनोजव, ऊर्जा, स्वाहा, स्वधा और तारा—ये दस हरितगण के अन्तर्गत कहे जाते हैं। तप, जानि, धृति, वाचा, बन्धु, रज, राज, स्वर्णपाद, व्युष्टि और विधि—ये दस रोहित गण में हैं ॥८५-९० ॥

तैंतीस की संख्या में उचित आदि जो देवगण कहे जाते हैं, उन्हें ही सुमना नामक देवगणों के अन्तर्गत जानना चाहिये । सुकर्मा नामक गण का विवरण सुनिये । सुपर्वा, वृषण, पृष्ठ, कपिद्युम्न, विपश्चित, विक्रम, क्रम, निभृत और क्रान्त—ये दस सुकर्मा देवगण के अधीन हैं । इनके सुतों को सुनिये ॥ ९०-९३ ॥

(सुपार नामक गण को सुनिये) वर्षोदित (वर्योदित), जिष्ठ, वर्चस्वी, द्युतिमान्, हवि, शुभ, हविष्कृत, प्राप्ति, व्यापृथ और दशम—ये सुपारा नामक गण में रहनेवाले देवताओं के नाम कहे गये हैं । इन देवताओं के इन्द्र महान् यशस्वी ऋतधामा होंगे । वसिष्ठपुत्र कृति, अभिनन्दन सुतपा अङ्गिरागोत्रीय तपोमूर्ति, कश्यपात्मज

एते सप्तर्षयः सिद्धा अन्ये सावर्णिकेऽन्तरे । देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः ॥ ९८ ॥
मित्रवान्मित्रबिन्दुश्च मित्रसेनो ह्यमित्रहा । मित्रबाहुः सुवर्चाश्च द्वादशैते मनोः सुताः ॥ ९९ ॥
त्रयोदशे तु पर्यायै भाव्या रौच्यान्तरे पुनः । त्रय एव गणाः प्रोक्ता देवानां तु स्वयंभुवा ॥ १०० ॥
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रास्ते हि सर्वे महात्मनः । सुत्रामाणः सुधर्माणः सुकर्माणश्च ते त्रयः ॥ १०१ ॥
त्रिदशानां गणाः प्रोक्ता भविष्याः सोमपायिनः। त्रयस्त्रिंशद्देवता याः प्राभविष्यन्त याज्ञिकैः ॥ १०२ ॥
आज्येन पृषदाज्येन ग्रहश्रेष्ठेन चैव हि । देवैर्देवास्त्रयस्त्रिंशत्पृथक्त्वेन निबोधत ॥ १०३ ॥
सुत्रामाणः प्रयाज्यास्तु ह्याद्याज्यास्तु साम्प्रतम् । सुकर्मणोऽनुयाज्यास्तु पृषदाज्याशिनस्तु ये ॥ १०४ ॥
उपयाज्याः सुधर्माण इति देवाः प्रकीर्तिताः । दिवस्पतिर्महासत्त्वस्तेषामिन्द्रो भविष्यति ॥ १०५ ॥
पुलहात्मजपुत्रास्ते विज्ञेयास्तु रुचेः सुताः । अङ्गिराश्चैव धृतिमान् पौलस्त्यः पथ्यवांस्तु सः ॥ १०६ ॥
पौलहस्तत्त्वदर्शी च भार्गवश्च निरुत्सकः । निष्प्रकम्पस्तथात्रेयो निर्मोहः कश्यपस्तथा ॥ १०७ ॥
स्वरूपश्चैव वासिष्ठः सप्तैते तु त्रयोदशे । चित्रसेनो विचित्रश्च तपोधमधृतो भवः ॥ १०८ ॥
अनेकक्षत्रबद्धश्च सुरसो निर्भयः पृथः । रौचस्यैते मनोः पुत्रा ह्यन्तरे तु त्रयोदशे ॥ १०९ ॥
चतुर्दशे तु पर्याये भौमस्याप्यन्तरे मनोः । देवतानां गणाः पञ्च प्रोक्ता ये तु भविष्यति ॥ ११० ॥

तपस्वी, पुलस्त्यगोत्रोद्भव तपोऽशयान, पुलहकुलोत्पन्न तपोरति और भृगुनन्दन तपोमति—ये सात ऋषि उक्त मन्वन्तर के जानने चाहिए ॥ ९४-९७ ॥

इस सावर्णिक मन्वन्तर में देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्रबिन्दु, मित्रसेन, अमित्रहा, मित्रबाहु और सुवर्चा—ये बारह (?) मनु के पुत्र होंगे । तेरहवें रौच्य नामक मन्वन्तर में देवताओं के तीन ही गणों के होने की बात स्वयंभू ब्रह्मा जी ने कही है । वे सभी गण परम महात्मा एवं ब्रह्मा के मानसिक पुत्र कहे गये हैं। उनके नाम हैं—सुत्रामा, सुधर्मा और सुकर्मा । ये ही भावी मन्वन्तर में सोमरस पान करने वाले देवताओं के पदों पर प्रतिष्ठित होंगे । यज्ञकर्त्ताओं के समेत इस मन्वन्तर में देवताओं की कुल संख्या तैंतीस कही गई है ॥ ९८-१०२ ॥

आज्य, पृषदाज्य, ग्रहश्रेष्ठ एवं अन्याय देवगणों को मिलाकर भी वह देवसंख्या तैंतीस ही होती है । इनका अलग-अलग वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये । सम्प्रति प्रयाज और आज्य नाम से प्रसिद्ध सभी देवगण सुत्रामा नामक गण के अधीन हैं । अनुयाज्य और पृषदाज्यायी देवगण सुकर्मा नामक गण के अन्तर्गत हैं ॥ १०३-१०४ ॥

उपयाज्य नामक देवगण सुधर्मा नामक गण के अधीन कहे गये हैं । इन सब देवगणों के स्वामी इन्द्र महाबलवान् दिवस्पति होंगे ॥ १०५ ॥

रुचि के इन पुत्रगणों को पुलह के पौत्र जानना चाहिए । अङ्गिरा पुत्र धृतिमान्, पुलस्त्यगोत्रीय पथ्यवान्, पुलहनन्दन तत्त्वदर्शी, भृगुगोत्रीय निरुत्सक, अत्रिगोत्रोद्भव निष्प्रकम्प, कश्यपात्मज निर्मोह और वसिष्ठवंशोत्पन्न स्वरूप—ये सात तेरहवें मन्वन्तर के ऋषि कहे जाते हैं । चित्रसेन, विचित्र, तपो धर्मधृत, भव, अनेकबद्ध, क्षत्रबद्ध, सुरस, निर्भय और पृथ—ये तेरहवें रौच्य मन्वन्तरगत मनु के पुत्र कहे जाते हैं ॥ १०६-१०९ ॥

भविष्यत्कालीन चौदहवें भौम नामक मन्वन्तर में देवताओं के पाँच गण होंगे । उनके नाम हैं—चाक्षुष,

चाक्षुषाश्च कनिष्ठाश्च पवित्रा भाजरास्तथा । वाचावृद्धाश्च इत्येते पञ्च देवगणाः स्मृताः ॥ १११ ॥
सप्तैव तांस्तान् भागांश्च विद्धि चाक्षुषसंज्ञकान् । बृहदाद्यानि सामानि कनिष्ठान् सप्त तान्विदुः ॥
सप्त लोकाः परित्रास्ते भाजिराः सप्त सिन्धवः ॥ ११२ ॥
वाचावृद्धानृषीन् विद्धि मनोः स्वायंभुवस्य वै । सर्वे मन्वन्तरेन्द्राश्च विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ॥ ११३ ॥
तेजसा तपसा बुद्ध्या बलश्रुतपराक्रमैः । त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥
सर्वशः स्वैर्गुणैस्तानि इन्द्रास्तेऽभिभवन्ति वै ॥ ११४ ॥
भूतापवादिनो हृष्टा मध्यस्था भूतवादिनः । भूतानुवादिनः सक्तास्त्रयो वेदाः प्रवादिनाम् ॥ ११५ ॥
अग्नीध्रः काश्यपश्चैव पौलस्त्यो मागधश्च यः । भार्गवो ह्यग्निबाहुश्च शुचिराङ्गिरसस्तथा ॥
ओजस्वी सुबलश्चैव भौत्यस्तैते मनोः सुताः ॥ ११६ ॥
सवर्णा मनवो ह्येते चत्वारो ब्रह्मणः सुताः । एको वैवस्वतश्चैव सावर्णो मनुरुच्यते ॥ ११७ ॥
रौच्यो भौतश्च यौ तौ तु मनोः पौलहभार्गवौ । भौत्यस्यैवाधिपत्ये तु पूर्णः कल्पस्तु पूर्यते ॥ ११८ ॥

सूत उवाच

निःशेषेषु च सर्वेषु तदा मन्वन्तरेष्विह । अन्तेऽनेकयुगे तस्मिन्क्षीणे संहार उच्यते ॥ ११९ ॥

कनिष्ठ, पवित्र, भाजर और वाचावृद्ध । परवर्ती मनु के सातों पुत्रों को ही चाक्षुष देवगण कहा गया है। पण्डित जन बृहदादि साम समूह को ही सात कनिष्ठ देवगण बताते हैं । सातों लोक पवित्र (परित्रस्त) एवं सातों समुद्र भाजर (भाजिर) नाम से कहे जाते हैं ॥ ११०-११२ ॥

सातों ऋषियों को वाचावृद्ध देवता जानना चाहिए । स्वायंभुव मनु से लेकर सभी मनुओं के अधिकार-काल में जितने इन्द्र होते हैं, उन सबको एक ही प्रकार के स्वभाव, मर्यादा एवं प्रभाव सम्पन्न जानना चाहिए । अपने तेज, तपस्या, बुद्धि, शास्त्रीय ज्ञान, बल, पराक्रम एवं गुणों से वे सभी इन्द्रगण इस त्रैलोक्य में जितने भी स्थावर एवं जङ्गम जीव-निकाय हैं, उन सब का अतिक्रमण करते हैं, अर्थात् उनके समान कोई अन्य नहीं होता । केवल ब्रह्म सत्य है ॥ ११३-११४ ॥

समस्त स्थावर-जंगमात्मक जगत् मिथ्या है, इन भूतों की कोई सत्ता नहीं है—ऐसे मतवाले भूतापवादी हैं और वे ही सच्चे अर्थों में प्रसन्नचित्त रहते हैं । ये जीव जगत् सब नित्य एवं अनित्य दोनों हैं—ऐसा समझने वाले भूतवादी हैं, उन्हें मध्यकोटि का समझना चाहिए । संसार एवं उसकी वस्तुएँ सभी नित्य एवं अविनश्वर हैं ऐसा जानकर जो उसी में अनुरक्त रहते हैं, वे भूतानुवादी हैं । उत्कृष्ट पण्डितों द्वारा जगत् की ये तीन व्याख्याएँ की जाती हैं । आग्नीध्र, काश्यप, पौलस्त्य, मागध, भार्गव, अग्निबाहु, आंगिरस, शुचि और परम तेजस्वी सुबल—ये भौत्यमनु के अधिकार-काल में उत्पन्न होने वाले उनके पुत्र हैं ॥ ११५-११६ ॥

उपर्युक्त ये चार अनुगम, जो सावर्ण मनु के नाम से विख्यात हैं, वे ब्रह्मादि चारों देवताओं के पुत्र हैं । विवस्वान् सूर्य के पुत्र एक वैवस्वत मनु भी सावर्ण मनु कहे जाते हैं । रौच्य और भौत्य ये दो पुलह और भार्गवगोत्रीय हैं । इन्हीं भौत्य मनु के अधिकार काल में कल्प पूर्ण हो जाता है ॥ ११७-११८ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द! सभी मन्वन्तर जब समाप्त हो जाते हैं और उनमें अनेक युग व्यतीत

सप्तैते भार्गवा देवा अन्ते मन्वन्तरे तदा । भुक्त्वा त्रैलोक्यमध्यस्था युगाख्यां ह्येकसप्ततिम् ॥ १२० ॥
पितृभिर्मनुभिश्चैव सार्धं सप्तर्षिभिस्तु ये । यज्वानश्चैव तेऽप्यन्ये तद्भक्ताश्चैव तैः सह ॥ १२१ ॥
महर्लोकं गमिष्यन्ति त्यक्त्वा त्रैलोक्यमीश्वराः । ततस्तेषु गतेषूर्ध्वं क्षीणे मन्वन्तरे तदा ॥
अनाधारमिदं सर्वं त्रैलोक्यं वै भविष्यति ॥ १२२ ॥
ततः स्थानानि शून्यानि स्थानिनां तानि वै द्विजाः । प्रभ्रश्यन्ति विमुक्तानि ताराऋक्षग्रहैस्तथा ॥ १२३ ॥
ततस्तेषु व्यतीतेषु त्रैलोक्यस्येश्वरेष्विह । सेन्द्राष्टेषु महर्लोकं यस्मिंस्ते कल्पवासिनः ॥ १२४ ॥
जिताद्याश्च गणा ह्यत्र चाक्षुषान्ताश्चतुर्दश । मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवास्ते वै महौजसः ॥ १२५ ॥
ततस्तेषु गतेषूर्ध्वं सायोज्यं कल्पवासिनाम् । समेत्य देवास्ते सर्वे प्राप्ते संकलने तदा ॥ १२६ ॥
महर्लोकं परित्यज्य गणास्ते वै चतुर्दश । सशरीराश्च श्रूयन्ते जनलोकं सहानुगाः ॥ १२७ ॥
एवं देवेष्वतीतेषु महर्लोकाज्जनं प्रति । भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरान्तेषु चाप्युत ॥ १२८ ॥
शून्येषु लोकस्थानेषु महान्तेषु भूरादिषु । देवेषु च गतेषूर्द्ध्वं सायोज्यं कल्पवासिनाम् ॥ १२९ ॥
संहृत्य तांस्ततो ब्रह्मा देवर्षिपितृदानवान् । संस्थापयति वै सर्गं महद्वृष्ट्या युगक्षये ॥ १३० ॥
तत्र युगसहस्रान्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः । रात्रिं युगसहस्रान्तामहोरात्रविदो जनाः ॥ १३१ ॥

हो जाते हैं, तब सृष्टि का संहार होता है ऐसा कहा जाता है । अन्तिम मन्वन्तर में ये सात भृगुवंशोत्पन्न देवगण इकहत्तर युगों तक समस्त त्रैलोक्य में विराजमान रहकर समस्त भोगों का उपभोग करेंगे और अन्त में पितरों, मुनियों, सप्तर्षियों, अन्यान्य यज्ञपरायण यजमानों एवं भक्तों के साथ तीनों लोकों का परित्याग करके वे सर्वशक्तिसम्पन्न देवगण महर्लोक को चले जायेंगे । इस प्रकार जब वे सबकुछ छोड़कर मन्वन्तर की समाप्ति हो जाने पर चले जायेंगे तब यह त्रैलोक्य निराधार हो जायगा ॥ ११९-१२२ ॥

हे द्विजवृन्द ! उस समय सभी स्थान शून्य हो जायगा । स्थानी (अभिमानी) देवगण भी अपने-अपने स्थान छोड़ देंगे । तारा, नक्षत्र, ग्रहादि निरवलम्ब होकर विध्वंसत्व को प्राप्त हो जायेंगे ॥ १२३ ॥

तब त्रैलोक्य के समस्त सामर्थ्यसम्पन्न शक्तियों के समाप्त हो जाने पर इन्द्रादि प्रमुख देवगण, चाक्षुषादि समस्त चौदह मनुगण एवं अन्यान्य महान् तेजस्वी देवगण—ये सभी महर्लोक छोडकर वहाँ कल्पपर्यन्त स्थिर रूप से निवास करने वाले देवताओं की समानता प्राप्त करेंगे । इस प्रकार महर्लोक में कल्पवासी अन्यान्य देवताओं के साथ मिलने पर जब प्रलय अधिक बढ़ जायगा, तब वे चौदहों मनुगण अपने सहगामी अनुचरादि के साथ सशरीर जनलोक चले जायँगे—ऐसा सुना जाता है ॥ १२४-१२७ ॥

देवताओं के महर्लोक से जनलोक में चले जाने पर जब केवल स्थावर जीवनिकाय शेष रह जाते हैं तव मह, भू आदि सभी लोकों के स्थान शून्य हो जाते हैं । देवगण कल्पपर्यन्त निवास करने वाले अन्यान्य देवताओं के समान स्थान प्राप्तकर ऊपर चले जाते हैं । उस समय ब्रह्मा देवताओं, ऋषियों, पितरों, दानवों इत्यादि सभी का संहारकर युगक्षय पर महती वृष्टि के द्वारा सृष्टि की पुनः स्थापना करते हैं ॥ १२८-१३० ॥

एक सहस्र चतुर्युग का ब्रह्मा का एक दिन बताया जाता है और इसी प्रकार एक सहस्र चतुर्युग की उनकी रात्रि कहते हैं । नैमित्तिक, प्राकृतिक एवं आत्यन्तिक जीवों के ये तीन प्रकार के अर्थानुसार प्रलय बताये जाते ह ।

नैमित्तिकः प्राकृतिको यश्चैवात्यन्तिकोऽर्थतः । त्रिविधः सर्वभूतानामित्येष प्रतिसंचरः ॥ १३२ ॥
ब्राह्मो नैमित्तिकस्तस्य कल्पदाहः प्रसंयमः । प्रतिसर्गे तु भूतानां प्राकृतः करणक्षयः ॥ १३३ ॥
ज्ञानाच्चात्यन्तिकः प्रोक्तः कारणानामसंभवः । ततः संहृत्य तान्ब्रह्मा देवांस्त्रैलोक्यवासिनः ॥ १३४ ॥
अहरन्ते प्रकुरुते सर्गस्य प्रलयं पुनः । सुषुप्सुर्भगवान् ब्रह्मा प्रजाः संहरते तदा ॥ १३५ ॥
ततो युगसहस्रान्ते संप्राप्ते च युगक्षये । तत्रात्मस्थाः प्रजाः कर्तु प्रपेदे स प्रजापतिः ॥ १३६ ॥
तदा भवत्यनावृष्टिस्तदा सा शतवार्षिकी । तथा यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीतले ॥ १३७ ॥
तान्येवात्र प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च । सप्तरश्मिरथो भूत्वा ह्युदतिष्ठद्विभावसुः ॥ १३८ ॥
असह्यरश्मिर्भगवान् पिबन्नम्भो गभस्तिभिः । हरिता रश्मयस्तस्य दीप्यमानास्तु सप्तभिः ॥ १३९ ॥
भूय एव विवर्तन्ते व्याप्नुवन्तो वनं शनैः । भौमं काष्ठं धनं तेजो भृशमद्भिस्तु दीप्यते ॥ १४० ॥
तस्मादुदकं सूर्यस्य तपतोऽति हि कथ्यते । नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या परिविष्यते ॥ १४१ ॥
नावृष्ट्या परिचिन्वन्ति वारिणा दीप्यते रविः । तस्मादपः पिबन् यो वै दीप्यते रविरम्बरे ॥ १४२ ॥
तस्य ते रश्मयः सप्त पिबन्त्यम्भो महार्णवात् । तेनाहारेण संदीप्ताः सूर्याः सप्त भवन्त्युत ॥ १४३ ॥
ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्यभूताश्चतुर्दिशम् । चतुर्लोकमिमं सर्वं दहन्ति शिखिनस्तदा ॥ १४४ ॥

इनमें ब्रह्मा द्वारा किया गया कल्पदाह प्रसंयम और नैमित्तिक है । जिन प्रलय में भूतों के कारणों का क्षय हो जाता है उसको प्राकृतिक प्रलय कहते हैं ॥ १३१-१३३ ॥

अच्छी तरह जान-बूझकर किये गये उस महान् प्रलय को, जिसके बाद कारणीभूत उपादानों का अस्तित्व सर्वथा नष्ट हो जाता है तथा वे असम्भव हो जाते हैं, उसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं । त्रैलोक्यवासी उन देवताओं का संहार करने के उपरान्त अपने एक दिन के बाद पुनः सृष्टि का प्रलय करते हैं । उस समय शयन करने की इच्छा से भगवान् ब्रह्मा प्रजाओं का संहार करते हैं । इस प्रकार एक सहस्र युग के व्यतीत हो जाने के उपरान्त युगक्षय के प्राप्त होने पर प्रजापति आत्मस्थ समस्त प्रजाओं का विस्तार करने में प्रवृत्त होते हैं ॥१३४-१३६॥

उस समय सौ वर्ष व्यापी घोर अनावृष्टि होती है, जिससे पृथ्वीतल में जो अल्पसार प्राणी शेष रह जाते हैं, वे भी विनष्ट होकर पृथ्वी रूप में परिणत हो जाते हैं । विभावसु सूर्य सात विशिष्ट रश्मियों से समन्वित होकर उदित होते हैं, और अपनी तीक्ष्ण रश्मियों से जलराशि का शोषण करते हैं । उस समय उनकी रश्मियों का तेज असह्य हो जाता है । वे रश्मियाँ हरित वर्ण की एवं सात भाग होकर परम तेजोमयी होती है ॥ १३७-१३९ ॥

वे शनैः-शनैः पृथ्वीस्थ समस्त जलराशि में व्याप्त होकर अधिकाधिक विवर्तित हो जाती हैं । भौम, काष्ठ, वन, तेज प्रभृति में पुनः पुनः परिव्याप्त होकर वे रश्मियाँ जल से बहुत अधिक प्रदीप्त हो उठती हैं । ज्वलनात्मक सूर्य के अधिक ताप का कारण इसीलिए जल कहा जाता है । अनावृष्टि से सूर्य तप्त नहीं होते और न अनावृष्टि से उनके मण्डल सन्निवेश आदि में ही कोई विशेष दीप्ति होती है । यही नहीं बल्कि अनावृष्टि से उनकी रश्मियाँ पृथ्वीस्थ पदार्थों के रसादि का संचयन नहीं कर पाती हैं । केवल जल से रवि उद्दीप्त होते हैं । अपनी किरणों द्वारा जलराशि का पान करते हुए वे आकाशमण्डल में प्रकाशित होते हैं । उनकी वे सातों किरणें समुद्र से जल का पान करती हैं । उस जल रूप आहार से संदीप्त होकर सूर्य सात हो जाते हैं ॥ १४०-१४३ ॥

प्राप्नुवन्ति च भाभिस्तु ह्यूर्ध्वं चाधश्च रश्मिभिः । दीप्यन्ते भास्कराः सप्त युगान्ताग्निः प्रतापिनः ॥ १४५ ॥
ते वारिणा च संदीप्ता बहुसाहस्त्ररश्मयः । खं समावृत्य तिष्ठन्ति निर्दहन्तो वसुंधराम् ॥ १४६ ॥
ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुंधरा । साद्रिनद्यर्णवा पृथ्वी विस्नेहा समपद्यत ॥ १४७ ॥
दीप्ताभिः संतताभिश्च चित्राभिश्च समन्ततः । अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्च संरुद्धं सूर्यरश्मिभिः ॥ १४८ ॥
सूर्याग्नीनां प्रवृद्धानां संसृष्टानां परस्परम् । एकत्वमुपयातानामेकज्वालं भवत्युत ॥ १४९ ॥
सर्वलोकप्रणाशं च सोऽग्निर्भूत्वा तु मण्डली । चतुर्लोकमिदं सर्वं निर्दहत्याशु तेजसा ॥ १५० ॥
ततः प्रलीयते सर्वं जङ्गमं स्थावरं तदा । निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिः कूर्मपृष्ठसमा भवेत् ॥ १५१ ॥
अम्बरीषमिवाभाति सर्वं मारीषितं जगत् । सर्वमेव तदाऽर्चिर्भिः पूर्णं जज्वाल्यते नभः ॥ १५२ ॥
पाताले यानि भूतानि महोदधिगतानि च । ततस्तानि प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥ १५३ ॥
द्वीपाश्च पर्वताश्चैव वर्षाण्यथ महोदधिः । सर्वं तद्भस्मसाच्चक्रे सर्वात्मा पावकस्तु सः ॥ १५४ ॥
समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्वतः । पिबन्नपः समिद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्रितो ज्वलन् ॥ १५५ ॥
ततः संवर्तकः शैलानतिक्रम्य महांस्तथा । लोकान्संहरते दीप्तो घोरः संवर्तकोऽनलः ॥ १५६ ॥
ततः स पृथिवीं भित्त्वा रसातलमशोषयत् । निर्दह्य तांस्तु पातालान्नागलोकपथादहत् ॥ १५७ ॥

इस प्रकार उनकी ये सातों रश्मियाँ सूर्य रूप हो कर चारों दिशाओं में व्याप्त होकर चारों लोकों को अग्नि की भाँति दग्ध कर देती हैं । नीचे-ऊपर सर्वत्र अपनी उन प्रखर तेजस्विनी किरणों द्वारा युगान्तकालीन अग्नि के समान परम उद्दीप्त वे सातों भास्कर अत्यन्त तप्त हो उठते हैं ॥ १४४-१४५ ॥

जलराशि के पान करने के कारण उत्तरोत्तर अधिक उद्दीप्त होनेवाली अनेक सहस्त्र रश्मियों से समन्वित वे सूर्यवृन्द समस्त वसुन्धरा को दग्ध करते हुए सारे आकाशमण्डल में प्रकाशित होते हैं । उन सूर्यो के परम प्रखर ताप से दग्ध होती हुई वसुन्धरा पर्वतों, नदियों एवं समुद्रों समेत सूखी हो जायगी । चारों ओर से विचित्र रंग-बिरंगी परम तेजस्विनी उन सूर्य रश्मियों से समस्त पृथ्वीमण्डल, ऊपर-नीचे सर्वत्र व्याप्त हो जाता है ॥ १४६-१४८ ॥

सूर्य के प्रताप से उत्पन्न होनेवाली अग्नियाँ इस प्रकार जब बहुत अधिक वृद्धि को प्राप्त हो जाती हैं, तब परस्पर मिलकर एक ज्वाला के रूप में परिणत हो जाती हैं । एक मण्डलाकार स्वरूप धारणकर वह अग्नि चारों लोकों को अपने परम तेज से शीघ्र ही भस्म कर देती है, उस समय सभी लोकों का विनाश हो जाता है, सभी स्थावर-जंगम जीवनिकाय विलीन हो जाते हैं । पृथ्वी वृक्षों एवं तृणों से विहीन होकर कच्छप के पृष्ठ की भाँति हो जाती है ॥ १४९-१५१ ॥

चारों ओर से इस प्रकार वृक्षादि रहित जगत् एक झाड़ झंकाड की तरह दिखायी पड़ता है, सारा आकाशमण्डल ज्वालाओं से देदीप्यमान हो जाता है, पाताल में जो जीवसमूह रहते हैं, महान् समुद्रों में जिन जन्तुओं का निवास रहता है, वे भी विलीन होकर पृथ्वी रूप में परिणत हो जाते हैं ॥ १५२-१५३ ॥

सभी जीवों में व्याप्त रहनेवाले अग्निदेव सातों द्वीपों, पर्वतों, समस्त वर्षों (देशों) एवं महासमुद्रों तक को भस्म कर देते हैं । सर्वत्र व्याप्त अग्नि उस समय जब समुद्रों, नदियों, पातालस्थ प्रदेशों से जलराशि का पान करते हुए परम जाज्वल्यमान होकर पृथ्वी का आश्रय लेती है, तब महान् संवर्तक नामक अग्नि पर्वतों का अतिक्रमण

अधस्तात्पृथिवीं दग्ध्वा ह्युर्ध्वं स दहते दिवम् । योजनानां सहस्राणि ह्ययुतान्यर्बुदानि च ॥ १५८ ॥
उदतिष्ठञ्छिखास्तस्य बह्व्यः संवर्तकस्य तु । गन्धर्वांश्च पिशाचांश्च समहोरगराक्षसान् ॥
तदा दहति संदीप्तो गोलकं चैव सर्वशः ॥ १५९ ॥
भूर्लोकं तु भुवर्लोकं स्वर्लोकं च महस्तथा । घोरं दहति कालाग्निरेवं लोकचतुष्टयम् ॥ १६० ॥
व्याप्तेषु तेषु लोकेषु तिर्यगूर्ध्वमथाग्निना । तत्तेजः समनुप्राप्तं कृत्स्नं जगदिदं शनैः ॥
अयोगुडनिभं सर्वं तदा ह्येवं प्रकाशते ॥ १६१ ॥
ततो गजकुलाकारास्तडिद्भिः समलंकृताः । उत्तिष्ठन्ति तदा घोरा व्योम्नि संवर्तका घनाः ॥ १६२ ॥
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसन्निभाः । केचिद्वैदूर्यसंकाशा इन्द्रनीलनिभाः परे ॥ १६३ ॥
शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभास्तथा । धूम्रवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः ॥ १६४ ॥
केचिद्रासभवर्णाभा लाक्षारक्तनिभास्तथा । मनःशिलाभास्त्वपरे कपोताभास्तथाऽम्बुदाः ॥ १६५ ॥
इन्द्रगोपनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ति घना दिवि । केचित्पुरधराकाराः केचिद्गजकुलोपमाः ॥ १६६ ॥
केचित्पर्वतसंकाशाः केचित्स्थलनिभा घनाः। कुण्डागारनिभाः केचित्केचिन्मीनकुलोपमाः॥ १६७ ॥
बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः । तदा जलधराः सर्वे पूरयन्ति नभःस्थलम् ॥ १६८ ॥

कर घोर रूप हो समस्त लोकों का विनाश करने लगती है । पृथ्वी का भेदन कर वह रसातल को शुष्क कर देती है, पाताल के सभी प्रदेशों को भस्मकर वह नागलोक को जला देती है ॥ १५४-१५७ ॥

निम्न भूमण्डल का दहन करने के उपरान्त ऊपर आकाशस्थ प्रदेशों एवं पिण्डों का दहन करती है, उस समय महान् संवर्तक की ज्वालाएँ सहस्रों, लाखों, अरबों योजनों तक ऊपर को उठती हैं । गन्धर्वों, पिशाच, सर्पों एवं राक्षसों के आश्रयों को सर्वांशतः भस्म करने के उपरान्त गोलोक को भी वह भस्म कर देती है ॥१५८-१५९॥

इस प्रकार कालाग्नि घोर स्वरूप धारणकर भू, भुवः, स्वः एवं महः—इन चारों लोकों को सर्वांशतः भस्मावशेष कर देती है । नीचे-ऊपर सर्वत्र अग्नि से परिव्याप्त होकर धीरे-धीरे यह समस्त जगन्मण्डल तेजोमय होकर एक तपाये हुए लोहे के पिण्ड की भाँति प्रकाशमान होता है । उसके बाद हाथियों के समूहों के समान आकारवाले, विद्युतों से सुप्रकाशित संवर्तक नामक मेघ घोररूप धारणकर आकाश में उठ पड़ते हैं ॥१६०-१६२॥

उनमें कुछ नीचे कमल के समान श्यामल वर्ण के, कुछ कुमुदिनी के समान श्वेत वर्ण के, कुछ वैदर्भ मणि के समान, कुछ इन्द्रनील के समान, कुछ कुन्द और शंख के समान अतिशय श्वेत, कुछ काजल के समान काले, कुछ धुएँ के समान अतिशय काले, कुछ पीले, कुछ गधे के समान धूसरित रंगवाले, कुछ लाल के समान रक्तवर्णवाले, कुछ मैनशिल के समान और कुछ कबूतरों के समान वर्णवाले रहते हैं ॥ १६३-१६५ ॥

यही नहीं, कुछ इन्द्रगोप (एक बरसाती कीड़ा जो लाल रंग का होता है) के समान अतिशय रक्त वर्ण के मेघ आकाशमण्डल में दिखायी पड़ते हैं । कुछ ग्रामों एवं पृथ्वीखण्ड के समान भीषण, कुछ हाथियों की पंक्ति के समान विशाल, कुछ पर्वतों के समान विशाल, कुछ पर्वतों के समान भीषण, कुछ चट्टानों की तरह विस्तृत मेघ भी होते हैं, कुछ की आकृति कुण्डों की तरह गहरी दिखायी पड़ती है, कुछ मछलियों के समूहों से व्याप्त

ततस्ते जलदा घोरा नवीना भास्करात्मिकाः । सप्तधा संवृतात्मानस्तमग्निं शमयन्त्युत ॥ १६९ ॥
ततस्ते जलदा वर्षं मुञ्चन्ति च महोद्यमम् । सुघोरमशिवं सर्वं नाशयन्ति च पावकम् ॥ १७० ॥
प्रवृष्टैश्च तथाऽत्यर्थं वारिभिः पूर्यते जगत् । अद्भिस्तेऽभिभूतं च तदाऽग्निः प्रविशत्यपः ॥ १७१ ॥
नष्टे चाग्नौ वर्षशते पयोदाः पाकसंभवाः । प्लावयन्ति जगत्सर्वं बृहज्जालपरिस्रवैः ॥ १७२ ॥
धाराभिः पूरयन्तीमं चोद्यमाना स्वयंभुवा । अन्ये तु सलिलौघैस्तु वेलामभिभवन्त्यपि ॥
साद्रिर्द्वीपान्तरं पृथ्वी अद्भिः संछाद्यते तदा ॥ १७३ ॥
तस्य वृष्ट्या च तोयं तत्सर्वं हि परिपण्डितम् । प्रविशत्युदधौ विप्राः पीतं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ १७४ ॥
आदित्यरश्मिभिः पीतं जलमभ्रेषु तिष्ठति । पुनः पतति तद्भूमौ तेन पूर्यन्ति चार्णवाः ॥ १७५ ॥
ततः समुद्राः स्वां वेलां परिक्रामन्ति सर्वशः। पर्वताश्च विशीर्यन्ते मही चाप्सु निमज्जति ॥ १७६ ॥
ततस्तु सहसोद्भ्रान्तः पयोदांस्तान्नभस्तले । संवेष्टयति घोरात्मा दिवि वायुः समन्ततः ॥ १७७ ॥
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे । पूर्णे युगसहस्रे वै निःशेषः कल्प उच्यते ॥ १७८ ॥
अथाम्भसा वृते लोके प्राहुरेकार्णवं बुधाः । अथ भूमितलं खं च वायुश्चैकार्णवे तदा ॥
नष्टे भावेऽवलीनं तत्प्राज्ञायत न किंचन ॥ १७९ ॥

दिखायी पड़ते हैं । इस प्रकार अनेक रूप धारणकर कठोर कर्कश गर्जना करने वाले वे मेघ सारे आकाशमण्डल को व्याप्त कर लेते हैं । सूर्यात्मक वे मेघगण घोर गर्जना करते हुए सात भागों में विभक्त होकर उस अग्नि को शान्त करने लगते हैं । बड़े वेग से जलराशि बरसाते हुए वे मेघगण उस परम घोर अमङ्गलकारी अग्नि को सर्वत्र नष्ट कर देते हैं ॥ १६६-१७० ॥

उस अनन्त जलराशि से समस्त जगन्मण्डल पूर्ण हो जाता है, अग्नि का सारा तेज जल से शान्त हो जाता है, वह जल में प्रविष्ट होकर विलीन हो जाती है । अग्नि के नष्ट हो जाने के उपरान्त समस्त ज्वलनात्मक कार्यों के परिणाम से उत्पन्न पर्जन्यगण सौ वर्षों तक अपनी अकूत जलराशि की वृष्टि द्वारा समस्त जगन्मण्डल को प्लावित करते हैं । स्वयंभू की प्रेरणा से प्रेरित होकर वे अपनी धाराओं से जगत् को पूर्ण कर देते हैं । कुछ पयोद अपनी जलराशि से मर्यादा को भी अतिक्रान्त कर देते हैं । उस समय पृथ्वी के समस्त द्वीप, पर्वत एवं प्रदेश जल से आच्छादित हो जाते हैं ॥ १७१-१७३ ॥

सूतजी कहते हैं—हे विप्रवृन्द ! पर्जन्यों से वृष्टि द्वारा बरसाया गया जल-समूह, जितना भी होता है, जाकर समुद्र में प्रवेश करता है, वहाँ सूर्य की किरणों से पिया जाता है, सूर्य की किरणों से पिये जाने के बाद वह जल बादलों में स्थित होता है । फिर वही पृथ्वी पर गिरता है, और फिर से सारे समुद्र भर जाते हैं और भरकर अपनी मर्यादा को भी लाँघ जाते हैं । जिसके कारण पर्वत-समूह छिन्न-भिन्न होकर गिर पड़ते हैं और पृथ्वी पानी में छिप जाती है ॥ १७४-१७६ ॥

अस्तु, इस प्रकार जब मेघगण आकाशमण्डल में स्थित होकर वृष्टि से समस्त जगन्मण्डल को व्याप्त कर देते हैं, तब सहसा महान् वायु घोर स्वरूप धारणकर उन बादलों को चारों ओर से आकाश में घेर लेता है । उस महान् भीषण, एक समुद्र के रूप में परिणत जगत् के सारे स्थावर जंगमात्मक जीवनिकाय नष्ट हो जाते हैं,

पार्थिवास्त्वथ सामुद्रा आपो हैमाश्च सर्वशः। प्रसरन्त्यो व्रजन्त्येकं सलिलाख्यां भजन्त्युत ॥ १८० ॥
आगतागतिकं चैव तदा तत्सलिलं स्मृतम् । प्रच्छाद्य तिष्ठति महीमर्णवाख्यं च तज्जलम् ॥ १८१ ॥
आभान्ति यस्मात्ता भाभिर्भाशब्दव्याप्तिदीप्तिषु । भस्म सर्वमनुप्राप्य तस्मादम्भो निरुच्यते ॥ १८२ ॥
नानात्वे चैव शीघ्रे च धातुर्वै अर उच्यते । एकार्णवे तदा यो वै न शीघ्रास्तेन ता नराः ॥ १८३ ॥
तस्मिन्युगसहस्रान्ते दिवसे ब्रह्मणो गते । तावन्तं कालमेवं तु भवत्येकार्णवं जगत् ॥
तदा तु सर्वव्यापारा निवर्तन्ते प्रजापतेः ॥ १८४ ॥
एवमेकार्णवे तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे । तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ १८५ ॥
सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात्सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रवाक् ।
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीपथी यः पुरुषो निरुच्यते ॥ १८६ ॥
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता ह्यपूर्व एकः प्रथमस्तुराषाट् ।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महान् वै संपद्यते वै तमसः परस्तात् ॥ १८७ ॥
चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः सलिलप्लुते । सुषुप्सुरप्रकाशां स्वां रात्रिं तु कुरुते प्रभुः ॥ १८८ ॥

और ऐसी अवस्था में एक सहस्र युग व्यतीत हो जाता है, इसी अवस्था को कल्प कहते हैं ॥ १७७-१७८ ॥

पण्डित लोग उस स्थिति को, जबकि समस्त लोक जलराशि से घिर जाते हैं, एकार्णव (एक समुद्र) कहते हैं। उस एकार्णव में पृथ्वी, आकाश अथवा वायु का कोई विशेष स्थान वा सन्निवेश नहीं मालूम पड़ता। सब पृथक् अस्तित्व मिट जाता है। सभी एक-दूसरे में विलीन हो जाते हैं। कौन क्या है—यह कुछ नहीं मालूम पड़ता। पार्थिव (पृथ्वी सम्बन्धी), सामुद्र (समुद्रीय) एवं हैम (सुवर्ण सम्बन्धी, तैजस) जलराशि चारों ओर प्रवाहित होती हुई उस समय एकमात्र सलिल (जल) की पदवी धारण करती है, अर्थात् उनकी अलग सत्ता नहीं रह जाती ॥ १७९-१८० ॥

समस्त जलराशि केवल अनवरत इधर-उधर आती-जाती रहती है—ऐसा कहा जाता है, समुद्र के रूप में परिणत वह जलराशि समस्त महीमण्डल को आच्छादित कर लेती है ॥ १८१ ॥

मा शब्द प्रकाश और व्याप्ति करने के अर्थ में व्यवहृत होता है। इस समस्त जगन्मण्डल के भस्म हो जाने के बाद अपनी व्याप्ति एवं प्रभा से सब ओर प्रकाशित होता है, अत: उसका नाम अम्भ (जल) कहा जाता है, यही इस नाम के पड़ने का कारण है। अर धातु अनेकत्व एवं शीघ्रत्व को प्रकट करता है, एकार्णव होने पर यतः वह जलराशि शीघ्रता से नहीं चलती, अतः उसका नाम नार कहा जाता है ॥ १८२-१८३ ॥

एक सहस्र युग के समाप्त होने पर ब्रह्मा का एक दिन व्यतीत होता है, उतने ही समय तक समस्त जगत् एकार्णव के रूप में परिणत रहता है, उस अवधि में प्रजापति ब्रह्मा के समस्त व्यापार निवृत्त हो जाते हैं ॥१८४॥

इस प्रकार महान् एकार्णव में जब समस्त स्थावर-जंगमात्मक जगत् नष्ट हो जाता है, तब सहस्रनेत्र, सहस्रचरण, सहस्रशीर्षा, सुन्दर मनवाले, सहस्रचक्षु, सहस्रमुख, सहस्रवचन बोलनेवाले, सहस्रबाहु, त्रयी (वेदत्रयी) पथानुगामी, आदित्य के समान प्रखर तेजस्वी स्वरूपवाले, समस्त भुवनरक्षक, अपूर्व, अद्वितीय, अपने अनुपम तेज से अभिभूत करनेवाले, महान् अन्धकार रूप अज्ञान से परे, हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा स्थित रहते हैं।

चतुर्विधा यदा शेते प्रजाः सर्वाण्डमण्डिताः । पश्यन्ते तं महात्मानं कालं सप्त महर्षयः ॥ १८९ ॥
जनलोकविवर्तन्तस्तपसा लब्धचक्षुषः । भृग्वादयो महात्मानः पूर्वे व्याख्यातलक्षणाः ॥ १९० ॥
सत्यादीन्सप्तलोकान्वै ते हि पश्यन्ति चक्षुषा । ब्रह्माणं ते तु पश्यन्ति महाब्राह्मीषु रात्रिषु ॥ १९१ ॥
सप्तर्षयः प्रपश्यन्ति सुप्तकालं स्वरात्रिषु । कल्पानां परमेष्ठित्वात्तस्मादाद्यः स पठ्यते ॥ १९२ ॥
स यष्टा सर्वभूतानां कल्यादिषु पुनः पुनः । एवमावेशयित्वा तु स्वात्मन्येव प्रजापतिः ॥ १९३ ॥
अथाऽत्मनि महातेजाः सर्वमादाय सर्वकृत् । ततस्ते वसते रात्रिं तमस्येकार्णवे जले ॥ १९४ ॥
ततो रात्रिक्षये प्राप्ते प्रतिबुद्धः प्रजापतिः । मनः सिसृक्षया युक्तं सर्गाय निदधे पुनः ॥ १९५ ॥
एवं सलोके निर्वृत्ते उपशान्ते प्रजापतौ । ब्रह्मनैमित्तिके तस्मिन्कल्पिते वै प्रसंयमे ॥ १९६ ॥
देहैर्वियोगः सत्त्वानां तस्मिन्वै कृत्स्नशः स्मृतः । ततो दग्धेषु भूतेषु सर्वेष्वादित्यरश्मिभिः ॥
देवर्षिमनुवर्येषु तस्मिन्संकलने तदा ॥ १९७ ॥
गन्धर्वादीनि सत्त्वानि पिशाचान्तानि सर्वशः । कल्पादावप्रतप्तानि जनमेवाश्रयन्ति वै ॥ १९८ ॥
तिर्यग्योनीनि सत्त्वानि नारकेयानि यान्यपि । तदा तान्यपि दग्धानि धूतपापानि सर्वशः ॥
जने तान्युपपद्यन्ते यावत्संप्लवते जगत् ॥ १९९ ॥

महामहिमामय भगवान् उस समय जबकि एक सहस्र बार चारों युग व्यतीत हो जाते हैं, समस्त जगन्मण्डल जलराशि में डूब जाता है, शासन करने की इच्छा से अपनी महारात्रि की कल्पना करते हैं, जो महान् अन्धकार से पूर्ण रहती है ॥ १८५-१८८ ॥

जिस समय चारों प्रकार की प्रजाओं को उस विशाल अण्ड में परिणत करके (सबका संहार करके) महात्मा प्रजापति ब्रह्मा शयन करते हैं, उस समय उनको केवल सप्तर्षिगण देखते रहते हैं। वे भृगु आदि महात्मा ऋषिगण उस समय जनलोक में निवास करते हैं, परम तपस्या के फलस्वरूप उन्हें दिव्य चक्षु की प्राप्ति हुई रहती है। इनके विस्तृत लक्षणों की चर्चा पूर्व प्रसंग में कर चुका हूँ। ये महात्मागण अपने दिव्यनेत्रों से सत्यादि सातों लोकों को देखते रहते हैं। भगवान् ब्रह्मा का दर्शन उन्हें महाबलशाली रात्रियों में होता है ॥ १८९-१९१ ॥

अपनी रात्रि के आने पर ब्रह्मा जिस समय सुषुप्तावस्था में स्थित रहते हैं, उस समय सातों ऋषि उन्हें देखते हैं। समस्त कल्पों के अन्त में एकमात्र भगवान् ब्रह्मा ही शेष (परमेष्ठी) रहते हैं, अतः उन्हें आद्य (सर्वप्रथम) कहा जाता है। सब कुछ करने वाले महान् तेजस्वी भगवान् ब्रह्मा अपनी रात्रि में आत्मा में सबको समेटकर एक महान् एकार्णव जगत् में, जबकि चारों ओर घोर अन्धकार विद्यमान रहता है, निवास करते हैं। तदनन्तर जब रात्रि व्यतीत हो जाती है, तब वे जाग्रत होते हैं, और सृष्टि करने की इच्छा से पुनः मन का संयोग करते हैं ॥ १९२-१९५ ॥

इसी प्रकार ब्रह्मा के नैमित्तिक प्रलय में प्रजापति के उपशान्त एवं समस्त लोकों के विनष्ट हो जाने पर सभी जीवनिकाय अपने शरीरों से वियुक्त हो जाते हैं, सूर्य की किरणों से सभी जीव यहाँ तक कि देवता, ऋषि एवं बड़े-बड़े मुनिगण भी भस्म हो जाते हैं ॥ १९६-१९७ ॥

इतना ही नहीं, गन्धर्व एवं पिशाचादि योनियों में उत्पन्न भूतगण भी कल्पान्त में भस्म होकर जनलोक का

व्युष्टायां तु रजन्यां तु ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनये । जायन्ते हि पुनस्तानि सर्वभूतानि कृत्स्नशः ॥ २०० ॥
ऋषयो मनवो देवाः प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः । तेषामपीह सिद्धानां निधनोत्पत्तिरुच्यते ॥ २०१ ॥
यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन्नुदयास्तमनं स्मृतम् । तथा जन्मनिरोधश्च भूतानामिह दृश्यते ॥ २०२ ॥
आभूतसंप्लवात्तस्माद्भवः संसार उच्यते । यथा सर्वाणि भूतानि जायन्ते हि वर्षास्विह ॥ २०३ ॥
स्थावरादीनि सत्त्वानि कल्पे कल्पे तथा प्रजाः । यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ॥ २०४ ॥
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्राह्मात्तरात्रिषु । प्रत्याहारे च सर्गे च गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥ २०५ ॥
निष्क्रमन्ते विशन्ते च प्रजाकारं प्रजापतिम् । ब्रह्माणं सर्वभूतानि महायोगं महेश्वरम् ॥ २०६ ॥
संस्त्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः । व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥ २०७ ॥

येनैव सृष्टाः प्रथमं प्रयाता आपो हि मार्गेण महीतलेऽस्मिन् ॥
पूर्वप्रयातेन तथा ह्यपोऽन्यास्तेनैव तेनैव तु संव्रजन्ति ॥ २०८ ॥
यथा शुभेन त्वशुभेन चैव तत्रैव तत्रैव विवर्तमानाः ॥
मर्त्यास्तु देहान्तरभावितत्वाद्दैवेर्वशादूर्ध्वमधश्चरन्ति ॥ २०९ ॥
ये चापि देवा मनवः प्रजेशा अन्येऽपि ये स्वर्गगताश्च सिद्धाः ॥
सद्भाविताख्यातिवशाच्च धर्म्याः पुनर्निसर्गेण भवन्ति सत्त्वाः ॥ २१० ॥

आश्रय लेते हैं। उस समय जो तिर्यक् योनि में उत्पन्न होनेवाले प्राणी रहते हैं, अथवा जिनका घोर नरकादि लोकों में निवास रहता है वे भी दग्ध होकर निष्पाप हो जाते हैं, और जनलोक में विद्यमान होते हैं ॥ १९८-१९९ ॥

अन्त में जब ब्रह्मा की इस महारात्रि का अवसान होता है, तब वे सब जीव पुनः उत्पन्न होते हैं। ऋषिगण, मनुगण, देवगण एवं प्रजा इन सबकी यही गति होती है। उस समय उन सिद्धि प्राप्त करने वालों का भी विनाश एवं उत्पन्न होना बताया जाता है। जिस प्रकार इस लोक में सूर्य का उदय होना तथा अस्त होना निश्चित कहा जाता है, उसी प्रकार समस्त जीवों का भी जन्म लेना और मृत्यु प्राप्त करना देखा जाता है ॥ २००-२०२ ॥

समस्त जीवों के इस महान् विनाश के बाद पुनः भव अर्थात् उत्पत्ति होती है, इसीलिए इस लोक का नाम संसार कहा जाता है। जिस प्रकार वर्षाऋतु में वे वस्तुएँ अपने आप उत्पन्न हो जाती हैं, उसी प्रकार प्रलय के प्रत्येक कल्पों में जिन चराचर जीवों का जो-जो स्वरूप रहता है, जैसा जैसा आकार-प्रकार रहता है, ब्राह्म रात्रि के अवसान के उपरान्त पुनः नये कल्प का आरम्भ होने पर वे उसी प्रकार के स्वरूप, आकार एवं प्रकार में उत्पन्न देखे जाते हैं। चराचर जीववृन्द, प्रजाकर्त्ता, प्रजापति, महायोगी एवं महान् ऐश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा के शरीर में प्रवेश करते हैं और उसी से पुनः बाहर निकलते हैं ॥ २०३-२०६ ॥

प्रत्येक कल्प के आदिमकाल में व्यक्त एवं अव्यक्त उभयविध उपाधिधारी देवाधिदेव भगवान् ब्रह्मा ही समस्त जीवसमूह की सृष्टि करते हैं। इस चराचर जगत् में जो कुछ भी है, वह उन्हीं का बनाया हुआ है। इस महीतल में प्रथम प्रवर्तित जलराशि जिस मार्ग का आश्रय लेकर प्रयाण करती है, अन्यान्य जलराशियाँ भी उसी पूर्व प्रथित पथ पर प्रयाण करती हैं। मनुष्यगण, दूसरे शरीर की भवितव्यता (आवश्यक प्राप्ति) के कारण एवं

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि कालमाभूतसंप्लवम् । मन्वन्तराणि यानि स्युर्व्याख्यातानि मया द्विजाः ॥
सह प्रज्ञानिसर्गेण सह देवैश्चतुर्दश ॥ २११ ॥
स युगाख्यासहस्त्रं तु सर्वाण्येवान्तराणि वै । अस्याः सहस्त्रे द्वे पूर्णे निःशेषः कल्प उच्यते ॥ २१२ ॥
एतद्ब्राह्ममहो ज्ञेयं तस्य संख्यां निबोधत । निमेषस्तुल्यमात्रा हि कृतो लघ्वक्षरेण तु ॥ २१३ ॥
मानुषाक्षिनिमेषास्तु काष्ठा पञ्चदश स्मृता । लवः क्षणास्तु पञ्चैव विंशत्काष्ठा तु ते त्रयः ॥ २१४ ॥
प्रस्थः सप्तोदकाश्चैव साधिकास्तु लवः स्मृतः। लवास्त्रिंशत्कला ज्ञेया मुहूर्तस्त्रिंशतः कलाः॥ २१५ ॥
मुहूर्तास्तु पुनस्त्रिंशदहोरात्रमिति स्थितिः । अहोरात्रं कालानां तु व्यधिकानि शतानि षट् ॥ २१६ ॥
ताश्चैव संख्यया ज्ञेयं चन्द्रादित्यगतिर्यथा । निमेषा दश पञ्चैव काष्ठास्तास्त्रिंशतः कला ॥ २१७ ॥
त्रिंशत्कला मुहूर्तस्तु दशभागः कला स्मृता । चत्वारिंशत्कलानां तु मुहूर्त इति संज्ञितः ॥ २१८ ॥
मुहूर्ताश्च लवाश्चापि प्रमाणज्ञैः प्रकल्पिताः । तत्स्थानेनाम्भसाश्चापि पलान्यथ त्रयोदश ॥ २१९ ॥
मागधेनैव मानेन जलप्रस्थो विधीयते । एते चाप्युदकप्रस्थाश्चत्वारो नालिको घटः ॥ २२० ॥
हेममाषैः कृतच्छिद्रैश्चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः । समाहनि च रात्रौ च मुहूर्तो वै द्विनालिकौ ॥ २२१ ॥

रविरश्मियों के वशीभूत होकर अपने-अपने शुभाशुभ कार्यकलापों के अधीन उसी कर्म के निर्दिष्ट पथ पर विचरण करते हुए ऊर्ध्व अथवा निम्न लोकों में गमन करते हैं । जो देवगण, मनुगण, प्रजापति एवं अन्यान्य स्वर्गस्थ सिद्धिप्राप्त पुरुष हैं, वे भी भवितव्यतावश अपने-अपने धर्म की मर्यादा के अनुरूप स्वभावत: जन्म धारण करते हैं ॥ २०७-२१० ॥

ऋषिवृन्द! अब इसके उपरान्त मैं प्रलय काल के विषय में बता रहा हूँ । जो चौदह मन्वन्तर होते हैं, उनको बता चुका । साथ में ही उनमें होनेवाली प्रजाओं की सृष्टि भी देवताओं के साथ बता चुका हूँ । वे सभी मन्वन्तर एक सहस्त्र युगों के होते हैं । इसी प्रकार दो सहस्त्र युगों के व्यतीत होने पर एक कल्प की समाप्ति कही जाती है ॥ २११-२१२ ॥

इस अवधि को ब्रह्मा का एक दिन समझना चाहिए । उसकी संख्या के बारे में विस्तारपूर्वक बता रहा हूँ, सुनिये एक लघु अक्षर के उच्चारण में जो समय लगता है उसे निमेष कहते हैं, मनुष्य की आँख की झपकी में जो समय लगता है, उसे भी निमेष कहते हैं । ऐसे पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा कही जाती है । पाँच क्षण का एक लव होता है । बीस काष्ठा का तीन लव होता है ॥ २१३-२१४ ॥

मतान्तर के साढ़े सात प्रस्थ का एक लव होता है, तो लव की एक कला होती है । तीस कला का एक मुहूर्त होता है, तीस मुहूर्त का एक दिन-रात होता है । एक दिन-रात छह सौ दो कलाएँ होती है ॥२१५-२१६॥

इन्हीं संख्याओं से चन्द्रमा और सूर्य की गति जाननी चाहिए. पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा और तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त होता है । किन्हीं-किन्हों के मत से चालीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है । जाननेवालों ने इन सब के यहाँ प्रमाण निश्चित किये हैं । जल द्वारा भी एक प्रकार से परिमाण का निश्चय होता है, मागधमान के अनुसार तेरह पल-जल का एक प्रस्थ होता है, ऐसे चार प्रस्थों का एक नालिक पट होता है ॥ २१७-२२० ॥

रवेर्गतिविशेषेण सर्वेषु नृषु नित्यशः । अधिकं षट् शतं पञ्च कलानां प्रविधीयते ॥ २२२ ॥
तदहर्मानुषं ज्ञेयं नाक्षत्रं तु दशाधिकम् । सावनेन तु मासेन ह्यब्दोऽयं मानुषः स्मृतः ॥ २२३ ॥
एतद्दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रविनिश्चयः । अह्नाऽनेन तु या संख्या मासर्त्वयनवार्षिकी ॥ २२४ ॥
तदा बद्धमिदं ज्ञानं संज्ञा या ह्युपलक्ष्यताम् । कलानां सुपरीमाणात्काल इत्यभिधीयते ॥ २२५ ॥
यदहर्ब्रह्मणः प्रोक्तं दिव्या कोटी तु सा स्मृता । शतानां च सहस्राणि दश द्विगुणितानि च॥
नवतिं च सहस्राणि तथैवान्यानि यानि तु ॥ २२६ ॥
एतच्छ्रुत्वा तु ऋषयो विस्मयं परमाद्भुतम् । संस्थासंभजनं ज्ञानमपृच्छन्नन्तरं तदा ॥ २२७ ॥

ऋषय ऊचुः

संप्लावनस्य कालं तु मानुषेणैव संमतम् । मानेन श्रोतुमिच्छामः संक्षेपार्थपदाक्षरम् ॥ २२८ ॥
तेषां श्रुत्वा स देवस्तु वायुर्लोकहिते रतः । संक्षेपाद्दिव्यचक्षुष्मान् प्रोवाच भगवान्प्रभुः ॥ २२९ ॥
एते रात्र्यहनी पूर्वं कीर्तिते त्विह लौकिके । तासां संख्याय वर्षाग्रं बाह्यं वक्ष्याम्यहः क्षये ॥ २३० ॥
कोटीशतानि चत्वारि वर्षाणि मानुषाणि तु । द्वात्रिंशच्च तथा कोट्यः संख्याताः संख्यया द्विजैः ॥ २३१ ॥
तथा शतसहस्राणि एकोननवतिः पुनः । अशीतिश्च सहस्राणि एष कालः प्लवस्य तु ॥ २३२ ॥
मानुषाख्येण संख्यातः कालो ह्याभूतसंप्लवः । सप्त सूर्यास्तदाऽग्रेषु तदा लोकेषु तेषु वै ॥ २३३ ॥
महाभूतेषु लीयन्ते प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः । सलिलेनाप्लुते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥ २३४ ॥

एक कलत में चार अंगुलों पर चार सुवर्णमाष के समान छिद्रों द्वारा दिन और रात भर में प्रतिमुहूर्त दो नालिका जल का क्षरण होता है । सूर्य की गति की न्यूनता के रहते हुए भी सभी ऋतुओं में एक दिन रात छह सौ से कुछ अधिक कलाओंवाला होता है । यह दिन मनुष्यों का है, नाक्षत्रिक दिन-रात का परिमाण छह सौ दस कलाओं का होता है । यही एक सावन का भी मान है । इन मान से बारह मास का एक मानव वर्ष कहा जाता है ॥ २२१-२२३ ॥

उतना ही एक दिव्य वर्ष का मान है—ऐसा शास्त्रों का निश्चय है । इसी दिन मान से मास, अयन एवं वर्ष आदि की गणना होती हैं । ये संज्ञाएँ ब्रह्मा के एक दिन की उपलक्षण मात्र हैं । कलाओं द्वारा परिगणित होने के कारण समय काल नाम से पुकारा जाता है । एक ब्राह्म दिवस एक करोड़ बीस लाख नव सहस्र से अधिक दिव्य वर्षो का होता है । इस कथन से ऋषिवृन्द परम विस्मित हो उठे । यह परम अद्भुत बात मालूम पड़ी, काल संख्या विषयक जिज्ञासा की शान्ति के लिए पुनः उन सबों ने पूछा ॥ २२४-२२७ ॥

ऋषिगणों ने कहा—हम लोग संक्षेप में मानव मान से सम्मत संख्या द्वारा प्रलय का परिमाण सुनना चाहते हैं, आप छोटे-छोटे पदों में इसका संक्षिप्त परिचय दीजिये । ऋषियों की बात सुनकर लोकहितैषी परम ऐश्वर्यशाली भगवान् वायु, जिन्हें दिव्य नेत्र प्राप्त थे, संक्षेप में कथा का प्रारम्भ करते हुए बोले ॥ २२८-२२९ ॥

लौकिक दिन-रात का प्रमाण मैं आप लोगों को बता चुका हूँ, उन्हीं के माध्यम से ब्राह्म वर्ष के पूर्व उनके दिवस का परिमाण बता रहा हूँ । मानव के चार सौ बत्तीस करोड़ उन्यासी लाख अस्सी सहस्र वर्षों में प्रलय होता

विनिवृत्ते च संहारे उपशान्ते प्रजापतौ । निरालोके प्रदग्धे तु नैशेन तु समावृते ॥
ईश्वराधिष्ठिते ह्यस्मिंस्तदा ह्येकार्णवे तदा ॥ २३५ ॥
तावदेकार्णवो ज्ञेयो यावदासीदहः प्रभोः । रात्रिस्तु सलिलावस्था निवृत्तौ चाप्यहः स्मृतम् ॥ २३६ ॥
अहोरात्रस्तथैवास्य क्रमेण परिवर्तते । आभूतसंप्लवो ह्येष अहोरात्रः स्मृतः प्रभोः ॥ २३७ ॥
त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च । आभूतेभ्यः प्रलीयन्ते तस्मादाभूतसंप्लवः ॥ २३८ ॥
अग्ने भूतः प्रजानां तु तस्माद्भूतः प्रजापतिः । आभूतः प्लवते चैव तस्मादाभूतसंप्लवः ॥ २३९ ॥
शाश्वते चामृतत्वे च शब्दे चाभूतसंप्लवः । अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताः प्रजाः ॥
दिव्यसंख्या प्रसंख्याता ह्यपरार्धगुणीकृता ॥ २४० ॥
परार्धद्विगुणं चापि परमायुः प्रकीर्तितम् । एतावान्स्थितिकालस्तु ह्यजस्येह प्रजापतेः ॥
स्थित्यन्ते प्रतिसर्गस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ २४१ ॥
यथा वायुप्रवेगेन दीपार्चिरुपशाम्यति । तथैवं प्रतिसर्गेण ब्रह्मा समुपशाम्यति ॥ २४२ ॥
तथा ह्यप्रतिसंसृष्टे महदादौ महेश्वरे । महत्प्रलीयतेऽव्यक्ते गुणसाम्यं ततो भवेत् ॥ २४३ ॥
इत्येष च समाख्यातो मया ह्याभूतसंप्लवः । ब्रह्मनैमित्तिको ह्येष संप्रक्षालनसंयमः ॥ २४४ ॥

है । मानव मान से इतने ही वर्षों बाद प्रलय की अवधि कही गयी है । प्रलय के अवसर पर सात सूर्य उदित होते हैं । सभी लोको में चारों प्रकार की प्रजाएँ महाभूतों में विलीन हो जाती हैं, सारा लोक जलमग्न हो जाता है, स्थावर-जंगम जीवनिकाय नष्ट हो जाते हैं ॥ २३०-२३४ ॥

संहार कार्य कर प्रजापति शान्त हो जाते हैं । दग्ध लोक-समूहों में आलोक (प्रकाश) का सर्वथा अभाव हो जाता है । घोर नैश अन्धकार में संसार सभी ओर से आवृत हो जाता है । ईश्वर में अधिष्ठित गृह समस्त जगत् एक महासमुद्र रूप में परिणत हो जाता है । तब तक भगवान् का एक दिन रहता है तब तक एकार्णव रूप जगत् की स्थिति जाननी चाहिए, उसके बाद उनकी रात्रि केवल जलावस्था तक रहती है । इसके उपरान्त दिन कहा जाता है । ये दिन और रात क्रम से परिवर्तित होते हैं । इस प्रकार उन परम ऐश्वर्यशाली का एक दिन-रात निखिल प्राणिसमूहों की प्रलय अवधि तक कहा जाता है ॥ २३५-२३८ ॥

इस समस्त त्रैलोक्य में जितने भी चराचर भूत (जीव) समूह हैं, वे सब-के-सब विनष्ट हो जाते हैं । इसीलिए प्रलय का नाम आभूतसंप्लव कहा जाता है । प्रजाओं में सब में प्रथम भूत उत्पन्न हुए थे । अत: प्रजापति भूत हैं, उन्हीं से सब चराचर जगत् भूत (विनाश) होता है । इसलिए भी प्रलय को आभूतसंप्लव कहते हैं । शाश्वत एवं अमृतत्थ शब्द भी इस आभूतसंप्लव शब्द के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । अतीत, भविष्य एवं वर्तमान प्रजाओं का त्रैकालिक आयु परिमाण दिव्य संख्या में अपरार्द्ध कहा जाता है ॥ २३९-२४० ॥

प्रजापति ब्रह्मा की परम आयु दो परार्द्ध काल हैं । इतने ही समय तक उनकी स्थिति कही जाती है । इसके उपरान्त परमेष्ठी ब्रह्मा का प्रतिसर्ग होता है । जिस प्रकार वायु के झोंके में दीप की ज्योति शान्त हो जाती है, उसी प्रकार प्रतिसर्ग द्वारा ब्रह्मा शान्त हो जाते हैं । उस समय जब अव्यक्त में महत् विलीन हो जाता है और महदादि सब महेश्वर में तद्रूप हो जाते हैं, तब गुण साम्य हो जाता है ॥ २४१-२४३ ॥

समासेन समाख्यातो भूयः किं वर्तयामि वः । य इदं धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ।।
कीर्तनाच्छ्रवणाच्चापि महतीं सिद्धिमाप्नुयात् ।। २४५ ।।

।। इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे मन्वन्तरनिसर्गवर्णनं नाम अष्टात्रिंशोऽध्यायः ।। ३८ ।।

* * *

प्रलय का वृत्तान्त मैं आप लोगों को सुना चुका । यही ब्रह्मा का नैमित्तिक प्रलय कहा जाता है । इसका वर्णन मैंने संक्षेप ही में किया है । अब बताइये आप लोगों को पुनः क्या बताऊँ? जो व्यक्ति इस वृत्तान्त को धारण करता है, अथवा नित्य श्रवण करता है, वह महान् सिद्धि प्राप्त करता है । क्योंकि इसके श्रवण एवं कीर्तन से भी महान् फल की प्राप्ति होती है ।। २४४-२४५ ।।

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपसंहारपाद में मन्वन्तरनिसर्गकथन नामक अड़तीसवें अध्याय (सौवें अध्याय) की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरंजन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ।। ३८ ।।

* * *

अथैकोनचत्त्वारिंशोऽध्यायः

भूर्लोकादिव्यवस्थाशिवपुरवर्णनञ्च

वायुरुवाच

असाधारणवृत्तैस्तु हुतशेषादिभिर्द्विजैः । धर्मवैशेषिकैश्चैव ह्याचूर्णसूक्ष्मदर्शिभिः ॥ १ ॥
ते देवैः सह तिष्ठन्ति महर्लोकनिवासिनः । चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ॥ २ ॥
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये । ऋषिभिर्दैवतैश्चैव सह गन्धर्वराक्षसैः ॥ ३ ॥
मन्वन्तराधिकारेषु जयन्तीह पुनः पुनः । देवाः सप्तर्षयश्चैव मनवः पितरस्तथा ॥ ४ ॥
सर्वे ह्यपि क्रमातीता महर्लोकं समाश्रिताः । ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्धार्मिकैः सहितैः सुराः ॥ ५ ॥
तैस्तथ्यकारिभिर्युक्तैः श्रद्धावद्भिरदर्पितैः । वर्णाश्रमाणां धर्मेषु श्रौतस्मार्तेषु संस्थितैः ॥
विनिवृत्ताधिकारास्ते यावन्मन्वन्तरक्षयः ॥ ६ ॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

(एक सौ एकवाँ अध्याय)

भूर्लोकादि की व्यवस्था एवं शिवपुर का वर्णन

वायु ने कहा—हे ऋषिगण ! जो सूक्ष्मदर्शी एवं अपने असामान्य चरित्रबल से सम्पन्न द्विजातिवृन्द, यज्ञादि का सुन्दर अनुष्ठान कर शास्त्रसम्मत विशेष विशेष धर्मों का पालन करते हैं, वे सब देवताओं के साथ महर्लोक में निवास करते हैं। मैंने पूर्व प्रसंग में जिन अतीत, भविष्य एवं वर्तमानकालीन परम यशस्वी चौदह मनुओं का वर्णन किया है, वे ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वों एवं राक्षसों के साथ प्रत्येक मन्वन्तरों में पुनः पुनः जन्म धारण करते हैं ॥ १-३ ॥

देवगण सप्तर्षि मनुगण एवं पितरगण ये सभी धार्मिक विचारोंवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि के साथ क्रमशः अतीत होकर महर्लोक में आश्रय ग्रहण करते हैं। अभिमानरहित, सत्यवादी, योगपरायण, श्रौतस्मार्त कर्मों में श्रद्धा रखनेवाले, वर्णाश्रमाचार में निष्ठावान् ब्राह्मणादि प्रजाओं के साथ वे लोग मन्वन्तर के समाप्त हो जाने पर विधि निर्दिष्ट काल के बाद अपने-अपने अधिकारों से विनिवृत्त होकर महर्लोक में आश्रित होते हैं ॥ ४-६ ॥

ऋषय ऊचुः

महर्लोकेति यत्प्रोक्तं मातरिश्वंस्त्वया विभो । प्रतिलोके च कर्तव्यमनेकैः समधिष्ठिताः ॥ ७ ॥
यावन्तश्चैव ते लोका दह्यन्ते ये न ते प्रभो । एतन्नः कथय प्रीत्या त्वं हि वेत्थ यथातथम् ॥ ८ ॥
एवमुक्तस्ततो वायुर्मुनिभिर्विनयात्मभिः । प्रोवाच मधुरं वाक्यं यथातत्त्वेन तत्त्ववित् ॥ ९ ॥

वायुरुवाच

चतुर्दशैव स्थानानि वर्णितानि महर्षिभिः । लोकाख्यानि तु यानि स्युर्येषु तिष्ठन्ति मानवाः॥ १० ॥
सप्त तेषु कृतान्याहुरकृतानि तु सप्त वै । भूरादयस्तु संख्याताः सप्त लोकाः कृतास्त्विह ॥ ११ ॥
अकृतानि तु सप्तैव प्राकृतानि तु यानि वै । स्थानानि स्थानिभिः सार्धं कृतानि तु निबन्धनम् ॥ १२ ॥
पृथिवी चान्तरिक्षं च दिव्यं यच्च महः स्मृतम् । स्थानान्येतानि चत्वारि स्मृतान्यार्णवकानि च ॥ १३ ॥
क्षयातिशययुक्तानि तथा युक्तानि वक्ष्यते । यानि नैमित्तिकानि स्युस्तिष्ठन्त्याभूतसंप्लवम् ॥ १४ ॥
जनस्तपश्च सत्यं च स्थानान्येतानि त्रीणि तु । ऐकान्तिकानि सत्त्वानि तिष्ठन्तीहाप्रसंयमात् ॥ १५ ॥
व्यक्तानि तु प्रवक्ष्यामि स्थानान्येतानि सप्त वै । भूर्लोकः प्रथमस्तेषां द्वितीयस्तु भुवः स्मृतः॥ १६ ॥
स्वस्तृतीयस्तु विज्ञेयश्चतुर्थो वै महः स्मृतः । जनस्तु पञ्चमो लोकस्तपः षष्ठो विभाव्यते ॥ १७ ॥
सत्यन्तु सप्तमो लोको निरालोकस्ततः परम् । भूरिति व्याहृते पूर्वं भूर्लोकश्च ततोऽभवत् ॥ १८ ॥
द्वितीयं भुव इत्युक्त अन्तरिक्षं ततोऽभवत् । तृतीयं स्वरितीत्युक्ते दिवं प्रादुर्बभूव ह ॥ १९ ॥

ऋषियों ने पूछा—परम समर्थ मातरिश्वन् ! आप जिस महर्लोक की चर्चा कर रहे हैं । वह किस प्रकार का है ? प्रत्येक लोकों में बहुसंख्यक पुण्यात्मा जन निवास करते होंगे, अतः उन महात्माओं के निवास के जितने लोक हैं और वे जिस प्रकार जलाये जाते हैं । उन्हें आप कहिए, क्योंकि आप हम सबों पर प्रसन्न हैं, और इन सब बातों को यथार्थ रूप में जानते हैं । उन विनत मुनियों के इस प्रकार कहने पर तत्त्ववेत्ता वायु ने मधुर वाणी में कहा ॥ ७-९ ॥

वायु ने कहा—हे ऋषिवृन्द! महर्षियों ने ऐसे चौदह लोकों को बताया है, जिनमें पुण्यात्मा मानवगण निवास करते हैं, उनमें सात को कृत लोक कहते हैं और सात को अकृत लोक कहते हैं । भू आदि सात लोक कृत हैं ॥ १०-११ ॥

सात प्राकृत लोक अकृत कहे जाते हैं । स्थानाभिमानी देवताओं के साथ कृत लोकों की स्थिति है । पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिव्य और मह—ये चारों लोक आणविक नाम से प्रसिद्ध हैं । ये क्षय और वृद्धिवाले लोक कहे जाते हैं जो लोक क्षय वृद्धि रहित हैं उनके विषय में बता रहा हूँ । नैमित्तिक लोक जितने हैं, वे प्रलयपर्यन्त स्थिर रहने वाले हैं । जन, तप और सत्य ये तीन लोक ऐकान्तिक और सत्त्वगुण सम्पन्न हैं, इनकी स्थिति कल्प पर्यन्त रहती है ॥ १२-१५ ॥

सात व्यक्त कहे जानेवाले लोकों का वर्णन कर रहा हूँ । उन सब में प्रथम भूर्लोक है, दूसरा भुवः, तीसरा स्वः, चौथा महः, पाँचवाँ जनः, छठा तपः और सातवाँ सत्य है । इनके बाद निरालोक (घोर अन्धकार) है । ब्रह्मा ने भूः—ऐसा उच्चारणकर भूर्लोक की, भुवः—ऐसा उच्चारणकर भुवर्लोक की, स्वः—ऐसा उच्चारणकर स्वर्लोक

व्याहारैस्त्रिभिरेतैस्तु ब्रह्मलोकमकल्पयत् । ततो भूः पार्थिवो लोक अन्तरिक्षं भुवः स्मृतम्॥ २० ॥
स्वर्लोको वै दिवं ह्येतत्पुराणे निश्चयं गतम् । भूतस्याधिपतिश्चाग्निस्ततो भूतपतिः स्मृतः ॥ २१ ॥
वायुर्भुवस्याधिस्पतिस्तेन वायुर्भुवपतिः । भव्यस्य सूर्योऽधिपतिस्तेन सूर्यो दिवस्पतिः ॥ २२ ॥
महेतिव्याहृतेनैवं महर्लोकस्ततोऽभवत् । विनिवृत्ताधिकाराणां देवानां तत्र वै क्षयः ॥ २३ ॥
जनस्तु पञ्चमो लोकस्तस्माज्जायन्ति वै जनाः । तासां स्वायंभुवाद्यानां प्रजानां जननाज्जनः ॥ २४ ॥
यास्ताः स्वायंभुवाद्या हि पुरस्तात्परिकीर्तिताः । कल्पदग्धे तदा लोके प्रतिष्ठन्ति तदा तपः ॥ २५ ॥
ऋभुः सनत्कुमाराद्या यत्र सन्त्यूर्ध्वरेतसः । तपसा भावितात्मानस्तत्र सन्तीति वा तपः ॥ २६ ॥
सत्येति ब्रह्मणः शब्दः सत्तामात्रस्तु सः स्मृतः। ब्रह्मलोकस्ततः सत्यं सप्तमः स तु भास्करः ॥ २७ ॥
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा गुह्यकास्तु सराक्षसाः । सर्वभूतपिशाचाश्च नागाश्च सह मानुषैः ॥
स्वर्लोकवासिनः सर्वे देवा भुवि निवासिनः ॥ २८ ॥
मरुतो मातरिश्वानो रुद्रा देवास्तथाश्विनौ । अनिकेतान्तरिक्षास्ते भुवर्लौक्या दिवौकसः ॥ २९ ॥
आदित्या ऋभवो विश्वे साध्याश्च पितरस्तथा । ऋषयोऽङ्गिरसश्चैव भुवर्लोकं समाश्रिताः ॥ ३० ॥

की सृष्टि की । भूर्भुवः स्वः—इन्हीं तीनों महाव्याहृतियों से उक्त तीनों की उत्पत्ति हुई है । भूः की पार्थिव लोक नाम से, भुवः की अन्तरिक्ष लोक नाम से, और स्वः की स्वर्ग लोक नाम से प्रसिद्धि है—ऐसा पुराणों में निश्चित किया गया है । अग्नि भूतों का अर्थात् पृथ्वीस्थ समस्त पदार्थों का अधिपति है, इसी कारण उसे भूतपति के नाम से लोग जानते हैं ॥ १६-२१ ॥

अन्तरिक्ष का अधिपति वायु है, इसी कारण से वायु भुवपति के नाम से प्रसिद्ध हैं । भव्य अर्थात् स्वर्लोक का अधिपति सूर्य है, इसी कारण वह दिवस्पति नाम से विख्यात है । ब्रह्मा के 'महा' (महान्)—ऐसा उच्चारण करने पर महर्लोक की सृष्टि हुई थी । देवगण अपने अधिकार-काल से विनिवृत्त होकर महर्लोक में जाकर अवस्थान करते हैं । जनलोक उक्त लोकों में पाँचवाँ है, इसी लोक से स्वायंभुव मनु आदि की प्रजाओं का जनन (उत्पत्ति) होता है, अतः उसकी जनलोक नाम से प्रसिद्धि है । पूर्व प्रसंग में स्वायंभुव मनु आदि की जिन प्रजाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा चुका है वे सब कल्प के अवसान-काल में, जबकि समस्त लोक दग्ध हो जाते हैं, तपोलोक में आश्रय प्राप्त करते हैं, क्योंकि यह उस समय भी विद्यमान रहता है ॥ २२-२५ ॥

ऋभु एवं सनत्कुमारादि देवगण जो परम ब्रह्मचारी एवं ऊर्ध्वरेता हो गये हैं, कठोर तपस्या द्वारा आत्मा को जिन्होंने वश में कर लिया है, वे जिस लोक में अवस्थित रहते हैं उसको तपोलोक कहते हैं—यह भी तपोलोक का एक लक्षण है । सत्य—यह ब्रह्मा का एक शब्द है, इसका प्रयोग सत्ता (अस्तित्व) मात्र में होता है, इसी कारण ब्रह्मलोक सत्यलोक के नाम से प्रसिद्ध है, यह परम प्रकाशमय लोक उक्त सातों लोकों में अन्तिम अर्थात् सातवाँ है । समस्त देवगण गन्धव, अप्सराओं, यक्षों और गुह्यकों के साथ स्वर्लोक में निवास करते हैं । सर्प, भूत, पिशाच, नाग एवं मनुष्यगण पृथ्वीलोक के निवासी हैं ॥ २६-२८ ॥

मरुद्गण, वायुगण, रुद्रगण, कुछ देवगण, दोनों अश्विनीकुमार—ये यद्यपि किसी निकेतन में निवास करने वाले नहीं हैं; पर इनका प्रमुख निवास स्थल भुवर्लोक है । स्वर्गलोक में निवास करनेवाले आदित्यगण, ऋभुगण

एते वैमानिका देवास्ताराग्रहनिवासिनः । इत्येते क्रमशः प्रोक्ता ब्रह्मव्याहारसंभवाः ॥ ३१ ॥
भूर्लोकप्रथमा लोका महदन्ताश्च ते स्मृताः । आरभ्यन्ते तु तन्मात्रैः शुद्धास्तेषां परस्परम् ॥ ३२ ॥
शुक्राद्याश्चाक्षुषान्ताश्च ये व्यतीता भुवं श्रिताः । महर्लोकश्चतुर्थस्तु तस्मिंस्ते कल्पवासिनः ॥
इत्येते क्रमशः प्रोक्ता ब्रह्मव्याहारसंभवाः ॥ ३३ ॥
भूर्लोकप्रथमा लोका महदन्ताश्च ये स्मृताः । तान् सर्वान् सप्त सूर्यास्ते अर्चिभिर्निर्दहन्ति वै ॥ ३४ ॥
मरीचिः कश्यपो दक्षस्तथा स्वायंभुवोऽङ्गिराः। भृगुः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुरित्येवमादयः ॥ ३५ ॥
प्रजानां पतयः सर्वे वर्तन्ते तत्र तैः सह । निःसत्त्वा निर्ममाश्चैव तत्र ते ह्यूर्ध्वरेतसः ॥ ३६ ॥
ऋभुः सनत्कुमाराद्या वैराज्यास्ते तपोधनाः । मन्वन्तराणां सर्वेषां सावर्णानां ततः स्मृताः ॥
चतुर्दशानां सर्वेषां पुनरावृत्तिहेतवः ॥ ३७ ॥
योगं तपश्च सत्यं च समाधाय तदाऽऽत्मनि । षष्ठे काले निवर्तन्ते तत्तदाहर्विपर्यये ॥ ३८ ॥
सत्यन्तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्मार्गगामिनाम् । ब्रह्मलोकः समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षणः ॥ ३९ ॥
पर्यासपारिमाण्येन भूर्लोकः समितिः स्मृतः । भूम्यन्तरं यदादित्यादन्तरिक्षं भुवः स्मृतम् ॥ ४० ॥
सूर्यध्रुवान्तरं यच्च स्वर्गलोको दिवः स्मृतः । ध्रुवाज्जनान्तरं यच्च महर्लोकस्तदुच्यते ॥ ४१ ॥
विख्याताः सप्तलोकास्तु तेषां वक्ष्यामि सिद्धयः। भूर्लोकवासिनः सर्वे अन्नादास्तु रसात्मकाः॥ ४२ ॥

विश्वेदेवगण, साध्यगण, पितरगण एवं अंगिरागोत्रीय ऋषिगण भी भुवर्लोक में आश्रय प्राप्त करते हैं । ये सभी देवादिगण विमानों में चढ़कर ताराओं एवं ग्रहपिण्डों का आश्रय ग्रहणकर भुवर्लोक में निवास करते हैं । ब्रह्मा के भूर्भुवस्वरादि शब्दों के उच्चारणों द्वारा निर्मित लोकों की चर्चा आप लोगों से कर चुका । भूर्लोकादि महर्लोकान्त (भूर्लोक से लेकर महर्लोक तक) जिन लोकों की चर्चा ऊपर की गयी है, वे सब तन्मात्राओं से आरम्भ किये गये हैं ये परस्पर शुद्ध हैं, एक-दूसरे से मिले हुए नहीं हैं ॥ २९-३२ ॥

शुक्र से लेकर चाक्षुष मनु पर्यन्त, जो पृथ्वी लोक में आश्रय करने वाले व्यतीत हो चुके हैं, वे भी कल्पान्त के अवसर पर इस चतुर्थ महर्लोक में जाकर अवस्थान करते हैं ॥ ३३ ॥

प्रलय में प्रथम लोक भू से लेकर महर्लोक तक जब सभी लोक सात सूर्य की रश्मियों द्वारा दग्ध हो जाते हैं । तब मरीचि, कश्यप, दक्ष, स्वायंभुव, अङ्गिरा, भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु आदि प्रजापतिगण एक साथ जनलोक में निवास करते हैं । ऋभु एवं सनत्कुमारादि निःसत्त्व, निर्मम ऊर्ध्वरेता संसार-विरागी ऋषिगण तपोलोक में निवास करते हैं । सावर्णादि चौदह मनुगणों के अधिकार-काल की पुनरावृत्ति इसी तपोलोक से कही जाती है । उस महान् लोक विनाशकाल के अवसर पर जनलोकादि निम्न श्रेणी के छह लोकों में निवास करनेवाले प्राणिवृन्द अपने-अपने योग, तप, सत्य आदि का आत्मा में समाधानकर तपोलोक में आश्रय ग्रहण करते हैं ॥३४-३८॥

सत्य सातवाँ लोक है, वहाँ जाकर पुनरावृत्ति नहीं होती । इस सत्यलोक का कभी विनाश नहीं होता इसी का दूसरा नाम ब्रह्मलोक भी है, परिमाणों के अनुसार भूर्लोक मध्यवर्ती माना जाता है, भूमि-तल से लेकर सूर्यपर्यन्त भुवर्लोक की स्थिति कही जाती है, सूर्य से लेकर ध्रुवपर्यन्त स्वर्गलोक की स्थिति है, इसे दिव लोक भी कहते हैं । ध्रुव से लेकर जनलोकपर्यन्त महर्लोक है । इसी प्रकार अन्यान्य लोकों की भी स्थिति है । अब उन परम

भुवे स्वर्गे च ये सर्वे सोमपा आज्यपाश्च ते । चतुर्थे येऽपि वर्तन्ते महर्लोकं समाश्रिताः ॥ ४३ ॥
विज्ञेया मानसी तेषां सिद्धिर्वै पञ्चलक्षणा । सद्यश्चोत्पद्यते तेषां मनसा सर्वमीप्सितम् ॥ ४४ ॥
एते देवा यजन्ते वै यज्ञैः सर्वैः परस्परम् । अतीतान् वर्तमानांश्च वर्तमानाननागतान् ॥ ४५ ॥
प्रथमानन्तरैरिष्ट्वा ह्यन्तराः सांप्रतैः पुनः । निवर्ततीत्यासंबन्धोऽतीते देवगणे ततः ॥ ४६ ॥
विनिवृत्ताधिकाराणां सिद्धिस्तेषां तु मानसी । तेषां तु मानसीज्ञेया शुद्धा सिद्धिपरम्परा ॥ ४७ ॥
उक्ता लोकाश्च चत्वारो जनस्यानुविधिस्तथा । समासेन मया विप्रा भूयस्तं वर्तयामि वः ॥ ४८ ॥

वायुरुवाच

मरीचिः कश्यपो दक्षो वसिष्ठश्चाङ्गिरा भृगुः । पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुरित्येवमादयः ॥ ४९ ॥
पूर्वं ते संप्रसूयन्ते ब्रह्मणो मनसा इह । ततः प्रजाः प्रतिष्ठाप्य जनमेवाऽऽश्रयन्ति ते ॥ ५० ॥
कल्पदाहप्रदीप्तेषु तदा कालेषु तेषु वै । भूरादिषु महान्तेषु भृशं व्याप्तेष्वथाग्निना ॥ ५१ ॥
शिखा संवर्तका ज्ञेया प्राप्नुवन्ति सदा जनाः । यामादयो गणाः सर्वे महर्लोकनिवासिनः ॥ ५२ ॥
महर्लोकेषु दीप्तेषु जनमेवाश्रयन्ति ते । सर्वे सूक्ष्मशरीरास्ते तत्रस्थास्तु भवन्ति ते ॥ ५३ ॥
तेषां ते तुल्यसामर्थ्यास्तुल्यमूर्तिधरास्तथा । जनलोके विवर्तन्ते यावत्संप्लवते जगत् ॥ ५४ ॥

विख्यात सातों लोकों की सिद्धियों की चर्चा कर रहा हूँ । भूर्लोक में निवास करनेवाले सब अन्नभक्षी रसास्वादी । भुवर्लोक में निवास करनेवाले सोमपायी हैं अर्थात् वे सोम का पान करते हैं, स्वर्गलोक निवासियों का आहार आज्य पान है । जो चतुर्थ महर्लोक में निवास करते हैं, उनकी पाँच मानसिक सिद्धियाँ कही जाती हैं । मन में सङ्कल्प मात्र करने से उन्हें समस्त मनोवांछित सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है ॥ ३९-४४ ॥

समस्त देवगण सभी प्रकार यज्ञों का अनुष्ठान करके परस्पर सन्तुष्टि लाभ करते हैं । वर्तमान देव अतीतकालीन देवताओं के लिए भविष्यत्कालीन देव वर्तमान देवताओं के लिए । इस प्रकार परवर्ती काल में उत्पन्न होनेवाले अपने पूर्ववर्ती को सन्तुष्टि के लिए इन यज्ञादिकों का अनुष्ठान करते हैं । देवगणों के व्यतीत होने पर उनका सम्बन्ध निवृत्त हो जाता है । उन महर्लोक निवासियों का अधिकार-काल जब समाप्त हो जाता है, उस समय भी उनकी परम विशुद्ध मानसी सिद्धियों की परम्परा उनमें विद्यमान जाननी चाहिए । विप्रवृन्द ! आप लोगों को जनलोक तथा उससे निम्नवर्ती चारों लोकों की चर्चा संक्षेप में सुना चुका । पुनः उसी का विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ ॥ ४५-४८ ॥

वायु ने कहा—हे ऋषिगण ! मरीचि, कश्यप, दक्ष, वसिष्ठ, अङ्गिरा, भृगु, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु आदि ऋषिगण सर्वप्रथम ब्रह्मा के मानस पुत्रों के रूप में उत्पन्न होते हैं, और अपनी-अपनी प्रजाओं का विस्तार करके पुनः जनलोक का आश्रय लेते हैं ॥ ४९-५० ॥

कल्प के अवसान में संवर्तक नामक अग्नि की प्रचण्ड ज्वाला से जब भूः, भुवः, स्वः तथा महः—ये चारों लोक प्रज्वलित हो उठते हैं, इनमें सब ओर से अग्नि फैल जाती है, तब महर्लोक निवासी यमादि देवगण सूक्ष्म शरीर धारणकर जनलोक का आश्रय ग्रहण करते हैं, और तदुपरान्त वहीं पर निवास करने लगते हैं ॥५१-५३॥

वहाँ पहुँचकर वे जनलोक निवासियों के समान सामर्थ्यशील, स्वरूपवान् एवं ऐश्वर्यशाली हो जाते हैं और

व्युष्टायां तु रजन्यां वै ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनिनः । अहरादौ प्रसूयन्ते पूर्ववत्क्रमशस्त्विह ॥ ५५ ॥
स्वायंभुवादयः सर्वे मरीच्यन्तास्तु साधकाः । देवास्ते वै पुनस्तेषां जायन्ते निधनेष्विह ॥ ५६ ॥
यामादयः क्रमेणैव कनिष्ठाद्याः प्रजापतेः । पूर्वं पूर्वं प्रसूयन्ते पश्चिमे पश्चिमास्तथा ॥ ५७ ॥
देवान्वये देवता हि सप्त संभूतयः स्मृताः । व्यतीताः कल्पजास्तेषां तिस्रः शिष्टास्तथा परे ॥ ५८ ॥
आवर्तमाना देवास्ते क्रमेणैते न सर्वशः । गत्वा जवं जवीभावं दशकृत्वः पुनः पुनः ॥ ५९ ॥
ततस्ते वै गणाः सर्वे दृष्ट्वा भावेष्वनित्यताम् । भाविनोऽर्थस्य च बलात्पुण्याख्यातिबलेन च ॥ ६० ॥
निवृत्तवृत्तयः सर्वे स्वस्थाः सुमनसस्तथा । वैराजे तूपपद्यन्ते लोकमुत्सृज्य तज्जनम् ॥ ६१ ॥
ततोऽन्येनैव कालेन नित्ययुक्तास्तपस्विनः । कथनाच्चैव धर्मस्य तेषां ते जज्ञिरेऽन्वये ॥ ६२ ॥
इहोत्पन्नास्ततस्ते वै स्थाना आपूरयन्त्युत । देवत्वे च ऋषित्वे च मनुष्यत्वे च सर्वशः ॥ ६३ ॥
एवं देवगणाः सर्वे दशकृत्वो निवर्त्य वै । वैराजेषूपपन्नास्ते दश तिष्ठन्त्युपप्लवान् ॥ ६४ ॥
पूर्णे पूर्णे ततः कल्पे स्थित्वा वैराजके पुनः । ब्रह्मलोके विवर्तन्ते पूर्वपूर्वक्रमेण तु ॥ ६५ ॥
एस्मिन्ब्रह्मलोके तु कल्पे वैराजके गते । वैराजं पुरनप्येके कल्पस्थानमकल्पयन् ॥ ६६ ॥
एवं पूर्वानुपूर्व्येण ब्रह्मलोकगतेन वै । एवं तेषु व्यतीतेषु तपसा परिकल्पिते ॥
वैराजे तूपपद्यन्ते दशकृत्वो निवर्तते ॥ ६७ ॥

उसी रूप में जगत् के महान् विनाशकाल तक स्थित रहते हैं । अव्यक्त योनि भगवान् ब्रह्मा की महारजनी के व्यतीत होने पर जब पुनः उनके दिन का प्रारम्भ होता है तब वे स्वायंभुव आदि मनु, मरीचि आदि साधक ऋषिगण अपने-अपने पूर्ववर्ती पुरुषों की मृत्यु के उपरान्त पूर्वक्रम से पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं ॥ ५४-५६ ॥

तदनन्तर यमादि देवगण पूर्वकथित ज्येष्ठ कनिष्ठादि क्रम से जन्म ग्रहण करते हैं । देववंश में देवताओं की सात विभूतियाँ कही गई हैं । उनमें से चार कल्पज देवता व्यतीत हो चुके हैं, तीन शेष हैं । देवता भी उक्त क्रम से दस बार पुनः-पुनः जन्म-मरण को प्राप्त होकर सभी सांसारिक पदार्थों एवं भावों में अनित्यता का दर्शन करते हैं । तदनन्तर भावी की बलवत्ता से एवं स्वकृत पुण्य कर्मों के प्रभाव से वे प्रशान्त चित्त हो जाते हैं । वे सभी कार्यों से निवृत्त होकर स्वस्थ मन से इस जनलोक का परित्यागकर वैराजलोक को प्राप्त होते हैं ॥ ५७-६१ ॥

इसके बाद बहुत काल के उपरान्त नित्य योगाभ्यासपरायण तपोनिष्ठ वे लोग धर्म कीर्तन के प्रभाव से उन परम धार्मिकों के वंश में जन्म ग्रहण करते हैं । और इस प्रकार उत्पन्न होकर देवत्व, ऋषित्व एवं मनुष्यत्व को प्राप्तकर उन-उन स्थानों की पूर्ति करते हैं । सभी देवगण इस प्रकार दस बार जन्म ग्रहण करने के बाद वैराज नामक लोकों में आश्रय प्राप्तकर दस कल्पपर्यन्त निवास करते हैं ॥ ६२-६४ ॥

एक-एक कल्प के पूर्ण होने पर वैराज नामक लोकों में स्थित होकर वे देवगण पूर्व-पूर्व क्रम से ब्रह्मलोक में स्थित होते हैं । वैराज के कल्पों के व्यतीत हो जाने पर वे इस ब्रह्मलोक में निवास करते हैं । कुछ लोग वैराज लोक को कल्पपर्यन्त स्थायी मानते हैं, इसी पूर्व कथित क्रमानुसार वे लोग अपने-अपने तप के प्रभाव से बैराज लोक में जा-जाकर वहाँ दस कल्पपर्यन्त निवास कर ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं । इस प्रकार वैराज लोक में जो लोग प्राप्त होते हैं, वे दस बार जन्म धारण कर निवृत्त होते हैं ॥ ६५-६७ ॥

एवं देवयुगानीह व्यतीतानि सहस्रशः । निधनं ब्रह्मलोके तु गतानामृषिभिः सह ॥ ६८ ॥

सूत उवाच

न शक्यमानुपूर्वेण तेषां वक्तुं प्रविस्तरम् । अनादित्वाच्च कालस्य ह्यसंख्यानाच्च सर्वशः ॥
एवमेव न संदेहो यथावत्कथितं मया ॥ ६९ ॥
तदुपश्रुत्य वाक्यार्थमृषयः संशयान्विताः । सूतमाहुः पुराणज्ञं व्यासशिष्यं महामतिम् ॥ ७० ॥

ऋषय ऊचुः

वैराजास्ते यदाहारा यत्सत्त्वाश्च यदाश्रयाः । तिष्ठन्ति चैव यत्कालं तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥ ७१ ॥
तदुक्तमृषिभिर्वाक्यं श्रुत्वा लोकार्थतत्त्ववित् । सूतः पौराणिको वाक्यं विनयेनेदमब्रवीत् ॥ ७२ ॥
ततः प्राप्यन्त ते सर्वे शुद्धिशुद्धतमाश्च ये । आभूतसंप्लवास्तत्र दश तिष्ठन्ति ते जनाः ॥ ७३ ॥
सर्वे सूक्ष्मशरीरास्ते विद्वांसो घनमूर्तयः । स्थितलोकास्थितत्वाच्च तेषां भूतं न विद्यते ॥ ७४ ॥
ऊचुः सनत्कुमाराद्याः सिद्धास्ते योगधर्मिणः । ख्यातिं नैमित्तिकीं तेषां पर्यायेसमुपस्थिते ॥ ७५ ॥
स्थानत्यागे मनश्चापि युगपत्संप्रवर्तते । ऊचुः सर्वे तदाऽन्योन्यं वैराजाच्छुद्धबुद्धयः ॥ ७६ ॥
एवमेव महाभागाः प्रणवं संप्रविश्य ह । ब्रह्मलोके प्रवर्तानस्तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥ ७७ ॥

इसी प्रकार देवताओं के सहस्रों युग समाप्त हो गये हैं। ऋषियों के साथ मृत्यु प्राप्त कर वे देवगण वैराज लोकों में निवास करने के बाद ब्रह्मलोक की प्राप्ति करते हैं ॥ ६८ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! देवताओं की एवं लय सृष्टि के विस्तार को क्रमानुसार नहीं बताया जा सकता, काल का कोई आदि नहीं है। संख्याओं की भी कोई इयत्ता नहीं है। जैसा मैं आप लोगों को अभी बता चुका हूँ, उसमें सन्देह मत मानिये, वह सब वैसा ही हुआ है ॥ ६९ ॥

सूत की इन बातों को सुनकर ऋषियों को बहुत सन्देह हो गया। तब उन वेदव्यास के परम बुद्धिमान् शिष्य ने सूतजी से जो पुराणों के मार्मिक स्थलों को जाननेवाले थे, पूछा ॥ ७० ॥

ऋषियों ने पूछा—हे सूत जी ! उस बैराज नामक लोकों में निवास करनेवाले जो आहार करते हैं, उनका जो पराक्रम है, जिन पदार्थों या वस्तुओं का उन्हें आश्रय प्राप्त है, जितने समय तक वे वहाँ स्थित रहते हैं—इन सब बातो को हम यथार्थतः सुनना चाहते हैं, बताइये ॥ ७१ ॥

ऋषियों की इस जिज्ञासा को सुनकर लोकार्थ तत्त्ववेत्ता, पौराणिक सूत जी विनयपूर्ण स्वर में बोले। ऋषिवृन्द ! धर्माचरण के कारण जो परम शुद्ध एवं निर्विकार हो जाते हैं वे लोग उस वैराज नामक लोक में दस कल्प तक निवास करते हैं। वे सब परम ज्ञानी, सूक्ष्म एवं स्वच्छ शरीर समन्वित होते हैं। अनन्त काल तक स्थित रहने के कारण उनके शरीर में पञ्चभूतों का सम्पर्क नहीं रहता ॥ ७२-७४ ॥

दस कल्प के उपरान्त वैराज लोक से विवर्तन का अवसर जब उपस्थित होता है तब वैराज लोक में निवास करनेवाले, शुद्धबुद्धि, योगाभ्यासपरायण सनत्कुमारादि, सिद्धगण उस लोक को त्यागने के लिए एक साथ ही समुत्सुक होकर परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप करते हैं, हे महाभाग्यशालियों ! अब हम लोग प्रणव का आश्रय प्राप्तकर ब्रह्मलोक में निवास करेंगे, उससे हम सबों को विशेष कल्याण की प्राप्ति होगी ॥ ७५-७७ ॥

एवमुक्त्वा तदा सर्वे ब्रह्मान्ते व्यवसायिनः । योजयित्वा तदा सर्वे वर्तन्ते योगधर्मिणः ॥ ७८ ॥
तत्रैव संप्रलीयन्ते शान्ता दीपार्चिषो यथा । ब्रह्मकायमवर्तन्त पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ७९ ॥
लोकं तं समनुप्राप्य सर्वे ते भावनामयम् । आनन्दं ब्रह्मणः प्राप्य ह्यमृतत्वाय ते गताः ॥ ८० ॥
वैराजेभ्यस्तथैवोर्ध्वमन्तरे षड्गुणे ततः । ब्रह्मलोकः समाख्यातो यत्र ब्रह्मा पुरोहितः ॥ ८१ ॥
ते सर्वे प्रणवात्मानो बुद्धशुद्धतपास्तथा । आनन्दं ब्रह्मणः प्राप्यामृतत्वं च भजन्त्युत ॥ ८२ ॥
द्वंद्वैस्ते नाभिभूयन्ते भावत्रयविवर्जिताः । आधिपत्यं विना तुल्या ब्राह्मणस्ते महौजसः ॥ ८३ ॥
प्रभावविजयैश्वर्यस्थितिवैराग्यदर्शनैः । ते ब्रह्मलौकिकाः सर्वे गतिं प्राप्य विवर्तनीम् ॥ ८४ ॥
ब्रह्मणा सह देवैश्च संप्राप्ते प्रतिसंचरे । तपसोऽन्ते क्रियात्मानो बुद्धावस्था मनीषिणः ॥
अव्यक्ते संप्रलीयन्ते सर्वे ते क्षणदर्शिनः ॥ ८५ ॥
इत्येतदमृतं शुक्रं नित्यमक्षयमव्ययम् । देवर्षयो ब्रह्मसत्रं सनातनमुपासते ॥ ८६ ॥
अपुनर्मार्गगादीनां तेषां चैवोर्ध्वरेतसाम् । कर्माभ्यासकृता शुद्धिर्वेदान्तेषूपलक्ष्यते ॥ ८७ ॥
तत्र तेऽभ्यासिनो युक्ताः परां काष्ठामुपासते । हित्वा शरीरं पाप्मानममृतत्वाय ते गताः ॥ ८८ ॥
वीतरागा जितक्रोधाः निर्मोहाः सत्यवादिनः। शान्ताः प्रणिहितात्मानो दयावन्तो जितेन्द्रियाः ॥ ८९ ॥

इस प्रकार परस्पर सम्भाषण करने के उपरान्त वे योगधर्मा महात्मागण योगाभ्यास द्वारा आत्मा को परमात्मा ब्रह्म में सन्नियोजित कर शान्त दीपशिखा की भाँति पुनरावृत्ति विरहित ब्रह्मपद की प्राप्ति करते हैं, और उसी स्थान पर विलीन हो जाते हैं । उस परम सुखदायिनी कल्पनाओं से परिपूर्ण अनामय ब्रह्मलोक को प्राप्तकर ब्रह्मानन्द में निमग्न होकर वे अमृतत्व की सम्प्राप्ति करते हैं । यह ब्रह्मलोक वैराज नामक लोकों से छह गुना अधिक ऊपर विद्यमान है । उसकी ख्याति ब्रह्मलोक नाम से है, वहाँ ब्रह्मा पुरोहित हैं ॥ ७८-८१ ॥

वहाँ के सभी निवासी परम शुद्ध, बुद्ध एवं तपोनिष्ठ होते हैं । प्रणव ही उनकी आत्मा होती है । ब्रह्मानन्द में निमग्न होकर वे अमृतत्व का उपभोग करते हैं । उनमें सुख-दुःखादि द्वन्द्वों का उदय नहीं होता । उनमें तीनों भावों का सर्वथा अभाव रहता है । वे सभी परम तेजस्वी एवं आधिपत्य को छोड़कर सभी बातों में ब्रह्मा के समान प्रभावशाली होते हैं । प्रभाव, विजय, ऐश्वर्य, स्थिति, वैराग्य, ज्ञानादि में वे ब्रह्मा के ही समान होते हैं । वे शुद्ध, बुद्ध, ज्ञानी, क्रियाशील, ब्रह्मलोक निवासी महात्मागण पुनर्जन्म मरणादि से रहित शुभ गति को प्राप्तकर महाप्रलय में अपनी तपस्याओं के पूर्ण हो जाने पर ब्रह्मा के ही साथ अव्यक्त प्रकृति में विलीन हो जाते हैं ॥ ८२-८५ ॥

यही नित्य, अक्षय, अव्यय, परम शुद्ध अमृत पद है । इसी आवृत्ति विरहित सनातन परमपद की प्राप्ति के लिए ऊर्ध्वरेता देवता एवं ऋषिगण वेदान्तादि में निर्णीत मङ्गलमय कर्मों के अनुष्ठान में निरत रहकर शुद्धि प्राप्त करते हैं, और सतत योगाभ्यास में दत्तचित्त रहकर उसकी अन्तिम सीमा तक उपासना (साधना) करते हैं और अन्त में अपने पापमय शरीर को त्यागकर अमृतत्व की प्राप्ति करते हैं ॥ ८६-८८ ॥

वीतराग, जितक्रोध, निर्मोह, सत्यवादी, आत्मा को वश में रखने वाले, जितेन्द्रिय, दयावान्, संगविरहित पवित्रात्मा जन ही उस ब्रह्मलोक की प्राप्ति करते हुए सुने जाते हैं । जो वीरात्मा कामनाविहीन, योगपरायण एवं तपस्या द्वारा समस्त पापों को नष्ट करने वाले हैं, उन्हीं के ऐसे अविनश्वर लोकों की कल्पना की गयी है । जहाँ

निःसङ्गाः शुचयश्चैव ब्रह्मसायुज्यगाः स्मृताः। अकामयुक्तैर्ये वीरास्तपोभिर्दग्धकिल्बिषाः ॥
तेषामभ्रंशिनो लोका अप्रमेयसुखाः स्मृताः ॥ ९० ॥
एतद्ब्रह्मपदं दिव्यं परमं व्योम्नि भास्वरम् । गत्वा न यत्र शोचन्ति ह्यमरा ब्रह्मणा सह ॥ ९१ ॥

ऋषय ऊचुः

कस्मादेव परार्धश्च कश्चैष पर उच्यते । एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ॥ ९२ ॥

सूत उवाच

श्रृणुध्वं मे परार्धं च परिसंख्यां परस्य च । एकं दश शतं चैव सहस्रं चैव संख्यया ॥ ९३ ॥
विज्ञेयमासहस्रन्तु सहस्राणि दशायुतम् । एकं शतसहस्रं तु नियुतं प्रोच्यते बुधैः ॥ ९४ ॥
तथा शतसहस्राणामर्बुदं कोटिरुच्यते । अर्बुदं दशकोट्यस्तु ह्यब्जं कोटिशतं विदुः ॥ ९५ ॥
सहस्रमपि कोटीनां खर्वमाहुर्मनीषिणः । दशकोटिसहस्राणि निखर्वमिति तं विदुः ॥ ९६ ॥
शतं कोटिसहस्राणां शंकुरित्यभिधीयते । सहस्रं तु सहस्राणां कोटीनां दशधा पुनः ॥
गुणितानि समुद्रं वै प्राहुः संख्याविदो जनाः ॥ ९७ ॥
कोटीनां सहस्रमयुतमित्ययं मध्य उच्यते । कोटि सहस्र नियुता स चान्त इति संज्ञितः ॥ ९८ ॥

पर प्राप्त होने वाले कल्याण एवं सुख की कोई कमी नहीं है । यह ब्रह्मपद परम दिव्यगुणसम्पन्न एवं पर आकाश में जाज्वल्यमान है । वहाँ जाकर वे अमरगण ब्रह्मा के साथ निवास कर सुख का अनुभव करते हुए शोक से रहित हो जाते हैं ॥ ८९-९१ ॥

ऋषियों ने पूछा—हे समादरणीय सूत जी ! यह परार्द्ध क्या है? पर किसे कहते हैं? यह हम लोग जानना चाहते हैं । कृपया बताइये ॥ ९२ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द! मैं परार्द्ध और पर की परिभाषा बता रहा हूँ, सुनिये । एक, दस, सौ, सहस्र ये संख्याएँ आप लोगों को विदित ही हैं । आगे चलकर दस सहस्र का एक अयुत जानना चाहिए । सौ सहस्र का बुद्धिमान् लोग एक नियुत बताते हैं । दस सौ सहस्र अर्थात् दस नियुत की एक कोटि होती है । दस कोटि का एक अर्बुद (अरब) होता है, सौ कोटि का एक अब्ज (पद्म) बताते हैं । मनीषीगण एक सहस्र कोटि को खर्व कहते हैं, दस खर्व कोटि का एक निखर्व होता है । सौ सहस्र कोटि का एक शङ्कु कहा जाता है । सहस्र-सहस्र कोटि को पुनः दस बार गुणित करने पर जो गुणनफल प्राप्त होता है उसे संख्या-तत्त्ववेत्ता लोग समुद्र नाम से पुकारते हैं ॥ ९३-९७ ॥

सहस्र अयुत कोटि का एक मध्य, सहस्र नियुत कोटि का एक अन्त, और सहस्र कोटि कोटि का एक परार्द्ध होता है । मनीषीगण दो परार्द्ध की एक संख्या मानते हैं । सौ संख्या को परिदृढ़ और सहस्र को परिपद्मक कहते हैं । उसके उपरान्त अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, स्वर्बुद (खर्बुद), खर्व, निखर्व, शङ्क, पद्म, समुद्र, मध्यम, परार्द्ध और पर आदि कुल अठारह संख्याएँ हैं, जो गणना के कार्यों में प्रयुक्त होती हैं । ये संख्याएँ परस्पर गुणित होने पर सौ-सौ की संख्या में परिणत हो जाती हैं । महर्षियों ने बताया है, ब्रह्मा के एक कल्प काल की परिमाण संख्या सृष्टि आरम्भ होने के काल से लेकर एक परार्द्ध होती है । इसके उपरान्त एक परार्द्ध काल सृष्टि

कोटिकोटिसहस्राणिं परार्ध इति कीर्त्यते । परार्धद्विगुणं चापि परमाहुर्मनीषिणः ॥ ९९ ॥
शतमाहुः परिदृढं सहस्रं परिपद्मकम् । विज्ञेयमयुतं तस्मान्नियुतं प्रयुतं ततः ॥ १०० ॥
अर्बुद न्यर्बुदं चैव स्यर्बुदं च ततः स्मृतम् । खर्वं चैव निखर्वं च शङ्कुः पद्मं तथैव च ॥ १०१ ॥
समुद्रं मध्यमं चैव परार्धमपरं ततः । एवमष्टादशैतानि स्थानानि गणनाविधौ ॥ १०२ ॥
शतानीति विजानीयात्संज्ञितानि महर्षिभिः । कल्पसंख्या प्रवृत्तस्य परार्धं ब्रह्मणः स्मृतम् ॥ १०३ ॥
तावच्छेषोऽपि कालोऽस्य तस्यान्ते प्रतिसृज्यते । पर एष परार्धश्च संख्यातः संख्यया मया ॥ १०४ ॥
यस्मादस्य परं वीर्यं परमायुः परं तपः । परा शक्तिः परो धर्मः परा विद्या परा धृतिः ॥ १०५ ॥
परं ब्रह्मा परं ज्ञानं परमैश्वर्यमेव च । तस्मात्परतरं भूतं ब्रह्मणोऽन्यन्न विद्यते ॥ १०६ ॥
परे स्थितो ह्येष परः सर्वार्थेषु ततः परः । संख्यातस्तु परो ब्रह्मा तस्यार्धं तु परार्धता ॥ १०७ ॥
संख्येयं चाप्यसंख्येयं सततं चापि तं त्रिकम् । संख्येयं संख्यया दृष्टमपारार्द्धाद्विभाष्यते ॥ १०८ ॥
राशौ दृष्टे न संख्याऽस्ति तदसंख्यस्य लक्षणम् । आनन्त्यं सिकताख्येषु दृष्टवान्पञ्चलक्षणम् ॥ १०९ ॥
ईश्वरैस्तत्प्रसंख्यातं शुद्धत्वाद्दिव्यदृष्टिभिः । एवं ज्ञानप्रतिष्ठत्वात्सर्वं ब्रह्माऽनुपश्यति ॥ ११० ॥
एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे नैमिषेयास्तपस्विनः । बाष्पपर्याकुलाक्षास्तु प्रहर्षाद्गद्गदस्वराः ॥ १११ ॥

रहित अवस्था में व्यतीत होता है। उसके बाद पुनः सृष्टि का प्रारम्भ होता है, इस प्रकार एक सृष्टि के आरम्भकाल से दूसरी सृष्टि के आरम्भ का काल दो परार्द्ध अर्थात् एक परकाल होता है। पर और परार्द्ध इन दोनों कालों को संख्याओं द्वारा मैं बता चुका ॥ ९८-१०४ ॥

भगवान् ब्रह्मा का यतः पराक्रम परम अतिशय महान् एवं सीमारहित है। परम आयु है, तपस्या परम है, शक्ति परा है, धर्म परम है, विद्या परा है, धैर्य श्रेष्ठ है एवं ब्रह्मज्ञान परम है, ऐश्वर्य परम है। संक्षेप में निष्कर्ष यह कि उनसे बढ़कर किसी परम वस्तु में कोई अन्य नहीं है, वही एकमात्र सभी वस्तुओं की अन्तिम सीमा में मर्यादा रूप से अवस्थित हैं। इसी कारण से समस्त सांसारिक पदार्थों में उन्हें ही पर पद से विशिष्ट समझना चाहिए, उनके इस महान् अधिकार-काल के आधे भाग को इसीलिए परार्द्ध कहा जाता है। पुरुष, प्रकृति एवं ब्रह्मा ये तीनों संख्याओं द्वारा सर्वथा असंख्येय हैं, अर्थात् गणनाओं से इनको नहीं बाँधा जा सकता है। किन्तु ऐसा होने पर भी संख्याओं द्वारा इनके पारस्परिक न्यूनाधिक्य का कुछ अनुमान किया जाता है। इसी कारण से इन्हें संख्येय कहते हैं। वस्तुतः परार्द्ध की पूर्ववर्तिनी संख्याओं की गणना की जा सकती है। उससे परवर्तिनी संख्याएँ व्यावहारिक दृष्टि से किसी प्रकार व्यक्त कर दी जाती है किन्तु उनकी गणना असंख्य में ही की जाती है ॥ १०५-१०८ ॥

एक महान् राशि की इकाइयों की संख्या नहीं की जाती। उसे असंख्य का लक्षण मानते हैं, क्योंकि उनकी गणना में सारी संख्याएँ ही समाप्त हो जाती हैं, कोई संख्या शेष नहीं रहती। जैसे आलू में अनन्तता है वैसे ही परार्द्ध, पर, ब्रह्मा, प्रकृति एवं पुरुष इन पाँचों के तात्त्विक निर्णय में कोई पूर्व निर्दिष्ट विधान दृष्टिगत नहीं है। केवल शुद्ध, बुद्ध, दिव्यदृष्टिसम्पन्न योगाभ्यासपरायण लोग ही अपनी महान् शुद्धता के कारण उनके तत्त्व निर्णय में समर्थ होते हैं। इन सभी तत्त्वों को भगवान् ब्रह्मा, समस्त ज्ञानराशि के एकमात्र आगारस्वरूप होने के कारण यथार्थतः देखते हैं ॥ १०९-११० ॥

पप्रच्छुर्मातरिश्वानं सर्वे ते ब्रह्मवादिनः । ब्रह्मलोकस्तु भगवन् यावन्मात्रान्तरः प्रभो ॥ ११२ ॥
योजनाग्रेण संख्यातः साधनं योजनस्य तु । क्रोशस्य च परीमाणं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ११३ ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मातरिश्वा विनीतवाक । उवाच मधुरं वाक्यं यथादृष्टं यथाक्रमम् ॥ ११४ ॥

वायुरुवाच

एतद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मे विवक्षितम् । अव्यक्ताद्व्यक्तभागो वै महास्थूलो विभाव्यते ॥ ११५ ॥
दशैव महतां भागा भूतादिः स्थूल उच्यते । दशभागाधिकं चापि भूतादिः परमाणुकः ॥ ११६ ॥
परमाणुः सुसूक्ष्मस्तु भावाग्राह्यो न चक्षुषा । यदभेद्यतमं लोके विज्ञेयं परमाणु तत् ॥ ११७ ॥
जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः । प्रथमं तत्प्रमाणानां परमाणुं प्रचक्षते ॥ ११८ ॥
अष्टानां परमाणूनां समवायो यदा भवेत् । त्रसरेणुः समाख्यातस्तत्पद्मरज उच्यते ॥ ११९ ॥
त्रसरेणवश्च येऽप्यष्टौ रथरेणुस्तु स स्मृतः । तेऽप्यष्टौ समवायस्था बलाग्रं तत्स्मृतं बुधैः ॥ १२० ॥
बलाग्राण्यष्ट लिक्षा स्याद्यूका तच्चाष्टकं भवेत् । यूकाष्टकं यवं प्राहुरङ्गुलं तु यवाष्टकम् ॥ १२१ ॥
द्वादशाङ्गुलपर्वाणि वितस्तिस्थानमुच्यते । रत्निश्चाङ्गुलपर्वाणि विज्ञेयो ह्येकविंशतिः ॥ १२२ ॥

वायु की इन बातों को सुनकर ब्रह्मवेत्ता नैमिषारण्य निवासी महर्षिगण अतिशय हर्ष से आनन्दाश्रु बहाने लगे । उनके कण्ठ गद्गद हो गये । उन सभी ब्रह्मवेत्ताओं ने मातरिश्वन् से पूछा—हे भगवन् वायुदेव ! ब्रह्मलोक जितनी दूरी पर अवस्थित है, इसकी दूरी जितने योजनों एवं कोसों में है, एवं उन योजनों और कोसों की परिभाषा क्या है इन सब बातों के सुनने की हम सबको जिज्ञासा हो रही है । इनकी यथार्थतः जानकारी हमें कराइये । महर्षियों को इस वाणी को सुनकर वायु ने मधुर एवं विनीत स्वर में उक्त ब्रह्मलोक के बारे में जो कुछ देखा या सुना था, क्रमानुसार बताना प्रारम्भ किया ॥ १११-११४ ॥

वायु ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! आप लोगों को अन्यान्य अव्यक्त से व्यक्त विषयों को बता रहा हूँ, सुनिये। अव्यक्त की अपेक्षा व्यक्त भाग महा स्थूल बताया जाता है । महत् के दस भाग जितना स्थूल भूतादि बताये जाते हैं, भूतादि से दस भाग अधिक स्थूल परमाणु कहा जाता है ॥ ११५-११६ ॥

यह परमाणु भी अतिशय सूक्ष्म होता है, इसे केवल अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है, आँखों द्वारा नहीं । लोक में जो सबसे सूक्ष्म परम अभेद्य वस्तु होती है, उसी को परमाणु जानना चाहिए । खिडकियों के भीतर घुसकर (कमरे के अन्दर आनेवाली सूर्य की किरणों में जो अति सूक्ष्म धूल के कण दिखलायी पड़ते हैं, वही प्रमाणों में सर्वप्रथम परमाणु कहे जाते हैं ॥ ११७-११८ ॥

ऐसे आठ परमाणुओं का जब समवाय (मिलन) होता है, तब उसे त्रसरेणु कहा जाता है, इसे पद्मरज भी कहा जाता है । ऐसे आठ त्रसरेणुओं के मेल से रथरेणु बनता है । वैसे जब आठ रथरेणु इकट्ठे हो जाते हैं, तब बुद्धिमान लोग उसे बलाग्र कहते हैं ॥ ११९-१२० ॥

ऐसे आठ बलाग्रों की एक लिक्षा होती है, और आठ लिक्षा की एक यूका कही जाती है । आठ यूका का एक जव कहा जाता है और आठ जव का एक अंगुल होता है । बारह अंगुलियों के पोरों की एक वितस्ति होती है, और ऐसे ही इक्कीस पोरों की एक रत्नि जाननी चाहिए ॥ १२१-१२२ ॥

चत्वारि विंशतिश्चैव हस्तः स्यादङ्गुलानि तु । किष्कुर्द्विरत्निर्विज्ञेयो द्विचत्वारिंशदङ्गुलः ॥ १२३ ॥
षण्णवत्यङ्गुलं चैव धनुराहुर्मनीषिणः । एतद्गव्यूतिसंख्यायां पादानं धनुषः स्मृतम् ॥ १२४ ॥
धनुर्दण्डो युगं नाली तुल्यान्येतान्यथाङ्गुलैः । धनुषस्त्रिशतं नल्वमाहुः संख्याविदो जनाः ॥ १२५ ॥
धनुःसहस्रे द्वे चापि गव्यूतिरुपदिश्यते । अष्टौ धनुःसहस्राणि योजनं तु विधीयते ॥ १२६ ॥
एतेन धनुषा चैव योजनं तु समाप्यते । एतत्सहस्रं विज्ञेयं शक्रक्रोशान्तरं तथा ॥ १२७ ॥
योजनानां तु संख्यातं संख्याज्ञानविशारदैः । एतेन योजनाग्रेण शृणुध्वं ब्रह्मणोऽन्तरम् ॥ १२८ ॥
महीतलात्सहस्राणां शतादूर्ध्वं दिवाकरः । दिवाकरात् सहस्रेण तावदूर्ध्वं निशाकरः ॥ १२९ ॥
पूर्णं शतसहस्रं तु योजनानां निशाकरात् । नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात् प्रकाशते ॥ १३० ॥
शतं सहस्रं संख्यातो मेरुर्द्विगुणितं पुनः । ग्राहन्तरमथैकैकमूर्ध्वं नक्षत्रमण्डलात् ॥ १३१ ॥
ताराग्रहणां सर्वेषामधस्ताच्चरते बुधः । तस्योर्द्ध्वश्चरते शुक्रस्तस्मादूर्ध्वं च लोहितः ॥ १३२ ॥
ततो बृहस्पतिश्चोर्ध्वं तस्मादूर्ध्वं शनैश्चरः । ऊर्ध्वं शतसहस्रं तु योजनानां शनैश्चरात् ॥ १३३ ॥
सप्तर्षिमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते । ऋषिभिस्तु सहस्राणां शतदूर्ध्वं विभाव्यते ॥ १३४ ॥
योऽसो तारामये दिव्ये विमाने ह्रस्वरूपके । उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि ॥ १३५ ॥
त्रैलोक्यस्यैष उत्सेधो व्याख्यातो योजनैर्मया । मन्वन्तरेषु देवानामिज्या यत्रैव लौकिकी ॥ १३६ ॥

चौबीस अंगुलों का एक हाथ होता है । बयालीस अंगुल अर्थात् दो रत्नि का एक किंष्कु होता है । बुद्धिमान् लोग छानबे अंगुलों का एक धनुष बताते हैं । यह धनुष गव्यूति अर्थात् दो कोस परिमाण मापने में एक साधन कहा जाता है । संख्या के तत्त्वों के जाननेवाले लोग धनुष, दण्ड, युग और नाली को अंगुलों द्वारा एक समान बताते हैं अर्थात् ये उपर्युक्त चारों परिमाण छानवे अंगुलों के कहे जाते हैं । तीन सौ धनुष परिमाण का एक नल्व कहा जाता है, और दो सहस्र धनुष की एक गव्यूति अर्थात् दो कोस होता है । आठ सहस्र धनुष का एक योजन बताया जाता है ॥ १२३-१२६ ॥

इस प्रकार धनुष के परिमाण द्वारा योजन तक का माप किया जाता है । एक सहस्र धनुष का एक कोस होता है । संख्यातत्त्वविदों ने इसी पद्धति से योजन तक का परिमाण निश्चित किया है । इस योजन के परिमाण द्वारा ब्रह्मलोक की दूरी सुनिये ॥ १२७-१२८ ॥

पृथ्वीतल से सौ सहस्र अर्थात् एक लाख योजन पर सूर्य का निवास है । सूर्य से सौ सहस्र योजन दूर चन्द्रमा है । चन्द्रमा से सहस्र योजन दूर नक्षत्रों का प्रकाश होता है । मेरुमण्डल इस नक्षत्र लोक से दो लाख योजन पर अवस्थित है। इस नक्षत्रमण्डल से ऊपर एक-एक ग्रह परस्पर इतनी ही दूरी पर हैं । सभी ताराग्रहों में बुध नीचे विचरण करता है, उसके ऊपर शुक्र का लोक है । उससे ऊपर मङ्गल है ॥ १२२-१३२ ॥

उससे ऊपर बृहस्पति, उसके बाद शनैश्चर का निवास है, शनैश्चर से ऊपर एक सहस्र योजन पर सप्तर्षि मण्डलों का प्रकाश होता है । इन सप्तर्षियों से भी एक लाख योजन ऊपर तारामय दिव्य लघु विमान में उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव स्वर्गलोक के प्रमुख स्तम्भरूप होकर विराजमान रहते हैं ॥ १३३-१३५ ॥

योजनों द्वारा त्रैलोक्य की ऊँचाई की व्याख्या मैं कर चुका । सभी मन्वन्तरों में जो लौकिक यज्ञादि सत्कर्मों

वर्णाश्रमेभ्य इज्या तु लोकेऽस्मिन्या प्रवर्तते । सर्वेषां देवयोनीनां स्थितिहेतुः स वै स्मृतः ॥ १३७ ॥
त्रैलोक्यमेतद्व्याख्यातमत ऊर्ध्वं निबोधत । ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यस्मिंस्ते कल्पवासिनः ॥
एक योजनकोटी सा इत्येवं निश्चयं गतम् ॥ १३८ ॥
द्वे कोट्यौ तु महर्लोकाद्यस्मिंस्ते कल्पवासिनः । यत्र ते ब्रह्मणः पुत्रा दक्षाद्याः साधकाः स्मृताः ॥ १३९ ॥
चतुर्गुणोत्तरादूर्ध्वं जनलोकात्तपः स्मृतम् । वैराजा यत्र ते देवा भूतदाहविवर्जिताः ॥ १४० ॥
षड्गुणं तु तपोलोकात् सत्यलोकान्तरं स्मृतम् । अपुनर्मारकामानां ब्रह्मलोकः स उच्यते ॥ १४१ ॥
यस्मान्न च्यवते भूयो ब्रह्माणं स उपासते । एककोटिर्योजनानां पञ्चाशन्नियुतानि तु ॥ १४२ ॥
ऊर्ध्वं भागस्ततोऽण्डस्य ब्रह्मलोकात्परः स्मृतः । चतुरश्चैव कोट्यस्तु सत्या पञ्चषष्टि च ॥ १४३ ॥
एषोऽर्द्धांशप्रचारोऽस्य गत्यन्तश्चापरः स्मृतः । ध्रुवाग्रमेतद्व्याख्यातं योजनाग्राद्यथाश्रुतम् ॥ १४४ ॥
अधोगतीनां वक्ष्यामि भूतानां स्थानकल्पनाम् । गच्छन्ति घोरकर्माणः प्राणिनो यत्र कर्मभिः ॥ १४५ ॥
नरको रौरवो रोधः सूकरस्ताल एव च । तप्तकुम्भो महाज्वालः शबलोऽथ विमोचनः ॥ १४६ ॥
कृमी च कृमिभक्षश्च लालाभक्षो विशंननः । अधः शिराः पूयवहो रुधिरान्धस्तैव च ॥ १४७ ॥

के अनुष्ठान इस लोक में वर्णाश्रमों के अनुसार होते हैं, वे ही समस्त देवयोनि में उत्पन्न प्राणियों की स्थिति का कारण कहा जाता है ॥ १३६-१३७ ॥

त्रैलोक्य की यह व्याख्या हो गई, अब इसके आगे का विवरण सुनिये ।

ध्रुवलोक से ऊपर महर्लोक की स्थिति है, जिसमें उन कल्पपर्यन्त स्थिर रहनेवाले महात्माओं का निवास रहता है । उसकी दूरी ध्रुव से एक कोटि योजन की है—ऐसा निश्चय हो चुका है ॥ १३८ ॥

उस महर्लोक से दो कोटि योजन ऊपर जनलोक की स्थिति है, जिनमें सिद्धि के अभिलाषी ब्रह्मा के पुत्र दक्षादि कल्पपर्यन्त निवास करते हैं । जनलोक के चार कोटि योजन ऊपर तपोलोक की स्थिति कही गई है । जिनमें भूतों के तापादि से सर्वथा रहित वैराज नामक देवताओं का निवास कहा जाता है । तपोलोक से छह गुणित अर्थात् छह कोटि योजन ऊपर सत्यलोक की स्थिति कही गयी है । यही पुनरावृत्ति रहित सिद्धों का ब्रह्मलोक कहा जाता है ॥ १३९-१४१ ॥

उस ब्रह्मलोक से उनका कभी भी पतन नहीं होता । वहाँ ये सर्वथा ब्रह्मा की उपासना में निरत रहते हैं। इस ब्रह्मलोक से एक करोड पचास नियुत ऊपर ब्रह्माण्ड की स्थिति कही गई है । इसका परिमाण चार कोटि पैंसठ नियुत योजन कहा जाता है । इस अंश के अधो भाग में ध्रुव की स्थिति और उसी में नक्षत्र ग्रहादिकों का विचरण होता है । ऊपरी भागों में किसी की भी गति नहीं सुनी जाती है ! मैंने जिस प्रकार सुना था उसी प्रकार योजनों द्वारा उपर्युक्त लोकों की दूरी आदि का वर्णन ध्रुवलोक से ऊपर स्थित आप लोगों के सम्मुख कर चुका ॥१४२-१४४॥

अब इसके बाद अधोगति को प्राप्त होने वाले जीवों के निवास स्थलों का वर्णन कर रहा हूँ । जहाँ पर घोर पाप कर्म करने वाले पापात्मा अपने कर्मों के अनुसार गमन करते हैं ॥ १४५ ॥

रौरव, रोध, सूकर, ताल, तप्तकुम्भ, महाज्वाल, शबल, विमोचन, कृमी, कृमिभक्ष, लालाभक्ष, विशंनन,

तथा वैतरणं कृष्णमसिपत्रवनं तथा । अग्निज्वालो महाघोरः संदंशोऽथ श्वभोजनः ॥ १४८ ॥
तमश्च कृष्णसूत्रश्च लोहश्चाप्यसिजस्तथा । अप्रतिष्ठोऽथ वीथ्यश्वनरका ह्येवमादयः ॥ १४९ ॥
तामसा नरकाः सर्वे यमस्य विषये स्थिताः । येषु दुष्कृतकर्माणः पतन्तीह पृथक्पृथक् ॥ १५० ॥
भूमेरधस्तात्ते सर्वे रौरवाद्याः प्रकीर्तिताः । रौरवे कूटसाक्षी तु मिथ्या यश्चाभिशंसति ॥
क्रूरग्रहे पक्षवादी ह्यसत्यः पतते नरः ॥ १५१ ॥
रोधे गोघ्नो भ्रूणहा च ह्यग्निदाता पुरस्य च । सूकरे ब्रह्महा मज्जेत्सुरापः स्वर्णतस्करः ॥ १५२ ॥
ताले पतेत्क्षत्रियहा हत्वा वैश्यं च दुर्गतिम् । ब्रह्महत्यां च यः कुर्याद्यश्च स्याद्गुरुतल्पगः ॥ १५३ ॥
तप्तकुम्भी स्वसागामी तथा राजभटश्च यः । तप्तलोहे चश्ववणिक्तथा बन्धनरक्षिता ॥ १५४ ॥
साध्वीविक्रयकर्ता च यस्तु भक्तं परित्यजेत् । महाज्वाले दुहितरं स्नुषां गच्छति यस्तु वै ॥ १५५ ॥
वेदो विक्रीयते येन वेदं दूषयते च यः । गुरूंश्चैवावमन्यन्ते वाऽऽक्रोशैस्ताडयन्ति च ॥ १५६ ॥
अगम्यगामी च नरो नरकं शबलं व्रजेत् । विमोहे पतिते चौरे मर्यादां यो भिनत्ति वै ॥ १५७ ॥

अधःशिरा, पूयवह. रुधिरान्ध, वैतरण, कृष्ण, असिपत्रवन, अग्निज्वाल, महाघोर, संदंश, श्वभोजन, तम, कृष्णसूत्र, लोह, असिज, अप्रतिष्ठ, वाच्यश्व आदि नरक कहे गये हैं ॥ १४६-१४९ ॥

घोर अंधकारमय नरक हैं, जो यमराज के अधीन हैं । इन्हीं नरकों में दुष्कर्मी लोग पृथक्-पृथक् पतित होते हैं । ये रौरवादि सभी नरक भूमि के निम्न भाग में अवस्थित कहे जाते हैं । जो कूट साक्षी है अर्थात् झूठी गवाही देता है, सर्वथा मिथ्या बोलने में निरत रहता है, एक पक्ष का किसी कारणवश समर्थन करता है यह असत्यभाषी मनुष्य घोर रौरव नरक में गिरता है ॥ १५०-१५१ ॥

गोहत्या करने वाला, गर्भ की हत्या करने वाला, किसी ग्रामादि में आग लगानेवाला पापी मनुष्य रोध नामक नरक में गिरता है । जो ब्राह्मण की हत्या करता है, सुरापान करता है, सुवर्ण की चोरी करता है, वह पापात्मा सूकर नामक नरक में पतित होता है । जो किसी क्षत्रिय की हत्या करता है, अथवा किसी ब्राह्मण या वैश्य की हत्या करता है, गुरु की स्त्री के साथ गमन करता है, वह पापी मनुष्य घोर ताल नामक नरक में निपतित होता है ॥ १५२-१५३ ॥

जो पापात्मा बहन के साथ व्यभिचार करता है, राजा की हत्या करता है वह तप्तकुम्भ नामक नरक लोक में निवास करता है । दूसरे के अश्व को चुराकर विक्रय करने वाला तथा अन्यायपूर्वक किसी को बाँधने (फँसाने) वाला पापी पुरुष तप्तलोह नामक नरक में निवास करता है । जो अपनी पतिव्रता स्त्री को बेचता है तथा अपने अनुगामी भक्त को छोड़ देता है, अपनी पुत्री अथवा पुत्रवधू के साथ समागम करता है, वह पापात्मा मनुष्य महाज्वाल नामक नरक में पतित होता है ॥ १५२-१५५ ॥

जो वेदों का विक्रय अथवा निन्दा करता है, अपने गुरुजनों का अपमान करता है, उन्हें गाली देता है या मारता पीटता है, अथवा अगम्य स्थलों में (पुत्री, पुत्रवधू, भगिनी, गुरुपत्नी आदि के साथ) गमन करता है, वह पापात्मा शबल नामक घोर नरक में गिरता है । जो परद्रव्यापहारी पापात्मा किसी की मर्यादा (प्राचीर, चहारदीवारी आदि) का भेदन करता है, वह विमोह नामक नरक में पतित होता है । जो किसी का अनिष्ट साधन करता है वह

दुरध्वं कुरुते यस्तु कीटलोहं प्रपद्यते । देवब्राह्मणविद्वेष्टा गुरुणां चाप्यपूजकः ॥
रत्नं दूषयते यस्तु कृमिभक्ष्यं प्रपद्यते ॥ १५८ ॥
पर्यश्नाति य एकोऽन्यो ब्राह्मणीं सुहृदः सुताम् । लालाभक्षे स पतति दुर्गन्धे न .के गतः ॥ १५९ ॥
काण्डकर्ता कुलालश्च निष्कहर्ता चिकित्सकः । आरामेष्वग्निदाता यः पतते स विशंसने॥ १६० ॥
असत्प्रतिग्रही यश्च तथैवायाज्ययाजकः । नक्षत्रैर्जीवितो यश्च नरो गच्छत्यधोमुखम् ॥ १६१ ॥
क्षीरं सुरां च मांसं च लाक्षां गन्धं रसं तिलान् । एवमादीनि विक्रीणन्घोरे पूयवहे पतेत् ॥ १६२ ॥
यः कुक्कुटानि बध्नाति मार्जारान्सूकरांश्च तान् । पक्षिणश्च मृगाञ्छागान्सोऽप्येनं नरकं व्रजेत् ॥ १६३ ॥
अजाविको माहिषकस्तथा चक्रध्वजी च यः । रंगोपजीविको विप्रः शाकुनिग्रामयाजकः ॥ १६४ ॥
अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी । सुरापो मांसभक्षश्च तथा च पशुघातकः ॥ १६५ ॥
विशस्ता महिषादीनां मृगहन्ता तथैव च । पर्वकारश्च सूची च यश्च स्यान्मित्रघातकः ॥
रुधिरान्धे पतन्त्येते एवमाहुर्मनीषिणः ॥ १६६ ॥
उपविष्टमेकपङ्क्त्यां विषमं भोजयन्ति ये । पतन्ति नरके घोरे विड्भुजे नात्र संशयः ॥ १६७ ॥

कीटलोह नामक नरक में निवास करता है । देवता और ब्राह्मण के साथ जो पापात्मा विद्वेष करता है, गुरुजनों की पूजा नहीं करता तथा रत्न को दूषित करता है, वह कृमिभक्ष्य नामक घोर नरक में पहुँचता है ॥ १५६-१५८ ॥

जो पापात्मा किसी ब्राह्मणी, मित्रादि एवं कन्या के सामने उपस्थित रहने पर भी उन्हें न देकर अकेला भोजन करता है वह अतिशय दुर्गन्धमय लालाभक्ष नामक घोर नरक में निपतित होता है । जो पापात्मा काण्डकर्त्ता होते हैं, शराब बनाते हैं, दूसरों का निष्क चुराते हैं, अच्छी ओषधि जानते हुए भी द्वेषवश या लालच से बुरी दवा करते हैं, किसी के बाग अथवा उपवनादि में आग लगाते हैं वे विशसन नामक घोर नरक में गिरते हैं । जो असत् कर्मों द्वारा धन उपार्जित करता है अथवा नीच प्रवृत्ति वालों का दान ग्रहण करता है, जिन्हें यज्ञादि का अधिकार नहीं है, उनसे यज्ञादि का अनुष्ठान करवाता है, नक्षत्रों ज्योतिष से अपनी जीविका चलाता है, वह पापात्मा अधोमुख नामक नरक में जाता है । दूध, मंदिरा, मांस, लाक्षा, सुगन्धित पदार्थ तैल इत्रादि, रस एवं तिल आदि वस्तुओं का विक्रेता घोर पूयवह नामक नरक में गिरता है ॥ १५९-१६२ ॥

जो मुर्गे को मारता है, बिल्ली और सूअर का वध करता है, पक्षियों, मृगों एवं वकरों को मारता है, वह पापात्मा प्राणी भी उसी पूयवह नामक नरक में जाता है । जो ब्राह्मण होकर भी बकरी, वकरे, भेद, महिष आदि का पालन करता है, चक्र एवं ध्वजा ग्रहण करता है, रंगों की बिक्री से जीविका चलाता है, पक्षी मारता है, ग्रामों में इधर-उधर झूठ-मूठ का यज्ञ करता फ़िरता है, किसी के घर में आग लगाता है, विष देता है, कुण्डों अर्थात् संकरवर्ण वालों के घर भोजन करता है, सोमरस विक्रय करता है, मदिरा पीता है, मांस भक्षण करता है, पशुओं की हिंसा करता है, महिषादि का बलिदान करता है, मृगादि वन्य जन्तुओं का शिकार करता है, गोठे बनाता है, सूचीकर्म (सिलाई) करता है, मित्रों की हत्या करता है, वह रुधिरान्ध नामक घोर नरक में गिरता है ऐसा मनीषियों का कथन है ॥ १६३-१६६ ॥

जो एक ही पंक्ति में बैठाये गये व्यक्तियों को भोजन कराने में भेद करते हैं, वे पापात्मा घोर विड्भुज नामक

मृषावादी नरो यश्च तथा प्राक्रोशकोऽशुभः । पतेत्तु नरके घोरे मूत्राकीर्णे स पापकृत ॥ १६८ ॥
मधुरग्राहाभिहन्तारो यान्ति वैतरणीं नराः । उन्मत्ताश्चित्तभग्नाश्च शौचाचारविवर्जिताः ॥ १६९ ॥
क्रोधना दुःखदाश्चैव कुहकाः कृष्टगामिनः । असिपत्रवने छेदी तथा ह्यौरभ्रिकाश्च ये ॥
कर्तनैश्च विकृष्यन्ते मृगव्याधाः सुदारुणैः ॥ १७० ॥
अश्रमप्रत्यवसिता अग्निज्वाले पतन्ति वै । भोज्यन्ते श्याम शबलैर्यस्तुण्डैश्च वायसैः ॥ १७१ ॥
इज्यायां व्रतमालोपात्सन्दंशे नरके पतेत् । स्कन्दन्ते यदि वा स्वप्ने व्रतिनो ब्रह्मचारिणः ॥ १७२ ॥
पुत्रैरध्यापिता ये च पुत्रैराज्ञापिताश्च ये । ते सर्वे नरकं यान्ति नियतं तु श्वभोजने ॥ १७३ ॥
वर्णाश्रमविरुद्धानि क्रोधहर्षसमन्विताः । कर्माणि ये तु कुर्वन्ति सर्वे निरयगामिनः ॥ १७४ ॥
उपरिष्टात्सितो घोर उष्णात्मा रौरवो महान् । सुदारुणस्तु शीतात्मा तस्याधस्तात्तपः स्मृतः ॥ १७५ ॥
एवमादिक्रमणैव वर्ण्यमानन्निबोधत । भूमेरधस्तात्सप्तैव नरकाः परिकीर्तिताः ॥ १७६ ॥
अधर्मसूनवस्ते स्युरन्धतामिस्रकादयः । रौरवः प्रथमस्तेषां महा रौरव एव च ॥ १७७ ॥

नरक में गिरते हैं—इसमें सन्देह नहीं । जो मिथ्यावादी मनुष्य होता है तथा जो सर्वथा दूसरे को अभिशाप अथवा गाली-गलौज दिया करता है, अमांगलिक कार्यों में निरत रहता है, वह पापात्मा मूत्राकीर्ण नामक नरक में निवास करता है, जो पापात्मा मधुरकर्म करने वाले को मारते हैं, अर्थात् अपने प्रति शुभ कर्म करने वाले को भी मार डालते हैं, वे वैतरणी में जाते हैं । जो उन्मत्त हैं, जिनका चित्त विकृत एवं मस्तिष्क ठिकाने नहीं रहता, पवित्रता एवं आचार से जो विहीन रहते हैं ॥ १६७-१६९ ॥

अकारण क्रोध करते हैं. दूसरों को सदा दुःख दिया करते हैं, जादू या इन्द्रजालादि से दूसरे को अपने वश में रख कर उनके साथ अत्याचार करते हैं । वे परम दारुण स्वभाव वाले हिंस्र जन्तुओं एवं व्याध द्वारा काट-काट कर मारे जाते हैं । वे पापात्मा असिपत्रवन नामक घोर नरक में गिरते हैं ॥ १७० ॥

ब्रह्मचर्यादि आश्रमों की मर्यादा को भ्रष्ट करनेवाले पापात्मा अग्निज्वाल नामक घोर नरक में पतित होते हैं, वहाँ पर सोहमय चोचवाले श्याम एवं चितकबरे रंग के काण उनका शरीर नोच-नोचकर भक्षण करते हैं, यज्ञादि सत्कर्म, प्रवादि सदाचारों से विहीन होने पर पापात्मा प्राणी संदेश नामक नरक में गिरता है । जो व्रती अथवा ब्रह्मचारी स्वप्नावस्था में भी स्खलित हो जाते हैं, अथवा जो मनुष्य अपने पुत्रों द्वारा अध्ययन करते हैं, अथवा पुत्रों द्वारा अनुशासित होकर जीवन यापन करते हैं, वे सब भी स्वभोजन नामक घोर नरक में निवास करते हैं । वर्णाश्रम की मर्यादा से विरहित अनायास क्रोध हर्षादि में आविष्ट होकर जो लोग बिना विचारे सदसद कार्य किया करते हैं, वे भी निरय (नरक) गामी होते हैं ॥ १७१-१७४ ॥

उपर्युक्त रौरव नरक महान् विस्तृत एवं घोर है । ऊपर से शीतल और भीतर से अति ऊष्ण है । उस के निम्न प्रदेश में परम शीतल तप नामक नरक कहा जाता है । इस भूमितल के निम्नप्रदेश में सात नरक लोक पाये जाते हैं, उन्हें क्रमानुरूप सुनिये । उन अधर्म से उत्पन्न होनेवाले नरकों के नाम अन्धतामिस्र आदि हैं । उनमें रौरव सर्वप्रथम एवं महान् दारुण कष्टपूर्ण है । दूसरा महारौरव नामक है । तीसरा उसका निम्नप्रदेश में परम शीतल एवं अति उष्ण नरक स्मरण किया जाता है, उसका नाम कालसूत्र है । उसका अपर नाम महाहविविधि भी बतलाया

अस्याधः पुनरप्यन्यः शीतस्तप इति स्मृतः । तृतीयः कालसूत्रः स्यान्महाहविविधःस्मृतः ॥ १७८ ॥
अप्रतिष्ठश्चतुर्थः स्यादवीची पञ्चम स्मृतः । लोहपृष्ठस्तमस्तेषामविधेऽस्तु सप्तमः ॥ १७९ ॥
घोरत्वाद्रौरवः प्रोक्तः साम्भको दहनः स्मृतः। सुदारुणस्तु शीतात्मा तस्याधस्तात्तपोऽधमः॥ १८० ॥
सर्पो निकृन्तनः प्रोक्तः कालसूत्रेऽतिदारुणः। अप्रतिष्ठे स्थितिर्नास्ति भ्रमस्तस्मिन्सुदारुणः ॥ १८१ ॥
अवीचिर्दारुणः प्रोक्तो यन्त्रसंपीडनाच्च सः। तस्मात्सुदारुणो लोहः कर्मणां क्षयणाच्च सः ॥ १८२ ॥
तथाभूतो शरीरत्वादविधिभ्यस्तु स स्मृतः । पीडबन्धवधासङ्गादप्रतीकारलक्षणः ॥ १८३ ॥
ऊर्ध्वं शैलमितास्ते तु निरालोकाश्च ते स्मृताः । दुःखोत्कर्षस्तु सर्वेषु ह्यधर्मस्य निमित्ततः॥ १८४ ॥
ऊर्ध्वं लोकैः समावेतौ निरालोकौ च तावुभौ । कूटाङ्गारप्रमाणैश्च शरीरी मूत्रनायकाः ॥ १८५ ॥
उपभोगसमर्थैस्तु सद्यो जायन्ति कर्मभिः । दुःखप्रकर्षश्चोग्रत्वं तेषु सर्वेषु वै स्मृतः ॥ १८६ ॥
यातनाश्चाप्यसंख्येया नारकाणां तथा स्मृताः । तत्रानुभूयते दुःखं क्षीणे कर्मणि वै पुनः ॥ १८७ ॥
तिर्यग्योनौ प्रसूयन्ते कर्मशेषे गते ततः । देवाश्च नारकाश्चैव ह्यूर्ध्वं चाधश्च संस्थिताः ॥ १८८ ॥

जाता है । चौथा नरक अप्रतिष्ठ कहा जाता है । पाँचवाँ अवीची नामक नरक है । छठवाँ लोहपृष्ठ नामक नरक है । सातवाँ अविधेय नाम से प्रख्यात है ॥ १७५-१७९ ॥

अतिशय घोर कष्टप्रद होने के कारण प्रथम नरक का नाम रौरव पड़ा है । यह यद्यपि जलयुक्त है, पर परम ज्वलनात्मक है । उसके निम्नप्रदेश में परम शीतल, अति दारुण एवं अधम तम नामक नरक है ॥१८० ॥

कालसूत्र में डसने वाला सर्प बतलाया जाता है इसलिए वह परम दारुण है । अप्रतिष्ठ नरक में किसी प्रकार भी प्राणी ठहर नहीं सकता, क्योंकि उसमें अतिशय दारुण भँवरें उठती रहती हैं ॥ १८१ ॥

यन्त्र द्वारा पीड़ित किया जाता है इसी कारण से अवीचि नरक भी परम दारुण कहा जाता है । उससे भी दारुण लोहपृष्ठ नामक है । उसमें जलकर मनुष्यों के समस्त कर्म विलीन हो जाते हैं, इसी कारण परम दारुण वह भी कहा जाता है । सातवें अविधेय नामक नरक में तथाकथित अशरीरी रहने पर भी प्राणी को जिस बन्धनजनित पीड़ा एवं कष्ट को सहन करना पड़ता है, वह परम असह्य हो जाता है, उसके प्रतीकार का कोई उपाय नहीं दिखाता ॥ १८२-१८३ ॥

ये नरक लोक सब-के-सब पर्वतों के समान भीषणाकार एवं आलोक से सर्वदा विहीन कहे जाते हैं । अधर्म के कारण इन सब में प्राणियों को असा यातना का अनुभव करना पड़ता है । इन सबों में दुःखों का प्रावल्य रहता है ॥ १८४ ॥

विशेषतया ऊपर के दो लोक अन्य लोकों के समान होते हुए भी परम दारुण अन्धकारमय होते हैं । इन नरकों में विविध कष्टों का अनुभव करने में सक्षम शरीर को पूर्वकृत कर्मों के अनुसार धारणकर वे पापात्मा दुःख भोगते हैं । सभी नरकों में दुःख को अधिकता बतलायी जाती है । नरक निवासियों को दी जानेवाली उन यातनाओं की संख्या अगणित है । वहाँ विविध प्रकार के दुःखों का अनुभव कर लेने के उपरान्त जब कर्मों का सर्वथा नाश हो जाता है तब वे तिर्यक् योनियों में उत्पन्न होते हैं ॥ १८५-१८७ ॥

ऊपर रहने वाले समस्त देवताओं एवं निम्नप्रदेशों में रहने वाले नारकीय प्राणी ये सब अपने धर्माधर्म के

धर्माधर्मनिमित्तेन सद्यो जायन्ति मूर्तयः । उपयोगार्थमुत्पत्तिरौपपत्तिककर्मतः ॥ १८९ ॥
पश्यन्ति नरकान्देवा ह्यधोवक्रान् ह्यधोगतान् । नारकाश्च तथा देवान् सर्वान्पश्यन्त्यधो मुखान् ॥ १९० ॥
अनग्रभूलता यस्माद्धारणाश्च स्वभावतः । तस्मादूर्ध्वमधोभावो लोकालोके न विद्यते ॥ १९१ ॥
एषा स्वभाविक संज्ञा लोकालोके प्रवर्तते । अथाब्रुवन्पुनर्वायुं ब्राह्मणाः सत्रिणस्तदा ॥ १९२ ॥

ऋषय ऊचुः

सर्वेषामेव भूतानां लोकालोकनिवासिनाम् । संसारे संसरान्तीह यावन्तः प्राणिनश्च तान् ॥ १९३ ॥
संख्यया परिसंख्याय ततः प्रब्रूहि कृत्स्नशः । ऋषिणां तद्वचः श्रुत्वा मारुतो वाक्यमब्रवीत् ॥ १९४ ॥

वायुरुवाच

न शक्या जन्तवः कृत्स्नाः प्रसंख्यातुं कथंचन । अनाद्यन्ताश्च प्रमाणा ह्यप्यूहेन व्यवस्थिताः ॥
गणना विनिवृत्तैषामानन्त्येन प्रकीर्तिताः ॥ १९५ ॥
न दिव्यचक्षुषा ज्ञातुं शक्या ज्ञानेन वा पुनः । चक्षुषा वै प्रसंख्यातुमतो हन्ते नराधिपाः ॥ १९६ ॥
अनाध्यानादवेद्यत्वान्नैव प्रश्नो विधीयते । ब्रह्मणा संज्ञितं यत्तु सांख्यया तन्निबोधत ॥ १९७ ॥
यः सहस्रतमो भागः स्थावराणां भवेदिह । पार्थिवाः कृमयस्तावत्संसेकाद्येषु संभवाः ॥ १९८ ॥
संसेकजानाम्भागेन सहस्रेणैव संमिताः । औदका जन्तवः सर्वे निश्चयात्तद्विचारितम् ॥ १९९ ॥

अनुसार शरीर धारण करते हैं । इस उत्पत्ति के मूल उनके स्वयंकृत कर्म हैं, उन औत्पत्तिक कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए ही ये शरीर धारण करते हैं । देवगण इन अधोभाग में अवस्थित नारकीय प्राणियों को अधोमुख हुए देखते हैं इसी प्रकार वे नारकीय भी समस्त देवताओं को अधोमुख देखते हैं । उन लोकों में अग्रभाग एवं मूलभाग का कोई भेद नहीं है, उनकी स्थिति यो हो स्वाभाविक है, इसी कारण से लोकालोक में कोई ऊपर अथवा निम्न का भेदभाव नहीं है । लोकालोक की यह स्वाभाविक संज्ञा प्रचलित है । वायु की इन बातों को सुनने के उपरान्त मज्ञकर्ता ब्रह्मणों ने पुनः पूछा ॥ १८८-१९२ ॥

ऋषियों ने कहा—भगवन् वायुदेव ! उस लोकालोक में निवास करनेवाले समस्त प्राणियों की जितने इस संसार में विचरण करते हैं उनकी संख्या क्या है, वे कौन हैं ये सब बातें सम्पूर्णतया मुझे बतलायें । ऋषियों की इस जिज्ञासा को सुनकर मारुत बोले ॥ १९३-१९४ ॥

वायु ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! उन सभी प्राणियों की संख्या बताना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है । उनका प्रवाह अनादि है, अनन्त है, वे परस्पर इतने सङ्कीर्ण हैं कि उनकी गणना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है । वे अनन्त हैं ऐसा ही उनके विषय में कहा जाता है । दिव्य दृष्टि अथवा परम ज्ञान द्वारा भी उनकी निश्चित संख्या नहीं जानी जा सकती । अतः हे नरश्रेष्ठवृन्द ! मैं उनकी निश्चित संख्या इस धर्म चक्षु से किस प्रकार बतला सकता हूँ जो अचिन्तनीय एवं सर्वथा अज्ञात है—ऐसे प्रश्न को नहीं करना चाहिए । ब्रह्मा ने इस विषय में जो सामान्यतया जातिगत संख्याएँ निश्चित की हैं, उसे कहता हूँ । इस संसार में स्थावर जीवों का जो सहस्रतम भाग संख्या में उतने ही पार्थिवकृमि हैं, जो संसेक आदि से उत्पन्न होते हैं । इन संसेकज जन्तुओं का सहस्त्रतम भाग जितना होता है उतने ही समस्त जतीय जन्तु होते हैं, यह भलीभाँति निश्चित एवं सुविचारित मत है ॥ १९५-१९९ ॥

सहस्रेणैव भावेन सत्यानां सलीलौकसाम् । विहंगमास्तु विज्ञेया लौकिकास्ते च सर्वशः ॥ २०० ॥
यः सहस्रतमो भागस्तेषां वै पक्षिणां भवेत् । पशवस्तत्समा ज्ञेया लौकिकास्तु चतुष्पदाः ॥ २०१ ॥
चतुष्पदानां सर्वेषां सहस्रेणैव संमताः । भागेन द्विपदा ज्ञेया लौकिकेऽस्मिंस्तु सर्वशः ॥ २०२ ॥
यः सहस्रतमो भागो भागे तु द्विपदां पुनः । धार्मिकास्तेन भागेन विज्ञेयाः संमिताः पुनः ॥ २०३ ॥
सहस्रेणैव भागेन धार्मिकेभ्यो दिवं गताः । यः सहस्रतमो भागो धार्मिकानां भवेद्दिवि ॥
संमितास्तेन भागेन मोक्षिणस्तावदेव हि ॥ २०४ ॥
स्वर्गोपपादकैस्तुल्या यातनास्थानवासिनः । पतिताश्चूर्णमुद्देशाद्दुरात्मानो म्रियन्ति ये ॥
रौरवे तामसे ह्येते शीतोष्णं प्राप्नुवन्ति ते ॥ २०५ ॥
वेदनाकटुकास्तब्धा यातनास्थानमागताः । उष्णस्तु रौरवो ज्ञेयस्तेजो घोररसात्मकः ॥ २०६ ॥
ततो धनात्मिकश्चापि शीतात्मा सततं तपः । एवं सुदुर्लभाः सन्तः स्वर्गे च धार्मिका नराः ॥ २०७ ॥
एषा संख्या कृता संख्या ईश्वरेण स्वयंभुवा । गणना विनिवृत्तैषा संख्या ब्राह्मी च मानुषी ॥ २०८ ॥

ऋषय ऊचुः

महो जनस्तपः सत्यं भूतो भाव्यो भवस्तथा । उक्ता ह्येते त्वया लोका लोकानामन्तरेण च ॥
लोकान्तरं च यादृग्वै तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥ २०९ ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ऋषिणामूर्ध्वरेतसाम् । सवायुर्दृष्टतत्त्वार्थ इदं तत्त्वमुवाच ह ॥ २१० ॥

इन जलनिवासी जन्तुओं का सहस्रतम भाग लौकिक विहङ्गमों की संख्या के बराबर है । उन लौकिक विहङ्गमों का सहस्रतम भाग जितना होता है उतनी ही संख्या में समस्त चतुष्पद जीव होते हैं । उन समस्त चतुष्पदों का सहस्रतम भाग जितना होता है, उतने ही संख्या में द्विपद (मनुष्य) होते हैं । पुनः इन द्विपदों का जो सहस्रतम भाग होता है उतने ही संख्या में सम्माननीय धार्मिक विचारवाले सत्पुरुष होते हैं । इन धार्मिकों का सहस्रतम भाग जितना होता है उतने स्वर्गीय धार्मिक होते हैं । स्वर्ग में इन धर्मात्मा महापुरुषों की संख्या का जितना सहलतम भाग होता है उतनी ही मोक्ष प्राप्त करनेवालों की संख्या होती है ॥ २००-२०४ ॥

वे स्वर्गोपपादकों के समान ही होते हैं । जो पापा कर्म में निरत रहने वाले पवित दुरात्मा मृत्यु के वश में होकर उन यातना स्थानों-नरकों में निवास करते हैं, वे अन्धकारपूर्ण भयानक रौरवादि नरकों में परम शप्त एवं उत्ताप का अनुभव करते हैं । उन यातना स्थानों में पहुँचकर वेदना की असह्य कटुता को वे स्तब्ध होकर सहन करते हैं, उस रौरव नरक को परम उष्ण तेजोमय (उत्तापक) एवं घोर रसात्मक जानना चाहिए । उससे भी परम भयानक सर्वदा परम शीतात्म तप (तम) नामक नरक है । सात्विक गुणसम्पन्न धार्मिक नर परम दुर्लभ होते हैं, जो स्वर्ग लोक में निवास करते हैं । स्वयंभू परमैश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा ने उपर्युक्त आनुपातिक संख्या निश्चित की है । उस विषय में मनुष्यों की निश्चित की गयी संख्या की निवृत्ति है, अर्थात् मानव कभी इस विषय की संख्या आदि निश्चित नहीं कर सकता, केवल ब्राह्मी संख्या ही ऐसे स्थलों पर प्रमाणभूत होती है ॥ २०५-२०८ ॥

ऋषिवृन्द ने कहा—भगवन् वायुदेव ! आपने मह, जन, तप, सत्य, भूत (भू), भाव्य (भुव) एवं भव (स्वर)—इन सातों लोकों का तथा लोकों के भेद का वर्णन किया है । कृपया हमें बताईए कि आगे क्या होगा । उन ऊर्ध्वरेता ऋषियों की बात सुनकर तत्त्वविद् वायु ने तथ्यपूर्ण सत्य कहना प्रारम्भ किया ॥ २०९-२१० ॥

वायुरुवाच

व्यक्तं तर्केण पश्यन्ति योगात् प्रत्यक्षदर्शिनः । प्रत्याहारेण ध्यानेन तपसा च क्रियात्मनः ॥ २११ ॥
ऋभुः सनत्कुमाराद्याः संबुद्धाः शुद्धबुद्धयः । व्यपेतशोका विरजाः सन्तो ब्रह्मेवसत्तमाः ॥ २१२ ॥
अक्षयाः प्रीतिसंयुक्ता ब्रह्मे तिष्ठन्ति योगिनः । ऋषिणां बालखिल्यानां तैर्यथाहृतमीश्वरैः ॥ २१३ ॥
यथा चैव मया दृष्टं सांनिध्यं तत्र कुर्वता । अनह्यसत्कृतार्थानामालयं चेश्वरस्य यत् ॥ ११४ ॥
ईश्वरः परमाणुत्वाद्भावग्राह्यो मनीषिणाम् । ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यन्तपः सत्यं क्षमा धृतिः ॥ २१५ ॥
द्रष्टृत्वमात्मसंबन्ध्यमधिष्ठानत्वमेव च । अव्ययानि दशैतानि तस्मिंतिष्ठति शंकरे ॥ २१६ ॥
विभुत्वात्खलु योगाग्निर्ब्रह्मणोऽनुग्रहे रतः । स लोकविग्रहो भूत्वा साहाय्यमुपतिष्ठते ॥ ११७ ॥
अक्षरं ध्रुवमव्यग्रमष्टमन्त्वौपसर्गिकम् । तस्येश्वरस्य यन्मात्रस्थानं मायामयं परम् ॥ २१८ ॥
मायया कृतमाचष्टे मायी देवो महेश्वरः । देवानामुपसंहारस्तत्प्रमाणं हि कीर्त्यते ॥ २१९ ॥
विस्तरेणानुपूर्व्या च ब्रुवतो मे निबोधत । त्रयोदशैव कोट्यस्तु नियुता दश पञ्च च ॥
भूर्लोकाद्ब्रह्मलोको वै योजनैः संप्रकीर्त्यते ॥ २२० ॥
एकयोजनकोटी तु पञ्चाशन्नियुतानि च । ऊर्ध्वं भागवताण्डं तु ब्रह्मलोकात्परं स्मृतम् ॥ २२१ ॥
एषोर्ध्वगः प्रचारस्तु गत्यन्तश्च ततः स्मृतम् । नित्या ह्यपरिसंख्येयाः परस्परगुणाश्रयाः ॥ २२२ ॥
सूक्ष्माः प्रसवधर्मिण्यस्ततः प्रकृततः स्मृताः । येभ्योऽधिकर्ता संजज्ञे क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥ २२३ ॥

वायु ने कहा—ऋषिवृन्द ! उस व्यक्त का मनीषीगण तर्क द्वारा, योगीगण अपने योगबल द्वारा प्रत्यक्ष एवं क्रियानिष्ठगण अपने सदनुष्ठान, प्रत्याहार एवं ध्यान द्वारा दर्शन करते हैं । ऋभु, शुद्धबुद्धिसम्पन्न, सनत्कुमारादि शोक विरहित, रजोगुणहीन, सत्त्वगुणसम्पन्न, ब्रह्मपरायण साधु पुरुष, महान् ऐश्वर्यशाली बालखिल्यादि महर्षिगण एवं अक्षय प्रेमपरायण ब्रह्मनिष्ठ योगी जन उस महान् ऐश्वर्यशाली भगवान् के निवास स्थल का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं, जो परम अतय एवं सत्पुरुषों को कृतकृत्य करनेवाला है । उस परम गुह्य भगवदालय का सन्निधान करते हुए मैंने भी प्रत्यक्ष दर्शन किया है वह ईश्वर परमाणु के समान होने से केवल मनीषी पुरुषों की भावनाओं द्वारा गृहीत हो सकता है । ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तपस्या, सत्य, क्षमा, धैर्य, दर्शकत्व, अधिष्ठानत्व एवं आत्मज्ञान ये दस शाश्वत धर्म उस मङ्गलमय परमात्मा में नित्य प्रतिष्ठित रहने वाले हैं ॥ २११-२१६ ॥

वह विभु है, योगिजनों की योगाग्नि भी उसी परम ब्रह्म के अनुग्रह से उदीप्त होती है । वह शरीर धारणकर सामान्य लोगों का निरन्तर उपकार करते हैं । उस ईश्वर का वह अधिष्ठान भी परम एवं परिणामविहीन है, स्थिर है, सुख-दुःखादि सांसारिकता से रहित है, मायामय एवं सत्स्वरूप है । यही आठ प्रकार की प्रकृतियों का मूल आश्रय है, समग्र सृष्टि विस्तार का मूलाधार है । मङ्गलमय महेश्वर ने, मायामय होकर उसकी सृष्टि की है । उसी स्थान पर दिव्य गुणमय देवताओं का सम्यक् उपसंहार होता है । उसका विस्तार एवं अनुक्रमपूर्वक वर्णन मैं आगे कर रहा हूँ, सुनिये । इस भूलोक से ब्रह्मलोक का अन्तर तेरह कोटि पन्द्रह नियुत योजन कहा जाता है ॥ २१७-२२० ॥

उक्त ब्रह्मलोक से भी ऊपर जो ब्रह्माण्ड का अंश विद्यमान है वह एक कोटि पचास नियुत योजन तक सुना जाता है । इस ब्रह्माण्ड के ऊर्ध्व भाग की सीमा इतनी ही है, उसके ऊपर किसी की गति नहीं है । नित्य, अपरिसंख्येय, परस्पर गुणाश्रयी, सूक्ष्म प्रसवधर्मिणी प्रकृतियाँ कही गयी हैं उन्हीं से ब्रह्म नामधारी जगत्कर्ता क्षेत्रज्ञ

तासु प्रकृतिमत्सूक्ष्ममधिष्ठातृत्वमव्ययम् । अनुत्पाद्यं परं धाम परमाणु परेशयम् ॥ २२४ ॥
अक्षयश्चाप्यनुह्यश्च अमूर्तिर्मूर्तिमानसौ । प्रादुर्भावस्तिरोभावः स्थितिश्चैवाप्यनुग्रहः ॥ २२५ ॥
विधिरन्यैरनौपम्यः परमाणुर्महेश्वरः । सतेजा एष तमसो यः पुरस्तात्प्रकाशकः ॥ २२६ ॥
यदण्डमासीत्सौवर्णं प्रथमं त्वौपसर्गिकम् । बृहतं सर्वतो वृत्तमीश्वराद्व्यवजायत ॥ २२७ ॥
ईश्वराद्बीजनिर्भेदः क्षेत्रज्ञो बीज इष्यते । योनिं प्रकृतिमाचष्टे सा च नारायणात्मिका ॥ २२८ ॥
विभुर्लोकस्य सृष्ट्यर्थं लोकसंस्थानमेव च । सन्निसर्गः स तन्वा च लोकधातुर्महात्मनः ॥ २२९ ॥
पुरस्ताद्ब्रह्मलोकस्य ह्यण्डादर्वाक्च ब्रह्मणः । तयोर्मध्ये पुरं दिव्यं स्थानं यस्य मनोमयम् ॥ २३० ॥
तद्विग्रहवतः स्थानमीश्वरस्यामितौजसः । शिवं नाम पुरं तत्र शरणं जन्मभीरुणाम् ॥ २३१ ॥
सहस्राणां शतं पूर्णं योजनानां द्विजोत्तमाः । अभ्यन्तरे तु विस्तीर्णं महीमण्डलसंस्थितम् ॥ २३२ ॥
मध्याह्नार्कप्रकाशेन परतेजोऽभिमर्दिना । शान्तकौम्भेन महता प्राकारेणार्कवर्चसा ॥ २३३ ॥
द्वारैश्चतुर्भिः सौवर्णैर्मुक्तादामविभूषितैः । तपनीयनिभैः शुभ्रैर्गाढं सुकृतवेष्टनम् ॥ २३४ ॥
तच्चाकाशे पुरं रम्यं दिव्यं घण्टादिनादितम् । न तत्र क्रमते मृत्युर्न तापो न जरा श्रमाः ॥ २३५ ॥

का प्रादुर्भाव होता है । उन्हीं में प्रकृतिमय सूक्ष्म, अक्षय, अविनश्वर, अनुत्पाद्य, अतर्क्स, अधिष्ठानात्मक परमाणु-स्वरूप, परेशय, अमूर्त एवं मूर्तिमान परम धाम परमेश्वर विराजमान रहता है । वह परमाणुस्वरूप महेश्वर प्रादुर्भाव, तिरोभाव, स्थिति, अनुग्रह एवं दयादि का आयत है । इन सभी विधानों में अनुपम है । वह अपने परम तेजोबल एवं प्रकाश से पुरोवत तमोरको प्रकाशित करनेवाला है । जो हिरण्यमय अण्ड समस्त सृष्टि का मूल रूप सा महान एवं आद्य पसर्गिक सभी और से वृत्ताकार है, वह इसी परमेश्वर से आविर्भूत हुआ है ॥ २२१-२२७ ॥

उसी ईश्वर से सृष्टि के समस्त बीजों को परम्परा प्रचलित हुई है, यह क्षेत्र स्वयमेव सृष्टि का बीज स्वरूप है । प्रकृति ही सब की उत्पत्ति-स्थली है । और यह स्वयं नारायणात्मका है । समस्त लोकों का निर्माता वह परमैश्वर्यशाली परमात्मा लोक सृष्टि एवं लोक की विधिवत् स्थिति के लिए ही प्रकृति के सहयोग से अपने शरीर द्वारा ब्रह्मलोक एवं ब्रह्माण्डादि का निर्माण करता है । उन दोनों के मध्यभाग में एक परम रमणीय दिव्य स्थान है, जो मनोमय स्थान के नाम से ख्यात है । यह उस परम तेजस्वी ईश्वर का शिव नामक पुर है, जिसमें पुनर्जन्मादि से भीत होनेवाले महापुरुषों का निवास है । द्वन्द यह शिव नामक पुरी सौ सहस्र योजनों में विस्तृत है । इसका अन्तर्वर्ती भाग पृथ्वीमण्डल जितना विस्तीर्ण है ॥ २२८-२३२ ॥

इस महापुरी के चारों ओर मध्याहनकालीन भास्कर की भाँति परम तेजस्वी, अन्यान्य तेजस्वी पदार्थों के तेज को मलिन कर देनेवाली सुवर्ण निर्मित दीवाल सुशोभित है । उसकी चमक चारों ओर सूर्य के समान चकाचौंध करती रहती है । उस महान पुरी में चार द्वार हैं, जो सुवर्ण से निर्मित हैं । मोतियों की लड़ियाँ उनकी शोभावृद्धि करती हैं, वे परम शुभ्र एवं शोभासम्पन्न हैं । उस मनोहर पुरी के चारों ओर एक अन्य रक्षा दीवाल भी खड़ी है, जो परम पुष्ट है । आकाश में वह परम सुशोभित पुरी दिव्य घण्टा-ध्वनि से कूजित रहती है । उस पुरी में वृद्धावस्था व मृत्यु का कोई भय नहीं रहता । वहाँ परिश्रम भी नहीं रहता । समस्त त्रैलोक्य में ऐसी कोई पुरी नहीं है; जिसकी शोभा को उस रम्य पुरी की सुन्दरता अनुकरण करे । अर्थात् वैसी सुरम्य पुरी त्रैलोक्य में अन्यत्र कहीं नहीं है ।

न हि तस्य पुरस्यान्यैरुपमां कर्तुमर्हति । सहस्राणां शतं पूर्णं योजनानां दिशो दश ॥ २३६ ॥
तत्पुरं गोवृषाङ्कस्य तेजसा व्याप्य तिष्ठति । भावेन मानसो भूमिर्विन्यस्ता कनकामयी ॥ २३७ ॥
रत्नवालुकया तत्र विन्यस्ता शुशुभेऽधिकम् । शारदेन्दुप्रकाशानि बालसूर्यनिभानि च ॥ २३८ ॥
अर्धश्वेतार्धरक्तानि सौवर्णानि तथैव च । रथचक्रप्रमाणानि नालैर्मरकतप्रभैः ॥ २३९ ॥
सौकुमारेण रूपेण गन्धिनाऽप्रतिमेन च । तत्र दिव्यानि पद्मानि वनेषूपवनेषु च ॥ २४० ॥
भृङ्गपत्रनिकाशानि तपनीयानि यानि च । अर्धकृष्णार्धरक्तानि सुकुमारान्तराणि च ॥ २४१ ॥
आतपत्रप्रमाणानि पङ्कजैः संवृतानि च । भूयः सप्त महानद्यस्तासान्नामानि बोधत ॥ २४२ ॥
वरा वरेण्या वरदा वरार्हा वरवर्णिनी । वरमा वरभद्रा च रम्यास्तस्मिन्पुरोत्तमे ॥ २४३ ॥
पद्मोत्पलदलोन्मिश्रं फेनाद्यावर्तविग्रहम् । जलं मणिदलप्रख्यमावहन्ति सरिद्वराः ॥ २४४ ॥
न तु ब्रह्मर्षयो देवा नासुराः पितरस्तथा । न खल्वन्येऽप्रमेयस्य विदुरीशस्य तत्पुरम् ॥ २४५ ॥
तत्र ये ध्यानमव्यग्राः सुयुक्ता विजितेन्द्रियाः । पश्यन्तीह महात्मानः पुरं तद्गोवृषात्मनः ॥ २४६ ॥
मध्ये पुरवरेन्द्रस्य तस्याप्रतिमतेजसः । सुमहान्मेरुसंकाशो दिव्यो भद्रश्रिया वृतः ॥ २४७ ॥
सहस्रपादः प्रासादस्तपनीयमयः शुभः । अनुपमेयै रत्नैश्च सर्वतः स विभूषितः ॥ २४८ ॥

दसों दिशाओं में उसका परिमाण एक लाख योजन है । भगवान् वृषभध्वज महेश्वर की वह पुरी अपने तेजोबल से अवस्थित है । उस सुवर्णमयी पुरी की सृष्टि मानसिक भावभूमि पर हुई है ॥ २३३-२३७ ॥

रत्नों की बालुका से विन्यस्त उस परम रम्य नगरी की शोभा अधिक बढ़ जाती है । शरद्पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुप्रकाशमय, प्रातःकालीन सूर्य की भाँति मनोहर एवं तेजोमय आधे श्वेत आधे लाल सुवर्ण निर्मित रथ के चक्कों के समान गोलाकार दिव्य पद्म उस पुरी में शोभायमान हैं । वे पद्म अपनी सुकुमारता, सौन्दर्य एवं सुगन्ध में अनुपम हैं । ऐसे परम मनोहर दिव्य पद्म वहाँ के वन एवं उपवनों में सर्वत्र हैं । वहाँ के कुछ सुन्दर परम सुकुमार पद्म भृङ्ग के पंख के समान श्यामल वर्ण के, कुछ एकदम सुनहले, कुछ आधे काले आधे लाल, आकार में छत्र के समान होते हैं । ऐसे सुन्दर पद्मों से वहाँ के जलाशय व्याप्त हैं, वहाँ सात महानदियाँ हैं, उनके नाम वरा, वरेण्या, वरदा, वराह, वरवर्णिनी, वरमा, वरभद्रा है । वे परम रमणीय नदियाँ उस सुन्दर पुरी की शोभा वृद्धि करनेवाली हैं ॥ २३८-२४३ ॥

इन सुन्दर सरिताओं में श्वेत, रक्त पद्मों के दलों से विमिश्रित, फेनों एवं भंवरियों से विभूषित मणियों के टुकड़ों के समान परम स्वच्छ शुभ्र जल प्रवाहित होता है । अप्रमेय महेश्वर के इस परम रम्यपुर को न तो ब्रह्मर्षिगण ही जानते हैं, न देवता ही जानते हैं असुरों एवं पितरों को भी इस पुर का कोई पता नहीं है जो परम जितेन्द्रिय योगाभ्यासपरायण महात्मा हैं, जिनका चित्त कभी चंचल वा व्यग्र नहीं होता, वे ही ध्यान से वृषभध्वज के इस पुर का दर्शन करते हैं ॥ २४४-२४६ ॥

उस पुरवर के मध्य भाग में अनुपम तेजस्वी, महान, सुमेरु पर्वत के समान विशाल, समग्र सौन्दर्यश्री से विभूषित एक प्रासाद सुशोभित है, जिसके सहस्र चरण हैं, उस मङ्गलमय प्रासाद की रचना सुवर्ण से है । सभी ओर से अमूल्य अनुपम रत्नों द्वारा उसकी शोभा वृद्धि होती है । कहीं शुभ्र स्फटिक मणियों से, कहीं चन्द्रकान्त

स्फटिकैश्चन्द्रसङ्काशैर्वैदुर्यैः सोमसंप्रभैः । बालसूर्यप्रभैश्चैव सौवर्णैश्चाग्निप्रभैः ॥ २४९ ॥
राजतैश्चापि शुशुभे इन्द्रनीलमयैः शुभैः । दृढैर्वज्रामयैश्चैव इत्येवं सुसमाहितैः ॥ २५० ॥
विविधाकारैर्दीप्यद्भिरधिवासितम् । चन्द्ररश्मिप्रकाशाभिः पताकाभिरलंकृतम् ॥ २५१ ॥
जलैश्च रुक्मघण्टनिनादैश्च नित्यप्रमुदितोत्सवः । किंनराणामधीवासः संध्याभ्राकारराजितैः ॥ २५२ ॥
परिवारसमन्तात्तु हेमपुष्पोदकप्रभैः । यथा हि मेरुशैलेन्द्रो हेमशृङ्गविराजते ॥ २५३ ॥
चामीकरमयीभिस्तु पताकाभिस्तथा पुरम् । एवं प्रसादराजोऽसौ भूमिकाभिविराजते ॥ २५४ ॥
वसन्तप्रीतमा यत्र त्र्यम्बकस्य निवेशने । लक्ष्मीः श्रीश्च वपुर्माया कीर्तिः शोभा सरस्वती ॥ २५५ ॥
देव्या वै सहिता होता रूपगन्धसमविन्ताः । नित्या हापरिसंख्याताः परस्परगुणाश्रयाः ॥
भूषणं सर्वरत्नानां योऽन्यः कान्तिविलासयोः ॥ २५६ ॥
कोटीशतं महाभाग विभज्याऽऽत्मानमात्मना । भगवन्तं महात्मानं प्रतिमोदन्त्यतन्द्रिताः ॥ २५७ ॥
तासां सहस्रशश्चान्याः पृष्ठतः परिचारिकाः । रूपिण्यश्च श्रिया युक्ताः सर्वाः कमललोचनाः ॥ २५८ ॥
लीलाविलाससंयुक्तैर्भावैरतिमनोहरैः । गणैस्ताः सह मोदन्ते शैलाभैः पावकोपमैः ॥ २५९ ॥

मणियों से, कहीं वैदूर्य मणियों से, कहीं चन्द्रमा के समान सुशोभित मणियों से, कहीं प्रातःकालीन सूर्य की भाँति परम मनोहर किन्तु तेजोमय मणियों से, कहीं सुवर्णमय मणियों से, कहीं अग्नि के समान तेजोमय मणियों से, कहीं रजतमय (चाँदी की) मणियों से, कहीं सुरम्य इन्द्रनील मणियों से, कहाँ परम दृढ़ हीरों से उस विशाल प्रासाद की शोभा वृद्धि होती है। वे सभी मणियाँ भली तरह जड़ी गयी हैं। चमकते हुए गवाक्ष, जंगले जो विविध प्रकार के बने हुए हैं उस प्रासाद की शोभा वृद्धि के सहायक हैं। चन्द्रमा की किरणों के समान सुप्रकाशमान पताकाएँ उस पर सुशोभित हैं ॥ २४७-२५१ ॥

सुवर्ण निर्मित घण्टों के सुरम्य स्वरों से वह प्रासाद मुखरित रहता है, प्रमोद एवं उत्सव के समारोह वहाँ नित्य मनाये जाते हैं। सन्ध्याकालीन मेघों की पंक्तियों के समान सुशोभित किन्नरों के आवास-स्थान उस पुर में परम शोभा पाते हैं। वे चारों ओर से सुवर्ण निर्मित पुष्पों एवं सुवर्णमय जलराशि की तरह सुशोभित होते हैं। किन्नरों के सुरम्य भवनों से वह पुर सुवर्णमय शिखरों से सुशोभित पर्वतराज सुमेरु की तरह शोभा पाता है। कहीं पर सुवर्णनिर्मित पताकाओं की पंक्तियों से वह पुर परम शोभासम्पन्न होता है। वह महाप्रासाद चारों ओर से विस्तृत भूमिका द्वारा और भी शोभा पाता है। त्र्यम्बक शिव के उस भवन में वसन्त की मूर्ति विराजमान रहती है। उसके अतिरिक्त लक्ष्मी, श्री, माया, कीर्ति, शोभा, सरस्वती आदि देवियाँ अपने अनुपम सौन्दर्य एवं सुगन्ध के साथ वहाँ निवास करती हैं। वे देवियाँ सर्वदा एक रूप हैं, उनकी संख्या नहीं परिगणित की जा सकती। उनके गुण समुदाय परस्पर आश्रित रहते हैं। अर्थात् उनकी दया की शोभा उनकी क्षमा और शान्ति से होती है, और उनकी शान्ति दया से विशेष शोभाशालिनी हो जाती है। कान्ति एवं विलास की वे उत्पत्ति-स्थली हैं, समग्र रत्नों के आभूषणों से उनकी शोभा की अधिक वृद्धि होती है, वे महाभाग्यशालिनी देवियाँ सैकड़ों कोटि अंशों में अपने को आत्मा से विभक्त करके निरालस भाव से परमैश्वर्यशाली एवं महान् भगवान् परमेश्वर को प्रमुदित करती हैं ॥ २५२-२५७ ॥

उनकी सहस्त्रों की संख्या में अन्य परिचारिकाएँ रहती हैं जो सर्वदा उनका अनुगमन करती हैं। वे सब

कुब्जा कामनिकामैश्च वरगात्रा हयाननाः । पुण्ड्राश्च विकटाश्चैव करालाश्चिपिटाननाः ॥ २६० ॥
लम्बोदरा ह्रस्वभुजा विनेत्रा ह्रस्वपादिकाः । मृगेन्द्रवदनाश्चान्या गजवक्त्रोदरास्तथा ॥ २६१ ॥
गजाननास्तथैवान्याः सिंहव्याघ्राननास्तथा । लोहिताक्षा महास्तन्यः सुभगाश्चारुलोचनाः ॥ २६२ ॥
ह्रस्वकुञ्चितकेशाश्च सुन्दर्यश्चारुलोचनाः। अन्याश्च कामरूपिण्यो नानावेषधराः स्त्रियः ॥ २६३ ॥
अभ्यन्तरपरिस्कन्धा देवावासगृहोचिताः । रराम भगवांस्तत्र दशबाहुर्महेश्वरः ॥ २६४ ॥
नन्दिना च गणैः सार्धं विश्वरूपैर्महात्मभिः । तथा रुद्रगणैश्चापि तुल्यौदार्यपराक्रमैः ॥ २६५ ॥
पावकात्मजसंकाशैर्यूपदंष्ट्रोत्कटाननैः । वन्द्यमानो विमानश्च पूज्यमानश्च तत्परैः ॥ २६६ ॥
सर्वर्तुकुसुमां मालां जिघ्रमाणोरसि स्थिताम् । नीलोत्पलदलश्यामं पृथुताम्रायतेक्षणम् ॥ २६७ ॥
ईषत्करालम्बोष्ठं तीक्ष्णदंष्ट्रागणाञ्चितम् । षडूर्ध्वनेत्रं दुष्प्रेक्ष्यं रुचिरं चीरवाससम् ॥ २६८ ॥
आहवेष्वपरिक्लिष्टं देवानामरिनाशनम् । बाहुना बाहुमावेश्य पार्श्वे सव्येऽन्तरे स्थितम् ॥ २६९ ॥

भी कमल के समान मनोहर नेत्रोंवाली, स्वरूपवती एवं शोभाशालिनी रहती हैं । परम मनोहर लीला एवं विलास की भावनाओं से ओत-प्रोत, पर्वत के समान भीषणाकार, अग्नि के समान जाज्वल्यमान एवं तेजस्वी गणों के साथ वे परिचारिकाएँ आनन्द का अनुभव करती हैं, उन परिचारिकाओं में कुछ कुबड़ी हैं, कुछ वामनाकृत हैं, किसी का शरीर बहुत सुन्दर है, पर मुख घोड़े के समान है । कुछ गन्ने के समान पतली और लम्बी पर स्वभाव से बड़ी विकट, कुछ देखने में महा कराल, कुछ चिपटे मुखवाली, कुछ लम्बे पेटोंवाली, कुछ छोटे हाथोंवाली, कोई नेत्रविहीन, कोई छोटे चरणोंवाली, कुछ सिंह के समान कटिवाली, कोई हाथी के समान भीषण मुख और उदरवाली, कुछ वैसे ही हाथी के समान मुखवाली, कुछ सिंह और बाघ के समान मुखवाली हैं । उनमें किसी के नेत्र बहुत लाल हैं तो कोई लम्बे-लम्बे विशाल स्तनों के भारों से दुःखी हैं । इनके अतिरिक्त कुछ बहुत ही सुन्दर एवं चित्ताकर्षक नेत्रोंवाली भी हैं ॥ २५८-२६२ ॥

उन परम सुन्दरियों के केश बहुत छोटे और घुंघराले होते हैं । उनके नेत्र चित्त को आकृष्ट कर लेते हैं। अन्यान्य सुन्दरी स्त्रियाँ नाना प्रकार की वेश-भूषा से सुसज्जित होकर वहाँ पर विराजमान रहती हैं । वे अपनी इच्छा के अनुरूप स्वरूप धारण करनेवाली हैं । उस विशाल महाप्रासाद के भीतरी भाग में वे सुन्दरियाँ सर्वथा विचरण किया करती हैं, वे सचमुच देवस्थानों में निवास करने योग्य हैं । उस सुन्दर विशाल प्रासाद में दशबाहु भगवान् महेश्वर क्रीडा करते हैं । उनके साथ नन्दीश्वर एवं महान् पराक्रमशाली विश्व रूप धारण करने में सक्षम उनके गण निवास करते हैं । रुद्रगण भगवान् के समान ही उदार एवं पराक्रमशाली हैं । वे आकृति में अग्नि पुत्र की भाँति परम भयानक होते हैं, खम्भे के समान विशाल एवं भीषण दाँतों से उनके मुख की एक विकट शोभा होती है । ये गण विमानों में चढ़कर तन्मय होकर भगवान् की वन्दना एवं पूजा करते हैं । उस समय महादेव जी सभी ऋतुओं में सुलभ पुष्पों से निर्मित माला को, जो उनके विशाल वक्षःस्थल पर शोभा वृद्धि करती है, सूंघते हैं । वे नीले कमल दल के समान श्यामल वर्ण हैं, लम्बे-लम्बे लाल वर्ण के उनके मनोहर नेत्र हैं । कुछ भयानक और लम्बे होंठ, तीक्ष्ण दंत पंक्तियों से सुशोभित हैं, ऊपर को ताकनेवाले भयानक नेत्र से उनका मुखमण्डल दुष्प्रेक्ष्य होता है । सुन्दर चीर वस्त्र धारण किये रहते हैं ॥ २६३-२६८ ॥

युद्धों में जिसे कोई कठिनाई नहीं होती, ऐसे राक्षसों के विध्वंसक एक हाथ को वे दूसरे हाथ में लपेटकर

रराजापदिशं तस्य वामाग्रकरगोचरम् । महाभैरवनिर्घोषं बलेनाप्रतिमौजसम् ॥
दशवर्णधनुश्चैव विचित्र शोभतेऽधिकम् ॥ २७० ॥
त्रिशूलं विद्युताभासममोघं शत्रुनाशनम् । जाज्वल्यमानं वपुषा परमं तत्त्विषा युतम् ॥ २७१ ॥
असिश्चैवौजसां श्रेष्ठः शीतरश्मिः शशी तथा । तेजसा वपुषा कान्त्या देवेशस्य महात्मनः ॥
शुशुभेऽभ्यधिकं तत्र वेद्यामग्निशिखा इव ॥ २७२ ॥
स्थितः पुरस्ताद्देवस्य शातकौम्भमयो महान् । शुशुभे रुचिरः श्रीमान्सोदकः सकमण्डलुः॥ २७३ ॥
असिमावेश्य चाङ्गेषु पाण्डुराम्बरधारिणी । उरश्छेदेन महता मौक्तिकेन विराजिता ॥
चतुर्भुजा महाभागा विजया लोकसंमता ॥ २७४ ॥
देव्या आद्यः प्रतीहारी श्रीरिवाप्रतिमा परा । विभ्राजती स्थिता चैव कृत्वा देवस्य चाञ्जलिम् ॥ २७५ ॥
तस्याः पृष्ठानुगाश्चान्याः स्त्रियोऽप्सरोगणान्विताः । ताः खल्वभिनवैः कान्तैरुपतिष्ठन्ति शंकरम् ॥२७६॥
सर्वलक्षणसंपन्ना वादित्रैरुपबृंहिताः । उपगायन्ति देवेशं गणा गन्धर्वयोनयः ॥ २७७ ॥
अभ्युन्नतो महोरस्कः शरन्मेघसमद्युतिः । शोभते नन्दमानश्च गोपतिस्तस्य वेश्मनि ॥ २७८ ॥
स्कन्दश्च सपरीवारः पुत्रोऽस्यामितवीर्यवान् । रक्ताम्बरधरः श्रीमानवराम्बुजदलेक्षणः ॥ २७९ ॥
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च चाष्टवान् । व्यपेतव्यसनाक्रूराः प्रजानां पालने रताः ॥ २८० ॥

वामपार्श्व में रख लेते हैं । उससे थोड़ी ही दूर पर स्थित उनके वाम हाथ में सुशोभित पट्टिश नामक अस्त्र शोभा पाता है, उसके अतिरिक्त जिसकी प्रत्यञ्चा का निनाद महान् भीषण होता है, जिसके समान दृढ़ एवं तेजस्वी कोई अन्य धनुष नहीं हैं, उनका दसवर्णों वाला विचित्र धनुष भी वहाँ अधिकाधिक शोभा लाभ करता है ॥ २६९-२७० ॥

विद्युत् के समान चमकीला शत्रुसंहारकारी उनका त्रिशूल भी वहाँ अपनी जाज्वल्यमान कान्ति से परम शोभा प्राप्त करता है । उस त्रिशूल का लक्ष्य कभी विफल होनेवाला नहीं है । देवाधिदेव महान् पराक्रमशाली भगवान् के समीप परम तेजोमय तलवार एवं शीतलरश्मि चन्द्रमा सुशोभित हैं । अपने तेज शरीर एवं कान्ति से वे वेदी में अग्नि की ज्वाला की तरह अधिक सुशोभित होते हैं । देव के सम्मुख सुवर्णमय, महान् कमण्डलु जल समेत विराजमान है, उसकी शोभा की एक निराली छटा रहती है । अपने अंग में तलवार लटकाये हुए, पीले रंग का वस्त्र धारण किये, वक्षःस्थल पर एक विशाल मुक्ता की माला धारण किये चार भुजाओं से सुशोभित लोक सम्माननीय महाभाग्यशालिनी देवी विजया भी वहाँ स्थित हैं ॥ २७१-२७४ ॥

वह देवी की सर्वप्रथम प्रतिहारिणी है, रूप में दूसरी लक्ष्मी के समान अनुपम है । भगवान् शंकर की ओर अंजलि बाँधे हुए वहाँ पर उसकी परम शोभा होती है । उसके पीछे अन्य अनुगामी स्त्रियाँ रहती हैं, उनके साथ अप्सराओं के झुण्ड रहते हैं । वे सब भी अपने अभिनव कान्तों के साथ शंकर की उपासना में तल्लीन रहती हैं । सर्वलक्षणसम्पन्न, विविध प्रकार के वाद्यों से समन्वित गन्धर्वो की टोलियाँ देवेश के समक्ष गायन, वादन करती हैं । उनके सुन्दर प्रासाद में विशाल वक्षःस्थल शरत्कालीन मेघ के समान गोपति (नन्दीश्वर) आनन्द का अनुभव करते हुआ सुशोभित है । रक्त वस्त्र धारण किये हुए, परम शोभासम्पन्न, कमलदल के समान सुन्दर नेत्रवाले उनके अमित पराक्रमशाली पुत्र स्कन्द भी वहाँ सपरिवार सुशोभित हैं । शाख, विशाख और नैगमेय प्रभूति अनुचरगण भी उनके

तैः सार्धं स महावीर्यः शोभते शिखिवाहनः । व्यालक्रीडनकैस्तत्र क्रीडते विश्वतोमुखः ॥ २८१ ॥
ये नृपा विबुधेन्द्राणां काञ्चनस्य प्रदायिनः । ये च स्वायतना विप्रा गृहस्था ब्रह्मवादिनः ॥ २८२ ॥
गूढस्वाध्यायतपसस्तथा चैवोञ्छवृत्तयः । एते सभासदस्तस्य देवेशस्य च संमताः ॥ २८३ ॥
मन्वन्तराण्यनेकानि व्यवर्तन्त पुनः पुनः । श्रूयतां देवदेवस्य भविष्याश्चर्यमुत्तमम् ॥ २८४ ॥
व्याघ्राश्चैवानुगास्तत्र काञ्चनाभास्तरस्विनः । स्वच्छन्दचारिणः सर्वे स्वयं देवेन निर्मिताः ॥ २८५ ॥
मृत्योर्मृत्युसमास्ते तु यमदर्पापहारिणः । विभूतिमप्यसंख्येयां को न खल्वभिधास्यते ॥ २८६ ॥
अतः परमिदं भूयो भवेनाद्भुतमुत्तमम् । भूतानामनुकम्पार्थं यत्कृतं तन्निबोधत ॥ २८७ ॥
मन्दरादिप्रकाशानां बलेनाप्रतिमौजसाम् । हारकुन्देन्दुवर्णानां विद्युद्घननिनादिनाम् ॥ २८८ ॥
चूडामणिधराणां वै मेघसंनिभवाससाम् । श्रीवत्साङ्कितवज्राणामङ्गुलीशूलपाणिनाम् ॥ २८९ ॥
एवं दिशानां देवानां रूपेणोत्तमशालिनाम् । तस्य प्रासादमुख्यस्य स्तम्भेषूत्तमशोभिषु ॥ २९० ॥
संयताग्निमयीभिस्तु शृङ्गलाभिः पृथक्पृथक् । मायासहस्रं सिंहानां सुखं तत्र निवासिनाम् ॥ २९१ ॥
स्तम्भेऽप्यपासृताषष्टं त्र्यम्बकस्य निवेशने । अथ तत्प्रतिसंपूज्य वायोर्वाक्यं सुविस्मिताः ॥
ऋषयः प्रत्यभाषन्त नैमिषेयास्तपस्विनः ॥ २९२ ॥

साथ विराजमान हैं, जो प्रकृति से परम क्रूर किन्तु प्रजा पालन में दत्तचित्त एवं व्यसनों से विहीन है, उन अनुचरों के साथ महान् पराक्रमी शिखिवाहन, विश्वतोमुख स्कन्द व्यालक्रीड़ा का अनुभव करते है ॥ २७५-२८१ ॥

जो राजा लोग विद्वान पण्डितेन्द्रों को सुवर्ण की दक्षिणा देते हैं, जो विप्र अपने गृह पर निवास करते हुए भी ब्रह्म-चिन्तन में निरत रहते हैं, जो उंछ वृत्ति से जीविका निर्वाह करनेवाले ब्रह्मचारीगण सर्वदा स्वाध्याय एवं तपस्या में लीन रहते हैं, वे देवाधिदेव शंकर की इस पुरी में उनकी सभा के सभ्य होते हैं। अनेक मन्वन्तर व्यतीत होकर पुनः पुनः प्रारम्भ होते हैं, किन्तु महादेव की वह सभा पूर्ववत् प्रतिष्ठित है । देवदेव की अन्य उत्तम आश्चर्यजनक घटनाएँ सुनिये । सुवर्ण के समान पीले वर्णवाले परम वेगशाली व्याघ्र उनके अनुगामी रहते हैं । वे सब अपनी इच्छा के अनुसार गमन करते हैं, देवदेव ने स्वयमेव उनका निर्माण किया है ॥ २८२-२८५ ॥

वे मृत्यु के लिए भी मृत्यु के समान हैं, यमराज के भी दर्प को चूर्ण करनेवाले हैं । अर्थात् उन्हें मृत्यु का कोई भय नहीं रहता । इस प्रकार देवदेव की विभूतियों की कोई संख्या निश्चित नहीं है, वे असंख्य हैं, कौन उन्हें सम्पूर्णतया बता सकता है । अब इसके उपरान्त मैं ऐसी अद्भुत एवं उत्तम विभूतियाँ बताऊँगा, भव ने जिन्हें जीवों के ऊपर असीम अनुग्रह करके निर्मित किया है, सुनिये । भव के उक्त उत्तम प्रासाद में जो परम शोभामय स्तम्भ लगे हुए हैं, उनमें उनकी माया द्वारा निर्मित एक सहस्र सिंहगण प्रदीप्त अग्नि के समान जाज्वल्यमान पाश द्वारा पृथक्-पृथक् बँधे हुए हैं । वहाँ पर वे सुखपूर्वक निवास करते हैं । वे सिंहगण देखने में मन्दराचल के समान विशालाकार हैं, बल एवं तेज में उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है, मुक्ताहार, कुन्दपुष्प एवं चन्द्रमा के समान श्वेत उनके रंग हैं । बिजली संयुक्त मेघों की कड़क के समान वे भीषण निनाद करते हैं ॥ २८६-२८८ ॥

उनकीं शिखाओं पर मणि शोभायमान है । मेघ के समान काले रंग के वस्त्रों से उनके शरीर वेष्टित हैं। श्रीवत्स चिह्न से ये सुशोभित है, अपने भीषण नखों से संयुक्त अंगुलियों को धारणकर में शूलपाणि के समान हैं।

भगवन्सर्वभूतानां प्राण सर्वत्रग प्रभो । के ते सिंहमहाभूताः क्व ते जाताः किमात्मकाः ॥ २९३ ॥
सिंहाः केनापराधेन भूतानां प्रभविष्णुना । वैश्वानरमयैः पाशैः संरुद्धास्तु पृथक् पृथक् ॥ २९४ ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वायुर्वाक्यं जगाद ह । यद्वै सहस्रं सिंहानामीश्वरेण महात्मना ॥
व्यपनीय स्वकाद्देहात्क्रोधास्ते सिंहविग्रहाः ॥ २९५ ॥
भूतानामभयं दत्त्वा पुरा बद्धाग्निबन्धने । यज्ञभागनिमित्तं च ईश्वरस्याज्ञया तदा ॥ २९६ ॥
तेषां विधानमुक्तेन सिंहेनैकेन लीलया । देव्या मन्युं कृतं ज्ञात्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः ॥ २९७ ॥
निःसृता च महादेव्या महाकाली महेश्वरी । आत्मनः कर्मसाक्षिण्या भूतैः सार्धं तदाऽनुगैः ॥ २९८ ॥
स एष भगवान्क्रोधो रुद्रावासकृतालयः । वीरभद्रोऽप्रमेयात्मा देव्या मन्युप्रमार्जनः ॥ २९९ ॥
तस्य वेश्म सुरेन्द्रस्य सर्वगुह्यतमस्य वै । सन्निवेशस्त्वनौपम्यो मया वः परिकीर्तितः ॥ ३०० ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि ये तत्र प्रतिवासिनः । रम्ये पुरवरश्रेष्ठे तस्मिन्वैहायभूमिषु ॥ ३०१ ॥
नानारत्नविचित्रेषु पताकाबहुलेषु च । सर्वकामसमृद्धेषु वनोपवनशोभिषु ॥ ३०२ ॥
राजतेषु महान्तेषु शातकौम्भमयेषु च । सन्ध्याभ्रसन्निकाशेषु कैलासप्रतिमेषु च ॥ ३०३ ॥
इष्टैः शब्दादिभिर्भागैर्ये भवस्यानुसारिणः । प्रासादवरपुष्पेषु तेषु मोदन्ति सुव्रताः ॥ ३०४ ॥

दशों दिशाओं में देवताओं के समान सुन्दर स्वरूपधारी वे सिंहगण त्र्यम्बक के उक्त प्रसाद में लाबद्ध होकर विराजमान हैं । वायु के इस कथन का अभिनन्दन करते हुए नैमिषारण्य निवासी ऋषिगण परम विस्मय विमुग्ध हो गये और ने कहा—समस्त जीवधारियों के प्राण । सर्वत्र गमन करनेवाले । महामहिमामय भगवन् वायुदेव । ये महान् पराक्रमशाली सिंह कौन है? ये कहाँ उत्पन्न हुए? उनका स्वरूप कैसा है? परम प्रभावशाली भगवान् शंकर ने उन सिंहों को किस अपराध के कारण अग्निमय पाश में बाँधकर पृथक्-पृथक् कर रखा है ॥ २८९-२९४ ॥

ऋषियों की इस बात को सुनकर वायु बोले, ऋषिगण । वे एक सहस्र सिंह, जिनकी महात्मा भगवान् शंकर ने अपने शरीर से अलग करके सृष्टि की है, उनके क्रोध के मूर्त रूप हैं, जीवों को अभयदान देकर उन्होंने उन सबको अग्नि के पाशों में बाँध रखा है । प्राचीनकाल में दक्ष प्रजापति के साथ यज्ञभाग के सम्बन्ध में विरोध होने पर भगवान की आज्ञा से उन सहस्र सिंहों में से केवल एक सिंह छूटा था, जिसने महादेवी उमा के अमर्ष को देखकर लीलापूर्वक दक्ष के यज्ञ का सर्वांशतः विनाश कर दिया था । उस समय महादेवी के शरीर से महेश्वरी महाकाली अपने कर्मों की साक्षिणी होकर अपने अनुचर भूतगणों के साथ प्रादुर्भूत हुई थीं । रुद्र के उक्त आवास-स्थल में निवास करनेवाले भगवान् क्रोध ही तथोक्त वीरभद्र हैं, जो देवी के अमर्ष को दूर करने के लिए अति भीषण शरीर धारणकर प्रादुर्भूत हुए । परम गोपनीय सुरेश्वर शंकर के उक्त प्रासाद का सविस्तार वर्णन आप लोगों से कर चुका, उसके समान कोई अन्य प्रासाद नहीं है, समस्त त्रैलोक्य में वह अनुपम है ॥ २९५-३०० ॥

इसके बाद उक्त पुरी में अवस्थित अन्य वस्तुओं एवं व्यक्तियों का वर्णन कर रहा हूँ । अन्तरिक्ष में अवस्थित उस परमरम्य शिवपुरी में अनेक सुन्दर प्रासाद बने हुए हैं, जो विविध प्रकार के रत्नों से चित्रित एवं जटित हैं, असंख्य पताकाएँ उनकी शोभा वृद्धि कर रही हैं । सभी मनोरथों को वे पूर्ण करनेवाले हैं । सुन्दर वनों एवं उपवनों से उनकी एक निराली छटा है । उनमें से कितने विशाल प्रासाद चाँदी के और कितने स्वच्छ सुवर्ण

ब्रह्मघोषैरविरताः कथाश्च विविधाः शुभाः । गीतवादित्रघोषाश्च संस्तवाश्च समन्ततः ॥ ३०५ ॥
संहताश्चैवमतुला नानाश्रयकृतास्तथा । एवमादीनि वर्तन्ते तेषां प्रासादमूर्धनि ॥ ३०६ ॥
सहस्रपादः प्रासादस्तपनीयमयः शुभः । अनौपम्यैर्वरै रत्नैः सर्वतः परिभूषितः ॥ ३०७ ॥
स्फटिकैश्चन्द्रसंकाशैर्वैदूर्यमणिसंप्रभैः । बालसूर्यमयैश्चापि सौवर्णैश्चाग्निसम्प्रभैः ॥ ३०८ ॥
चुक्रुशुर्ऋषयः श्रुत्वा नैमिषयास्तपस्विनः । आपन्नसंशयाश्चेमं वाक्यमूचुः समीरणम् ॥ ३०९ ॥

ऋषय ऊचुः

के तु तत्र महात्मानो ये भवस्यानुसारिणः । अनुग्राह्यतमाः सम्यक्प्रमोदन्ते पुरोत्तमे ॥
ऋषीणां वचनं श्रुत्वा वायुर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ३१० ॥

वायुरुवाच

श्रूयतां देवदेवस्य भक्तियैरनुकल्पिता । ह्रीमन्तः सूर्जिता दान्ताः शौर्ययुक्ता ह्यलोलुपाः ॥ ३११ ॥
मध्याहाराश्च मात्राश्च आत्माराम जितेन्द्रियाः। जितद्वंद्वा महोत्साहाः सौम्या विगतमत्सराः॥ ३१२ ॥
भावस्थाः सर्वभूतानामव्यापारा अनाकुलाः । कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनान्तरात्मना ॥
अनन्यमनसो भूत्वा प्रपन्ना ये महेश्वरम् ॥ ३१३ ॥

के हैं। कितनों की शोभा सायंकालीन मेघों के समान लाल वर्ण की और कितनों की कैलास शिखर के समान श्वेत वर्ण की है। उन सुरम्य प्रासादों में भव के सद्व्रतपरायण अनुचरगण अभिमत संगीतादि विविध भोगोपयोगी साधनों से आनन्द का अनुभव करते हैं। वहाँ चारों ओर ब्रह्मचर्चा का सुरम्य स्वर गुंजरित होता रहता है। विविध कल्याणदायिनी पौराणिक कथाएँ बराबर चलती रहती हैं, गायन, वादन, स्तोत्रादि सभी ओर चलते रहते हैं। उक्त विविध प्रकार के स्वरों से एक विचित्र मनोहारिणी दशा वहाँ की हो जाती है, उसकी तुलना कहीं अन्यत्र से नहीं दी जा सकती। वहाँ के सभी गृहों में उक्त मांगलिक कथाओं, स्तोत्रों, गायन-वादनादि मनोरंजक साधनों का कार्यक्रम चलता है। ऐसे अनेक सुरम्य प्रासादों में एक सर्वश्रेष्ठ प्रासाद है, जो सहस्र चरणों (स्तम्भों) से सुशोभित एवं सुवर्णमय है। सभी ओर से अनुपम रत्न उसमें विभूषिता हो रहे हैं। उन रत्नों में से कितने चन्द्रमा के समान निर्मल वैदूर्यमणि के समान देदीप्यमान, उदयकालीन सूर्य के समान मनोहर एवं तेजस्वी, अग्नि एवं सुवर्ण के समान सुन्दर हैं। वायु के इस वर्णन को सुनकर नैमिषारण्य निवासी तपस्वी ऋषिवृन्द परम विस्मित एवं संशयित होकर समीरण से बोले ॥ ३०१-३०९ ॥

ऋषियों ने पूछा—भगवन् वायुदेव। उस पुरश्रेष्ठ में निवासी करनेवाले शिव के अनुगामी महात्मागण कौन है। जो यहाँ सभी सुखों का अनुभव करते हैं। ऋषियों के इस वचन को सुनकर वायु बोले ॥ ३१० ॥

वायु ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! सुनिये । जो देवदेव भगवान शंकर की भक्ति करते हैं, और सर्वदा लज्जानवित, तपस्या के क्लेशों को सहन करने में सशक्त, पराक्रमशील, अलोलुप, मिताहार-विहारपरायण, आत्मा में रमणशील (आत्म-चिन्तन में निरत), जितेन्द्रिय, सुख-दुःखादि द्वन्द्वों से परे, उत्सव पूर्णता, सभी के साथ बन्धुत्व का व्यवहार मानते हैं हुए, मत्सरादि से विहीन, भावप्रवण, सभी संबद्धों में समदर्शिता के व्यवहार रखते हुए, आकुलतारहित, मनसा, वाचा, कर्मणा एवं विशुद्ध अन्तरात्मा से भक्ति धारण एवं अनन्य चित्त शिव की

तैर्लब्धं रुद्रसालोक्यं शाश्वतं पदमव्ययम् । भवस्य रूपसादृश्यं नीताश्चैव ह्यनुत्तमम् ॥ ३१४ ॥
वैश्वानरमुखाः सर्वे विश्वरूपाः कपर्दिनः । नीलकण्ठाः सितग्रीवास्तीक्ष्णदंष्ट्रास्त्रिलोचनाः ॥ ३१५ ॥
अर्धचन्द्रकृतोष्णीषा जटामुकुटधारिणः । सर्वे दशभुजा वीराः पद्मान्तरसुगन्धिनः ॥ ३१६ ॥
तरुणादित्यसङ्काशाः सर्वे ते पीतवाससः । पिनाकपाणयः सर्वे श्वेतगोवृषवाहनाः ॥ ३१७ ॥
श्रियाऽन्विताः कुण्डलिनो मुक्ताहारविभूषिताः। तेजसोऽभ्यधिका देवैः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ॥ ३१८ ॥
विभज्य बहुधात्मानं जरामृत्युविवर्जिताः । क्रीडन्ते विविधैर्भावैर्भोगान्प्राप्य सुदुर्लभान् ॥ ३१९ ॥
स्वच्छन्दगतयः सिद्धाः सिद्धैश्चान्यैर्विबोधिताः। एकादशानां रुद्राणां कोट्योऽनेकमहात्मनाम्॥ ३२० ॥
एभिः सह महात्मा हि देवदेवो महेश्वरः । भक्तानुकम्पी भगवान्मोदते पार्वतीप्रियः ॥ ३२१ ॥
नाहं तेषां तु रुद्राणां भवस्य च महात्मनः । नानात्वमनुपश्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ ३२२ ॥
मातरिश्वाऽब्रवीत्पुण्यामित्येतामीश्वरोऽप्युत । अथ ते ऋषयः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः ॥
श्रुत्वेमां परमां पुण्यां कथां त्रैयम्बकीं ततः ॥ ३२३ ॥
भृशं चानुग्रहं प्राप्य हर्षं चैवाप्यनुत्तमम् । संभावयित्वा चाप्येनां वायुमूचुर्महाबलम् ॥ ३२४ ॥

ऋषय ऊचुः

समीरण महाभाग ह्यस्माकं च त्वया विभो । ईश्वरस्योत्तमं पुण्यमष्टमं त्वौपसर्गिकम् ॥ ३२५ ॥

शरण में जाते हैं, वे ही रुद्र का सायुज्य पद प्राप्त करते हैं, जो शाश्वत एवं अविनश्वर हैं । यही नहीं वे भव के सर्वश्रेष्ठ स्वरूप में भी समानता प्राप्त करते हैं । वे सभी शिवपुर निवासी अग्नि के समान मुखवाले, सर्व-स्वरूप धारी, जटाजूटधारी, नीलकण्ठ, श्वेतग्रीव, तीक्ष्ण दाँत, त्रिलोचन, अर्द्धचन्द्र को सिर में धारण करनेवाले, जटाओं के मुकुट से विभूषित, वीर तथा दस भुजाओं से सुशोभित होते हैं, उनके शरीर से पद्म के अन्तर्भाग की भाँति भीनी-भीनी सुगन्ध आती है । वे मध्याह्न के सूर्य की तरह परम तेजस्वी होते हैं । सभी पीले रंग का वस्त्र धारण करते हैं । सब के हाथों में पिनाक रहता है, सभी श्वेतवर्ण के वृषभ पर सवार होते हैं ॥ ३११-३१७ ॥

सुन्दर कुण्डल एवं हार से विभूषित होने पर उनकी निराली छटा होती है, वे सब-के-सब सर्वज्ञ, सर्वदर्शी एवं तेज में एक-दूसरे से चढ़े-बढ़े रहते हैं । वृद्धावस्था एवं मृत्यु के भय से रहित होकर वे शिवपुर निवासी अपने को अनेक भागों में विभक्तकर विविध प्रकार की अति दुर्लभ उपभोग्य सामग्रियों को प्राप्तकर विविध भावों से भोगते हैं । वे सब स्वच्छन्द गमन करते हैं, सभी सिद्धियाँ उनकी वशवर्तिनी हैं, दूसरे सिद्धगण उन्हें प्रबुद्ध करते हैं । ऐसे परम ऐश्वर्यशाली एकादश रुद्रगणों की संख्या शिवपुर में अनेक कोटि है । इन सबों के साथ देवदेव पार्वतीवल्लभ, भक्तहितकारी भगवान् महेश्वर आनन्द का अनुभव करते हैं ॥ ३१८-३२१ ॥

हे ऋषिवृन्द ! मैं सच कह रहा हूँ कि उन शिवपुर निवासी रुद्रगणों की एवं परम ऐश्वर्यमय भगवान् महेश्वर की विविध सम्भूतियों को अर्थात् सब की विविध रूपता को नहीं देख पाता । वे सब परस्पर अभिन्न हैं । स्वयं भगवान् के मुख से सुनी गयी त्र्यम्बक की इस पुण्यकथा को मातरिश्वा वायु ने जब उन सूर्य के समान परम तेजोमय ऋषियों को सुनाया तो वे परम प्रसन्न हुए और अपने को परम अनुगृहीत माना । इस पुण्य कथा का अभिनन्दन करते हुए वे सब महाबलशाली वायु से बोले ॥ ३२२-३२४ ॥

तस्य स्थानं प्रमाणं च यथावत्परिकीर्तितम् । यो गन्धेन समृद्धं वै परमं परमात्मनः ॥ ३२६ ॥
महादेवस्य माहात्म्यं दुर्विज्ञेयं सुरैरपि । स्वेन माहात्म्ययोगेन सहस्रस्यामितौजसः ॥ ३२७ ॥
यस्य भक्तेष्वसंमोहो ह्यनुकम्पार्थमेव च । ब्राह्मलक्ष्म्या स्वयं जुष्टा या साऽप्रतिमशालिनी ॥ ३२८ ॥
ज्योत्स्नया व्याप्य खं चन्द्रं विन्यस्ता विश्वरूपधृक् । विभूतिर्भ्राजतेऽत्यर्थं देवदेवस्य वेश्मनि ॥ ३२९ ॥
महादेवस्य तुल्यानां रुद्राणां तु महात्मनाम् । तत्सर्वं निखिलेनेदं वक्त्रादमृतनिस्स्रयम् ॥ ३३० ॥
अपीत्वा खलु सर्वस्य भक्त्यास्माभिस्तु सुव्रताः । नास्ति किंचिदविज्ञेयमन्यच्चैवानुगामिनः ॥
प्रश्नं देववर प्राण यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ३३१ ॥

सूत उवाच

स खलूवाच भगवान्किं भूयो वर्त्तयाम्यहम् । किं मया चैव वक्तव्यं तद्वदिष्यामि सुव्रताः ॥ ३३२ ॥

ऋषय ऊचुः

आदित्याः परिपार्श्वेयाः सिंहा वै क्रोधविक्रमाः । वैश्वानरा भूतगणा व्याघ्राश्चैवानुगामिनः ॥ ३३३ ॥
आभूतसंप्लवे घोरे सर्वप्राणभृतां क्षये । किमवस्था भवन्त्येते तन्नो ब्रूहि यथार्थवत् ॥ ३३४ ॥
एते ये वै त्वया प्रोक्ताः सिंहव्याघ्रगणैः सह । ये चान्ये सिद्धिसंप्राप्ता मातरिश्वा जगाद ह ॥ ३३५ ॥
इदं च परमं तत्त्वं समाख्यास्यामि शृण्वताम् । विज्ञातेश्वरसद्भावमव्यक्तं प्रभवं तथा ॥ ३३६ ॥

ऋषियों ने कहा—हे महाभाग ! आप सर्वसमर्थ हैं, आपने ईश्वर के उस परम पुण्यमय सर्वश्रेष्ठ अष्टम औपसर्गिक निवास स्थान का प्रमाण एवं अन्य परिचयात्मक विवरण हम लोगों को सुनाया है, जो परमात्मा की सुगन्ध से सर्वथा समृद्ध है । महादेव का माहात्म्य देवताओं को भी कठिनता से विदित होता है । वे अपने ही पराक्रम द्वारा अमित तेजस्वी सहस्रों अनुचरों की सृष्टि करनेवाले हैं, जो प्रभाव आदि में उन्हीं के समान हैं । जो भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही भक्तों के हृदय में सम्मोह (अज्ञान) का संचार नहीं करते । अनुपम शक्तिशालिनी ब्राह्मी एवं लक्ष्मी स्वयमेव जिसके द्वारा उपयुक्त होती हैं ॥ ३२५-३२८ ॥

जिस प्रकार चन्द्रिका समस्त आकाश एवं चन्द्रमा में व्याप्त रहती है, उसी प्रकार विश्वरूपी भगवान् द्वारा विन्यस्त विभूति उनके उस सुन्दर प्रासाद में सर्वत्र व्याप्त रहती है । ऐसे सर्वशक्तिसम्पन्न महादेव के समान ही पराक्रमशाली एवं महात्मा रुद्रों की भी शक्ति है । वह सारी कथा आपके मुख से अमृत की धारा की भाँति हम सबों ने भक्तिपूर्वक पान की है, और उससे हम सबको परम वृष्टि का लाभ हुआ है । उसे सुनने के उपरान्त अब कुछ भी सुनना शेष नहीं रह गया है । हे देववरों के प्राण । इसके उपरान्त आप हमारे एक अन्य प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें ॥ ३२९-३३१ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! नैमिषारण्यवासी ऋषियों की इस विनीत वाणी को सुनकर भगवान् वायु ने कहा, सद्व्रतपरायण ऋषिगण । अब आपको क्या बताऊँ, मुझे क्या कहना है? ॥ ३३२ ॥

ऋषियों ने कहा—भगवन् वायुदेव ! भगवान् शंकर के पार्श्वभाग में अवस्थित आदित्य, उनके क्रोध के मूर्तरूप वे सिंहगण, वैश्वानरगण, भूतगण, अनुगामी व्याघ्रवृन्द तथा उनके साथ अन्य जिन सिद्धि प्राप्त करनेवालों की चर्चा आपने ऊपर की है-वे सब उस सर्वप्राणिविनाशक घोर महाप्रलय में किस अवस्था को प्राप्त होते हैं, आप

तत्र पूर्वगतास्तेषु कुमारा ब्रह्मणः सुताः । सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥ ३३७ ॥
वोढुश्च कपिलस्तेषामासुरिश्च महायशाः । मुनिः पञ्चशिखश्चैव ये चान्येऽप्येवमादयः ॥ ३३८ ॥
ततः काले व्यतिक्रान्ते कल्पानां पर्यये गते । महाभूतविनाशान्ते प्रलये प्रत्युपस्थिते ॥ ३३९ ॥
अनेकरुद्रकोट्यस्तु या प्रसन्ना महेश्वरी । शब्दादीन्विषयान्भोगान्सत्यस्याष्टविधस्त्रयात् ॥ ३४० ॥
प्रविश्य सर्वभूतानि ज्ञानयुक्तेन तेजसा । वैहायपदमव्यग्रं भूतानामनुकम्पया ॥ ३४१ ॥
यत्र यान्ति महात्मानः परमाणुं महेश्वरम् । तरन्ति सुमहावर्तां जन्ममृत्यूदकां नदीम् ॥ ३४२ ॥
ततः पश्यन्ति शर्वाणं परं ब्रह्माणमेव च । देव्या वै सहिताः सप्त या देव्यः परिकीर्तिताः ॥ ३४३ ॥
यत्तत्सहस्रं सिंहानामादित्यानां तथैव च । वैश्वानरभूतभव्यव्याघ्राश्चैवानुगामिनः ॥ ३४४ ॥
आवेश्यात्मनि तान्सर्वान्संख्यायोपद्रवांस्तथा । लोकान्सप्त इमान्सर्वान्महाभूतानि पञ्च च ॥ ३४५ ॥
विष्णुना सह संयुक्तं करोति विकरोति च । स रुद्रो यः साममयस्तथैव च यजुर्मयः ॥ ३४६ ॥
स एष ओतः प्रोतश्च बहिरन्तश्च निश्चयात् । एको हि भगवान्नाथ अभावी श्रान्त कृद्विजाः ॥ ३४७ ॥
ततस्ते ऋषयः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः । स्वं स्वमाश्रमसंवासमारोप्याग्निं तथात्मनि ॥ ३४८ ॥
कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनान्तरात्मना । अनन्यमनसो भूत्वा प्रपद्यन्ते महेश्वरम् ॥ ३४९ ॥

यथार्थता हैं, इस बात को यथार्थतः बताने की कृपा करें । मातरिश्वा बोले, ऋषिवृन्द । यह परम गुह्य तत्त्व बता रहा हूँ, सावधानतापूर्वक सुनिये । उन समस्त सिद्धि प्राप्त करनेवाले शिवपुर निवासियों में जो ब्रह्मा के कुमार पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, बोढु, कपिल, आसुरि एवं महायशस्वी मुनिवर पञ्चशिख ऋषि हैं, तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य जो ऋषिगण हैं, वे सब-के-सब आदि कारणभूत अव्यक्त सत्ता की महत्ता को जानकर पूर्व ही परम गति को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३३३-३३८ ॥

तदनन्तर बहुत काल व्यतीत होने के बाद कल्प समाप्ति के अवसर पर, जबकि समस्त महाभूतों का विनाश हो जाता है । और महाप्रलय आ जाता है, अनेक कोटि रुद्रगण सत्य का आश्रय ग्रहणकर, शब्दादि विषयों से विरक्त होकर अपने ज्ञानमय तेजोबल से समस्त जीवधारियों में आत्मभाव से प्रविष्ट होकर सभी भूतों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए अविनश्वर अच्युत वैहायस पद को प्राप्त करते हैं । वे सब महात्मागण परमाणुस्वरूपधारी महेश्वर को प्राप्त होते हैं और वहाँ पहुँचकर जन्म-मृत्यु रूप जल से प्रपूर्ण, भीषण भँवरों से समन्वित भवनदी को पार कर जाते हैं । वहाँ पर प्राप्त होकर वे सर्वव्यापी परब्रह्म का दर्शन करते हैं । ऊपर जिन सात महादेवियों की चर्चा की गयी है उनके साथ ही वे वहाँ अवस्थित होते हैं ॥ ३३९-३४३ ॥

सिंहों एवं आदित्यों को, जिनकी संख्या एक सहस्र कही जाती है, तथा वैश्वानर, भूत, भव्य, व्याघ्र एवं अनुगामी रुद्रगण—इन सबको अपनी आत्मा में आविष्ट करके इन सातों लोकों को तथा पाँचों महाभूतों (पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु) को भी शंकर अपने में समाविष्ट कर लेते हैं । इस प्रकार भगवान् विष्णु के साथ वे इस सृष्टि का प्रादुर्भाव एवं विनाश दोनों करते हैं, वे रुद्र हैं, साममय हैं, यजुर्मय हैं । द्विजवृन्द । वे बाहर-भीतर सर्वत्र एक निश्चय से ओत-प्रोत रहते हैं । वे ही एकमात्र समस्त चराचर जगत् के नाथ हैं, उनका आदि नहीं है, वे स्वयं ही सबके अन्तकर्त्ता हैं । वायु की इन बातों को सुनकर दिवाकर के समान परम तेजस्वी नैमिषारण्य-निवासी

व्रतोपवासनिरताः सर्वभूतदयापराः । योगं ह्यनुपमं दिव्यं प्राप्तं तैश्छिन्नसंशयैः ॥ ३५० ॥
प्रपद्य परया भक्त्या ज्ञानयुक्तेन तेजसा । तैर्लब्धं रुद्रसालोक्यं शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ३५१ ॥
यः पठेत्तपसा युक्तो वायुप्रोक्तामिमां स्तुतिम् । ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि वैश्यो वा स्वक्रियापरः ॥ ३५२ ॥
लभते रुद्रसालोक्यं भक्तिमान्विगतज्वरः । अमद्यपश्च यः शूद्रो भवभक्तो जितेन्द्रियः ॥ ३५३ ॥
आभूत संप्लवस्थायी ह्यप्रतीघातलक्षणः । गाणपत्यं स लभते स्थानं वा सार्वकामिकम् ॥ ३५४ ॥
मद्यपो मद्यपैः सार्धं भूतसंघैश्च मोदते । सोऽर्च्यमानो महीपृष्ठे मर्त्यानां वरदो भवेत् ॥
इति होवाच भगवान् वायुर्वाक्यमिदं वरः ॥ ३५५ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे भूर्लोकादिव्यवस्थाशिवपुरवर्णनञ्च नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

* * *

वे ऋषिगण अपने-अपने आश्रम में अग्नि का आधान करके मनसा, वाचा, कर्मणा शुद्ध अन्तरात्मा से अनन्य चित्त होकर महेश्वर की आराधना में लग गये ॥ ३४४-३४९ ॥

व्रत एवं उपवास की साधना में पुनः लग गये । सभी जीवों पर दया का व्यवहार करने लगे । उनके समस्त संशय छिन्न हो गये थे । अतः उन्हें अनुपम दिव्य योग की प्राप्ति हुई । अपनी परम भक्ति एवं ज्ञानमय तेजोबल से उन सबों को शाश्वत रुद्र-सालोक्य पद की प्राप्ति हुई । जो तपस्वी व्यक्ति वायु द्वारा बतायी गयी इस शिवपुरी की स्तुति का पाठ करता है, वह चाहे ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय हो, चाहे अपने कार्य-व्यापार में लगा हुआ वैश्य हो, रुद्र का सालोक्य प्राप्त करता है । रुद्र में उसकी भक्ति बढ़ती है । उसके सारे सन्ताप दूर हो जाते हैं । जो जितेन्द्रिय शूद्र शिव में भक्ति रखनेवाला है, और कभी मदिरा नहीं पान करता वह भी इसके पाठ से महाप्रलय तक की परमायु प्राप्त करता है, इस महान अवधि में उसे कोई कष्ट भी नहीं होता, अथवा सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले गणपति का पद उसे प्राप्त होता है । यदि शूद्र मद्यप है तो वह भी मद्यप भूतगणों के साथ आनन्द का अनुभव करता है । पृथ्वी तल में पूज्य होकर वह सामान्य मनुष्यों को वरदान देता है । भगवान् वायु ने इस सुन्दर कथा को नैमिषारण्यवासी ऋषियों को सुनाया था ॥ ३५०-३५५ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपसंहारपाद में भूर्लोकादिव्यवस्था एवं शिवपुरवर्णन नामक उन्तालीसवें अध्याय (एक सौ एकवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरञ्जन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३९ ॥**

* * *

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

प्रतिसर्गवर्णनम्

सूत उवाच

प्रत्याहारं प्रवक्ष्यामि परस्यान्ते स्वयंभुवः । ब्रह्मणः स्थितिकाले तु क्षीणे तस्मिंस्तदा प्रभोः ॥ १ ॥
यथेदं कुरुतेऽध्यात्मं सुसूक्ष्मं विश्वमीश्वरः । अव्यक्तान्ग्रसते व्यक्तं प्रत्याहारे च कृत्स्नशः ॥ २ ॥
परं तदनुकल्पनामपूर्णे कल्पसंक्षये । उपस्थिते महाघोरे ह्यप्रत्यक्षे तु कस्यचित् ॥ ३ ॥
अन्ते द्रुमस्य संप्राप्ते पश्चिमस्य मनोस्तदा । अन्ते कलियुगे तस्मिन् क्षीणे संहार उच्यते ॥ ४ ॥
सम्प्रक्षाले तदा वृत्ते प्रत्याहारे ह्युपस्थिते । प्रत्याहारे तदा तस्मिन् भूततन्मात्रसंक्षये ॥ ५ ॥
महादादेर्विकारस्य विशेषान्तस्य संक्षये । स्वभावकारिते तस्मिन् प्रवृत्ते प्रतिसंचरे ॥ ६ ॥
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धात्मकं गुणम् । आत्तगन्धा ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ॥
प्रविष्टे गन्धतन्मात्रे तोयावस्था धरा भवेत् ॥ ७ ॥

चालीसवाँ अध्याय

(एक सौ दोवाँ अध्याय)

प्रतिसर्गवर्णन

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! अब इसके बाद मैं परम पुरुषोत्तम स्वयंभू भगवान के प्रत्याहार का वर्णन कर रहा हूं । परम ऐश्वर्य शालि ब्रह्मा की स्थिति-काल के समाप्त होने पर ईश्वर जिस प्रकार अपनी आत्मा में परम सूक्ष्म रूप में इस समस्त जगत् को स्थिर कर लेते हैं उसे बता रहा हूँ । उस प्रत्याहार में समस्त अव्यक्त (?) भूतों को व्यक्त ग्रस होता है (?) । कल्पों के क्षय-काल के थोड़े शेष रहने पर ही सृष्टि के इस प्रत्याहार का कार्य प्रारम्भ हो जाता है । सबसे अन्तिम हुम नामक मनु की अधिकारावधि के अन्तिम अवसर पर कलियुग के अवसान में यह घोर संकट-काल उपस्थित होता है । उस समय यह सारी सृष्टि अप्रत्यक्ष (अव्यक्त) में परिणत हो जाती है, वही सृष्टि का संहार कहा जाता है ॥ १-४ ॥

उस प्रति संचर काल के प्रवृत्त होने पर अब सृष्टि का प्रत्याहार उपस्थित होता है, उस समय भूतों की तन्मात्राओं का भी विनाश होता है । महदादि विशेषान्त समस्त विकार क्षय को प्राप्त होते हैं । यह सब स्वाभाविक ढंग पर घटित होता है । सर्वप्रथम जलराशि भूमि के गन्धगुण को ग्रस लेती है, जिससे भूमि गन्धविहीन होकर जल में विलीन हो जाती है । और इस प्रकार जल में गन्ध तन्मात्रा के प्रविष्ट हो जाने से पृथ्वी जल रूप में परिणत हो जाती है ॥ ५-७ ॥

उसके बाद वह जलराशि समस्त जगत् में व्याप्त होकर वेगवान् एवं अति मुखरित होकर सर्वत्र संचरित

आपस्तदा प्रनष्टा वै वेगवत्यो महास्वनाः । सर्वमापूरयित्वेदं तिष्ठन्ति विचरन्ति च ॥ ८ ॥
अपामस्ति गुणो यस्तु ज्योतिषे लीयते रसः । नश्यन्त्यापस्तदान्ते च रसतन्मात्रसंक्षयात् ॥ ९ ॥
तेजसा संहृतरसा ज्योतिष्ट्वं प्राप्नुवन्त्युत । ग्रस्ते च सलिले तेजः सर्वतोमुखमीक्ष्यते ॥ १० ॥
अथाग्निः सर्वतो व्याप्त आदत्ते तज्जलं तदा । सर्वमापूर्यतेऽर्चिर्भिस्तदा जगदिदं शनैः ॥ ११ ॥
अर्चिर्भिः संतते तस्मिंस्तिर्यगूर्ध्वमधस्ततः । ज्योतिषोऽपि गुणं रूपं वायुरन्ति प्रकाशकम् ॥
प्रलीयते तदा तस्मिन्दीपार्चिरिव मारुते ॥ १२ ॥
प्रनष्टे रूपतन्मात्रे हृतरूपो विभावसुः । उपशाम्यति तेजो हि वायुना धूयते महत् ॥ १३ ॥
निरालोके तदा लोके वायुभूते च तेजसि । ततस्तु मूलमासाद्य वायुः संभवमात्मनः ॥ १४ ॥
ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश । वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते च तत् ॥ १५ ॥
प्रशाम्यति तदा वायुः खं तु तिष्ठत्यनावृत्तम् । अरूपमरसस्पर्शमगन्धं न च मूर्तिमत् ॥ १६ ॥
सर्वमापूरयन्नादैः सुमहत्तत्प्रकाशते । परिमण्डलं तत्सुषिरमाकाशं शब्दलक्षणम् ॥ १७ ॥
शब्दमात्रं तदाकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति । तं तु शब्दगुणं तस्य भूतादिं ग्रसते पुनः ॥ १८ ॥
भूतेन्द्रियेषु युगपद्भूतादौ संस्थितेषु वै । अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामसः स्मृतः ॥ १९ ॥

और स्थिर होने लगती है। तदनन्तर जल का जो रस गुण है वह ज्योति (तेज) में लीन हो जाता है, और इस प्रकार रस तन्मात्रा के नष्ट हो जाने से जलराशि समाप्त हो जाती है। तेज के द्वारा विनष्ट रस के ज्योति में परिणत हो जाने पर जलराशि का जब सर्वथा अभाव हो जाता है तब सभी ओर तेज ही तेज दिखायी पड़ने लगता है। समस्त जगत् में व्याप्त अग्नि उस समय जल को अपने में ग्रहण कर लेती है, उसकी लपटों से यह जगन्मण्डल शनैः-शनैः पूर्ण हो जाता है ॥ ८-११ ॥

नीचे-ऊपर, इधर-उधर सर्वत्र अग्नि की लपटों के फैल जाने पर ज्योति के प्रकाशमय गुण रूप को वायु अपने में समेट लेती है, उस समय वायु में वह तेजोराशि दीप शिखा की भाँति विलीन हो जाती है। तन्मात्रा के विनष्ट हो जाने पर अग्नि का रूप नष्ट हो जाता है, जिससे तेज शान्त पड़ जाता है, वायु से यह समस्त जगत् अतिशय कम्पायमान हो उठता है। तेज के वायु के रूप में परिणत हो जाने पर जब समस्त लोक आलोक-विहीन हो जाता है, तब वायु अपने मूल उत्पत्ति-स्थान का आश्रय ग्रहण करता है और ऊपर-नीचे इधर-उधर दसों दिशाओं को बारम्बार कम्पित करता है। तदुपरान्त वायु के स्पर्शात्मक गुण को आकाश अपने में समेट लेता है। परिणामस्वरूप वायु का वेग शान्त हो जाता है, उस समय केवल अनावृत आकाश स्थित रहता है, कोई रूप, रस, गन्ध, स्पर्श एवं मूर्ति उसकी नहीं रहती, अपने भीषण निनाद से जगत् को पूरित करता हुआ वह मण्डलाकार आकाश प्रकाशित होता है, वह केवल शब्दात्मक रहता है, उसमें केवल पोल रहती है। इस प्रकार केवल शब्दगुणयुक्त आकाश समस्त भूतों को आवृत कर स्थिर रहता है। उसके बाद उस शब्दगुणमय आकाश को भी भूतादि ग्रस लेता है ॥ १२-१८ ॥

समस्त भूतों को एवं उन आश्रित समस्त इन्द्रियों को एक साथ ही यह अहंकारतत्त्व ग्रस लेता है, यह भूतादि तामस अर्थात् अहंकारतत्त्व के नाम से विख्यात है। उस भूतादि तामस को भी बुद्धि रूपी महत्तत्त्व ग्रसता

भूतादिं ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षणः । महानात्मा तु विज्ञेयः संकल्पो व्यवसायकः ॥ २० ॥
बुद्धिर्मनश्च लिङ्गश्च महानक्षर एव च । पर्यायवाचकैः शब्दैस्तमहुस्तत्त्वचिन्तकाः ॥ २१ ॥
संप्रलीनेषु भूतेषु गुणसाम्ये तमोमये । स्वात्मन्येव स्थिते चैव कारणे लोककारणे ॥ २२ ॥
विनिवृत्ते तदा सर्गे प्रकृत्याऽवस्थितेन वै । तदाद्यन्तपरोक्षत्वाददृष्टत्वाच्च कस्यचित् ॥ २३ ॥
अनाख्यानादबोधत्वादज्ञानाज्ज्ञानिनामपि । आगतागतिकत्वाच्च ग्रहणं तत्र विद्यते ॥ २४ ॥
भावग्रह्यानुमानाच्च चिन्तयित्वेदमुच्यते । स्थिते तु कारणे तस्मिन्नित्ये सदसदात्मिके ॥ २५ ॥
अनिर्देश्या प्रवृत्तिर्वै स्वात्मिका कारणे न तु । एवं सप्तादयोऽभ्यस्तात्क्रमात्प्रकृतयस्तु वै ॥ २६ ॥
प्रत्याहारे तदा सर्गे प्रविशयन्ति परस्परम् । येनेदमावृतं सर्वं मण्डलन्तु प्रलीयते ॥ २७ ॥
सप्तद्वीपसमुद्रान्तं सप्तलोको सपर्वतम् । उदकावरणं यच्च ज्योतिषां लियते तु तत् ॥ २८ ॥
यत्तैजसं चावरणमाकाशं ग्रसते तु तत् । यद्वायव्यं चावरणमाकाशं ग्रसते तु तत् ॥ २९ ॥
आकाशवरणं यच्च भूतादिर्ग्रसते तु तत् । भूतादिं ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षणः ॥ ३० ॥
महान्तं ग्रसतेऽव्यक्तं गुणसाम्यं ततः परम् । एतौ संहारविस्तारौ ब्रह्माव्यक्तौ ततः पुनः ॥ ३१ ॥
सृजते ग्रसते चैव विकारान्सर्गसंयमे । संहारकार्यकरणाः संसिद्धा ज्ञानिनस्तु ये ॥ ३२ ॥
गत्वा जवं जवीभावे स्थानेष्वेषु प्रसंयमान् । प्रत्याहारे वियुज्यन्ते क्षेत्रज्ञाः करणैः पुनः ॥ ३३ ॥

है। यही महत्तत्व ही संकल्प एवं अध्यवसायात्मक है। तत्त्वचिन्तापरायण लोग इसी को बुद्धि, मन, लिङ्ग, महान् एवं अक्षर प्रभृति पर्यायवाची शब्दों से पुकारते हैं। इस प्रकार जब सभी भूत विलीन हो जाते हैं, गुणों में साम्य हो जाता है, समस्त जगत् तमोमय हो जाता है, लोक के कारणभूत कारणसमूह आत्मस्थित हो जाते हैं, सृष्टि निवृत्त होकर प्रकृति में अव्यस्थित हो जाती है, तब आदि-अन्त किसी का कुछ पता नहीं लगता, कुछ दिखायी नहीं पड़ता, किसी का कुछ नाम-रूप शेष नहीं रह जाता, जिससे ज्ञानसम्पन्न को भी कुछ मालूम नहीं पड़ता और उस समय गतागत का भी कुछ बोध नहीं होता ॥ १९-२४ ॥

ऐसी स्थिति का भावनाओं एवं अनुमान द्वारा कुछ चिन्तन करके यह कहा गया है कि उस समय वे सब पदार्थ उस सदसदात्मक, शाश्वत परम कारण में प्रतिष्ठित होते हैं। यह स्वात्मप्रवृत् कारण द्वारा अनिर्देश्य है। सृष्टि के इन सातों उपादानों के इस प्रकार क्रमशः विलय कहे जाते हैं। प्रत्याहारकाल में इसी प्रकार इन सातों प्राकृत पदार्थों का परस्पर अनुप्रवेश होता है। सातों द्वीप, समस्त पर्वत, सातों लोक एवं सब समुद्र इन सबको जिसने आवृत किया है, वह विशाल ब्रह्माण्ड सर्वप्रथम जलराशि में विलीन होता है। और तदनन्तर वह जलावरण ज्योति पदार्थ में विलय होता है। उसके बाद उस तैजस आवरण को वायु ग्रसता है और उस वायवीय आवरण को आकाश समेट लेता है। उस आकाशीय आवरण को भूतादि तामस अहङ्कार तत्त्व ग्रसता है। भूतादि को बुद्धि रूप महत्तत्त्व ग्रसता है। उस महत्तत्त्व को अव्यक्त ग्रसता है, उसके बाद गुणों में समानता हो जाती है। सृष्टि का यह संहार एवं विस्तार ब्रह्मनिष्ठ अव्यक्त प्रकृति से होता है। सृष्टि के लिए ही वह इन विकारों को ग्रसती एवं निर्माण करती है। समस्त कार्य और कारणों को अधिगत करनेवाले जो परम ज्ञानी एवं सिद्ध लोग हैं वे इन स्थानों पर अपने प्रकृष्टसंयम से इस संहारकालीन आकर्षण में स्वयं द्रुतगति से आकृष्ट हो प्रत्याहारकाल में वे क्षेत्रज्ञ

अव्यक्तं क्षेत्रमित्याहुर्बह्म क्षेत्रज्ञ उच्यते । साधर्म्यवैधर्म्यकृतसंयोगोऽनादिमांस्तयोः ॥ ३४ ॥
एवं सर्गेषु विज्ञेयं क्षेत्रज्ञेष्विह ब्राह्मणाः । ब्रह्मविच्चैव विज्ञेयः क्षेत्रज्ञानात्पृथक्पृथक् ॥ ३५ ॥
विषयाविषयत्वं च क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः स्मृतम् । ब्रह्मा तु विषयो ज्ञेयोऽविषयः क्षेत्रमुच्यते ॥ ३६ ॥
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं क्षेत्रं क्षेत्रज्ञार्थं प्रचक्षते । बहुत्वाच्च शरीराणां शरीरी बहुधा स्मृतः ॥ ३७ ॥
अव्यूहा शंकराच्चैव ज्योतिर्वच्चक्ष्यवस्थितः । यस्मात्प्रतिशरीरं हि सुखदुःखोपलब्धिता ॥
तस्मात्पुरुषनानात्वं विज्ञेयं तु विजानता ॥ ३८ ॥
यदा प्रवर्तते चैषां भेदानां चैव संयमाः । स्वभावकारिताः सर्वे कालेन महता तदा ॥ ३९ ॥
निवर्तते तदा तस्य स्थितिरागः स्वयंभुवः । सहसा योज्यकैः सर्वैर्ब्रह्मलोकनिवासिभिः ॥ ४० ॥
विनिवृत्ते तदा रागे स्थितावात्मनिवासिनाम् । तत्कालवासिनां तेषां तदा तद्दोषदर्शिनाम् ॥ ४१ ॥
उत्पद्यतेऽथ वैराग्यमात्मवादप्रणाशनम् । भोज्यभोक्तृत्वनानात्वे तेषां तद्भावदर्शिनाम् ॥ ४२ ॥
पृथग्ज्ञानेन क्षेत्रज्ञास्ततस्ते ब्रह्मलौकिकाः । प्रकृतौ करणा नीताः सर्वे नानाप्रदर्शिनः ॥ ४३ ॥
स्वात्मन्येवावतिष्ठन्ते प्रशान्ता दर्शनात्मकाः । शुद्धा निरञ्जनाः सर्वे चेतनाचेनास्तथा ॥ ४४ ॥
तत्रैव परिनिर्वाणाः स्मृता नागामिनस्तु ते । निर्गुणत्वानिरात्मानः प्रकृत्यन्ते व्यतिक्रमात् ॥ ४५ ॥

करणों से पुनः वियुक्त हो जाते हैं । अव्यक्त ही को क्षेत्र कहा जाता है, और ब्रह्म क्षेत्रज्ञ कहा जाता है । इन दोनों का साधर्म्य एवं वैधर्म्यमूलक संयोग अनादिकाल से चला आ रहा है ॥ २५-३४ ॥

हे विप्रवृन्द ! समस्त सर्गों में (सृष्टि में) क्षेत्रज्ञों के विषय में यही विशेषता (क्रम) जाननी चाहिए । जो पृथक् पृथक् रूप में इस क्षेत्र का (ज्ञान) तत्त्व जानता है, उसी को ब्रह्मज्ञानी (क्षेत्रज्ञ) जानना चाहिए । क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ का विषयत्व एवं अविषयत्व प्रसिद्ध है, ब्रह्मा को विषय एवं क्षेत्र को अविषय जानना चाहिए । क्षेत्र क्षेत्र द्वारा अधिक्षित है, उसकी उपयोगिता ही क्षेभज्ञ के लिए कही जाती है । शरीर के आधिक्य के कारण शरीरी भी अनेक कहे जाते है ॥ ३५-३७ ॥

किन्तु मे ज्योतिर्मय पदार्थ की भाँति असम्बद्ध और असंकर रहते हैं । प्रत्येक शरीर में सुख-दुःख दोनों की उपलब्धि होती है, अतः ज्ञानी लोग पुरुष को अनेक मानते हैं । बहुत काल व्यतीत हो जाने पर प्रकृतिवश जब सब के भेद की प्रवृति का संगम घटित होता है तब स्वयंभू को स्थितिबुद्धि निवृत्त हो जाती है । और उस समय समस्त महालोक-निवासी सहसा अपनी-अपनी स्थितिवृत्ति में दोष देखकर चैराग्ययुक्त हो जाते हैं । जिससे उनके आत्मवादात्मक अहंकार का सर्वचा विनाश हो जाता है । भोग्य एवं भोकापन के ज्ञान से रहित होकर वे नानात्व के दर्शनाभाव से प्रशान्त होकर आत्मा में अवस्थित होते हैं ॥ ३८-४२ ॥

ये समस्त ब्रह्मलोक-निवासी पृथक्-पृथक् क्षेत्र ज्ञानयुक्त होने के कारण ही क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं । ये सब प्रकृतिगत सभी कारणों से परे हैं और उन सबके नानात्व के देखनेवाले हैं । चेतनाचेतनात्मक, शुद्ध, बुद्ध, चैतन्य, निरज्जन, प्रकृति में निर्वाण प्राप्त करनेवाले एवं पुनः कभी लौटकर आनेवाली नहीं है अर्थात् उनका पुनर्जन्म नहीं होता । प्रकृति निर्गुण और निरात्म होने के कारण वे क्षेत्रज्ञगण मुक्त हो जाते हैं, उनका पुनः आगमन (जन्म नहीं होता । स्वयंभू का प्राकृत प्रतिसर्ग इसी प्रकार का कहा जाता है । सभी भूतों के कारणसमूह प्रकृति के इस गुण-

इत्येवं प्राकृतः प्रोक्तः प्रतिसर्गः स्वयंभुवः । भिद्यन्ते सर्वभूतानां करणानि प्रसंयमे ॥ ४६ ॥
इत्येष संयमश्चैव तत्त्वानां करणैः सह । तत्त्वप्रसंयमो ह्येष स्मृतो ह्यावर्तको द्विजाः ॥ ४७ ॥

सूत उवाच

धर्मधर्मौ तपो ज्ञानं शुभे सत्यानृते तथा । ऊर्ध्वभावो ह्यधोभावो सुखदुःखे प्रियाप्रिये ॥ ४८ ॥
सर्वमेतत्प्रयातस्य गुणमात्रात्मकं स्मृतम् । निरिन्द्रियाणां च तदा ज्ञानिनां यच्छुभाशुभम् ॥ ४९ ॥
प्रकृत्यां चैव तत्सर्वं पुण्यं पापं प्रतिष्ठति । योन्यवस्था स्वभावे च देहिनां तु निषिच्यते ॥ ५० ॥
जन्तूनां पापपुण्यं तु प्रकृतौ यत्प्रतिष्ठितम् । अव्यक्तस्थानि तान्येव पुण्यपापानि जन्तवः ॥
ये जयन्ति पुनर्देहे देहान्यत्वे तथैव च ॥ ५१ ॥
धर्मधर्मौ तु जन्तूनां गुणमात्रात्मकावुभौ । करणैः स्वाः प्रचीयेते कायत्वेनेह जन्तुभिः ॥ ५२ ॥
सुचेतनाः प्रलियन्ते क्षेत्रज्ञाधिष्ठिता गुणाः । सर्गे च प्रतिसर्गे च संसारे चैव जन्तवः ॥
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते करणैः संचरन्ति च ॥ ५३ ॥
राजसी तामसी चैव सात्त्विकी चैव वृत्तयः । गुणमात्राः प्रवर्तन्ते पुरुषाधिष्ठितास्त्रिधा ॥ ५४ ॥
ऊर्ध्वं देवात्मकं सत्त्वमधोभागात्मकं तमः । तयोः प्रवर्तकं मध्ये इहैवावर्तकं रजः ॥ ५५ ॥
इत्येवं परिवर्तन्ते त्रयः स्त्रोतोगुणात्मकाः । लोकेषु सर्वभूतानां तत्र कार्यं विजानता ॥ ५६ ॥
अविद्याप्रत्ययारम्भा आरभ्यन्ते हि मानवैः। एतास्तु गतयस्तिस्त्रः शुभाः पापात्मिकाः स्मृताः ॥ ५७ ॥

संयम में भिन्न-भिन्न हो जाते हैं । तत्वों का करणों के साथ इसी प्रकार का संयम है । द्विजवृन्द ! यह तत्त्वप्रसंयम आवर्तनशील कहा जाता है ॥ ४३-४७ ॥

श्रीसूतजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! धर्म, अधर्म, तप, ज्ञान, सत्य, झूठ, ऊर्ध्व, अपः, सुख, दुःख, प्रिय, महान थे सब गुणात्मक कहे जाते हैं । इन्द्रियों से परे अर्थात् जितेन्द्रिय ज्ञानसम्पन्न प्राणियों के जो कुछ भी शुभाशुभ पुण्य-पापात्मक कर्म है, वे सब प्रकृतिवश प्रतिष्ठित है । प्राणधारी जन्तुओं के जो कुछ भी पुण्य-पापादि कर्म प्रकृति में प्रतिष्ठित रहते हैं । प्रकृति ही उन देहधारियों के स्वभाव की उत्पत्ति-स्थली है । अव्यक्त प्रकृति में प्रतिष्ठित जन्तुओं के पुण्यपापादि कर्मसमूह अन्य शरीर धारण करने पर पुनः संयुक्त हो जाते हैं । देहधारियों के धर्म और अधर्म—ये दो गुणमात्रात्मक हैं । कार्य दशा में अपने-अपने कारणों द्वारा देहधारी के स्वभाव में वृद्धि प्राप्त करते हैं । इस जगत् में क्षेत्रज्ञाधिष्ठित सुचेतन गुण समुदाय सृष्टि की और संहारदशा में अपने-अपने करणों द्वारा संयुक्त, वियुक्त और संचरणशील होते हैं ॥ ४८-५३ ॥

समस्त पुरुषों में अधिष्ठित राजसी, तामसी एवं सात्त्विकी ये तीन गुणमात्र वृत्तियाँ प्रवर्तित होती हैं । ऊर्ध्व भाग देवात्मक एवं सत्त्वगुणसम्पन्न है, अधोभाग तमोगुणमय है, दोनों का मध्यवर्ती एवं प्रवर्तक भाग रजोगुणमय इह लोक प्रापक है । समस्त त्रैलोक्य में सर्व जीवों के भीतर यही तीन भाव परिवर्तित होते रहते हैं । ज्ञानी पुरुष को लोक में समस्त जीवों के इन विविध स्वभावों की पर्यालोचना नहीं करनी चाहिए । मानव अविद्यावश विविध प्रकार के कर्मों का अनुष्ठानकर शुभ, पाप एवं मध्यात्मक तीन गतियों को प्राप्त करता है । जन्तुगण तमो-गुण में आबद्ध होकर यथार्थ तत्त्वज्ञान की प्राप्ति करने से वंचित रह जाते हैं । और इस प्रकार तत्त्वों के अदर्शन के

तमसाऽभिभवाज्जन्तुर्याथातथ्यं न विन्दति । अतत्त्वदर्शनात्सोऽथ त्रिविधं बध्यते ततः ॥ ५८ ॥
प्राकृतेन च बन्धेन तथा वैकारिकेन च । दक्षिणाभिस्तृतीयेन बद्धोऽत्यन्तं विवर्तते ॥ ५९ ॥
इत्येते वै त्रयः प्रोक्ता बन्धा ह्यज्ञानहेतुकाः । अनित्ये नित्यसंज्ञा च दुःखे च सुखदर्शनम् ॥ ६० ॥
अस्वे स्वमिति च ज्ञानमशुचौ शुचिनिश्चयः । येषामेते मनोदोषा ज्ञानदोषा विपर्ययात् ॥ ६१ ॥
रागद्वेषनिवृत्तिश्च तज्ज्ञानं समुदाहृतम् । अज्ञानं तमसो मूलं कर्मद्वयफलं रजः ॥
कर्मजस्तु पुनर्देहो महादुःखं प्रवर्तते ॥ ६२ ॥
श्रोत्रजा नेत्रजा चैव त्वग्जिह्वाघ्राणतस्तथा । पुनर्भवकरी दुःखा कर्मणां जायते तु सा ॥ ६३ ॥
सतृष्णोऽभिहितो बालः स्वकृतैः कर्मणः फलैः । तैलपालिकवज्जीवस्तत्रैव परिवर्तते ॥ ६४ ॥
तस्मात्स्थूलमनर्थानामज्ञानमुपदिश्यते । तं शत्रुमवधार्यैकं ज्ञाने यत्नं समाचरेत् ॥ ६५ ॥
ज्ञानाद्विजयते सर्वं त्यागाद्बुद्धिर्विरज्यते । वैराग्याच्छुध्यते चापि शुद्धः सत्त्वेन मुच्यते ॥ ६६ ॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि रागं भूतापहारिणम् । अभिषङ्गाय यो यस्माद्विषयोऽप्यवशात्मनः ॥ ६७ ॥
अनिष्टमभिषङ्गं हि प्रीतितापविषादनम् । दुःखलाभेन तापश्च सुखानुस्मरणं तथा ॥ ६८ ॥

कारण तीन प्रकार के बन्धनों से आबद्ध होते हैं । प्रथम प्राकृत बन्धन, द्वितीय वैकारिक बन्धन और तृतीय दक्षिणात्मक बन्धन-इन तीनों से अतिशय आबद्ध होकर जन्तुगण दुःख का अनुभव करते हैं । ये तीनों अज्ञानमूलक बन्धन कहे जाते हैं ॥ ५४-५९ ॥

अनित्य पदार्थों में नित्यता का दर्शन, दुःख में सुख का दर्शन, परकीय वस्तु में निजत्व का दर्शन, अपवित्र में पवित्रता का दर्शन, जिनके मन में ऐसे दोष रहते हैं, उनके विपर्ययवश ज्ञान में भी दोष हो जाते एवं अशुभ कर्मों का प्रेरक रजोगुण है । कर्मों से पुनः शरीर धारण करना पड़ता है, जिससे महादुःख की प्राप्ति होती हैं । राग और द्वेष से पूर्ण निवृत्ति का होना ही ज्ञान कहा जाता है । ऐसे ज्ञान का अभाव तमोगुण का मूल है, शुभ है ॥ ६०-६२ ॥

कान से, नेत्र से, चमड़े से, जीभ से और नाक से पुनर्जन्म के कारणभूत कर्मों का जन्म होता है । अपने-अपने किये गये कर्मों के फल से ही अज्ञ जीव की इन्द्रियों द्वारा उपभोग्य विषयों की तृष्णा में फँसकर दुःखों का अनुभव करना पड़ता है । वह तेली के बैल के समान उन्हीं विषयों में बार-बार चक्कर काटता रहता है । इसी कारण से समस्त अनर्थों के मूलभूत अज्ञान से बचने का उपदेश किया जाता है । उसे अपना शत्रु समझकर मनुष्य को सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिए यत्न करना चाहिए । ज्ञान द्वारा ही समस्त अज्ञानों से मुक्ति मिलती है । अज्ञान त्याग से सांसारिक विषय-वासनाओं से विराग होता है । वैराग्य से मन की शुद्धि होती है और मनः शुद्धि से भावनाओं का उदय होता है, जिसके द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है । अब इसके उपरान्त समस्त प्राणियों को अज्ञान में डालनेवाले राग के विषय में बता रहा हूँ । इसी राग के कारण प्राणिसमूह अवश होकर विषय-वासनाओं से निबद्ध हो जाते हैं । इस प्रकार के अनुराग से ही प्रीति, ताप एवं विषाद का जन्म होता है । मनोभिलषित वस्तु की प्राप्ति में बाधा पड़ने से दुःख होता है, उसके रात-दिन के अनुस्मरण से सुख का अनुभव होता है । यह सब विषयगत राग है, जो सब की उत्पत्ति का कारण कहा जाता है । ब्रह्मा से लेकर स्थावर जीवनिकाय जितने हैं, वे

इत्येष वैषयो रागः संभूत्याः कारणं स्मृतम् । ब्रह्मादौ स्थावरान्ते वै संसारे ह्याधिभौतिके ॥
अज्ञानपूर्वकं तस्मादज्ञानं तु विवर्जयेत् ॥ ६९ ॥
यस्य चार्षं न प्रमाणं शिष्टाचारं तथैव च । वर्णाश्रमविरोधी यः शिष्टशास्त्रविरोधकः ॥ ७० ॥
एष मार्गो हि निरधितिर्यग्योनौ च कारणम् । तिर्यग्योनिगतं चैव कारणं स निरूच्यते ॥ ७१ ॥
विविधा यातना स्थाने तिर्यग्योनौ च षड्विधे । कारणे विषये चैव प्रतिघातस्तु सर्वशः ॥ ७२ ॥
अनैश्वर्यं तु तत्सर्वं प्रतिघातात्मकं स्मृतम् । इत्येषा तामसी वृत्तिर्भूतादीनां चतुर्विधा ॥ ७३ ॥
सत्वस्थमात्रकं चित्तं यथा सत्त्वप्रदर्शनात् । तत्त्वानां च तथा तत्त्वं दृष्ट्वा वै तत्त्वदर्शनात् ॥ ७४ ॥
सत्त्वक्षेत्रज्ञनानात्वमेतज्ज्ञानार्थदर्शनम् । नानात्वदर्शनं ज्ञानं ज्ञानाद्वै योगमुच्यते ॥ ७५ ॥
तेन बद्धस्य वै बन्धो मोक्षो मुक्तस्य तेन च । संसारे विनिवृत्ते तु मुक्तो लिङ्गेन मुच्यते ॥ ७६ ॥
निःसंबन्धो ह्यचैतन्यः स्वात्मन्येवावतिष्ठते । स्वात्मव्यवस्थितश्चापि विरूपाख्येन लिख्यते ॥ ७७ ॥
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं समासाज्ज्ञानमोक्षयोः । स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मोक्षो वै तत्त्वदर्शिभिः ॥ ७८ ॥
पूर्वं वियोगो ज्ञानेन द्वितीयो रागसंक्षयात् । लिङ्गाभावात्तु कैवल्यं कैवल्यात्तु निरञ्जनम् ॥ ७९ ॥

सब इस आधिभौतिक जगत् में इसी अज्ञानमूलक विषयों के प्रति अनुराग रखने से जन्म ग्रहण करते हैं। इसलिए इस अज्ञान से सर्वथा बचे रहना चाहिए ॥ ६३-६९ ॥

ऋषियों के कहे गये मत एवं शिष्टजनों द्वारा आचरित कर्मसमूह उक्त अज्ञान के अनुकूल नहीं है, यह अज्ञान वास्तव में वर्णाश्रमधर्म विरोधी एवं शिष्टानुमोदित शास्त्रों से विपरीत है। यह एक अज्ञान पथ अस्थिर एवं तिर्यक् योनि में जन्म देने का कारण है। तिर्यक् योनिगत कारण यह कहा जाता है। उस तिर्यक् योनि में जन्म लेने से जो यातनाएँ अनुभव करनी पड़ती हैं, उससे भी अधिक विविध प्रकार का कष्ट इस अज्ञान से मिलता है। छह प्रकार के कारणों एवं विषयों में तथा तिर्यक् योनियों में जो भी यातनाएँ जीवों को अनुभव करनी पड़ती हैं, वे कामनाओं के प्रतिघात से उत्पन्न होती हैं। वह सारी असफलता एवं ऐश्वर्य की न्यूनता इच्छाओं के प्रतिभात होने से ही उत्पन्न कही जाती है। भूतादिकों की ये चार प्रकार की तामसी वृत्तियाँ कही गयी हैं। सात्त्विक भावनाओं के प्रदर्शन होने से चित्त को सत्त्व प्रधान माना जा सकता है, तत्त्वों के यथावत् अनुदर्शन एवं विचार से, तत्त्वों के रहस्य ज्ञान से, सत्त्व और क्षेत्रज्ञ का नानात्व ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान से ही योगोत्पत्ति होती है ऐसा लोगों का कहना है ॥ ७०-७५ ॥

उसी संसार से बँधे रहने पर वास्तव बन्धन एवं उसी से मुक्त रहने पर वास्तविक मुक्ति होती है। संसार से विनिवृत्त हो जाने पर जब मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है तब प्राणी लिङ्ग शरीर से भी मुक्त हो जाता है। उस मुक्तावस्था में जीव का किसी से भी कुछ सम्बन्ध नहीं रहता। उसकी एक अचैतन्यावस्था रहती है, केवल आत्मनिष्ठ वह रहता है। जीव की इस विशेष अवस्था को, जब वह केवल आत्मस्थ रहता है, विरूप कहा जाता है। संक्षेप में मैंने ज्ञान एवं मोक्ष का परिचय आप लोगों को कराया है, तत्त्वद्रष्टा लोग इस मोक्ष को तीन प्रकार का बताते हैं ॥ ७६-७८ ॥

निरञ्जनत्वाच्छुद्धस्तु ततो नेता न विद्यते । तृष्णाक्षयात्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षकारणम् ॥ ८० ॥
निमित्तमप्रतीघाते इष्टशब्ददिलमक्षणे । अष्टवेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ॥ ८१ ॥
क्षेत्रज्ञेष्ववसज्यन्ते गुणमात्रात्मकानि तु । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वैराग्यं दोषदर्शनात् ॥ ८२ ॥
दिव्ये च मानुषे चैव विषये पञ्चलक्षणे । अप्रद्वेषोऽनभिष्वङ्गः कर्त्तव्यो दोषदर्शनात् ॥ ८३ ॥
तापप्रीतिविषादानां कार्यं तु परिवर्जनम् । एवं वैराग्यमास्थाय शरीरी निर्ममो भवेत् ॥ ८४ ॥
अनित्यमशिवं दुःखमिति बुद्ध्याऽनुचिन्त्य च । विशुद्धं कार्यकरणं सत्त्वाभ्येति तरान्तु यः ॥ ८५ ॥
परिपक्वकषायो हि कृत्स्नान्दोषान्प्रपश्यति । ततः प्रयाणकाले हि दोषैर्नैमित्तिकैस्तथा ॥ ८६ ॥
ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः । स शरीरमुपाश्रित्य कृत्स्नान्दोषान्रुणद्धि वै ॥ ८७ ॥
प्राणस्थानानि भिन्दन्हि छिन्दन्मर्माण्यतीत्य च । शैत्यात्प्रकुपितो वायुरूर्ध्वं तु क्रमते ततः ॥ ८८ ॥
स चायं सर्वभूतानां प्राणस्थानेष्ववस्थितः । समासात्संवृते ज्ञाने संवृत्तेषु च कर्मसु ॥ ८९ ॥
स जीवोऽनभ्यधिष्ठानः कर्मभिः स्वैः पुराकृतैः । अष्टाङ्गप्राणवृत्तीर्वै स विच्यावयते पुनः ॥ ९० ॥
शरीरं प्रजहंसो वै निरुच्छ्वासस्ततो भवेत् । एवं प्राणैः परित्यक्तो मृत इत्यभिधीयते ॥ ९१ ॥
यथेह लोके खद्योतं नीयमानमितस्ततः । रञ्जनं तद्वधे यत्तु नेता नेता न विद्यते ॥ ९२ ॥

उनमें प्रथम मोक्ष ज्ञान बल से संसारिक विषय-वासनाओं से वियोग होना कहा जाता है । दूसरा मोक्ष, राग-द्वेषादि का निर्मूलन होना है, जिससे लिंगाभाव दशा में जीव को कैवल्य की प्राप्ति होती है, कैवल्य से निरञ्जनत्व एवं निरञ्जनत्व से परम शुद्धत्व की प्राप्ति होती है, उस विशेष मोक्षावस्था में जीव को किसी मार्ग प्रदर्शक की आवश्यकता नहीं रहती । तृतीय मोक्ष तृष्णा का सर्वतोभावेन अभाव होना है, तृष्णा का यह सर्वथा विनाश मोक्ष का मूल कारण है । अभिमत शब्दादिकों में प्रतिघातजन्य दुःखानुभूति मुक्तात्माओं को नहीं होती, ये आठ प्रकृतिजन्य रूप, जो गुण मात्रात्मक कहे जाते हैं, क्षेत्रज्ञों में क्रमानुरूप अवसक्त होते हैं । अब उसके उपरान्त दोष दर्शन के कारण वैराग्य का लक्षण बता रहा है । पाँच प्रकार के दिव्य एवं मानुष विषयादिकों में अनासक्ति एवं द्वेषाभाव का व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि इनमें दोष के दर्शन होते हैं । सन्ताप, प्रीति एवं विषाद को वर्जित करना चाहिए । इस प्रकार इन्हें छोड़ देने पर शरीरी सांसारिक पदार्थों में ममत्वरहित हो जाता है ॥ ७९-८४ ॥

यह संसार अनित्य है, अमंगलकारी है, दुःखदायी है, ऐसा सोचकर कार्य एवं कारणों के विशुद्ध तत्त्व को जानकर ही विज्ञों को चित्त के कषाय की तरह परिपक्व हो जाने पर समस्त दोषों का दर्शन होता है । जिससे महाप्रयाण काल में नैमित्तिक दोषों के कारण शरीर में तीव्र वायु से प्रेरित ऊष्मा का प्रकोप होता है । और वह शरीर में रहनेवाले समस्त दोषों को रोकता है प्राणों के स्थानों का भेदन एवं मर्मस्थलों का छेदन करता हुआ शीतलता से अधिक प्रवृद्ध वायु ऊर्ध्वगामी होता है ॥ ८५-८८ ॥

समस्त जीवधारियों के प्राण-स्थलों में अवस्थित वायु की यही दशा अन्त समय में होती है । संक्षेप में समस्त चेतना एवं कृतकमों के संकुचित हो जाने पर वह जीव स्वकृत पूर्व कर्मों के साथ शरीर से अपनी स्थिति विच्छिन्न कर लेता है । आठों अङ्गों से प्राण की समस्त वृत्तियाँ छूट जाती हैं । इस प्रकार शरीर छोड़ता हुआ जीवात्मा श्वासरहित दशा में हो जाता है । और समस्त प्राणों से विहीन होकर वह शरीर अन्त में से पुकारा जाता

तृष्णाक्षयस्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षलक्षणम् । शब्दाद्ये विषये दोषविषये पञ्चलक्षणे ॥ ९३ ॥
अप्रद्वेषोऽनभिष्वङ्गः प्रीतितापविवर्जनम् । वैराग्यकारणं ह्येते प्रकृतीनां लयस्य च ॥ ९४ ॥
अष्टौ प्रकृतयो ज्ञेयाः पूर्वोक्ता वै यथाक्रमम् । अव्यक्ताद्यास्तु विज्ञेया भूतान्ताः प्रकृतेर्लयाः ॥ ९५ ॥
वर्णाश्रमाचारयुक्ताः शिष्टाः शास्त्राविरोधिनः । वर्णाश्रमाणां धर्मोऽयं देवस्थानेषु कारणम् ॥ ९६ ॥
ब्रह्मादीनि पिशाचान्तान्यष्टौ स्थानानि देवताः । ऐश्वर्यमणिमाद्यं हि कारणं ह्यष्टलक्षणम् ॥ ९७ ॥
निमित्तमप्रतीघात इष्टे शब्दादिलक्षणे । अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ॥ ९८ ॥
क्षेत्रज्ञेष्वनुसज्यन्ते गणमात्रात्मकानि तु । प्रावृट्काले पृथक्त्वेन पश्यन्तीह न चक्षुषा ॥ ९९ ॥
पश्यन्त्येवंविधं सिद्धा जीवं दिव्येन चक्षुषा । श्वाविति श्वानपानश्च योनीः प्रविशतस्तथा ॥ १०० ॥
तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च धावतोऽपि यथाक्रमम् । जीवप्राणास्तथा लिङ्गं कारणं च चतुष्टयम् ॥ १०१ ॥
पर्यायवाचकैः शब्दैरेकार्थैः सोऽभिलिख्यते । व्यक्ताव्यक्ते प्रमाणोऽयं स वै रूपं तु कृत्स्नशः ॥ १०२ ॥
अव्यक्तान्तगृहीतं च क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं च यत् । एवं ज्ञात्वा शुचिर्भूत्वा ज्ञानाद्वै विप्रमुच्यते ॥ १०३ ॥
नष्टं चैव यथा तत्त्वं तत्त्वानां तत्त्वदर्शनम् । यथेष्टं परिनिर्याति भिन्ने देहे सुनिर्वृते ॥ १०४ ॥

है । जैसे इस लोक में खद्योत को इधर-उधर ले जानेवाला भी प्रकाशमान होता है और खद्योत के मर जाने पर वह भी नहीं दिखायी पड़ता वही दशा प्राणों की और शरीर की है । तृष्णा का विनाश होना ही तीसरे मृतक नाम मोक्ष का लक्षण कहा गया है । शब्दादिक पाँच दोषादि विषयों से द्वेष एवं अतिशय आसक्ति का न रखना प्रीति एवं सन्ताप से वर्जित रहना ही वैराग्य एवं प्रकृति के विलय का कारण कहा गया है ॥ ८९-९४ ॥

पूर्व कथित आठों प्रकृतियों को यथाक्रम जानना चाहिए, जो अव्यक्त से लेकर पाँचों महाभूतों तक कही जाती है, यही आठ प्रकृति के लय हैं । शास्त्र से विरोध (न) करनेवाले वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुयायी शिष्ट कहे जाते हैं, वर्णाश्रम व्यवस्था के धर्मशासन देवस्थानों की प्राप्ति के कारण भूत हैं । ब्रह्मा से लेकर पिशाचों तक आठ देवयोनियाँ कही जाती हैं, अणिमा आदि ऐश्वर्यदायिनी सिद्धियाँ भी आठ हैं । अभिमत शाब्दिक पदार्थों में प्रतिघातजन्य दुःखानुभूति उन स्थानों में रहनेवालों को नहीं होती । वे प्रकृतिजन्य गुणमात्रात्मक आठ प्रकार के स्वरूप क्षेत्रज्ञों में क्रमानुसार अवसक्त होते हैं ।

वर्षाकाल में जिस प्रकार आकाशमण्डल में अवस्थित मेघों में तद्गत जलादि पदार्थों को लोग चर्मचक्षु से नहीं देख सकते केवल अनुमानादि द्वारा ही उसका ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार सिद्ध लोग जीवात्मा को अपने दिव्य नेत्रों से देखते हैं, सामान्य लोग जीव को नहीं देख सकते । वह जीवात्मा द्विजाति उच्च योनियों से लेकर श्वानों को बाँधनेवाले चाण्डालों तक की योनियों में प्रवेश करता है, इस प्रकार ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक्, समस्त योनियों में वह यथाक्रम अपने कर्मों के अनुसार धावन करता रहता है ।

जीव, प्राण, लिङ्ग, कारण प्रभृति पर्यायवाची शब्दों द्वारा जो सब एक ही अर्थ के द्योतक हैं, वह उल्लिखित होता है । व्यक्त, अव्यक्त सर्वत्र जगत् में वह प्रमाणस्वरूप है । क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित अव्यक्तान्तः पाति समस्त जगत् के इन समस्त कारणों को भलीभाँति अवगत कर लेने पर प्राणी पवित्र हो जाता है और उसे लोग विप्र की उपाधि देते हैं ॥ ९५-१०३ ॥

भिद्यते करणं चापि ह्यव्यक्तज्ञानिनस्ततः । मुक्तो गुणशरीरेण प्राणाद्येन तु सर्वशः ॥ १०५ ॥
नान्यच्छरीरमादत्ते दग्धे बीजे यथाङ्कुरः । जीविकः सर्वसंसाराद्बीजशारीरमानसः ॥ १०६ ॥
ज्ञानाच्चतुर्दशाच्छुद्धः प्रकृतिं सोऽनुवर्तते । प्रकृतिं सत्यमित्याहुर्विकारोऽनृतमुच्यते ॥ १०७ ॥
तत्सद्भावोऽनृतं ज्ञेयं सद्भावः सत्यमुच्यते । अनामरूपक्षेत्रज्ञनामरूपं प्रचक्षते ॥ १०८ ॥
यस्मात्क्षेत्रं विजानाति तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते । क्षेत्रप्रत्ययतो यस्मात्क्षेत्रज्ञः शुभ उच्यते ॥ १०९ ॥
क्षेत्रज्ञः स्मर्यते तस्मात्क्षेत्रं तज्ज्ञैर्विभाष्यते । क्षेत्रत्वप्रत्ययं दृष्टं क्षेत्रज्ञः प्रत्ययी सदा ॥ ११० ॥
क्षयणात्करणाच्चैव क्षतत्राणात्तथैव च । भोज्यत्वाद्विषयत्वाच्च क्षेत्रं क्षेत्रविदो विदुः ॥ १११ ॥
महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं विलक्षणम् । विकारलक्षणं तद्वै साक्षरक्षरमेव च ॥ ११२ ॥
तमेव च विकारं तु यस्माद्वै क्षरते पुनः । तस्माच्च कारणाच्चैव क्षरमित्यभिधीयते ॥ ११३ ॥
सुखदुःखमोहभावाद्भोज्यमित्यभिधीयते । अचेतत्वाद्धि विषयस्तद्धि धर्मविभुः स्मृतः ॥ ११४ ॥
न क्षीयते न क्षरति विकारप्रसृतं तु तत् । अक्षरं तेन चाप्युक्तमक्षीणत्वात्तथैव च ॥ ११५ ॥
यस्मात्पूर्यनुशेते च तस्मात्पुरुष उच्यते । पुरप्रत्ययिको यस्मात्पुरुषेत्यभिधीयते ॥ ११६ ॥

जगत् के इन समस्त कारणों एवं तत्त्वों को भलीभाँति देख लेने पर जीवात्मा यथेष्ट रूप से सुखपूर्वक शरीर छोड़ने पर बहिर्गत होता है । अव्यक्तादि के ज्ञान होने के कारण प्राणी के अन्य जन्मादि के कारणों का विनाश हो जाता है, गुणों के परिणामों से वह मुक्त हो जाता है, और इस प्रकार शान्तिपूर्वक प्राणादि के परित्याग के अनन्तर वह शरीर एवं मानस कर्म सूत्रों के सर्वथा विनष्ट हो जाने पर अन्य शरीर भी नहीं धारण करता, ठीक उसी तरह जैसे बीज के भस्म हो जाने के बाद अङ्कुर का उद्गम नहीं होता । चौदह प्रकार के ज्ञानों से सुपरिचित होकर वह शुद्धात्मा प्रकृति का अनुवर्तन करता है । विद्वान् लोग केवल प्रकृति को ही सत्य बताते हैं, विकारों का उनकी दृष्टि में मिथ्यात्व सिद्ध हो चुका है । जिसका कोई अस्तित्व नहीं है, वह असत्य अथवा मिथ्या है, सद्भाव सत्य कहा जाता है, क्षेत्रज्ञ नाम एवं रूप से रहित है किन्तु नाम और रूप भाँति प्रत्यय (अधिगम) कर लेने के कारण क्षेत्रज्ञ मङ्गलदायी कहा जाता है ॥ १०४-१०९ ॥

जीवगण इसलिए उस की परम्परा उसी से चलती कही जाती है । क्षेत्र के जानने के कारण उसकी क्षेत्रज्ञ की उपाधि है । उस क्षेत्र का भली- मंगलकारी क्षेत्रज्ञ का स्मरण करते हैं, क्षेत्र की भावना केवल क्षेत्रज्ञों द्वारा होती है । यह क्षेत्र प्रत्यय है, क्षेत्रज्ञ सर्वदा उसका प्रत्ययी है । क्षय, करण, क्षतत्राण, भोज्य एवं विषयत्व के कारण क्षेत्रज्ञ लोग उसकी क्षेत्र संज्ञा बताते हैं ॥ ११०-१११ ॥

सवैरूप्य विलक्षण महत् से लेकर विशेष तक समस्त क्षराक्षर पदार्थ निचय विकार कहे जाते हैं । उन समस्त विकारों से पुनः क्षरण होता देखा जाता है इसीलिए उन्हें क्षर कहते हैं ॥ ११२-११३ ॥

सुख, दुःख एवं मोह उत्पन्न करता है, अतः उसकी भोज्य नाम से भी प्रसिद्धि है, अचेतन विषय होने के कारण वह सर्वव्यापी विभु नाम से स्मरण किया जाता है ॥ ११४ ॥

वे सब विकार समूह यतः कभी क्षय नहीं होते, क्षीण नहीं होते, अतः अक्षर नाम से भी विख्यात हैं ।

पुरुषं कथ्यस्वाथ कथं तज्ज्ञैर्विभाष्यते । शुद्धो निरञ्जनाभासो ज्ञानाज्ञानविवर्जितः ॥ ११७ ॥
अस्ति नास्तीति सोऽन्यो वा बद्धो मुक्तो गतः स्थितः। नैर्हेतिकान्तनिर्देश्यसूक्तस्तस्मिन्न विद्यते ॥ ११८ ॥
शुद्धत्वान्न तु देश्यो वै दृष्टत्वात्समदर्शनः । आत्मप्रत्ययकारी सारनूनञ्चापि हेतुकम् ॥
भावग्राह्यमनुमान्यं चिन्तयन्न प्रमुह्यते ॥ ११९ ॥
यदा पश्यति ज्ञातारं शान्तार्थं दर्शनात्मकम् । दृश्यदृश्येषु निर्देश्यं तदा तदुद्धरं वरम् ॥ १२० ॥
एवं ज्ञात्वा स विज्ञाता ततः शान्तिं नियच्छति । कार्ये च कारणे चैव बुद्ध्यादौ भौतिके तदा ॥ १२१ ॥
संप्रयुक्तो वियुक्तो वा जीवतो वा मृतस्य च । विज्ञाता न च दृश्येत पृथक्त्वेनेह सर्वशः ॥ १२२ ॥
स्वेनात्मानं तमात्मानं कारणात्मा नियच्छति । प्रकृतौ कारणे चैव स्वात्मन्येवोपतिष्ठति ॥ १२३ ॥
अस्ति नास्तीति सोऽन्यो वा इहामुत्रेति वा पुनः। एकत्वं वा पृथक्त्वं वा क्षेत्रज्ञपुरुषेति वा ॥ १२४ ॥
आत्मवान् स निरात्मा वा चेतनोऽचेतनोऽपि वा । कर्ता वा सोऽप्यकर्ता वा भोक्ता वा भोज्यमेव वा ॥१२५॥
यज्ज्ञात्वा न निवर्तन्ते क्षेत्रज्ञे तु निरञ्जने । अवाच्यं तदनाख्यानादग्राह्यत्वादहेतुनि ॥ १२६ ॥
अप्रतर्क्यमचिन्त्यत्वादवाप्यत्वाच्च सर्वशः । नाभिलिम्पति तत्तत्त्वं संप्राप्य मनसा सह ॥ १२७ ॥
क्षेत्रज्ञे निर्गुणे शुद्धे शान्ते क्षीणे निरंजने । व्यपेतसुखदुःखे च निरुद्धे शान्तिमागते ॥ १२८ ॥

पुर में सर्वदा शयन करने के कारण पुरुष नाम पड़ा, पुर का प्रत्ययी होने से भी उसकी पुरुष नाम से प्रसिद्धि है। पुरुष के लक्षण क्या हैं? उसके जाननेवाले उसे किस रूप में जानते हैं-इसे बता रहे हैं, सुनिये । वह पुरुष शुद्ध, निरञ्जन की तरह परम निर्मल, ज्ञान एवं अज्ञान दोनों से विवर्जित, अस्ति तथा नास्ति इन दोनों विशेषणों से रहित है । उसके लिए बद्ध, मुक्त, गतिशील एवं स्थिर कोई भी विशेषण लागू नहीं होता । परम शुद्धता के कारण वह अनिर्देश्य एवं आनन्दस्वरूप कहा जाता है । परम दृष्ट होने के कारण समदर्शी कहा जाता है । आत्मप्रत्यय कर्त्ता होने के कारण उनमें कोई हेतुवाद नहीं रहता । वह भावनाओं द्वारा ग्राह्य तथा अनुमानों एवं चिन्तनों द्वारा गम्य है। इन उपायों द्वारा उसे देखनेवाले मोह के वश नहीं होते ॥ ११५-११९ ॥

इस दृश्य एवं अदृश्य विश्व प्रपञ्च में एकमात्र निर्देश्य, परम श्रेष्ठ ज्ञानमय, शान्तिमय सर्वज्ञ पुरुष को जब प्राणी देखता है तभी वह समस्त तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करता है और तभी उसे वास्तविक शान्ति की उपलब्धि होती है । कार्य, कारण, भौतिक बुद्धि आदि पदार्थ समूह, संयुक्त अथवा वियुक्त, जीवित अथवा मृत इन सब में वह विज्ञाता पृथक्त्व का दर्शन नहीं करता । आत्मा द्वारा वह उस कारणात्मा से संयुक्त होता है, प्रकृति एवं कारण में वह सर्वत्र अपनी ही आत्मा में उपासना करता है । इस लोक अथवा पर लोक में वह विद्यमान रहता है और नहीं भी रहता है । वह एक है अथवा अनेक है, क्षेत्रज्ञ है अथवा पुरुष है, आत्मवान् है अथवा निरात्मा है, चेतन है अथवा अचेतन है, कर्त्ता है वा अकर्त्ता है, भोक्ता है वा भोज्य है इन किन्हीं भी विशेषणों से विशिष्ट एवं अविशिष्ट है ॥ १२०-१२५ ॥

उस निरञ्जन क्षेत्रज्ञ को जानने के बाद संसार में पुनरावृत्ति नहीं होती, उसकी कोई संज्ञा नहीं होती इसी कारण से वह अवाच्य कहा जाता है । उसके कोई हेतु नहीं हैं, अतः वह अग्राह्य है । चिन्तन से परे एवं सर्वत्र प्राप्य (व्याप्त) होने के कारण वह अप्रतर्क्य है । मन के साथ उसे प्राप्त करने के बाद अन्य विषयों में आसक्त नहीं

निरात्मके पुनस्तस्मिन्वाच्यावाच्यो न विद्यते । एतौ संहारविस्तारौ व्यक्ताव्यक्तौ ततः पुनः ॥ १२९ ॥
सृजते ग्रसते चैव ग्रस्तः पर्यवतिष्ठते । क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सर्वं पुनः सर्वं प्रवर्तते ॥ १३० ॥
अधिष्ठानप्रवृत्तेन तस्य ते वृद्धिपूर्वकम् । साधर्म्यवैधर्म्यकृतसंयोगो विधितस्तयोः ॥
अनादिमान् स संयोगो महापुरुषजः स्मृतः ॥ १३१ ॥

यावच्च सर्गप्रतिसर्गकालस्तावच्च तिष्ठति सुसंनिरुध्य ।
पूर्वं हितव्ये तदबुद्धिपूर्वं प्रवर्तते तत्पुरुषार्थमेव ॥ १३२ ॥
एषा निसर्गप्रतिसर्गपूर्व प्रधानिकी चेश्वरकारिता च ।
अनाद्यनन्ता ह्यभिमानपूर्वकं वित्रासयन्ती जगदभ्युपैति ॥ १३३ ॥

इत्येष प्राकृतः सर्गस्तृतीयो हेतुलक्षणः । उक्तो ह्यस्मिंस्तदात्यन्तं कविभिस्तत्रमुच्यते ॥ १३४ ॥
इत्येष प्रतिसर्गो वस्त्रिविधः कीर्तितो मया । विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्तयाम्यहम् ॥ १३५ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे प्रतिसर्गवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

* * *

होना पड़ता । क्षेत्रज्ञ के गुणरहित शुद्ध, शान्त, क्षीण, मलरहित, सुख-दुःख से विहीन, परम शान्ति प्राप्त कर लेने एवं निरात्मक हो जाने पर वाच्य एवं अवाच्य का अस्तित्व नहीं रह जाता । व्यक्त एवं अव्यक्त सृष्टि का संसार एवं विस्तार उसी परम पुरुष से प्रतिष्ठित होता है । क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित इस समस्त जगत् की वह पुरुष सृष्टि करता है, और लय काल में वहीं ग्रस लेता है ॥ १२६-१३० ॥

बुद्धिपूर्वक जगत् की सृष्टि एवं लय उसी के अधिष्ठान भूत होते हैं । उन दोनों के (प्रकृति एवं पुरुष के) संयोग साधर्म्य वैधर्म्य घटित होते हैं । उसका संयोग कब हुआ इसका आदि काल नहीं है, चिरकाल से वह है । सृष्टि के आदिमकाल से लेकर विनाशकाल तक प्रकृति उस परमपुरुष को सन्निरुद्ध करके रखती है, उस अवस्था में पुरुष से बुद्धिपूर्वक यह सृष्टि प्रवर्तित नहीं होती है, उसे पुरुष का पुरुषार्थ ही मानते हैं । जगत् की इस सृष्टि एवं संहार की इस प्रक्रिया को कोई तो ईश्वरकृत मानते हैं और कोई प्राधानिक अर्थात् प्रकृतिकृत । परन्तु सृष्टि का यह व्यापार अनादि एवं अनन्त है । जगत् को अभिमानपूर्वक वित्रासित करती हुई वह प्रकृति प्राप्त होती है । प्रकृतिजन्य सृष्टि का यह तृतीय हेतु कहा जा चुका । इनमें अत्यन्त निष्ठा रखने वाला विद्वानों द्वारा मुक्ति प्राप्त नहीं करता है । आप लोगों से इस प्रकार तीन प्रतिसर्गों की चर्चा मैं विस्तारपूर्वक क्रमशः कर चुका, अब आगे के लिए बताइये, मैं क्या कहूँ ॥ १३१-१३५ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपसंहारपाद में प्रतिसर्ग वर्णन नामक चालीसवें अध्याय (एक सौ दोवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरञ्जन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४० ॥**

* * *

अथैकचत्वरिंशोऽध्यायः
अथ सृष्टिवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

सूत सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्तितम् । प्रजानां मनुभिः सार्धं देवानामृषिभिः सह ॥ १ ॥
पितृगन्धर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम् । दैत्यानां दानवानां च यक्षाणामेव पक्षिणाम् ॥ २ ॥
अत्यद्भुतानि कर्माणि विधिमान्धर्मनिश्चयः । विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ॥ ३ ॥
तत्कथ्यमानमस्माकं भवता श्लक्ष्णया गिरा । मनः कर्णसुखं सौते प्रीणात्याभूत संभवम् ॥ ४ ॥
एवमारध्य ते सूतं सत्कृत्य च महर्षयः । पप्रच्छुः सत्रिणः सर्वे पुनः सर्गप्रवर्तनम् ॥ ५ ॥
कथं सूत महाप्राज्ञ पुनः सर्गः प्रपत्स्यते । बन्धेषु संप्रलीनेषु गुणसाम्ये तमोमये ॥ ६ ॥
विकारेष्वविसृष्टेषु ह्यव्यक्ते चात्मनि स्थिते । अप्रवृत्ते ब्राह्मणस्तु महासायुज्यगैस्तदा ॥
कथं प्रपत्स्यते सर्गस्तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥ ७ ॥

इकतालीसवाँ अध्याय

(एक सौ तीनवाँ अध्याय)

सृष्टि वर्णन

ऋषियों ने कहा—सूत जी ! आपने एक महान् आख्यान हम लोगों से कहा । मनु समेत समस्त प्रजाओं, ऋषियों समेत समस्त देवताओं, पितरों, गन्धर्वों, भूतों, पिशाचों, उरगों, राक्षसों, दैत्यों, दानवों, यक्षों एवं पक्षियों के अति अद्भुत कर्म, उनके धर्म निश्चय, उनके जन्म की विचित्र एवं श्रेष्ठ कथाएँ, जो मन एवं कान को सुख देने वाली थीं आपने हम लोगों को अपनी परम मनोहर वाणी में सुनाया । सूत पुत्र वे कथाएँ सचमुच मनुष्य को महाप्रलय पर्यन्त प्रसन्न रखने वाली हैं । इस प्रकार उन सब यज्ञकर्त्ता महर्षियों ने सूत जी का सत्कार एवं समादर करते हुए पुनः सृष्टि प्रवर्तन की आख्या पूछा ॥ १-५ ॥

महाप्राज्ञ सूत जी ! जब क्षेत्रज्ञ समस्त प्राकृत गुण बन्धनों से विमुक्त हो जाता है, प्रकृति के सत्त्व, रजस्, तमस् ये तीनों गुण साम्यावस्था में परिणत हो जाते हैं, समस्त ब्रह्माण्ड घोर अन्धकारमय हो जाता है, विकार समूह निष्क्रिय एवं प्रवृत्तिरहित हो जाते हैं, जीव समूह ब्रह्मा के साथ ही महान् साम्राज्य में सन्निविष्ट होकर अव्यक्तात्मा में विलीन हो जाते हैं, तब पुनः सृष्टि का प्रारम्भ किस प्रकार होता है? उसे आप अच्छी तरह हम लोगों को बताइये ॥ ६-७ ॥

एवमुक्तस्ततः सूतस्तदाऽसौ लोमहर्षणः । व्याख्यातुमुपचक्राम पुनः सर्गप्रवर्तनम् ॥ ८ ॥
अहं वो वर्तयिष्यामि यथा सर्गः प्रपत्स्यते । पूर्ववत्स तु विज्ञेयः समासात्तं निबोधत ॥ ९ ॥
दृष्टं चैवानुमेयं च तर्कं वक्ष्यामि युक्तितः । तस्माद्वाचो निवर्तन्ते ह्यप्राप्य मनसा सह ॥ १० ॥
अव्यक्तवत्परोक्षत्वाद्ग्रहणं तद्दुरासदम् । विकारैः प्रतिसंदृष्टे गुणसाम्ये निवर्तते ॥ ११ ॥
प्रधानं पुरुषणां च साधर्म्येणैव तिष्ठति । धर्मधर्मौ प्रलीयेते अव्यक्तौ प्राणिनां सदा ॥ १२ ॥
सत्त्वमात्रात्मको धर्मो गुणसत्त्वे प्रतिष्ठितः । तमोमात्रात्मकोऽधर्मो गुणे तमसि तिष्ठति ॥ १३ ॥
अविभागवतावेतौ गुणसाम्यस्थितावुभौ । सर्वकार्ये बुद्धिपूर्वं प्रधानस्य प्रपत्स्यते ॥ १४ ॥
अबुद्धिपूर्वं क्षेत्रज्ञ अधिष्ठास्यति तान्गुणान । एवं तानभिमानेन प्रपत्स्येत पुरस्तदा ॥ १५ ॥
यदा प्रवर्तितव्यं तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः । भोज्यभोक्तृत्वसंबन्धं प्रपत्स्येते युतावुभौ ॥ १६ ॥
तस्माच्छरणमव्यक्तं साम्ये स्थित्वा गुणात्मकान् । क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं तच्च वैषम्यं भजते तु तत् ॥ १७ ॥
ततः प्रपत्स्यते व्यक्तं क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः । क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सत्त्वं विकारं जनयिष्यति ॥ १८ ॥
महदाद्यं विशेषान्तं चतुर्विंशगुणात्मकम् । क्षेत्रज्ञस्य प्रधानस्य पुरुषस्य प्रपत्स्यते ॥ १९ ॥
ब्रह्माण्डे प्रथमः सोऽथ भविता चेश्वरः पुनः । ततो ज्ञेयस्य कृत्स्नस्य सर्वभूतपतिः शिवः ॥ २० ॥
ईश्वरः सर्वमुक्तानां ब्रह्मा ब्रह्ममयो महान् । आदिदेवः प्रधानस्यानुग्रहाय प्रवक्ष्यते ॥ २१ ॥

ऋषियों द्वारा पूछे जाने पर लोमहर्षण सूत जी पुनः सृष्टि विषय की व्याख्या बोले, ऋषिवृन्द । उस अवस्था में जिस प्रकार पुनः सृष्टि का प्रारम्भ होता है, मैं बता रहा हूँ । संक्षेप में इस पुनः सृष्टि का क्रम पूर्ववत् ही समझना चाहिए, फिर भी संक्षेप में बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये । मैंने जैसा देखा है, अनुमान किया है जिस प्रकार की युक्तियाँ एवं तर्क प्रचलित है, उन सबको बता रहा हूँ, सुनिये । वाणी उस सृष्टि तत्त्व तक मन के साथ ही अपनी गति प्राप्त न करके निवृत्त हो जाती है ॥ ८-१० ॥

जिस प्रकार अव्यक्त परोक्ष एवं दुरधिगम्य है, उसी प्रकार सृष्टि के विषय भी परोक्ष एवं दुरधिगम्य हैं । जब विकार विलीन हो जाते हैं, उनका कहाँ दर्शन नहीं होता, गुणों में साम्य हो जाता है, संसृति के कार्यजाल निवृत्त हो जाते हैं, उस समय पुरुष प्रकृति में साधर्म्य से अवस्थित होता है, प्राणियों के व्यक्ताव्यक्त धर्माधर्म भी विलीन हो जाते हैं । गुण सत्त्व में सत्त्वमात्रात्मक धर्म प्रतिष्ठित होता है, तमोगुण में तमोमात्रात्मक गुण प्रतिष्ठित होता है । गुणासाम्यावस्था में ये दोनों गुण विभागरहित हो जाते हैं । उस समय प्रधान के सभी कार्यों में प्रवृत्ति बुद्धिपूर्वक होगी । क्षेत्रज्ञ उन गुणों को अबुद्धिपूर्वक अधिष्ठित करेगा । उस समय पुर भी अभिमानपूर्वक प्राप्त होगा। जब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ये दोनों परस्पर प्रवर्तित होंगे उस समय वे भोज्य और भोक्तृत्व सम्बन्ध से समन्वित होंगे ॥ ११-१६ ॥

अतः इन सब की शरण एकमात्र अव्यक्त है, साम्यावस्था में प्रतिष्ठित वे गुणात्मक सृष्टि प्रारम्भ के समय क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित होकर विषमता को प्राप्त होते हैं । तब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ये दोनों व्यक्तावस्था को प्राप्त होंगे, क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित सत्त्व विकार को उत्पन्न करेंगे । वे विकार महत्तत्त्व से लेकर विशेष तक चौबीस गुणात्मक माने गये हैं । क्षेत्रज्ञ पुरुष एवं प्रकृति को प्राप्त होंगे । ब्रह्माण्ड में प्रथम वह ऐश्वर्यशाली पुनः उत्पन्न होगा । वह

अनाद्यौ स्वयमुत्पन्नावुभौ सूक्ष्मौ तु तौ स्मृतौ । अनादिसंयोगयुतौ सर्वक्षेत्रज्ञमेव च ॥ २२ ॥
अबुद्धिपूर्वकं युक्तौ मशकौ तु वरौ तदा । अप्रत्ययमनाद्यं च स्थितावुदकमप्स्यशः ॥ २३ ॥
प्रवृत्ते पूर्वतः पूर्वं पुनः सर्गे प्रपत्स्यते । अज्ञागुणैः प्रवर्तन्ते रजःसत्त्वतभात्मकम् ॥ २४ ॥
प्रवृत्तिकाले रजसाभिपन्नमहत्वभूतादिविशेष्यतां च ।
विशेषतां चेन्द्रीयतां च यान्ति गुणावसाने पतिभिर्मनुष्याः ॥ २५ ॥
सत्याभिध्यायिनस्तस्य ध्यायिनः सन्निमित्तकम् । रजःसत्त्वतमा व्यक्ता विधर्माणः परस्परम् ॥ २६ ॥
आद्यन्ते संप्रपत्स्यन्ते क्षेत्रतज्ज्ञास्तु सर्वशः । संसिद्धकार्यकरणा उत्पद्यन्तेऽभिमानिनः ॥ २७ ॥
सर्वे सत्त्वाः प्रपद्यन्ते ह्यव्यक्तात्पूर्वमेव च । प्रसूते या च सुवाहाः साधिकाश्चाप्यसाधिका ॥ २८ ॥
संसरन्तस्तु ते सर्वे स्थानप्रकरणैः सह । कार्याणि प्रतिपत्स्यन्ते उत्पद्यन्ते पुनः पुनः ॥ २९ ॥
गुणमात्रात्मकाश्चैव धर्माधर्मौ परस्परम् । आरप्सन्तीह चान्योन्यं वरेणानुग्रहेण च ॥ ३० ॥
सर्वे तुल्याः प्रसृष्टार्थं सर्गादौ यान्ति विक्रियाम् । गुणास्तत् प्रतिधावन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥ ३१ ॥
गुणास्ते यानी सर्वाणि प्राक्सृष्टेः प्रतिपेदिरे । तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृष्टमानाः पुनः पुनः ॥ ३२ ॥
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते । तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥ ३३ ॥
महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु । विप्रयोगाश्च भूतानां गुणेभ्यः संप्रवर्तते ॥ ३४ ॥

समस्त ज्ञेय जगत् एवं समस्त जीव समूह का अधीश्वर एवं शिव है । सभी मुक्तात्माओं का एकमात्र स्वामी, ब्रह्मा, ब्रह्ममय एवं महान है । आदि देव है, प्रधान प्रकृति के अनुग्रह के लिए उसका यह आविर्भाव कहा जाता है । वे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, अनादि एक परम सूक्ष्म कह जाते हैं, अनादि काल से वे दोनों संयोग कहे जाते हैं, समस्त क्षेत्र के वे संज्ञ हैं ॥ १७-२२ ॥

मशक और उदुम्बर, जल और मत्स्य की भानति उनसे असामान्य संवंध, अनादि और सत्य है । (७) अज्ञ प्रकृति पुनः सृष्टि काल में अपने रजस्, सत्त्व एवं तमस् गुणों के योग से विकारयुक्त जगत् के रूप में परिणत हो जाती है । क्षेत्रज्ञ मानवगण इस प्रकृति की सृष्टि प्रवृत्ति काल में रजोगुण से आक्रान्त होकर महत्तत्व, महाभूत, इन्द्रिय एवं विशेषादि का लाभ कर गुणों के अवसान को प्राप्त होते हैं । सत्य का सङ्कल्प करने वाले पालननिष्ठा ब्रह्मा की सृष्टि प्रवृत्ति के समय परस्पर विधर्मी रजस् सत्त्व, तमोगुण कार्यकारणवश व्यक्ति अवस्था को प्राप्त होते हैं । अभिमान क्षेत्र एवं उसके जानने वाले क्षेत्र परस्पर भाव को सम्प्राप्त होंगे । अव्यक्त से प्रथम साधिका एवं यथाधिका सत्त्वगुणमयी सृष्टि प्रादुर्भूत स्थान एवं प्रसंगादि के साथ कार्य रूप में पुनःपुनः आविर्भूत-तिरोभूत हैं ॥ २३-२९ ॥

क्षेत्रज्ञगण सृष्टि विस्तार के लिए परस्पर समभाव भी सृष्टि के उस आदिम काल में गुणमात्रात्मक धर्म-अधर्म वर अनुग्रह आदि से विविध विकार को प्राप्त होते हैं, गुणों की विचित्रता के कारण ही वे इस प्रकार विकार को प्राप्त होते हैं, उनके पूर्व युगीन गुणगण उनके निकट स्वमेव अनुधावन करते हैं । इसीलिए वे रुचिकर होते हैं। पूर्व सृष्टि में क्षेत्रज्ञों के जो गुण रहते हैं इस पर सृष्टि काल में भी इसके गुणों को वे पुनः प्राप्त करते हैं । हिंस्र, अहिंस्र, मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य—ये गुण उन्हें पूर्व सृष्टि के भाव में रहते हैं । इसलिए इस

इत्येष वो मया ख्यातः पुनः सर्गः समासतः। समासादेव वक्ष्यामि ब्रह्मणोऽथ समुद्भवम् ॥ ३५ ॥
अव्यक्तात्कारणात्तस्मान्नित्यात्सदसदात्मकात् । प्रधानपुरुषभ्यां तु जायते च महेश्वरः ॥ ३६ ॥
स पुनः सम्भावयिता जायते ब्रह्मसंज्ञितः । सृजते स पुनर्लोकानभिमानगुणात्मकान् ॥ ३७ ॥
अहंकारस्तु महतस्तस्माद्भूतानि चाऽऽत्मनः । युगपत्संप्रवर्तन्ते भूतान्येवेन्द्रियाणि च ॥
भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्गः प्रवर्तते ॥ ३८ ॥
विस्तारावयवस्तेषां यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् । कीर्तितं वो यथा पूर्वं तथैवाभ्युपधार्यताम् ॥ ३९ ॥
एतच्छ्रुत्वा नैमिषेयास्तदानीं लोकोत्पत्तिं संस्थितिं च व्ययं च ॥
तस्मिन् सत्रेऽवभृथं प्राप्य शुद्धाः पुण्यं लोकमृषयः प्राप्नुवन्ति ॥ ४० ॥
यथा यूयं विधिवद्देवतादीनिष्ट्वा चैवावभृथं प्राप्य शुद्धाः ॥
त्यक्त्वा देहानायूषोऽन्ते कृतार्थान् पुण्यॉंल्लोकान् प्राप्य यथेष्टं चरिष्यथ ॥ ४१ ॥
एते ते नैमिषेया वै इष्ट्वा सृष्ट्वा च वै तदा । जग्मुश्चावभृथस्नाताः स्वर्गं सर्वे तु सत्रिणः ॥ ४२ ॥
विप्रास्तथा यूयमपि दृष्ट्वा बहुविधैर्मखैः । आयुषोऽन्ते ततः स्वर्गं गन्तारःस्थ द्विजोत्तमाः ॥ ४३ ॥
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथावस्तुपरिग्रहः । अनुषङ्ग उपोद्घात उपसंहार एव च ॥ ४४ ॥
एवमेतच्चतुष्पादं पुराणं लोकसंमतम् । उवाच भगवान् साक्षाद्वायुर्लोकहिते रतः ॥ ४५ ॥

पर सृष्टि में वे उन्हें प्राप्त होते हैं, इसी कारणवश उन्हें ये रुचिकर भी होते हैं । महाभूत, इन्द्रियार्थ सूक्ष्म पदार्थ एवं प्राणविरन्द की अनेकता ये सब कार्य-कलाप गुणों की विचित्रता के कारण ही घटित होते हैं । संक्षेप में पुनर्वार सृष्टि क्रम को मैं कह चुका । अब संक्षेप में ब्रह्मा की उत्पत्ति का वर्णन कर रहा हूँ ॥ ३०-३५ ॥

नित्य, सत्-असत् उभयात्मक, अव्यक्त, कारणस्वरूप प्रकृति पुरुष के संयोग से एक महान् ऐश्वर्यशाली पुत्र उत्पन्न होता है उसी का नाम ब्रह्मा है । वहीं समस्त उत्पन्न पदार्थों का पिता है । अभिमान गुणात्मक समस्त लोकों की सृष्टि करता है । वही महत् पद से भी विशिष्ट कहा जाता है । उस महत् से अहङ्कार का उद्भव होता है । उसकी आत्मा से भूतों की उत्पत्ति होती है, वे समस्त भूत चय एक ही साथ उत्पन्न होते हैं, वे ही इन्द्रियों के नाम से भी विख्यात हैं । उन भूत समूहों से अन्यान्य भूत भेदों की उत्पत्ति होती है इस प्रकार सृष्टि का प्रवर्तन होता है । हे ऋषिवृन्द ! सृष्टि की यह कथा परम विस्तृत एवं महान् है । मेरी जैसी कुछ बुद्धि थी, जैसा मैंने सुना था, वैसा आप लोगों के सम्मुख बता चुका, उसे उक्त प्रकार से ही समझिये । नैमिषारण्यवासी महर्षियों ने सूत से लोक की स्थिति, उत्पत्ति एवं विनाश की उक्त वार्ता सुनने के उपरान्त उस दीर्घकालीन यज्ञ में अवभृथ स्नान किया और पुण्य लोकों को प्राप्त किया । उसी प्रकार आप लोग भी विधिपूर्वक देवादि की पूजा अर्चा कर, यज्ञान्त में अवभृथ स्नान से शुद्धि लाभ कर, दीर्घायु के उपभोग के उपरान्त शरीरों को छोड़कर पुण्यप्रद लोकों को प्राप्त करोगे और वहाँ कृतकृत्य होकर यथेच्छ विहार करोगे । यज्ञकर्ता नैमिषारण्यवासी महर्षियों ने जिस प्रकार यज्ञादि का अनुष्ठान कर, प्रजाओं की सृष्टि कर, यज्ञस्नान में अवभृथ स्नान के उपरान्त स्वर्ग को प्राप्त किया था उसी प्रकार हे द्विजवर्यवृन्द! आपलोग भी अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान कर स्वर्ग को प्राप्त करोगे ॥ ३६-४३ ॥

कथावस्तुपरिग्रहात्मक (वर्ण्य विषयों की सूची) प्रक्रियापाद है । अनुषङ्गपाद, उपोद्घातपाद एवं उपसंहारपाद

नैमिषे सत्रमासाद्य मुनिभ्यो मुनिसत्तमाः । तत्प्रसादादसंदिग्धं भूतोत्पत्तिलयानि च ॥ ४६ ॥
प्राधानिकीमिमां सृष्टिं तथैवेश्वरकारिताम् । सम्यग्विदित्वा मेधावी न मोहमधिगच्छति ॥ ४७ ॥
इदं यो ब्राह्मणो विद्वान् इतिहासं पुरातनम् । शृणुयाच्छ्रावयेद्वाऽपि तथाध्यापयतेऽपि च ॥ ४८ ॥
स्थानेषु स महेन्द्रस्य मोदते शाश्वतीः समाः । ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा ब्रह्मणा सह मोक्ष्यते ॥ ४९ ॥
तेषां कीर्तिमतां कीर्तिं प्रजेशानां महात्मनाम् । प्रथयन्पृथिवीशानां ब्रह्मभूयाय गच्छति ॥ ५० ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च संमतम् । कृष्णद्वैपायनेनोक्तं पुराणं ब्रह्मवादिनाः ॥ ५१ ॥
मन्वन्तरेश्वराणां च यः कीर्तिं प्रथयेदिमाम् । देवतानामृषिणाञ्च भूरिद्रविणतेजसाम् ॥
स सर्वैर्मुच्यते पापैः पुण्यं च महदाप्नुयात् ॥ ५२ ॥
यश्चेदं श्रावयेद्विद्वान्सदा पर्वणि पर्वणि । धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥
यश्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्पादमन्ततः । अक्षयं सार्वकामीयं पितृंस्तच्चोपतिष्ठति ॥ ५४ ॥
यस्मात्पुरा ह्यनन्तीदं पुराणं तेन चोच्यते । निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥
तथैव त्रिषु वर्णेषु ये मनुष्याः प्रधानतः । इतिहासमिमं श्रुत्वा धर्माय विदधे मतिम् ॥ ५६ ॥
यावन्त्यस्य शरीरेषु रोमकूपाणि सर्वशः । तावत्कोटिसहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥
ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा दैवतेः सह मोदते ॥ ५७ ॥

इन चार पादों से उपबृंहित लोकसम्मत इस महापुराण को लोककल्याण में निरत साक्षात् भगवान् वायु ने यज्ञ के प्रसङ्ग में मुनियों से कहा था । उन्हीं की कृपा से प्राप्त, इस असन्दिग्ध, भूतों की उत्पत्ति एवं विनाश की कथा से युक्त लोक की प्रधान सृष्टि एवं ईश्वरकारिता को भलीभाँति जानकर मेधावी पुरुष मोहवश नहीं होता ॥४४-४७॥

जो विद्वान् ब्राह्मण इस पुरातन इतिहास को सुनता है या दूसरों को सुनाता है, अथवा शिष्यों को पढ़ाता है, वह महेन्द्र के स्थान को प्राप्तकर अनन्त कालपर्यन्त सुख का अनुभव करता है । ब्रह्म साम्राज्य प्राप्तकर ब्रह्मा के साथ मुक्ति लाभ करता है । परम ऐश्वर्यशाली प्रजापतियों की यशोगाथाओं का, जो वास्तव में इस समस्त भूमण्डल के अधीश्वर हैं, गान कर प्राणी ब्रह्मत्व की प्राप्ति करता है । कृष्णद्वैपायन वेदव्यास रचित इस परम यशोदायक, आयु प्रदाता, पुण्यप्रद, वेदों द्वारा सम्मानित पुराण को ब्रह्मवेत्ता लोग जानते हैं । जो इन मन्वन्तरेश्वरों की यशोगाथा का वर्णन करता है, परम ऐश्वर्यशाली, तेजस्वी देवताओं एवं ऋषियों का गुणगान करता है, वह समस्त पापकर्मों से मुक्ति प्राप्त करता है एवं महान् पुण्य का भागी होता है ॥ ४८-५२ ॥

जो विद्वान् प्रत्येक पर्वों के अवसरों पर इस पुण्यप्रद कथा को सर्वदा सुनाया करता है, वह पापरहित होकर स्वर्ग प्राप्त करता है और साक्षात् ब्रह्मपद का अधिकारी होता है । इस पुराण के इस अन्तिम उपसंहार पाद को, जो समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला एवं अक्षय फलदायी है, जो कोई भी व्यक्ति श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मणों को सुनाता है वह अपने पितरों की भूरि उपासना करता है । पुरा काल में इसकी प्रतिष्ठा थी, अतः इसको पुराण कहते हैं । जो व्यक्ति पुराण की इस निरुक्ति का तात्पर्य समझता है, वह समस्त पापकर्मों से मुक्त हो जाता है । तीनों वर्णों में जो मनुष्य इस परम श्रेष्ठ इतिहास को सुनकर धर्म की ओर अपनी प्रवृत्ति करता है, वह अपने शरीरस्थ रोमकूपों जितने करोड़ सहस्र वर्षों तक स्वर्ग में आनन्द का अनुभव करता है । समस्त पापों को दूर करने

सर्वपापहरं पुण्यं पवित्रं च यशस्वि च । ब्रह्मा ददौ शास्त्रमिदं पुराणं मातरिश्वने ॥ ५८ ॥
तस्माच्चोशनसा प्राप्तं तस्माच्चापि बृहस्पतिः । बृहस्पतिस्तु प्रोवाच सवित्रे तदनन्तरम् ॥ ५९ ॥
सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेन्द्राय वै पुनः । इन्द्रश्चापि वशिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च ॥ ६० ॥
सर्वस्वतस्त्रिधाम्ने च त्रिधामा च शरद्वते । शरद्वतस्त्रिविष्टाय सोऽन्तरिक्षाय दत्तवान् ॥ ६१ ॥
वर्षिणे चान्तरिक्षो वै सोऽपि त्रय्यारुणाय च । त्रय्यारुणो धनंजये स च प्रादात्कृतञ्जये ॥ ६२ ॥
कृतञ्जयात्तृणञ्जयो भरद्वाजाय सोऽप्यथ । गौतमाय भरद्वाजः सोऽपि निर्यन्तरे पुनः ॥ ६३ ॥
निर्यन्तरस्तु प्रोवाच तथा वाजश्रवाय च । स ददौ सोमशुष्माय स ददौ तृणबिन्दवे ॥ ६४ ॥
तृणबिन्दुस्तु दक्षाय दक्षः प्रोवाच शक्तये । शक्तेः पराशरश्चापि गर्भस्थः श्रुतवानिदम् ॥ ६५ ॥
पराशराज्जातुकर्णस्तस्माद्वैपायनः प्रभुः । द्वैपायनात्पुनश्चापि मया प्राप्तं द्विजोत्तमाः ॥ ६६ ॥

शांशपायन उवाच

मया वै तत्पुनः प्रोक्तं पुत्रायामितबुद्धये । इत्येव वाचा ब्रह्मादिगुरुणा समुदाहृता ॥ ६७ ॥
नमस्कार्याश्च गुरवः प्रयत्नेन मानीषिभिः । धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं सर्वार्थसाधकम् ॥ ६८ ॥
पापघ्नं नियमेनेदं श्रोतव्यं ब्राह्मणैः सदा । नाशुचौ नापि पापाय नाप्यसंवत्सरोषिते ॥ ६९ ॥
नाश्रद्दधानाविदुषे नापुत्राय कथंचन । नाहिताय प्रदातव्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥ ७० ॥

वाले, पुण्यप्रद, पवित्र, यशोदायक इस पुराण को भगवान् ब्रह्मा ने मातरिश्वा वायु के लिए प्रदान किया था । वायु से इसे शुक्राचार्य ने प्राप्त किया, उनसे भी बृहस्पति को इसकी प्राप्ति हुई । उसके उपरान्त बृहस्पति ने सविता को इसकी शिक्षा दी ॥ ५३-५९ ॥

सविता ने मृत्यु से कहा, मृत्यु ने पुनः इन्द्र को इसकी शिक्षा दी । इन्द्र ने भी वशिष्ठ को और वसिष्ठ ने सारस्वत को इसे दिया । सारस्वत ने त्रिधामा को, त्रिधामा ने शरद्वत को, शरद्वत ने त्रिविष्ट को, त्रिविष्ट ने अन्तरिक्ष को प्रदान किया । उपरान्त अन्तरिक्ष ने वर्षो को, उन्होंने त्रय्यारुण को, त्रय्यारुण ने धनञ्जय को, धनञ्जय ने कृतञ्जय को, कृतञ्जय ने तृणञ्जय को, तृणञ्जय ने भरद्वाज को, भरद्वाज ने गौतम को, गौतम ने निर्यन्तर को इसका उपदेश दिया । उसके उपरान्त निर्यन्तर ने वाजश्रवा को, वाजश्रवा ने सोमशुष्मा को और उन्होंने तृणबिन्दु को इसका उपदेश किया । तृणबिन्दु ने दक्ष को, और दक्ष ने शक्ति को दिया । शक्ति से इसका उपदेश गर्भस्थ पराशर ने प्राप्त किया । पराशर से जातुकर्ण और जातुकर्ण से परम ऐश्वर्यशाली द्वैपायन ने इसे प्राप्त किया । हे द्विजवृन्द ! उन्हीं द्वैपायन से इसकी शिक्षा मुझे प्राप्त हुई, और मैंने आप लोगों को सुनाया ॥ ६०-६६ ॥

शांशपायन ने कहा—हे द्विजवृन्द ! इस प्रकार मैं भी व्यास से प्राप्त इस पुण्य कथा को अपने पुत्र अमितबुद्धि को भी सुना चुका हूँ । इसके आदि गुरु ब्रह्मा ही हैं । इस प्रकार इस पुण्य गाथा का वर्णन मैं आप लोगों से कर चुका । बुद्धिमानों को सर्वप्रथम गुरुजनों को नमस्कार करना चाहिए । घन, पुण्य, आयु, यश एवं मनोरथों को देनेवाले इस पापनाशक वृत्तान्त को ब्राह्मणों को सर्वदा नियमपूर्वक सुनना चाहिए । इस परम पवित्र एवं उत्तम आख्यान को कभी भूलकर अपवित्र, पापात्मा एवं ऐसे अनजान व्यक्ति को न बताना चाहिए, जो सेवा

अव्यक्ते वै यस्य योनिं वदन्ति व्यक्तं देहं कालामन्तर्गतं च ॥
वह्निं वक्त्रं चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे दिशः श्रोत्रे घ्राणमाहुश्च वायुम् ॥ ७१ ॥
वाचो वेदांश्चान्तरिक्षं शरीरं क्षितिं पादौ तारका रोमकूपान् ॥
सर्वाणि चाङ्गानि तथैव तानि विद्यासर्वा यस्य पुच्छं वदन्ति ॥ ७२ ॥
तं देवदेवं जननं जनानां सर्वेषु लोकेषु प्रतिष्ठितं च ॥
वरं वराणां वरदं महेश्वरं ब्रह्माणमादिं प्रयतो नमस्ये ॥ ७३ ॥

॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे सृष्टिवर्णनं नाम
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

* * *

भाव ग्रहणकर शिष्य रूप में एक वर्ष तक सेवारत न रह चुका हो । इसी प्रकार इसका उपदेश अश्रद्धालु, अविद्वान्, अपुत्री एवं अहितकारी व्यक्ति को भी कभी न देना चाहिए । अव्यक्त जिसकी योनि (उत्पत्ति-स्थली) है, व्यक्ताव्यक्त काल जिसकी देह है, अग्नि जिसका मुख है, चन्द्रमा और सूर्य जिसके नेत्र हैं, दिशाएँ जिसके कान हैं, वायु जिसकी नासिका है, वेद समूह जिसकी वाणी है, अन्तरिक्ष जिसका शरीर है, पृथ्वी जिसके चरण हैं, ताराएँ जिसकी रोमावलियाँ हैं, समस्त दिशाएँ जिसके समस्त अङ्गोपाङ्ग हैं, समस्त वेदाङ्ग जिसकी पूंछ हैं, उस परम देव-देव जनकों के भी जनक समस्त लोकसमूहों में व्याप्त एवं प्रतिष्ठित, वरदान दायक महेश्वर ब्रह्मा को मैं सर्वप्रथम प्रतत नामस्कार करता हूँ ॥ ६७-७३ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपसंहारपाद में सृष्टि वर्णन नामक इकतालीसवें अध्याय
(एक सौ तीनवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरञ्जन**
मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४१ ॥

* * *

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः
व्याससंशपायनोदनम्

शौनकादिऋषय ऊचुः
सूत सूत महाभाग त्वया भगवता सता । व्यासप्रसादाधिगतशास्त्रसंबोधनेन च ॥ १ ॥
अष्टादशपुराणानि सेतिहासानि चानघ । उपक्रमोपसंहार विधिनोक्तानि कृत्स्नशः ॥ २ ॥
चतुर्दशसहस्त्रं च मात्स्यं प्रोक्तमतिस्फुटम् । तत्संख्यकं भविष्यं च प्रोक्तं पञ्चशताधिकम् ॥ ३ ॥
मार्कण्डेयं महारम्यं प्रोक्तं नवसहस्रकम् । कथितं ब्रह्मवैवर्त्तमष्टादशसहस्रकम् ॥ ४ ॥
शतोत्तरं च ब्रह्माण्डं सूर्यसंख्यासहस्रकम् । अथ भागवतं दिव्यमष्टादशसहस्रकम् ॥ ५ ॥
सहस्राणि दशैवोक्तं पुराणं ब्रह्मनामकम् । अयुतश्लोकघटितं पुराणं वामनाभिधम् ॥ ६ ॥
तथैवायुतसंख्यातं षट्शताधिकमादिकम् । त्रयोविंशतिसाहस्रमनिलं तद्गतं शुभम् ॥ ७ ॥
त्रयोविंशतिसाहस्त्रं नारदीयमुदाहृतम् । एकोनविंशसाहस्त्रं वैनतेयमुदाहृतम् ॥ ८ ॥

बयालीसवाँ अध्याय

(एक सौ चौथा अध्याय)

व्यास की सन्देह-निवृत्ति

शौनकादि ऋषियों ने पूछा—महाभाग सूत जी । आप सचमुच पापरहित हैं, क्योंकि भगवान् व्यास की कृपा से आप निखिल शास्त्रों के मर्मों को अधिगत कर चुके हैं, आप अठारहों पुराणों को इतिहास, उपक्रम एवं उपसंहारादि समेत हम लोगों को सम्पूर्णतया बता चुके । अत्यन्त स्पष्ट रीति से आपने चौदह सहस्त्र श्लोकों में वर्णित मात्स्य महापुराण को बताया, उतनी ही संख्या वाले भविष्य महापुराण को भी आपने बताया, भविष्य में मत्स्य की अपेक्षा पाँच सौ श्लोक अधिक हैं । उसके बाद आपने परम रमणीय नव सहस्त्र श्लोकों में पूर्ण मार्कण्डेय पुराण का वर्णन किया ॥ १-४ ॥

उसके उपरान्त अठारह सहस्त्र ब्रह्मवैवर्त का वर्णन आपने किया । बारह सहस्त्र एक सौ श्लोकों का ब्रह्माण्ड पुराण, अट्ठारह सहस्त्र श्लोकों का भागवत महापुराण, दस सहस्त्र श्लोकों का ब्रह्म पुराण, दस सहस्त्र श्लोकों का वामन पुराण, छह सौ अधिक दस सहस्त्र श्लोकों का आदि पुराण, तेइस सहस्त्र (?) श्लोकों का वायुपुराण, तेइस सहस्त्र का नारदीय पुराण, उन्नीस सहस्त्र का वनतेय (गरुड़) पुराण, पचपन सहस्त्र का पद्म पुराण,

सहस्रपञ्चपञ्चाशत्प्रोक्तं पाद्यं सुविस्तरम् । सप्तदशसहस्रं तु कूर्मं प्रोक्तं मनोहरम् ॥ ९ ॥
चतुर्विंशतिसाहस्रं सौकरं परमाद्भुतम् । एकाशीतिसहस्राणि स्कन्दमुक्तं सुविस्तृतम् ॥ १० ॥
एवमष्टादशोक्तानि पुराणानि बृहन्ति च । पुराणेष्वेषु बहवो धर्मस्ते विनिरूपिताः ॥ ११ ॥
रागिणां च विरागाणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् । गृहस्थानां वनस्थानां स्त्रीशूद्राणां विशेषतः ॥ १२ ॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां ये च सङ्करजातयः । गङ्गाद्या या महानद्यो यज्ञव्रततपांसि च ॥ १३ ॥
अनेकविधदानानि यमाश्च नियमैः सह । योगधर्मा बहुविधाः सांख्या भागवतास्तथा ॥ १४ ॥
भक्तिमार्गा ज्ञानमार्गा वैराग्यानिलनीरजाः । उपासनविधिश्चोक्तः कर्मसंशुद्धिचेतसाम् ॥ १५ ॥
ब्राह्मं शैवं वैष्णवं च सौरं शाक्तं तथार्हतम् । षड्दर्शनानि चोक्तानि स्वभावनियतानि च ॥ १६ ॥
एतदन्यच्च विविधं पुराणेषु निरूपितम् । अतः परं किमप्यस्ति न वा बोद्धव्यमुत्तमम् ॥ १७ ॥
न ज्ञायेत यदि व्यासो गोपयेदथ वा भवान् । अत्र नः संशयं छिन्धि पूर्णः पौराणिको यतः ॥ १८ ॥

सूत उवाच

शृणु शौनक वक्ष्यामि प्रश्नमेनं सुदुर्लभम् । अतिगोप्यतरं दिव्यमनाख्येयं प्रचक्षते ॥ १९ ॥
पराशरसुतो व्यासः कृत्वा पौराणिकीं कथाम् । सर्ववेदार्थघटितां चिन्तयामास चेतसि ॥ २० ॥
वर्णाश्रमवतां धर्मो मया सम्यगुदाहृतः । मुक्तिमार्गा बहुविधा उक्ता वेदाविरोधतः ॥ २१ ॥
जीवेश्वरब्रह्मभेदो निरस्तः सूत्रनिर्णये । निरूपितं परं ब्रह्म श्रुतियुक्तविचारतः ॥ २२ ॥

सत्रह सहस्र का मनोहर कूर्म पुराण, चौबीस सहस्र परमाद्भुत कथाओं वाला वाराह पुराण, परम विस्तृत इक्यासी सहस्र श्लोक में ग्रथित स्कन्द पुराण आपने बताया । इस प्रकार परम विस्तृत अट्ठारह पुराणों का गान आपने किया। उन पुराणों में बहुतेरे धर्मों का निरूपण किया गया है ॥ ५-११ ॥

रागी, विरागी, यती, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वनप्रस्थ, शूद्र, विशेषतया ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अन्यान्य छँटा वर्ण द्वारा विधेय धर्मों का वर्णन है । गंगा आदि महान नदियाँ और विभिन्न प्रकार के यज्ञ, तपों और व्रतों के नियमों का वर्णन किया गया है । अनेक प्रकार के दान, यम, नियम, योग धर्म, सांख्य धर्म, भागवत धर्म, भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग, वैराग्यमार्ग, अखिल, नीरज (?) विविध चित्त के कर्म संशुद्धि आदि का वर्णन किया गया है । ब्रह्म, शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त, आहत, षद् दर्शनादि विविध विषयों का उन पुराणों में पर्यालोचन किया गया है । आपके मन में यह अनुग्रह शेष रहता है कि इन विशिष्ट विषयों के अतिरिक्त कुछ अन्य ज्ञात बातें शेष रहती हैं या नहीं (?) भगवान् व्यास को या आपको ऐसी कोई बात नहीं है । जो ज्ञात न होगा या संबद्ध कारणों से आप लोग उसे छिपा रहे होंगे । इस विषय को लेकर हमारे मन में बड़ा सन्देह है, आप सभी पुराणों के जानने वाले परम विद्वान हैं, कृपया हमारी संशय निवृत्ति करें ॥ १२-१८ ॥

सूत जी ने कहा—शौनक जी ! इस परम दुर्लभ प्रश्न का उत्तर सुनिये, बता रहा हूँ । यह अत्यन्त गोपनीय, दिव्यगुण सम्पन्न एवं किसी से कहने योग्य नहीं है । पराशर पुत्र भगवान् व्यासदेव समस्त वेदार्थों के सारभूत पुराणों की रचना जब कर चुके तब अपने हृदय में विचार किया कि इन पुराणों में वर्णाश्रम मर्यादा को माननेवालों के धर्मों का मैं भली तरह निरूपण कर चुका, वेदों के अनुसार चलने वाले अनेक प्रकार के मोक्षदायी

अक्षरं परमं ब्रह्म परमात्मा परं पदम् । यदर्थं ब्रह्मचर्यादिवानप्रस्थयतिव्रतम् ॥ २३ ॥
आचरन्ति महाप्राज्ञा धारणां च पृथग्विधाम् । आसनं प्राणरोधश्च प्रत्याहारश्च धारणा ॥ २४ ॥
ध्यानं समाधिरेतानि यमैश्च नियमैः सह । अष्टाङ्गानि यदर्थं च चरन्ति मुनिपुङ्गवाः ॥ २५ ॥
यदर्थं कर्म कुर्वन्ति वेदाज्ञामात्रतत्पराः । परार्पणधिया सम्यग् निष्कामाः कलिलोज्झिताः ॥ २६ ॥
यज्ज्ञप्तये निराकर्तुं पापचरणमात्मनः । गङ्गादितीर्थचर्याणि निषेवन्ते शुचिव्रताः ॥ २७ ॥
तद्ब्रह्म परमं शुद्ध मनाद्यन्तमनामयम् । नित्यं सर्वगतं स्थाणु कूटस्थं कूटवर्जितम् ॥ २८ ॥
सर्वेन्द्रियचराभासं प्राकृतेन्द्रियवर्जितम् । दिक्कालाद्यनवच्छिन्नं नित्यं चिन्मात्रमव्ययम् ॥ २९ ॥
अध्यास्तं सर्पवद्यत्र विश्वमेतत्प्रकाशते । विश्वस्मिन्नपि चन्वेति निर्विकारश्च रज्जुवत् ॥ ३० ॥
सम्यग्विचारितं यद्वत्फेनोर्मिबुद्बुदोदकम् । तथा विचारितं ब्रह्म विश्वस्मान्न पृथग्भवेत् ॥ ३१ ॥
सर्वं ब्रह्मैव नानात्वं नास्तीति निगमा जगुः । यस्माद्भवन्ति ब्रह्माण्डकोटयो न भवन्ति च ॥ ३२ ॥
यदुन्मेषनिमेषाभ्यां जगतां प्रलयोदयौ । भवेतां या परा शक्तिर्यदाधारतया स्थिता ॥ ३३ ॥
यस्मिन्निदं यतश्चेदं यनेदं यदिदं स्मृतम् । यदज्ञानाज्जगद्भाति यस्मिञ्ज्ञाते जगन्न हि ॥ ३४ ॥
असत्यं यज्जडं दुःखं अवस्त्विति निरूपितम् । विपरीतमतो यद्वै सच्चिदानन्दमूर्तिकम् ॥ ३५ ॥

मार्गों का निर्वचन कर चुका, सूत्र निर्णय में जॉन, ईश्वर और ब्रह्मा के भेदों का पर्यालोचन कर चुका, श्रुति प्रतिपादन युक्तियों से परम ब्रह्म का निर्णय कर चुका ॥ १९-२२ ॥

वह परम ब्रह्म परमात्मा कभी विनष्ट होनेवाला नहीं है, वही परम पद है । उसी के लिए बड़े-बड़े बुद्धिमान् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास आदि धर्मों का प्रतिपालन करते हैं, बड़े-बड़े पुङ्गव आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, यम, नियम और समाधि-इन आठों अङ्गों का विधिवत् पालन करते हैं । एकमात्र वेदों के वचनों में आस्था रखनेवाले उसी परम ब्रह्म के उद्देश्य से कर्म करते हैं, परार्पण बुद्धि से वे निष्काम एवं पापरहित भावना से जीवन यापन करते हैं । अपने पापाचरण को निराकृत करने के लिए पवित्रात्मा उसी ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गंगा आदि पवित्र तीर्थों का सेवन करते हैं ॥ २३-२७ ॥

वह परम ब्रह्म शुद्ध, अनादि, अनन्त एवं अनामय है । नित्य, सर्वगत, स्थाणु, कूटस्थ एवं कूट वर्णित है । समस्त इन्द्रिय ग्रामों में विचरण करनेवाला, अतीन्द्रिय, दिक्कालात्मक, नित्य, चिन्मात्र एवं अव्यय है । इस निखिल ब्रह्माण्ड में वह सर्वत्र व्याप्त है, उसी की ज्योति से यह सुप्रकाशित है । रज्जु की तरह निर्विकार वह ब्रह्म इस समस्त विश्व में भी संयुक्त नहीं होता । सम्यक् विचार करने पर फेन, तरङ्ग, बुदबुद एवं उदक की तरह है । अर्थात् जिस प्रकार फेन, तरङ्ग, बुदबुद ये सब जल के विकार ही हैं, जल से अलग इनकी अपनी कोई सत्ता नहीं है, उसी प्रकार अच्छी तरह विचार करने पर यह निश्चय हो जाता है कि वह ब्रह्म समस्त विश्व विभूतियों से पृथक नहीं है । सब कुछ ब्रह्म ही है, जगत् में अनेक कुछ नहीं है—यही सब वेदों का परमार्थ है । उसी से इन समस्त ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है, और उसी में ये पुनः समाविष्ट हो जाते हैं ॥ २८-३२ ॥

उसी के उन्मेष और निमेष से जगत् का प्रलय एवं उदय होता है । उसी की आधारभूत वह परा शक्ति है, जो समस्त जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं विनाशकर्त्री है । उसी में यह समस्त जगत् अवस्थित है, उसी से इसकी

जीवे जाग्रति विश्वाख्यं स्वप्ने यत्तैजसं स्मृतम् । सुसुप्तौ प्राज्ञसंज्ञं तत्सर्वावस्थासु संस्मृतम् ॥ ३६ ॥
यच्चक्षुषां चक्षुरथ श्रोत्राणां श्रोत्रमस्ति च । त्वक् त्वचां रसनं तस्य प्राणं प्राणस्य यद्विदुः ॥ ३७ ॥
बुद्धिज्ञानेन च प्राणाः क्रियाशक्त्या निरन्तरम् । यन्नेशिरे समभ्येतुं ज्ञातुं च परमार्थतः ॥ ३८ ॥
रज्जावहिर्मरौ वारि नीलिमा गगने यथा । असद्विश्वमिदं भाति यस्मिन्नज्ञानकल्पितम् ॥ ३९ ॥
घटावच्छिन्न एवायं महाकाशो विभिद्यते । कार्योपाधिपरिच्छिन्नं तद्वद्यज्जीवसंज्ञिकम् ॥ ४० ॥
मायया चित्रकारिण्या विचित्रगुणशीलया । ब्रह्माण्डं चित्रमतुलं यस्मिन्भित्ताविवार्पितम् ॥ ४१ ॥
धावतोऽन्यानतिक्रान्तं वदतो वागगोचरम् । वेदवेदान्तसिद्धान्तैर्विनिर्णीतं तदक्षरम् ॥ ४२ ॥
अक्षरान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः । इत्येवं श्रूयते वेदे बहुधाऽपि विचारिते ॥ ४३ ॥
अक्षरस्याऽऽत्मनश्चापि स्वात्परूपतया स्थितम् । परमानन्दसंदोहरूपमानन्दविग्रहम् ॥ ४४ ॥
लीलाविलासरसिकं बल्लवीयूथ मध्यगम् । शिखिपिच्छकिरीटेन भास्वद्रत्नचितेन च ॥ ४५ ॥
उल्लसद्विद्युदाटोपकुण्डलाभ्यां विराजितम् । कर्णोपान्तचरन्नेत्रखञ्जरीटमनोहरम् ॥ ४६ ॥

उत्पत्ति होती है, उसी के द्वारा इसकी पालना होती है, वह स्वयं जगत् रूप है । उसी के न जानने से जगत् की सत्ता का बोध होता है, उसके जान लेने पर यह सब मिथ्या मालूम पड़ता है । वह असत्य, जड़, दुःख एवं अवस्तु निरूपित किया गया है, इसके विपरीत वह परब्रह्म सत् चित् आनन्द एवं मूर्तमान् है । वह जीवों की जागरण अवस्था में विश्व, स्वप्नावस्था में तैजस एवं सुषुप्ति में प्राज्ञ संज्ञक है, सभी अवस्थाओं में उसका अस्तित्व स्मरण किया जाता है । वह चक्षुओं का भी चक्षु है, श्रोत्रों का भी श्रोत्र है, त्वचा की भी त्वचा है, रसना की भी रसना है और अधिक क्या प्राणों का भी प्राण है, ऐसा विद्वान् लोग जानते हैं ॥ ३३-३७ ॥

मानव अपनी बुद्धि, ज्ञान, प्राण एवं क्रिया शक्ति—इन सब के द्वारा निरन्तर अध्यवसाय करते रहने पर भी उसके परमार्थ को जानने एवं वहाँ तक पहुँचने में असमर्थ है । रज्जु में सर्प, बालू में जल, गगन में नीलिमा की भाँति अविद्या के कारण यह असत् जगत् सत् रूप की भाँति प्रतीत होता है । जिस प्रकार यह महान् आकाश घटादि के भीतर होने के कारण घटाकाश आदि नामों से भिन्न रूप से पुकारा जाता है, उसी प्रकार वह परब्रह्म कार्योपाधि से परिच्छिन्न होकर जीवात्मा नाम से प्रसिद्ध होता है । विचित्र गुणशालिनी चित्रकारिणी माया द्वारा यह ब्रह्माण्ड रूप चित्र भित्ति की तरह उस परब्रह्म में चित्रित है । वह अक्षर परब्रह्म अन्य दौड़नेवालों को भी अतिक्रान्त करनेवाला तथा वक्ता की युक्ति भरी वाणी से भी अगोचर है, वेदों एवं वेदों के सिद्धान्तों द्वारा निर्णय होता है ॥ ३८-४२ ॥

पराशक्तिसम्म परब्रह्म से परे कुछ नहीं है, यही एकमात्र पराकाष्ठा है, परा गति है । अनेक बार विचार करने के बाद वेदों से यही निश्चय हुआ । सुना जाता है कि अपनी अध्यात्मा में आत्म रूप से अवस्थित, परमानन्द सन्दोहरवरूप, आनन्द विग्रह, लीला विलास रक्षक गोपियों के समूह में विचरण करनेवाले चमकीले रत्नों से गुम्फित मयूर के पिच्छों के बने हुए मनोहर किरीट से सुशोभित, चमकती हुई बिजली की रेखाओं के समान आँखों को चकाचौंध कर देनेवाले कुण्डलों से विराजमान, कानों के समीप एक लम्बे, मनोहर खञ्जरीट के समान चञ्चल नेत्रोंवाले, कुञ्ज में प्रिय गोपियों के वृन्द में रतिक्रीड़ा के अभिलाषी, पीताम्बरधारी, दिव्य चन्दन एवं अङ्गरागादिकों

कुञ्जकुञ्जप्रियावृन्दविलासरतिलम्पटम् । पीताम्बरधरं दिव्यं चन्दनालेपमण्डितम् ॥ ४७ ॥
अधरामृत संसिक्तवेणुनादेन वल्लवीः । मोहयन्तं चिदानन्दमनङ्गमदभञ्जनम् ॥ ४८ ॥
कोटिकामकलापूर्णं कोटिचन्द्रांशुनिर्मलम् । त्रिरेखकण्ठविलसद्रत्नगुञ्जामृगाकुलम् ॥ ४९ ॥
यमुनापुलिने तुङ्गे तमालवनकानने । कदम्बचम्पकाशोकपारिजातमनोहरे ॥ ५० ॥
शिखिपारावतशुकपिककोलाहलाकुले । निरोधार्थं गवामेव धावमानमितस्ततः ॥ ५१ ॥
राधाविलासरसिकं कृष्णाख्यं पुरुषं परम् । श्रुतवानस्मि वेदेभ्यो यतस्तद्गोचरोऽभवत् ॥ ५२ ॥
एवं ब्रह्मणि चिन्मात्रे निर्गुणे भेदवार्जिते । गोलोकसंज्ञिके कृष्णो दिव्यतीति श्रुतं माया ॥ ५३ ॥
नातः परतरं किंचिन्निगमागमयोरपि । तथाऽपि निगम वक्ति ह्यक्षरात् परतः परः ॥ ५४ ॥
गोलोकवासी भगवानक्षरात्पर उच्यते । तस्मादपि परः कोऽसौ गीयते श्रुतिभिः सदा ॥ ५५ ॥
उद्दिष्टो वेदवचनैर्विशेषो ज्ञायते कथम् । श्रुतेर्वाऽर्थोऽन्यथा बोध्यः परतस्त्वक्षरादिति ॥ ५६ ॥
श्रुत्यर्थे संशयापन्नो व्यासः सत्यवतीसुतः । विचारमास चिरं न प्रपेदे यथातथम् ॥ ५७ ॥

सूत उवाच

विचारयन्नपि मुनिर्नाप वेदार्थनिश्चयम् । वेदो नारायणः साक्षाद्यत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥ ५८ ॥
तथाऽपि महतीमार्तिं सतां हृदयतापिनीम् । पुनर्विचारयामास कं व्रजामि करोमि किम ॥ ५९ ॥

के विलेपन से सुगन्धित अपने अधरामृत से संसिक्त वेणु के सुरम्य नाद से गोपियों को विमोहित करनेवाले, चित्स्वरूप, आनन्द रूप, अनङ्ग का मद चूर करने वाले, कोटि काम की कला से पूर्ण, कोटि चन्द्र की किरणों के समान निर्मल, भ्रमरों के सुरम्य गुञ्जार से विराजित, रत्नपूर्ण गुञ्जाओं एवं मृगों से चारों ओर घिरे हुए पवित्र उच्च यमुना तट पर तमाल के रमणीय वनों में कदम्ब, चम्पक, अशोक और पारिजात के वृक्षों से मनोहर, मयूर, पारावत, शुक, पिकादि पक्षियों के कोलाहल से पूर्ण, वन प्रान्तों में गौओं के रक्षार्थ इधर-उधर दौड़ते हुए, राधा के विलास के प्रेमी, श्रीकृष्ण ही यह परम पुरुष हैं। वेदों से भी यही सुना जाता है। उन्हीं से इस समस्त ब्रह्माण्ड का प्रकाश होता है ॥ ४३-५२ ॥

वह परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण चिन्मात्र, निर्गुण, भेदविहीन ब्रह्ममय गोलोक में विहार करनेवाले हैं ऐसा हमने सुना है। उनसे परे कोई भी वस्तु इस विशाल ब्रह्माण्ड में नहीं है। निगमागमों से यही बात प्रमाणित होती है। ऐसा होने पर भी निगम कहता है कि वे परम पुरुष अक्षर से भी परवर्ती हैं। ये गोलोकवासी भगवान् कृष्ण अक्षर से परे कहे जाते हैं। उस अक्षर से परे कौन है जिसका यशोगान श्रुतियाँ सर्वदा करती हैं। वेद वचनों से जो उद्दिष्ट है वह विशेष किस प्रकार से ज्ञात हो सकता है? अथवा श्रुति के 'परतस्त्वक्षरात्' इस वचन का अन्यथा अर्थ किसी प्रकार का जानना चाहिए। श्रुति के उक्त वचन के अर्थ निर्धारण में संशयायिष्ट सत्यवती सुत उक्त प्रकार से बहुत देर तक विचार करते रहे किन्तु उसके तत्त्वनिश्चय तक नहीं पहुँच सके ॥ ५३-५७ ॥

सूतजी ने कहा—ऋषिवृन्द ! इस प्रकार बहुत देर तक विचारमग्न रहने पर भी व्यास जी वेदार्थ निश्चय में असफल रहे। वेद साक्षात् नारायण का स्वरूप है, जिसमें बड़े-बड़े विद्वान् भी मोह को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसा जानते हुए भी व्यासदेव हृदय को आन्दोलित करनेवाली बहुत बड़ी चिन्ता से ग्रस्त रहे, और पुनः बराबर सोचते

पश्यामि न जगत्यस्मिन्सर्वज्ञं सर्वदर्शनम् । अज्ञात्वाऽन्यतमं लोके संदेहविनिवर्तकम् ॥ ६० ॥
मेरोः कुहरिणीं गत्वा चचार परमं तपः । यत्र कार्त्तस्वरस्फूर्जज्ज्योत्स्नाजालैर्निरन्तरम् ॥ ६१ ॥
सदा प्रबाधते विष्वक्तमःस्तोमं दृशंतुदम् । चकास्ते यत्र परमं कान्तारमतिसुन्दरम् ॥ ६२ ॥
नानाद्रुमलताकुंजकूजत् पक्षिनिनादितम् । क्षुत्पिपासाभयक्रोधतापग्लानिविवर्जितम् ॥ ६३ ॥
जलाशयैर्बहुविधैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः । जातरूपशिलानद्धतटसंचारपक्षिभिः ॥ ६४ ॥
युक्तमम्भोजपवनैः सेव्यमानं समन्ततः । शिवैरध्यासितं भावैर्हिंस्रैः सत्त्वैः समुज्झितम् ॥ ६५ ॥
निर्जनं दिव्यलतिकाप्रियखण्डविराजितम् । शुकैः पारावतैर्हृद्यैरुन्मदन्मत्तकोकिलम् ॥ ६६ ॥
उत्पतत्पद्मरजसां पटलामोददिङ्मुखम् । तत्रापि काञ्चिनी दिव्या गुहा परमशोभना ॥ ६७ ॥
तां प्रविश्य जिताहारो जितचित्तो जितासनः । सस्मार वेदांश्चतुरस्तदेकाग्रमना मुनिः ॥ ६८ ॥
त्रयी जगाम शरदां शतस्य स्मरतोऽस्य हि । प्रादुरासंस्ततो वेदाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः ॥ ६९ ॥
श्फुरत्पद्मपलाशाक्षा जटामुकुटधारिणः । कुशमुष्टिकराम्भोजा मृगत्वङ्मण्डितांसकाः ॥ ७० ॥

रहे कि कहाँ जाऊँ और क्या करू? इस लोक में हमारे इस सन्देह को निवृत्त करनेवाला सर्वद्रष्टा सर्वज्ञ कोई नहीं है, जिससे अपने सन्देह को दूर करूँ । ऐसा निश्चय कर वे सुमेरु पर्वत की सुन्दर गुफा में जाकर तपस्या करने में निरत हो गये । उस गुफा में यद्यपि आँखों को कष्ट देनेवाले घोर अन्धकार का समूह चारों ओर से व्याप्त हो रहा था, फिर भी सुवर्ण की शिलाओं की चमकीली ज्योत्स्ना राशि निरन्तर शोभायमान हो रही थी । वहाँ एक परम रमणीय बहुत बड़ा वन्य प्रदेश था ॥ ५८-६२ ॥

जिसमें विविध प्रकार के वृक्षों और लताओं के कुञ्जों में पक्षियों के कलरव हो रहे थे । उस मनोहर वन्य प्रान्त में प्राणी क्षुधा, पिपासा, भय, क्रोध, सन्ताप, ग्लानि आदि मानसिक कष्टों से मुक्त हो जाता था । कमलिनियों के समूहों से सुशोभित अनेक प्रकार के जलाशय वहाँ की शोभावृद्धि कर रहे थे, उन जलाशयों के तट पर जड़ी हुई सुवर्ण की शिलाओं पर विचरण करनेवाले पक्षियों के प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखायी पड़ते थे । कमल वनों में विचरण करनेवाले वायु से वहाँ का वातावरण अत्यन्त शुद्ध हो रहा था । हिंख जन्तु भी अपने क्रूर स्वभावों को छोड़कर वहाँ वैरविहीन एवं उपकारी भावों से जीवन व्यतीत करते थे । चारों ओर निर्जनता का साम्राज्य था । दिव्य लताओं के समूहों से एक विचित्र प्रकार की शोभा थी । हृदय को आकर्षित करनेवाले शुकों, पारावतों के समूह तथा मतवाले कोकिलों के शब्द हो रहे थे । कमलों के पराग हवा के साथ उड़कर दिशाओं को आमोदित कर रहे थे, पटल की सुगन्धि चारों ओर व्याप्त हो रही थी । ऐसे परम रमणीय वन्य प्रान्त में सुवर्णमयी परमशोभासम्पन्न वह गुफा थी, उस पवित्र गुफा में प्रविष्ट होकर व्यास जी ने आहार, चित्त एवं आसन पर अधिकार प्राप्त करके एकाग्र मन से चारों वेदों का स्मरण किया ॥ ६३-६८ ॥

उस प्रकार वेदों का स्मरण करते-करते उनके तीन सौ वर्ष जब व्यतीत हो गये, तब उन परम पवित्र चारों वेदों का प्रादुर्भाव हुआ, उनके मनोहर नेत्र विकसित कमलदल के समान मनोहर थे, उनके शिरोभाग जटा एवं मुकुट से अलंकृत थे, उनकी मुट्ठियों में कुश के स्तबक तथा कमल विराजमान थे, पवित्र मृगचर्म से उनके स्कन्ध प्रदेश की एक अनूठी शोभा हो रही थी ॥ ६९-७० ॥

स्वरैः षोडशभिः क्लृप्तवदनाः प्रणवान्तराः । कचवर्गोद्भवैर्वर्णैः पञ्चावयवपाणयः ॥ ७१ ॥
पवर्गदक्षचरणा वामपादास्तवर्गतः । आतरन्त्यन्तवर्णाश्च येषां कुक्षिद्वयात्मकौ ॥ ७२ ॥
नाभिनिद्राः कान्तपृष्ठा मोदरा यरलवोत्कचाः । अग्निदक्षांशरुचिरा धराग्रीवा भृतांसकाः ॥ ७३ ॥
अंतस्थसन्धिसंस्थाना वैखरीवाग्विजृम्भिताः । अपश्यन्मथुरामेषां हृदयाम्भोजकल्पिताम् ॥ ७४ ॥
हरेर्भगवतः साक्षादाविर्भावस्थली हि सा । काशीमपश्यद्भ्रुमध्ये मायामाधारसंस्थिताम् ॥ ७५ ॥
लिङ्गदेशे ततः काञ्चीमवन्तीं नाभिमण्डले । कण्ठस्थां द्वारकामेषां प्रयागं प्राणगं तथा ॥ ७६ ॥
सव्यापसव्ययोस्तेषां गङ्गाऽपि यमुना बीचे । सरस्वती साक्षाद्गयाक्षेत्रं तथानने ॥ ७७ ॥
हनुग्रीवा मध्यगतं प्रभासक्षेत्रमुत्तमम् । बदर्याश्रममेतेषां ब्रह्मरन्ध्रे ददर्श ह ॥ ७८ ॥
पौण्ड्रवर्धननेपालपीठं नयनयोर्युगे । पीठं पूर्णगिरिं नाम ललाटे समदृश्यत ॥ ७९ ॥
कण्ठे च मुथुरापीठं काञ्चीपीठं कटिस्थितम् । जालंधरं तथा पीठं स्तनदेशेष्वदृश्यत ॥ ८० ॥
भृगुपीठं कर्णदेशे ह्ययोध्यां नासिकापुटे । ब्रह्मरन्ध्रे स्थितं ब्राह्मयं शैवं सीमन्तसीमनि ॥ ८१ ॥
शाक्तं जिह्वाग्रधिषणं वैष्णवं हृदयाम्बुजे । सौरं चक्षुःप्रदेशस्थं बौद्धञ्छायासु संगतम् ॥ ८२ ॥
सौत्रामणिं कण्ठदेशे पशुबन्धमथोरसि । वाजपेयं कटितटे ह्यग्निहोत्रं तथानने ॥ ८३ ॥

सोलह स्वरों एवं बीच-बीच में प्रणव के उच्चारण से उनका मुख शोभायमान हो रहा था। कवर्ग एवं चवर्ग के सभी वर्णों से उनके हाथों की पाँच-पाँच अँगुलियों समेत दोनों हाथों की शोभा बढ़ रही थी। पवर्ग उनके दक्षिण चरण एवं तवर्ग वाम चरण की शोभा बढ़ा रहे थे। उनके दोनों कुक्षिप्रदेशों में अन्त्य वर्ण थे। न वर्ण उनके नाभिप्रदेश क पृष्ठप्रदेश, म उदरदेश और य र ल केशपाशों के शोभादायक थे। अग्निबीज दक्षिण स्कन्धप्रदेश, पृथ्वीबीज ग्रीवा प्रदेश तथा भृत वाम स्कन्धप्रदेश में विराजमान थे। सभी अन्तःस्थ (य व र ल) वर्ण उनकी सन्धियों में शोभायमान थे, वैखरी वाक् से वे प्रस्फुरित हो रहे थे। व्यासदेव ने उन वेदों के हृदय कमल प्रदेश में अवस्थित मथुरापुरी का दर्शन किया, क्योंकि वह पवित्र पुरी स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की उत्पत्ति-स्थली है ॥ ७१-७४ ॥

उनकी भौंहों के मध्य में काशी का दर्शन किया, आधार स्थल में माया पुरी दिखायी पड़ी। लिङ्ग प्रदेश में काञ्ची, नाभिमण्डल में अवन्ती, क प्रदेश में द्वारका एवं प्राणों में प्रयाग की स्थिति देखी। उन वेदों के दाहिने एवं बायें पार्श्वों में गङ्गा एवं यमुना प्रवहमान थीं। मध्यदेश में साक्षात् सरस्वती की धारा थी, मुख प्रदेश में गया क्षेत्र था। दाढ़ी और कण्ठ प्रदेश के मध्य में उत्तम प्रभास क्षेत्र था, इन वेदों के ब्रहारन्ध्र में व्यासदेव ने बदरिकाश्रम का दर्शन किया ॥ ७५-७८ ॥

दोनों नेत्रों में पौण्ड्रवर्धन और नेपाल-ये दो पीठ तथा ललाट प्रदेश में पूर्णगिरि नामक पीठ का दर्शन किया। कण्ठ में मथुरा पीठ, कटि प्रदेश में काञ्ची पीठ तथा स्तन प्रदेशों में जालन्धर पीठ का व्यासदेव ने दर्शन प्राप्त किया। कर्ण प्रदेश में उन्होंने भृगुपीठ का तथा नासिकापुट में अयोध्या का दर्शन किया। इसी प्रकार ब्रह्मरन्ध्र में अवस्थित ब्राह्म तीर्थ तथा सीमन्त प्रदेश में अवस्थित शैव तीर्थ का दर्शन किया। उनकी जिह्वाओं के अग्र देश में शाक्त एवं हृदयकमल में वैष्णव तीर्थों का निवास था। चक्षु प्रदेशों में सौर और छाया में बौद्ध तीर्थों के दर्शन हुए। कण्ठ देश में सौत्रामणि यज्ञ और उरु प्रदेशों में पशु बन्धन देखा। दक्षिण कटि प्रदेश में वाजपेय तथा मुख प्रदेश में अग्निहोत्र का दर्शन किया ॥ ७९-८३ ॥

अश्वमेधं कटितटे नरमेधमथोदरे । राजसूयं शिरोदेशे आवसथ्यं तथाऽधरे ॥ ८४ ॥
ऊर्ध्वोष्ठे दक्षिणाग्निं च गार्हपत्यं मुखान्तरे । हव्यं श्रुतौ मन्त्रभेदांस्तथा रोमस्ववस्थितान् ॥
भृत्यैरिव महाराजं पुराणैर्न्यायमिश्रितैः ॥ ८५ ॥
संहिताभिश्च तन्त्रैश्च पृथक्पृथगुपासितान् । कर्मज्ञानोपासनाभिर्जनानुग्रहकारकान् ॥ ८६ ॥
दृष्ट्वा सुविस्मितमना मुनिः कृष्णो बभूव तान् । ब्रह्मतेजोमयान्दिव्यांस्तपतोऽर्कानिव च्युतान् ॥
ज्वलतोऽग्निनिवोदर्कात्कोटीन्दुसमदर्शनान् ॥ ८७ ॥
ववन्दे सहसोत्थाय दंडवत्पतितो मुनिः । कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहमितीरयन् ॥ ८८ ॥
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं मनः । अद्य मे सफलंश्चायुर्युर्यद्भवन्तोऽक्षिगोचराः ॥ ८९ ॥
अलौकिकं लौकिकं च यत्किंचिदिपि विद्यते । न तद्वोऽविदितं वेद्यं भूतं भव्यं भवच्च यत् ॥ ९० ॥
न प्रवृत्तिफला यूयं दर्शयन्तोऽपि तान् सदा । यदृच्छाकरसंकोचविधानायेह रागिणाम् ॥ ९१ ॥
प्रपञ्चस्यापि मिथ्यात्वे ब्रह्मत्वे वा विधीतरौ । न मृषारागविषयौ तत्संकोचविधिक्षयौ ॥ ९२ ॥
अतो लोकहितैर्नूनं परमार्थनिरूपणे । स्वोक्ताः स्वर्गादिविषयाः नश्वरा इति निन्दिताः ॥ ९३ ॥
अधिकारिविभेदेन कर्मज्ञानोपदेशतः । त्रातं सर्वं जगन्नूनं शब्दब्रह्मात्ममूर्तिभिः ॥ ९४ ॥

इसी प्रकार वाम कटि प्रदेश में अश्वमेध, उदर में नरमेध, शिरोदेश में राजसूय तथा अधर में आवसथ्य का दर्शन किया । वेदों के ऊपरी ओष्ठों में दक्षिणाग्नि को, मुखमध्य में गार्हपत्य अग्नि को, श्रुतियों में हवनीय अग्नि को तथा रोम कूपों में अवस्थित निखिल मन्त्र समूहों के व्यास को दर्शन हुए । न्याय मिश्रित समस्त पुराणगण मत्यों की तरह वेद महाराज का पूजन कर रहे थे । संहिताएँ भी पृथक् पृथक् रूप से उन सब की उपासना में तत्पर थीं । कर्म, ज्ञान एवं उपासना इन तीनों अङ्गों से उन भक्त जनानुग्रहकारी वेदों की अर्चा की जा रही थी । उपर्युक्त विशेषताओं से विशिष्ट चारों वेदों को देखकर कृष्णद्वैपायन व्यासदेव परम विस्मित हुए । उस समय ब्रह्म तेजोमय दिव्यगुणसम्पन्न वे वेदगण अतिशय प्रभा से पूर्ण प्रभाकर की भाँति आकाश से गिरते हुए की भाँति दिखायी पड़ रहे थे । प्रज्वलित अग्नि की लपटों की भाँति उनके मुखमण्डल से अनुपम ओज दिखायी पड़ रहा था । इतने पर भी वे कोटि चन्द्रमा के समान सुन्दर लग रहे थे ॥ ८४-८७ ॥

इस प्रकार सम्मुख समागत चारों वेदों को देखकर मुनिवरेण्य व्यासदेव दण्डवत् पृथ्वी पर गिर पड़े और मैं कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया यह कहते हुए बोले, भगवन् । आज मेरा जन्म सफल है, मेरा मन कृतार्थ हो गया, मेरी आयु फलवती है, जो आप लोगों के अलभ्य दर्शन प्राप्त हुए । इस जगत् में अलौकिक अथवा लौकिक, जो कुछ भी पदार्थ हैं, वे आप लोगों से छुपे हुए नहीं हैं, यही नहीं जो कुछ भी ज्ञातव्य भूत भव्यादि पदार्थ हैं ये सब भी आपको विदित हैं । 'तुम सब केवल के उपदेष्टा नहीं हो ।' ऐसा आप लोग रागासक्त प्राणियों की स्वेच्छाचारिता के संकोच के लिए विधान करते हैं । जगत्प्रपञ्चों के मिथ्यात्व एवं महात्व के प्रतिपादक जो विधि निषेधमय वचन आप लोगों के हैं, वे मिथ्या राग के विषय नहीं है, संकोच के विधि-निषेधक हैं । आप लोग लोककल्याण में निरत रहकर केवल परमार्थ निरूपण करते हैं, यही कारण है कि अपने कहे गये स्वर्गादि विषयों को नश्वर समझकर निन्दित माना है ॥ ८८-९३ ॥

अपने शब्द ब्रह्ममय शरीरों से आप लोगों ने अधिकारियों के भेद बनाकर कर्म एवं ज्ञान के उपदेशों द्वारा

अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामि भवन्तश्चेत्कृपालवः । कर्मणां फलमादिष्टं सर्गः कामैकचेतसाम् ॥ ९५ ॥
ईशार्पितधियाँ पुंसां कृतस्यापि च कर्मणः । चित्तशुद्धिस्ततो ज्ञानं मोक्षश्च तदनन्तरम् ॥ ९६ ॥
मोक्षो ब्रह्मैक्यमित्येवं सच्चिदानन्दमेव यत् । सर्वं समाप्यते तस्मिञ्ज्ञाते यद्धि कृताकृतम् ॥ ९७ ॥
यन्निःसङ्गं चिदाकाशं ज्ञानरूपमसंवृतम् । निरीहमचलं शुद्धमगुणं व्यापकं स्मृतम् ॥ ९८ ॥
विकारेषु विनश्यत्सु निर्विकारं न नश्यति । यथान्धतमसा व्याप्तलोकस्य रविरोजसा ॥ ९९ ॥
लोहस्येव मणिस्तद्वदरणिश्चनले यथा । यदाभासेन सा सतां प्रतिपद्य विजृंभते ॥ १०० ॥
जीवेश्वरादिरूपेण विश्वाकारेण चाप्यहो । तस्यामपि प्रलीनायां कूटस्थं च यदेकलम् ॥ १०१ ॥
भवद्भिरेवं निर्णीतं तत्तथैव न संशयः । तथापि मम जिज्ञासा वर्त्तते केवलं हृदि ॥ १०२ ॥
अतोऽपि परमं किञ्चिद्वर्तते किल वा न वा । तद्वदन्तु महाभागा भवन्तस्तत्त्वदर्शनाः ॥ १०३ ॥
यच्छ्रवः फलमेवेह जनुषो मे कृतार्थता । एवं ब्रुवन्तमनघं व्यासं सत्यवतीसुतम् ॥
साधु साध्विति सङ्कीर्त्य प्रत्यूचुर्निगमा वचः ॥ १०४ ॥

वेदा ऊचुः

साधु साधु महाप्राज्ञ विष्णुरात्मा शरीरिणाम् । अजोऽपि जन्म संपद्य लोकानुग्रहमीहसे ॥ १०५ ॥

समस्त जगत् की निश्चय ही रक्षा की है । यदि आप लोग हमारे ऊपर कृपाशील हैं तो हम आपसे कुछ पूछना चाहते हैं । कामनाओं से घिरे हुए चितोंवाले मनुष्यों के जो कुछ भी सत्कर्म होते हैं, उन सब का फल स्वर्ग कहा गया है । ईश्वर में अपनी चित्तवृत्ति को लगानेवाले पुरुषों के कर्मों का फल चित्त शुद्धि मानी गयी है । चित्त शुद्धि से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है, ज्ञान प्राप्ति से मोक्ष मिलता है । वही मोक्ष ही ब्रह्म के साथ एकता है, वह सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप है । उसके भली-भाँति जान लेने पर जो कुछ भी कृत अकृत रहता है, समाप्त हो जाता है । अर्थात् फिर उसका फल भोगना नहीं पड़ता । वह निःसठ चिदाकाश (आकाश की भाँति सब का आधार एवं निर्लेप) ज्ञान रूप, असंवृत, निरीह, अचल, शुद्ध, गुणातीत एव व्यापक स्मरण किया जाता है ॥ ९४-९८ ॥

जगत् के समस्त विकारों के विनष्ट हो जाने पर भी वह निर्विकार नष्ट नहीं होता । घोर अन्धकार से व्याप्त जगत् को जिस प्रकार सूर्य अपने तेज से आलोकित करता है, मणि जिस प्रकार लोह को प्रकाशित करती है, उसी प्रकार निर्विकार ब्रह्म भी इस जगत् को आलोकित करता है, उसी के आभास मात्र से यह सारी सृष्टि प्रकाशित होती है । इस सृष्टि के प्रलीन हो जाने पर वह परब्रह्म जीवेश्वरादि रूप से एवं अपनी विश्वाकृति से कूटस्थ एवं अद्वितीय रूप में परिशेष रहता है । उसका सम्यक् निर्णय आप ही लोगों ने किया है वह उसी प्रकार का है, जैसा आप लोगों ने निर्णय किया है, इसमें सन्देह नहीं । ऐसा होने पर भी मेरे हृदय में केवल एक जिज्ञासा वर्तमान है ॥ ९९-१०२ ॥

उस परब्रह्म से भी बढ़कर कोई अन्य सत्ता है अथवा नहीं, हे महाभाग्यशालियों ! आप सब तत्त्वों के पारदर्शी हैं, कृपया इस जिज्ञासा की शान्ति कीजिये । सचमुच उसी के श्रवण का फल ही हमारे जन्म की कृतार्थता है, अर्थात् इस परम गोपनीय विषय को जानकर मेरा जन्म सफल हो जायगा । निष्पाप सत्यवती सुत व्यासदेव के इस प्रकार पूछने पर निगमों ने 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहते हुए उनके प्रश्न का उत्तर दिया ॥१०२-१०४॥

अन्यथा ते न घटते संसारकर्मबन्धनम् । अस्पृष्टो मायया देव्या कदाचिज्ज्ञानगूहया ॥ १०६ ॥
बिभर्षि स्वेच्छया रूपं स्वेच्छयैव निगूहसे । अस्मत्संमत एवार्थो भवता संप्रदर्शितः ॥ १०७ ॥
पुराणेष्वितिहासेषु सूत्रेष्वपि च नैकधा । अक्षरं ब्रह्म परमं सर्वकारणकारणम् ॥ १०८ ॥
तस्यात्मनोऽप्यात्मभावतया पुष्पस्य गन्धवत् । रसवद्वा स्थितं रूपमवेहि परमं हि तत् ॥ १०९ ॥
अनुभूतं तदस्याभिजर्ति प्राकृतिके लये । अक्षरात्परतस्तस्माद्यत्परं केवलो रसः ॥
न च तत्र वयं शक्ताः शब्दातीते तदात्मकाः ॥ ११० ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे व्याससंशयापनोदनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

* * *

वेदों ने कहा—महाप्राज्ञ भगवन् व्यासदेव ! आपको धन्यवाद है, धन्यवाद है । आप साक्षात् विष्णुस्वरूप हैं, शरीरधारियों के आत्मा हैं, अजन्मा होकर भी आप जन्म धारणकर लोक के ऊपर अनुग्रह करना चाहते हैं । अन्यथा आपको सांसारिक कर्म बन्धनों का कोई भय नहीं है । ज्ञान द्वारा गम्य भगवती माया द्वारा आप अछूते हैं, अर्थात् आप पर माया (अविद्या) का कोई प्रभाव नहीं है । आप अपनी इच्छा ही से शरीर धारण करते हैं और अपनी इच्छा ही से तिरोहित भी होते हैं । हम लोगों को जो मत मान्य है, उसी को आपने प्रदर्शित किया है । पुराणों, इतिहासों एवं सूत्रों में आपने अनेक प्रकार से उसका प्रतिपादन किया है । वह परब्रह्म अक्षर, परम एवं सभी कारणों का कारणस्वरूप है, अर्थात् उससे परे कोई नहीं है । पुष्प के रस एवं गन्ध की भाँति वह आत्मस्वरूप का भी आत्मस्वरूप है । उसी को सबसे परम समझो । प्राकृतिक लय के होने पर हम सर्वो को यही अनुभव हुआ है कि उस अक्षर परब्रह्म से परे जो कुछ है वह पुष्प के रस की भाँति वही है, शब्द स्वरूप हम लोग उसकी महिमा को पूर्णतया समझने में समर्थ नहीं हैं, वह अक्षर ब्रह्म शब्दों द्वारा गम्य नहीं है ॥ १०५-११० ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपसंहारपाद में व्याससंशयापनोदन नामक बयालीसवें अध्याय (एक सौ चौथें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरञ्जन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४२ ॥**

* * *

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

वायुरूवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि गमाहात्म्यमुत्तमम् । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥

सुत उवाच

सनकाद्यैर्महाभागैर्देवर्षिः स च नारदः । सनत्कुमारं पप्रच्छ प्रणम्य विधिपूर्वकम् ॥ २ ॥

नारद उवाच

सनत्कुमार मे ब्रूहि तीर्थं तीर्थोत्तमोत्तमम् । तारकं सर्वभूतानां पठतां शृण्वतां तथा ॥ ३ ॥

सनत्कुमार उवाच

वक्ष्ये तीर्थवरं पुण्यं श्राद्धादौ सर्वतारकम् । गयातीर्थं सर्वदेशे तीर्थेभ्योऽप्यधिकं श्रुणु ॥ ४ ॥

गयासुरस्तपस्तेपे ब्रह्मणा क्रतवेऽर्थितः । प्राप्तस्य तस्य शिरसि शिलां धर्मो ह्यधारयत् ॥ ५ ॥

तिरालिसवाँ अध्याय

एक सौ पाँचवाँ अध्याय

गया माहात्म्य

वायु ने कहा—ऋषिवृन्द ! अब इस कथा के उपरान्त हम सर्वश्रेष्ठ गया का माहात्म्य बता रहे हैं, जिसका श्रवण कर प्राणी समस्त पापों से निस्सन्देह छूट जाता है ॥ १ ॥

सूतजी ने कहा—ऋषिवृन्द ! एक बार महाभाग्यशाली सनक प्रवृति देवर्षियों के साथ नारद जी ने सनत्कुमार को विधिवत् प्रणामकर निवेदन किया ॥ २ ॥

नारद ने कहा—सनत्कुमार जी समस्त उत्तम तीर्थों में भी उत्तम किसी ऐसे तीर्थ का माहात्म्य हमें बताइये, जिसके पढ़ने एवं सुननेवाले सभी प्राणी तर जाते हैं ॥ ३ ॥

सनत्कुमार ने कहा—नारद जी । आपके अनुरोध पर तीर्थवर गया का माहात्म्य हम बता रहे हैं, जो श्राद्धादि पैतृक कार्यों में समस्त प्राणियों को तारनेवाला है, वह गया तीर्थ सभी देशों में, सभी तीर्थों से अधिक पुण्यप्रद है, उसका माहात्म्य सुनिये । एक बार यज्ञ के लिए ब्रह्मा के अनुरोध करने पर गयासुर ने यहाँ तपस्या की थी, उसके सिर पर एक शिला की स्थापना कर भगवान् ब्रह्मा ने यज्ञ सम्पन्न किया था । वह पवित्र यज्ञ ब्रह्मा

तत्र ब्रह्माऽकरोद्यागं स्थितश्चापि गदाधरः । फल्गुतीर्थादिरूपेण निश्चलार्थमहर्निशम् ॥
गयासुरस्य विप्रेन्द्र ब्रह्माद्यैर्दैवतैः सह ॥ ६ ॥
कृतयज्ञो ददौ ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यो गृहादिकम् । श्वेतकल्पे तु वाराहे गयायागमकारयत् ॥ ७ ॥
गयानाम्ना गया ख्याता क्षेत्रं ब्रह्माभिकाङ्क्षितम् । काङ्क्षन्ति पितरः पुत्रान्नरकाद् भयभीरवः॥ ८ ॥
गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति । गयाप्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितॄणामुत्सवो भवेत् ॥
पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा सोऽस्मभ्यं किं न दास्यति ॥ ९ ॥
गयां गत्वाऽन्नदाता यः पितरस्तेन पुत्रिणः । पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥
नो चेत्पञ्चदशाहं वा सप्तरात्रिं त्रिरात्रिकम् ॥ १० ॥
महाकल्पकृतं पापं गयां प्राप्य विनश्यति । पिण्डं दद्याच्च पित्रादेरात्मनोऽपि तिलैर्विना ॥ ११ ॥
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । पापः तत्सङ्गजं सर्वं गयाश्राद्धाद्विनश्यति ॥ १२ ॥
आत्मजोऽप्यन्यजो वाऽपि गयाभूमौ यदा तदा । यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १३ ॥
ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा । वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥ १४ ॥

जी ने इसी तीर्थ में किया था, विप्रवर्य । वह असुर किसी प्रकार विचलित न हो जाय इस उद्देश्य से ब्रह्मादि देवताओं के साथ भगवान् गदाधर भी फल्गु आदि तीर्थों के रूप में रात-दिन वहाँ स्थित रहते हैं ॥ ४-६ ॥

निर्विघ्न यज्ञ की समाप्ति हो जाने के उपरान्त ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को दक्षिणा से गृहादि प्रदान किये । श्वेत वाराह कल्प में उसी पवित्र स्थान पर गयासुर ने यज्ञाराधन किया । तभी से यह परम पुनीत क्षेत्र गया के नाम से हुआ, इसे ब्रह्मा जी बहुत पसन्द करते हैं । यही नहीं, नरक के भय से डरे हुए पितरगण भी इस परम पुनीत क्षेत्र की बड़ी कामना करते हैं । ये कहते हैं कि जो पुत्र गया यात्रा करेगा वह हम सब को इस दुःख संसार से तार देगा । इस पुनीत गया तीर्थ में पुत्र को गया हुआ देखकर पितरों के घर उत्सव मनाये जाते हैं । ये कहते हैं कि इस पुनीत तीर्थ में अपने पैरों से भी जल का स्पर्श कर पुत्रगण हमें क्या नहीं दे देंगे ॥ ७-९ ॥

एक पुत्र भी गया चला जायगा या अश्वमेध यज्ञ करेगा अथवा नील वृषण का उत्सर्ग करेगा तो हम सब का उद्धार हो जायगा, इसीलिए पितरगण इन्हीं उद्देश्यों से बहुत पुत्रों के होने की कामना करते हैं । इस गया तीर्थ में जाकर जो पुत्र अन्न का दान करता है, पितरगण उसी सुपुत्र से अपने को पुत्रवान् मानते हैं । यहाँ पर तीन पक्ष तक निवास करनेवाला रात्रि के निवास का भी महान फल होता है । महाकल्प काल से सञ्चित पाप कर्मों का भी गया में जाकर विनाश हो पुत्र अपने सात पूर्व पुरुषों का उद्धार करता है । यदि तीन पक्ष निवास न कर सके तो पन्द्रह दिन, सात रात अथवा तीन रात्रि के निवास का भी महान् फल होता है । महाकल्प काल से सञ्चित पाप कर्मों का भी गया में जाकर विनाश हो जाता है । वहाँ पितरों के उद्देश्य से पिण्डदान करना चाहिए । अपने लिए भी तिल के बिना पिण्डदान करने का विधान है । ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी, गुरुजनों की स्त्री के साथ समागम, ऐसे घोर पाप एवं ऐसे पापियों के संसर्ग से होने वाले अन्यान्य पाप कर्म गया में श्राद्ध करने से विनष्ट हो जाते हैं ॥ १०-१३ ॥

अपना औरस पुत्र हो अथवा किसी अन्य का पुत्र हो, जब-जब गया क्षेत्र की पवित्र भूमि पर जिस-जिस के नाम से पिण्डदान करता है, उस-उस को वह पिण्ड शाश्वत ब्रह्म पद को प्राप्त कराता है । इस गया तीर्थ में

ब्रह्मज्ञानेन किं कार्यं गोगृहे मरणेन किम् । वासेन किं कुरुक्षेत्रे यदि पुत्रो गयां व्रजेत् ॥ १५ ॥
गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः । अधिमासे जन्मदिने चास्तेऽपि गुरुशुक्रयोः ॥ १६ ॥
न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ । तथा दैवप्रमादेन प्रहतेषु व्रणेषु च ॥
पुनः कर्माधिकारी च श्राद्धकृद्ब्रह्मलोकभाक् ॥ १७ ॥
सकृद्गयाभिगमनं सकृत्पिण्डस्य पातनम् । दुर्लभं किं पुनर्नित्यमस्मिन्नेव व्यवस्थितिः ॥ १८ ॥
प्रमादान्म्रियते क्षेत्रे ब्रह्मादेर्मुक्तिदायके । ब्रह्मज्ञानाद्यथामुक्तिर्लभ्यते नात्र संशयः ॥ १९ ॥
कीटकादिमृतानाञ्च पितॄणां तारणाय च । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं सुविचक्षणैः ॥ २० ॥
ब्रह्मप्रकल्पितान्विप्रान्हव्यकव्यादिनाऽर्चयेत् । तैस्तुष्टैस्तोषिताः सर्वाः पितृभिः सह देवताः ॥ २१ ॥
मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः । वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालां विरजां गयाम् ॥ २२ ॥
दंडं प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गयां गत्वा न पिण्डदः । दण्डं न्यस्ता विष्णुपदे पितृभिः सह मुच्यते ॥ २३ ॥
न दण्डी किल्बिषं धत्ते पुण्यं वा परमार्थतः। अतः सर्वा क्रियां त्यक्त्वा विष्णुं ध्यायति भावुकः ॥ २४ ॥
संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत् । मुण्डं कुर्याच्च पूर्वेऽस्मिन् पश्चिमे दक्षिणोत्तरे ॥ २५ ॥
सार्द्धं क्रोशद्वयं मानं गयेति ब्रह्मणेरितम् । पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः ॥ २६ ॥
तन्मध्ये सर्वतीर्थानि त्रैलोक्ये यानि सन्ति वै । श्राद्धकृद्यो गयाक्षेत्रे पितॄणामनृणो हि सः ॥ २७ ॥

नाम एवं गोत्र का उच्चारण कर पिण्डदान करने की विधि विहित है, वह चाहे जिस किसी का जिस किसी के उद्देश्य से दिया हो, परम गति प्राप्त कराता है । ब्रह्मज्ञान, गया श्राद्ध, गोशाला में मृत्युलाभ एवं कुरुक्षेत्र में निवास— ये चार कर्म पुरुषों के लिए मोक्षदायक हैं । किन्तु इन सबों से ब्रह्मज्ञान, गोशाला में मृत्युलाभ एवं कुरुक्षेत्र में निवास करने का क्या काम है, यदि पुत्र पवित्र गया तीर्थ की यात्रा करता है ॥ १४-१७ ॥

गया तीर्थ में बुद्धिमान् पुरुष सभी समयों में पिण्डदान कर सकते हैं । किन्तु अधिकमास, जन्म दिन, गुरु एवं शुक्र के अस्त होने पर तथा बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होने के समय गया श्राद्ध को न छोड़ना चाहिए। चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण के अवसर पर मृतकों के पिण्डकर्मों में महान फल होता है । इस महातीर्थ में जाने पर क्षत का दोष नहीं लगता । दैवदुर्विपाकया किसी महान व्रण के हो जाने पर भी मनुष्य को गया तीर्थ में श्राद्ध कर्म का अधिकार रहता है, वह श्री ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है । जीवन में एक बार की गया यात्रा एवं एक बार का गया का पिण्डदान करने से प्राणी को जीवन में कुछ दुर्लभ नहीं रहता, नित्य निवास करनेवालों की तो फिर बात ही क्या है? ब्रह्मादि देवताओं के परमप्रिय मुक्तिदायी इस गया तीर्थ में यदि कोई असावधानतया मृत्युलाभ करता है, तो उसे निस्सन्देह वैसी ही मुक्ति प्राप्त होती है, जैसी ब्रह्मज्ञान से ॥ १८-२२ ॥

कीकट (मगध) प्रभृति देशों में मृत्यु प्राप्त करनेवाले पितरों को तारने के लिए बुद्धिमान् पुरुष को सब प्रयत्न करके गया श्राद्ध करना चाहिए । उस समय ब्रह्मज्ञानपरायण विप्रों को हव्यकव्यादि से सन्तुष्ट करना चाहिए, क्योंकि उनके सन्तुष्ट होने पर सभी देवगण व पितरगण सन्तुष्ट हो जाते हैं । विशाला, विरजा और गया को छोड़कर सभी तीर्थों में मुण्डन एवं उपवास करने की विधि विहित है, पिण्डदान करनेवाले भिक्षु को गया में जाकर केवल दण्ड दिखलाना चाहिए, पिण्डदान नहीं करना चाहिए, विष्णुपद पर दण्ड रखकर वह पितरों के समेत मुक्तिलाभ करता है । पारमार्थिक दृष्टि से दण्डधारी पाप अथवा पुण्य का भागी नहीं होता, अतः सभी क्रियाओं का परित्यागकर भावप्रवण होकर एकमात्र भगवान् विष्णु का ध्यान करता है ॥ २३-२७ ॥

शिरसि श्राद्धकृद्यस्तु कुलानां शतमुद्धरेत् । गृहाच्चलितमात्रेण गयायां गमनं प्रति ॥
स्वर्गारोहणसोपानं पितॄणां च पदे पदे ॥ २८ ॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य यत्फलं गच्छतो गयाम् । तत्फलं च भवेन्नूनं समग्रं नात्र संशयः ॥ २९ ॥
पायसेनापि चरुणा सक्तुना पिष्टकेन वा । तण्डुलैः फलमूलाद्यैर्गयायां पिण्डपातनम् ॥ ३० ॥
तिलकल्केन खण्डेन गुडेन सघृतेन वा । केवलेनैव दध्ना वा ऊर्जेन मधुनाऽथ वा ॥ ३१ ॥
पिण्याकं सघृतं खण्डं पितृभ्योऽक्षयमित्युत । इज्यते वार्तवं भोज्यं हविष्यान्नं मुनीरितम् ॥ ३२ ॥
एकतः सर्ववस्तूनि रसवन्ति मधूनि हि । स्मृत्वा गदाधराङ्घ्र्यब्जं फल्गुतीर्थाम्बु चैकतः ॥ ३३ ॥
पिण्डासनं पिण्डदानं पुनः प्रत्यवनेजनम् । दक्षिणा चान्नसंकल्पस्तीर्थश्राद्धेष्वयं विधिः ॥ ३४ ॥
नावाहनं न दिग्बन्धो न दोषो दृष्टिसंभवः । सकारुण्येन कर्त्तव्यं तीर्थश्राद्धं विचक्षणैः ॥ ३५ ॥
अन्यत्रावाहिताः काले पितरो यान्त्यमुं प्रति । तीर्थे सदा वसन्त्येव तस्मादावाहनं न हि ॥ ३६ ॥
तीर्थश्राद्धं प्रयच्छद्भिः पुरुषैः फलकाङ्क्षिभिः । कामं क्रोधं तथा लोभं त्यक्त्वा कार्या क्रियाऽनिशम् ॥ ३७ ॥
ब्रह्मचार्येकभोजी च भूशायी सत्यवाक्छुचिः । सर्वभूतहिते रक्तः स तीर्थफलमश्नुते ॥ ३८ ॥
तीर्थान्यनुसरन्धीरः पाषण्डं पूर्वतस्त्यजेत् । पाषण्डः स च विज्ञेयो यो भवेत्कामकारतः ॥ ३९ ॥
तीर्थेषु ये नरा धीराः कर्म कुर्वन्ति तद्गताः । यथा ब्रह्मविदो वेद्यं वस्तु चानन्यचेतसः ॥

संन्यासी को सभी कर्मों का परित्याग तो कर देना चाहिए, पर केवल वेद को नहीं त्यागना चाहिए । गयातीर्थ में जाकर उसे तीर्थ के पूर्व, पश्चिम, दक्षिण अथवा उत्तर किसी दिशा में मुण्डन कराना चाहिए । भगवान् ब्रह्मा ने गयातीर्थ का परिमाण ढाई कोस का, गया क्षेत्र का पाँच कोस का तथा गया शिर का एक कोस का बताया है ॥ २८-२९ ॥

त्रैलोक्य में जितने भी तीर्थ हैं, वे इसी के भीतर स्थित है जो मनुष्य गया क्षेत्र में श्राद्ध करता है वह पितरों के ऋण से मुक्त हो जाता है । गया शिर में जो श्राद्ध करता है वह सौ कुलों का उद्धार करता है । घर से गया का प्रस्थान मात्र करने से पितरों को पद-पद पर स्वर्गारोहण की सीढ़ियाँ मिलने लगती है ॥ ३०-३१ ॥

अश्वमेध यज्ञ करने का जो फल होता है, वह समस्त फल गया यात्रा के एक-एक पग पर प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं । दुग्ध मिश्रित चरु, सत्तू, पेठा, चावल, विविध प्रकार के फल एवं मूल-इन वस्तुओं से गया में पिण्डदान किया जाता है । तिलकल्क, घृतसमेत गुड़खण्ड अथवा केवल दही या उत्तम मधु या घृतसमेत पिण्याक द्वारा गया में श्राद्ध करने से पितरों को अक्षय तृप्ति मिलती है । अथवा जिस ऋतु में श्राद्ध हो रहा हो उस ऋतु में होनेवाले भोज्य पदार्थ, मुनियों द्वारा उद्दिष्ट हविष्यान्न एवं रसयुक्त सुमधुर वस्तुओं को एक ओर रखकर भगवान् गदाधर के चरणारविन्द एवं फल्गु के पवित्र जल का स्मरणकर पितरों के उद्देश्य से दान करना चाहिए । पिण्ड के लिए आसन, पिण्डदान, प्रत्यवनेजन, दक्षिणा और अन्न सङ्कल्प-तीर्थश्राद्धों की यही विधि है ॥ ३२-३७ ॥

तीर्थों में आवाहन दिशाओं में परदा टांगना अथवा दृष्टिजन्य दोष, ये सब तीर्थ श्राद्धों में नहीं होते । बुद्धिमानों को करुणापूर्वक तीर्थ श्राद्धों को सम्पन्न करना चाहिए । पितरगण अन्य स्थानों में आवाहन करने पर जाते हैं, किन्तु यहाँ नहीं, क्योंकि वे तीथों में तो सर्वदा निवास ही करते हैं, यही कारण है कि तीचों में उन्हें आवाहित

प्रविशन्ति परेशाख्यं ब्रह्म ब्रह्मपरायणाः ॥ ४० ॥
यास्ते वैतरणी नाम नदी त्रैलोक्यविश्रुता । साऽवतीर्णा गयाक्षेत्रे पितॄणां तारणाय वै ॥
स्नातो गोदो वैतरण्यां त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् ॥ ४१ ॥
तथाऽक्षयवटं गत्वा विप्रान्संतोषयिष्यति । ब्रह्मप्रकल्पितान्विप्रान्हव्यकव्यादिनाऽर्चयेत् ॥
तैस्तुष्टैस्तोषिताः सर्वाः पितृभिः सह देवताः ॥ ४२ ॥
गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते । सान्निध्यं सर्वतीर्थानां गयातीर्थं ततो वरम् ॥ ४३ ॥
मीने मेषे स्थिते सूर्ये कन्यायां कार्मुके घटे । दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयायां पिण्डपातनम् ॥ ४४ ॥
मकरे वर्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयाश्राद्धं सुदुर्लभम् ॥ ४५ ॥
गयायां पिण्डदानेन यत्फलं लभते नरः । न तच्छक्यं मयावक्तुं कल्पकोटिशतैरपि ॥ ४६ ॥

इति महापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

* * *

नहीं किया जाता । फल की आकांक्षा से तीर्थों में आद्ध प्रदान करनेवाले पुरुषों को काम, क्रोध तथा लोभ को छोड़कर सारी क्रियाएँ करनी चाहिए ॥ ३८-४० ॥

ब्रह्मचर्य व्रत धारणकर एक समय भोजन करना चाहिए, पृथ्वी पर शयन करना चाहिए, सत्य वचन बोलना, मन एवं शरीर से पवित्र रहना चाहिए । सभी जीवों के कल्याण साधन में निरत रहना चाहिए । जो इन सब नियमों का पालन करता है, वह तीर्थ का फल प्राप्त करता है । धीर पुरुष को तीर्थों की यात्रा के समय सर्वप्रथम पाखण्ड को त्याग देना चाहिए । जो कामनाओं को उत्तेजित करता है, वह पाखण्ड है, जो धीर पुरुष तीर्थों में जाकर पितरों में भक्ति एवं निष्ठा रखकर ब्रह्मवेत्ताओं की भाँति अनन्यचित्त हो सब कर्म करते हैं, वे ब्रह्मपरायण परेश ब्रह्मपद में प्रविष्ट होते हैं, त्रैलोक्य विख्यात जो वैतरणी नामक नदी है, वह भी पितरों को तारने के लिए गया क्षेत्र में अवतीर्ण हुई है, उस वैतरणी में स्नानकर गोदान करने वाला अपने इक्कीस कुलों को तारता है ॥४१-४४ ॥

अक्षयवट के पास जाकर जो ब्रह्मपरायण ब्राह्मणों को हव्यकव्यादि वस्तुओं से पूजित करता है, वह महान् पुण्य प्राप्त करता है, क्योंकि उनके सन्तुष्ट हो जाने पर समस्त पितरगण एवं देवगण सन्तुष्ट हो जाते हैं । उस पवित्र गया तीर्थ में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ पर कोई-न-कोई तीर्थ विद्यमान न हो वहाँ सभी तीर्थों का सान्निध्य रहता है, गया तीर्थ उन सबसे बढ़कर पुण्य है । मीन, मेष, कन्या, धनु एवं वृष राशि पर जब सूर्य हो उस समय गया तीर्थ परम दुर्लभ है, ऋषि लोग सर्वदा यह कहते आये हैं कि तीनों लोकों में गया का पिण्डदान परम दुर्लभ है । मकर राशि पर जब चन्द्रमा और सूर्य स्थित हो, उस समय तीनों लोकों में गया श्राद्ध परम दुर्लभ माना गया है । मनुष्य गया में पिण्डदान करने से जो फल प्राप्त करता है, उसका में सैकड़ों कोटि कल्पों में भी वर्णन नहीं कर सकता ॥ ४५-४९ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपसंहारपाद में गयामाहात्म्य नामक तिरालीसवें (एक सौ पाँचवें) अध्याय **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरञ्जन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४३ ॥**

* * *

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

नारद उवाच

गयासुरः कथं जातः किंप्रभावः किमात्मकः । तपस्तप्तं कथं तेन कथं देहपवित्रता ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

विष्णोर्नाभ्यम्बुजाज्जातो ब्रह्मा लोकपितामहः । प्रजाः ससर्ज संप्रोक्तः पूर्वं देवेन विष्णुना ॥ २ ॥
आसुरेणैव भावेन ह्यसुरानसृजत्पुरा । सौमनस्येन भावेन देवान्सुमनसोऽसृजत् ॥ ३ ॥
गयासुरोऽसुराणां च महाबलपराक्रमः । योजनानां सपादं च शतं तस्योच्छ्रयः स्मृतः ॥ ४ ॥
स्थूलः षष्टियोजनानां श्रेष्ठोऽसौ वैष्णवः स्मृतः । कोलाहलगिरिवरे तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ५ ॥
बहुवर्षसहस्राणि निरुच्छ्वासं स्थिरोऽभवत् । तत्तपस्तापिता देवाः संक्षोभं परमं गताः ॥ ६ ॥
ब्रह्मलोकं गता देवाः प्रोचुस्तेऽथ पितामहम् । गयासुराद्रक्ष देव ब्रह्मा देवांस्ततोऽब्रवीत् ॥ ७ ॥

चौवालीसवाँ अध्याय

(एक सौ छठवाँ अध्याय)

गया माहात्म्य

नारद ने कहा—हे ब्रह्मन् ! वह गयासुर किस प्रकार उत्पन्न हुआ ? उसका प्रभाव और स्वरूप क्या था? उसने किस प्रकार तपस्या की ? शारीरिक पवित्रता उसे कैसे प्राप्त हुई ? ॥ १ ॥

सनत्कुमार ने कहा—हे नारद जी ! भगवान् विष्णु के नाभिकमल से लोकपितामह ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए थे और पूर्वकाल में भगवान् विष्णु के कहने पर उन्होंने प्रजाओं की सृष्टि की थी । आसुरभाव से उन्होंने असुरों की तथा उदार भावों से देवताओं को उत्पत्ति की थी । उन असुरों में महाबलवान् तथा पराक्रमी गयासुर हुआ । उसकी ऊँचाई सवा सौ योजन की कही जाती है । मोटाई साठ सहस्र योजनों की थी । भगवान् विष्णु का यह भक्त था । कोलाहल नामक सुन्दर गिरि पर जाकर उसने परम दारुण तपस्या की थी । सुना जाता है कि यहाँ जाकर अनेक सहस्र वर्षों तक श्वास को रोक कर तप करता रहा । उसके इस दारुण तप को देखकर देवगण बहुत सन्तप्त और क्षुब्ध हुए । अन्ततः देवगण ब्रह्मलोक में स्थित पितामह ब्रह्मा के पास जाकर बोले-हे देव! गयासुर से हम लोगों की रक्षा कीजिये । देवताओं की आर्त वाणी सुनकर भगवान् ब्रह्मा ने उनसे कहा ॥ २-७ ॥

व्रजामः शंकरं देवाः ब्रह्माद्याश्च गताः शिवम् । कैलासे चाब्रुवन्नत्वा रक्ष देव महासुरात् ॥ ८ ॥
ब्रह्माद्यानब्रवीच्छम्भुर्व्रजामः शरणं हरिम् । क्षीराब्धौ देवदेवेशः स नः श्रेयो विधास्यति ॥
ब्रह्मा महेश्वरो देवा विष्णुं नत्वा प्रतुष्टुवुः ॥ ९ ॥

देवा ऊचुः

ॐ नमो विष्णवे भर्त्रे सर्वेषां प्रभविष्णवे । रोचिष्णवे जिष्णवे च राक्षसादिग्रसिष्णवे ॥ १० ॥
धरिष्णवेऽखिलस्यास्य योगिनां परयिष्णवे । वर्धिष्णवे ह्यनन्ताय नमो भ्राजिष्णवे नमः ॥ ११ ॥

सनत्कुमार उवाच

एवं स्तुतो वासुदेवः सुराणां दर्शनं ददौ । किमर्थमागता देवा विष्णुनोक्तास्तमब्रुवन् ॥ १२ ॥
गयासुरभयाद्देव रक्षास्मानब्रवीद्धरिम् । ब्रह्माद्या यान्तु तं दैत्यमागमिष्याम्यहं ततः ॥ १३ ॥
केशवो गरुडारूढो वरं दातुं गयासुरे । सर्वे स्वं स्वं समास्थाय ययुर्वाहनमुत्तमम् ॥ १४ ॥
ऊचुस्तं वासुदेवाद्याः किमर्थं तप्यते त्वदा । संतुष्टाः स्वागताः सर्वे वरं ब्रूहि गयासुर ॥ १५ ॥

गयासुर उवाच

यदि तुष्टाः स्थ मे देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सर्वदेवद्विजातिभ्यो यज्ञतीर्थशिलोच्चयात् ॥ १६ ॥
देवेभ्योऽतिपरित्रोऽहमृषिभ्योऽपि शिवाव्ययात् । मन्त्रेभ्यो देवदेवेभ्यो योगिभ्यश्चापि सर्वशः ॥ १७ ॥

हे देवगण! चलिये, इस कार्य के लिए हम लोग एक साथ भगवान् शंकर के पास चलें । ऐसा निश्चय कर ब्रह्मादि देवगण कैलास शिखर पर अवस्थित भगवान् शंकर के पास गये और बोले-हे देव! महासुर गय से हम लोगों की रक्षा कीजिये । शम्भु ने ब्रह्मादि देवगणों से कहा-चलिये, हम लोग इस कार्य के लिए हरि की शरण में चलें । क्षीरसागर में ये देवदेवेश विराजमान है, वे ही हम लोगों का कल्याण साधन करेंगे । इस प्रकार निश्चय कर ब्रह्मा, महादेव एवं देवताओं ने क्षीरसागर में जाकर भगवान् विष्णु को नमस्कार कर स्तुति की ॥ ८-९ ॥

देवताओं ने कहा—जो समस्त जीवों के उत्पत्तिकर्ता एवं पालक हैं, परम शोभा युक्त एवं विजयी हैं, राक्षसादि अनुपकारियों के ग्रसने वाले हैं । अखिल चराचर जगत् के धारण करने वाले एवं योगियों के उद्धारक हैं, अनन्त महिमाशाली, उत्तरोत्तर विकासशील एवं महा महिमामय हैं, उन भगवान् विष्णु को हम सभी बार-बार नमस्कार करते है ॥ १०-११ ॥

सनत्कुमार ने कहा—हे नारद जी! ब्रह्मादि देवताओं द्वारा स्तुति किये जाने पर भगवान् वासुदेव ने उन्हें दर्शन दिया और कहा कि देवगण आप लोगों का यहाँ पर किस कारण आगमन हुआ है ? देवताओं ने हरि से कहा-गयासुर से रक्षा कीजिये । हरि ने कहा-ब्रह्मादि देवगण आप लोग जाइये । मैं उस दैत्य के पास आ रहा हूं। ऐसा कहकर केशव गरुड़ पर सवार होकर वरदान देने की कामना से गयासुर के पास गमनोद्यत हुए और अन्य देवगण भी अपने-अपने उत्तम वाहनों पर सवार होकर उसी स्थान को गये । वासुदेव प्रभृति देवगणों ने जाकर गयासुर से कहा-हे गयासुर! हे देव! तुम किस लिए तपस्या कर रहे हो ? तुम्हारी इस घोर तपस्या से हम सब सन्तुष्ट हैं और तुम्हें वर देने के लिए यहाँ आये हुए हैं, मन चाहा वरदान माँग लो ॥ १२-१५ ॥

गयासुर बोला—ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर प्रभृति देवगण! यदि आप लोग सचमुच हमारे ऊपर सन्तुष्ट हैं तो

न्यासिभ्यश्चापि कर्मिभ्यो धर्मिभ्यिश्च तथा पुनः। ज्ञातिभ्योऽतिपवित्रेभ्यः पवित्रः स्यां सदा सुराः ॥१८॥
पवित्रमस्तु तं देवा दैत्यमुक्त्वा ययुर्दिवम् । दैत्यं दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च सर्वे हरिपुरं ययुः ॥ १९ ॥
शून्यं लोकत्रयं जातं शून्या यमपुरी ह्यभूत् । यम इंद्रादिभिः सार्धं ब्रह्मलोकं ततोऽगतम् ॥ २० ॥
ब्रह्माणमूचिरे देवा गयासुरविलोपिताः । त्वया दत्तोऽधिकारो वै गृहाण त्वं पितामह ॥ २१ ॥
ब्रह्माऽब्रवीत्ततो देवान्व्रजामो विष्णुमव्ययम् । ब्रह्मादयोऽब्रुवन्विष्णुं त्वया दत्तवरेऽसुरे ॥ २२ ॥
तदर्शनाद्ययुः स्वर्गं शुन्यं लोकत्रयं ह्यभूत् । देवैरुक्तो वासुदेवो ब्रह्माणं स वचोऽब्रवीत् ॥ २३ ॥
गत्वाऽसुरं प्रार्थयस्व यज्ञार्थं देहि देहकम् । विष्णूक्तः स सुरो ब्रह्मा गत्वाऽपश्यन्महासुरम्॥ २४ ॥
गयासुरोऽब्रवीद्दृष्ट्वा ब्रह्माणं त्रिदशैः सह । संपूज्योत्थाय विधिवत्प्रणतः श्रद्धयाऽन्वितः ॥ २५ ॥

गयासुर उवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः । यदागतोऽतिथिर्ब्रह्मा सर्वं प्राप्तं मयाऽद्य वै ॥ २६ ॥
योगिन्योगाङ्गवित्सर्वलोकस्वामिन्पितर्गुरो । यदर्थमागतो ब्रह्मंस्तत्कार्यं करवाण्यहम् ॥ २७ ॥

मेरी यह कामना है कि मैं सभी देवताओं, द्विजातियों, यज्ञों, तीर्थों एवं पर्वतीय प्रान्तों से भी पवित्र हो जाऊँ। समस्त देवगणों से भी लोग मुझे अति पवित्र मानें। धर्माचारपरायण ऋषियों एवं अविनाशी शिव से भी बढ़कर पवित्र होने की मेरी कामना है; सभी प्रकार के उत्तमोत्तम मन्त्रों, देवी देवताओं एवं सभी प्रकार के योगियों, संन्यासियों, गृहस्थों, धर्मिष्ठों एवं यतियों से भी, जो अतिशय पवित्र जाने जाते हैं मैं सर्वदा बढ़कर पवित्र होऊँ—यही मेरी अभिलाषा है। हे गयासुर ! तुम अपनी इच्छा के अनुरूप ही पवित्रता लाभ करो—ऐसा कहकर देवगण गयासुर को पुनः देखकर एवं पवित्र करने की भावना से स्पर्श कर स्वर्ग को प्रस्थित हुए। गयासुर के इस अद्भुत एवं महान् कार्य से तीनों लोक एवं यमपुरी सूनी हो गयी। तब इन्द्रादि देवताओं को साथ लेकर यमराज ब्रह्मलोक को गये। गयासुर द्वारा अपदस्थ किये गये देवताओं ने कहा-हे पितामह! हम सभी का अधिकार आपकप ही दिया हुआ था, अब उसे आप ही ग्रहण करें ॥ १६-२१ ॥

ब्रह्मा ने देवताओं की ऐसी बातें सुनकर उनसे कहा—चलिये, इस कार्य के लिए हम लोग भगवान् विष्णु के पास चलें जो कभी विचलित होने वाले नहीं है। यहाँ आकर ब्रह्मा प्रभृति देवों ने भगवान् विष्णु से कहा-हे देव आपने गयासुर को जैसा वरदान दे दिया है उसके प्रभाव से प्रतिदिन सभी प्राणी उसका दर्शन करके स्वर्ग को चले जाते हैं। उसका परिणाम यह हुआ है कि तीनों लोक सूना हो गया है। देवताओं के इस संयुक्त निवेदन करने पर भगवान् वासुदेव ने ब्रह्मा जी से कहा-आप जाकर यज्ञ करने के लिए गयासुर से प्रार्थना करें कि वह अपना शरीर दे देवे। विष्णु भगवान् के ऐसा कहने पर देवताओं समेत ब्रह्मा उस महान् असुर गय के पास गये। अन्य देवताओं के साथ ब्रह्मा को आया देखकर गयासुर ने उन सब को विधिपूर्वक प्रणाम किया और परम श्रद्धापूर्वक पूजा आदि करके निवेदन किया ॥ २२-२५ ॥

गयासुर बोला—आज मेरा जन्म सफल हो गया। मेरी तपस्या फलवती हुई, जो स्वयं भगवान् ब्रह्मा अतिथि रूप में यहाँ आए। आज मैं सब कुछ पाकर हे योगिन ! योगवेत्ता ! सभी लोकों के स्वामिन ! गुरुदेव ब्रह्मन्! भगवन् ! आप जिस प्रयोजन से यहाँ पधारे है, उसे मैं पूरा करना चाहता हूँ ॥ २६-२७ ॥

ब्रह्मोवाच

पृथिव्यां यानि तीर्थानि दृष्टानि भ्रमता मया । यज्ञार्थं न तु ते तानि पवित्राणि शरीरतः ॥ २८ ॥
त्वया देहे पवित्रत्वं प्राप्तं विष्णुप्रसादतः । अतः पवित्रं देहं त्वं यज्ञार्थं देहि मेऽसुर ॥ २९ ॥

गयासुर उवाच

धन्योऽहं देवदेवेश यद्देहं प्रार्थ्यते त्वया । पितृवंशः कृतार्थो मे देहे यागं करोषि चेत् ॥ ३० ॥
त्वयैवोत्पादितो देहः पवित्रस्तु त्वया कृतः । सर्वेषामुपकाराय यागोऽवश्यं भवत्विति ॥ ३१ ॥
इत्युक्त्वा सोऽपतद्भूमौ श्वेतकल्पे गयासुरः । नैर्ऋतीं दिशमाश्रित्य तदा कोलाहले गिरौ ॥ ३२ ॥
शिरः कृत्वोत्तरे दैत्यः पादौ कृत्वा तु दक्षिणे । ब्रह्मा सम्भृतसम्भारो मानसानृत्विजोऽसृजत् ॥ ३३ ॥
अग्निशर्माणममृतं शौनकं जाञ्झलिं मृदुम् । कुमुथिं वेदकौण्डिल्यं हारीतं काश्यपं कृपम् ॥ ३४ ॥
गर्गं कौशिकवासिष्ठौ मुनिं भार्गवमव्ययम् । वृद्धं पाराशरं कण्वं माण्डव्यं श्रुतिकेवलम् ॥ ३५ ॥
श्वेतं सुतालं दमनं सुहोत्रं कङ्कमेव च । लौकाक्षिं च महाबाहुं जैगीषव्यं तथैव च ॥ ३६ ॥
दधिपञ्चमुखं विप्रमृषभं कर्कमेव च । कात्यायनं गोभिलं च मुनिमुग्रमहाव्रतम् ॥ ३७ ॥
सुपालकं गौतमं च तथा वेदशिरोव्रतम् । जटामालिनमव्यग्रं चाटुहासं च दारुणम् ॥ ३८ ॥
आत्रेयं चाप्यङ्गिरसमौपमन्युं महाव्रतम् । गोकर्णं च गुहावासं शिखण्डिनमुमाव्रतम् ॥ ३९ ॥
एतानन्यांश्च विप्रेन्द्रान्वेधा लोकपितामहः । परिकल्प्याकरोद्यागं गयासुरशरीरके ॥ ४० ॥

ब्रह्मा ने कहा—हे महाभाग गयासुर! समस्त पृथ्वी पर भ्रमण करके मैंने जिन-जिन तीर्थों को देखा है, वे तुम्हारे शरीर की पवित्रता के कारण यज्ञ के लिए पवित्र नहीं रह सके । भगवान् विष्णु की अनुकम्पा से तुमने अपने शरीर में परम पवित्रता का लाभ किया है । अतः मैं चाहता हूँ कि यज्ञ के लिए तुम अपने पवित्र शरीर का मुझे दान करो ॥ २८-२९ ॥

गयासुर बोला—हे देवदेवेश! आप हमारे शरीर के लिए प्रार्थना कर रहे हैं, यह हमारा धन्य भाग्य है। यदि आप हमारे शरीर में यज्ञ क्रिया सम्पन्न करेंगे तो हमारा पितृ कुल कृतकृत्य हो जायगा । हे देव! इस नश्वर शरीर की रचना आप ही ने की है । आपने इसे इतनी अपूर्व पवित्रता प्रदान की है । सभी जीवधारियों के लाभार्थ होने वाला वह याग अवश्य सम्पन्न होगा । श्वेत कल्प में ऐसी बातें कर गयासुर नैर्ऋत्य दिशा की ओर धराशायी हो गया । उस समय पर्वत प्रान्त में सर्वत्र कोलाहल मच गया । दैत्य ने अपने सिर को उत्तर दिशा में और दोनों पैरों को दक्षिण दिशा में किया । यज्ञ के सभी वादी एवं अन्य शामिल ब्रह्मा ने उक्त यज्ञ को सर्वाङ्गतः पूर्ण करने के लिए मानस पुरोहितों के सृष्टि की ॥ ३०-३३ ॥

उनके नाम थे-अग्निशर्मा, अमृत, शौनक, जाञ्झलि, मृदु, कुमुथि, वेद कौण्डिल्य, हारीत, काश्यप, कृप, गर्ग, कौशिक, वाशिष्ठ, परम तपोनिष्ठा भार्गव, वृद्ध पाराशर, कण्व, माण्डव्य, श्रुति केवल, श्वेत, सुमाल, दमन, सुहोत्र, कङ्क, लोकाक्षि, महाबाहु जैगीषव्य, दधिपञ्चमुख, विप्रवर ऋषय, कर्क, कात्यायन, गोभिल, महाव्रतशाली मुनिवर उग्र, सुपालक, गौतम, वेदशिरोव्रत, अव्यग्रचित्त जयमाली, चाटुहास, दारुण, आत्रेय, अङ्गि, महाव्रतशील औपमन्यु, गोकर्ण, गवास, शिखण्डी, उमाव्रत—इन सब मुनियों के अतिरिक्त अन्यान्य बहुतरे विप्रों के लोक पितामह ब्रह्मा जी ने सृष्टि की और गयासुर के शरीर पर यज्ञ का कार्य किया ॥ ३४-४० ॥

अग्निशर्माऽपि पञ्चाग्नीन्मुखादेतानथासृजत् । दक्षिणाग्निं गार्हपत्याहवनीयौ तपोऽव्ययः ॥ ४१ ॥
सत्यावसथ्यौ देवर्षे येषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः । यज्ञस्य च प्रतिष्ठार्थं विप्रेभ्यो दक्षिणां ददौ ॥ ४२ ॥
हुत्वा पूर्णाहुतिं ब्रह्मा स्नात्वा चावभृथेन तु । यज्ञयूपं सुरैः सार्धं समानीय व्यरोपयत् ॥ ४३ ॥
ब्रह्मणः सरसां श्रेष्ठे सरस्येवाश्रितं शुभम् । चलितश्चकितो ब्रह्मा धर्मराजमभाषत ॥ ४४ ॥
जाता गृहे तव शिला समानीयाविचारयन् । दैत्यस्य शीघ्रं शिरसि तां धारय ममाज्ञया ॥ ४५ ॥
निश्चलार्थं यमः श्रुत्वाऽधारयन्मस्तके शिलाम् । शिलायां धारितायां तु सशिलश्चासुरोऽचलत् ॥४६॥
देवानूचेऽथ रुद्रादीञ्छिलायां निश्चलाः किल । तिष्ठन्तु देवाः सकलास्तथेत्युक्त्वा च ते स्थिताः॥४७॥

ब्रह्मोवाच

देवाः पादैर्लक्षयित्वा तथाऽपि चलितोऽसुरः । ब्रह्माऽथ व्याकुलो विष्णुं गतः क्षीराब्धिशायिनम् ॥
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा नत्वा चादृत्य तं प्रभुम् ॥ ४८ ॥
ब्रह्माण्डस्य पते नाथ नमामि जगतां पतिम् । गतिं कीर्तिमतां नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ४९ ॥
विष्वक्सेनोऽब्रवीद्विष्णुं देव त्वां स्तौति पद्मजः । हरिराहाऽनयत्वं तं विष्णूक्तः स तमानयत् ॥
अजमूचे हरिः कस्मादागतोऽसि वदस्व तत् ॥ ५० ॥

इन न्यून पुरोहित ऋषियों में से अग्निशर्मा ने अपने मुख से दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आवहनीय, सभ्य एवं आवसथ्य नामक पांच अग्नियों का निर्माण किया। हे देवर्षि! इन पांचों अग्नियों में यज्ञों की प्रतिष्ठा हुई। यज्ञ की सम्यक् प्रतिष्ठापना के लिए ब्राह्मणों को दक्षिणाएँ दी गईं। यज्ञ के अन्त में भगवान् ब्रह्मा ने पूर्णाहुति दान के बाद अवभृथ स्नान किया और सभी के साथ यज्ञस्तम्भ को आरोपित किया। उस मंगलमय स्तम्भ को ब्रह्मा के उत्तमोवर में विमज्जित कर उसी में प्रतिष्ठित भी किया। यज्ञभूमि के चलायमान होने पर ब्रह्मा जी कहे धर्मराज से बोले, यमराज, आपका घर एक शिला है, उसे बिना किसी विटक के यहां ब्रू और दैत्य के सिर पर आरंभ करें ऐसी मेरी आज्ञा है।

असुरराज गय के शरीर को निश्चल करने को अत्यावश्यक समझकर यमराज ने शिला लाकर उसके मस्तक पर रखा, किन्तु उस शिला के रखने पर भी असुरराज शिला समेत विचलित हो गया। तब ब्रह्मा ने रुद्रादि देवताओं से कहा कि आप लोग इस शिला को निश्चल करने के लिए इस पर अवस्थित हो जायें। देवगण 'बहुत अच्छा' कहकर उसी शिला पर अवस्थित हो गये। देवताओं के पैरों से आक्रान्त होने पर भी वह महाअसुर चंचल ही बना रहा। तब व्याकुल होकर ब्रह्मा क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु के पास गये और वहाँ विनम्रभाव से आदरपूर्वक प्रभु की इस प्रकार प्रार्थना की ॥ ४१-४८ ॥

ब्रह्मा ने कहा—हे निखिल ब्रह्माण्ड के स्वामिन्! जगदीश्वर आपको हमारा नमस्कार है, आप मनुष्यों को यश देनेवाले, उनकी भुक्ति एवं मुक्ति के प्रदाता आप ही हैं। ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर विष्वक्सेन ने भगवान् विष्णु के समीप जाकर कहा, देव! पद्म सम्भव भगवान् आपकी स्तुति कर रहे हैं। हरि ने कहा जाओ, उन्हें लिवा लाओ। भगवान् विष्णु के आदेशानुसार विष्वक्सेन ने ब्रह्मा को भगवान् के सम्मुख उपस्थित किया। हरि ने अजन्मा ब्रह्मा से कहा, देव किस कारणवश आपका यहाँ पदार्पण हुआ है, बताइये ॥ ४९-५० ॥

ब्रह्मोवाच

देवदेव कृते यागे प्रचचाल गयासुरः । शिलायां देवरूपिण्यां न्यस्तायां तस्य मस्तके ॥ ५१ ॥
रुद्रादिषु च देवेषु संस्थितेष्वसुरोऽचलत् । इदानीं निश्चलार्थं हि प्रसादं कुरु माधव ॥ ५२ ॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ह्याकृष्य स्वशरीरतः । मूर्तिं ददौ निश्चलार्थं ब्रह्मणे भगवान्हरिः ॥ ५३ ॥
अनीय मूर्तिं ब्रह्मापि शिलायां समधारयत् । तथाऽपि चलितं वीक्ष्य पुनर्देवमथाह्वयत् ॥ ५४ ॥
आगत्य विष्णुः क्षीराब्धेः शिलायां संस्थितोऽभवत् । जनार्दनाभिधानेन पुण्डरीकेतिनामतः ॥
शिलायां निश्चलार्थं हि स्वयमादिगदाधरः ॥ ५५ ॥
निश्चलार्थ पञ्चधासीच्छिलायां प्रपितामहः। पितामहोऽथ फल्वीशः केदारः कनकेश्वरः ॥ ५६ ॥
ब्रह्मा स्थितः स्वयं तत्र गजरूपी विनायकः। गयादित्यश्चोत्तरार्को दक्षिणार्कस्त्रिधा रविः ॥ ५७ ॥
लक्ष्मीः सीताभिधानेन गौरी च मङ्गलाह्वया । गायत्री चैव सावित्री त्रिसंध्या च सरस्वती ॥ ५८ ॥
इन्द्रो बृहस्पतिः पूषा वसवोऽष्टौ महाबलाः । विश्वेदेवाश्चाश्विनेयौ मारुतो विश्वनायकः ॥
सयक्षोरगगन्धर्वास्तस्थुर्देवाः स्वशक्तिभिः ॥ ५९ ॥
आद्यया गदया चासौ यस्माद्दैत्यः स्थिरीकृतः । स्थित इत्येव हरिणा तस्मादादिगदाधरः ॥ ६० ॥

ब्रह्मा ने कहा-भगवन्! आपके निर्देशानुसार यज्ञ सम्पन्न तो हो गया पर गयासुर अभी तक चञ्चल बना हुआ है। हम सबों ने उसके मस्तक पर यद्यपि देवरूपिणी शिला लाकर रखी है, फिर भी वह चलायमान है। यही नहीं, रुद्र प्रवृत्ति देवगणों के पैरों से आक्रान्त होने पर भी वह महान् असुर निश्चल नहीं हुआ। माधव। अब वह जिस प्रकार निश्चल हो, आप उसके लिए कृपा करें। ब्रह्मा की आर्त वाणी सुनकर भगवान् हरि ने अपने शरीर से खींचकर एक मूर्ति ब्रह्मा को गयासुर के शरीर को निश्चल करने के लिए दिया। ब्रह्मा ने उक्त मूर्ति को लाकर गयासुर के मस्तक पर स्थापित शिला के ऊपर स्थापित किया। किन्तु उस पर भी जब शिला को चलायमान देखा तो पुनः हरि का आवाहन किया। ब्रह्मा के आवाहन करने पर भगवान् क्षीरसागर से आकर शिला के ऊपर स्वयमेव अवस्थित हुए ॥ ५१-५५ ॥

स्वयं भगवान् जनार्दन पुण्डरीकाक्ष ने गदा धारणकर उक्त शिला को निश्चल करने के लिए उस पर अपना अवस्थान किया। उसी शिला को अधिकाधिक निश्चल करने के लिए प्रपितामह ने अपने को पाँच भागों में विभक्त कर अवस्थान किया। वे पाँचों वहाँ प्रपितामह, पितामह, फल्वीश, केदार और कनकेश्वर के नाम से विख्यात थे। उसी शिला पर गज रूपधारी विनायक भी स्थित हुए।

सूर्य गयादित्य, उत्तरार्क और दक्षिणार्क इन तीन नामों से अवस्थित हुए। लक्ष्मी सीता के नाम से तथा गौरी मङ्गला के नाम से उस शिलाखण्ड पर अवस्थित हुई। सरस्वती गायत्री, सावित्री और त्रिसन्ध्या इन तीनों स्वरूपों में स्थित हुईं। इनके अतिरिक्त इन्द्र, बृहस्पति, पूषा, महाबलशाली आठों वसुगण, विश्वेदेवगण, दोनों अश्विनी कुमार, विश्व नामक मारुत, यक्ष, गन्धर्व, उरगादिकों के साथ अपनी-अपनी शक्तियों समेत उस शिलाखण्ड पर विराजमान हुए ॥ ५६-५९ ॥

यतः भगवान् हरि की आदि गदा से वह असुरराज गय स्थिर किया गया था, अतः भगवान् आदि गदाधर

ऊचे गयासुरो देवान्किमर्थं वञ्चितो ह्यहम् । यज्ञार्थं ब्रह्मणे दत्तं शरीरममलं मया ॥
विष्णोर्वचनमात्रेण किं न स्यां निश्चलो ह्यहम् ॥ ६१ ॥
यत्सुरैः पीडितोऽत्यर्थं गदया हरिणा तथा । पीडितो यद्यहं देवाः प्रसन्नाः सन्तु सर्वदा ॥ ६२ ॥
गदाधरादयस्तुष्टाः प्रोचुः सार्धं गयासुरम् । वरं ब्रूहि प्रसन्नाः स्मो देवानूचे गयासुरः ॥ ६३ ॥
यावत्पृथ्वी पर्वताश्च यावच्चन्द्रार्कतारकाः । तावच्छिलायां तिष्ठन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
अन्ये च सकला देवा मन्नाम्ना क्षेत्रमस्तु वै ॥ ६४ ॥
पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः । तन्मध्ये सर्वतीर्थानि प्रयच्छन्तु हितं नृणाम् ॥ ६५ ॥
स्नानादितर्पणं कृत्वा पिण्डदानात्फलाधिकम् । महात्मा वै सहस्रञ्च कुलानां चोद्धरेन्नरः ॥ ६६ ॥
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण यूयं तिष्ठत सर्वदा । गदाधरः स्वयं लोकाद्भूयात्सर्वाघनाशनात् ॥ ६७ ॥
श्राद्धं सपिण्डकं येषां ब्रह्मलोकं प्रयान्तु ते । ब्रह्महत्यादिकं पापं विनश्यतु च सेविनाम् ॥ ६८ ॥
नैमिषं पुष्करं गङ्गा प्रयागश्चाविमुक्तिकम् । एतान्यन्यानि तीर्थानि दिवि भुव्यन्तरिक्षतः ॥
समायान्तु सदा नृणां प्रयच्छन्तु हितं सुराः ॥ ६९ ॥
किं बहूक्त्या सुरगणा युष्मास्वेकाऽपि देवता । चेन्न तिष्ठेदहं चापि समयः प्रतिपाल्यताम् ॥ ७० ॥

के नाम से विख्यात हुए । उक्त अवसर पर गयासुर ने उपस्थित देवगणों से कहा, सुरवृन्द । आप लोगों ने किस कारण से हमें वंचित किया, मैंने यज्ञ के लिए अपने शरीर को ब्रह्मा को समर्पित किया था । क्या मैं भगवान् विष्णु के वचन मात्र से निश्चल न हो जाता ? देवताओं तथा भगवान् विष्णु की गदा द्वारा में पीड़ित हो चुका हूँ । आप देवगण सर्वदा प्रसन्न रहें ॥ ६०-६२ ॥

समस्त देवताओं के साथ गदाधारी महान् देवताओं को गयासुर की इन बातों से बड़ी प्रसन्नता हुई, वे बोले, गयासुर । हम लोग तुमसे बहुत प्रसन्न हैं, जो वरदान चाहो, माँग लो । गयासुर ने देवताओं से कहा-देवगण । जब तक पृथ्वी का अस्तित्व है, जब तक पर्वतगण, चन्द्रमा, तारागण विद्यमान रहें, तब तक इस शिला पर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर का निवास बना रहे, अन्यान्य समस्त देवगण भी बने रहें, इस क्षेत्र की प्रतिष्ठा मेरे नाम से हो गयाक्षेत्र की मर्यादा पाँच कोस की तथा गया सिर की मर्यादा एक कोस की है । इन दोनों के मध्य भाग में मानय हितकारी समस्त तीर्थों का निवास हो ऐसा आप लोग वरदान करें । इस बीच में स्नानादिकर तर्पण एवं पिण्डदान से महान फल की प्राप्ति हो, इस महान् प्रभावशाली क्षेत्र में पिण्डदानादि सम्पन्न करनेवाला मनुष्य अपने सहलों कुलों का उद्धार करे ॥ ६३- ६६ ॥

आप लोग व्यक्त एवं अव्यक्त शरीर धारणकर इस शिला पर सर्वदा विद्यमान रहें । भगवान् गदाधर यहाँ स्थित रहकर समस्त लोक के पाप पुञ्जों का विनाश करें । जो लोग यहाँ सपिण्ड श्राद्ध दान करें वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करें । इस पवित्र क्षेत्र के सेवन करनेवालों के ब्रह्महत्या आदि घोर पाप विनष्ट हो जायें । नैमिष, पुष्कर, गङ्गा, प्रयाग, अविमुक्त प्रभृति जितने उत्तमोत्तम तीर्थ हैं, तथा उनके अतिरिक्त जो अन्यान्य तीर्थ स्वर्ग, अन्तरिक्ष एवं भूमण्डल में हैं, वे सभी हमारे इस पवित्र तीर्थ में आकर मानव मात्र का कल्याण सम्पादित करें-ऐसा वरदान आप लोग हमें दीजिये । देवगण बहुत अधिक मैं क्या कहूँ । आप लोगों में से यदि एक भी देवता इस शिला पर न

गयासुरवचः श्रुत्वा प्रोचुर्विष्ण्वादयः सुराः । त्वया यत्प्रार्थितं सर्वं तद्भविष्यत्यसंशयम् ॥ ७१ ॥
अस्मत्पादानर्चयित्वा यास्यन्ति परमां गतिम् । देवैर्दत्तवरो दैत्यो हर्षितो निश्चलोऽभवत् ॥ ७२ ॥
स्थितेषु चैव देवेषु ब्राह्मणेभ्यो ददावजः । ग्रामांश्च पञ्चपञ्चाशत्पञ्चक्रोशीं गयां तथा ॥
गृहान्कृत्वा ददौ दिव्यान्सर्वोपस्करसंयुतान् ॥ ७३ ॥
कामधेनुं कल्पवृक्षं पारिजातादिकांस्तरून् । महानदीं क्षीरवहां घृतकुल्यास्तथैव च ॥ ७४ ॥
मधुश्रवां मधुकुल्यां दध्याद्याढ्यसरांसि च । सुवर्णदीर्घिकां चैव बहुनन्नादिपर्वतान् ॥ ७५ ॥
भक्ष्यभोज्यफलादींश्च सर्वं ब्रह्मा सृजन्ददौ । न याचयध्वं विप्रेन्द्रा अन्यानुक्त्वा ददावजः ॥ ७६ ॥
दत्त्वा ययौ ब्रह्मलोकं नत्वां ह्यादिगदाधरम् । धर्मारण्ये तत्र धर्म याजयित्वा ययाचिरे ॥ ७७ ॥
धर्मयागे च लोभाद्वै प्रतिगृह्य धनादिकम् । ततो ब्रह्मा समागत्य ब्राह्मणांस्ताञ्छशाप ह ॥ ७८ ॥
कृतवन्तो यतो लोभं मद्दत्तेष्वखिलेष्वपि । तस्मादृणाधिका यूयं भविष्यन्ति सदा द्विजाः ॥ ७९ ॥
युष्माकं स्याद्वारिवहा नदी पाषाणपर्वताः । नद्यादयो वारिवहा मृन्मयाश्च तथा गृहाः ॥ ८० ॥
कामधेनुः कल्पवृक्षो मल्लोकमुपतिष्ठताम् । एवं शप्ता ब्रह्मणा ते प्रार्थयन्तोऽब्रुवन्नजम् ॥ ८१ ॥
त्वया यद्दत्तमखिलं तत्सर्वं शापतो गतम् । जीवनार्थं प्रसादं नो भगवान्कर्तुमर्हसि ॥ ८२ ॥

रहेंगे तो मैं भी स्थित न रह सकूँगा यही प्रतिज्ञा है, इसका प्रतिपालन करते जाइयेगा ॥ ६७-७० ॥

गयासुर के वचन सुनकर विष्णु प्रभृति देवताओं ने कहा गयासुर । तुमने जो कुछ कहा है, वह सब सम्पन्न होगा इसमें सन्देह नहीं है । इस पवित्र तीर्थ में आनेवाले मनुष्यगण हम लोगों की पूजा करके परम गति प्राप्त करेंगे । देवगणों के इस प्रकार वरदान देने पर दैत्य परम हर्षित होकर निश्चलता को प्राप्त हुआ । उक्त शिला पर उपर्युक्त देवगणों के अवस्थित हो जाने पर ब्रह्मा ने यज्ञकर्ता ब्राह्मणों को पचपन ग्राम प्रदान किये । पचक्रोशी गया पुरी को भी उन्हें उत्सर्ग कर दिया । गृहस्थी के सभी साधनों एवं सामग्रियों से समन्वित दिव्य गृहों का निर्माणकर उन्हें समर्पित किया । इसके अतिरिक्त कामधेनु गौ कल्पवृक्ष, पारिजात प्रभृति देवतरु, क्षीरवाहिनी महानदी, घृतपूर्ण छोटी बावलियाँ, मधुस्राविणी मनोहर नदी, मधुपूरित छोटी-छोटी गड़हियाँ, दिव्यगुण सम्पन्न घृतों से परिपूर्ण सरोवर, सुवर्णनिर्मित बावली, अनेक अन्नादिकों से बने हुए पर्वत, विविध प्रकार के भक्ष्य, भोज्य फलादि सामग्री भी उन्हें निर्माण करके समर्पित किया । दान करते समय अयोनिज ब्रह्मा जी ने ब्राह्मणों से कहा कि विप्रेन्द्रवृन्द! आप लोग अब किसी दूसरे से याचना न करेंगे ॥ ७१-७६ ॥

इस प्रकार ब्राह्मणों को दान देने के उपरान्त भगवान् गदाधर को नमस्कारकर ब्रह्मा अपने लोक को चले गये । धर्मारण्य में धर्म ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया, उस यज्ञ में उन्हीं गयापुरीस्थ ब्राह्मणों ने लोभवश धनादि की याचना की और अंगीकार किया । उनके इन निषिद्ध कर्म से अप्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि तुम लोगों ने मेरे निखिल दिव्य सम्पत्ति के दान देने पर भी यतः लोभ नहीं छोड़ा अतः सर्वदा अधिक ऋणग्रस्त बने रहोगे । वे नदियाँ, मधु एवं क्षीरादि पदार्थों की वहन करनेवाली थीं, अब केवल जलवाहिनी रहेंगी, पर्वत पाषाणमय हो जायेंगे । वे दिव्य सामग्रियोंवाले सुन्दर गृह अब मृत्तिकामय हो जायेंगे ॥ ७७-८० ॥

कामधेनु एवं कल्पवृक्षादि हमारे लोक में चले जायेंगे । अजन्मा ब्रह्मा जी से इस प्रकार अभिशप्त होने

तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणान्ब्रह्मा प्रोवाचेदं दयान्वितः । तीर्थोपजीविका यूयमाचन्द्रार्कं भविष्यथ ॥ ८३ ॥
लोकाः पुण्या गयायां ये श्राद्धिनो ब्रह्मलोकगाः । युष्मान्ये पूजयिष्यन्ति तैरहं पूजितः सदा ॥ ८४ ॥
आक्रान्तं दैत्यजठरं धर्मेण विरजाद्रिणा । नाभिकूपसमीपे तु देवी या विरजा स्थिता ॥ ८५ ॥
तत्र पिण्डादिकं कृत्वा त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् । महेन्द्रगिरिणा तस्य कृतौ पादौ सुनिश्चलौ ॥
तत्र पिण्डादिकृत्सप्त कुलान्युद्धरते नरः ॥ ८६ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

* * *

पर ब्राह्मणों ने निवेदन किया, देव! आपने कृपापूर्वक जो वस्तुएँ हम लोगों को समर्पित की थीं, वे तुम्हारे शाप के कारण नाश को प्राप्त हो गयीं। भगवन्! हम लोगों की जीविका किस प्रकार चलेगी इसके लिए तो कृपा करें। ब्राह्मणों के इस आत निवेदन पर भगवान् ब्रह्मा की दया आ गयी। वे बोले, अच्छा अब से जब तक चन्द्रमा, सूर्य एवं ताराओं का अस्तित्व रहेगा तब तक तुम लोग तीथों द्वारा जीविका निर्वाह करोगे। जो पुण्यकर्मी लोग इस गयापुरी में आकर कसम्म करेंगे वे ब्रह्मलोकगामी होंगे। जो तुम लोगों की पूजा अर्चा करेंगे, वे मानो हमारी ही पूजा अर्चा करेंगे, तुम्हारी पूजा से हम सर्वदा सन्तुष्ट होंगे। इस गयापुरी में पवित्र विरज नामक गिरि से दैत्य का उदर भाग आक्रान्त है, इसके साथ कूप के समीप विरजा नामक देवी का निवास है, उस पवित्र स्थान पर पिण्डदानादि करके मनुष्य अपने इनको कुलों का उद्धार करता है, महेन्द्र नामक गिरि ने दैत्य के दोनों चरणों को सुनिश्चल किया है, उस पवित्र स्थान पर पिण्डदानादि करनेवाला मनुष्य अपने सात कुलों का उद्धार करता है ॥ ८१-८६ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपसंहारपाद में गयामाहात्म्य नामक चौवालीसवाँ अध्याय (एक सौ छठवें अध्याय) की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरञ्जन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४४ ॥

* * *

अथ पञ्चचत्त्वारिंशोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

नारद उवाच

कथं शिला समुत्पन्ना यथाक्रान्तो गयासुरः । किं रूपं किं च माहात्म्यं तस्या किं वद नाम च ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

आसीद्धर्मो महातेजाः सर्वविज्ञानपारगः । विश्वरूपा च तत्पत्नी भर्तृव्रतपरायणा ॥ २ ॥

तस्यां धर्मात्समुत्पन्ना कन्या धर्मव्रता सती । सर्वलक्षणसंपन्ना लक्ष्मीरिव गुणाधिका ॥ ३ ॥

तस्यां ये तु गुणा ह्यासंस्ते तिष्ठन्ति जगत्त्रये । धर्मो धर्मव्रतायास्तु त्रिषु लोकेषु मार्गयन् ॥ ४ ॥

नानुरूपं वरं लेभे धर्मोऽथ वरसिद्धये । तपः कुरु वरार्थं त्वं तथेत्युक्त्वा वनं ययौ ॥ ५ ॥

कन्या सा च तपस्तेपे सर्वेषां दुष्करं च यत् । वायुभक्षा श्वेतकल्पे युगानामयुतं पुरा ॥ ६ ॥

ब्रह्मणो मानसः पुत्रो मरीचिर्नाम विश्रुतः । पर्यटन्पृथिवीं सर्वा कन्यारत्नं ददर्श सः ॥ ७ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

(एक सौ सातवाँ अध्याय)

गया माहात्म्य

नारद ने कहा—ब्रह्मन् । वह प्रसिद्ध शिला किस प्रकार उत्पन्न हुई जिससे गयासुर का शरीर दबाया गया था । उसका स्वरूप एवं माहात्म्य क्या है ? उसका नाम क्या है? बताइये ॥ १ ॥

सनत्कुमार ने कहा—प्राचीनकाल में महान तेजस्वी, समस्त विज्ञानतत्त्ववेत्ता धर्म नामक महानुभाव हुए । उनकी पतिव्रतपरायणा विश्वरूपा नामक पत्नी थी । उस पत्नी में धर्म के संयोग से धर्मव्रता नामक एक सती कन्या उत्पन्न हुई जो स्वरूप एवं यौवन से सम्पन्न एवं लक्ष्मी के समान परम गुणवती थी । उसमें जितने गुण उपलब्ध थे ये तीनों जगत् के प्राणियों में उपलब्ध थे । धर्मव्रता के लिए धर्म ने तीनों लोकों में अनुरूप घर वा किन्तु कहीं भी कोई उपयुक्त पात्र नहीं दिखायी पड़ा । तब धर्म ने वरदान से सिद्धि प्राप्त करने के लिए पुत्री से कहा-बेटी, अनुरूप पति--प्राप्ति के लिए तपस्या करो । कन्या ने पिता की आज्ञा स्वीकार कर वन को गमन किया और वहाँ जाकर परम कठोर तपस्या प्रारम्भ किया ॥ २-५ ॥

श्वेतकल्प में धर्मव्रता ने उक्त तपस्या के सठ में दस सहस्र युगों तक केवल वायु का आहार किया । ब्रह्मा के मानस पुत्र मरीचि परम विख्यात ऋषि थे । वे पृथ्वी का पर्यटन करते हुए वहाँ आये और उक्त कन्यारत्न का

रूपयौवनसंपन्नां परमे तपसि स्थिताम् । पप्रच्छाथ मरीचिस्तां का त्वं कस्यापि तद्वद ॥ ८ ॥
रूपेणानेन मां भीरू विमोहयसि सुव्रते । ब्रह्मात्मजोऽहं विख्यातो मरीचिर्वेदपारगः ॥ ९ ॥
मरीचेर्वचनं श्रुत्वा कन्या प्रोवाच तं मुनिम् । अहं धर्मव्रता नाम धर्मपुत्री तपोन्विता ॥ १० ॥
पतिव्रतार्थं विप्रेन्द्र चरामि परमं तपः । धर्मव्रतां मरीचिस्तामुवाच प्रीतिपूर्वकम् ॥ ११ ॥
पतिव्रता दर्शनान्मे भविष्यसि शुभव्रते । पतिव्रतेक्षया पृथ्वीं विचरामि ह्यहर्निशम् ॥ १२ ॥
त्वं चेत्पतिव्रता जाता भजे त्वां भज मां वरम् । लोके न त्वादृशी कन्या मम तुल्यो न ते वरः॥ १३ ॥
धर्मव्रते धर्मपत्नी तस्मात्त्वं भव मेऽधुना । धर्मव्रता मुनिं प्राह धर्मं याचय सुव्रत ॥ १४ ॥
तच्छ्रुत्वा धर्ममगमन्मुनिं धर्मो ददर्श ह । तेजःपुञ्जं वरं नत्वा आसनार्घ्यादिनार्च्चयत् ॥ १५ ॥
किमर्थमागतः पृष्टो मरीचिर्धर्ममब्रवीत् । कन्यार्थं भ्रमता पृथ्वीं दृष्टा ते कन्यका वरा ॥
मह्यं कन्यां च तां देहि श्रेयस्तव भविष्यति ॥ १६ ॥
अर्घ्यादिना समभ्यर्च्य धर्मः प्रोचे तथेति तम् । धर्मव्रतां समानीय दत्तवांस्तां मरीचये ॥ १७ ॥
ब्राह्मणाय विवाहेन धनरत्नादिकं ददौ । वरं च दत्तवांस्तस्मै तद्वाक्यं यत्तथा कृतम् ॥
अग्निहोत्रेण सहितां स्वाश्रमं तां द्विजोऽनयत् ॥ १८ ॥

दर्शन किया । उन्होंने देखा कि वह परम रूपवती एवं पूर्ण यौवना होते हुए भी घोर तपस्या में लीन है । ऋषिवर मरीचि ने कन्या से जिज्ञासा प्रकट की कि हे कल्याणि । तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? ॥ ६-८ ॥

सद्व्रतपरायणे । तुम अपनी मोहक रूपराशि से हमारे चित्त को मुग्ध कर रही हो । भीरु ! तुम डरो मत । मैं ब्रह्मा का पुत्र हूँ, समस्त वेदों का सम्यक् अध्ययन एवं परिशीलन कर चुका हूँ, सारे संसार में लोग मुझे मरीचि नाम से जानते हैं । मरीचि के वचन को सुनकर कन्या ने कहा, मुनिवर । मैं धर्म की पुत्री हूँ, मेरा नाम धर्मव्रता है । अनुरूप पति एवं पतिव्रतधर्म की प्राप्ति के लिए मैं यह कठोर तपस्या कर रही हूँ । धर्मव्रता की बातें सुनकर मुनिवर मरीचि ने प्रेमपूर्वक कहा, शुभवते । मेरे दर्शन मात्र से तुम पतिव्रता होओगी । केवल पतिव्रता नारियों के देखने की इच्छा ही से मैं रात-दिन पृथ्वी का पर्यटन करता हूँ ॥ ९-१२ ॥

यदि तुम पतिव्रता हो तो मुझे पतिरूप में अङ्गीकार करो, मैं तुम्हें पत्नीरूप में स्वीकार करता हूँ । इस लोक में न तो तुम्हारे समान कोई कन्या है और न मेरे समान कोई वर है । धर्मव्रते ! अब तुम हमारी धर्मपत्नी हो जाओ । मुनिवर मरीचि की बातें सुनकर धर्मव्रता ने कहा, सुव्रत ! आप इस विषय में हमारे पिता से याचना करें । धर्मव्रता के कथनानुसार मरीचि धर्म के पास गये । धर्म ने परम तेजस्वी मरीचि मुनि को देखकर आसन एवं अर्घ्यादि समर्पित कर मरीचि की पूजा की और पूछा कि मुनिवर्य ! आपका शुभागमन किस प्रयोजन द्वारा यहाँ हुआ? मरीचि बोले, महानुभाव योग्य पत्नी की कामना से मैं समस्त भूमण्डल पर विचरण कर रहा था कि तुम्हारी परम सुन्दरी एवं धर्मशील कन्या धर्मव्रता दृष्टिगत हुई, तुम अपनी कन्या मुझे दे दो । तुम्हारा परम कल्याण होगा ॥१३-१६॥

मुनि की बातें सुन धर्म ने अर्घ्यादि से पुनः पूजन किया और उनके प्रस्ताव का अनुमोदन किया । वन प्रान्त से धर्मव्रता को अपने निवास पर लाकर विधिपूर्वक विवाह कर्म सम्पन्न करके मरीचि को समर्पित किया । उस मङ्गल कार्य के उपलक्ष्य में ब्राह्मणों को धन रत्नादि भी समर्पित किये । मरीचि के कथनानुसार सब कार्य धर्म ने

रेमे मुनिस्तया सार्धं यथा विष्णुः श्रिया सह । पार्वत्या च यथा शंभुः सरस्वत्या यथा ह्यजः ॥ १९ ॥
जज्ञे पुत्रशतं तस्यां मरीचेर्विष्णुनोपमम् । मरीचिः फलपुष्पार्थं वनं गत्वा समागतः ॥ २० ॥
श्रान्तः कदाचित्तां पत्नीमुवाचेति पतिव्रताम् । भुक्त्वा तु शयनस्थस्य पादसंवाहनं कुरु ॥ २१ ॥
धर्मव्रता तथेत्युक्त्वा शयनस्थस्य सा मुनेः । पादसंवाहनं चक्रे घृते नाभ्यज्य तत्परा ॥ २२ ॥
निद्रायमाणेऽथ मुनौ ब्रह्मा तं देशमागतः । इत्येष दृष्ट्वा ब्रह्माणं मनसाऽर्चयितुं प्रभुम् ॥ २३ ॥
पादसंवाहनं कुर्यां किं पूज्योऽयं जगद्गुरुः । इत्याकुला समुत्तस्थौ मत्वा सा तं गुरोर्गुरुम् ॥ २४ ॥
अर्घ्यपाद्यादिकं दत्त्वा ब्रह्माणं समपूजयत् । सत्कृतायां तु शय्यायां विश्रममकरोदजः ॥ २५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे भर्ता समुत्तस्थौ च तल्पतः । धर्मव्रतामपश्यन्स विप्रः क्रुद्धः शशाप ताम् ॥ २६ ॥
पादसंवाहनं त्यक्त्वा यस्मादाज्ञां विहाय मे । गतान्यत्र ततः पापाच्छापदग्धा शिला भव ॥ २७ ॥
भर्त्रा धर्मव्रता शप्ता मरीचिं प्राह सा रुषा । शयाने त्वयि संप्राप्ते ब्रह्मा त्वज्जनको गुरुः ॥ २८ ॥
त्वयोत्थाय हि कर्तव्यं स्वगुरोः पूजनं सदा । मया तु धर्मचारिण्या तव कार्ये कृते मुने ॥ २९ ॥

सम्पादित कर दिया, इसके लिए उन्होंने वरदान दिया । तदन्तर मरीचि अपनी नव विवाहिता धर्मपत्नी धर्मव्रता को अग्निहोत्रादि वैवाहिक धार्मिक विधियों का विधिवत् अनुष्ठान कर अपने आश्रम में ले गये और वहाँ उसके साथ इस प्रकार आनन्दोपभोग किया जिस प्रकार भगवान् विष्णु लक्ष्मी के साथ, शम्भु पार्वती के साथ तथा अजन्मा ब्रह्मा सरस्वती के साथ करते हैं । धर्मव्रता के संयोग से मरीचि के भगवान् विष्णु के समान परम तेजस्वी एवं प्रभावशाली सौ पुत्र उत्पन्न हुए । एक बार कभी फलपुष्पादि लाने के लिए मुनिवर वन को गये और वहाँ से लौटकर बहुत थक गये थे, भोजनोपरान्त अपनी पतिव्रता पत्नी धर्मव्रता से उन्होंने कहा कि प्रिये । मैं शय्या पर लेट गया हूँ, मेरा पैर दबा दो धर्मत्रता ने आज्ञा अङ्गीकार कर शय्या पर लेटे हुए मुनिवर मरीचि का पाद संवाहन प्रारम्भ कर दिया । सर्वप्रथम घृत लगाकर वह तन्मयतापूर्वक पैर दबाने लगी, थोड़ी ही देर में जब मुनि को नींद लग गयी, पितामह ब्रह्मा जी उस स्थान पर पधारे ॥ १७-२२ ॥

समुपस्थित ब्रह्मा को देखकर साध्वी धर्मव्रता ने मन में प्रभुवर्य की अर्चना करने का संकल्प किया, किन्तु उसके मन में वितर्क हुआ कि ऐसी अवस्था में जबकि पतिदेव बहुत ही थके हुए हैं, मुझे क्या उचित है, मैं पतिदेव का पाद संवाहन करती रहूँ? या जगत् पूज्य ब्रह्मदेव की पूजा सम्पन्न करूँ? ऐसा विचार मन में उठते न उठते ही वह आकुल चित्त होकर उठ खड़ी हुई कि ब्रह्मा जगद्गुरु हैं, उनकी पूजा परमावश्यक है । वहाँ से उठकर उसने अर्घ्य पाद्यादि समर्पित कर ब्रह्मा की विविधत् पूजा की विधिपूर्वक सत्कार किये जाने पर अज ब्रह्मा जी (एक दूसरी) शय्या पर विश्राम करने लगे ॥ २३-२५ ॥

दुर्भाग्यवश इसी बीच में पतिदेव की आँखें खुल गयीं । वे अपनी शय्या पर से उठ बैठे, धर्मव्रता को देखा कि वह पैर नहीं दबा रही है । उसके इस व्यवहार से विप्रवर मरीचि को महान् क्रोध हुआ, और उन्होंने शाप दे दिया कि मेरी आज्ञा के बिना पैर का दबाना छोड़कर तू अन्यत्र चली गयी अतः इस पाप कर्म के कारण मैं तुझे शाप दे रहा हूँ कि तू शिला हो जा । पति के शाप देने पर धर्मव्रता को भी अमर्ष हुआ, उसने कहा, तुमको निद्रा लग गयी थी, उसी समय तुम्हारे पूज्य पिता जी यहाँ पधारे । तुमको सर्वदा अपने गुरु का उठकर पूजन वन्दनादि करना चाहिए । अतः मैंने धर्म विचारकर तुम्हारे ही कर्तव्य का पालन किया था ॥ २६-२९ ॥

अदोषाहं यतः शप्ता तस्माच्छापं ददामि ते । त्वं च शापं महादेवाद्भर्तः प्राप्यस्यसंशयम् ॥ ३० ॥
व्याकुलं तं पतिं दृष्ट्वा व्याकुलाऽगात्प्रजापतिम् । नत्वा शयानं ब्रह्माणमग्निं प्रज्वाल्य चेन्धनैः ॥ ३१ ॥
गार्हपत्ये स्थिता चक्रे तपः परमदुष्करम् । तथा शप्तो मरीचिश्च तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ३२ ॥
पतिव्रतायास्तपसा मरीचेस्तपसा तथा । इन्द्रादयश्च संतप्ता गत्वास्ते शरणं हरिम् ॥ ३३ ॥
ऊचुः क्षीराम्बुधौ सुप्तं संतप्तास्तपसा हरे । पतिव्रतायाश्च मुनेस्त्रैलोक्यं रक्ष केशव ॥ ३४ ॥
इन्द्रादीनां वचः श्रुत्वा विष्णुर्धर्मव्रतां ययौ । एतस्मिन्नेव काले तु प्रबुद्धो भगवानजः ॥
ऊचुर्धर्मव्रतां देवा अग्निस्थां तां सकेशवाः ॥ ३५ ॥
अग्निमध्ये तपः कर्तुं कस्य शक्तिः पतिव्रते । त्वया कृतं तत्परमं सर्वलोकभयंकरम् ॥ ३६ ॥
वरं वरय धर्मज्ञे अस्मत्तो यदभीप्सितम् । विष्ण्वादीनां वचः श्रुत्वा देवान्धर्मव्रताऽब्रवीत् ॥ ३७ ॥
भर्तृशापमशक्ताऽहं निवर्तयितुमोजसा । दत्तो मरीचिना शापो मह्यं स ह्यपगच्छतु ॥ ३८ ॥
धर्मव्रतावचः श्रुत्वा प्रोचुरेतां सुराः पुनः । धर्मव्रते धर्मपुत्रि शापोऽयं परमर्षिणा ॥ ३९ ॥
दत्तस्ते न निराकर्तुं शक्यो देवद्विजातिभिः । तस्मादन्यं वरं ब्रूहि यतो धर्मस्य संस्थितिः ॥ ४० ॥
भवेद्वै त्रिषु लोकेषु वेदोक्तस्य शुभव्रते । देवानां वचनं श्रुत्वा देवान्धर्मव्रताब्रवीत् ॥ ४१ ॥
भर्तुः शापान्मोचयितुं न शक्ताश्च यदाऽमराः । मह्यं वरं प्रयच्छध्वं एवंविधमनुत्तमम् ॥ ४२ ॥
शिलाऽहं हि भविष्यामि ब्रह्माण्डे पावनी शुभा । नदीनदसरस्तीर्थदेवादिभ्योऽतिपावनी ॥ ४३ ॥
ऋष्यादिभ्यो मुनिभ्यश्च मुख्यदेवेभ्य एव च । त्रैलोक्ये यानि लिङ्गानि व्यक्ताव्यक्तात्मकान्यपि ॥
तानि तिष्ठन्तु मद्देहे तीर्थरूपेण सर्वदा ॥ ४४ ॥

इसमें मैं बिल्कुल निर्दोष हूँ, तुमने तो नाहक मुझे शाप दे दिया है, अतः मैं भी तुम्हें शाप दे रही हूँ, कि तुम्हें महादेव जी शाप देंगे, इसमें कोई संशय बात नहीं की है । अपने पति को शाप के भय से व्याकुल देखकर धर्मव्रता को और भी व्याकुलता हुई, वह प्रजापति ब्रह्मा के पास गयी । उस समय संयोगतः ब्रह्मा जी निद्रा ले रहे थे । उन्हें प्रणामकर इन्धनों द्वारा अग्नि को प्रज्वलित किया और उसी गार्हपत्याग्नि में स्थित होकर परम दारुण तप में लीन हो गयी । उधर अभिशप्त मरीचि भी तपस्या में दत्तचित्त होकर जुट गये ॥ ३०-३२ ॥

उस परम तपस्विनी धर्मव्रता एवं मरीचि की परम कठोर तपस्या से इन्द्र प्रभृति देवगण परम सन्तप्त होकर विष्णु भगवान् की शरण में गये । उस समय भगवन् विष्णु क्षीरसागर में शयन कर रहे थे, उक्त दम्पति की कठोर तपस्या से सन्तप्त देवताओं ने वहाँ जाकर प्रार्थना की कि देव! परम तपस्विनी पतिव्रता धर्मव्रता एवं मुनिवर मरीचि के दारुण तप को देखकर हम लोग बहुत दुःखी हैं, त्रैलोक्य की रक्षा कीजिये ॥ ३३-३४ ॥

इन्द्रादि प्रमुख देवगणों का आर्त्तनिवेदन सुनकर भगवान् विष्णु धर्मव्रता के समीप गये, उधर इसी अवधि में स्वयं भगवान् ब्रह्मा की भी नींद समाप्त हो गयी थी । अग्नि में अवस्थित होकर परम दारुण तपस्या में तत्पर धर्मव्रता को देखकर विष्णु समेत देवगण बोले, पतिव्रते । अग्नि में स्थित होकर तपस्या करने की शक्ति किसमें है? तुमने समस्त संसार को भयभीत कर देनेवाले उस परम दारुण तप का अनुष्ठान किया है, जिसे कोई नहीं कर सकता । धर्म के मर्म को तुम समझनेवाली हो । अपनी इच्छा के अनुरूप वरदान हमसे माँग लो । विष्णु प्रभृति देवताओं का वचन सुनकर धर्मव्रता ने कहा, देववृन्द! पति के शाप का निराकरण मैं अपने स्वाभाविक तेज से नहीं

तीर्थान्यपिं च सर्वाणि नक्षत्रप्रमुखास्तथा । तिष्ठन्तु देवाः सकला देव्यश्च मुनयस्तथा ॥ ४५ ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च लक्षयित्वा पदं मयि । पञ्चाग्नयः कुमाराद्या बहुरूपेण संस्थिताः ॥ ४६ ॥
मूर्तामूर्तस्वरूपेण पदरूपेण देवताः । शिलायां क्रोशमात्रेण मूर्तिरूपाः स्थिता भुवि ॥ ४७ ॥
तां दृष्ट्वा सर्वलोकश्च महापातकनाशिनीम् । पूतो धर्म्माधिकारी च श्राद्धकृद् ब्रह्मलोकभाक् ॥ ४८ ॥
शिलास्थितेषु तीर्थेषु स्नात्वा कृत्वाऽथ तर्पणम् । श्राद्धं सपिण्डकं येषां ब्रह्मलोकं प्रयान्तु ते ॥ ४९ ॥
गदाधरो दृश्यतीर्थं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् । स्थास्यन्ति च मरिष्यन्ति यान्तु ब्रह्मपुरीं नराः ॥
वाराणसी प्रयागश्च पुरुषोत्तमसंज्ञकम् ॥ ५० ॥
गङ्गासागरसंज्ञश्च नित्यं तिष्ठतु फाल्गुनि । गदाधराधिष्ठितं तत्सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥
मुक्तिर्भवेत्पितॄणां च मृतानां श्राद्धतः सदा ॥ ५१ ॥
जरायुजाण्डजा वाऽपि स्वेदजा वाऽपि चोद्भिदः। त्यक्त्वा देहं शिलायां ते यान्तु विष्णुस्वरूपताम्॥५२॥

कर सकती थी, अतः उसी को निराकृत करने के लिए तपस्या कर रही हूँ। पतिदेव मुनिवर मरीचि ने मुझे शाप दे दिया है, वह दूर हो जाय यही मेरी कामना है ॥ ३५-३८ ॥

धर्मव्रता की बातें सुनकर देवताओं ने पुनः कहा; धर्म-पुत्रि धर्मव्रते ! यह शाप परमऋषि मरीचि का दिया हुआ है, देवताओं एवं ब्राह्मणों में इसे निष्फल करने की शक्ति नहीं है । इसलिए किसी अन्य वरदान की प्रार्थना करो, जिससे धर्म की मर्यादा विचलित न हो । शुभवते! वेदों में वर्णित धर्म की जिस प्रकार मर्यादा न बिगड़े उसका विचारकर तीनों लोकों में चाहे परम दुर्लभ क्यों न हो वरदान तुम माँग सकती हो । देवताओं की बातें सुनकर मरीचि की धर्मव्रता पत्नी ने कहा—हे देववृन्द ! यदि आप लोग पति के शाप को निराकृत करने में असमर्थ हैं तो मुझे इस प्रकार का वरदान दीजिये कि मैं निखिल ब्रह्माण्ड में परम पावन शिला रूप में प्रादुर्भूत होऊँ । जितने भी नद, नदी, सरोवर, तीर्थ एवं देवादि हैं, उन सबसे अधिक पवित्रता का मुझमें निवास हो ॥ ३९-४३ ॥

वही नहीं जितने भी ऋषि, मुनि एवं प्रमुख देवगण हैं, उन सबसे भी अधिक पवित्रता मुझमें हो । समस्त त्रैलोक्य में जितने व्यक्ताव्यक्त लिङ्गादि हैं, वे सब तीर्थ रूप धारणकर हमारे शरीर में निवास करें । भूमण्डल के समस्त तीर्थ, नक्षत्रप्रमुख, समस्त देवगण, देवियाँ एवं मुनिगण—सभी निवास करें । शिला पर स्थित उन तीर्थों में स्नान एवं तर्पणकर जो पिण्डादि समेत श्राद्ध कर्म करें वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करें ॥ ४४-४६ ॥

उस शिला पर दृश्यतीर्थ गदाधर सभी तीर्थों में श्रेष्ठ हों, वहाँ श्राद्धकर्म सम्पन्न करने से अनेक पितरों को मुक्ति प्राप्त हो । जरायुज, अण्डज, स्वेदज एवं उद्भिद—सभी प्रकार के जीवनिकाय पवित्र शिला पर प्राण त्यागकर विष्णु की स्वरूपता प्राप्त करें । जिस प्रकार भगवान् विष्णु की पूजा कर देने पर सभी प्रकार यज्ञ पूर्ण हो जाते हैं, उसी प्रकार श्राद्ध, तर्पण एवं स्नान करने से यहाँ अक्षय फल की प्राप्ति हो । मेरे शरीर पर देवेशों के मन्त्रों का जो जाप करें, वे थोड़ी ही समय में सिद्धि प्राप्त करें । अपने समेत पितरों एवं सहस्रों कुलों का वह मनुष्य उद्धार करनेवाला हो । उस पवित्र शिला पर श्राद्धादि सम्पनकर पितरों को प्रसन्न करनेवाला विष्णु लोक को प्राप्त करे । गङ्गा प्रभृति जितनी श्रेष्ठ नदियाँ मनोहर सरोवर, समुद्रादि, पवित्र मानसादि तीर्थ, इन्द्रादि देवगण हों वे श्राद्धकर्ता को मुक्ति प्रदान करने के लिए मेरे शरीर पर निवास करें ॥ ४७-५२ ॥

यथाऽर्चिते हरौ सर्वे यज्ञाः पूर्णा भवन्ति हि । तथा श्राद्धं तर्पणं च स्नानं चाक्षयमस्त्विह ॥ ५३ ॥
मम देहे सुरेशानां ये जपन्ति सुतादिकम् । अचिरेणापि ते सिद्धाः सिद्धिभाजो भवन्तु वै ॥ ५४ ॥
पितॄणां कुलसाहस्रमात्मना सहितं नरः । श्राद्धादिना समुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेद् ध्रुवम् ॥ ५५ ॥
यावत्यो हि सरिच्छ्रेष्ठा गङ्गाद्याश्च ह्रदाः शुभाः। समुद्राद्याः सरोमुख्या मानसाद्याः सुरेश्वराः ॥
नृणां श्राद्धं विदधतो मुक्तये निवसन्तु मे ॥ ५६ ॥
शरीरेण सामायान्तु क्वचिन्नो यान्तु देवताः । एको विष्णुस्त्रिधामूर्तिर्यावत्सङ्कीर्त्यते बुधैः ॥ ५७ ॥
तावच्छिलायां सर्वाणि तीर्थानि सह दैवतैः । सदा तिष्ठन्तु मुनयो गन्धर्वाणां गणाश्च ये ॥ ५८ ॥
सर्वदेवस्वरूपा च नामेयं देवरूपिणी । यावतिष्ठति ब्रह्माण्डं तावत्तिष्ठतु वै शिला ॥
मम देहेऽश्मरूपे च ये जपन्ति तपन्ति च ॥ ५९ ॥
जुहोत्यग्नौ च तेषां वै तदक्षय्योपतिष्ठताम् । अक्षयं तु भवेच्छ्राद्धं जपहोमतपांसि च ॥
शिलापर्वतरूपेण मयि तिष्ठतु सर्वदा ॥ ६० ॥
पतिव्रतावचः श्रुत्वा देवाः प्रोचुः पतिव्रताम् । त्वया यत्प्रार्थितं सर्वं तद्भविष्यत्यसंशयम् ॥ ६१ ॥
गयासुरस्य शिरसि भविष्यसि यदा स्थिरा । तदा पादादिरूपेण स्थास्यामस्त्वयि सुस्थिराः ॥
वरं शिलायै दत्त्वैवं तत्रैवान्तर्दधुः सुराः ॥ ६२ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नाम
पञ्चचत्त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

* * *

देवगण, आप लोग अपने मूर्त रूप से यहाँ बने रहें, कहीं अन्यत्र न जायें । पण्डित लोग तीन स्वरूपों में व्यक्त होनेवाले एकमात्र भगवान् विष्णु का जब तक संकीर्तन करें तब तक शिला पर सभी तीर्थ एवं देवगण निवास करते रहें । मुनियों एवं गन्धर्वों का भी सर्वदा उस पर निवास रहे । जब तक ब्रह्माण्ड का अस्तित्व रहे तब तक इस शिला का अस्तित्व रहे पत्थर रूपी मेरे शरीर पर स्थित होकर जो लोग जप, तपस्या एवं हवनादि करें, वे अक्षय फल प्राप्त करें । इस पर किया गया श्राद्ध, जप, हवन एवं तप सभी अक्षय फलदायी हो । देवगण आप लोग शिलाओं एवं पर्वत शिखरों का स्वरूप धारणकर मेरे शरीर पर सर्वदा स्थित रहे ॥ ५३-५६ ॥

प्रतिपरायण धर्मव्रता के वचनों को सुनकर देवताओं ने कहा, धर्मव्रते । तुम्हारी अभिलाषाएँ पूर्ण होगी इसमें सन्देह मत करना । गयासुर के सिर पर जब तुम स्थिर होगी तब चरणादि स्वरूप से हम लोग तुम्हारे शरीर पर स्थिर होंगे । इस प्रकार धर्मव्रता को वरदान देने के बाद देवगण अन्तर्धान हो गये ॥ ५७-५८ ॥

श्रीवायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपसंहारपाद में गयामाहात्म्य नामक पैंतालीसवें अध्याय (एक सौ सातवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरञ्जन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४५ ॥**

* * *

अथ षट्चत्त्वारिंशोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

सनत्कुमार उवाच

वक्ष्ये शिलाया माहात्म्यं श्रृणु नारद मुक्तिदम् । यस्या गायन्ति देवाश्च माहात्म्यं मुनिपुंगवाः ॥ १ ॥
शिला स्थिता पृथिव्यां सा देवरूपाऽतिपावनी । विचित्राख्यं शिलातीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ २ ॥
तस्याः संस्पर्शनाल्लोकाः सर्वे हरिपुरं ययुः । शून्ये लोकत्रये जाते शून्या यमपुरी ह्यभूत्॥ ३ ॥
यम इन्द्रादिभिर्गत्वा ऊचे ब्रह्माणमद्भुतम् । अधिकारं गृहाणाथ यमदण्डं पितामह ॥ ४ ॥
यममूचे ततो ब्रह्मा स्वगृहे धारयस्व ताम् । ब्रह्मोक्तो धर्मराजस्तु गृहे तां समधारयत् ॥ ५ ॥
यमोऽधिकारं स्वं चक्रे पापिनां शासनादिकम् । एवंविधा गुरुतरा शिला जगति विश्रुता ॥ ६ ॥
यथा ब्रह्मा यथा विष्णुर्यथा देवो महेश्वरः । ब्रह्माण्डे च यथा मेरुस्तथेयं देवरूपिणी ॥ ७ ॥

छियालीसवाँ अध्याय

एक सौ आठवाँ अध्याय

गया माहात्म्य

सनत्कुमार ने कहा—नारद जी अब इसके उपरान्त उक्त शिला का माहात्म्य वर्णन कर रहा हूँ, जिसका गान बड़े-बड़े मुनिगण एवं देवतागण किया करते हैं, जिसके श्रवण करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है, सुनिये। यह परम पवित्र शिला पृथ्वी पर देवस्वरूप से स्थित हुई। वह विचित्र नामक शिला तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात हुई, उसके स्पर्श मात्र करने से सभी लोकों के निवासी विष्णुपुर को प्राप्त हुए। इस प्रकार जब तीनों लोक सुनसान हो गये, यमपुरी भी सुनी हो गयी ॥ १-३ ॥

तब यमराज इन्द्र प्रभृति प्रमुख देवगणों के साथ अद्भुत कर्मशाली भगवान् ब्रह्मा के पास गये और बोले, पितामह, आप यमदण्ड एवं उसके अधिकारों को अब स्वयं ग्रहण कीजिये। ब्रह्मा ने यमराज से कहा कि उस शिला को तुम अपने घर पर स्थापित करो। ब्रह्मा के आदेशानुसार धर्मराज ने उसे अपने घर स्थापित किया। और पापकर्मियों के शासनादि की अपनी व्यवस्था पूर्ववत् परिचालति की। इस प्रकार वह महान् गुरु शिला समस्त संसार में विख्यात हुई जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर का यश समस्त संसार में व्याप्त है, निखिल ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार सुमेरु की महिमा प्रसिद्ध है, उसी प्रकार यह देवस्वरूपिणी शिला भी संसार में अपने माहात्म्य से

गयासुरस्य शिरसि गुरुत्वाद्धारिता यतः । अतः पवित्रयोर्योगः पितृणां मोक्षदायकः ॥ ८ ॥
पवित्रयोर्द्वयोर्योगे हयमेधमजोऽकरोत् । भागार्थमागतं दृष्ट्वा विष्ण्वादीनब्रवीच्छिला ॥ ९ ॥
शिलास्थितिप्रतिज्ञां तु कुर्वन्तु पितृमुक्तये । तथेत्युक्त्वा शिलायां ते देवा विष्ण्वादयः स्थिताः॥ १० ॥
शिलारूपेण मूर्त्या च पदरूपेण देवताः । मूर्तामूर्तस्वरूपेण स्थिताः पूर्वप्रतिज्ञया ॥ ११ ॥
दैत्यस्य मुण्डपृष्ठे तु यस्मात्सा संस्थिता शिला ।तस्मात्स मुण्डपृष्ठाद्रिः पितृणां ब्रह्मलोकदः ॥ १२ ॥
आच्छादितः शिलापादः प्रभासेनाद्रिणा यतः । भासितो भास्करेणेति प्रभासः परिकीर्तितः ॥ १३ ॥
प्रभासं हि विनिर्भिद्य शिलाङ्गुष्ठो विनिर्गतः । अङ्गुष्ठोत्थित ईशोऽपि प्रभासेशः प्रकीर्तितः ॥ १४ ॥
शिलाङ्गुष्ठैकदेशो यः सा च प्रेतशिला स्मृता । पिण्डदानाद्यतस्तस्यां प्रेतत्वान्मुच्यते नरः ॥ १५ ॥
महानदी प्रभासाद्र्योः संगमे स्नानकृन्नरः । रामो देव्या सह स्नातो रामतीर्थं ततः स्मृतम् ॥ १६ ॥
प्रार्थितोऽत्र महानद्या राम स्नातो भवेति च । रामतीर्थं ततो भूत्वा त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ १७ ॥
जन्मान्तरशतं साग्रं यत्कृतं दुष्कृतं मया । तत्सर्वं विलयं यातु रामतीर्थाभिषेचनात् ॥ १८ ॥
मन्त्रेणानेन यः स्नात्वा श्राद्धं कुर्वीत मानवः । रामतीर्थे पिण्डदस्तु विष्णुलोकं प्रयात्यसौ ॥
तथेत्युक्त्वा स्थितो रामः सीतया भरताग्रजः ॥ १९ ॥

विख्यात थी । अपने भारीपन के कारण यह गयासुर के सिर पर स्थापित की गयी थी । इन दोनों परम पवित्र आत्माओं के संयोग पितरों को मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं, उन दोनों परम पुनीत आत्माओं के संयोग-स्थली पर अजन्मा ब्रह्मा ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था । यज्ञ में अपने भागों को प्राप्त करने के लिए समागत विष्णु प्रभृति प्रमुख देवगणों से शिला ने पुनः कहा ॥ ४-९ ॥

कि देववृन्द । इस शिला पर स्थित रहने की प्रतिज्ञा, पितरों की मुक्ति के लिए आप लोग करें, विष्णु प्रभृति देवताओं ने उनके प्रस्ताव का अनुमोदन किया और यहाँ बराबर बने रहे । पूर्व प्रतिज्ञावश देवगण शिलारूप में, मूर्तिरूप में, पाद रूप में, अपने साक्षात्-स्वरूप में तथा प्रच्छन्न रूप में उस शिला पर स्थित रहे । दैत्यों के मुण्ड के पृष्ठ भाग पर यतः वह पवित्र शिला स्थित है, अतः वह स्थान मुण्डपृष्ठाद्रि के नाम से विख्यात है, वह पितरों को ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाला है ।

शिला का चरणप्रान्त प्रभास नामक गिरि से ढका है, सूर्य की किरणों से प्रकाशित होने के कारण वह गिरि प्रभास नाम से विख्यात है, उस प्रभास गिरि का भेदन करके शिला का अङ्गुष्ठ भाग बाहर निकला हुआ है, उक्त उठे हुए शिलाङ्गुष्ठ के ईश प्रभासेश नाम से पुकारे जाते हैं । शिलाङ्गुष्ठ का एक छोर प्रेतशिला के नाम से प्रसिद्ध है । उस प्रेतशिला पर पिण्डादि दान करने से मनुष्यों के पितरगण प्रेत योनि से छुटकारा पा जाते हैं ॥ १०-१५ ॥

महानदी और प्रभास गिरि के संगम स्थल में मनुष्य को स्नान करना चाहिए । उक्त पवित्र स्थल पर रामचन्द्र जी ने अपनी पत्नी जानकी के साथ स्नान किया था, तभी से यह रामतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है । इस पवित्र स्थल पर रामचन्द्र जी से महानदी ने स्वयं प्रार्थना की थी कि श्रीराम जी आप यहाँ स्नान कर लें । इसी कारण से वह पवित्र स्थान रामतीर्थ के नाम से तीनों लोकों में विख्यात है । सैकड़ों जन्म में जो पाप कर्म किये हों वे सब पवित्र रामतीर्थ में अभिषेचन मात्र करने से विनाश को प्राप्त हों । इस मन्त्र का उच्चारण कर रामतीर्थ

राम राम महाबाहो देवानामभयंकर। त्वां नमस्येऽत्र देवेशं मम नश्यतु पातकम् ॥ २० ॥
मन्त्रेणानेन यः स्नात्वा श्राद्धं कुर्यात्सपिण्डकम्। प्रेतत्वात्तस्य पितरो विमुक्ताः पितृतां ययुः ॥ २१ ॥
आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च। पापं नाशय मे देवो मनोवाक्कायकर्मजम् ॥ २२ ॥
नमस्कृत्य प्रभासेशं भासमानं शिवं व्रजेत्। तं च शंभुं नमस्कृत्य कुर्याद्यमबलिं ततः ॥ २३ ॥
रामे वनं गते शैलमागत्य भरतः स्थितः। पितृपिण्डादिकं कृत्वा रामं संस्थाप्य तत्र च ॥ २४ ॥
रामं सीतां लक्ष्मणं च मुनीन्स्थापितवान्प्रभुः। भारतस्याश्रमे पुण्ये नित्यं पुण्यतमैर्वृतम् ॥
मतङ्गस्य पदं तत्र दृश्यते सर्वमानुषैः ॥ २५ ॥
स्थापितं धर्मसर्वस्वं लोकस्यास्य निदर्शनात्। मतङ्गस्य पदे श्राद्धी सर्वांस्तारयते पितॄन् ॥ २६ ॥
रामतीर्थे नरः स्नात्वा रामं सीतां समर्च्य च। रामेश्वरं प्रणम्याथ न देही जायते पुनः ॥ २७ ॥
शिलाया जघनं भूयः समाक्रान्तं नगेन तु। धर्मराजेन संप्रोक्तो न गच्छेति नगः स्मृतः ॥ २८ ॥
यमराजधर्मराजौ निश्चलार्थं व्यवस्थितौ। ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि पितॄणां मुक्तिहेतवे ॥ २९ ॥
द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ। ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि स्यातामेतावहिंसकौ ॥ ३० ॥

में जो मनुष्य स्नान करे तथा वहाँ पिण्डदान करे वह भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करे। महानदी की उक्त प्रार्थना को सुनकर भरत के बड़े भाई श्रीरामचन्द्र जी वहाँ रुक गये थे ॥ १६-१९ ॥

महाबाहु, देवताओं को अभय प्रदान करनेवाले राम, हम तुम्हें बारम्बार नमस्कार करते हैं, देवेश! मेरे पाप कर्मों का नाश हो। इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए जो प्राणी उस रामतीर्थ में स्नानकर, पिण्ड समेत श्राद्ध कर्म सम्पन्न करते हैं उसके पितरगण प्रेतयोनि से छुटकारा पाकर पितरलोक को प्राप्त करते हैं। हे देवेश! आप स्वयमेव जलस्वरूप हैं, चन्द्रसूर्यादि ज्योतिः पदार्थों के पालक आप ही हैं, देव। मेरे मानसिक, वाचिक एवं शारीरिक पापकर्मों का विनाश कीजिये। इस मन्त्र से प्रभासेश को नमस्कार करने के उपरान्त परम ज्योतिर्मय शिव के समीप जाना चाहिए। वहाँ शम्भु को नमस्कारकर यमराज के लिए बलिकर्म करना चाहिए। श्रीरामचन्द्र जी के वन चले जाने पर भरत जी पर्वत पर आकर स्थित हुए थे और वहीं पिता के पिण्डदानादि को सम्पन्नकर श्रीराम सीता, लक्ष्मण एवं अन्यान्य मुनिगणों की मूर्तियों का स्थापन किया था। महात्मा भरत के उस पुनीत आश्रम में सर्वदा पवित्रात्माओं के निवास होते हैं। वहीं पर मतङ्ग का आश्रम भी सभी मनुष्यों को दिखायी पड़ता है ॥२०-२५ ॥

इस लोक में धर्म के निदर्शनार्थ उस परम धार्मिक मङ्गल आश्रम की स्थापना हुई। उस मतङ्ग पद में श्राद्ध करनेवाला प्राणी अपने समस्त पितरों का उद्धार करता है। पुनीत रामतीर्थ में स्नानकर मानव राम और सीता की पूजाकर तथा रामेश्वर को प्रणामकर पुनः शरीर नहीं धारण करता ॥ २७ ॥

उस शिला का जघन प्रान्त पर्वत से आक्रान्त है, धर्मराज ने स्वयं उससे कहा था कि तू मत जा, इसी कारण से उसका नाम नग (न जानेवाला) कहा जाता है। उस स्थान पर यमराज और धर्मराज गयासुर को निश्चल करने के लिए व्यवस्थित हैं, पितरों को मुक्ति प्राप्त हो इस अभिलाषा से मैं उन दोनों को बलि प्रदान करता हूँ। दो श्वान, श्याम और शबल वहाँ पर स्थित हैं जो वैवस्वत के कुलोत्पन्न हैं। उन दोनों को बलि प्रदान करता हूँ, इससे वे अपनी हिंसकवृत्ति छोड़ दें ॥ २८-३० ॥

ऐन्द्रावारुणवायव्ययाम्यनैर्ऋत्यसंस्थिताः । वायसाः प्रतिगृहणन्तु भूयो पिण्डं मया स्थितम् ॥ ३१ ॥
यमोऽसि यमदूतोऽसि वायसोऽसि महाबल । सप्तजन्मकृतं पापं बलिं भुक्त्वा विनाशय ॥ ३२ ॥
वमे वनं गते शैलमागत्य भरतेन हि । पितुः पिण्डादिकं कृत्वा रामेशः स्थापितोऽत्र वै ॥ ३३ ॥
स्नात्वा नत्वा च रामेशं रामसीता समन्वितम् । तत्र श्राद्धं सपिण्डश्च कृत्वा विष्णुपुरं व्रजेत् ॥
पितृभिः सह धर्मात्मा कुलानाश्च शतैः सह ॥ ३४ ॥
शिलाया दक्षिणे हस्ते स्थापितः कुण्ड पर्वतः । तिमिरादित्य ईशानभर्गाविते महेश्वराः ॥ ३५ ॥
वह्निर्द्वौ वरुणौ रुद्राश्चत्वारः पितृमोक्षदाः । भरताश्रममासाद्य तान्नमेत्पूजयेन्नरः ॥ ३६ ॥
पापेभ्यश्चोपपापेभ्यो मुच्यते पितृभिः सह । यत्र कुत्रापि देवर्षे भरतस्याश्रमे नरः ॥
स्नातः श्राद्धादिकं कुर्यात्तत्कल्पेऽपि न हीयते ॥ ३७ ॥
गयायां चाक्षयं श्राद्धं जपहोमतपांसि च । सर्वमानन्त्यमाहुर्वै यद्दत्तं भरताश्रमे ॥ ३८ ॥
चतुर्युगस्वरूपेण चतस्रो रविमूर्तयः । दृष्टाः स्पृष्टाः पूजितास्ताः पितॄणां मुक्तिदायकाः ॥ ३९ ॥
णुक्तिर्वामन इत्येव तारकाख्यो विधिः परः । संसारार्णवतप्तानां नावावेतौ सुरेश्वरौ ॥
तारकं ब्रह्म विश्वेषां मृतानां जीवितामिदम् ॥ ४० ॥

पूर्व पश्चिम, वायव्य, दक्षिण, चैत्य प्रभुति दिशाओं में रहनेवाले काम पृथ्वी पर दिये गये मेरे पिण्ड को अंगीकार करें। शिला के दाहिने हाथ पर कुछ नामक पर्वत की स्थापना हुई है, वहाँ तिमिरादित्य ईशान, धर्म, महेश्वर, अग्नि, दोनों चरण तथा चारों रूद्र स्थापित है जो पितरों को मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। पुनीत भरत के आश्रम में जाकर मनुष्य को उपको पूजा एवं नमस्कार करना चाहिए। पातकों एवं उपपातकों से मानव एवं उसके पितरगण सभी मुक्त हो जाते है। देवर्षि भरत के पुनीत आश्रम में जहाँ कहीं भी स्नानकर मनुष्य श्राद्धादि कर्म सम्मान करे, वे द्धादि कल्पपर्यन्त फल देनेवाले होते हैं। यूँ तो सारी गमासुरी में जप, हवन, तपस्या- सभी अक्षम फलदायी कहे जाते हैं। भरत के पुनीत आश्रम में जो कुछ दान किया जाता है, वह अक्त फलदायी कहा जाता है ॥ ३१-३५ ॥

चारों युगों का स्वरूप धारण कर सूर्य की चार मूर्तियाँ वहाँ प्रतिष्ठित हैं, उनके दर्शन, स्पर्श, पूजन करने से पितरों को मुक्ति की प्राप्ति होती है। मुक्ति और वामन तारक नामक दो वहाँ अन्य मूर्तियाँ है, संसार सागर में सन्तप्त प्राणियों के लिए वे दोनों सुरेश्वर नौका स्वरूप है। सभी एवं प्राणियों के उद्धारक एकमात्र ब्रह्मा जी हैं। जो पुरुषोत्तम त्रिविक्रम वामन देव का दर्शन करता है, वह धर्मात्मा अपने पितरों समेत परम गति को प्राप्त करता है। शिला के बायें चरण पर भी अभ्युधन्तक नामक गिरि प्रतिष्ठित है, उक्त स्थान पर पिण्डदान करनेवाला अपने पितरों को ब्रह्मपुर पहुँचाता है ॥ ३६-३९ ॥

पुनीत नैमिषारण्य के समीप में अन्यान्य देवताओं के साथ ब्रह्मा ने यज्ञ का अनुष्ठान किया था, उसका नाम मुख्यतीर्थ है, उसके चरणों में देवगण का निवास है। मुनिसत्तम नारद जी उस पुनीत तीर्थ के केवल तीन चरण भूमि में मनुष्य के जो कुछ भी अशुभ कर्म होते हैं सभी नष्ट हो जाते हैं। वह पवित्र नैमिषारण्य पुण्य पुरुषों द्वारा सेवित है वहाँ व्यास, शुक, पैल, कण्व, वेधा, शिव, हरि प्रभृति देवगणों का निवास-स्थान है उनके केवल

त्रिविक्रमं च ब्रह्माणं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् । पितृभिः सह धर्मात्मा स याति परमां गतिम् ॥ ४१ ॥
शिलाया वामपादेऽपि तथाऽभ्युद्यन्तको गिरिः। स्थापितः पिण्डदस्तत्र पितृन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ४२ ॥
नैमिषारण्यपार्श्वे तु ईजे ब्रह्मा सुरैः सह । मुख्यसंज्ञं हि तत्तीर्थं देवास्तत्र पदे स्थिताः ॥ ४३ ॥
त्रिषु तेषु पदेष्वेव तीर्थेषु मुनिसत्तम । यत्किंचिदशुभं कर्म तत्प्रणश्यति नारद ॥ ४४ ॥
तन्नैमिषवनं पुण्यं सेवितं पुण्यपूरुषैः । तत्र व्यासः शुकः पैलः कण्वो वेधाः शिवो हरिः ॥ ४५ ॥
तेषां दर्शनमात्रेण मुच्यते पातकैर्नरः । वामहस्ते शिलायास्तु तथा चोद्यन्तको गिरिः ॥ ४६ ॥
स पर्वतः समानीतो ह्यगस्त्येन महात्मना । तत्र ब्रह्मा हरश्चैव तपश्चोग्रं च चक्रतुः ॥ ४७ ॥
तत्रागस्त्यस्य हि वरं कुण्डं त्रैलोक्यदुर्लभम् । यत्र मुन्यष्टकं सिद्धं तपस्तप्त्वा शिवं गतम् ॥
कुण्डे मुन्यष्टकं नत्वा पितृन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ४८ ॥
अगस्त्येनाथ देवर्षे ह्युदयाद्रेर्महात्मना । शिलाया वामहस्तेऽपि स्थापितो गिरिराट् शुभः ॥
वादित्राद्यैर्दिव्यगीतैराढ्यो वादित्रको गिरिः ॥ ४९ ॥
तत्र विद्याधरो नाम गन्धर्वाप्सरसां गणैः । समेतोऽद्यापि गीतानि दिव्यानि सह गीयते ॥ ५० ॥
मोहनश्च सुनीथश्च शैलूजो मोहनोत्तमः । पर्वतो नारदध्यानी सङ्गीती पुष्पदन्तकः ॥
हाहाहूहूप्रभृतयो गांतदानं प्रचक्रिरे ॥ ५१ ॥
तथा चित्ररथो नाम सर्वगन्धर्वसंभृतः । गायति मधुराण्येव गीतान्यद्रौ महोत्सवम् ॥ ५२ ॥
अतः स पर्वतो देवैः सेव्यतेऽद्यापि नित्यशः । धर्मजास्तत्र देवेशो हरो भस्माङ्गरागवान् ॥ ५३ ॥

दर्शन करने से मनुष्य पाप कर्मों से मुक्ति पा जाता है । शिला के बायें हाथ पर उद्यन्तक नामक गिरि प्रतिष्ठित है, महात्मा अगस्त्य ने उस पर्वत को यहाँ लाकर स्थापि किया था । उस पर्वत प्रान्त में भगवान् ब्रह्मा एवं शिव ने उग्र तपस्या की थी । वहाँ अगस्त्य का त्रैलोक्य दुर्लभ परम रमणीय कुण्ड है, जिसमें आठ मुनियों ने परम कठोर तपस्या कर सिद्धि एवं शिव की प्राप्ति की थी । उस कुण्ड में उक्त आठों मुनियों को नमस्कार कर मनुष्य अपने पितरों को ब्रह्मपुर पहुँचाता है ॥ ४०-४५ ॥

देवर्षि नारद जी महात्मा अगस्त्य ने शिला के बायें हाथ पर उदयाचल पर्वत से लाकर इस पर्वत की स्थापना की थी, जो परम कल्याण प्रदाता है, उस पवित्र शैल पर विविध प्रकार के बाओं एवं संगीत की ध्वनि हुआ करती है । यह सर्वप्रथम वादित्रक गिरि के नाम से विख्यात है । उस पुनीत पर्वत शृङ्ग पर विद्याधर, गन्धर्व एवं अप्सराओं के समूह आज भी संयुक्त रूप में दिव्य गीत गाया करते हैं । मोहन, सुनीथ, शैलूज, मोहनोत्तम, पर्वत, नारद, ध्यानी, संगीती, पुष्पदन्तक, हाहा, हूहू प्रभृति गन्धर्वगण वहाँ दिव्य संगीतदान करते हैं ॥ ४६-४८ ॥

सभी गन्धर्वो समेत चित्ररथ भी वहाँ स्थित रहता है । वे सब गन्धर्वगण इस पुनीत पर्वत शिखर पर मनोहर गीत गा-गाकर महान् उत्सव करते हैं । यही कारण है कि यह पुनीत पर्वतराज आज भी देवताओं द्वारा सेवित है, गीतों एवं बाजनों से निनादित इस पवित्र पर्वत शिखर पर देवेश महादेव जी अङ्गों में विभूति लगाये हुए पार्वती के साथ आनन्द का अनुभव करते हैं । इनकी पूजा करने से पितरगण परम गति प्राप्त करते हैं, उन शिव जी का ध्यान वहाँ अवश्यमेव करना चाहिए । इस गया क्षेत्र में परमात्मा गदाधारी अथवा गोपालक भगवान् विराजमान रहते

पार्वत्या सहितो रुद्रः पर्वते गीतनादिते । मोदते पूजितो ध्येयः पितृणां परमां गतिम् ॥ ५४ ॥
गयायां परमात्मा हि गोपतिर्वा गदाधरः । हीयते वैष्णवी माया तथा रुद्रार्चया मुने ॥ ५५ ॥
शिलाया दक्षिणे हस्ते भस्मकूटो गिरिर्धृतः । धर्मराजेन तत्रास्ते अगस्त्यः सह भार्यया ॥ ५६ ॥
अगस्त्यस्य पदे स्नातः पिण्डदो ब्रह्मलोकगः। ब्रह्मणस्तु वरं लेभे माहात्म्यं भुवि दुर्लभम् ॥ ५७ ॥
लोपामुद्रां तथा भार्यां पितृणां परमां गतिम् । तत्रागस्त्येश्वरं दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ ५८ ॥
अगस्त्यं च सभार्यं च पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् । दण्डिनाऽथ तपस्तेपे सीताद्रेर्दक्षिणे गिरौ ॥ ५९ ॥
वटो वटेश्वरस्तत्र स्थितश्च प्रपितामहः । तदग्रे रुक्मिणीकुण्डं पश्चिमे कपिला नदी ॥
कपिलेशो नदीतीरे ह्यमासोमसमागमे ॥ ६० ॥
कपिलायां नरः स्नात्वा कपिलेशं समर्च्य च । कृते श्राद्धे पिण्डदाने पितरो मोक्षमाप्नुयुः ॥ ६१ ॥
तत्राग्निधारा गिरिवरादागतोद्यन्तकादनु । तत्र सारस्वतं कुण्डं सरस्वत्या प्रकल्पितम् ॥ ६२ ॥
शुक्रस्तत्र सुतैः सार्धं सण्डामर्कादिभिः प्रभुः । तत्र तत्र मुनीन्द्राणां पदेषु मुनिसत्तम ॥
श्राद्धपिण्डादिकृत्स्नातः पितॄंस्तारयते नरः ॥ ६३ ॥

हैं। मुने! रुद्र की पूजा करने से मनुष्य वैष्णवी माया से मुक्त हो जाता है। शिला के दाहिने हाथ में भस्मकूट नामक गिरि धारण किया गया है, उस पर अपनी स्त्री समेत महर्षि अगस्त्य तथा धर्मराज विद्यमान हैं ॥ ४९-५३ ॥

अगस्त्य के चरण प्रान्त में स्नानकर पिण्डदान करनेवाला मनुष्य ब्रह्मलोकगामी होता है। पृथ्वी पर में दुर्लभ वरदान को तथा लोपामुद्रा को महर्षि अगस्त्य ने ब्रह्मा जी से यहीं प्राप्त किया था। यह परम पुनीत स्थल पितरों को परमगति देनेवाला है। वहाँ अगस्त्येश्वर का दर्शन करनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। स्त्री समेत महर्षि अगस्त्य की करनेवाला मनुष्य अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है। सीताचल के दाहिने भाग में जो पर्वत है, उस पर दण्डी ने तपस्या की थी। वहाँ वटेश्वर नामक वट वृक्ष है, जिसके नीचे पितामह ब्रह्मा का निवास स्थान है। उसके आगे रुक्मिणीकुण्ड नामक तीर्थ है, पश्चिम में कपिला नामक नदी है। उस नदी के तट पर कपिलेश का स्थान है। सोमवती अमावस्या के संयोग पर कपिला नदी में स्नानकर कपिलेश की विधिवत् पूजाकर पिण्डदान एवं श्राद्धादि करने से पितरगण मोक्ष की प्राप्ति करते हैं ॥ ५४-५८ ॥

गिरिवर उद्यन्तक के साथ लगी हुई एक अग्निधारा प्रवाहित होती है। वहीं पर एक सरस्वती द्वारा प्रतिष्ठापित सारस्वत नामक कुण्ड है। परम ऐश्वर्यशाली षण्डामर्क प्रभृति पुरोहितों के साथ शुक्राचार्य वहाँ स्थित हैं। मुनिसत्तम। उस पवित्र स्थान पर उन मुनिवरों की पूजा एवं श्राद्ध-पिण्डदानादि करनेवाला मनुष्य अपने पितरों का उद्धार करता है ॥ ५९-६० ॥

शिला के बायें हाथ में एक अन्य गृध्रकूट नामक गिरि धारण किया गया है, अनेक महान् ऋषियों ने गृध्र का स्वरूप धारणकर वहाँ पर तपस्याकर परमसिद्धि प्राप्त की थी। इसी से उस पर्वत नामक गृध्रकूट पड़ गया, वहीं पर गृध्रेश्वर का निवास स्थान है। मनुष्य वहाँ गृधेश्वर का दर्शन पूजनादि कर शम्भु का लोक प्राप्त करता है। खास गृध गिरि की गुफा में पिण्डदान करनेवाला भी शिवलोकगामी होता है। उसी गृध्रकूट पर वट को नमस्कार करनेवाला मनुष्य अपनी समस्त अभिलाषाओं की पूर्तिकर स्वर्ग प्राप्त करता है। वहाँ पर स्थित भगवान् शंकर का

शिलाया वामहस्तेऽपि गृध्रकूटो गिरिर्धृतः । गृध्ररूपेण संसिद्धास्तपस्तप्त्वा महर्षयः ॥ ६४ ॥
अतो गिरिर्गृध्रकूटस्तत्र गृध्रेश्वरः स्थितः । दृष्ट्वा गृध्रेश्वरं नत्वा यायाच्छम्भोः पदं नरः ॥ ६५ ॥
तत्र गृध्रे गुहायां च पिण्डदः शिवलोकभाक् । तत्र गृध्रे वटं नत्वा प्राप्तकामो दिवं व्रजेत् ॥ ६६ ॥
ऋणमोक्षं पापमोक्षं शिवं दृष्ट्वा शिवं व्रजेत् । शूलक्षेत्रं च तत्रास्ते पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन् ॥ ६७ ॥
आदिपालेन गिरिणा समाक्रान्तं शिलोदरम् । तत्रास्ते गजरूपेण विघ्नेशो विघ्ननाशनः ॥
तं दृष्ट्वा मुच्यते विघ्नैः पितॄन् ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ६८ ॥
नितम्बे मुण्डपृष्ठस्य देवदारुवनं त्वभूत् । मुण्डपृष्ठारविन्दाद्री दृष्ट्वा पापं विनाशयेत् ॥
गयानाभौ सुषुम्नायां पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन् ॥ ६९ ॥
शिलाया वामपादे तु स्थापितः प्रेतपर्वतः । धर्मराजेन पापेभ्यो गिरिः प्रेतशिलाह्वयः ॥ ७० ॥
पादेन दूरे निक्षिप्तः शिलायाः पादभारतः । गतः शिलायाः संसर्गात्प्रेतकूटः पवित्रताम् ॥ ७१ ॥
प्रेतकुण्डं च तत्राऽस्ते देवास्तत्र पदे स्थिताः। तत्र कुण्डादिकं कृत्वा प्रेतत्वान्मोचयेत्पितॄन् ॥ ७२ ॥
पृथक् स्थिताश्च बहवो विघ्नकारिण एव ते । श्राद्धादिकारिणां नृणां तीर्थे पितृविमुक्तये ॥
प्रेता धानुष्करूपेण करग्रहणकारकाः ॥ ७३ ॥
पादाङ्कितां मुण्डपृष्ठां महादेवनिवासिनीम् । तां दृष्ट्वा सर्वलोकश्च मुक्तः पापोपपातकैः ॥ ७४ ॥

दर्शनकर प्राणी ऋण एवं पाप से मुक्ति प्राप्तकर शिवलोकगामी होता है । उसी गृध्रकूट पर एक शूलक्षेत्र नामक तीर्थ है, वहाँ पिण्डदान करनेवाला अपने पितरों को स्वर्ग पहुँचाता है । उस गयासुर के ऊपर रखी गयी शिला का उदर देश आदिपाल नामक गिरि से आक्रान्त है, उस पर विघ्नों के विनाशक विघ्नेश्वर गणेश गजरूप धारणकर अवस्थित हैं । उनका दर्शन करनेवाला विघ्नों से मुक्त होकर अपने पितरों को स्वर्ग पहुँचाता है ॥ ६१-६५ ॥

मुण्डपृष्ठ के नितम्ब प्रदेश में देवदारु का वन था, मुण्डपृष्ठ एवं अरविन्दाद्रि का दर्शन करनेवाला अपने पाप कर्मों को विनष्ट करता है । गयापुरी की नाभिस्थली में जो सुषुम्ना नाम से विख्यात है, पिण्ड प्रदान करनेवाला अपने पितरों को स्वर्ग प्राप्त कराता है । शिला के बायें चरण पर प्रेतगिरि नामक एक पर्वत धर्मराज ने स्थापित किया था, यह प्रेतगिरि पहले पापों के कारण अतिशय मलिन था, इसी कारण इसका नाम प्रेतशिला कहा जाता था । धर्मराज ने अपने पैरों से इसे उठाकर फेंक दिया । उक्त शिला के संसर्ग के कारण यह पवित्रता को प्राप्त हुआ। वहीं पर एक प्रेतकुण्ड नामक कुण्ड है, जिसके चरण प्रान्त में देवताओं का निवास है, वहाँ पिण्डदानादि करनेवाला प्राणी अपने पितरों को प्रेतयोनि से मुक्ति दिलाता है । इस गयातीर्थ में पितरों की मुक्ति के लिए श्राद्धादि सम्पन्न करनेवाले प्राणियों के कार्यो में विघ्न डालनेवाले बहुत से प्रेत धनुष धारणकर अलग स्थित रहते हैं, और उनका हाथ पकड़ लेते हैं, अर्थात् बहुतेरा विघ्न डालते हैं ॥ ६६-७० ॥

महादेव की निवासस्थली मुण्डपृष्ठा नामक एक शिला है, जो उनके चरण चिह्नों से अङ्कित है । उसका दर्शन कर समस्त लोक पापों एवं उपपापों से मुक्त हो जाता है । समस्त पापों से विसर्जित, पुण्यप्रद गयाशिर यतः प्रेतादि से रहित है, अतः उसे सर्वापेक्षा परम पुनीत एवं सुन्दर कहा जाता है । सारे मगध प्रदेश के तीर्थों में गया नगरी सर्वाधिक पुण्य प्रदायिनी है, राजगृह नामक वन सभी वनों में अधिक पुण्यप्रद है, आश्रमों में च्यवन का आश्रय अधिक पुण्यप्रद है, नदियों में पुनपुना नदी सबसे अधिक पुण्यदायिनों हैं । इसी प्रकार वैकुण्ठ, लोहदण्ड, गृध्रकूट और

गयाशिरसि पुण्ये च सर्वपापैर्विवर्जिते । प्रेतादिवर्जितं यस्मात्ततोऽतिपावनं वरम् ॥ ७५ ॥
कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम् । च्यवनस्याश्रमं पुण्यं नदी पुण्या पुनः पुना ॥ ७६ ॥
वैकुण्ठो लोहदण्डश्च गृध्रकूटश्च शोणकः । अत्र श्राद्धादिना सर्वान्पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ७७ ॥
क्रौञ्चरूपेण हि मुनिर्मुण्डपृष्ठे तपोऽकरोत् । तस्य पादाङ्कितो यस्मात्क्रौञ्चपादस्ततः स्मृतः॥ ७८ ॥
स्नातो जलाशये तत्र नयेत्स्वर्गं स्वकं कुलम् । बलिः काकशिलायां च काकेभ्य ऋणमोक्षदः ॥ ७९ ॥
मुण्डपृष्ठस्य सानौ हि लोमशो लोमहर्षणः । द्वावेतौ परमं तप्त्वा तपःसिद्धिं परां गतौ ॥ ८० ॥
आहूतास्तु सरिच्छ्रेष्ठा लोमशेन महानदी । शरावती वेत्रवती चन्द्रभागा सरस्वती ॥ ८१ ॥
कावेरी सिन्धुवीरा च चन्दना च सरिद्वरा । वासिष्ठी सरयूर्गङ्गा यमुना गण्डकीन्दिरा ॥ ८२ ॥
महावैतरणी नाम्ना निक्षरा च दिवौकसः । सावव्यलकनन्दा च ह्युदीची कनकाह्वया ॥ ८३ ॥
कौशिकी ब्रह्मदा ज्येष्ठा सर्वस्याघविमोचिनी । कृष्णवल्वा चर्मवती द्वे नद्यौ मुक्तिदायिके ॥ ८४ ॥
आहूते सरितां श्रेष्ठे लोमहर्षेण साहसात् । तपसस्तु प्रभावेण नर्मदा मुनिपुङ्गव ॥
तासु सर्वासु यः स्नात्वा पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन् ॥ ८५ ॥
ब्रह्मयोनिं प्रविश्याथ निर्गच्छेद्यस्तु मानवः । परं ब्रह्म स यातीह विमुक्तो योनिसङ्कटात् ॥ ८६ ॥
निक्षरायां पुष्करिण्यां स्नातः श्राद्धादिकं नरः । कुर्यात्क्रौञ्चपदे दिव्ये नियमाद्वासरत्रयम् ॥
सर्वान्पितॄन्नयेत्स्वर्गं पञ्च पापिन एव च ॥ ८७ ॥

शोणक भी पुण्यप्रद हैं, इन स्थानों पर श्रद्धादि द्वारा मनुष्य अपने सभी पितरों को ब्रह्मपुर पहुँचाता है ॥७३-७४ ॥

मुण्डपृष्ठ पर मुनि ने क्रौञ्च पक्षी का रूप धारणकर तपस्या की थी, उनके चरणों के चिह्नों से यह चिह्नित भी है, इसी कारण से इसका क्रौञ्चपाद नाम स्मरण किया जाता है। वहाँ जाकर जलाशय में स्नान करनेवाला प्राणी अपने कुल को स्वर्ग की पुरी में पहुंचाता है। काकशिला पर कौआ का बलि कर्म ऋण से मुक्ति दिलानेवाला है। मुण्डपृष्ठ की उपत्यका में लोमहर्षण और लोमश इन दोनों ने परम कठोर तपस्या करके परम सिद्धि की प्राप्ति की थी। लोमश ने इस स्थान पर, नदियों में श्रेष्ठ महानदी, शरावती, वेत्रवती, चन्द्रभागा, सरस्वती, कावेरी, सिन्धुवीरा, चन्दना, वाशिष्ठी, सरयू, गंगा, यमुना, गण्डकी, इन्दिरा, स्वर्गवासियों की निक्षरा महावैतरणी, अलकनन्दा, उदीची, कनका, कौशिकी, ब्रह्मदा, जो सभी नदियों में श्रेष्ठ एवं सभी के पापों को विनष्ट करनेवाली हैं, इन सब नदियों का आवाहन किया था। मुक्तदायिनी कृष्णा, वेणी और चर्मवती—इन दोनों नदियों को जो सर्वश्रेष्ठ मानी जाती हैं, लोमहर्षण ने अपने तपोबल से आवाहित किया था। मुनिपुङ्गव ! अपने तपस्या के प्रभाव से नर्मदा का भी आवाहन लोमहर्षण ने किया था, इन सभी नदियों में स्नानकर पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अपने पितरों को स्वर्ग पहुँचाता है ॥ ७५-८२ ॥

इस गयातीर्थ में अवस्थित ब्रह्मयोनि नामक तीर्थ में प्रवेशकर जो मनुष्य बाहर निकल आता है, वह ब्रह्म को प्राप्त करता है और योनि सङ्कटों से सर्वदा के लिए मुक्त हो जाता है। निक्षरा नामक पोखरी में स्नानकर श्रद्धादि सम्पन्न करनेवाला मनुष्य दिव्य क्रौञ्चपद पर नियमपूर्वक तीन दिनों तक निवास करे, ऐसा करनेवाला व्यक्ति पाँच प्रकार के पापों के करनेवाले समस्त पितरों को स्वर्ग पहुँचाता है। भस्मकूट पर जनार्दन का निवास-स्थल है, उनके

जनार्दनो भस्मकूटे तस्य हस्ते तु पिण्डदः । आत्मानोऽप्यथवान्येषां सव्येनापि तिलैर्विना ॥
जीवतां दधिसंमिश्रं सर्वे ते विष्णुलोकगाः ॥ ८८ ॥
यस्तु पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन । यदुद्दिश्य त्वया देयस्तस्मिन्पिण्डो मृते प्रभो ॥ ८९ ॥
एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन । अन्तकाले गते मह्यं त्वया देयो गयाशिरे ॥ ९० ॥
जनार्दन नमस्तुभ्यं नमस्ते पितृमोक्षद । पितृपते नमस्तेऽस्तु नमस्ते पितृरूपिणे ॥ ९१ ॥
गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः । तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात् ॥ ९२ ॥
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ऋणत्रयविमोचक । लक्ष्मीकान्त नमस्तेस्तु पितॄणां मोक्षदो भव ॥ ९३ ॥
वामजानु सुसंपत्य नत्वा भीमो जनार्दनम् । श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा भ्रातृभिर्ब्रह्मलोकभाक् ॥
पितृभिः सह धर्मात्मा कुलानां च शतेन च ॥ ९४ ॥
शिलायां व्यक्तरूपेण व्यक्ताव्यक्तात्मना स्थितः। लक्ष्मीशो विबुधैः सार्धं तस्माद्देवमयी शिला ॥ ९५॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नाम षट्चत्त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

* * *

हाथ में अपने लिये तथा अन्यान्य लोगों के लिए तिलों के पिण्ड अपसव्य हो दान करना चाहिए, जीवित व्यक्तियों के लिए दधिमिश्रित पिण्डदान करना चाहिए। जो इस तरह करते हैं वे सभी विष्णुलोकगामी होते हैं। पिण्डदान करते समय यह मंत्र उच्चारण करना चाहिए। प्रभो। जनार्दन जो पिण्ड मैं जिसके उद्देश्य से आपके हाथों में समर्पित कर रहा हूँ, उसके मर जाने पर वह पिण्ड आप उसके लिए पहुँचा देंगे। जनार्दन। यह पिण्ड मैं अपने लिये आपके हाथों में समर्पित कर रहा हूँ, मेरा अन्तकाल जब हो जाय तब उसे आप गयाशिर में हमें प्रदान करेंगे। जनार्दन ! आप पितरों को मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। आपको हम नमस्कार करते हैं, आप पितरों के स्वामी हैं, स्वयं पितृस्वरूप हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं। गया क्षेत्र में भगवान् जनार्दन स्वयमेव पितृरूप से विराजमान रहते हैं, उन पुण्डरीकाक्ष भगवान् का दर्शनकर मानव अपने तीनों ऋणों से छुटकारा पाता है ॥ ८३-८९ ॥

तीनों ऋणों से मुक्ति देनेवाले पुण्डरीकाक्ष, आप लक्ष्मी के कान्त हैं, हमारे पितरों को मोक्ष प्रदान करें, आपको हमारा नमस्कार है। भीम ने अपने वायें घुटने को मोड़कर भगवान् जनार्दन को नमस्कार एवं पितरों के लिए पिण्डदान आदि करके भाइयों समेत ब्रह्मलोक की प्राप्ति की। यही नहीं उस धर्मात्मा ने पितरों समेत अपने सौ कुलों का भी उद्धार किया। उस पुनीत शिला के ऊपर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु अपने व्यक्ताव्यक्त स्वरूप से देवगणों के साथ स्वयमेव विराजमान रहते हैं, यही कारण है कि वह शिला देवमयी कही जाती है ॥ ९०-९५ ॥

श्रीवायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपसंहारपाद में गयामाहात्म्य नामक छियालीसवें अध्याय (एक सौ आठवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरञ्जन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४६ ॥**

* * *

अथ सप्तचत्त्वारिंशोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

नारद उवाच

कथं व्यक्तस्वरूपेण स्थितश्चाऽऽदिगदाधरः । कथं व्यक्तस्वरूपेण व्यक्ताव्यक्तात्मना स्थितः॥ १ ॥
कथं गदा समुत्पन्ना यथा ह्यादिगदाधरः । गदालोलं कथं चासीत् सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ २ ॥

सनत्कुमार उवाच

गदो नामासुरो ह्यासीद्वज्राद्वज्रतरो दृढः । तपसा दारुणेनासौ ब्रह्मलब्धवरः पुरा ॥
प्रार्थितो ब्रह्मणे प्रादात् स्वशरीरास्थि दुस्त्यजम् ॥ ३ ॥
ब्रह्मोक्तो विश्वकर्मापि गदां चक्रेऽद्भुतां तदा । तदस्थि वज्रनिष्पेषैः कुन्दैः स्वर्गे ह्यधारयत् ॥ ४ ॥
अथ कालेन महता मनौ स्वायम्भुवे क्वचित् । हेती रक्षो ब्रह्मपुत्रस्तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ५ ॥
दिव्यवर्षसहस्राणां शतं वायुमभक्षयत् । उन्मुखश्चोर्ध्वबाहुश्च पादाङ्गुष्ठभरेण ह ॥ ६ ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

(एक सौ नौवाँ अध्याय)

गया माहात्म्य

नारद ने कहा—सनत्कुमार जी आदि गदाधर भगवान् किस प्रकार व्यक्त रूप में अवस्थित हैं? व्यक्ताव्यक्त स्वरूप से वे व्यक्त स्वरूप में किस प्रकार अवस्थित है? यह गदा किस प्रकार उत्पन्न हुई जिससे उनकी आदि गदाधर उपाधि हुई? सभी पापों को विनष्ट करनेवाली उस गदा की चञ्चलता किस प्रकार हुई ॥ १-२ ॥

सनत्कुमार ने कहा—प्राचीनकाल में वज्र से भी परम कठोर गद नामक एक घोर असुर था, ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर उसने अपनी हड्डियाँ ब्रह्मा को समर्पित की थीं, जिनका देना परम कठिन कार्य था। ब्रह्मा के कहने पर विश्वकर्मा ने उन हड्डियों की एक अद्भुत गदा बनायी, उस अस्थिखण्ड की वज्र भेदन करनेवाले यन्त्रों से गदा बनाकर स्वर्ग लोक में विश्वकर्मा ने स्थापित किया था ॥ ३-४ ॥

बहुत दिन बीत जाने के बाद की बात है एक बार स्वायंभुव मन्वन्तर में ब्राह्मनन्दन हेति नामक राक्षस ने परम कठोर तपस्या की, एक लाख दिव्य वर्षों तक उसने केवल वायु का आहार किया. एक पैर के अंगूठों पर खड़े रहकर मुख और दोनों बाहुओं को ऊपर कर शान्त चित्त से वह तपस्या में लीन था। इस अवधि में पुराने, गिरे हुए पत्ते एवं वायु का आहार करता था ॥ ५-६ ॥

एकेनातिष्ठदव्यग्रः शीर्णपर्णानिलाशनः । ब्रह्मादींस्तपसा तुष्टान्वरं वव्रे वरप्रदान् ॥ ७ ॥
देवैर्दैत्यैश्च शास्त्रास्त्रैर्विविधैर्मनुजादिभिः । कृष्णेशानादिचक्राद्यैरवध्यः स्यां महाबलः ॥ ८ ॥
तथेत्युक्त्वान्तर्हितास्ते हेतिर्देवानथाजयत् । इन्द्रत्वमकराद्धेतिर्भीता ब्रह्महरादयः ॥ ९ ॥
हरिं ते शरणं जग्मुरूचुर्हेतिं जहीति तान् । ऊचे हरिरवध्योऽयं हेतिर्देवासुरैः सुराः ॥ १० ॥
महास्त्रं मे प्रयच्छध्वं हेतिं हन्मि हि येन तम् । इत्युक्तास्ते ततो देवा गदां तां हरये ददुः ॥ ११ ॥
दधार तां गदामादौ देवैरुक्तो गदाधरः । गदया हेतिमाहत्य देवैः स त्रिदिवं ययौ ॥ १२ ॥
गदामादाववष्टभ्य गयासुरशिरःशिलाम् । निश्चलार्थं स्थितो यस्मात्तस्मादादिगदाधरः ॥ १३ ॥
शिला पर्वतरूपेण व्यक्त आदिगदाधरः । शिलासौ मुण्डपृष्ठाद्रिः प्रभासो नाम पर्वतः ॥ १४ ॥
उद्यन्तो गीतनादश्च भस्मकूट गिरिर्महान् । गृध्रकूटः प्रेतकूटश्चादिपालोऽरविन्दकः ॥ १५ ॥
पञ्चलोकः सप्तलोको वैकुण्ठो लोहदण्डकः। क्रौञ्चपादोऽक्षयवटः फल्गुतीर्थं मधुश्रवाः ॥ १६ ॥
दधिकुल्या मधुकुल्या देविका च महानदी । वैतरण्यादिरूपेण व्यक्त आदिगदाधरः ॥ १७ ॥
विष्णोः पदं रुद्रपदं ब्रह्मणः पदमुत्तमम् । काश्यपस्य पदं दिव्यं द्वौ हस्तौ यत्र निर्गतौ ॥ १८ ॥
पञ्चाग्नीनां पदान्यत्र इन्द्रागस्त्यपदे परे । रवेश्च कार्तिकेयस्य क्रौञ्चमातङ्गयोरपि ॥ १९ ॥
मुख्यलिङ्गानि सर्वाणि व्यक्ताव्यक्तात्मना स्थितः । आद्यो गदाधरश्चैव व्यक्तः श्रीमान् गदाधरः ॥२०॥

इस परम कठोर तपस्या से सुप्रसन्न वरदायक ब्रह्मा प्रभृति देवगणों से उसने वरदान की याचना की कि मैं समस्त देव, दैत्य, विविध प्रकार के शस्त्र, अस्त्र, मनुष्य, कृष्ण, शिव, सुदर्शन चक्रादि से न मारा जाऊँ, मेरे समान महाबलवान् कोई दूसरा न हो । देवगण हेति की प्रार्थना स्वीकारकर अन्तर्हित हो गये ।। ७-८ ।।

तदुपरान्त उसने देवताओं को पराजित कर इन्द्र का पद छीन लिया, ब्रह्मा, महादेव—सभी उसके इस प्रचण्ड कर्म से भयभीत होकर विष्णु भगवान् की शरण में गये और बोले, भगवन्! हेति का संहार कीजिये । हरि ने देवगणों से कहा, सुरवृन्द । हेति समस्त देवताओं एवं असुरों द्वारा भी नहीं मारा जा सकता । मुझे कोई महान् अस्त्र दीजिये जिससे हेति का वध कर सकूँ । भगवान् विष्णु के इस प्रकार कहने पर देवताओं ने वही गदा उन्हें समर्पित की । देवताओं के अनुरोध पर हरि ने सर्वप्रथम उस गदा को धारण किया, और उसी से हेति का विनाशकर सुरगणों के साथ स्वर्ग लोक को प्रस्थान किया । गयासुर के निश्चलता करने के लिए ऊपर रखी गयी शिला पर भगवान् ने उसी गदा को स्थापित किया था, इसीलिए उसका नाम आदि गदाधर पड़ा ।। ९-१३ ।।

शिलापर्वत स्वरूप से भगवान् आदिगदाधर उस गया क्षेत्र में व्यक्त हुए शिला के अतिरिक्त मुण्डपृष्ठाद्रि, प्रभास, उद्यन्त, गीतनाद, भस्मकूट नामक महागिरि, गृध्रकूट, प्रेतकूट, आदिपाल, अरविन्दक, पञ्चलोक, सप्तलोक, वैकुण्ठ, लोहदण्डक, क्रौञ्चपाद, अक्षयवट, फल्गुतीर्थ, मधुश्रवा, दधिकुल्या, मधुकुल्या, देविका, महानदी वैतरणी प्रभृति के रूप में आदिगदाधर भगवान् व्यक्त हैं ।। १४-१७ ।।

विष्णुपद, रुद्रपद, उत्तम ब्रह्मपद दिव्यगुणयुक्त कश्यपपद जहाँ पर दो हाथ निकले हुए हैं, पंचाग्नियों के पद, इन्द्र एवं अगस्त्य के पद, सूर्य, कार्तिकेय क्रौञ्च मातङ्ग एवं अन्यान्य प्रमुख लिङ्ग—ये सभी वहाँ व्यक्ताव्यक्त स्वरूप में उपस्थित हैं, आदि गदाधर भगवान् स्वयमेव इन स्वरूपों से व्यक्तरूप में विराजमान हैं ।। १८-२० ।।

गायत्री चैव सावित्री संध्या चैव सरस्वती । गयादित्यश्चोत्तरार्को दक्षिणार्कोऽपि नैमिषः ॥ २१ ॥
श्वेतार्को गणनाथश्च वसवोऽष्टौ मुनीश्वराः । रुद्राश्चैकादशैवाथ तथा सप्तर्षयोऽपरे ॥ २२ ॥
सोमनाथश्च सिद्धेशः कपर्दीशो विनायकः । नारायणो महालक्ष्मीर्ब्रह्मा श्रीपुरुषोत्तमः ॥ २३ ॥
मार्कण्डेयेशः कौटीशो ह्यङ्गिरेशः पितामहः । जनार्दनो मङ्गला च पुण्डरीकाक्ष उत्तमः ॥ २४ ॥
इत्यादिव्यक्तरूपेण स्थितश्चादिगदाधरः । हेतिर्यो राक्षसस्तस्मिन्हते विष्णुः पुरं गतः ॥ २५ ॥
ब्रह्मणा सह रुद्राद्यैः कारिते निश्चलेऽसुरे । तुष्टावाद्यगदापाणिं वेधा हर्षेण निर्वृतः ॥ २६ ॥

ब्रह्मोवाच

गदाधरं व्यपगतकालकल्मषं गयागतं विदितगुणं गुणातिगम् ।
गुहागतं गिरिवरगौरगेहगं गणार्चितं वरदमहं नमामि ॥ २७ ॥
अहःश्रियं त्रिदशगणादिसुश्रियं भवश्रियं दितिभवदारणश्रियम् ।
कलिश्रियं कलिमलमर्दनश्रियं गदाधरं नौमि तमाश्रितश्रियम् ॥ २८ ॥
दृढादृढं परिवृढगाढसंस्तुतं कामाद्भुतं सुदृढमरूढिरूढिगम् ।
त्वमाढ्यगं दृढदुरिताद्यढौकितं स्वढौकृतं दृढतरगोत्रसूक्तिभम् ॥ २९ ॥
विदेहकं करणकलाविवर्जितं विजन्मकं दिनकरवेदिभूषितम् ।
गदाधरं ध्वनिमुखवर्जितं परं नमाम्यहं सततमनादिमीश्वरम् हरिम् ॥ ३० ॥

गायत्री, सावित्री, सन्ध्या, सरस्वती, गयादित्य, उत्तरार्क, दक्षिणार्क, नैमिष, श्वेतार्क गणनाथ, आठों वसुगण, मुनीन्द्रगण, ग्यारह रुद्रगण, सातों ऋषिगण, सोमनाथ, सिद्धेश, कपर्दीश, विनायक,नारायण महालक्ष्मी, ब्रह्मा, श्री पुरुषोत्तम, पार्कण्डेयेश, कोटीश अभिरेश, पितामह, जनार्दन मला पुण्डरीकाक्ष इत्यादि स्वरूप से आदिगदाधर भगवान् विराजमान हैं। वह हेति नामक राक्षस, जिसकी कथा ऊपर कही जा चुकी है, मृत्यु के उपरान्त भगवान् विष्णु के लोक में पहुंचा। गयासुर के निश्चल कर देने पर ब्रह्मा समेत रुद्रादि देवगण परम हुए और आदमदार की इस प्रकार सब लोगों ने मिलकर स्तुति की ॥ २१-२६ ॥

ब्रह्मा बोले गया क्षेत्र में विराजमान, सभी गुणों से परे, प्रशस्त गुणशाली, समस्त काल चक्रों एवं पापों से विहीन, गुणों द्वारा सुपूजित, गदा धारण करनेवाले, गिरिराज की हिमाच्छादित गुहा में विराजमान वरदायक देव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २७ ॥

दिन की शोभा देवगणों को विजय भी प्रदान करनेवाले, महादेव जी को यश प्रदान करनेवाले, देयों का विनाशकर सुरगणों को प्रसन्न करनेवाले, कलि के घोर पापों को नष्ट करके यश प्राप्त करनेवाले, कलियुग में भी परमशोभासम्पन, शरणागत रक्षक भगवान् गदाधर को नमस्कार करता हूँ ॥ २८ ॥

परम भक्ति रखनेवाले भक्त जन जिसकी भक्तिपूर्वक से स्तुति करते हैं, ऐसे परम कठोर से भी कठोर, अद्भुत कर्मशील, परम विक्रमशील, अजन्मा होकर भी शरीर धारण करनेवाले, कठोर पापकर्मों को नष्ट करनेवाले, पूज्यों में भी अग्रणी, पापियों को न प्राप्त होने वाले भगवान् को हमारा नमस्कार है, जो वाक्य एवं मन से अगोचर होकर भी सशों में उत्पन्न होनेवाले हैं, शरीररहित, करण एवं कलाओं से विहीन, अजन्मा, सूर्य की

मनोऽतिगं मतिगतिवर्जितं परं सदाद्वयं स्तुतिशिरसि संस्तुतं बुधैः ।
चिदात्मकं कलिगतकारणातिगं गदाधरं हृदयगतं नमामि तम् ॥ ३१ ॥

सनत्कुमार उवाच

देवैः सार्धं ब्रह्मणैवं स्तुतश्चादिगदाधरः । ऊचे वरं वृणीष्व त्वं वरं ब्रह्मा तमब्रवीत् ॥ ३२ ॥
शिलायां देवरूपिण्यां न तिष्ठामस्त्वया विना । स्थास्यामोऽत्र त्वया सार्द्धं नित्यं व्यक्तादिरूपिणा ॥३३॥
एवमस्तु श्रिया सार्धं स्थितश्चाऽऽदिगदाधरः । लोकानां रक्षणार्थाय जगतां मुक्तिहेतवे ॥
सुव्यक्तः पुण्डरीकाक्षो जनार्दन इति श्रुतः ॥ ३४ ॥
वेदैरगम्या या मूर्तिरादिभूता सनातनी । सुव्यक्ता श्वेतकल्पे सा भविष्यति तथा पुनः ॥
वाराहकल्पे ह्यव्यक्ता व्यक्तिमप्यगमत्पुरा ॥ ३५ ॥
सन्तारणाय लोकानां देवानां रक्षणाय च । गयाशिरसि सुव्यक्तो भविष्यति न संशयः ॥ ३६ ॥
ये द्रक्ष्यन्ति सदा भक्त्या देवमादिगदाधरम् । कुष्ठरोगादिनिर्मुक्ता यास्यन्ति हरिमन्दिरम् ॥ ३७ ॥
ये द्रक्ष्यन्ति सदा भक्त्या देवमादिगदाधरम् । ते प्राप्स्यन्ति धनं धान्यमायुरारोग्यमेव च ॥ ३८ ॥
कलत्रपुत्रपौत्रादिगुणकीर्तिसुखानि च । श्रद्धया ये नमस्यन्ति राज्यं ब्रह्मपुरं तथा ॥
भुक्त्वा व्रजेयुः सततं पुण्यपुञ्जफलं नराः ॥ ३९ ॥

भाँति परम कान्तिमान्, ध्वनि एवं मुख से विहीन, अनादि, परम ऐश्वर्यशाली भगवान् को सर्वदा नमस्कार करते हैं। मन से भी परे, बुद्धि की गति से भी अगम्य, परात्पर, द्वैतरहित, जिस भगवान् की पण्डित जन सर्वदा स्तुति करते हैं, उस चित्स्वरूप, कलिकाल गत कारण समूहों से परे, हृदय में विराजमान उस भगवान् गदाधर को नमस्कार करते हैं ॥ २९-३१ ॥

सनत्कुमार ने कहा—देवताओं समेत ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने के उपरान्त विष्णु ने कहा, वरदान माँगिये। तब ब्रह्मा ने वरदान की याचना की कि देव। इस देवस्वरूपिणी शिला पर आपके बिना हम लोग नहीं रहेंगे, व्यक्तादिस्वरूप सम्पन्न आपके साथ ही हम लोग यहाँ पर सर्वदा स्थिर रह सकेंगे। आदिगदाधर ऐसा ही हो- कहकर लक्ष्मी के साथ वहाँ विराजमान हुए। समस्त लोकों की रक्षा एवं जगत् के जीवों को मुक्ति प्रदान करने के लिए भगवान् आदि गदाधर पुण्डरीकाक्ष जनार्दन नाम से वहाँ व्यक्त स्वरूप धारणकर स्थित हुए ऐसे सुना जाता है ॥ ३२-३४ ॥

श्वेत कल्प में वेदों द्वारा अगम्य जो आदि भूत, सनातन, भगवान् की व्यक्त मूर्ति थी, वही भविष्य में वाराह कल्प के आने पर अव्यक्त हो जाती है। प्राचीनकाल में वही व्यक्तता को प्राप्त हुई। लोक का उद्धार एवं देवताओं की रक्षा करने के लिए गयाशिर पर वह व्यक्त होगी इसमें सन्देह का स्थान नहीं है ॥ ३५-३६ ॥

जो लोग सर्वदा भक्तिपूर्वक भगवान् आदिगदाधर का दर्शन करेंगे, वे कुष्ठ-जैसे महान् असाध्य रोगों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक को जायेंगे। जो आदिगदाधर भगवान् का भक्तिपूर्वक सर्वदा दर्शन करेंगे वे विपुल धन, धान्य, आयु एवं आरोग्य की प्राप्ति करेंगे। कलत्र, पुत्र, पौत्रादि, गुण, कीर्ति एवं सुख को उन्हें प्राप्ति होगी। जो लोग भगवान् आदिगदाघर को श्रद्धापूर्वक नमस्कार करेंगे, वे राज्य तथा ब्रह्मपुर की प्राप्ति करेंगे। वे

गन्धदानेन गन्धाढ्यः सौभाग्यं पुष्पदानतः । धूपदानेन राज्याप्तिर्दीपाद्दीप्तिर्भविष्यति ॥ ४० ॥
ध्वजदानात्पापहानिर्यात्राकृद्ब्रह्मलोकभाक् । श्राद्धपिण्डप्रदो यस्तु विष्णुं नेष्यन्ति वै पितृन् ॥ ४१ ॥
श्रद्धया ये नमस्यन्ति स्तोत्रेणादिगदाधरम् । स्तोष्यन्ति च समभ्यर्च्य पितृन्नेष्यन्ति माधवम् ॥
शिवोऽपि परया प्रीत्या तुष्टावादिगदाधरम् ॥ ४२ ॥

शिव उवाच

अव्यक्तरूपो यो देवो मुण्डपृष्ठादिरूपतः । फल्गुतीर्थादिरूपेण नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ४३ ॥
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण पदरूपेण संस्थितः । मुखलिङ्गादिरूपेण नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ४४ ॥
अव्यक्तरूपो यो देवो जनार्दनस्वरूपतः । मुण्डपृष्ठे स्वयं जातो नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ४५ ॥
शिलायां देवरूपिण्यां स्थितं ब्रह्मादिभिः सुरैः । पूजितं सत्कृतं देवैस्तं नमामि गदाधरम् ॥ ४६ ॥
यं च दृष्ट्वा ततः स्पृष्ट्वा पूजयित्वा प्रणम्य च । श्राद्धादौ ब्रह्मलोकाप्तिर्नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ४७ ॥
महादादेश्च जगतो व्यक्तस्यैकं हि कारणम् । अव्यक्तज्ञानरूपं तं नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ४८ ॥
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् । जाग्रत्स्वप्नविनिर्मुक्तं नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ४९ ॥
नित्यानित्यविनिर्मुक्तं सत्यमानन्दमव्ययम् । तुरीयं ज्योतिरात्मानं नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ५० ॥

मनुष्य अपने निखिल पुण्यकर्मों का विपुल फल भोगकर अन्त में ब्रह्मपुर को प्राप्त होंगे ॥ ३७-३९ ॥

सुगन्धित द्रव्यों के दान से विपुल सुगन्धित द्रव्यों की प्राप्ति होगी, पुष्प के दान से सौभाग्य की वृद्धि होगी। धूप दान से राज्य प्राप्ति होगी, दीप दान से विपुल कान्ति मिलेगी। ध्वजा के दान से पाप का विनाश होगा, जो यात्रा करेगा वह ब्रह्मलोक का अधिकारी होगा। जो श्राद्ध एवं पिण्डदान करेगा वह अपने पितरों को विष्णुलोक में पहुँचायेगा ॥ ४०-४१ ॥

जो व्यक्ति ऊपर के स्तोत्र द्वारा स्तुतिकर आदिगदाधर को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करेगा, पूजन करेगा, वह अपने पितरों को माधव के समीप पहुँचायेगा। शिव ने भी परम भक्तिपूर्वक आदि गदाधर की स्तुति की थी ॥४२॥

शिव ने कहा—जो अव्यक्त स्वरूप धारणकर मुण्डपृष्ठपर्वत एवं फल्गुतीर्थ प्रभृति अन्यान्य तीर्थों के स्वरूप में विराजमान है, उस परमदेव आदिगदाधर को हम नमस्कार करते हैं। जो व्यक्ताव्यक्त स्वरूप धारणकर पद, मुखादि चिह्नों के रूप में विराजमान है, उस आदिगदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं। जो अव्यक्त स्वरूप धारण करनेवाला देव मुण्डपृष्ठ पर जनार्दन का स्वरूप धारणकर विरागमान है, उस आदिगदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४३-४५ ॥

जो देवस्वरूपिणी शिला पर ब्रह्मा प्रभृति देवगणों द्वारा पूजित एवं सत्कृत होकर अवस्थित है, उस गदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं। श्राद्धादि में जिसका दर्शन, स्पर्श, पूजन एवं प्रणाम करके प्राणी ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है, उस आदिगदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं। महदादि व्यक्त जगत् का जो एकमात्र कारणस्वरूप है, अव्यक्त एवं ज्ञानस्वरूप है, उस आदिगदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४६-४८ ॥

जो शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण एवं अहङ्कार से विवर्जित है एवं जागरण तथा स्वप्न से विहीन है

सनत्कुमार उवाच

एवं स्तुतो महेशेन प्रीतो ह्यादिगदाधरः। स्थितो देवः शिलायां स ब्रह्माद्यैर्दैवतैः सह ॥ ५१ ॥
संस्थितं मुण्डपृष्ठाद्रौ देवमादिगदाधरम्। स्तुवन्ति पूजयन्तीह ब्रह्मलोकं प्रयान्तु ते ॥ ५२ ॥
धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात्। कामानवाप्नुयात्कामी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥ ५३ ॥
वन्ध्या च लभते पुत्रं वेदवेदाङ्गपारगम्। राजा विजयमाप्नोति शूद्रश्च सुखमाप्नुयात् ॥ ५४ ॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रानभ्यर्च्यादिगदाधरम्। मनसा प्रार्थितं सर्वं पूजाद्यैः प्राप्नुयाद्धरेः ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नाम सप्तचत्त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

* * *

उस आदिगदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं। जो सर्वथा नित्य एवं अनित्य के पचड़ों से रहित है, सत्स्वरूप, आनन्द स्वरूप एवं अव्यय है, तुरीय आत्मा एवं ज्योति कहा जाता है उस आदिगदाधर को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४९-५० ॥

सनत्कुमार ने कहा—नारद जी महेश्वर द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने के उपरान्त भगवान् आदिगदाधर ब्रह्मा प्रभृति देवगणों के साथ उस शिला के ऊपर स्थित हुए। मुण्डपृष्ठ गिरि पर अवस्थित आदिगदाधर देव की जो लोग स्तुति एवं पूजा करते हैं, वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं ॥ ५१-५२ ॥

धर्म का अभिलाषी धर्म प्राप्त करता है, अर्थ का अभिलाषी अर्थ प्राप्त करता है, काम का अभिलाषी काम प्राप्त करता है, मोक्ष का अभिलाषी मोक्ष की प्राप्ति करता है, वन्ध्या वेद-वेदाङ्गपारगामी पुत्र प्राप्त करती है, राजा विजय की प्राप्ति करता है, शूद्र सुख की प्राप्ति करता है। आदिगदाधर की विधिवत् पूजाकर पुत्र को चाहनेवाला अनेक पुत्र प्राप्त करता है। भगवान् विष्णु की पूजा आदि से मनुष्य अपनी सभी मानसिक अभिलाषाओं को प्राप्त करता है ॥ ५३-५५ ॥

श्रीवायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपसंहारपाद में गयामाहात्म्य नामक सैंतालीसवें अध्याय (एक सौ नौवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरञ्जन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४७ ॥**

* * *

अथ अष्टचत्त्वारिंशोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

सनत्कुमार उवाच

गयायात्रां प्रवक्ष्यामि शृणु नारद मुक्तिदाम् । निष्कृतिः श्राद्धकर्तॄणां ब्रह्मणा गीयते पुरा ॥ १ ॥
उद्यतश्चेद्गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः । विधाय कार्पटीवेषं कृत्वा ग्रामं प्रदक्षिणम् ॥ २ ॥
ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम् । ततः प्रतिदिनं गच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः ॥ ३ ॥
प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो नियतः शुचिः । अहंकारविमुक्तो यः स तीर्थफलमश्नुते ॥ ४ ॥
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चापि सुसंयतम् । विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ ५ ॥
ततो गयाप्रवेशे च पूर्वतोऽस्ति महानदी । तत्र तोयं समुत्पाट्य स्नातव्यं निर्मले जले ॥ ६ ॥
देवादींस्तर्पयित्वाऽथ श्राद्धं कृत्वा यथाविधि । स्ववेदशाखागदितमर्घ्यावाहनवर्जितम् ॥ ७ ॥

अड़तालिसवाँ अध्याय

(एक सौ दसवाँ अध्याय)

गया माहात्म्य

सनत्कुमार ने कहा—नारद जी ! गया यात्रा की विधि बतला रहा हूँ, जो मुक्ति को देनेवाली है, सुनिये। प्राचीनकाल में ब्रह्मा जी ने यह बताया था कि गया में श्राद्ध करनेवालों का इस भवबन्धन से निस्तार हो जाता है। विधिपूर्वक श्राद्धकर्म सम्पन्नकर जो व्यक्ति गया यात्रा के लिए उद्यत हो, उसे चाहिए कि सर्वप्रथम श्राद्धकर कौपीन धारणकर अपने ग्राम की प्रदक्षिणा करे, फिर दूसरे ग्राम में जाकर श्राद्ध से शेष अन्न का भक्षण करें, फिर दानादि न लेते हुए प्रतिदिन यात्रा करे। प्रतिग्रह से बचते हुए, सन्तुष्ट चित्त, इन्द्रियों को वश में कर पवित्र मन एवं शरीर से अहंकारादि को छोड़कर जो गया की यात्रा करता है वह तीर्थ का वास्तविक फल प्राप्त करता है ॥ १-४ ॥

जिसके हाथ, पैर एवं मन संयत रहते हैं, विद्या, तप एवं कीर्ति की बहुलता रहती है, वह वास्तविक तीर्थ फल का उपभोग करता है। गया क्षेत्र में प्रविष्ट होने पर पूर्व दिशा से महानदी पड़ती है, उसमें जल हिलोरकर निर्मल जल में स्नान करना चाहिए। फिर विधिपूर्वक देवादिकों का तर्पण एवं श्राद्धकर अपनी कुल परम्परा में प्रचलित वेदशाखा का उच्चारण करना चाहिए। इस श्राद्धकर्म को अर्घ्य एवं आवाहन के बिना ही सम्पन्न करना चाहिए ॥ ५-७ ॥

अपरेऽह्नि शुचिर्भूत्वा गच्छेद्वै प्रेतपर्वते । ब्रह्मकुण्डे ततः स्नात्वा देवादींस्तर्पयेत्सुधीः ॥ ८ ॥
कुर्याच्छ्राद्धं सपिण्डानां प्रयतः प्रेतपर्वते । प्राचीनावीतिना भाव्यं दक्षिणाभिमुखः सुधीः ॥ ९ ॥
कव्यबालोऽनलः सोमो यमश्चैवार्यमा तथा । अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोमपाः पितृदेवताः ॥ १० ॥
आगच्छन्तु महाभागा युष्माभी रक्षितास्त्विह । मदीयाः पितरो ये च कुले जाताः सनाभयः ॥ ११ ॥
तेषां पिण्डप्रदानार्थमागतोऽस्मि गयामिमाम् । ते सर्वे तृप्तिमायान्तु श्राद्धेनानेन शाश्वतीम् ॥ १२ ॥
आचम्योक्त्वा च पञ्चाङ्गं प्राणायामं प्रयत्नतः । पुनरावृत्तिरहितब्रह्मलोकाप्तिहेतवे ॥ १३ ॥
एवं च विधिवच्छ्राद्धं कृत्वा पूर्वं यथाक्रमम् । पितॄनावाह्य चाभ्यर्च्य मन्त्रैः पिण्डप्रदो भवेत् ॥ १४ ॥
तीर्थे प्रेतशिलादौ च चरुणा सघृतेन वा । प्रक्षाल्य पूर्वं तत्स्थानं पञ्चगव्यैः पृथक्पृथक् ॥
तैर्मन्त्रैरथ संपूज्य पञ्चगव्यैश्च देवताम् ॥ १५ ॥
यावत्तिला मनुष्यैश्च गृहीता पितृकर्मसु । गच्छन्ति तावदसुराः सिंहत्रस्ता यथा मृगाः ॥ १६ ॥
अष्टकासु च वृद्धौ च गयायां च मृतेऽहनि । मातुः श्राद्धं पृथक्कुर्यादन्यत्र पतिना सह ॥ १७ ॥
वृद्धिश्राद्धे तु मात्रादि गयायां पितृपूर्वकम् । पाद्यपूर्वं समारभ्य दक्षिणाग्रकुशैः क्रमात् ॥
पित्रादीनां समास्तीर्य शेषं गृह्योक्तमाचरेत् ॥ १८ ॥

फिर दूसरे दिन पवित्र होकर प्रेतपर्वत की यात्रा करनी चाहिए, फिर ब्रह्मकुण्ड में स्नानकर बुद्धिमान् पुरुष को देवादिकों का तर्पण करना चाहिए । प्रेतपर्वत पर संयत मन हो सपिण्डों का आद्धकर्म सम्पन्न करना चाहिए। इस कर्म में बुद्धिमान् पुरुष प्राचीना', बीती और दक्षिणाभिमुख होना चाहिए ॥ ८-९ । 'कव्यवाह, अग्नि, चन्द्रमा, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त, बर्हिषद और सोमपा करनेवाले पितृदेवगण । महाभाग्यशालियो । आप लोग यहाँ पधारें। इस तीर्थ में आप लोगों की कृपा से सुरक्षित जो हमारे पितरगण तथा हमारे कुल में उत्पन्न होनेवाले अन्यान्य पितरगण हैं, उन्हीं को पिण्डदान करने के लिए मैं गयापुरी में आया हूँ । हमारे इस श्राद्धकर्म से वे चिरन्तन तृप्ति लाभ करें ॥ १०-१२ ॥

ऐसी प्रार्थना करने के उपरान्त आचमन करके प्रयत्नपूर्वक पाँचों अङ्गों समेत प्राणायाम करके, पुनरागमन से विरहित ब्रह्मलोक की प्राप्ति के लिए विधिपूर्वक क्रमानुसार श्राद्ध कर्म सम्पन्न करना चाहिए । उस समय पितरों का आवाहनकर उनकी विधिपूर्वक पूजा और मन्त्रों का उच्चारणकर पिण्डदान करना चाहिए । प्रेतशिला आदि तीर्थ स्थानों में घृत समेत चरु से पिण्डदान करना चाहिए । पञ्चगव्यों द्वारा उनके मन्त्रों से भली प्रकार उस स्थान को पवित्रकर मन्त्रों द्वारा देवताओं का पूजन करना चाहिए ॥ १३-१५ ॥

पितृकर्मों में मनुष्य जितने तिलों को ग्रहण करते हैं, उतने असुरगण सिंह से भयभीत मृगों की भाँति वहाँ से दूर चले जाते हैं ॥ १६ ॥

सभी अष्टकाओं में वृद्धि श्राद्ध में, गया तीर्थ में तथा मृत्यु के दिन माता का श्राद्ध अलग से करना चाहिए, अन्यत्र पति (पिता) के साथ ही करना चाहिए । वृद्धि श्राद्ध में सर्वप्रथम माता का श्राद्ध करके गया में पिता के श्राद्ध को पहले करना चाहिए । दक्षिणाभिमुख होकर क्रमशः कुशों को बिछाकर पिता आदि के लिए पाद्यादि निवेदन करना चाहिए । शेष विधान अपने-अपने गृह्य सूत्रों के अनुसार करना चाहिए ॥ १७-१८ ॥

दद्युः श्राद्धं सपिण्डानां तेषां दक्षिणभागतः । कुशानास्तीर्य विधिना सकृद्दत्वा तिलोदकम्॥ १९ ॥
गृहीत्वाऽञ्जलिना तेभ्यः पितृतीर्थेन यत्नतः । सक्तुना मुष्टिमात्रेण दद्यादक्षय्यपिण्डकम् ॥
संबन्धिनस्तिलाद्भिश्च कुशेष्वावाहयेत्ततः ॥ २० ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः । तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥ २१ ॥
अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम् । आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम् ॥ २२ ॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही ॥ २३ ॥
मातामहस्तत्पिता च प्रमातामहकादयः । तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ २४ ॥
मुष्टिमात्रप्रमाणं च ह्यार्द्रामलकमात्रकम् । शमीपत्रप्रमाणं वा पिण्डं दद्याद्गयाशिरे ॥
उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलानि शतमुद्धरेत् ॥ २५ ॥
पितुर्मातुः स्वभार्याया भगिन्या दुहितुस्तथा । पितृष्वसुर्मातृष्वसुः सप्त गोत्राः प्रकीर्त्तिताः ॥ २६ ॥
चतुर्विंशतिर्विंशश्च षोडश द्वादशैव हि । रुद्रादिवसवश्चैव कुलान्येकोत्तरं शतम् ॥ २७ ॥
नावाहनं न दिग्बन्धो न दोषो दृष्टिसंभवः । न कारुण्येन कर्तव्यं तीर्थश्राद्धं विचक्षणैः ॥ २८ ॥
पिण्डासनं पिण्डदानं पुनः प्रत्यवनेजनम् । दक्षिणा चान्नसंकल्पं तीर्थश्राद्धेष्वयं विधिः ॥ २९ ॥

विधिवत् कुशों को बिछाकर एक बार तिल समेत जल दान करने के उपरान्त दक्षिण दिशा से प्रारम्भ कर सपिण्डों को श्राद्ध प्रदान करना चाहिए । अंजलि में पितृतीर्थों का जल लेकर यत्नपूर्वक उन्हें जल दान करना चाहिए। एक मुट्ठी स लेकर अक्षय पिण्ड दान करना चाहिए । अन्य सम्बन्धियों को भी आवाहन करके तिल मिश्रित जल का दान करना चाहिए ॥ १९-२० ॥

ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब तक जो भी देव, ऋषि, पितर एवं मानवगण हैं, माता, मातामह प्रभृति हमारे पितरगण हैं, वे इस जलदान से संतुष्ट हों । सातों द्वीपों में निवास करनेवाले, करोड़ों से भी अधिक कुलों में उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मलोक से इस लोक तक सर्वत्र विद्यमान उन्हीं लोगों की तृप्ति के लिए यह तिल मिश्रित जलाञ्जलि है ॥ २१-२२ ॥

पिता पितामह प्रपितामह, माता, मातामही तथा प्रपितामही, मातामह तथा उनके पिता, प्रभृति-जो भी हमारे पूर्व पुरुष हैं, उन्हीं लोगों के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ, यह अक्षय रूप में उन्हें सन्तुष्ट करे । अपनी मुट्ठी भर का अथवा हरे आंवले भर का अथवा शमी के पत्ते जितना बड़ा पिण्ड गयाशिर पर प्रदान करना चाहिए। ऐसे पिण्डों को जो व्यक्ति प्रदान करता है वह अपने सात गोत्रों एवं सौ कुल पुरुषों का उद्धार करता है ॥ २३-२५ ॥

पिता, माता, अपनी स्त्री, बहिन, पुत्री, फूआ और मौसी-ये सात गोत्र कहे जाते हैं । चौबोस, बॉस, सोलह, बारह, ग्यारह, सात और आठ-इतने पिण्डदान क्रमशः करने चाहिए । इनके करने से एक सौ एक कुलों का उद्धार होता है । बुद्धिमान् पुरुषों को तीर्थ श्राद्ध में आवाहन, परदा, सूद्रादिकों को देखने से उत्पन्न होनेवाले दोष को न मानना चाहिए. इसी प्रकार किसी प्रकार को कातरता अथवा करुणा भी न करनी चाहिए ॥ २६-२८॥

अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते । आवाहयिष्ये तान्सर्वान्दर्भपृष्ठे तिलोदकैः ॥ ३० ॥
बन्धुवर्गकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते । आवाहयिष्ये तान्सर्वान्दर्भपृष्ठे तिलोदकैः ॥ ३१ ॥
इत्यतैर्मन्त्रैः सजलैस्तिलैर्दर्भेषु ध्यानवान् । आवाह्याभ्यर्च्य तेभ्यश्च पिण्डान्दद्याद्यथाक्रमम् ॥ ३२ ॥
अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ३३ ॥
मातामहकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ३४ ॥
बन्धुवर्गकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ३५ ॥
अजातदन्ता ये केचिद्ये च गर्भे प्रपीडिताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ३६ ॥
अग्निदग्धाश्च ये केचिन्नाग्निदग्धास्तथाऽपरे । विद्युच्चोरहता ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ३७ ॥
दावदाहे मृता ये च सिंहव्याघ्रहताश्च ये । दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वाऽपि तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ३८ ॥
उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये । आत्मापघातिनो ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ३९ ॥
अरण्ये वर्त्मनि वने क्षुधया तृषया हताः । भूतप्रेतपिशाचाद्यैस्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ४० ॥
रौरवे चान्धतामिस्रे कालसूत्रे च ये गताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ४१ ॥
असिपत्रवने घोरे कुम्भीपाकेषु ये गताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ४२ ॥

तीर्थं श्राद्धों में मुख्यतया इन्हों विधियों का पालन होना चाहिए, पिण्ड का आसन, पिण्डदान, प्रत्यवनेजन, दक्षिणा तथा अत्र सङ्कल्प । पिण्डदान के पूर्व ऐसा सङ्कल्प करना चाहिए कि अपने कुल में उन सभी मृतकों को, जिनको कहीं भी गति नहीं हुई, इस कुशासन पर तिलमिश्रित जलदान के द्वारा मैं आवाहित कर रहा हूँ, अपने नाना के कुल में मरे हुए उन सभी लोगों को भी मैं इसी कुशासन पर तिलमिश्रित जल द्वारा आवाहित कर रहा हूँ, जिनकी कहीं भी गति नहीं हुई । इसी प्रकार बन्धुवर्गों के कुलों में भी उन मरे हुए लोगों को इस कुशासन पर तिलमिश्रित जलदान के द्वारा आवाहित कर रहा हूँ जिनकी कहीं गति नहीं है ॥ २९-३२ ॥

इन उपर्युक्त मन्त्रों द्वारा तिलमिश्रित जल से कुशों पर उन सभी मृतकों का ध्यान करना चाहिए । आवाहन के उपरान्त भली-भाँति पूजनकर उन्हें क्रमानुसार पिण्डदान करना चाहिए । अपने कुल में उन मरे हुए लोगों को, जिनकी कहीं भी गति नहीं हैं, उबारने के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ, मातामह के कुल में मरे हुए उन लोगों को उबारने के लिए, जिनकी कहीं भी गति नहीं है, मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ । बन्धुवर्गों के कुल में मेरे हुए उन लोगों को उबारने के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा है, जिनको कहीं भी गति नहीं मिली ॥ ३३-३६ ॥

जो बिना दाँत जाने ही मर गये थे, गर्म में ही जिनकी मृत्यु हो गयी थी, ऐसे लोगों को उबारने के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ । में जलकर मरे हुए कोई हो, अनि में बिना जलाये गये जो कोई हों, ऐसे लोगों के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ । वनाग्नि में जो पर गये थे सिंह एवं व्याओं से जिनकी मृत्यु हुई, अन्यान्य दाड़ोंवाले, सींगोंवाले, हिंस जानवरों से जिनकी मृत्यु हुई, उनके उद्धार के लिए मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ । स्वयं फाँसी के लगाने से जिनको मृत्यु हुई, वियों एवं शस्त्रों से जिन्होंने आत्महत्या करके अपने प्राण गँवा दिये, ऐसे आत्महत्यारों के उद्धार के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ ॥ ३७-४० ॥

घोर जंगली मार्गों में जो विवश होकर सुधा एवं प्यास से मर गये थे, भूतों, प्रेतों एवं पिशाचों से इस्त

अनेकयातनासंस्थाः प्रेतलोकं च ये गताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ४३ ॥
अनेकयातनासंस्थाः ये नीता यमकिंकरैः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ४४ ॥
नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ४५ ॥
पशुयोनिगता ये च पक्षिकीटसरीसृपाः । अथवा वृक्षयोनिस्थास्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ४६ ॥
जात्यन्तरसहस्रेषु भ्रमन्तः स्वेन कर्मणा । मानुष्यं दुर्लभं येषां तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ४७ ॥
दिव्यन्तरिक्षभूमिष्ठाः पितरो बान्धवादयः । मृता असंस्कृता ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ४८ ॥
ये केचित्प्रेतरूपेण वर्तन्ते पितरो मम । ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डेनानेन सर्वदा ॥ ४९ ॥
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः। तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ ५० ॥
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे च ये मृताः । गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः ॥ ५१ ॥
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः । क्रियालोपगता ये च जात्यन्धाः पङ्गवस्तथा ॥ ५२ ॥
विरूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताः कुले मम । तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ ५३ ॥

होने के कारण जिनकी मृत्यु हुई थी, ऐसे लोगों को उबारने के लिए मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ। आपने घोर पापकों के कारण जो अन्यानि एवं कालसूत्र-जैसे नरकों में बोर यातनाएं झेल रहे हैं, उनको उबारने के लिए मैं वह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ ॥ ४१-४२ ॥

घोर पवन तथा कुम्भीपाक—जैसे नरकों में जो अपने पापकर्मी के फल भोग रहे हैं, उनके उद्धार के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ। प्रेतलोक में जाकर अन्यान्य यातनाओं से सताये जानेवालों को उबारने के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ। यमदूतों द्वारा अनेक यातनाओं में जो पीने जा रहे हैं, ऐसे लोगों को उबारने के लिए में यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ। समस्त नरकों एवं सभी प्रकार की यातनाओं में अपने पापकर्मों के कारण दुःख भोगनेवालों को उबारने के लिए मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ ॥ ४३-४६ ॥

पशु की योनि में उत्पन्न हो चुके हैं, नीच पक्षी, कीट एवं सरकनेवाले सर्प आदि योनियों में जिनका जन्म हो चुका है, अथवा वृक्षों की योनि में जो उत्पन्न हो चुके हैं-उन सबको उबारने के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ। अपने कर्मों के अनुसार अनेक सहस्र जातियों में उत्पन्न हो-होकर जो दुःख भोग रहे हैं, जिन्हें मानवयोनि अब दुर्लभ हो चुकी है, ऐसे लोगों को उबारने के लिए मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ ॥ ४७-४८ ॥

दिव्य लोक, अन्तरिक्षलोक एवं शूमिलोक में उपस्थित अपने बन्धुवर्गों एवं अपने पितरों को उबारने के लिए, जो कभी मृत्यु को प्राप्त हुए परन्तु संस्कार नहीं हुए, मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ। जो हमारे पितरगण इस समय प्रेत रूप में वर्तमान हैं, वे हमारे इस पिण्डदान से सर्वदा के लिए तृप्ति लाभ करें ॥ ४९-५० ॥

जो हमारे इस जन्म के बान्धव अथवा गबान्धव हैं, जो हमारे अन्य जन्मों के बान्धव हैं, उन सबको हमारा दिया हुआ यह पिण्ड अक्षय तृप्ति करनेवाला हो। पिता के वंश में जो मर चुके हैं, माता के वंश में जो मर चुके हैं, हमारे गुरु, श्वसुर एवं बन्धुवर्गों के वंश में जिनकी मृत्यु हो चुकी है, जो कोई अन्य वन्धु-बान्धव मृत्यु को प्राप्त हुए हों, हमारे कुल में उत्पन्न होनेवाले ऐसे लोग, जिनको पिण्डदान करनेवाला कोई नहीं हैं, पुत्र स्त्री आदि से जो रहित रहे, जिनकी क्रिया लुप्त हो गयी, जन्म से ही जो अन्धे थे, पंगु थे, कुरूप थे, गर्भावस्था में जिनकी मृत्यु

आ ब्रह्मणो ये पितृवंशजाता मातुस्तथा वंशभवा मदीयाः ।
कुलद्वये ये मम दासभूता भृत्यास्तथैवाश्रितसेवकाश्च ॥ ५४ ॥
मित्राणि शिष्याः पशवश्च वृक्षा दृष्टा ह्यदृष्टाश्च कृतोपकाराः ।
जन्मान्तरे ये मम संगताश्च तेभ्यः स्वधा पिण्डमहं ददामि ॥ ५५ ॥

एतैश्च सर्वमन्त्रैस्तु स्त्रीलिङ्गान्तं समूह्य च । पिण्डान्दद्याद्यथा पूर्वं स्त्रीणां मात्रादिकक्रमात् ॥ ५६ ॥
स्वगोत्रे परगोत्रे वा दंपत्योः पिण्डपातनम् । अपृथङ् निष्फलं श्राद्धं पिण्डं चोदकतर्पणम् ॥ ५७ ॥
पिण्डपात्रे तिलान्क्षिप्त्वा पूरयित्वा कुशोदकैः । मन्त्रेणानेन पिण्डांस्तान्प्रदक्षिणयथाक्रमम् ॥
परिषिच्य त्रिधा सर्वान्प्रणिपत्य समापयेत् ॥ ५८ ॥
पितॄन्विसृज्य चाऽऽचम्य साक्षिणः श्रावयेत्सुरान् । साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा ॥
मया गयां समासाद्य पितॄणां निष्कृतिः कृता ॥ ५९ ॥
आगतोऽस्मि गयां देव पितृकार्ये गदाधर । त्वमेव साक्षी भगवन्ननृणोऽहमृणत्रयात् ॥ ६० ॥
सर्वस्थानेषु चैवं स्यात्पिण्डदानं तु नारद । प्रेतपर्वतमारभ्य कुर्यात्तीर्थेषु च क्रमात् ॥ ६१ ॥
तिलमिश्रांस्ततः सक्तून्निःक्षिपेत्प्रेतपर्वते । अपसव्येन देवर्षे दक्षिणाभिमुखेन च ॥ ६२ ॥

हो गयी जिन्हें कोई जानता है कोई नहीं जानता, उन सबको हमारा दिया हुआ यह पिण्ड अक्षय तृप्ति प्रदान करनेवाला हो ॥ ५१-५३ ॥

ब्रह्मा से लेकर हमारे पिता के वंश में जो कोई उत्पन्न हुए हों, तथा मेरी माता के वंश में जो उत्पन्न हुए हों, इन दोनों कुलों को, जो दासता एवं नृत्यता के बन्धन में बंधे हुए थे, आश्रित एवं सेवकों में जिनकी गणना की जाती थी, मित्र थे, शिष्य थे, पशु, वृक्ष, दृष्ट एवं अदृष्ट रूप से उपकारक थे, अन्य जन्म में जिनके साथ हमारी सङ्गति थी, उन सबको उबारने के लिए मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ' ॥ ५४-५५ ॥

इन सभी उपर्युक्त मंत्रों का उच्चारण कर माताओं के लिए क्रमानुसार स्त्रीलिंग विशेषण लगाकर पिण्ड प्रदान करना चाहिए । अपने गोत्र के हों अथवा अन्य गोत्र के हों, स्त्री पुरुष के लिए पिण्डदान की विधि पृथक्-पृथक् विहित है, जो पृथक् रूप में नहीं करता उसका श्राद्ध पिण्डदान एवं वर्पण सभी निरर्थक है । पिण्ड रखने के पात्र में तिल छोड़कर फिर उसको पवित्र जल से पूर्णकर इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए क्रमानुसार प्रदक्षिणापूर्वक पिण्डदान करना चाहिए, तीन बार सिंचन करने के उपरान्त सब को प्रणाम करके पिण्डदान की विधि को समाप्त करना चाहिए ॥ ५६-५८ ॥

पितरों को विसर्जित कर आचमन करके साक्षी रूप में उपस्थित देवताओं को यह सुनाना चाहिए । ब्रह्मा, शिव प्रभृति देवगण! आप लोग हमारे इस कार्य के साक्षी रहें कि मैं गया में आकर अपने पितरों के उद्धार का कार्य सम्पन्न कर चुका देव! गदाधर । केवल पितृकार्य के लिए मैं गया आया हुआ था, भगवन्! आप ही इसके साक्षी हैं, मैं अब अपने तीनों ऋणों से मुक हूँ । देवर्षि नारद जी प्रायः सभी तीर्थ स्थानों में पिण्डदान की यही विधि है, सर्वप्रथम प्रेत पर्वत पर आरम्भ कर क्रमानुसार सभी स्थानों में उक्त क्रम से श्राद्ध करना चाहिए । प्रेत पर्वत पर तिलमिश्रित सत् दक्षिणाभिमुख एवं अपसव्य होकर छोड़ना चाहिए ॥ ५९-६२ ॥

ये केचित्प्रेतरूपेण वर्तन्ते पितरो मम । ते सर्वे तृप्तिमायान्तु सक्तुभिस्तिलमिश्रितैः ॥ ६३ ॥
आब्रह्मस्तम्बचर्यन्तं यत्किंचित्सचराचरम् । मया दत्तेन तोयेन तृप्तिमायान्तु सर्वशः ॥ ६४ ॥
प्रेतत्वाच्च विमुक्ताः स्युः पितरस्तस्य नारद । प्रेतत्वं तस्य माहात्म्यात्कुले चापि न जायते॥ ६५ ॥
नाम्ना प्रेतशिला ख्याता गयाशिरसि मुक्तये । तीर्थमन्त्रादिरूपेण स्थितश्चादिगदाधरः ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नामाष्टचत्त्वरिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

* * *

जो कोई हमारे पितरगण प्रेत रूप में कहाँ विद्यमान हों, वे इस तिलमिश्रित सत्तू के दान से तृप्ति लाभ करें। ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त इन चराचर जीव-योनियों में जो भी हमारे पितरगण हो, वे मेरे दिये इस जलदान से सर्वाशितः वृप्ति लाभ करें ॥ ६३-६४ ॥

नारद जी । इस विधि से ब करनेवाले प्राणियों के पितरगण निश्चय ही प्रेत योनि से छुटकारा पा जाते हैं। यही नहीं प्रत्युत उसके इस शुभ कर्म के माहात्म्य से उसके कुल में कोई प्रेतयोनि में नहीं जाता। गयाशिर में यह प्रेत-शिला केवल प्रेतों की विमुक्ति के लिए है, तीर्थ मंत्रादि के रूप में आदिगदाधर देव भी वहाँ इसी सदाशय से विराजमान है ॥ ६५-६६ ॥

श्रीवायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपसंहारपाद में गयामाहात्म्य नामक अडतालीसवें अध्याय (एक सौ दसवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरञ्जन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४८ ॥**

* * *

अथोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

सनत्कुमार उवाच

आदौ तु पञ्चतीर्थेषु चोत्तरे मानसे विधिः । आचम्य कुशहस्तेन शिरश्चाभ्युक्ष्य वारिणा ॥ १ ॥
उत्तरं मानसं गच्छेन्मन्त्रेण स्नानमाचरेत् । उत्तरे मानसे स्नानं करोम्यात्मविशुद्धये ॥ २ ॥
सूर्यलोकादिसंसिद्धिसिद्धये पितृमुक्तये । देवादींस्तर्पयित्वाथ श्राद्धं कुर्यात्सपिण्डकम् ॥ ३ ॥
मानसं हि सरो ह्यत्र तस्मादुत्तरमानसम् । सूर्यं नत्वाऽर्चयित्वाऽथ सूर्यलोकं नयेत् पितॄन् ॥ ४ ॥
नमो भगवते भर्त्रे सोमभौमज्ञरूपिणे । जीवभार्गवसौरेयराहुकेतुस्वरूपिणे ॥ ५ ॥
उत्तरान्मानसान्मौनी व्रजेद्दक्षिणमानसम् । उदीचीतीर्थमित्युक्तं तत्रौदीच्यं विमुक्तिदम् ॥
अत्र स्नातो दिवं याति स्वशरीरेण मानवः ॥ ६ ॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

(एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय)

गया माहात्म्य

सनत्कुमार ने कहा—हे नारद जी! सर्वप्रथम उत्तर मानस में स्थित पाँचों तीर्थों में किस प्रकार श्राद्धादि कर्म सम्पन्न करना चाहिए, इसकी विधि कहता हूँ। आचमन कर हाथ में कुशा लेकर सिर पर जल द्वारा सिंचन करे। फिर उत्तरमानस तीर्थ की यात्रा करे और यहाँ आकर इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए स्नान करे। आत्मविशुद्धि के लिए मैं उत्तरमानस तीर्थ में स्नान कर रहा हूँ ॥ १-२ ॥

सूर्य लोक प्रभृति लोकों में प्राप्त होने वाली सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए तथा अपने पितरों की मुक्ति के लिए यह स्नान कर रहा हूँ। स्नान के लिए तर्पण करने के बाद पिण्ड श्राद्ध करे। मानस नामक सरोवर यहाँ वर्तमान है। अत: उसका उत्तरमानस नाम पड़ा है। वहाँ सूर्य को नमस्कार एवं पूजन करने वाला अपने पितरों को सूर्य लोक पहुँचाता है ॥ ३-४ ॥

परम ऐश्वर्यशाली, पालक, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु स्वरूप सूर्यदेव को हमारा नमस्कार है। इस प्रकार सूर्य को नमस्कार करने के बाद मौन धारण कर उत्तरमानस से दक्षिणमानस की यात्रा करनी चाहिए। वह उदीची का तीर्थ कहा जाता है। वह औदीच्य तीर्थ मुक्ति देने वाला है। इस तीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य अपने शरीर से स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है ॥ ५-६ ॥

मध्ये कनखलं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । स्नातः कनकवद्भाति नरो याति पवित्रताम् ॥ ७ ॥
तस्य दक्षिणभागे च तीर्थं दक्षिणमानसम् । दक्षिणे मानसे चैव तीर्थत्रयमुदाहृतम् ॥ ८ ॥
स्नात्वा तेषु विधानेन कुर्याच्छ्राद्धं पृथक्पृथक् । दक्षिणे मानसे स्नानं करोम्यात्मविशुद्धये ॥ ९ ॥
सूर्यलोकादिसंसिद्धिसिद्धये पितृमुक्तये । ब्रह्महत्यादिपापौघयातनाया विमुक्तये ॥ १० ॥
दिवाकर करोमीह स्नानं दक्षिणमानसे । नमामि सूर्यं तृप्त्यर्थं पितॄणां तारणाय च ॥
पुत्रपौत्रधनैश्वर्यायाऽऽयुरारोग्यवृद्धये ॥ ११ ॥
फल्गुतीर्थं व्रजेत्तस्मात्सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् । मुक्तिर्भवति कर्तॄणां पितॄणां श्राद्धतः सदा ॥ १२ ॥
ब्रह्मणा प्रार्थितो विष्णुः फल्गुको ह्यभवत्पुरा । दक्षिणाग्नौ हुतं तत्र तद्रजः फल्गुतीर्थकम् ॥ १३ ॥
तीर्थानि यानि सर्वाणि भुवनेष्वखिलेष्वपि । तानि स्नातुं समायान्ति फल्गुतीर्थं सुरैः सह ॥ १४ ॥
गङ्गा पादोदकं विष्णोः फल्गुर्ह्यादिगदाधरः । स्वयं हि द्रवरूपेण तस्माद्गङ्गाधिकं विदुः ॥ १५ ॥
अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः समाचरेत् । नासौ तत्फलमाप्नोति फल्गुतीर्थे यदाप्नुयात् ॥ १६ ॥
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा तर्पणं श्राद्धमाचरेत् । सपिण्डकं स्वसूत्रोक्तं नमेदथ पितामहम् ॥ १७ ॥

तीनों लोकों में विख्यात कनखल नामक तीर्थ गया के मध्यभाग में अवस्थित है, वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य सुवर्ण की तरह कान्तिमान् एवं परम पुनीत होता है । उसके दक्षिण भाग में दक्षिण मानस नामक तीर्थ है। दक्षिण मानस में तीन तीर्थ कहे जाते हैं । इन तीनों तीर्थों में विधिपूर्वक स्नान कर पृथक् पृथक् श्राद्ध कर्म करना चाहिए । आत्म विशुद्धि के लिए दक्षिणमानस तीर्थ में स्नान कर रहा हूँ-इस प्रकार मन में संकल्प करे॥ ७-९ ॥

सूर्य लोक प्रभृति लोकों में प्राप्त होने वाली सिद्धियों की प्राप्ति के लिए, पितरों की मुक्ति के लिए, ब्रह्महत्या, घोर पापकर्मों एवं यातनाओं से छुटकारा प्राप्त करने के लिए, हे दिवाकर हे देव! मैं इस दक्षिण मानस तीर्थ में स्नान कर रहा हूँ, इस प्रकार सूर्य को नमस्कार कर एवं उनकी पूजा कर मनुष्य अपने पितरों को स्वर्ग लोक पहुँचाता है ॥ १०-११ ॥

हे सूर्यदेव ! मैं आपकी तृप्ति एवं पितरों को तारने के लिए नमस्कार कर रहा हूँ । पुत्र, पौत्र, धन, ऐश्वर्य, आयु एवं आरोग्य की वृद्धि के लिए नमस्कार कर रहा हूँ ।

इसके बाद सभी तीर्थों में श्रेष्ठ फल्गु तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए । वहाँ पर श्राद्ध करने से उन करने वालों की एवं उनके पितरों की सर्वदा मुक्ति होती है ।

ब्रह्मा की प्रार्थना पर प्राचीनकाल में भगवान् विष्णु स्वयं फल्गु रूप में प्रतिष्ठित हुए । यज्ञ की दक्षिणाग्नि में आहुति रूप में पड़ा हुआ रज फल्गुतीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ ॥ १२-१४ ॥

इस भुवन मण्डल में जितने भी तीर्थ समूह हैं वे देवताओं के साथ इस फल्गुतीर्थ में स्नान करने के लिए आते हैं । गङ्गा भगवान् विष्णु की पादोदक स्वरूप हैं । किन्तु फल्गु तीर्थ तो स्वयं आदि गदाधर स्वरूप है । स्वयं द्रव्य रूप में वे आदि गदाधर की मूर्ति में स्थित हैं । यही कारण है कि गङ्गा से अधिक उन आदि गदाधर का माहात्म्य लोग बताते है ॥ १५-१६ ॥

जो व्यक्ति एक लाख अश्वमेध यज्ञ करता है, वह भी इतना फल नहीं प्राप्त करता, जितना फल्गु तीर्थ

नमः शिवाय देवाय ईशाय पुरुषाय वै । अघोरवामदेवाय सद्योजाताय शम्भवे ॥ १८ ॥
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् । आत्मानं तारयेत्सद्यो दश पूर्वान्दशापरान् ॥ १९ ॥
नत्वा गदाधरं देवं मन्त्रेणानेन पूजयेत् । ॐ नमो वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय श्रीधराय च विष्णवे ॥ २० ॥
पञ्चतीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् । अमृतैः पञ्चभिः स्नानं पुष्पवस्त्राद्यलंकृतम् ॥
न कुर्याद्यो गदापाणेस्तस्य श्राद्धं निरर्थकम् ॥ २१ ॥
नागकूटाद्गृध्रकूटाद्युपादुत्तरमानसात् । एतद्गयाशिरः प्रोक्तं फल्गुतीर्थं तदुच्यते ॥ २२ ॥
प्रथमेऽह्नि विधिः प्रोक्तो द्वितीये दिवसे व्रजेत् । धर्मारण्यं तत्र धर्मो यस्माद्यज्ञमकारयत् ॥
गमनाद् ब्रह्मलोकाप्तिर्भवत्येव हि नारद ॥ २३ ॥
मतङ्गवाप्यां यः स्नात्वा तर्पणं श्राद्धमाचरेत् । गत्वा नत्वा मतङ्गेशमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ २४ ॥
प्रमाणं देवताः सन्तु लोकपालाश्च साक्षिणः । मयागत्य मतङ्गेऽस्मिन्पितॄणां निष्कृतिः कृता ॥ २५ ॥
पूर्वं हि ब्रह्मतीर्थे च कूपे श्राद्धादि कारयेत् । तत्कूपयूपयोर्मध्ये सर्वांस्तारयते पितॄन् ॥
धर्मं धर्मेश्वरं नत्वा महाबोधितरुं नमेत् ॥ २६ ॥

में स्नान करने वाला पाता है । फल्गु तीर्थ में स्नान कर मनुष्य को तर्पण एवं सपिण्ड श्राद्ध कर्म अपने गृह्यसूत्र के अनुसार करना चाहिए । फिर पितामह को नमस्कार करना चाहिए । शिव, ईश, पुरुष स्वरूप देव को हमारा नमस्कार है । अघोर, वामदेव, सद्योजात एवं शम्भु उपाधि धारण करने वाले देवों के देव महादेव को हमारा नमस्कार है ॥ १७-१९ ॥

फल्गु तीर्थ में स्नान कर आदि गदाधर देव का दर्शन करने वाला मनुष्य अपने को तो तारता ही है, अपने से दस पीढ़ी पूर्व एवं दस पीढ़ी बाद में होने वालों को भी तुरन्त तारता है । आदि गदाधर देव का इस मन्त्र से नमस्कार कर पूजन करना चाहिए । तदनन्तर प्रणव ओंकार का उच्चारण करके यह कहे कि श्री भगवान् वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, श्रीधर, विष्णु प्रभृति नाम वाले को हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥ २०-२१ ॥

पाँचों तीर्थों में स्नान करने वाला व्यक्ति अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है । जो व्यक्ति पञ्चामृत द्वारा स्नान करा कर सुन्दर पुष्प वस्त्रादि से अलंकृत करके भगवान् गदाधर की पूजा नहीं करता उसकी सारी श्राद्ध क्रिया निरर्थक है । नागकूट से गृध्रकूट, गृध्रकूट से यूप एवं यूप से उत्तरमानस ये ही गयासुर के शिरोभाग कहे जाते हैं। इन्हीं को फल्गु तीर्थ कहते हैं । प्रथम दिन में किये जाने वाले विधानों को कहा जा चुका है । इसके बाद दूसरे दिन धर्मारण्य की यात्रा करनी चाहिए । इसी धर्मारण्य में भगवान् ब्रह्मा ने उक्त यज्ञ का अनुष्ठान किया था । हे नारद जी! इस पुनीत धर्मारण्य में गमन मात्र से मनुष्य को मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥ २२-२४ ॥

फिर मतङ्ग वापी में स्नान कर तर्पण एवं श्राद्ध करना चाहिए । वहाँ जाकर मतङ्गेश को नमस्कार कर इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ।

हे लोकपाल देवगण! आप हमारे इस कार्य में साक्षी रहें कि मैं इस मतङ्ग तीर्थ में आकर अपने पितरों का उद्धार कर चुका । प्रथमतः ब्रह्मतीर्थ में जाकर कूप पर श्राद्धादि करना चाहिए । उस कूप एवं यूप के मध्यभाग

नमस्तेऽश्वत्थराजाय ब्रह्मविष्णुशिवात्मने । बोधिद्रुमाय कर्तॄणां पितॄणां तारणाय च ॥ २७ ॥
येऽस्मत्कुले मातृवंशे बान्धवा दुर्गतिं गताः। त्वद्दर्शनात्स्पर्शनाच्च स्वर्गतिं यान्तु शाश्वतीम् ॥ २८ ॥
ऋणत्रयं मया दत्तं गयामागत्य वृक्षराट् । त्वत्प्रसादान्महापापाद्विमुक्तोऽहं भवार्णवात् ॥ २९ ॥
तृतीये ब्रह्मसरसि स्नात्वा श्राद्धं सपिण्डकम् । कृत्वा सर्वप्रमाणेन मन्त्रेण विधिवत्सुत ॥ ३० ॥
स्नानं करोमि तीर्थेऽस्मिन् ऋणत्रयविमुक्तये । तत्कूपयूपयोर्मध्ये ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ॥ ३१ ॥
यागं कृत्वोत्थितो यूपो ब्रह्मणा यूप इत्यसौ । कृत्वा ब्रह्मसरः श्राद्धं सर्वांस्तारयते पितॄन् ॥ ३२ ॥
यूपं प्रदक्षिणीकृत्य वाजपेयफलं लभेत् । ब्रह्माणं च नमस्कृत्य ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन् ॥ ३३ ॥
नमोऽस्तु ब्रह्मणेऽजाय जगज्जन्मादिरूपिणे । भक्तानां च पितॄणां च तारकाय नमो नमः ॥ ३४ ॥
गोप्रचारसमीपस्था आम्रा ब्रह्मप्रकल्पिताः । तेषां सेचनमात्रेण पितरो मोक्षगामिनः ॥ ३५ ॥
आम्रं ब्रह्मसरोद्भूतं ब्रह्मदेवमयं तरुम् । विष्णुरूपं प्रसिञ्चामि पितॄणां मुक्तिहेतवे ॥ ३६ ॥
एको मुनिः कुम्भकुशाग्रहस्त आम्रस्य मूले सलिलं ददामि ।
आम्रश्च सिक्तः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा ॥ ३७ ॥

में श्राद्धादि सम्पन करने वाला मनुष्य अपने समस्त पितरों का उद्धार करता है । वहाँ पर धर्म धर्मेश्वर को नमस्कार कर महाबोधि वृक्ष को नमस्कार करना चाहिए ॥ २५-२७ ॥

ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवस्वरूप हे अश्वत्थराज ! हे बोधि वृक्ष ! आपको हमारा नमस्कार है । यहाँ पर श्राद्धादि करने वाले एवं उसके पितरों के तारने के लिए मैं यह श्राद्ध क्रिया कर रहा हूँ । हमारे पिता के तथा माता के वंश में उत्पन्न होकर जो बान्धवगण दुर्गति भोग रहे हैं, आपके दर्शन एवं स्पर्श के करने से सर्वदा के लिए स्वर्गलोक की प्राप्ति करें । हे वृक्षराज! इस गयापुरी में आकर मैं अपने तीनों ऋणों से मुक्त हो गया हूँ । अपकी कृपा से मैं महान् पापों से मुक्त हो गया हूँ ॥ २८-३० ॥

तीसरे दिन ब्रह्म सरोवर में स्नान कर सभी प्रकार की विधियों से संयुक्त, मन्त्रोच्चारण करके सपिण्ड श्राद्ध करे । तीनों ऋणों की मुक्ति प्राप्त करने की कामना से मैं इस तीर्थ में स्नान कर रहा हूँ । इस प्रकार उस कूप और यूप के मध्य में श्राद्ध सम्पन्न करने वाला व्यक्ति अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है । ब्रह्मा ने यज्ञ समाप्ति के बाद उक्त यूप (यज्ञ स्तम्भ) की प्रतिष्ठा की थी । तभी से उसकी प्रसिद्धि है । ब्रह्म सरोवर में श्राद्ध करके मनुष्य अपने सभी पितरों को तारता है ॥ ३१-३३ ॥

उक्त यूप की प्रदक्षिणा करके वाजपेय यज्ञ की फल-प्राप्ति होती है । ब्रह्मा को नमस्कार करने वाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति कराता है । अजन्मा, समस्त चराचर जगत् के आदि कर्ता भगवान् ब्रह्मा को हमारा नमस्कार है, अपने भक्तों एवं पितरों के उद्धारक ब्रह्मा जी को बारम्बार हमारा नमस्कार है ॥ ३४-३५ ॥

गोत्रोच्चार के समीप में ब्रह्मा द्वारा लगाये गये आम्र के वृक्ष हैं । उनके ध्यान मात्र से पितरगण मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं । ब्रह्मसरोवर में उत्पन्न होने वाले आम्र के वृक्ष ब्रह्मदेवमय है, स्वयं विष्णु के स्वरूप हैं. पितरों की मुक्ति की कामना से मैं इनका सिञ्चनं कर रहा हूँ । अपने हाथों में घड़ा और कुश लेकर एक मुनि आम्र के मूल में जल देते हुए आम्र को सींचते हैं, और अपने पितरगणों की भी तृप्ति करते हैं, उनकी एक ही क्रिया दो

ततो यमबलिं दद्यान्मन्त्रेणानेन संयतः । यमराजधर्मराजौ निश्चलार्थं व्यवस्थितौ ॥
ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि पितॄणां मुक्तिहेतवे ॥ ३८ ॥
ततः श्वानबलिं दद्यान्मन्त्रेणानेन नारद । द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ ॥
ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि रक्षेतां पथि सर्वदा ॥ ३९ ॥
ततः काकबलिं दद्यान्मन्त्रेणानेन नारद । ऐन्द्रवारुणवायव्ययाम्या वै नैर्ऋतास्तथा ॥
वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं समर्पितम् ॥ ४० ॥
फल्गुतीर्थे चतुर्थेऽह्नि स्नानादिकमथाचरेत् । गयाशिरस्यथ श्राद्धं पादे कुर्यात्सपिण्डकम् ॥
साक्षाद्गयाशिरस्तत्र फल्गुतीर्थाश्रितं कृतम् ॥ ४१ ॥
नागाज्जनार्द्दनाद्ब्रह्मयूपाच्चोत्तरमानसात् । एतद्गयाशिरः प्रोक्तं फल्गुतीर्थं तदुच्यते ॥ ४२ ॥
पितामहं समासाद्य यावदुत्तरमानसम् । फल्गुतीर्थं तु विज्ञेयं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ४३ ॥
क्रौञ्चपादात्फल्गुतीर्थं यावत्साक्षाद्गयाशिरः । मुखं गयासुरस्यैतत्तस्माच्छ्राद्धमिहाक्षयम् ॥ ४४ ॥
मुण्डपृष्ठान्नगाधस्तात्साक्षात्तत्फल्गुतीर्थकम् । आद्यो गदाधरो देवो व्यक्ताव्यक्तात्मना स्थितः ॥
विष्ण्वादिपदरूपेण पितॄणां मुक्तिहेतवे ॥ ४५ ॥
एतद्विष्णुपदं दिव्यं दर्शनात्पापनाशनम् । स्पर्शनात् पूजनाद्वाऽपि पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ ४६ ॥

प्रयोजनों की सिद्धि करने में प्रसिद्ध हुई । तदनन्तर इस मन्त्र से स्वस्थ चित्त होकर यमराज को बलि प्रदान करना चाहिए । यमराज और धर्मराज—ये दोनों गयासुर को निश्चल करने के लिए यहाँ विशेष रूप से स्थित हैं । अपने पितरों की मुक्ति की कामना से मैं उन दोनों को बलि प्रदान कर रहा हूँ ॥ ३६-३९ ॥

नारद जी ! तदनन्तर श्वानों के लिए बलि प्रदान करना चाहिए, वैवस्वत के कुल में उत्पन्न होनेवाले जो दोनों श्यामल और चितकबरे श्वान हैं, उन्हें, मैं बलि दे रहा हूँ, वे मार्ग में सर्वदा हमारी रक्षा करें ॥ ४० ॥

नारद जी ! तदनन्तर काकों के लिए बलि प्रदान करना चाहिए । पूर्व, पश्चिम, वायव्य, दक्षिण, नैर्ऋत कोण एवं दिशाओं में रहनेवाले वायसगण । मैंने आप लोगों के लिए पृथ्वी पर इस पिण्ड को समर्पित किया है, इसे ग्रहण कीजिये । तदनन्तर चौथे दिन फल्गुतीर्थं में स्नानादि करना चाहिए । फिर गयाशिर पर स्थित विष्णुपद पर सपिण्ड श्राद्ध कर्म सम्पन्न करना चाहिए । वहीं पर गयासुर का साक्षात् शिरोभाग है, यह फल्गुतीर्थ उसी के शिरोभाग पर अवस्थित है ॥ ४१-४२ ॥

नाग, जनार्दन, ब्रह्म यूप और उत्तर मानस तक यह गया शिर तीर्थ कहा जाता है । उसी को फल्गुतीर्थ भी कहते हैं । ब्रह्मा के स्थान से लेकर उत्तर मानस तक विस्तृत फल्गु तीर्थ को देवताओं के लिए भी दुर्लभ समझना चाहिए । क्रौञ्चपाद से लेकर गयाशिर तक जो फल्गुतीर्थ है, वह गयासुर का मुख भाग है । इसी कारण से यहाँ पर किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायी होता है ॥ ४३-४५ ॥

मुण्डपृष्ठ गिरि का निम्न प्रदेश भी फल्गु तीर्थ है । वहाँ पर आद्य गदाधर भगवान् अपने व्यक्त एवं अव्यक्त स्वरूप में अवस्थित हैं । पितरों को मुक्ति प्रदान करने के लिए वहाँ भगवान् विष्णु आदि देवताओं के पद विद्यमान हैं । यह दिव्य विष्णु पद केवल दर्शन करने से घोर पापों को नाश करने वाला है । स्पर्श एवं पूजन करने

श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा कुलसाहस्रमात्मना । नयेद् विष्णुपदं दिव्यमनन्तं शिवमव्ययम् ॥ ४७ ॥
श्राद्धं कृत्वा रुद्रपदे नयेत् कुलशतं नरः । सहात्मना शिवपुरं तथा ब्रह्मपदे नरः ॥ ४८ ॥
ब्रह्मलोकं कुलशतं समुद्धत्य नयेत्पितॄन् । कश्यपस्य पदे श्राद्धी ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन् ॥ ४९ ॥
दक्षिणाग्निपदे श्राद्धी पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् । गार्हपत्यपदे श्राद्धी वाजपेयफलं लभेत् ॥ ५० ॥
श्राद्धं कृत्वाहवनीये अश्वमेधफलं लभेत् । श्राद्धं कृत्वा सभ्यपदे ज्योतिष्टोमफलं लभेत् ॥ ५१ ॥
आवसथ्यपदे श्राद्धी पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् । श्राद्धं कृत्वा शक्रपदे इन्द्रलोकं नयेत् पितॄन् ॥ ५२ ॥
अगस्त्यस्य पदे श्राद्धी पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् । क्रौञ्चमातङ्गयोः श्राद्धी ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन् ॥ ५३ ॥
श्राद्धी सूर्यपदे पञ्च पापिनोऽर्कपुरं नयेत् । कार्तिकेयपदे श्राद्धी शिवलोकं नयेत् पितॄन् ॥ ५४ ॥
गणेशस्य पदे श्राद्धी रुद्रलोकं नयेत्पितॄन् । गजकर्णतर्पणकृन्निर्मलं स्वर्नयेत्पितॄन् ॥ ५५ ॥
अन्येषां च पदे श्राद्धी पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् । सर्वेषां काश्यपं श्रेष्ठं विष्णो रुद्रस्य वै पदम् ॥
ब्रह्मणश्च पदं चापि श्रेष्ठं तत्र प्रकीर्तितम् ॥ ५६ ॥
प्रारम्भे च समाप्तौ च तेषामन्यतमं स्मृतम् । श्रेयस्करं भवेत्तत्र श्राद्धकर्तुश्च नारद ॥ ५७ ॥

से भी पापों का नाश होता है, वहाँ पर पितरों को दिया गया दान अक्षय फलकारक होता है । सपिण्ड श्राद्ध कर्म करने वाला मनुष्य अपने साथ अपने सहस्र कुल वालों को भी दिव्य, अव्यय, कल्याणप्रद, अनन्त विष्णु पद को पहुँचाता है ॥ ४६-४८ ॥

रुद्र पद प्रदेश में श्राद्ध करने वाला मनुष्य अपने सौ कुलों का उद्धार करके उन्हें शिवपुर पहुँचाता है। इसी प्रकार ब्रह्म पद प्रदेश में श्राद्ध कर्म सम्पन्न करने वाला अपने सौ कुल के पितरगणों का उद्धार कर उन्हें ब्रह्मलोक को पहुँचाता है । कश्यप पद में श्राद्ध करने वाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है । दक्षिणाग्नि पद प्रदेश में श्राद्ध कर्म करने वाला मनुष्य पितरों को ब्रह्मपुर पहुँचाता है । गार्हपत्य पद प्रदेश में वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥ ४९-५१ ॥

आहवनीय अग्नि प्रदेश में आट करनेवाला अवकासप्राप्त करता है । इसी प्रकार सभ्यारिन चरण प्रदेश में श्राद्ध सम्पन्न करने वाला व्यक्ति ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का फल प्राप्त करता है । आवसथ्य के पद प्रदेश में श्राद्ध करने वाला अपने पितरों को लोक पहुँचाता है । शक्र के पद प्रदेश में श्राद्ध करने वाला पितरों को इन्द्रलोक पहुँचाता है । अगस्त्य के चरण प्रान्त में आद्ध करनेवाला अपने पितरों की ब्रह्मलोक में पहुँचाता है । क्रौञ्च माता के चरणों में श्राद्ध करनेवाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है । सूर्य के चरण प्रान्त में श्राद्ध करनेवाला अपने पाँच पापों के करनेवाले पितरों को सूर्यपुरको पहुँचाता है, कार्तिकेय के चरणों में श्राद्ध सम्पन्न करनेवाला अपने पितरों को शिवलोक पहुँचाता है ॥ ५२-५५ ॥

गणेश के चरणों में श्राद्ध करनेवाला अपने पितरों को शिवलोक पहुँचाता है । गजकर्ण नामक तीर्थ में तर्पण करनेवाला मनुष्य अपने पितरों को स्वर्गलोक पहुंचाता है । इसी प्रकार अन्यान्य देवताओं के चरणों में श्राद्धकर्म सम्पन्न करनेवाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है । किन्तु सभी चरण प्रान्तों में भगवान् विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा एवं कश्यप के चरण प्रान्त श्रेष्ठ कहे जाते हैं ॥ ५६-५७ ॥

कश्यपस्य पदे दिव्ये भारद्वाजो मुनिः पुरा । श्राद्धं कृत्वोद्यतो दातुं पित्रादिभ्यश्च पिण्डकम् ॥ ५८ ॥
शुक्लकृष्णौ ततो हस्तौ पदमुद्भिद्य निर्गतौ । दृष्ट्वा हस्तद्वयं तत्र मुनिः संशयमागतः ॥ ५९ ॥
ततः स्वमातरं शान्तां पप्रच्छ स महामुनिः । कश्यपस्य पदे दिव्ये शुक्ले कृष्णेऽथ वा करे ॥
पिण्डो देयो मया मातर्जनासि पितरं वद ॥ ६० ॥

शान्तोवाच

भारद्वाज महाप्राज्ञ देहि कृष्णाय पिण्डकम् । भारद्वाजस्ततः पिण्डं दातुं कृष्णाय चोद्यतः ॥ ६१ ॥
श्वेतोऽदृश्योऽब्रवीत्तत्र पुत्रस्त्वं हि ममौरसः । कृष्णोऽब्रवीन्मम क्षेत्रं ततो मे देहि पिण्डकम् ॥ ६२ ॥
स्वैरिण्यथाब्रवीद्दातुं क्षेत्रिणे बीजिने ततः । भारद्वाजस्ततः पिण्डं कश्यपस्य पदे ददौ ॥
हंसयुक्त विमानेन ब्रह्मलोकमुभौ गतौ ॥ ६३ ॥
रामो रुद्रपदे श्राद्धे पिण्डदानाय चोद्यतः । पिता दशरथः स्वर्गात्प्रसार्य करमागतः ॥ ६४ ॥
नादात्पिण्डं करे रामो ददौ रुद्रपदे ततः । शास्त्रार्थातिक्रमाद्भीतं रामं दशरथोऽब्रवीत् ॥ ६५ ॥
तारितोऽहं त्वया पुत्र रुद्रलोकमवाप्नुयाम् । हस्ते पिण्डप्रदानेन स्वर्गतिर्न हि मे भवेत् ॥ ६६ ॥
त्वं च राज्यं चिरं कृत्वा पालयित्वा द्विजान्प्रजाः । यज्ञान्सदक्षिणान्कृत्वा विष्णुलोकं व्रजिष्यसि॥ ६७ ॥
पुर्ययोध्याजनैः सार्धं कृमिकीटादिभिः सह । इत्युक्त्वाऽसौ दशरथो रुद्रलोकं परं ययौ ॥ ६८ ॥

नारद जी गया यात्रा के प्रारम्भ एवं अवसान काल में इन सबों में किसी एक में श्राद्ध करने का विधान कहा जाता है, वहाँ पर श्राद्ध करनेवाले को विशेषतया कल्याण प्राप्ति होती है । प्राचीनकाल में कश्यप जी के दिव्य चरणप्रान्त में भारद्वाज मुनि पितरों के लिए श्राद्ध कर्म कर रहे थे, उसी समय जबकि वे पिण्डदान करने को उद्यत हुए थे, चरणों को फोड़कर श्यामल और गौर वर्ण के दो हाथ बाहर निकल पड़े ।

दोनों हाथों को इस प्रकार एकाएक बाहर निकला देखकर भारद्वाज मुनि बड़े सन्देह में पड़ गये और अपनी माता शान्ता से उन्होंने पूछा-हे जननि! कश्यप के दिव्य चरणों में ये शुक्ल एवं कृष्ण वर्ण के जो दो हाथ निकले हुए हैं, उनमें से मुझे किस हाथ में पिण्डदान करना चाहिए । आप पितरों के कार्यों को भली-भाँति जानती हैं । अतः मेरा संशय दूर कीजिये ॥ ५८-६१ ॥

शान्ता ने कहा—हे भारद्वाज ! तुम परम बुद्धिमान् हो । श्यामल हाथ में पिण्डदान करो । माता के आदेशानुसार भारद्वाज श्यामल हाथ में जब पिण्डदान करने को उद्यत हुए तो श्वेत हाथ अदृश्य हो गया और बोला-तू तो मेरा औरस पुत्र है । अतः मुझे पिण्ड प्रदान करो । कृष्ण हाथ ने कहा-मेरा क्षेत्र है, इसलिए मुझे पिण्ड प्रदान करो । तब स्वैरिणी माता ने कहा-हे पुत्र! क्षेत्राधिकारी एवं बीजाधिकारी दोनों को पिण्ड प्रदान करो । तब भारद्वाज ने कश्यप पद में पिण्ड प्रदान किया । जिसके माहात्म्य से वे दोनों ब्रह्मलोक को प्राप्त हुए ॥ ६२-६४ ॥

इसी प्रकार रुद्र के पद पर रामचन्द्र जी पिण्डदान के लिए जब समुद्यत हुए तो उनके पिता दशरथ स्वर्ग लोक से हाथ फैलाये हुए आ गये । किन्तु राम ने हाथ में पिण्डदान न करके रुद्रपद में ही पिण्डदान किया । शास्त्रीय मर्यादा भङ्ग होने के भय से भीत राम से दशरथ ने कहा-हे पुत्र! मैं तुम्हारे द्वारा तार दिया गया । अब शङ्कर के लोक को जा रहा हूँ । सचमुच हाथ में पिण्डदान करने से हमें स्वर्ग प्राप्ति न होती ॥ ६५-६७ ॥

भीष्मो विष्णुपदे श्रेष्ठे आहूय पितरं स्वकम् । श्राद्धं कृत्वोद्यतो दातुं पित्रादिभ्यश्च पिण्डकम् ॥ ६९ ॥
पितुर्विनिर्गतौ हस्तौ गयाशिरसि शन्तनोः । नादात्पिण्डं करे भीष्मो ददौ विष्णुपदे ततः ॥ ७० ॥
शंतनुः प्राह संतुष्टः शास्त्रार्थे निश्चलो भवान् । त्रिकालदृष्टिर्भवतु चान्ते विष्णुश्च ते गतिः ॥ ७१ ॥
स्वेच्छया मरणं चास्तु इत्युक्त्वा मुक्तिमागतः । कनकेशं च केदारं नारसिंहं च वामनम् ॥ ८३ ॥
उदङ्मार्गे समभ्यर्च्य पितॄन्सर्वांश्च तारयेत् ॥ ७२ ॥
गयाशिरसि यः पिण्डान्येषां नाम्ना तु निर्वपेत् । नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः ॥ ७३ ॥
सर्वत्र मुण्डपृष्ठाद्रिः पदैरेभिः सुलक्षितः । प्रयान्ति पितरः सर्वे ब्रह्मलोकमनामयम् ॥ ७४ ॥
हेत्यसुरस्य यच्छीर्षं गदया तद् द्विधा कृतम् । ततः प्रक्षालिता यस्मात्तीर्थं तच्च विमुक्तये ॥
गदालोलमिति ख्यातं सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥ ७५ ॥
गदालोले महातीर्थे गदाप्रक्षालनाद्धरेः । स्नानं करोमि सिद्ध्यर्थमक्षयं पदमाप्नुयाम् ॥ ७६ ॥
पञ्चमेऽह्नि गदालोले स्नात्वा कुर्यात्सपिण्डकम् । श्राद्धं पितॄन्ब्रह्मलोकं नयेदात्मानमेव च ॥ ७७ ॥
ब्रह्मप्रकल्पितान्विप्रान् हव्यकव्यादिनार्चयेत् । तैस्तुष्टैस्तोषिताः सर्वाः पितृभिः सह देवताः ॥ ७८ ॥
कृते श्राद्धेऽक्षयवटे अन्नेनैव प्रयत्नतः । पितॄन्नयेद्ब्रह्मलोकमक्षयं तु सनातनम् ॥ ७९ ॥

तुम भी चिरकाल तक राज्य करके, समस्त प्रजावर्ग एवं ब्राह्मणों का विधिवत् पालन करके प्रचुर दक्षिणा युक्त अनेक यज्ञों का अनुष्ठान करके विष्णु लोक को प्राप्त करोगे । अयोध्यापुरी में निवास करने वाले लोगों के तथा कृमि-कीटादिकों के साथ तुम्हें विष्णुलोक की प्राप्ति होगी । ऐसा कहकर राजा दशरथ परमश्रेष्ठ रुद्रलोक को चले गये ॥ ६८-६९ ॥

इसी प्रकार भीष्म ने परम श्रेष्ठ विष्णुपद पर अपने पितरों का आवाहन कर श्राद्ध करते समय पिण्डदान के लिए उद्यत हुए तो गयाशिर पर उनके पिता राजा शन्तनु के दोनों हाथ बाहर निकल आये । किन्तु उन्होंने हाथों में पिण्डदान न देकर विष्णुपद पर ही पिण्डदान किया । उनके इस निश्चय से शन्तनु को बड़ा सन्तोष हुआ । वे बोले-हे पुत्र! शास्त्रीय मर्यादा के पालन में तुम्हारी निश्चल बुद्धि हो । तुम्हारी दृष्टि त्रिकाल दर्शनी हो । अन्तकाल में भगवान् विष्णु की गति प्राप्त करो । इच्छा करने पर ही मृत्यु की प्राप्ति हो । ऐसा कहकर शन्तनु मुक्ति को प्राप्त हुए । उत्तर मार्ग में कनकेश, केदार, नारसिंह और वामन को भली-भाँति पूजा करके मनुष्य अपने समस्त पितरों का उद्धार करता है ॥ ७०-७३ ॥

गयाशिर में जाकर जिन-जिनके नाम से मनुष्य पिण्डदान करता है, यदि नरक में हैं तो वे पितर स्वर्ग पहुँच जाते हैं । इस प्रकार मुक्ति प्राप्त करते हैं । देवताओं के पदों में मुण्डपृष्ठादि सर्वत्र चिह्नित है । वहाँ पर श्राद्धादि करने से पितरगण विविध ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं । असुरराज हेति का जो सिर था, वह उक्त गदा से दो भागों में विभक्त हो गया था, वहीं पर विष्णु ने गदा को धोया था । यही कारण है कि वह तीर्थ पितरों की मुक्ति के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है । सभी उत्तम तीर्थों में भी वह उत्तम है । उसका नाम गदालोल कहा जाता है ॥ ७४-७६ ॥

उस गदालोल नामक महातीर्थ में भगवान् विष्णु की गदा धोये जाने से ही यह माहात्म्य है । वहाँ पर स्नान

वटवृक्षसमीपे तु शाकेनाप्युदकेन वा। एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता॥ ८०॥
देयं दानं षोडशकं गयातीर्थपुरोधसे। वस्त्रं गन्धादिभिः पुत्रैः सम्यक्संपूज्य यत्नतः॥ ८१॥
एकार्णवे वटस्याग्रे यः शेते योगनिद्रया। बालरूपधरस्तस्मै नमस्ते योगशायिने॥ ८२॥
संसारवृक्षशस्त्रायाशेषपापहराय च। अक्षयब्रह्मदात्रे च नमोऽक्षयवटाय वै॥ ८३॥
कलौ माहेश्वरा लोका येन तस्माद्गदाधरः। लिङ्गरूपोऽभवत्तं च वन्दे श्रीप्रपितामहम्॥ ८४॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नामोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

* * *

करते समय यह सकल्प करे। इस परम पुनीत गदालोल तीर्थ में सिद्धि प्राप्ति की कामना से मैं स्नान कर रहा हूँ, मुझे अक्षय पद की प्राप्ति हो। इस प्रकार पाँचवें दिन गदालोल नामक तीर्थ में स्नान कर सपिण्ड श्राद्ध करने वाला साधक अपने साथ अपने समस्त पितरों को भी ब्रह्मलोक पहुँचाता है। श्राद्ध के उपरान्त ब्रह्मकल्पित ब्राह्मणों को हव्यकव्य आदि सामग्रियों से सन्तुष्ट करे। क्योंकि उनके सन्तुष्ट होने से ही सब पितर एवं देवगण सन्तुष्ट होते हैं॥ ७७-७९॥

अक्षयवट तीर्थ में अन्न द्वारा विधिपूर्वक श्राद्ध करने वाला अपने पितरगणों को अक्षय एवं सनातन ब्रह्मलोक को पहुँचा देता है। वटवृक्ष के समीप शाक अथवा जल द्वारा भी यदि एक विप्र को भोजन करा दिया जाय तो उससे कोटि ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल प्राप्त होता है। गयातीर्थ के पुरोहितों को सोलह प्रकार का दान करके देना चाहिए। वस्त्र एवं सुगन्ध आदि सामग्रियों द्वारा पुत्रों समेत विधिपूर्वक उनकी पूजा करके दान देना चाहिए॥ ८०-८२॥

इस चराचर जगत् के एकार्णव महासमुद्र के रूप में परिणत हो जाने पर जो बालरूपधारी भगवान् वटवृक्ष के पत्ते पर योग निद्रा धारण कर शयन करते हैं, उन योग शायी बालमुकुन्द को हमारा नमस्कार है। संसार रूपी वृक्ष के लिए शस्त्र स्वरूप, निखिल पापों के हरनेवाले, अक्षय ब्रह्म पद प्रदान करने वाले अक्षयवट को हमारा नमस्कार है। कलियुग में लोग शिव के भक्त हैं, उन्हीं के लिए गदाधर देव सर्वत्र लिङ्ग रूप धारण कर विराजमान हैं। उन परम पितामह को हमारा नमस्कार है॥ ८३-८५॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपसंहारपाद में गयामाहात्म्य नामक उन्चासवें अध्याय (एक सौ ग्यारहवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरञ्जन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई॥ ४९॥**

* * *

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः
गयामाहात्म्यम्

सनत्कुमार उवाच

यज्ञं चक्रे गयो राजा बह्वन्नं बहुदक्षिणम् । यत्र द्रव्यसमूहानां संख्या कर्तुं न शक्यते ॥ १ ॥
सिकता वा यथा लोके यथा च दिवि तारकाः । तथा बहुसुवर्णाद्यैरसंख्यातास्तु दक्षिणाः ॥ २ ॥
नैवेह पूर्वे ये केचिन्न करिष्यन्ति चापरे । प्रशंसन्ति द्विजास्तृप्ता देशे देशे सुपूजिताः ॥ ३ ॥
गयं विष्ण्वादयस्तुष्टा वरं ब्रूहीति चाब्रुवन् । गयस्तान्प्रार्थयामास अभिशप्ताश्च ये पुरा ॥ ४ ॥
ब्राह्मणा ते द्विजाः पूता भवन्तु क्रतुपूजिताः । गयापुरीति मन्नम्ना ख्याता ब्रह्मपुरी यथा ॥ ५ ॥
एवमस्तु वरं दत्त्वा तथा चान्तर्दधुः सुराः । गयश्च भोगान्संभुज्य विष्णुलोकं परं ययौ ॥ ६ ॥
विशालायां विशालोऽभूद्राजाऽपुत्रोऽब्रवीद्विजान् । कथं पुत्रादयो मे स्युर्विशालं चाब्रुवन् द्विजाः ॥ ७ ॥

पचासवाँ अध्याय
(एक सौ बारहवाँ अध्याय)
गया माहात्म्य

सनत्कुमार ने कहा—नारद जी ! राजा गय ने अपने राजत्व काल में प्रचुर अन्नों एवं दक्षिणाओंवाले यज्ञों का अनुष्ठान किया था, उनमें व्यय किये गये द्रव्यों की संख्या बतलाना कठिन है ॥ १ ॥

लोक में जितने बालू के कण है, अथवा आकाश में जितने तारे हैं, उतने सुवर्ण की मुद्राओं की उन यज्ञों में दक्षिणा दी गयी थी । भला उनकी संख्या कौन गिन सकता है । इस लोक में वैसे यज्ञ न तो हुए हैं और न भविष्य में कभी होंगे । सभी देशों के रहनेवाले द्विजगण सन्तुष्ट होकर उसकी यशोगाथा का गान करते हैं । उसके इस महान् कार्य से सन्तुष्ट होकर विष्णुप्रभृति देवताओं ने अनुरोध किया-हे गय! तुम वरदान माँगो । गय ने उन देवताओं से कहा-सुरगण! यदि आप लोग सचमुच प्रसन्न हैं तो हमें यह वरदान दें कि प्राचीनकाल में भगवान् ब्रह्मा ने जिन द्विजों को अभिशाप दे दिया था । वे आज से यज्ञों में पूजित होकर पवित्र हो जायँ और यह नगरी गयापुरी मेरे नाम पर ब्रह्मपुरी की तरह विख्यात हो जाय ॥ २-५ ॥

देवगण 'ऐसा ही हो' कहकर और उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर अन्तर्हित हो गये । राजा गय विविध भोगों का उपभोग कर विष्णुलोक को प्राप्त हुए । कालान्तर में विशाला नगरी में विशाल नाम से एक राजा हुआ। उसे कोई सन्तान नहीं थी । ब्राह्मणों से पूछा कि मुझे पुत्रादि की प्राप्ति किस प्रकार होगी ? इस प्रश्न के उत्तर में

गयायां पिण्डदानेन तव सर्वं भविष्यति । विशालोऽपि गयाशीर्षे पिण्डदः पुत्रवानभूत् ॥ ८ ॥
दृष्ट्वाकाशे सितं रक्तं कृष्णं पुरुषमब्रवीत् । के यूयं तेषु चैवैकः सितः प्रोचे विशालकम् ॥ ९ ॥
अहं सितस्ते जनक इन्द्रलोकादिहागतः । मम पुत्र पिता रक्तो ब्रह्महा पापकृत्तमः ॥ १० ॥
अयं पितामहः कृष्ण ऋषयो येन घातिताः । अवीचिनरकं प्राप्तौ मुक्तौ त्वत्पिण्डदानतः ॥ ११ ॥
पितॄन्पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान् । प्रीणयामीति यत्तोयं त्वया दत्तमरिंदम ॥ १२ ॥
तेनास्मद्युगपद्योगो जातो वाक्येन सत्तम । मुक्तिः कृता त्वया पुत्र व्रजामः स्वर्गमुत्तमम् ॥
एवं पुत्रैः पितॄणां च कर्तव्या मुक्तिरुत्तमा ॥ १३ ॥
त्वं च राज्यं चिरं कृत्वा भुक्त्वा भोगांश्च दुर्लभान् । यज्ञान्सदक्षिणान्कृत्वा यायाद्विष्णुपुरं ततः ॥ १४ ॥
एवं लब्धवरो राजा राज्यं कृत्वा दिवं गतः । प्रेतराजः सह प्रेतैर्गया श्राद्धाद्दिवं गतः ॥ १५ ॥
प्रेतः कश्चिद्विमुक्त्यर्थं वणिजं कञ्चिदब्रवीत् । मम नाम्ना गयाशीर्षे पिण्डनिर्वापणं कुरु ॥ १६ ॥
प्रेतभावविमुक्त्यर्थं त्वं गृहाण धनं मम । तद्धनं सर्वमादाय गयाश्राद्धव्ययं कुरु ॥ १७ ॥

ब्राह्मणों ने कहा—राजन् ! गया में पिण्डदान करने से आपको सब कुछ प्राप्त होगा । राजा विशाल भी गयाशिर में पिण्डदान करके पुत्रवान् हुआ ॥ ६-८ ॥

आकाश में उसने रक्तवर्ण, श्वेतवर्ण एवं कृष्णवर्ण के तीन पुरुषों को देखकर उनसे कहा-आप लोग कौन हैं ? उनमें से सर्वप्रथम श्वेत पुरुष ने विशाल से कहा-मैं श्वेत पुरुष तुम्हारा पिता हूँ । इन्द्रलोक से यहाँ आया हुआ हूँ । हे पुत्र ! यह रक्त वर्णवाले हमारे पिता हैं, जो ब्रह्महत्या के कारण महान् पापी हैं ॥ ९-१० ॥

ये कृष्ण वर्णवाले हमारे पितामह हैं । जिन्होंने बहुतेरे ऋषियों का हनन किया है । ये दोनों अवीची नामक नरक में दुःख भोग रहे थे । किन्तु तुम्हारे पिण्डदान से ये दोनों मुक्त हो गये । हे शत्रुकुलनाशक ! तुमने 'मैं अपने पिता, पितामह एवं प्रपितामह लोगों को सन्तुष्ट कर रहा हूँ'-ऐसा संकल्प कर जो जल दान किया था । उसी के प्रभाव से हम तीनों एक साथ ही मुक्त हो गये । मेरे योग्य पुत्र! तुमने हम सबों को दुःख सागर से उबार लिया। अब हम लोग परम सन्तुष्ट होकर उत्तम स्वर्गलोक को जा रहे हैं । सभी पुत्रों को अपने पितरों की इसी प्रकार उत्तम मुक्ति के लिये गया में पिण्ड दान करना चाहिए ॥ ११-१३ ॥

तुम भी चिरकाल तक राज्य-सुख का भोग कर परम दुर्लभ भोगों का उपभोग कर, विपुल दक्षिणा वाले अनेक यज्ञों का अनुष्ठान कर विष्णुपुर को प्राप्त होगे । इस प्रकार अपने पितरों द्वारा वरदान प्राप्त कर राजा विशाल ने चिरकाल तक राज्य सुख का भोग करने के बाद स्वर्ग प्राप्ति की । राजा के पितर भी प्रेतराज अन्यान्य प्रेतों के साथ गयाश्राद्ध के माहात्म्य से स्वर्ग को प्राप्त हुए ॥ १४-१५ ॥

किसी प्रेत ने अपनी मुक्ति के लिए एक बनिये से कहा था कि तुम मेरे नाम से गयाशिर पर पिण्डदान करो ॥ १४-१६ ॥

इससे हमारी प्रेत योनि छूट जायगी, मेरे धन को तुम ले लो मेरे सब धन को तुम लेकर गया श्राद्ध करने में व्यय करो । सारी संपत्ति का छठा अंश मैं तुम्हें पारिश्रमिक के रूप में दे रहा हूँ । अपने नाम गोत्रादि भी यथाक्रम

षोडशपञ्चभागांश्च तुभ्यं वै दत्तवानहम् । स्वनामानि यथान्यायं सम्यगाख्यातवानहम् ॥ १८ ॥
गत्वा गयां गयाशीर्षे प्रेतराजाय पिण्डकम् । समदाद्बन्धुभिः सार्धं स्वपितृभ्यस्ततो ददौ ॥ १९ ॥
प्रेतः प्रेतत्वनिर्मुक्तो वणिक् स्वगृहमागतः । एवं गयस्य शम्भोश्च क्षेत्रं विष्णो रवेस्तथा ॥ २० ॥
उपोषितोऽथ गायत्रीतीर्थे महानदीस्थिते । गायत्र्याः पुरतः स्नात्वा प्रातःसंध्यामुपासयेत् ॥
श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा नयेद् ब्रह्मण्यतां कुलम् ॥ २१ ॥
तीर्थे समुदिते स्नात्वा सावित्र्याः पुरतो नरः । संध्यामुपास्य मध्याह्ने नयेत्कुलशतं दिवम् ॥
पिण्डदानं ततः कुर्यात् पितृणां मुक्तिकाम्यया ॥ २२ ॥
प्राचीसरस्वतीतीर्थे स्नात्वा चापि यथाविधि ।संध्यामुपास्य सायाह्ने विष्णुलोकं नयेत्पितॄन् ॥
बहुजन्मकृतात् सन्ध्यालोपान्मुक्तस्त्रिसन्ध्यकृत् ॥ २३ ॥
विशालायां लेलिहाने तीर्थे च भरताश्रमे । पादाङ्किते मुण्डपृष्ठे गदाधरसमीपतः ॥ २४ ॥
तीर्थे चाकाशगङ्गायां गिरिकर्णमुखेषु च । स्नातोऽथ पिण्डदो ब्रह्मलोकं कुलशतं नयेत् ॥ २५ ॥
देवनद्यां वैतरण्यां स्नातः स्वर्गं नयेत्पितॄन् । स्नातो गोदो वैतरण्यां त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् ॥ २६ ॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं वैतरण्यां तु नारद । एकविंशतिकुलान्याहुस्तारयेन्नात्र संशयः ॥ २७ ॥

तुम्हें बतला रहा हूँ । प्रेत के अनुरोध पर वणिक् ने अपने बन्धुवर्गों के साथ गया की यात्रा की और गयाशिर में जाकर प्रेतराज के लिए पिण्ड प्रदान किया, और उसके बाद अपने पितरों का भौ पिण्डदान किया । प्रेत प्रेत-योनि से मुक्त हो गया और पिण्डदान विधिवत् सम्पन्न करके वणिक् अपने घर आया । गय, शम्भु, विष्णु एवं रवि के क्षेत्रों का माहात्म्य इस प्रकार का है ॥ १७-२० ॥

महानदी के तट पर अवस्थित गायत्री तीर्थ में उपवासकर गायत्री के सामने स्नानकर प्रातःकालीन सन्ध्या का अनुष्ठान करना चाहिए । फिर सपिण्ड श्राद्ध कर्म सम्पन्न करना चाहिए । जो व्यक्ति ऐसा करता है वह अपने कुल को ब्रह्मपद की प्राप्ति कराता है । तदुपरान्त समुदित तीर्थ में गायत्री के सम्मुख स्नान करनेवाला मनुष्य मध्याह की सन्ध्या करके अपने सौ कुलों को स्वर्ग प्राप्त कराता है । मध्याह्न सन्ध्या के बाद पितरों की मुक्ति की कामना से वहाँ पर भी पितरों के लिए पिण्ड दान करना चाहिए ॥ २१-२२ ॥

फिर प्राचीसरस्वती नामक तीर्थ में विधिपूर्वक स्नानकर सायङ्कालीन सन्ध्या करनेवाला अपने पितरों को विष्णुलोक प्राप्त कराता है । अनेक जन्म में सन्ध्या न करने के कारण संचित पापों से उक्त तीनों सन्ध्याओं का करनेवाला मुक्त हो जाता है । तदनन्तर मुण्डपृष्ठ पर्वत पर गदाधर के समीप में उनके चरणों से चिह्नित विशालक्षेत्र में स्थित लेलिहान नामक पवित्र तीर्थ है, जहाँ भरत का आश्रम था, यहीं पर आकाशगङ्गा का प्रवाह प्रवाहित होता है, गिरिकर्ण मुख नामक कई पवित्र तीर्थ भी वहाँ पर हैं, वहाँ पर स्नानकर पिण्डदान करनेवाला अपने सौ कुलों को ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है ॥ २३-२५ ॥

देवनदी वैतरणी में स्नान करनेवाला अपने पितरों को स्वर्गलोक प्राप्त कराता है एवं उसी वैतरणी में स्नानकर गौ दान करनेवाला व्यक्ति अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता है । नारद जी वैतरणी में स्नान करनेवालों के लिए जो फल मैं बतला रहा है, वह सत्य है, सत्य है और सत्य है । ऐसा कहा जाता है कि वैतरणी में स्नान

या सा वैतरणी नाम नदी त्रैलोक्यविश्रुता । सावतीर्णा गयाक्षेत्रे पितॄणां तारणाय वै ॥ २८ ॥
त्रिरात्रोपोषणेनैव तीर्थाभिगमनेन च । अदत्त्वा काञ्चनङ्गाश्च दरिद्रो जायते नरः ॥ २९ ॥
घृतकुल्या मधुकुल्या देविका च महानदी । शिलायाः संगमो यत्र मधुस्त्रवा प्रकीर्तिता ॥ ३० ॥
अयुतं चाश्वमेधानां स्नानकृल्लभते नरः । श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा पिण्डदानं तथैव च ॥
कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेन्नरः ॥ ३१ ॥
दशाश्वमेधिके हंसतीर्थे चामरकङ्कटे । कोटितीर्थे रुक्मकुण्डे पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन् ॥ ३२ ॥
वैतरण्यां घृतकुल्यां मधुकुल्यां तथैव च । कोटितीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरं च यः ॥ ३३ ॥
कोटिजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः । मार्कण्डयेशकोटीशी नत्वा स्यात्पितृवारकः ॥ ३४ ॥
रुक्मपारिजातवने पार्वत्या सह शंकरः । रहस्ये संस्थितो रेमे युगानामयुतं पुरा ॥ ३५ ॥
मरीचिः फलपुष्पार्थं पारिजातवनं गतः । दृष्ट्वा शप्तो महेशेन यत्मात्सुखविघातकः ॥ ३६ ॥
दुःखी भवेति तद्भीतो मरीचिस्तुष्टुवे शिवम् । तुष्टः प्रोवाच तं शंभुवृणीष्व वरमुत्तमम् ॥ ३७ ॥
शापाद्भवतु मुक्तिर्मे मरीचिः प्राह शंकरम् । भवेद्गयायां मुक्तिस्ते शिवोक्तः प्रययौ गयाम् ॥ ३८ ॥

करके गोदान करनेवाला निस्सन्देह अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता है ॥ २६-२७ ॥

तीनों लोकों में अपने अनुपम माहात्म्य के कारण जो परम विख्यात है वह वैतरणी नदी गयाक्षेत्र में पितरों को तारने के लिए अवतरित हुई है । इन पुनीत क्षेत्र को यात्रा करके तीन रात का उपवास करना चाहिए, किन्तु यहाँ आकर सुवर्ण और गौ का जो मनुष्य दान नहीं करता वह दरिद्र होता है ॥ २८-२९ ॥

घृतकुल्या, मधुकुल्या, देविका, महानदी तथा शिला के संगम पर स्थित मधुश्रवा-इन सब में स्नान करनेवाला दस सहस्त्र अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है । सपिण्डक श्राद्ध एवं पिण्डदान करके मनुष्य अपने सौ कुलों को एवं समस्त पितरगणों को नरकयातना से उबारकर विष्णुलोक प्राप्त कराता है ॥ ३०-३१ ॥

दशाश्वमेघ, हंसतीर्थ, अमरकण्टक, कोटितीर्थ तथा रुक्मकुण्ड में पिण्डदान करनेवाला अपने पितरों को स्वर्ग प्राप्त कराता है । वैतरणी, घृतकुल्या, मधुकुल्या तथा कोटितीर्थ में स्नानकर जो मनुष्य कोटीश्वर का दर्शन करता है, वह एक कोटि जन्म तक वेदपारगामी धनयुक्त ब्राह्मण होता है । मार्कण्डेय एवं कोटीश्वर को नमस्कार करके लोग अपने पितरों के उद्धारक होते हैं ॥ ३२-३४ ॥

एक बार रुक्मपारिजात नामक वन में बहुत प्राचीनकाल में महादेव जी पार्वती के साथ दस सहस्त्र युगों तक रहस्यक्रीडा कर रहे थे । संयोगतः फलपुष्पादि चुनने के लिए मरीचि ऋषि उसी पारिजात वन में गये । अपने सुख में विघातक होने के कारण महेश ने मरीचि को शाप दे दिया कि तुम दुःख का अनुभव करो । शाप के भय से भयभीत होकर मरीचि ने शङ्कर की स्तुति की । शिव जी ने सन्तुष्ट होकर कहा कि कोई उत्तम वरदान माँगो ॥ ३५-३७ ॥

मरीचि ने शिव से निवेदन किया कि भगवन्! इस शाप से मेरी मुक्ति हो यही प्रार्थना है । शिव ने कहा कि जाओ तुम्हारी मुक्ति गयातीर्थ में जाने से होगी । शिव के आदेशानुसार मरीचि गया को प्रस्थित हो गये । और

शिलास्थितस्तपस्तेपे सर्वेषां दुष्करं च यत् । मरीचिरीश्वराच्छप्तः कृष्णत्वमगमत्पुरा ॥
तपसा दारुणेनेह स विप्रः शुक्लतां गतः ॥ ३९ ॥
हरिरूचे मरीचिं च वरं वृणु हि पुत्रक । किमलभ्यं त्वयि तुष्टे मरीचिः प्राह माधवम् ॥ ४० ॥
हरशापाद्विमुक्तोऽहं शिला भवतु पावनी । पितृमुक्तिकरी च स्यात्तथेत्युक्त्वा दिवं गतः ॥ ४१ ॥
दिवौकसां पुष्करिणीं समासाद्य नरः शुचिः । यत्र दत्तं पितृभ्यस्तु भवत्यक्षयमित्युतः ॥ ४२ ॥
तत्र स्नातो दिवं याति स्वशरीरेण मानवः । पाप्मानं प्रजहात्येष जीर्णत्वचमिवोरगः ॥
तत्पङ्कजवनं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ॥ ४३ ॥
पाण्डुशिला वै तत्राऽऽस्ते श्राद्धं यत्राक्षयं भवेत् । युधिष्ठिरस्तु तस्यां हि श्राद्धं कर्तुं ययौ मुने ॥ ४४ ॥
तत्र काले पाण्डुनोक्तं मद्धस्ते देहि पिण्डकम् । हस्तं त्यक्त्वा शिलायां च पिण्डदानं चकार सः ॥ ४५ ॥
शिलायां पिण्डदानेन प्रहृष्टो व्यासनन्दनः । वरं ददौ स्वपुत्राय राज्यं कुरु महीतले ॥ ४६ ॥
अकण्टकं तु संपूर्णं त्वं मे त्राता हि पुत्रक ॥ ४७ ॥
स्वर्गं व्रज शरीरेण भ्रातृभिः परिवारितः । दृष्टिमात्रेण संपूतान्नरकस्थां दिवं नय ॥ ४८ ॥
इत्युक्त्वा प्रययौ पाण्डुः शाश्वतं पदमव्ययम् । मतङ्गस्य पदे श्राद्धी ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ॥ ४९ ॥

वहाँ जाकर शिला पर स्थित होकर परम कठोर तपस्या करनी शुरू की । उसे सभी लोग कठिनता से कर सकते थे । महादेव के शाप से जो मरीचि पूर्वकाल में कृष्णवर्ण के हो गये थे वे ही अपने इस कठोर तप के माहात्म्य से शुक्लवर्ण हो गये ॥ ३८-३९ ॥

हरि ने मरीचि से कहा-हे पुत्र कोई वरदान माँगो । मरीचि ने माधव से निवेदन किया । भगवन्! आपके सन्तुष्ट हो जाने पर संसार में कौन-सी वस्तु ऐसी है, जो अलभ्य हो ? मैं जिस शिला पर तप कर शिव शाप से विमुक्त हुआ है, यह शिला परम पुनीत हो जाय । पितरों की मुक्तिदायिनी बन जाय । मरीचि की प्रार्थना को अङ्गीकारकर भगवान् स्वर्ग को चले गये । स्वर्ग निवासी देवगणों की पुष्करिणी के पास पहुँच कर मनुष्य परम पवित्र हो जाता है । वहाँ पर दान देने से पितरों को अक्षयफल की प्राप्ति होती है । वहाँ पर स्नान करने वाला प्राणी सदेह स्वर्ग प्राप्त करता है । अपने समस्त पापकर्मों को वह सर्प के केंचुल की भाँति छोड़ देता है । वहाँ मनोहर पंकजवन पुण्यशील जनों से सुसेवित है ॥ ४०-४३ ॥

वहीं पर पुनीत पाण्डुशिला भी है, जिस पर किया गया श्राद्धकर्म अक्षयफलदायी होता है । मुनि नारद जी । प्राचीनकाल में उस शिला पर जब युधिष्ठिर श्राद्ध करने के लिए गये थे उस समय स्वयं पाण्डु ने आकर कहा कि पुत्र! मेरे हाथों पर पिण्ड प्रदान करो । किन्तु उन्होंने हाथ को छोड़कर शिला पर ही पिण्ड प्रदान किया । शिला पर पिण्ड प्रदान करने से व्यासनन्दन पाण्डु को परम हर्ष प्राप्त हुआ । उन्होंने अपने पुत्र को वरदान दिया कि पुत्र इस सम्पूर्ण पृथ्वीतल पर तुम निष्कण्टक राज्य करो, तुम मेरे उद्धारक हो ॥ ४४-४७ ॥

अपने भाइयों के साथ तुम सदेह स्वर्ग जाओ और अपनी दृष्टि मात्र से नरक निवासियों को पवित्रकर स्वर्ग प्राप्त कराओ । ऐसा कहकर पाण्डु अव्यय शाश्वत पद को चले गये । मतङ्ग पद पर श्राद्ध करने वाला अपने पितरों को स्वर्ग लोक प्राप्त कराता है । विष्णुप्रभृति प्रमुख देवगणों के साथ ब्रह्मा जी ने शमी के गर्भ से मथकर

निर्मथ्याग्निं शमीगर्भे विधिर्विष्ण्वादिभिः सह । लेभे तीर्थं तु यज्ञार्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ५० ॥
मखसंज्ञं तु तत्तीर्थं पितॄणां मुक्तिदायकम् । स्नात्वा च तर्पणं कृत्वा पिण्डदो मुक्तिप्राप्नुयात् ॥ ५१ ॥
पितॄन्स्वर्गं नयेन्नत्वा संगमेऽङ्गारकेश्वरौ । गयाकूटे पिण्डदानादश्वमेधफलं लभेत् ॥ ५२ ॥
भस्मकूटे भस्मनाथं नत्वा च तारयेत्पितॄन् । त्यक्तपापो भवेन्मुक्तः संगमेः स्नानमाचरेत् ॥ ५३ ॥
इष्टिं चक्रेऽश्वमेधाख्यं वसिष्ठो मुनिसत्तमः । इष्टितो निर्गतः शंभुर्वरं वृणु वसिष्ठकम् ॥ ५४ ॥
प्राहेति तं वसिष्ठोऽपि शिव तुष्टोऽसि मे यदि । वस्तव्यं चात्र देवेश तथेत्युक्त्वा शिवः स्थितः ॥ ५५ ॥
पिण्डदो धेनुकारण्ये कामधेनुपदेषु च । स्नात्वा नत्वाऽथ संपूज्य ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ॥ ५६ ॥
कर्दमाले गयानाभौ मुण्डपृष्ठसमीपतः । स्नात्वा श्राद्धादिकं कृत्वा पितॄणामनृणो भवेत् ॥ ५७ ॥
फल्गुचण्डीश्मशानाक्षी मङ्गलाद्याः समर्चयेत् । गयायां च वृषोत्सर्गात्त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् ॥
यत्र तत्र स्थिता देवा ऋषयोऽपि जितेन्द्रियाः ॥ ५८ ॥
आद्यं गदाधरं ध्यायञ्छ्राद्धपिण्डादिदानतः । कुलानां शतमुद्धृत्य ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन् ॥ ५९ ॥
गया गयो गया दित्यो गायत्री च गदाधरः । गया गयासुरश्चैव षड्गया मुक्तिदायकाः ॥ ६० ॥
गयाख्यानमिदं पुण्यं यः पठेत्सततं नरः । शृणुयाच्छ्रद्धया यस्तु स याति परमां गतिम् ॥ ६१ ॥

यज्ञ के लिए अग्नि प्रकट की । इसीलिए वह तीर्थ तीनों लोकों में परम विख्यात हुआ । पितरों को मुक्ति प्रदान करनेवाला वह पुनीत तीर्थ मखतीर्थ के नाम से ख्यात हुआ । वहाँ पर स्नान कर पिण्डदान करने वाला मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥ ४८-५१ ॥

संगम पर स्थित अङ्गारक एवं महादेव को नमस्कार कर मनुष्य अपने पितरों को स्वर्ग प्राप्त कराता है। गया पर्वत पर पिण्डदान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है । भस्मकूट में भस्मनाथ को नमस्कार कर मनुष्य अपने पितरों का उद्धार करता है । संगम में स्नान करनेवाला अपने पापों से रहित होकर मुक्त हो जाता है। मुनिवर वसिष्ठ ने वहाँ पर एक अश्वमेघ यज्ञ किया था । उस यज्ञ से शम्भु उत्पन्न होकर वसिष्ठ से बोले-वरदान मांगो । वसिष्ठ ने कहा-हे शम्भु देव! यदि आप सचमुच हमारे ऊपर प्रसन्न है, तो आप यहाँ पर निवास करें । ऐसा ही होगा' कह कर शिव वहाँ विराजमान हो गये ॥ ५२-५५ ॥

धेनुकारण्य में कामधेनु के पद पर पिण्डदान करने वाला वहाँ पर स्नान एवं नमस्कार करके अपने पितरों को ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है । मुण्डपृष्ठ के समीप गयासुर के नाभिप्रदेश में कर्दमाल नामक तीर्थ है । वहाँ पर स्नान करने तथा श्राद्धादि सम्पन्न करने वाला अपने पितरों के ऋण से मुक्त हो जाता है ॥ ५६-५७ ॥

वहाँ पर विराजमान फल्गु, चण्डी, स्मशानाक्षी एवं मङ्गला आदि देवियों की पूजा करनी चाहिए । गया में वृषोत्सर्ग करने वाला इक्कीस कुलों का उद्धार करता है । इस पुनीत गया तीर्थ में जहाँ देवताओं का निवास है, वहाँ पर जितेन्द्रिय ऋषिगण भी विराजमान रहते हैं ॥ ५८ ॥

आदि गदाधर देव का ध्यान करते हुए श्राद्ध एवं पिण्डादि का दान करने वाला अपने सौ कुलों का उद्धार कर समस्त पितरगणों को ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है । गयागय, गयादित्य, गायत्री, गदाधर, गया एवं गयासुर— ये छह गया मुक्ति प्रदान करने वाले तीर्थ हैं । जो मनुष्य इस पुण्यप्रद गया माहात्म्य को सर्वदा पढ़ता है, अथवा

पाठयेद्वा गयाख्यानं विप्रेभ्यः पुण्यकृन्नरः । गया श्राद्धं कृतं तेन कृतं तेन सुनिश्चितम् ॥ ६२ ॥
गयाया महिमानं च ह्यभ्यसेद् यः समाहितः । तेनेष्टं राजसूयेन अश्वमेधेन नारद ॥ ६३ ॥
लिखेद्वा लेखयेद्वाऽपि पूजयेद्वाऽपि पुस्तकम् । तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीः सुप्रसन्ना भविष्यति ॥ ६४ ॥
उपाख्यानमिदं पुण्यं गृहे तिष्ठति पुस्तकम् । सर्पाग्निचौरजनितं भयं तत्र न विद्यते ॥ ६५ ॥
श्राद्धकाले पठेद्यस्तु गयामाहात्म्यमुत्तमम् । विधिहीनं तु तत्सर्वं पितॄणां तु गयासमम् ॥ ६६ ॥
यानि तीर्थानि त्रैलोक्ये तानि दृष्टानि तत्र वै । येन ज्ञातं गयाख्याने श्रुत वा पठितं मुने ॥ ६७ ॥

सूत उवाच

सनत्कुमारो मुनिपुङ्गवाय पुण्यां कथां चाथ निवेद्य भक्त्या ।
स्वमाश्रमं पुण्यवनैरुपेतं विसृज्य संगीतगुरुं जगाम ॥ ६८ ॥

॥ इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नाम
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

॥ उपसंहारपादः समाप्तः ॥

॥ समाप्तमिदं वायुपुराणम् ॥ ॐ ॥

* * *

जो श्रद्धापूर्वक इसका श्रवण करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। जो पुण्यशाली मनुष्य ब्राह्मणों द्वारा इस पुण्यप्रद गया माहात्म्य का पाठ करवाता है, वह निश्चित रूप से गया श्राद्ध ही करता है। जो मनुष्य समाहित चित्त होकर गया की अनुपमेय महिमाओं का चिन्तन करता है, हे नारद जी ! वह अश्वमेध अथवा राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान कर लेता है। जो गया माहात्म्य की पुस्तक को स्वयं लिखता है, अथवा दूसरे से लिखवाता है अथवा पूजन करता है, उसके घर पर लक्ष्मी सुस्थिर एवं सुप्रसन्न रहती हैं। इस पुण्यप्रद गया माहात्म्य की पुस्तक जिसके घर रहती है उसके घर सर्प, चोर एवं अग्निजनित बाधाओं का भय नहीं रहता। श्राद्धकाल में जो मनुष्य इस पुनीत गया माहात्म्य का पाठ करता है, उसका श्राद्ध विधिवत् न होने पर भी पितरों के लिए गया के समान फलदायी होता है। सारे त्रैलोक्य में जितने भी तीर्थ हैं, वे सभी गयापुरी में देखे गये हैं। हे नारद जी! इस गया माहात्म्य के सम्बन्ध में मैं जितना जानता था और जितना सुना था,वह सब आपको बतला चुका ॥ ५९-६७ ॥

सूतजी ने कहा—इस प्रकार सनत्कुमार मुनिपुङ्गव नारद जी को भक्तिपूर्वक इस कथा को सुनाने के उन सङ्गीत गुरु नारद जी से विदा लेकर पुण्य वन्य प्रदेश में स्थित अपने आश्रम को चले गये ॥ ६८ ॥

श्री वायुमहापुराण में वायुप्रोक्त उपसंहारपाद में गयामाहात्म्य नामक पचासवें अध्याय (एक सौ बारहवें अध्याय) **की डॉ० सुधाकर मालवीय के आत्मज पं० चित्तरञ्जन मालवीय कृत सरला हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५० ॥**

* * *

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अ	
अकण्टकन्तु सम्पूर्णं (उ)	५०.५०
अकरोत् स तनुं	६.९
अकरोत्स नतिं दक्षे	३०.४२
अकस्मात कुपितान् (उ)	३६.११६
अकस्मात तु पुरी शून्या (उ)	३०.५३
अकामयत गायत्री	३१.३९
अकारस्त्वक्षरो ज्ञेय	२०.८
अकारस्त्वथ भूर्लोक	२०.९
अकृतानि तु सप्तैव (उ)	३९.१२
अकृष्टपच्या पृथिवी (उ)	१.१३४
अकेशका ह्योरोमाण: (उ).	८.२६२
अक्रूरमन्धकै: सार्धं (उ)	३४.८५
अक्रूरयज्ञ इत्येते (उ)	३४.८२
अक्रूरस्तु तदा रत्नम् (उ)	३४.५९
अक्रोधना: शान्तिपरा- (उ)	२१.२७
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा	८.१७७
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा	१६.१८
अक्षत्रियाश्च राजानो	५८.४९
अक्षयं तु भवेच्छ्राद्धं (उ)	१५.८८
अक्षयं सार्वकामीयं (उ)	१५.४३
अक्षयत्वं द्विजाश्चैव (उ)	२१.६५
अक्षय ब्रह्मदात्रे च (उ)	४९.१००
अक्षयश्चाप्यनुह्यश्च (उ)	३९.२२५
अक्षया: प्रीतिसंयुक्ता (उ)	३९.२१३
अक्षरं ध्रुवमव्यग्रम (उ)	३९.२१८
अक्षरं परमं ब्रह्मं (उ)	४२.२३
अक्षरस्यात्मनश्चापि (उ)	४२.४४
अक्षरान्न परं किञ्चिसा (उ)	४२.४३
अक्षिणी नासिका श्रोत्रे	१५.११
अक्षुद्रत्वं कृतज्ञत्वं (उ)	१४.३९

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अगन्धरस रूपस्तु	१३.२०
अगमस्त्वनघ: शूरो	२४.१५८
अगम्यगामी च नरो (उ)	३९.१५७
अगस्त्यश्च सभार्यश्च (उ)	४६.५९
अगस्त्यस्य पदे स्नात: (उ)	४६.५७
अगस्त्येनाथ देवर्षे (उ)	४६.४९
अगात्कथममावास्यां	५६.१
अगाधापरमक्षय्यं	६१.११०
अग्न्यभ्याशे वने	११.३२
अग्निक्षेत्रे कृष्यमाणे (उ)	२७.१७
अग्निदग्धाश्च ये (उ)	४८.३७
अग्निध्र: काश्यपश्चैव (उ)	३८.११६
अग्निप्रवेशं कुरुते	१९.३१
अग्निमध्ये तप: कर्तुं (उ)	४५.३६
अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु (उ)	२६.२०९
अग्निर्विकल्पात्	५३.८२
अग्निशर्माणममृतं (उ)	४४.३४
अग्निशर्मापि (उ)	४४.४१
अग्निष्वात्ता बर्हिषद:	३०.२७
अग्निष्वात्तास्तु तां	३०.३१
अग्निष्वात्तास्तु ये	३०.२९
अग्निष्वात्ता: स्मृता: (उ)	११.६८
अग्निष्वात्ता: स्मृता:	३०.६
अग्निष्वात्ता: स्मृता:	५६.६५
अग्नि समित्कुशं (उ)	६.९६
अग्नि: संवत्सर:	३१.५५
अग्नि: सोऽवभृथो	२९.३१
अग्निस्तु मण्डलीभूत्वा	२१.५८
अग्निस्त्वं चार्णवान्	२४.१५९
अग्निहोत्रं हविर्यज्ञमेतत्	१२.३३
अग्ने: प्रजाया: सम्भूति:	१.७०
अग्नेर्जन्म तथा (उ)	११.८५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अग्न्याधानक्रिया	५६.३४
अग्न्यभ्याशे वने वापि	११.३२
अग्न्ये कव्यवाहाय (उ)	१३.५५
अग्नयो नैव दीप्यन्ते	३०.१४६
अग्रत: पृष्ठतो वापि	१९.५
अग्रमद्धूर्युगबलाद्-	८.१३८
अग्रामनगरे चैव	६१.१६१
अग्राम्यैर्वर्त्तयन्ति	६१.९६
अग्राय चैव चोग्राय	५४.७२
अग्रे भूत: प्रजानान्तु (उ)	३८.२३९
अग्रे ससर्ज वै	६.६५
अग्रे ससर्ज वै	९.६५
अघघ्नाय मखघ्नाय (उ)	३५.१८५
अघाय अघशंसाय (उ)	३५.१६२
अघोररूपरूपाय	३०.२०६
अङ्गदर्शनमित्याहु (उ)	२५.३७
अङ्गदश्चन्द्रकेतुश्च (उ)	२६.१८६
अङ्ग दस्याङ्गदीया (उ)	२६.१८७
अङ्गद्वीपं निबोधत्वं	४८.१५
अङ्गद्वीपं यमद्वीपं	४८.१४
अङ्गप्रत्यङ्ग संयोगात्	३१.३३
अङ्ग स जनयामास (उ)	३७.२८
अङ्गात् सुनीथापत्यं (उ)	१.९२
अङ्गानां नन्दनस्यान्ते (उ)	३७.३६३
अङ्गानि धर्मशास्त्रञ्च	१.५५
अङ्गानि वेदाश्चत्वारो	६१.७८
अङ्गारकं तथा सर्प (उ)	५.६९
अङ्गारदाही गरद: (उ)	२१.३३
अङ्गारदाही गरद: (उ)	३९.१६५
अङ्गिर: प्रमुखाश्चैव	३०.८६
अङ्गिरसस्तुसंवर्तो (उ)	४.१०४
अङ्गिरा वेधसश्चैव	५९.९८

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अङ्गुलानां सहस्रन्तु	५९.१२	अणिमा लघिमा चैव	१३.३	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि (उ)	४३.१
अङ्गुष्ठस्य प्रदेशिन्या	८.९८	अणुहस्य तु दायादौ (उ)	३७.१७५	अत ऊर्द्ध्वं ब्रह्मणश्च	१.१२०
अचारांश्च चरांश्चैव (उ)	२.४०	अण्डं हिरण्मयञ्चैव	१.४४	अतः परं किं पुरुषाद-	४६.८
अचिन्त्याः खलु	३४.८	अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः	१.८१	अतः परं त्रिविधाग्नेः	५३.५
अच्छोदकं नामखरो (उ)	१५.७६	अण्डस्यान्तस्त्विमे	४९.१४८	अतः परं प्रवक्ष्यामि (उ)	१८.१
अजकस्य तु दायादो (उ)	२९.५८	अण्डस्यान्तस्त्विमे	५०.७९	अतः परं प्रवक्ष्यामि	३८.१
अजज्ञपतयो नाम ते (उ)	१६.४७	अण्डस्यास्य समन्तातु	४९.१४८	अतः परं प्रवक्ष्यामि	३९.१
अजतुङ्गो शुभे तीर्थे (उ)	१५.४८	अण्डस्यास्य समन्तातु	४९.१५३	अतः परं प्रवक्ष्यामि	५०.६१
अजं देवन्तु पुत्रार्थे (उ)	३०.१९	अण्डानामी दृशानान्तु	४९.१५१	अतः परं प्रवक्ष्यामि (उ)	१६.१
अजः प्रोवाच विष्णुं (उ)	३०.११	अण्डे द्विधाकृतेत्वण्डं (उ)	२२.२७	अतः परं प्रवक्ष्यामि (उ)	१६.१८
अजमीढः पुनर्जातः (उ)	३७.२०४	अर्वाक् च निषधस्याथ	३४.३२	अतः परं प्रवक्ष्यामि (उ)	३९.३०१
अजमीढस्य नीलिन्यां (उ)	३७.१८९	अर्वाक्सुतोऽसि (उ)	३०.१४	अतः परं विधि सौम्यं (उ)	१४.४०
अजमीढस्य पुत्रास्तु (उ)	३७.१६३	अण्डोद्भिजस्वेदजरा-	३.२०	अतः परमिदं भूयो (उ)	३९.२८७
अजश्च परशुश्चैव (उ)	१.३४	अत ऊर्द्ध्वं गृहस्थेषु	१६.११	अतः पर्वाणि वक्ष्यामि	५६.३२
अजश्चैव महातेजा	२३.८६	अत ऊर्द्ध्वं पुनश्चापि	१६.१२	अतः पितॄन प्रवक्ष्यामि	५६.५९
अजातदन्ता ये केचिद् (उ)	४८.३६	अत ऊर्द्ध्वं गतिश्चोक्ता	१.८४	अतः पृथिव्यां वक्ष्यामि	५०.६४
अजातशत्रुर्भविता (उ)	३७.३११	अत ऊर्द्ध्वं निबोधध्वम् (उ)	९.८८	अतः प्रकाशास्ते सर्व्वे	६.४३
अजानां पित्तभेदश्च	३०.३००	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि	११.३	अतः शिष्टान् प्रवक्ष्यामि	५९.१९
अजामुखा वक्रमुखाः (उ)	८.२५७	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि	१२.१	अतः शृणुत भद्रं वः (उ)	८.१९८
अजामुखोऽथ भगवान् (उ)	७.५	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि	१३.१	अतश्च संक्षेपमिमं	१.१८५
अजामेतां लोहतशुक्लकृष्णां	२०.२७	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि	१६.१	अतः सपर्वतो देवैः (उ)	४६.५३
अजामेतां लोहितां	२३.५१	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि	१८.१	अतः सूर्य रथस्याथ	५२.५४
अजायत श्राद्धदेवो (उ)	३४.१८७	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि	१९.१	अतिथीनन्न पानैश्च (उ)	३१.६५
अजास्तथाहिर्बुध्न्यश्च (उ)	५.४३	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि	२०.१	अतिदारुणा दृष्टिविषा-	३९.३५
अजिता ब्राह्मणः पुत्रा	३१.४	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि	३२.१	अतीतकुलकोटीनां (उ)	४८.२२
अजिता हि महाभूमिर्-	११.२५	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि	३४.४	अतीता नागतानां	१.१०९
अजिरो विभुर्विभावश्च	३१.९	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि	४९.७३	अतीता नागतानां च प्रोक्तं	१.११०
अजिष्टः शाक्यनो (उ)	१.६२	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि	५०.५७	अतीता नागतानाञ्च दर्शनं	११.९
अजिह्मानमहीयौ (उ)	१.१२	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि	५८.१	अतीतानागतान्तु	५९.६३
अजीर्णयौवनधराः	४५.४६	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि (उ)	१.६	अतीतानागता ये (उ)	३.६
अजेयत्वं धनेशत्वम् (उ)	३५.१६०	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि	११.१२	अतीतानागते ज्येष्ठाः (उ)	१०.१६
अजैकपादुपस्थेयः	२९.२४	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि (उ)	७.१	अतीतानि च कल्पानि	५.५०
अञ्चरत् स महीं देवः (उ)	३४.२३१	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि (उ)	१०.७९	अतीता वर्तमानाश्च (उ)	३७.२९०
अञ्जनागर्भसम्भूत-	६०.७३	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि (उ)	१९.१	अतीता वर्त्तमानाश्च (उ)	३७.४२७
अञ्जनादञ्जना (उ)	८.२२१	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि (उ)	३७.२८९	अतीता वर्तमानाश्च (उ)	३९.३
अञ्जनाभ्यञ्जनाग- (उ)	१३.५०	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि (उ)	३८.२११	अतीते वर्त्तमानेन	३१.१५
अणिमादियुता सिद्धिः (उ)	३०.१५	अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि (उ)	४०.६७	अतीतेषु अतीतानि	६१.१२६

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अतीतैस्तु सहातीता	५३.७८
अतीत्य परतो घोरम्	४९.१५८
अतीव विस्तरोयस्य (उ)	१७.२
अतोऽत्र विश्वदेवाना-	१.४६
अतो गिरिगृध्रकूट (उ)	४६.६५
अतो देशान् प्रवक्ष्यामि	४५.१३५
अतो नहिति पूजास्तु (उ)	३०.५०
अतोन्यथा तु यः (उ)	१६.७३
अतोपि परमं किञ्चित् (उ)	४२.१०३
अतो ब्रह्मणि सष्टृत्वं	१.४८
अतो भविष्यान् वक्ष्यामि (उ)	३८.२८
अतो मन्वन्तरे चैव	३२.३५
अतो लोकहितैर्नूनं	४२.९३
अतोस्य सह देवायां (उ)	३४.१७७
अतोहं प्रष्टुमिच्छामि (उ)	४२.९५
अत्यद्भुतमिदं सर्वं	२२.१
अत्यद्भूतानि कर्म्माणि (उ)	४१.३
अत्यन्त धार्मिकाः	४५.६१
अत्यरिच्यत भूतात्मा (उ)	३६.७९
अत्यर्थं भ्राजते यस्मात्	५५.३९
अत्याकरालगोज्वाला	४४.१२
अत्युग्रस्य महत्त्वस्य	२५.६८
अत्येति देवानैश्वर्याद्बलेन	१०.६२
अत्र गाथाः पितृगीताः (उ)	११.१०
अत्र गाथा महाराजा (उ)	३१.९३
अत्र यज्ञप्रवृत्तिस्तु	३२.१६
अत्र वः कथयिष्यामि	२२.३
अत्र वंश्या महात्मानस्तेषां	१.१४२
अत्र वोऽहं प्रवक्ष्यामि	७.४
अत्र वो वर्णयिष्येहम् (उ)	५.८५
अत्र वो वर्णयिष्यामि (उ)	१०.१५
अत्र वो वर्त्तयिष्यामि	५९.५६
अत्र शेते च यत्पुर्यां	५९.७६
अत्र संवत्सराः	५७.२९
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं (उ)	३७.२७४
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं (उ)	३७.२८८
अत्रापवर्गिणां तेषाम्	७.३८
अत्रापि मम ते पुत्रा	२३.१४५
अत्राप्युदाहरन्तीमयिति	५५.२
अत्राप्युदाहरन्तीमौ (उ)	४.१३०
अत्राप्युदाहरन्तीमं (उ)	२६.६९
अत्रिमित्रान्वयश्चैव	१.१३३
अत्रिरर्च्चिसनश्चैव	५९.१०४
अत्रिवंश समुत्पन्नो (उ)	१.१०७
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च	३१.१७
अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि (उ)	९.७३
अत्रेः पुत्रं महात्मानं (उ)	९.७७
अत्रेर्वंशं प्रवक्ष्यामि (उ)	९.६७
अत्रेष्टप्रापका धर्मा	५९.२९
अत्रोषधं मूलफलमं (उ)	९.८२
अथकाले गते ज्येष्ठा (उ)	२६.१५९
अथ कालेन महता (उ)	४७.५
अथ किंष्कुतान्यष्टौ	८.१११
अथ केतु रथस्याश्वा	५२.८२
अथ चत्वं पुनश्चैव (उ)	३०.१६
अथ चीन मरुंश्चैव	४७.४४
अथ तं मनसाध्यात्वा	२३.३६
अथ तस्याच्युतः	२४.१७
अथ तस्यामवस्थायाम (उ)	३४.१७४
अथ तेषां पुराणस्य	१.१९
अथ दीर्घेण कालेन	२५.२९
अथ दीर्घेण कालेन (उ)	३०.४७
अथ दुर्योधनो राजा (उ)	३४.८३
अथ दृष्ट्वा महादेवस्तं	३२.१२
अथ देवी सती या	३०.७०
अथ द्वारवती नाम (उ)	३४.५४
अथ पार्श्वे तिलङ्गाश्च	४५.१११
अथ पुत्र सहस्रं (उ)	४.१३४
अथ भूत्वा कुमारी तु	३४.१११
अथ मन्वन्तरेष्वासं (उ)	७.१८
अथ यः पवमानोऽग्निर्-	२९.१०
अथ राजा विवस्वन्तम् (उ)	३४.२३
अथ रुक्मरथस्यापि (उ)	३७.१८३
अथर्वणस्तु दायादाः (उ)	४.८९
अथर्वयजुषां साम्नां	५९.६०
अथर्वाणं द्विधा कृत्वा	६१.४९
अथर्वा तु भृगुर्ज्ञेयोऽप्य-	२९.९
अथवल्ली च गुल्मांश्च (उ)	८.३३३
अथ वा मायया देव	३०.२८३
अथ विज्ञाय योगेन (उ)	३४.९२
अथ विष्णुरुवाचेदं	२५.१०
अथ वेदोक्त निर्यासान् (उ)	१६.१५
अथ वै च्यवनाद्धीमान् (उ)	३७.२०३
अथ वै ध्यानसंयुक्तो	१४.५
अथ सत्यधृतेः पुत्रो (उ)	३७.१८०
अथ सत्यधृतेः शुक्रं (उ)	३७.१९८
अथ सत्यवती गर्भं (उ)	२९.७२
अथ सन्नोदितं	६०.५९
अथ सूर्यस्य तेषाञ्च	५०.१६४
अथाकरोत्पुत्रकामः (उ)	२३.६
अथाग्निः सर्वतो (उ)	४०.११
अथाट्टहासं मुमुचे	२३.१४
अथात्मनि महातेजाः (उ)	३८.१९४
अथात्मनि समस्राक्षीत्	१०.३
अथान्यान् मानसान् पुत्रान्	९.६२
अथापरे जनपदा	४५.१२४
अथापश्यततः पीतामृचं	२६.२३
अथापश्यन्महातेजाः	२३.२३
अथापि कथयेन-	११.५९
अथाब्रुवन पुनः (उ)	४.१२०
अथाभिध्यायतस्तस्य	६.४९
अथाम्भसा कृते लोके (उ)	३८.१७९
अथाश्वमेघो वितते	५७.९२
अथास्य पार्श्वतः	२३.२८
अथास्य सप्तमेऽतीते	२५.९०
अथेमानि तु सूर्यस्य	५१.५९
अथैनमब्रवीद् वाक्यम्	३०.२८७
अथैनां पुत्रकामस्य	२३.१०
अथोऽब्रवीद् हर्षिर्भार्याम् (उ)	८.८६
अथोत्तमं स लोकेषु	२६.१२
अथोवाच महातेजा	५४.९२

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अदत्वा काञ्चनङ्गाश्च (उ)	५०.३८
अदितिर्धर्मशीला तु (उ)	८.३३६
अदृश्यन्त्या समभवन्	२.११
अदृश्यान् सर्वभूतानां	१०.५१
अदृश्यां सर्वभूतानां	२२.७६
अदोषाहं यत: शप्ता (उ)	४५.३०
अद्भिरिदं सगुणाभिस्तु	४.७५
अद्भि: संछादितामुर्वी	६.२३
अद्यते पीयते चैवाप्यन्न	२७.४१
अद्यप्रभृति सर्वेश	२४.५१
अद्य मे सफलं जन्म (उ)	४२.८९
अद्य मे सफलं जन्म (उ)	४४.२६
अद्य वर्षशतं पूर्णं समय:	२५.५५
अद्यापि तानि दृश्यन्ते (उ)	१५.६१
अद्यापि न निवर्त्तन्ते (उ)	४.१५०
अद्रिकायां सुता (उ)	११.६६
अद्रिकालक्षणा चैव (उ)	८.६
अद्रीणां प्रभवे चैव वर्षाणां	२४.९६
अद्रोहश्चाप्यलोभश्च	५७.११६
अद्विषेण ह्यरूपश्च	५९.९७
अद्वेषस्तु सदा कार्यो (उ)	५.१११
अध: प्रमाणमूर्द्धश्च	५०.१
अधरामृत संसिक्त- (उ)	४२.४८
अधर्म सूनवस्ते (उ)	३९.१७७
अधर्मे दीयमानस्य (उ)	३२.१२
अधर्मो धर्मघाताय	५७.९९
अधर्मो बलवानेष	५७.९८
अधश्च भवनं दृष्ट्वा	५७.१०९
अधस्तात्पृथिवीं (उ)	३८.१५८
अधार्मिका जनास्ते (उ)	८.२७९
अधार्मिकास्त्वता	५८.३५
अधिकारिविभेदेन (उ)	४२.९४
अधिदेवकृते योऽसौ	३८.४१
अधिदेवकृतं विप्रै:	३४.८३
अधिष्ठान प्रवृत्तेन (उ)	४०.२३१
अधिष्ठानं भगवतो	४९.१८३
अधिष्ठितोऽसौ हि	५.१९

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अधिसामकृष्ण पुत्रो (उ)	३७.२६७
अधिसामकृष्ण: सोऽयं (उ)	३७.२६६
अधिसामकृष्णो (उ)	३७.२५४
अधीयते पुराणं च (उ)	२१.२४
अधीयानो महाप्राज्ञो	६१.३१
अधोगतीनां वक्ष्यामि (उ)	३९.१४५
अध्यापयत्तु पौष्यञ्जी	६१.३४
अध्यापिनोऽथ जपतो	१०.४९
अध्यास्तं सपुवद्यत्र (उ)	४२.३०
अनभ्रमूलता यस्मात् (उ)	३९.१९१
अनध्यायेष्वधीयानां-	६१.२९
अनन्तम परिव्यक्तन्दशधा	४९.१५७
अनन्तरं यथायोग्यं (उ)	१७.५३
अनन्तां नातिरिक्ताश्च (उ)	२.५५
अनपत्य: क्रतुस्तस्मिन् (उ)	९.६६
अनपत्यो मरुत्तस्तु (उ)	३७.३
अनपायस्ततो जातस्तदा (उ)	३१.७
अनभ्रे विद्युतं पश्येद्	१९.८
अनमानस्य पुत्रस्तु (उ)	३७.१०१
अनमित्रं सुतश्चैव (उ)	३४.१९
अनया सततं भक्तया (उ)	३६.५
अनयो रति विघ्नश्च (उ)	११.२२
अनर्कश्च अनर्का च (उ)	८.२५५
अनले राक्षसावास:	३९.५३
अनष्टद्रव्यता (उ)	३२.५४
अनष्टद्रव्यश्चैवासीत (उ)	३२.२२
अनष्टाश्वाव रोहन्तु (उ)	३४.६८
अनाख्यानाद्बोधत्वाद (उ)	४०.२४
अनागतानां सप्तानाम्	२१.१७
अनागतानां सप्तानां	१.१४५
अनागतानि सर्वाणि (उ)	३७.२६१
अनागताश्च सप्तैव (उ)	३८.१०
अनागते भव्य इति (उ)	३.१६
अनागतेषु तद्वच्च	५८.१२१
अनाचार्यस्तु भद्रं (उ)	३५.१२४
अनादिनिधनस्याथ (उ)	८.५१
अनादृष्टिकश्चैव (उ)	३४.१४८

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मन्त्रिगुणं	४.२०
अनाद्यन्ता प्रभात्येवं	४९.१६५
अनाद्य स्वयम् (उ)	४१.२२
आनाध्यानादवेद्यत्वान् (उ)	३९.१९७
अनाभिक्षा विक्रान्ता: (उ)	८.१९३
अनामया ह्यशोकाश्च	४६.६
अनावृष्टिर्भास्कराच्च	१.१४८
अनावृष्टि हताश्चैव	५८.९६
अनावृष्ट्या हतं (उ)	३४.८६
अनाहारात्क्षयं याति (उ)	१५.१३२
अनिच्छाद्वेष युक्तास्ते	८.६१
अनिर्देश्य प्रकृत्तिर्वै (उ)	४०.२६
अनिर्दिष्टा मया (उ)	३१.३१
अनिर्देष्यमचिन्त्यं च	५५.२२
अनिर्देश्यान्यवाच्यानाम्	२९.१९
अनिबन्धनस्तत्र सदा	३८.४०
अनिमित्राच्छि निर्जज्ञे (उ)	३४.९९
अनिरुद्धश्च पञ्चैते (उ)	३५.२
अनिलस्य शिवा (उ)	५.२५
अनिष्टमभिषङ्ग (उ)	४०.६८
अनिष्टं शब्द संकीर्णं (उ)	१६.२०
अनुकर्षन् सर्व सेना (उ)	३६.१०५
अनुगच्छन्ति तास्त्वन्या	४९.९४
अनुगम्य महात्मानं	२५.८४
अनुग्रहार्थं लोकानां	२२.३१
अनुच्छिष्टन्तु दातव्यम् (उ)	१७.८६
अनुजस्य विकुक्षेस्तु (उ)	२७.१
अनुजाताऽभवत कृष्णा (उ)	३४.१७५
अनुज्ञात: कुरुष्वेति (उ)	१३.६९
अनुज्ञातस्ततस्त्वष्टा (उ)	२२.७३
अनुज्ञाप्यं गुरुं चैव	१७.२
अनुमानात्तु सम्बुद्धो	८.६
अनुमान्य महादेवं	२५.८८
अनुपास्तुण्डिकेराश्च	४५.१३४
अनुभूतं तदस्माभिर्- (उ)	४२.११०
अनुमत्यादितो (उ)	२१.५०
अनुव्याहृत्य विष्णुं (उ)	३५.१४३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अनुशैलं समन्ताच्च	४२.३८
अनुषङ्गपादस्त्रेतायां	३२.५८
अनुषङ्ग मयोद्दिष्टं (उ)	२५.३२
अनुषङ्गं समाख्यातः	५९.१२६
अनुसत्सुहृतं चापि	१.१७०
अनुह्लाद सुतो वायुः (उ)	६.७५
अनृतस्य समावासो	२१.४०
अनेक कन्दरदरीगुहा-	४५.२२
अनेकक्षत्र वद्धश्च (उ)	३८.१०९
अनेक धातु कलिलो	४५.२३
अनेकनिर्झर नदी	४२.५५
अनेकयातना संस्थाः (उ)	४८.४३
अनेकयातना संस्था (उ)	४८.४४
अनेक रुद्रकोट्यस्तु (उ)	३९.३४०
अनेकविध दानानि (उ)	४२.१४
अनेकाभिः स्रवन्तीभि-	४२.५४
अनेके पितरश्चैव (उ)	१०.६
अनेकैर्दितिपुत्राणां	५०.४३
अनेन चैव देहेन	३०.३०८
अनेन तु महाभाग	३०.११५
अनेन तोषितश्चाहं	४७.३५
अनेन विधिना जातं	६०.७५
अनेन विधिनायुक्तः (उ)	१२.२९
अनेन स्नानपूजादि (उ)	४९.१३
अनेन हि क्रमेणेदं	१.१७८
अनैश्वर्य्यं तु (उ)	४०.७३
अनोत्वं प्रतिपद्यस्व (उ)	३१.५०
अन्तः परमनालोक्यम्	५०.५५
अन्तरं चाक्षुषस्यात्र (उ)	२.४३
अन्तराधाय समिधं (उ)	१३.५४
अन्तराले गिरौ तस्मिन्	३८.३७
अन्तरिक्षं दिवच्चैव	४७.२९
अन्तरिक्षात्सुपर्णस्तु (उ)	३७.२८३
अन्तरिक्षो वसुह्यो (उ)	१.५९
अन्तरे वसुधारस्य	३८.२७
अन्तरे शैलवरयोर्देवा	३८.४२
अन्तरे शैलवरयोः	३८.४९

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अन्तर्द्धानं कलौ (उ)	३०.६०
अन्तर्वर्त्नीं च तां	२८.३६
अन्तर्वत्नी दितिश्चैव (उ)	६.५७
अन्तस्थसन्धि संस्थानां (उ)	४२.७४
अन्तर्हितायां सन्ध्यायां	५७.८७
अन्ते च नैव सीदन्ति	५६.६६
अन्ते द्रुमस्य सम्प्राप्ते (उ)	४०.४
अन्धकश्च सहाभोजं (उ)	३४.२
अन्धकानामिमं (उ)	३४.१४२
अन्धकारक देशस्तु	३३.२३
अन्धकारात्परश्चादि	४९.६१
अन्धकारे क्षुधाविष्ट	९.२६
अन्धवाकाः सुजरका	४५.१२२
अन्धं वृद्धं च मां (उ)	३७.७४
अन्धं वृद्धश्च तं (उ)	३७.६९
अन्नं तस्य सकृत् (उ)	३१.४
अन्नदानात्परं दानं (उ)	१८.५५
अन्नदाः पिश्चितादांश्च (उ)	८.२४८
अन्नदाः पिश्चितादांश्च (उ)	९.६३
अन्नदान् पिशितादांश्च	१०.४७
अन्नप्रदानयुक्तैश्च (उ)	३०.४२
अन्नं ब्रह्म च विज्ञेयो	१५.१३
अन्नभूता भविष्यामि (उ)	१.१५७
अन्नादायान्नपतये	३०.२१३
अन्नेनाद्भिश्च पुष्पैश्च (उ)	१३.२४
अन्ने लोका प्रतिष्ठन्ति (उ)	१८.५७
अन्यत्रावाहिता काले (उ)	४३.३६
अन्यथा ते न घटते (उ)	४२.१०६
अन्यास्ताभ्यः	४९.५६
अन्यूना ह्यतिरिक्ताश्च	४९.१२९
अन्ये चाप्यत्र विख्याताः	४७.७०
अन्येतेभ्यः परिज्ञाता	४५.९३
अन्ये भविष्या ये	७.११
अन्येभ्योऽपि च (उ)	८.३०१
अन्येषाञ्चोग्रतपसा-	४१.४५
अन्योन्यमनुरक्ताश्च	४५.१९
अन्योन्यस्याविरोधेन	५७.७५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अन्वये चास्य जायन्ते (उ)	८.२१६
अपक्षस्येव गमनं (उ)	११.१०९
अपगाश्चा लिमद्राश्च	४५.१२०
अपत्य कामो रोहिण्यां (उ)	२०.३
अपथान् भावयन्तीह	४७.५४
अपयानो ततो बुद्धि (उ)	३४.६९
अपराह्णे व्यतीपाते	५०.१७३
अपरे क्षीरिणो नाम	४५.१४
अपरेण तु कैलासात्	४७.१७
अपरेण तु लोहित्यमा (उ)	८.२३५
अपरेण सितोदस्य	३६.२६
अपरेणोत्कलाच्चैव (उ)	८.२३४
अपरे पितरो नाम एतैः (उ)	४.४९
अपरेह्नि शुचिर्भूत्वा (उ)	४७.८
अपर्वाणस्तु गिरयः	४९.१३२
अपश्यत्स यदा तां (उ)	३१.६९
अपश्यत्सा ततः (उ)	२९.२१
अपसव्यं पितृभ्यश्च (उ)	१३.१९
अपसव्ये कृते येन (उ)	२१.४९
अपानश्च समासाद्य (उ)	३७.७९
अपानः पश्चिमं कायम् (उ)	३५.५४
अपानादुत्तरत्वाच्च (उ)	२४.५७
अपामस्ति गुणो	४०.९
अपाम्भूमेश्च संयोगा-	८.१२७
अपां योनिः समुद्रश्च	२७.२६
अपां सारमयस्येन्दोः-	१९.१
अपां सार पयस्येन्दोः	५६.३
अपां सौक्ष्म्ये प्रतिगते	८.७७
अपि चात्र चतुर्हस्तां	२०.२६
अपि जाति शतं गत्वा (उ)	१७.५०
अपि न स्वकुले जायात् (उ)	२१.११
अपि या त्र्यम्बकस्यैषा	४२.४३
अपीत्वा खलु सर्वस्य (उ)	३९.३३१
अपुनर्मार्गगादीनां (उ)	३९.८७
अपूजिता दहन्त्येते (उ)	१७.१५
अप्रग्रहास्ततस्ता	५८.९१
अप्रतर्क्यमचिन्त्यत्वाद् (उ)	४०.१२७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अप्रद्वेषोऽनभिष्वङ्ग (उ)	४०.८५
अप्रतिष्ठश्चतुर्थ: (उ)	३९.१७९
अप्रतीघाताय दीप्ताय (उ)	३५.१७८
अप्रतीघेन ज्ञानेन	५.२३
अप्रतीषांस्ततो मन्त्रान् (उ)	३५.१०९
अप्रदेषोऽनभिष्वङ्ग: (उ)	४०.९४
अप्रद्वेषो ह्यनिष्टेषु	५९.५२
अप्रबुद्धे सधूमे च (उ)	१३.६१
अप्रमत: सदा चैव	११.३८
अप्रमेयमनाधृष्यं	३०.८२
अप्रमेयाय दीप्ताय	२४.१४६
अप्रमेयाय शर्वाय	२४.१२७
अप्रमेयेस्य तत्त्वस्य	२४.१६४
अप्रमेयो नियोज्यश्च (उ)	३६.९४
अप्रमेयो महावक्रो	२४.५४
अप्रवृत्ति: कृतयुगे	८.६०
अप्राकृतोऽपि भगवान्	३०.१२०
अप्राप्ता यातनास्थान	५६.७९
अप्राप्तायास्तपोलोकं	८.२३
अप्सरोगण संकीर्णे	५४.३१
अप्सरोगणसङ्घाश्च	३०.८७
अप्सरोभि: परिवृत्तं (उ)	१८.१२
अप्सुजस्वकमूलस्य (उ)	८.२०६
अप्सु वा यदि वाऽऽदर्शे	१९.९
अफालकृष्टा ओषध्यो	८.१५०
अफालकृष्टाश्चानुप्ता	८.१२८
अबुद्धिपूर्वकं तद्वै	५९.६५
अबुद्धिपूर्वकं युक्तौ (उ)	४१.२३
अबुद्धि पूर्वं क्षेत्रज्ञ (उ)	४१.१५
अब्बिन्दुं य: कुशाग्रेण	१०.८७
अब्बिन्दुं य: कुशाग्रेण	१६.१५
अब्बिन्दुं य: कुशाग्रेण	२०.१७
अभजन् यज्ञभाजस्ते (उ)	६.३८
प्रभवंस्तस्य शिष्या	६०.३०
अभावो व्यवहाराणां	५३.४१
अभिगच्छन्ति ता	४९.१७
अभिजग्मु: प्रसह्य (उ)	३५.१३०
अभिजात्या च तपसा	६१.८९
अभिजिन्नाम नक्षत्रं (उ)	३४.२०१
अभिध्यानान्मनोत्पन्ना- (उ)	३८.४९
अभिभाष्यस्तदा	५५.५२
अभिमन्युश्च दशमो (उ)	१.६८
अभिमानात्मकं भद्रं	९.९५
अभिमानिव्यतीता	५०.६६
अभिव्यक्तास्तु ते	५७.४४
अभिशस्ता तु सा भर्त्रा	२६.६६
अभिषिच्य राज्ये (उ)	२६.११२
अभिषिच्याधिपत्युषु (उ)	९.२
अभिषेक्तु कामश्च (उ)	३१.७५
अभिसन्धाय पितरं (उ)	१०.१०
अभीरा: सह चैषीका	४५.१२६
अभ्यन्तरपरिस्कन्धा (उ)	३९.२६४
अभ्यसन्निभमध्यायं	१.१८२
अभ्यागतो याचक:	१७.१७
अभ्युक्षणं तथा तस्य (उ)	१७.४४
अभ्युन्नतो महोरस्क: (उ)	३९.२७८
अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो	५१.२५
अमरै: सूत किं पुण्यं (उ)	३५.९
अमानुषेण सत्त्वेन	११.५०
अमावसेतामृक्षे तु	५६.४०
अमावस्यान्तदा	५२.७०
अमूर्तय: पितृगणा: (उ)	११.४
अमूर्तानां समूर्तानां (उ)	१२.२१
अमूर्तिमन्त: पितरौ (उ)	११.७७
अमृतं गुह्यमृदद्धृत्य (उ)	२१.५५
अमृतं तपसा सा तु (उ)	२२.२२
अमृतं सा महाभागा (उ)	२२.२४
अमृतस्वादुसदृशै:	३७.१२
अमृताभाभूतरजो (उ)	१.४५
अमृतेन तृप्तिस्त्वर्द्धमासं	५२.४०
अमृतै: पञ्चभि: स्नानं (उ)	४९.२६
अमृतोपमसत्त्वानां (उ)	८.२८०
अमेढ्रायोर्द्धमेढ्राय	२४.९१
अमोघरेताश्च भवान् (उ)	३७.१४२
अमोघ रेतास्तास्त्वञ्चापि (उ)	३७.४०
अमोघ रेतास्वञ्चापि (उ)	३७.१३९
अम्भास्येतानि रक्षाम	९.२७
अम्बरीषमिवाभाति (उ)	३८.१५२
अम्बरीष: सुतस्तस्य (उ)	२६.१७०
अम्बरीषस्तु नाभागि (उ)	२६.६
अयं तु नवमस्तेषां	४५.८०
अयनो दश वर्षाणि (उ)	३६.३१
अयं मे दक्षिणो	५५.५८
अयं यो वर्त्तते कल्पो	२१.२१
अयं यो वर्त्तते कल्पो	२३.४३
अयं लोकस्तु वै	४५.८७
अयं हरिस्तैर्हरिभि:	५२.५१
अयं हि कालो देवेश-	३२.११
अयं हि मे महगर्भो (उ)	३७.३९
अयस्यस्तु उतथ्यश्च (उ)	४.१०६
अयुक्ताश्च विशन्तीह (उ)	८.२७०
अयुतानि तथाष्टौ च (उ)	३४.२४५
अयुतायु: सुतस्तस्य (उ)	२६.१७२
अयोगऽनिभो वह्नि	४९.१५५
अयोध्याञ्चैव राज्यञ्च	२६.९४
अरक्षितारो हर्त्तारो	५८.४८
अरणोव हुताशस्य	१.३५
अरण्यान्यभि पत्स्यन्ति (उ)	३७.३९८
अरण्यां मथ्यमानायां (उ)	२७.५
अरण्ये वर्त्मनि वने (उ)	४८.४०
अरत्नीनां शतान्यष्टो	४६.२६
अरश्मिवन्तमादित्यं	१९.३
अराजके युगवशात्	५८.९२
अरिजस्य रज: पुत्र:	३३.६०
अरिज्जयस्तु वर्षाणि (उ)	३७.३०२
अरिमित्येव शीघ्रन्तु	१९.३
अरिष्टनेमिपत्नीनाम् (उ)	५.७७
अरिष्टनेमिरश्वश्च (उ)	३४.११४
अरिष्टसूचिते देहे	१९.३३
अरिहाय कृतान्ताय	२४.१३२
अरुणास्याग्रतो यान्ति	२८.३१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अरुणोदं सरः पूर्वं	३६.१७
अरुणोदान्निवृत्ताऽथ	४२.१६
अरुद्धस्य तु दायादो (उ)	३७.९
अरुन्धतीं ध्रुवञ्चैव	१९.२
अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु (उ)	९.८३
अरूरोस्तनयः क्रूरो (उ)	७.३१
अर्काग्नि मण्डले	५६.५५
अर्घ्यपाद्यादिकं दत्त्वा (उ)	४५.४५
अर्घ्यादिना समभ्यर्च्य (उ)	४५.१७
अर्चयित्वा ततो (उ)	१७.१०
अर्चितास्तेन वै (उ)	१५.५०
अर्चिभिः सन्तते (उ)	४०.१२
अर्च्चिष्मान् परमः	५३.१०
अर्च्चिष्मान् पिण्डिताशिखा (उ)	१३.६४
अर्जुन त्वां महावीर्यो (उ)	३२.४६
अर्णं वादर्णवं यावत्	४१.२८
अर्थं धर्मञ्च कामञ्च (उ)	६.१२
अर्थान् रत्नानि चाग्याणि (उ)	३४.८१
अर्थैर्द्दशार्द्धसंयुक्तैक्ष्म-	३०.२६२
अर्द्धक्रोशोच्च शिखरैः	३७.१८
अर्द्धचन्द्रकृतीणीषा (उ)	३९.३१६
अर्द्धमासाश्च मासाश्च	६.७०
अर्द्धं शकानां शिरसो (उ)	२६.१३९
अर्द्धं श्वेतार्द्ध रक्तानि (उ)	३९.२३९
अर्द्धेन नारी सा तस्य	१०.८
अर्द्धेन पादसाम्यस्य (उ)	२५.४१
अर्बुदं निर्बुदञ्चैव (उ)	३९.१०१
अर्भकग्रहभूतैश्च	९.८९
अर्यम्णो दक्षिणा ये	६१.१००
अर्वाक् च निषधस्याथ	३४.३२
अर्वाक्सुतोऽसि (उ)	३०.१४
अर्हः पुरूरिदं राष्ट्रं (उ)	३१.८६
अलं संरक्षणे तेषां (उ)	३७.१९३
अलंकारास्तु चत्वारः (उ)	२५.९
अलंकारास्तु वक्तव्याः (उ)	२५.२
अलक्ष्मीं विनुदत्याशु (उ)	१८.३८
अलमन्ती तदा त्राणं (उ)	१.१५२
अलम्बुषेष्टश्च तथा (उ)	२४.४८
अलातचक्र वद्भान्ति	५२.८९
अलाभे ध्यानिभिक्षूणां (उ)	१०.७२
अलिङ्गिनं पुरुषं रुक्मवर्णं	१४.८
अलौकिकं लौकिकञ्च (उ)	४२.९०
अल्पप्रसादा ह्यनृता (उ)	३७.३८२
अल्पाक्षरमसन्दिग्धं	५९.११७
अल्पायुषो नष्टवार्ता (उ)	३६.१२२
अल्पेनतपसासिद्धिं (उ)	१५.१६
अल्पेनाप्यत्र कालेन (उ)	१५.१०३
अल्पेन्धनो वा रुद्रो (उ)	१३.६२
अल्पोदका चाल्पफला	५८.५६
अवगाह्य ह्युमयतः	४७.६४
अवगाहश्च चित्रश्च (उ)	३४.२४८
अवतारश्च रुद्रस्य	१.६५
अवति त्रीनिमान्	५०.६०
अवलेपन्तु तं मत्वा (उ)	३७.५९
अवश्यम्भावमर्यत्वं	३६.६०
अवश्यम्भाविनाऽर्थेन	७.३१
अवश्यम्भाविनं दृष्ट्वा (उ)	११.५८
अवश्यम्भाविनार्थेन	६१.१३०
अवस्करं परीवाहं	८.११७
अवस्थितो ध्यान-	१७.७
अवाप्य च तदा भागं	३०.२९६
अवाप्य संज्ञाङ्गोविन्दात्	२५.६०
अविज्ञातं द्विजश्राद्धे (उ)	१७.७
अविच्छिन्नोऽभवद्राष्ट्रे (उ)	२६.१९३
अविद्धत प्रवीरस्तु (उ)	३७.११७
अविद्या प्रत्ययारम्भा (उ)	४०.५७
अविद्यां विद्यया तीर्त्वा	१८.५
अविभागवतावेतौ (उ)	४१.१४
अवीचिनरकं प्राप्तौ (उ)	५०.१६
अवीचिर्दारुणः प्रोक्तो (उ)	३९.१८२
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं	९.१०९
अव्यक्तं कारणं यतु-	४.१७
अव्यक्तं कारणं यद्यन्नित्यं	१.४३
अव्यक्तं क्षेत्रमित्याह (उ)	४०.३४
अव्यक्त क्षेत्र मुद्दिष्टं	४.८०
अव्यक्त बीज प्रभवस्	९.१०६
अव्यक्तं वै यस्य (उ)	४१.७१
अव्यक्तरूपो यो (उ)	४७.४५
अव्यक्तरूपो यो देवो (उ)	४७.४३
अव्यक्तवत् परोक्षत्वाद् (उ)	४१.११
अव्यक्तः शाश्वतः कृष्णो	३४.२०२
अव्यक्ताज्जायते चास्य	५.२५
अव्यक्तात्कारणात् (उ)	४१.३६
अव्यक्तात् पृथिवी	३४.३६
अव्यक्तात् पृथिवी	३४.३७
अव्यक्तात्मा महात्मा	५९.८७
अव्यक्ताद्योऽविशेषाच्च	५९.५४
अव्यक्तांत गृहीतं (उ)	४०.१०३
अव्यक्तायाथ महते (उ)	३५.२००
अव्ययञ्च व्ययं	९.५२
अव्ययादमृत शुक्रम्	६१.१०७
अव्यूहा तु विषयो (उ)	४०.३८
अध्वर्यवः प्रैष काले	५७.५९
अशक्तः कार्यकरणे (उ)	३१.३४
अशक्तरुष्टो जानाति (उ)	५.१४७
अशक्नुवन्तो देवेषु (उ)	३५.८२
अशब्द स्पर्श रूपान्ताम-	२६.९
अशिजस्य कनीयांस्तु (उ)	३७.३७
अशिजो दीर्घतमा (उ)	४.१०२
अशिजो नाम विख्यात	३७.३६
अशिरस्कस्तयोः (उ)	२२.११
अशीतिश्चैव वर्षाणि (उ)	३७.३५६
अशीतिर्नियुत्तानीह	५०.१२९
अशीतिमण्डलशतं	५१.७५
अशीतियोजनायामं	४१.२३
अशीलिन्योऽक्ताश्च	५८.४३
अशुचिर्देवि सुप्तासि (उ)	६.१०६
अश्मकस्योरकामस्तु (उ)	२६.१७७
अश्रद्धधानाः पाप्मानो (उ)	१५.१२७
अश्वत्यादरणिं कृत्वा (उ)	२९.४४
अश्वदान सहस्रेण (उ)	१८.१५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अश्वमुखाश्च तेनैव (उ)	८.३१
अश्वमेधं कटितटे (उ)	४२.८४
अश्वमेधफलेनैव (उ)	१३.५९
अश्वमेध सहस्रस्य	३०.९०
अश्वमेध सहस्राणां (उ)	४९.१९
अश्वमेध सहस्रेण (उ)	१०.७७
अश्विनी कृत्तिका (उ)	५.४८
अष्टकासु च वृद्धौ च	४८.१७
अष्टदंष्ट्रा शंकुकर्णं (उ)	९.५८
अष्टमस्तु भवेद् वह्नि	२१.२९
अष्टमात्तु मुखात्तस्य	२६.४०
अष्टमे त्वसुराश्चैव (उ)	३५.८३
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः	६.५९
अष्टमो द्वापरे (उ)	३६.९२
अष्टरूप्यमतः प्रोक्तं	१.१५२
अष्टात्रिंशच्छतं भाव्याः	३७.३०८
अष्टादश पुराणानि (उ)	४२.२
अष्टादश मुहूर्तैस्तु	५०.१४६
अष्टादश समुद्रस्य	२.१४
अष्टानां परमाणूनां (उ)	३९.११९
अष्टाविंशतिमः कल्पो	२१.६८
अष्टाविंशतिमे (उ)	३६.९६
अष्टाविंशतिर्ये कल्पा	२२.७
अष्टाविंशतिवर्षाणि (उ)	३७.३२२
अष्टाविंशत्समा	३७.३१२
अष्टाविंशद्युगाख्यास्तु (उ)	३७.४५३
अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते	२३.२०६
अष्टाविंशे भवित्री (उ)	११.६०
अष्टावेतेऽक्षया दिव्या	४१.११
अष्टाशीति सहस्राणां	२१.७०
अष्टाशीति सहस्राणि	८.१८५
अष्टाशीति सहस्राणि	५०.२१३
अष्टाशीति सहस्राणि	५०.२१८
अष्टाशीति सहस्राणि	६१.१२२
अष्टाशीति सहस्राणि	५४.६
अष्टाश्वः काञ्चनः	५२.७६
अष्टाश्वेतासु सृष्टासु	९.३७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अष्टौ धनुः सहस्राणि	८.१०२
अष्टौ प्रकृतयो पूर्वोक्ता (उ)	४०.९५
अष्टौ शत सहस्राणि	६१.१४१
अष्टौ सहस्राणि शतानि	६१.६८
अष्टौ साम सहस्राणि	६१.६३
असंसृष्टोपलिप्तासु (उ)	१५.१२१
असंस्कार्यै शरीरैश्च	८.५७
असंकीर्णा च धर्मेण (उ)	३१.४२
असंगा गतयस्तेषां	५७.८०
असकृत्परिपृष्टस्तैर्महात्मा	४.४
असच्च सदसच्चैव	३०.१८७
असतां प्रगहो यत्र (उ)	१४.२९
असत्य प्रतिग्रही च (उ)	३९.१६१
असत्यं यज्जद्रं दुःखम् (उ)	४२.३५
असपत्नं ततः सर्व (उ)	३५.९२
असपत्नं ततामषीद (उ)	३७.२४७
असभ्रान्तेन भृगुणा (उ)	३५.१४८
असमौजाः सुतस्तस्य (उ)	३४.१४१
असहन्ती तु तत् संज्ञा (उ)	२२.६९
असह्यरश्मिर्भगवान् (उ)	३८.१३९
असाधना हताश्वासं (उ)	३७.३९२
असाधारण वृत्तैस्तु (उ)	३९.१
असितं परिदुष्टं च (उ)	१६.४४
असितस्य गुरोः पुण्ये (उ)	१५.३९
असितस्यैकपर्णी (उ)	११.१७
असिपत्रवने घोरे (उ)	४८.४२
असिश्चैवौजसां श्रेष्ठः (उ)	३९.२७२
असिसमावेश्य च (उ)	३९.२७४
असीम कृष्णे विक्रान्ते	१.१०
असुरश्च विरूपाक्षः (उ)	७.११
असुराणां हितार्थाय (उ)	३५.१२०
असुरान् यातुधानांश्च (उ)	१६.३६
असुराशीविषैः	५०.४२
असूतान्यान् कलेः (उ)	२२.१०
असृङ्मांसवहसाहारौ (उ)	८.११०
अस्तं याति पुनः सूर्ये	५०.११६
अस्तं याति पुनः सूर्ये	५३.१५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अस्तस्यापि शुभं	४९.४६
अस्तिनास्तीति (उ)	४०.१२४
अस्तिनास्तीति (उ)	४०.११८
अस्तेयं ब्रह्मचर्यञ्च	१६.१७
अस्तोदयो तथोत्पाता	५०.१०
अस्थितिस्तु कलो	५९.४
अस्मक्यां जनयामास (उ)	३४.१४३
अस्मक्यां लभते (उ)	३४.१८६
अस्मत्कुले मृता ये (उ)	४८.३०
अस्मत्कुले मृता ये (उ)	४८.३३
अस्मत्पादानर्चयित्वा (उ)	४४.७२
अस्माकमिन्द्रः (उ)	३०.८४
अस्मात् कल्पात्तु यः	७.१३
अस्मान्महत्तरं गुह्यं	२४.६९
अस्मिन् कल्पे त्वया चोक्तः	२७.१
अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञः	५३.४
अस्मिन्मन्वन्तरे चैव	२६.३
अस्मिन्मन्वन्तरे	५३.७९
अस्मिन्मन्वन्तरे	६१.१५०
अस्मिन युगे कृतो	६०.११
अस्य भारतवर्षस्य	५०.६२
अस्य माया विविज्ञस्य	२४.७१
अस्य लिंगस्य योऽन्तं	५५.२३
अस्य सौम्यं बहुक्लेशं	२४.८०
अस्या क्षितौ वृता लोकाः	३०.६६
अस्याण्डस्य समन्ताच्च	५०.८२
अस्याधः पुनरप्यन्यः (उ)	३९.१७८
अस्याभिमानिनः	५८.१२३
अस्यायामंश्चतुस्त्रिंशत्	४३.२
अस्त्रे स्वमिति च (उ)	४०.६१
अहमग्निर्भवान् सोमो	२५.२१
अहं कर्त्ताऽस्मि लोकानां	५५.१६
अहं कर्त्ता च लोकानां	५५.१७
अहंकारस्तु महतः (उ)	४१.३८
अहंकारात् रुदन	३१.३२
अहं च कीर्तयिष्यामि (उ)	३४.६३
अहं जनो जनयिता	३२.२३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
अहंजेष्यामि नो युद्धे (उ)	३०.८३
अहं ज्येष्ठा वरिष्ठा	३०.४५
अहं तत्रापि ते विघ्नम्	३०.६२
अहं तृतीय इत्यर्थः (उ)	४.४५
अहं वो यापयिष्यामि (उ)	३६.१८
अहं वो वर्त्तयिष्यामि (उ)	४१.९
अहं हि जानामि विशालनेत्रे	३०.११८
अहमिज्यश्च पूज्यश्च (उ)	१.११२
अहमूर्द्धं गमिष्यामि	५५.२५
अहमेव चरिष्यामि	६१.१७
अहरन्ते प्रकुरुते (उ)	३८.१३५
अहश्च विद्यते तस्य	५.३
अहः श्रियं त्रिदशगणा (उ)	४७.२८
हस्तिष्ठन्ति ते सर्वे	५.६
अहस्तु नाभिः सूर्यस्य	५१.६०
अहिंसायाप्यलोभाय (उ)	३५.१९८
अहिंसा सर्व देवेभ्यः (उ)	१८.१८
अहिंसा सर्वभूतानां	१८.१३
अहीनगोस्तु दायाः (उ)	२६.२०३
अहूता मन्त्रतः सर्वे	३०.१०२
अहोऽस्य तपसो	१.८१
अहोधी मस्त्वया (उ)	१७.१
अहो मलं वीर्यपराक्रमः	५४.९७
अहोमृधे महावीर्य (उ)	३२.३८
अहोरात्र कलानान्तु (उ)	५.३८
अहोरात्रं कुशेष्वेव (उ)	३७.२०८
अहोरात्र विभागश्च (उ)	५.३७
अहोरात्र रात्राद्रथेनासौ	५२.४४
अहोरात्रस्तथैवास्य (उ)	३८.२३७
अहोरात्रे क्षण धरो	६.१७
अहोरात्रे विभजते	५७.८
अहो विस्मयनीयानि	२६.१
अह्वान्तु अधिकाशीति	५०.१८७
आ	
आंकरं चन्दनानञ्च	४८.२१
आकर्ण दारितास्यञ्च (उ)	८.७९
आकाशग्रहणाद् देवि (उ)	२२.४४
आकाश योनिर्हि गुणः	२.३९
आकाशवरणं यच्च (उ)	४०.३०
आकाशं शुषिरं तस्मादुद्रिक्तं	४.४७
आकाशस्य च	५५.३५
आकाशात् पुष्पवृष्टीश्च (उ)	३४.२०३
आकाशाम्भो निधोर्यो	४२.२
आकाशेन वृतो वायुः	४.७७
आकूत्यां मिथुनं जज्ञे	११.१९
आकृष्येते यदा तौ	५१.७४
आक्रान्तं दैत्य जठरं (उ)	४४.८५
आक्रीडाः सर्वतः	४५.३६
आक्रुष्टोऽभिहितो	५९.४४
आख्याते त्वेवमृषयः	४५.६८
आख्यान कुशलो (उ)	२२.४
आख्यान पञ्चमान् (उ)	६.५९
आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैः	६०.२१
आगच्छन्तु महाभागा (उ)	४८.११
आगतागतिकं चैव (उ)	३८.१८१
आगतागतिकं तद्वै	७.४९
आगतान् ब्राह्मणान्	६०.३६
आगते स विवक्षौ तू (उ)	२६.१४
आगत्य विष्णुः चीरे बधे (उ)	४४.५५
आगमादनु मानाच्च	५३.१२२
आगमेन भवान् यज्ञं	५७.१००
आगस्त्य वैश्वामित्राणां (उ)	९.५३
अग्निष्टोमं तु (उ)	१७.११
आग्नीध्रस्तेषु सर्वेषु	३३.४६
आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा (उ)	२६.१२३
आग्नेयाः काम्बलेयाश्च (उ)	८.२३
आग्नेयनाम गन्धर्वा	४०.८
आग्नेयास्त्वर्णनाः	५१.२९
आचक्ष्व विस्तरेणेदं	२.३
आचमनं द्वितीयेन (उ)	१६.६६
आचचक्ष पुराणं च	२.२
आचम्योत्त्वा च (उ)	४८.१३
आचरन्ति महाप्राज्ञा (उ)	४२.२४
आचार्य्यो वो ह्यहं (उ)	३६.२७
आच्छादनन्तु यो (उ)	१८.४
आच्छादितः शिलापाद. (उ)	४६.१३
आजगाम युवा चैव- (उ)	२४.२७
आजानुबाहबाहवश्चैव	५७.७८
आजीवः सर्वभूतानाम्-	९.१०८
आजीवः सर्वभूतानाम्-	३१.३९
आजीविको माहिषकः- (उ)	३९.१६४
आजेन सर्वलोहेन- (उ)	२१.१२
आज्यपा नाम पितरः- (उ)	११.८६
आज्येन पृषदाज्येन- (उ)	३८.१०३
आतपत्रप्रमाणानि- (उ)	३९.२४२
आतिथ्यं श्राद्धयज्ञेषु-	१६.७
आत्मच्छन्देन वो- (उ)	६.२६
आत्मजोऽप्यन्यजो- (उ)	४३.१३
आत्मनः प्रतिरूपाणि- (उ)	५.१४८
आत्मनः शापमोक्षार्थं- (उ)	२६.११
आत्मवत्सर्वभूतेषु-	५९.४३
आत्मवान् स निरात्मा- (उ)	४०.१२५
आत्मानं पृथिवीञ्चैव-	११.६१
आत्मानं प्रकृतिं विद्धि-	२५.२३
आत्मानं मन्यते वायुं-	१२.२२
आत्मानमेकविशञ्च-	२३.१७०
आत्मानं विभजस्वेति-	९.७७
आत्मानं व्यभजन्- (उ)	४.१२४
आत्मार्थं यः पचेदन्नं (उ)	१७.८०
आत्मार्थं वा परार्थं	५९.४७
आत्यन्तिकः प्राकृतिकश्च-	३.२१
आत्रेयं चाप्यङ्गिरस- (उ)	४४.३९
आत्रेयवंशकृत्तासां (उ)	९.७०
आत्रेयः सुमतिर्धीमान्-	६१.५६
आत्रेयाश्च भरद्वाजाः	४५.११९
आत्रेयो वंश तस्तासां (उ)	३७.१२३
आदानादिक्रियाणान्तु-	१२.३५
आदिकर्त्ताच भूताना-	४.६९
आदितिर्दितिर्दनुः (उ)	५.५५
आदित्यकिरणोपेतं (उ)	११.७६
आदित्यपीतम् सूर्याग्नेः	५१.१४

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
आदित्यमथ विष्णुञ्च	३०.१८६
आदित्यमूलमखिलं	५३.३४
आदित्यमेति सोमाच्च	५३.६५
आदित्यरश्मिभिः (उ)	३८.१७५
आदित्यरश्मिसंयोगात्-	५३.६१
आदित्यवर्णो भवनस्य गोप्ता	७.६१
आदित्यवर्णो भुवनस्य (उ)	३८.१८७
आदित्यसंज्ञः कपिलः	५.४२
आदित्यः सविता भानुः	३१.३७
आदित्यस्त्वब्रवीत् (उ)	२२.६४
आदित्यस्य हि तद्रूपं (उ)	२२.३४
आदित्या ऋभवो- (उ)	३९.३०
आदित्यानां पुनर्विष्णुं (उ)	९.५
आदित्यानां वसूनाञ्च	३९.४९
आदित्यान्त्रिःसृतो-	५२.८१
आदित्या मरुतो रुद्राः- (उ)	३.३
आदित्या वसवो रुद्राः-	३०.९९
आदित्या वसवो रुद्राः (उ)	३.२
आदित्यैर्वसुभिः-	१०.६६
आदित्यो विप्ररूपेण- (उ)	३३.३
आदित्वाच्चादिदेव-	५.३७
आदिदेवा इतिख्याता- (उ)	१०.५४
आदिपालेन गिरिणा- (उ)	४६.६८
आदिमानस्य लोकस्य- (उ)	४.६२
आदिश्चान्तश्च-	३०.२३९
आदिष्टं तेजसा मेघ- (उ)	३३.८
आदृता रुक्मिणीकन्या (उ)	३४.२३३
आदौ तु पञ्चतीर्थेषु (उ)	४९.१
आद्भिः सद्यादिता मुर्वीम्	६.२३
आद्भिर्दशगुणाभिस्तु-	४.७५
आद्यं एष गणः प्रोक्तः- (उ)	१०.७८
आद्यन्ते स प्रपत्स्यन्ते- (उ)	४१.२७
आद्यमाजगवं नाम- (उ)	१.१२७
आद्यया गदया चासौ- (उ)	४४.६
आद्यावसाने श्राद्धस्य- (उ)	१२.१७
आद्ये कृते च धर्मोऽस्ति-	५८.५
आद्ये त्रेतायुगमुखे (उ)	६.४३
आद्ये मन्वन्तरेऽतीता- (उ)	४.८
आद्यो वेदश्चतुष्पादः-	६०.७
आधिपत्यं विना ते वै-	७.२९
आधिपत्यं लभेच्छ्रैष्ठ्यं- (उ)	२०.१०
आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु-	६०.१८
आनर्चुश्च यथा जाति-	२.२७
आनन्त्याय भवेत्-	२१.९
आनन्दश्च ध्रुवाश्चैव-	४९.१९
आनन्दस्तु स विज्ञेय-	२३.४६
आनन्दो ब्रह्मणः प्रोक्ता-	१.१५६
आनार्तस्य तु दायादो- (उ)	२४.२४
आनीय मूर्तिं ब्रह्मापि- (उ)	४४.५४
आन्ध्रा भोक्ष्यन्ति- (उ)	३७.३५५
आपदं प्राप्य मुच्येत-	१.१८०
आपः पृथिव्या मुदके	५०.७
आपश्चापि महाबाहुः- (उ)	१.१०
आपस्तदा प्रनष्टा (उ)	४०.८
आपस्तस्तम्भिरे- (उ)	१.१३३
आपस्त्वमीस देवेश- (उ)	४६.१३
आपातालाद्दिवं यावदत्र-	४९.१६४
आपादतोमस्तकन्तु-	५९.९
आपादबद्धो दश- (उ)	३७.३४५
आपूरयन् सुषुम्नेन-	५२.५७
अपूरयित्वा यस्माच्च-	४.३०
आपूर्यमाणे उदीधः-	४६.१२७
आमस्तकतलाद्यस्तु-	१९.१५
अम्बिकेयात्-	४६.८३
आम्रं ब्रह्मसरोद्भूतं (उ)	४९.४३
आयतो ह्यायाकुमरिवन्या-	४५.८१
आयामाः परिहीयन्ते-	४६.२२
आयुः क्षेत्राण्युपचयं (उ)	३५.३२
आयुरारोग्यमत्युग्रम्-	२.२२
आयुर्नामाथ भगवन्-	२९.३७
आयुर्मेधा बलं रूपं-	५७.५४
आयुर्मेधा बलं-	५८.४१
आयुर्वेदं भरद्वाजश्चकार- (उ)	३०.२२
आयुर्वेदविकल्पाश्च-	५८.२३
आयुर्वेदो धनुर्वेदो-	६१.७९
आयुष्प्रमारण जीवन्ति-	४६.१५
आयुष्मन्त्यश्च सूर्यस्य- (उ)	८.५५
आयुष्मांश्च युवा (उ)	३७.९२
आयुष्यश्चैव धन्यश्च (उ)	८.३४६
आरण्यं शौचमेतत्- (उ)	१७.२९
आरम्भयज्ञा क्षत्रस्य	५७.५०
आराधितो महासत्त्व- (उ)	३७.२२७
आराधयितुमिच्छन्तः-	२.२८
आरुह्य भृगुतुङ्गेषु- (उ)	१७.२०
आरोहणेन चारोहवर्ण- (उ)	२५.८
आर्तवा ह्यार्द्धमासाख्याः	५६.१५
आलम्बा उत्कचा कृष्ण-	८.१६४
आलम्बे येन जनिता- (उ)	८.१७३
आलम्बेयो गणः क्रूर- (उ)	८.१६६
आलोकस्तस्य चार्वाक्तु-	९.१४५
आलोकान्तः स्मृतो-	५०.२०५
आवयोर्भगवान्- (उ)	३०.७८
आवर्त्तमाना ऋषयो-	६१.१२१
आवर्त्तमाना देवास्ते- (उ)	३९.५९
आविक मार्गम्- (उ)	१६.१७
आविकानाञ्च (उ)	१६.५५
आवृतं तमसा सर्वं- (उ)	२१.६४
आवृतः पशुभिः	४६.२६
आवृत्व मनसा शुल्कं-	१२.१३
आवेश्यात्मनि तान्- (उ)	३९.३४५
आशयः कारणं तम-	८.२९
आश्रमः कश्चवान्योऽस्ति- (उ)	३१.३७
आश्रमत्रयमुत्सृज्य-	१७.१
आश्रमप्रत्यवसिता- (उ)	३९.१७१
आश्रमानथ ग्रामांश्च- (उ)	३३.१०
आश्रयाः पुण्यकीर्तीनां-	५३.८९
आश्रिते द्वे ह्यपर्णा- (उ)	११.८
आषाढाभिश्चोत्तराभि- (उ)	२०.११
आसन वै तुषिताः (उ)	१.७
आसन स्वायम्भुवस्यैते-	३१.१०
आसनारूढमानेषु- (उ)	१६.४३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
आसन्नमुसले	८.१७६	इति सानुशयोऽह्यासीत्	३०.७७	इत्येताः कथिताः (उ)	५.१०५
आससाद पिशाचौ	८.१०९	इतिहासपुराणस्य	६०.१६	इत्येता ओषधीनां	८.१४६
आसीत्सहस्वतः- (उ)	२६.२११	इतिहासपुराणाभ्याम्	१.१४१	इत्येतान् पुरुषः- (उ)	३५.५८
आसीत्सुवर्म्मणः पुत्रः- (उ)	३७.१८१	इतिहास पुराणार्थं	१.२१	इत्येतानि मयोक्तानि-	२९.४५
आसीत् वैडिविडः- (उ)	२६.१८०	इतिहास पुराणेषु	१.२७	इत्येतानि रहस्यानि-	२०.३५
आसीदिन्द्रसमो राजा- (उ)	३६.१६	इतीदमुक्त्वा वचन	५४.१०१	इत्येतानि सशीलानि (उ)	८.९३
आसीदियं समुद्रन्ता (उ)	२.१	इत्यर्कपितृसोमा	५६.८८	इत्येतां वैदिकी विद्यां	२३.१२
आसीद्धर्मो महातेजाः- (उ)	४५.२	इत्यादिव्यक्तरूपेण- (उ)	४७.२५	इत्येतास्तनवस्तस्य-	२७.५७
आसीन्महिष्मतः (उ)	३२.६	इत्याह भगवान् व्यासः	३०.३१७	इत्येता ह्यन्तरद्रोण्यो-	३७.३०
आहवन् तं मरुत्सोम- (उ)	३१.२	इत्युक्तः कथयामास	३०.३९	इत्येता ह्यन्तरद्रोण्यो-	३८.३५
आहवेष्वपरिक्लिष्टं	३४.२६९	इत्युक्तमात्रे नृपतिः	५७.११०	इत्येते कथिता यक्षा	४१.२६
आहारः फलमूलं तः- (उ)	१.१७२	इत्युक्तया वै पितरः- (उ)	११.५७	इत्येते कश्यपसुता (उ)	५.७६
आहारमेकपर्णेन (उ)	११.९	इत्युक्तराण्येवमृषि	६१.१८१	इत्येते काश्यपाः- (उ)	३०.७६
आहूताश्च ततः- (उ)	४.१११	इत्युक्ते यत स्थिरं	२७.२१	इत्येते क्रूरकर्माणः (उ)	९.५१
आहूतास्तु सरिच्छ्रेष्ठा (उ)	४६.८१	इत्युक्ते यत स्थिरं	२७.२९	इत्येते चरकाः प्रोक्ताः	६१.१०
आहूते सरितां श्रेष्ठे- (उ)	४६.८५	इत्युक्त्वा सोऽपतत्- (उ)	४४.३२	इत्येते चरकाः प्रोक्ताः	६१.२४
इ		इत्युक्त्वा पद्मगर्भभः	५४.६४	इत्येते त्वसुराः प्रोक्ता (उ)	७.१४
इक्ष्वाकुरेव दायादान- (उ)	२३.२०	इत्युक्त्वा वासवः	६१.३२	इत्येते देवचरिता	३६.२५
इक्ष्वाकुर्नहुषश्चैव-(उ)	२३.४	इत्युक्त्वा सहसा- (उ)	८.१४२	इत्येते नव भूपा ये (उ)	३७.३३०
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो (उ)	३.२९	इत्युवाच तदा दक्षः	३०.५०	इत्येते नामभिः	५२.५४
इक्ष्वाकुस्तु ततः- (उ)	२६.१८	इत्येततु मया प्रोक्तं	२१.७२	इत्येते पर्वतवरा	३६.२०
इक्ष्वाकौ संस्थिते- (उ)	२६.२०	इत्येनत् त्रिविधं	१०.७७	इत्येते पर्वताः सप्त	४९.३८
इङ्गितैर्भावमालक्ष्य	१.२०	इत्येतत्पञ्चवर्षं	३१.४९	इत्येते प्राकृताश्चैव	६.६४
इच्छा द्वेषश्च रागश्च	३०.२३५	इत्येतत्परमं गुह्यं	५४.१०२	इत्येते पितरश्चैव- (उ)	११.९९
इज्यत्वादुच्यते यज्ञः	५.४१	इत्येतदक्षरं ब्रह्म	२०.२८	इत्येते पितरस्तात (उ)	२१.७९
इज्या दानं तपः सत्यं	५७.८१	इत्येतदङ्गिरा प्राह- (उ)	२१.९६	इत्येते पितरो देवा- (उ)	२१.९३
इज्याधर्म विनाशार्थं (उ)	४.७९	इत्येतदन्तर प्रोक्त	६१.१८६	इत्येते पितरो देवा	५६.८५
इज्यापूजानमस्कारैः	४१.६०	इत्येतदमृतं शुक्रं- (उ)	३९.८६	इत्येते पितरो देवा	५६.५८
इज्यायां व्रतमालोपात्- (उ)	३९.१७२	इत्येतदिह संख्यातं	५०.६५	इत्येते प्राकृताश्चैव	६.६४
इतरासु च सन्ध्यासु	५७.२४	इत्येतद् ब्राह्मणस्य	५९.११५	इत्येते बहुसाहस्रं (उ)	८.६१
इतस्तेभ्यो बला	८.१३५	इत्येतदवै मया	२३.११४	इत्येते ब्रह्मणः पुत्राः (उ)	९.९१
इति कृत्य समुद्देशः	१.१५८	इत्येतद्वो मया	२७.५९	इत्येते ब्रह्मणश्चैव- (उ)	५.१३४
इति पुत्रा दनोर्वंशाः (उ)	७.१३	इत्येतमृषिसर्गन्तु - (उ)	४.११९	इत्येते भावितारौ (उ)	३६.३१५
इति प्रसूतिर्वृष्णीनां- (उ)	३४.२५७	इत्येतन्मण्डलं शुक्लं	५३.२८	इत्येते भूतयः सप्त- (उ)	६.४७
इति सर्गैकदेशस्य- (उ)	८.३३५	इत्येतल्लक्षणं- (उ)	३.२४	इत्येते मनवश्चैव	२६.४७
इति सत्रोदित सूतः	२.३	इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं- (उ)	४०.७८	इत्येते मानस पुत्रा	९.९६
इति सत्रोदितः सूतः	५१.२५	इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं	५८.१२०	इत्येते मृगवो देवाः- (उ)	४.८८

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
इत्येते राक्षसवरा (उ)	८.१६२
इत्येते वाजिन: प्रोक्ता:	६१.२६
इत्येते वै त्रय: प्रोक्ता - (उ)	४०.६०
इत्येते व नदीपुत्रा	२९.१७
इत्येते वै परिक्रान्ता	५९.१५
इत्येते वै मया प्रोक्ता	१६.१४
इत्येते वै होममन्त्रा- (उ)	१३.५६
इत्येते कारणै: शुद्धै:	५०.२१९
इत्येतैर्मन्त्रै: सजलै- (उ)	४८.३२
इत्येतैरसुरैर्घोरै: (उ)	८.१७
इत्येतै: सप्तभि:	३३.४७
इत्येवं परिवर्त्तन्ते (उ)	४०.५६
इत्येवं पितर: प्रोक्ता:	५६.८७
इत्येवं पीयमानस्तु	५६.२६
इत्येवं प्राकृतं प्रोक्त: (उ)	४०.४६
इत्येवं मनसा ध्यात्वा	२४.४०
इत्येवं मनसापूर्वम्	८.४५
इत्येवं हि मनुष्यादि:	१४.३६
इत्येवमचलैर्युक्तै	४१.७८
इत्येवमादयोन्येऽपि (उ)	८.३२८
इत्येवमादिर्हिगण: (उ)	८.३३
इत्येवमुक्त्वा भगवान् (उ)	८.९५
इत्येवमुक्ते तु (उ)	११.२३
इत्येवमुक्तो भगवान्	२३.८९
इत्येवमृषिभिर्गीतं	५७.२१
इत्येष ऋषिसर्गस्तु	२८.३८
इत्येष एकचक्रेण	५२.४३
इत्येष करणोद्भूतो	९.१०४
इत्येष कीर्तित: सर्गा	६१.१४८
इत्येष च समाख्यातो (उ)	३८.२४४
इत्येष ज्योतिषामेव	५३.११८
इत्येष धर्म: प्रथम:	११.११
इत्येष धातकी खण्डो	४९.१२०
इत्येष प्रतिसर्गो (उ)	४०.१३५
इत्येष प्रथम: पाद:	७.१
इत्येष प्राकृत सर्ग: (उ)	४०.१३४
इत्येष पितृमान् सोम:	५६.३१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
इत्येष विनयोऽग्नीनां	२९.४९
इत्येष विषये राग: (उ)	५.६४
इत्येष वै मया पादो (उ)	३.३१
इत्येष वैषयो राग: (उ)	४०.६९
इत्येष वो मया (उ)	४१.३५
इत्येष संयमश्चैव (उ)	४०.४७
इत्येष सन्निवेशो	५३.१०२
इत्येष सन्निवेशो	४६.१८१
इत्येष सन्निवेशो	४९.४३
इत्येष सन्निवेशो	४९.५८
इत्येष सन्निवेशो	४९.२८
इत्येषा समनुज्ञाता	३१.१
इत्येषां यदपत्यं	३१.६०
इदञ्च परमं तत्त्वं (उ)	३९.३३६
इदमेव विधातव्यानि	५९.१११
इदं ज्ञानमिदं	१७.३
इदं तु जन्म देवानां (उ)	२२.८७
इदं तु मध्यमं चित्रै	४५.७५
इदं यो ब्राह्मणो (उ)	४१.४८
इदं हैमवतं वर्षं	३४.२८
इन्द्रगोपनिभा: (उ)	३८.१६६
इन्द्रद्वीप कसेरुश्च	४५.७९
इन्द्रप्रमतये ह्यश्वमेध:	६०.२५
इन्द्र प्रमतिरेकान्तु	६०.२७
इन्द्रमैन्द्रेण स्थानेन	१२.३८
इन्द्रसेना यतो गर्भ (उ)	३७.१९५
इन्द्रादीनां जनयितारो (उ)	१२.२२
इन्द्रादीनां वच: श्रुत्वा (उ)	४५.३५
इन्द्राद्धनञ्जयो (उ)	३७.२४१
इन्द्रास्त्रयस्ते (उ)	३५.९१
इन्द्रियाणां शतं यद्धि (उ)	१.३९
इन्द्रियाणि मनोबुद्धि	२०.१५
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थां	११.१०
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थां	११.१८
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थां	५.५
इन्द्रोऽब्रवीज्जही	३५.१३७
इन्द्रोऽतो नाम विख्यातो (उ)	३१.२५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
इन्द्रो बृहस्पति: पूषा (उ)	४४.५९
इमं वंश नियमेन (उ)	८.३४७
इमं वंशं प्रजेशानां	३१.६१
इमं विधिं यो हि (उ)	२१.७७
इमं श्राद्धविधिं (उ)	२०.१५
इमं स्तवं पठेद्	५५.६७
इमां ज्वरोत्पत्तिम्	३०.३०३
इमां मिथ्याभिशस्तिं (उ)	३४.६८
इमां मिथ्याभिशस्तिं (उ)	३४.५२
इमां विसृष्टि दक्षस्य (उ)	४.१५९
इमां विसृष्टिं यो (उ)	२.५२
इमां विसृष्टिं विज्ञाय	३३.४८
इमांश्चोदाहरन्त्यत्र (उ)	३४.१२१
इमास्तदा तु प्रकृति (उ)	३२.४१८
इमौ च शिष्यौ द्वौ (उ)	३६.५८
इयञ्चासीत् समुद्रान्ता (उ)	२.३
इयं जन्तुधना नाम (उ)	८.११८
इरावती वितस्ता	४५.९५
इरावत्या: सुतो (उ)	८.२४५
इलाया यमपत्नीत्वम्-	२.६
इलाया निस्तरश्चोक्त:	१.१२८
इलावृतपरं नीलं	३४.३०
इषश्चैव तथोर्जश्च	३०.९
इषे त्वोर्जेत्वा वायवस्थ	२६.२०
इष्टापूतस्य यज्ञस्य	२०.१८
इष्टिं चक्रेऽश्वमेध (उ)	५०.६६
इष्टै: शब्दादिभि: (उ)	३९.३०४
इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधै: (उ)	२९.४५
इह चामुत्र च श्रीमान् (उ)	१२.१२
इहामुत्र हितार्थाय	३२.६
इहोत्पन्नास्ततस्ते (उ)	३९.६३
ई	
ईकार: समनुर्ज्ञेयो-	२६.३५
ईजिरे चाश्वमेधै:	३७.४५०
ईदृक् च पुरुषश्चैव (उ)	६.१२८
ईदृक् चैव तथान्यदृक् (उ)	६.१२७
ईशानं वरदं रुद्रम्	२५.१२

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
ईशानस्य चतुर्थस्य	२७.५२
ईशार्पितधियां (उ)	४२.९६
ईशो भवति सर्वत्र	१३.१५
ईश्वरः परमाणुत्वाद (उ)	३९.२१५
ईश्वरः सर्वभूतानां	३१.५४
ईश्वरः सर्व्वमुक्तानां (उ)	४१.२१
ईश्वरा ऋषिकाश्चैश	५९.९५
ईश्वराद् बीजनिर्भेदः (उ)	३९.२२८
ईश्वराणां शुभास्तेषां	५९.८३
ईश्वरः यो च धर्माणः	२३.१७८
ईश्वरस्तत्प्रसंख्यातं (उ)	३९.११०
ईश्वरो दण्डमुद्यम्य	४९.१४०
ईश्वरो हि परो देवो	५.१८
ईषत्कराललम्बोष्ठं (उ)	३९.२६८
ईविकास्तम्बमासाद्य (उ)	२८.३८
उ	
ॐ नमो विष्णवे मर्त्रे (उ)	४४.१०
ॐ प्राणानां ग्रन्थिरस्य	१५.८
उक्तं च विष्णु माहात्म्यं	१.१४१
उक्तं श्राद्धं मया पूर्वं (उ)	१७.४
उक्तं हि किल देवक्या (उ)	३४.२१९
उक्ता ये प्रक्रियार्थेन	७.१०
उक्ता लोकाश्च चत्वारो (उ)	३९.४८
उक्त नाभेर्निसर्गश्च	१.७४
उखामग्निसंयोगात	४९.१२८
उग्रसेनात्मजायश्च (उ)	३४.२११
उग्रसेनो महापत्यो (उ)	३४.१३४
उग्रा तनुः सप्तमी या	२७.५५
उग्रा नाम महानादास	२३.१४१
उग्राय च नमो नित्यं	३०.२००
उग्रायुधः कस्य सुतः	३७.१७८
उग्रायुधस्य दायादः (उ)	३७.१८८
उच्चत्वाद् दृश्यते	५३.९०
उच्चावचानि भूतानि	९.४९
उच्चैःश्रवसमश्वानां (उ)	९.१०
उच्चैःश्रवास्तदा (उ)	५.७४
उज्जन्तः पर्वतः पुण्यो (उ)	१५.५२
उत्तिष्ठाच्छिखास्तस्य (उ)	३८.१५९
उतथ्यश्च भरद्वाजः	५९.१०१
उतथ्यो वामदेवश्च	२३.१६६
उत्कलश्च गयश्चैव (उ)	२३.१९
उत्कृष्टेनैव विधिना (उ)	६.५४
उत्तङ्कश्च वरं प्रादात्तस्मै (उ)	२६.५९
उत्तश्च पितरोऽस्माकम् (उ)	१०.२५
उत्तमस्तत्र त्रिरुद्वातो	१०.७६
उत्तमस्य तु ते पुत्राः (उ)	६.३७
उत्तमां द्युतिमन्विच्छन् (उ)	१४.३२
उत्तमेऽनुत्तमेनापि (उ)	२.१५
उत्तरमन्द्रा रजनी (उ)	२४.४०
उत्तरं तस्य रक्तं वै	३४.४८
उत्तरं मानसं गच्छेन्मन्त्रेण (उ)	४९.२
उत्तरं मानसं गत्वा (उ)	१५.१०८
उत्तरं यदगस्त्यस्य	५०.२०८
उत्तरस्य समुद्रस्य	४५.११
उत्तराकोशले राज्यं (उ)	२६.१९९
उत्तराणां कुरुणाश्च	४९.११९
उत्तराणां कुरुणान्तु	४५.५१
उत्तरात्तस्य विन्ध्यस्य (उ)	८.२३३
उत्तरादिस्वरस्यैव (उ)	२४.५१
उत्तरान्मानसान्मौनी (उ)	४९.६
उत्तरापथदेशस्य (उ)	२६.१०
उत्तरायाश्च काष्ठायां	५०.१२८
उत्तरासु च वीथीषु	५३.९४
उत्तरास्वनतिक्रम्य (उ)	२०.१४
उत्तरे च प्रकृत्येवं मात्रा (उ)	२५.३८
उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे	५०.११५
उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे	५३.१४
उत्तरेण महानद्या (उ)	१६.२२
उत्तरेण तु श्वेतस्य	४५.६
उत्तरे प्रक्रमेत्विन्दोर्दिवा	५०.१५२
उत्तरोत्तरमेतेषां	४७.७९
उत्तरे शैलराजस्य	५४.४
उत्तरेश्वरं नमस्कृत्य	६०.७१
उत्तरेषु तु धर्मज्ञा	४९.४५
उत्तानपादाच्चतुरा (उ)	१.७५
उत्तिष्ठन्ति पृथिव्यां	८.५६
उत्थिता च शिरो भित्वा	२५.४९
उत्पतद्भिः पतद्भिश्च (उ)	३०.१६९
उत्पति पद्म रजसां (उ)	४२.६२
उत्पत्तिरादि सर्गस्य यया	२०.२
उत्पत्तिश्च निरोधश्च (उ)	२.४९
उत्पद्यतेऽथ वैराग्यम्	४०.४७
उत्पद्यन्ते निर्ग्रन्थास्तथा	५८.६६
उत्पद्यन्ते भविष्याश्च	६१.१५३
उत्पद्यमानास्त्रेतायां (उ)	३७.४४२
उत्पन्नः श्रवणेनासौ	५३.११९
उत्पन्नः सकलात् पूर्वं	३०.१०
उत्पनस्य पृथिव्य (उ)	१२.५९
उत्पन्नाः प्रतिघात्मनो	२४.७९
उत्पन्ना महता (उ)	६.७४
उत्पन्ने तु भुवर्लोके (उ)	३.१५
उत्पादकत्वाद्रजसोतिरेकात्	३.११
उत्पादिता बलवता (उ)	८.१६८
उत्पादिता महावाता (उ)	८.१७२
उत्फुल्लश्चित्रभानुश्च	३०.२४२
उत्साद्य पार्थिवान् (उ)	३७.३७२
उत्सीदन्ति तथा यज्ञाः	५८.६४
उत्सृज्य देहजातानि (उ)	१०.६३
उत्सृष्टस्य सुसम्भाषे (उ)	१७.३८
उत्सृष्टादूर्णौ दृष्ट्वा (उ)	२९.२८
उदकानयनं कृत्वा	१५.२६
उदके कण्ठमात्रे तु	११.५६
उदक्या सर्ववर्णानां (उ)	१७.२४
उदगायतो महाशैलो	३४.३४
उदङ्मार्गे समभ्यर्च्य (उ)	४९.८४
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो	१९.३५
उदग्दक्षिणतश्चैव	४६.१८
उदग्र भावेनोपेत (उ)	८.११२
उदयास्तमयाभ्यां	५०.१०६
उदानाय चतुर्थीति	१५.७
उदायी भविता तस्मात् (उ)	३७.३१३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
उदारधेः सुतं भद्रा (उ)	१.८७
उदारवंशाभिजनद्युतीनां	६१.१८३
उदावसोः सुधर्मात्मा (उ)	२७.७
उदितस्तु पुनः सूर्यः	५०.११३
उदितोदितवंशास्ते (उ)	३७.३८५
उदितो वर्द्धमानाभि	५०.१०५
उदीच्यान् मध्यदेशांश्च	५८.८१
उदीच्या मध्यदेशाश्च	६१.८
उदीर्णं धनधान्यार्थीः	४४.२५
उद्दिष्टो वेदवचनैः (उ)	४२.५६
उद्धृतोदकमादाय (उ)	१६.६१
उद्धृत्योर्विमथाद्ध्यस्तु	८.८
उरबन्धनमृता ये च (उ)	४८.३९
उद्भिज्जा स्वेदजा (उ)	५०.५९
उद्भिदं प्रथमं वर्ष	३३.२५
उद्भिद्यान्युदकन्यत्र	४७.७२
उद्यतश्चेद्रयां गन्तुं (उ)	४८.२
उद्यतत्व पुनः	५३.१२
उद्यन्तो गीतनादश्च (उ)	४७.१५
उद्यानमालाकलितं	४१.५४
उन्नेता प्रतिहतूस्तु	३३.५६
उन्मत्तः षण्डकशङ्गौ (उ)	२१.३६
उन्मादन शतावर्त्त	३०.१२४
उन्मूलानय तान् (उ)	२.३०
उपक्रीडैर्विमानैस्तु (उ)	१९.२३
उपगच्छन्ति ताः	४७.४२
उपगीतपद्मखण्डाढ्या	३८.५४
उपचारोलूखलिका (उ)	५.२५५
उपतस्थुः सगन्धर्वा (उ)	८.४८
उपतिष्ठन्ति ये तान्वै	८.१५६
उपदानवी यमस्यापि (उ)	७.२३
उपनिन्युर्ममहाभागा (उ)	२९.५५
उपभङ्गुस्तथा (उ)	३४.११०
उपभोग समर्थैस्तु (उ)	३९.१८६
उपमूले तथा नीलाः (उ)	१३.३९
उपयाचस्व मां ब्रह्मन्	२५.७०
उपयाज्याः सुधर्माण (उ)	३८.१०५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
उपरागे न कुर्याद्यः (उ)	१६.४
उपरिष्टादत्रयस्तेषां	५३.७१
उपरिष्टात्त्रयस्तेषां (उ)	१०.५६
उपरिष्टात्सितो (उ)	३९.१७५
उपलभ्य शुचेर्गन्धं	४.६४
उपवासात्परं ध्यानं (उ)	१५.१२९
उपविम्बोऽथ विम्बश्च (उ)	३४.१७१
उपविष्टमेकपंक्त्यां (उ)	३९.१६७
उपवीतन्तु यो दद्याद् (उ)	१८.५
उपसर्ग वसुश्चापि (उ)	३४.१७८
उपस्यास्यन्ति (उ)	३७.४२१
उपस्थितेऽन्तरे (उ)	५.५७
उपस्थिते तदा तस्मिन्	८.१९४
उपहूताः स्मृता देवाः	५६.१७
उपाध्यायस्तु देवानां (उ)	३७.२३२
उपान्शु व्रतमास्थाय (उ)	२६.९३
उपायत समारब्धा (उ)	१.१५६
उपायाकेतनस्या हि (उ)	९.३९
उपासतेऽत्र श्रीमन्तं	४१.५८
उपास्य रजनीं कृत्स्नां	५.१०
उपेत्य तु स्त्रियं कायात्	१८.७
उपोद्घातोनुषङ्गश्च	४.१३
उपोषितोऽथ गायत्री (उ)	५०.२६
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये	५०.१५१
उभयोः सन्ध्ययोश्चारं (उ)	८.२७५
उमातुङ्गे भूमोस्तुङ्गे (उ)	१५.८२
उमापतिं विरूपाक्षो	२५.२
उमाप्रियाय शर्वाय	५४.७५
उमावनं प्रविष्टस्तु (उ)	२३.२७
उमा हैमवती षष्ठी	९.७९
उमेति सा महाभागा (उ)	११.१२
उरगो वासुकिश्चैव	५२.३
उर्जवहात् सुतद्वाजः (उ)	२७.२०
उर्वशी चकमे यं	२.१५
उर्वशी विप्रचित्तिश्च	५२.१८
उर्वो सागरपर्यन्ता (उ)	१७.९
उर्व्यां जातास्तु ये	६०.७४

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
उर्व्वश्यथा ब्रवीच्चैलं (उ)	२९.३८
उलूलो रोमशश्चैव	३९.३८
उवाच भगवान् देवो	२५.६
उवाचममता तन्तु (उ)	३७.३८
उवाच वैन्यं नाधर्म (उ)	१.१५३
उवाचेदन्न भेतव्यं (उ)	३६.४८
उशना सुतधर्मात्मा (उ)	३३.२३
उशनास्तस्य जग्राह (उ)	२८.३०
उशिको द्वादशस्तत्र	२१.३०
उशीनरश्च धर्मज्ञं (उ)	३७.१८
उशीराग्निः सवीर्यस्तु	२९.२९
उषित्वा तु तयासार्द्धं (उ)	२९.३७
उषित्वा रजनी तत्र	७.४६
उष्ट्रा वा रासभा वापि	१९.२६
उष्णात्परः प्रावरकः	४९.६६
उष्णीषिणो सुवक्राय (उ)	३५.१६४
उह्यमानः समुद्रस्तु (उ)	३७.६४
ऊ	
ऊचतुश्चैव वचनं भक्ष्यो	२५.३०
ऊचुः क्षीराम्बुधौ (उ)	४५.३४
ऊचुः सनत्कुमाराद्या (उ)	३९.७५
ऊचुः सर्वे ततोऽन्योन्यं (उ)	४.१८
ऊचुस्तमसुराः सर्वे (उ)	३६.३३
ऊचुस्तं वासुदेवाद्या (उ)	४४.१५
ऊचुस्ते पितरः कन्यां (उ)	११.५४
ऊचे गयासुरो देवान् (उ)	४४.६१
ऊद्धरिष्यति तान् (उ)	३७.३२४
ऊर्जायान्तु वसिष्ठस्य	२८.३३
ऊर्जो वसिष्ठपुत्रस्तु (उ)	१.१५
ऊर्जां ददौ वसिष्ठाय	१०.३१
ऊर्णा कौशेयवस्त्राणि (उ)	१८.३४
ऊर्द्ध्वं केशं हरिच्छ्मश्रुं (उ)	८.७८
ऊर्द्ध्वश्चैव चतुस्त्रिंशत-	४९.१०७
ऊर्द्ध्वबाहुं तपो ग्लानं	२१.४२
ऊर्द्ध्वबाहूर्द्ध्वरोमाणं (उ)	८.२६६
ऊर्द्ध्वमाचक्रमे तस्य (उ)	२८.५
ऊर्द्ध्वं ग्रहादृष्टिभ्यस्तु (उ)	६.११९

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
ऊर्द्धवं चाधश्च तिर्यक्च (उ)	४०.१५
ऊर्द्धवं देवात्मकं (उ)	४०.५५
ऊर्द्धवं भागस्ततोऽण्डस्य (उ)	३९.१४३
ऊर्द्धवरेतास्ततश्चापि (उ)	३७.४७
ऊर्द्धवलोके समावेतो (उ)	३९.१८५
ऊर्द्धवशैलमितास्ते (उ)	३९.१८४
ऊर्द्धवा च दृष्टिर्न च	१९.२९
ऊर्द्धवोत्तरमृषिभ्यस्तु	५०.२२१
ऊर्द्धवोष्ठे दक्षिणाग्निश्च	८२.८५
ऊर्द्धवगात्रो होमलिङ्ग	६.१९
ऊनरात्राधिमासौ च	५०.२००
ऊरुः पुरुः शतद्युम्नुः (उ)	१.६७
ऊरुः पुरुः शतद्युम्नुः (उ)	१.९०
ऊरोरजनयत् पुत्रान् (उ)	१.९१
ऊष्मपाः सोमपाश्चैव	३०.१००
ऊष्मा प्रकुपितः काये (उ)	४०.८९
ऋ	
ऋक्ष संजनयामास (उ)	३७.१०
ऋक्षवन्तं गिरिवरं (उ)	३४.३८
ऋक्षवानरयुक्तेन	१९.१२
ऋक्षेण निहतो दृष्टः (उ)	३४.४०
ऋग्यजुः सामवेदैश्च	५४.६
ऋग्वेदं प्रथमं तस्य	२६.१७
ऋग्वेदं श्रावकं पैलम	६०.१४
ऋचामथर्वणां पञ्च	६१.७२
ऋचो गृहीत्वा पैलस्तु	६०.२४
ऋचो यजूंषि सामानि	२०.२४
ऋचो यजूंषि सामानि	५७.४६
ऋचो यजूंषि सामानि	५९.५७
ऋचो हि यो वेदस (उ)	१७.९५
ऋजवो नष्टरजसः	१.११
ऋणञ्च भुंक्ते पापात्माय (उ)	१४.२०
ऋणत्रयं मया दत्तं (उ)	४९.३९
ऋणमोक्षं पापमोक्षं (उ)	४६.६७
ऋतवः सुमेकपुत्रा विज्ञेया	३०.१७
ऋतवास्त्रिंशतः सौराः	५०.१८५
ऋतवो ब्रह्मणः पुत्रा	३०.११

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
ऋतात्तु ऋतवो यस्मात्	३०.२२
ऋतुत्रयं चायनं द्वे	३०.१६
ऋतुत्व मार्त्तवत्वञ्च	३०.२४
ऋतुधामा च सुज्योति	२९.२३
ऋतुनामविभागश्च	५३.४०
ऋतुपुत्रार्त्तवः पञ्च	३१.५०
ऋतुपुष्प फलास्तां	८.१५२
ऋतुप्रवाहणीऽग्नीध्रः	२९.१८
ऋतुरग्निस्तु यः	३१.२९
ऋतुरग्निस्तु यः	५६.१४
ऋतोः क्रतु समः पुत्रो	२८.३०
ऋद्ध्यां कुबेरोऽजनयत (उ)	९.४१
ऋभुं सनत्कुमारञ्च	२४.८२
ऋभुः सनत्कुमारस्तु	९.९८
ऋभुः सनत्कुमाराद्याः (उ)	३९.२६
ऋभुः सनत्कुमाराद्याः (उ)	३९.३७
ऋभुः सनत्कुमाराद्याः (उ)	३९.२१२
ऋष इत्येव ऋषयः	४९.१२५
ऋषन्ति रञ्जनाद्यस्मात्	६१.८७
ऋषभस्तु ततः कल्पो	२१.३१
ऋषभस्यापि दायादः (उ)	३७.२१९
ऋषभाद्भरतो जज्ञे	३३.५१
ऋषयश्चैव देवाश्च	३२.३७
ऋषयश्चैव मुक्तास्तु (उ)	२२.१
ऋषयः संशितात्मनः	१.११
ऋषयस्तत्र विद्वांसः	२.३०
ऋषयस्तद्वचः श्रुत्वा	६०.१
ऋषयस्तपसा देवाः	.५७.८
ऋषयस्तु ततः श्रुत्वा	४.१
ऋषयस्त्वेकतः	६०.४८
ऋषयोदेव गन्धर्वाः	१२.१५
ऋषयोदेवगन्धर्वाः	५२.२९
ऋषयो नाभ्यभाषन्त	३०.१४७
ऋषयो निवसन्त्यस्मिन	४९.१२४
ऋषयो नैमिषेयस्तु	१.१६८
ऋषयो मनवश्चैव	५८.१२४
ऋषयो मनवो देवाः (उ)	३८.२०१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
ऋषिकान्तगिरिद्रोणीः (उ)	३७.३९७
ऋषि पुत्रानृपतिकांस्तु	५९.९२
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा	५८.१२
ऋषिभिर्देवगन्धर्वै-	३४.९३
ऋषिभिः स्तूयते वापि (उ)	१.१७५
ऋषिरिऽविडायान्तु (उ)	९.३२
ऋषिः सर्वगतत्वाच्च	५.३३
ऋषीका सुकुमारी	४५.१०७
ऋषीणाञ्च वरिष्ठाय	१.७
ऋषीणाञ्च सुतास्ते	५९.८६
ऋषीणां नामधेयानि	९.५८
ऋषीणामग्नि कल्पानां	२१.१
ऋषीणां तपः कात्स्न्र्येन	५९.६२
ऋषीणान्तु वचः श्रुत्वा (उ)	१०.१४
ऋषीणां देवताः पुत्रा (उ)	१.२०
ऋषीणां परमं चात्र	१.१७४
ऋषीणां ब्रह्मचर्येण	६१.१६६
ऋषीणां वसुना सार्द्धम्	१.१०२
ऋषीत्येष गतौ	५९.७९
ऋषीन् देवान् सगन्धर्वान् (उ)	४.१२६
ऋष्यन्तरेषु वै (उ)	४.९६
ऋष्यादिभ्यो मुनिभ्यश्च (उ)	४५.४४
ए	
एक आसीद्य यजुर्वेदः	६०.१७
एक एव महासानुः	४९.११०
एक कालं समुत्पन्नम्	४.६७
एक ग्रीवस्त्वेकजये	५५.५३
एक चक्रः सुबाहुश्च (उ)	७.७
एकतः सर्व्ववस्तूनि (उ)	४३.३३
एकत्रिंशच्च विख्याता (उ)	११.८१
एकत्रिंशत्तमः कल्पः	२३.१
एक त्रिंशत्समा राज्यम् (उ)	३७.३०७
एकत्वं च पृथक्त्वं च	१.१२०
एकत्वमुपयोगस्य (उ)	२५.४४
एकत्वे च पृथक्त्वे (उ)	५.१०७
एक पादाने द्विपादाश्च (उ)	८.२४४
एक पाद् बहुनेत्राय	३०.२०७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
एक मात्रो महोघोष:	२६.१५	एकैकमन्तरन्तस्या	५०.१३४	एतत्सर्वं यथावृत्तं	१.१७४
एक योजन कोटी (उ)	३९.२२१	एकैकस्योदरस्थांस्तु	२३.१०४	एतत्सर्वं सदा तेन	५५.६८
एक रात्रं सूरै: सर्वे:	५२.६२	एकैकातिक्रमेतेषां	१८.१८	एतत्सर्वं समाचक्ष्व	५३.३
एक रात्रि मुहूर्ता:	५.४५	एकैकं त्रिशतस्तेषां (उ)	३८.७८	एतत्सहस्रपर्यन्तम	२४.२
एक विंशतिकुलान्याहु: (उ)	५०.३४	एकोनविंशक: कल्पो	२२.९	एतत्सोमस्य वै (उ)	२८.४८
एक विंशतिभिश्चैव	५०.१३९	एकोनविंशेत्रेतायां (उ)	३६.९०	एतदङ्गिरसा प्रोक्ता	६१.७३
एक विंशतिम: कल्पो	२१.४३	एकोभूत्वा यथा मेघ: (उ)	५.९७	एतदन्यच्च विविधं (उ)	४२.१७
एक विंशद्योजनानां	५०.१३८	एको मुनि: कुम्भ कुशाग्र (उ)	४९.४४	एतदाप्ताय भक्ताय	५४.२६
एकविंशमथर्वाणमाप्तो-	९.४७	एको वेदश्चतुष्पाद	५७.८३	एतदिच्छामि भगवान् (उ)	१०.४३
एक विंशे पुन: प्राप्ते	२३.१८३	एकं कल्पसहस्रन्तु	२२.४	एतदिच्छामि वै श्रोतुं (उ)	१०.१३
एकवेदस्तथापश्चाद् (उ)	१७.५४	एकं निन्दतियस्तेषां (उ)	५.११०	एतदुक्तं ससप्तर्षि ब्रह्मर्षि (उ)	१२.२८
एकशृङ्गो महामूलो	३६.२३	एकं पदं परिक्रम्य	३२.३२	एतदेव तु सर्वेषां	५८.११५
एकस्तु प्रभुशक्तया (उ)	५.१३९	एकं पवित्रं हस्तेन (उ)	१३.२१	एतदेवं भवेच्छौचं (उ)	१७.२६
एकस्था यत्र दृश्यन्ते (उ)	१५.२९	एकं महान्तं दिवसम	११.१	एतदेवं विधं वाक्यं	२४.३८
एकस्यार्थाय यो (उ)	१.१५९	एकं युगसहस्रन्तु	२२.५	एतद्गुप्ततमं लोके	२६.६
एकस्यैता: स्मृतास्तिस्र (उ)	५.९९	एकं विप्रा: पुन: प्राह (उ)	१४.३५	एतद् द्वादशसाहस्रं	३२.६२
एक: स्वयम्भुव: (उ)	५.१०४	एकं वेदश्चतुष्पादम्	१.१६३	एतददिव्यमहोरात्रमिति (उ)	३८.२२४
एकाक्ष ऋषभोऽरिष्ट (उ)	७.१५	एत एव त्रयो वेदा:	५.१६	एतद्धि मंडलं सिद्धं (उ)	१५.३०
एकातनु: स्मृता (उ)	५.१०६	एतच्छ्रुत्वा गता:	५५.६६	एतद्धिरण्यगर्भस्य	४.८१
एका तु कुरुते तासां (उ)	५.८९	एतच्छ्रुत्वा तत:	३०.३८	एतद्धिरूपमज्ञातम्	५५.६३
एकात्मा स त्रिधा (उ)	५.११२	एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय:	४६.१	एतद् ब्रह्मपदं दिव्वं (उ)	३९.९१
एकादश सहस्राणि	४५.८	एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय: (उ)	२३.२४	एतद् ब्रह्मवच: श्रुत्वा (उ)	१०.३५
एकादश सहस्रारिण	४६.१०	एतच्छ्रु त्वा तु ऋषयो	३८.२२७	एतद् ब्राह्ममहो (उ)	३८.२१३
एकादश सहस्राणि	६१.७०	एतच्छ्रु त्वा तु ते (उ)	३९.१११	एतद्व: कथितं सर्वं (उ)	३७.४५५
एकादशा ते जज्ञेवै (उ)	३४.२१५	एतच्छ्रुत्वा तु मुनय:	५१.२	एतद्वेदितुमिच्छाम:	४५.७०
एकादशे द्वापरे तु	२३.१४०	एतच्छ्रु त्वा तु मुनय:	५३.१	एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो	५१.४
एकादशेन्द्रियाविधा	६.४२	एतच्छ्रुत्वा नैमिषेया (उ)	४१.४०	एतद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि (उ)	१०.३७
एकानसा दैत्य हनी	९.८५	एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य (उ)	४.१४	एतद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि (उ)	३९.११५
एकान्तरा तु वाद्यन्तु (उ)	२५.१५	एतच्छ्रु त्वा वचस्तस्य (उ)	६.१	एतन्न: संशयं सूत (उ)	२.४८
एकान्तशीलं हीमन्तं	१७.४९	एतच्छुत्वा वचस्तस्य (उ)	१०.१	एतन्मखे शूरा सुवर्णपात्रे	३०.१०७
एकात्र मधु मांसं वा	१८.१७	एतच्छ्रु त्वा सभगवान् (उ)	३४.२५	एतन्माहेश्वरं तेजो	३०.३०२
एकार्णवे तदा तस्मिन्	६.२	एतत् प्रोक्तं निदानं	२७.६०	एतया प्रविशेद्देहं	१२.३४
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे	७.५६	एतत सर्वं चरन्त्येते (उ)	६.१२१	एतयोरन्तारं नित्यं (उ)	१३.५७
एवार्णवे प्लवे चैव	२३.१०२	एतत्कालन्तर भाव्या (उ)	३७.४११	एतस्तिस्र: स्मृता- (उ)	३६.८७
एकार्णवे सदावृते	२३.२१	एततु त्रिकुमारीकं (उ)	११.१३	एतस्मिन्नन्तरे ताभ्याम्	२४.३४
एकेनातिष्ठिदव्यग्र (उ)	४७.७	एतत्ते विफलं सर्व्वं (उ)	२९.५४	एतस्मिन्नन्तरे दूरात्	५५.१३
एकेनैव तु गन्तव्यं	१४.२९	एतत्सर्वं प्रसंख्याय (उ)	३७.२५९	एतस्मिन्नन्तरे भर्ता (उ)	४५.२६

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
एतस्मिन्नेव काले (उ)	१.१३५
एतस्मिन्नेव काले तु (उ)	८.८४
एतस्मिन्नेव काले तु (उ)	८.९४
एतस्मिन्नेव काले तु (उ)	३०.२४
एतस्मिन्नेव काले (उ)	३०.२९
एतस्मिन्नेव काले (उ)	३३.१२
एतस्मिन्नेव काले (उ)	३४.७९
एतस्मिन्नेव काले (उ)	४७.३४
एतस्मिन् पुष्करद्वीपे	४९.१३९
एतस्मिन् ब्रह्मलोके (उ)	३९.६६
एतस्य वंशे संभूता (उ)	३०.५
एता: काष्ठामनुप्राप्ता	५८.९९
एता गंगा महानद्यो	४३.३१
एताश्चान्याश्च	४४.२३
एतानन्यांश्च (उ)	४४.४०
एतानि सप्तसूक्ष्माणि	१२.२५
एतानुत्पाद्य धर्मात्मा (उ)	११.७५
एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु (उ)	९.२२
एतान् देवासुरे युद्धे (उ)	८.२२५
एतान् दोषान् विनिश्चित्य	११.३५
एतान् भावानधीयाना	६१.६३
एतान्युक्तानि वै (उ)	३८.८
एतान्येव च सर्वाणि (उ)	१७.८९
एतान्येव भविष्याणां	९.२२
एता: पञ्चदशान्याश्च	६१.६२
एतामेव महाभागाम् (उ)	५.५८
एतावदेव शक्यं वै	४९.१०३
एतावान् सन्निवेशस्तु	४९.१८४
एतावानेव लोकास्तु	५०.१६०
एताश्चावृत्य चान्योन्य	४.७८
एतासामन्तरं वक्तुं (उ)	५.८७
एतास्तु मात्रा विज्ञेया	२०.१४
एतेऽङ्ग वंशजा: सर्वे (उ)	३७.११५
एतेऽपि संचिता पक्षं (उ)	२७.२०२
एते इक्ष्वाकुदायादा (उ)	२६.२१२
एते ऐक्ष्वाक्वा: (उ)	३७.२८७
एते क्षयपादयादा (उ)	८.३३४
एते क्षत्रप्रसुता वै पुन: (उ)	२६.७
एते चान्ये च बह्वो	३०.१०१
एते चान्ये च बह्वो	५७.१२३
एते चैव हि कर्तारो	५९.१०७
एते तपन्ति वर्षन्ति	५२.३०
एते ताराग्रहाश्चैव	५३.११०
एते तु पितरो देवा	५६.८६
एते तेनैमिषेया (उ)	४१.४२
एते दिन मुहूर्ताश्च (उ)	५.४२
एते देवा भविष्यन्ति	१०.५४
एते देवा यजन्ते (उ)	३९.४५
एते देवासुरा वृत्त: (उ)	३५.८७
एतेन क्रमयोगेन	५०.११७
एतेन क्रमयोगेन	५३.१६
एतेन क्रमेयोगेन	६१.१३५
एतेन गतियोगेन	५०.१२२
एतेन देवगन्धर्वा:	४९.८८
एतेन धनुषा चैव (उ)	३९.१२७
एते पर्वत राजान: (उ)	३४.२१
एते पिवन्त्यमावास्यां	५६.२२
एते पुत्रा महात्मान: (उ)	३०.१
एते पुत्रा: समाख्याता (उ)	११.६९
एते प्रजानां पतय:	३१.५२
एते ययातिपुत्राणां (उ)	३७.४५६
एते ययाति वंशस्य	३२.५२
एते ये वै त्वया प्रोक्ता: (उ)	३९.३३५
एते ये वै माया सृष्टा	१०.५३
एते योगं परित्यज्य (उ)	१०.६०
एते योजनमात्राच्च	५१.३७
एते रत्नमया: सप्त	४९.६३
एते रात्र्यहनी पूर्वं (उ)	३८.२३०
एते लोकहितार्थाय (उ)	३६.१०३
एते वत्सविशेषाश्च (उ)	२.११
एते वसन्ति वै सूर्ये	५२.२
एते वाहा ग्रहाणां	५२.८३
एते विहरणियास्तु	२९.४३
एते वै भ्राम्यमाणस्तु	५२.८४
एते शारद्वता: प्रोक्ता: (उ)	३७.२००
एते शिष्या मम ब्रह्मन्	६१.५७
एतेषां पुत्रपौत्रास्तु	२९.६
एतेषामन्वये जातान् (उ)	८.२६
एतेषामभ्युपगमान (उ)	११.९२
एतेषां मानसीं कन्या (उ)	११.७०
एतेषां मानसीं कन्या (उ)	११.८०
एतेषां मानसीं कन्या (उ)	११.८३
एतेषां मानसीं कन्या (उ)	११.८८
एतेषामेव देवानां	५२.२७
एतेषां शैलमुख्यानाम्	३६.३३
एतेषु दत्तमक्षय्यमेते (उ)	२१.२८
एतेषु देवगन्धर्वा:	४९.१५
एतेषु देवगन्धर्वा:	४९.५३
एतेषु वनमुख्येषु (उ)	२९.८
एतेषु स्थानिनो ये तु	३०.१४
एते सप्त कृता लोका:	५०.८०
एते सप्त महावीर्या	४.६५
एते सप्त वर्षय: सिद्धा (उ)	३८.९८
एते समास तस्तात् (उ)	४.५१
एते सर्गा यथाप्रज्ञं (उ)	२.५४
एते सर्वे महाभागा:	१०.३२
एते ह्यङ्गिरस: पक्षा:	४.१०८
एते ह्यङ्गिरस: पक्षे (उ)	३७.१९४
एते ह्यङ्गिरस: पुत्रा: (उ)	११.८२
एते ह्योकोनपञ्चाशन्मरुतो	६.१२९
एतैरेव तु कामं त्वां (उ)	४.८०
एतैर्दुग्धा पुरा पृथ्वी (उ)	२.२०
एतैश्च सर्वमन्त्रैस्तु (उ)	४८.५६
एभि: सह महात्मा (उ)	३९.३२१
एभ्योऽनेकानि जातानि (उ)	८.३०
एभ्यो दत्त्वा ततोऽन्या (उ)	२.४२
एलापर्णस्तथा सर्प:	५२.१०
एवञ्च विधिवच्छ्राद्धं (उ)	४८.१४
एवञ्चतुर्महाद्वीप	४८.४३
एवन्तु तुर्वसुं शप्त्वा (उ)	३१.४४
एवन्तौ निहतौ दैत्यो	२५.५३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
एवमत्यन्त सुखिन:	४५.५०
एवमन्तमनन्तस्य	५०.८
एवमर्थ वशात्तस्य	५१.६७
एवमष्टादशोक्तानि (उ)	४२.११
एवमस्तु महाभागौ	५५.६१
एवमस्तु श्रिया सार्धं (उ)	४७.३४
एवमस्त्वीति वे दक्ष:	२५.८९
एवमस्त्विति सोऽप्युक्तो (उ)	४.४२
एवमाज्ञा कृता पूर्व (उ)	१०.३३
एवमात्मास्थिसंयुक्तो	१४.१९
एवमादि क्रमेणैव (उ)	३९.१७६
एवमादि रसङ्घ्यातो (उ)	८.३१०
एवमादिषु सर्वेषु (उ)	१५.११८
एवमादिनि चान्यानि (उ)	१६.१०
एवमादिनि देवानां (उ)	३४.२३५
एवमादिनि पुत्राणां (उ)	३४.२४४
एवमादिनि सूक्ष्माणि (उ)	२९.३४
एवमाप्ययित: सोम (उ)	१९.२१
एवमाराध्य ते सूतं (उ)	४१.५
एवमाराध्य देवेशम् (उ)	३६.१
एवमावर्तमानस्ते	६१.१०३
एवमाश्रम धर्माणां	५९.२५
एवमुक्त: प्रत्युवाच (उ)	३१.५७
एवमुक्तया सम्यक (उ)	३७.४१
एवमुक्त: सदृष्ट्वा (उ)	३०.१२
एवमुक्त: स रूपानि	६१.१९
एवमुक्त: सुरैर्विष्णु	५५.८
एवमुक्तस्तत: क्रुद्धो	६१.१८
एवमुक्तस्तत: (उ)	४१.८
एवमुक्तस्तत: सूत: (उ)	२२.३
एवमुक्तस्ततो देवस्	२५.१९
एवमुक्तस्ततो वाक्यम् (उ)	२९.१०२
एवमुक्तस्ततो वायु: (उ)	३९.९
एवमुक्तस्ततो विष्णु (उ)	३५.१३४
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा	६०.८
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा	१०.५७
एवमुक्तस्तदा सूत (उ)	६.४९

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
एवमुक्तस्तदा सूतो (उ)	६.३
एवमुक्तस्तु तेनपि (उ)	३७.६८
एवमुक्तस्तु दैतेया: (उ)	३६.५९
एवमुक्तस्तु राजर्षि (उ)	२६.४५
एवमुक्ताऽब्रवीदेनम (यू)	३७.१३८
एवमुक्ताऽब्रवीदेनं (उ)	३६.७
एवमुक्तातदा विश्वे (उ)	१४.९
एवमुक्ता ब्रवीदेवं (उ)	३३.३४
एवमुक्ताऽब्रवीद्देवी (उ)	३६.२२
एवमुक्ता महाभागा (उ)	२९.७६
एवमुक्ता सुरा: सर्वे (उ)	३६.२८
एवमुक्तास्तत: सर्वा	३२.२६
एवमुक्तास्तु रुरुदुर्दुद्रुवुश्च	९.७३
एवमुक्ते तु पितृभिस्तादा (उ)	१४.७
एवमुक्ते तु भगवान वायु:	२१.८
एवमुक्तोऽथ ब्रह्मा (उ)	६.६४
एवमुक्तोऽब्रवीदेतान् (उ)	३५.९६
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां (उ)	३६.८
एवमुक्तोऽब्रवीद्देवो (उ)	३५.११६
एवमुक्तो भगवता	२५.७४
एवमुक्तो महातेजा (उ)	१६.२७
एवमुक्तो विनिश्चित्य (उ)	२६.२२
एवमुक्त्वा क्षत्रियैर्युद्धे (उ)	२९.६८
एवमुक्त्वा गतायां (उ)	३७.१४६
एवमुक्त्वातदासर्वे (उ)	३९.७८
एवमुक्त्वा तु ते सर्वे (उ)	५.१३
एवमुक्त्वा तु ते सर्वे (उ)	५.६०
एवमुक्त्वा तु भगवान्	३०.१२२
एवमुक्त्वा तु भगवान् (उ)	३२.३३
एवमुक्त्वा तु विप्रर्षि:	३०.१०४
एवमुक्त्वा दिति: शक्रं (उ)	६.१००
एवमुक्त्वा द्विधाभूत:	९.७०
एवमुक्त्वा ब्रवीद	२४.२८
एवमुक्त्वा महातेजा (उ)	६.९३
एवमुक्त्वा महादेव:	२३.५२
एवमुक्त्वा महादेव:	३०.२९५
एवमुक्त्वा यदुं राजा (उ)	३१.३८

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
एवमुक्त्वा स राजर्षि (उ)	३१.१०१
एवमुक्त्वा सुरान् (उ)	३५.१२७
एव मुक्त्वासुरा: सर्वे (उ)	३६.३५
एवमुत्क्षिप्यते चैव	५१.१७
एवमेकमिदं वर्षं	४८.४२
एवमेकार्णवे तस्मिन् (उ)	३८.१८५
एवमेतच्चतुष्पादं (उ)	४१.४५
एवमेतत्समुद्दिष्टं (उ)	१४.३४
एवमेतेन योगेन	२३.३२
एवेमेतेन विधिना प्रपन्ना	२३.१८
एवमेते महात्मान: (उ)	११.१०५
एवमेते महात्मानो	२१.५२
एवमेतेषु सर्वेषु (उ)	१५.१२३
एवमेव तु विज्ञेया	४७.६२
एवमेव तु विज्ञेयं	६१.१२५
एवमेव तु सर्वेषु (उ)	३७.४३८
एवमेव निसर्गोऽयं	४५.६७
एवमेव महाबाहु: (उ)	२६.१९६
एवमेव महाभागा (उ)	३९.७७
एवमेष मयोक्तो व:	५५.६२
एवार्यान्तु युगाख्यायां (उ)	३७.४३०
एवं कल्पे तु वैकल्पे	२४.८४
एवं कालान्तरे सर्वे	३२.३८
एवं किल महं प्रोक्त: (उ)	३६.५३
एवं कूटतटैर्भ्रष्टा	४२.६१
एवं कृत्वा स दुष्टात्मा	१८.११
एवं गतिविशेषण	५०.१५४
एवं गिरि सहस्राणि	४२.७२
एवं चतुर्युगाख्या ५७.३३	
एवं चतुर्शु द्वीपेषु	५०.१०३
एवं चित्ररथोवीरो (उ)	३३.१८
एवं जिह्वापरिवृत्ति (उ)	८.२२९
एवं जीवस्तु तै: पापै:	१४.२८
एवं ज्ञात्वा न मुह्यते	५०.२०४
एवं ज्ञात्वा महायोगं	२४.८८
एवं ज्ञात्वा स विज्ञाता (उ)	४०.१२१
एवं तत्यजतुस्तौ	३६.६६

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
एवं तत्र श्यानेन विष्णुना	२४.१२
एवं तदमृतं सौम्यं	५६.२४
एवं तस्य वचः श्रुत्वा	५४.८९
एवं तास्तु महानद्यः	४२.७८
एवं तु स विनिश्चित्य (उ)	३०.५१
एवं ते समयं कृत्वा (उ)	३८.५२
एवं तौ निश्चयं ज्ञात्वा (उ)	६.१३४
एवं दत्त्वा वरं तेषां (उ)	१४.१६
एवं दिन क्रमातीते	५२.६४
एवं दिशानां देवानां (उ)	३९.२९०
एवं देवगणाः सर्वेक्षण (उ)	३९.६४
एवं देवयुगानान्तु	७.२८
एवं देवयुगानीह (उ)	३९.६८
एवं देवाश्च पितर	६१.१२८
एवं देवासपितर	८.१८४
एवं द्वीप समुद्राणां	४९.१२३
एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु	४९.१२२
एवं निवृत्तिः क्षेत्रज्ञा	५९.७८
एवं नृपेषु नष्टेषु	३७.३९४
एवं षडेते कथिता	४८.४१
एवं परस्परोत्पन्ना	४.७९
एवं परस्परोत्पन्ना	४९.१७२
एवं पुरसहस्राणि	५०.१९
एवं पुरसहस्राणि	५०.२४
एवं पुरसहस्राणि	५०.३०
एवं पुरसहस्राणि	५०.३७
एवं पुरसहस्राणि	५०.४०
एवं पुष्करमध्येन	५०.११९
एवं पूर्वानुपूर्व्येण (उ)	३९.६७
एवं पृष्टोऽथ भगवान्	२६.५
एवं प्रचेतसो दक्षो	३०.७४
एवं प्रजासन्निवेश	३४.१
एवं प्रजासु सृष्टासु (उ)	९.१
एवं प्रभावो दैत्येन्द्रो (उ)	६.६६
एवं प्रभावो राजासीद (उ)	२.५
एवं प्रभावो राजासीद (उ)	२९.४६
एवं प्रसिद्धाः शाखाभ्यः	८.१२१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
एवं प्राचीनमदहत्ततः (उ)	३३.११
एवं बहुविध वाक्यं (उ)	१.१५८
एवं ब्रवंस्त्वयैकेन (उ)	३५.१५६
एवं ब्रह्माणि चिन्मात्रे (उ)	४२.५३
एवं ब्राह्मीषु रात्रिषु	७.७०
एवं ब्रुवाणां भगवान	३०.११७
एवं भगवता पूर्वं	५४.८०
एवं भवतु गच्छामो (उ)	३६.१०
एवं भवतु गच्छामो (उ)	३६.११
एवं भवतु भद्रन्ते (उ)	६.९१
एवं भवतु भद्रन्ते (उ)	१०.५८
एवं भूतानि सृष्टानि	९.६१
एवं भूतेषु लोकेषु	१०.१
एवं मन्वन्तराणां	६१.१४७
एवं मन्वन्तराणान्तु	६१.१७५
एवं मन्वंतरं तेषां	२१.२०
एवं मिथ्या नरश्रेष्ठ (उ)	३४.२२७
एवं मृतः स शाकल्यः	६०.६०
एवं ययातिशापेन (उ)	३७.४
एवं युगागस्येह (उ)	५८.११०
एवं रश्मिसहस्रन्तत्	५३.२७
एवं लब्धवरो राजा (उ)	५०.२०
एवं लब्ध्वा धनं मोहाद (उ)	२९.१०६
एवं वरुतृणः पुत्रा (उ)	४.८४
एवं वसन्ति वै सूर्ये	५२.३५
एवं वाराणसी शप्ता (उ)	३०.५९
एवं वाराणसी शप्ता (उ)	३०.६१
एवं वितेनिरे सत्रम्	२.३३
एवं विधान्पिशाचस्तु (उ)	८.२७४
एवं विधासु सृष्टासु	९.६०
एवं विधं सुतं दृष्ट्वा (उ)	९.३८
एवं विवदमानास्ते (उ)	५.१३८
एवं विवादः सुमहान्	५७.११९
एवं विश्व मुगिन्द्रस्तु	५७.१०२
एवं विसृज्य पृथिवीं (उ)	३१.९१
एवं बृहस्पतिः पूर्वं (उ)	२१.१००
एवं वेदं तदान्यस्य	६१.७७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
एवं वैध्यायतस्तस्य	२३.२७
एवं वै नियताहारः	११.२४
एवं शैलसहस्राणि	४२.२०
एवं शौच विधिर्दृष्टः (उ)	१७.२८
एवं संक्षेपतः प्रोक्ता	३२.५१
एवं सकाले भगवान्	३२.३४
एवं संख्यातकालश्च	५७.३१
एवं सत्रीणि शंकूनि (उ)	२६.१०९
एवं स धर्षितस्तेन	६०.५१
एवं सन्ध्यांशके	५८.७५
एवं संस्तूयमानस्तु	५५.५१
एव स भगवानुक्तो	२५.७७
एवं स भगवांस्तत्र	३०.९३
एवं समणिमादाय (उ)	३४.५०
एवं सर्वेषु विज्ञेया (उ)	२.२१
एवं सर्वेषु विज्ञेयं (उ)	४०.३५
एवं सलोके निवृत्तै (उ)	३८.१९६
एवं सूर्यनिमित्तैषा	५२.७१
एवं सूर्य प्रभावेण	५३.५०
एवं सूर्यस्य वीर्येण	५६.३०
एवं स्तुतस्ततो देवैः	५४.७८
एवं स्तुतो महेषेन प्रीतो (उ)	४७.५१
एवं स्तुतो वासुदेवः (उ)	४४.१२
एवं हि पादश्चत्वारः	४.१४
एवं हि योगी संयुक्तः	२०.३०
एवं हृदयमालभ्य	१५.१०
एवं ह्यविकलं श्राद्धं	५६.८३
एष आद्यः परं ज्योतिरेष	१५.३
एष कर्मसु युक्तस्य	१२.४
एष कालस्तुमूर्तिश्च	३२.२८
एष काव्य इदं सर्व	३५.९९
एष काव्यो ह्यनिन्द्राय (उ)	३५.१६०
एष त्वां विष्णुना सत्ये (उ)	३५.१४४
एष धर्मः कृत कृतस्नो	५८.३२
एष न संशयो धीमन् (उ)	३५.५९
एष पिण्डो मया दत्तः (उ)	४६.९०
एष बीजो भवान् बीजम्	२४.६६

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
एष मार्गो हि निरचिति (उ)	४०.७१
एष व कथित: पाद:	६.७३
एष वंश क्रम: कृतस्नं (उ)	३७.४०८
एष वै जीवलोकस्ते	५४.१६
एष सर्ग: समाख्यात: (उ)	२.५३
एष सर्गस्तु मारीचो (उ)	३.५
एष स्वायम्भुव: सर्गो	३३.६४
एष कलियुगेऽवस्था	५८.७३
एषा चैव विशेषेण	२०.२२
एषाञ्च ऋषिमुख्यानां	१.२२
एषा त्वां विष्णुना सार्धं (उ)	३५.१३५
एषा द्वादश साहस्री	५०.२८
एषा निसर्ग प्रति (उ)	४०.१३३
एषा संख्या कृत्या (उ)	३६.२०८
एषां संवत्सरो	५६.२०
एषा स्वाभाविकी (उ)	३९.१९२
एषोऽद्धांश प्रचारोऽस्य (उ)	३९.१४४
एषोर्द्धगप्रचारस्तु (उ)	३९.२२२
ऐ	
ऐक्ष्वाकवाश्चतुर्विंशत् (उ)	३७.३१७
ऐडमिक्ष्वाकुवंशस्य	३२.४५
ऐडवंशेऽथ सम्भूता	३२.४६
ऐन्द्रवारुणवायव्य (उ)	३५.३१
ऐन्द्रेण हविषा चापि (उ)	१.१३६
ऐन्द्रेण हविषा तन्त्र	१.२९
ऐरावत महापद्मौ (उ)	८.६७
ऐल इक्ष्वाकुवंशश्च (उ)	३७.४२५
ऐल पुरुरवाभेजे	२.१८
ऐल वंशस्य ये (उ)	३७.४२६
ऐलस्येक्ष्वाकुनन्दस्य (उ)	३७.४४४
एवं क्षत्र क्षेमकान्तं (उ)	३७.४२६
ऐलांश्चैव तत्येक्ष्वाकन् (उ)	३७.२६२
ऐश्वर्यं गुण सम्प्राप्ते	१२.३६
ऐश्वर्यञ्चैव धर्मश्च	१.३
ऐश्वर्यं संग्राहो राहो (उ)	३८.६१
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन	५७.७६
ऐश्वर्येण चरन्तस्ते (उ)	५.१४२

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
ऐश्वर्यं विहितं योगम्	११.१०८
ओ	
ओंकारं प्रथमं कृत्वा	११.३
ओङ्कार प्रमुखान्	२५.८२
ओंकार ब्रह्मसंयुक्तं	५०.१६५
ओङ्कार सर्वत: काले	२०.३३
ओङ्कारस्तु त्रयो लोका	२०.१०
ओजसे चाक्षयं श्राद्धं (उ)	५.६५
ओदनं पायसं सर्पिम् (उ)	१८.४६
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म-	२०.६
ओमिशानं नमस्ते-	२३.३७
ओषाधीनं तथात्मानो-	६.६९
ओषध्य: फलमूलानि-	९.४१
औ	
औगजो बृहदुरथश्च-	५९.१०२
औङ्को नाम स धर्मात्मा (उ)	२६.२०४
औत्तमे चान्तरे चैव- (उ)	५.१२७
औत्तमे परिसंख्यात: (उ)	१.२६
औरसाङ्गिरस पुत्रा: (उ)	४.१०५
और्वशेयं ततस्तम्-	२.२१
और्वस्ताभ्यां वरं (उ)	२६.१५६
और्वस्तु जातकर्मादीन् (उ)	२६.१३३
और्वस्यासीत्पुत्रशतं (उ)	४.९५
और्व्वस्यैवमुचीकस्य (उ)	३९.८९
क	
क एते पितरो नाम (उ)	१०.३९
क एष भगवान काल:	३१.२२
क एष वसुदेवश्च (उ)	३४.२२९
क: खल्वेष पुमान् विष्णो	२४.५६
ककुद: सप्रभं नाम	४९.४०
ककुदस्य सुतो वृष्टिं (उ)	३४.११६
ककुद्मिनस्तु तं (उ)	२६.१
कक्षीवचक्षुषौ तौ (उ)	३७.७१
कक्षीवचक्षुषौ तस्यां (उ)	३७.७०
कक्षीवन्स्तु ततो गत्वा (उ)	३७.९३
कक्षीवश्चैव शिजयस्तथा (उ)	२९.११३
कङ्कस्तु पंचमस्तत्र	४९.३५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
कच्छप: पुरणश्चैव (उ)	२९.९३
कच्छीयाश्च सुराष्ट्राश्च	४५.१३१
कटङ्कटाय चण्डाय	३०.२०३
कण्ठं शिरो वा प्रावृत्य (उ)	१७.३१
कण्ठस्ते शोभते श्रीमान्	२४.१५१
कण्ठायनमथोद्धत्य (उ)	३७.३४२
कण्ठे च मथुरापीठं (उ)	४२.८०
कतिद्वीपा: समुद्रा	३४.२
कथं गदा समुत्पन्ना (उ)	४७.२
कथं च भगवान जज्ञे	२१.५
कथं च विष्णो रुद्रेण	२१.६
कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य (उ)	३१.७८
कथं त्रेतायुगामुखे	५७.८६
कथं द्वितीयमुत्पन्ना (उ)	१०.२
कथं देवासुरकृते प्रध्याहारम् (उ)	३५.६७
कथं धन्वंतरिर्देवो (उ)	३०.८
कथं पुत्रादयोमेस्यु: (उ)	५०.१२
कथं बले सुता: (उ)	३७.३५
कथं बहुयुगे काले (उ)	२४.३१
कथं विनाशमगमत्स	६०.३३
कथं विनाशिता (उ)	४.१४४
कथं व्यक्तस्वरूपेण (उ)	४७.१
कथं शिला समुत्पन्ना (उ)	४५.१
कथं शुक्रस्य नप्तारं (उ)	३१.७६
कथं सप्तर्षय: पूर्व्वम् (उ)	४.१५
कथं सप्तर्षय: सिद्धा (उ)	४.१६
कथं सभगवान् विष्णु: (उ)	३५.८
कथं ससगोरोराजा (उ)	२६.१२५
कथं सीता समुत्पन्ना (उ)	२७.१६
कथं सूत महाप्रज्ञ (उ)	४१.६
कथयिष्यामि ते तात (उ)	१०.४५
कथामिमां पुण्यफलादि	५४.११५
कथ्यते यत्र विप्राणाम	१.१७७
कदम्बैर्विकटै: स्थूलै:	४०.२२
कदाचित् काशिराजस्य (उ)	३४.१०३
कदाचिन्मृगयां यात: (उ)	३४.३३
कद्रुश्च कपिलश्चैव	३०.२४०

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
कद्रूर्नागसहस्रं वै चरा (उ)	८.६५
कनकस्य तु दायादा: (उ)	३२.८
कनिश्राद्धानि देयानि (उ)	१०.११
कनिष्ठयावितस्तिस्तु	८.६६
कनीयसी तु या तस्य (उ)	२६.१५५
कन्दमूलफलाद्यैर्वा (उ)	४६.८६
कन्दरोदरविभ्रष्टा	४२.७६
कन्ययासहश्रुत्वा (उ)	२४.२६
कन्या कीर्तिमती चैव (उ)	९.८६
कन्याश्च वासुदेवाय (उ)	३४.९१
कन्याश्चैव श्रुतिं नाम	२८.१८
कन्या तु तस्य द्रविडा (उ)	२४.१६
कन्या तु बलदेवाय (उ)	२४.२९
कन्यानिमित्तमित्युक्ते (उ)	४.११५
कन्या भूत्वा ततश्च (उ)	११.६५
कन्यायुवतयोमुख्या (उ)	१८.१४
कन्या साच तपस्तेपे (उ)	४५.६
कन्यां कीर्तिमतीश्चैव (उ)	११.७४
कन्यां पुनर्जाम्बवतीम् (उ)	३४.५१
कन्ये द्वे शतपुत्रांश्च	३३.८
कपर्दिने करालाय शंकराय	५४.६९
कपर्दिने ह्यूर्द्धरोग्णे (यू)	३५.१६३
कपालमेकं द्यौर्जज्ञे	२४.७४
कपिञ्जलस्य शैलस्य	३८.६६
कपिल: पुण्डरीकश्च (उ)	८.२१३
कपिलश्चाम्बरीषश्च (उ)	८.७०
कपिलायां नर: स्नात्वा (उ)	४६.६१
कपिलेया महावीर्या (उ)	८.१७१
कपिशा चैव कूष्माण्डी (उ)	८.२५१
कपेश्च पुरुकुत्सश्च (उ)	२९.११२
कफस्य हृदयं स्थानं (उ)	३५.४६
कबन्धस्तु द्विधा	६१.५०
कम्बलस्य च नागस्य	५०.२३
कम्बलां तामसीं	४४.१७
कम्बलो हरिकेशश्च (उ)	८.१२
करञ्जेऽभिरतो	३९.४२
करणत्वात्तथा कार्यं	५९.६७
करणेभ्यो गुणेभ्योऽथ (उ)	१५.१३४
करणै: सह सृज्यन्ते	४.७०
करन्धमरुतश्चापि (उ)	२४.८
करन्धमस्त्रिसानोस्तु (उ)	३७.२
करम्भवालु कायाश्च	५६.७६
करम्भवा: कुचा:	४४.११
कराभ्यामेव देवानां (उ)	१७.३६
करुषश्च पृषध्रश्च (उ)	३.३०
करोति नाम यद्वाचो (उ)	४.११७
करोत्पत्तिर्न तेष्वास्ते	४९.१०२
करोपनीतवितता (उ)	२४.५२
करोपनीत विनता (उ)	२४.४९
कर्दमस्य श्रुति: पत्नी	२८.२६
कर्दमश्चाम्बरीषश्च	२८.२५
कर्दमाले गयानाभौ (उ)	५०.६९
कर्दमो विश्रवा: शक्ति	५९.९१
कर्द्दम: कश्यप: शेषो (उ)	४.५३
कर्णिकाघटनं भूयो	२५.३२
कर्णिका तस्य पद्मस्य	३४.५८
कर्णिकारस्रजं दीप्तं	३०.१३४
कर्तारश्चैव शाखानां	६१.७४
कर्तुं धर्मव्यवस्थानम् (उ)	३६.९७
कर्तुं धर्मव्यवस्थानं (उ)	३५.६६
कर्मणाश्च कृतो (उ)	६.१६
कर्मणा तेन विख्यातम्	२.७
कर्मणा प्रथितस्तेन	१.१३
कर्मणा मनसा वाचा (उ)	३९.४९
कर्मणा मनसा वाचा (उ)	२८.२
कर्मणा: मनसा वाचा	१४.३२
कर्मणामनुपूर्व्यश्च (उ)	३५.७
कर्मण्यस्मिंस्तत: (उ)	३७.६३
कर्मभि: प्राणिनां लोके	३१.४२
कर्मव्यग्रेषु ऋत्विक्षु	५७.९३
कर्मस्थान विषयान	९.५७
कर्माजीवं ततो दत्वा	८.१६५
कर्माणि स्वप्रयुक्तानि (उ)	१५.३१
कलत्रपुत्रपौत्रादि (उ)	४७.३९
कलनाय च कल्पाय	३०.१९९
कलानामपि वै	५६.४८
कलामात्रस्तु विज्ञयो	११.२१
कलिंग शिखराद्भ्रष्टा	४२.२९
कलिङ्गा महिषाश्चैव (उ)	३७.३८०
कलिपुत्रौ महावीर्ये (उ)	२२.७
कलिं वर्षसहस्रन्तु	५७.२७
कलि वर्ष सहस्रन्तु प्राहु:	३२.६०
कलि: सूरायां सञ्जज्ञे (उ)	२२.९
कालौ प्रमारको रोग:	५८.३३
काल्किनोपहता: सर्वे (उ)	३७.३९०
कल्किर्विष्णुयशा (उ)	३६.१०४
कल्पदाहप्रदिप्तेषु (उ)	३९.५१
कल्पयोरन्तरं यच्च	२१.२५
कल्पयोस्तरं प्रोक्तम्	१.५८
कल्पस्य चास्य ब्रह्मा वै	८.१७
कल्पवृक्षसमाकीर्ण	४७.६९
कल्पसंख्यानिवृत्तेस्तु	५.४४
कल्पस्यादौ तु बहुशो	७.७१
कल्पादौ चात्मनस्तुल्य	२७.४
कल्पादौ मानसी ह्येषा	८.७२
कल्पादौ रजसोद्रिक्तो	७.६२
कल्पादौ संप्रवृत्तानि	५३.७६
कल्पानां वत्सराश्चैव	१.४९
कल्पितानां सहस्रेण (उ)	१०.६८
कल्पे कल्पे च भूतानाम्	१.१५३
कल्पेभ्योऽपि हि य: कल्प:	४.११
कल्पेष्वासन् व्यतीतेषु	८.३३
कल्पोदये निबद्धानां	२४.१०२
कल्माषपादोनृपतिर्यत्र	२.१०
कवये राजवृद्धाय (उ)	३५.१६६
काव्यं बालाऽनल सोमो (उ)	४८.१०
कश्यप: सवितुर (उ)	४.११४
कश्यपस्य पदे दिव्ये (उ)	४९.६८
कश्यपस्य पदे श्राद्धौ (उ)	४९.५९
कश्यपस्य पुलस्त्यस्य	१.१२५
कश्यपस्यात्मजौ (उ)	६.५०

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
कश्यपस्याश्वमेधो (उ)	६.५३
कश्यपान्नारदश्चैव (उ)	९.७९
कश्यपेषु वसिष्ठेषु	६१.८१
कश्यपो गोत्रकामस्तु (उ)	९.२३
कस्माच्च पितरं पूर्वं (उ)	१०.४०
कस्मात् सम्यङ्न् विब्रूयां	१.३३
कस्मादेष परार्द्धश्च (उ)	३९.९२
कस्माद्वाराहकल्पोऽय	२१.२२
कस्मान्मार्त्तण्ड इत्येष (उ)	२२.२५
कस्मिन् दशे महापुण्यम्	५४.१
कस्यचित्वथ कालस्य (उ)	२६.१२९
कस्मै श्राद्धानि देयानि (उ)	१०.४१
कस्य त्वं सुभगे का (उ)	३६.४
काकः कपोतो गृध्रोवा	१९.६
काकुत्स्थकन्या गां (उ)	३१.१४
काञ्चनं राजतं ताम्रं (उ)	२.५
काण्डकर्त्ता कुलालश्च (उ)	३९.१६०
काद्रवेयौ तथा नागौ	५२.२१
कान्त सहस्र पर्वाण	३४.३६
कान्तात् कान्ततरं (उ)	२२.७५
काम कामदकामघ्नं	३०.२२१
कामधुक् पुष्पितः शैलः (उ)	१.१८९
कामधेनुं कल्पवृक्षं (उ)	४४.७४
कामश्चार्थेन सम्बद्ध	६०.५४
कामस्य हर्षः पुत्रो	१०.३७
कामाद्बलाच्च मोहाच्च (उ)	२६.८०
काम्बोजा दरदाश्चैव	४५.११८
काम्यनैमित्तिकाजस्रे ष्वेते	२९.४४
काम्या प्रियव्रताल्लेभे	२८.२८
कायरोहणमित्येवं	२३.२११
कारङ्कराः कलिङ्गाश्च (उ)	१६.२३
कारणानाश्च वैकल्यात्	५८.९
कारस्कराः पुलिन्दाच	१६.६९
कारूकादीननाचारान् (उ)	१७.६८
कार्तिकेयपदे श्राद्धौ (उ)	४९.६४
कार्यमासीहर्षीणाञ्च	६१.१२
कार्याकार्यं न वै (उ)	३७.५५
कालकूटविकाराणि (उ)	८.२९१
कालः कृते युगे	८.६६
कालञ्जरे दशार्णायां (उ)	१५.९३
कालधर्मञ्च विज्ञाय	१९.३८
कालमृत्युरिवोद्भूतं	५४.५७
कालानलस्य धर्मात्मा (उ)	३७.१४
कालावस्थास्तु षट्	३०.१०
कालिका शतिकेभ्यश्च (उ)	८.३०४
कालिन्दीश्चैव पुण्योदां	४४.२१
काली पाराशराज्जरो (उ)	९.८४
काले कृतयुगे चैव (उ)	३७.४३७
कालेन गतवांस्तत्र (उ)	२६.२२
कालेन प्रापणीयेन	५९.६८
कालेन महता चैव (उ)	२६.१६३
कालेन महता विद्वान (उ)	३७.३३
काले न्यायागतं पात्रं	५६.८१
काले विचित्र वीर्यन्तु (उ)	३७.२३७
कालं युगप्रमाणञ्च	३७.२५८
कालं सूर्यस्य निर्देशं	५६.३७
कावेरीं कृष्णवेणीञ्च	२९.१३
कावेरी सिंधुरीरा (उ)	४६.८२
काव्यं मां तात जानीध्वं (उ)	३६.२२
काव्यस्य गात्रं संस्पृश्य (उ)	३६.२
काव्यस्योशनसः (उ)	३१.५५
काव्यो दृष्ट्वा स्थितान् (उ)	३५.१०२
काव्या वर्हिषदश्चैव	५६.१८
काव्यो बृहस्पतिश्चैव	५९.९०
काव्यो हर्षस्तथा (उ)	१.४१
काशः शलश्च द्वावेतौ (उ)	३०.४
काशाः पुनर्भवा ये (उ)	१३.५१
काश्मा सुपार्श्व तनयं (उ)	३४.२५२
काश्यपश्चैव वत्सारौ	५९.१०३
काश्यपः संहिताकर्त्ता	६१.५८
काश्यपस्य महातीर्थं (उ)	१५.८७
काष्ठयोरन्तरं यच्च	५०.१३१
काष्ठयोर्लेरवयोश्चैव	५०.१३३
काष्ठयोर्लेखयोश्चैव	१.८५
काष्ठा निमेषा दश	५७.७
काष्ठा निमेषा दशपञ्च	५०.१६८
किञ्चिच्छिष्टा प्रजाः (उ)	३७.३९३
किञ्चिच्छिष्ठास्तु (उ)	३५.१०५
किञ्चिच्छिष्टे तदा (उ)	५.१२
किञ्चिदुन्नामितशिराः	११.१६
किञ्चिदूर्द्धं परस्मिंश्च	११.२८
किञ्चिद्दत्तं पितॄणां (उ)	२१.१
कितवो मद्यपो यरमी (उ)	२१.३२
किन्नरस्तु सुनक्षत्राद (उ)	३७.२८२
किन्तु खेल्वत्र मे	२४.३९
किं नाम दानं नियमन्तपो	३०.११६
किं प्रामणन्तु मेदिन्याः (उ)	४.१४८
किं बहूक्तया सुरगणा (उ)	४४.७०
किं मया यत कृतं	२४.४१
किमर्थश्चाभवद्वादः	६०.३४
किमर्थ भुवन दग्धम् (उ)	३३.१
किमर्थं वसुदेवस्य माजः (उ)	३४.२१६
किमर्थमागताः पृष्टो (उ)	४५.१६
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा	२७.७
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा	२७.१०
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा	२७.१३
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा	२७.१६
किं लक्षणेन धर्मेण (उ)	२९.१००
किमलभ्यं त्वयि (उ)	५०.५०
किमस्य चक्षुः का मूर्त्तिः	३१.२३
किमिच्छसि वरारोहे (उ)	३६.६
कियता चैव कालेन	२१.१२
कियन्तं चैव तत्कालम्	२.२
कियन्तो वा सुरगणा (उ)	२४.३३
कियन्तो वै पितृगणाः (उ)	१०.३६
किरातरूपिणा चैव	४१.३२
किरातांश्च पुलिन्दांश्च	४७.४८
कीकटेषु गया पुण्या (उ)	४६.७६
कीटकादिमृतानाञ्च (उ)	४३.२०
कीर्तिता तु समासेन	७.७४
कीर्तिता यातुधानास्तु (उ)	८.१२७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
कीर्तयिष्यामिते (उ)	१७.३
कीर्तयिष्ये तृतीयञ्च (उ)	४.३
कीर्त्तते ऋषिवंशश्च	१.१५७
कीर्तन जन्हुवंशस्य	१.१४४
कीर्तनं ब्रह्मक्षत्मस्य	१.४७
कीर्त्तनं श्रवणञ्चास्य	१.१७७
कीर्त्यते च पदं विष्णो	१.८७
कीर्त्यते च पुनः सर्गो	१.१५७
कीर्त्यते चान्वयः श्रीमान्	१.१३४
कीर्त्यते धर्मसर्गश्च	१.११९
कीर्त्यते ध्रुवसामर्थ्यात्	१.८८
कीर्त्यते नामहेतुश्च	१.६७
कीर्त्यते भगवान् येन	१.८९
कीर्त्यते विस्तरो यश्च	१.१३०
कीर्त्यतोशिशुमारश्च	१.९२
कीर्त्यन्ते चात्र विरया	१.१४९
कीर्त्यन्ते जगतो ह्यत्र	१.१५८
कीर्त्तन्ते दीर्घ यशसो	१.१४२
कीर्त्यन्ते धूतपाप्मानो	१.६०
कीर्त्यन्ते मरुताश्चाथ	१.१२२
कीर्त्यन्ते युगसामर्थ्यात्	१.१०४
कीर्त्यन्ते योजनाग्रेण	१.७८
कीदृशं सर्वभूते (उ)	१०.४९
कीलासक्तो यथा रज्जुः	५१.७२
कुञ्जरः कुञ्जचारित्वात् (उ)	८.२२८
कुञ्जकुञ्जप्रियावृन्द (उ)	४२.४७
कुटका कुविकाश्चैव	८.४३
कुण्डागारनिभाः (उ)	३८.१६९
कुत्सायां विवतिशब्दोऽयं (उ)	९.३९
कुन्तेर्धृष्टसुतो जज्ञे (उ)	३३.३९
कुब्जा कामनिकामैश्च (उ)	३९.२६०
कुबलाश्वस्तु धर्मात्मा (उ)	२६.४८
कुबेरतुङ्गे व्यामोच्चे (उ)	१५.७८
कुबेराधूमजा जङ्गा	४४.१४
कुबेरानुचरस्तत्र	४७.१६
कुम्भदोहन धेनूनां (उ)	१८.२९
कुम्भ पात्रश्च कुम्भी (उ)	८.२५४
कुम्भ प्रमाणैः सुखदैः	३५.३५
कुम्भस्थायी भवेद्	४९.१५०
कुमारको शलतीर्थे (उ)	१५.३७
कुमारधारा तत्रैव (उ)	१५.८५
कुमारपरं विद्याद् (उ)	२५.११
कुमारी नमतः सिद्धा	४९.९१
कुमारी यादवी देवी	९.८३
कुमार्यश्चापि (उ)	३४.१६६
कुमुदाख्य महाभाग	४८.३५
कुमुदे किन्नरावासा	३९.५९
कुमुदो मधुमांश्चैव	३६.२८
कुरुणामपि चैतेषां	४५.२१
कुरुवान् प्रभवांश्चैव (उ)	५.३२
कुरूस्तु सप्तमस्तेषां	३३.४०
कुर्याच्छ्राद्धमयैतेषु (उ)	१५.१२२
कुर्याच्छ्राद्धं सपिण्डानां (उ)	४८.९
कुर्यात् सन्निहितं (उ)	१६.६५
कुर्वाणः पौर्णमास्यां (उ)	१९.१०
कुलमेकं पृथग्भूतं	५१.४६
कुलाचलानां पञ्चानां	४३.१३
कुलाचलानां सप्तानां	४४.३
कुलानां शतमुद्धृत्य (उ)	५०.७२
कुलानि दश चैकञ्च (उ)	३४.२५५
कुलालचक्रनाभिस्तु	५०.१५०
कुलालचक्रपर्यन्तो	५०.१४१
कुलालचक्रमध्यस्तु	५०.१४४
कुलिशोद्योतितकरम्भा	३०.१२७
कुले कुले निसर्गास्तु (उ)	३८.४१
कुशद्वीपं प्रवक्ष्यामि	४९.४६
कुशद्वीपस्य विस्ताराद	४९.५९
कुशद्वीपे तु विज्ञेयः	४९.४८
कुशपुत्रा वभूवुश्च (उ)	२६.५९
कुशपूतानि त्रीण्यत्र (उ)	६.५५
कुशाप्रावरणाश्चैव	४५.१३६
कुशलस्य कोशला (उ)	२६.१९८
कुशस्य पुत्रो धर्मात्मा (उ)	२६.२००
कुशवज्रैर्विनिष्पिष्टः	२.२१
कुशस्तम्बस्तपस्तेपे (उ)	२९.६०
कुशहस्तान् महाजिह्वान् (उ)	८.२४६
कुशिकस्य च विपर्ये	१.१४३
कुशीचर्या पाषण्डैः	५८.५२
कुशोच्चया बालखिल्या (उ)	४.५५
कुस्तुम्बुरुं पिशङ्गाभं (उ)	८१.५४
कुहुमात्रं तू ते उभे	५६.१०
कुहेती केकिलेनोक्तो	५६.५१
कूटागारैर्विनिक्षिप्तम्	३४.८०
कूटे तु मध्यमे तरय	४१.६८
कूपानां निपुतं दक्षः (उ)	४.१३१
कूर्मस्य चैव मांसेन (उ)	२१.७
कुर्मैश्चानेकसंस्थानै	३९.१७
कृच्छ्रेण महता सोऽपि (उ)	१.१७३
कृतकर्माक्षितास्त्वेते (उ)	१६.३३
कृतज्जयातृणञ्जयो (उ)	४१.६३
कृतत्रेतादि संयुक्तं	६१.१४६
कृतं कर्म आशीषा	५०.२१०
कृतं त्रेता द्वापरं च	३२.९७
कृतं त्रेता द्वापरं च	८.२१
कृतं त्रेता द्वापरञ्च	३२.७
कृतं नो मिषतां राष्ट्रं (उ)	३५.९५
कृतमेवं वचः सत्यं (उ)	३२.६३
कृतयज्ञो ददौ ब्रह्मा (उ)	४३.७
कृत वर्मा कृतस्तेषां (उ)	३४.१३९
कृतं विप्रेषु यो दद्यात् (उ)	१८.६
कृतमाला ताम्रवर्णा	४५.१०५
कृतवंतो यतो लोभं (उ)	४४.७९
कृत सत्यो ध्रुवो (उ)	६.१२६
कृत्स्नं यथा तत्त्व	२१.६९
कृतस्नान्येतानि चत्वारि	४९.१७८
कृतात्मभिर्विनीतात्मा	३४.३९
कृतादिषु युगाख्येषु	६१.९७
कृतार्थः सोऽपि	३७.९९
कृतार्थमागतं इष्ट्वा (उ)	३६.१३
कृतात्मा वाऽकृतात्मा (उ)	१५.६०
कृतास्त्रा बलिनः शूरा (उ)	३२.४९

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
कृतिकानां यदा सूर्यः	५०.१९६
कृतिकाभिस्तु यस्मात् (उ)	११.४३
कृतिवसिष्ठपुत्रस्तु (उ)	३८.९६
कृते पुनः क्रिया नास्ति	६१.११३
कृते श्राद्धेऽक्षयवटे (उ)	४९.९३
कृतो जातश्चतुर्थोऽभूत् (उ)	३२.९
कृतो वै प्रक्रियापाद	३२.५६
कृत्वा प्रजाप्रजानेतान्	२५.८६
कृत्वा जुहाव स्त्रुग्म्याञ्च (उ)	४.३२
कृत्वा द्वंद प्रतीकारम्	८.९३
कृत्वा द्वंद्वोपघातांस्तान्	८.१२३
कृत्वा पूर्वमुपस्थानं	४१.१३
कृत्वा बीजावशेषान्तु (उ)	३६.११४
कृत्वा वत्सं सुमेरु	८.१४२
कृत्स्नं च विन्दते ज्ञानम्	४.३७
कृपया तच्च जग्राह (उ)	३७.१९९
कृमि च कृमिभक्षश्च (उ)	३९.१४७
कृषरान्मधुपर्कश्च (उ)	१८.४३
कृशास्वः सहदेवस्य (उ)	२४.२०
कृशाश्वस्य तु (उ)	५.७८
कृष्णपक्षे तदा पीत्वा	५६.१२
कृष्णभौमश्च प्रथमं	५०.१३
कृष्णभौमाः सुभौमाश्च	४३.२३
कृष्णमाणे तदा शक्रः (उ)	३७.२११
कृष्णसर्पापराधं तु	११.५३
कृष्णाः कृष्णाम्बरोष्णीषाः	२३.२९
कृष्णाङ्गा गौतमास्ते (उ)	३७.९७
कृष्णाजिनस्य सान्निध्यं (उ)	१२.४
कृष्णाजिनोत्तरीयाय	३०.२२०
कृष्णात् श्वेतं महाशैलं	४२.५३
कृष्णानि चैव वासांसि (उ)	८.२८२
कृष्णाम्बरधरा श्यामा	१९.१३
कृष्णाम्बरवरोष्णीषं	२३.२४
कृष्णा श्वेतास्त्वजाश्चैव	११.१०२
कृष्णैश्च विकटैश्चैव	१९.१७
कृष्णोऽब्रवीन्मम क्षेत्रं (उ)	४९.७३
केचितपर्वतसंकाशाः (उ)	३८.१६७
केचित् पुरुषकारन्तु	९.५५
केचित् शांति महाघोराः	३८.७७
केचिदासभवर्णाभा (उ)	३८.१६५
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः	३८.१६३
के चेहपितरो नाम (उ)	१०.१२
के तु तत्र महात्मानो (उ)	३९.३१०
केतुमालं महाद्वीपं	४२.५७
केतुमालेति च यथा	३५.३६
केन वा तत्त्वयोगेन	२३.९२
के युयं तेषु चैवैक (उ)	५०.१४
केरलानुष्ट्रकर्णाश्च	४७.५२
केवलस्तस्य पुत्रस्तु (उ)	२४.१४
केशवो गरुडारूढो (उ)	४४.१४
केशैर्लम्बैः समद्भूतः (उ)	४.४६
केषु वै सर्वमाप्नोति (उ)	१०.४२
कैकेयां श्रुतकीर्त्यान्तु (उ)	३४.१५६
कैवर्तामीरशबरा (उ)	३७.२६५
कैलासदक्षिणप्राच्यां	४७.९
कैलासपादात् सम्भूतं	४७.२
कैलास शिश्वरे रामये	५४.३०
कैलासादक्षिणे पार्श्वे	४७.३०
कैलासो हिमवश्चैव	३५.६
कैषा भगवती देवी	३०.४०
कोकिलारावमधुरे	५४.३३
कोटि कामकलापूर्ण (उ)	४२.४९
कोटिकोटिसहस्राणि (उ)	३९.९९
कोटि कोटि सहस्राणि	५.४५
कोटि जन्मभवेद्विप्रो (उ)	५०.४३
कोटि तीर्थे रुक्मिणीये (उ)	५०.३४
कोटि शतं महाभागा (उ)	३९.२५७
कोटिशतानि चत्वारि (उ)	३८.२३१
कोटीनां द्वे सहस्रे	२१.१४
कोटीनां सहस्रमयुतम् (उ)	३९.९८
को भवान् विश्वमूर्तिम्	२४.२०
को वा वराहो भगवान	२१.३
कोशलांश्चान्ध्रपौण्ड्राश्च	३७.३७९
को हेतुः कारणं किञ्च	५४.४६
कौतूहलान्महायोगी	२४.२३
कौ भवन्तो महात्मानौ	२५.४
कौरजं पंचशिखरं (उ)	८.३२५
कौशलयां मतङ्गस्य (उ)	१५.३६
कौशिकस्य चिदिः (उ)	३३.३८
कौशिकाद्याः समुद्रात्तु (उ)	८.२३२
कौशिकासौ श्रुमाश्चैव (उ)	२९.९८
कौशिकी च तृतीया	४५.९६
कौशिकी ब्रह्मदा (उ)	४६.८४
कौषेयक्षौमार्यासं (उ)	१८.३७
कंसस्य चापि दौरात्म्य	१.१३५
क्रतुप्रवाहणोऽग्निध्रं	२९.२६
क्रतुस्थल्यप्सराश्चैव	५२.४
क्रमं मन्वन्तराणान्तु (उ)	१.१
क्रमशः कीर्तयिष्यामि (उ)	१२.३२
क्रमात्तस्य निवर्तन्ते (उ)	५.९३
क्रमाद् द्रुमाणां जायन्ते (उ)	८.३०३
क्रमेणोत्तिष्ठमानास्ते	७.४२
क्रयविक्रयिणो चैव (उ)	१७.७७
क्रव्यादोऽग्निः सुतस्तस्य	२९.३५
क्रान्तं मया पापहरं	५४.११६
क्रान्ता दनायुषापुत्रा (उ)	७.३४
क्रिमयोमांसमादाय (उ)	२२.६२
क्रियन्त चैव तत्काल	२.२
क्रियामाणोऽप्यलंकारो (उ)	२५.२६
क्रियया गुरुपूजाभिर्ये (उ)	१०.६४
क्रीडार्थञ्चैव स्कन्दस्य (उ)	११.४५
क्रुद्धं दृष्ट्वा ततः	६१.३०
क्रूरशीला तथा कद्रुः (उ)	८.३३७
क्रोधना दुःखदाश्चैव (उ)	३९.१७०
क्रोधं मा कार्षुर्विद्वांसो	६०.४५
क्रोस्टोर्नन्तरं चोक्तः	१.१३१
क्रोष्टोरेकोऽभवत् (उ)	३३.१५
क्रोष्टोः शृणुत राजर्षि (उ)	३३.१४
क्रौंच कुशली देशो	४९.६५
क्रौंचद्वीपेश्वरस्यापि	३३.२१
क्रौञ्चजीवितहर्त्तारं	५४.२१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
क्रौञ्चद्वीपः समुद्रेण	४९.७०
क्रौञ्चद्वीपस्य विस्तारद्	४९.७४
क्रौञ्चद्वीपे गिरिः	४९.१३४
क्रौञ्चादात्फल्गुतीर्थं (उ)	४९.५३
क्रौञ्च मातङ्गयो श्राद्धि (उ)	४९.६३
क्रौञ्चरूपेण हि (उ)	४६.७८
क्वचिद् ध्यायति युक्तात्मा	३०.१३५
क्ष	
क्षणेषु सर्वपापेषु क्षीणेषु	१५.१३३
क्षत्रप्रावर्त्तकौ ह्येतौ (उ)	३७.४३४
क्षत्रस्यैव समुच्छेदः (उ)	३७.४३९
क्षत्राः पारशवाः शूद्राः	३७.२६४
क्षमा तु सुषुवे पुत्रान्	२८.२४
क्षय कुष्ठे सकीलासै	११.४६
क्षयणात् कारणाच्चैव (उ)	४०.१११
क्षयमेव गमिष्यन्ति (उ)	३७.४२२
क्षयातिशय युक्तानि (उ)	३९.१४
क्षये वा परिमाणं वा	४९.१६८
क्षिप्रमत्युष्णमक्लिष्टं	१८.५३
क्षीणाधिकाराः संवृत्ता	६१.१५१
क्षीणे कलियुगे तस्मिन्	३२.४०
क्षीणे कलियुगे तस्मिन् (उ)	३७.४०६
क्षीणे कलियुगे तस्मिन् (उ)	३७.४३५
क्षीणे कल्पे तदा तस्मिन्	७.१४
क्षीणे मन्वन्तरे पूर्वे	६१.१५६
क्षीरं सुरां च मासं च (उ)	३९.१६२
क्षीरोदमथने वृत्ते	३५.३७
क्षीरोदो ह्युदधीनाञ्च	३०.२३४
क्षुद्रकात्क्षुलिको (उ)	३७.२८६
क्षुद्रसत्त्वैश्नाधृश्यं	३८.३४
क्षुद्राणामन्त्ययोनेस्तु	५८.३९
क्षुधाविष्टस्तथाऽप्रीतो	११.३४
क्षुपस्य विशः पुत्रस्तु (उ)	२४.६
क्षुवतस्तु मनोः पूर्वम् (उ)	२६.८
क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विज्ञानात्	४.४१
क्षेत्रज्ञः क्षेत्र विज्ञानात्	५९.७७
क्षेत्रज्ञः स्मर्य्यते (उ)	४०.११०

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
क्षेत्रज्ञाधितं क्षेत्रं (उ)	४०.३७
क्षेत्रज्ञे निर्गुणे शुद्धे (उ)	४०.१२८
क्षेत्रज्ञेश्वनुसज्यन्ते (उ)	४०.९९
क्षेत्रज्ञेश्ववसज्यन्ते (उ)	४०.८२
क्षेत्र भागी भवेत् पुत्री (उ)	२०.४
क्षेत्राण्येतानि वै पुण्यं	५३.५१
क्षेत्रारामतडागेषु (उ)	१३.५
क्षेमधन्वसुतो राजा (उ)	२६.२०२
क्षेमः शान्तिसुतश्चापि	१०.३६
क्षोभयामासयोगेन	५.११
क्षौमसूत्रं नवं दद्यात् (उ)	१३.२९
ख	
खण्डनं पोषणं चैव (उ)	१३.२०
खशायस्त्वपरे (उ)	८.१५८
खशा विजज्ञे पुत्रौ द्वौ (उ)	८.७२
खेटानां नागराणाञ्च	८.१०६
खे तस्योत्तरश्चैव	५०.१८९
खेर्गतिविशेषेण (उ)	३८.२२२
खौरकः सौरभेयाणाम्	३०.२९८
ख्यातः कल्माषपाद्ये (उ)	२६.१७६
ख्यात मायतनं (उ)	१५.६२
ख्यातिः प्रत्युपभोगश्च	४.३२
ख्यातं हयशिरो (उ)	१५.४६
ख्यात्यानुबन्धैस्तैस्तैस्तु	८.१९७
ख्यापितं धर्म सर्वस्वं (उ)	१५.९९
ख्यायते तद्गुणैर्वापि	४.३३
ग	
गंगा गर्भं समाहारम्	१.१६७
गंगा चैव सरिच्छ्रेष्टा (उ)	१०.५
गंगा त्रिपथगा देवी (उ)	१५.१११
गंगा निमित्तं राजर्षिरुवास	२७.२५
गंगा पादोदकं विष्णोः (उ)	४६.१८
गंगायमुनायोर्मध्ये (उ)	३६.११७
गंगा सागरसंज्ञच (उ)	४५.५१
गच्छतो धर्म चक्रस्य	१.१६६
गच्छन्तिरन्वगच्छद्या (उ)	८.१४३
गच्छ संभावयस्वैनं (उ)	३५.१५१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
गच्छाम पुत्रतामस्यास्तत्रः (उ)	५.५९
गजकर्णं तर्पण कृत्रिमलं (उ)	४९.६५
गजशैले भगवतो	३९.४७
गजाननास्तथैवान्याः (उ)	३९.२६२
गजानां पर्वतानाञ्च	५१.४४
गणा अप्सर सांख्याताः (उ)	८.५३
गणेश्वर पुरीङ्गत्वा (उ)	३०.३७
गण्डूषायानपत्याय (उ)	३४.१८८
गता यदा न पश्यन्तो (उ)	३५.१४
गतस्तु देवता ज्ञात्वा	३०.१०८
गतिश्चोर्ध्व मद्यश्चोक्त	१.१५२
गतिस्तस्वेव सूर्यस्य	५३.७४
गते तस्मिंस्ततोऽनन्त	२५.३७
गतेपितरि तौ वीरौ (उ)	८.१०३
गते भर्त्तरि सा देवी (उ)	६.९४
गतेषु देवसङ्घेषु देवा	५७.१२१
गतेषु सुरसंघेषु (उ)	३५.१३३
गत्यर्थाद् ऋषयो धातोः	७.६८
गत्यर्थाद्दृषतेर्द्धातो	५६.८१
गत्वा गयां गयाशीर्षं (उ)	५०.२४
गत्वा चैतानि पूतः (उ)	१५.८३
गत्वा जवञ्जवीभावे (उ)	४०.३३
गत्वा नत्व मतङ्गे शमिमं (उ)	४९.३१
गत्वन्तिकं वरारोहो (उ)	२३.११
गत्वा महालयं पुण्यं	२३.१६९
गत्वा सुरं पार्थयस्व (उ)	४४.२४
गत्वैतान् मुच्यते (उ)	१५.५३
गत्वैतान् मुच्यते (उ)	१७.२२
गदाधरादयस्तुष्टाः (उ)	४४.६३
गदाधरो दृश्यतीर्थं (उ)	४५.५०
गदाधरं व्यपगतकाल- (उ)	४७.२७
गदागदाववष्टभ्य (उ)	४७.१३
गदालोले महातीर्थे (उ)	४९.९४
गदोनामसूरो हि (उ)	४७.३
गन्धदानेन गंधाढ्यः (उ)	४७.४०
गन्धमादनपादेषु (उ)	२९.७
गन्धमादनपार्श्वे	४३.१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
गन्धमादन वर्षन्तु	३३.४५
गन्धर्व किन्नरा यक्षा	३८.२१
गन्धर्व नगरी स्फीता	३९.५१
गन्धर्व सहितं दृष्ट्वा	१.१७०
गन्धर्वा गमनं ज्ञात्वा (उ)	२९.२१
गन्धर्वा चोर्वशी देवी (उ)	२९.९
गन्धर्वाणांदुहितरोमया (उ)	८.९
गन्धर्ववादीनि सत्वानि (उ)	३८.१३८
गन्धर्वद्या: पिशाचान्ता	७.४०
गन्धर्वान् किन्नरान्	४७.४७
गन्धर्वाप्सरस: पुण्या (उ)	८.२
गन्धर्वपस रसाकीर्णं	३०.९७
गन्धर्वाप्सरसो (उ)	३९.२८
गन्धर्वाश्चाथ वालेया (उ)	८.१८
गन्धर्वीति च विज्ञेय	२०.३
गन्धर्वेभ्यस्तथाख्यातुम् (उ)	२९.४३
गन्धर्वेभ्यस्त्रिभि: (उ)	८.१९५
गन्धर्वै: किन्नरैर्यक्षै	३९.६४
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च	१.९०
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च	४१.७९
गन्धवर्ण रसाढ्यानि	४५.२६
गन्धवर्ण रसाढ्यानि	४५.३१
गन्धवर्ण रसैर्हीनं शब्दं	४.१८
गन्धान्पुष्पाणि (उ)	१३.१२
गमनाद् ब्रह्मलोकाप्ति (उ)	४९.३०
गमयेन्यस्तकं चैव (उ)	१६.५०
गयश्च भोगान्सम्भुज्य (उ)	५०.११
गयस्तानप्रार्थयामास (उ)	५.६
गयस्य तु नर: पुत्रो	३३.५८
गया गया सुरश्चैव (उ)	५०.७३
गया तीर्थ वटे चैथ (उ)	४९.९६
गयादीनां फलं तात (उ)	२१.१३
गयानाम्ना गया (उ)	४३.८
गया पुरीति मन्त्राम्ना (उ)	५०.१०
गया यात्रां प्रवक्ष्यामि (उ)	४८.१
गयायामक्षयं श्राद्धं (उ)	२१.१४
गयाया गृध्रकूटे च (उ)	१५.९७
गयायं चाक्षयं श्राद्धं (उ)	४६.३८
गयायां न हितस्थानं (उ)	४३.४३
गयायां परमात्मा हि (उ)	४६.५५
गयायां पिण्डदानेन (उ)	४३.४६
गयायां पितृरूपेण (उ)	४६.९२
गयायां सर्व कालेषु (उ)	४३.१६
गया शिरसि पुण्ये (उ)	४६.७५
गयाशिरस्यथ श्राद्धं (उ)	४९.५०
गयाशीर्षे वटे चैव (उ)	४९.९८
गया श्राद्धं कृतं केन (उ)	५०.७५
गयाश्राद्धं विधानाय (उ)	५०.७
गयासुर: कथं जात: (उ)	४४.७
गयासुर भयाद्देव (उ)	४४.१३
गयासुर वच: श्रुत्वा (उ)	४४.७१
गयासुरस्तपस्तेपे (उ)	४३.५
गयासुरस्य शिरसि (उ)	४५.६२
गयासुरस्य शिरसि (उ)	४६.८
गयासुरोऽब्रवीद् (उ)	४४.२५
गयां गत्वान्नदाता (उ)	४३.१०
गयां यस्यति य: पुत्र: (उ)	४३.९
गरुडस्थेन चोत्सिक्त: (उ)	३५.२२
गरुड़स्यात्मजा: प्रोक्ता (उ)	८.३३०
गर्ग कौशिक वसिष्ठौ (उ)	४४.३५
गर्गोष्पसम्भवो ज्ञेयो (उ)	३५.४७
गवाश्वहस्तिनाञ्चैव	५९.१०
गवां नाम स वै श्रुत्वा (उ)	३७.५६
गवां शतसहस्रस्य	५४.११३
गवां सहस्रमादाय	६०.३७
गवेष्ठिन: सुता (उ)	६.७८
गवेष्ठिश्च गवाक्षश्च (उ)	७.१६
गाग्रा: सांकृतयो वीर्या: (उ)	३७.१६०
गात्र संवाहनै: काले (उ)	३५.१५४
गात्र संवहनैश्चैव (उ)	६.९७
गत्रेण वै चन्द्रमस: (उ)	३६.१११
गर्थो चैवात्र गायन्ति (उ)	२६.१९०
गाधिज: कौशिको (उ)	३.२५
गाधि: सदारस्तु तदा (उ)	२९.६९
गान्धारग्रामिकांश्चा (उ)	२४.४१
गान्धारदेशजाश्चापि (उ)	३७.१०
गान्धाररागशब्देन (उ)	२४.६२
गान्धारानन्तरं गत्वा (उ)	२४.६३
गान्धारा यवनाश्चैव	४५.११६
गान्धारं शेन गीयन्ते (उ)	२५.३३
गान्धारी जनयामास (उ)	३४.१८
गन्धर्व प्रति यच्चापि (उ)	२४.३५
गायत्रं वरुणञ्चैव	९.४४
गायत्री चैव त्रिष्टुप	३१.४७
गायत्री चैव सावित्री (उ)	४७.२१
गायत्र्यादिनिच्छन्दांसि (उ)	८.६४
गार्ग्यस्य हि सुतं (उ)	३१.२२
गार्हपत्यपदे श्राद्धी (उ)	४९.६०
गार्हपत्येन विधिना (उ)	३५.२५
गार्हपत्ये स्थिता चक्रे (उ)	४५.३२
गावोह्यजा महिष्योऽश्वा	५९.१६
गिरिजालन्तु तन्मेरो	४१.८०
गिरि: स्तोकस्तथा	३०.२४४
गीतवादित्रनृत्याङ्गो	३०.२४७
गीतशिला तथाऽरिष्टा (उ)	८.९०
गुग्गुलादींस्तथा (उ)	१३.८
गूढस्वाध्याय तपस: (उ)	३९.२८३
गुणकर्मप्रभावैश्च	५५.१
गुण पूर्वस्य पूर्वस्य	४.६३
गुणमात्रात्मकाश्चैव (उ)	४१.३०
गुणमात्रात्मिकाभिस्तु (उ)	५.११५
गुणवैषम्यमासाद्य	५.१३
गुण साम्ये वर्त्तमाने	५९.६४
गुणान्तरन्तु ऐश्वर्ये	१३.२३
गुणान् देवावृधस्यापि (उ)	३४.१४
गुणपचय सारेण	४९.१७५
गुणास्ते यानि सर्वाणि (उ)	४१.३२
गुदावर्तप्रतीकारमिदं	११.४०
गुरुतीर्थे परा सिद्धि: (उ)	१५.१२८
गुरुदारप्रसक्तेषु (उ)	३१.४३
गुरुप्रिय हिते युक्ता	१०.६९

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
गुरुबुद्ध्या तु भगवान (उ)	२६.९९
गुह्यकानांच सर्वेषाम् (उ)	८.१८९
गुह्यकं शिति करणञ्च (उ)	८.७६
गृहमेधिनः पुराणास्ते	९.९७
गृहमेधिनाञ्च संख्येया	६१.१०१
गृहस्थं भोजयेद्यस्तु (उ)	१७.६३
गृहस्थानां सहस्रेण (उ)	१०.६९
गृहस्थाश्चापि यज्वाना	५६.१९
गृहस्थो ब्रह्म चारित्वं	८.१६९
गृहिणां न्यासिनांचोक्तौ	१.८७
गृहित्वाञ्जलिना तेभ्यः (उ)	४८.२०
गृहणन्ति ते शरीराणि	८.३०
गोकर्णाय च गोष्ठाय	२४.१०७
गोकर्णे वर्णितं विप्रैः (उ)	१५.२१
गोतमो गोप्रतारश्च	३०.२६०
गोत्राणां क्षत्रियाणाञ्च (उ)	३७.४३६
गोत्राणि नामभिस्तेषां	२८.३७
गोत्रेण वै चन्द्रमसो	५८.७६
गोत्रेण वै चन्द्रमसः	५८.८६
गोदावरी भीमरथी	४५.१०४
गोपायति दिवादित्यः	२७.३८
गोपायनं य कुरुते (उ)	३५.१२
गोप्रचार समीपस्था (उ)	४९.४२
गोभिर्महि संयतते	१४.७
गोभ्यो हि महिषेभ्यश्च (उ)	८.३०५
गोरूपाणां पुरस्तात्तु (उ)	२५.३१
गोलोकवासी भगवान्	४२.५५
गौणानि तावदेतानि	२५.५०
गौतमं काश्यपं कौत्सं (उ)	५०.८
गौरी कन्या च विख्याता	३७.१२६
गौरी नाम यत्र यातो	४७.२३
ग्रहनक्षत्र ताराणां	५०.१०९
ग्रहनक्षत्र सूर्यास्तु	५३.१००
ग्रहश्चाङ्गिरसः पुत्री	५३.१०७
बृहन्त्रिः सृत्य सूर्यत्तु	५२.५.३
ग्रहाश्च चन्द्र सूर्यौ	५३.९९
ग्रहेषु पंचमश्चैव षष्ठः (उ)	६.११२
ग्रामणीयक्षभूतास्तु	५२.२६
ग्राम्याः कण्टकिमश्चैव (उ)	१३.७२
ग्राम्यारण्यं समन्त्रञ्च	६१.६६
ग्राम्यारण्याः स्मृता ह्येताः	८.१४९
ग्राहाश्चतुर्विधा ज्ञेयाः (उ)	८.२८७
ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु	५२.३६
घ	
घण्टापथश्चतुष्पाद	८.११६
घंटा प्रियोध्वजी छत्री	२४.१५७
घटावच्छिन्न एवायं (उ)	४२.४०
घनो दधिपरेणाथ	५०.८३
घृतपुर्णेषु (उ)	२६.१६१
घोरत्वाद्रौरव प्रोक्ताः (उ)	३९.१८०
घोररूपेण दीप्यन्तं	३०.१२५
घोराकार शिवानान्तु	११.५
च	
चक्रमेऽप्सरसं यक्षः (उ)	८.१३१
चकारक्षोभयन्राजा (उ)	३३.३२
चकारभ्यधिकं (उ)	२२.५३
चक्रवर्ती महासत्त्वो (उ)	३३.१९
चक्रवाकाश्च विहगान् (उ)	८.३२९
चक्रं रथो मणिः खड्गं	५७.६९
चक्र रथो मणिर्भार्या	५७.६२
चक्राते रूप सादृश्यं	२५.३८
चक्रविद्धं तु यो दद्यात् (उ)	१८.७
चक्रिरे पृष्ठगमनान्	२.३३
चक्रुरन्ये तथा नादानं	३०.१५५
चक्रो बलाहकश्चैव	४७.७५
चक्षुः पूतं व्रजेन्मार्गं	१६.६
चक्षुः शास्त्रं जलं	५३.१२३
चचार पृथिवीं चैव (उ)	२९.२९
चन्डाश्च विकटांश्चैव (उ)	८.२४१
चतुः सहस्रयुक्तं वै	५७.३७
चतुरस्रेणमानेन	३४.५३
चतुराश्रमवेत्ता च	३०.२५१
चतुर्गुणोत्तरादूर्वं (उ)	३९.१४०
चतुर्णामेव दुर्गाणाम्	८.१०३
चतुर्थः पर्वतो द्रोणो	४९.३४
चतुर्थमुत्तरे चैव भद्रवत्यां	२५.४२
चतुर्थस्तत्र वै शैलो	४८.९
चतुर्थस्य चतुर्थीस्याद्	२७.३३
चतुर्थात्तु मुखात्तस्य	२६.३६
चतुर्थेऋतुसावर्णे (उ)	३८.८६
चतुर्थे त्वथ पर्यायें (उ)	१.३७
चतुर्थे दैत्यसिंहस्य	५०.३१
चतुर्थे द्वापरे चैव यदा	२३.२१८
चतुर्थ्यां कुरुते श्राद्धं (उ)	१९.१२
चतुर्दश सहस्रं च (उ)	४२.३
चतुर्दश सहस्राणि (उ)	८.३२२
चतुर्दशगुणोह्येष	६१.१४२
चतुर्दशमुखात्तस्य औकारो	२६.४६
चतुर्दशमुखोयश्च	२६.३१
चतुर्दश विधं ह्यतेद्	१५.१
चतुर्दशे तु पर्याये (उ)	३६.११०
चतुर्दशैवस्थानानि (उ)	३९.१०
चतुर्द्धावस्थितः सोऽथ	६.६२
चतुर्बाहुश्चतुष्पाद-	२३.९६
चतुर्भूता वशिष्ठेऽस्मिन्	५३.७
चतुर्महाद्वीपवती	४१.८२
चतुर्महाद्वीपवती	४२.८०
चतुर्महाशैलवती	४२.८१
चतुर्महास्यं सिततीक्ष्ण-	३०.१३०
चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे	५.२६
चतुर्मुखात्तस्मादजायन्त	२६.२८
चतुर्युग सहस्रान्ते	७.६५
चतुर्युग सहस्रान्ते (उ)	३८.१८८
चतुर्युग स्वरूपेण (उ)	४६.३९
चतुर्युगानां सर्वेषामेतेन	५८.११३
चातुर्युगानि यन्यासन्	५७.१
चतुर्युगेकसतपत्या (उ)	४.५
चतुर्वक्रं महायोगं	५५.१४
चतुर्विधा सृजाग्रस्त्व	७.६६
चतुर्विधा यदाशेते (उ)	३२.१८९
चतुर्विंशत्समा राजा (उ)	३७.३०६

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
चतुर्विंशतिभिश्चैव	८.१००	चन्द्रकान्तश्च शैलश्च	४५.२५	चमीकरमयीभिस्तु (उ)	३९.२५४
चतुर्विंशतिमश्चापि	२१.५०	चन्द्रकान्ता नरवरा:	४५.४३	चारिष्णवेऽन्तरेये (उ)	५.५६
चतुर्विंशतिराद्यन्तु	८.११०	चन्द्रगुप्तं नृपं राज्ये (उ)	३७.३२५	चारिष्वेऽन्तरे (उ)	५.१२९
चतुर्विंशतिविशेषश्च (उ)	४८.२७	चन्द्रतीर्थे कुमार्य्यान्तु	१५.२८	चारुविन्ध्यश्च रुक्मिण्यां (उ)	३४.२३८
चतुर्विंशति साहसं (उ)	४२.१०	चन्द्रप्रभाश्चन्द्र वर्णा:	४३.८	चित्त सम्मोहनं कृत्वा	५८.१०२
चतुर्विंशेयुगे रामो (उ)	३६.९१	चन्द्रप्रभोनाम गिरि:	४७.५	चितिर्हयो नयश्चैव (उ)	५.१६
चतुर्हस्तं धनुर्दण्डो	८.१०१	चन्द्रमास्तु स्मृत: सोम:	२७.३७	चित्र कस्याभवन् पुत्रा: (उ)	३४.११३
चतुर्हस्ता चतुर्नेत्रा	२३.४१	चन्द्रसूर्य द्वयं ज्योति (उ)	३५.३८	चित्र पुष्पनिकञ्जस्य	४१.३९
चतुष्पथेषु रथ्यासु	३०.२७९	चन्द्रसूर्य प्रभालोके	९.१०४	चित्राङ्गदं च राजानं (उ)	११.६३
चतुष्पदां चतुर्वक्त्रां	२३.६	चन्द्रसूर्यौ सनक्षत्राव	४६.१२	चित्राङ्गदो महावीर्यश्चित्र (उ)	८.२०
चतुष्पदानां सर्वेषां (उ)	३९.२०२	चन्द्रस्य शिखरं नाम	४९.१४	चित्राय चित्र वर्णाय	२४.१३०
चतुष्पादाय मेध्याय (उ)	३५.१७७	चन्द्रस्य षोडशोभागो	५३.६६	चित्रायां चैव य: कुर्यात् (उ)	२०.८
चतु: सहस्रयुक्तं वै	५७.३७	चन्द्रादित्यावतप्तं	४१.८८	चित्रोपचित्रे कन्ये च (उ)	३४.१७०
चतुस्त्रिंशद्यवीयस्य (उ)	८.४	चन्द्रादित्यावतप्तास्तु	४९.१६२	चिन्तयध्वं महाभागा (उ)	२९.१६
चत्वार: प्राकृतौ वर्णा: (उ)	२५.५	चंद्रादित्यौ सनक्षत्रौ	४.७४	चिन्तयाभिपरीताङ्गा (उ)	३४.९
चत्वारस्तु महाभाग	२३.१२२	चन्द्रार्क सुकरोबुध्न: (उ)	८.१६०	चिन्तयाय चैव चिन्त्याय	५४.७४
चत्वारस्ते महात्मान	५०.२०६	चन्द्रास्ता मामत: सर्वा	५३.२२	चिरोत्पन्नमतिर्भिन्नम् (उ)	२२.२६
चत्वारि तु सहस्राणि	२.५०	चरकाध्वर्यव: केन	६१.१७	चीर पत्राजिनानि	८.१७५
चत्वारि भारतेवर्षे	२४.१	चरते दक्षिणे चापि	५०.१३७	चीर वस्त्राजिनधरा	५८.९८
चत्वारि भारतेवर्षे	४५.१३७	चरन्ति पृथिवीं कृतस्नां (उ)	८.१७४	चीरं पर्णञ्च विविधं (उ)	३७.३९९
चत्वारि भारतेवर्षे	५७.२२	चरन्त्यदृष्टपूर्वाश्च (उ)	८.१७९	चुकोप मार्गवस्तेषाम् (उ)	३६.३६
चत्वारि विंशतिश्चैव (उ)	८.१९२	चराचरास्य ब्रह्मा	३०.२२७	चुक्रुशुर्ऋषय: श्रुत्वा (उ)	३९.३०९
चत्वारि विंशतिश्चैव (उ)	३९.१२३	चरिष्णु राज्यो विष्णुश्च (उ)	३८.२२	चूडामणि धराणां वै (उ)	३९.२८९
चत्वारिशच्च ये चैव (उ)	३७.४५४	चरुद्वयं गृहित्वा तु (उ)	२९.७०	चूर्णन्ते यज्ञपात्राणि	३०.१५०
चत्वारिंशतथाष्टौ	३५.२	चलते क्रीडते चैव लंबोदर	२४.१४४	चूर्णीकृत महावीचि (उ)	३२.३१
चत्वारिंशत् त्रीणि	५७.३२	चलितन्ते पुनर्द्धर्म	५०.२११	चूलिकाश्चाहुकाश्चैव	४५.१२१
चत्वारिंशत्सहस्राणि	३४.५२	चाक्षुषस्य तु दायाद: (उ)	१.७०	चैत्र: कविरुतश्चैव (उ)	१.१७
चत्वारिंशत्सहस्राणि	५०.१८०	चाक्षुषस्य निसर्गन्तु (उ)	१.७१	चैवीरिकाश्च जायन्ते (उ)	८.३०६
चत्वारिंशद्दशाष्टौ (उ)	३७.२९९	चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते (उ)	२.१९	च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु (उ)	३७.२१४
चत्वारो नैकवर्णाद्या	४१.८४	चाक्षुषस्यान्तरे (उ)	३८.५४	च्यवनस्तस्य च विज्ञेयं	५०.२७
चत्वारो मूर्तिमन्तश्च (उ)	११.१००	चाक्षुषाश्च कनिष्ठाश्च (उ)	३८.१११	**छ**	
चत्वार्य शीति: प्रतता	४२.८	चाक्षुषेऽपि च सम्प्राप्ते (उ)	२.१८	छगलश्छगली चैव (उ)	८.२५३
चत्वार्याहु: सहस्राणि	३२.५५	चाण्डाश्चात्रशिरो (उ)	८.२१८	छगल: कुम्भ कर्षाश्य:	२३.१९९
चत्वार्याहु: सहस्राणि	५७.२३	चातुर्वर्णस्त सौवर्णो	३४.१५	छटाभिर्विष्णुतोऽत्यर्थं	२४.५८
चत्वार्येव शतान्याहु	५०.१८१	चातुर्वर्णात्मक: पूर्व	८.१७२	छत्र प्रमाणैर्विकचै:	३६.१५
चंदनागुरुणी चोभे (उ)	१३.३२	चातुर्वर्ण्यं हि देवतानां	३०.६७	छन्दांसि त्रैष्टुभङ्कर्म	९.४५
चन्दनेभ्य: प्रयुक्तानां (उ)	१५.२७	चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता (उ)	३५.३७	छन्दांसि वेदा: संऋचः	३.१५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
छन्दोभिरष्वरूपै	५२.४५
छन्दोभिर्वाजिरूपेस्त	५१.५८
छाद्यतस्तानि छन्दांसि	९.३८
छायायां पुष्टिराधत्त (उ)	१.८४
छिद्रं वासश्च कृष्णश्च	१९.१४
छिद्राण्या काशयोनीनि (उ)	३५.५७
छिन्नं बाहुसहस्त्रश्च (उ)	३६.१०१
ज	
जगत प्रलयोत्पत्तौ	६१.१०९
जगद्योनिं महद्भूतम्	४.१९
जगाम सह पुत्रेण (उ)	८.१४५
जगुः समानि गन्धर्वा	२.२८
जगुर्गन्धर्व्व मुख्याश्च (उ)	११.३६
जघान् दानवान् सर्वान् (उ)	३०.८६
जज्ञातेऽन्वक मुख्यस्य (उ)	३४.८७
जज्ञिरे द्वादशादित्या (उ)	६.४४
जज्ञिरे सोयादायात्तु (उ)	३७.२३१
जज्ञे कीर्तिमतश्चापि	२८.१६
जज्ञे चन्द्रमसः साम्नः (उ)	८.२२३
जज्ञे च श्रुतदेवायां तनयो (उ)	३४.१५५
जज्ञे तस्य प्रसृतस्य (उ)	३४.१४५
जज्ञे पितृणां कन्यायाम्	१.१६०
जज्ञे पुत्रशतं तस्यां (उ)	४५.२०
जज्ञे पुनः पुनर्विष्णुयज्ञे (उ)	३६.६९
जज्ञे पुरूद्वतः पुत्रो (उ)	३३.४७
जज्ञे वै चण्डिकस्तस्य	३७.१०४
जज्ञे श्रावस्तको राजा (उ)	२६.२७
जज्ञे सा मणिभद्रश्च (उ)	८.१४७
जज्ञे हि सा त्वधर्माद्वै	१०.३८
जटाकारालो द्युतिमान्	५०.५१
जटिने दण्डिने तुभ्यं	२४.१३९
जठरो देवकूटश्च	३५.८
जडत्व बधिरत्वं च	११.३६
जनकस्य वचः	६०.३९
जनकस्याश्वमेधे	६०.३५
जननी सर्वभूतानां	५०.२
जननी सा द्युतिमतः	२८.३४
जनमेजयो महसत्त्वः	३६.१५
जनयामास पुत्रौ द्वौ (उ)	४.९०
जनयित्वा त्वरण्यान्ते	१.१७३
जनलोकात्तपोलोकं	६१.१३२
जनलोकात्सुराः सर्वे	६१.१२९
जनलोकविवर्त्तन्त- (उ)	३८.१९०
जनस्तपश्च सत्यश्च (उ)	३९.१५
जनस्तपस्तथा सत्य	४९.१४९
जनस्तु पञ्चमो (उ)	३९.२४
जनाय च नमस्तुभ्यं	२४.११३
जनार्दन नमस्तुभ्यं (उ)	४६.९१
जनार्दनो भस्मकृतो (उ)	४६.८२
जनुवण्डस्तथा शान्तिः (उ)	१.४३
जन्तुवाहयनिश्चैव (उ)	१.३०
जन्तूनां पापपुण्यन्तु (उ)	४०.५१
जन्तुनामिह संस्कारो	४९.१७९
जन्मान्तरशतं साग्रं (उ)	४६.१८
जपतस्त्वभवत्कन्या	२५.४४
जपं कृत्वा तथा तीव्रं (उ)	२९.१०४
जपोजप्य महायोगी	२४.१५४
जमदग्निर्ऋचीकस्य (उ)	४.९३
जमनाद्वैष्णवस्य (उ)	४.९४
जम्बूद्वीपः पृथुः श्रीमान्	३४.१२
जम्बूद्वीपप्रदेशास्तु	७८.१३
जम्बूद्वीपस्य विस्तारा	३४.२४
जम्बूद्वीपस्यविस्तारात्	३४.१३
जम्बूद्वीपस्य विस्ताराद्	४९.२
जम्बूद्वीपात् प्रवर्तन्ते	४९.१३७
जम्बूद्वीपादयोद्वीपाः	१.८०
जम्बू द्वीपेश्वरं चक्रे	३३.११
जम्बूरसफलं पीतवा	४६.२९
जम्बू रसफलावरा	४६.१३
जयतिपराशसूनुः	१.१
जयध्वजश्च वै (उ)	३२.५०
जयन्तमितिविख्यातं (उ)	२७.२
जयन्त्या सह सक्ते तु	१.१४०
जय लिप्सां समाधास्ये (उ)	६.९९
जरयाहं प्रतिच्छन्नो (उ)	३१.५९
जरामृत्युभयश्चैव (उ)	३०.९१
जरायावहवो दोषा (उ)	३१.३२
जरायुजाण्डजा वापि (उ)	४५.५२
जरायुजोऽण्डजश्चैव	३०.२२६
जरावली च मां तात	३१.२९
जरासन्धकस्ताप्रावक्षा (उ)	३४.२३९
जलक्रिडासरुचिरम्	६.११
जलजाः स्वेदजाश्चैव (उ)	८.२९७
जलद जलदस्याथ	३२.१७
जलाशयैर्बहुविधैः (उ)	४२.६४
जलेन समनु व्याप्ते	८.३
जलैश्च विविधाकारै (उ)	३९.२५१
जवासुमनसो भण्डीरूप (उ)	१३.३४
जह्नुश्च दायेतं पुत्रं (उ)	२६.५७
जह्नुस्त्वजनयत्पुत्रं (उ)	३७.२२५
जातमात्रश्चयं वेद	१.३७
जात वेदः शिला तत्र (उ)	१५.५८
जातः सर्वोषधिवरः (उ)	१०.६
जाता गृहेतव शिला (उ)	४४.४५
जाता भस्मव्यपोहिन्यां (उ)	४.५६
जातो मृत्युसुतायां वै (उ)	१.१०८
जात्यन्त सहस्त्रेषु (उ)	४८.४७
जात्याञ् जननिभो (उ)	९.४३
जानन् धर्मान् वसिष्ठस्तु (उ)	२६.९८
जानुभ्यामवनिं गत्वा	३०.१३७
जानुभ्यामवनिं गत्वा	३०.१७९
जामदग्न्यात्तदाग्ने (उ)	२६.१३४
जामदग्न्योन रामेण	३७.४४३
जामदग्न्योन रामेण	३२.४४
जाम्बवान् ऋक्षराजस्तु	३४.३४
जम्बूनदमयं दिव्यं (उ)	१८.३
जम्बूनदमयं दिव्यं (उ)	१५.११२
जाम्बूनदमयैः	४१.१५
जायन्ते कार्यसिद्ध्यर्थं (उ)	८.३४३
जायमानास्तु पूर्वे	५०.२१२
जयमाने पिता पुत्रे	६१.९९

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
जयास्व शीघ्रं भद्रन्ते (उ)	३४.१०७
जालान्तरगतं भानो: (उ)	३९.११८
जिज्ञासन्त: परीक्षन्त: (उ)	५.११३
जितप्रत्युपसर्गस्य	१२.५
जिनाद्याश्च गणा (उ)	३८.१२५
जिह्वया चैर संस्पृश्य (उ)	१७.४०
जीजरेतानि बीजानि	८.१४३
जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य (उ)	३३.४१
जीमूता नाम ते मेघा:	५१.३६
जीर्ण: शिशुवरं दत्ते जराया (उ)	३१.५१
जीर्य्यन्ति जिर्यत: (उ)	३१.९९
जीव: खल्वेष जीवानां	२४.६४
जीवग्राहं विगृह्यैनं (उ)	८.११४
जीवञ्जीवकनादैश्च	३६.३
जीवदानात् परं दानं (उ)	१८.५६
जीवितस्य प्रदानद्धि (उ)	१८.१७
जीवे जाग्रति विश्वाख्यं (उ)	४२.३६
जीवेश्वर ब्रह्मभेदो (उ)	४२.२२
जीवेश्वरादिरूपेण (उ)	४२.१०३
जुगुप्सन्त: प्रसूतिश्च (उ)	६.११
जुहात्यग्नौ च तेषां (उ)	४५.६०
जुहावेन्द्राय देवाय	१.२९
जृम्भ तस्तस्य दैत्या- (उ)	११.४४
जेता जिष्णु: सहश्चैव (उ)	१.४९
जैमिनिश्च सुमन्तुश्च	६०.१३
जैमिनी सामवेदार्थ	६०.१५
ज्ञ	
ज्ञाति भेदभायद्भीत: (उ)	३४.८८
ज्ञात्वा काव्यो यथातत्त्वं (उ)	३६.४७
ज्ञात्वागमन्तस्य	२४.३१
ज्ञात्वागृहपतिं दक्षं	३०.६९
ज्ञात्वा चैवं समुत्पत्तिं	२४.६८
ज्ञात्वा तु भक्तिं मम	५४.७९
ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च	४.१५४
ज्ञात्वाऽभि शस्तानसुरान् (उ)	३६.३८
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं	३०.१३६
ज्ञानकर्मण्युपरते लोके	५८.६१
ज्ञानमप्रतिमं यस्य	१.३
ज्ञानाचतुर्द्दशात् (उ)	४०.१०७
ज्ञानाच्चात्यन्तिक: (उ)	३८.१३४
ज्ञानाद्विजयते सर्वं (उ)	४०.६६
ज्ञानातु ज्ञानमित्याह	४.३९
ज्ञानादिनि च रूपाणि	४.३५
ज्ञापयामस्ततमिदं (उ)	३५.१२६
ज्ञेयो द्वादशपुत्रश्च (उ)	६.७
ज्यामधस्य च माहात्म्यम्	१.१३२
ज्यामधस्याभवद् (उ)	३३.३२
ज्यायांस्तयोस्तु य: (उ)	८.८२
ज्येष्ठ: शान्तभयस्तेषां	३३.३२
ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्य (उ)	९.३५
ज्येष्ठा पत्नीमहाभागा (उ)	३४.१६२
ज्येष्ठा विशाखानुराधा (उ)	५.५०
ज्येष्ठा: प्रजानां पतय: (उ)	४.५८
ज्यैष्ठ्यं कानिष्ठ्यमप्येषां (उ)	२.५१
ज्योतिश्चैव विभावयश्च (उ)	१.२७
ज्योतिषां गतियोगेन	५३.९३
ज्योतिषाञ्चक्रमेतद्धि	५२.९९
ज्योतिष्मत: कुशद्वीपे	३३.२४
ज्योतिष्मान् द्युतिमान्	३१.१८
ज्योतिष्मान् भार्गवश्चैव (उ)	३८.६७
ज्योत्स्नया व्याप्य खं (उ)	३९.३२९
ज्योत्स्ना च मृगकान्ता	४७.६८
ज्योत्स्ना रात्र्यहनी	९.२३
ज्वलद्भिर्विशिखैर्बाणै: (उ)	१.१५१
ज्वालान्ततस्तामालोक्य	५५.१८
त	
तं गर्भं सप्तधाभूतं (उ)	६.१०४
तं गृहीत्वा स धर्मात्मा (उ)	३७.६५
तं चाश्वमेधिकं सोऽथ (उ)	२६.१५१
तं जना: पर्यधावन्त (उ)	२४.२९
तं जात रक्षमाणस्तु (उ)	३४.२०९
तं तं कालञ्च कार्यञ्च	३६.११२
तं तु बद्धं गतो दृष्ट्वा (उ)	२६.८८
तं दृष्ट्वा ऋषिभि: (उ)	४.१३२
तं दृष्ट्वा तु वयं	५४.८७
तं दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तं	२३.४
तं दृष्ट्वा परम प्रीता (उ)	१.१४७
तं दृष्ट्वा पुरुष: श्रीमान्	२२.१२
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यम्	२.१९
तं दृष्ट्वा सुरसङ्घाश्च	५४.४९
तं दृष्ट्वा स्त्रीवधं घोरं	३५.१४०
तं दृष्ट्वोत्पलपत्राभं	५४.९१
तं देवदेवं जननं (उ)	४१.७३
तं नद्यश्च समुद्राश्च (उ)	१.१३०
तं पद्मं पद्मगर्भाभं	२५.२८
तं प्रसेनजितं दिव्यं (उ)	३४.३०
तं ब्रह्मवादिनं दान्तं (उ)	२९.४
तं ब्रह्मा छन्दयामास (उ)	६.६२
तं लोक पद्मं श्रुतिभि:	४१.८९
तं वारय महाबाहो (उ)	२६.४१
तं श्वेतमथ रक्तञ्च	२६.१३
तं सिनी च कुहूश्चैव (उ)	२८.२५
तक्षस्य दिक्षु विख्याता (उ)	२६.१८९
तच्चाकाशे पुरं रम्यं (उ)	३९.२३५
तच्छिष्पा अभवन्	६०.६४
तच्छ्रुत्वा धर्म्ममगमन् (उ)	४५.१५
तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणान् (उ)	४४.८३
तच्छ्रुत्वा वचनं सर्वे (उ)	४.१५३
तज्जानापहतावेतौ (उ)	३६.६४
तञ्च योगं समासेन (उ)	२१.५७
तत आग्नेयी समुत्थेन	३०.५५
तत: आर्जवसंप्राप्त (उ)	३४.९६
तत इन्द्रविनाशाय (उ)	४.८२
तत उत्सारयामास (उ)	१.१६७
तत: कलियुगं घोरं	३२.१९
तत: काक बलिं दद्यात् (उ)	४९.४८
तत: कालेन महता (उ)	३७.९४
तत: कालेन महता	८.८०
तत: काले बहु तिथे (उ)	३०.९२
तत: काले व्यतिक्रान्ते	३९.३३९
तत: काव्यं समासाद्य (उ)	३६.४२

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
ततः काव्यस्तु तान्दृष्ट्वा	३५.१०१
ततः किलकिलाशब्द	३०.१४४
ततः कृत युगे तस्मिन्	८.६८
ततः कतांशे क्षीणेतु	८.७४
ततः कृष्णस्य वचनात् (उ)	३४.६५
ततः कोलिकिलेभ्यश्च (उ)	३७.३५९
ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभास्कं	२४.६०
ततः पञ्चदशे भागे	५२.६५
ततः परं महानील हेम-	४२.६८
ततः परां पुनर्बुद्धिं	१२.१९
ततः पर्वारिण कीत्यन्ते	१.६६
ततः पश्यन्ति शर्वाणं (उ)	३९.३४३
ततः पीतक्षये सोमे	५६.२८
ततः पुनरभूतासाम्	८.१३०
ततः पुनर्द्वमात्रं तु	२६.१९
ततः पुनः स वै (उ)	५.१२६
ततः पूनर्महातेजा	५०.१६६
ततः पूर्वैणा साधर्म्यात्	१.३१
ततः प्रक्षालिता सस्मात् (उ)	४६.८६
ततः प्रजाः प्रवक्ष्यामि (उ)	२२.३०
ततः प्रतिहता विन्ध्ये	४७.५०
ततः प्रत्यागत प्राणः	२५.७२
ततः प्रनष्टे तस्मिंस्ते (उ)	३६.३९
ततः प्रपत्स्यते (उ)	४१.१८
ततः प्रभृति कल्पेऽस्मिन्	८.४१
ततः प्रभृति देवेशो	१०.५९
ततः प्रभृति राजान	५७.५८
ततः प्रभुति राजानो (उ)	३७.३२१
ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्	२.४५
ततः प्रभृति वै भ्राता (उ)	४.१५५
ततः प्रभृत्यथौषध्यः	८.१५४
ततः प्रयाति भगवान्	५०.१६७
ततः प्रलीयते सर्व्वं (उ)	३८.१५१
ततः प्रवर्तते तासौ	५८.३
ततः प्रवृत्ते युद्धे तु (उ)	३४.६७
ततः प्रवृत्तो दक्षस्तु (उ)	४.१२२
ततः प्रसादयामास (उ)	३७.७५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
ततः प्रहृष्टमनसौ	५५.५९
ततः प्रादुर्बभौ तासाम्	८.१२४
ततः प्राप्ते पञ्चदशे	२३.१५५
ततः प्राप्यन्त ते (उ)	३९.७३
ततः प्रीतो ह्यह तस्मै	५४.८१
ततः प्रोवाच तां कन्यां	२५.४५
ततः शकान् सयवनान् (उ)	२६.१३५
ततः शक्रेण तुष्टेन	३१.२७
ततः शतं वै प्रति- (उ)	३७.४४९
ततः शतन्तु पौलानां	३२.५०
ततः शनैश्चरोप्यश्चै	५२.७९
ततः शरानथादित्यः (उ)	३३.९
ततः शुचस्तु यैः सौरैर्	२९.३६
ततः शैशिरयोश्चापि	५२.२०
ततश्चनलिनी चागात	४७.५६
ततश्चरति निर्देशं	१८.८
ततश्चाप्यम्मयीभूमि	१.८०
ततश्चिन्तयमानस्य	२६.१६
ततश्चैव त्रिसंयोगात	२६.२५
ततः षष्ठान्मुखत्तस्य	२६.३८
ततः षोडशमे चापि	२३.१६०
ततः संवर्त्तकः शैलान् (उ)	३८.१५६
ततः संशयमापन्ना (उ)	२८.३९
ततः संस्तभ्य योगेन	११.५२
ततः संस्तम्भितं दृष्ट्वा (उ)	३५.१३२
ततः संस्तूयमानस्य (उ)	२८.१३
ततः संस्थापयामास	८.९६
ततः संवृतसन्नाहा (उ)	३६.६२
ततः स च मुद्धृत्य	६०.१९
ततः स जनयामास (उ)	४.३३
ततः स तमुपाघ्नाय (उ)	२८.४३
ततः स तासां वृत्त्यर्थम्	८.१५३
ततः सत्त्वरजोद्रिक्ता	८.१६२
ततः स दुःख सन्तप्तो (उ)	३१.२४
ततः स ध्यानमास्थाय	६१.२०
ततः सप्तदशः कल्पो	२१.३५
ततः सप्तदशे चैव	२३.१६३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
ततः स पृथिवीं मित्वा (उ)	३८.१५७
ततः स भगवान् देवः	२५.३
ततः स भगवान् ब्रह्मा	२४.५२
ततः स भगवान् ब्रह्मा	२५.७९
ततः स भगवान् विष्णुः	२५.३४
ततः समागतान् दृष्ट्वा (उ)	३६.१७
ततः समीक्ष्यतां विष्णुः (उ)	३५.१३८
ततः समुद्रा स्वां वेलां (उ)	३८.१७६
ततः सर्गे ह्यवष्टब्धे	८.३५
ततः सर्वामरैश्वर्यं (उ)	३६.८६
ततः सर्व्वाः समुत्पन्ना	३४.३८
ततः स वै तदा कल्किः (उ)	३६.११५
ततः सहस्तशस्तासु	८.५१
ततः साधारणार्थाय	२६.२९
ततः सुरगणाः सर्वे	५४.९६
ततः सूर्ये पुनस्त्वन्या	५२.९
ततः सोऽन्तर्हिते देवे	२५.२७
ततः सोऽन्तर्हिते (उ)	३६.३
ततः सोमस्य वचनात (उ)	२.३७
ततस्तं दीर्घ तमसं (उ)	३७.८०
ततस्तं वरितमागस्यं (उ)	३४.६४
ततः स्तवान्ते सुप्रीतः (उ)	१.१४५
ततस्तस्मात् प्रबुद्धात्मा	१४.७५
ततस्तस्मिन् गते कल्पे	२३.२०
ततस्तस्मिन् गते	२३.३३
ततस्तस्मिन् समुद्भूते	१०.६
ततस्तस्मिंस्तदा	२३.१०६
ततस्तस्मै ददौ (उ)	२८.१९
ततस्तस्य तु वीर्येण	३१.५७
ततस्तस्य मरवे देवाः	३०.६५
ततस्तस्य महात्मान	२२.२७
ततस्तस्य महादेवो	२३.१३
ततस्तस्य वचः	५४.९३
ततस्तस्य हयास्ते (उ)	३४.७२
ततस्तान ब्रवीत्काव्य (उ)	३५.१४६
ततस्तां सर्वभूतानि (उ)	३५.११३
ततस्तापत्रयातीतो	१.१५६

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
ततस्ता: पर्यगृहणन्त	८.१३१
ततस्तासुप्रणष्टासु	८.१३९
ततस्तु कर्म्मभि: पापै:	१४.२५
ततस्तु गर्भ कालेतु	१४.१७
ततस्तु गर्भसंयुक्त:	१४.२२
ततस्तु तां समुद्धृत्य	८.१२
ततस्तु ध्यान संयुक्तस्तप	२६.१०
ततस्तु परमं ब्रह्म कथं	१४.३९
ततस्तु प्रणतो भूत्वा	२३.३८
ततस्तु ब्रह्म योन्यां	१४.१६
ततस्तु मध्यमो नाम	२१.३६
ततस्तु योगयुक्तस्य	१२.१७
ततस्तु स महातेजा	२६.२४
ततस्तु सलिले तस्मिन्	६.८
ततस्तु सलिलेतस्मिन्	७.५४
ततस्तु सहस्रोद्धान्त: (उ)	३८.१७७
ततस्तृतीयं द्वीपानां	४९.२९
ततस्तेऽवश्यभावित्वात्	७.२१
ततस्ते ऋषय: सर्वे (उ)	३९.३४८
ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वा	५७.१२०
ततस्ते कृत संवादा (उ)	३५.११०
ततस्ते जलदा वर्षं (उ)	३८.१७०
ततस्ते तपसा युक्त:	८.२६
ततस्ते तपसा युक्ता	६१.१७२
ततस्ते तु यथोक्तेन	२३.५४
ततस्ते दानवा: सर्वे (उ)	३६.६२
ततस्ते नाभिशापेन (उ)	३५.१४२
ततस्ते नाभ्यनन्दन्त (उ)	६.९
ततस्ते नावमानेन सती	३०.५२
ततस्ते ब्रह्मभूयिष्ठा	२३.११०
ततस्तेभ्य: स्वरेभ्यस्तु	२६.३०
ततस्ते रश्मय: सप्त (उ)	३८.१४४
ततस्ते वै गणा: (उ)	३९.६०
ततस्ते वै पुनर्देवा: (उ)	६.४१
ततस्ते वै पुन: साध्या: (उ)	६.४२
ततस्तेषां तु ये शिष्टा	६१.१६४
ततस्तेषान्तु नामानि (उ)	६.१२२
ततस्तेषान्तु या: (उ)	६.३२
ततस्तेषां प्रतापेन (उ)	३८.१४७
ततस्तेषु क्रियावत्सु	५८.१०७
ततस्तेषु गतेषूर्द्ध्वं (उ)	३८.१२६
ततस्तेषु गतेषूर्द्ध्वं	७.३९
ततस्तेषु प्रणष्टेषु	८.८५
ततस्तेषु प्रवृत्तेषु जने	७.४७
ततस्तेषु विशीर्णेषु	६.३१
ततस्तेषु व्यतीतेषु	६१.१७१
ततस्तेष्वपवृत्तेषु	२४.८३
ततस्ते सगणा: सर्वे	६१.१४
ततस्ते स्वान्सुतांश्चैव (उ)	१०.२१
तरस्ते हरयो देवा:	६.४०
ततस्ते ह्युपपद्यन्ते	७.४५
ततस्तौ जलमाविश्य	२५.४०
ततस्तौ पीड्यमानौ	२५.५१
ततस्तो प्रोचतुर्दैत्यौ	२५.३९
ततस्त्रिंशत्तम: कल्पो रक्तो	२२.२०
ततस्वं प्राप्स्यसे उ)	३७.७८
ततस्त्वष्टा ततो (उ)	५.६७
ततस्त्वाङ्गिरसो	५२.७७
ततस्वापूरयेदेहम्	१९.४०
ततस्त्वेकोनविंशे	२३.१७५
तत: स्थानानि शून्यानि (उ)	३८.१२३
तत: स्मरति संसार चक्रेण	१५.२
तत: स्वमातरं शान्तां (उ)	४९.७०
तत: स्वर्गश्च मोक्षश्च	४५.७७
तत: स्वस्थानमानीय	६.२५
तत: स्वायम्भुवे (उ)	६.३३
तत: स्वायम्भुवे (उ)	६.४५
तत: स्वायम्भुवे (उ)	२.१३
ततस्त्वं पद्मसंभूत:	२३.१०५
ततोऽथ वितथे जाते (उ)	३७.१५४
ततोऽन्तरिक्षे वागासीद् (उ)	३४.२२०
ततोऽन्या मानसी	८.१९०
ततोऽन्या स पुनर्ब्रह्मा	९.१५
ततोऽन्येनैव कालेन (उ)	३९.६२
ततोऽपरस्यतैर्व्यक्त:	५६.४१
ततोऽप्यहं भविष्यामि	२३.१४४
ततोऽब्रवीत् पिता (उ)	३७.९५
ततोऽब्रवीत् पुनर्ब्रह्मा	२७.२०
ततोऽब्रवीत् पुनर्ब्रह्मा	२७.२८
ततोऽब्रवीत् पुनर्ब्रह्म:	२७.३२
ततोऽब्रवीत् पुनर्ब्रह्मा	२७.३५
ततोऽब्रवीत् सा पितरं	३०.४४
ततोऽब्रवीदप्सरस: (उ)	८.१४१
ततोऽब्रवील्लोकगुरु: (उ)	४.७१
ततोऽभिध्यायतस्तस्य	९.१
ततोऽभि व्याहृतो दक्षो	३०.६८
ततोऽभिसन्धितं (उ)	४.१४१
ततोऽभिसृष्टास्तनव	२७.१८
ततोऽभ्युपागंस्तेषां	६०.४६
ततोऽष्टादशमे चैव	२३.१७१
ततो असुरान् परित्यज्य (उ)	३५.९४
ततोऽसुरा: परित्रस्ता (उ)	३६.४१
ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा	९.६४
ततोऽस्य जघनात	९.४
ततोऽस्य पार्श्वत	२२.१५
ततऽस्य पार्श्वतो	२३.५३
ततोऽस्य मातुराहारात्	१४.२३
ततोऽस्य लोहितत्वेन	२३.६४
ततोऽस्य शन्तनुत्वं	३७.२३५
ततोऽहं पातुमारब्धे	५४.९०
ततो ग्रामान्तरं गत्वा (उ)	४८.३
ततोङ्गस्तु सुदेष्णाया (उ)	३७.८५
ततो गजकुलाकारा: (उ)	३८.१६२
ततो गत्वा निकुम्भस्तु (उ)	३०.३८
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तु (उ)	३२.३६
ततो गत्वा सुरान् दृष्ट्वा	३६.२३
ततो गभस्तलं नाम	५०.१२
ततो गत्य प्रवेशे च पूर्वतो- (उ)	४८.६
ततो जग्मुर्महात्मानं	३०.१६०
ततो ज्ञात्वा सती सर्वा:	३०.४३
ततो दक्ष: सुतां प्रादात् (उ)	४.१४२

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
ततो दक्षोऽसृजत् कन्या	१.११९
ततो दीर्घतमो नाम (उ)	३७.४६
ततो दुहितरावन्ये (उ)	५.७१
ततो दृष्टिविभिन्नैस्तै	५८.१०
ततो देवा निवृत्ता वै (उ)	३५.११२
ततो देवासुरपितॄन	६.२
ततो देवाः सुसंरब्धा (उ)	३५.१००
ततो देवास्ततो (उ)	१०.५७
ततो देवास्तिरोभूते (उ)	६.३१
ततोद्धृत्य क्षिति देवः	६.२७
ततो द्वाराणि सर्वाणि	२४.३२
ततो द्वितीया प्रभृति	५२.६०
ततो धनात्मिकश्चापि (उ)	३६.२०७
ततो ध्यानगतस्तत्र	२३.५
ततो ध्यानगन्तत्र	५५.२९
ततो नवसु मासेषु (उ)	२६.१६२
ततो निरुद्धा देवी सा	४७.३१
ततो निवार्योशनसं (उ)	२८.३५
ततो निशान्ते राजानम्	२.२०
ततो बन्धात् प्रमुक्तेन	३०.१३९
ततो ब्रह्मादयो देवा	३०.१६१
ततो ब्रह्मार्णव क्षुब्धः	६०.४४
ततो भूयस्तु गन्धर्वा (उ)	२९.२३
ततो मनुष्ययोन्यां (उ)	३७.८८
ततो मन्दतरं ताभ्याञ्चक्रं	५०.१४८
ततो मन्वन्तरेऽतीते (उ)	२३.१
तातो मन्वन्तरे तस्मिन्	६१.१५२
तातो मया महाभाग	२४.४५
ततो मरुद्भिरानीय (उ)	३७.१३५
तातो मात्रावृतत्वाच्च	१.५९
ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा	५५.१५
ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा	५५.२४
तातो मुखे समुत्पन्ना	९.८
ततो यम बलिं दद्यात् (उ)	४९.४५
ततो यवीयसः पत्नीम् (क)	३७.५८
तातो यानि गतान्यूर्द्ध्वं	६१.२१
ततो यास्याम्यहं देवं (उ)	३५.१०७
ततो युग सहस्रान्ते (उ)	१०.६१
ततो युगसहस्रान्ते (उ)	३८.१३६
ततो यूपं मया सार्द्धं (उ)	६.३०
ततो रात्रिक्षये प्राप्ते (उ)	३८.१९५
ततो रुषितया देव्या (उ)	११.२४
ततो वर सहस्राणि	३०.४३
ततो वर्षति षण्मासान्	५१.२६
ततो वर्ष सहस्रन्तु	५५.२६
ततो वर्षसहस्रान्ते	२१.५९
ततो वर्ष सहस्रान्ते उषित्वा	२३.१६
ततो वर्ष सहस्रान्ते	२३.३०
ततो वर्ष सहस्रान्ते	२४.४४
ततो वर्ष सहस्रान्ते	२४.७६
ततो वसिष्ठो भगवान् (उ)	२६.१०२
ततो विग्रहवन्तं तं (उ)	३४.२६
ततो विंशतिमः कल्पो	२१.४०
ततो विंशतिमे सर्गे	२३.१७९
ततो विश्वावसुनमि (उ)	२९.१७
ततो विसृज्यमानायः	४७.३७
ततो विस्मयमापन्नो	२३.५६
ततो वृहस्पतिं गर्भो	३७.१४१
ततो वृहस्पतिश्चोर्द्धं (उ)	३९.१३३
ततो वेदं द्विमात्रं तु दृष्ट्वा	२६.२१
ततो वेद विदश्चैतां (उ)	५.३९
ततो वैन्यं महाभागे (उ)	१.१४८
ततो व विक्रमित्रस्तु (उ)	३७.३३५
ततो वै हर्ष मानास्ते	८.४०
ततो व्यतीते तस्मिंस्तु	५८.८९
ततो हिरण्यनाभस्तु	६१.४४
ततो ह्यपरिमेयात्मा	२४.३५
तत्कथ्य मानमस्माकं (उ)	४१.४
तत्करिष्याम्यहं सर्वं	३२.१३
तत्कर्मं कृष्णस्य ततो (उ)	३४.३५
तत् कालकूट विषम्	५४.९५
तत्किमर्थं भयोद्विग्ना	५४.५४
तत्कूपयूपयोर्म्मध्ये (उ)	४९.३३
तत्तमः प्रतिनुक्तं वै	१०.५
तत्त्वं कालञ्च देशञ्च (उ)	५.१०९
तत्त्वानमग्रजो	४.२७
तत्पुरं गोवृषाङ्कस्य (उ)	३९.२३७
तत् पुरुरवसे प्रादाद्	२३.२३
तत्प्राप्नुयाच्छ्रद्दधानो (उ)	१७.१२
तत्र कालञ्चरिष्यामि	२३.१९
तत्र कालस्य कर्त्तारं	३८.३२
तत्र काला नराः सर्वे	४२.३
तत्र काले पाण्डुनोक्तं (उ)	५०.५५
तत्र गत्वा च शोचन्ति	५०.२२२
तत्र गर्तास्त्रयः कार्याः (उ)	१२.९
तत्र गृधे गुहायाञ्च (उ)	४६.६६
तत्र गोवर्द्धन नाम	४५.११३
तत्र चक्र गिरिर्नाम	४८.१७
तत्र चन्द्रतुल्य प्रभः	४५.५०
तत्र चन्द्रप्रतीकाशाः	४५.४९
तत्र चन्द्रप्रभः श्रीमान्	३८.५६
तत्र चन्द्रमसो नाम्ना	४५.५८
तत्र जम्बु नदी पुण्यां	४७.६६
तत्र जाम्बू नदं नाम	४६.३०
तत्र जाम्बूनदन्नाम	३५.३०
तत्र ज्वालारसः पुण्यो (उ)	१५.१२
तत्र तत्पुष्पकं नाम	४१.६
तत्र तद्देवराजस्य	३९.११
तत्र तद्युद्धमभवत् (उ)	२८.३३
तत्र तेऽभ्यासिनो युक्ताः	३९.८८
तत्र ते ईजिरे सत्रम्	२.१२
तत्र ते ऋषयः सर्वे	२२.१८
तत्र ते पुरुषाः श्वेता	४२.७
तत्र ते वासिनः सिद्धा	५०.२१७
तत्र ते ह्यवतिष्ठाति	७.३०
तत्र ते तैरागतज्ञानैः	३५.४६
तत्र त्रिकूट निलये	४८.२६
तत्र त्रिपथगा देवी	४७.२६
तत्र त्रेतायुगस्यादौ	५७.३९
तत्र त्वेकं महापद्मे	३७.६
तत्र दिव्याम्बरधरा (उ)	२३.७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तत्र दिव्यो महावृक्षः	४२.४
तत्र देवगणाः सर्वे	३४.५५
तत्र नागपतिश्चण्ड	४१.७३
तत्र निर्भर्त्सनञ्चैव	१४.२६
तत्र पद्ममहापद्म	४१.१०
तत्र पुण्या जनपदाः	४९.३
तत्र पुण्या जनपदाः	४९.७५
तत्र पुण्या जनपदाः	४९.८९
तत्र ब्रह्मसभा रम्या	३४.७२
तत्र ब्रह्माकरोद्यागं (उ)	४३.६
तत्रभद्रासनं वायोर्	४५.६४
तत्र भूतपतेर्भूता नत्यिम्	४०.२४
तत्र भूतवटन्नाम	४०.२०
तत्र मन्दाकिनी नाम	४१.१४
तत्र मेधास्तु दृष्ट्यर्थ	४९.७८
तत्र यान्ति महात्मानः (उ)	३९.३४२
तत्र या राजसी तस्य (उ)	५.१००
तत्र युगसहस्रान्तम (उ)	३८.१३१
तत्र ये ध्यानमव्यग्राः (उ)	३९.२४६
तत्र योऽसौ महाशैलः	३९.२
तत्र लोकपतेः स्थानम्	३४.७६
तत्र विद्याधरो नाम (उ)	४६.५०
तत्र विष्णो सुरगुरोर्	३८.४८
तत्र वृक्षा मधुफला	४५.१२
तत्र वै योऽर्द्धमात्रो	२०.२१
तत्र वै संशयो मह्यमवतारेषु	२६.२
तत्र शंख गिरिर्नाम	४८.३२
तत्र शिष्टास्त्रयो (उ)	२८.३४
तत्र श्रीमांस्तु मलयः	४८.२२
तत्र संवर्तको नाम	४७.७६
तत्र सन्ध्यांशके	५८.९०
तत्र सर्वाणि भूतानि (उ)	२३.२७
तत्र सर्वाणि भूतानि	६१.१४३
तत्र सर्षिगणा देवास्	३४.७४
तत्र साक्षान्महादेवः	४१.५०
तत्र सूक्ष्म प्रवृत्तन्तु	१३.७
तत्र सोमशिला नाम	४१.५७
तत्र स्थानानि तेषां	५६.७७
तत्राऽहं कालसंकाशः	२३.६९
तत्रागस्त्यस्य हि (उ)	४६.४८
तत्राग्निधारा गिरि (उ)	४६.६२
तत्राङ्गस्य तु राजर्षे (उ)	३७.१००
तत्रादित्यस्य देवस्य	३८.३१
तत्रापदस्तदा क्रोधात् (उ)	३२.४४
तत्रापि च भविष्यन्ति	२३.११६
तत्रापि तेऽस्ति सद्भावः	५४.१५
तत्रापि नद्यः सप्तैव	४९.५५
तत्रापि नद्य सप्तैव	४९.६८
तत्रापि पर्वता शुभ्रा	४९.४
तत्रापि पर्वता शुभ्राः	४९.७६
तत्रापि पर्वताः सप्त	४९.३०
तत्रापि मम ते पुत्रा	२३.११३
तत्रापि मम ते पुत्रा	२३.१२९
तत्रापि मम ते पुत्रा	२३.१४९
तत्रापि मम ते पुत्रा	२३.१५३
तत्रापि मम ते पुत्रा	२३.१६२
तत्रापि मम ते पुत्रा	२३.१६५
तत्रापि मम ते पुत्रा	२३.१७३
तत्रापि मम ते पुत्रा	२३.१७७
तत्रापि मम ते पुत्रा	२३.१८५
तत्रापि मम ते पुत्रा	२३.१८९
तत्रापि मम ते पुत्रा	२३.१९३
तत्रापि मम ते पुत्रा	३३.१९५
तत्राभि मम ते पुत्रा	२३.१९८
तत्रामि मम ते पुत्रा	२३.२०१
तत्रापि मम ते पुत्रा	२३.२०४
तत्रापि मम ते पुत्रा	२३.२१२
तत्रापि मम सत्पुत्रा	२३.११९
तत्रापि सुमहान् दिव्यो	४५.४
तत्राप्यहं भविष्यामि	२३.१७६
तत्राप्स रोगणैर्य्यक्षैर्	४१.९
तत्राभिमानी भगवान्	२.४०
तत्राभरसपीतानां	३८.२२
तत्रार्च्चितस्य बहुशो (उ)	३०.४९
तत्राविष्टं सर्वमिदन्तनुभि	२७.३९
तत्राश्रमं भगवतः	३७.२२
तत्राश्रमं भगवतः	३८.७
तत्राश्रमं महापुण्यं	३८.४४
तत्राश्रमं महापुण्यं	३८.६२
तत्राष्टगुणमैश्वर्यं	१३.२
तत्रासते प्रजावन्तो	५०.२०९
तत्रास्ते गारुडिर्नित्यं	३९.४०
तत्रास्ते श्रीपतिः	३४.७५
तत्रास्ते सुरसापुत्रः	५०.३९
तत्रे मे देवगन्धर्वाः प्रायेण (उ)	८.४२
तत्रे मे सुयशापुत्रा (उ)	८.११
तत्रेशानस्य देवस्य	३४.७३
तत्रैकपिङ्गलो देवो	४१.८
तत्रैकः संचरस्थायी (उ)	२५.७
तत्रैव चोत्तरे कुटे	४१.५९
तत्रैव परिनिर्वाणाः (उ)	४०.४५
तत्रैव मम ते पुत्रा	२३.१३८
तत्रव सम्प्रलीयन्ते (उ)	३९.७९
तत्रैव हिमवत्पृष्ठे	२३.१८१
तत्रैवाङ्गिरसस्तस्य (उ)	२८.१२
तत्रैवाथ समासीना	३०.५४
तत्रैवोदाहरन्तीदं (उ)	३७.१३६
तत्रैवोमावनं नाम	४१.३६
तत्संस्पृष्टं प्रधानार्थं (उ)	१६.४१
तत्संहत्या ततो ब्रह्मा	२४.७
तत्सत्रमभवत् तेषाम्	२.१३
तत्सद्भावोऽनृतं (उ)	४०.१०८
तत्सर्वं सुचिरं ज्ञात्वा	२६.१४
तत् सिद्धचारण गणैः	३८.३०
तत् सिद्धयक्ष गन्धर्वाः	३८.५
तत्सेयं कथितप्राया	४२.७९
तत्स्थापयेदमावस्यां (उ)	१२.१३
तत्स्वधर्ममहं पृष्टो	१.३३
तथाऽक्षयवटं गत्वा (उ)	४३.४२
तथाऽधर्म्मस्यसिंहायाम्	१.६३
तथाऽन्याः क्षीर वाहिन्यो	४५.२७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तथाऽन्ये नैर्ऋता: (उ)	८.३११
तथा अलकनन्दा च	४१.१८
तथा कल्प युगै: सार्द्धं	५८.११८
तथा काञ्चनपादस्य	४८.२४
तथा कायकृते नेह	५०.२१५
तथा कार्य्या सिकानाञ्च (उ)	१६.५६
तथा काशमनालम्बं	५०.६
तथा कुमुदखण्डैश्च	४१.१६
तथा गगनमूर्द्धा च (उ)	७.१०
तथा गच्छद्यथाकालं (उ)	४.१३३
तथा गतास्तु वैकाष्ठां (उ)	३७.३८९
तथा गव्यसमायुक्तं (उ)	२१.८
तथाग्निर्विश्वदेवस्तु	२९.२८
तथा चतुर्थदिग्देशे	३४.८७
तथा चरण विद्यानां	६१.६९
तथा च हंसवसति:	४३.२५
तथा चाहूय सुधृति (उ)	२९.६५
तथा चित्ररथो नाम (उ)	४६.५२
तथा चैत्ररथं रम्यं	४२.१५
तथा जनपदानां च	४५.७४
तथा तपसि विज्ञेय	४९.१७१
तथा तेष्वपि नष्टेषु (उ)	४.१५७
तथा धर्मादितप्ताभ्य: (उ)	८.२९५
तथा निर्वचनं प्रोक्तं	१.५६
तथा निर्वाचन ब्रूयात्	५९.१०९
तथा निषध शैलस्य	३७.२८
तथान्यस्तत्र वै	६०.४१
तथा पञ्चदशाहानि	५०.१७७
तथा पञ्चदशोच्छन्ति (उ)	२४.५०
तथा पाण्डुशिलानाम	४१.४२
तथा पाशुपता योगा:	१.१७६
तथापि च न कर्तव्य:	१८.९
तथापि महतीमाति (उ)	४२.५९
तथापि हि महासत्त्व	२३.६५
तथा पुराणि रम्याणि	४१.६५
तथा पुष्पकशैलस्य	३८.७१
तथा प्रमुदिता वर्णा:	५७.५१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तथा प्रयुक्तमोङ्कारं	२०.४
तथा प्राणो दुराधर्ष:	१०.७९
तथा बहु सुवर्णाद्यं (उ)	५०.४
तथा ब्रह्मा च श्रान्तश्च	५५.२७
तथा भूतो शरीरत्वाद (उ)	३८.१८३
तथा भ्रमर संलीनै:	३८.१०
तथा मनो धारयतो	१२.२४
तथा मन्वन्तराणां च	१.१०९
तथा यमस्य दुहिता (उ)	८.६०
तथा युगानां परिवर्त्तनानि	५८.११९
तथार्द्धमास पर्वाणि	५६.३३
तथा वराहद्वीपे च	४८.३६
तथा वाणिजके चंव (उ)	२१.३९
तथा विश्वभुगीन्द्रस्तु च	५७.९१
तथा विषमजातानां (उ)	१९.१९
तथा वैतरणं कृष्णम् (उ)	३९.१४८
तथा शक्र गमिष्यामि (उ)	३०.९७
तथा शतबला चैव (उ)	३४.१६७
तथा शतसहस्रन्तु	५०.७४
तथा शतसहस्राणाम्	५०.७२
तथा शतसहस्राणाम्	५०.१२७
तथा शतसहस्राणि	५०.७०
तथा शतसहस्राणि	५०.१२४
तथा शतसहस्राणि (उ)	३८.२३२
तथा शतसहस्राम् (उ)	३९.९५
तथा शरवणं नाम यत्र	४१.३७
तथा शुक्ति विकाराणि (उ)	८.२९०
तथाष्टमेऽन्तरतटे	३४.९१
तथा सभ्यावसथ्यो	२९.१२
तथा सर्वं मयश्चैव	१३.८
तथा सहस्रा शिखरकुमुद-	३८.६०
तथा सुकृतकर्मा तु	१४.२
तथा सुमङ्गला: शुद्धा:	४३.१९
तथा सुभात्थितेनैव घोषश्च (उ)	८.३४
तथास्य वितते यज्ञे (उ)	४.२३
तथा स्वप्ने यथा दृष्टं (उ)	३०.४०
तथास्त्वित्याह	३०.१७८

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तथा ह्यनलप्तानि	३८.७८
तथा ह्रीदं तथा तद्वै	५९.११४
तथेति चोदितो राज्ञा (उ)	२६.१५
तथेति समनुज्ञातो (उ)	४.३९
तथेत्युक्त्वा तत	२५.५२
तथेत्युक्त्वा तदा (उ)	११.३०
तथेत्युक्त्वान्तर्हितास्ते (उ)	४७.९
तथेन्द्राग्नियमादीनां	४१.१२
तथैकराज्यं विज्ञेयं	४८.३१
तथैतद्भौतिकं नाम	४९.१६६
तथैव कुमुद द्वीपं	४८.३४
तथैव च महात्मानावश्विनौ	३०.८४
तथैव चान्यानपि	३.४
तथैव चान्यानपि	३.५
तथैव चोतरे देशे	४१.६६
तथैव चोत्तरे रम्ये	४१.६२
तथैव त्रिषु वर्णेषु (उ)	४१.५६
तथैव दाक्षिणात्यांश्च	५८.८२
तथैव दाक्षिणात्यांश्च (उ)	३६.१०७
तथैव नवमो विष्णु: (उ)	३६.९३
तथैव नैर्ऋतो नाम (उ)	८.१६७
तथैव पश्चिमे कुटे	४१.५६
तथैव पितृयाणानां	८.१८९
तथैव बाह्यत: द्वौ	५१.७६
तथैव मलयद्वीपमेवमेव	४८.२०
तथैव शत रूपाया:	१.५९
तथैव शैलवरयो:	३८.४५
तथैवाथर्वऋक्सामां	५८.१७
तथैवान्यानि मुदितो (उ)	४.१२५
तथैवायतनं वह्ने	४१.६१
तथैवायु संख्यातं (उ)	४२.७
तथोक्तस्तु महावेग: (उ)	३०.३५
तथोक्ता पितरं सा	३०.५७
तथोक्तो देवदेवेन (उ)	३५.११८
तथोर्ध्वं स्रोतसां षष्ठो	६.५८
तदनन्त सदो नाम	३८.५९
तदम्भस्तनुते यस्मात्	७.५१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तदयो भद्रसेनश्च (उ)	३४.१७३	तदा हि प्रार्थयामास (उ)	३४.५७	तपनीय गवाक्षाणि	५३.३८
तदस्य लोकपद्मस्य	३४.४५	तादा हया कला देवी	५८.४६	तपनीय सुवर्णाभास्	४५.६५
तदहर्मानुषं ज्ञेयं (उ)	३८.२२३	तादा ह्यैकाहिको	५८.४७	तपः शरीरास्ताः (उ)	११.१४
तदाऽप्यहं मार्गेण	२३.१२८	तदुक्तमृषिभिर्वान्यं (उ)	३९.७२	तपश्चरत्सु पृथिवीं (उ)	२.२७
तदाऽस्य वै क्रान्निष्क्रम्य	२४.२६	तदुपश्रुत्य तरसा (उ)	२.२९	तपः श्रुताचार निधे	१.१४
तदाकरोत्स राज्यं (उ)	२६.२१	तदुपश्रुत्य निधनं सत्या	३०.५६	तपसा कर्म सम्प्राप्तं	६१.१०६
तदा गुरणवशासस्य (उ)	१.९६	तदुपश्रुत्य वाक्यार्थम् (उ)	३९.७०	तपसा तु सुतप्तेन लोकान्	२९.१०९
तदा चतुर्युगावस्थे	२३.१०७	तदुपश्रुत्य विप्रास्ते (उ)	४.१४३	तपसा नैव योगेन	२३.९३
तदा चाहं भविष्यामि	२३.२०८	तदुत्वं पर्वते न्यस्तम्	२.१६	तपसा पिप्पला श्रोणी	४५.१००
तदा तत प्राप्यदुष्प्रापम् (उ)	२८.२७	तदृष्ट्वा महदाश्चर्य	२४.३७	तपसा भावितात्मानो	२३.८७
तदा ते वाग्यता मूल्या	३२.९	तदेतत् सर्वदेवानाम्	३४.९५	तपस्तस्यान्तु कुर्वन्त्यां (उ)	६.९५
तदा ते विविक्षुः सर्वे	७.४३	तदेनं सेतुमात्मानं	१५.४	तपस्वी ब्राह्मणश्चैव (उ)	३२.४७
तदा तेषु व्यतीतेषु	६.६७	तदेव कृतस्नं विज्ञेयं (उ)	१३.६८	तपाश्च क्रोधनुश्चैव (उ)	३४.१९०
तदा त्वमपि देवेश	२३.१०१	तदेवाग्नी हुतं ह्यन्नं	१५.१४	तपांसि यानि तप्यन्ते	१०.८६
तदा त्वल्पेन कालेन	५८.७१	तदेषा सान्तरद्वीपा	४१.८६	तपोश्यानः पौलस्त्यः (उ)	३८.९७
तदादित्याहते तेषां	५३.३९	तदेहि स्वस्ति ते वत्स	२५.२६	तपोगृहपतिर्यत्र	२.६
तदा दैवासुरे युद्धे (उ)	३०.७७	तदग्न्यादनवनं	४२.२६	तपोजानिर्भृतिश्चैव (उ)	३८.९०
तदापि मम ते पुत्रा	२३.१५८	तद्दर्शनाद्ययुः स्वर्गं (उ)	४४.२३	तपोनिधिर्गुह गुरुर्नन्दनो	२४.१५५
तदाप्यहं भविष्यामि	२३.१४८	तद्देवा दानवः सर्वे ततः (उ)	३०.८१	तपो ब्रह्म च सत्यञ्च	३७.२५५
तदाम्यहं भविष्यामि	२३.१५६	तद्द्वीपं तादृशिः पूर्णं	४८.१०	तपो भृतां ब्रह्मदिनादि	३.७
तदाप्यहं भविष्यामि	२३.१६१	तबुद्धा नाति पूर्वन्तु (उ)	३५.१२१	तपोमयेन शीलेन सुरभिः (उ)	८.९१
तदाप्यहं भविष्यामि	२३.१६४	तद्ब्रह्म परमं शुद्धम् (उ)	४२.२८	तपो होमस्तथा ध्यानं (उ)	१५.९५
तदाप्यहं भविष्यामि	२३.१८०	तद्भवत्य क्षयं श्राद्धं (उ)	१५.१७	तप्यते तेन दुःखेन	१०.४
तदाप्यहं भविष्यामि	२३.१८४	तद्भाचितस्तेजसा	१४.९	तम एव निरालोकम्	४९.१५९
तदाप्यहं भविष्यामि	२३.१९७	तद्भाविनां तत्र तु	६१.१७८	तमग्नि लोकलोकज्ञ	३४.८५
तदाप्यहं भविष्यामि	२३.२०३	तद्वनं दानवैर्देवगन्धर्वै	३७.२१	तमजं विश्वकर्माणम्	१.६
तदा प्रभूति तत्तीर्थं	६०.७२	तद्वयं श्रोतुमिच्छामः	५४.११	तमति क्रान्तमर्यादाम् (उ)	१.११३
तदा बद्धमिदं ज्ञानं (उ)	३८.२२५	तद्धि गहवतः स्थानम् (उ)	३९.२३१	तमत प्रशिथतं भूयो (उ)	३४.२७
तदाभवत्यनावृष्टि (उ)	३८.१३७	तद्वै भातृशतं तस्य (उ)	२६.२	तमधर्म्मेण संयुक्तं (उ)	२६.८१
तदा भव्यश्च पूज्यश्च	३२.२५	तद्वै रूपमुपेन्द्रस्य (उ)	३६.८४	तमः प्रकाशकोऽग्निस्तु	५.१५
तदारोह रथं शीघ्र (उ)	३४.६६	तन्तथा सफलं कृत्वा	२५.५९	तमः प्रच्छाद्य रजसा	११.१७
तदा लोकहितार्थाय	२३.११२	तन्नप्त्ये चातियशसे	१.८	तमश्च कृष्णसूत्रश्च (उ)	३९.१४९
तदालोहितमांसास्थि	२३.६३	तन्निमित्तं समुत्पन्नं	३४.४१	तमः सत्व गुणावेतौ	५.८
तदावां मम योगेन	२३.१०३	तन्नै मित्रवनं पुण्यं (उ)	४६.४५	तमसाभिवाज्जन्तुः (उ)	४०.५८
तदा व नैमिषेयाणाम	१.१७२	तन्मध्ये सर्वतीर्थानि (उ)	४३.२७	तमसोऽन्ते च विख्यातम्	४९.१६०
तदा वै पृथिवीपालाः (उ)	१.१४६	तन्मात्राणि च	५९.८५	तमागस्कारिणं पूर्वं (उ)	२६.१९४
तदा सूक्ष्मे महोदर्को	५८.४५	तन्वा यदसुरान्	९.२१	तमादाय कुमारन्तु (उ)	२९.४१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तमादिषुसूषं देवहरिं (उ)	२६.१४६	तस्माच्च तमसोद्रिक्तात्	४.४६	तस्मात् प्रातस्तनात्	५०.१७१
तमावसच्चोर्द्ध्वतले	३४.७०	तस्माच्चतुर्यं गावस्थं	२३.७७	तस्मात् स कश्यपस्याथ (उ)	४.१३८
तमाविशत्ततो विष्णु (उ)	२६.४९	तस्माच्च विश्वरूपो	२३.७२	तस्मात् सत्यवती पुत्रं (उ)	२९.८२
तमिन्द्रलोकं लोकस्य	३४.७७	तस्माच्च सर्वं वर्णत्वं	२३.७४	तस्मात् स पितृमान्	३१.४१
तमुग्रतपसं दृष्ट्वा (उ)	२९.६१	तस्माच्चाभिजित: (उ)	३४.११८	तस्मात् स राजा सुद्युम्न: (उ)	२३.२८
तमुवाच महाबाहुर्वसुदेव:	३४.२२३	तस्माच्चैवात्मनो	१२.१४	तस्मात् सर्वप्रयत्नेन	३२.३६
तमुवाचाक्षिप मखं	३०.१३८	तस्माच्चोशनसा (उ)	४१.५९	तस्मात्सुमनसो (उ)	५.१४०
तमुवाञ्जलि कृत्वा	३०.१७४	तस्माच्छरण व्यक्तं (उ)	४१.१७	तस्मात्सुरसपानीया	४८.३९
तमृचीकस्ततो दृष्ट्वा (उ)	२९.७३	तस्माच्छैलान्महापुण्या	४५.५६	तस्मात् सोममयं	२३.८३
तमेव च विकारन्तु (उ)	४०.११३	तस्माच्छ्राद्धानि देयानि (उ)	१०.६६	तस्मात् स्थूलमनर्थानाम् (उ)	४०.६५
तमेव मुक्त्वा भगवान्	२४.१९	तस्मात् कलियुगं प्राप्य	३२.२४	तस्माददतितिमायान्तम् (उ)	१७.८
तो बहुत्वात्ते सर्व्वे	६.४०	तस्मात् किञ्चित मुद्दिश्य	१.१७८	तस्मादपि महाशैलं	४२.२१
तमोमात्रावृतो ब्रह्मा	१०.२	तस्मात् कुन्तीति विख्याता	३४.१५१	तस्मादयो न रुन्धीत	२७.२७
तमोमोहो महामोह:	६.३५	तस्मात् कुर्वीत नो	२७.३०	तस्मादहमुपश्रुत्य	१.४०
तथा परिगतं गर्भ (उ)	११.३२	तस्मात्तदक्षरं सोऽथ	२६.२७	तस्मादहस्तु देवानां	९.१३
तयाभिभूतौ तौ देवो (उ)	३५.१३६	तस्मात्तदा न सुषुव:	८.४२	तस्मादादौ तु कल्पस्य	९.४२
तया स रमते सार्द्धं	१०.१३	तस्मात्तव तमोदीर्घ	३७.९०	तस्मादुत्तरमार्गस्थो	५३.९२
तया सहवसद्राजा (उ)	२९.५	तस्मात्तु अक्षरादेव	३२.३	तस्मादुदकं सूर्यस्य (उ)	३०.१४१
तयोर्ज्येष्ठा तु भगिनी	२८.२	तस्मात्तु ऋषयस्ते	५९.८४	तस्मादृणाधिका सूर्य (उ)	४४.८१
तयो: पुत्राश्च पौत्राश्च	२८.१७	तस्मात्तु नामरूपाणि	८.३४	तस्मादगिरिवरात् प्राप्ता	४२.५१
नयो प्राणोऽन्तरात्मास्य	१५.१२	तस्मात्तु पर्वदर्शे वै	२१.६३	तस्मादगिरिवर प्रस्थात्	३५.२९
तयोर्मध्ये तु विज्ञेयं	३४.३३	तस्मात्तु साम्प्रतै:	५०.६७	तस्माद्बुद्धत्वमापन्नं	२३.७०
तयो: सकाशं यास्यामि (उ)	२३.१०	तस्मात्ते पितर: पुत्रा: (उ)	१०.२७	तस्मादघोरत्वमापन्न	२३.६७
तरङ्गाङ्कितकेशाय	३०.२१६	तस्मात्ते मरुतो देवा: (उ)	६.१३३	तस्माद्द्याच्च (उ)	१०.७६
तरणस्तारकश्चैव	३०.२५४	तस्मात्मना सर्वमिदम्	४.२१	तस्माद्द्याच्छुचि (उ)	१४.२७
तरुणादित्यवर्णाभो	३४.४९	तस्मात् त्रिषवणं योगी	२०.३२	तस्माद् दिव्या प्रभवति	४७.३
तरुणादित्य संङ्काशं (उ)	१८.५४	तस्मात्परित्यजामि (उ)	२६.१९	तस्माद् दिव्या प्रभवति	४७.६
तरुणादित्यसङ्काशा: (उ)	३९.३१७	तस्मात्परिमिता भेदा:	४९.१८०	तस्माद्दिव्यो भरद्वाजो (उ)	३७.१५३
तरुणादित्यसङ्काशै:	३८.९	तस्मात्परेण शैलस्तु	४९.१४४	तस्माद्देवा दिव्यतत्त्वा	९.२०
तरुणादित्यसङ्काशै	३९.१२	तस्मातपुण्य: प्रभवति	४७.११	तस्माद्देवासुरा: सर्वे	९.१४
तला खला च सप्तैता (उ)	३७.१२२	तस्मात्पूर्वं त्वयाचोक्तं	२५.३५	तस्माद्देवास्त्रयो ह्येते (उ)	५.११६
तवापराधो देव्येष (उ)	३७.८१	तस्मात् प्रकृष्टां भूमिश्च	५०.१४२	तस्माध्यानं परं प्राप्य	२२.२६
तवापि पुत्रं कल्याणि (उ)	२९.६७	तस्मात् प्रनष्ट संज्ञा (उ)	३६.३७	तस्माद्ध्यानरतिर्नित्यम्	२०.१२
तवैवेदं हि माहात्म्यं	२४.८६	तस्मात् प्रभवते दिव्या	४७.२१	तस्माद्धिमवतो गङ्गा	४२.३९
तस्तस्ता मातरा क्रुद्धा	३७.१३४	तस्मात् प्रभवते पुण्या	४७.१५	तस्माद्ब्रह्म सन्ति वै	५२.५८
तस्मात् ते पुष्करं (उ)	३२.४५	तस्मात् प्रमथ्यमानाद् (उ)	१.१२१	तस्मादनुमुखा ज्ञेया	५०.२०३
तस्माच्च कश्यपेन (उ)	४.११८	तस्मात् प्रवृत्ता पुण्योदा:	४२.३	तस्माद् ब्रह्म परं सूक्तं	१४.३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तस्माद् भवन्ति संहृष्टा	९.१८	तस्मिन् देशे नराः	४५.४४	तस्य कन्या महाभाग (उ)	२९.८७
तस्माद् भागीरथी	४७.४०	तस्मिन् देशे समाख्याता	४३.३५	तस्य कर्माभिविज्ञातं (उ)	८.११६
तस्माद्युक्तः सदा योगी	१२.१६	तस्मिन् द्वीप नगश्रेष्ठः	४९.६०	तस्य काष्ठाः स्मृता	५१.६२
तस्माद्युक्तः सदायोगी	१०.८९	तस्मिन्नण्डेत्विमेलोका	४.७२	तस्य कुक्षिषु विभ्रान्ता	४२.३३
तस्माद्वयं प्रभवति	४७.६५	तस्मिन्नरपतौ सत्रम्	२.१६	तस्य कन्देन्दु वर्णस्य	५०.५०
तस्माद्वस्त्राणि देयानि (उ)	१८.४०	तस्मिन्नागतने साक्षाद्	३८.५८	तस्य कूटतटे रम्ये	४१.२
तस्माद्विदित्वा सूक्ष्माणि	१२.२७	तस्मिन्निन्द्रवने शुभे	३९.२६	तस्य कूटेऽम्बर नदी	४२.४५
तस्माद्विशिष्यते	५७.१२४	तस्मिन्निपतितं	५१.४९	तस्य कुटे रम्ये हेम्	४८.२७
तस्माद्विश्वत्वमापन्नं	२३.७१	तस्मिन्निपतिते (उ)	२८.११	तस्य केतोः सदा माला	३५.४०
तस्माद्विष्ट मिदं (उ)	५.१३३	तस्मिन्निर्वर्तयेच्छ्राद्धं (उ)	१५.१०९	तस्य क्रोधोद्भवो	९.३३
तस्माद्वैवेस्वतं प्राप्य	३०.५८	तस्मिन्निवसति ब्रह्मा	४९.१३६	तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मी (उ)	५०.७७
तस्मान्तमोऽव्यक्तमयः	५.२१	तस्मिन्नेकार्णवं घोरे (उ)	३८.१७८	तस्य गात्रे जगत्सर्वं (उ)	३६.८३
तस्मान्न दानं यज्ञं वा	५७.११५	तस्मिन् पद्मे भगवती	३७.८	तस्य गेहे समुत्पन्नो (उ)	३०.२१
तस्मान्न देयमुच्छिष्ट-	१७.८५	तस्मिन् पद्मे समुत्पन्नो	३४.४२	तस्य चक्षुः समासाद्य (उ)	२६.१४७
तस्मान्न निश्चयः कार्यः	१२.२९	तस्मिन् प्रयाते दुर्द्धर्षे (उ)	२६.५०	तस्य चारयतः सोऽश्वः (उ)	२६.१४४
तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं	५७.११३	तस्मिन्फलति फल्गवा (उ)	४९.१६	तस्य चाहं प्रवक्ष्यामि	५६.२
तस्मान्न राज्यभाग् (उ)	३१.३९	तस्मिन् यज्ञे महाभागा (उ)	४.६९	तस्य चिन्तयमानस्य	२३.२२
तस्मान्न वाच्यमेकेन	५७.११२	तस्मिन् युग सहस्रान्ते	७.५३	तस्य चिन्तयमानस्य	२६.८
तस्मान्न हिंसाधर्मस्य	५७.११४	तस्मिन् युग सहस्रान्ते (उ)	३८.१८४	तस्य चिन्तयमानस्य	२६.११
तस्मान्नात्येति तद्यज्ञं	५७.१२५	तस्मिन् वने भगवती	३७.१५	तस्य चिन्तयमानस्य	२६.१८
तस्मान्नानुशयः कार्यो	३०.७८	तस्मिन् वर्षे महावृक्षो	४५.९	तस्य चिन्तयमानस्य	२६.२२
तस्मान्नित्यमुपादत्ते-	४९.७९	तस्मिंश्च कारणे (उ)	१.१०२	तस्य चीर्णस्य यत्	३०.२९४
तस्मान्नीलं नगश्रेष्ठं	५२.६७	तस्मिश्चोपरते यो (उ)	२६.१००	तस्य चैकादशरथः (उ)	३३.४३
तस्मान्मघां वै (उ)	१९.२७	तस्मिन् सत्रे गृहपतिः	१.२०	तस्य चैत्ररथी भार्य्या (उ)	२६.७०
तस्मान्मध्यन्दिनात्	५०.१७२	तस्तिस्तस्मिंस्तु तन्मात्रा	४.५२	तस्य चोत्तर कूटेषु	४०.९
तस्मान्माल्यवं शैलं	४२.१९	तस्पिस्तु देव सदृशे (उ)	३०.९०	तस्य तत्क्रोधजं वाक्यं	२४.६२
तस्मान्मुत्रं पुरीषञ्च	२७.२३	तस्मिंस्तु विफले गर्भे (उ)	६.१०७	तस्य तीव्राभवन्मूर्च्छा	२५.६५
तस्मान्मेध्या समाकाक्षा (उ)	१३.४१	तस्मिंस्व विषये (उ)	२६.८५	तस्य ते रश्मयः (उ)	३८.१४३
तस्मिञ्जातेऽथ (उ)	१.१२८	तस्मिंस्त्रेतायुगे	८.१९१	तस्य तत्पापशमनं (उ)	२८.४७
तस्मिञ्जाते महाभागे (उ)	११.३	तस्मिन् स्वायम्भुवाद्यास्तु	५.४७	तस्य तां प्रार्थनां श्रुत्वा	२५.१४
तस्मिन् काले तु भरतो (उ)	३७.१४८	तस्मै दत्तो वरान् (उ)	३२.११	तस्य दरिणभागे च तीर्थं (उ)	४९.८
तस्मिन् क्षीणे क्रतांशेतु	८.७५	तस्मै ब्रह्म ददौ प्रीतो (उ)	१.७९	तस्य दिव्य तनुं विष्णोः (उ)	३५.६५
तस्मिन् गिरौ निवसति	४७.७	तस्मै भगवते कृत्वा	१.३६	तस्य दोषाः प्रकुप्यन्ति	११.३७
तस्थित गिरौ निवसति	४७.१२	तस्मै सत्कृत्य	१७.४८	तस्य द्वीपस्य वै	४८.३०
तस्मिन् गिरौ निवसति	४७.२०	तस्मै साम च पूजाञ्च	१.१८	तस्य धातुविचित्रेषु	३९.२९
तस्मिन् गुहाश्रयाकीर्णे	३९.१०	तस्मै हिरण्यगर्भाय	४.१५	तस्य नाम्ना समाख्यातो	४६.२५
तस्मिन् जनपदाः पुण्या	४९.९९	तस्य ऊर्वोर्ऋषिर्जज्ञे (उ)	४.९२	तस्य नास्ति गतिस्थानं (उ)	१५.१३५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तस्य निः श्वासमानस्य	२१.४७
तस्य निःश्वासवातेन (उ)	२६.३९
तस्य पत्नी गले बद्धा (उ)	२६.८७
तस्य पत्नी हैमवती (उ)	२६.६४
तस्य पर्वत राजस्य	३९.२८
तस्य पर्वसहस्रेऽस्मिन्	३४.६९
तस्य पादे महद्दिव्यं	४७.२४
तस्य पुत्रः कुनालस्तु (उ)	३७.३२७
तस्य पुत्रशतं ह्येव (उ)	३२.५१
तस्य पुत्र शतानीको (उ)	३७.२५२
तस्य पुत्रः सुधन्वा (उ)	३७.२२०
तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा	३१.३८
तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा (उ)	२६.१६६
तस्य पुत्रस्तु विक्रान्तो (उ)	२४.१३
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि	३३.३८
तस्य पुत्रास्तु निर्दग्धा (उ)	२६.५६
तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा (उ)	२६.६१
तस्य पुत्रेऽङ्गश्चैव (उ)	८.२०७
तस्य पुत्रो दशार्हस्तु (उ)	३३.४०
तस्य पुत्रोऽभवद्राजा (उ)	२६.७७
तस्य पुत्रो महातेजा (उ)	२८.४५
तस्य पुष्टिरथैश्वर्य्यम् (उ)	१२.१४
तस्य पूर्व तटे रम्ये	४१.४३
तस्य प्रतीच्यां विज्ञेयः	३४.३५
तस्य प्रध्याय मानस्य (उ)	९.२४
तस्य बाहु सहस्रन्तु (उ)	३२.१५
तस्य बाहु सहस्रस्य (उ)	३२.३७
तस्य बाहु सहस्रेण (उ)	३२.३०
तस्य बीजानि सर्गो	३४.४३
तस्य भानुमतः पुत्रः (उ)	२७.१९
तस्य भानुरथो भाव्यः (उ)	३७.२८०
तस्य भार्ये भगिन्यौ (उ)	३४.४
तस्य भ्राता पितृव्यस्तु (उ)	३७.४८
तस्य मध्येऽतिरात्रस्य (उ)	३४.११९
तस्य मध्ये गिरिवरः	४५.५४
तस्य मध्ये जनपदो	३८.१२
तस्य मध्ये सभारम्या	४१.५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तस्य यच्चापि तत्तेजः (उ)	२८.१५
तस्य या प्रथमा नाम्ना	२७.४९
तस्य ये बिन्दवः	४७.३०
तस्य राज्ञो जगौ गाथां (उ)	३२.१९
तस्य राज्ञो हि सा (उ)	११.६७
तस्य रुद्रकदम्बस्य	३५.२४
तस्य वंशास्तु पञ्चैते (उ)	३१.१०२
तस्य वारिमयं वेगम (उ)	२६.५७
तस्य विष्णु रहञ्चापि	५४.६३
तस्य दृष्ट्या च तोयं (उ)	३८.१७४
तस्य वेश्म सुरेन्द्रस्य (उ)	३९.३००
तस्य वैवस्वतो वक्ष्ये (उ)	२३.२
तस्य वै सर्वतः शृङ्गं	५०.१९१
तस्य व्रतेन भक्तया (उ)	२६.९१
तस्य शाखो विशाखश्च (उ)	३६.२८०
तस्य शिष्यास्तु चत्वारः	६०.६६
तस्य शिष्यः प्रशिष्यैश्च	१.१६३
तस्य शिष्यो भवेद्	६१.३३
तस्य शूरस्य तु सुता (उ)	३४.१३६
तस्य शैलस्य छिद्रेषु	४८.५
तस्य सत्य रतो (उ)	२६.११६
तस्य सत्यव्रतो नाम (उ)	२६.७८
तस्य सा तपसोग्रेण	३३.३५
तस्य स्थानं प्रमाणञ्च (उ)	३९.३२६
तस्याः पुत्रास्तु विख्याता	३४.२४७
तस्याः पृष्ठानुगाश्च (उ)	३९.२७६
तस्याः शरीरं विवृतं (उ)	६.१०२
तस्याः संस्पर्शनाल्लोकाः (उ)	४६.३
तस्याः सत्वरमाणायाः (उ)	३५.१३९
तस्यां कन्याश्चतुर्विंशद्	१०.२३
तस्यां च दृश्यते (उ)	१५.३५
तस्यां जनिष्यते पुत्रे (उ)	२९.६६
तस्यां जातो महायोगी	१.३५
तस्यां देवव्रतं भीष्मं (उ)	३७.२३६
तस्यां धर्मात्समुत्पन्ना (उ)	४५.३
तस्यां पुत्रस्तु वै भर्त्ता (उ)	२९.६४
तस्यां ये तु गणा हि (उ)	४५.४

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तस्यां योगेश्वरो (उ)	१५.९४
तस्यां समभवद् वीरो (उ)	३४.१८४
तस्या अपि विरूपेण (उ)	८.१७६
तस्याग्रे श्वेतवर्णाभः	२२.१७
तस्याञ्च सिद्धौ भ्रष्टायाम	८.७०
तस्याति मात्रामृद्धिं (उ)	१.८०
तस्यात्मनोऽप्यात्म- (उ)	४२.१०९
तस्यात्मा स च ते	३०.४९
तस्यानुजं द्वितीयन्तु (उ)	८.७७
तस्यान्तु शप्तमात्रायां (उ)	३०.२६
तस्यान्वये च महति (उ)	३७.१८२
तस्यान्वये भविष्यन्ति (उ)	३७.३६४
तस्यान्ववाये (उ)	३४.१७
तस्यान्ववायजाः ख्यात (उ)	३७.२१२
तस्यापरे रजतो	४९.८२
तस्यापरेण सुमहान्	४९.८१
तस्यापानं बिना चैव (उ)	३७.८२
तस्यापरे रैवतको	४९.८०
तस्यापि जगतः स्रष्टुः	१.१८४
तस्यापि द्विशती सन्ध्या	३२.५९
तस्यापि पुत्रार्थे (उ)	३४.१२०
तस्यापि शंखलिखितौ (उ)	११.१९
तस्याषा पुत्रा बभूवुर्हि (उ)	२९.४८
तस्याप्रतिम वीर्यस्य	२५.६६
तस्याभिध्यायतः सर्गम्	६.३४
तस्याभिध्यायतस्तत्र	६.३९
तस्यामश्वसुतो जज्ञे (उ)	३४.२५१
तस्यामाधत्त गर्भ (उ)	३४.१२
तस्यामेवाल्पशिष्टायाम्	८.९१
तस्या यत्राश्रमः पुण्यः (उ)	१५.७७
तस्याश्रमे तु तद्गर्भ (उ)	२६.१३२
तस्यासीतुम्बरुसखा (उ)	३४.११७
तस्यासी द्विजयो (उ)	३३.३३
तस्यास्तं समयं सर्वं (उ)	२९.१४
तस्तास्तद्वचनं श्रुत्वा (उ)	६.१३१
तस्यास्तद्वचनं (उ)	६.९०
तस्यास्तु मानसाः पुत्रा	२८.३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तस्यास्तीरे वनं	४७.२२
तस्यास्त्वपि च नीलाया (उ)	८.१७५
तस्या ह्यतिप्रमाणानि	३५.२८
तस्येश्वरस्याप्रतिघम्	५.२४
तस्यैक सप्ततियुगं	१०.१२
तस्यैवं क्रीडमानस्य	२४.१४
तस्यैव चारुमूर्ध्नस्य	४०.५
तस्यैव दक्षिणे कूटे	४०.१६
तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे	४१.२७
तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे	४१.५५
तस्यैवन्तप्यमानस्य	२५.६१
तस्यैव पश्चिमे कूटे	४१.२२
तस्यैव शैलराजस्य	४१.१९
तस्यैवाभ्यन्तरे कूटे	४१.५१
तस्य सर्वमिदं सृष्टं	५५.६४
तस्योद्यतस्तदा (उ)	४.१४०
तस्योपतिष्ठतः (उ)	३४.२२
तस्योपरि जलौघस्य	६.२६
तस्योपरि महारम्या	३८.१३
तस्योद्धरितसस्तत्र (उ)	२८.४
तां दृष्ट्वा सर्व्वलोकश्च (उ)	४५.४८
तां पृथुर्धनुरादाय (उ)	१.१५०
तां प्रविश्य जिताहारो (उ)	४२.६८
तां स्थलीमुपजीवन्ति	३८.२६
तां स्थलीमुपजीवन्ति	३८.६५
ताः पञ्चकोट्यो (उ)	६.४६
ताः पिबन्ति सदा	४९.१८
ताञ्च दृष्ट्वा समुत्पत्ति (उ)	८.१४४
ताडका निहता साज्य (उ)	६.७३
तानि तेषां सनामानि	३३.३३
तानि देवगृहाण्येव	५३.५९
तानि पुत्रशतान्यस्य (उ)	३०.९१
तानि वक्ष्याम्यहं (उ)	१५.३
तानेव लोकान् गर्भस्थः	२४.३०
तान् ज्ञात्वा चेतसा	६०.६८
तान् दृष्ट्वा मन्युम्	३०.१०३
तान् दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य	९.३०

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तान्येते विचरन्त्वद्य (उ)	६.११३
तान्येवात्र प्रलीयन्ते (उ)	३८.१३८
तान्विजित्य मुनीन्	६०.४९
तान् सर्वान् कीर्त्तयिष्यामि	३७.२६३
तापप्रीति विषादानां (उ)	४०.८४
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या	४५.१०२
ताभिरेकत्व भूताभि-	३१.४८
तामिर्धार्यत्ययं लोकान् (उ)	२८.१६
ताभिः स बालार्क निभो (उ)	११.३९
ताभ्यः परे कुमारेण गणा (उ)	८.२२
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य	१०.२६
ताभ्याञ्च यत् कृतं (उ)	८.९६
ताभ्यां करे गृहीतं (उ)	८.११५
ताभ्यां नामाङ्कितो	३५.४१
ताभ्यां पुत्रसहस्राणि (उ)	७.२६
ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि (उ)	४९.४६
ताभ्योऽपरे यक्षगणाः (उ)	८.१५
ताभ्योलोकामिषादश्च (उ)	८.१६५
तामसा नरकाः सर्वे (उ)	३९.१५०
तामसे हरयो नाम (उ)	५.९
तामाहुर्मुनयः सर्वे	१४.११
तामिलेत्यथ होवाच (उ)	२३.८
तामुत्कृत्य तनुं	९.२५
ताम्रवर्णस्य शैलस्य	३८.८
ताम्राभशिखराद्भ्रष्टा	४२.३०
ताम्राभश्च विशाखश्च	३६.२३
तारकाख्यस्य च पुरं	५०.२६
तारकासन्निवेशश्च	४९.१४६
तारकासन्निवेशस्य	५०.७५
ताराग्रहाणां सर्व्वेषाम् (उ)	३९.१३२
तारानक्षत्ररूपाणि	५३.६८
ताराभिमानी विज्ञेयस्तृतीयः	३१.३८
तारारूपाणि सर्वाणि	१.९३
तारितोऽहं त्वया (उ)	४९.७७
तारे तु सरसस्तत्र (उ)	१५.१०७
ताल उत्तरमन्द्राशः (उ)	२४.५६
ताले पतेत्क्षत्रिहता (उ)	३९.१५३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तावच्छिलायां सर्व्वारिण (उ)	४५.५८
तावच्छेषोऽपि (उ)	३९.१०४
तावदेकार्णवो ज्ञेयो (उ)	३८.३३६
तावदेव तु भोजानां (उ)	३७.४४६
तावदेव तु भोजानां	३२.४७
तावदेव स विस्तीर्णः	४९.१०९
तावन्त्येव सहस्राणि (उ)	३४.१२६
तावांश्च विस्तरस्तस्य	४९.१४६
तावुभौ योगधर्माणावारो	९.१००
तावूचतुर्महात्माना	२५.५
तावूचतुस्तदा सर्वास्तान् (उ)	१.१४१
ता वे निकामचारिण्यो	८.५३
तां शप्तुकामो भगवान् (उ)	२२.६६
तां श्रुत्वा व्यथितो वाणीं (उ)	३४.२२२
ताश्चैव संख्यया (उ)	३८.२१७
तासां ज्येष्ठा सती नाम	३०.४१
तासां तत्कालभावित्वात्	८.८३
तासां तेनापचारेण	८.९०
तासां नद्युपनद्यश्च	४७.५९
तासां नद्युपनद्योऽपि	४५.१०९
तासां पुनः प्रवृत्तं तु	८.८२
तासां वृष्ट्युदकानीह	८.१२५
तासां समीपगाश्चान्याः	४९.४२
तासां समुद्रगाश्चान्या	४९.६९
तासां सहस्रशश्चान्या (उ)	३९.२५८
तासाञ्चतुः शता नाडयो	५३.२०
तासान्तु नामधेयानि	४९.९५
तासाभायामविष्कम्भान्	८.९७
तासु देवाः खगा (उ)	२.४४
तासु धर्म व्यवस्थार्थं	५८.१०८
तासु प्रकृतिमत्सूक्ष्म (उ)	३९.२२४
तासु षोडषधात्मानं	२९.१५
तासूपगमयुक्तासु	५८.१०१
तास्तदा प्रतिजग्राह (उ)	४.१५८
तिथीनां पर्व सन्धीनां	३१.४०
तिरोभावयितुं बुद्धिर्	४७.३३
तिरोभूतान्तु तां (उ)	२९.२७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तिरोभूतेषु तेष्विन्द्रो (उ)	४.८१
तिर्यक् स्रोताश्च दृष्ट्वा	६.४४
तिर्य्यक् स्रोतस्तु दृष्ट्वा	६.४१
तिथ्यगूर्द्ध्वमधस्ताच्च (उ)	४०.१०१
तिर्यगं हेतुकमाद्याहुः (उ)	८.२९२
तिर्यग्योनिं न गच्छेच्च (उ)	१५.१२६
तिर्यग्योनीनि सत्वानि (उ)	३८.१९९
तिर्यग्योनौ प्रसूयन्ते (उ)	३९.१८८
तिर्यग्योन्यादिभिर्धर्मैः	२.३६
तिलकल्केन खण्डेन (उ)	४३.३१
तिलमिश्रांस्ततः सक्तून् (उ)	४८.६२
तिलेषु वा यथा तैलम्	५.९
तिलैर्व्रीहियवैर्माषै- (उ)	२१.३
तिलोत्तमाप्सराश्चैव	५२.२२
तिष्ठत्सु तेषु तत्कालम्	७.४१
तिष्ठन्ति चेहये सिद्धाः	५८.१०४
तिष्ठस्वेह महाबाहो (उ)	३४.७३
तिसृणां चैव वृत्तीनां (उ)	२५.४५
तिस्रः कन्याः प्रकीर्त्यन्ते	१.१२७
तिस्रः कन्यास्तु मेनायां (उ)	११.७
तिस्रः कोट्यस्तु	५०.१६३
तीर्णानां सुकृतेनेह	५३.५२
तीर्थन्यनुसरन्धीरः (उ)	४३.३९
तीर्थश्राद्धं प्रयच्छद्भि (उ)	४३.३७
तीर्थानां च फलं (उ)	२१.७६
तीर्थानि यानि सर्व्वाणि (उ)	४९.१७
तीर्थान्यनुसरन् (उ)	१५.१२५
तीर्थान्यपि च सर्व्वारिण (उ)	४५.४५
तीर्थे प्रेतशिलादौ (उ)	४८.१५
तीर्थेषु ये नरा धीराः (उ)	४३.४०
तुतोष नैव रत्नानाम्	२.१४
तुम्बश्च तुम्बबाणश्च (उ)	३४.२४९
तुरीयो निर्हृषुश्चैव	३१.८
तुर्वसुः शुक्रदौहित्रो	१.१४१
तुर्व सोस्तु सुतो (उ)	३७.१
तुलामानैस्तथा (उ)	१५.१००
तुल्यकालन्तु गर्भिण्यौ (उ)	३४.२०७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तुल्यं युग सहस्रस्य नैशम्	६.६
तुल्यं युगलसहस्र	८.१
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानु-	५३.६३
तुल्यां देवविभूत्यास्तु (उ)	३०.५५
तुषारान् बर्बरांश्चीनान्	५८.८३
तुषारान् बर्बरांश्चैव (उ)	३६.१०८
तुषितानान्तु साध्यत्वे (उ)	५.१५
तुषितानाम ते ह्यासन् (उ)	६.३६
तुषितायां समुत्पन्नाः (उ)	१.८
तुष्टस्तेहं शरान् (उ)	३३.७
तुष्टिकामः पुनस्तिष्ये (उ)	२०.५
तुलालाघश्च कोलश्च (उ)	८.३१३
तृण बिन्दु प्रसादेन (उ)	२४.२२
तृणबिन्दुस्तु दक्षाय (उ)	४१.६५
तृतीयं देहि मे नाम	२७.९
तृतीयः पर्वतस्तस्य	४९.३३
तृतीयं पौण्ड्रकं प्रोक्तं (उ)	२४.४२
तृतीयः स तु वाराहः (उ)	३५.७४
तृतीयस्त्वच पर्याय (उ)	१.२३
तृतीय स्वैरथाकारां	४९.५२
तृतीयात्तु मुखात्तस्य	२६.३४
तृतीयायां तथा पादे (उ)	१५.१०७
तृतीयेऽप्यन्तरतटे	३४.८६
तृतीये तु तले ख्यातं	५०.२५
तृतीये द्वापरे चैव	२२.११५
तृतीये ब्रह्मसरसि स्नात्वा (उ)	४९.३७
तृतीयो द्युतिमान्नाम	४९.४९
तृतीयो नारदो नाम	४९.८
तृप्तिमन्तो गणा ह्येते	३१.५
तृषितेन कदाचित्स (उ)	३२.३९
तृष्णाक्षयस्तृतीयस्तु (उ)	४०.९३
ते च प्रकाशबहुलास्तभः	६.५०
ते च यज्ञे सूरैः (उ)	६.३५
से चापि सत्त्रिणः प्रीताः	१.१८
तेजसश्चात्युपध्यानम्	२.३७
तेजसस्तु सुतश्चापि	३३.५४
तेजसा चापि विबुधान् (उ)	३५.१५७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तेजसा चैव दीप्यन्तं	३०.१२४
तेजसा तपसा बुद्ध्या (उ)	३.९
तेजसा तपसा बुद्ध्या (उ)	३८.११४
तेजसा प्रथमोधीमान्	५.२२
तेजसा यशसा चैव (उ)	१५.७
तेजसा यशसा चैव (उ)	१३.११
तेजसा यशसा बुद्ध्या (उ)	५.१२०
तेजसा संहतरसा (उ)	४०.१०
तेजस्त्वभ्यधिकं (उ)	२२.३६
तेजस्मात्रथवो द्वौ (उ)	३८.६३
तेजो दश गुणेनैव	४.७६
तेजो धारयमाणस्य	१२.२१
तेजो मण्डलिनश्चैव (उ)	३४.२४
ते तु खिन्ना विवादेन	५७.१०३
ते तु ज्ञान प्रदातारः (उ)	१०.३४
से तु तद् वचनं श्रुत्वा (उ)	४.१४९
ते तुल्य लक्षणाः सिद्धाः	७.३५
ते तै संयोजकैः सिद्धम्	७.२०
ते दृष्ट्वा तान् स्वयम् (उ)	३८.४८
ते देवैः सह तिष्ठन्ति (उ)	३९.२
तेन चाप्राणि जायन्ते	५१.२३
तेन चालोकितं सर्व	३५.२५
तेन जातेन महता (उ)	११.४२
तेन ता वर्तयन्तिस्म	८.८८
तेन ते मरुतस्तस्य (उ)	३७.१५०
तेन त्वाहं न मोक्ष्यामि (उ)	३७.५३
तेन त्विदानीं बहुधा (उ)	२६.१०१
तेन दत्तानि दनानि (उ)	२९.१०५
तेन दोषेण तेषां ताः	८.१३७
तेन बद्धस्य वै बन्धो (उ)	४०.७६
तेन ब्रह्मर्षि मुख्येभ्यः (उ)	२८.३२
तेन वा तादयो ज्ञेयाः	६.४७
तेन शब्देन महता	५५.५६
तेन सप्तर्षयो युक्ता (उ)	३७.४१६
तेन से मरुतस्तस्य (उ)	३१.३
तेन स्नेहेन भगवान् (उ)	२८.३१
तेनासौ तरणिर्देवः	५१.६८

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तेनाधीतं पुराणतत्	१.७९
ते नामधेयैर्विक्रान्ता	४४.७
तेनासौ वीडितो देवो (उ)	२२.७२
ते नित्यं यमविषये	१४.३१
ते नेयं गौर्महाराज्ञा (उ)	१.९६
तेनेयं पृथिवी कृत्स्ना (उ)	३२.१४
तेनेष्टं राजसूयेन (उ)	५०.७६
तेनैव मुक्ता: प्रत्यूचु:	२५.८७
ते नैवमुक्ते वचने ब्रह्माणं	२५.८
ते नैव मुक्तो भगवान्	२४.५७
ते नैव वचसा पुत्रा (उ)	१०.२६
तेनोक्तास्ते महात्मान	९.७१
तेऽनौत्सुक्यविषादेन	७.२२
तेऽपश्यन् राक्षसं तत्र (उ)	८.११२
तेऽपि तेनैव मार्गेव	२३.११७
तेऽपि तेनैव मार्गेण	२३.१३०
तेऽपि माहेश्वरं योगं	२९.१९०
ते पिबन्ति महापुण्यां	४३.२४
ते पिबन्ति महाभागा:	४४.१६
ते पुत्रान ब्रवीन् प्रीता (उ)	१०.२३
ते भक्तया शंकरं	४३.३८
ते भूय: प्रणता: सर्वे (उ)	१०.१९
तेभ्य: शान्ता च माध्वी	४७.७१
तेभ्यस्ते नियतात्मान: (उ)	१०.२२
तेभ्योऽधस्तात्तु	५३.७२
तेभ्योऽपरे तु ये	५६.७१
ते युक्ता उपपद्यन्ते	७.२३
ते वध्यमाना वीरेण (उ)	२५.१३६
ते वारिणा च संदीप्ता (उ)	३८.१४६
ते वै प्रक्षीणकर्मण:	१०.६८
ते शप्ता ब्रह्मणा (उ)	६.१७
ते शप्ता ब्रह्मणा मूढा (उ)	१०.१८
तेषां कर्माणि धर्माश्च	८.१५९
तेषां कीर्तिमतां (उ)	४१.५०
तेषां क्रम विशेषेण	१०.७२
तेषां गण शतानेका (उ)	८.१६९
तेषां गिरिसहस्राणाम्	३५.३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तेषां चतुर्णां वक्ष्यामि	३६.१
तेषां च प्रभु देवानां (उ)	१.४०
तेषां ज्येष्ठो विकुक्षिश्च (उ)	२६.९
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा	३९.११४
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा (उ)	३९.२९५
तेषां ते तुल्य सामर्थ्या: (उ)	३९.५४
तेषांदर्शन मात्रेण (उ)	४६.४६
तेषां दायनिमित्त वै (उ)	३५.७२
तेषां दुर्योधनो ज्येष्ठ: (उ)	३७.२३९
तेषां द्वादश ते वंशा	९.१०२
तषां द्वीपा कुशद्वीपे	३३.२७
तेषां नद्यश्च सप्तैव	४९.१६
तेषां नामाङ्कितो द्वीप:	३५.४७
तेषां नियोगो द्वीपेषु	१.७३
तेषां पद च प्रधानास्तु (उ)	३३.२१
तेषां पात्र विशेषांश्च (उ)	१.१०१
तेषां पिण्ड प्रदानार्थम् (उ)	४८.१२
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च	२८.२०
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च (उ)	६.६९
तेषां प्रधाननागाश्च (उ)	८.६६
तेषां प्रधानाश्चत्वारो (उ)	६.८३
तेषां प्रसूति वक्ष्यामि (उ)	४.१२
तेषां प्रसूति रन्योपि	४३.१५
तेषां प्रसूति रन्येऽपि	४४.५
तेषां भार्याऽस्ति पुत्रो	१०.४१
तेषां भृगो: कीर्तयिष्ये (उ)	४.७२
तेषां भेदा: प्रभेदाश्च	५८.१८
तेषां मध्ये तु पञ्चानां (उ)	३१.१५
तेषां मध्ये महामेरू:	४६.२०
तेषां मूत्रं पुरीषञ्च	४६.३२
तेषां ये यानि कर्माणि	८.३१
तेषां राजा यमो देवी (उ)	४.५२
तेषां रूपं प्रवक्ष्यामि (उ)	९.५७
तेषां रूपानुरूपैस्तै:	५९.१८
तेषां वंशकर: श्रीमान् (उ)	३७.१७१
तेषां वंशप्रसूतैस्तु	३३.६२
तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि	४९.१३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तेषा विधानमुक्तेन (उ)	३९.२९७
तेषां विपर्ययाश्चैव	५८.१९
तेषां विवृद्धिर्बहुला	४६.३७
तेषां विश्वावसुस्त्वासीद (उ)	१.१८५
तेषां व्यतीते पर्यये (उ)	३७.३८८
तेषां शब्द प्रणादेन	५१.३५
तेषां श्रुत्वा स देवस्तु (उ)	३८.२२९
तेषां सव्यवहारोऽयं	४५.८४
तेषां सनामधेयानि	४४.८
तेषां सप्तर्षय: पूर्वम्	३१.१६
तेषां सप्तर्षयोधर्म	५८.१०६
तेषां सप्त समाख्याता (उ)	१०.५५
तेषां सहस्रशधान्ये	४५.८९
तेषां सहस्रशृङ्गेषु	३५.१७
तेषां सोप्यग्रतो भूत्वा	२१.२
तेषां स्वनामभिर्देशा:	३३.२२
तेषां स्वसार: पञ्चैव (उ)	३४.१३३
तेषां स्वायम्भुवो दक्ष:	३०.३७
तेषाञ्च तमभिप्रायं (उ)	६.१३
तेषाञ्च बुद्धिसंमोहम् (उ)	३०.९८
तेषाञ्च मानिनां	५८.२२
तेषाञ्जनपदा स्फीता (उ)	३७.२४
ते पान्तु ते भयाक्रान्ता (घ)	२६.३
तेषान्तु नाम धेयानि	४३.१८
तेषान्तु भक्ष्यमाणानां (उ)	४.८३
तेषान्तु मानसी कन्या ने (उ)	११.५
तेषान्तु युध्यमानानां	२५.४१
तेषामत्यन्तविच्छेद	६१.१७४
तेषामनुचरा ये च	७.१९
तेषामन्तर विषकम्भा	१.७८
तेषामन्तर विषकम्भो	४९.५१
तेषामपि हि देवानां (उ)	५.६२
तेषामभिमुखो दद्याद् (उ)	१३.३७
तेषामाप्यायनं धूम:	५१.४३
तेषामिन्द्रस्तथा विद्वान् (उ)	३७.७३
तेषामिन्द्रो भविष्यन्तु (उ)	३८.२१
तेषामिन्द्रो वृषोनाम (उ)	३८.८१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
तेषामुदीर्गवीर्याणां (उ)	८.२५
तेषामेडेविडो राजा (उ)	९.५४
तेषु तेषु तु पात्रेषु (उ)	१.९८
तेषुदर्भेसु य पिण्डान् (उ)	१५.१०
तेषु सर्वगतश्चैव	३२.४
तेष्वतीता: समानां (उ)	३७.४४७
तीतास्तु राजानो	३.२४८
तेष्वेव जायते तासाम्	८.८७
सर्वे पापानिर्मुक्ता	२२.३३
सर्वे पापनिर्मुक्ता	२२.१९
ते सर्वे पापमुत्सृज्य	२३.१९
ते सर्व प्रणवात्मानो (उ)	३९.८२
ते सुखप्रीति बहुला	६.४६
ते हृष्टमनस: सर्वे (उ)	३०.८२
तै: कल्पगासिभि: सार्द्धम्	७.२४
तैक्ष्ण्यमग्नौ प्रभा चन्द्रे	२४.१५३
तेजस प्रकृतिश्चोक्त:	२.३९
तैतिक्षुरभवद्राजा (उ)	३७.२५
तैरियं पृथिवी सर्वा (उ)	३८.३४
तैरियं पृथिवी सर्वा	५.४८
तैरियं पृथिवी सर्वा (उ)	३१.९०
तैरुक्ता सा तु मामैषी (उ)	११.५३
तैरैव मुक्तो भगवान् रुद्र	२५.८५
तैर्लब्धं रुद्रसालौक्यं (उ)	३९.३१४
तैलपी डाकरं चक्रं	५२.८८
तैर्विमिश्रा जनपदा	४४.६
तैर्विमिश्रा जनपद:	४३.१६
तैश्चापि शृङ्गवान्नाम	५०.१९०
तैसार्द्धं स महावीर्य: (उ)	३९.२८१
तैस्तथ्यकारिभिर्युक्तौ: (उ)	३९.६
तैस्तै: प्रीता: प्रयच्छन्ति (उ)	१६.७८
तोयते जो मय: शुभ्र:	५२.७२
तोया चैव महागौरी	४५.१०३
तोपयामास मेघावी	१.१७
तोषला: कोसलाश्चैव	४५.१३३
तौ कामरूपिणौघोरौ (उ)	८.१०५
तो तु तं पितरं दृष्ट्वा (उ)	८.८५
त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो	१७.४
त्रयस्तस्याभवन्	६१.३
त्रयस्तु कृथुमे:	६१.३८
त्रयस्त्रिदेवतानां	३०.१५९
त्रयस्त्रिंशधिकाश्चान्ये	५०.१३२
त्रयाणां देवमुख्यानां	४१.६३
त्रयीजगाम शारदां (उ)	४२.६९
त्रयी वार्ता दण्डनीति	५६.३६
त्रयी विद्या दण्डनीति	४९.११७
त्रयीं विद्यां ब्रह्मचर्यं (उ)	६.२८
त्रयोऽन्ये बुद्धि पूर्वास्तु	१.५७
त्रयोदश सहस्राणि	४५,२०
त्रयोदशार्द्धमर्द्धमर्द्धेन	५०.१४५
त्रयोदशान्मुखात्तस्य	२६.४५
त्रयोदशार्द्धमर्द्धेन	५०.१४७
त्रयोदशार्द्धमृक्षाणाम्	५०.१४३
त्रयोदशे तु पर्याये (उ)	३८.१००
त्रयोदशे पुन: प्राप्ते	२३.१४७
त्रयोदशो भ्रमिशिरा: (उ)	८.३
यो वर्णास्त्रयो लोका: (उ)	३५.३३
त्रयोविंशतिम: कल्पो	२१.४८
त्रयोविंशति साहसं (उ)	४२.८
त्रयोविंशत्य शीतिस्तु (उ)	२५.२८
त्रयोविंशत्समा राजा (उ)	३७.३४३
त्रय्यारुणिं पुष्करिणं (उ)	३७.१५९
त्रसदश्वोऽनरण्यस्य (उ)	२६.७६
त्रसरेणवश्च ये (उ)	३९.१२०
त्रसु: सुदयितं पुत्रं (उ)	३७.१२८
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो	५३.६२
त्रिगुणाद्रजसौद्रिक्तान्	४.४५
त्रिचकोभयपार्श्वस्थो	५२.५०
त्रिदशानामगम्यन्तु	४९.१६१
त्रिदशानां गणा: प्रोक्ता (उ)	३८.१०२
त्रिधायद्वर्तते लोके	५.३१
त्रिधाविभज्य स्वात्मानम्	५.३६
त्रिपादं सुमहाकायं (उ)	९.३६
त्रिपुरघ्नाय दीप्ताय (उ)	३५.१८३
त्रिपुरनाय वन्द्याय	५४.७०
त्रिमात्रं त्रिपदं चैव त्रियोगं	२६.२६
त्रियोजन शतायामा	३७.२
त्रिवर्ष परमं कालमुषित:	५७.१०१
त्रिविक्रमञ्च ब्रह्माणं (उ)	४६.४१
त्रिविध: सर्वभूतानाम्	१.१४७
त्रिविधानाञ्च दुर्गाणाम्	८.१०७
त्रिंशच्च मानुषा मासा:	५७.१०
त्रिंशत्कला मुहूर्तस्य (उ)	३८.२१८
त्रिंशदेव त्वहोरात्रं	५०.१८६
त्रिंशद्योजन विस्तीर्णा	३८.२४
त्रिंशन्मुहूर्तानेबाहुर-	५०.१४९
त्रिशङ्कनेत्रं सुमुखं (उ)	८.३२१
त्रिशतञ्च सहस्राणि	३४.५९
त्रिशिरा दूषणश्चैव (उ)	९.५०
त्रिशिरा विश्वरूपस्तु (उ)	४.८५
त्रिशिरा: शतदंष्ट्रश्च (उ)	८.१६१
त्रिशुलं विद्युताभासम (उ)	३९.२७१
त्रिशृङ्ग तट विप्रटा	४२.७३
त्रिषु कालेषु मरीचि: (उ)	५.१२२
त्रिषु तेषु पदेष्वेव (उ)	४६.४४
त्रिसामा ऋतुकुल्या	४५.१०६
त्रिसाहस्रन्तु सगणं (उ)	२६.५
त्रीणि वर्षशतान्येव	५७.१६
त्रीणि वर्ष सहस्राणि	५७.१७
त्रीणि शृङ्गवत: शृङ्गाण्यु	४५.१०
त्रीण्यपत्यानि संज्ञायां (उ)	२२.३७
त्रीण्येव तु सहस्राणि	४८.२
त्रिण्येव नियुतान्येव	५७.२०
त्रीन् पिण्डानानु पूर्व्येण (उ)	१३.२५
त्रींल्लोकान्धारयन्तीम् (उ)	९.९२
त्रेता त्रीणि सहस्राणि	५७.२५
त्रेता दीनि सहस्राणि	३२.५७
त्रेता दो संहिता वेदा:	५७.४७
त्रेता युगमुखे पूर्वमासन्	३१.३
त्रेता युग मुखे राजा (उ)	९.३१
त्रेता युग स्वभावास्तु	५७.८५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
त्रेतायुगे चतुर्विंशे (उ)	९.४८
त्रेता युगे चाप कर्षाद्	१.१००
त्रेता युगे तु दशमे (उ)	३६.८८
त्रेता युगे तु प्रथमे (उ)	१.७८
लोक्यं विजितं सर्वं (उ)	३५.१०३
लोक्य गोप्ता गोविन्दो	३०.२६१
त्रैलोक्यदर्शनञ्चैव (उ)	३७.३१
त्रैलोक्य मेतद् (उ)	३९.१३८
त्रैलोक्यैयुक्तैर्व्याहारैः (उ)	३.१९
त्रैलोक्य स्थितकालो	५०.२२०
त्रैलोक्यस्य भवान् (उ)	३६.७६
त्रैलोक्यस्येश्वरा	५४.५२
त्रैलोक्यस्यैव उत्सेधो (उ)	३९.१३६
त्रैलोक्ये यानि सत्त्वानि (उ)	३.८
त्रैलोक्ये यानि	३८.२३८
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां	१३.१०
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां	१३.११
त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु	१३.१३
त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु	१३.१४
त्रैलोक्योत्सादि	५४.८६
त्रैवर्ण्ये विहिते स्थाने	१५.१२४
त्रैवेदिकां कथाञ्चापि	१.६५
त्र्यक्ष स्त्रिशूलपाणिश्च	५४.१०८
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय	३०.१८९
त्वं कर्त्ता सर्वभूतानां	५५.३७
त्वचोऽवधाते तां वाचि	११.४५
त्वञ्च मे हृदयं विष्णो	२५.२५
त्वञ्च राज्यं चिरं (उ)	४९.७८
त्वञ्च राज्यं चिरं (उ)	५०.१९
त्वञ्चोत्पतिव्रता (उ)	४५.१३
त्वत्तः प्रसूता देवेश	५५.४२
त्वन्तु श्रेष्ठा वरिष्ठा	३०.४६
त्वमग्ने रुद्रो असुरो	२१.६६
त्वमत्र मन्त्रकर्ता	३०.२२५
त्वमस्मांस्तृणवत्	६०.५२
त्वमेव चेज्यसे यस्माद्	३०.२८२
त्वमेव यज्ञो नियमः	५४.९९
त्वमेव विष्णुश्चतुरा	५४.९८
त्वमेव सूक्ष्मस्य	५४.१००
एवं गदी त्वं शरी	३०.२३६
त्वं त्विदानी यथेष्टत्वं (उ)	३४.२२६
त्वं देवानामपि ज्येष्ठ	१५.९
त्वं धाता त्वञ्च कर्त्ता	५५.७
त्वं वंशस्त्वं चकार	५५.३३
त्वं यदो प्रतिपद्यस्व (उ)	३१.३०
त्वया देहे पवित्रत्वं (उ)	४४.२९
त्वया पृष्टा वयं (उ)	३६.४५
त्वया यद्दत्तमखिलं (उ)	४४.८२
त्वया सङ्कीर्त्यमानाऽहं	२५.४७
त्वयासूत महाबुद्धिः	१.२१
त्वयि निष्पन्दमाने	५४.१४
त्वयि योगश्च सांख्य	२३.४७
त्वयेह भवने मह्यं (उ)	२२.४२
त्वर्यवोत्पादितो देहः (उ)	४४.३१
त्वयोत्थाय हि कर्तव्यं (उ)	४५.२९
त्वष्टा वरुत्री द्वावेतौ (उ)	४.७७
त्वष्टाविराजो रूपाणां (उ)	२२.१७
त्वष्टा व वार्यमाणस्तु (उ)	१६.६
त्वां निहत्याद्य वाणेन (उ)	१.१६२
त्वामृतेऽन्यो महादेव	५४.८८
त्विषिमान्धर्म पुत्रस्तु	५३.८०
त्विषिमान् धर्म्म पुत्रस्तु	५३.१०५
द	
दंष्ट्र कराल विकता (उ)	८.१७७
दंष्ट्रा करालं विभ्रान्तं	३०.१२६
दंष्ट्रायान्तु वाराहेण (उ)	३५.७९
दंष्ट्रिणो नाविनश्चैव (उ)	८.२४३
दक्ष इत्येव नाम्ना त्वं	३०.६१
दक्ष कन्या तवेयं व	३८.४४
दक्ष कस्य तु पुत्रोऽस्य (उ)	१.७३
दक्ष गन्ध विनगराः	४१.२०
दक्ष दक्ष न कर्त्तव्यो	३०.२८८
दक्ष पुत्रस्य पुत्रास्ते (उ)	३८.६०
दक्ष पुत्राश्च हर्यश्वा (उ)	४.१४६
दक्षः प्रजापतिश्चैव	३०.१५८
दक्ष प्रोक्तं स्तवञ्चापि	३०.३०४
दक्ष यज्ञ विनाशार्थं	३०.१६३
दक्षस्य कन्या धर्मिष्ठा (उ)	३८.४२
दक्षस्य कीर्त्यते जन्म	१.११४
दक्षस्य कीर्त्यते सर्गो	१.११७
दक्षस्य च ऋषीणाञ्च (उ)	४.९
दक्षस्य चापि दौहित्राः	१.११७
दक्षस्य दुहिता ख्याता (उ)	१४.३
दक्षस्य शापः सत्यर्थे	१.७१
दक्षस्यासन् सुता	३०.४०
दक्षां शाकवतीचैव	४४.१९
दक्षाद्यान मानसान्	२५.८३
दक्षाय च जघन्याय (उ)	३५.१८८
दक्षिणस्यान्तु पाणिभ्यां (उ)	१३.२७
दक्षिणस्यापि शैलस्य	३५.२६
दक्षिणाद्विनिवृत्तौऽसौ	५०.१२५
दक्षिणापरदेश्यानां	५०.९७
दक्षिणामददत्सोम (उ)	२८.२४
दक्षिणायन मार्गस्थो	५३.९५
दक्षिणावभृथायैव (उ)	३५.१९७
दक्षिणा हृदयो योगी	६.२१
दक्षिणेऽपि प्रपन्ना	४२.२५
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ	४१.४८
दक्षिणेन च हस्तेन (उ)	१६.६२
दक्षिणेन तु श्वेतस्य	४५.२
दक्षिणेन पुनर्मे रोर्मा - (उ)	५०.८८
दक्षिणे नागवीथ्यायां	५०.१४६
दक्षिणेनापि वर्षस्य	४८.१
दक्षिणे प्रक्रमे सूर्यः	५०.९३
दक्षिणे प्रचक्रमे चैव	५०.१४३
दक्षिणे मानसे चैव तीर्थं- (उ)	४९.९
दक्षिणे मानसे स्नानं (उ)	४९.१०
दक्षेण जनिताः पुत्राः (उ)	३८.२७
दक्षो जज्ञे महातेजाः (उ)	२.३९
दक्षो दक्षपतिरचैव	३०.१५६
दक्षो नाम महाभागो	३०.११०

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
दग्धदेहास्ततस्ते वै	७.४४
दण्डं प्रदर्शयेत (उ)	४३.२३
दण्डधरः सदण्डश्च	३०.२६५
दण्ड पाणे निरामित्रो (उ)	३७.२७३
दण्डिमासक्तकर्णाय	३०.१९०
दण्डी च मेखली	८.१७४
दत्तं चापि तथा श्राद्धम (उ)	१५.१०६
दत्तन्तेषान्तु भीतानां (उ)	३५.१२८
दत्तस्ते न निराकर्तुं (उ)	४५.४०
दत्तात्रेयस्तस्य ज्येष्ठो (उ)	९.७६
दत्त्वा ययौ ब्रह्मलोकं (उ)	४४.७७
दत्त्वैतान् मोदते स्वर्गे (उ)	१८.३२
दत्त्वैनं नन्दगोपस्य (उ)	३४.२१०
ददाति बादराश्चान्ये (उ)	२९.९७
ददामीत्येव तं (उ)	३६.७७
ददौ स दश धर्माय (उ)	२.४१
दद्यात् पितृभ्यो (उ)	१८.१६
दद्युः श्राद्धं सपिण्डानां (उ)	४८.१९
दधार तां गदामादौ (उ)	४७.१२
दधिकुल्यामधु कुल्या (उ)	४७.१७
दधिगव्यमसंसृष्टं (उ)	१८.४४
दधिपञ्च मुखं (उ)	४४.३७
दध्नः तद्दाश्चान्याः	४५.२८
दध्ना लवण मिश्रेण (उ)	३७.७७
दनायुषायाः पुत्रास्तु (उ)	७.३०
दनायुषायाः शीलं (उ)	८.९२
दमघोषस्य राजर्षे (उ)	३४.१५८
दमः शमः सत्यकल्मषत्वं	१६.२२
दमो दाता विदः सोमो (उ)	३८.१८
दरदांश्च सकांश्मीरान् (उ)	४७.४५
दर्भान्पिण्डास्तथा (उ)	१३.१७
दर्शश्च पौर्णमासश्च	२१.६४
दर्शयेतामथान्योन्यं	५६.४९
दर्शश्च पौर्णमासश्च (उ)	५.६
दर्शश्च पौर्णमासश्च (उ)	६.५
दर्शानं द्रव्यभूतो (उ)	५.१४६
दर्शार्थमाहतान् (उ)	३७.४९
दर्शितं यदनेनैव ज्ञानं	६१.११५
दशकृत्व इवा वृत्या	७.२७
दशचापि पुनर्दद्याद् (उ)	१६.६३
दश द्वादश सप्ताष्टौ	३८.७६
दशपञ्च मुहूर्तं वै	५०.१७४
दशभागाधिकाभिश्च	५०.८१
दशभिः पञ्चभिश्चैव	५६.५७
दशभिस्तु कृशैर्दित्ये	५२.५१
दशाभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो	३०.७५
दशमातु मुखात्तस्य	२६.४२
दशमे त्वथ पर्याये (उ)	३८.७०
दशमे द्वापरे व्यासः	२३.१३६
दशयज्ञ सहस्राणि (उ)	३२.१६
दशयोजन विस्तीर्णम्	६.१२
दशयोजन साहस्र	३५.१२
दशयोजन साहस्र	४५.६२
दशयोजन साहस्रम्	५०.१०
दशयोजन साहस्रो	५१.५६
दशलक्षण संयुक्तो	३०.२३७
दशवर्षसहस्राणि	४२.१०
दश वर्ष सहस्राणि	४३.३७
दशवर्षसहस्रारिण	४५.५
दशवर्षसहस्राणि	४६.५
दशवर्षसहस्राणि	४९.११३
दशवर्षसहस्राणि (उ)	४.१२३
दश वर्ष सहस्राणि (उ)	१५.११६
दशवर्षं सहस्राणि (उ)	२६.१९२
दश स्वसृभ्यो भार्याभ्यः	३४.५३
दशात्मके ये विषये	५९.२०
दशात्मके यो विषये	५९.४८
दशाधिक्येन चान्योन्यं	४९.१५२
दशाश्वमेधिकं हंसतीर्थे (उ)	५०.६०
दशाश्वमेधिके तीर्थे	१५.४५
दशाश्वमेधिके (उ)	५०.४१
दशैव महतां भागा (उ)	३९.११६
दशोत्तराणि पञ्चैव	४९.१३०
दशोभ्योस्तु प्रचेतोभ्यः	१.११४
दस्युधर्म्म गतो दृष्ट्वा (उ)	२६.१०५
दाक्षायणीषुचाप्यूर्ध्वं	१.६२
दाक्षिणात्यश्च वै	४५.१२८
दाडिमानाञ्च स्वादूनाम-	३८.६९
दाता धर्मरतो नित्यं (उ)	३३.४२
दाता यज्वा च शूरश्च (उ)	३४.१०९
दातार मुपतिष्ठन्ति (उ)	१९.२६
दानं त्रिविधमित्येतत्	५९.५०
दानं प्रतिग्रहो होतो (उ)	१७.८८
दान सत्यन्तपोऽलोभो	५९.३७
दानवाश्चासुराश्चैव (उ)	६.६३
दानाच्छ्रेयांस्तथा (उ)	२९.११०
दानानि परमो धर्मः (उ)	१८.६१
दानानि ब्रह्मचर्यञ्च (उ)	१७.४५
दानान्येतानि विप्रेभ्यो (उ)	१८.३५
दायादाश्चापि ग्राग्रस्य	३७.१५७
दायादास्तस्य च (उ)	३७.१०८
दायादस्तस्य चाप्य (उ)	३७.११८
दाराऽग्नयोऽथातिथेय	८.१७३
दाराग्निहोत्रसंयोगम्	५७.४०
दाराग्निहोत्रसंयोगे (उ)	६.८
दारांस्तु तस्य विषये (उ)	२६.८६
दारुणन्तु तयोर्भावं	२५.३१
दारुणाभिजना क्रूराः (उ)	७.२१
दारुणाहि रुते मासा (उ)	४.५९
दावदाहे मृता ये च (उ)	४८.३८
दिग्गजांस्तांश्च (उ)	८.२०८
दितिर्विनष्ट पुत्रा (उ)	६.८६
दिनक्रतुः सुधर्मा च (उ)	१.२८
दिनं सूर्यप्रकाशाख्यं	५०.११८
दिलीपसूनुः प्रतिपस्तस्य	३७.२२९
दिलीपस्तस्य पुत्रोऽभूत (उ)	२६.१८१
दिवं भूमिञ्च विष्टभ्य	५५.२०
दिव सार्द्धन राज्यर्द्धं	५६.४४
दिवाकरः स्मृतस्तस्मात्	५३.११७
दिवाकरस्य भविता (उ)	३७.२७९
दिवा पर्वण्यमावास्यां	५६.४७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
दिवा वा यदि वा रात्री	१६.३०
दिवा स्कन्नस्य विप्रस्य	१८.१५
दिवा हुताशन प्राणा: (उ)	३५.४४
दिविच्छायापथो	४७.२८
दिविन्दात्परतश्चापि	४९.६२
दिवोदासश्च राजर्षि (उ)	३७.१९६
दिवोदासस्तु राजर्षि (उ)	३०.२८
दिवोदासेन तां ज्ञात्वा (उ)	३०.३६
दिवौकस: स एष (उ)	१.५८
दिव्यन्तरिक्षभूमिष्ठा (उ)	४८.४८
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु	२१.४१
दिव्य वर्ष सहस्राणां (उ)	४७.६
दिव्याक्षत्दृढज्ञोऽसौ	२६.१७३
दिव्यानां पार्थिवानाञ्च	५३.५३
दिव्यान्नपान भक्षाणां	३०.१५१
दिव्यां मेरुगुहां पुण्यं	२३.२१०
दिव्ये च मानुषे चैव (उ)	४०.८३
दिव्येयं चायता तेन (उ)	२४.६५
दिव्ये रात्र्यहनी वर्ष	५७.१३
दिव्ये वर्ष सहस्रन्तु (उ)	३७.४२४
दिव्यं गन्धै: प्रसिञ्चन्ति	१८.१३
दिव्यै: पुष्पैश्च तं (उ)	२६.५१
दिव्यैश्चन्दन वृक्षैश्च (उ)	१५.२३
दिशि दक्षिण पूर्वस्यां (उ)	१२.७
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां (उ)	३१.८८
दिशो दश भुजास्ते वै	२४.१५०
दिश्युत्तरस्यां मेरोस्तु	५०.९०
दीक्षामयं सकवचं (उ)	३४.८०
दीक्षितस्य तदसत्रे	२१.९९
दीक्षितास्ते यथाशास्त्रम्	१.१२
दीक्षितो ब्रह्मणश्चन्द्र	२७.१९
दीक्षिष्यमाणैरस्माभि	१.२४
दीपं पितृभ्य: प्रयत: (उ)	१३.१०
दीपेषु तेषु वर्षाणि	८.१४
दीप्ता दीप्तिरिला देवी (उ)	४.२९
दीप्तानां चित्रवेषाणां	३८.१७
दीप्ताभि: सन्तताभिश्च (उ)	३८.१४८

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
दीप्तिमेधा यशोमेधा: (उ)	१.५२
दीप्तैरनेकैरुग्रास्यै:	४०.२३
दीर्घकालेन महता	३०.१७७
दीर्घबाहु: सुतस्तस्य (उ)	२६.१८२
दीर्घशृङ्गैक शृङ्गाय	२४.११०
दीर्घश्मश्रुधरात्मानो	४८.८
दीर्घायुषौऽति शुष्काश्च	५६.७३
दीर्घायुषो मन्त्रकृत	६१.९४
दु:ख प्रचारतोऽल्पायु-	५८.६८
दु:खी भवेति तद्भीतो (उ)	५०.४६
दु:खेनाभिप्लुतानाञ्च	५८.६३
दुदोह वै मतिं तस्य	१.२१
दुन्दुभ्यायैकंपादाय (उ)	३५.१७२
दुरध्वं कुरुतेयस्तु (उ)	३९.१५८
दुरापं दीर्घसत्रं वै (उ)	३७.२५५
दूरिष्टैर्दुरधीतैश्च	५८.३६
दुर्गन्धि फेमिलं चैव (उ)	१६.१६
दुर्गन्धश्चैव नीलश्च (उ)	१३.६३
दूर्चाय महते चैव रोधाय	२४.१२८
दुर्दुमं दमनं शुभ्रं (उ)	३४.१६३
दुर्बला विषयग्लाना (उ)	३७.४०४
दुर्मदश्चाभिभूश्च (उ)	३४.१६९
दुर्लभ त्वं च मोक्षस्य	१.१३४
दुर्वत्तस्त्वं त्यजमेव (उ)	३७.६२
दुर्वारणो दुर्विषदो	३०.२६२
दुष्कृतस्य पौरवं (उ)	३७.५
दुष्प्रसह्यममित्राणां	४०.११
दुहितृत्वञ्च मे गच्छ (उ)	१.१६४
दृढपूर्वश्रुतत्वाच्च (उ)	५.१४४
दृढादृढ़ं परिवृढगाढ (उ)	४७.२९
दृश्यन्ते काञ्चना यूषा (उ)	१५.६३
दृश्यन्ते तानि तान्येव (उ)	३८.२०५
दृश्यन्ते नाभि दृश्यन्ते	५८.७०
दृश्यन्ते हि महात्मान	१२.२८
दृषद्वतीसुतश्चापि (उ)	२९.९९
दृषद्वतीसुतश्चापि (उ)	३७.२१
दृष्टं चैवानुभेयञ्च (उ)	४१.१०

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
दृष्ट्वा तं रक्तगौरगं	५४.५१
दृष्ट्वा तमति विश्वस्तम्	१.११
दृष्ट्वा ताम शुचिं शक्र: (उ)	६.१०१
दृष्ट्वा तु पुरुषं दिव्यं	१४.६
दृष्ट्वा तु राजा तं (उ)	२९.३३
दृष्ट्वान् स्वर्ग सोपानं (उ)	१५.९
दृष्ट्वा पुन: प्रजाश्चापि	९.१७
दृष्ट्वा प्रभूतमर्थं	५९.४०
दृष्ट्वा प्रयोजनं सर्व (उ)	२.३२
दृष्ट्वा रुदन्त सहसा	२७.५
दृष्ट्वा सञ्जीवितामेवं (उ)	३५.१४७
दृष्ट्वा सुरगणान्	५४.५०
दृष्ट्वा सुरगणान् (उ)	३५.१२२
दृष्ट्वा सुरास्तु	९.७
दृष्ट्वा सुविस्मितमना (उ)	४२.८७
दृष्ट्वा हिरण्यमयं सर्वम्	१.१७१
दृष्ट्वोपायं तत: सोऽथ (उ)	८.१३५
दृष्टिघ्नाय नमश्चैव	२४.१२३
दृष्टिमात्रेण सम्पूतान् (उ)	५०.५८
देयं दानं षोडशकं (उ)	४९.९५
देयं सप्तहदे श्राद्धं (उ)	१५.५६
देयमोङ्कारपठनै: (उ)	१५.६८
देवकश्चोग्रसेनश्च (उ)	३४.१२८
देवकार्य्यादपि सदा (उ)	११.९७
देवकूटस्य सर्वस्य	४३.१२
देवक्यां वसुदेवेन (उ)	३४.१९३
देवक्षत्रोऽभवद्राजा	३३.४४
देवतानामवध्यस्तु	२६.३६
देवतानामिहांशेन (उ)	५.१३५
देवतानामृषीणाञ्च	१.२६
देवतानामृषीणांच	१.५३
देवतानामृषीणाञ्च	१.१०७
देवतानाममुषीणाञ्च	१.१२६
देवतानाममृषीणाञ्च	६१.१३८
देवतानाभ्य: पितृभ्यश्च (उ)	१२.१६
देवतास्तु तदोद्विग्ना	३२.८
देवतिर्यङ्मनुष्याणाम्	१.१०४

शलोकारम्भ	अध्याय.शलोक
देवत्वं पितृ वाक्येन	१.१२२
देवत्वञ्च पितृत्वञ्च	३१.५८
देवदत्ता: सुतास्ताभ्यां (उ)	३७.२४०
देवदानवगन्धर्वा	१२.१०
देवदानव गन्धर्वा	३५.३१
देवदानवगन्धर्वा: (उ)	८.२३०
देवदानवगन्धर्व:	३६.९
देवदानवगन्धर्वैर्यक्ष	४१.१७
देवदानव गोप्ता च	३०.१८४
देवदुन्दुभयो नेदुराकाशे (उ)	११.३५
देवदेव कृते यागे (उ)	४४.५१
देवदेवा महात्मानो (उ)	१४.२४
देवदेवो महातेजा: (उ)	३४.१९२
देवनद्यां गोप्रचारेश्राद्धद: (उ)	५०.३६
देवनात् स समधुर्जज्ञे (उ)	३३.४५
देवभक्ता महात्मानो	५४.४
देवभूमिस्ततोऽन्यश्च (उ)	३७.३३८
देव भ्राजं महाभ्राजं	४२.४६
देवमानुषयोर्नेता (उ)	३५.१०
देवमित्रस्तु शाकल्यो	६०.३२
देवमित्रस्तु शाकल्य	६०.६३
देवराज्यं बलेर्भाव्यं (उ)	३६.५५
देवर्षय: सुतस्तेषां	६१.८३
देवर्षयस्तथान्ये च	६१.९०
देवर्षेगन्धर्वयुत:	४९.७७
देवर्षि भवने शृङ्गे (उ)	१५.२२
देवर्षीणाञ्जनपितृंश्च (उ)	१२.२५
देवलोक प्रतिष्ठाश्च	६१.८८
देवलोकाच्चयुता:	४६.९
देवलोकाच्च्युता: सर्वे	४६.१४
देवलोकाच्च्युतास्तत्र	४५.१६
देवसेनापतिस्त्वेवं (उ)	११.४९
देवसेनो महाबाहु-	३९.३३
देवस्थानेषु जायन्ते	५९.१७
देवस्य महतो यज्ञे	१.११६
देवस्य महतो यज्ञे (उ)	४.२१
देवस्यानुचरास्तत्र	३०.९१

शलोकारम्भ	अध्याय.शलोक
देवाकार्यादपि सूनौ:	२१.८५
देवाचार्यस्य महतो (उ)	२२.२०
देवाज्ञया परिषदा (उ)	३०.३०
देवातिथेस्तु दायाद (उ)	३७.२२८
देवादींस्तपयित्वाथ (उ)	४८.७
देवानतर्पयद्यज्ञै: (उ)	३१.६४
देवांचां तुल्यधर्माणां (उ)	८.१९४
देवानां दानवानञ्च (उ)	२.४६
देवानां दानवानाञ्च (उ)	५.१
देवाश्च पितरश्चैव	८.१९३
देवानां परमं गुह्यम् (उ)	२१.५६
देवानामपि देवश्च	३४.१२९
देवानामसुराणाञ्च	१.१३८
देवानां हव्यवाहोऽग्नि:	२८.५
देवानुचेऽथ रुद्राक्ष- (उ)	४४.४७
देवान् पितृंश्च (उ)	३७.३७५
देवान्वये देवता (उ)	३९.५८
देवान सुमनसो विद्धि (उ)	३८.९२
देवान् सृष्ट्वाथ	९.१०
देवा: पादैर्लक्षयित्वा (उ)	४४.४८
देवापि: पौरवो राजा	३२.३९
देवापि पौरवो राजा (उ)	३७.४३१
देवावृधस्य त्वर्कस्य	१.१३२
देवाश्च पितरश्चैव (उ)	१७.१४
देवाश्च पितरश्चैव (उ)	१४.१
देवाश्च विविधा ये च	३३.२
देवासुरं यथावृत्तं ब्रुवत: (उ)	३५.६८
देवासुरगुरुं द्वौ तु	५३.३३
देवासुर पितृत्वैश्च	८.१९८
देवासुर प्रमाणान्तद्	५९.६
देवासुरमनुष्याणां	३०.३
देवासुराद्रिद्रुमसागरराणाम्	३.१२
देवासुरा नृषींश्चैव (उ)	८.१०६
देवासुरान पराभाव्य (उ)	३६.६७
देवासुरा: पितृगणा	६१.१६३
देवासुरेभ्यो हीयन्ते (उ)	८.१९७
देवास्तु दायिनो यान्ति (उ)	१९.९

शलोकारम्भ	अध्याय.शलोक
देवास्ते पितर: सर्वे	५६.६२
देवास्त्वेतान् यजन्ते (उ)	२१.८२
देविकायां वृषो नाम (उ)	१५.४१
देविगच्छामहेद्रष्टुं (उ)	३६.२१
देवी क्रुद्धाब्रवीदेनान् (उ)	३५.१३१
देवी नाम विकारागि	९.८६
देवी नाम्ना तथाकूति:	१०.१७
देवीं सरस्वतीं चैव	१.१
देवी साहीन्द्रदुहिता (उ)	३५.१५२
देवेन्द्रा गुरु वो नाथा (उ)	३.२३
देवेभ्योऽति परित्रो- (उ)	४४.१७
देवेषु च महान् देव:	५.३८
देवदैत्यश्च (उ)	४७.८
देव परिवृत: सौम्य:	५२.५५
देवै: पीतं क्षये सोमम्	५२.५६
देवै: सार्धं ब्रह्मणैवं (उ)	४७.३२
देवैस्तै पितृभि: सार्द्धं	५६.६८
देवौ च मित्रावरुणाविदं (उ)	२३.१३
देवौ तस्मादजायेताम् (उ)	२२.७८
देव्या आद्य प्रतिहारी (उ)	३९.२७५
देव्या मृत्यं कृतं मत्वा	३०.८०
देव्यालये तपस्तप्त्वा (उ)	१५.८१
देव्या वै सहिता (उ)	३९.२५६
देशं पुण्यमभीप्सन्तौ	१.१६४
देशा उत्तरपूर्वा ये	५०.९८
देहेन्द्रियमनोबुद्धि - (उ)	४७.४९
देहैर्वियोग: सत्वानां (उ)	३८.१९७
देहो मुनिर्नयो ज्येष्ठ (उ)	३८.१७
दैत्यदानवगन्धर्वै:	४१.६४
दैत्य दानव संहर्षे (उ)	७.१७
दैत्य राजेन कुम्भेन (उ)	८.१७०
दैत्यस्य मुण्डपृष्ठे (उ)	४६.१२
दैत्यानां दानवानाञ्च	१.१२३
दैत्यानां दानवानञ्च	४६.३५
दैत्यानां दानवानाञ्च	५०.४४
दैत्यानां दानवानाञ्च (उ)	६.४८
दैत्यानां दानवानाञ्च (उ)	७.३७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
दैत्यानामथ राजानं (उ)	९.६
दैत्यांश्च दानवांश्चैव (उ)	३५.८६
दैवासुरे समुत्पन्ने	१.१३७
दैवासुरे हता ये च (उ)	३४.२५४
दैवेन विधिना विप्र	१.१६२
दोग्धा च जतुनामस्तु (उ)	१.१८१
दोलालम्बितसम्पाते	५४.३५
दौरात्म्यं चैव भोगानाम्	१.१५४
द्युतिमन्तञ्च राजानं	३३.१३
द्योरन्तरिक्षं पृथिवी (उ)	१०.४६
द्यौमूर्द्धानं यस्य	९.११२
द्रष्टुंतान् महाबुद्धिः	१.१३
द्रष्टृत्वमात्वसम्बन्धम् (उ)	३९.२१६
द्रह्युं चानुंचपुरुंच (उ)	३१.१७
द्रह्यो त्वं प्रतिपद्यस्व (उ)	३१.४५
द्राक्षावना निरम्याणि	३८.६८
दुमक्षयमथो बुद्धा (उ)	२.३१
दुम सुग्रीवसैन्याद्या	४१.३०
द्रुह्योस्तु तनयो (उ)	३७.७
द्रोण्यायाम प्रमाणैस्तु	३७.३
द्वन्द्वं संवर्द्धयामास (उ)	४.६५
द्वन्द्वेषु सम्प्रवृत्तेषु	६१.१५९
द्वन्द्वैस्ते नाभिभूयन्ते (उ)	३९.८३
द्वाचत्वारिंशत्समा भाव्यो (उ)	३७.३१४
द्वादशंच कलास्थानम् (उ)	२५.१७
द्वादशाङ्गुलपर्व्वाणि (उ)	३९.१२२
द्वादशात् मुखत्तस्य	२६.४४
द्वादशार्कं नमस्कृत्य	६०.६९
द्वादशे परिवर्त्ते तु	२३.१४३
द्वादशैते प्रविष्टा	४७.४७
द्वादशैव सहस्राणि	६१.६५
द्वादश्यां राष्ट्रलाभं (उ)	१९.१७
द्वापरं द्वे सहस्रे	५७.२६
द्वापरस्य कलेश्चात्र	१.१०३
द्वापरस्य च वर्षे	५८.३०
द्वापरादौ प्रजानान्तु	५८.२
द्वापरान्त विकारेषु देव्या	९.८२

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
द्वापरान्ते प्रतिष्ठन्ते	३२.४१
द्वापरे तु परावृत्ते	६०.२
द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते	५८.१५
द्वापरेष्विव सर्वेषु	६१.१२४
द्वापरे सर्व भूतानां	५८.२७
द्वाभ्यामपि च सम्प्रीति-	२१.१०
द्वारैश्चतुभि सौवरण (उ)	३९.२३४
द्वावाप्येतौ सुमहतावु	४५.२४
द्वाविंशतिसमा राज्यं (उ)	३७.३००
द्वाविशद्वै कलिङ्गास्तु (उ)	३७.३१८
द्वाविंशस्तु तथा कल्पो	२१.४६
द्वाविंशे परिवर्ते तु	२३.१८७
द्विकलं वा यथा भूतं (उ)	२५.१९
द्विगणेषु सहस्रेषु	५३.९८
द्विजातयस्य थान्विष्ट (उ)	१३.३६
द्विजातीनां वीरुधाञ्च (उ)	९.३
द्विजेष्वपि कृतं नित्यं (उ)	१७.६९
द्वितीय जलधारस्य	४९.८५
द्वितीय द्वापरं प्राप्य (उ)	३०.१७
द्वितीयं पादमङ्गञ्च (उ)	२५.४०
द्वितीयं भुव इत्युक्त (उ)	३९.१९
द्वितीयं मन्दर नाम	४८.२३
द्वितीयन्तु ततः शुक्रम् (उ)	४.४०
द्वितीयः पर्वतचन्द्रः	४८.७
द्वितीयः पर्वतस्तस्य	४९.३२
द्वितीयश्चापि मेध्येम्य (उ)	६.११५
द्वितीयातु मुखात्तस्य	२६.३३
द्वितीयायां तु यः (उ)	१९.१७
द्वितीयायान्तु संज्ञायां (उ)	२२.४९
द्वितीयेऽपि तले विप्रा	५०.२०
द्वितीयेप्यन्तर तटे	३४.७८
द्वितीये द्वापरे प्राप्ते (उ)	३०.१८
द्वितीये द्विजशार्दूल	४०.१२
द्वितीयो देवतानां (उ)	२१.८१
द्विपदाञ्च तुष्पदाञ्चैव	३०.२३
द्विपनश्च सुतास्तस्या (उ)	८.२८४
द्वि बाहुपरिणार्हस्तैः	३७.१६

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
द्वि बाहुपरिणार्हस्तः	३८.४६
द्विमीढस्य तु दायादो (उ)	३७.१७९
द्विभूर्द्धा शङ्कुवर्णश्च	७.४
द्विरदो द्विरदाभ्याञ्च (उ)	८.२२७
द्विरापत्वात् स्मृता	४९.१३१
द्विरेव मार्जनं कुर्यात (उ)	१७.४३
द्विलवं कुहुमात्रं	५६.६
द्विलवेन ह्यहोरात्रं	५६.५०
द्विवोदासस्य दायादो (उ)	३७.२०१
द्वीप भेद सहस्राणाम्	१.७५
द्वीपभेद सहस्राणि	३४.६
द्वीपस्य तस्य पूर्वार्द्धे	४९.१०६
द्वीपस्य परिमाञ्च	४९.८७
द्वीपानं ससमुद्राणाम्	१.७४
द्वापाश्च पर्वताश्चैव (उ)	३८.१५४
द्वीपेषु सप्तसु स (उ)	३२.३१
द्वीपोह्यपनिविष्टोऽयं	४५.८२
द्वे कन्ये काम रूपिण्यौ (उ)	८.१११
द्वे कोटयो तु महर्लोक- (उ)	३९.१३९
द्वे चात्र परमेऽरिष्टे	१९.२७
द्वे चापरान्तिके विद्याद्	२५.३४
द्वे तु कल्पे स्मृते भार्य्ये	२८.४
द्वे पत्नयो सगस्यास्तां (उ)	२६.१५४
द्वे सहस्रे शतन्यूने	६१.६७
द्वै घात् श्रुतेः स्मृतेश्चैव	५८.७
द्वैधीभावेन चात्मानं	२४.७०
द्वैपायनो वसिष्ठश्च (उ)	३८.११
द्वौ द्वौ लवावमावस्यां	५६.४३
द्वौ मेषौ शयानाभ्याशे (उ)	२९.१२
द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ	४९.४७
द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ (उ)	४५.३०
ध	
धनञ्जयस्य च पुरं	५०.१८
धनतोयात्मकं तत्र	५३.५७
धनधर्मा ततश्चापि (उ)	३७.३६२
धन धान्य युते स्फीते	४८.३७
धनाध्यक्षस्य देवस्य	४१.४

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
धनुको ह्यसिलोमा (उ)	६.८१
धनुर्गृहीत्वा बाणांश्च (उ)	१.१४९
धनुर्दण्डो युग नाली (उ)	३९.१२५
धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च (उ)	३१.९२
धनुंषि चैव चत्वारि	८.११५
धनुंषि दश विस्तीर्णः	८.११४
धनुष्मत्पक्षिणाश्चैव (उ)	१६.५८
धनुः संस्थे च विज्ञेये	३४.३१
धनु सहस्रे द्वे चापि (उ)	३९.१२६
धन्मारोग्यमायुष्यं (उ)	२८.४९
धन्यं यशस्यमायुष्यम्	१.१७७
धन्यं यशस्यमायुष्यम् (उ)	४१.५१
धन्यं यशस्य शत्रुघ्नम्	४.९
धन्यप्रजावान् (उ)	३१.१०३
धन्यास्ते पुरुषा (उ)	१५.१५
धन्यास्ते सत्तमा	४२.४०
धन्योऽहं देवदेवेश (उ)	४४.३०
धन्विनो निशितैर्बाणैः (उ)	३३.२६
धन्विनो मुद्गरधरान् (उ)	८.२४७
धन्वन्तरित सुतश्चापि (उ)	३०.२३
धन्वन्तरेः सम्भवोऽयं (उ)	३०.९
धमनीमतका शुष्काः (उ)	८.२६७
धरस्य पुत्रो द्रविणो (उ)	५.२१
धरिष्णवेऽखिलस्य (उ)	४४.११
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे	१.२
धर्मतः शीलती बुद्ध्या (उ)	८.३३९
धर्मपुत्रा महाभागाः (उ)	५.१०
धर्ममन्त्रात्मको यज्ञः	५७.११७
धर्ममृच्च शृष्टचयो (उ)	३४.१११
धर्ममेव पुरस्कृत्य	१.३७
धर्मयोगबलोपेता	२३.१७
धर्मस्य कीर्त्यते सर्ग	१.६२
धर्मस्य तावद्वक्ष्यामि (उ)	५.२
धर्मस्याथ पुलस्त्यस्य	६१.८२
धर्मादीनि च रूपाणि	४.४४
धर्माद्युधिष्ठिर पुत्रं (उ)	३४.१५३
धर्माधर्मं निमित्तेन (उ)	३९.१८९

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
धर्मा धर्माविह प्रोक्तौ	५९.२७
धर्माधर्मो तपो (उ)	४०.४८
धर्माधर्मो त जन्तूनां (उ)	४०.५२
धर्माधम न तास्वास्तम्	८.४८
धर्मा न तास्वास्ताम्	८.४९
धर्मार्थ काममोक्षाणां	८.३४२
धर्मार्थ काम मोक्षार्था	१.१६
धर्मार्थं न्याय संयुक्तै	१.९
धर्मार्थो प्राप्नुयाद् (उ)	४७.५३
धर्माश्रमवरिष्ठास्ते (उ)	२१.२९
धर्मेयुः सन्नतेयुश्च (उ)	३७.१२१
धर्मो नारायणः (उ)	५.१३०
धर्मोपदेशं नियतं	२३.५५
धर्म्मं चैतं समाख्याय (उ)	२९.१०३
धर्मतन्त्रस्तु कीर्त्तिः (उ)	३२.५
धर्मयागे च लोभाद्वै (उ)	४४.७८
धर्म्मयुक्तमिदं वाच्यं (उ)	२३.९
धर्म्मव्रतावचः श्रुत्वा (उ)	४५.३९
धर्म्मव्रता तथेत्युक्त्वा (उ)	४५.२२
धर्म्मव्रते धर्म्मपत्नी (उ)	४५.१४
धर्मश्च दीर्घतपसो (उ)	३०.७
धर्मान्नारायण (उ)	३६.७१
धर्मेण च प्रजाः (उ)	३१.६६
धर्मेण रञ्जयामास (उ)	२२.८१
धर्मेरतिश्च सततं (उ)	२६.६०
धर्मार्थं काममोक्षाणाम्	८.२५
धाताऽर्यमा च मित्रश्च (उ)	५.६६
धाता तु शतरूपायाः	५७.५७
धातुर्दिवीति यः	९.९
धारणच्छ्रवणाच्चैव (उ)	३७.४५८
धारणच्छ्रवणाच्चैव	३२.५४
धारणा द्वादशायामो	११.२२
धारणा धतिरित्यथीद्	५९.२८
धाराभिः पूरयन्तीम (उ)	३८.१७३
धारोभि कलिलाश्चैव (उ)	५.२३
धार्तराष्ट्रस्त्वेकशतं	३२.४९
धावतोऽन्यानतिक्रान्तं (उ)	४२.४२

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
धिष्णुः पुत्र सुधन्वान् (उ)	४.१०१
धिष्ण्या विहरणीया	२९.३०
धीमतः पाण्डु पुत्रस्य (उ)	३७.२७६
धीमतश्च महान पुत्रो	३३.५९
धुन्धुरासादितस्तत्र (उ)	२६.५४
धुन्धुवधं महाप्राज्ञ (उ)	२६.२९
धुवेणाधिक्रतांश्चैव	५१.१२
धूत पापस्थलं प्राप्य	१५.२०
धूपं गन्ध गुणोपेतं (उ)	१३.९
धृतराष्ट्रच्च पाण्डुश्च (उ)	३७.२३८
धृतराष्ट्रः पुलोमा च (उ)	८.२
धृतराष्ट्राश्चैकशतम् (उ)	३७.४४८
धृतव्रतस्य पुत्रस्तु (उ)	३७.११३
धृतव्रतस्य पुत्रस्तु (उ)	३७.२१३
धृतस्य दुर्दमो जज्ञे (उ)	३७.११
धृतेन भोजयेद्विप्रान् (उ)	१८.४५
धृतेश्च बहुलाश्वोऽभूद् (उ)	२७.२३
धृतोदेन कुशद्वीपो	४९.५७
धृष्टद्युम्नः सुतस्तस्य (उ)	३७.२०६
धेनुका च मृता चैव	४९.९३
धेनुं श्राद्धे तु यो (उ)	१८.२२
धैवस्यशोऽथ वामान्यो (उ)	१.९
धौतशंखोदरपुर्नील	५०.४६
धौन्धुमारिर्दृढाश्वस्तु (उ)	२६.६२
ध्याते तु मनसातासाम्	८.४४
ध्यानं ध्यानवपु	२३.४८
ध्यानं परं कृतयुगे	८.६४
ध्यानं समधिरेतानि (उ)	४२.२५
ध्यानं समधिर्मन-	८.१७९
ध्यायतः पुत्रकामस्य	२१.५३
ध्यायतः पुत्रकामस्य	२२.२१
ध्यायतस्तस्य ताः	८.१९६
ध्यायता पुत्रकामेन	२२.२५
ध्यायता पुत्रकामेन (उ)	३.११
ध्यायतीत्येष धातुर्वै	९.३६
ध्यायतो ब्रह्मणश्चैव	२१.४९
ध्यायतो ब्रह्मणो	३१.५३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
ध्रुवेणाधिष्टिताः सर्वे:	५२.९७
ध्रुवेणा वेष्टितः सूर्यः	५१.५२
ध्रुवः काली ग्रहणां	५३.११२
ध्रुवञ्च कीर्तिमन्तश्च (उ)	१.७६
ध्रुवं रूपं पितुः पुत्रः (उ)	३८.५१
ध्रुवं स्थानं विधानञ्च (उ)	३८.१९
ध्रुवस्य मनसां चासौ	५१.८
ध्रुवस्योत्तानपादस्य	१.११२
ध्रुवाग्निकश्यपानान्तु	५२.९८
ध्रुवेण भ्रमतो रश्मी	५१.६९
ध्रुवात्पुष्टिञ्च (उ)	१.८२
ध्रुवो वर्ष सहस्राणि (उ)	१.७७
धूमाश्वतनयो विद्वान् (उ)	२४.१९
ध्वजदाना त्यापहानि (उ)	४७.४१
ध्वजापताकिनश्चैव	४१.३८
ध्वजिने रथिने चैव	५४.७७
न	
न कर्माणि न चाप्येष	१८.३
न कामये जरां तात (उ)	३१.४०
न कृते प्रतिकर्त्ता	५२.५४
नक्तं तु वर्जयेच्छ्राद्धं (उ)	१६.३
नक्ताहारविहारौ च (उ)	८.१०१
नक्षत्रग्रहतारास्तु	७.१५
नक्षत्रचन्द्र सूर्याश्च	८.११२
नक्षत्रचन्द्र सूर्याश्च	५२.९६
नक्षत्राणां चरादीनां (उ)	१२.२४
नक्षत्राणि च सर्वाणि	५३.७५
नक्षत्राधिपतिः सोमो	५३.२९
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्द्ध	५३.९७
नक्षत्र वारुणे कुर्वन्	२०.१३
न क्षीयते न क्षरति	१३.१९
न क्षीयन्ते न क्षरति (उ)	४०.११५
न खल्वयं भृतो (उ)	२२.३५
न खल्वयं भूतोऽण्डे (उ)	२२.२८
न गजं न रथं (उ)	३१.४७
नगराद्योजनं खेतं	८.११२
नगरं कालकेयानां	४०.१५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
नग्नका ध्वनिकेताश्च (उ)	८.२०३
नग्नादयो न पश्येयु (उ)	१६.२४
नग्नीदयो भगवन् (उ)	१६.२५
नग्नादीन्मृतहारांश्च (उ)	१७.२५
न घोरो नापि सङ्कीर्णो (उ)	१७.१८
न च तेनैव रूपेण (उ)	४.७०
न च देवा न पितरो	५९.२६
न च देवो न चादित्यो	३०.१६२
न च यक्षाः पिशाचाः	३०.३०९
न च यज्ञघ्नो दैत्या	२.३१
न च विष्णुसमाकाचिद्	२१.७
न च विंशे युगे (उ)	३७.४३३
न च शक्यं मया (उ)	३६.५७
न चाश्रुं पातयेज्जातु (उ)	२१.४८
न चास्य कर्म वै (उ)	१.१४३
न चेत्पुराण संविधात्	१.१८०
न जरा श्रुतपिपासा (उ)	२४.३४
न जातु कामः कामा	३१.९४
न जायते न म्रियते	१३.१८
न चैवं धारयामास (उ)	२६.८४
न चैवमागतो ज्ञानाद्	१४.१
न ज्ञायेत यदि व्यासो (उ)	४२.१८
नतश्चिलमूर्द्धानो (उ)	३२.३४
न तत्र दुरितं किञ्चिद् विदुः	२.३१
न तत्र नद्यो वर्षञ्च	४९.११८
न तत्र वञ्चको नेर्ष्या	४९.११५
न तत्रास्ति युगावस्था	४९.२१
न तथा तपसोग्रेण न	२०.२०
न तवाविदितं किञ्चित्	२२.२
न तस्य प्राकृती	३४.४०
न तस्य वित्तनाशश्च (उ)	३२.५५
न ताः प्रसवधर्मिण्यो	४५.४७
न तु ब्रह्मर्षयो देवा (उ)	३९.२४५
न तेऽन्यथावमन्तव्यो	२४.४८
न तेषु दस्यवः सन्ति	४९.५४
न तेषु लोभो माया	४९.१०१
न तेस्त्यविदितं किञ्चित्	२६.४

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
न त्यक्तव्यं गया श्राद्धं (उ)	४३.१७
नत्वा गदाधरं देवं (उ)	४९.२४
न दण्डी किल्बिषं (उ)	४३.२४
न दिव्य चक्षुषा ज्ञातुं (उ)	३९.१९६
नदीतीरेषु रम्येषु (उ)	२१.४७
नदीन दसमुद्रस्थास्तथा	५०.४
न दीनो वापि वा (उ)	१३.४४
नदी पर्वतानाञ्च	१.४६
नदी प्रवर्त्तते ताभ्यः (उ)	१५.२४
नदीर्वत्स्यन्ति (उ)	३७.४०१
नदीवेग समायुक्तं	३१.५१
नदीसमुद्रमालाञ्च	४४.२
नद्यास्तीरै दृषद्वत्यः	५१.१२
नद्याः स्रोतस्तु	४७.३८
नद्या सागरपर्यन्ता (उ)	१६.२१
नद्यास्तस्यास्तु (उ)	१५.२५
न निवेद्यो भवेत् (उ)	१४.२३
न नूनं कार्तवीर्यस्य	३२.२०
नन्दनश्च महातेजा (उ)	३३.४६
नन्दिना च गणे सार्धं (उ)	३९.२६५
न पादे कुण्डले दृष्टे न (उ)	२५.२५
न पारगो विन्दति (उ)	२१.६७
न प्रमाणं स्मृतेरस्ति	५८.३४
न प्रमार्तुं महाबाहुः (उ)	३६.९५
न प्रयच्छति पुत्रास्तु (उ)	३०.४६
न प्रवृत्तिफला यूयं (उ)	४२.९१
न बभूवुस्तदा तात (उ)	१०.४७
न ब्रह्मा न च गोविन्दः	३०.२६८
न ब्राह्मणान्परीक्षेत् (उ)	२१.२२
नम उन्मत्तवेशाय	२४.१४५
नम ऋतूनां प्रभवे	२४.१००
न मया सादितस्तात (उ)	३७.५१
नमः कमलहस्ताय	५४.७१
नमः कान्ताय सन्ध्याभ्र	२४.२६
नमः क्षान्ताय शान्ताय	२४.१३१
नमः पुराण प्रभवे युगस्य	२४.१०१
नमः शिवाय देवाय (उ)	४९.२२

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
नम: स्तोत्रे भया हि (उ)	३५.२०३
नम: पाशाय हस्ताय	२४.११५
नमश्चौषधि प्रभवे	२४.९७
नमस्कारस्तथा चैव	२०.३४
नमस्कार्यश्च (उ)	४१.६८
नमस्कृत्य प्रभासेशं (उ)	४६.२३
नमस्तुभ्यं भगवते	२४.९०
नमस्तुभ्यं विरुपाक्ष	५४.६५
नमस्तुष्टिप्रदानाय	२४.११८
नमस्ते देव देवेश	३०.१४०
नमस्ते त्रिषु लोकेषु (उ)	३५.२०२
नमस्ते नीलकण्ठाय	५४.८
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष (उ)	४६.९३
नमस्ते शक्तिहस्ताय	५४.२४
नमस्ते शरगर्भाय	५४.२३
नमस्तेऽश्वत्थराजाय (उ)	४९.३४
नमस्ते हरनन्दाय	५४.२२
नमस्ते ह्यस्मदादीनां	२४.९.३
नमस्तोकायतनवे	२४.१४७
नमस्त्रैलोक्यनाथाय	५४.६६
न मामर्हसि वै हन्तुं (उ)	१.१५५
नमामि सूयं तृप्त्यर्थं (उ)	४९.१२
न मीमांस्या सदा (उ)	१७.५
न मुखं नापि निर्वाणं	३२.२०
नमुचि: शम्भरश्चैव (उ)	३६.८१
नमोऽद्भूताय स्वपते	२४.१४३
नमो नम: सुपर्णाय	२४.१२२
नमो नमाय नम्याय	३०.१६६
नमो भगवते भर्त्रे (उ)	४९.५
नमो मुक्ताट्टहासाय	२४.१४२
नमो योगस्य प्रभवे	२४.९४
नमो रक्तविरक्ताय	३०.२०५
नमो रसानां प्रभवे	२४.९८
नमो लोकेश्वराय	२०.३०
नमो वै पद्मवर्णाय	२४.१२५
नमोस्तु ते देव	५५.४७
नमोऽस्तु ते देव	५५.४८
नमोऽस्तु ते देव	५५.४९
नमोस्तु ते पट्टिशरूप	५५.४५
नमोस्तु ते भस्मविभूषित	५५.४६
नमोस्तुते भैरववेग	५५.५०
नमोस्तु ते लोक सुरेश	५५.३१
नमोस्तु ब्रह्मणेऽजाय (उ)	४९.४१
नमोस्तु लक्ष्मीपतये	२४.१०९
नमोऽस्तु रीतिकण्ठाय (उ)	३५.१६२
नमोस्त्विष्टाय	२४.११६
नमोहव्याय कव्याय	२४.१२०
नमो हव्याय पूज्याय	२४.९२
नमो हिरण्यगर्भाय	३०.१९३
नमो ह्यप्सरसां पते	२०.१०८
न मृतानां यति: शक्या	५६.६०
न यष्टव्यं न होतव्यं (उ)	१.१११
नयस्व च गृह वत्स	६०.४३
नये विष्णुपदं दिव्यं (उ)	४९.५७
नरकस्था दिवं यान्ति	४९.८५
नरकेषु समस्तेषु (उ)	४८.४५
नरको रौरवो रोध: (उ)	३९.१४६
न रति तत्र वै देवी (उ)	३०.५६
नर शून्या वसुमती	५८.५५
नरस्य सांकृति: पुत्र: (उ)	३७.१५६
नर नारायणो तत्र (उ)	५.१४
नरनारीगणाकीर्णे	४०.१४
नरनारी गणा कीर्णे	४३.३४
नरनारी गेम्यश्च (उ)	१३.६५
नरनारी समाढ्यानि	४८.६
निर्जनं दिव्यलतिका	४२.६६
नर्मदानूप एकाकी (उ)	३३.३१
नलवंशप्रसूतास्ते (उ)	३७.३७१
नवतिर्द्वावशीतिर्द्वौ	३४.२६
नवमासान् परिक्लिष्ट:	१४.२४
नवयोजनसाहस्रो	५०.६३
नववर्षं प्रवक्ष्यामि	३४.९
नवसर्गा: पुन: प्रोक्ता:	१.५६
नवसस्यानि योदश्चात् (उ)	१८.४९
नवस्य नवराष्ट्रन्तु (उ)	३७.२२
नवस्वेतेषु वर्षेषु	४६.३६
नवो नवो भवति हि	२७.४८
नवं यानि सहस्त्राणि	५७.१८
नवार्च्चिर्लोहिताङ्गस्तु	५३.१०८
न व्याधिर्न जरा तत्र	४५.४९
न शक्यमन्यथा (उ)	३६.४९
न शक्य भानुपूर्वेण (उ)	३९.६९
न शक्यभानुपूर्व्येण	६१.१३३
न शक्यभानु पूर्व्येण	६१.१३७
न शक्यं विस्तराद	१.१०७
न शक्यं विस्तराद्	४९.७२
न शक्यं विस्तरं तेषां (उ)	३७.४५२
न शक्यं स्थावरं (उ)	३३.६
न शक्या जन्तव: (उ)	३९.१९५
नष्टे चारनौ वर्षशते (उ)	३२.१७२
नष्टे धर्मे तदा जज्ञे (उ)	३४.२३२
नष्टे वर्षे प्रतिहता	५८.९५
नष्टे शबलाश्वेषु (उ)	४.१५६
नष्टे श्रौते स्मृते धर्मे	५८.९४
नष्टश्चैव यथा (उ)	४०.१०४
न संकर तेष्वस्ति	४९.१००
न सस्यानि न गोरक्षा (उ)	१.१७०
न स्त्रियं क्षत्रियो जातु (उ)	३४.२२४
न हन्तव्यो न हन्तव्य: (उ)	६.१०५
न हितस्य पुरस्यान्यै: (उ)	३९.२३६
न हि पूर्व निसर्गे वै (उ)	१.१६९
न हि योगगति: सूक्ष्मा (उ)	११.९८
न हि योग गति: (उ)	२१.८६
न हि वेदेष्वधिकार:	१.२८
नहुष: खररोमा च मणि: (उ)	८.७१
नहुषस्य तु दायादा: (उ)	३१.१२
नहुषस्य महात्मानं	२.२२
न ह्येनं प्रस्थितं कश्चिद्	१४.३०
नाकपृष्टं दिवं स्वर्ग	३४.९४
नाकस्य शकुनि: (उ)	२२.१३
नाग ऐरावतश्चैव	५२.१४

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
नागकूटाद् गृध्रकूटा (उ)	४९.२७	नानारत्न प्रभासैर च	४१.७५	नारायणमुखोद्गीर्णः	२४.१०
नागदृष्टिर्विषा गीता (उ)	२४.६०	नानारत्न वनोद्देशं	४२.६२	नारायणं नमस्कृत्य	१.१
नागपक्षाश्रयं विद्यात् (उ)	२४.४४	नाना रत्न विचित्रेषु (उ)	३९.३०२	नारायणं सुरगुरुं विरजं (उ)	८.४३
नाग कुवलयापीडं (उ)	३६.१००	नानारत्न करापूर्ण	४२.४७	नारायणः परोऽव्यक्ताद्	६.७२
नागवीथ्याजवीथ्योश्च	१.८४	नाना रूप धराश्चैव	५१.४०	नारायणः सर्वमिदं विश्वम्	१.१८४
नागवीथ्युत्तदा वीथिः	५०.१३०	नाना रूपासु जातीषु	५६.२०	नालेन तु यथा तोयं	११.२६
नागवीथ्युत्तरे यच्च	५०.२१६	नाना वर्णप्रकाराणि	४५.३०	नावाहनं न दिग्बन्धो (उ)	४८.२८
नागाज्जनार्दनाद् (उ)	४९.५१	नाना वर्णस्तु पार्वेषु	३४.१६	नावाहनं न दिग्बन्धो (उ)	४३.३५
नागा देवर्षयश्चैव	५५.६	नाना वर्णेषु पार्श्वेषु	३४.४७	नावृष्ट्या परिचिन्वन्ति (उ)	३८.१४२
नागानां वै द्विजश्रेष्ठ (उ)	१.१७९	नाना वर्णैश्च शकुनैः	३९.१८	नाशयामात्स शापाय	१.११८
नागैश्च स्तूयते दुग्धा	१.१७८	नाना वेशधरैर्मूर्तिः	३९.४३	नाशुचिर्नाप्य धर्मात्मा (उ)	३४.१२३
नाट्योपहारलुब्धाय	३०.१९८	नाना सत्त्वगणैः कीर्णैः	३९.९	नाशुचेर्नापि पापाय (उ)	१.१०४
नातः परतरं किञ्चित् (उ)	४२.५४	नाना सत्त्वगणाकीर्णं	४१.७१	नाश्रद्दधाना विदुषे (उ)	४१.७०
नात्मांनि लोक सर्गञ्च (उ)	११.३	नानु रूपं वरं लेभे (उ)	४५.५	नासाध्यं विद्यते चास्य	३२.२९
नात्मानं स्तोभि	३०.१२१	नान्यच्छरीर मादत्ते (उ)	४०.१०६	नासिक्याद्याश्च ये	४५.१०३
नात्मानि लोक सर्गञ्च (उ)	११.३	नाभागेरम्बरीषस्य (उ)	२६.१७१	नास्तिको वा विकर्मा (उ)	१०.७७
नात्यर्थं धार्मिकाः (उ)	३६.१०८	नाभेर्हि सर्गं वक्ष्यामि	३३.५०	नास्तीति कृष्णश्चोवाच (उ)	३४.७६
नात्यर्थं धार्मिकोऽभूत् (उ)	२६.१२२	नाभस्तु दक्षिणं वर्ष	३३.४१	नास्माकं विद्यते तात (उ)	३७.५४
नात्यर्थ प्रतीच्यांश्च	५८.८०	नाभ्यारण्याः समुद्रभूत (उ)	३५.२०	नास्यास्त्य बुद्धं न	१४.१०
नात्युग्रकर्म सिद्धानां	४१.८१	नाभ्यां च हृदये चैव	११.२७	नाहन्तेषान्तु रुद्राणां (उ)	३९.३२२
नात्युल्बणं वातिशुभ्रं	५४.४५	नाम गोत्रं च मन्त्रश्च (उ)	२१.९१	नाहं देवि गमिष्यामि (उ)	३०.५८
नादात्पिण्डं करे (उ)	४९.७६	नामतस्तु प्रवक्ष्यामि (उ)	३८.१४	नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी (उ)	२६.८३
नादेश्चैव सामुद्री	५२.१९	नामतस्तु समासेन (उ)	३५.७३	नाहं भवन्तं शक्नोमि	२४.४९
नाधिकान् न च हीनांस्	१०.४३	नामधेयैश्च विक्रान्तेः	४३.१७	नाहं वेश्म विमोक्ष्यामि (उ)	३०.५७
नानाकुसुममूर्द्धानं	३०.१३३	नाम्ना कनकनन्दीति	१५.१०५	निजघ्नुश्चापि संक्रुद्धाः	२.२०
नानाच्छन्दो गतिपथों	६.२२	नाम्ना जयद्रथं नाम (उ)	३७.१०७	निःशेषायां कलायान्तु	५६.२९
नानाजनपदास्फीतं	४४.२४	नाम्ना तच्छ्रीवनं	३७.१३	निःशेषेषु च सर्वेषु (उ)	३८.११९
नानात्वदर्शनाच्छुद्धं	१.१५५	नाम्ना पशुपतेर्या तु	२७.५३	निःसङ्गाः शुचयश्चैव (उ)	३९.९७
नानात्वदर्शनात्तेषां	७.३४	नाम्ना पुण्यजनी चैव (उ)	८.१४८	निःसम्बन्धो हि (उ)	४०.७७
नानात्वे चैव शीघ्रे	३८.१८३	नाम्ना प्रेतशिला ख्याता	४८.६६	निःसीमा गामिमां कृतस्नां	१.१६८
नानाद्रुमलता कुञ्जर (उ)	४२.६३	नाम्ना वैलाङ्गली	२३.१८८	निःसृता च महादेव्या (उ)	३९.२९८
नाना धातुविचित्रैश्च	३६.८	नाम्ना षष्ठस्य यो भीमा	२७.५४	निकुञ्ज कन्दरनदी	३५.४
नानानदनदीशैला	५०.३	नाग्नाष्ठसस्य महतः	२७.५९	निक्षरायां पुष्करिण्यां (उ)	४६.८७
नानापुष्पफलोपेतं	४८.२५	नाम्ना ह्यलकनन्देति	४२.२७	निगृह्य तं महाबाहु (उ)	१.१२०
नानाप्रयोजनार्थां (उ)	५.१०३	नारदः प्रियसंवाही	१.११७	नितम्बपुष्प कादम्बैः	३५.१३
नानाभक्ष्यान्नपानैश्च	४१.८३	नारदस्तु वसिष्ठाया (उ)	७.८०	नितम्ब पुष्पमालौघैः	३५.५
नाना भरण संयोगाद् (उ)	२५.२४	नारसिंह प्रभृतयः	१.१३८	नितम्बे मुण्डपृष्टस्य (उ)	४६.६९

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
नितम्बैः पुष्पसालम्बैः	३९.३
नितम्बे षट्पदोद् गीतैः	३९.४
नितुण्डश्च नितुण्डी च (उ)	८.२५६
नित्यतप्त महाघोरं	३८.३८
नित्यमुन्मादजननो	३९.२५
नित्यानित्य विनिर्मुक्तं (उ)	४७.५०
नित्याय चार्थलिङ्गाय (उ)	३५.२०१
नित्याय नित्यरूपाय	५४.७३
नित्यं जयति सङ्ग्रामे (उ)	१९.२४
नित्यं ब्रह्मघनो युक्त	१२.३२
नित्यं ब्रह्मपरो युक्त	१२.४०
नित्यमङ्क सुखाह्लादः	४५.४२
नित्यं व्याकोरामजरं	३७.७
नित्यं श्राद्धेषु यो (उ)	१८.४१
निद्रायमाणेऽथ मुनौ	४५.२३
निधाय चाद्भिः (उ)	१६.५१
निध्रुवस्य तु या (उ)	९.२७
निम्यादीनां क्षितीज्ञानां	१.१३०
निमित्तप्रतीघात (उ)	४०.९८
निमित्तमप्रतीघाते (उ)	४०.८१
निमेषकालः काष्ठा	५७.६
निमेष प्रभवे चैव	२४.९९
निमेषादिकृतः कालः	५०.१७८
नियमेष्वप्रमत्तेस्तु	१६.५
नियमैर्विविधैर्यज्ञैः	३४.३६
नियुक्तो वानियुक्तो (उ)	१७.५१
नियुतान्यष्टपञ्चाशत	२१.१८
निरञ्जनत्वाच्छुद्धः (उ)	४०.८०
निरवद्यं तथा नाम	१३.६
निरस्यत्तं महाकायं (उ)	२६.५८
निरात्मके पुनस्तस्मिन् (उ)	४०.१२९
निरामञ्च ब्रह्मणं	१.६४
निरालोके तदा लोके (उ)	४०.१४
निरुक्तमस्य योवेद	१.१२३
निर्दग्धुकामं रोषेण (उ)	२२.६८
निर्द्वन्द्वा निरभिमाना	५०.२०७
निर्दग्धं पृथिवीपाल (उ)	२६.४४
निर्मथ्य पवमानस्तु	२९.३
निर्मथ्याग्निं शमीगर्भे (उ)	५०.६२
निर्ममो निरहंकारा	२३.८०
निर्माणरतयो देवाः (उ)	३८.७९
निर्माणरतयो देवाः (उ)	३८.७७
नियंन्तारस्तु प्रोवाच (उ)	४१.६४
निर्वापणार्थं दत्तेन	५६.१३
निर्विशेषाः कृताः सर्वा	८.५९
निवर्त्तते तदा तस्य (उ)	४०.४०
निवर्त्तते तदा वृत्तिः	६१.१३१
निवासा यत्र कीर्त्यन्ते	१.९३
निवृत्त वृत्तयः सर्वे (उ)	३९.६१
निवृत्तकामोऽपि नरः	४.८२
निवृत्ति समकालं	५९.८०
निशायामिव खद्योतः	८.४
निश्चलार्थं पञ्चधा (उ)	४४.५६
निश्चलार्थं यमः श्रुत्वा (उ)	४४.४६
निषङ्गिणे कवचिने (उ)	३५.१६९
निषधस्य नलः पुत्रो (उ)	२६.२०१
निवधस्या चलेन्द्रस्य	४४.२
निषधान्यदुकांश्चैव (उ)	३७.३७८
निषादवंशकर्त्तासौ (उ)	१.१२३
निषेधयन्ती ह्युमेति (उ)	११.११
निष्क्रमन्ते विशन्ते (उ)	३८.२०६
निष्ठीविते तथा (उ)	१७.३७
निसर्ग एष विख्यातः	४१.१
निसर्ग एष विख्यातः	४५.७२
निसर्ग मनुपुत्राणां (उ)	२४.१
निहतो जामदग्न्येन (उ)	७.२२
निहत्य दानवान् सर्वान् (उ)	३०.८७
निहन्मि सर्वं यद् (उ)	१३.४५
नील कनकः शृङ्गश्च	३६.३२
नीलका नामते घोरा	३९.३१
नीलता येन कण्ठस्य	५४.३
नीलन्तु कूप्त तदवर्षं	३३.४३
नीलश्च नैषधश्चैव	३४.२५
नीलश्च वैदूर्य्यमयः	३४.२०
नीलः श्वेतः शृङ्गवांश्च	१.७७
नीलाङ्गा लोहितग्रीवाः (उ)	९.६०
नीपो विभीतकश्चैव (उ)	१३.७५
नृणाभिन्द्रिय पूर्वेण (उ)	३५.३५
नृत्यगीत प्रगल्भा नाम (उ)	८.३७
नृपेष्वथ विनष्टेषु (उ)	३६.११८
नेत्युवाच ततस्तन्तु (उ)	३७.७३
नेत्रमेकं स्ववेद्यस्य	१९.२२
नेमिर्नाम सुधर्मात्मा (उ)	२७.३
नैकनागायुतबला	९.७५
नैकनिर्झरवप्राढ्या	४२.६५
नैकरत्नार्थित तलम्	३४.७९
नैकशृङ्गकलापस्य	४१.२९
नैक सिद्धगणावासं	४१.४६
नैकैर्महापक्षिगणैर्गारुडैः	४०.३
नैकैर्विमान सद्यातैः	४२.६
नैमित्तिकः प्राकृतिकः	१.१८७
नैमिषारण्यपार्श्वे (उ)	४६.४३
नैमिषे ईजिरे यत्र (उ)	४१.४६
नैमिषं पुष्करं गङ्गा (उ)	४४.६९
नैव पूर्व केप्य कुर्वन् (उ)	५०.२
नैव शक्यं प्रसंख्यातुं	५३.१२१
नवेद्यं केचिदिच्छन्ति (उ)	१४.२१
नैव मूर्द्धाभिषिक्तास्ते (उ)	३७.३८३
नैसधं यत्स्मृतं वर्षं	३३.४२
नैसधं हेमकूटन्तु	३४.२९
नोद्भिज्जा नारकाश्चैव	८.५४
नोपायं विन्दते तत्र (उ)	८.१३३
नो स्नातकोन्यसेद (उ)	३७.४३
नौमिषेयास्ततस्तस्य	२.२०
न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे	४६.१३५
न्यग्रोधी तो स्मृतै	५७.६७
न्यासिक्यश्चापि	४४.१८
प	
पक्वाममांस लुब्धाय	३०.२०२
पक्वैर्विद्रुमसङ्काशैः	३८.४
पक्षाणां शुक्लपक्षस्तु	५३.११४

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
पक्षाणाञ्च विपक्षाणां (उ)	९.१५	पञ्चैव पाण्डवेभ्यश्च (उ)	३७.२४२	पद्मोत्तरस्तु य: पद्मौ (उ)	८.२११
पक्षिणामथ सर्वेषां (उ)	९.११	षट् सप्तत्यङ्गुलीत्सेधा:	५९.११	पद्मोत्पलदलोन्मिश्रं (उ)	३९.२४४
पक्षिराजस्य भवनं	४०.४	पठन सम्यगिमां (उ)	२६.२१३	पद्मोत्पलवन फुल्ली :	४१.६९
पंक्तिश्च वृहती चैव	५१.६५	पठ्यते चाग्निरादित्य	५३.३०	पद्मो मन्दस्तु यो (उ)	८.२१०
पञ्चकूटस्य शैलस्य	३८.३३	पणश्चैषोडस्य	६०.५५	पनश्चैव तरण्यश्च (उ)	७.३९
पञ्चक्रोश गयाक्षेत्रं (उ)	४४.६५	पतन्तं सोममालोक्य (उ)	२८.९	पन्नत्वात्पन्नगाश्चैव	९.३२
पञ्च धर्मा: पुराणे	१०.६५	पतमानानि तान्युर्व्यां	४६.२७	पपात पुष्पवर्षञ्च (उ)	३४.१४६
पञ्चधा चाश्रित: सर्गो	६.३६	पतयश्च भविष्यन्ति	५८.५०	पप्रच्छ कार्तिकेयं	५४.१९
पञ्चनां प्रविभक्तानां	२१.२६	पति: पतीनां भगवान्	३१.५९	पप्रच्छुरमितात्मानम्	२.३४
पञ्चमं देहिनेनाम	२७.१२	पतिव्रता च ज्येष्ठा (उ)	२६.७१	पयसा ह्याजगव्येन (उ)	१२.११
पञ्चमं धृतिमद्वर्षं	३३.२६	पतिव्रता दर्शनान्मे (उ)	४५.१२	परं तदनुकल्पानाम- (उ)	४०.३
पञ्चम पञ्चदश्या (उ)	३६.८९	पतिव्रतायास्तपसा (उ)	४५.३३	परत्रेह च सर्वे (उ)	१९.६
पञ्चमातु मुखात्तस्य	२६.३७	पतिव्रतार्थं विप्रेन्द्र (उ)	४५.११	परत्वे च भयं देवे (उ)	८.२४९
पञ्चमालार्चिताङ्गाय	३०.२०८	पतिव्रतावच: श्रुत्वा (उ)	४५.६१	परं ब्रह्म परं ज्ञानं (उ)	३९.१०६
पञ्चम: सोमको नाम	४९.१०	पत्नी तु यादवी तस्य (उ)	२६.१३०	परमाणु: सुसूक्ष्मस्तु (त)	३९.११७
पञ्चमेऽह्नि गदालोले (उ)	४९.९१	पत्नी प्राचीन गर्भस्य (उ)	१.८५	परमार्द्धार्द्धमायामम्	८.१०८
पञ्चमे त्वथ पर्याये (उ)	१.४४	पत्नी मरीचे: सम्भूति:	२८.८	परमेष्ठी परं ब्रह्म	५५.३२
पञ्चमे द्वापरे चैव	२३.१२१	पत्नीषु जनयामास	२७.३	परमेष्ठी सुचश्चाथ	३३.५५
पञ्चमे शर्कराभौमे	५०.३४	पत्न्यर्थ वासुदेवस्य (उ)	२४.२३६	परम्परा युगानाञ्च	३७.४४०
पञ्चमोऽनुग्रह: सर्ग:	६.५३	पत्न्यर्थ प्रतिजग्राह	१०.२५	परस्परं युगानाञ्च	३२.४३
पञ्चमोऽप्यन्तरतटे	३४.८८	पत्न्यासमासन्नगर्भाया (उ)	३७.१३७	परस्परभिन्नैस्तै:	५८.८
पञ्चयोजन साहस्रम्	४५.५२	पथो नद्योऽथ तीर्थानि (उ)	८.२७८	परस्परविरोधेन	५७.५६
पञ्च लोक: सप्तलोको (उ)	४७.१६	पदस्य तु त्रयं रूपं (उ)	२५.३५	परस्पर सवर्णाश्च स्वरा	२६.४८
पञ्चवर्ष सहस्राणि	४९.२३	पदा तर्जयसे यस्मात् (उ)	२२.५६	परस्परस्थिता: ह्येते	५३.१०१
पञ्चविंशतिम कल्पो	२१.५२	पदानामुद्धृत्वाच्च	६०.२३	परस्पर हताश्वासा (उ)	३६.११९
पञ्चविंशनृपोह्येते (उ)	३७.२७५	पदा सन्तर्जयामास (उ)	२२.५५	परस्परागतं धर्मं	५७.४१
पञ्चविंशे पुन: प्राप्ते	२३.१९६	पदेपदेऽश्वमेधस्य (उ)	४३.२९	परस्परेण द्विगुणा	४६.६४
पञ्च विंशोत्थिते (उ)	३६.११३	पद्भ्यां सहस्रमन्यन्तु	८.३९	परस्परेण वर्त्तन्ते	५.१७
पञ्च सप्तक राजानो (उ)	३७.३४७	पदभ्याञ्चाश्वान्	९.४०	परा चर्म्मण्वती चैव	४५.९८
पञ्चाग्नीनां पदान्यत्र (उ)	४७.१९	पद्मनाभं वराङ्गश्च (उ)	८.१५६	परा द्युतिरथो कर्त्तु: (उ)	१३.४
पञ्चानाञ्चेन्द्रियमनो	३१.४३	पद्मपत्रायताक्षाश्च	५७.६५	पराभवो वशिष्ठस्य	२.११
पञ्चानां रक्षणार्थाय (उ)	३७.१९२	पद्मपात्रे पुनर्दुग्धा (उ)	१.१८४	परार्थ द्विगुणञ्चापि (उ)	३८.२४१
पञ्चाशत्तु तथाण्यनि	५०.१२१	पद्ममालाकृतोष्णीध्वं	२४.१५२	परार्द्धं परयोश्चैव	१.१४६
पञ्चाशतं तथाष्टौ (उ)	३७.२६२	पद्ममाल्यधरस्थल्यां	३८.५७	पराशरश्च गार्ग्यश्च	२३.१३४
पञ्चाशतं समा: षट् (उ)	३७.२९३	पद्मवर्ण सुनेत्रञ्च (उ)	८.१५५	पराशरसुतो व्यास: (उ)	४२.२०
पञ्चाशीति सहस्राणि (उ)	३१.२३	पद्मसूत्रानुमार्गेण	२४.३३	परागरस्य च मुने:	१.१२६
पञ्चेषुक्षेपणैर्विद्धं	३८.१९	पद्मामेव ततो गत्वा (उ)	३४.७४	पराशरस्य चोत्पत्ति	१.१६०

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
पराशरस्य दायादं (उ)	११.६७
पराशरस्य प्रद्वेषो	१.१६१
पराशराज्जातुकर्ण: (उ)	४१.६६
परिक्रान्तेषु लघुषु	५७.९४
परिक्षितस्तु दायादो (उ)	३७.२४६
परिक्षितस्य दायादो (उ)	३७.२२४
परिक्षित्तनयश्चापि (उ)	३७.२५०
परिक्षितो महाराज: (उ)	३७.२१३
परितुष्टोऽस्मिते	३०.२८६
परित्यजति यो मोहात्ते (उ)	१६.२७
परिधाय मनोमन्दं	१०.८१
परिपक्वकषायो हि (उ)	४०.८६
परिभाष्य ततो (उ)	६.२४
परिभ्रमन्ति तद्वद्धा-	५२.८५
परिमण्डलयोर्मध्ये	३४.३६
परिमाण गतौ चोक्ते	१.९५
परिवर्त क्रमादाद्विप्रा	५१.१३
परिवर्त्तेऽथ नवमे	२३.१३३
परिवर्ते चतुर्विंशे ऋक्षो	२३.१९४
परिवर्ते त्रयोविंशे	२३.१९१
परिवादो न कर्तव्यो (उ)	२१.६२
परिवार समन्तातु (उ)	३९.२५३
परिवृत्ते पुन: षष्ठे	२३.१२४
परिवृत्ते युगे तात	६०.३
परिश्रमस्तु यज्ञानां	१४.४
परिसंख्याय कालञ्च (उ)	३१.७१
परिस्रुता महाभागा (उ)	२९.८६
परेण तस्य महती	४९.१४३
परेण पुष्करस्याथ	४९.१४२
परे स्थितो ह्येष पर: (उ)	३९.१०७
परोत्तरे तथा देशे	३४.८९
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव	५१.४५
पर्याय वाचकै: शब्दै:	४.४२
पर्याये तस्य राजाऽनु (उ)	३५.८९
पर्यासपरिमाण्येन	५०.७७
पर्यासपरिमाण्यन्तु	५०.५९
पर्यासपरिमाण्येन (उ)	३९.४०

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
पर्यासपारिमाण्येन	५०.७६
पर्यटन विविधान्	२४.२५
पर्य्यश्नाति य (उ)	३९.१५९
पर्य्यायवाचकै: (उ)	४०.१०२
पर्वण: पर्वकालस्तु	५६.५३
पर्वताग्रनितम्बेषु	५१.३३
पर्वतानुचरश्चैव (उ)	३८.८९
पर्वताश्च व्यशीर्यन्त	३०.१४५
पर्वतै: सुमहद्भिश्च	४.७३
पर्वतोदधि सेविन्यो	८.५२
पर्वतो नारदश्चैव	६१.८५
पर्वतो हिमवान्नाम (उ)	१५.११४
पर्वत: पर्वसायान्तु	२८.१२
पर्व्वण्यास्तिथय:	३०.१५
पवनो हि यथाग्राह्यो	१४.१५
पवनात्मजश्चैव	२९.४
पवर्ण दक्ष चरणा: (उ)	४२.७२
पवित्रं परमं ह्येतत् (उ)	१६.४९
पवित्रं वा द्विज श्रेष्ठ (उ)	१३.६७
पवित्रमस्तु तं देवा (उ)	४४.१९
पवित्रयोर्द्वयीर्योगे (उ)	४६.९
पशवो दीर्घताल्वोष्ठा (उ)	८.२२०
पशुयोनिगता ये च (उ)	४८.४६
पशूनां त्वं पतिर्देव	२७.११
पशूनां द्रव्य हविषाभृक्	५९.४२
पशूनां पतये चैव	३०.१८८
पशूनां पतये चैव (उ)	३५.१९३
पशूनां पुरुषाणाञ्च	१.५५
पश्चिमस्याचलेन्द्रस्य	४१.४८
पश्चिमायां दिशि (उ)	९.१७
पश्चिमायां दिशि तथा	३८.३६
पश्चिमेन तु वक्रेण	५५.३९
पश्यते मण्डलं सूक्ष्मं	१२.२३
पश्यन्ति नारकान्देवा (उ)	३९.१९०
पश्यन्त्येवविधं (उ)	४०.१००
पश्यामि न च जगति (उ)	४२.६०
पश्येताञ्च महामायां	५५.५७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
पाक यज्ञेष्वभिमानी	२९.३८
पाणिग्रहण मन्त्राणां (उ)	२६.९७
पाणिग्रहणमन्त्रेषु (उ)	२६.७९
पाण्डवानान्तु दग्धानां (उ)	२४.६३
पाण्डुरे चारु शिखरे	३९.६०
पाण्डुशिला वै तत्रास्ते (उ)	५०.५४
पाण्डुश्चैव मृकण्डुश्च	२८.५
पाण्डोश्च पुण्डरीकायां	२८.७
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव	३७.६
पातन्धमो नाम	४५.९१
पातये क्रूर हे क्रूर (उ)	२६.१०७
पातालान्ते च विप्रेन्द्रा	५०.४५
पाताले यानि भूतानि (उ)	३८.१५३
पात्रं वै तैजसं दद्यात् (उ)	१८.२०
पात्रमासीतु छन्दांसि (उ)	१.१७६
पात्राणां पयसा चैव	१.११३
पात्रे महति पात्राणि	४९.१७७
पादं वा यदि वाप्यर्द्धं	५४.११४
पाद: क्रान्तस्तृतीयो- (उ)	३८.२
पाद: क्रान्तो द्वितीयोऽयम् (उ)	४.२
पादमाद्यमिदं सम्यक्	१.१७९
पादयोश्चक्रमत्स्यौ	५७.७९
पाद संवाहनं कुर्य्यां (उ)	४५.२४
पादसंवाहनं त्यत्त्वा (उ)	४५.२७
पादाङ्कितां मुण्डपृष्ठां (उ)	४६.७४
पादाङ्किते मुण्डपृष्ठे (उ)	५०.३१
पादाभ्यान्तेन तच्छन्नं (उ)	३७.१४४
पादेन दूरे निक्षिप्त: (उ)	४६.७१
पादेनैकेन मात्रायां (उ)	२५.३९
पादौ पायुरूपस्थञ्च	४.५६
पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ (उ)	१७.४२
पानितोया वितृष्णा	४९.४१
पापछतं नियमेनेदं (उ)	४१.६९
पापञ्च त्रिविधं प्रोक्तं	१८.२
पापेभ्यश्चोपपापेभ्यो (उ)	४६.३७
पाप्मानं प्रजहात्येष (उ)	५०.५३
पाप्मापहं पावनीयम् (उ)	१२.१५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
पायसे नापि चरुणा (उ)	४३.३०
पारदा मुक्तकेशाश्च (उ)	२६.१४०
पारियात्रश्च शैलेन्द्र-	३६.२९
पार्थिवा देवगताश्च (उ)	२९.९४
पार्थिवास्त्वथ सामुद्रा (उ)	३८.१८०
पार्थिवैश्च महाभागै: (उ)	२.७
पार्वत्या सह सेवाद:	५४.२९
पार्वत्या सहितो रुद्र: (उ)	४६.५४
पार्श्वमुत्तरतस्तस्य	३४.१९
पार्श्वेमाल्यवतश्चापि	४३.५
पालयिष्ये प्रजाश्चेति (उ)	१.११५
पालाशं ब्रह्मवर्चस्यम् (उ)	१३.१
पावक: पवमानश्च	२९.२
पावकात्मजसंकाशै: (उ)	३९.२६६
पावनी द्विजशार्दूल	४२.३७
पावनी सर्व्वभूतानां (उ)	१५.११३
पाशुपात्यं च वाणिज्यं (उ)	८.१६३
पाषण्डवैकृतस्थाने (उ)	१६.३०
पिङ्गलान् सत्रिषङ्गाश्च	१०.४४
पिङ्गलोदवृत्तनयन जटिलं (उ)	८.८०
पिण्डं गृह्णाति हि सतां (उ)	१५.९०
पिण्डदो धेनु कारण्ये (उ)	५०.६८
पिण्डपात्रे तिलान्क्षिप्त्वा (उ)	४८.५८
पिण्डमग्नौ सदा (उ)	१४.३१
पिण्डासनं पिण्डदान (उ)	४८.२९
पिण्डासनं पिण्डदानं (उ)	४३.३४
पिण्डोदेयो मया मात: (उ)	४९.७१
पिण्याकं सघृतं (उ)	४३.३२
पिण्याकमथितं चैव (उ)	१६.४५
पितरं सोऽब्रवीदेक: (उ)	२६.८२
पितर: सर्वकालेषु (उ)	१९.७
पितरस्तस्य तुष्यन्ति (उ)	१०.७१
पितरस्तस्य तुष्यन्ति (उ)	१८.३३
पितरोदेव लोकेषु (उ)	११.७९
पितरो हृष्टमनसो (उ)	१३.४८
पिता तामागतां दृष्ट्वा (उ)	२२.४६
पिता तौ क्षुधितौ (उ)	८.१००
पिता पितामहश्चैव	५६.६३
पितापितामहश्चैव (उ)	४८.२३
पितामहं समासाद्य (उ)	४९.५२
पिता सोमस्य वै (उ)	२८.१
पितुर्मातु: स्वभार्याया (उ)	४८.२६
पितुर्विनिर्गतौ हस्तौ (उ)	४९.८१
पितुश्चापरितोषेण (उ)	२६.१०८
पितृगणेभ्य: सप्तभ्यो (उ)	१२.२७
पितृ गन्धर्वयक्षैश्च (उ)	४.६
पितृ गन्धर्व भूतानां (उ)	४१.२
पितृणां कुलसाहस्रम् (उ)	४५.५५
पितृणां दुहिता पुण्या (उ)	१५.३२
पितृदेवाप्सर: सिद्ध:	२.२६
पितृभक्तस्त्वमावस्यां (उ)	१९.२४
पितृ भक्तिरतो नित्यं (उ)	२१.५३
पितृभिर्दानवैश्चैव (उ)	१.९७
पितृभि: पीयमानस्य	५२.६९
पितृभिर्मनुभिश्चैव (उ)	३८.१२१
पितृभिर्मुनिभिर्देवै	६१.१३४
पितृभि: सह लोकाश्च	२१.३०
पितृभ्यो यस्तु माल्यानि (उ)	१३.७
पितृमातृप्रदुष्टानां	११.६
पितृमुक्तिकरी च (उ)	५०.५१
पितृ वन्मन्यमानस्तान्	९.११
पितृ वन्मन्यमानस्य	३०.२
पितृवंश प्रसङ्गेन	१.७१
पितृवंश प्रसङ्गेन कथा	३१.२
पितृवंशे मृता ये च (उ)	४८.५१
पितृणां देवतानांच	१.८६
पितृणां द्वि प्रकाराणा-	१.९८
पितृणां द्विप्रकाराणां श्राद्धेन	१.९९
पितृणां पतये चैव	२४.१०४
पितृणामाधिपत्यञ्च	२२.८२
पितृणां मानसी कन्या	१.३४
पितृणामानुपूर्व्येण (उ)	११.९३
पितृदेवा मच्छास्मात् (उ)	१९.२५
पितृन्नयेद् ब्रह्मलोकम् (उ)	४९.९७
पितृन् पितामहांश्चैव (उ)	१३.२३
पितृन् प्रीणाति वै (उ)	११.९६
पितृन्विसृज्य चाचम्य	४८.५९
पितृंश्च यो यजेद् (उ)	२१.८४
पितृंस्तत्रिषु लोकेषु (उ)	१२.१८
पितृन्स्वर्गन्येत्नत्वा (उ)	५०.६४
पित्तमग्नि: स्मृतावेताव-	३५.५१
पित्तला: काचलाश्चैव	४४.१५
पित्राऽपराञ्जिता: (उ)	१.१३२
पित्रा यथोक्तं काव्यं सा (उ)	३५.१५३
पित्रा रुदंस्तदाराष्ट्रात् (उ)	२६.९६
पित्रा विवदमानश्च (उ)	२१.३४
पित्र्ये रात्र्यहनी	५७.९
पिनाकपाणिर्भगवान्	५५.५४
पिनाकिके प्रसिद्धाय	२४.१२९
पिपासिताय श्रान्ताय (उ)	१७.१९
पिबन्तिं द्विकलाकालं	५२.६६
पिबन्त्यम्बुमयीर्देवा	५६.२५
पिशाचकाच्छैलवरात्	४२.३२
पिशाचके गिरिवरे	३९.५७
पिशाचा: कुम्भपात्रास्ते (उ)	८.२६९
पिशाचासुर गन्धर्वा	५९.२
पिशाचास्ते तु विज्ञेया (उ)	८.२६०
पिशिताय पिशङ्गाय	२४.१२४
पीतगन्धानुलिप्ताङ्ग:	२३.३
पीतन्तु सोमं द्विकाला	५२.३८
पीतभौमञ्चतुर्थन्तु	५०.१४
पीतामाल्याम्बरधरा:	२३.१५
पीताशितानि पचति	२७.४४
पीन वृत्तायतस्कन्धम्	६.१४
पीयन्ते यैरिमा नद्यो	४५.९४
पीवरीं कुम्भकारीश्च	४४.२२
पुच्छेग्निश्च महेन्द्रश्च	५२.९५
पुण्डरीकं महातीर्थे (उ)	१५.५४
पुण्डरीका पयोदा	४७.६७
पुण्डरीका सुगन्धा च (उ)	८.७
पुण्डरीकैर्महापद्मै:	३८.५२

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
पुण्ड्राकलिङ्गाश्च (उ)	३७.३४	पुनरुक्ता बरुत्वात्तु (उ)	३८.४०	पुरुकुत्सस्य दायाद (उ)	२६.७४
पुण्यं तच्छ्रीसरो	३७.५	पुनर्द्वारवतीं ग्राप्ते (उ)	३४.९०	पुरुकुत्सोऽथ मान्धाता	५९.९९
पुण्यतीर्थे हिमवतो	४५.७३	पुनर्भवे तपस्तेपे शतं (उ)	३७.२०७	पुरुजानुः सुशान्तेस्तु (उ)	३७.१९०
पुण्यः स देशो मन्तव्यः	१.१६६	पुनर्महर्षयस्तस्य (उ)	१.१२५	पुरुरवस ऐलस्य	१.९०
पुण्यस्य सुतो विद्वान् (उ)	२६.२०८	पुनश्च जन्म चाप्युक्तम्	१.१३५	पुरुरवसि विक्रान्तु	२.१३
पुण्या मन्दाकिनी चैव	४७.८	पुनश्च त्रिविधं विद्धि	६१.५२	पुरुषं कथतज्ज्ञैः (उ)	४०.११७
पुण्यो यस्त्रिषु लोकेषु (उ)	१५.४	पुनश्च पञ्चमे पृथ्वी (उ)	२.१६	पुरुषं कथयस्वाय (उ)	४०.११६
पुत्र दारघनामूला (उ)	१९.२	पुनश्चैनामलंकृत्य (उ)	३७.७६	पुरुषाः कश्यपस्य (उ)	३४.२३०
पुत्रं सर्वगुणोपेते (उ)	३४.१३	पुनः सत्यवती वाक्यम् (उ)	२९.७८	पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च	४.६६
पुत्रः कीर्तिरथस्यापि (उ)	२७.१२	पुनः सन्निहितानां (उ)	१५.६६	पुरुषायपुराणाय	१.३६
पुत्रत्वं कल्पयाभास (उ)	२९.६२	पुनस्तानब्रवीद्ब्रह्मा (उ)	१०.२४	पुरैरायनैः पुण्यैः	४१.७४
पुत्रत्वमीशेन यथा	२५.५४	पुनस्तु मम देवेशो	२३.११७	पुरैश्च विविधाकारैः	९.१०५
पुत्रत्वेनाभियुङ्क्ष्वत्वं	२५.११	पुनः स्तुत्वा देवगणैः (उ)	१.१७७	पुर्य्ययोध्याजनैः (उ)	४९.७९
पुत्रदारघनामूला (उ)	१९.२	पुनीयादेकविशन्तु (उ)	२१.१५	पुलस्त्यश्च तथा	९.९४
पुत्र पौत्र समाकीर्ण	५७.८४	पुरश्च शंकुकर्णस्य	५०.१६	पुलस्त्यपुत्रस्य (उ)	१.३८
पुत्रमध्यापयामास	६१.२७	पुरमाशीविषैः पूर्ण	४०.१०	पुलहस्य मृगाः पुत्राः	९.६४
पुत्रमप्रतिमन्नाम्ना (उ)	४.११२	पुरस्ताद् ब्रह्मलोकस्य (उ)	३९.२३०	पुलहस्यात्मजा सर्गः (उ)	८.३१६
पुत्रवत्परिपाल्यन्तो (उ)	३४.२१४	पुराकृत युगे विप्रो	५४.१८	पुलहात्मजपुत्रास्ते (उ)	३८.१०६
पुत्रः सर्वगुणोपेतो (उ)	३४.७	पुराणज्ञः सुमनसः	२.४१	पुलिनेष्वापगानां (उ)	१५.१२०
पुत्रः सोऽग्नेर्मन्युमतो	२९.३३	पुराण पुरुषं देवं विश्वा	२२.१३	पुलेयाश्च सुरालाश्च	४५.१२९
पुत्रस्तु रुक्मकवचो (उ)	३३.२५	पुराण वेदो ह्यखिलो	१.१५	पुलोवापि समाः सप्त (उ)	३७.३५१
पुत्रानात्मसमानन्यान्	२५.८१	पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि	१.९	पुराणामजमीढस्य (उ)	३७.२०५
पुत्रा मणिवरस्यैते (उ)	८.१५७	पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि	१.४१	पुष्करद्वीप विस्ताराद	४९.१११
पुत्रार्थन्तु विशाखासु (उ)	२०.९	पुराणाख्या न जिज्ञासुः	१.६	पुष्कराच्च महाशैलं	४२.७०
पुत्रार्थी लभते पुत्रान् (उ)	४७.५५	पुराणार्थं पुराणज्ञैः	१.२५	पुष्कराधिपतिश्चापि	३३.१४
पुत्राश्च ते स्मृता केषां (उ)	१०.७	पुराणि घोषान ग्रामांश्च (उ)	३२.४०	पुष्करा नाम ते मेघा	५१.३९
पुत्रे नास्ति विशेषो (उ)	२९.८१	पुराणि लोकपालानां	५०.८६	पूष्करेण तू द्वीपेन	४९.१०४
पुत्रैरध्यापिता ये (उ)	३९.१७३	पुराणि सन्निविष्टानि	४८.७	पुष्करे पर्वतः श्रीमान्	४९.१०५
पुत्रोऽश्वमेधदत्तो (उ)	३७.२५३	पुराणेष्विति हासेषु (उ)	४२.१०८	पूष्करेष्वक्षयं श्राद्धं (उ)	१५.४०
पुत्रो धनकपीवांश्च	२८.२९	पुरा तमसि चाव्यक्ते	५५.११	पुष्टया लाभः सुतश्चापि	१०.३४
पुत्रो भव ममारिघ्न मुदं	२४.५०	पुरा देवासुरे तस्मिन् (उ)	९.५१	पुष्टिकामं चन्यग्रोधं (उ)	१३.२
पुत्रो मम हतौ राजन् (उ)	२९.२४	पुरा मेरोर्द्विज श्रेष्ठाः	३०.८१	पुष्टिचाङ्गिरसो ज्ञेयः (उ)	३८.८३
पुनः काला तरेणैव	८.८९	पुरारणी गर्भमधत्त दिव्यं (उ)	३५.२३	पूष्पगन्धादि धूपानामेष (उ)	१३.५२
पुनः प्रजास्तुतामोहात्	८.१६०	पुरा स तामनुसरन्न (उ)	३२.२९	पुष्पगिर्युज्जयन्तौ	४५.९२
पुनरष्टगुणस्यापि	१३.९	पुरा हिमवतः पृष्ठे	३०.९४	पुष्पदन्तो बृहत्सामा (उ)	८.२१५
पुनरादाय दृश्याग्निम् (उ)	२९.४२	पुराह्येकार्णवे वृत्ते	२६.७	पुष्पमित्रसुताश्चाष्टौ (उ)	३७.३३२
पुनरुक्ता बहुत्वाच्च (उ)	३७.४२९	पुरुकुत्समम्बरीषं (उ)	२६.७२	पुष्पमित्रस्तु सेनानी (उ)	३७.३३१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
पुष्पवन्त स्वरूपाय	३४.१३५
पुष्पवृष्टिं विमुञ्चन्ति	३६.६
पुष्पाणां च फलानां (उ)	१४.३६
पुष्पादीनां तृणानाच्च (उ)	१७.३३
पुष्पैर्मनो हरैर्व्याप्तं	३७.२०
पुष्पोत्कटाश्च (उ)	९.३४
पुष्पौडुपवहाभिश्च	३९.७
पूजनश्चैव विप्राणां (उ)	१४.२५
पूजयित्वा तु पात्राणि (उ)	१९.२५
पूजयेच्च पितॄन पूर्व (उ)	१४.२
पूजयेच्चार्घ्यपात्रेण (उ)	१०.७५
पूजा तु महती चैव (उ)	३०.४१
पूजान्तु विपुलं कृत्वा देवी (उ)	३०.४५
पूरयित्वा शरीरन्तु	११.२०
पुरुणा तु कृतं वाक्यं (उ)	३१.८३
पुरो पुत्रो महाबाहु (उ)	३७.११६
पुरो प्रीतोऽमि (उ)	३१.७३
पुरो प्रीतोऽस्मिभद्रन्ते (उ)	३१.७०
पुरोनुमती राजा (उ)	३१.६१
पूतना मातृ सामान्याः (उ)	८.१८४
पूरोत्वं प्रतिपद्यस्व (उ)	३१.५४
पूर्णकामस्तदा तस्मिन् (उ)	३६.१९
पूर्णमासः सरस्वत्यां	२८.९
पूर्ण वर्षशतं तावत् (उ)	६.९२
पूर्ण वर्षसहस्रं वै (उ)	३५.११७
पूर्ण वर्षसहस्रं वै (उ)	३७.३०३
पूर्णं शतसहस्रन्तु (उ)	३९.१३०
पूर्ण शय्या तु यो दद्यात्	१८.८
पूर्णा वसुमती सर्वा	४१.७७
पूर्णाः सप्तस्वरा ह्येषं (उ)	२४.६६
पूर्णिमावास्ययोः	५६.८९
पूर्णे धूमव्रते चापि घोरे (उ)	३५.१५५
पूर्णेन्दोः पूर्णपक्षे	५६.३८
पूर्ण पूर्णे ततः कल्पे (उ)	३९.६५
पूर्णे पूर्णे सहस्रे (उ)	११.१०
पूर्णे वर्ष सहस्रे ते (उ)	३१.४६
पूर्णं वर्ष सहस्रे ते (उ)	३१.५६
पूर्णं वर्ष सहस्रे द्वे	५८.२८
पूर्णे व्रते महातेजा (उ)	३३.१३
पूर्वकीर्तितवाञ्छ्रेष्ठो (उ)	१३.४०
पूर्वजस्य मनोस्तुल्यौ (उ)	२२.५०
पूर्वश्चैत्ररथं नाम	३६.११
पूर्वतः श्वेतवर्णाऽसौ	३४.१७
पूर्वते संप्रसूयन्ते (उ)	३९.५०
पूर्व त्रैलोक्य विजये	५५.३
पूर्व देवेषु तेष्वेव	६१.१६८
पूर्व द्वीपस्य वाहिन्यः	४३.३२
पूर्व वियोगो ज्ञानेन (उ)	४०.७९
पूर्वन्तु वितथं तस्यकृतं (उ)	३७.१५२
पूर्व माडी बके युद्धे (उ)	२६.२५
पूर्वमेवानु योगन्तु (उ)	२५.४३
पूर्वस्यान्दिशि नागानां (उ)	३४.१२५
पूर्वान् देशांश्च सेवन्ती	४७.५७
पूर्वापरौ समाख्यातौ	४५.१
पूर्वायिता महाभागा	४७.७३
पूर्वेण पश्चिमं ज्ञेयं	६१.१२७
पूर्वेण मन्दरो नाम	३५.१६
पूर्वेण माल्यवान्	४६.१९
पूर्वेण वदनेनत्वम्	५५.३८
पूर्वेणांशेनदेवानां	४२.१३
पूर्वेभ्यो वेदयित्वेह	५९.३१
पूर्वोक्ता या मया	८.१९५
पूर्वोक्तौ च गुणच्छेदौ	२१.१५
पूर्वोत्तरे फाल्गुन्यौ (उ)	५.४९
पूर्वोपायोपपन्नेन	३०.११३
पूर्व्वं निवेदयेत्पिण्डं (उ)	१४.२६
पूर्वाचार्य्यमतं बुद्ध्वा (उ)	२५.१
पूर्वाह्ने चापराह्ने तु	५०.१०४
पृथक्स्थिताश्च बहवौ (उ)	४६.७३
पृथग्ज्ञानेन क्षेत्रज्ञाः (उ)	४०.४३
पृथां दुहितां चक्रे कुन्ति (उ)	३४.१५०
पृथा च श्रुतवेदा च (उ)	३४.१४९
पृथाजज्ञे ततः पुत्रान् (उ)	३४.१५२
पृथिवीं चान्तरिक्षं (उ)	३९.१३
पृथिवीं धारयेत्सर्वां	१२.१८
पृथिवी विषयं सर्वमरुन्धत्यां (उ)	५.३५
पृथिव्यग्न्यम्बवायूनां	५०.५६
पृथिव्याच्चाग्निवायूनां	४९.१६७
पृथिव्यादि प्रसंगेन	५६.२
पृथिव्यामन्तरिक्षे	३०.९८
पृथिव्या विस्तरं	५०.७१
पृथिव्यां तानि तीर्थानि (उ)	४४.२८
पृथिव्यां प्रथमस्कन्धो (उ)	६.१११
पृथिव्यां प्रथमस्कन्धो (उ)	६.११४
पृथिव्यां वार्धविस्तारो	५०.६९
पृथिव्यै चान्तरिक्षाय (उ)	३५.१९९
पृथुकर्त्तिः पृथुन्दाता (उ)	३३.२२
पृथुक्षेपोच्च शिखरैः	३८.३
पृथुना पिचवैन्येन	१.११३
पृथुश्रवास्तथा नाको (उ)	३८.६९
पृथुस्तस्यात् समुत्पन्नः (उ)	१.१२६
पृथोः पूर्वेण साधर्मतुल्य (उ)	१.१४०
पृथोः सुतायाः सम्भूतः (उ)	९.८९
पृथोस्तु पुत्रौ विक्रान्तौ (उ)	२.२२
पृथ्वीं धारयमाणस्य	१२.२०
पृथ्वीरसोद्भवं नाम	८.४७
पृथ्व्यादयो विकारास्ते	४९.१७३
पृषदश्वो विरुपश्च	५९.१००
पृष्टत्स्विदं यथा विप्रैः	४६.३
पृष्टांचैतां कथाम्	४.५
पृष्टेन चानु पृष्टास्ते	१.१६४
पृष्टेन मुनिभिः पूर्वम्	१.४१
पृष्ठतः परिकृष्टश्च	६१.४६
पृष्ठतः पाणिपादाश्च (उ)	८.२७२
पृष्ठतो यात नियताः	१.१६५
पृष्ठतो विमुखाश्चैव (उ)	३६.४०
पृष्ठेयावत् प्रभासौरी	५०.१५७
पैशाचेन पिशाचाश्च	१२.३७
पैशाचेन विवाहेन (उ)	८.११७
पौत्रेयस्तु ततो ह्यग्नि	२९.२७
पौत्रौ रामस्य जज्ञाते (उ)	३४.१६४

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
पौनिका मौनिकाश्चैव	४५.१२७
पौरजानपदैस्तुष्टैः (उ)	३१.८७
पौरवी रोहिणी चैव (उ)	३४.१६०
पौराणामहिते युक्तः (उ)	२६.१६५
पौराणिकस्तदा सूत	४५.७१
पौरुकुत्सा भवद्धार्या उ)	२९.६३
पौरुषं कर्म दैवञ्च	९.५६
पौरुषेयो धवश्चैव	५२.८
पौर्णमास्येन हविषा (उ)	३७.२४९
पौर्णमासे व्यतीपाते	५६.३६
पौर्णमास्यां स	५२.५९
पौलस्त्यश्चैव (उ)	१.१६
पौलस्त्यस्य ऋषेश्चापि	२८.२३
पौलस्त्या नैऋताश्चैव (उ)	९.५६
पौलहस्तत्त्वदर्शी उ)	३८.१०७
पौलहो वनपीठश्च (उ)	१.४२
पौलोमाः कालकेयाश्च (उ)	७.२७
प्रकाशं जनितो लोके	१.३८
प्रकाशञ्चाप्रकाशञ्च	२५.२०
प्रकाशा बहिरन्तश्च	६.५१
प्रकाशितन्तु सहसा (उ)	२९.२६
प्रकाशो भगवान् योगी (उ)	३४.१९४
प्रकाशश्च तथौष्ण्यञ्च	५३.१३
प्रकृतिर्नियता रौद्री	९.८१
प्रकृत्यवस्थेषु च	३.२२
प्रकृत्यां चैव तत्सर्व (उ)	४०.५०
प्रक्रिया प्रथमे पादे (उ)	४१.४४
प्रक्षाल्य चाद्भिर्हस्तो (उ)	१७.२७
प्रक्षाल्य पात्रं निःक्षिप्य (उ)	१७.३२
प्रक्षीयते पुरस्यान्तः	५२.६३
प्रख्यातबलवीर्य्यस्य (उ)	३५.६२
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु (उ)	१४.४
प्रख्याययित्वाह्यात्मानम्	७.३६
प्रगृह्य ज्वलितं शूलं	३०.९२
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः	५८.७८
प्रचेत सोऽरिष्टनेमि (उ)	४.५४
प्रचेताश्चैव यो देवो (उ)	१.११

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
प्रच्छेन्नपापा ये	५७.५९
प्रजाकामोऽस्म्यहं	२५.९
प्रजाः क्षयं प्रयास्यन्ति (उ)	३६.१२३
प्रजागरे ततश्चेन्द्रो (उ)	३५.१४९
प्रजा च यौवनं प्राप्ता (उ)	३१.५३
प्रजा तु भ्रूणहत्यायामश्च	५८.६९
प्रजानां पतयश्चान्ये (उ)	१.७२
प्रजानां पतयः सर्वे (उ)	३९.३६
प्रजानामत्तुकामानाम् (उ)	२२.८
प्रजानेरभवत् पुत्रः	२४.५
प्रजापति मुखैर्देवैः	३१.४६
प्रजापतिर्वै रजसः (उ)	९.१६
प्रजापति सुताह्यैते (उ)	२१.८०
प्रजापतिः स्मृता यस्तु	३०.२१
प्रजापतीन लोकनमस्कृतास्तथा	३.२
प्रजापतीनां पतये सिद्धानां	२४.१०६
प्रजापतेः कश्यपाय (उ)	१२.२६
प्रजापतेश्च विष्णोश्च (उ)	५.८२
प्रजापते सृष्टिमिमाय्	३.६
प्रजापुष्टिर्द्युतिः कीर्तिः (उ)	१३.४२
प्रजाः प्रजानाम्पतय	५.४
प्रजाभिस्तपसा चैव (उ)	३८.३५
प्रजायन्ते ततः शूरा	५७.६४
प्रजार्थ तपतां तेषां	६१.१६२
प्रजार्थमिह यूयं (उ)	६.१४
प्रजार्थ मृषयस्तस्य (उ)	१.९३
प्रजावतां प्रशंसेव	५६.६९
प्रजा विवर्द्धयिषवः (उ)	४.१५२
प्रजा वै चिन्तमानस्य	२१.५५
प्रजा वै स्त्रष्टुकामस्य	२१.५७
प्रजासन्तान कृद्भिः (उ)	४.११
प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः (उ)	४.१२१
प्रजाः सृजेति व्यादिष्टो	१०.४२
प्रजास्त्वपहतास्तस्य (उ)	३७.८७
प्रजास्रष्टुं तथाकृतिं	२१.५१
प्रजेश देवर्षिमनुप्रधानां	६१.१८५
प्रज्ञा पुष्टिः स्मृतिर्मेधा (उ)	११.१११

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
प्रणव प्रणवेशाय भक्तानां	३४.१३४
प्रणवावस्थितं भूयो	६१.१०८
प्रणवो धनुः शरो	२०.५
प्रणश्यति तदा सिद्धिः	८.७६
प्रणष्टेषु च दैत्येषु	५५.४
प्रणाशे त्वथ सिद्धिर्नाम्	५७.४५
प्रणिपत्य सानुनयं (उ)	६.१८
प्रणोदितश्च वंशार्थम्	२.३४
तद्वोचे नभो नाम	२९.२१
प्रतावेस्तु विभुः पुत्रः	३३.५७
प्रतिकूलं पितुर्यश्च (उ)	३१.८१
प्रतिगृह्णाति कुर्वन्ति	८.१३६
प्रतिग्रहादुपावृतः (उ)	४८.४
प्रतिपक्षसुतश्चापि (उ)	३१.८
प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य	५६.४५
प्रतिपत्पञ्चदश्योश्च	५६.५४
प्रतिपत्स्यामि ते (उ)	३१.५८
प्रतिपन्नः कलियुगः	३७.४२३
प्रतिपूर्व्वञ्च गमने (उ)	२८.४४
प्रतिपेदे जरां राजा (उ)	२१.७४
प्रतिभाश्रवणे चैव	१२.६
प्रतिलभ्य ततः संज्ञा	११.४९
प्रतिशापश्च रुद्रस्य	१.७२
प्रतिश्रयं सदा दद्यात् (उ)	१८.५९
प्रतिषेधश्च वैरस्य	१.७२
प्रतिष्ठते गुणैर्हीनो	५८.२९
प्रतिष्ठाया ह्यपायन्तु	८.५
प्रतीच्यान्तु पुनर्मेरो-	५०.८९
प्रतीच्यामुत्तरस्याञ्च (उ)	३१.८९
प्रत्यक्षं दृश्यते धर्मः (उ)	१५.९१
प्रत्यंगानां तु धर्मस्य	५९.५५
प्रत्यग्रहः कुशश्चैव (उ)	३७.२१७
प्रत्यपादयदिन्द्राय (उ)	५.१३२
प्रत्यब्रवन् पुनः सूतम्	२.१
प्रत्यादेशो ह्यशिष्टानां (उ)	१५.८९
प्रत्यासन्नमथायातं	२४.५३
प्रत्याहते तदा (उ)	२.२८

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
प्रत्याहारं प्रवक्ष्यामि (उ)	४०.१	प्रध्यापन यि सतां (उ)	४.११३.	प्रयोजनानि चत्वारि	११.४
प्रत्याहारं पुनर्विद्धि (उ)	१५.१३१	प्रनष्टश्रुति धर्माश्च (उ)	३६.१२०	प्रवर्त्तन्ते ऋषेर्यस्मान्	५९.८९
प्रत्याहारे तदा सर्गे (उ)	४०.२७	प्रनष्टे नृपशब्दे च (उ)	३७.३९१	प्रवर्तिते पुन: सर्गे	७.३७
प्रत्याहारे तु भेदानाम्	७.३३	प्रनष्टे रूपतन्मात्रे (उ)	४०.१३	प्रवाल कुम्भसदृशै:	३५.४४
प्रत्याहते पूर्वकल्पे	७.७	प्रपञ्चस्यापि मिथ्यात्वे (उ	) ४२.९२	प्रविभागश्च रश्मीनाम	१.९४
प्रत्युवाच ततो वैन्यम् (उ)	१.१६५	प्रपत्स्यन्ते यथान्यायं (उ)	३६.१२४	प्रविराशी च वादश्च (उ)	१.४७
प्रत्युवाचोत्तरं चैव	२४.१८	प्रपद्य परया भक्तया (उ)	३९.३५१	प्रविवेश ततो रामो (उ)	३४.७८
प्रत्यूषस्य विदु: (उ)	५.२६	प्रपद्ये देवमीशानम्	१.१	प्रविश्य चापि भगवास्त (उ)	३४.४४
प्रथमतलश्चैव सुतलन्तु	५०.११	प्रपूर्वाच्छंसतेर्धातो:	५९.११०	प्रविश्य वदने राहोर्य:	३०.२७४
प्रथमं मेरुसावर्णे (उ)	३८.५९	प्रप्रच्छुर्मातरिश्वानं (उ)	३९.११२	प्रविश्य सर्वभूतानि (उ)	३९.३४१
प्रथमं सर्वधर्माणां	२१.३१	प्रबोध: प्रलयश्चैव	४.१२	प्रविष्ट: शोभते शुभ्रो	३४.५०
प्रथमं सर्वशास्त्रारणम्	१.५४	प्रभव: सर्वलोकानां	१.११८	प्रविष्टे च बिलं कृष्णे (उ)	३४.४६
प्रथम: सूर्य सकाश:	४९.३१	प्रभाया नहुष: पुत्रो (उ)	७.२४	प्रविष्टो मानुषीं (उ)	३६.६८
प्रथमस्तु गरण: प्रोक्तौ (उ)	६.१२४	प्रभाव विजयैश्वर्य्य- (उ)	३९.८४	प्रविस्टष्टे मनौ तास्मिन् (उ)	२३.२०
प्रथमात्वग्निका नाम (उ)	८.२१	प्रभासं हि विनिर्भिद्य (उ)	४६.१४	प्रवृतचक्रो बलवान	५८.८४
प्रथमानन्तरैरिष्ट्वा (उ)	३९.४६	प्रभासस्य तु या भार्या (उ)	५.२८	प्रवृतचक्रो बलवान् (उ)	३६.१०९
प्रथमावैद्युतीमात्रा	२०.२	प्रभासस्य तु सा (उ)	२२.१६	प्रवृत्तयश्चभूतानाम्	१.१५८
प्रथमा सुकुमारीति	४९.८०	प्रभासो भासकृद्धर्म्म- (उ)	३३.१५	प्रवृत्तिकाले रजसा (उ)	४१.२५
प्रथमेऽह्नि विधि प्रोक्तो (उ)	४९.३९	प्रभाहि सौरी पादेन	५०.११२	प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च (उ)	५.८८
प्रथमे तु तले ख्यातम्	५०.१५	प्रभाहि सौरी पादेन	५३.११	प्रवृत्ते ज्योतिषां चक्रे	५४.७
प्रथमो महत: सर्गो	६.५५	प्रभिन्नाञ्जनसंकाशा	४६.२३	प्रवृत्ते तु पुनस्तस्मिस्तत:	५८.१०३
प्रथिता प्रविभक्ता (उ)	२.४	प्रभुं भूतभविष्यस्य	१.२	प्रवृत्ते पूर्वत: पूर्व (उ)	४१.२४
प्रथितैर्वचोभिरग्र्यै:	५२.४८	प्रभुर्विभुर्विमासश्च (उ)	३८.१६	प्रवृद्ध वेगा वडवा (उ)	३४.७१
प्रथितैस्तैर्वचोभिस्तु	५२.२५	प्रभूत धनधान्याढ्यम्	४५.६३	प्रवृष्टैश्च तथात्यर्थं (उ)	३८.१७१
प्रदक्षिणं कुर्वाण	४२.४७	प्रमथैर्विविधैर्देवैस्तथा (उ)	११.५०	प्रशंसन्ति द्विजास्तृप्ता (उ)	५०.५
प्रदाता चेति युष्माकम् (उ)	१४.१४	प्रमर्दन्ति तथा चान्ये	३०.१४९	प्रशंसा तपसश्चोक्ता	१.१०३
प्रदुष्टे यज्ञवादे	३०.१६७	प्रमाणं योजनाग्रेण	१.७६	प्रशान्तस्तु वने घोरे (उ)	३३.३०
प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च (उ)	३४.२३७	प्रमाण योजनाग्रेण	१.८३	प्रशाम्यति तदा वायु: (उ)	४०.१६
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय (उ)	४९.२५	प्रमाणं वै तथा चोक्तं (उ)	३७.४१०	प्रशासतीमां धर्मेण	१.१०
प्रधानं गुण वैषम्यात्सर्ग-	५.२०	प्रमादस्तत्र सञ्जज्ञे (उ)	१.१३७	प्रश्नानां दुर्वचत्वं च	१.१०३
प्रधानं पुरुषाणाञ्च (उ)	४१.१२	प्रमादातत्र सञ्जज्ञे	१.२९	प्र संख्याय च दु:खानि	१.१५३
प्रधान भूता देवेन्द्रा (उ)	३.२१	प्रमादान्म्रियते (उ)	४३.१९	प्रसन्नस्वादुसलिलास्तत्र	४८.४
प्रधान भूतो यस्तेषां (उ)	५.८४	प्रम्लो चेति च विख्याता	५२.१७	प्रसन्नस्वादु सलिला:	३८.६
प्रधानमव्ययं ज्योतिर-	२४.६५	प्रयता इति विख्याता (उ)	२६.४	प्रसह्य धर्षितस्तत्र (उ)	२८.४६
प्रधानमात्मयोनिश्च	६१.११२	प्रयतिष्यामि देवेन्द्र (उ)	३०.९६	प्रसादजं यस्य विभोर- (उ)	३४.१९७
प्रधानशील: सापत्य (उ)	२०.७	प्रयान्ति पितर: सर्वे (उ)	४९.८८	प्रसादिते गते तस्मिन् (उ)	३७.५७
प्रधानात् क्षोम्यमाणातु	५.१२	प्रयोग: षड्गुणीयैश्च	१.१६४	प्रसादमतुलं कृत्वा	२५.१७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
प्रसाद्य तु ततो विप्रा (उ)	३४.८४
प्रसीदति मनस्तासु	८.१२२
प्रसीद मम देवेश	३०.२८४
प्रसीद मानात् सोमाच्च	५६.८
प्रसुश्रुतो मनो पुत्रः (उ)	२६.२१०
प्रसूताः सप्त नद्यस्ताः	४७.४१
प्रसूत्यामपि दक्षस्य	१.६१
प्रसेनमवधीत् सिंह (उ)	३४.४२
प्रसेनश्च महाभागः (उ)	३४.२०
प्रस्थः सप्तोदकाश्चैव (उ)	३८.२१५
प्रहस्य चैनं भगवानिदं	३०.१७२
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः	२४.१३८
प्रह्लादस्तमथोवाच (उ)	३६.४४
प्रह्लादस्य ततश्चाद (उ)	३५.९३
प्रह्लादस्य निदेश (उ)	३६.७०
प्रह्लादी विश्रुता तस्य (उ)	२२.१६
प्रकाशयञ्च तथा	५०.११४
प्राकृतेऽडेविबुद्धे सन्	४.६८
प्राकृतेन च बन्धेन (उ)	४०.५९
प्राकृतो वैकृतश्चैव	६.६०
प्राक्सर्गे दह्यमाने तु	८.९
प्राक्सर्व्वे दह्यमानास्तु	६.२८
प्रागुक्ता तु मया	९.७६
प्रागुक्ता या मया तुभ्यम्	८.२२
प्रागुत्तरेण कैलासाद्	४७.४
प्राग्दक्षिणमुखान्भूमौ (उ)	१२.१०
प्राग्दक्षिणा तु सावर्त्ता (उ)	१५.१३
प्राचीन बर्हिर्भगवान् (उ)	२.२४
प्राचीन योग पुत्रश्च	६१.४२
प्राची वा यदि वोदीची	१९.३४
प्राची सरस्वती तीर्थे (उ)	५०.२९
प्राचेतसस्य दक्षस्य	३०.७९
प्राचेतसस्य दक्षस्य (उ)	३८.३०
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां	८.१६६
प्राजापत्यस्तथा (उ)	५.४१
प्राजापत्या तनुर्या (उ)	५.११९
प्राजापत्या द्वितीया (उ)	१९.३
प्राजापत्या श्रुतिनित्या	६१.७५
प्राणस्थानानिभिन्दन्हि (उ)	४०.८८
प्राणात्प्रजापतेर्जन्म (उ)	२.४७
प्राणाद्या वृत्तयः पञ्च	३.३८
प्राणानाञ्च निरोधस्तु	१०.७४
प्राणानायच्छतः (उ)	३८.७२
प्राणापाना बुदानश्च (उ)	५.१९
प्राणापानौ सन्निरुध्य	३०.१७०
प्राणापानी समानश्च (उ)	३५.५३
प्राणापानौ समौ कृत्वा (उ)	१५.१३०
प्राणायाम गतिश्चापि	१०.७३
प्राणायामपरः श्रीमान्	२३.२६
प्राणायामस्तथा ध्यानं	१०.७१
प्राणायामेन तत्सर्वं	११.५१
प्राणायामेन युक्तस्य	१०.८५
प्राणायामेन युक्तस्य	११.२३
प्राणायामैर्दहेद्दोषान्	१०.८८
प्राणायेति ततस्तस्य	१५.६
प्राणे च रमते नित्यं	१९.३७
प्राणोऽपानस्तथोदानः (उ)	५.१८
प्राणो दक्षस्तु विज्ञेयः	१०.१८
प्राणोपानः समानश्च	३०.२४५
प्रातगृहात्पश्चिमद - (उ)	१६.५९
प्रादाच्च तस्य भगवान् (उ)	२६.१४९
प्रादुर्बभूवुस्तासां च	८.८६
प्रादुर्भावश्च त्रेतायाम्	८.१२९
प्रादुर्भावे तदान्यस्य (उ)	३६.७२
प्रादुर्भावोऽथ रुद्रस्य	१.६७
प्रादुर्भावो वसिष्ठस्य	१.१५९
प्रादुर्भूतं विषघोरं	५४.८५
प्रादेशमात्रमव्यक्त	५५.२१
प्राधानिकीमिमां (उ)	४१.४७
प्रापितामहास्तु वै	५६.१६
प्राप्तः पर्य्यायकाले (उ)	३६.५०
प्राप्त योगं तथा ज्ञानं	२३.११४
प्राप्ते त्रेतायुगमुखे	६१.९८
प्राप्ते प्राप्ते तु कल्पान्ते (उ)	५.१४१
प्राप्नुयाद्विषयांश्चैव (उ)	५.१४९
प्राप्नुवन्ति च भामिस्तु (उ)	३८.१४५
प्राप्यते वाचिदादेवाङ्कुशेनैव	१६.२०
प्राप्य माहेश्वरं योगं	२३.१३२
प्राप्यावभृथमव्यग्रः (उ)	२८.२६
प्रायशः प्रवरः पुण्यः	१५.५१
प्रायशश्चन्द्र योगानि	५३.६९
प्रायश्चितं चरध्वं वै (उ)	१०.२०
प्रायश्चित्तं दुरिष्टम् वा	२.३२
प्रायेण देवाः सर्वे वै (उ)	८.३१२
प्रारम्भे च समाप्तौ (उ)	४९.६७
प्रार्थयन्दीर्घमायुश्च (उ)	१४.३३
प्रार्थितोऽत्र महानद्या (उ)	४६.१७
प्राशितं दधियत्तेऽद्य (उ)	३७.८३
प्राहुर्वेदान् वेदविदो (उ)	१७.७८
प्राहेति तं वसिष्ठोऽपि (उ)	५०.६७
प्रियदर्शनास्मुतनयो	२४.७७
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तेः	३३.६
प्रियव्रतात् प्रजावन्तः	३३.७
प्रिय व्रतोऽभिषिच्येतान्	३३.१०
प्रिय व्रतोत्तानपादौ	१.६०
प्रिय व्रतोत्तानपादौ	१०.१६
प्रिय व्रतोत्तानपादौ	५७.१२२
प्रीणयामीति यत्तोयं (उ)	५०.१७
प्रीणाति देवानमृतेन	५२.३७
प्रीतं तथा कृतातिथ्यम्	१.१६९
प्रीतः स वै वरेणाय (उ)	३७.६६
प्रीता तेऽहं सुरश्रेष्ठ (उ)	६.९८
प्रीति चैव पुलस्त्याय	१०.३०
प्रीतेन चामरत्वं वै (उ)	३६.५६
प्रीतोऽहमनया भक्तया	२५.७
प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां	२८.२१
प्रीत्या वरांश्च शतशो (उ)	३०.४८
प्रीयन्ते पितरो येन (उ)	१२.२०
प्रेतः कश्चिद्विमुक्त्यर्थं (उ)	५०.२१
प्रेत कुण्डश्च तत्रास्ते (उ)	४६.७२
प्रेतत्वाच्च विमुक्ताः (उ)	४८.६५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
प्रेत: प्रेतत्वनिर्मुक्तो (उ)	५०.२५
प्रेतभावविमुक्तत्यर्थं (उ)	५०.२२
प्रेत्य च स्वर्गलाभाय (उ)	१५.२
प्रेर्यमाण: शरीरणाम्	२.३८
प्रोक्षणीयं स्रुवञ्चैव (उ)	३५.२६
प्रोक्षितन्तु हरेत (उ)	१७.३४
प्रोक्ष्य भूमिमथोद्धृत्य (उ)	१४.४१
प्रोवाच दीर्घं तमसं (उ)	३७.६१
प्रोवाच वचनं देवी (उ)	२३.२५
प्रोवाच संहिता: षट्	६१.४७
प्रोवाच सहितास्तिस्र	६०.६५
प्रोवाच संहितस्तिस्र	६१.४०
प्रोषयित्वा जनं (उ)	१३.१८
प्लक्षतीर्थे पुष्करिण्यां (उ)	२९.३०
प्लक्षद्वीप पृथु:	४९.२५
प्लक्ष द्वीपं प्रवक्ष्यामि	४९.१
प्लक्ष द्वीपादयो ह्येते	४९.७१
प्लक्ष द्वीपादि केष्वेव	३३.३५
प्लक्ष द्वीपादिषु ज्ञेय:	४९.२२
प्लक्षद्वीपादिषु तेषु	४९.५
प्लक्ष द्वीपे तु वक्ष्यामि	४८.६
प्लावयन्ती प्रमुदिता	४२.७७
प्लावयन्ती सशैलेन्द्र	४२.१४
प्लावयन्त्युपभोगांश्च	४७.५१
प्लावयामास तं देशं (उ)	२९.५२
फ	
फणा सहस्र कलितं	२४.११
फलं वृषस्य वक्ष्यामि	२१.२६
फलै: कनकसङ्काशै:	३८.२०
फल्गुचण्डीश श्मशाना (उ)	५०.७०
फल्गुतीर्थं ब्रजेत्तस्मात् (उ)	४९.१४
फल्गुतीर्थे नर: स्नात्वा (उ)	४९.२१
फल्गुतीर्थे नर: स्नात्वा (उ)	४९.२३
फल्गुतीर्थे विष्णुजले (उ)	४९.२०
ब	
बदरीणाञ्च स्वादुनां	३८.७०
बदरीफलमात्रं वै (उ)	३०.९३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
बध्येद्वापसपङ्क्तिभि:	१९.७
बन्धु पालितदायादो	३७.३२८
बन्धुवर्गकुले ये च (उ)	४८.३१
बन्धुवर्गकुले ये च (उ)	४८.३५
बभूव येन विक्रम (उ)	३७.१८७
बभूव सत्रं तत्तेषाम्	२.२४
बभूवातिबलो भूय (उ)	२६.५३
बभ्रवे च पिशङ्गाय (उ)	३५.१७०
बभ्रु श्रेष्ठो मनुष्याणां (उ)	३४.१५
बभ्रून वै शवलान् (उ)	८.२३९
बर्हिकेतु: सकेतुश्च (उ)	२६.१४८
बलवान् जायते	४.४९
बलवान् वै विवादोऽयं (उ)	३५.७१
बलाहकस्य जीमूतं	४९.३९
वलियों नामीविख्यातो (उ)	६.८५
बल्शीलादिभिस्तासाम् (उ)	८.८९
बलिनाधिष्टितं राष्ट्र (उ)	३५.६९
बलि: सितो महापाशै: (उ)	३६.८५
बलि सुविदितं कुर्यात् (उ)	१४.२२
बलि संस्थेषु लोकेषु (उ)	३६.७४
बले: पुत्रोमहावीर्यौ (उ)	७.३२
बले राज्याधिकारस्तु (उ)	३५.९०
बहि: कर्माणि	८.१८२
बहुजन्मकृतात्सन्ध्या (उ)	५०.३०
बहुने महाने रेक	५४.४२
बहुन्यहानि नि:शिप्ते (उ)	८.३०२
बहुपादैर्महापादैरेक	५४.४१
बहुमन्या: प्रजाहीना: (उ)	३७.४०२
बहुयाचनको लोको	५८.५३
बहुयोजन साहस्रं	५०.३३
बहुरूपा घोररूपा (उ)	३८.१६८
बहुरूपान् विरुपांश्च	१०.४५
बहुरूपाय चोग्राय (उ)	३५.१७३
बहुरूपाय मुण्डाय	५४.७६
बहुवर्षसहस्राणि (उ)	४४.६
बहुशो यस्यमानस्तु (उ)	२२.५४
बहुहव्यत्वमेवाग्नौ (उ)	१३.६०

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
बह्वयो नार्य्य: सुरुपास्तु (उ)	१८.३६
बह्वर्थश्चन्द्र इत्येषु	५३.५५
वह्वीकाशचोष्मपार्श्वैव	५६.८४
बाजयोनिर्गुणवपुर्बद्ध:	१६.११
बाढं शृणुत्वं हेमाभ	२५.५८
बार्हस्पत्यन्तु सुरभिर्यम	१.१४३
बार्हस्पत्ये तथा शास्त्रे (उ)	१७.५८
बालखिल्या क्रतो:	६१.८४
बालरूपधरस्तस्मै	४९.९१
बालाग्राण्यष्ट लिक्षा (उ)	३९.१२१
बालानाञ्चैव गोप्त्रे	३०.२१५
बालिकोवज्रकर्णश्च (उ)	७.२१
बालिशा बत यूयं (उ)	४.१४७
बाहोर्व्यसनिनस्तस्य (उ)	२६.१२६
बाह्लकार्य्याभगिन्यां (उ)	३४.६
बाह्वतो दक्षिणे चैव	५०.१३६
बाह्यतो धनतोयस्य	४९.१५४
बह्वीकस्य विज्ञेय: (उ)	३७.२३०
बिडालवदनै: चोग्रै:	५४.३९
बिना यज्ञोपवीतेन (उ)	१७.३९
बिन्दुश्च विन्दुसारश्च (उ)	८.३६
बिभर्तिमानं मनुते	४.२८
बिल्वप्रमाणैश्च शुभै:	३८.६४
बीजान्नानि तथा (उ)	३७.४००
बीभत्समशुचिश्चैव (उ)	१६.७६
बीजार्थेनस्थितास्तम्	८.२४
बुद्धाऽन्विष्यस्तथा न्यायो	८.१२०
बुद्धाच सुरुचि तं (उ)	८.१३६
बुद्धा तदनन्तरं सोऽथ (उ)	३६.१६
बुद्धान् बुद्धतमांश्चैव	१०.५०
बुद्धाय चैव शुद्धाय (उ)	३५.१७६
बुद्धिज्ञानेन च प्राणा: (उ)	४२.३८
बुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तन्ते	६.६१
बुद्धिपूर्वं भगवता	५३.१२०
बुद्धिर्मनश्च लिङ्गश्द्धा (उ)	४०.२१
बुद्धिर्विवर्त्तमानस्य	५९.७४
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव	४.५४

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
बुद्धेर्बोधसुतश्चापि	१०.३५
बुद्धयातिशययुक्तश्च	५९.१४
बुधात् सा जनयित्वा (उ)	२३.१८
बुधेनान्तरमासाद्य (उ)	२३.१७
बुधो वेगवतः पुत्रः (उ)	२४.१५
बुध्यते पुरुषश्चाम	४.३१
बुको वृकाश्वो वृकजिद् (उ)	३४.२४३
वृक्षाश्चैवगताः शाखा	४.११९
बृहती नर्तकोन्नेयी (उ)	३४.२४६
वृहन्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा	५.३९
बृहत्वाहण त्वाच्च	४.२९
वृहदुत्थः शरद्वांथ	५९.९३
वृहद्वान्त संक्षेपाद्	१.१२९
बृहद्रथस्य दायादो (उ)	३७.२७७
बृहस्पति तु विश्वेषां (उ)	९.४
बृहस्पतिमुपासीन	१०.३८
बृहस्पतिरिदं सम्यगेवं (उ)	१०.४४
बृहस्पतिः सुरुपायां (उ)	१०.१००
बृहस्पतिरततस्तम्	२.१८
बृहस्पतिस्तु तान् शुक्रः	१.१४०
बृहस्पतेबृहत्कीति (उ)	९.३३
बृहस्पतेस्तु भगिनी (उ)	५.२७
बोद्धव्यो बोधनो नेता	२४.१५६
बोधन्तु प्रथमा शाखां	६०.२६
ब्रजामः शङ्करः देवा	४४.८
बह्मकालोऽग्निवक्त्रश्च	३०.२५०
बह्मक्षत्रविशः शूद्रा	५८.१०५
बह्मक्षत्रान्तरः (उ)	३७.११२
बह्मक्षेत्रे युगान्तेषु (उ)	३५.५
ब्रह्मघोषैरविरता (उ)	३९.३०५
ब्रह्मघ्नश्च कृतघ्नश्च (उ)	१६.३४
ब्रह्मघ्नस्तु महावीर्यो (उ)	६.७२
ब्रह्मचर्य जपो मौन	५९.४१
ब्रह्मचर्यं यजन्ते वै (उ)	१५.८४
ब्रह्मचार्य्यैकभोजी (उ)	४३.३८
ब्रह्मजानाम ते मेघा	४१.३४
ब्रह्मजित् क्षत्रजिच्चैव (उ)	६.८०

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं (उ)	४३.१४
ब्रह्मज्ञानेन किं कार्यं	४३.१५
ब्रह्मणः चोदितः सोऽस्मिन्	६०.१२
ब्रह्मणः प्रति संसर्गे	१.१५१
ब्रह्मणमूचिरे देवा (उ)	४४.२१
ब्रह्मणः सरसां श्रेष्ठे (उ)	४४.४४
ब्रह्मणः सृजतः पुत्रान्	३०.१
ब्रह्मणः सोऽददात्	२५.६९
ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं	५८.११४
ब्रह्मणस्तूदरे दृष्ट्वा	२४.२४
ब्रह्मणः स्थितिकालस्य	२२.६
ब्रह्मणं कारणं (उ)	५.१०८
ब्रह्मणं लोक कर्त्तारम्	१.२
ब्रह्मणा चोदितः पञ्चमं	६०.१२
ब्रह्मणा तु मनु पूर्वं (उ)	२३.५
ब्रह्मणानिर्मितः सौरः	१.८९
ब्रह्मणा प्रथमं दुग्धा (उ)	२.१२
ब्रह्मणा प्रार्थितो विष्णु (उ)	४९.१५
ब्रह्मणा यत्पुराप्रोक्तम्	१.१७५
ब्रह्मणा लोक तन्त्रेण	८.१८८
ब्रह्मणा सह देवैश्च (उ)	३९.८५
ब्रह्मणा सह रुद्राधौः (उ)	४७.२६
ब्रह्मण्यतिथेयाय (उ)	१६.७७
ब्रह्मण्यो ब्रह्मचारी च	२४.१६०
ब्रह्मणे चैव रुद्राय	५४.६७
ब्रह्मणे मानसाः पुत्रास्ते (उ)	३८.१०१
ब्रह्मणोऽङ्गात्	६०.४२
ब्रह्मणोऽवयवेम्यश्च	१.५७
ब्रह्मणो मानसा कन्याः (उ)	८.५४
ब्रह्मणो मानसाः पुत्राः	२१.४४
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रो (उ)	४५.७
ब्रह्मणो मानसा ह्य ते (उ)	३८.८८
ब्रणणो योजनाग्रेण	१.१४६
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा (उ)	४४.५३
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा (उ)	३८.४५
ब्रह्मणो वचनात्तात	६०.९
ब्रह्मणो वै मुखात् (उ)	६.४

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
ब्रह्मणो वै मुखात् (उ)	५.५
ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा	४७.३६
ब्रह्मदेवसुतश्चैव (उ)	२१.२५
ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता (उ)	३०.९९
ब्रह्मधनं प्रसूता सा (उ)	८.१२१
ब्रह्मनारायणाभ्याञ्च	१.६६
ब्रह्मन् कृशोऽयं विमना (उ)	३०.९४
ब्रह्मप्रकल्पितान्विप्रान् (उ)	४९.९२
ब्रह्मप्रकल्पितान् (उ)	४३.२१
ब्रह्मप्रसादितस्याशु	१.९६
ब्रह्मयोनि प्रविश्याथ (उ)	४६.८६
ब्रह्मलोकं गता देवाः (उ)	४४.७
ब्रह्मलोकोपरिष्टात्तु	१.१५०
ब्रह्मबध्याञ्चरध्वं	६१.१६
ब्रह्मवादी पराक्रान्ताः (उ)	२९.२
ब्रह्मवेदस्तथा घोरै (उ)	४.२७
ब्रह्मवायुमहेन्द्रेभ्यः	१.७
ब्रह्मशापाभिभूता सा (उ)	२९.१०
ब्रह्मशापेन ते जाता (उ)	५.८
ब्रह्मशुक्रात्समुत्पत्तिः	१.११६
ब्रह्मसौम्यस्तथादित्यो (उ)	५.४४
ब्रह्मस्थानमिदं	२३.४४
ब्रह्मस्थानमिदं दिव्यं	२१.२७
ब्रह्महत्या तु वैश्वीणी	६१.२३
ब्रह्महत्यादिपापौघ	४९.११
ब्रह्महत्या सुरापानं (उ)	४३.१२
ब्रह्महा मज्जेत्सुरापः (उ)	३९.१५४
ब्रह्माकमलगर्भभिः	५.२९
ब्रह्मा कृतयुगे पूज्य	३२.२१
ब्रह्माञ्जलिपुटो	५५.३०
ब्रह्माणं लोककर्त्तारं	२४.६१
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा	२४.८९
ब्रह्माण्डस्य पते नाथ (उ)	४४.४९
ब्रह्माण्डे प्रथमः सोऽथ	४१.२०
ब्रह्मातमर्थं बुद्धा तु (उ)	८.१६१
ब्रह्मा तान् स्थापयामास	८.१७१
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन्	६.७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन्	८.२	ब्राह्मं ब्रह्मयेन चाप्येवम्	१२.३९	भद्रश्रेण्यस्य दायादो (उ)	३२.७
ब्रह्मादिभिः पूर्व मेव	१.११३	ब्राह्मं शैव वैष्णवं च (उ)	४२.१६	भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु (उ)	३०.६३
ब्रह्मादिभिस्ते जनिता	१.१११	ब्राह्ममभ्यन्तरञ्चैव	५२.४७	भद्र सोमेति नाम्ना	४२.६४
ब्रह्मादीनि पिशाचान्त (उ)	४०.९७	ब्राह्मे तु केवलं सत्वं	१४.३८	भद्रानदीं शुकनदीं	४४.१८
ब्रह्मा दृष्ट्वाऽब्रवीत्	१०.५२	ब्राह्मो नैमित्तिकस्तस्या	३८.१३३	भद्राणीमानि तेषां	५७.७४
ब्रह्माद्यानब्रवीत् (उ)	४४.९	ब्रूहि तत्कण्ठदेशस्य	५४.१७	भद्राश्वं समुहादीप	४२.२४
ब्रह्मानुगहदे स्नात्वा (उ)	१५.७१	ब्रूहिदानीं मथोद्दिष्टान्	६०.५६	भद्राश्वास्त विज्ञेया	४३.६
ब्रह्माब्रवीत्ततो देवान्	४४.२२	**भ**		भद्राश्वो भरतश्चैव	३४.५७
ब्रह्मा लोकनमस्कार्यः	२३.११	भक्तया परमया युक्तः (उ)	१२.३०	भनवः पञ्च येऽतीता (उ)	१.५
ब्रह्मावर्त सुरावर्त	३०.२५७	भक्ता प्रज्जलयः (उ)	११.१०१	भयाद्यथा महाबाहुजतिः (उ)	३४.२१८
ब्रह्मा विष्णुश्च यज्ञश्च	३२.२२	भक्तिमार्गा ज्ञानमार्गा (उ)	४२.१५	भयभीतस्य सा संज्ञा	११.४८
ब्रह्मा विष्णुश्चरुद्रश्च (उ)	४५.४६	भक्तेः सूर्यऽप्सु पृथिव्यां	२७.५८	भरतस्तु भारद्वाजं (उ)	३७.५१
ब्रह्मा सुरगुरुस्तत्र (उ)	४.६३	भक्षार्थमपि लिप्सन्तौ (उ)	८.१०७	भरतस्यात्मजो विद्वान्	३३.५३
ब्रह्मास्थितः स्वयं (उ)	४४.५७	भक्ष्यभोज्यफलार्दीश्च (उ)	४४.७६	भरतत्स्यात्मजौ (उ)	२६.१८८
ब्रह्मास्वयम्भूर्भगवान्	६.३३	भक्ष्यमन्नं तथा (उ)	१४.३७	भरतस्याश्रमे पुण्येऽरण्यं	१५.९८
ब्रह्मिष्ठाश्च तपिष्ठाश्च	३०.४७	भक्ष्यमाल्यसमृद्धाश्च	४५.३४	भरतस्याश्रमे श्राद्धान् (उ)	५०.६१
ब्रह्मोपुरभवद्राजा (उ)	३३.२९	भगनेत्रान्तकश्चन्द्रः	३०.२५३	भरतस्त्रिसृषु त्रीषु (उ)	३७.१३३
ब्रह्मोक्तो विश्वकर्माणि (उ)	४७.४	भगवत्तेजसा ग्रस्तो (उ)	३४.४८	भरद्वाज प्रसादेन (उ)	३७.१६४
ब्रह्मोत्तराः प्रविजया	४५.१२३	भगवन् आदि मध्यञ्च	२४.२७	भरद्वाजेन मुनिना	४५.११४
ब्रह्मोत्तरांश्च बङ्गाश्च	४७.४९	भगवन् केन ते	३३.४	भरतीन्दीप्तयशसं	१०.११
ब्रह्मोपेतस्था दक्षो	५२.२३	भगवन् कृगता ह्येते	३०.१०९	भर्त्तारो मनसा ख्याता (उ)	७.३५
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि	५८.१४	भगवन् देवदेवेश	२३.९०	भर्तुः शापान्मोचयितुं (उ)	४५.४२
ब्राह्मणक्षत्रियविशां (उ)	४२.१३	भगवन् भूतभव्येश	५४.४४	भर्तुः समीपं गच्छ (उ)	२२.४८
ब्राह्मणस्य विशेषेण (उ)	१७.२३	भगवन् भूतभव्येश	५४.८२	भर्तृशापमशक्ताहं (उ)	४५.३८
ब्राह्मणाः क्षत्रिया	३०.२३१	भगवन् यदि तुष्टस्त्वं (उ)	३०.२०	भर्त्रां धर्म्मव्रता (उ)	४५.२८
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्या	४५.८३	भगवन् सर्व देवेषु	३०.११४	भलन्दनस्य पुत्रोऽभूत (उ)	२४.४
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः	८.१३४	भगवन्सर्वभूतानां (उ)	३९.२९३	भल्लाटस्तस्य दायादो (उ)	३७.१७७
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव (उ)	३०.७५	भगवान् भगसद्भावात्	५.३४	भवतां कथयिष्यामि (उ)	३८.५
ब्राह्मणाः नरीयः (उ)	१६.२९	भगीरथसुतश्चापि (उ)	२६.१६९	भवतोऽनुमतोयेवां (उ)	३१.८५
ब्राह्मणानां सहस्रभ्यो (उ)	१४.२८	भगीरथस्तु तां गंगाम् (उ)	२६.१६८	भवतो रक्षणं काय्यं (उ)	२६.३४
ब्राह्मणाननुवर्तन्ते	५७.५२	भजमानस्य पुत्रस्तु (उ)	३४.१३५	ब्राहाणाः क्षत्रियाश्चैव (३)	७२
ब्राह्मणानान्तु वचनाद्	६१.१५	भजमानस्य शृञ्जय्यां	३४.३	भवत्येको द्विधा चैव (उ)	५.२५
ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः (उ)	३१.७९	भद्रका निकराः कोचिद् (उ)	८.१८३	भवद्भिरवं निर्णीतं (उ)	४२.१०२
ब्राह्मणेन तेजसा युक्तः (उ)	४.७६	भद्रकाली च विज्ञेया	३०.१६४	भवनं रत्नपूर्णं (उ)	१८.९
ब्राह्मणैश्च महाभागैः (उ)	२.६	भद्रकारं ततो हूत्वा (उ)	३४.५८	भवनात्तु ध्रुवर्लोको (उ)	३.१४
ब्राह्मणो वेक्ष्माप्नोति	५४.१११	भद्रबाहुर्भद्ररथो (उ)	३४.१६८	भवन्ति च वृथा तस्य (उ)	१७.४६
ब्राह्मण्यं कर्मसन्यासाद्	५७.११८	भद्रश्च भद्रगुप्तश्च (उ)	३४.२४१	भवन्ति पितरः प्रीताः (उ)	१३.१५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
भवन्तु मम पुत्राणां (उ)	६.११०
भवश्चतुर्थो विज्ञेय:	२१.२८
भवस्तु प्रथम: कल्पो	२१.२६
भवस्त्वं देव नाम्नासि	२७.८
भवस्था: सर्व्वभूतानाम् (उ)	३९.३१३
भवस्य दयित: श्रीमान्	४७.१८
भवस्य पुत्रजन्मत्वं	२१.९
भवस्य या द्वितीया	२७.५०
भवादवध्यतां प्राप्य (उ)	३५.८१
भवान् ज्ञानमहं ज्ञेयं	२५.२२
भवान् वं वंशकुशलो	४.२
भवानीशो नादिमन्,	२४.१६२
भवान्योनिरहं बीजं	२४.६७
भवाभिशापात्संविद्धा (उ)	४.१७
भवाय भजमानाय	२४.११४
भविता चाक्षुषो राजा	३०.६०
भविता द्वापरं प्राप्य (उ)	११.७१
भविता ने कृष्णस्तु (उ)	३७.३४८
भविता भद्र सारस्तु (उ)	३७.३२६
भविता सज्जयश्चापि (उ)	३७.२८४
भविष्यं जनता ह्येषा (उ)	२.३४
भविष्यतांतथा राज्ञाम्	१.१४४
भविष्यति मनुष्येषु	१४.१३
भविष्यति महावीर्य	२३.१५७
भविष्यति सुतस्तस्य (उ)	३७.३३६
भविष्यत्येवमेवेति (उ)	१४.११
भविष्यदुष्णस्तत्पुत्र (उ)	३७.२६८
भविष्यन्ति कुमारास्ते (उ)	३७.८४
भविष्यन्ति तदा कल्पे	२३.१६७
भविष्यन्ति भविष्येषु	६१.१०५
भविष्यन्ति यथाशैलं	२६.५०
भविष्यन्ति समा: (उ)	३७.३३४
भविष्ये द्वापरे चैव	६१.१०४
भवेत्सर्वगुणोपेतो (उ)	३४.१०
भवेदीधीरोऽप्रमतस्तु	१८.४
भवेद्वै विषु लोकेषु (उ)	४५.४१
भस्मकूटे भस्मनाथं (उ)	५०.६५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
मृम्वाङ्गाराश्च केशांश्च	१९.१६
भानु पौरिका चैव (उ)	२४.२४०
भारतस्य तू वर्षस्य	४७.७८
भारतस्यास्य वर्षस्य	४५.७८
भारतादीनि वर्षाणि	१.७१
भारती चैव विपुला	१.१५
भारत्याश्लक्ष्णया सर्वान	२.४१
भारद्वाजस्तत: पिण्डं (उ)	४९.७२
भारद्वाजस्तत: पिण्डं (उ)	४९.७४
भारद्वाजस्तथा द्रौणि: (उ)	३८.१२
भारद्वाजो याज्ञवल्क्यो	६१.१
भार्गवस्य रथ:	५२.७४
भार्गवासादहीनस्तु	५३.७७
भार्गवोऽङ्गिरसो वायं (उ)	३६.३४
भार्य गुरु मातश्चापी (उ)	८.२१९
भार्या पुरोहितचैव	५७.७०
भार्या भूगोरप्रतिमे (ङ)	४.७३
भालुकि: कामहनिश्च	६१.४३
भावाभावो हि लोकानाम्	५३.३७
भावग्राह्यानुमानाच्च (उ)	४०.२५
भावी रसानुगावेतौ (उ)	३५.४८
भाव्यसौ नागते तस्मिन्	२२.८३
भाष्यान्तु जज्ञिरे (उ)	३४.१४४
भिक्षोत्रतानि पञ्चाल	८.१७८
भित्त्वा विशमि पातालं	४७.२२
भिद्यते करणश्चापि (उ)	४०.१०५
भिद्यमानस्तदा गर्भो (उ)	६.१०३
भिन्न देहा दुरात्मन:	५६.७२
भीतोऽहं कंसतस्तात (उ)	३४.२०५
भीमं मुखं महारौद्रं	२२.११
भीमस्त्वं देव नाम्नासि	२७.१४
भीष्मो विष्णुपदे श्रेष्ठे (उ)	४९.८०
भुंक्तेऽथ विषयांश्चैव	१३.२१
भुजङ्गश्च महापद्म	५२.१७
भुजाश्च वेदाश्चत्वारो	२३.९८
भुवनश्लेश्वरं मृत्युं (उ)	५.७०
भुवनो भावनश्चैव (उ)	४.८७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
भुवे स्वर्गे च ये (उ)	३९.४३
भूतग्रामश्च चत्वार:	२३.७६
भूत तन्माम सर्गोऽपार	४.५३
भूतत्वात्ते स्मृता	९.३५
भूतभव्य मभवन्नाथ: (उ)	३.७
भूतभव्यभवायैव	३५.१९५
भूतं भव्यं भविष्यं तत (उ)	३.१०
भूत भव्य भवेशत्वम्	१.९५
भूतभव्यानि ज्ञानानि (उ)	१०.५१
भूतभव्यानि पानीह	५७.७३
भूतसम्मोहनं तद्	५१.५
भूतात्मानं महात्मानं	१४.१४
भूतादिकानां सत्वानाम्	६.५४
भूतादि ग्रसते चापि (उ)	४.२०
भूतादिना वृतं सर्व्वं	५०.८५
भूतादिर्महता चैव	१.४५
भूतादिश्च तथाकाशं	४९.१५६
भूतादिष्ववशिष्टेषु	२४.६
भूतानामभयं छत्वा (उ)	३९.२९६
भूतानां तर्कितं (उ)	६.२१
भूतापवादिनो दुष्टा (उ)	५.१४३
भूतापवादिनो ह्रष्टा (उ)	३२.११५
भूताभूतगणैर्ज्ञेया (उ)	८.४०
भूताय च भविष्याय	२४.१११
भूतावातिस्ततस्तस्य (उ)	३५.५५
भूतिमित्र: सुतस्तस्य	३७.३३९
भूताविजज्ञे भूतांश्च	८.२३६
भूतेन्द्रियेषु युगपद् (उ)	४०.१९
भूतेभ्य: परतस्तेभ्यो	४९.१७६
भूतेस्मिन् भवदित्युक्तं	३.१३
भूतेश्चोपनिविष्टानि (उ)	१.७९
भूमिर्कालगुणानप्राप्य	१.३९
भूमिर्जलमथाकाशमिति	५०.९०
भूमिलेखावृत: सूर्य	५३.५१
भूमि राक्षसकै: सर्वै: (उ)	८.१८१
भूमेरधस्तात्ते सर्वे (उ)	३९.१५१
भूमेरन्तस्त्विदं सर्वम्	४.६२

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
भूमौ रसातले चैव	४९.१७०
भूस्यापसव्यदर्भेषु	५६.७८
भूय एव विवर्तन्ते (उ)	३८.१४०
भूयश्च तं वरमिमं	३०.२८९
भूयो जज्ञे सुरभ्यास्तु (उ)	५.७५
भूयो भूयः श्वसेद्यस्तु	१९.२०
भूयः सप्तर्षयस्ते (उ)	४.१०
भूराख्या चतुरो लोकाम्	४.१६
भूरादयश्च कीर्त्यन्ते	१.८१
भूरादीनां च लोकानाम्	१.४९
भूरितीयं स्मृता भूमिः (उ)	३.१८
भूरिद्युम्नः सुवर्च्चाश्च (उ)	३८.७६
भूरीन्द्रसेनो भूरिश्च (उ)	३४.२५०
भूर्भुवः स्वरितश्चैव	३०.२५६
भूर्भुवः स्वस्ततोदेवी	२५.३६
भूर्लोकन्तु भूवर्लोकं (उ)	३८.१६०
भूर्लोकप्रथमा लोका (उ)	३९.३४
भूर्लोक प्रथमा लोका (उ)	३९.३२
भूर्लोकोऽय मुवर्लोकः	२३.७८
भूसत्तायां स्मृतो घातु (उ)	३.१२
भृगुः काव्य प्रचेताः	५९.६६
भृगुपीठं कर्ण देशे (उ)	४२.८१
भृगुर्भाङ्गरसं दक्ष	२५.८०
भृगु मरीचि परमेष्ठिनं मनुम्	३.२
भृगुराङ्गिरा मरीचिः (उ)	४.२२
भृगुमरीचिरत्रिश्च	५९.८८
भृगुश्चोत्थापयामास	१.१३७
भृगुस्तु हृदयाज्जज्ञे	९.९३
भृगूणां विस्तरश्चोक्ताः	१.१२५
भृगोः ख्यातिर्विजज्ञेऽथ	२८.१
भृगोचरुविपर्यासे (उ)	२९.८३
भृगोस्तु भार्गवो देवो (उ)	३.४
भृगोस्तु भृगवो देवा (उ)	४.८६
भृगोस्त्वजनयद् (उ)	४.७४
भृग्वादयस्तु ते सर्वे	३०.७६
भृग्वादयो यथा सप्त	७.६७
भृगवादीनामृषीणाञ्च	१.६९
भृग्वाद्या ऋषयोधीरा	२.३३
भृङ्गपत्र निकाशनि (उ)	३९.२४१
भृङ्गपत्रनिमश्चासौ	३४.१८
भृतोऽध्यापयते (उ)	१७.७६
भृत्यामुत्पादितो (उ)	३८.५५
भृशञ्चानुग्रहं प्राप्य (उ)	३९.३२४
भृशं शापभयोद्विग्नः (उ)	२२.५८
भैक्षं यवागं तक्रं वा	१६.१३
भैक्षं चरेद् गृहस्थेषु	१६.१०
भोक्षयते नृपतिश्चैव (उ)	३७.२९८
भोगान्तरमनुप्राप्त	३४.८४
भोगी भविष्यते राजा (उ)	३७.३६१
भोजनञ्चाप्रयत्नेन	४९.१४१
भोजयामास तच्छ्रुत्वा (उ)	२६.१०६
भोजवृष्ट्यन्धकैर्गुप्तां (उ)	२४.२८
भो भो वद महाभाग	२५.७३
भौमस्यान्ते कलियुगे	१.१४५
भ्रगमायतनं दृष्ट्वा (उ)	३०.५२
भ्रद्राश्वस्थ धृत्ताच्यां (उ)	९.६८
भद्राश्वानां यथा	४३.११
भ्रमतोधर्म चक्रस्य	२.७
भ्रमन्तमनुगच्छेतां	५१.७१
भ्रमन्ते कथमेतानि	५१.३
भ्रमरं रूपगीतानि	४५.३२
भ्रमिमारोप्य तत्तेजः	२२.७४
भ्रमेण भ्राम्यते योगी	१२.११
भ्रश्यते सत्फलात् (उ)	२१.४२
भ्रश्यमानं दुरावशाद	६०.४
भ्राता शनैश्चरस्तत्र (उ)	२२.८४
भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येष (उ)	३४.७७
म	
मकरे वर्त्तमाने च (उ)	४३.४५
मक्षिकाणां विकाराणि (उ)	८.३०७
मक्षिप्रच्छेदनो नाम (उ)	२५.२१
मखसंज्ञन्तु तत्तीर्थं (उ)	५०.६३
मणिच्छेदास्तथा (उ)	८.३०९
मणिमन्तञ्चशैलेन्द्र (उ)	८.३२४
मणिमन्त्रस्य च पुरं	५०.२९
मणिरत्नमयम् चित्रं	३४.६५
मणिरत्नार्पितैस्तम्भैः	३४.६७
मणिर्विभजते वर्णान् (उ)	५.९५
मरीनवप्ता सुवप्ता	४३.२८
मणिं स्यमन्तकं चैव (उ)	३४.४९
मण्डलं विषुवद्यापि	५०.१२६
मण्डूकानां विकाराणि (उ)	८.२८९
मतिश्च सुमतिर्वा (उ)	१.४८
मतिं मन्थानमाविष्य	१.३८
मतिः स्मृतिर्बुद्धिरिति	२३.८
मत्त भ्रमरसन्नैः	३९.२०
मत्प्रसादाच्च देवेशः	२३.५९
मत्वा तु ते महर्लोकं	७.२५
मत्सन्निधौ वर्ततां (उ)	३५.१२९
मत्स्यैः प्रीणन्ति (उ)	२१.४
मथुरां च पुरीं रम्यां (उ)	३७.३७७
मध्यमानेऽमृतं पूर्वं	५४.४८
मदीयायां तनौ (उ)	२८.३७
मदोत्कटैर्मधुकरैः	३८.५३
मदोत्कटैर्मधुरैश्च	३६.५
मद्वितार्थमिमं गर्भं (उ)	११.२९
महापूर्णं समुद्रञ्च (उ)	८.१५१
मद्यपो मद्यपैः सार्धं (उ)	३६.३५५
मधुकैटभयोः पूर्वं (उ)	२.२
मधु ग्राहाभिहन्तारो (उ)	३९.१६९
मधुपश्चाज्यपश्चैव	३०.२६६
मधुमन्त जनञ्चैव	४२.५२
मधुमाधवौ रसौ	३०.८
मधुमांसौदनैर्दध्ना (उ)	८.२८१
मधुश्रवां मधुकुल्यां (उ)	४४.७५
मधुसर्पीरजः पृक्तैः	३८.४७
मध्यगचामरावत्यां	५०.९४
मध्यदेश प्रतिष्ठानां	६१.९
मध्यन्दिनश्च शापेयी	६१.२५
मध्यमे तु महाकूटे	४०.१८
मध्यमो ह्वाप सूतस्य	१.३२

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
मध्यमो ह्येष सूतस्य (उ)	१.१३९	मनोर्वैवस्वतस्यास्मिन् (उ)	३७.४५१	मन्वन्तरस्य संहारे	२१.११
मध्यमं यन्मया	४६.११	मनोर्वैवस्वतस्येमं (उ)	३८.६	मन्वन्तरस्यातीतस्य	५९.३२
मध्यहारांश्च मात्राश्च (उ)	३९.३१२	मनोर्वैवस्वतस्येमं (उ)	४.४	मन्वन्तराणां क्रियते	६१.७६
मध्यह्नार्कप्रकाशेन (उ)	३९.२३३	मनोर्वैवस्वतस्येह (उ)	२३.३	मन्वन्तराणां यानि (उ)	१.२
मध्ये कनखलं तीर्थं (उ)	३९.७	मनोवती सुकेशा च (उ)	८.४९	मन्वन्तराणां परिवर्तनानि	१.४७
मध्ये तस्याश्च पत्रिन्या	३८.५५	मनोव्यक्तिरथाग्निश्च	१६.७२	मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि	६१.१७९
मध्ये तस्यां शिलास्थ	३८.३९	मनो: स्वरौचिषस्येते (उ)	१.१८	मन्वतराणां परिवर्त्तनेषु	६१.१२०
मध्ये तु सरस्तस्य	३८.५१	मनो: स्वायं भुवस्यासन्	३३.४	मन्वन्तराणां सप्तानां	२१.१३
मध्येत्विलावृतं यस्तु	३४.२२	मनोहराणि चत्वारि	३६.१०	मन्वन्तराणां सप्तानां	३२.४२
मध्येनोद्यानमस्कारान्	४७.५५	मनो स्वारौचिषे (उ)	२.१४	मन्वन्तराणां सर्वेषां	१.४७
मध्येन्तरिक्षं विस्तीर्ण	२४.१४९	मन: पह्लादनी वाणीं	२४.२९	मन्वन्तराणां सर्वेषां	३.१८
मध्ये पुरनरेन्द्रस्य (उ)	३९.२४७	मन्त्र ब्राह्मण कल्पैस्तु	५९.११३	मन्वन्तराणां सर्वेषां	१.१०३
मध्वादय: तेषान्निसर्ग:	३०.४	मन्त्र व्याहारिणो ये	६१.९२	मन्वन्तराणां संहार:	१.१०६
मनसा कर्मणा वाचा	५८.२५	मन्त्रादि तत्त्वविद्वांसो	२.२१	मन्वन्तराणि कल्पेषु	७.५
मनसा कर्मणा वाचा (उ)	२१.६६	मन्त्रानिच्छाम्यहं (उ)	३५.११५	मन्वन्तराणि सर्वाणि (उ)	३८.३
मनसा गतवित्तास्ते	६०.४०	मन्त्राणां कल्पनं	५९.११६	मन्वन्तराणां संक्षेप (उ)	३८.७
मनसा चिन्तितं यच्च	३०.३१२	मन्त्रा: प्रादुर्बभूवुहि	५९.६१	मन्वन्तराण्यनेकानि (उ)	३९.२८४
मनसा यद्व्रतं किञ्चिद	११.४४	मन्त्रेणानेन य: (उ)	४६.१९	मण्वन्तरादौ प्रागेव	६१.१६५
मनसो धारणा चैव	११.२९	मन्त्रेणानेन य: स्नात्वा (उ)	४६.२१	मन्वन्तराधिकारेषु (उ)	३९.४
मनुते सर्वभूतानां	४.२६	मन्द बाह्योऽथ (उ)	३४.१६५	मन्वन्तराधिकारेषु (उ)	३८.३६
मनु देश समुत्पन्ना (उ)	२४.५३	मन्तर: पर्वतश्रेष्ठो	४५.९०	मन्वन्तरान्ते संहार:	६१.१३६
मनुनैवाहमुक्तास्मि (उ)	२३.१२	मन्दरक्षोभकृता हि (उ)	३२.३३	मन्वन्तरेण चैकेन	५.४९
मनुरेवाभवत्सो व (उ)	२२.५२	मन्दरस्य गिरे:	३५.२०	मन्वन्तरेण चैकेन	५८.१२२
मनुर्यवीयान् सार्वणि: (उ)	२२.३१	मन्दरादि प्रकाशानां (उ)	३९.२८८	मन्वन्तरेण वक्ष्यामि	६०.१०
मनुर्विवस्वतो ज्येष्ठ: (उ)	२२.३८	मन्दो द्वादशमांत्रस्तु	१०.७५	मन्वन्तरे तथैकस्मिन्	७.१६
मनुष्यप्रकृतीन् देवान् (उ)	३५.१	मन्मथाङ्क विनाशाय	५४.६८	मन्वन्तरे तु सम्पूर्णे	६१.१५४
मनुष्याणामधिपतिं (उ)	९.१८	मन्यवेशीतशीलाय	२४.१४०	मन्वन्तरे परावृते	६१.१६९
मनुष्यानौषधैनय	५३.२४	मन्युना च महाभीमा	३०.१४०	मन्वन्तरेश्वराणां (उ)	४१.५२
मनुष्याणां मनोभूत: (उ)	३५.४२	मन्युपान् जाठरस्य	२९.३२	मन्वन्तरेषु देवानां	१.१११
मनो: क्षत्र विशस्तस्य (उ)	१.२१	मन्वन्तरत्रयं चैव	१.११०	मन्वन्तरेषु ये देवा:	१०.५६
मनोजवा मुहूर्त्तास्तु (उ)	३८.८०	मन्वन्तरमथा साद्य (उ)	१.७४	मन्वन्तरेषु ये शिष्टा	५९.३४
मनोजवा स्वघामक्षा: (उ)	१०.५९	मन्वन्तरयुगाख्यानां	७.९	मन्वन्तरेषु सर्वेषु	५९.५९
मनोजवो महावीर्य: (उ)	१.६५	मन्वन्तर व्यवस्थार्थं	६१.१५८	मन्वन्तरेषु सर्वेषु	५३.७७
मनोजवं कामगमं	४१.७	मन्वन्तरस्य संख्या	१.१०८	मन्वन्तरेषु सर्वेषु	३०.५
मनोतिगं मतिगति (उ)	४७.३१	मन्वन्तरस्य संख्या	५७.३४	मन्वन्तरेषु सर्वेषु	३०.२६
मनोमहान्मतिर्ब्रह्मा	४.२५	मन्वन्तरस्य संख्यैषा	५७.३६	मन्वन्तरेषु सर्वेषु	२९.४६
मनोरजायन्त दश (उ)	१.८९	मन्वन्तरस्य संख्यैषा	६१.१४०	मन्वन्तरेषु सर्वेषु	३३.१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
मन्वन्तरेष्वतीतेषु	६१.१७६
मन्वन्तरेष्वतीतेषु (उ)	१.१६८
मन्वन्तरेष्वतीतेषु (उ)	९.२०
मन्वन्तरेष्वतीतेषु	२४.४
मन्वन्तरं यथा तूर्वं	६१.१४९
मन्वादयश्च ये	५९.३५
मन्वादिका भविष्यन्ति	१.११५
मन्वादिक भविष्यान्तं (उ)	४.७
मन्वादीनां सुरेशानां (उ)	१२.२३
मम देहे सुरेशानां (उ)	४५.५४
भम पुत्र पिता रक्तो (उ)	५०.१५
मम भक्ता वरारोहे	५४.११०
मम पार्श्वे त्वनाचारः (उ)	३०.३२
ममापराधाद्गर्भोऽयं (उ)	६.१०८
ममाश्रम समीपेषु (उ)	२६.३५
ममोद्विजन्ते भूतानि (उ)	८.१३४
मयस्य जाता ये पुत्राः (उ)	७.२८
मयागत्य मतङ्गोऽस्मिन् (उ)	४९.३२
मया च व्याहता यस्मात्	२५.४८
मया परिगतं सर्वं (उ)	६.१९
मयापि बोधिताः (उ)	३६.४३
मया वै तत्पुनः प्रोक्तं (उ)	४१.६७
मया सहत्वं सुश्रेणि (उ)	३६.९
मया सुरोऽसुराणां च (उ)	४४.४
मया स्थितमिदं (उ)	६.२२
मयि योनौ समायुक्तं	२४.७२
मयिलोकाः स्थिता (उ)	१.१५४
मयूरः कुक्कुटश्चैव (उ)	११.४६
मयूराः कलविङ्काश्च (उ)	८.३२७
मयूराच्चैकं शिखरं	४२.७१
मय्यन्याथा न शक्यं (उ)	३९.८०
मरीचिः कश्यपो (उ)	३९.३५
मरीचिकश्यपो (उ)	३९.४९
मरीचिः प्रथमस्तत्र (उ)	४.४४
मरीचिः फलपुष्पार्थं (उ)	५०.४५
मरीचिमादितः कृत्वा (उ)	४.६८
मरीचि दक्षमत्रिं	९.६३
मरीचेर्वचन श्रुत्वा (उ)	४५.१०
मस्तां हि शुभं जन्म (उ)	६.१३५
मरुतश्चक्रवर्ती (उ)	२४.१२
मरुतस्तस्य तनयो (उ)	३३.२४
मरुतेन कथं कन्या (उ)	३१.१
मरुतो नाम धर्मात्मा (उ)	२४.९
मरुतो मातरिश्वानो (उ)	३९.२९
मरुत्प्रसादो मरुतां	१.१२१
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो (उ)	५.३३
मर्यादा पर्वते शुभ्रे	४०.१
मर्यादा स्थापनार्थं	५७.८२
मलिनैः पतितैश्चैव (उ)	१६.४०
मशकानां विकाराणि (उ)	८.३०८
महतश्चाप्यहङ्कार	५९.६९
महता तपसा युक्ता (उ)	३८.२५
महत्यतिबिले वाणीं (उ)	३४.४१
महदादि विशेषान्तं	१.४३
महदादेर्विकारस्य (उ)	४०.६
महदादेश्च जगतो	४७.४८
महदाद्यं विशेषान्तं	४१.१९
महदाद्यं विशेषान्तं (उ)	४०.११२
महदाद्यं विशेषान्तं	४.१६
महर्लोक गतावृत्य (उ)	२८.२६
महर्लोक स्थितैर्दृष्टः	७.६९
महर्लोकेति यत्प्रोक्तं (उ)	३९.७
महर्लोकेषु दीप्तेषु (उ)	३९.५३
महर्लोकं गमिष्यन्ति (उ)	३८.१२२
महर्लोकं परित्यज्य (उ)	३८.१२७
महर्षिसर्गः प्रोक्तो वै	३३.३
महाकर्णो महानीलो (उ)	८.६८
महाकल्पकृतं पापम् (उ)	४३.११
महाक्रतुभिरीजे सः (उ)	३३.१७
महाक्रम्भ प्रमाणैस्तु	३५.२१
महागन्धैर्महास्वादैः	३८.६१
महातेजा महादेवः (उ)	१४.८
महातेजो महाकायो	३२.२७
महादेव नमस्तेऽस्तु	५५.६५
महादेवस्थोभूतं (उ)	४.३८
महादेवस्य तुल्यानां (उ)	३६.३३०
महादेवस्य माहात्म्यं (उ)	३६.३२७
महादेवी कुलेद्वेतु	९.९०
महादेवं पशुपतिं	३०.८९
महादेवं महात्मनं	१.१
महादेव महायोगं	२४.२७
महादेवाभिषेकात्तु (उ)	३७.४०९
महाद्रुमस्य नाम्ना	३३.२०
महाद्वीपास्तु विख्याता	३४.४६
महाधनुर्द्धराश्चैव	५७.६६
मधवृतिसुतो राजा (उ)	२७.१३
महानदी प्रभासाध्ये:	४६.१६
महानद्या सुखायस्तु	३७.२३
महानन्दिसुतश्चापि (उ)	३७.३२०
महानाग सहस्राणि (उ)	११.३७
महानागश्च विक्रान्तो (उ)	६.६८
महानीलेऽपि शैलेन्द्रो	३९.३२
महानीलोऽथ रुचकः	३६.१९
महान्तं ग्रसतेऽव्यक्तं (उ)	४०.३१
महान् सृष्टिं विकुरुते	४.४३
महापादस्तु चत्वारो	३५.११
महापादं प्रवक्ष्यामि	४२.४१
महापुरा सम्भाव्यः (उ)	१.५६
महाप्रजापतेः स्थथानं	३९.४६
महाप्रमाणविक्रान्तैः	३९.४१
महाप्राज्ञकयां दृष्टः	५७.१०४
महाबलाः सुतेजस्काः	४५.७
महाबली महासत्त्वे (उ)	८.१०४
महाबलं महातेजाः	३०.१२९
महाबल महाबाहो	३०.२२२
महाबाहुर्महाबुद्धिः (उ)	३७.२९५
महाभद्रस्य सरस	३६.३०
महाभवनमालाभिः	३८.१५
महाभागा महासत्त्वा	३५.६३
महाभिषस्य पुत्रौ (उ)	११.६२
महाभुवनसम्पूर्णैः	३४.७१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
महाभूतप्रमाणश्च	३४.३
महाभूत प्रशाखश्च	९.१०७
महाभूतानि भूतात्मा (उ)	३६.८२
महाभूतानि भूतात्मा (उ)	३५.१३
महाभूतेषु मानात्वं (उ)	४१.३४
महाभूतेषु नानात्वं	९.५४
महाभूतेषु लीयन्ते (उ)	३८.२३४
महाभूतोपमाश्चासं (उ)	३७.१५५
महाभोगैः महाभागैः	५०.५२
महामालिनसुनेत्राद्याः	४१.२५
महामूलैर्महासरैः	३७.२४
महामूलैर्महास्कन्धैः	३५.२७
महामेधस्य च	५०.३६
महायक्षालयान्यत्र	४१.२४
महायुग सहस्राणि	११.२
महायोग बलोपेता (उ)	११.१६
महायोग बलोपेता	२३.१५०
महायोगित्वमायुश्च (उ)	३७.३०
महायोगी स तु (उ)	३७.२७
महारोगावसायस्तु, (उ)	२१.६
महरोम्णस्तु विख्यातः (उ)	२७.१४
महार्हेषु द्वादशसु (उ)	३५.१०४
महावनेषु चैतेषु	३६.१२
महः विद्यावदातानां (उ)	८.२७
महाविभक्तशिरसः (उ)	८.२२२
महाविमानान्येतानि	३४.९२
महावीतन्तु यद्वर्ष	४९.११२
महावीतं स्मृतं वर्षं	३३.१५
महावीर्यं सुतश्चापि (उ)	३७.१५८
महावैतरणी नाम्ना (उ)	४६.८३
महावृक्षसहस्राणि	४५.३९
महासत्रमवाप्नोति (उ)	१९.१४
महासरांसि च तथा	३८.७४
महास्थलाः सुकामाश्च	४३.२०
महास्त्रं मे प्रयच्छध्वं (उ)	४७.११
महासेनं महात्मानं	५४.२०
महांस्तु तमसः पारे	५६.७३
महिषाश्च वराहाश्च	५१.३०
महीतलात्सहस्राणां (उ)	३९.१२९
महिमायी तु सा नारी (उ)	२२.४०
महूर्त्ताश्च लवाश्चापि (उ)	३८.२१९
महेति व्याहृतेनैव (उ)	३९.२३
महेन्द्र गिरिणा तस्य (उ)	४४.८६
महेन्द्र पर्वते रम्ये (उ)	१५.१७
महेन्द्रस्याभरावत्यां	५०.१०१
महेन्द्राद्याः सभाः पुण्या	१.८३
महेश्वरः परोऽव्यक्ता	९.११४
महेश्वरः परोव्यक्तः	१.४२
महेश्वरस्य सत्याश्च	१.६३
महेश्वरापोत्तवीर्य कर्मणे	३.१
महेश्वरेण ये प्रोक्ता	१०.७०
महोजनस्तपः सत्यं (उ)	३९.२०९
महोदयः प्रहस्तश्च (उ)	९.४९
महोरगैरध्युषितं	३७.४
मगधेनैम मानेन (उ)	३८.२२०
माठरस्य वने पुण्ये (उ)	१५.३३
मातरं रक्षतश्चैव (उ)	८.१०२
मातरिश्वाऽब्रवीत् (उ)	३९.३२३
माता जनिष्यते वापि (उ)	२९.७५
माता तु तस्यै दैवेन (उ)	२९.७१
माता पितृभ्यां संत्यक्तं (उ)	३७.१४७
माताभस्त्रा पितुः पुत्रो (उ)	३७.१३१
मातामहकुलै ये च (उ)	४८.३४
महामहस्तत्पिता (उ)	४८.२४
मातुः सिद्धयति ते (उ)	२९.७४
मातुलं भजते पुत्रः (उ)	८.८७
मातृतुल्याश्चाभिजाताः (उ)	८.३४०
मात्रातथोक्ता वचसा (उ)	३०.३३
मात्रानुरूपो रूपेण (उ)	८.१३९
मात्रापदं रुद्रलोको	२०.११
मात्राश्चात्र चतस्रस्तु	२०.७
माद्रवत्यान्तु जनिता (उ)	३४.१५४
माधवस्य तु सोंशेन	५८.८५
माधवं लवणं हत्वा (घ)	२६.१८४
मानवः स तु सुद्युम्नः (उ)	२३.१६
मानवः स तु संजज्ञे (उ)	३६.११०
मानवानां शुभं ह्येते	५२.३१
मानवे वैषये वंशे	६१.२६
मनसा नाम ते लोका (उ)	११.९०
मानसे सरसि श्रेष्ठे (उ)	१५.११०
मानसोत्तरपृष्ठे तु	५०.९१
मानसं हि सदो ह्यत्र (उ)	४९.४
मानसश्च रुचिन्नमि	९.९२
मनसाच्छैलराजनै	४२.२८
मानस्य चरिष्यन्त (उ)	९.३०
माना व मानो द्वावेतौ	१६.३
मानुषस्य शरीरस्य	५९.१३
मानुषाक्षिमेषास्तु (उ)	३८.३१४
मानुषाख्येन संख्यातः (उ)	३८.२३३
मानुषाणां पशूनाञ्च	५९.३
मानुषास्त्रिरात्रन्तु (उ)	१६.६८
मानुषेण प्रमाणेन	२१.१६
मानुषेणैव मानेन	५७.११
मानुषेषु तु सर्वज्ञ	३०.३०१
मानुषं च शतं विद्धि	५७.१५
मानुष्यान्विविधान्	१२.२
मानुष्यं पशुभावं च	१४.३४
मान्धाता यौवनाश्वो (उ)	२६.६७
माभूते मनसोल्पोऽपि	२४.४६
मामध्वरे शंसितारः	३०.११९
मायया कृतमाचष्टे (उ)	३९.२१९
मायया चित्रकारिण्या (उ)	४२.४१
मायया मोहितौ	५५.२८
मायकार्णवे तस्मिन्	२४.९
माया च वेदना चापि	१०.३९
माया योगेश्वरो धर्मो	२४.६३
माया विहरणे विप्राः (उ)	११.४७
मारिषायां ततस्ते (उ)	२.३८
मारीचयैव ते पुत्राः (उ)	३८.२०
मारीचात्कश्यपाद (उ)	५.१३१
मारीचा भार्गवाश्चैव (उ)	४.५०

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
मारीचं कश्यपं (उ)	६.८८
मारीचं कश्यपं देवी	३०.७२
मारीचं परिवक्ष्यामि (उ)	४.११०
मार्कण्डेयं महारम्यं (उ)	४२.४
मार्त्तण्डस्य सुतावितौ (उ)	२२.७९
मानवाश्च करुषाश्च	४५.१३२
माल्यदाम कलापैश्च	३५.४३
माषा मुद्गामसूराश्च	८.१४५
मांसातु भेद सो जन्म (उ)	३५.४५
मासं ते प्रतिगच्छेयु: (उ)	१९.८
माहेन्द्रस्य द्विपेन्द्रस्य	३७.२५
माहेन्द्री चेन्द्रभगिनी	९.८४
माहेन्द्रेण गजेन्द्रेण	४२.५
मांस भक्षयितामुत्र (उ)	२६.२३
मांसमानव श्राद्धेयं (उ)	२६.१२
मांसं श्राद्धमुजस्तृप्तिं	५६.७०
मित्रवान्मित्रविन्दुश्च (उ)	३८.९९
मित्राणि शिष्या पशवश्च	४८.५५
मित्रा ज्योतिस्तु कन्यायां (उ)	३१.५
मित्रावरुणयोश्चैव (उ)	९.९०
मिथिर्नाम महावीर्यो (उ)	२७.६
मिथुनानां सहस्रं तु	८.३६
मिथुनानि प्रसूयन्ते	४५.१७
मिथुनं जायते सद्य:	४५.१८
मिथ्यातत्त्वविदो (उ)	१७.७३
मिथ्याभिशस्ति (उ)	३४.३६
मिश्रकेशी तथा शाची (उ)	८.५
मिषतस्तु वसिष्ठस्य (उ)	२६.११३
मीनका: पिप्पला: (उ)	८.२९६
मीना माता तथा वृत्ता (उ)	८.२८५
मीने मेषे स्थिते (उ)	२३.४४
मुकुटे पन्नगावासा	३९.६२
मुक्तकेशो हंसश्चैव	१९.२४
मुक्ता वैदूर्य वासांसि (उ)	११.११२
मुक्ता वैदूर्य वासांसि (उ)	१८.१०
मुक्ति: कृता त्वया पुत्र (उ)	५०.१८
मुक्तिर्वामन इत्येव (उ)	४६.४०
मुखचन्द्रो भीममुख:	३०.२५८
मुखतोऽजान् ससज्जयि	९.३९
मुखमर्दलवादिजैर्बलिनां	५४.३६
मुखात्तु नवमात्तस्य	२६.४१
मुखात्तु प्रथमात्तस्य	२६.३२
मुखादेकादशात्तस्य	२६.४३
मुख्यलिङ्गानि सर्वाणि (उ)	४७.२०
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु	६.५७
मुख्यसर्गे तथा भूतम्	६.३८
मुख्यादयस्तु षट्सर्गा:	९.११०
मुख्येषु येषु सर्गेषु (उ)	२१.२६
मुञ्चन्ति पुष्पवर्षञ्च	३९.२३
मुञ्च मां बलिनां (उ)	३७.५२
मुण्डञ्जटिलकषायान् (ड)	१७.९०
मुण्डनं चोपवासश्च	४३.२२
मुण्डस्य सानौ (ड)	४६.८०
मुण्ड पृष्ठन गाद्यस्तात् (उ)	४९.२८
मुण्डपृष्ठान्न गाधस्तात् (उ)	४९.५४
मुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तं (उ)	१५.१०३
मुद्गल: सृञ्जयश्चैव (उ)	३७.१९१
मुद्गला विष्णुवद्धाश्च	४.१०७
मुद्गेभ्य: पनसेभ्यश्च (उ)	८.३००
मुनिक: स्वामिनं हत्वा (उ)	३७.३०४
मुनिदेशात्परश्चैव	४९.६७
मुनि तथैवाङ्गिरस प्रजापतिम्	३.३
मनुस्तु वचनं श्रुत्वा (उ)	२६.१५७
मुष्टिमात्र प्रमारणञ्च (उ)	४८.२५
मुहूर्त्ता सर्व नक्षत्रा: (उ)	५.३६
मुहूर्तनान तथैवादि	५३.११५
मुहूर्त्तास्तिथयो मासा (उ)	३५.३१
मुहूर्त्तास्तु पुनस्त्रिंशत (उ)	३८.२१६
मूका घना महाकाय	५१.३२
मूर्तिमन्ति च सामानि (उ)	४.२४
मूलं चाषाढ़े द्वे (उ)	५.५१
मूलै: फलैश्च रोहिण्य:	८.१५१
मृकण्डस्य वसिष्ठस्य	४१.४४
मृगराजा मृगमन्दाया (उ)	८.२०१
मृगायास्तु मृग: पुत्रो (उ)	३७.२०
मृगेन्द्र कृत्तिवसन (उ)	३०.१३२
मृग्यास्तु हरिणा: (उ)	८.२००
मृत्पिण्डस्तु यथा चक्रे	१४.१८
मृत्योर्मृत्यु समास्ते (उ)	३९.२८६
मृदङ्गवेण पणववीणाद्या	४५.४०
मृषावादी नरो यश्च (उ)	३९.१६८
मेधा इति समाख्याता (उ)	३७.३७०
मेधातिथि सुरस्तस्य (उ)	३७.१२७
मेधातिथि सुतस्तस्य (उ)	३७.१६५
मेधातिथेस्तु पुत्रै:	३३.३४
मेधानां पुनरुत्पत्ति	५१.२८
मेधा मेधातिथिश्चैव (उ)	१.५१
मेस्यामेस्य शरीरत्वात्	२७.२५
मनेका सहजन्या च	५२.७
मेनस्य मेनका कन्या (उ)	८.५२
मेना च धारिणी चैव	३०.२८
मेना हिमवत: पत्नी	३०.३२
मैथुनं नैव सेवेत	२७.२४
मेरु प्रदक्षिणीकृत्य	४६.२८
मेरो: कुहरिणी गत्वा (उ)	४२.६१
मेरो: प्राच्यां दिशि	५०.२७
मेरोस्तु धारणी पत्नी	३०.३३
मेरोस्तु पश्चिमे भागे	४६.१७
मेषाभ्यां पदवी राजन् (उ)	२९.२५
मोक्षो धर्मस्तथार्थश्च	२३.७५
मोक्षोपाय मथैश्वर्यं (उ)	११.१०७
मोक्षो ब्रह्मैक्यामित्येव (उ)	४२.९७
मोक्षेब्रह्मबलश्चैव	६१.५१
मोहनश्च सुनीनाश्च (उ)	४६.५१
म्लेछराष्ट्राधीया: (उ)	३७.१२
य	
यं गर्भे सुषुवे गङ्गा	२.१६
यं च दृष्ट्वा तत: (उ)	१७.४७
यं यं राजा स्पृशति (उ)	३७.२३४
यं विनिद्रा जितखासा:	३०.२७२
य इदं जन्म कृष्णस्य (उ)	३४.१९१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
य इन्द्रियात्मका	५७.९६
य इमानं पश्यते भावान्	१.४
य इमां सप्तसम्भूतिं (उ)	६.४६
य एते पूर्व निर्दिष्टा (उ)	१७.५५
य एवाप्यवतिष्ठन्ते (उ)	६.१०
य एष शिवनाम्ना	४९.१६९
यः कश्यपसुतस्याथ (उ)	४.१३७
यः कुक्कुटानि (उ)	३९.१६३
यः पठेत्तपसा युक्तो (उ)	३९.३५२
यः परन्तपसः प्राहुर्यः (उ)	३५.३९
यः पुराणे पुराणात्मा (उ)	३५.१६
यः पुरा ह्यनलो भूत्वा (उ)	३५.१८
यः प्रयाग पदाक्रम्य (उ)	३७.२१०
यः सर्वेषां विमानानि (उ)	२२.१८
यः स वै प्रोच्यते (उ)	४.१३६
यः सहस्रतमो भागः (उ)	३९.१९८
यः सहस्रतमो भागः (उ)	३९.२०१
यः सहस्रतमो भागो (उ)	३९.२०३
यः सहस्राण्यनेकानि	३०.२७१
यक्ष इत्येव धातुर्वै (उ)	८.९७
यक्ष गन्धर्व चरितैरनेकैः	३९.८
यक्षगन्धर्वपिशाचोर (उ)	३.२२
यक्षगन्धर्व भूतानां	५४.९४
यक्षगन्धर्व सेव्याश्च	३५.१९
यक्षभूतपिशाचैश्च	३३.६५
यक्षराक्षसगन्धर्वान्	१२.९
यक्षस्तु न कदाचिद्वै (उ)	८.१०८
यक्षाः पुण्यतमा नाम (उ)	८.१८८
यक्षाणामीश्वरः श्रीमान् (उ)	३०.४५
यक्षाषां किन्वराणाञ्च	४१.६७
यक्षाणां राक्षसानाञ्च (उ)	८.१९७
यक्षा दृष्ट्वा पिबन्तीह (उ)	८.१६१
यक्षा नागाः सुपर्णाश्च (उ)	११.१०४
यक्षान् पिशाचान्	६.५१
यक्षा यक्षोपशान्तश्च (उ)	८.३८
यक्षेभ्यश्च तथैवोर्द्धम- (उ)	६११८
यक्षो रजतनामस्तु (उ)	८.१४६
यक्ष्यन्ति वाजपेयैश्च (उ)	३७.३६६
यच्च किं पुरुषं वर्षम्	४६.२
यच्च क्षत्रात् समभवद्	१.३१
यच्च क्षत्रात् समभवद्	१.१३८
यच्चक्षुषां चक्षुरथ (उ)	४२.३७
यच्च रत्नं मणिवरं (उ)	३४.६३
यच्च वाणिजके चैव (उ)	२१.३८
यच्चाकामसुखं लोके (उ)	३१.१००
यच्छष्टन्तु यजुर्वेदे	६०.२२
यच्छ्रवः फलमेवेह (उ)	४२.१०४
यजन्ते नाश्वमेधेन	५८.६७
यजुर्मयो ऋङ्मयश्च	३०.२३०
यजुर्वेदश्च वृत्ताढ्य (उ)	४.२५
यजूँष्यधीयन्ते यानि	६१.२२
यच्चरधं भक्षितं	३०.१७६
यज्ज्ञप्त निराकर्त्ती (उ)	४२.२७
यज्ज्ञात्वा न निवर्तन्ते (उ)	४०.१२६
यज्ञप्रवर्त्तनश्चैव संवादो	१.१०२
यज्ञः प्रवर्त्तितश्चैव	५७.६१
यज्ञश्चक्रे गयो राजा (उ)	५०.१
यज्ञमेतं महाभाग	३०.१११
यज्ञवाहाय दानाय	३०.२१२
यज्ञस्य दक्षिणायाञ्च	१०.२०
यज्ञहेतोर्यदुद्धृत्य (उ)	२१.५४
यज्ञान्वेदांस्तथा (उ)	२१.७२
यज्ञे समाह्वयिष्याम (उ)	३७.६५
यज्ञोऽधस्तु विज्ञेयो	५२.९३
यज्ञोपेतः स सुमहान्	४७.६१
यज्वा दानपतिर्वीरो (उ)	३४.१६
यतिर्ययातिः धर्माणो (उ)	३१.१३
यतिस्तु सर्वविप्राणां (उ)	१७.५२
यतिं वा बालखिल्यान् (उ)	१७.६१
यतीनां पूजने चापि (उ)	१७.६४
यत्किञ्चित्पच्यते गेहे (उ)	१२.३१
यत्तद्भवति नारीणाम्	८.८१
यत्तद् विषुवतं शृङ्गन्तदर्कः	५०.१९३
यत्तद्वै कर्णिकामूलम्	३५.१
यत्तत्सत्राजिते कृष्णो (उ)	३४.५६
यत्तत्सहस्रं सिंहानाम्	३९.३४४
यत्तत् स्मृतं कारणम्	३.९
यत्तु विशाखयूपो (उ)	३७.२५७
यत्तु सङ्कल्पकं तस्य	२७.४७
यत्ते वरमहं ब्रह्मन्	२५.७५
यत्तैजसं चावरणम् (उ)	४०.२९
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं (उ)	३१.९५
यत्र कामावसायित्वं	१३.१६
यत्किञ्चित्स्पृश्यते (उ)	२१ १०
यत्र कंसश्च शाल्वश्च (उ)	३६.११
यत्र गच्छन्ति निधनं	५३.३८
यत्र यत्र स्थिता देवा (उ)	५०.७१
यत्र ताः सम्मुदा युक्ता	४१.३३
यत्र दत्तं पितृभ्यस्तु (उ)	५०.५२
यत्र मृत्योर्गतिर्नास्ति (उ)	१५.६
यत्र यास्यन्ति	१४.१८
यत्र यासौ मया पूर्वं	३४.६१
यत्र वर्ष सहस्राणि (उ)	१५.५
यत्र वैरं समभवत्	२.१०
यत्र स गोमती पुण्या	२.८
यत्र संहार मायान्ति	१.१५०
यत्राभिषिक्तश्च गुहः	४१.४०
यत्रास्ते विश्वरूपात्मा	५५.५
यत्राहमुपपत्स्येहं	३०.५३
यत्रोद्यन्दृश्यते सूर्यः	५०.१०७
यत्सुरैः पीडितो (उ)	४४.६१
यत्सूर्य मण्डलञ्चापि	२२.७१
यत्सीमात्स्रवते	५१.१५
यथर्त्तावृतुलिङ्गानि	८.५८
यथा कामं यथोत्साहं (उ)	३१.६३
यथा कृतस्य सन्तानः	६१.१५५
यथा गोषु प्रणष्टासु	५६.८२
यथा गोष्ठेप्रणष्टाम् (उ)	२१.९०
यथा चैष मया दृष्टम् (उ)	३९.२१४
यथा चाशु विद्यात्प्राप्ता	१.९५
यथा तपत्यसौ	५२.२८

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
यथा ते पूर्वमासन्वै	८.११८
यथात्मनो ह्यलंकारो (उ)	२५.२३
यथा त्रेता युगमुखे	५७.८९
यथा दीपो निवातस्थो	१९.३६
यथा देवैश्च नागेश्च (उ)	१.१००
यथा नद्युदके नौस्तु	५२.८६
यथान्धकारे खद्योत:	५९.७१
यथा परिचितश्चायं	१०.८४
यथा पुरुरवाश्चैलस्त	५६.५
यथा प्रधानं वक्ष्यामि (उ)	६.७७
यथा बिभेद भगवान्	१.६३
यथा ब्रह्मा यथा विष्णु: (उ)	४६.७
यथा भवांस्तथा चाहम्	२४.२१
यथा मे कीर्तितं (उ)	३७.३६०
यथा यूयं विधिवद् देवता (उ)	४१.४१
यथां योग्यं यथा कामं (उ)	८.९५
यथायोग्यं यथा प्रीति:	८.९४
यथार्च्चिते हरौ सर्वे (उ).	४५.५३
यथावद् वर्त्तमानश्च (उ)	१७.५७
यथावायु प्रवेगेन (उ)	४८.२४२
यथा विधि यथाशास्त्रम्	१.१६८
यथा विवदमानस्तु	१.१७२
यथा वेदश्चतुष्पादश्	३२.६४
यथा शुभेन त्वशुभेन (उ)	३८.२०९
यथाश्रुतं मया पूर्वं	५४.२
यथा सर्वेषु देवेषु	३०.३०५
यथा सिंहो गजो वापि	१०.८३
यथा सुखं यथोत्साहं (उ)	३१.७२
यथा सूर्यस्य लोके (उ)	३८.२०२
यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन् (उ)	५.८०
यथा ह्यापस्तु विच्छिन्ना:	१४.२७
यथेदं कुरुतेऽध्यात्मं (उ)	४०.२
यथेह कथिता: पौरा	४४.९
यथेह लोके खद्योतं (उ)	४०.९२
यथेह संहितामन्त्रा	५७.१०७
यथैवमवमन्यन्ते	१६.९
यथोत्पन्नस्तथैवेह	९.१०१
यथोल्मुकस्त्रुटन्नूर्द्धम्	५९.७०
यदण्डमासीत्सोव (उ)	३९.२२७
यदब्ज वैष्णवं कार्य	३४.४४
यदर्थं कर्म कुर्वन्ति (उ)	४२.२६
यदर्थं तेव दृश्यन्ते (उ)	१०.९
यदहर्ब्रह्मण: प्रोक्तं (उ)	३८.२२६
यदा कार्य समारम्भे	२५.१५
यदा चन्द्रश्चं (उ)	३७.४०७
यदा तस्मिन्नजायन्त (उ)	४.३५
यदा तु कुरुते भावं (उ)	३१.९६
यदा तु क्रियते किञ्चित्	६१.११७
यदा तु चन्द्र सूर्यौ	५६.६
यदा तु पुनरेवायं	२३.६८
यदा न धारणे शक्ता: (उ)	२८.८
यदा न शक्यते स्तम्भात् (उ)	१.११६
यादनिलो लोकपदानी (उ)	३५.२४
यदा परान्न बिभेति	३१.९७
यदा पश्यति ज्ञातारं (उ)	४०.१२०
यदाप्नोति यदादत्ते	५.३२
यदा प्रवर्त्तते चैषां (उ)	४०.३९
यदा प्रवर्तितण्यन्तु (उ)	४१.१६
यदा भवति कालात्मा (उ)	५.९१
यदा भवति ब्रह्मा च (उ)	५.९४
यदा भविष्यति	२३.२०७
यदा यत्क्रियते येन	६१.११६
यदा स यजमानो वै (उ)	३७.१४९
यदास्य मनसा सृष्टा (उ)	४.१२७
यदाहं च पुनस्त्वासं	२३.६२
यदि गोविन्द भद्रन्ते	२५.५७
यदि तुष्टा: स्थ मे देवा (उ)	४४.१६
यदि दत्ता तदा स्यां (उ)	३४.१०८
यदिदं भारतं वर्षं	४५.६९
यदिदं विश्वरूपन्ते	२३.३९
यदि नस्त्वं कुरुषे (उ)	३६.४६
यदि प्रमाणं तान्येव	५७.१०८
यदि प्रसन्नो भगवान्	३०.१७५
यदि प्रीति समुत्पन्ना	५५.६०
यदि मे भगवान् प्रीत:	२५.१३
यदुत्तरं शृङ्गवतो	३३.४४
यदुनाहमवज्ञातस्तथा (उ)	३१.८२
यदुन्मेषनिमेषाभ्यां (उ)	४२.३२
यदुन्मेष निमेषाभ्यां (उ)	४२.३३
यदुर्ज्येष्ठस्त्वसुतो (उ)	३१.७७
यदुर्ययातिद्वौ देवौ	३१.६
यदुवंश प्रसङ्गेन (उ)	३६.१२५
यदुवंश समुद्देशो	१.१३१
यदुश्रवानुजस्तस्य (उ)	३४.१५९
यदेतत्कृष्णवर्णाभं	३२.१८
यदेतदाहृतं वित्तं	६०.३८
यदेतदुक्तं भवता	५३.२
यदेतद्दृश्यते वर्णं	५४.२५
यदेतद् रक्तं वर्णाभं	३२.१५
यदेतद्वै मुखं भीमं	३२.१७
यदेतस्य मुखं श्वेतं	३२.१४
यदेव चोक्तवती वह्निना (उ)	११.२६
यदो पुत्रा बभूवः (उ)	३२.२
यदोर्वंश प्रवक्ष्यामि (उ)	३२.१
यद्यदिष्टतमं द्रव्यम्	५९.४९
यद्यद्यस्य हि य	३४.६४
यद्ययद्विभूतिमत्सत्त्वं (उ)	५.१३६
यद्यद्धि संस्पृशेत (उ)	२१.१८
यद्यया च चतुर्थी (उ)	१९.५
यद्येवं चोदित: शक्र (उ)	३०.९५
यद्येष समयो राजन् (उ)	२९.१३
यवर्णा तु भवेद् भूमि: (उ)	८.८८
यद्धि सृष्टेषु संख्यातं	५.१
यन्नि:सङ्गं चिदाकाशं (उ)	४२.९२
यन्मयानन्तरं कार्यं	२४.४७
यन्मार्त्तण्डो भवान्	२२.२९
येपि चान्ये द्विजश्रेष्ठा	२२.३२
यमद्वीपामिति प्रोक्तं	४८.१९
यमस्तु तेन शापेन (उ)	२२.५७
यमशुक्र प्ररोगैश्च	१०.६७
यमस्तु यानि श्राद्धानि (उ)	२०.१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
यमस्य पुत्रा यज्ञस्य	१०.२१	यस्तु पिण्डो मया (उ)	४६.८९	यस्माद् भूतस्य लोकस्य (उ)	३.२०
यमस्य भगिनी पुण्या (उ)	१५.७०	यस्तु प्रत्याहरेत	११.१९	यस्माद्वाक्यमनादृत्य (उ)	६.१५
यमुनाप्रभवे चैव (उ)	१५.६९	यस्तु प्रावरणं शुक्लं	१९.३२	यस्माद्विश्रवसो (उ)	९.४०
यमोऽसि यमदूतोऽसि (उ)	४५.३२	यस्तु श्राद्धेऽतिथिं (उ)	१७.१३	यस्माद्विष्टाश्च ते	४९.१७४
यमराजधर्मराजौ (उ)	४५.२९	यस्तु स्यादवरोधे (उ)	२५.२०	यस्मान्न च्यवते (उ)	३९.१४२
यमोऽधिकारं स्वं (उ)	४६.६	यस्त्वग्निं प्रविशेत्तत्र (उ)	१५.४४	यस्मान्न हन्यते	५९.८२
यम इन्द्रादिभिर्गत्वा (उ)	४६.४	यस्त्वयं नवमो	४५.८६	यस्मान्मनीस सम्पूर्णो	२१.६२
यममूचे ततो ब्रह्मा (उ)	४६.५	यस्त्वयं वर्तते कल्पः	५.४६	यस्मान्ममाभिसन्धाय (उ)	६.२५
यमुना पुलिने तुङ्गे (उ)	४२.५०	यस्त्वं मे हृदयाज्जातो	३१.४१	यस्मान्मच्च वितृप्तायां (उ)	११.२५
यया दाव प्रदग्धेषु	५८.१०९	यस्त्वं मे हृदयाज्जातो (उ)	३१.४८	यस्मान्मामीदृशे काले (उ)	३७.१४३
ययुश्च त्रिमनाश्चैव	५२.५३	यस्त्वं मे हृदयात् (उ)	३१.५२	यस्मिन् दोषाः (उ)	१७.६
यवनाः पारदाश्चैव (उ)	२६.२२७	यस्माच्चतुष्पदा	२३.८१	यस्मिन्नहम वात्सं (उ)	२९.३२
ययातिर्युधि दुर्द्धषो (उ)	३१.२०	यस्माच्चाहं विवृत्तो (उ)	६.२३	यस्मिन्निदं यतश्चेदं (उ)	४२.३४
यवीयसी तयोर्या (उ)	२२.८५	यस्माच्चैवमजा	२३.८५	यस्मिन् यस्मिंश्च	१२.२६
यया धते प्रजाः सर्वाः	२७.४२	यस्माच्चैवार्त्तवेयास्तु	३०.१८	यस्मिंस्तु निहते (उ)	१.१६०
ययुधो वासुदेवस्तु (उ)	३४.४५	यस्माच्चैव क्रिया भूत्वा	२३.८४	यस्मै श्राद्धानि देयानि (उ)	२१.५८
यया सृष्टाः सुरास्तन्वा	९.५	यस्माज्जातैश्च तैः	२१.३४	यस्था कृष्णा खरा जिह्वा	१९.२३
यया सृष्टास्तु	९.१२	यस्मात् कालविभागानां	३१.३५	यस्था गन्धेन दिव्येन	३८.२९
यवनाष्टौ भविष्यन्ति (उ)	३७.३५४	यस्मात्क्षेत्रं विजानाति	४०.१०९	यस्य चार्ष न प्रमाणं (उ)	४०.७०
यशो देवी च ताभ्यां (उ)	३७.१११	यस्मात्तत्र समुत्पन्नो	२१.६९	यस्य चैकशतश्चासीत् (उ)	३७.१७०
यशो राज्य सुखैश्वर्य	३०.३०६	यस्मात्ते ते जानता (उ)	३५.१४१	यस्य भक्तेष्वस मोघे (उ)	३९.३२८
यश्चक्रं वर्तयत्येकी (उ)	३५.११	यस्मात्तैः संवृता बुद्धिः	६.३७	यस्य यः सादृशश्चापि (उ)	३८.५०
पश्च तस्मात्प्रभवति (उ)	५.८३	यस्मात्वमहिशे (उ)	३७.४५	यस्य यस्याण्वयाये ये	४.३
पश्च सूकरवद्भुङ्क्ते (उ)	१७.८३	यस्मात्त्वं मत्कृते	३०.६३	यस्य वै स्नातमात्रस्य	१९.१९
यश्चाधर्मे स्थितो (उ)	१७.४१	यस्मात्परिगतैर्गीतः	२१.४५	यस्य स्वेद्समुद्रभूता	१९.२५
उष्णायं तपके लोकांस्तु	३१.३१	यस्मात्पुरा ह्यनन्तीदं (उ)	४१.५५	यस्य हस्तौ च पादौ च (उ)	४८.५
यश्चासौ तपते सूर्ये	५३.१७	यस्मात्पुराह्यनन्तीदं	१.१८३	यस्यासीत् पुष्पाग्र्यस्य (उ)	३४.१४७
यश्चेदं श्रावयेत् (उ)	४१.५३	यस्मात्पुर्यनुषेतै	५.४०	याग कृत्वोत्थितो (उ)	४९.३०
यश्चेदं शावयेच्छ्राद्धे (उ)	४१.५४	यस्मात्प्रवृत्तयश्चास्य (उ)	३६.५४	या चैतासा कुमारीणाम् (उ)	११.१८
यश्चेम शावयेन्मर्त्यः (उ)	१.१०६	यस्मात्प्रस्रवते	५६.२३	याज्ञवल्क्यो धनं	६०.६२
यश्चेमां धारयेन्नित्यं	४.६	यस्मात्सृष्ट्वा (उ)	५.११७	यातनाश्चाप्यसंख्येयाः (उ)	३९.१८७
यश्चैव शृणुयान्नित्यं (उ)	२१.७५	यस्माददृश्यो भूतानां	२१.६०	यातुधानान् विशन्त्येताः (उ)	५.११४
यष्टव्यं पशुभिर्मेध्यैरथ	५७.१०६	यस्मादवयता दक्ष	३०.५७	यातुधाना ब्रह्मधाना (उ)	९.५५
य सतां मूर्च्छनां कृत्वा (उ)	२४.५९	यस्मादस्य परं (उ)	३९.१०५	या त्वर्द्धात् सृजते	१०.१०
यस्तिष्ठेदेकपादेन (उ)	१०.७३	यस्मादहं च देवेश	२३.६०	या दुस्त्यजा दुम्मति (उ)	३१.६८
यस्तु ज्येष्ठो महातेजाः	२२.८६	यस्माद दाक्षायणीष्वेते (उ)	८.३४१	यादृग्जातानि पापानि	१४.३३
यस्तु तेष्वप्रमतः स्यात्	१६.४	यस्माद्भवन्ति भूतानि	२७.२२	यानि कर्माणि कृतवान् (उ)	१.११४

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
यानि कानि च दिव्यानि	३०.१५३
यानि किम्पुरुषाद्यानि	३३.४८
यानि गन्धादपेतानि (उ)	१३.३५
यानि गीतानि प्रोक्तानि (उ)	२५.३६
यानि रत्नानि मेदिन्यां (उ)	१८.५८
यानीह सुषिराणिस्यु:	२७.४५
यान्यस्याण्डकपालस्य	५१.४२
यान्वक्ष्यामि द्विजश्रेष्ठा (उ)	११.७८
यामादय: क्रमेणैव (उ)	३९.५७
यामा: पूर्वं परिक्रान्ता	१०.२२
या भूर्तय: सुसूक्ष्मास्ते	३०.२६९
यामेतां वहसे कंस रथेन (उ)	३४.२२१
यामेव रजनीं कृष्णो (उ)	३४.२०८
ययातिवंशजस्याथ (उ)	३४.१९८
यायावरश्च पञ्चैते (उ)	१७.५६
यावच्चसर्गप्रतिसर्ग (उ)	४०.१३२
यावत्तिला मनुष्यैश्च (उ)	४८.१६
यावत्पृथ्वीं पर्वताश्च (उ)	४४.६४
यावत्यश्चैव तारा:	५२.९१
यावत्यो हि सरिच्छ्रेष्ठा (उ)	४५.५६
यावत्सूर्य उदयति (उ)	२६.६८
यावत्स्थास्याम्यहं (उ)	३७.२४८
यावत्स्थिता शरीरेषु	२७.४३
यावन्तश्चैव ते (उ)	३९.८
यावन्ति चैव वर्षाणि	३४.५
यावन्तं चाभवत्कालम्	२.४
यावन्त्यन्नानि पूतानि (उ)	१७.८७
यावन्त्यश्चैव तारास्तु	५२.८७
यावन्त्यस्तारका:	५३.७३
यावन्त्यस्य शरीरेषु (उ)	४१.५७
या वै दुहितरस्तेषाम् (उ)	११.२
या वै व्रजकुलाख्यास्तु	३१.२१
यास्ता: स्वायम्भुवाद्या (उ)	३९.२५
यास्तु शेषास्तदा (उ)	५.५४
यास्ते वैतरणी नाम (उ)	४३.४१
यास्याम्यहं महादेव (उ)	३५.१०६
युक्तमम्भोजपवने (उ)	४२.६५
युक्तस्तु वाजिभिर्द्दिव्यै:	५२.७८
युक्तात्मनस्ततस्य	९.३
युक्तात्मा हि तत: (उ)	३७.९६
युक्ता योगेन चेशानं	१४.१३
युक्तं मनोजवैरश्वैर्येन (उ)	३१.१९
युगपत्समवेतार्थो (उ)	५७.३८
युगपसत्वं देवीर्हि (उ)	११.४०
युग संध्यं शकश्चैव	५७.४
युगस्वभावाच्च	५८.१२५
युगस्वभावात्सन्ध्यास्तु	५८.७४
युगाक्षकोटि ते तस्य	५१.७०
युगाख्यो दश (उ)	३६.५१
युगानुरूपं य: कृत्वा (उ)	३५.३०
युगार्काभं महावीर्यं	३०.१३१
युगे युगे भवन्त्येते (उ)	२.५०
युगेषु यास्तु जायन्ते	५९.१
युगान्तेष्वन्तको (उ)	३५.४०
युगे युगे महात्मान: (उ)	३७.४२८
युगं वै दशसंकीर्णमासीद् (उ)	३५.७०
युग्मानि षौडशान्यानि (उ)	८.२५२
युञ्जानस्य तनुं तस्य	११.४२
युद्धानि द्वापरे नित्यम् (उ)	१६.३८
युधा जित: प्रजासर्ग:	१.१३४
यूपान् समित्स्रुवं सोमं (उ)	३५.२८
यूपा मणिमयास्तत्र	४७.२७
यूपं प्रदक्षिणीकृत्य (उ)	४९.४०
यूयं तपश्चरध्वं वै (उ)	३५.१०८
युवनाश्वस्य शापेन (उ)	२९.५६
युवनाश्व: सुतस्तस्य (उ)	२६.६५
युवानश्च भृता यस्य (उ)	१९.१८
युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन (उ)	२.३५
युष्माकं स्याद् वारिवहा (उ)	४४.८०
ये केचित्प्रेतरूपेण (उ)	४८.४९
ये केचित्प्रेतरूपेण (उ)	४८.६३
येङ्गुष्ठ मात्रा: पुरुषा	३०.२७५
ये चान्ये पाप कर्माण: (उ)	१६.३५
ये चान्येऽपि महात्मान:	२३.१६८
ये चान्येप्यवलास्तेषां	८.१५७
ये चान्ये विन्ध्यनिलय (उ)	१.१२४
ये चापि देवा मनव: (उ)	३८.२१०
ये चापि वामदेवत्वं	२३.६६
ये चाप्युत्पतिता	३०.२७६
येऽतीतास्तैर्युगै;	३३.६३
ये तु विप्रा: स्थिता (उ)	१७.७२
ये तु व्रते स्थिता नित्यं (उ)	१०.९१
ये ते रात्र्यहनी दिव्ये	५७.१४
ये द्वादश प्रसूयन्ते	१.५८
ये द्वापरेषु प्रथयन्ति	३.१९
ये द्रक्ष्यन्ति सदा (उ)	४७.३८
ये द्रक्ष्यन्ति सदा भक्त्या (उ)	४७.३७
ये धर्म्मं नानुवर्तन्ते (उ)	१६.३१
येन गंगा सरिच्छ्रेष्ठा (उ)	२६.१६७
येन ते निहता दैत्या: (उ)	३५.२१
येन त्वामाविशत्क्रोधो (उ)	२२.६१
येन दक्षस्य पुत्रास्ते (उ)	४.१३९
येन प्रोक्तस्त्वयं (उ)	२१.७८
येन येन च धर्मेण	१०.६४
येन येनाभिधानेन (उ)	२९.१०१
येन रोदन्ति देहस्था:	३०.२७७
येन सैंह वपु: कृत्वा (उ)	३५.१७
येन हि ब्रह्मणा सार्धं	५५.१०
येन लोकान् कर्मैर्जित्वा (उ)	३५.१४
ये नृपा विबुधेन्द्राणां (उ)	३९.२८२
ये नैव सृष्टा: प्रथमं (उ)	३८.२०८
येनैवाधिष्ठित हीदम्	७.५५
ये पठन्ति नरास्तेषां	६.८७
ये बान्धवा बान्धवा (उ)	४८.५०
ये बाह्य कार्यशृङ्ख्यां (उ)	३४.५
येऽब्रुवन् क्षिणुमोऽम्भांसि	९.२८
ये मे कुले लुप्तपिण्डा: (उ)	४८.५२
ये यज्वान: स्मृता:	५६.६४
ये रुद्रा: खलु ते प्राणा:	२५.६७
येऽर्च्चिषस्तास्य ते (उ)	४.६१
ये वै परिगृहीतार:	८.१५५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
ये श्रूयन्ते दिवं प्राप्ता	६१.१०२
येषामन्वय सम्भूतैः (उ)	४.१३
येषामर्थाय सङ्ग्रामे (उ)	३०.७९
येषां दास्यन्ति पिण्डां (उ)	२१.८८
ये सर्गा द्वेष युक्तेन	८.२७
ये समुद्र नदीदुर्गे	३०.२७८
येऽस्मत्कुले मातृवंशे (उ)	४९.३५
यैः क्रियन्ते च कर्माणि (उ)	११.५५
यैः शिष्यस्तान् प्रवक्ष्यामि (उ)	३८.३८
यैर्हि व्याप्तमिदं	८.७४
यो गतिर्धर्मयुक्तानाम् (उ)	३५.३६
योगपत्न्यश्च ताः	१०.२४
योग युक्ता महात्मानो	२३.२१३
योगात्मानो महात्मानो	२३.१३९
यमानो महात्मानो	२२.१५४
योगात्मानो महात्मानो	२३.१५९
योगात्मानो महात्मानो	२३.१८६
योगात्मानो महात्मानो	२३.२०५
योगात्मानो महाशक्ताः	२३.१७४
योगिनां चैव सर्वेषां	१६.१६
योगेन तपसा युक्तः (उ)	१०.५३
योगेन स्वाध्यानिनो	२४.१६३
योगेन योग सम्पन्नाः	२३.३१
योगेश्वरः शरीराणि	५.३०
योगेश्वराणामाक्रोशं (उ)	२१.६५
योगेश्वरः सदा जुष्टः (उ)	१५.४२
योगेश्वरैः सदा जुष्टं	१५.४९
योगोत्पन्नस्य विप्रस्य	११.४७
योग तपश्च सत्यञ्च (उ)	१०.६३
योग तपश्च सत्यञ्च (उ)	३९.३८
योगं परिवदेद् यस्तु (उ)	२१.६३
योगं योगनिधिः प्राह	१.६४
योजनाग्रान्मुहूर्त्तस्य	५०.१२०
योजनाग्रेण संख्यातः (उ)	३९.११३
योजानानान्तु संख्यातं (उ)	३९.१२८
योजनानां यथाञ्चैव	१.५१
योजनानां सहस्राणि	४६.१६
योजनानां सहस्राणि	५०.१५८
योऽतीतः सप्तमः कल्पो	२४.८
यो ददाति गुडर्मिश्रां	२१.२१
योधैरपि च संग्रामे (उ)	२.८
योऽनाहिताग्निः प्रयतो	२१.६५
योनि रग्नेरपां भूमेः	३१.४५
यो नोऽत्र सप्तरात्रेण	६१.१३
योऽन्तकाले जगत्पीत्वा (उ)	३५.१५
यो यो यस्य यथा	३२.२
यो वत्सुदेश प्रभवः (उ)	३१.२१
यो विद्याच्चतुरो वेदान्	१.१८०
योऽसावग्निरभिमानी	२९.१
योऽसृजच्चादि पुरुषं (उ)	३४.१९६
योऽसौ चतुर्दिशं प्रच्छे	५१.६
योऽसौ तवोदरं पूर्वं	२४.४३
योऽसौ तारामये दिव्ये (उ)	३९.१३५
योऽसौ भेरुद्विजश्रेष्ठाः	३५.१०
योऽस्याः सम्भवते (उ)	३४.२२५
यो हि योद्धा रणं (उ)	२.९
यो ह्यत्यन्ततरोक्तश्च	५९.११२
यो ह्यनिष्ट्वा पितॄन (उ)	१०.२८
यौवनाश्वेन समिति (उ)	३७.८
यौवनेनाथ वयसा (उ)	३१.६२
र	
रक्तकर्णा महाजिह्वाऽक्षया (उ)	८.१२९
रक्तभागास्त्रयस्त्रिशच्-	१४.२१
रक्ताम्बरधराः सर्वे	२२.२९
रक्ष इत्येष धातुर्यः (उ)	८.९८
रक्षणञ्चैव श्राद्धस्य (उ)	१४.१५
रक्षणेपालने	९.२९
रक्षः पिशाचा यक्षाश्च	४६.३३
रक्ष मां रक्षणीयोऽहं	३०.२७
रक्षमाणौ ततोऽन्योन्यं (उ)	८.११३
रक्षः सुमाली बलवान् (उ)	१.१८३
रक्षामेतां प्रयुञ्जीतं	९.८८
रक्षिता स तु राजर्षि (उ)	३३.२
रक्षोघ्नाय पशुघ्नाय (उ)	३५.१८७
रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च	५२.५
रजतस्य तथा चापि (उ)	१२.२
रजः पुत्रोऽर्द्ध बाहुश्च	२८.३५
रजः प्रायात् ततः	९.१६
रजसा तु समुद्रिक्तो (उ)	५.९०
रजसो वाप्य जनयन्	२८.३६
रजस्तमोविनिर्मुक्तास्	२३.८८
राजस्वलानुस्पर्शेन (उ)	२१.४६
रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा (उ)	३०.८८
रजिर्यतस्ततो लक्ष्मीर्यतो (उ)	३०.८०
रजेयुश्च कृतेयुश्च (उ)	३७.१२०
रजो ब्रह्मा तमोह्यग्नि	५.१४
रज्जा वहिर्मरौवारि	४२.३९
रञ्जनः पृथुरश्मिश्च (उ)	४.७८
रणितालसितोद्गीतैः	४०.२५
रणेः विजेतुं देवान् वैः (उ)	३५.१२५
रत्नधातौ गिरिवरे	३९.४५
रत्नान्येतानि दिव्यानि	५७.७१
रत्तावलुक्या तत्र (उ)	३९.२३८
रथकाराः स्मृता देवा (उ)	४.१०३
रथनीडः स्मृतो हि	५१.६१
रथन्तस्मै ददौ रुद्रः (उ)	३१.१८
रथनागाश्व चरितम्	१.३२
रथानां मेघ घोषाणं (उ)	३४.१२२
रन्तिर्नाराः सरस्वत्यां	३७.१२५
रन्ध्रोद्धुतं तथाश्वानां	३०.२९९
रमटा रद्धकटकाः	४५.११७
रम्या योजनविस्तीर्णा	४२.३६
र राजपदिशन्तस्य (उ)	३९.२७०
र वेः कराल चक्राय	२४.१३६
रसातलगता ये च	३०.३८०
रसातल तलात् सप्त	४९.१६३
रहस्यं सर्वमन्त्राणां	२३.४२
राक्षसस्य च नीलस्य	५०.२२
राक्षसस्य च भीमस्य	५०.१७
राक्षसानां तिलाः प्रोक्ता	२१.४५
राक्षसाश्च महारौद्राः	३०.९०

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
राक्षसेन्द्रस्य च पुरं	५०.३२
राक्षसैश्च पिशाचैश्च (उ)	१.१८२
रागद्वेष निवृत्तिश्च (उ)	४.६२
रागिणाञ्च विरागाणां (उ)	४२.१२
राजतं काञ्चनं वापि (उ)	१८.२१
राजतेषु महान्तेषु (उ)	३९.३०३
राजतेषु हि स्वधा दुग्धा (उ)	१२.३
राजतैश्चापि शुशुभे (उ)	३९.२५०
राजपुत्रौ तु विद्वांसौ (उ)	३३.३६
राजमार्गो परध्याश्च (उ)	८.२७७
राजवृत्ते स्थिताश्चौरा	५८.४२
राजसी तामसी चैव (उ)	५.८६
राजसी तामसी चैव (उ)	४०.५४
राजसूयाभिषिक्तानामाद्य (उ)	१.९५
राजसूयेऽभिषिक्तश्च (उ)	९.२१
राजसे बहुधा देव	५५.४०
राजस्था ब्राह्मणोंऽशेन (उ)	५.१०१
राजस्या ब्राह्मणोंऽशेन (उ)	५.१२१
राजा च गौतमीपुत्र (उ)	३७.३४९
राजा कु लभते राज्यम् (उ)	१८.६२
राजानः शूद्रभूयिष्ठा	५८.४०
राजा शतधरश्चाष्टौ (उ)	३७.३२९
राजा संन्यस्तशस्त्रो (उ)	२६.४६
राजाहमिति नाभिर्हि (उ)	८.१३८
राजा हिरण्यकशिपुर्यां (उ)	६.६५
राज्य कामो जपेदेनं (उ)	१२.१९
राज्यभाग्वै धनिष्ठासु (उ)	२०.१२
राज्यं स कारयामास (उ)	२९.४७
राज्ञयस्तु महिषी श्रेष्ठा (उ)	३०.४४
राज्ञयस्तु रुक्मकवचाद् (उ)	३३.२७
राज्ञातेन वरश्चैव (उ)	३२.४८
राज्ञा पतनाकरमालिनी (उ)	२.४
राडश्च महावीर्यश्च	६१.४५
राणायनीयः स हि	६१.३७
रात्रिर्वरुथो धर्मोऽस्य	५१.६३
रात्रिस्त्वेतावतीज्ञेया	५.२
रात्रौ चेन्द्रायुधं पश्येद्	१९.२१
रात्रौ स्कन्नः शुचिः	१८.१६
रात्र्यर्द्धे चामरावत्याम	५०.१००
राधा विलास रसिकम् (उ)	४२.५२
रामतीर्थे नरः स्नात्वा (उ)	४५.२७
रामराम महाबाहो (उ)	४६.२०
राम सीतां लक्ष्मणञ्च (उ)	४६.२५
रामे वनं गते शैलम् (उ)	४६.२४
रामे वनं गते शैलम् (उ)	४६.३३
रामोदशरथिर्वीरो (उ)	२७.१८३
रामो रुद्रपदेश्राद्धे (उ)	४९.७५
राशौ दृष्टेन संख्यास्ति (उ)	३९.१०९
राहुर्ज्येष्ठस्तु तेषां (उ)	७.२०
रिपोराधत्त बृहती (उ)	१.८८
रिवेयोर्ज्वलना नाम (उ)	३७.१२४
रुक्म काञ्चननिर्यूहं	४१.५२
रुक्मघण्टानिनादैश्च (उ)	३९.२५२
रुक्म पारिजात वने (उ)	५०.४४
रुक्मशृङ्गावदातेन	५०.४७
रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च (उ)	३३.२८
रुचः सुतीर्थाद्भविता (उ)	३७.२७०
रुचिराश्वस्य दामादः (उ)	३७.१६९
रुचेः प्रजापतेश्चोद्र्ध्वम्	१.६१
रुद्रकोपपयुक्तास्तु	३०.१५४
रुद्रं ब्रह्मणभिन्दश्च (उ)	५.११८
रुद्रस्तु वत्सरस्तेषां	५६.२१
रुद्रस्य शापात	३.१७
रुद्रस्यानुचराः सर्वे	३०.१४३
रुद्राक्षमाल्याम्बरधरो	३०.२५२
रुद्राणी सा तु प्रवरा (उ)	११.२०
रुद्राग्निगंगा तनयस्तत्र (उ)	११.३३
रुद्रादिषु च देवेषु (उ)	४४.५२
रुद्रादीनि तथा ह्यष्टौ	१.६८
रुद्राविष्टो भगवता	३१.५६
रुद्राश्चैकादशैवाथ (उ)	४७.२३
रुद्रान्द्रोपेन्द्र चन्द्राणां	५३.३५
रुद्रो भृगुर्मरीचिश्च	१०.२८
रुद्रोवैवस्वतः साक्षाद्	५३.३२
रूपमास्थाय विपुलम्	६.१५
रूप यौवन सम्पन्नां (उ)	४५.८
रूपन्त चैव विशतः	४.५८
रूपं विवर्त्तयेदन्ते (उ)	२२.७१
रुपेणानेन मां भीरु (उ)	४५.९
रूरुकस्तनयस्तत्र (उ)	२६.१२०
रूपाणांश्च कुणिन्दांश्च	४७.४३
रेतोधा पुत्रं नयति	३७.१३२
रेमेमुनिस्तया सपि (उ)	४५.१९
रेमे रामश्च धर्मात्मा (उ)	२४.३०
रेवती पूतनापुत्राः (उ)	२२.१४
रेवतीष्वेव सप्तार्चिः	५३.१०९
रेवस्य रैवतः पुत्रः (उ)	२४.२५
रंभस्य रैम्या (उ)	९.२६
रोचमानाय खन्डाय (उ)	३५.१८४
रोधे गोध्नो भ्रूणहा (उ)	३९.१५२
रोहिणी सुषुवे तत्र	२.८
रोहिण्यां जज्ञिरे (उ)	५.७२
रोच्यो भौत्यश्च (उ)	३८.११८
रौद्र लोहितमित्याहु (उ)	४.६०
रौद्र सार्वस्तथा मैत्रः (उ)	५.४०
रौरवे चान्धतामिस्रे (उ)	४८.४१
ल	
लक्षणद्वयसंस्थानाद्	२५.४२
लक्षणं पर्य्यवस्थापि (उ)	२५.२७
लक्षणानि सुवर्णानि (उ)	१८.१९
लक्षणैश्चापि जायन्ते	५७.७७
लक्षणानि स्वराः स्तोभा (उ)	४.२८
लक्षमात्रेण चाकाशं (उ)	८.१८०
लक्ष्मीः कीर्तिर्धृतिर्मेधा	५५.४३
लक्ष्मीः सीताभिधानेन (उ)	४४.५८
लताग्रहसहस्राणि	४५.३७
लतालम्बैश्चिवद्भिः	३९.५
लता वरस्पतीञ्जज्ञे	८.३३२
लतावल्ली तृणौषध्यः	३०.२३८
लब्ध्वा नामानि चैतानि	२७.१७
लभते च वरेण्यश्च (उ)	३७.४५७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
लभते रुद्र सालोक्यं (उ)	३९.३५३
लभन्ते च वरान् पञ्च	३२.५३
लम्बकर्णान् प्रलोम्बोष्ठान् (उ)	८.२३७
लम्बनं प्लवनं योगे	१३.१२
लम्बोदरश्च लम्बश्च	२३.१४२
लम्बोदरास्तुण्डनाशा (उ)	८.२६४
लम्बोदरा ह्रस्वभुजा (उ)	३९.२६१
लवाः काष्ठाः कलाश्चैव	८.१९
लशुन गृज्जनश्चैव (उ)	१६.१२
लाभालाभौ न तास्वास्ताम्	८.६३
लालाविः कुथनो भीमः (उ)	८.१५९
लिङ्गदेशे ततः काञ्चीम् (उ)	४२.७६
लिङ्गमात्रसमुत्पन्नः	४.२४
लिंगोद् भवकथा पुण्या	१.९७
लिङ्गोद्भवस्य देवस्य	१.१७६
लिप्सां चक्रे प्रसेनात्तु (उ)	३४.३२
लीलाविलासिकम् (उ)	४२.४५
लीलाविलाससंयुक्तैः (उ)	३९.२५९
लुलिता क्रीडता तेन (उ)	३२.२८
लेखचावस्थितः	५०.१११
लेखयोः काष्ठयोश्चैव	५०.१३५
लेखप्रभृत्यथादित्या	५०.१७०
लेखाश्च मरुतश्चैव (उ)	११.१०३
लेखांस्तथा प्रवक्ष्यामि (उ)	१.६३
लोककुल्लोक तत्त्वज्ञौ	१.५
लोकं तं समनुप्राप्य (उ)	३९.८०
लोकधात्री त्वियं भूमिः	२४.१४८
लोकपालः सुधर्मात्मा	२८.११
लोकपालाः स्थिताश्चोर्द्ध्वम्	१.८६
लोकपालोपरिष्टात्तु	५०.९२
लोकप्रभुः स्वयं साक्षाद्	२४.५५
लोक विस्तारमात्रन्तु	४६.१४७
लोकवृत्तान्तहोतोर्हि	९.७२
लोकसंव्यवहारेण	५०.२१४
लोकस्यसन्तानकराः (उ)	४.४८
लोकाक्षी कुथुमिश्चैव	६१.३६
लोका दुहितरश्चैव (उ)	२१.९४
लोकान्सृजति ब्रह्मत्वे	५.२८
लोकालोकन्तु सन्धत्ते	५०.१६१
लोकालोकस्य सन्ध्याया	१.८५
लोकालोके स्थिता ये	५०.१५५
लोकाः सान्तनिका (उ)	१०.५२
लोकाः स्वस्था भमन्त्वघ (उ)	२६.४२
लोके यदस्ति किञ्चिद् (उ)	६.२०
लोकेवेदे तथाध्यात्मे	६०.४७
लोके श्रेष्ठतमं स्वर्ग्यम् (उ)	१८.२
लोकेषु विश्रुतैः कार्य	२५.७६
लोकेषु वर्त्तन्ते (उ)	११.८७
लोपामुद्रां तथा भार्य्यां (उ)	४६.५८
लोपामुद्रां प्रसादेन (उ)	३०.६८
लोभपादं तृतीयन्तु (उ)	३३.३७
लोभमानात्मिकानां	११.७
लोभेन हतविज्ञानः	२.१९
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं	५८.२६
लोभहर्षणिका मूलास्ततः	६१.६०
लोहस्येव मणिस्तद् (उ)	४२.१००
लोहिव्यो रेणवश्चैव (उ)	२९.९५
लोहिताङ्गो गदी	३०.२४६
लोहित हेमशृङ्गस्तु	४७.१०
लोहेपी त्वभज्जयेष्ठा (उ)	८.१४
लोहेयो भरतेयश्च (उ)	८.१६
लौकिकेन प्रमाणेन	५७.५
लौकिकेनेव मानेन	५७.१२
व	
वंशभाजस्तु पञ्चैते (उ)	३७.८६
वंशानामनुपूर्व्येण (उ)	२२.२
वंशानामनुपूर्व्येण (उ)	२२.५
वंशानां धारणं कार्यम्	१.२७
वेशिताः सायुधाः (उ)	३६.६१
वंशीकरीराः सुरसाः (उ)	१६.११
वंशे त्वङ्गिरसः श्रेष्ठो	२३.१५२
वक्राङ्गहस्तपादाश्च (उ)	८.२६३
वक्राद्यस्य ब्राह्मणाः	९.११३
वक्राद्यस्य ब्राह्मणाः	६.७१
वक्ष्यामि विधिवत्स्थानं (उ)	१२.८
वक्ष्ये तीर्थवरं पुण्यं (उ)	४३.४
वक्ष्ये शिलायं माहात्म्यं (उ)	४६.१
वज्रके पर्वते चापि	३९.३०
वज्रस्फटिकसोपान्	५४.३८
वटवृक्षसमीपे तु (उ)	४९.९४
वटो वटेश्वरस्तत्र (उ)	४६.६०
वत्सन्तु ममतं यच्छ (उ)	१.१६६
वत्सपुत्रौ ह्यलर्कस्तु (उ)	३०.६६
वत्सरः पञ्चमस्तेषां	२१.२८
वत्सव्यूहात्प्रतिव्यूहः (उ)	३७.२७८
वत्सस्तु हिमवांस्तेषां (उ)	१.१८७
वत्सारः काश्यपश्चैव (उ)	३.२८
वत्सारश्चासिवश्चैव (उ)	९.२५
वदस्व किं मया कार्यं (उ)	२२.४१
वर्द्धमाने तदा वह्न	५५.१९
वध पुत्रो निकुम्भश्च (उ)	८.१२५
वध्यमानस्तदा देवै (उ)	३६.६८
वनं पुज्यफल्येपेतं (उ)	१८.३१
वनमाला वसुमती	४३.२७
वनस्पतीनां वृक्षाणां (उ)	८.३३१
वनानाञ्च सहस्राणि	४२.३५
वने चैत्ररथे रम्ये (उ)	२९.६
वनैर्विस्तीर्णतीर्थानि	३६.१३
वन्ध्या च लभते पुत्रं (उ)	४७.५४
वन्यमूलद्यस्पहारैः (उ)	१६.१९
वमुवुर्द्धार्मिकाः सर्वे (उ)	२६.३१
वमेन्मूत्रं करीषं वा	१९.४
वयं तपश्चरिष्यामः (उ)	३५.१११
वयं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः (उ)	१.११४
वयमभ्युपपत्स्यामः (उ)	३४.६०
वर्योदितस्तथा जिष्टो (उ)	३८.९४
वरकाञ्चनचित्रैश्च	३५.१५
वरकेतुरेवप्रथितो	३५.२३
वरगन्धमाल्यवस्त्राय	३०.२०४
वरदानप्रलुब्धेन	१.१३६
वरदाय वरेण्याय नमः	२४.११२

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
वरप्रभृतयो देवा (उ)	९.२९
वरं च दत्तवांस्तस्मै (उ)	४५.१८
वरं वरय धर्म्मते अस्मत्तो (उ)	४५.३७
वरा वरेण्या वरदा (उ)	३९.२४३
वराहगज सिंहर्क्षशार्दूल	४०.२१
वराहपर्वतो नाम तत्र	४८.३८
वराहरूपिणे तत्र	४८.४०
वराहस्तु यथोत्पन्नो	२१.२४
वरुणश्चार्यमा चैव	५२.९४
वरुणस्य पत्नी सामुद्री	२२.६
वर्जयेत्तछशांयज्ञे (उ)	१३.३०
वर्जिता विविधैः सत्त्वैः	३८.७३
वर्ण कर्माणि ये	८.१७०
वर्णयिष्यामि वो (उ)	१.१०३
वर्णस्तथाप्यङ्गविश्वै (उ)	३८.६४
वर्णस्थानगते वायौ	५४.१३
वर्णानां प्रविभागाश्च	५७.६०
वर्णानां विपरिध्वंसः	५८.६
वर्णानामाग्रणाश्च	१.१०१
वर्णाश्चापि यजन्त्येतां (उ)	२१.८३
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः (उ)	३७.३९५
वर्णाश्रमवक्तां धर्मो (उ)	४२.२१
वर्णाश्रमविरुद्धानि (उ)	३९.१७४
वर्णाश्रमव्यवस्थानं	५७.५५
वर्णाश्रमव्यवस्थानं	५७.९०
वर्णाश्रमाचारयुक्ताः (उ)	४०.९६
वर्णाश्रमाणां धर्मेषु	१७.८२
वर्णाश्रमाणां विधिवत्	३०.२१७
वर्णाश्रमेभ्य इज्या (उ)	३९.१३७
वर्णाश्रमेषु युक्तस्य	५९.२२
वर्द्धेते दक्षिणे चैव	५१.७३
वर्तन्ते वर्तमानैश्च	२९.४८
वर्त्तते च यथा तौ	५९.६६
वर्तमानान्यतीतानि	४.३६
वर्द्धते ह्रसते चैव अयने	५०.१७५
वलभी कूटनिर्व्यूहैः	३८.१४
वलयाङ्गदकेयूरहार	४५.४५
वल्गुस्वरै सदोन्मत्तः	३९.१९
ववन्दे सहसोत्थाप (उ)	४२.८८
वशित्वमय सर्वत्र	१३.४
वशिष्ठाय च शुचये	१.८
वश्यत्वं हि यथा	१०.८२
वषट्कारतमायैव (उ)	३५.१९४
वर्षन्तश्च तपन्तश्च	५२.३३
वर्षन्त्येते युगान्तेषु	५१.४१
वर्षं यदभारतं नाम	४५.७६
वर्षाणाञ्च नदीनाञ्च	१.७५
वर्षाणां च नदीनाञ्च	५३.१०३
वर्षाणाञ्चापि पञ्चानाम्	५३.११३
वर्षाण्यथ चतुः षष्टिं (उ)	२९.१५
वर्षा धर्मा हिमं रात्रिः	५१.११
वर्षिणे चन्तरिक्षो (उ)	४१.६१
वर्षे किम्पुरुषे पुण्ये	४६.७
वसन्त प्रतिमा पत्र (उ)	३९.२५५
वसन्ते चैव ग्रीष्मे	५३.२५
वसिष्ठ इति तत्त्वज्ञैः (उ)	४.४७
वसिष्ठ दक्षामि पुलस्त्यकर्दमान्	३.३
वसिष्ठवचनाच्चासीत् (उ)	२३.२२
वसिष्ठश्चाष्टमे व्यासः	२३.१३१
वसिष्ठश्चैव शाक्तिश्च	५९.१०५
वसिष्ठसम्भृश्चाग्निः	१.१६२
वसिष्ठस्तान तथा (उ)	२६.१३७
वसिष्ठस्य च ब्रह्मर्षेः	१.६९
वसिष्ठोऽत्रिः पुलस्त्वश्च	३०.४८
वसुदेववच श्रुत्वा (उ)	३४.२०७
वसुदेवश्च तां भार्य्याम्	३४.२२८
वसुदेवस्तु तं रात्रौ (उ)	३४.२०४
वसुधातलवासी तु	५७.१११
वसुधारे वसुमतां	३९.४४
वसुमित्रः सुतोभाव्यो (उ)	३७.३३३
वसुमोदस्य वै वर्षं	३३.१९
वसोस्तु वसवः पुत्राः (उ)	५.२०
वस्त्रैसन्नैः प्रदानैः (उ)	१३.१४
वस्वोकसायास्तीरे	४७.६०
वह्निद्वौ वरुणौ रुद्राः	४६.३६
वह्नौ विधूमे व्यङ्गारे	१६.८
वाक्यार्थ पदयोगार्थे (उ)	२५.३
वाग्दण्डः कर्मदण्डश्च	१७.६
वाङ्मनः कर्मजैनिर्वेदो	५८.२०
वाचावृद्धानृषीन् (उ)	३८.११३
वाचो नेदाश्चान्तेरिक्षं (उ)	४१.७२
वाजश्रवाः सुवित्तश्च	५९.९४
वाजियो वाजिजिच्चैव (उ)	३८.६२
वातानीकमयैर्बन्धैः	५१.९
वातारणिः समाख्यातः	२.४०
वातोध्रुवक्षितिश्चैव (उ)	१.६४
वानप्रस्थेन त्राषयो (उ)	१७.६५
वानप्रस्थो गृहस्थश्च (उ)	१७.१६
वानराः किन्नराश्चैव (उ)	९.६५
वाप्यक्षयं श्राद्धं तीर्थेषु (उ)	२१.५८
वामजानु सुसंपात्य (उ)	४६.९४
वामदेवोऽञ्जनश्यामः	८.२१७
वामनाकृतयश्चैव (उ)	८.२६५
वामयार्श्वमहम्मह्यं	२५.२४
वायसाः प्रतिगृहणन्तु (उ)	४९.४९
वायसोमङ्गलश्चैव	३१.७
वायुः प्रवेशनं चक्रे (उ)	३५.५३
वायुर्ग्रन्थिं ततो भित्वा	११.४१
वायुना तस्य नभसा	१.४५
वायुवोक्ता महासत्वा	३१.१९
वायुर्भवस्याधिस्पति (उ)	३९.२२
वायुः सम्भवते तेषां	१४.२०
वायुत्पन्ना मुदा नाम (उ)	८.५६
वायुनाप्रेर्यमाणं च	४२.९
वायोः स्पर्शश्च देवश्च	५५.३६
वाराणसी किमर्थन्तां (उ)	३०.२७
वाराणस्यां सुतस्यस्य (उ)	३७.३०९
वाराहेण तु षण्मासान् (उ)	२१.५
वारि शुश्राव योगेन (उ)	२६.५५
वार्त्तश्च दशमो ज्ञेयः (उ)	३५.७६
वार्ताकुं वर्जयेद्धात् (उ)	१६.४८

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
वार्ता नाशपते चित्तं	१२.१२
वार्त्तायान्तु प्रवृत्तायां	६१.१६०
वार्षायाणिस्तु सामुद्रं	३४.६३
वलेया ब्राह्मणाश्चैव (उ)	३७.२९
वाष्कलिश्च भर	६१.२
वासन्तौ ग्रैस्मिकौ मासौ	५२.६
वाससा चावभूतानि	१६.४६
वासुदेवस्तु निर्जित्य (उ)	३४.४७
वासुदेवस्य देवक्याम्	१.१३६
बासो हि सर्व दैवत्यं (उ)	१८.३९
वास्तोष्पते विनाकाय (उ)	३५.१७४
बाहशीशीला तु विनता (उ)	८.३३८
वाह्लीका वाढधानाश्च	४५.११५
विकंकस्याचलेन्द्रस्य	३७.१६
विकारेषु विनश्यत्सु (उ)	४२.९९
विकारेष्वविसृष्टेषु (उ)	४१.७
विकालश्च सुकालश्च	३०.२४८
विकुक्षि चरितश्चोक्तम्	१.१२९
विक्रमश्च क्रमश्चैव	३८.९३
विक्रमस्य पदान्यस्य	३२.३१
विक्रमौदार्यसम्पन्ना (उ)	८.१९
विक्रीणाति च यो (उ)	३१.३७
विक्षोभ्यश्च सुकेतुश्च (उ)	७.६
विख्याता: सप्तलोका: (उ)	३९.४२
विख्यातो देवरातस्य (उ)	३४.१८५
विग्रहो निग्रहाणां यो (उ)	३५.४३
विचरत्यचिरात् सर्वान्	५४.१०९
विचारणन्तु निर्वेदात्	५८.१००
विचारणाच्च वैराग्यं	५८.२१
विचारन्नपि मुनिनपि (उ)	४२.५८
विचार्य यस्माद् (उ)	३७.८९
विच्छिन्तं स्याद (उ)	१७.३५
विच्छिन्नां साममावस्थां	५६.४२
विजज्ञे देव जननी (उ)	८.१५३
विजयं रोचनश्चैव (उ)	३४.१७९
विजयश्च सुदेवश्च (उ)	२६.११९
विजय सुजयश्चैव (उ)	१.६१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
विजयस्य जय: तुत्र: (उ)	३१.९
विजयस्य त्रहत: पुत्र (उ)	२७.२२
विज्ञातहृदया नाम (उ)	३४.७०
विज्ञाता चैव विज्ञातो (उ)	५.७
विज्ञान न निवृतास्ते	६.६६
विज्ञेय इहलोकेऽस्मिन (उ)	८.४१
विज्ञेयमासहस्रन्तु (उ)	३९.९४
विज्ञेय: श्रवणात्	५९.३९
विज्ञेया मानसी तेषां	३९.४४
वितण्डावचनाश्चैके	२.३०
वित्तवान् भवत्यत्रैव (उ)	३२.५६
वित्तिश्चैव सुवित्तिश्च (उ)	६.६
विदलानाञ्च सर्वेषां (उ)	१६.५२
विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि	१२.३०
विदूरथसुतश्चापि (उ)	३७.२२६
विदेहकं करणकला (उ)	४७.३०
विद्यते सच सर्वास्मिन्	४.३८
विद्या काव्यं तथा शिल्पं	१२.७
विद्याधरपतिस्तत्र	३८.१६
विद्याधराश्च सिद्धाश्च	३९.२७
विद्यानां प्रभवे चैव	२४.१०३
विद्याया: साधनात्	५९.२३
विद्यावन्तश्च तेनैव (उ)	८.२४
विद्युतवन्तं महाशैलं	४८.३
विद्युतोऽशनिमेघाश्च	९.४८
विद्युत्सरिन्मेघ विहङ्गमानाम्	३.१४
विद्युत् स्फूर्ज्जश्च	५२.१९
विद्युदशनिमेघानां	२४.९५
विद्योपरिचराज्जज्ञे	३७.२१६
विधिनाशास्त्रदृष्टेन	१८.१२
विधिरन्यैरनौपम्य: (उ)	३९.२२६
विधिर्होत्रं तथा	५९.५८
विधिश्च मुनयश्चैव (उ)	६.३४
विधिहीनन्तु तत्सर्वं (उ)	५०.७९
विधूतानि तु पापानि (उ)	१५.९२
विध्वस्तानि च यानि (उ)	८.२७६
विनतायास्तु पुत्रौ (उ)	८.६३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
विनयो नोपदेष्टव्यस्त्वया	३७.१४०
विनशने सरस्वत्यां (उ)	१५.६७
विनायकभयोद्विग्ने	५४.३४
विनिघ्नन सर्व भूतानि	५८.८७
विनिवृत्तविकारास्ते	६१.१७०
विनिवृत्ताधिकाराणां (उ)	३९.४७
विनिवृत्ते च संहारे	३८.२३५
विनिवृत्ते तदा रागे	४०.४१
विनिवृत्ते तदा सर्गे (उ)	४०.२३
विनिवृत्ते तु संहारे	२३.३४
विनिवृत्ते प्रजासर्गे	१.११७
विनीतश्च सुकेतुश्च (उ)	१.३५
विन्दानुविन्दावावन्त्यो (उ)	३४.१५७
विन्दुरेककला कार्या (उ)	२५.१४
विन्ध्यकानां कुलेऽतीते (उ)	३७.३६७
विन्ध्यशक्तिसुतश्चापि (उ)	३७.३६५
विन्ध्ये चैव गिरौ (उ)	१५.३४
विपर्ययेण तासां तु	८.८४
विपर्ययन्तु तं दृष्ट्वा (उ)	३७.६०
विपयर्यो न तेष्वन्ति	३३.४९
विपर्य्ययेन वर्त्तन्ते- (उ)	३७.३८७
विपाशां कौशिकीञ्चैव	२९.१४
विपुलं शैलराजानं	४२.४२
विपुलश्चम्पकवनं	३७.१७
विपुलस्यापि शैलस्य	३५.३३
विप्रकृष्टेन कृच्छ्रेण (उ)	१६.६७
विप्रचितिश्च राजानं (उ)	९.७
विप्रचित्तिप्रधानास्ते	७.२
विप्राणां गुणयुक्तानां (उ)	१८.२८
विप्रास्तथा पूयमपि (उ)	४१.४३
विभज्य बहुधात्मान (उ)	३९.३१९
विभर्षि स्वेच्छया रूपं (उ)	४२.१०७
विभायामर्द्धरात्रं	५०.९६
विभिधमाना सलिलै:	४२.९
विभीषणाय भीमाय	२४.१४१
विभिषणाय भीष्माय	३०.२०१
विभुत्वात्खलु योगा	३९.२१७

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
विभुरिन्द्रस्तदा तेषाम् (उ)	१.५३	विवुधा ईजिरे तत्र	२.७	विश्वायुश्च शतायुश्च	२९.४९
विभुर्लोकस्य सृष्टयर्थं	३९.२२९	विशतिप्रमुखास्ते तु (उ)	२६.११	विश्वावसुश्च गन्धर्वाः	५२.१३
विभेत्यल्प श्रुताद्वेदः	१.१८१	विंशत्रिंशच्च पञ्चाशत्	४८.११	विश्वदेवस्तु विश्वाया (उ)	५.३१
विभोपुराणसंबद्धां कथां	२१.३	विंशद्धनूँषिविस्तीर्णो	८.११३	विश्वेशो लोककृद्देवः	५१.१८
विमलस्वादुपानीयैर्नैक	३९.६	विशन्ति मर्वदेवास्तु	५३.५८	विश्रुत जनयामास (उ)	३७.२१५
विमानगामिनः सर्वे	५४.५३	विशशतं भवेत्पूर्णं	५०.१८४	विषं कालानलप्रख्यं	५४.६२
विमानयानैः श्रीमद्भिः	३४.६८	विश(शव)स्ता	३९.१६६	विषं तस्य वरारोहे	५४.१०४
विमानानां सहस्राणि (उ)	११.११०	विशावस्याचलेन्द्रस्य	३८.१८	विषण्णवदना देवी (उ)	३०.३४
विमानेऽवस्थिता	५२.३२	विशाखस्याचलेन्द्रस्य	५०.१९७	विषयाविषयत्वञ्च (उ)	४०.३६
विरक्तञ्चातिरिक्तञ्च	६१.११८	विशाखे पर्वत श्रेष्ठे	३९.५५	विषयेनियतायस्य	२.३७
विरक्षस्यापि पुत्रौ द्वौ (उ)	७.३४	विशालः कम्बलः	४४.४	विषस्य त् फलं पीत्वा	११.५४
विरजश्च विवाहश्च	२२.२८	विशालस्य समुत्पन्ना (उ)	२४.१७	विषुवन्तं तदा विद्याद्	५०.१९८
विरजस्यात्मजो विद्वान्	२८.१०	विशालाक्षास्तथा यक्षा	४१.३५	विषेणोतिष्ठमानेन	५४.५८
विराजसृजत् ब्रह्मा	१०.१४	विशालोऽपि गयाशीर्ष (उ)	५०.१३	विष्कम्भो मण्डलस्यैष	५०.१४०
विराधस्य च क्रूरस्य	५०.२८	विशुद्धबुद्धिः समलोष्ट	१८.२०	विष्टब्धाक्षा महाजिह्वा (उ)	८.२६८
विरुद्धं पर्वतवरं	४२.७४	विशुद्धमुक्तामणिरत्न	५४.४३	विष्णवादिपदरूपेण (उ)	४९.५५
विरुपा ग्रामगर्भांश्च (उ)	४८.५३	विशुद्धि बहुलाः सर्वे	७.२६	विष्णु किमयं सम्भूतः (उ)	३५.४
विरेजुरन्तरम्बुस्था	३९.१६	विशेद्यदा द्विजो युक्तो	१२.३३	विष्णु कीर्ती रुचिः सूर्य	३०.७३
विरोचनस्तु प्राह्लादि (उ)	३५.८०	विश्वकर्मा स्वयं देवः	२.१६	विष्णुना च वरो क्षत्तो (उ)	२६.४३
विरोचनस्य पुत्रस्तु (उ)	६.८२	विश्व सिसृक्षमाणानाम्	२.२४	विष्णुना सह संयुक्तां (उ)	३९.२४६
विरोधश्च मनुश्चैव (उ)	६.७९	विश्वजित्तनयस्तस्य (उ)	३७.१६७	विष्णुः प्रजानुगृहणाति (उ)	५.१२४
विलम्बिवरमालाढ्यः	३५.३४	विश्वज्योतिः प्रधाना	३३.६१	विष्णुस्तेषां प्रमाणे च (उ)	३४.२५६
विलोहितं विकर्णञ्च (उ)	८.७३	विश्वदेवश्च सौम्यश्च (उ)	१६.५	विष्णोः पदं रुद्रपदं (उ)	४७.१८
विलोहिताय धूम्राय	३०.१९१	विश्वमल्याम्बरधरं	२३.३५	विष्णोरनन्तरञ्चापि	१.१३६
बिल्वाधः शिखरे	१५.१८	विश्वमावृत्य योगेन	२३.९	विष्णोरंशेन जायन्ते	५७.७२
विवस्वानथ तच्छ्रुत्वा (उ)	२२.६७	विश्वरूपमथार्याया:	९.८०	विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्यं (उ)	३५.६१
विवस्वानदितेः पुत्रः	५३.१०४	विश्वरूपात् प्रधानस्य	१.९७	विष्णोनीभ्यम्बुजा (उ)	४४.२
विवस्वानेवमुक्तस्तु (उ)	२२.६०	विवस्वतोऽथ संप्राप्तिः	१.१३३	विष्वक्सेनोऽब्रवीत् (उ)	४४.५०
विवस्वान् कश्यपात् (उ)	२२.३२	विश्वश्रवास्तु यः पश्चात्	५३.४८	विसृष्टाक्षान् विरपाक्षान् (उ)	८.२४०
विवादे जयमाप्नोति	५४.१०६	विश्वफानिर्नरपति (उ)	३७.३७४	विस्तरस्तत्प्रमाणः	४६.२१
विवादोऽत्र महानासीत् (उ)	२४.१०	विश्वामित्रः तु दायादं (उ)	२९.८४	विस्तरादिह नोच्यंन्ते	३१.१४
विवाहो यत्र रुद्रस्य	४१.३१	विश्वामित्रस्तु (उ)	२६.११०	विस्तरान् मण्डलाच्चैव	१.७६
विविक्तचारुशिखरं	४१.१	विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा (उ)	२९.९०	विस्तरावयवञ्चैव (उ)	३८.४
विविचिस्त्वद्भुतस्यापि	२९.३९	विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु (उ)	२९.९१	विस्तरावयवस्तेषां (उ)	४१.३९
विविचेस्तु सुतो ह्यर्को	२९.४०	विश्वामित्रस्य पुत्राणां (उ)	२९.९२	विस्तरेण पृथेर्जन्म (उ)	१.९९
विविधा यातना स्थाने (उ)	४०.७२	विश्वामित्रप्रसादेन (उ)	२६.११४	विस्तरेणानुपूर्व्या (उ)	३९.२२०
विविंशपुत्रो धर्मात्मा (उ)	२४.७	विश्वाय मरुत्ते चैव (उ)	३५.१९६	विस्तरेणैव सर्वाणि (उ)	३५.६
विवेश तं तदा वापुर	२७.३४	विश्वाय विश्वरूपाय	२४.११९	विस्तरस्ते भगवतः	१.१२८

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
विस्तारात् त्रिगुणश्च	३४.५१
विस्तारात् त्रिगुणश्चैव	५०.७३
विस्तारान्मण्डलाच्चैव	४९.१८२
विस्तारावयवं तेषाम्	४.८
विस्तीर्णं मण्डलं	५३.९६
विस्तीर्णाश्चायताश्चैव	४८.१२
विस्तीर्णे मध्यमे कूटे	४१.४९
विस्वरोष्ट्रकलाशचैव (उ)	२५.१०
विहङ्गशतसंजुष्टे	३५.६
विहङ्गसंघसंघुष्टं	४१.७०
विहीनास्तु भविष्यन्ति (उ)	३७.३८६
वीतरागा जितक्रोधाः	३९.८९
वीतरागा महातेजाः	६१.४
वीथ्याश्रयाणि चरति	५२.४९
वीरभद्रवचः श्रुत्वा	३०.१६६
वीरभद्रोऽप्रमेयात्मा	३०.१५७
वीरसेनात्मजश्चैव (उ)	२६.१७४
वीरहोत्रसुतश्चापि (उ)	३२.५३
वीरहोत्रा ह्यसंख्याता (उ)	३२.५२
वीर्य तेजो वलं	६०.५
वीर्यवन्तो महाभागाः	४५.६६
वीर्यश्रुततपः सत्यैर्मया (उ)	१.११७
वृजदेवोपदेवा च (उ)	३४.१३०
वृक्षगुल्मलतागुच्छैः	३७.२७
वृक्ष नारकि कीटत्वम्	१.५२
वृक्षाणां गृहसंस्थानाम्	१.५०
वृक्षाणामोषधनोमञ्च	१.५२
वृक्षाः क्षित्यां जनिष्यति (उ)	२.३३
वृक्षः पुष्पफलापेतैः	४६.६८
वृणे नित्यं हि सालोक्यं (उ)	२६.३६
वृतधन्वने कवचिने (उ)	३५.१९१
वृत्तहीनश्चदीर्घश्च	८.१०६
वृत्ता कूर्मविकाराणि (उ)	८.२८८
वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्त	८.१४०
वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्तः (उ)	३७.४०५
वृथा दारांश्च यो	१७.७९
वृथामुण्डाश्च जटिलाः (उ)	१७.६७
वृथाव्रती वृथा जापी (उ)	१६.३२

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
वृद्धिक्षयौ च सोमस्य	१.९१
वृद्धिश्राद्धे तु मात्रादि (उ)	४८.१८
वृषं पश्च परित्यज्य (उ)	१६.२८
वृषदश्वः पृथो पुत्रः (उ)	२५.२६
वृषभश्चैव विख्यातो	३०.२६७
वृषभेत्ता जयो भीमः (उ)	१.५०
वृषारणां ककुद त्वं	३०.२३३
वृषान वै दिशकांश्चापि (उ)	३७.३६०
वृषोस्तु सुकृतिर्नाम (उ)	३७.१७३
वृष्टिरोषधयश्चैव (उ)	३५.९७
वृहत्क्षत्रस्य दायादः (उ)	३७.१६१
वृहत्तेजः स्मृतो देवो	५३.८१
वृहदश्वं महाराजं (उ)	२६.३०
वृहदश्वसुतश्चापि (उ)	२६.२८
वृहदश्वोम्यषिञ्चत्तं (उ)	२६.३२
वृहदुच्छस्य तनयो (उ)	२७.९
वृहदभानोः सुतो (उ)	३७.११०
वृहद्रथः सुतस्तस्य (उ)	३७.१०६
वृहद्रथस्य दायादः (उ)	३७.२१८
वृहद्वसोर्बृहद्विष्णुः (उ)	३७.१६६
वृहस्पतिवाचैतान (उ)	३६.२९
वृहस्पति सुतश्चापि (उ)	३.२६
वृहस्पतिस्तु संरुद्ध (उ)	३५.१५
वृहस्पतेर्या भागिनी (उ)	२२.१५
वृहस्पतेः स वै (उ)	२८.२८
वेणुमन्तस्य शैलस्य	३७.२६
वेणुमन्ते महाशैले	३९.३७
वेणुहोत सुतश्चापि (उ)	३०.७४
वेदद्रुमश्चयं प्राप्य	१.३९
वेदना कटुकास्तब्धा (उ)	३९.३०६
वेदनायास्ततश्चापि	१०.४०
वेदपञ्चमहायज्ञा (उ)	१४.१७
वेदमन्त्रपराः सर्वे (उ)	४.६६
वेदविक्रयिणश्चान्ये	५८.६५
वेदशास्त्राण्यतिक्रम्य (उ)	१.११०
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो	७.२०
वेदस्मृतिर्वेदवती	४५.९७
वेदस्य तद्विजातानाम्	१.१०५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
वेदस्य वेदिता यो	२१.७०
वेदाध्यापनैर्वापि	२३.९४
वेदान् षडङ्गानुद्धृत्य	३०.२९१
वेदांश्चैवाप्नुयात् (उ)	१९.१६
वेदाः साङ्गारच	८.१८१
वेदीतलसमुत्पन्ना (उ)	८.५९
वेदे नाशमनुप्राप्ते	६०.६
वेदे नियोगदातारो (उ)	१७.७४
वेदे श्रुतो पुराणे च (उ)	३८.३३
वेदेषु विधियुक्तश्च (उ)	३०.१३
वेदरगम्या या मूर्ति (उ)	४७.३५
वेदस्तुल्या सर्वयज्ञक्रियास्तु	१६.२१
वेदो विक्रीयते तेन (उ)	३९.१५६
वेद्यं च वेदितव्यं (उ)	२१.७१
वेद्यर्द्धे दक्षिणं मेरोरूत्तर	३४.२३
वेद्यो यो विदविदुषां (उ)	३५.४१
वेला खला च सप्तैता (उ)	९.६९
वेला च नियतिश्चैव	३०.३४
वैकङ्के शैलशिखरे	३९.३९
वैकारिकः प्रसन्नात्मा	३१.३६
वैकारिकस्तृतीयस्तु	६.५६
वैकुण्ठो लोहदण्डश्च (उ)	४६.७७
वैखानसैः प्रियसखैर्वाल-	२.२५
वैतरण्यां घृतकुल्यां (उ)	५०.४२
वैतानदीक्षितानां तु	२७.४६
वैदूर्य नीलैः कमलैः	३९.१४
वैदूर्य्यस्याग्निजिह्वस्य	५०.३५
वैद्युताख्यस्तु विज्ञेयः	५३.८
वैद्युतेन समाविष्टो	५३.९
वैद्युतो लौकिकाग्निस्तु	२९.७
वैद्युतो वैद्युतस्यापि	३३.३०
वैनकाश्च पिशाचश्च (उ)	७.१७८
वैन्यस्यहि पृथोर्यज्ञे	१.२८
वैभ्राजं सुरभिश्चैव (उ)	८.१३२
वैभ्राजः सप्तमस्तत्र	४९.१२
वैमानिकानां देवानाम्	७.१७
वैरस्यान्तं महाराज्ञा (उ)	३०.६५
वैरस्यान्तं महाराज्ञा (उ)	३०.६०

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
वैराजस्तमुपासीनं (उ)	३८.४३
वैराजास्ते यदाहरा (उ)	३९.७१
वैराजेम्यस्तथैव (उ)	३९.८१
वैरोचनस्तु प्राह्लादि: (उ)	६.७६
वैवस्वतं पितृणाश्च (उ)	९.८
वैवस्वतनिसर्गेण (उ)	३८.३९
वैवस्वतस्य च मनो:	१.११६
वैवस्वतस्य वक्ष्यामि (उ)	२.५६
वैवस्वतस्य सोमस्य	३९.६३
वैवस्वतस्यास्य	३.१६
वैवस्वतान्तेषु (उ)	६.२७
वैवस्वतेन संख्यात: (उ)	१.६९
वैवस्वते ह्युपस्पृष्टे (उ)	३८.२९
वैवस्वतो मनुर्यश्च (उ)	३८.५६
वैशम्पायनगोत्रोऽसौ	६१.५
वैशाख्यां समदाच्छौरि: (उ)	३४.१७२
वैश्य द्वापरमित्याहु: (उ)	१६.३७
वैश्यानां मारुतं	८.१६७
वैश्यैरपि च राजर्षि (उ)	२.१०
वैश्वदेवं च सौम्यं च (उ)	१८.५१
वैश्वरूपान्तु सर्वस्य	५६.९०
वैश्वानरमुखा: सर्वे (उ)	३९.३१५
वैश्वानरमुखस्तस्य	२९.५
वैश्वानरसुते ह्येते (उ)	७.२५
वैश्वानरी भाद्रपदे (उ)	५.५२
वोढुश्च कपिलस्तेषाम् (उ)	३९.३३८
व्यक्तं तर्केण पश्यन्ति (उ)	३९.२११
व्यक्तानि तु प्रवक्ष्यामि (उ)	३९.१६
व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य	१.५५
व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य (उ)	१०.६२
व्यक्ताव्यक्तं वशीकृत्य (उ)	१७.९३
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण (उ)	४४.६७
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण (उ)	४७.४४
व्यक्तिकृतश्च शब्दं (उ)	३४.४३
व्यतिक्रमाच्च ये केचिद्	१८.१६
व्यतिक्रमात्पितृणां (उ)	११.६४
व्यतीते प्रथमे कल्पे	९.९९
व्यतीपाते स्थिते	५५.३५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
व्यस्यते ह्येकविद्यन्तद	६१.१२०
व्याकुलं तं पतिं दृष्ट्वा (उ)	४५.३१
व्याकुलाश्च परिश्रान्ता:	५८.९३
व्याकोशैर्विकचैश्चापि	३९.१५
व्याख्यातस्तु समासेन	११.५८
व्याघ्रपुत्रो निरान्दो (उ)	८.१२६
व्याघ्रश्चैवानुचास्तत्र (उ)	३९.२८५
व्याजह्रुर्मुनयो वाचम्	२.२९
व्याधित: सोऽष्टमे (उ)	४.८९
व्याधितो दु:खिलो	३०.३०७
व्याधितो मुच्यते	५४.११२
व्यापकस्त्वपवर्गाच्च	१३.२२
व्यापादनं शक्तिनिबर्हणं (उ)	१७.७१
व्याप्तानि यानि देशन्ति (उ)	८.३२३
व्याप्तेषु तेषु लोकेश (उ)	३८.१६१
व्यालयज्ञोपवीती	५५.५५
व्यालानां शिखिनाश्चैव (उ)	८.३४५
व्याश्रिताय श्रविष्ठाय (उ)	३५.१८२
व्याहन्यमान संवेगा	४२.५६
व्याहारैस्त्रिभिरे (उ)	३९.२०
व्युच्छिन्नात् प्रतिसंधेस्तु	७.८
व्युष्टायान्तु राजन्यां (उ)	३८.२००
व्युष्टायान्तु रजन्यां	५३.६
व्युष्टायान्तु रजन्यां (उ)	३९.५५
व्युष्टिविधिश्च वै (उ)	३८.९१
व्यूहांस्यपाणां भूतानाम्	२.३७
व्रतं चराम्यहं शेषं (उ)	३५.११९
व्रतानि यानि भिक्षूणां	१८.६
व्रतोपवासनिरता: (उ)	३९.३५०
व्रीहयश्च यवाश्चैव	८.१४४
व्रीहय: समवा माषा	८.१४७
श	
शंयुस्तमब्रवीद्भूय: (उ)	१०.४८
शंपायन विस्तीर्णा	४९.६६
शंस्वस्त्वाहवनीयोऽग्निर्य:	२९.११
शंस्यस्यैव सुता:	२९.२५
शाकले द्वे स वै जातो (उ)	३७.२२१
शकवर्णं.सुतस्यस्य (उ)	३७.३१०

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
शकानां पह्लवानश्च (उ)	२६.१२
शका यवनकाम्बोजा: (उ)	२६.१४१
शकुनि पूतना चैव (उ)	६.८४
शकुन्तकानां कृत्वा च (उ)	२४.६१
शकुन्तलायां भरतो (उ)	३७.१३०
शक्तिप्रज्ञा क्रियायोगै:	२.३२
शाक्तिर्ज्येष्ठ: समभवत्	२.९
शाक्यमा नाम वै राजा (उ)	३७.३६८
शक्रहन्तारमिच्छेयं (उ)	६.८९
शक्रेन पक्षाश्छिन्ना	५१.३८
शङ्करञ्च महादेवम् (उ)	८.४४
शकुकर्ण महाकर्ण	३०.१८२
शंकुकर्णो दशग्रीव: (उ)	९.४२
शङ्कुकूटस्य मधुस्रवै:	३८.६३
शङ्कुकूटो महाशैलो	३६.३१
शङ्कुन्दीनभाश्चान्ये (उ)	३८.१६४
शङ्कूटतटाद्भ्रष्टा	४२.६६
शंखचक्रगदापाणी	३०.१२४
शंखणस्य सुतो (उ)	२६.२०५
शंखनागा महापुण्या	४८.३३
शंखोपलविकाराणि (उ)	८.२९४
शतं कोटिसहस्राणां (उ)	३९.९७
शतं पूर्णं दश द्वे च (उ)	३७.३३७
शतं वर्षसहस्रारिण	६१.१६७
शतं शतसहस्राणाम्	२३.४५
शतं सहस्रसंख्यातो (उ)	३९.१३१
शतक्रतुश्च विष्णुश्च (उ)	५.६१
शतघ्नैकोनकास्त्रिंशत्	५०.१७९
शतन्तानि सहस्राणि (उ)	८.२५०
शतमष्टशतं वापि धारणां	१३.३९
शतमाहु: परिदृढं (उ)	३९.१००
शतमेक सहस्राणां	३४.१०
शतयोजनविस्तीर्णं	२४.१३
शतयोजनविस्तीर्णं	३७.१०
शतयोजन विस्तीर्णां	४८.२८
शतरुद्रसमाम्नाता	१०.५५
शतश्रृंगे पुरशतं	३९.५४
शतश: स्थानानि	४७.१९

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
शतसाहस्त्रिकायामा	३४.६०
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं (उ)	३७.१९७
शतानि त्रीणीभोक्ष्यन्ति (उ)	३७.३५८
शतानि दशवर्षाणामण्ड	२४.७३
शतानि पञ्च कौशिक्य:	६१.३५
शतानि पञ्च चत्वारि	५३.७०
शतानि संहितानान्तु (उ)	२६.२०७
शतानितिविजानीयात् (उ)	३९.१०३
शतान्यर्द्धचतुर्थानि (उ)	३७.३५७
शतार्द्धकोटिविस्तारा	५०.६८
शताश्रिमेनं मेनेऽत्रि:	३४.६२
शतोतरञ्च ब्रह्माण्डं (उ)	४२.५
शतोदर शतावर्त	३०.१८३
शत्रोर्वधे न दोषोऽस्ति	६.१०९
शनैर्यर्याल्बला रम्या (उ)	२६.११५
शन्तनु: प्राहसन्तुष्ट: (उ)	४९.८२
शन्तनुस्त्वभवद्राजा	३७.२३३
शाप्तां पुरीं तिकुम्भस्तु (उ)	३०.५४
शप्ता हि सा पुरी पूर्व (उ)	३०.२५
शप्तोऽहमस्मिँल्लोकेश (उ)	२२.५९
शब्दमात्रं तदाकाशं (उ)	४०.१८
शब्दमात्रन्तदाकाशम्	४.४८
शब्द: स्पर्शोरसो	१३.१७
शब्दाकाशबलानञ्च (उ)	९.१२
शमयत्यशुभं घोरं	५४.१०५
शमशानरतिनित्याय	२४.१३७
शमी च गदवर्मा च (उ)	३४.१३७
शमात्मकमृजुं भर्त्त: (उ)	३९.७९
शमनञ्चहरेरन	१.४७
शयनासननिर्व्यूहै:	३९.२४
शयनासनोपभोगाश्च	४५.३५
शरणं गच्छ राजेन्द्र	३०.१६५
शरद्वसन्तयोर्मध्ये	५०.१७६
शरद् हेमन्त इत्येते	२१.३३
शरदृतौ पुन: शुभा	५२.१२
शरभ: शलभश्चैव (उ)	७.१२
शरीरं प्रजहंसो वै (उ)	४०.९१
शरीरभेदे वक्ष्यामि	५४.१०७
शरीरेण समायान्तु (उ)	४५.५७
शर्कराक्षीरसंयुक्तं (उ)	१८.४७
शर्मिष्ठामासुरीं चैव	३१.१६
शर्यातेर्मिथुनं (उ)	२४.२३
शर्वस्य या तृतीया तु	२७.५१
शवगन्धिभवेद्गात्रं	१९.१०
शशबिन्दोस्तु पुत्राणां (उ)	३३.२०
शश: शशाङ्क: शमन	३०.२६३
शशादस्य तु दायाद: (उ)	२६.२४
शशाप तं तदा क्रुद्ध: (उ)	३७.४४
शशो दुरात्मना पूर्वम् (उ)	२६.१७
शश्वत: शिशुमारोऽसौ	५२.६२
शश्वते चामृत्वे (उ)	३८.२४०
शांशपायनिकाश्चान्या	६१.६१
शाकल्य: प्रथमस्तेषां	६०.३१
शाकल्य वद वक्तव्यं	६०.५०
शाकल्ये चापि निर्वदे	६०.५८
शाकेल्ये तु मृते	६०.६७
शाकल्येनैवमुक्त:	६०.५३
शाकैरन्या तृतीया (उ)	१९.४
शाक्तं जिह्वाग्रधिषणं (उ)	४२.८२
शाखानां परिमाणं च	१.१०६
शाखामृगसधर्मरण:	४८.९
शाखावती चन्द्रेनदी	४३.२६
शाखामृगैश्च	३९.२२
शाखासहस्त्रकलितें:	३७.११
शाण्डिल्यानां वच:	९.२८
शान्तवर्णन्तु तद्रूपं (उ)	२२.३६
शान्ताघोराश्चमूढाश्च	४.६१
शान्ताश्च शुष्मिणश्चैव	८.१३३
शापस्यान्ते महाबाहु (उ)	३०.६९
शापाच्छुद्रत्वमापत्र (उ)	२४.२
शापाद् भवतु मुक्तिर्म्मे (उ)	५०.४७
शार्ङ्गी च पावनी चैव (उ)	२४.३९
शालकी बदरश्चैव (उ)	३५.३
शालावत्या हिरण्याक्षा (उ)	२९.९६
शाल्मलस्येश्वरा: सप्त	३३.२८
शाल्मलिर्विपुलस्कन्ध	४९.४४
शाल्मलि: शाल्मलद्वीपे	४९.१३३
शाल्मलौ तु वपुष्मन्तं	३३.१२
शिखाशतसहस्त्राढ्यो	३४.८२
शिखा संवर्त्तका (उ)	३९.५२
शिखिपारावतशुक (उ)	४२.५१
शिखैश्च पर्वतात्	४२.५०
शिर: कृत्वोतरेदत्य (उ)	४४.३३
शिर: प्रावृत्य कुर्वीत	२७.३१
शिरासि त्रीणि पर्वाणि	२३.९९
शिरसि श्राद्धकृद्यस्तु (उ)	४३.२८
शिलाङ्गुष्ठैकदेशो य: (उ)	४६.१५
शिलापर्वतरूपेण (उ)	४७.१४
जिलाया जघनं भूय: (उ)	४५.२८
शिलाया दक्षिणे हस्ते (उ)	४६.३५
शिलाया दक्षिणे हस्ते (उ)	४६.५६
शिलाया देवरूपिण्यां (उ)	४७.३३
शिलायां देवरूपिण्या (उ)	४७.४६
शिलायां पिण्डदानेन (उ)	५०.५६
शिलाया वामपादेऽपि (उ)	४६.४२
शिलाया वामपादे तु (उ)	४६.७०
शिलाया वामहस्तेऽनि (उ)	४६.६४
शिलायां व्यक्तरूपेण (उ)	४६.९५
शिलाया: सङ्गमो यत्र (उ)	५०.३९
शिलारूपेण मूर्त्या (उ)	४६.११
शिलास्थितस्तपस्तेपे (उ)	५०.४८
शिला स्थिता पृथिव्यां (उ)	४६.२
शिलास्थितिप्रतिज्ञां (उ)	४६.१०
शिलास्थितेषु तीर्थेषु (उ)	४५.४९
शिलाहं हि भविष्यामि (उ)	४५.४३
शिलीमुखोदधि मुख: (उ)	८.६९
शिवा च सुमनश्चैव (उ)	८.२८
शिवाश्च प्रववुर्वाता: (उ)	३४.२००
शिवेतिका चतुर्थी	४९.९२
शिवेस्तु शिवय: (उ)	३७.२३
शिशिरस्याचलेन्द्रस्य	३८.२
शिशिरेषु तथा त्वग्निं (उ)	१९.२३
शिष्टादीनां च निर्देश:	१.१०५
शिष्टा यस्मच्चर	५९.२८

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
शिष्टैश्च वर्जितो ये (उ)	१६.७१
शिष्यः स्वयम्भुवोदेवः	२.३५
शिष्यहव्येन यत् पृक्तम्	१.३०
शिष्याश्च मम ते	२३.१२५
शिष्येभ्यः प्रददौतश्च	६१.६
शिष्यो वभूवमेधावी	१.१४
शिष्यो हिरण्यनाभेस्तु (उ)	३७.१८५
शीघ्रं विक्रमतस्तस्य	२४.३६
शीतवातातपैस्तीव्रैः	८.९२
शीतान्त शिखराद्	४२.१८
शीतान्तश्च कुमुञ्जश्च	३६.१८
शीतान्तस्या चलेन्द्रस्य	३७.१
शीर्णोऽर्कपत्रं पुटकैः	११.५७
शीर्षाभितापो नागानां	३०.२९७
शु(नका)कनासा महानसा	४४.१३
शुकी गुरुत्मतः पुत्रान् (उ)	८.३२०
शुक्रेण च वरो दत्तः (उ)	३१.८४
शुक्रं तपः सत्त्वमतिप्रकाशम्	३.१०
शुक्रस्तत्र सुतैः सार्धं (उ)	४६.६३
शुक्रस्य च तथा जन्म	१.१६१
शुक्रस्याप्यम्मयं	५३.८६
शुक्राद्गर्भः समभवद् (उ)	३५.४६
शुक्राद्याश्चाक्षुषान्तश्च (उ)	३९.३३
शुक्रेणाराधन स्थाणोः	१.१३९
शुक्रे हुतेऽथ तस्मिंस्तु (उ)	४.३६
शुक्लकृष्णा गतिश्चापि	३१.३०
शुक्लकृष्णौ ततो (उ)	४९.६९
शुक्लच्छायोग्निरापश्च	५०.११०
शुक्लदन्ता जिताक्षाश्च	५८.५९
शुक्लपक्षे चन्द्रवृद्धौ	४९.१२६
शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे (उ)	२१.५१
शुक्लाः सुमनसः (उ)	१३.३३
शुक्लास्ता नामतः	५३.२३
शुचये रोरिहाणाय (उ)	३५.१८१
शुचिः पर्वसु युक्तात्मा	४.७
शुचेरग्नेः प्रजा ह्येषा	२९.४१
शुद्धत्वात्र तु देश्यो (उ)	४०.११९
शुद्धषड्जस्वरं कृत्वा (उ)	२४.५८

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
शुद्धेन मनसा प्रीताः (उ)	१४.६
शुद्धर्मनः शिलाजाले:	४१.७६
शुद्धोदनस्य भविता (उ)	३७.२८५
शुभं तत्रासनं यत्तु (उ)	६.५६
शुभरूपा महाभागा (उ)	८.५८
शुभ्राः प्रवृत्तयस्तेषां	५७.५३
शुश्रूषा यत्र वो विप्राः	४६.४
शुष्केस्तृणैर्वा (उ)	१६.६०
शूद्राः श्राद्धे क्षीरचाशु (उ)	१३.४९
शूद्रणापि प्रकर्तव्या (उ)	१४.१८
शूद्रेणापि प्रकर्तव्याः (उ)	१४.१९
शूद्रेणोपहतं मासं (उ)	२६.१६
शून्यं लोकत्रयं जातं (उ)	४४.२०
शून्येषु लोकस्थानेषु (उ)	३८.१२९
शून्येष्वेवावकाशेषु	१७.५
शूरसेना भद्रकारा	४५.११०
शूरसेनास्त्रयोविंशद् (उ)	३७.३१९
शुलनिर्भिन्नवदनः	३०.१६८
शूलाः स्थूलाः शिरोदान्ता	८.२१४
शृङ्गे खुरैर्वा यद्भूमि (उ)	२१.१९
शृणताङ्गिरसो वंशमग्ने: (उ)	४.९७
शृणस्व वदतां श्रेष्ठ	५४.२८
शृणु धर्म्म रथस्यापि (उ)	३७.१०३
शृणुध्व देवताः सर्वे	५४.६१
शृणुध्वं नामतस्तानि	४९.८४
शृणुध्वं मे परार्द्धश्च (उ)	३९.९३
शृणुध्वं यत्र ते धीरा	२.४
शृणुयाच्छ्रद्धया यस्तु (उ)	५०.७४
शृणुयाद्वा इदं नारी	३०.३१०
शृणुयाद्वा सर्वं	३०.३११
शृणु शौनक वक्ष्यामि (उ)	४२.१९
शृणोति शब्दान् श्रोतव्यान्	१२.८
शैत्यादेकार्णवेतस्मिन्	६.२९
शैत्यादेकार्णवे तस्मिन्	८.१०
शैलकीर्तिं पुराभ्याशे (उ)	१५.८६
शैलराजसुता चास्य (उ)	३०.८३
शैलजालानि व्याप्तानि (उ)	८.३२६
शैलसानुषु तुङ्गेषु (उ)	१५.११९

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
शैलस्त्रिशिखरश्चापि	३६.२२
शैलानां हिमवन्तश्च (उ)	९.९
शैलेश्व स्तूयते दुग्धा (उ)	१.१८६
शैवालिनि मणितटा	४३.२९
शैवालौ वर्णमालाग्रः	४३.१४
शैवेयाश्चैव विक्रान्तास्तथा (उ)	८.२९
शैव्या सुदेवी माद्री (उ)	३४.२३४
शैशुनाका भविष्यन्ति (उ)	३७.३१६
शोचन्तश्च द्रवन्तश्च	८.१५८
शौचमश्रद्दधानश्च (उ)	१६.७४
शोणो महानश्चैव	४६.६८
शोभयन्त्यः कामगुणा (उ)	८.५१
शो शुक्रो विशस्थानं	५३.६०
शोनवस्तु द्विधा	६१.५३
शौनकाश्चाष्टिषेणाश्च (उ)	३०.६
शौरः शृङ्गिपुत्रश्च	६१.३९
श्मशाने मृतमुत्सृष्टं	२३.२०९
श्यामश्च शबलश्चैव (उ)	८.३१४
श्यामाकास्त्वथ नीवारा	८.१४८
श्यामाकास्तु तथोपन्नाः (उ)	१६.७
श्यामा युवा लोहिताक्षो (उ)	२६.१९१
श्यामाका हस्तिनामा (उ)	१६.९
श्येनभद्रस्तथा (उ)	१.६०
श्येनस्तु अपरोहस्तु	२५.१३
श्येनस्त्वेकान्तरे (उ)	२५.१२
श्येनी भासी तथा (उ)	८.३१७
श्रद्धया ये नमस्यन्ति (उ)	४७.४२
श्रद्धया विद्यया चैव	५६.६७
श्रद्धा कामं विजज्ञे	१०.३३
श्राद्ध कर्माणिवर्ज्यानि (उ)	१६.१३
श्राद्धं काले तु सततं (उ)	१३.१३
श्राद्धं कुम्भे विमुच्यन्ति (उ)	१५.४७
श्रवणान्त श्रविष्ठादियुगं	५३.११६
श्राद्धं कृत्व शक्रपदे (उ)	४९.६२
श्राद्धं कृत्वा सपिण्डश्च (उ)	४९.८७
श्राद्धं कृत्वा सभ्यपदे (उ)	४९.६१
श्राद्धं चैषढं मनुष्याणा (उ)	१०.१७
श्राद्धं दत्वा च मुत्त्वा (उ)	१७.६०

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
श्राद्ध देवं पुरायेन वने (उ)	३४.१८२
श्राद्धं देवस्य प्रजानां (उ)	२६.२१४
श्राद्धं देवान् पितृवेतान	५६.६१
श्राद्धं नवभ्यां कुर्वाण (उ)	१९.१५
श्राद्धं य कृतिका योगे (उ)	२०.२
श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा (उ)	५०.२७
श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा (उ)	५०.४०
श्राद्धं सपिण्डकं येषां (उ)	४४.६८
श्राद्धानि पुष्टिकामाश्च (उ)	१०.३१
श्राद्धेऽस्माकं मवेदंशो (उ)	१४.१०
श्राद्ध पीताः पुनः सोमं (उ)	१०.६५
श्राद्धेप्येतानि यो (उ)	१८.२७
श्राद्धे यः श्राद्ध कल्पं	२१.७३
श्राद्धे यम्यः पदास्यन्ति (उ)	१०.३२
श्राद्धेराप्यायितः सोमो (उ)	१०.३०
श्रद्धैराप्यायिताश्चैव (उ)	१०.२९
श्रान्त कदाचितां (उ)	४५.२१
श्रामपात्रे पुनर्दुग्धा (उ)	१.१८०
श्रावयेद्यस्तु विप्रेभ्यः	३०.३१९
श्रितादक्षिणपन्थानं	६१.१२३
श्रियान्विताः कुण्डलिनी (उ)	३९.३१८
श्रिया युक्तेन नव्यन	२४.१५
श्रीमान् कमलपत्राक्षर (उ)	११.४१
श्रीमान् भीमस्य दायादो (उ)	२९.५०
श्रीमान्योगी महायोगी (उ)	११.७२
श्रीमान् सनत्कुमारस्तु	२४.७८
श्री रामस्यात्मजो (उ)	२६.१९७
श्रीसात कर्णिर्भाविता (उ)	३७.३४४
श्रुतश्रवा मनुः सोऽपि (उ)	२२.५१
श्रुतिस्मृतिभ्यां	५९.५१
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्म	५८.७२
श्रुतोयस्त दायादः (उ)	२७.२१
श्रुत्यर्थैरध्यवसितं	३०.२९३
श्रुत्यर्थे संशयापन्नो (उ)	४२.५७
श्रुत्वा तथा ब्रुवाणन्तं (उ)	३६.२४
श्रुत्वा तेषान्तु नामानि (उ)	६.१३०
श्रुत्वा त्विदं वचस्तस्य	२५.३१
श्रुत्वा पादं तृतीयन्तु (उ)	३८.१
श्रुत्वा पादं द्वितीयन्तु (उ)	४.१
श्रुत्वा वाक्यं ततस्यस्य	५४.२७
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य	५४.५५
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्याः	५४.४७
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तेषां	५७.१०५
श्रुत्वा वाक्यं ततो ब्रह्मा	५४.८३
श्रुत्वै तत्परमं गुह्य	३०.३१८
श्रुत्वैवं श्राद्धकल्पं (उ)	२१.५९
श्रूयतां कालसद्भावः	३१.२४
श्रूयतां देवदेवस्य (उ)	३९.३११
श्रूयतामभिषास्यामि	५५.९
श्रूयन्ते हिं तपः सिद्धाः (उ)	२९.१११
श्रेदस्तेऽह करिष्यामि (उ)	३०.३९
श्रेष्ठ परिवहो नाम	५१.४७
श्रेष्ठमाहुस्त्रिककुदम् (उ)	१३.३१
श्रेष्ठस्त्वथर्वणो ह्येते	६१.५५
श्रेष्ठानुश्रविके यस्मात् (उ)	५.६३
श्रेष्ठाय वामदेवाय (उ)	३५.१९०
श्रेष्ठो भवति ज्ञातानीं (उ)	२०.६
श्रोत मिच्छामहे विष्णोः (उ)	३५.६०
श्रोतव्यं वै श्रुतं वापि	६१.११४
श्रोतसी सहतद्द्वारम्	८.१०५
श्रोतुं भविष्यमिच्छामः (उ)	३७.२५६
श्रोतुमिच्छामहे सम्यक	५४.१२
श्रोत्रजा नेत्रज (उ)	४०.६३
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी	४.५५
श्रोत स्मार्ते प्रशिथिले (उ)	३७.४१९
लक्ष्णं मेकखिलं देशं	३८.५०
श्लाघ्यां यौवनसम्पन्नां (उ)	२२.७०
श्लेषं संसक्तयोर्ज्ञात्वा (उ)	११.२१
श्लेष्माणः शीतला (उ)	१६.८
श्लेष्मातकतरुष्वेते (उ)	८.१३९
श्वफल्कः काशिराजस्य (उ)	३४.१०५
श्वफल्कतनयायान्तु (उ)	३४.८६
श्वफल्कस्तु महाराजो (उ)	३४.१०२
श्वभ्रे यो निपतेत स्वप्ने	१९.२८
श्वा चैव दर्शनादेव (उ)	१६.३९
श्वानश्च यातुधाताश्च (उ)	२१.४४
श्वापदप्रबलत्वञ्च	५८.४४
श्वपाद द्विकुरवुरो	९.४३
श्वेतकल्पो यदा	२३.५७
श्वेतपिङ्गलनेत्राय	३०.२१८
श्वेतः पिशङ्गसारङ्गो	५२.७५
श्वेतश्चैव शिखश्चैव	२३.१०९
श्वेतवैदूर्यकुमुदैः	४५.५५
श्वेतं सुतालं दमनं (उ)	४४.३६
श्वेतस्य श्वेतदेशस्तु	३३.२९
श्वेतार्को गणनाथश्च (उ)	४७.२२
श्वेतस्थिमांसा रोमा	२३.५८
श्वेतेन परिचारेण- (उ)	३४.१२४
श्वेतोदरे महशैले	३९.५६
ष	
षड्गुणन्तु तपोलोकात् (उ)	३९.१४१
षट्कर्माभिरतो नित्यं	६१.९५
षट्कृत्यस्तु पुनः (उ)	४.४३
षट्त्रिंशन्तु सहस्राणि	५७.१९
षट्पदैरूपगीतानि	४५.३३
षट्पदोद् गीतबहुले	५४.३१
षडजमध्यमयोश्चैव (उ)	२५.२९
शड्जर्षभौ च गान्धारो (उ)	२४.३७
षडेव भविता तस्माद् (उ)	३७.३५०
षण्णवत्यङ्गुलश्चैव (उ)	३९.१२४
षड्जस्तु षोडशः कल्पः	२१.३२
षड्विंशत्तद्गुणा	२३.४९
षड्विंशस्तु ततः कल्पो	२१.५४
षड्विंशे परिवर्त्ते तु	२३.२००
षड्सान्निवहन्त्यन्या	३०.१५२
षण्डामार्कप्रभावं (उ)	३७.६३
षष्टिं काणः शतं षण्डः(उ)	२१.४१
षष्टिपुत्रसहस्राणि (उ)	२६.१५२
षष्टिपुत्रसहस्राणि (उ)	२६.१५८
षष्टियोजन साहस्रं	४२.११
षष्टि योजनसाहस्रे	४२.६०
षष्टिवर्षगते काले (उ)	३४.९४
षष्टिवर्षसहस्राणि (उ)	३०.६७
षष्टिशतसहस्राणि (उ)	३४.२५३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
षष्ठ्यां श्राद्धानि कुर्वाणं (उ)	१९.१३
षष्ठस्तु तुम्बुरुस्तेषां (उ)	८.४७
षष्ठस्तु पर्वतस्तत्र	४९.३६
षष्ठस्तु मैत्रावरुण:	५९.१०६
षष्ठस्तु सुमना नाम	४९.११
षष्ठस्त्वर्वावसू	५३.४९
षष्ठिशतसहस्राणि (उ)	९.४७
षष्ठे खल्वथपर्यायै (उ)	१.५७
षष्ठे तले दैत्यपते:	५०.३८
षष्ठो हरिगिरिर्नाम	४९.५०
षष्ठो ह्याडीवकस्तेषां (उ)	३५.७५
षोडशपञ्चभागांश्च (उ)	५०.२३
षोडशार्चिर्भृगो: पुत्र:	५३.१०६
स	
संकीर्णोऽञ्जन (उ)	८.२०९
संकृतेरपि धर्मात्मा (उ)	३१.११
संक्षिप्यात्मानमङ्गषु (उ)	३६.७५
संक्षोभो जायतेऽत्यर्थं	५८.३८
संख्यया परिसंख्याय (उ)	३९.१९४
संख्या लक्षणनुद्दिष्टम्	१.१४९
संख्येयं चाप्यसंख्येयं (उ)	३९.१०८
संगृहीत रथे तस्मिन्	५२.५२
संग्रामजिच्च शताजित (उ)	३४.२४२
संग्रामांस्तु बहून (उ)	३२.१३
संग्रामे भारते तस्मिन् (उ)	३७.२९१
संज्ञापुत्रस्तु सावर्णं (उ)	३८.३१
सन्यसेत्सर्व्व कर्माणि (उ)	४३.२५
संन्यस्य गृहधर्माणि (उ)	३१.६
संन्यस्य स्वशरीरन्तु (उ)	३७.३७६
संपिबन्निव तो दृष्ट्वा	२५.१
संप्रयुक्तो वियुक्तो (उ)	४०.१२२
संप्लावनस्य कालन्तु (उ)	३८.२२८
संमार्जनं प्रोक्षणञ्च (उ)	१६.५७
संयमाग्निमयीभिस्तु (उ)	३९.२९१
संरक्षता शक्रवधम्	१.१३७
संरोधादायुपश्चैव	५८.११
संलेभे वरुण: पुत्रं (उ)	३२.४३
संवत्सरशतान्य च	२१.९८
संवत्सरसहस्रान्ते (उ)	१.८६
संवत्सरस्तु प्रथमो	३१.२७
संवत्सरस्तु प्रथमो	५०.१८३
संवत्सरस्त्वमृतवो	३०.२३२
संवत्सरस्य पर्य्यन्ते (उ)	२६.३८
संवत्सरात कुमारस्ते (उ)	२९.३५
संवत्सरादय: पञ्च	५०.१८२
संवत्सराश्च स्थानानि	३०.१३
संवत्सरास्ततो ज्ञेया:	५०.२०२
संवत्सरास्तु वै	५२.६८
संवर्त्तकबलाहकौ	३०.२४९
संवर्तन ह्यते यज्ञ (उ)	२४.११
संवृतान् दानावांश्चैव (उ)	३५.८४
संवृतास्योऽवबद्धाक्ष	११.१५
संश्रयित्वैकमेकेन (उ)	१५.५९
संसक्ताश्च भविष्यन्ति (उ)	३७.४२०
संसरन्तस्तु ते सर्वे (उ)	४१.२९
संसारचक्रमुत्सृज्य	२०.२९
संसिद्धा: कार्यकरणे (उ)	३८.४७
संसेकजानाम्भागेन (उ)	३९.१९९
संस्थाञ्च प्रमाणं च (उ)	२५.२२
संस्थितं मुण्डपृष्ठादौ (उ)	४७.५२
संस्थितिर्विहिता	५०.७८
संस्रष्टासर्वभूतानां (उ)	३८.२०७
संहताश्चैवमतुला (उ)	३९.३०६
संहताश्वो निकुम्भस्य (उ)	२६.६३
संहारपाद: संख्यात-	३२.६१
संहिता ऋग्यजु:साम्नां	५८.१३
संहिताभिश्च तन्त्रैश्च (उ)	४२.८६
संहृत्य तांस्ततो ब्रह्मा (उ)	३८.१३०
स इमां दग्धभूयिष्ठां (उ)	२.३६
स एव कालश्चाग्निश्च	४३.४२
स एव तेजसा राशि:	५३.४३
स एव द्विविधो	५९.३३
स एव पशुपालोऽभूत (उ)	३२.२४
स एव भगवानीशो	२४.५९
स एवमुक्तो यदुना (उ)	३१.३६
स एवं जयतेंऽशेन (उ)	५.१३७
स एवं श्लोक दृष्ट्वा (उ)	६.२९
स एष ओत: प्रोतश्च (उ)	३९.३४७
स एष भगवान् क्रुद्ध:	३०.१४१
स एष भगवान्क्रोधो (उ)	३९.२९९
स कदाचिन्निशापाये (उ)	३४.२१
स कर्ण पारिजग्राह (उ)	३७.११४
स कर्ता सर्वशिल्पानां (उ)	५.२९
सकुण्डलाङ्गदापीं (उ)	९.६२
स कृदभ्यर्चिता प्रीता: (उ)	१५.१
सकृदेव तथा वृष्ट्या	८.७८
सकृदेव समुद्रान्ते (उ)	१५.९६
सकृदेवास्तेरद्दर्भान् (उ)	१३.४३
सकृद्भयाभिगमनं (उ)	४३.१८
स कृष्णहस्तात् (उ)	३४.९७
स केतुर्दक्षिणे द्वीपे	३५.३२
स क्रोधाविष्टनेत्राभ्याम्	२५.६२
स खलुवाच भगवान् (उ)	३९.३३२
स गङ्गामुपगम्याह (उ)	११.२८
सगच्छति तदा	५६.७
स गतस्तु मृगव्यां (उ)	२६.१३
सगरस्यात्मजा राज्ञ: (उ)	२६.१५३
सगर स्वाम्प्रतिज्ञाञ्च (उ)	२६.१३८
सगुणात्तेजसो नित्यम् (उ)	४.३४
सङ्कल्प पञ्चानां	४५.८५
संकल्पा च मुहूर्ता (उ)	५.३
संकल्पायान्तु संजज्ञे (उ)	५.३४
सङ्ख्ययेह प्रसंख्याय	५७.३
संघातो जायते तस्मात्	४.५१
स च तं बोधयामास	२५.३३
स चायं सर्वभूतानां (उ)	४०.८९
स चैव हि यथा सिंह	१०.८०
स जरां प्राप्य राजर्षि (उ)	३१.२८
स जिह्वामालया	५०.४८
स जीवोऽनभ्यधिष्ठान: (उ)	४०.९०
सञ्जातेरथ रौद्रा (उ)	३७.११९
स तं दृष्ट्वा महात्मानम्	२३.२५
तं दृष्ट्वा महादेवं	२२.२२
स तं प्रणम्य भगवान्	२२.२३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
स तं व्यादिश्य तनयं (उ)	२६.४७
स तत्राप्य महद्राज्यं (उ)	२८.२२
स तत्र पूज्यते स्थाणुः	४९.२७
स तत्र वासयामास (उ)	३४.१०४
स तत्र सिद्धकरणः (उ)	८.१३७
स तथेति ब्रुवन्नेव (उ)	३०.८५
स तथ्यं वचनं (उ)	४.१४५
स तदा तद्विधान्दृष्ट्वा (उ)	८.९९
स तदा ह्याहुतेः	५६.४६
स तन्देश सुतैः सर्वैः (उ)	२६.१४५
स तथा संवसद्देव्या (उ)	३६.१२
स तयोरन्तरं बुद्ध ब्रह्मा	२५.४३
सः तस्य पुरुवेन्द्रस्य (उ)	२२.४१
सतस्य ब्रह्मणा सृष्टो	५१.५७
स तस्य वचसा देवः	२५.५६
सतस्यां पितृकन्यायां (उ)	११.७३
स तां दृष्ट्वा महातेजाः	२३.७
स तान् न्यायेन	१.१७
स ताभ्यः सहसैवाथ (उ)	२८.७
सतास्वजनयत् (उ)	९.७४
सतिष्ठेद्वा बुभुक्षुः (उ)	१७.६६
सती भवाय प्रायच्छत्	१०.२९
स तु गर्भाद्विनिःसृत्य (उ)	६.५८
स तु ज्येष्ठो नरव्याघ्रः (उ)	२६.१६४
स तु तस्यै वरं (उ)	६.८७
स तु द्वादशवर्षाणि (उ)	२६.१०३
स तु नेत्र सहस्रेण	५०.४९
स तु प्रसेनमृगयाम् (उ)	३४.३७
स तु मेरुः परिवृतो	३४.५६
स तु राजा हरिश्चन्द्रः (उ)	२६.११७
स तृष्णोऽभिहितो (उ)	४०.६४
स तेन निगृहीतस्तु (उ)	३७.५०
स तेषु वर्तते सम्यक्	२.२२
सत्वं कृतं रजस्त्रेता	८.६५
सत्त्वं तथारोग्यमलोलुपत्वं	११.६०
सत्त्वं रजश्च ब्रह्मत्वे	५.२७
सत्वक्षेत्रज्ञनानात्वम् (उ)	४०.७५
सत्वज्योतिस्तथादित्यः (उ)	६.१२३
सत्त्वतः सत्वात्मकश्चैव (उ)	७.३८
सत्वमात्रात्मको (उ)	४१.१३
सत्त्वस्य परमा	३०.२२८
सत्ववान् गुणसम्पन्नो (उ)	२६.१९५
सत्वस्थ मात्रकं (उ)	४०.७४
सत्वस्थानुपपत्तौ	११.३१
सत्त्वोद्रिक्ता तु या (उ)	५.१२५
सत्त्वोद्रेकातु पुरुषो (उ)	५.९२
सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु	६.४
सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु	७.५८
सत्यकात् काशि दुहिता (उ)	३४.११५
सत्यकेतु सुतश्चापि (उ)	३०.७२
सत्यजित्पृथिवी राज्यं (उ)	३७.३०१
सत्यधर्ममयः श्रीमान्	६.१८
सत्यनेत्रश्च हव्यश्च	२८.१९
सत्यन्तु सप्तमो लोको (उ)	३९.१८
सत्यन्तु सप्तमो (उ)	३९.३९
सत्यबुद्धिर्दशतन् (उ)	९.४४
सत्यभामा तु तद्वृतं (उ)	३४.६२
सत्यभामोत्तमा	३४.५५
सत्यमित्रोऽभिमित्रश्च (उ)	६.१२५
सत्यं जपस्तपो दानं	५७.६३
सत्यवाक् कर्म्म बुद्धिश्च (उ)	२९.३
सत्यवाक् सत्यसम्पन्नः (उ)	३४.१००
सत्यव्रतस्तु बाल्यात्तु (उ)	२६.९५
सत्यव्रतो महाबुद्धिर- (उ)	२६.८९
सत्यश्रव समग्रयन्तु	६०.२८
सत्यसन्धाः पराक्रान्ता (उ)	७.३
सत्यादीन् सप्तलोकान् (उ)	३८.१९१
सत्यानामपि नामानि (उ)	१.३१
सत्यानृतं न तत्रास्ति	४९.११६
सत्याभिध्यायिनः (उ)	४१.२६
सत्याभिध्यायिनां (उ)	३८.४६
सत्याभि व्याहता तस्य (उ)	३५.१४५
सत्याभिव्याहते तस्य (उ)	१.८३
सत्यायामभवत्सत्य (उ)	५.१२८
सत्यावसथ्यौ देवर्षे (उ)	४४.४२
सत्याह येते परिक्रान्ता (उ)	१.३३
सत्येति ब्रह्मणः शब्दः (उ)	३९.२७
सत्येन चैव सुश्रोणि (उ)	३९.१४
सत्येन ब्रह्मचर्येण	५७.४२
सत्यो धृतिर्दमोदान्तः (उ)	१.२५
सत्रं हि ईजिरेपुण्यम्	२.५
सत्रघाताय दण्डाय	३०.१९४
सवै वितते पूर्व (उ)	२१.९७
सदस्यान् यजमानांश्च (उ)	३५.२९
सदस्याय नमश्चैव	२४.११७
स दानफलमाप्नोति (उ)	२९:१०८
सदा प्रबाधतेविष्वक् (उ)	४२.६२
सदा सर्पिस्तिलैर्युक्तां (उ)	१३.२२
सद्य प्रसूयमात्रो तु (उ)	८.८१
सद्यः फलन्ति कर्माणि (उ)	११.५६
सद्यो जातं कुमारन्तं (उ)	३७.१४५
सद्योरात्र्यहनी चैव	९.१९
सद्रमस्य तथा पत्नी	२२.१२
स धन्वी कवची जात (उ)	१.९४
स धर्म पृष्ठतः (उ)	१.१०९
स धर्मविजयी राजा (उ)	२६.१४३
स धर्माः स प्रजाः	५७.४९
सनकाद्यैर्म्महाभागैः (उ)	४३.२
सनत्कुमारं च विभुं	९.६६
सनत्कुमारावरजा	३५.४५
सनत्कुमारो मुनि पुंग (उ)	५०.८०
सनन्तकार मे ब्रूहि (उ)	४३.३
सनः सनन्दनश्चैव	२३.१२३
स निशायामथागम्य (उ)	२९.२०
सन्तान हेतोर्विभुना	१.१६२
सन्तनार्थं महाभाग (उ)	३७.६७
सन्तारणाय लोकानां (उ)	४७.३६
सन्तारौतौ तु सच्चार्यौ	२५.१६
सन्ति ते बहवः पुत्रा (उ)	३१.३५
सन्ति मे बहवो रुद्राः	३०.१०५
सन्ध्याकृतस्य पादेन	८.७३
सन्ध्याप्राभाः समुदिता	४०.६
सन्ध्यामुपास्य (उ)	५०.२८
सन्ध्यायामप्यतीतायाम्	८.६९

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
सन्ध्यायां च महावेद्यां (उ)	१५.५७
सन्ध्याशोतस्य दिव्यानि	८.६७
सन्ध्यां शकैरेव	३२.६३
सन्नतिश्चानसूया	१०.२७
सन्निधेरपि दायाद: (उ)	३०.७०
सन्निपात: पुनस्तस्य	१.१७१
सन्निवार्य तदा ब्रह्मा (उ)	२८.४१
सन्निवेश: पुरादीनाम्	१.५०
सन्यास: कर्मणो	५९.५३
स पङ्क्तिपावनचैव (उ)	२१.७४
स पर्वतो महादिव्यो	३४.५४
स पुत्रान् दीर्घसत्रेऽस्मिन्	१.२४
स पुन: सम्भावयिता (उ)	४१.३७
सप्त गोदावरे चैव	१५.१९
सप्त चान्या दुहितरस्ता: (उ)	८.१६३
सप्त चास्मिन् सुपर्वाणो	४५.८८
सप्त तेषु कृतान्याहु: (उ)	३९.११
सप्त द्वीपन्तु वक्ष्यामि	३४.७
सप्तद्वीप परिक्रान्तं	३३.३७
सप्त द्वीपसमुद्रान्तं (उ)	४०.२८
सप्त द्वीपा: समुद्राश्च	८.१५
सप्तद्वीपे तु वक्ष्यामि	३३.३१
सप्तद्वीपेश्वरो राजा (उ)	३६.१७
सप्तन्ध्य शेषु हीयन्ते	५८.११२
सप्त प्रकृतयस्त्वेता	४६.१८५
स प्रहस्य तुदुर्बुद्धिर् (उ)	१.११६
सप्तमं गोसवं नाम (उ)	२४.४३
सप्तमं देवकी पुत्रं (उ)	३४.१८१
सप्तमे देहि मे नाम	२७.१५
सप्तम: पर्वतस्तत्र	४९.३७
सप्तमं पुत्रं (उ)	३४.१८१
सप्तमातु मुखात्तस्य	२६.३९
सप्तमी देवकी तासां (उ)	३३.१३१
सप्तमेऽप्यन्तरतटे	३४.९०
सप्तमे त तले ज्ञेयं	५०.४१
सप्तमं त्वथ पर्याये (उ)	३.१
सप्त मेधावतां श्रेष्ठा: (उ)	११.१
सप्तमे परिवते तु यदा	२३.१२७
सप्तर्षय: प्रणश्यन्ति (उ)	३८.१६२
सप्तर्षयस्तदा प्राहु: (उ)	३७.४१२
सप्तर्षयस्तथेन्द्रा	३२.५
सप्तर्षयस्तथैवोर्द्धमा- (उ)	६.१२०
सप्तर्षयो मघायुक्ता: (उ)	३७.४१७
सप्तर्षयो मनुर्देवा: (उ)	१.१९
सप्तर्षयो मनुश्चैव देवा:	२१.१९
सप्तर्षयो मनुश्चैव	६१.१५७
सप्तर्षयो विदुस्तेषां (उ)	३७.४४१
सप्तर्षि मण्डलं (उ)	३९.१३४
सप्तर्षीणान्तुयस्थानं	८.१८६
सप्तर्षीणान्तु ये (उ)	३७.४१५
सप्तरां मनोश्चैव	५७.४३
सप्तर्षीणां मनोश्चैव	६१.१७३
विशति पर्य्यन्ते (उ)	३७.४१३
सप्तविंशतिम: कल्पो	२१.५६
सप्तविंशतिमे प्राप्ते	२३.२०२
सप्तविंशतिरिन्दोस्तु (उ)	२८.२१
सप्तविंशत्तु या: कन्या (उ)	५.५३
सप्तषष्टिस्तथान्यानि	५७.३५
सप्तषष्टिस्तथान्यानि	६१.१३९
सप्तसप्त तु वर्षाणि	८.१३
सप्तस्कन्धादिकम् शश्वत्	२.३६
सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा (उ)	२४.३६
सप्तस्विह कथं (उ)	६.२
सप्तानाञ्च समुद्राणां	५०.५८
सप्ताश्वरूपाश्छन्दांसि	५१.६४
सप्तश्च हरिकृष्ण	३५.७
सप्त ते भार्गव देवा (उ)	३८.१२०
सप्तैव गिरयस्तत्र	४९.४७
सप्तैव तुभाविष्यन्ति (उ)	३७.३५३
सप्तैव तांस्तान (उ)	८.११२
सप्तैवमेते कथिता	५०.५४
स ब्रह्म सदनं लोकं	४१.८७
सभानरश्च पक्षश्च (उ)	३७.१.३
सभीत: प्राञ्जलिश्चैव (उ)	१.१२२
समं जन्म च रूपञ्च	८.५८
समग्रं योजनशतं ते	३९.१३
समाजानुरेकजानुरुत्तान्	११.१४
समतीतस्य कल्पस्य	७.३
समतीतास्तु ये तेषाम् (उ)	३८.३७
समत्वं यत्र यत्रासीद् (उ)	१.१७१
स मध्ये नागदेशस्य	४८.१८
स मनोस्तनय: क्रूरो (उ)	२६.३७
समन्ताद्धनवातेन	५०.८४
समन्ताद्योजनशतं	४०.२
समन्वितानि भूतानि	४७.८०
सममायुश्च रूपञ्च	४९.११४
समयव्युत्क्रमात् (उ)	२९.१८
समयान्ते देवयानी (उ)	३६.२०
समरस्य पर: पार: (उ)	३७.१७२
स महान् सशरीरस्तु	५९.७२
समागम: समाख्यात (उ)	३७.९८
समाधाय च तां (उ)	२२.४५
समाधाय मनस्तीव्र	३२.१०
समानप्लक्षन्यग्रोध (उ)	१३.७०
समा पाणितलप्रख्या	३८.७२
समाप्तयज्ञास्ते सर्वे	२.३४
समायवरदांश्चण्डान् (उ)	८.२२४
समा रात्रिरहश्चैव	५०.१९९
स मार्गमाण: कामानाम् (उ)	३१.६८
समा: शतानि चत्वारि (ङ)	३७.३५२
समास बन्धैर्नियतै:	३.८
समा: स विंशति	५८.७७
समासाभिहताश्चैव (उ)	८.१८२
समासेन समाख्यातो (उ)	३८.२४५
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी	१६.२३
समिद्धि: कल्कलेयाभि- (उ)	१३.७३
समीरण महाभाग (उ)	३९.३२५
समुत्पन्नेन राजर्षि (उ)	१.१२९
समुद्रं खनयामास् (उ)	२६.५२
समुद्र मध्यमञ्चैव (उ)	३६.१०२
समुद्र तनयायान्तु (उ)	२.२५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
समुद्रवासिनः पुत्रः	२९.३४
समुद्रसंयोग कृतं जन्म	१.१२४
समुद्रःसेन कालिन्दो (उ)	८.३२
समुद्राद्वायुसंयोगाद्	५२.२४
समुद्राश्चैव मेघाश्च	७.४८
समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च (उ)	३८.१५५
समृद्ध राष्ट्रं स्फीतञ्च	४३.३३
समेत्य देवैस्ते देवाः	२४.५
समेन रथमुख्येन (उ)	२८.१४
स मोहयति रूपेण (उ)	३६.३०
सम्पातविषमैस्तैस्तु	३४.२७
सम्पातिरजनत् पुत्रं (उ)	८.३१८
सम्प्रक्षाले तदा वृत्ते (उ)	४०.५
सम्प्रमूढाः स्थिताः (उ)	३६.२६
सम्प्रलीषु भूतेषु (उ)	४०.२२
सम्प्रहृष्टो जगामाथ (उ)	२९.३६
सम्प्राप्ते चैव कल्पान्ते (उ)	५.१२३
सम्बभूवैव धर्मात्मा (उ)	३७.४२
सम्बुद्धास्तु स्वयं	६१.९१
सम्बोध्य सूतं वचसा	७.२
सम्भक्ष्य सर्व भूतानि	३०.२७३
सम्भवक्रा महानेत्राः	४३.२१
सम्भारास्तांश्च	५७.८८
सम्भारैस्तुशुभैर्जुष्टम्	२.२६
सम्भाषण दर्शनञ्च	४३.३६
सम्भिन्नो मारुतो यस्य	१९.११
सम्भूतः स समुद्रान्- (उ)	२६.७३
सम्भूतस्यात्मजः (उ)	२६.७५
सम्भूतिं तस्य तां (उ)	४.४१
सम्भूतिश्च प्रभूतिश्च (उ)	८.२३१
सम्भृतश्चार्द्धमासेन	५२.६१
सम्भेदश्चैव वर्णानां	५८.४
सम्यग्विचारितं (उ)	४२.३१
सम्राऽग्निः स्मृता	२६.२०
स यष्टा सर्वभूतानां (उ)	३८.१९३
स यदा कालरूपाभो	२३.१००
स याच्यमानो देवैश्च (उ)	२८.२६
स युगाख्या सहस्रं	३८.२१२
स रथऽधिष्ठितो (उ)	५२.१
स रथोऽधिष्ठितो देवः	१.९०
सरसस्तस्य पूर्वस्मिन्	३७.९
सरसाञ्च वनानाञ्च	३८.७५
सरसो मानसस्येह	३६.२१
स राजा सर्वनागानां	५०.५३
स राजा सिंह विक्रान्तो (उ)	३१.६७
सरितः सागरान्	५८.९७
सरितः सागरानूपान् (उ)	३७.३९६
सरित्सरस्तडागानि	५६.७४
सरित्सरः समुद्रांश्च	८.४६
सरीसृपत्वाद् गच्छेद्धि	१४.३५
सरीसृपाणां सर्पाणां (उ)	९.१३
सरोवरं महापुण्यं	३८.१७
सरोवरं महापुण्यं	४२.६३
सरोवरसमुद्रातिनदी- (उ)	८.२३८
सरोवरसमुद्रादिनदी- (उ)	८.२४२
सरोवरेभ्यः पुण्योदा	४२.१
सर्ग काले प्रधानस्य	४.२२
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च	४.१०
सर्गाः परस्परस्याथ	९.१११
सर्गादौ या मयाष्टौ तु	८.७१
सर्गे सर्गे यथा भेदा	५८.११७
सर्पते दक्षिणायान्तु	५०.१२३
सर्पश्च राक्षसा ह्येते (उ)	८.१२३
सर्पाग्नि चौर जनितं (उ)	५०.७८
सर्पान् दृष्ट्वा ततः	९.३४
सर्पास्तथाग्रजान दृष्टवा	२५.६४
सर्पिभ्यो मासमुद्रानां (उ)	८.२९९
सर्पिष्पूणानि पात्राणि (उ)	१८.३०
सर्पो निकृन्तनः प्रोक्त (उ)	३९.१८१
सर्वकर्मसु युक्तो वा	३०.३१५
सर्वकाम फलास्तत्र	४५.१३
सर्वकामसमृद्धस्य (उ)	१८.४२
सर्वकाम सुखः कालः	८.५५
सर्वक्षत्रस्यजेताऽसौ (उ)	३७.२२२
सर्वगात्र प्रकम्पेन	११.४३
सर्वग्रहाणां त्रीण्येव (उ)	५.४६
सर्व ग्रहाणामेतेषाम्	५३.१११
सर्वज्ञ समबुद्धिश्च	२३.१४६
सर्वज्ञः सर्व विज्ञानात्	५.३५
सर्वज्ञता तृप्तिरग्नादिबोध	१२.३१
सर्वज्ञात्सवं वेदेषु	१.४०
सर्वज्ञ तत्प्रधानस्य	१.८२
सर्वतः पाणिपादान्त	१४.१२
सर्वतश्च कुरुक्षेत्रं	१५.६४
सर्व तेजोमयं	९.६१
सर्वत्रगान प्रतिधान (उ)	८.२४५
सर्वत्र वर्तमानास्ते (उ)	२१.८९
सर्वत्रैव तथोद्यानं	४५.४१
सर्वध तुभयस्त	४७.१४
सर्ववातु विचित्रैश्च	४९.९७
सर्व पाप निमुक्ता विरजा	२३.६७
सर्व पुण्यं हिमवतो (उ)	१५.११७
सर्व प्रत्युपभोगस्तु	८.७९
सर्वभूतपिशाचानाम्	१.१२३
सर्वभूतपिशाचानां (उ)	८.२८३
सर्वभूतलयो भूत्वा प्रभूतः	२०.२५
सर्वभूत शरीरेषु	५१.२२
सर्वभूतानि तेभ्योऽथ	३०.२५
सर्वमन्वन्तराणां वै	६१.१४५
सर्वमापूरयन्नोदे (उ)	४०.१७
सर्वमेतत्प्रयातस्य (उ)	४०.४९
सर्वरत्नमयं चैकं	५०.१९२
सर्वरूपास्तथा चेमे	२३.७३
सर्वकामदाः सत्वा	४५.३
सर्वर्तुकुसुमां माला (उ)	३९.२६७
सर्वर्तुकुसुमोपेताः	३०.८८
सर्वलक्षण सम्पन्नाः (उ)	८.१९२
सर्वलक्षण सम्पन्ना (उ)	३९.३७७
सर्वलोक प्रणाशश्च (उ)	३८.१५०
सर्व लौकिकमम्भो	५१.१९
सर्व विद्यान्तमं श्रेष्ठं	२९.८८

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
सर्व वेदव्रत स्नाता:	२१.२३
सर्वशो ब्रह्मचर्येण	४९.१३८
सर्वं सम्पद्यते तस्य	३०.३१४
सर्वस्त्वं सर्वगो देव	३०.२८१
सर्वस्वमपि यो	८.१८३
सर्वाङ्ग केशं स्थूलाङ्ग (उ)	८.७४
सर्वाङ्गकेशा वृत्ताख्या (उ)	८.२६१
सर्वाङ्गकेशी नाम्ना च (उ)	८.१२०
सर्वाणि राजर्षिसुरर्षिमन्ति	६१.१८२
सर्वाण्हीतानि यो (उ)	१८.६०
सर्वात्मा सर्वलोकानाम्	३१.४४
सर्वात्मा सर्वलोकेश	५३.३६
सर्वान् देवान् ऋषीश्चैव	१०.६१
सर्वानुभूपं शंखश्च (उ)	८.१५०
सर्वा: पुण्या सरस्वत्य:	४५.१०८
सर्वाप्सरोगणानाश्च (उ)	९.१४
सर्वाभिभावीतेनत्वं (उ)	३५.१५९
सर्वामणिमयी भूमि:	४५.१५
सर्वायाभक्ष्यभक्ष्याय	३०.१९५
सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्य: (उ)	११.१५
सर्वास्ता हि चतुष्पादा:	६१.५९
सर्वा: ह्यस्मिन्	३०.१८५
सर्वा ह्येकशिला	३७.२९
सर्वे कालस्य वशगा	३२.३०
सर्वे तपो बलोत्कृष्टा:	२३.१३५
सर्वे तुल्या: प्रसृष्टार्थ (उ)	४१.३१
सर्वे ते श्रेयसे	८.१८०
सर्वे ते ह्यागतज्ञाना	९.६७
सर्वे देवगरणा विप्रा: (उ)	५.७९
सर्वेदेवैर्म्महाभागै: (उ)	३२.१८
सर्वेक्षण नागस्तु निषधे	४६.३४
सर्वे निमन्त्रिता देवा	३०.१०६
सर्वेन्द्रियचराभासं (उ)	४२.२९
सर्वे प्रचेतसो नाम (उ)-	२.२६
सर्वे प्रजानां पतय: (उ)	४.६४
सर्वे ब्रह्मविद: सौम्या (उ)	७.३६
सर्वे यज्ञा महाबाहो (उ)	३२.१७
सर्वे योगाश्च मन्त्राश्च	२१.६१
सर्वे लब्धवराश्चैव (उ)	९.५२
सर्वे वणिजकाश्चापि	५८.५१
सर्वे वयं प्रसूयामश्चाक्षुष- (उ)	४.१९
सर्वेश त्वाच्च	४.४०
सर्वेशीघ्रतरा भूत्वा	६०.७०
सर्वेषाञ्च विमानानि (उ)	५.३०
सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोक:	५०.१०८
सर्वेषामेव तेषां वै	६१.७
सर्वेषामेव भूतानां (उ)	३६.१९३
सर्वेषामेव लोकानां	३०.६५
सर्वेषां राजतं पात्रम (उ)	२१.८७
सर्वेषां चैव सत्त्वानाम्	१.१५१
सर्वेषां तपसां युक्तिस्तपो- (उ)	१०.५०
सर्वेषां राजतै: पात्रै:	११.९४
सर्वेषां वर्षवृक्षाणां	४६.३१
सर्वेषां समवाये तु	११.३०
सर्वेषु युगकालेषु	५९.८
सर्वेष्व रोगा: सुबला	४९.२०
सर्वे सत्वा: प्रपद्यन्ते (उ)	४१.२८
सर्वे सूक्ष्मशरीरास्ते (उ)	३९.७४
सर्वे हि वयमेते (उ)	४.६७
सर्वे ही मे महात्मानो	१.२३
सर्वे ह्यपि क्रमातीता (उ)	३६.५
सर्व: पृष्टांस्तु सम्प्रश्नान	६०.६१
सर्व्वं कामदुधां धेनु (उ)	२६.१०४
सर्व ज्ञानि दृष्टानि (उ)	१७.९४
सर्व्वदेवस्वरूपा च (उ)	४५.५९
सर्व्वपापहरं पुण्यं (उ)	४१.५८
सर्व्वमश्वकमुख्यानां (उ)	३७.२५१
सर्व्व योगेश्वरैर्व्याप्तं (उ)	१७.९२
सर्व्ववेग: सुधर्म्मा (उ)	३८.८४
सर्व्वस्थानेषु चैवं (उ)	४८.६१
सर्व्वान् कामानवाप्नोति (उ)	१९.२०
सर्वे ते क्षत्रियगणा (उ)	२६.१४२
सर्व्वेन्द्रिया निविष्टास्तं (उ)	३५.५६
स लब्धतेजास्तपसा (उ)	२८.१७
सलिलेनाप्लुतां भूमिम्	६.१०
स लोह गन्धो राजर्षि (उ)	३१.२३
स लोह गन्धो व्यनशत्त- (उ)	३१.२६
सवमेतद्यथोक्तन्ते (उ)	६.१३२
सवरूथ: सानुकर्ष:	५२.७३
सवर्णा मनवस्तस्मात् (उ)	३८.५३
सवर्णा मनवो ह्येते (उ)	३८.११७
सवर्णाया: सुतश्चान्य: (उ)	३८.५७
सबरर्णा: सदृशाश्चैष	२६.४९
सवामनो दिवं रवं (उ)	३६.७८
सविता मृत्युवे (उ)	४१.६०
सविस्फुलिङ्गं सज्वालं (उ)	२६.४०
सविस्मयथागम्य	२४.१६
सविस्मयं परं श्रुत्वा	२४.२२
स वेदवाद्युप्रदष्टा	६.१६
स वेषां काश्यपं श्रेष्ठं (उ)	४९.६६
स वै धर्मस्य श्रीमान् (उ)	३७.१०२
स वै नारायणाख्यस्तु	७.६३
स वै प्रणतसामन्तो (उ)	३७.३५
स वै बद्धा धनुर्यान् (उ)	३२.३५
स वै बाहु सहस्रेण (उ)	३२.२५
स वैराज: प्रजासर्ग:	१०.१५
स वै वेगे समुद्रस्ये (उ)	३२.२७
सर्व शंखपद: श्रीमान्	२८.२७
स्वव्यापसव्ययो: (उ)	४२.७७
सव्यास परिमाणञ्च	१.८२
सव्ये हिमवत: पार्श्वे	४७.१
सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां (उ)	१३.१६
सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां (उ)	१३.२६
सव्योत्तराभ्यां (उ)	१३.२८
स शब्दस्पर्श रूपञ्च	४.५६
स शब्दस्पर्श रूपेषु	४.६०
स शब्दे सभये वायि	११.३३
स शरीरा: श्रयन्तेस्म	२४.३
स शापरीषाद्दुद्राण्या (उ)	११.२७
स शापेन वसिष्ठस्य (उ)	२७.४
स शीघ्रमेति पर्येति	५०.१०२

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
स शुक्रश्चोशना (उ)	४.७५
स शून्यमाश्रमं सर्वं (उ)	३२.४२
स सम्पाप्य तु तान् (उ)	३१.७०
स संदिश्यासुरान् (उ)	३५.११४
स समुद्राकरवती	३३.५
स समुद्रामिमां पृथ्वीम्	६.३२
स समुद्रोऽश्वमादाय (उ)	२६.१५०
संसर्ग काले च करोति सर्गान्	१.१८५
स सहस्रमधीत्याशु	६१.२८
स सावधित्वा वृषलान्	५८.८८
सस्यचौरा भविष्यन्ति	५८.६०
सस्यानि तेन दुग्धानि (उ)	१.१७४
सस्रष्टा सर्वभूतानाम्	७.७२
सस्रष्टा सर्वभूतानि	६१.१४४
सहचक्रो भ्रमत्यक्षः	५१.६६
सहत्वा सर्वगरचैव	५८.७६
सहदेवः सुतस्तस्य (उ)	३७.२८१
सहदेवस्य धर्मात्मा (उ)	३१.१०
सहदेवात्मजः श्रीमान् (उ)	३७.२२३
सह सप्तर्षिभार्याभि (उ)	११.३८
सहसा देवदेवेशः	३०.१७१
सहसा योगमेष्यामि (उ)	२९.१६
सहस्र क्षत्रियगण विक्रान्त (उ)	२४.३
सहस्र चरणं देवं (उ)	३५.१९
सहस्रजित्सुतः (उ)	३२.३
सहस्रदन्ता मकराः (उ)	८.२८६
सहस्रधारो विवात्मा (उ)	१.२६
सहस्र नल्वमात्रेण (उ)	२१.२०
सहस्रपञ्चपञ्चाशत् (उ)	४२.९
सहस्रपादः प्रासादः (उ)	३९.२४८
सहस्रपादः प्रासादः (उ)	३९.३०७
सहस्रपादः सोऽग्निस्तु	५३.१८
सहस्रमधिकं सोऽथ	३५.२२
सहस्रमन्यद्दक्षस्तो	८.३७
सहस्रमपि कोटीनां (उ)	३९.९६
सहस्रमेकं मन्त्राणाम्	६१.७१
सहस्रयोजनानान्तु	४५.५३

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
सहस्र वोहवे चैव (उ)	३५.१६७
सहस्रशत घण्टाय	३०.२०६
सहस्रशत बाहुश्च	१०.४६
सहस्रशत संख्यानां (उ)	८.१८७
सहस्रशस्तु विप्रान्वै (उ)	१०.६७
सहस्रशिखरे शैले	३९.६१
सहस्रशिरसे चैव (उ)	३५.१६८
सहस्रशीर्ष देवश्च	३०.१२३
सहस्रशीर्षा पुरुषो	६.३
सहस्रशीर्षा पुरुषो	७.५७
सहस्रशीर्षा भूत्वा	५५.१२
सहस्रशीर्षा सुमनाः	७.६०
सहस्रशीर्षा सुमनाः (उ)	३८.१८६
सहस्रश्च नद्योन्या	४५.२६
सहस्रसूर्यानलवर्च्चसे नमः	३.१
सहस्राक्ष विरुपाक्ष	३०.१८१
सहस्राक्षेण विहिता	३५.३८
सहस्राणां शतं पूर्णं (उ)	३९.२३२
सहस्रारणां शान्यत्र	५७.३०
सहस्राणि दशैवोक्तं (उ)	४२.६
सहश्रांशोस्त्विषः	५३.८५
सहस्रास्तात्सुता (उ)	३७.३२३
सहस्रेणैव भागेन (उ)	३६.२००
सहस्रेणैव भागेन (उ)	३६.२०४
सहस्रोद्यत शूलाय	३०.२१४
सहात्मना शिवपुरं (उ)	४९.५८
सहास्माभिस्तु (उ)	१४.१२
सहि देव मयो विप्रा (उ)	२८.१०
सहि नाग सहस्रेण (उ)	३२.२६
स हि भ्रमन् भ्रामयते	५१.७
स हि रामभयाद्राजा (उ)	२६.१७८
स हि वर्षा युतं तप्त्वा (उ)	३२.१०
स हो वाच महाभागो	२५.१८
सह्यस्य चोत्तरार्द्धे	४५.११२
सह्यो यज्ञो मृगा	३०.२६४
साऽसृजद् व्यवसायन्तु	९.९१
सा कामरूपिणां	४८.२९

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
साक्षात्सर्वं विजानाति	४.३४
सागराः समकम्पन्त (उ)	३५.१९९
साग्रं प्रश्नसहस्रन्तु	६०.५७
साङ्ख्याय चैव योगाय (उ)	३५.१७५
साङ्ख्याय साङ्ख्य मुख्याय	३०.२१९
साध्य ज्ञानवतां निष्ठा	६१.१११
साङ्गश्च सरहस्यश्च (उ)	३५.१५८
सा चतुर्भिनश्चैव	४२.१२
सा चाश्रम समायुक्ता (उ)	२४.५५
सा चैषां ह्यैश्वरी माया	२८.८५
सा चोपस्पर्शनात्तस्य (उ)	३४.८
सा ज्योतिषि निवर्तन्तौ	४२.४
सा तं दृष्टवा तदा (उ)	२२.८०
सातकर्णिर्वर्षमेकं (उ)	३७.३४८
सा तत्परिहरन्ती (उ)	२२.६५
सा तथैव महागन्धा	३५.३९
स तमो बहुला	९.६
सा तु गत्वा कुरून् (उ)	२२.३३
सा तु देवी सती पूर्वं	३०.७१
सा तु भर्तुश्चितां (उ)	२६.१३१
सा तु भार्या भगवतो (उ)	२२.३३
सात्वती रूप सम्पन्नं (उ)	३४.१
सा त्वपश्यद्विमानानि (उ)	११.५१
सा त्वं वचनमासाद्य	१.१६३
सात्विकश्चापि संसारो	१४.३७
सात्त्विकी पौरुषी या (उ)	५.१०२
सा दिवं पृथिवीञ्चैव	१०.९
साद्याय शरभायैव (उ)	३५.१८०
साधनात्तपसोऽरण्ये	५९.२४
साधु साधु महाप्राज्ञा (उ)	४२.१०५
साध्या पुत्रांश्च धर्मस्य (उ)	५.४
साध्या विद्याधरा	५५.४१
साध्याश्च वसवो (उ)	५.८१
साध्योनारायणश्चैव	२३.९५
साध्वी विक्रयकर्त्ता (उ	३९.१५५
सान्त्वपित्वा च राजानम्	२.२३
सापि कृच्छ्रेण महता (उ)	११.३१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
सा प्राञ्जलिरुवाचेदं (उ)	२८.४२
सा भावयति भूतानि (उ)	११.९१
सामगानान्तु सर्वेषां	६१.४८
सामण्डले समुद्रस्य	४७.५३
सामभिः सामवेदश्च	६०.२०
सामवेदश्च वृत्ताढ्यः (उ)	४.२६
सामातुरुदरस्था (उ)	३४.१०६
सामानि जगती	९.४६
सामान्यानि तु कर्माणि	८.१६४
सामान्य विभवाः सर्वे	४५.४८
सामान्यविपरीतार्थैः	५८.१६
सामान्येषु च धर्मेषु	५९.२१
सामुद्रीर्वैसमुद्रेषु	६.२४
साम्ना प्रसूयमानेन (उ)	८.२०४
साम्ना संपूज्य सा कत्या	२५.४६
सायं प्रातर्मध्याह्ने नमः	२०.३१
सारस्वतः सरस्वत्यां (उ)	८.९१
सारस्वतस्त्रिधामे (उ)	४१.६१
सारिकाभिर्मयूरैश्च	३६.२
सार्द्ध क्रोशद्वयं मानं (उ)	४३.२६
सार्द्ध विश्वभुजा चैव	५७.६२
सालिमञ्जरिसत्यश्च	६१.४७
सावतीर्णा गयाक्षेत्रे (उ)	५०.३५
सावर्णस्य तु ते पुत्राः (उ)	३८.८५
सावर्णस्य प्रवक्ष्यामि (उ)	३८.९
सावर्णाद्याश्च कीर्त्यन्ते	१.११२
सावर्णाः पञ्च रौच्यश्च (उ)	१.४
सावर्णिके पुनस्तुभ्यं (उ)	३६.५२
सार्वाणिना च समुद्री	३०.३६
सावद्यं निरवद्यं च	१३.५
साश्वं हतं प्रसेनं तं (उ)	३४.३९
सा सा दिव्या स्मृता (उ)	३७.४१४
सा सितोदाद्विनिष्क्रान्ता	४२.४८
स सिद्धिकान्यथैतानि	५९.७५
साहाय्यं मम कार्यार्थं	२५.७८
सा हि सत्यावती पुण्या (उ)	२९.८५
सिकतापर्वतमरून	४७.५८
सिकत्याय प्रसन्नाय (उ)	३५.१८६
सितश्मश्रुधरो दीनो (उ)	३१.३३
सितेरेजा शुक्तिमती	४५.१०१
सिद्धचारणसङ्कीर्णः (उ)	१५.११५
सिद्धक्षेत्रं तु वै जुष्टं (उ)	१५.८०
सिद्धक्षेत्रमृषि श्रेष्ठ (उ)	१५.१४
सिद्धक्षेत्रे महापुण्ये	२३.१७२
सिद्ध चरणान्धर्व	३४.११
देवर्षि गन्धर्वयक्ष	४०.२६
सिद्धात्मानस्तु यै पूर्वम्	८.१३२
सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते	६.५२
सिद्धानां प्रीतिजननैः (उ)	१५.१०४
सिद्धार्थकानां कल्केन (उ)	१६.५४
सिद्धार्थ कैः कृष्णतिलैः (उ)	१६.४२
सिद्धार्थ सूर्य तेजञ्च (उ)	८.१४९
सिद्धा हि विप्ररूपेण (उ)	१०.७४
सिद्धा ह्यपत्तना नाम	३९.५२
सिद्धैरूपस्पृष्टजलम्	४१.७२
सिद्धैश्चैव समाकीर्ण	३७.१४
सिद्धैस्तु सेविता (उ)	१५.७९
सिद्धौ प्रत्यक्ष धर्माणौ (उ)	३७.७२
सिनीवाली कहूश्चैव	२८.१४
सिनीवाली प्रमाणेन	५६.५२
सिन्धु सागर सम्भेदे (उ)	१५.५५
सिन्धोरुत्तरपर्य्यन्तं (उ)	१६.७०
सिस्ट क्षमाणा विश्वं हि	२.५
सिंहनाद प्रमुञ्चते	३०.१४८
सिंहला रोमलाश्चैव	८.२९८
सिंह्राः केनापराधेन (उ)	३९.२९४
सिंहिकायामथोत्पन्ना (उ)	७.१९
सिंहो वा कुञ्जरो वापि	१०.७८
सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च	४७.३९
सीतानाम महापुण्या	४२.१७
सीदन्ति ते सागरे (उ)	२१.६१
सीरध्वजातु जातस्तु (उ)	२७.१८
सुकाला नाम पितरो (उ)	११.८९
सुकुमारं तृतीयन्तु	३३.१८
सुकुमारस्य पुत्रस्तु (उ)	३०.७३
सुकेतु तनयश्चापि (उ)	३०.७१
सुकेतोरपि धर्मात्मा (उ)	२७.८
सुक्कुलाजास्तथा पूपाः (उ)	१८.४८
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च (उ)	३८.७५
सुख दुःख मोहभावा (उ)	४०.११४
सुख प्रायाह्यशोकाश्च	८.६२
सुखमर्थः समासेन	१.१७८
सुखमायुश्च रूपञ्च	३३.३६
सुखामना विरुद्धाश्च (उ)	३८.७१
सुखमायुर्बलं रूपं	५८.१११
सुखमायुर्बलं रूपम्	४९.२४
सुखायामथ वारुण्यां	५०.९९
सुखायामर्द्ध रात्रञ्च	५०.९५
सुखीबल सुतश्चापि (उ)	३७.२७१
सुगन्ध किंशुकवनं	३८.२८
सुगन्धाश्चम्पवर्णाश्च (उ)	८.६२
सुगन्धिर्वनराजी च (उ)	३४.१६१
सुगन्धी वनराजी च (उ)	३४.१८३
सुग्रीव काञ्चनरवैः	३६.४
सुचन्द्र इति विख्यातो (उ)	२४.१०
सुचारुचारु केशाय	२४.१०५
सुचेतनाः प्रलीयन्ते (उ)	४०.५३
सुतपाः पौलवश्चैव (उ)	३८.६८
सुतपाश्चामिताभाश्च (उ)	३८.१३
सुत होत्रस्य दायादाः (उ)	३०.३
सुतां सुमहता युक्तां (उ)	४.१२९
सुतो वेदाशिरास्तस्य	२८.६
सुत्रांमाणः प्रयाज्यास्तु (उ)	३८.२०४
सुदन्दो नन्दकश्चैव	२२.१६
सुदर्शनो नाम महाजम्बूवृक्षः	४६.२४
सुदान्तश्च धियान्तश्च (उ)	३४.१४०
सुदासस्तस्य तनयो (उ)	२६.१७५
सुदुश्चरं नाम तपो (उ)	२८.३
सुद्युम्न इति विख्यातः (उ)	२३.१५
सुधामा काश्यपश्चैव (उ)	१.६६
सुधामानश्च देवाश्च (उ)	१.२४

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
सुथामा विरजश्चैव	२३.१२६
सुधामृत कुतः	५६.११
सुधृतेरपि धर्मात्मा (उ)	२७.१०
सुनगात् शतशृङ्गश्च	४२.६९
सुनागेऽपि महाशैले	३६.३६
सुनाभं दिव्यरूपाख्यम्	१.१६५
सुनेमिर्घुतपाश्चैव (उ)	३८.६५
सुपक्षकूटतगा तस्माच्च	४२.४९
सुपर्णश्च तथा ब्रह्म	३०.२४३
सुपर्ण यक्षगन्धर्वाः	३१.१२
सुपर मानसस्त्वेते (उ)	३८.९५
सुपालकं गौतमञ्च (उ)	४४.३८
सुप्रतीकस्तु रूपेण (उ)	७.२१२
सुबाहुः शूरसेनश्च (उ)	२६.१८५
सुबाहु हरिकेशाद्या	४१.२१
सुभद्रायां रथी पार्थाद- (उ)	३४.१७६
सुभद्रायां रथी पार्थाद- (उ)	३७.२४५
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं	५८.६२
सुभुजा हंस पादा च (उ)	८.८
सुमतिस्त्वपि जज्ञे (उ)	२६.१६०
सुमतेरपि धर्मात्मा (उ)	३७.१८४
सुमन्तुर्व वैरिर्विद्वान्-	२३.१८२
सुमहज्ज्वलनप्रख्यं (उ)	१८.११
सुमुखो दुर्मुखश्चैव	२३.१२०
सुमूलस्याचलेन्द्रस्य	३८.२३
सुमेकातु प्रसूयन्ते	३०.१९
सुमेधेधातुचित्राढ्ये	३९.४८
सुमौलाः कृष्णपादाश्च	४४.१०
सुयशा प्रथमा तासां (उ)	८.१०
सुयशाया दुहितरश्चतस्रो- (उ)	८.१३
सुरक्षणो यदा व्यासः	२३.१५१
सुरभी कश्यपाद (उ)	५.६८
सुरसाथ विजज्ञेतुं (उ)	८.३१५
सुरसामलतोयानि	३६.१४
सुराणामसुराणाञ्च	५४.६०
सुराणामसुराणाञ्च (उ)	८.३४४
सुरासुरैर्मथ्यमाने	५४.५६
सुरासुरैर्मथ्यमाने	५४.८४
सुरूपा चैव मारीची (उ)	४.९८
सुरेणुरिति विख्याता (उ)	२२.२१
सुरैरेव महाभागे	३०.११२
सुवक्षाः शिखिशैलश्च	३६.२७
सुवति स्पन्दनार्थे	५३.५४
सुवर्च्चाः सोमपुत्रस्तु (उ)	३७.४३२
सुवर्ण चित्रपार्श्वे तु	४२.५८
सुवर्णश्च सुतन्द्रश्च (उ)	२४.४६
सुवर्णनामा च तया	३०.२४१
सुवर्णपार्श्वः प्रापेण	३९.३४
सुवर्णं पार्श्वैश्च	३९.२१
सुवर्णभुवि पार्श्वे	४२.७५
सुवर्ण मणि चित्राभिः	३५.१४
सुवर्णमणि चित्राभिर्-	४०.१३
सुवर्णमणि चित्राभिर्-	४१.३
सुवीराय सुधीराय	२४.१२१
सुशर्म्मा तत्सुतश्चापि (उ)	३७.३४०
सुषुम्नाप्यायितश्चैव	५६.२७
सुषुम्नः सूर्य रश्मिस्तु	५३.४६
सुषुम्नो हरिकेशश्च	५३.४५
सुषुवेऽष्टौ महाभागा (उ)	८.४८
सुषेणो वै महावीर्यो (उ)	३७.२६९
सुष्मन्तमथ दुष्यन्तं (उ)	३७.१२९
सुसूक्ष्मानपरिक्तान् (उ)	११.५२
सुस्वादैर्विद्रुमनिभैः	३८.२५
सुहोत्रं विजया माद्री (उ)	३७.२४४
सुहोत्रस्याभवज्जह्नुः (उ)	२९.५१
सूक्ताः सुपरिमाषाश्च	१.१६
सूक्ष्मश्चैव निचन्द्रश्च (उ)	७.९
सूक्ष्माः प्रसव धर्म्मिण्यः (उ)	३९.२२३
सूक्ष्मेण महता सोऽथ	४.२३
सूचकः पर्वकारी (उ)	२१.३५
सूचीमुखोच्छेषणादाः (·)	८.२५९
सूत सूत महाभाग (उ)	४२.१
सूत सुमहदाख्यानं (उ)	४१.१
सूतात्मजः कथं (उ)	३७.१०९
सूरसेनापति स्कन्दः	५३.३१
सूर्य ध्रुवान्तरं यच्च (उ)	३९.४१
सूर्य क्रान्तं वरेण्यञ्च (उ)	२४.४५
सूर्य पूर्ण मण्डलः	५६.५६
सूर्य रश्मि सहस्रे च	१.९४
सूर्यस्य यत प्रकाशेन	२७.४०
सूर्यस्याण्डकपाले (उ)	८.२०३
सूर्य हि ग्रसमानानां	५०.१६२
सूर्याचन्द्रमसोदिव्ये	५३.५६
सूर्याचन्द्रमसोश्चारो	१.८८
सूर्याचन्द्रमसोश्चैव	१.८३
सूर्यादीनां स्यन्दनानाम्	१.९२
सूर्यादुष्णं निस्रवते	५१.२०
सूर्यायुनानामयुत प्रभा	५५.४४
सूर्येण गोभिस्तु समुद्धृता	५२.३९
सूर्येन्दु ग्रहताराणां	११.८
सूर्योदये प्रत्युषसि	१९.१८
सूर्योर्द्धन्तु ततः सोमाद (उ)	६.११६
सूर्य्य लोकादि संसिद्धि- (उ)	४९.३
सूर्याग्नीनां प्रवृद्धानां (उ)	३८.१४१
सूर्याय सूर्य्यपतये	३०.१९२
सृजते ग्रसते चैव	७.६४
सृजते ग्रसते चैव (उ)	४०.३२
सृजते ग्रसते चैव (उ)	४०.१३०
सृष्टा लोकाः सुराश्चैव (उ)	३५.३४
सृष्ट्वा चतुष्टयं	९.५०
सृष्ट्वा सहस्रमन्यत्तु	८.३८
सेतुका मूषिकाश्चैव	४५.१२५
सेनाजित्साम्प्रतं (उ)	३७.२९४
सेन्द्रोपेन्द्रैर्महाभागै (उ)	११.४८
सेयं खलु महाभूता (उ)	२४.६४
सैन्धवान् रन्ध्रकरकान्	४७.४६
सैन्धवो मुञ्जकेशाय	६१.५४
सैवमुक्ता तदा पित्रा (उ)	२२.४७
सैवं शैल सहस्राणि	४२.३४
सैवं स्थलीसहस्राणि	४२.२२
सैषा चतुर्महाद्वीपानाना-	४१.८५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
सैषाधात्री विधात्री (उ)	१.१९०	सौहोत्रिर्वरद: क्रुद्धो (उ)	२९.५३	स्थायित्वा तत्सत्रम्	१.१७३
सैषा भगवती देवी	२३.५०	स्कन्दग्रहविशेषाणां (उ)	८.१८६	स्थापयिष्यन्ति राजानो (उ)	३७.३७३
सै हि केया इति ख्याता: (उ)	७.१८	स्कन्दग्रहादश्चैव (उ)	८.१८५	स्थापितं धर्मसर्वस्वं (उ)	४५.२६
सोऽग्निर्यजुश्च सोमश्च	३१.३४	स्कन्दश्च सपरीवार: (उ)	३९.२७९	स्थायी वर्ण: प्रसंचारी (उ)	२५.६
सोऽपि सत्यतरं	६०.२९	स्कन्द: सनत्कुमारश्च (उ)	५.२४	स्थालीमग्ने: पूरयित्वा (उ)	२९.४०
सोऽब्रवीदेहि मे नाम	२७.६	स्कन्द: सोमप्रतीकाश: (उ)	३८.६६	स्थाल्युदुम्बरपात्राणि (उ)	१३.६६
सोऽभवद्गलवो (उ)	२६.९०	स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात्	१८.१४	स्थावरं देहि मे सर्वम् (उ)	३३.५
सोऽभिषिक्तो महातेजा (उ)	२८.२०	स्कन्नाचलत्वाद चला:	६.३०	स्थावरादीनि सत्वानि (उ)	३८.२०४
सोऽभिषिक्तो महाराजा (उ)	१.१३१	स्कन्नाचलत्वाद चला:	८.११	स्थावरेषु विपर्यास:	६.६३
सोऽम्भांस्ये तानि दृष्ट्वा	९.२४	स्तवकै मञ्जरीभिश्च	३६.७	स्थित: पुरस्तादेवस्य (उ)	३९.२७३
सोऽसृजद्रोमकूपेभ्यो	३०.१४२	सतम्भेऽप्यपासृतषष्टं (उ)	३९.२९२	स्थिता गयायां मन्नादि (उ)	५०.२
सोऽहं प्रजानिमित्तं (उ)	१.६१	स्तवै: पुष्पैमनोज्ञैश्च (उ)	१९.२२	स्थिताय चलमानाय	३०.१९७
सोऽहमेकादशात्मा	२५.१६	स्तुतस्ताभ्यां स देवेश:	१.६६	स्थितेषु चैव देवेषु (उ)	४४.७३
सोदका वत्सकाश्चैके	४३.२२	स्तुत्वैव स महादेवं	२.८५	स्थितो वेलासमीपे	४९.१०८
सोपानत्कश्च यो (उ)	२१.४३	स्तूयते वृक्षवीरुद्भि: (उ)	१.१८८	स्थूल जीर्णाङ्गजटिने	३०.२२३
सोपासङ्गतलत्रांश्च	१०.४८	स्तूयमान: सुरैर्विष्णु:	१.९६	स्थूलशीर्षा: सिताभाश्च (उ)	९.५९
सोमकश्च वराह	४७.७४	स्तोत्रसत्र ग्रहैर्देवान्	२:२७	स्थूल: षष्टियोजनायां (उ)	४४.५
सोमदत्तस्य राजर्षे (उ)	२४.२१	स्त्रियौ नक्तं परा चेषां (उ)	१७.८१	स्थूलाश्च तुङ्गनासाश्च (उ)	९.६१
सोमपास्तु तदा ह्वोता (उ)	१.१४	स्त्रीणां बलवधेनैव (उ)	३७.३८४	स्नातोऽथ पिण्डदो (उ)	५०.३२
सोमश्च मन्त्रसंयुक्ता	२३.८२	स्त्री राष्ट्रं भक्ष्यकांश्चैव (उ)	३७.३८१	स्नातो गोदो वैतरण्यां (उ)	५०.३३
सोमश्चाग्निस्तु भगवान्	२१.६७	स्त्रीशूद्रायानुपेताय (उ)	१७.८४	स्नातो जलासयो उ)	४६.७९
सोमस्य तु बुध: (उ)	२९.१	स्थली मनोहरा सा	३८.६७	स्नात्वा नत्वा च रामेशं (उ)	४६.३४
सोमस्य भगवान् (उ)	५.२२	स्थाणु भूतैश्चरंस्तत्र (उ)	१५.७२	स्नानं करोमि तीर्थे- (उ)	४९.३८
सोमस्याप्यायनं (उ)	११.९५	स्थानं जारद्रवं (उ)	५.४७	स्नानादि तर्पणं कृत्वा (उ)	४४.६६
सोमादूर्द्ध्वं तथर्क्षेभ्य: (उ)	६.११७	स्थानत्यागे मनश्चापि (उ)	३९.७६	स्निग्धपर्ण महामूलम्	४०.१९
सोमाधारा नदी	५१.२१	स्थानानां व्यतिरेकेण	३०.१२	स्निग्धां यवागमत्युष्णां	११.३९
सोमाश्चैवामृतप्राप्ति	५६.४	स्थानानि त्रीणि जानीयाद् (उ)	२५.४	स्निग्धैर्नीलैर्धनै:	३५.१८
सौकुमारेण रूपेण (उ)	३९.२४०	स्थानानि सिद्धैर्देवानां	३९.५०	स्निग्धैर्भक्ष्य: सुगन्धैश्च (उ)	१४.३८
सौत्रमणिं कण्ठदेशे (उ)	४२.८३	स्थानान्याश्रमिणां	८.१८७	स्पर्शनात्पूजनाद्वपि (उ)	४९.५६
सौदासान्तिग्रहस्तस्य	१.१५९	स्थानान्येतानि वर्णानां	८.१६८	स्फटिकैश्चन्द्रसंकाशै (उ)	३९.२४९
सौधोच्चवप्रप्राकारम्	८.१०४	स्थानान्येतान्यथोक्तानि	५३.८४	स्फटिकैश्चन्द्रसंकाशै (उ)	३९.३०८
सौभाग्यमुत्तम लोके (उ)	१३.३	स्थानाभिमानिमश्चैव	८.२०	स्फुरत्पद्मपलाशाक्षा (उ)	४२.७०
सौम्याय चैव पुण्याय (उ)	३५.१७९	स्थानाभिमानिनाम्	५२.३४	स्मितं कृत्वाब्रवीद्	३०.१७३
सौम्या वर्हिषदश्चैव	५२.६७	स्थानाभिमानिनो	५२.२४	स्मृतास्ते प्राच्यनामन: (उ)	३७.१८६
सौर सौम्यं तु विज्ञेयं	५०.१८८	स्थानेषु पाच्यमानाश्च	५६.७५	स्मृति शास्त्र प्रभेदाश्च	५८.२४
सौवर्णं राजतं ताम्रं (उ)	१२.१	स्थानेषु स महेन्द्रस्य (उ)	४१.४९	स्मृतिश्चाङ्गिरस पन्ती	२८.१३
सौवीरी मध्यमग्रामो (उ)	२४.३८	स्थानेषु स्थानिनो	३०.२०	स्मृतास्ते स्यमन्तकं न (उ)	३४.७५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
स्यमन्तकं नाम मणिं (उ)	३४.२८
स्यमन्तको नाम मणिः (उ)	३४.३१
स्रावयन्ती महाभागा	४२.२३
स्रोतोम्यस्तस्य च (उ)	४.५७
स्वकर्मफल शेषेण	८.२८
स्वगाहवं महात्मानं (उ)	३४.१८०
स्वगोत्रे परगोत्रे वा (उ)	४८.५७
स्वच्छन्द गतयः (उ)	३९.३२०
स्वत्रविप्रोग्निभासश्च (उ)	१.४६
स्वधर्म एष सूतस्य	१.२६
स्वधाकारश्च	५५.३४
स्वधां वाच्य ततो विप्रा (उ)	१४.४२
स्वधेति चैव मन्त्रास्ते (उ)	१३.७६
स्वपार्श्वस्योत्तरे	३५.४२
स्वप्नभूतं पुनः स्वर्गे	२४.८१
स्वभावं प्रतिपद्यन्ते (उ)	८.१४०
स्वमृडीकोऽथिपश्चैव (उ)	१.३२
स्वयमाचरते यस्मादा	५९.३०
स्वयम्भुवस्तु तां दृष्ट्वा (उ)	४.३१
स्वयम्भुवो निवृत्तस्य	५.४३
स्वयम्भोजः स्वयम् (उ)	३४.१३८
स्वयं स्वयम्भुवा	५४.१०३
स्वर संक्रामकाच्चैव (उ)	२५.१८
स्वरालं प्रत्ययश्चैव (उ)	२५.३०
स्वरित्युक्तं तृतीयोऽन्यो (उ)	३.१७
स्वरूपतो बुद्धि पूर्वम्	७.३२
स्वरूपैश्च व वासिष्ठः (उ)	३८.१०८
स्वरैः षोडशभिः (उ)	४२.७१
स्वरोर्चिषोत्तमश्चैव (उ)	१.५६
स्वर्ग दिशः समुद्रांश्च	८.१८
स्वर्ग लोक गतानां च	१.९९
स्वर्गीयमेतत् परमं	६१.१८४
स्वर्गे तु पितरोऽन्ये (उ)	१०.८
स्वर्गे स्थानविभागश्च	१.५१
स्वर्गोपपाद कैस्तुल्या (उ)	३९.२०५
स्वर्ग्यं यशस्य मायुष्यं (उ)	१.१०५
स्वर्भानुना हते चैव (उ)	९.७१

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
स्वर्भानुवृषपर्वा च (उ)	७.८
स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो	५३.८३
स्वर्भानोस्तामसं	५३.८८
स्वर्भानोस्तु तथैवाश्वाः	५२.८०
स्वर्भानोस्तु वृहत्	५३.६४
स्वर्लोको वै दिवं (उ)	३९.२१
स्वर्लोको हि तृतीयस्तु	२३.७९
स्वसा यवीयसी तेषां	२८.२२
स्वसायां तनयं कंसो (उ)	३४.२१२
स्वसारौ तु यवीयस्यो	२८.३२
स्वस्ति तेऽस्त्विति (उ)	९.७२
स्वस्तिपिकशरीरेभ्यो (उ)	८.२९३
स्वस्यात्रेया इति (उ)	९.७५
स्वस्तृतीयस्तु (उ)	३९.१७
स्वाकोटकः कलि सर्पो (उ)	८.१२८
स्वातनुं स ततो	१०.७
स्वात्मन्यवस्थिते सत्व	५.७
स्वात्मन्येवावतिष्ठन्ते (उ)	४०.४४
स्वादुदकेनोदधिना	४९.१२१
स्वामिनारक्ष्यमारणा-	५९.४५
स्वाम्यर्थे युष्यमानानां	२०.१९
स्वायम्भुवस्य हीत्ये	५९.९१
स्वायम्भुवादयः (उ)	३९.५६
स्वायम्भुवेऽन्तरे	३०.३५
स्वायम्भुवेऽन्तरे (उ)	४.२०
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं (उ)	५.१७
स्वायम्भुवेऽन्तरे (उ)	९.१९
स्वायम्भुवे निसर्गे	५१.१
स्वायम्भुवेन विस्तारो (उ)	१.२२
स्वायम्भुवोऽत्रिः (उ)	३.२७
स्वायम्भुवोऽथ	६१.११९
स्वायम्भुवो निसर्गश्च	३१.१३
स्वायम्भुवो मनुः (उ)	१.३
स्वारोचिषादिषु या	२९.४७
स्वारोचिषेऽन्तरेऽतीता (उ)	५.११
स्वारोचिषोत्तमश्चैव (उ)	१.५६
स्वारोचिषे वै (उ)	५.६५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
स्वाहा स्वधा महाविद्या	९.७८
स्वाहे पुत्रोऽभवद् (उ)	३३.१६
स्वेच्छयामरणं चास्तु (उ)	४९.८३
स्वेनाङ्गुलप्रमाणेन	५९.७
स्वेनात्मानं तमात्मानं (उ)	४०.१२३
स्वेषु पुत्रेषु नष्टेषु (उ)	४.१५१
स्वैर्विमानैर्महात्मानो	३०.९६
ह	
हंस कीला नृपमृषीन् (उ)	५.७३
हंस ज्येष्ठं विजानीमः (उ)	२४.४७
हंस बर्हिण युक्तानि (उ)	११.११३
हंस स्वरोऽहिहा (उ)	१.२९
हंसो ज्येष्ठः कनिष्ठोऽन्यो (उ)	८.४६
हूहूंकाराय पाराय	३०.२१०
हतः प्रसेनः सिंहेन (उ)	३४.६५
हता वै या यदा कन्या (उ)	३४.२१३
हते पितरि दुःखार्त्ता (उ)	३४.६१
हतो ध्वजो महेन्द्रेण (उ)	३५.८५
हत्वा निवेशयामास (उ)	३०.६२
हत्वा भृगान् वराहांश्च (उ)	२६.९२
हत्वा रजिसुतान् (उ)	३०.१००
हनुग्रीवामध्यगतं (उ)	४२.७८
हयग्रीवस्य कृष्णस्य	५०.२१
हरिकूटे हरिर्देवः	३९.५८
हरिकेशः पुरस्त्वाद्या	५३.४७
हरिता रोहिताश्चैव (उ)	३८.८७
हरिता वै सपिञ्जल्याः (उ)	१३.३८
हरिताश्चह्या	५४.१९४
हरिं ते शरणं जग्मुः (उ)	४७.१०
हरितैर्ख्यर्यैः पिङ्गैरी-	५२.४६
हरितो युवानाश्वस्य (उ)	२६.७३
हरित्कुमारमाण्डव्य (उ)	५०.९
हरिर्हरिदिभिर्हियते	५२.४२
हरिवर्षस्तृतीयस्तु	३३.३६
हरिश्चन्द्रस्य तु (उ)	२६.११८
हरिश्चाप्यं वृहच्चापि	५३.८७
हरिषेणः सुषेणश्च (उ)	८.३५

श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक	श्लोकारम्भ	अध्याय.श्लोक
हरेर्भगवत: साक्षाद् (उ)	४२.७५	हिमवाहाश्च ताभ्योऽन्या	५३.२१	हुते चाग्नौ सकृच्छुक्रे (उ)	४.३७
हरेस्तु हरय: पुत्रा (उ)	८.२०२	हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं	३३.५२	हुते वै ब्रह्मणा शुक्ते	३०.५९
हर्त्तार: पररत्नानां	५८.५७	हिरण्मयं ततश्चक्रे	२.१७	हुत्वा पूर्णाहुति ब्रह्मा (उ)	४४.४३
हर्म्यं प्रासादमतुलं	४१.५३	हिरण्मयस्तु यो मेरु	४.७१	हुत्वाष्टा वाहुती: सम्यक्	१५.५
हर्यश्वस्य मरु: (उ)	२७.११	हिरण्मयेन भगवान्	५२.५५	हुत्वाहुतिं तत: क्रूर:	३०.६४
हर्य्यङ्गस्य तु दायादो (उ)	३७.१०५	हिरण्यकशिपु: (उ)	९.४५	हृतं राज्यं बलीयोभि (उ)	२६.१२८
हर्षात् प्रादुर्बभौ तस्य (उ)	३५.१६१	हिरण्यकशिपुर्दैत्य: (उ)	६.६१	हृतानि च महीपानां (उ)	३६.१०२
हर्षा ये तमस: पुत्रा: (उ)	६.३९	हिरण्यकशिपुर्दैप्यो (उ)	३५.७७	हृदि कृत्वा महादेवं	२२.१४
हविर्द्धानात्वडाग्नेयी (उ)	२.२३	हिरण्यकशिपुर्नाम (उ)	६.५१	हृदि कृत्वा समुद्रांश्च	११.५५
हविर्हावी हवोहावी	३०.२२९	हिरण्यकशिपुस्तस्मात् (उ)	६.६०	हृष्टपुष्टावलिप्तानाम	४०.१७
हविष्मान् काश्यपश्चापि (उ)	३८.८२	हिरण्यकशिपू राजा (उ)	३५.८८	हृष्टागिरिदरीवासा	४१.३४
हविष्यग्नौ हूयमाने	५७.९५	हिरण्यकशिपो पुत्रा: (उ)	६.७०	हृष्यति तैर्महादेवो (उ)	३०.३१
हवींषि श्राद्ध काले (उ)	२१.२	हिरण्यकशिपोर्नाम् (उ)	६.५२	ह्रस्व बाहुं प्रबाहुञ्च (उ)	९.३७
हव्यञ्च वेदं वहति	२४.१६१	हिरण्यगर्भ: शकुनि-	३०.२५९	हेति पुत्रस्तथा (उ)	८.१२४
हव्य सूर्य्याग्रसंसृष्ट:	२९.२२	हिरण्यगर्भश्चोद्गाता (उ)	२८.२३	हेति: प्रहेतिरुग्रश्च (उ)	८.१२२
हव्यादांश्च सुरांश्चक्रे	३५.२७	हिरण्यगर्भो भगवान्	९.६८	हेतुर्हित: स्मृतो	५९.१०८
हव्यो व्यजनयत्	३३.१६	हिरण्यगर्भो भगवान्	२१.४	हेमकूटं गता तस्माद्	४२.३१
हस्त जङ्घैश्च लम्बोष्ठै:	५४.४०	हिरण्यनाभ: कौशल्यो (उ)	२६.२०६	हेमकूटस्य पृष्टे	४७.६३
हस्तपादाक्रान्तगणा (उ)	८.२७१	हिरण्यरोमा कपिल: (उ)	८.२६	हेमन्तको तु द्वौ	५२.१६
हस्तिनश्चापि दायादा: (उ)	३७.१६२	हिरण्य रोमाङ्गिरसो (उ)	१.५४	हेमन्ते शिशिरे चैव	५३.२६
हस्त्योष्ठं दीर्घं जङ्घञ्च (उ)	८.७५	हिरण्य वर्णा या देव्यो (उ)	२८.१८	हेममाषै: कृतच्छिद्रै (उ)	३८.२२१
हाश्चेकसा हि (उ)	४.११६	हिरण्य वाहवे चैव (उ)	३५.१८९	हेमविक्रम पूर्णानां	४८.१६
हासै: सन्त्रासजननै:	५४.३७	हिरण्य वाहिनीला च	४३.३०	हेमस्य सुतपा जज्ञे (उ)	३७.२६
हिडम्बा भीमसेनात्तु (उ)	३७.२४३	हिरण्याक्षसुता: (उ)	६.६७	हैहयश्च हयश्चैव (उ)	३२.४
हित्वागमं सवर्माणं (उ)	१४.३०	हिरण्याक्षो हतो द्वन्द्वे (उ)	३५.७८	हैहयस्तालजङ्घैश्च (उ)	२६.१२१
हित्वा त्रैलोक्य संसारं (उ)	११.१०६	हिरण्याय च शिष्टाय (उ)	३५.१७१	होता यज्वा च इत्येते (उ)	१.१३
हिमप्रपतने कुर्य्याद् (उ)	१६.२	हिंसामाया तथेर्ष्या	५८.३७	होमजप्ये नमस्कार: (उ.)	१३.५८
हिमप्रायश्च हिमवान्	३४.१४	हिंसा सूयानृतं माया	५८.३१	ह्रस्व कुञ्चिकेशाश्च (उ)	३९.२६३
हिमवच्छिखरे रम्ये	२३.१०८	हिसाहिंस्रे मृदुक्रूरे	८.३२	ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा	२०.१३
हिमवच्छिखरे रम्ये	२३.१३७	हिसाहिंस्रे मृदुक्रूरे	९.५३	ह्रस्वाय मुक्तकेशाय (उ)	३५.१६५
हिम वच्छिखरे रम्ये (उ)	१४.५	हिंसाहिंस्रे मृदुक्रूरे (उ)	४१.३३	ह्रस्वोरात्मजो (उ)	२७.१५
हिमवत्प्रभवा नद्यो	१७.२१	हिंसाह्वेषा परासृष्टा	१८.१०	ह्रादो निसुन्दश्च (उ)	६.७१
हिमवन्तमतिक्रम्य	५१.५०	हीनाद्धीनास्तथा (उ)	३७.४०३	ह्रासवृद्धी त्वहर्भागौ-	५०.१६९
हिमवान् हेमकूटस्तु	१.७७	हीना मच्छिरसो व्याला	९.३१	ह्रीयमाणा यदा (उ)	२८.४०

॥ श्रीवायुमहापुराणम् समाप्तम् ॥

* * *

NOTE

पुराण उन ग्रन्थों को कहते हैं जिनमें सर्ग अर्थात् ईश्वरीय सृष्टि, प्रतिसर्ग अर्थात् सृष्टि एवं प्रलय, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित जैसे पाँच विषयों का समावेश रहता है।

प्राणवायु प्रदान करने वाले वायुदेवता इस वायुमहापुराण के वक्ता हैं। वायुप्रोक्त वायुमहापुराण दो भागों में विभक्त है। १. पूर्वार्द्ध और २. उत्तरार्द्ध। वायुप्रोक्त इस वायुमहापुराण में चार पाद हैं। १. प्रक्रियापाद (१-६ अध्याय), २. उपोद्घातपाद (७-६१ अध्याय एवं उत्तरार्द्ध का १-३ अध्याय), ३. अनुषङ्गपाद (उत्तरार्द्ध ४-३७ अध्याय), ४. उपसंहारपाद (उत्तरार्द्ध ३८-५० अध्याय)।

वायुमहापुराण के प्रक्रियापाद में जगत् की प्रक्रिया का वर्णन है। इसके प्रथम अध्याय में सम्पूर्ण वायुमहापुराण की अनुक्रमणिका कही गई है। दूसरे उपोद्घातपाद में सृष्टि का उपोद्घात कहा गया है। तीसरे अनुषङ्गपाद में आनुषङ्गिक ज्ञान की प्रस्तुति है। चौथे उपसंहारपाद में वायुमहापुराण का उपसंहार किया गया है। वायुमहापुराण में पूर्वार्द्ध में इकसठ अध्याय हैं और उत्तरार्द्ध में पचास अध्याय हैं। सम्पूर्ण वायुमहापुराण में एक सौ ग्यारह अध्याय हैं।

श्रीवायुमहापुराण में सर्ग अर्थात् सृष्टि का वर्णन है। इसमें इस सम्पूर्ण पृथ्वी का विन्यास, ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र एवं अखिल ब्रह्माण्ड का वर्णन है। जम्बू द्वीप, प्लक्ष द्वीप, शाल्मली द्वीप आदि सातों द्वीप एवं सात समुद्रों का वर्णन भी इसमें मिलता है। इन द्वीपों के अन्तर्गत विभिन्न वर्षों का वर्णन, उनकी सीमाएँ और विस्तार आदि का वर्णन भी मिलता है, किन्तु इनका विस्तार प्रमाण आधुनिक परिमाणों से भिन्न है। इन देशों के निवासियों के आचार-विचार, स्वभाव, सभ्यता, रुचि एवं भौगोलिक स्थितियों का भी वर्णन है। वायुमहापुराण में ऋषि वंश, ईक्ष्वाकुवंश और पुरुवंश के वर्णन से वैदिक काल से लेकर पुराण काल तक के राजाओं एवं ऋषियों की परम्पराओं का वर्णन प्राप्त होता है।

यतः पुराण सनातन परम्परा से पाण्डुलिपियों में लिखे जा रहे हैं इसलिए विद्वानों ने अपने-अपने अनुसार पुराणों में प्रक्षिप्त अंश जोड़ दिए हैं। इसी प्रकार वायुमहापुराण में भी बहुत से प्रक्षिप्त अंश हैं, जिन्हें प्रस्तुत संस्करण में अप्रासंगिक होने के कारण निकाल दिया गया है।

प्रस्तुत संस्करण के प्रारम्भ में एक विस्तृत विषयसूची हिन्दी में दी गई है। ग्रन्थ के अन्त में सम्पूर्ण वायुमहापुराण की श्लोकानुक्रमणिका सर्वप्रथम दी गई है।

अनुवादक के विषय में—

पं० चित्तरञ्जन मालवीय काशी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं। इन्हें संस्कृत के ग्रन्थों एवं पुराणों के सम्पादन तथा अनुवाद कार्य का ज्ञान परम्परा से प्राप्त है। इनके द्वारा अनुवादित अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इनके पितामह पं० रामकुबेर मालवीय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में वर्ष १९३२-६२ तक साहित्य विभाग में थे। बाद में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में साहित्य के प्रोफेसर पद से अवकाश प्राप्त किया था। इनके पिता डॉ० सुधाकर मालवीय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग, कला संकाय से अवकाशप्राप्त हैं और अनेक तन्त्रग्रन्थों के अनुवादक हैं। सम्प्रति पं० चित्तरञ्जन मालवीय महामना संस्कृत अकादमी, वाराणसी में पुराण विभाग में कार्यरत हैं और अनेक पुराणों एवं संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद कार्य में संलग्न हैं।

Also can be had from : **Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.**

₹ 850.00